
9 999999 024510

जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-पूज्यश्री-घासीलालजी-महाराज-
विरचितया ज्ञानचन्द्रिकाख्यया-व्याख्यया समलङ्कृतं
हिन्दी-गुर्जर-भाषाऽनुवादसहितम्-

नन्दीसूत्रम्।

नियोजकः

संस्कृत-प्राकृतज्ञ-जैनागमनिष्णात-प्रियव्याख्यानि-
पण्डितमुनि-श्रीकन्हैयालालजी-महाराजः

卐

प्रकाशकः

अहमदाबाद-सरसपुरवासि-श्रेष्ठि-श्रीभोगीलाल छगनलाल-
भाई-भावसार-प्रदत्त-द्रव्यसाहाय्येन
अ० भा० श्वे० स्था० जैनशास्त्रोद्धारसमितिप्रमुखः
श्रेष्ठि-श्रीशान्तिलाल-मङ्गलदासभाई-महोदयः
मु० राजकोट

प्रथम आवृत्ति	वीर संवत्	विक्रम संवत्	ईस्वीसन
प्रति १०००	२४८४	२०१४	१९५८

मूल्यम्-रू० [illegible]-०-०

મળવાનું ઠેકાણું :
શ્રી. અ. ભા. શ્વે. સ્થાનકવાસી
જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ
ઠે. ગરેડિયા કૂવારોડ, ગ્રીન લૉજ
પાસે, **રાજકોટ** (સૌરાષ્ટ્ર)

*

પ્રથમ આવૃત્તિ : પ્રત ૧૦૦૦
વીર સંવત : ૨૪૮૪
વિક્રમ સંવત : ૨૦૧૪
ઇસ્વી સન : ૧૯૫૮

*

: મુદ્રક :
મણિલાલ છગનલાલ શાહ
ધી નવપ્રભાત પ્રિન્ટીંગ પ્રેસ
ઘીકાંટા રોડ : : અમદાવાદ

શ્રી-વર્ધમાન-શ્રમણ-સંઘના આચાર્યશ્રી

પૂજ્ય આત્મારામજી મહારાજશ્રીએ

આપેલ

સમ્મતિપત્ર

*

ઉપરાંત

પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ-રચિત

બીજા સૂત્રોની ટીકા માટે તેઓશ્રીના મંતવ્યો

*

તેમજ

અન્ય મહાત્માઓ, મહાસતીજીઓ, અદ્યતન-પદ્ધતિવાળા કોલેજના પ્રોફેસરો

તેમજ

શાસ્ત્રજ્ઞ શ્રાવકોના અભિપ્રાયો

વૈ. ૨
ામિતિ

जैनागमवारिधि–जैनधर्मदिवाकर–प्रधानाचार्य–पण्डित–मुनि–
श्रीमदात्मरामजीमहाराजानाम् नन्दीसूत्रस्याचार-
चिन्तामणिटीकायां

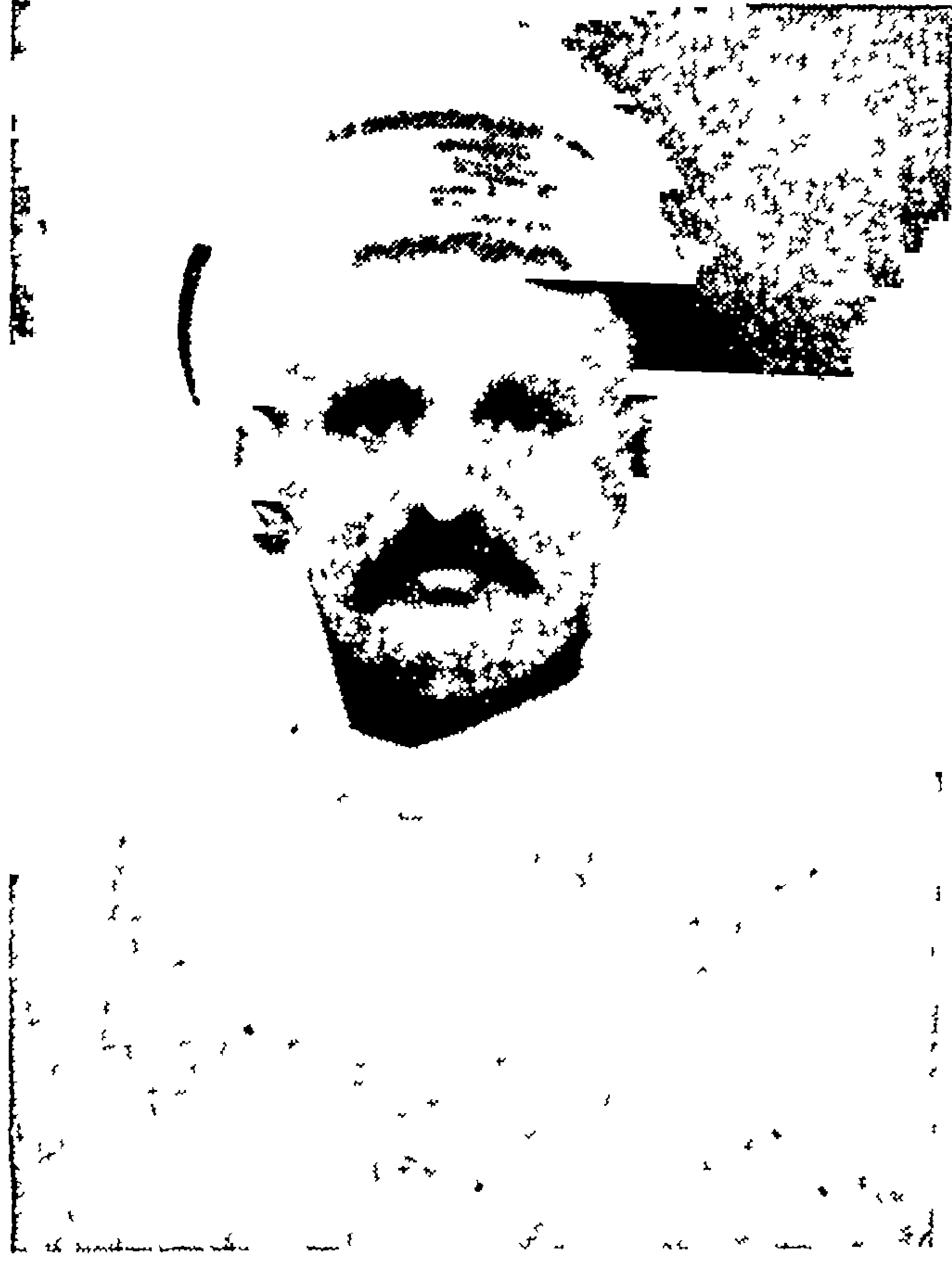
सम्मत्तिपत्रम्

श्रीमल्लब्धसपर्य्याचार्यवर्य्यघासीलालजित्कृता श्रीमदाचाराङ्गसूत्र-प्रथमाध्ययनस्याचारचिन्तामणिवृत्तिः साकल्येनोपयोगितापूर्वकं कर्णकुहरीकृता, वृत्तिरियं न्यायसिद्धान्तोपेता व्याकरणनियमोपनिबद्धा, तथा च प्रासङ्गिकरीत्या अन्यसिद्धान्तसङ्ग्रहोऽप्यस्यां याथातथ्येनाभासत एव, अपि च निखिला अपि विषयाः सम्यग् व्यक्तीकृता लेखकेन, विशेषेण प्रौढविषयाणां स्फुटतया गीर्वाणवाण्यां प्रतिपादनम् अधिकतरं मनोरञ्जकम् । अतः आचार्यमहोदयो धन्यवादमर्हतीति ।

आशासे जिज्ञासुमहोदया अस्याः सम्यग् अध्ययनेन जैनागमसिद्धान्तपीयूषं पायं पायं मनोमोदं विधास्यन्तीति । अस्याः परिशीलनेन चतुर्णामनुयोगानां परिचयं प्राप्नुवन्तु सज्जनाः । अथ आचार्यमहोदया एवमेवान्येषामपि जैनागमानां विशदव्याख्यानेन श्वेताम्बराणां स्थानकवासिनां महोपकृतिं विधाय यशस्विनो भविष्यन्तीति ।

पञ्चनन्दप्रान्तान्तर्वर्ति – लुध्यानामण्डल–स्थानकवास्तव्यो जैनमुनिरुपाध्याय आत्मारामः ।

विक्रमाब्दः २००२, मार्गशीर्षशुक्ला प्रतिपत्, शुभमस्तु ॥



સ્વ. શ્રીમાન્ છગનલાલ શામળદાસ ભાવસાર

જન્મ તા. ૧૫-૧૨-૧૮૮૨ ★ દેહોત્સર્ગ તા ૧૯-૧-૧૯૪૪

સ્મરણાંજલિ

આપે જિનેશ્વરનો ધર્મ આચરણમાં મુકીને જીવનને ધનધન્ય બનાવ્યુ અને તેનો શાશ્વત વારસો અમોને આપ્યો તે બદલ અમે આપના ઋણી છીએ. આપે સિંચેલા સસ્કારના પ્રભાવે આજે શ્રી નદીસૂત્ર આપના સ્મરણાર્થે છપાવી આપના તરફનું અમારૂં ઋણ યત્કિંચિત અદા કરવાનો આ અમારો નમ્ર પ્રયાસ છે

—અમે છીએ, આપના બાળકો,

ભોગીલાલ વીગેરે

जैनागमवेत्ता जैनधर्मदिवाकर उपाध्याय श्री १००८ श्री आत्मारामी महाराज तथा न्यायव्याकरणके ज्ञाता परम पण्डित मुनिश्री १००७ श्री हेमचन्द्रजी महाराज, इन दोनों महात्माओंका दिया हुआ श्री उपासकदशाङ्ग सूत्रका प्रमाण पत्र निम्न प्रकार है—

सम्मइवत्तं

सिरि-वीरनिव्वाण-संवच्छर २४५८ आसोई
(पुण्णमासी) १५ सुक्कवारो लुहियाणाओ।

मए मुणिहेमचंदेण य पंडियरयणमुणिसिरि-घासीलालविणिम्मिया सिरिउवासगसुत्तस्स अगारधम्मसंजीवणीनामिया वित्ती पंडियमूलचन्दवासाओ अज्जोवंतं सुया, समीईणं, इयं वित्ती जहाणामं तहा गुणेवि धारेइ, सच्चं अगाराणं तु इमा जीवण (संजमजीवण) दाई एव अत्थि। वित्तिकत्तुणा मूलसुत्तस्स भावो उज्जुसेलीओ फुडीकओ, अहय उवासयस्स सामण्णविसेसधम्मो, णयसियवायवाओ, कम्मपुरिसट्ठवाओ, समणोवासयस्स धम्मदढया य, इच्चाइविसया अस्सिं फुडरीइओ वण्णिया, जेण कत्तुणो पडिहाए सुट्ठुप्पयारेण परिचओ होइ, तह इइहासदिट्ठिओवि सिरिसमणस्स भगवओ महावीरस्स समए वट्टमाणभरहवासस्स य कत्तुणा विसयप्पयारेण चित्तं चित्तियं, पुणो सक्कयपाढीणं, वट्टमाणकाले हिन्दीणामियाए भासाए भासीणं य परमोवयारो कडो, इमेण कत्तुणो अरिहत्ता दीसइ, कत्तुणो एयं कज्जं परमप्पसंसणिज्जमत्थि। पत्तेयजणस्स मज्झत्थभावाओ अस्स सुत्तस्स अवलोयणमईव लाहप्पयं, अवि उ सावयस्स तु (उ) इमं सत्थं सव्वस्समेव अत्थि, अओ कत्तुणो अणेगकोडिसो धन्नवाओ अत्थि, जेहिं अच्चंतपरिस्समेण जइणजणतोवरि असीमोवयारो कडो, अह य सावयस्स वारस नियमा उ पत्तेयजणस्स पढणिज्जा अत्थि, जेसिं पहावओ वा गहणाओ आया निव्वाणाहिगारी भवइ तहा भवियव्वयावाओ पुरिसक्कारपरक्कमवाओ य अवस्समेव दंसणिज्जो, किंबहुणा इमीए वित्तीए पत्तेयविसयस्स फुडसद्देहिं वण्णयं कयं, जइ अन्नोवि एवं अम्हाणं पसुत्तप्पाए समाजे विज्जं भवेज्जा तया नाणस्स चरित्तस्स तहा संघस्स य खिप्पं उदयो भविस्सइ, एवं हं मन्ने॥

भवईओ—

उवज्झाय-जइणमुणि-आयाराम-पंचनईओ,

જૈનાગમવારિધિ-જૈનધર્મદિવાકર પ્રધાનાચાર્ય પણ્ડિત-
મુનિશ્રી આત્મારામજી મહારાજ (પંજાબ) ના એ
નન્દીસૂત્રની આચારચિન્તામણિ ટીકા પર આપેલ

સંમતિપત્રનો ગુજરાતી અનુવાદ

મેં પૂજ્ય આચાર્યવર્ય ઘાસીલાલજી (મહારાજ)ની બનાવેલ શ્રીમદ્ નન્દીસૂત્રના અધ્યયનની આચારચિંતામણિ ટીકા સમ્પૂર્ણ ઉપયોગપૂર્વક સાંભળી.

આ ટીકા ન્યાયસિદ્ધાંતથી યુકત, વ્યાકરણના નિયમથી નિબદ્ધ છે. તથા એમાં પ્રસંગે પ્રસંગે ક્રમથી અન્ય સિદ્ધાંતોનો સંગ્રહ પણ ઉચિત રૂપથી જણાઈ આવે છે.

ટીકાકારે અન્ય તમામ વિષયો સમ્યક્ પ્રકારથી સ્પષ્ટ કરેલ છે. તેમજ પ્રૌઢ વિષયોનો વિશેષ રૂપથી સંસ્કૃત ભાષામાં સ્પષ્ટતાપૂર્વક પ્રતિપાદન અતિ મનોરંજક છે. એ માટે આચાર્ય મહોદય ખરેખર ધન્યવાદને પાત્ર છે.

હુ આશા રાખું છું કે જિજ્ઞાસુ મહોદયો એના સારી રીતે પઠન પાઠન દ્વારા જૈનાગમ સિદ્ધાંતરૂપ અમૃત પીય પીયને મનને આનંદિત કરે. અને તેના મનનથી દક્ષજનો ચાર અનુયોગોનું સ્વરૂપજ્ઞાન મેળવે.

તથા આચાર્યવર્ય આવી જ રીતે બીજા પણ જૈનાગમોના સ્પષ્ટતાપૂર્વક વિવેચન દ્વારા શ્વેતાંબર સ્થાનકવાસી સમાજ પર મહાન ઉપકાર કરીને યશસ્વી બને.

વિ. સં. ૨૦૦૫
માગસર સુદિ ૧

જૈનમુનિ ઉપાધ્યાય આત્મારામ
લુધિયાના (પંજાબ)
શુભમસ્તુ

सम्मत्तिपत्र

(भाषान्तर)

श्रीवीरनिर्वाण सं० २४५८ आसोज
शुक्ल १५ (पूर्णिमा) शुक्रवार लुधियाना

मैंने और पण्डितमुनि हेमचन्दजी पण्डितरत्नमुनिश्री घासीलाल-जीकी रची हुई उपासकदशांग सूत्रकी गृहस्थधर्मसंजीवनी नामक टीका पण्डित मूलचन्द्रजी व्यास से आद्योपान्त सुनी है। यह वृत्ति यथानाम तथा गुणवाली-अच्छी बनी-है। सच यह गृहस्थों के जीवनदात्री-संयमरूप जीवन को देनेवाली-ही है। टीकाकार ने मूल सूत्र के भावको सरल रीति से वर्णन किया है, तथा श्रावक का सामान्य धर्म क्या है? और विशेष धर्म क्या है? इसका खुलासा इस टीकामें अच्छे ढंगसे बतलाया है। स्याद्वादका स्वरूप, कर्म-पुरुषार्थ-वाद और श्रावकों को धर्म के अंदर द्रढता किस प्रकार रखना, इत्यादि विषयों का निरूपण इसमें भली भांति किया है। इससे टीकाकार की प्रतिभा खूब झलकती है। ऐतिहासिक द्रष्टिसे श्रमण भगवान् महावीरके समय जैनधर्म किस जाहोजहाली पर था और वर्तमान समय जैनधर्म किस स्थिति में पहूंचा इस विषय का तो ठीक चित्र ही चित्रित कर दिया है। फिर संस्कृत जाननेवालों को तथा हिन्दी भाषा के जाननेवालों को भी पूरा होगा, क्यों कि टीका संस्कृत है, उसकी सरल हिन्दी कर दी गई है। इसके पढनेसे कर्ता की योग्यता का पता लगता है कि वृत्तिकारने समझाने का कैसा अच्छा प्रयत्न किया है। टीकाकार का यह कार्य परम प्रशंसनीय है। इस सूत्र को मध्यस्थ भाव से पढने वालों को परम लाभ की प्राप्ति होगी। क्या कहें! श्रावकों (गृहस्थों) का तो यह सूत्र सर्वस्व ही है, अतः टीकाकारको कोटिशः धन्यवाद दिया जाता है, जिन्हों ने अत्यन्त परिश्रमसे जैनजनताके ऊपर असीम उपकार किया है। इसमें श्रावक के बारह नियम प्रत्येक पुरुष के पढने योग्य हैं, जिनके प्रभाव से अथवा यथायोग्य ग्रहण करने से आत्मा मोक्षका अधिकारी होता है, तथा भवितव्यतावाद और पुरुषकार पराक्रमवाद हरएक को अवश्य

देखना चाहिये। कहां तक कहें, इस टीका में प्रत्येक विषय सम्यक् प्रकार से बताये गये हैं। हमारी सुप्तप्राय (सोई हुई सी) समाज में अगर आप जैसे योग्य विद्वान् फिर भी कोई होंगे तो ज्ञान, चारित्र तथा श्री संघका शीघ्र उदय होगा, ऐसा मैं मानता हूँ।

आपका

उपाध्याय जैनमुनि आत्माराम पंजाबी

※

इसी प्रकार लाहोरमें बिराजते हुए पण्डितवर्य विद्वान् मुनिश्री १००८ श्री भागचन्दजी महाराज तथा पं० मुनिश्री त्रिलोकचन्दजी महाराज के दिये हुए, श्री उपासकदशाङ्ग सूत्रके प्रमाणपत्र का हिन्दी सारांश निम्न प्रकार है-

श्री श्री स्वामी घासीलालजी महाराज-कृत श्री उपासकदशाङ्ग सूत्र की संस्कृत टीका व भाषा का अवलोकन किया, यह टीका अति रमणीय व मनोरञ्जक है, इसे अपने बडे परिश्रम व पुरुषार्थ से तय्यार किया है, सो आप धन्यवाद के पात्र है। आप जैसे व्यक्तियों की समाज में पूर्ण आवश्यकता है। आप की इस लेखनी से समाज के विद्वान् साधुवर्ग पढ कर पूर्ण लाभ उठावेंगे, टीकाके पढने से हम को अत्यानंद हुवा, और मन में ऐसे विचार उत्पन्न हुए कि हमारी समाज में भी ऐसे २ सुयोग्य रत्न उत्पन्न होने लगे-यह एक हमारे लिये बडे गौरव की बात है।

वि. सं. १९८९ मा. आश्विन
कृष्णा १३ वार भौम लाहोर

※

રૂા. ૧૦,૦૦૦) આપનાર આદ્ય મુરબ્બી સમિતિના પ્રમુખ;
દાનવીર શેઠશ્રી,



શેઠ શાંતિલાલ મંગળદાસભાઈ
અમદાવાદ.

श्री ज्ञाताधर्मकथाङ्गसूत्र की 'अनगारधर्माऽमृतवर्षिणी' टीका पर
जैनधर्मदिवाकर साहित्यरत्न जैनागमरत्नाकर परमपूज्य श्रद्धेय
जैनाचार्य श्री आत्मारामजी महाराज का

सम्मतिपत्र

लुधियाना, ता. ४-८-५१

मैंने आचार्यश्री घासीलालजी म. द्वारा निर्मित 'अनगार-धर्माऽमृत-वर्षिणी' टीका वाले श्री ज्ञाताधर्मकथाङ्ग सूत्र का मुनिश्री रत्नचन्द्रजी से आद्योपान्त श्रवण किया।

यह निःसन्देह कहना पडता है कि यह टीका आचार्य श्री घासीलालजी म० ने वडे परिश्रम से लिखी है। इसमें प्रत्येक शब्दका प्रमाणिक अर्थ और कठिन स्थलों पर सार-पूर्ण विवेचन आदि कई एक विशेषतायें हैं। मूल स्थलों को सरल वनाने में काफी प्रयत्न किया गया है, इस से साधारण तथा असाधारण सभी संस्कृतज्ञ पाठकों को लाभ होगा ऐसा मेरा विचार है।

मैं स्वाध्यायप्रेमी सज्जनों से यह आशा करूंगा कि वे वृत्तिकारके परिश्रम को सफल वना कर शास्त्र में दी गई अनमोल शिक्षाओं से अपने जीवन को शिक्षित करते हुए परमसाध्य मोक्ष को प्राप्त करेंगे।



श्रीमान् जयवीर

आपकी सेवामें पोष्टद्वारा पुस्तक भेज रहे हैं और इस पर आचार्यश्रीजी की जो सम्मति है वह इस पत्रके साथ भेज रहे हैं, पहुंचने पर समाचार देवें।

श्री आचार्य श्री आत्मारामजी म० ठाने ६ सुखशान्तिसे विराजते हैं। पूज्य श्री घासीलालजी म० सा० ठाजे ४ को हमारी ओरसे वन्दना अर्ज कर सुखशाता पूछें।

पूज्यश्री घासीलालजी म० जी का लिखा हुआ (विपाकसूत्र) महाराजश्रीजी देखना चाहते हैं। इसलिये १ कापी आप भेजने की कृपा करें; फिर आपको वापिस भेज देवेंगे। आपके पास नहीं हो तो जहां से मिले वहां से १ कापी जरूर भिजवाने का कष्ट करें, उत्तर जल्द देने की कृपा करें। योग्य सेवा लिखते रहें।

लुधियाना ता. ४-८-५१

निवेदक
प्यारेलाल जैन

जैनागमवारिधि-जैनधर्मदिवाकर-उपाध्याय-पण्डित-मुनि श्री आत्मारामजी महाराज (पञ्जाब) का आचाराङ्गसूत्र की आचारचिन्तामणि टीका पर

सम्मतिपत्र

मैंने पूज्य आचार्यवर्य श्री घासीलालजी (महाराज) की बनाई हुई श्रीमद् आचाराङ्गसूत्र के प्रथम अध्ययन की आचारचिन्तामणि टीका सम्पूर्ण उपयोगपूर्वक सुनी।

यह टीका, न्यायसिद्धान्त से युक्त, व्याकरण के नियम से निबद्ध है। तथा इसमें प्रसङ्ग २ पर क्रमसे अन्य सिद्धान्त का संग्रह भी उचित रूप से मालूम होता है।

टीकाकार के अन्य सभी विषय सम्यक् प्रकार से स्पष्ट किये हैं, तथा प्रौढ विषयों का विशेषरूप से संस्कृत भाषा में स्पष्टतापूर्वक प्रतिपादन अधिक मनोरंजक है, एतदर्थ आचार्य महोदय धन्यवाद के पात्र हैं।

मैं आशा करता हूं कि जिज्ञासु महोदय इसका भलीभांति पठन-द्वारा जैनागमसिद्धान्तरूप अमृत पी-पी कर मन को हर्षित करेंगे, और इस के मनन से, दक्ष जन चार अनुयोगों का स्वरूपज्ञान पावेंगे। तथा आचार्यवर्य इसी प्रकार दूसरे भी जैनागमों के विशद विवेचन द्वारा श्वेताम्बर-स्थानकवासी समाज पर महान उपकार कर यशस्वी बनेंगे।

वि. सं. २००२ — जैनमुनि-उपाध्याय आत्माराम
मृगसर सुदि १ — लुधियाना (पंजाब). शुभमस्तु



बीकानेरवासी समाजभूषण शास्त्रज्ञ भेरुदानजी शेठियाका अभिप्राय-



आप जो शास्त्रका कार्य कर रहे हैं यह बडा उपकारका कार्य है। इससे जैनजनताको काफी लाभ पहुंचेगा।
(ता. २८-३-५६ के पत्रमें से)

॥ श्रीः ॥

जैनागमवारिधि-जैनधर्मदिवाकर-जैनाचार्य-पूज्यश्री आत्मारामजी-
महाराजनां पञ्चनद-(पंजाब) स्थानामनुत्तरोपपातिकसूत्राणा-
मर्थबोधिनीनामकटीकायामिदम्-

सम्मतिपत्रम्

आचार्यवर्यैः श्री घासीलालमुनिभिः सङ्कलिता अनुत्तरोपपातिकसूत्राणामर्थबोधिनीनाम्नी संस्कृतवृत्तिरुपयोगपूर्वकं सकलाऽपि स्वशिष्यमुखेनाऽश्रावि मया, इयं हि वृत्तिर्मुनिवरस्य वैदुष्यं प्रकटयति। श्रीमद्भिर्मुनिभिः सूत्राणामर्थान् स्पष्टयितुं यः प्रयत्नो व्यधायि तदर्थमनेकशो धन्यवादानर्हन्ति ते। यथा चेयं वृत्तिः सरला सुबोधिनी च तथा सारवत्यपि। अस्याः स्वाध्यायेन निर्वाणपदममीप्सुभिर्निर्वाणपदमनुसरद्भिर्ज्ञान-दर्शन-चारित्रेषु प्रयतमानैर्मुनिभिः श्रावकैश्च ज्ञान-दर्शन-चारित्राणि सम्यक् सम्प्राप्याऽन्येऽप्यात्मानस्तत्र प्रवर्तयिष्यन्ते।

आशासे श्रीमदाशुकविनिर्मुनिवरो गीर्वाणवाणीजुषां विदुषां मनस्तोषाय जैनागमसूत्राणां सारावबोधाय च अन्येषामपि जैनागमानामित्थं सरलाः सुस्पष्टाश्च वृत्तीर्विधाय तांस्तांन सूत्रग्रन्थान् देवगिरा सुस्पष्टयिष्यति।

अन्ते च "मुनिवरस्य परिश्रमं सफलयितुं सरलां सुबोधिनीं चेमां सूत्रवृत्तिं स्वाध्यायेन सनाथयिष्यन्त्यवश्यं सुयोग्या हंसनिभाः पाठकाः" इत्याशास्ते—

विक्रमाब्द २००२
श्रावणकृष्णा प्रतिपदा — उपाध्याय आत्मारामो जैनमुनिः
लुधियाना



(श्री दशवैकालिकसूत्रका सम्मतिपत्र)

॥ श्री वीरगौतमाय नमः ॥

सम्मतिपत्रम्

मए पंडितमुणि-हेमचंदेण य पंडिय-मूलचन्दवासवारा पत्ता पंडिय-रयण-मुणि-घासीलालेण विरइया सक्कय-हिन्दी-भासाहिं जुत्ता सिरि-दसवेयालिय-नामसुत्तस्स आयारमणिमंजूसा वित्ती अवलोइया, इमा मणोहरा अत्थि, एत्थ सद्दाणं अइसयजुत्तो अत्थो वण्णिओ, विउजणाणं पाययजणाण य परमोवयारिया इमा वित्ती दीसइ। आयारविसए वित्तीकत्तारेण अइसयपुव्वं उल्लेहो कडो, तहा अहिंसाए सरूवं जे जहा-तहा न जाणंति तेसिं इमाए वित्तीए परमलाहो भविस्सइ, कत्तुणा पत्तेयविसयाणं फुडरूवेण वण्णणं कडं, तहा मुणिणो अरहत्ता इमाए वित्तीए अवलोयणाओ अइसयजुत्ता सिज्झइ। सक्कयछाया सुत्तपयाणं पयच्छेओ य सुबोहदायगो अत्थि, पत्तेयजिण्णासुणो इमा वित्ती दट्ठव्वा। अम्हाणं समाजे एरिसविज्ज-मुणिरयणाणं सब्भावो समाजस्स अहोभग्गं अत्थि, किं उत्तविज्जमुणिरयणाणं कारणाओ, जो अम्हाणं समाजो सुत्तप्पाओ अम्हकेर साहिच्चं च लुत्तप्पायं अत्थि, तेसिं पुणोवि उदओ भविस्सइ? जस्स कारणाओ भवियप्पा मोक्खस्स जोग्गो भवित्ता पुणो निव्वाणं पाविहिइ। अओहं आयारमणिमंजूसाए कत्तुणो पुणो पुणो धन्नवायं देमि-॥

वि. सं. १९९० फाल्गुन शुक्लत्रयोदशी मङ्गले (अलवरस्टेट)

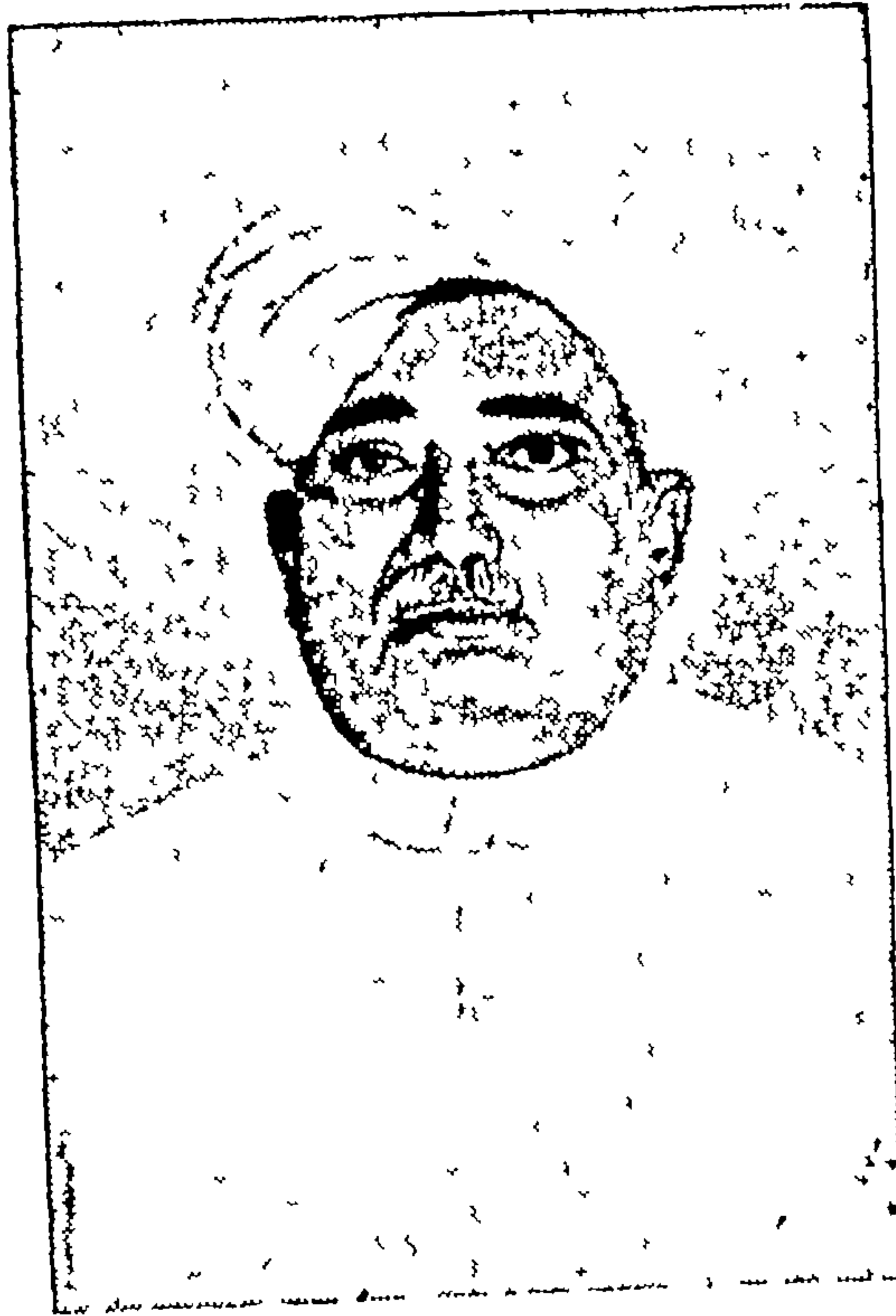
इइ- उवज्जाय-जइण-मुणी, आयारामो (पंचनईओ)

ऐसे ही :—

मध्यभारत सैलाना-निवासी श्रीमान् रतनलालजी डोसी श्रमणोपासक जैन लिखते हैं कि—

श्रीमान् की हुई टीकावाला उपासकदशांग सेवक के दृष्टिगत हुवा, सेवक अभी उसका मनन कर रहा है, यह ग्रन्थ सर्वाङ्गसुन्दर एवम् उच्च कोटि का उपकारक है।

રૂા. ૧૦૦૮) આપનાર આદ્ય મુરબ્બીશ્રી



શેઠ હરખચંદ કાળીદાસ વારીયા
ભાણવડ.

निरयावलिसूत्र का सम्मतिपत्र
आगमवाराधि-सर्वतन्त्रस्वतन्त्र-जैनाचार्य पूज्यश्री
आत्मारामजी महाराजकी तरफका आया हुवा

सम्मतिपत्र

लुधियाना ता. ११ नवम्बर ४८

श्रीयुत् गुलाबचन्दजी पानाचंदजी ! सादर जयजिनेन्द्र ॥

पत्र आपका मिला, निरयावलिका विषय पूज्यश्रीका स्वास्थ्य ठीक न होनेसे उनके शिष्य पं० श्री हेमचन्द्रजी महाराजने सम्मतिपत्र लिख दिया है, आपको भेज रहे हैं, कृपया एक कोपी निरयावलिका की और भेज दीजिये, और कोई योग्य सेवा कार्य लिखते रहे ।!

भवदीय.

गूजरमल-बलवंतराय जैन

॥ सम्मति ॥

(लेखक जैनमुनि पण्डित श्री हेमचन्द्रजी महाराज)

सुन्दरबोधिनीटीकया समलङ्कृतं हिन्दी-गुर्जर-भाषानुवादसहितं च श्रीनिरयावलिकासूत्रं मेधाविनामल्पमेधसां चोपकारकं भविष्यतीति सुदृढं मेऽभिमतम्, संस्कृतटीकेयं सरला सुबोधा सुललिता चात एव अन्वर्थनाम्नी चाप्यस्ति । सुविशदत्वात् सुगमत्वात् प्रत्येकदुर्बोधपद-व्याख्यायुतत्वाच्च टीकैषा संस्कृतसाधारणज्ञानवतामप्युपयोगिनी भाविनीत्यभिप्रैमि । हिन्दी-गुर्जरभाषानुवादावपि एतद्भाषाविज्ञानां महीयसे लाभाय भवेतामिति सम्यक् सम्भावयामि ।

जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर - पूज्यश्री-घासीलालजी - महाराजनां परिश्रमोऽयं प्रशंसनीयो, धन्यवादार्हाश्च ते मुनिसत्तमाः एवमेव श्री-समीरमल्लजी-श्रीकन्हैयालालजी-मुनिवरेण्ययोर्नियोजनकार्यमपि श्लाघ्यं तावपि च मुनिवरौ धन्यवादार्हौ स्तः ।

सुन्दरप्रस्तावनाविषयानुक्रमादिना समलङ्कृते सूत्ररत्नेऽस्मिन् यदि शब्दकोषोऽपि दत्तः स्यात्तर्हि वरतरं स्यात् । यतोऽस्यावश्यकतां सर्वेऽप्यन्वेषकविद्वांसोऽनुभवन्ति ।

पाठकाः सूत्रस्याध्ययनाध्यापनेन लेखकनियोजकमहोदयानां परिश्रमं सफलयिष्यन्तीत्याशास्महे । इति ।

श्री उपासकदशाङ्ग सूत्र परत्वे जैनसमाजना अग्रगण्य जैनधर्मभूषण महान् विद्वान् संतोए तेमज विद्वान् श्रावकोए सम्मतिओ समर्पी छे, तेमना नामो नीचे प्रमाणे छे–

(१) लुधियाना–संवत् १९८९, आश्विन पूर्णिणाका पत्र, श्रुतज्ञान के भंडार आगमरत्नाकर जैनधर्मदिवाकर श्री १००८ श्री उपाध्याय श्री आत्मारामजी महाराज, तथा न्यायव्याकरणवेत्ता श्री १००७ तच्छिष्य श्री मुनि हेमचन्द्रजी महाराज.

(२) लाहौर–वि० सं० १९८९ आश्विन वदि १३ का पत्र, पण्डित श्री १००८ श्री भागचन्दजी महाराज तथा तच्छिष्य पण्डितरत्न श्री १००७ श्री त्रिलोकचन्दजी महाराज.

(३) खीचन–से ता. ९–११–३६ का पत्र, क्रियापात्र स्थविर श्री १००८ श्री भारतरत्न श्री समरथमलजी महाराज.

(४) वालाचोर–ता. १४–११–३६ का पत्र, परमप्रसिद्ध भारतरत्न श्री १००८ श्री शतावधानी श्री रत्नचन्दजी महाराज.

(५) बम्बई–ता. १६–११–३६ का पत्र, प्रसिद्ध कविन्द्र श्री १००८ श्री कवि नानचन्द्रजी महाराज.

(६) आगरा–ता. १८–१२–३६, जगत्–वल्लभ श्री १००८ जैनधर्मदिवाकर श्री चौथमलजी महाराज, गुणवन्त गणीजी श्री १००७ श्री साहित्यप्रेमी श्री प्यारचंदजी महाराज.

(७) हैद्राबाद–(दक्षिण) ता. २५–११–३६ का पत्र, स्थविरपदभूषित भाग्यवान पुरुष श्री ताराचंदजी महाराज, तथा प्रसिद्ध वक्ता श्री १००७ श्री सोभागमलजी महाराज.

(८) जयपुर–ता. २७–११–३६ का पत्र, संप्रदाय के गौरववर्धक शांत–स्वभावी श्री १००८ श्री खूबचन्दजी महाराज.

(९) अम्बाला–ता. २९–११–३६ का पत्र, परमप्रतापी पंजावकेशरी श्री १००८ श्री पूज्य श्री काशीरामजी महाराज.

(१०) सेलाना-ता. २९-११-३६ का पत्र, शास्त्रों के ज्ञाता श्रीमान् रतनलालजी डोसी.

(११) खीचन-ता. ९-११-३६ का पत्र, पण्डितरत्न न्यायतीर्थ सुश्रावक श्रीयुत् माधवलालजी.

सादर जय जिनेन्द्र

आपका भेजा हुवा उपासकदशांग सूत्र तथा पत्र मिला यहां विराजित प्रवर्तक वयोवृद्ध श्री १००८ श्री ताराचंदजी महाराज पण्डित श्री किशमलालजी महाराज आदि ठाणा १४ सुख शांति में विराजमान हैं आपके वहां विराजित जैनशास्त्राचार्य पूज्यपाद श्री १००८ श्री घासीलालजी महाराज आदि ठाणा नव से हमारी वन्दना अर्ज कर सुख शांति पूछें, आपने उपासकदशांग सूत्र के विषय में यहां विराजित मुनिवरों की सम्मति मंगाई, उसके विषय में वक्ता श्री सोभागमलजी महाराजने फरमाया है कि वर्तमानमें स्थानकवासी समाजमें अनेकानेक विद्वान् मुनि महाराज मौजूद है मगर जैनशास्त्र की वृत्ति रचनेका साहसा जैसा घासीलालजी महाराजनें किया है वैसा अन्यने किया हो ऐसा नजर नहीं आता। दूसरा यह शास्त्र अत्यन्त उपयोगी तो यों है ही, संस्कृत प्राकृत हिंदी और गुजराती भाषा होने सें चारों भाषा वाले एक ही पुस्तक से लाभ उठा सकते हैं। जैनसमाज में ऐसे विद्वानों का गौरव बढे, यही शुभ कामना है। आशा है कि स्थानकवासी संघ विद्वानों की कदर करना सीखेगा।

योग्य लिखें शेष शुभ

भवदीय

जमनालाल रामलाल कीमती

आगरा से—

श्री जैनदिवाकर प्रसिद्ध वक्ता जगद्वल्लभ मुनि श्री चोथमलजी महाराज व पंडितरत्न सुव्याख्यानी गणीजी श्री प्यारचन्द जी महाराज ने इस पुस्तक को अतीव पसन्द की है।

श्रीमान् न्यायतीर्थ पण्डित

माधवलालजी खीचनसे लिखते है कि—

उन पंडितरत्न महाभाग्यवंत पुरुषों के सामने उनकी अगाध-तत्त्वगवेषणा के विषय में मैं नगण्य क्या सम्मति दे सकता हूं।

परन्तु—

मेरे दो मित्रों ने जिन्होंने इसको कुछ पढा है बहुत सराहना की है, वास्तव में ऐसे उत्तम व सबके समझने योग्य ग्रन्थों की बहुत आवश्यकता है, और इस समाज का तो ऐसे ग्रन्थ ही गौरव बढा सकते हैं। ये दोनों ग्रन्थ वास्तव में अनुपम हैं। ऐसे ग्रन्थरत्नों के सुप्रकाशसे यह समाज अमावास्या के घोर अन्धकारमें दीपावली का अनुभव करती हुई, महावीर के अमूल्य वचनों का पान करती हुई अपनी उन्नति में अग्रसर होती रहेगी।



ता. २९-११-३६

अम्बाला (पंजाब)

पत्र आपका मिला। श्री श्री १००८ पंजाबकेसरी पूज्य श्री काशी-रामजी महाराज की सेवा में पढ़ कर सुना दिया। आपकी भेजी हुई उपासदशाङ्गसूत्र तथा गृहिधर्मकल्पतरुकी एक २ प्रति भी प्राप्त हुई। दोनों पुस्तकें अति उपयागी तथा अत्यधिक परिश्रम से लिखी हुई हैं। ऐसे ग्रन्थरत्नों के प्रकाशित करवानेकी बड़ी आवश्यकता है। इन पुस्तकों से जैन तथा अजैन सबका उपकार हो सकता है। आपका यह पुरुषार्थ सराहनीय है।

आपका

शशिभूषण शास्त्री

अध्यापक जैन हाईस्कूल

अम्वाला शहर

રૂા. પરપ૧) આપનાર આદ્ય મુરબ્બીશ્રી



કોઠારી હરગોવિંદભાઈ જેચંદ
રાજકોટ.

शान्तस्वभावी वैराग्यमूर्ति तत्ववारिधि, धैर्यवान श्री जैनाचार्य पूज्यवर श्री श्री १००८ श्री खूबचन्दजी महाराज साहेबने सूत्र श्री उपासकदशाङ्गजी को देखा। आपने फरमाया कि पण्डित मुनि श्री घासीलालजी महाराज ने उपासकदशाङ्ग सूत्रकी टीका लिखनेमें वडा ही परिश्रम किया है। इस समय इस प्रकार प्रत्येक सूत्रों की संशोधनपूर्वक सरल टीका और शुद्ध हिन्दी अनुवाद होनेसे भगवान निर्ग्रन्थों के प्रवचनों के अपूर्व रसका लाभ मिलसकता है।



बालाचोर से भारतरत्न शतावधानी पण्डित मुनि श्री १००८ श्री रतनचन्दजी महाराज फरमाते हैं कि—

उत्तरोत्तर जोतां मूलसूत्रनी संस्कृत टीकाओ रचवामां टीकाकारे स्तुत्य प्रयास कर्यो छे, जे स्थानकवासी समाज माटे मगरूरी लेवा जेवुं छे, वळी करांचीना श्री संघे सारा कागळमां अने सारा टाईपमां पुस्तक छपावी प्रगट कर्युं छे जे एक प्रकारनी साहित्य सेवा बजावी छे.



बम्बई शहरमें विराजमान कवि मुनि नानचन्दजी महाराजने फरमाया है कि पुस्तक सुन्दर है प्रयास अच्छा है।



खीचन से स्थविर क्रियापात्र मुनि श्री रतनचन्दजी महाराज और पण्डितरत्न मुनि श्री समर्थमलजी फरमाते हैं कि–विद्वान महात्मा पुरुषों का प्रयत्न सराहनीय है, जैनागम श्रीमद् उपासकदशाङ्गसूत्र की टीका, एवं उस की सरल सुबोधिनी शुद्ध हिन्दी भाषा बडी सुंदरता से लिखी है।



श्री वीतरागाय नमः।

श्री श्री श्री १००८ जैनधर्मदिवाकर जैनागमरत्नाकर श्रीमज्जैनाचार्य श्री पूज्य घासीलालजी महाराज चरणवन्दन स्वीकार हो।

अपरञ्च समाचार यह है कि आपके भेजे हुए ९ शास्त्र मास्टर शोभालालजी के द्वारा प्राप्त हुए, एतदर्थ धन्यवाद! आपश्रीजी ने तो ऐसा कार्य किया है जो कि हजारों वर्षों से किसी भी स्थानकवासी जैनाचार्यने नहीं किया।

आपने स्थानकवासी जैनसमाज के ऊपर जो उपकार किया है वह कदापि भूलाया नहीं जा सकता और नहीं भूलाया जा सकेगा।

हम तीनों मुनि भगवान महावीर से अथवा शासनदेव से प्रार्थना करते हैं कि आप की इस वज्रमयी लेखनी को उत्तरोत्तर शक्तिप्रदान करें ता कि आप जैनसमाज से ऊपर और भी उपकार करते रहें, और आप चिरञ्जीवी हो।

हम हैं आपके मुनि तीन
मुनि सत्येन्द्रदेव, मुनि लखपतराय, मुनि पद्मसेन

इतवारी बाजार
नागपुर ता. १९-१२-५६

प्रखर विद्वान् जैनाचार्य मुनिराज श्री घासीलालजी महाराजद्वारा जो आगमोद्धार हुआ और हो रहा है सचमुच महाराज श्री का यह स्तुत्य कार्य है। हमने प्रचारकजी के द्वारा नौ सूत्रोंका सेट देखा और कइ मार्मिक स्थलोंको पढा, पढ कर विद्वान मुनिराजश्री की शुद्ध श्रद्धा तथा लेखनीके प्रति हार्दिक प्रसन्नता फूट पडी।

वास्तवमें मुनिराज श्री जैन समाज पर ही नहीं इतर समाज पर भी गहरा उपकार कर रहे हैं। ज्ञान किसी एक समाज का नहीं होता वह सभी समाज की अनमोल निधि है जिसे कठिन परिश्रम से तैयार कर जनता के सम्मुख रक्खा जा रहा है, जिसका एक एक सेट हर शहर गांव और घर घरमें होना आवश्यक है।

साहित्यरत्न
मोहनमुनि सोहनमुनि जैन



શ્રી દશવૈકાલિક સૂત્રનું સમ્મતિપત્ર

શ્રમણ સંઘના મહાન આચાર્ય આગમ વારિધિ સર્વતન્ત્રસ્વતંત્ર જૈનાચાર્ય પૂજ્યશ્રી આત્મારામજી મહારાજે આપેલા સમ્મતિપત્રનો ગુજરાતી અનુવાદ.

*

મેં તથા પંડિત મુનિ હેમચંદ્રજીએ પંડિત મુલચંદ વ્યાસ (નાગૌર મારવાડવાલા) દ્વારા મળેલી પંડિત રત્ન શ્રી ઘાસીલાલજી મુનિ વિરચિત સંસ્કૃત અને હિન્દી ભાષા સહિત શ્રી દશવૈકાલિક સૂત્રની આચારમણિમંજૂષા ટીકાનું અવલોકન કર્યું. આ ટીકા સુંદર બની છે. તેમાં પ્રત્યેક શબ્દોનો અર્થ સારી રીતે વિશેષભાવ લઈ ને સમજાવવામાં આવેલ છે.

તેથી તે વિદ્વાનો અને સાધારણ બુદ્ધિવાળાઓ માટે ઉપકાર કરવાવાળી છે. ટીકાકારે મુનિના આચાર વિષયનો ઉલ્લેખ સારો કરેલ છે. જે આધુનિક-મતાવલંબી અહિંસાના સ્વરૂપને નથી જાણતા, દયામાં પાપ સમજે છે તેમને માટે 'અહિંસા શું વસ્તુ છે' તેનું સારી રીતે પ્રતિપાદન કરેલ છે. વૃત્તિકારે સૂત્રના પ્રત્યેક વિષયને સારી રીતે સમજાવેલ છે. આ વૃત્તિના અવલોકનથી વૃત્તિકારની અતિશય યોગ્યતા સિદ્ધ થાય છે.

આ વૃત્તિમાં એક બીજી વિશેષતા એ છે કે મૂલસૂત્રની સંસ્કૃત છાયા હોવાથી સૂત્ર, સૂત્રનાં પદ અને પદચ્છેદ સુબોધદાયક બનેલ છે.

પ્રત્યેક જીજ્ઞાસુએ આ ટીકાનું અવલોકન અવશ્ય કરવું જોઇએ. વધારે શું કહેવું ? અમારી સમાજમાં આવા પ્રકારના વિદ્વાન મુનિરત્નનું હોવું એ સમાજનું અહોભાગ્ય છે. આવા વિદ્વાન મુનિરત્નોના કારણે સુપ્તપ્રાય-સુતેલો સમાજ અને લુપ્તપ્રાય એટલે લોપ પામેલું સાહિત્ય એ બન્નેનો ફરીથી ઉદય થશે. અમો વૃત્તિકારને વારંવાર ધન્યવાદ આપીએ છીએ.

વિક્રમ સંવત ૧૯૯૦ ફાલ્ગુન શુક્લ તેરસ મંગળવાર (અલવર સ્ટેટ)	ઈતિ ઉપાધ્યાયજૈનમુનિ આત્મારામ (પંજાબી)

રૂા. ૫૦૦૧) આપનાર આદ્ય મુરબ્બીશ્રી



(સ્વ.) શેઠ ધારસીભાઈ જીવણભાઈ
સોલાપુર.

શ્રમણ સંઘના પ્રચારમંત્રી પંજાબકેશરી મહારાજ **શ્રી પ્રેમચંદજી મહારાજ** જેઓશ્રી રાજકોટમાં પધારેલ હતાં ત્યારે તેઓના તરફથી શાસ્ત્રોને માટે મળેલો અભિપ્રાય.

*

શાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિ તરફથી પૂજ્યપાદ શાસ્ત્રવારિધિ પંડિતરાજ સ્વામીશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ દ્વારા શાસ્ત્રોદ્ધારનું જે કાર્ય થઇ રહ્યું છે તે કાર્ય જૈનસમાજ તેમાં ખાસ કરીને સ્થાનકવાસીજૈનસમાજને માટે મૂળભૂત મૌલિક સંસ્કૃતની જડને મજબુત કરવાવાળું છે.

એટલા ખાતર આ કાર્ય અતિ પ્રશંસનીય છે માટે દરેક વ્યક્તિએ તેમાં યથાશક્તિ ભોગ દેવાની ખાસ આવશ્યકતા છે અને તેથી એ ભગીરથ કાર્ય જલ્દીથી જલ્દી સંપૂર્ણપણે પાર પાડી શકાય અને જનતા શ્રુતજ્ઞાનનો લાભ મેળવી શકે.

*

દરીયાપુર સંપ્રદાયના પૂજ્ય આચાર્ય શ્રી ઈશ્વરલાલજી મહારાજ સાહેબના

સૂત્રો સંબંધે વિચારો

નમામિ વીરં ગિરિસારધીરં

પૂજ્યપાદ જ્ઞાનિપ્રવર શ્રી ઘાસીલાલ મહારાજ તથા પંડિતશ્રી કનૈયાલાલજી મહારાજ આદિ થાણા છની સેવામાં—

અમદાવાદ શાહપુર ઉપાશ્રયથી મુનિ દયાનંદજીના ૧૦૮ પ્રણિપાત.

આપ સર્વે થાણાઓ સુખ સમાધિમાં હશો નિરંતર ધર્મધ્યાન ધર્મારાધનામાં લીન હશો.

સૂત્ર પ્રકાશન કાર્ય ત્વરિત થાય એવી ભાવના છે દશવૈકાલિક તથા આચારાંગ એક એક ભાગ અહીં છે, ટીકા ખૂબ સુંદર, સરળ અને અર્થ સાથે પ્રકાશન થાય તો શ્રાવકગણ તેનો વિશેષ લાભ લઈ શકે, અને પૂજ્ય આચાર્ય ગુરૂદેવને આંખે મોતીયો ઉતરાવ્યો છે અને સારૂં છે એજ.

આસો સુદ ૧૦, મંગળવાર, તા. ૨૫–૧૦–૫૫

પુનઃ પુનઃ શાતા ઇચ્છતો
દયામુનિના પ્રણિપાત.

*

દરિયાપુર સંપ્રદાયના પંડિતરત્ન ભાઇચંદજી મહારાજનો અભિપ્રાય

શ્રી

રાણપુર તા. ૧૯-૧૨-૧૯૫૫

પૂજ્યપાદ જ્ઞાનિપ્રવર પંડિતરત્ન પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ આદિ મુનિવરોની સેવામાં, આપ સર્વ સુખસમાધીમાં હશો.

સૂત્રપ્રકાશનનું કામ સુંદર થઈ રહ્યું છે તે જાણી અત્યંત આનંદ. આપના પ્રકાશિત થયેલાં કેટલાંક સૂત્રો મેં જોયાં. સુંદર અને સરલ સિદ્ધાંતના ન્યાયને પુષ્ટિ કરતી ટીકા પંડિતરત્નોને સુપ્રિય થઈ પડે તેવી છે. સૂત્ર પ્રકાશનનું કામ ત્વરિત પૂર્ણ થાય અને ભવિ આત્માઓને આત્મકલ્યાણ કરવામાં સાધનભૂત થાય એજ અભ્યર્થના.

લી. પંડિતરત્ન બાળબ્રહ્મચારી
પૂ૦ શ્રી ભાઇચંદ મહારાજની
આજ્ઞાનુસાર શાન્તિમુનીના
પાયવંદન સ્વીકારશો.

*

તા. ૧૧-૫-૫૬
વિરમગામ

ગચ્છાધિપતિ પૂજ્ય મહારાજ શ્રી જ્ઞાનચંદ્રજી મહારાજના સંપ્રદાયના આત્માર્થી, ક્રિયાપાત્ર, પંડિતરત્ન, મુનિશ્રી સમરથમલજી મહારાજનો અભિપ્રાય.

ખીચનથી આવેલ તા. ૧૨-૨-૫૬ના પત્રથી ઉદ્ધૃત.

પૂજ્ય આચાર્ય ઘાસીલાલજી મહારાજના હસ્તક જે સૂત્રોનું લખાણ સુંદર અને સરળ ભાષામાં થાય છે તે સાહિત્ય, પંડિત મુનિશ્રી સરથમલજી મહારાજ સમય ઓછો મળવાને કારણે સંપૂર્ણ જોઈ શકાયા નથી. છતાં જેટલું સાહિત્ય જોયું છે, તે બહુ જ સારૂં અને મનન સાથે લખાયેલું છે, તે લખાણ શાસ્ત્ર-આજ્ઞાને અનુરૂપ લાગે છે. આ સાહિત્ય દરેક શ્રદ્ધાળું જીવોને વાંચવા યોગ્ય છે. આમાં સ્થાનકવાસી સમાજની શ્રદ્ધા, પ્રરૂપણા અને ફરસાણાની દઢતા શાસ્ત્રાનુકૂળ છે. આચાર્યશ્રી અપૂર્વ પરિશ્રમ લઈ સમાજ ઉપર મહાન ઉપકાર કરે છે.

લી. કિશનલાલ પૃથ્વીરાજ માલુ.
મું. ખીચન.

*

લીંબડી સંપ્રદાયના મુનિશ્રી છોટાલાલજી મહારાજનો અભિપ્રાય

શ્રી વીતરાગદેવે જ્ઞાનપ્રચારને તીર્થંકર-નામ-ગોત્ર બાંધવાનું નિમિત્ત કહેલ છે. જ્ઞાનપ્રચાર કરનાર, કરવામાં સહાય કરનાર, અને તેને અનુમોદન આપનાર, જ્ઞાનાવરણીય કર્મનો ક્ષય કરી કેવળ જ્ઞાનને પ્રાપ્ત કરી પરમપદના અધિકારી બને છે. શાસ્ત્રજ્ઞ, પરમ શાન્ત અને અપ્રમાદી પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ પોતે અવિશ્રાન્તપણે જ્ઞાનની ઉપાસના અને તેની પ્રભાવના અનેક વિકટ પ્રસંગોમાં પણ કરી રહ્યા છે. તે માટે તેઓશ્રી અનેકશઃ ધન્યવાદના અધિકારી છે. વંદનીય છે. તેમની જ્ઞાનપ્રભાવનાની ધગશ ઘણા પ્રમાદિઓને અનુકરણીય છે. જેમ પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ પોતે જ્ઞાન પ્રચાર માટે અવિશ્રાન્ત પ્રયત્ન કરે છે. તેમજ– શાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિના કાર્યવાહકો પણ એમાં સહાય કરીને જે પવિત્ર સેવા કરી રહેલ છે. તે માટે તેઓ પણ ખરેખર ધન્યવાદના પૂર્ણ અધિકારી છે.

એ સમિતિના કાર્યકરોને મારી એક સુચના છે કેઃ—

શાસ્ત્રોદ્ધાર પ્રવર પંડિત અપ્રમાદી સંત ઘાસીલાલજી મહારાજ જે શાસ્ત્રોદ્ધારકનું કામ કરી રહેલ છે. તેમાં સહાય કરવા માટે–પંડિતો વિગેરેના માટે જે ખર્ચો થઈ રહેલ છે તેને પહોંચી વળવા માટે સારૂં સરખું ફંડ જોઇએ. એના માટે મારી એ સુચના છે કે–શાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિના મુખ્ય કાર્યવાહકો–જો બની શકે તો પ્રમુખ પોતે અને બીજા બે ત્રણ જણાઓ ગુજરાત, સૌરાષ્ટ્ર, અને કચ્છમાં પ્રવાસ કરી મેમ્બરો બનાવે અને આર્થિક સહાય મેળવે.

જો કે અત્યારની પરિસ્થિતિ વિષમ છે. વ્યાપારીઓ, ધંધાદારીઓને પોતાના વ્યવહાર સાચવવા પણ મુશ્કેલ બન્યા છે. છતાં જો સંભવિત ગૃહસ્થો પ્રવાસે નીકળે તો જરૂર કાર્ય સફળ કરે એવી મને શ્રદ્ધા છે.

આર્થિક અનુકૂળતા થવાથી શાસ્ત્રોદ્ધારનું કામ પણ વધુ સરલતાથી થઈ શકે. પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ જ્યાં સુધી આ તરફ વિચરે છે ત્યાં સુધીમાં એમની જ્ઞાનશક્તિનો જેટલો લાભ લેવાય તેટલો લઇ લેવો, કદાચ સૌરાષ્ટ્રમાં વધુ વખત રહેવાથી તેમને હવે બહાર વિહરવાની ઇચ્છા થતી હોય તો શાન્તિભાઈ શેઠ જેવાએ વિનતિ કરી અમદાવાદ પધરાવવા, અને ત્યાં અનુકૂળતા મુજબ બે–ત્રણ વર્ષની સ્થિરતા કરાવીને તેમની પાસે શાસ્ત્રોદ્ધારનું કામ પૂર્ણ કરાવી લેવું જોઇએ.

થોડા વખતમાં જામજોધપુરમાં શાસ્ત્રોદ્ધારકમીટી મળવાની છે, તે વખતે ઉપરની સૂચના વિચારાય તો ઠીક.

ફરી શાસ્ત્રોદ્ધારક પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજને એમની આ સેવા અને પરમ કલ્યાણકારક પ્રવૃત્તિને માટે વારંવાર અભિનંદન છે. શાસનનાયક દેવ તેમના શરીરાદિને સશક્ત અને દીર્ઘાયુ રાખે જેથી સમાજ ધર્મની વધુ ને વધુ સેવા કરી શકે ૐ અસ્તુ.

ચાતુર્માસ સ્થળ લીંબડી
સં. ૨૦૧૦ શ્રાવણ વદ ૧૩ ગુરૂ

લી.
સદાનંદી જૈનમુનિ છોટાલાલજી

*

શ્રી વર્ધમાન સંપ્રદાયના પૂજ્યશ્રીપુનમચંદ્રજી મહારાજનો અભિપ્રાય

શાસ્ત્રવિશારદ પૂજ્ય આચાર્ય મહારાજ શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજશ્રીએ જૈન આગમો ઉપર જે સંસ્કૃત ટીકા વગેરે રચેલ છે તે માટે તેઓશ્રી ધન્યવાદને પાત્ર છે. તેમણે આગમો ઉપરની સ્વતંત્ર ટીકા રચીને સ્થાનકવાસી જૈન સમાજનું ગૌરવ વધાર્યું છે, આગમો ઉપરની તેમની સંસ્કૃતટીકા ભાષા અને ભાવની દૃષ્ટિએ ઘણી જ સુંદર છે. સંસ્કૃતરચના માધુર્ય. તેમજ અલંકાર વગેરે ગુણોથી યુક્ત છે. વિદ્વાનોએ તેમજ જૈન સમાજના આચાર્યો, ઉપાધ્યાયો વગેરે એ શાસ્ત્રો ઉપર રચેલી આ સંસ્કૃતરચનાની કદર કરવી જોઇએ. અને દરેક પ્રકારનો સહકાર આપવો જોઇએ.

આ મહાન કાર્યમાં પંડિતરત્ન પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ જે પ્રયત્ન કરી રહ્યા છે તે અલૌકિક છે. તેમનું આગમ ઉપરની સંસ્કૃત ટીકા વગેરે રચવાનું ભગીરથકાર્ય શીઘ્ર સફળ થાય એ જ શુભેચ્છા સાથે.

અમદાવાદ
તા. ૨૨-૪-૫૬ રવીવાર
મહાવીર જયંતિ

મુનિ પુનમચંદ્રજી

ખંભાત સંપ્રદાયના મહાસતી શારદાબાઈ સ્વામીનો અભિપ્રાય

લખતર તા. ૨૫-૪-૫૬

શ્રીમાન શેઠ શાંતીલાલભાઈ મંગળદાસભાઈ.
પ્રમુખ સાહેબ અખિલ ભારત શ્વે૦ સ્થા૦ જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ
મુ. અમદાવાદ

અમો અત્રે દેવગુરૂની કૃપાએ સુખરૂપ છીએ. વિ. મા. આપની સમિતિદ્વારા પૂજ્ય આચાર્ય મહારાજ શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ સાહેબ જે સૂત્રોનું કાર્ય કરે છે તે પૈકીનાં સૂત્રોમાંથી ઉપાસકદશાંગસૂત્ર, આચારાંગસૂત્ર, અનુત્તરોપપતિકસૂત્ર

દશવૈકાલિકસૂત્ર વિગેરે સૂત્રો જોયાં તે સૂત્રો સંસ્કૃત હિન્દી અને ગુજરાતી ભાષાઓમાં હોવાને કારણે વિદ્વાન અને સામાન્ય જનોને ઘણા જ લાભદાયક છે. તે વાંચન ઘણું જ સુંદર અને મનોરંજન છે. આ કાર્યમાં પૂજ્ય આચાર્યશ્રી જે અગાધ પુરૂષાર્થ કાર્ય કરે છે તે માટે વારંવાર ધન્યવાદને પાત્ર છે. આ સૂત્રોથી સમાજને ઘણો લાભ થવા સંભવ છે.

હંસ સમાન બુદ્ધિવાળા આત્માઓ સ્વપરના ભેદથી નિખાલસ ભાવનાએ અવલોક કરશે તો આ સાહિત્ય સ્થાનકવાસી સમાજ માટે અપૂર્વ અને ગૌરવ લેવા જેવું છે. દરેક ભવ્ય આત્માઓને સૂચન કરૂં છું કે આ સૂત્રો પોતપોતાના ઘરમાં વસાવવાની સુંદર તકને ચૂકશો નહિ. કારણ આવા શુદ્ધ પવિત્ર અને સ્વપરંપરાને પુષ્ટિરૂપ સૂત્રો મળવાં બહુ બહુ મુશ્કેલ છે. આ કાર્યમાં આપશ્રી તથા સમિતિના અન્ય કાર્યકરો જે શ્રમ લઈ રહ્યા છો તેમાં મહાન નિર્જરાનુ કારણ જોવામાં આવે છે તે બદલ ધન્યવાદ. એ જ.

લી. **શારદાબાઇ સ્વામી**
ખંભાત સંપ્રદાય.

*

બરવાળા સંપ્રદાયના વિદુષી મહાસતીજી સ્વામીનો અભિપ્રાય

ધંધુકા તા. ૨૭-૧-૫૬

શ્રીમાન શેઠ શાન્તીલાલ મંગળદાસભાઈ
પ્રમુખ અ૦ ભા૦ શ્વે૦ સ્થા૦ જૈનશાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ
રાજકોટ

અત્રે બીરાજતા ગુ૦ ગુ૦ના ભંડાર મહાસતીજી વિદુષી મોંઘીબાઈ સ્વામી તથા હીરાબાઈ સ્વામી આદિઠાણાં બન્ને સુખશાંતમાં બીરાજે છે. આપને સૂચન છે કે અપ્રમત્ત અવસ્થામાં રહી નિવૃત્તિ ભાવને મેળવી ધર્મધ્યાન કરશો એજ આશા છે.

વિશેષમાં અમને પૂજ્ય આચાર્ય મહારાજ શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજના રચેલાં સૂત્રો ભાઈ પોપટ ધનજીભાઈ તરફથી ભેટ તરીકે મળેલાં તે સૂત્રો તમામ અદ્યોપાન્ત વાંચ્યાં મનન કર્યા અને વિચાર્યાં છે તે સૂત્રો સ્થાનકવાસી સમાજને અને વીતરાગમાર્ગને ખૂબ જ ઉન્નત બનાવનાર છે. તેમાં આપણી શ્રદ્ધા એટલી ન્યાયરૂપથી ભરેલી છે તે આપણા સમાજ માટે ગૌરવ લેવા જેવું છે. હંસ સમાન

આત્માઓ જ્ઞાનઝરણાઓથી આત્મરૂપવાડીને વિકસિત કરશે, ધન્ય છે આપને અને સમિતિના કાર્યકરોને જે સમાજ ઉત્થાન માટે કોઇની પણ પરવા કર્યા વગર જ્ઞાનનું દાન ભવ્ય આત્માઓને આપવા નિમિત્તરૂપ થઈ રહ્યા છો. આવા સમર્થ વિદ્વાન પાસેથી સંપૂર્ણ કાર્ય પુરૂં કરાવશો તેવી આશા છે.

એજ લિ. બરવાળા સંપ્રદાયના વિદુષી
મહાસતીજી **મોંઘીબાઇ સ્વામી**
ના ફરમાનથી લી. ખોડીદાસ ગણેશભાઇ–ધંધુકા
સ્થાનકવાસી જૈન સંઘના પ્રમુખ

*

અદ્યતન પદ્ધતિને અપનાવનાર વડોદરા કોલેજના એક વિદ્વાન પ્રોફેસરનો અભિપ્રાય

સ્થાનકવાસી સંપ્રદાયના મુનિશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ જૈનશાસ્ત્રોના સંસ્કૃત ટીકાબદ્ધ, ગુજરાતીમાં અને હિન્દીમાં ભાષાતરો કરવાના ઘણા વિકટ કાર્યમાં વ્યાપ્ત થયેલા છે. શાસ્ત્રો પૈકી જે શાસ્ત્રો પ્રસિદ્ધ થયાં છે તે હું જોઈ શકયો છું, મુનિશ્રી પોતે સંસ્કૃત, અર્ધમાગધી હિંદી ભાષાઓના નિષ્ણાત છે. એ એમનો ટુંક પરિચય કરતાં સહજ જણાઇ આવે છે. શાસ્ત્રોનું સંપાદાન કરવામાં તેમને પોતાના શિષ્ય વર્ગનો અને વિશેષમાં ત્રણ પંડિતોનો સહકાર મળ્યો છે. તે જોઈ મને આનંદ થયો. સ્થાનકવાસી સંપ્રદાયના અગ્રેસરોએ પંડિતોનો સહકાર મેળવી આપી, મુનિશ્રીના કાર્યને સરળ અને શિષ્ટ બનાવ્યુ છે. સ્થાનકવાસી સમાજમાં વિદ્વત્તા; ઘણી ઓછી છે, તે દિગંબર મૂર્તિપૂજક શ્વેતાંબર વગેરે જૈનદર્શનના પ્રતિનિધિઓના ઘણા સમયથી પરિચયમાં આવતાં હું વિરોધના ભય વગર કહી શકું. પૂ૦ મહારાજનો આ પ્રયાસ સ્થાનકવાસી સંપ્રદાયમાં પ્રથમ છે એવી મારી માન્યતા છે. સંસ્કૃત સ્પષ્ટીકરણો સારાં આપવામાં આવ્યાં છે, ભાષા શુદ્ધ છે એમ ચોક્કસ કહી શકું છું. ગુજરાતી ભાષાંતરો પણ શુદ્ધ અને સરળ થયેલાં છે. મને વિશ્વાસ છે કે મહારાજશ્રીના આ સ્તુત્ય પ્રયાસને જૈનસમાજ ઉત્તેજન આપશે અને શાસ્ત્રોના ભાષાંતરોને વાચનાલયમાં અને કુટુંબોમાં વસાવી શકાય તે પ્રમાણે વ્યવસ્થા કરશે.

પ્રતાપગંજ, વડોદરા — **કામદાર કેશવલાલ હિંમતરામ**

તા. ૨૭–૨–૧૯૫૬

મુંબઇની બે કોલેજોના પ્રોફેસરોનો અભિપ્રાય

મુંબઈ તા. ૩૧–૩–૫૬

શ્રીમાન શેઠ શાન્તિલાલ મંગળદાસ
પ્રમુખ: શ્રી અખિલ ભારત શ્વે. સ્થા. જૈનશાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિ,
રાજકોટ.

પૂજ્યાચાર્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજે તૈયાર કરેલાં આચારાંગ, દશવૈકાલિક, આવશ્યક, ઉપાસકદશાંગ વગેરે સૂત્રો અમે જોયાં. આ સૂત્રી ઉપર સંસ્કૃતમાં ટીકા આપવામાં આવી છે, અને સાથે હિંદી અને ગુજરાતી ભાષાંતરો પણ આપવામાં આવ્યાં છે. સંસ્કૃતટીકા અમે ગુજરાતી તથા હિંદી ભાષાંતરો જોતાં આચાર્યશ્રીના આ ત્રણે ભાષા પરના એક સરખા અસાધારણ પ્રભુત્વની સચોટ અને સુરેખ છાપ પડે છે. આ સૂત્ર ગ્રંથોમાં પાને પાને પ્રગટ થતી આચાર્યશ્રીની અપ્રતિમ વિદ્વત્તા મુગ્ધ કરી દે તેવી છે. ગુજરાતી તથા હિંદીમાં થયેલાં ભાષાંતરમાં ભાષાની શુદ્ધિ અને સરળતા નોંધપાત્ર છે. એથી વિદ્વદ્જન અને સાધારણ માણસ ભયને સંતોષ આપે એવી એમની લેખનીની પ્રતીતિ થાય છે. ૩૨ સૂત્રોમાંથી હજુ ૧૩ સૂત્રો પ્રગટ થયાં છે. બીજાં ૭ સૂત્રો લખાઈને તૈયાર થઈ ગયાં છે. આ બધાં જ સૂત્રો જ્યારે એમને હાથે તૈયાર થઇને પ્રગટ થશે ત્યારે જૈન-સૂત્ર–સાહિત્યમાં અમૂલ્ય સંપત્તિરૂપ ગણાશે એમાં સંશય નથી. આચાર્યશ્રીના આ મહાન કાર્યને જૈનસમાજનો·વિશેષતઃ સ્થાનકવાસી સમાજનો સંપૂર્ણ સહકાર સાંપડી રહેશે એવી અમે આશા રાખીએ છીએ,

પ્રો. **રમણલાલ ચીમનલાલ શાહ**
સેંટ ઝેવિયર્સ કોલેજ, **મુંબાઈ.**
પ્રો. **તારા રમણલાલ શાહ**
સોફીયા, કોલેજ, **મુંબઇ**

❋

રાજકોટ ધર્મેન્દ્રસિંહજી કોલેજના પ્રોફેસર સાહેબનો અભિપ્રાય

જયમહાલ
જાગનાથ પ્લોટ
રાજકોટ, તા. ૧૮–૪–૫૬

પૂજ્યાચાર્ય પં. મુનિશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ આજે જૈનસમાજ માટે એક એવા કાર્યમાં વ્યાસ થયેલા છે કે જે સમાજ માટે બહુ ઉપયોગી થઈ પડશે. મુનિશ્રીએ તૈયાર કરેલાં આચારાંગ, દશવૈકાલિક; શ્રી વિપાકશ્રુત વિ. મેં જોયાં.

આ સૂત્રો જોતાં પહેલી જ નજરે મહારાજશ્રીનો સંસ્કૃત, અર્ધમાગધી, હિન્દી તથા ગુજરાતી ભાષાઓ ઉપરનો અસાધારણ કાબુ જણાઈ આવે છે. એક પણ ભાષા મહારાજશ્રીથી અજાણી નથી. આપણે જોઇએ છીએ કે એ સૂત્રો ઉચ્ચ અને પ્રથમ કોટીના છે. તેની વસ્તુ ગંભીર, વ્યાપક અને જીવનને તલસ્પર્શી છે, એટલા ગહન અને સર્વગ્રાહ્ય સૂત્રોનું ભાષાંતર પૂ૦ ઘાસીલાલજી મહારાજ જેવા ઉચ્ચ કોટીના મુનિરાજને હાથે થાય છે તે આપણાં અહોભાગ્ય છે. યંત્રવાદ અને ભૌતિકવાદના આ જમાનામાં જ્યારે ધર્મભાવનાં ઓસરતી જાય છે એવે વખતે આવા તત્ત્વજ્ઞાન આધ્યાત્મિકતાથી ભરેલા સૂત્રોનું સરળ ભાષામાં ભાષાંતર દરેક જિજ્ઞાસુ, મુમુક્ષુ અને સાધકને માર્ગદર્શક થઈ પડે તેમ છે. જૈન અને જૈનેતર, વિદ્વાન અને સાધરણ માણુસ સાધુ અને શ્રાવક દરેકને સમજણ પડે તેવી સ્પષ્ટ સરળ અને શુદ્ધ ભાષામાં સૂત્રો લખવામાં અવ્યાં છે. મહારાજશ્રીને જ્યારે જોઈએ ત્યારે તેમના આ કાર્યમાં સંકળાયેલા જોઈએ છીએ. એ ઉપરથી મુનિશ્રીના પરિશ્રમ અને ધગશની કલ્પના કરી શકાય તેમ છે. તેમનુ જીવન સૂત્રોમાં વણાઈ ગયું છે.

મુનિશ્રીના આ અસાધારણ કાર્યમા પોતાના શિષ્યોનો તથા પંડિતોનો સહકાર મળ્યો છે. અને આશા છે કે જો દરેક મુમુક્ષુ આ પુસ્તકોને પોતાના ઘરમાં વસાવશે અને પોતાના જીવનને સાચા સુખને માર્ગે વાળશે તો મહારાજશ્રીએ ઉઠાવેલો શ્રમ સંપૂર્ણપણે સફળ થશે.

પ્રો. રસીકલાલ કસ્તુરચંદ ગાંધી
એમ. એ. એલ. એલ. બી
ધર્મેન્દ્રસિંહજી કૉલેજ
રાજકોટ (સૌરાષ્ટ્ર)

*

મુંબઈ અને ઘાટકોપરમાં મળેલી સભાએ ભિનાસર કોન્ફરેન્સ તથા સાધુસંમેલનમાં મોકલાવેલ ઠરાવ

હાલ જે વખત શ્રી શ્વેતાંબર સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ માટે આગમ સંશોધન અને સ્વતંત્ર ટીકાવાળા શાસ્ત્રોદ્ધારની અતિ આવશ્યકતા છે અને જે મહાનુભાવોએ આ વાત દીર્ઘ દષ્ટિથી પહેલી પોતાના મગજમા લઈ તે પાર પાડવા મહેનત લઇ રહ્યા છે તેવા મુનિ મહારાજ પંડિતરત્ન શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ કે જેઓને સાદડી અધિવેશનમાં સર્વાનુમતે સાહિત્યમંત્રી નીમ્યા છે, તેઓશ્રીની દેખરેખ નીચે અ. ભા. શ્વે. સ્થા. જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ જે એક મોટી વગવાળી કમિટી છે તેની મારફતે કામ થઈ રહ્યું છે. જેને પ્રધાનાચાર્યશ્રી તથા પ્રચારમંત્રીશ્રી

તથા અનેક અનુભવી મહાનુભાવોએ પોતાની પસંદગીની મહોર છાપ આપી છે. અને છેલ્લામાં છેલ્લા વડોદરા યુનિવર્સીટીના પ્રોફેસર કેશવલાલ કામદાર એમ. એ. પોતાનું સવિસ્તર પ્રમાણપત્ર આપ્યું છે. તે શાસ્ત્રોદ્ધાર કમિટીના કામને આ સંમેલન તથા કોન્ફરન્સ હાર્દિક અભિનંદન આપે છે. અને તેમના કામને જ્યાં જ્યાં અને જે જે જરૂર પડે-પંડિતાની અને નાણુંની તે તે પોતાની પાસેના ફંડમાંથી અને જાહેર જનતા પાસેથી મદદ મળે તેવી ઈચ્છા ધરાવે છે.

આ શાસ્ત્રો અને ટીકાઓને જ્યારે આટલી બધી પ્રશંસાપૂર્વક પસંદગી મળી છે, ત્યારે તે કામને મદદ કરવાની આ કોન્ફરન્સ પોતાની ફરજ માને છે અને જે કોઈ ત્રુટી હોય તે પં. ર. શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજની સાંનિધ્યમાં જઈ, બતાવીને સુધારવા પ્રયત્ન કરવો. આ કામને ટલ્લે ચઢાવવા જેવું કોઈ પણ કામ સત્તા ઉપરના અધિકારીઓના વાણી કે વર્તનથી ન થાય તે જોવા પ્રમુખ સાહેબને ભલામણ કરે છે.

(સ્થા. જૈન પત્ર તા. ૪-૫-૫૬)

*

સ્વતંત્રવિચારક અને નિડર લેખક 'જૈનસિદ્ધાંત'ના તંત્રી શેઠ નગીનદાસ ગીરધરલાલનો અભિપ્રાય

શ્રી સ્થાનકવાસી શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ સ્થાપીને પૂ. ઘાસીલાલજી મહારાજને સૌરાષ્ટ્રમાં બોલાવી તેમની પાસે બત્રીસે સૂત્રો તૈયાર કરવાની હિલચાલ ચાલતી હતી ત્યારે તે હિલચાલ કરનાર શાસ્ત્રજ્ઞ શેઠ શ્રી દામોદરદાસભાઈ સાથે મારે પત્રવ્યવહાર ચાલેલો ત્યારે શેઠ શ્રી દામોદરદાસભાઈએ તેમના એક પત્રમાં મને લખેલું કે—

> "આપણા સૂત્રોના મૂળ પાઠ તપાસી શુદ્ધ કરી સંસ્કૃત સાથે તૈયાર કરી શકે તેવા સ્થાનકવાસી સંપ્રદાયમાં મુનિશ્રી ઘાસીલાલજી મ. સિવાય મને કોઇ વિશેષ વિદ્વાન મુનિ જોવામાં આવતા નથી. લાંબી તપાસને અંતે મેં મુનિશ્રી ઘાસીલાલજીને પસંદ કરેલા છે."

શેઠ શ્રી દામોદરદાસભાઈ પોતે વિદ્વાન હતા. શાસ્ત્રજ્ઞ હતા તેમ વિચારક પણ હતા શ્રાવકો તેમજ મુનિઓ પણ તેમની પાસેથી શિક્ષા વાંચના લેતા, તેમ જ્ઞાનચર્ચા પણ કરતા. એવા વિદ્વાન શેઠશ્રીની પસંદગી યથાર્થ જ હોય એમાં

નવાઇ નથી. અને પૂ. શ્રી ઘાસીલાલજીના બનાવેલાં સૂત્રો જોતાં સૌ કોઈને ખાત્રી થાય તેમ તે કે દામોદરદાસભાઈએ તેમજ સ્થાનકવાસી સમાજે જેવી આશા શ્રી ઘાસીલાલજી મ. પાસેથી રાખેલી તે બરાબર ફળીભૂત થયેલ છે.

શ્રી વર્ધમાન શ્રમણસંઘના આચાર્ય શ્રી આત્મારામજી મહારાજે શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજના સૂત્રો માટે ખાસ પ્રશંસા કરી અનુમતિ આપેલ છે તે ઉપરથી જ શ્રી ઘાસીલાલજી મ. ના સૂત્રોની ઉપયોગિતાની ખાત્રી થશે.

આ સૂત્રો વિદ્યાર્થીને, અભ્યાસીને તેમજ સામાન્ય વાંચકોને સર્વને એક સરખી રીતે ઉપયોગી થઈ પડે છે. વિદ્યાર્થીને તેમજ અભ્યાસીને મૂળ તથા હિંદી અનુવાદ અને ગુજરાતી વાંચકને ગુજરાતી અનુંવાદથી આખું સૂત્ર સરળતાથી સમજાય છે.

કેટલાકનો એવો ભ્રમ છે કે સૂત્રો વાંચવાનું કામ આપણું નહિ, સૂત્રો આપણને સમજાય નહિ. આ ભ્રમ તદ્દન ખોટો છે. બીજા કોઈ પણ શાસ્ત્રીય પુસ્તક કરતાં આ સૂત્રો સામાન્ય વાચકને પણ ઘણી સરળતાથી સમજાઈ જાય છે. સામાન્ય માણસ પણ સમજી સકે તેટલા માટે જ ભગવાન મહાવીરે તે વખતની લોકભાષામાં (અર્ધમાગધી ભાષામાં) સૂત્રો બનાવેલાં છે. એટલે સૂત્રો વાંચવા તેમજ સમજવામાં ઘણાં સરળ છે.

માટે કોઇ પણ વાંચકને એનો ભ્રમ હોય તો તે કાઢી નાંખવો અને ધર્મનું તેમજ ધર્મના સિદ્ધાંતોનું સાચું જ્ઞાન મેળવવા માટે સૂત્રો વાંચવાને ચૂકવું નહિ. એટલું જ નહિ પણ જરૂરથી પહેલાં સૂત્રો જ વાંચવાં,

સ્થાનકવાસીઓમાં આ શ્રી સ્થા૦ જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિએ જે કામ કર્યું છે. અને કરી રહી છે તેવું કોઇ પણ સંસ્થાએ આજ સુધી કર્યું નથી. સ્થા૦ જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિના છેલ્લા રિપોર્ટ પ્રમાણે બીજા છ સૂત્રો લખાયેલ પડયા છે, બે સૂત્રો–અનુયોગદ્વાર અને ઠાણાંગ સૂત્ર–લખાય છે. તે પણ થોડા વખતમાં તૈયાર થઈ જશે. તે પછી બાકીના સૂત્રો હાથ ધરવામાં આવશે.

તૈયાર સૂત્રો જલ્દી છપાઈ જાય એમ ઇચ્છીએ છીએ અને સ્થા. બંધુઓ સમિતિને ઉત્તેજન અને સહાયતા આપીને તેમનાં સૂત્રો ઘરમાં વસાવે એમ ઈચ્છીએ છીએ.

'જૈન સિદ્ધાંત' પત્ર–મે ૧૯૫૫

*

શ્રુત-ભક્તિ

(પૂ૦ આચાર્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મ૦ સા૦ની આજ્ઞા અનુસાર લખનાર)

દ. સ. ના જૈન મુનિ શ્રી દયાનંદજી મહારાજ

આજે લગભગ ૨૦ વર્ષથી શ્રદ્ધેય પરમપૂજ્ય. જ્ઞાનદિવાકર પ,૦ મુનિશ્રી **ઘાસીલાલજી** મ૦ ચરમ તીર્થંકર ભગવાન મહાવીરના અનુત્તર, અનુપમ ન્યાય યુક્ત, પૂર્વાપર અવિરોધસ્વરૂપ કલ્યાણકારક, ચરમ શીતળ વાણીના દ્યોતક એવા **શ્રી જિનાગમ** પર પ્રકાશ પાડે છે, તેઓશ્રી પ્રાચીન, પૌર્વાત્ય સંસ્કૃતાદિ અનેક ભાષાના પ્રખર પંડિત છે, અને જિનવાણીનો પ્રકાશ સંસ્કૃત, ગુજરાતી અને હિંદીમાં મૂળ શબ્દાર્થ, ટીકા, વિસ્તૃત વિવરણ, સાથે પ્રકાશમાં લાવે છે.

ભ૦ મહાવીર અત્યારે આપણી પાસે વિદ્યમાન નથી. પરંતુ તેમની વાણી રૂપે અક્ષરદેહ ગણધર મહારાજોએ શ્રુતપરંપરાએ સાચવી રાખ્યો શ્રુતપરંપરાથી સચવાતું જ્ઞાન જ્યારે વિસ્મૃત થવાનો સમય ઉપસ્થિત થવા લાગ્યો ત્યારે શ્રી દેવર્દ્ધિગણિ ક્ષમાશ્રમણે વલ્લભીપુર-વળામાં તે આગમોને પુસ્તકો રૂપે આરૂઢ કર્યો. આજે આ સિદ્ધાંતો આપણી પાસે છે. તે અર્ધમાગધી ભાષામાં છે. અત્યારે આ ભાષા ભગવાનની, દેવોની તથા જનગણની ધર્મભાષા છે. તેને આપણા શ્રમણો અને શ્રમણીઓ તથા મુમુક્ષુ શ્રાવક શ્રાવિકાઓ મુખપાઠ કરે છે, પરન્તુ તેનો અર્થ અને ભાવ ઘણા થોડાઓ સમજે છે.

જિનાગમ એ આપણાં શ્રદ્ધેય પવિત્ર ધર્મસૂત્રો છે. એ આપણી આંખો છે. તેનો અભ્યાસ કરવો એ આપણી સૌની-જૈન માત્રની ફરજ છે. તેને સત્ય સ્વરૂપે સમજાવવા માટે આપણા સદ્ભાગ્યે જ્ઞાનદિવાકર શ્રી ઘાસીલાલ મહારાજે સત્ સંકલ્પ કર્યો છે અને તે લિખિત સૂત્રોને પ્રગટાવી શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિદ્વારા જ્ઞાન પરબ વહેતી કરી છે. આવા અનુપમ કાર્યમાં સકળ જૈનોનો સહકાર અવશ્ય હોવો ઘટે અને તેનો વધારેમાં વધારે પ્રચાર થાય તે માટે પ્રયત્નો કરવા ઘટે.

ભ૦ મહાવીરને ગણધર ગૌતમ પૂછે છે કે હે ભગવાન, સૂત્રની આરાધના કરવાથી શું ફળ પ્રાપ્ત થાય? ભગવાન તેનો પ્રતિ ઉત્તર આપે છે કે શ્રુતની આરાધનાથી જીવોના અજ્ઞાનનો નાશ થાય છે, અને તેઓ સંસારના ક્લેશોથી નિવૃત્તિ મેળવે છે, અને સંસાર ક્લેશોથી નિવૃત્તિ અને અજ્ઞાનનો નાશ થતાં મોક્ષના ફળની પ્રાપ્તિ થાય છે.

આવા જ્ઞાનકાર્યમાં મૂર્તિપૂજક જૈનો, દિગંબરો અને અન્ય ધર્મિઓ હજારો અને લાખો રૂપીયા ખર્ચે છે. હિંદુ ધર્મમાં પવિત્ર મનાતા ગ્રંથ ગીતાના સેંકડો નહિ પણ હજારો ટીકા ગ્રંથો દુનિયાની લગભગ સર્વ ભાષાઓમાં પ્રગટ થયા છે. ઈસાઈ ધર્મના પ્રચારકો તેમના પવિત્ર ધર્મગ્રન્થ બાઈબલના પ્રચારાર્થે તેનું જગતની સર્વ

ભાષાઓમાં ભાષાંતર કરી તેને પડતર કરતાં પણ ઘણી ઓછી કિંમતે વેચી ધર્મ-સૂત્રોનો પ્રચાર કરે છે. મુસ્લિમ લોકો પણ તેમના પવિત્ર મનાતા ગ્રન્થ કુરાનનું અનેક ભાષાઓમાં ભાષાંતર કરી સમાજમાં પ્રચાર કરે છે. આપણે પૈસા પરનો મોહ ઉતારી ભગવાનના સિદ્ધાંતોનો પ્રચાર કરવા માટે તન, મન, ધન સમર્પણ કરવાં જોઇએ. અને સૂત્ર પ્રકાશનના કાર્યને વધુ ને વધુ વેગ મળે તે માટે સક્રિય પ્રયત્નો કરવા જોઇએ આવા પવિત્ર કાર્યમાં સાંપ્રદાયિક મતભેદો સૌએ ભૂલી જવા જોઇએ અને શુદ્ધ આશયથી થતા શુદ્ધ કાર્યને અપનાવી લેવું જોઇએ. સમિતિના નિયમાનુસાર રૂ. ૨૫૧) ભરી સમિતિના સભ્ય બનવું જોઇએ. ધાર્મિક અનેક ખાતાઓના મૂકાબલે સૂત્ર પ્રકાશનનું-જ્ઞાનપ્રચારનું આ ખાતું સર્વશ્રેષ્ઠ ગણવું જોઇએ.

આ કાર્યને વેગ આપવાની સાથે સાથે એ આગમો-ભગવાનની એ મહાવાણીનું પાન કરવા પણ આપણે હરહંમેશ તત્પર રહેવું જોઇએ. જેથી પરમ શાંતિ અને જીવનસિદ્ધિ મેળવી શકાય. (સ્થા. જૈન તા. ૫-૭-૫૬)

*

શ્રી. અ. ભા. શ્વે. સ્થા. જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિનાં પ્રમુખ શ્રી વગેરે. રાણપુર

પરમ પવિત્ર સૌરાષ્ટ્રની પુણ્ય ભૂમિ પર જ્યારથી શાંત-શાસ્ત્રવિશારદ અપ્રમાદિ પૂજ્ય આચાર્ય મહારાજ શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજનાં પુનીત પગલાં થયાં છે ત્યારથી ઘણાં લાંબા કાળથી લાગુ પડેલ જ્ઞાનાવરણીય કર્મનાં પડળ ઉતારવાનો શુભ પ્રયાસ થઈ રહ્યો છે, અને જે પ્રવચનની પ્રભાવના તેઓશ્રી કરી રહ્યા છે તે અનંત ઉપકારક કાર્યમાં તમે જે અપૂર્વ સહાય આપી રહ્યા છો તે માટે તમો સર્વને ધન્ય છે અને એ શુભ પ્રવૃત્તિના શુભ પરિણામોનો જનતા લાભ લે છે, મને તો સમજાય છે કે સાધુજી છઠ્ઠે ગુણસ્થાનકે હોય છે પણ પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ તો બહુધા સાતમે અપ્રમત્ત ગુણસ્થાનકે જ રહે છે એવા અપ્રમત્ત માત્ર પાંચ-સાત સાધુઓ જો સ્થાનકવાસી જૈનસમાજમાં હોય તો સમાજનું શ્રેય થતાં જરાએ વાર ન લાગે સમાજાકાશમાં સ્થા. જૈન સંપ્રદાયનો દિવ્ય પ્રભાકાર જળહળી નીકળે પણ વો દિન........

શ્રી શાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિને મારી એક નમ્ર સુચના છે કે-પૂજ્યશ્રીની વૃદ્ધાવસ્થા છે, અને કાર્યપ્રણાલિકા યુવાનોને શરમાશે તેવી છે. તેમને ગામેગામ વિહાર કરવું અને શાસ્ત્રોદ્ધારનું કાર્ય કરવું તેમાં ઘણાં શારીરિક માનસિક અને વ્યવહારિક મુસ્કેલી વેઠવી પડે છે, તો કોઈ યોગ્ય સ્થળ કે જ્યાંના શ્રાવકો ભક્તિ વાળા હોય. વાડાનાં રાગના વિષયથી અલિપ્ત હોય. એવા કોઈ સ્થળે શાસ્ત્રોદ્ધારનું કાર્ય પૂર્ણ થાય ત્યાં સુધી સ્થિરતા કરી શકે એના માટે પ્રબંધ કરવો જોઈએ. બીજા કોઇ એવા સ્થળની અનુકુળતા ન મળે તો છેવટ અમદાવામાં યોગ્ય સ્થળે રહેવાની સગવડ કરી અપાય તો વધુ સારૂં. મ્હારી આ સુચના પર ધ્યાન આપવા ફરી યાદ આપું છું. ફરીવાર પૂજ્ય આચાર્યશ્રીને અને તેમના સતકાર્યના સહાયકોને મારા અભિનંદન પાઠવું તે સ્વીકારશો, લી. **સદાનંદી જૈનમુનિ છોટાલાલજી**

"જૈનસિદ્ધાંતના" તંત્રીશ્રીનો અભિપ્રાય

સ્થાનકવાસીઓમાં પ્રમાણભૂત સૂત્રો બહાર પાડનારી આ એકની એક સંસ્થા છે, અને એના આ છેલ્લા રિપોર્ટ ઉપરથી જણાય છે કે–તેણે ઘણી સારી પ્રગતી કરી છે તે જોઈ આનંદ થાય છે.

મૂળ પાઠ, ટીકા, હિંદી તથા ગુજરાતી અનુવાદ સહિત સૂત્રો બહાર પડવાં એ કાંઈ સહેલું કામ નથી એ એક મહાભારત કામ છે અને તે કામ આ શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ ઘણી સફળતાથી પાર પાડી રહી છે તે સ્થાનકવાસી સમાજ માટે ઘણા ગૌરવનો વિષય છે અને સમિતિ ધન્યવાદને પાત્ર છે.

સમિતિ તરફથી નવસૂત્રો બહાર પડી ચુકયાં છે, હાલમાં ત્રણ સૂત્રો છપાય છે. નવ સૂત્રો લખાઈ ગયાં છે અને જંબૂદ્વીપપ્રજ્ઞપ્તિ તથા નંદીસૂત્ર તૈયાર થઈ રહ્યાં છે.

હાલમાં મંત્રી શ્રી સાંકરચંદ ભાઈચંદ સમિતિના કામમાં જ તેમનો આખો વખત ગાળે છે અને સમિતિના કામકાજને ઘણો વેગ આપી રહ્યા છે. તેમના ખંત માટે ધન્યવાદ.

અને આ મહાભારત કામના મુખ્ય કાર્યકર્તા તો છે વયોવૃદ્ધ પંડિત મુનિશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ. મૂળ પાઠનું સંશોધન તથા સંસ્કૃત ટીકા તેઓશ્રી જ તૈયાર કરે છે. મુનિશ્રીનો આ ઉપકાર આખાય સ્થા. જૈન સમાજ ઉપર ઘણો મહાન છે. એ ઉપકારનો બદલો તો વાળી શકાય તેમજ નથી.

પરંતુ આ સમિતિના મેમ્બર બની તેના બહાર પડેલાં સૂત્રો ઘરમાં વસાવી તેનું અધ્યયન કરવામાં આવે તો જ મહારાજશ્રીનું થોડું ઋણ અદા કર્યું ગણાય.

ભગવાને કહ્યું છે કે पढमं णाणं तओ दया પહેલું જ્ઞાન પછી દયા, દયા ધર્મ યથાર્થ સમજવો હોય તો ભગવાનની વાણીરૂપ આપણા સૂત્રો વાંચવાં જ જોઈએ તેનુ અધ્યયન કરવું જોઈએ અને તેનો ભાવાર્થ સમજવો જોઈએ.

એટલા માટે શાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિના સર્વ સૂત્રો દરેક સ્થા. જૈને પોતાના ઘરમાં વસાવવાં જ જોઈએ સર્વ ધર્મજ્ઞાન આપણા સૂત્રોમાંજ સમાયેલું છે અને સૂત્રો સહેલાઈથી વાંચીને સમજી શકાય છે, માટે દરેક સ્થા. જૈન આ સૂત્રો વાંચે એ ખાસ જરૂરનું છે.

"જૈનસિદ્ધાંત" ડીસેમ્બર–૫૬

*

શ્રી ઉપાસકદશાંગસૂત્રને માટે અભિપ્રાય

મૂળ સૂત્ર તથા પૂજ્ય મુનિશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજે બનાવેલ સંસ્કૃત છાયા તથા ટીકા અને હિંદી તથા ગુજરાતી–અનુવાદ સહિત.

પ્રકાશક–અ. ભા. શ્વે. સ્થાનકવાસી જૈનશાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિ, ગરેડીઆ કુવા રોડ, ગ્રીન લોજ પાસે, રાજકોટ. (સૌરાષ્ટ્ર) પૃષ્ઠ ૬૧૬ બીજી આવૃત્તિ બેવડું (મોટું) કદ. પાકું પુઠું, જેકેટ સાથે સને ૧૯૫૬ કિંમત રૂા. ૮–૮–૦

આપણા મૂળ બાર અંગ સૂત્રોમાંનું ઉપાસકદશાંગ એ સાતમું અંગ સૂત્ર છે. એમાં ભગવાન મહાવીરના દશ ઉપાસકો–શ્રાવકોનાં જીવનચરિત્રો આપેલાં છે, તેમાં પહેલું ચારિત્ર આનંદ શ્રાવકનું આવે છે.

આનંદ શ્રાવકે જૈનધર્મ અંગીકાર કર્યો અને બાર વ્રત ભગવાન મહાવીર પાસે અંગીકાર કરી પ્રતિજ્ઞા (પ્રત્યાખ્યાન) લીધાં તેનું સવિસ્તર વર્ણન આવે છે, તેની અંતર્ગત અનેક વિષયો જેવા કે, અભિગમ, લોકાલોકસ્વરૂપ, નવતત્ત્વ નરક, દેવલોક વગેરેનું વર્ણન પણ આવે છે.

આનંદ શ્રાવકે બાર વ્રત લીધાં તે બાર વ્રતની વિગત અતિચારની વિગત વગેરે બધું આપેલું છે. તેજ પ્રમાણે બીજા નવ શ્રાવકોની પણ વિગત આપેલ છે.

આનંદ શ્રાવકની પ્રતિજ્ઞામાં अरिहंतचेइयाइं શબ્દ આવે છે. મૂર્તિપૂજકો મૂર્તિપૂજા સિદ્ધ કરવા માટે તેનો અર્થ અરિહંતનું ચૈત્ય (પ્રતિમા) એવો કરે છે. પણ તે અર્થ તદ્દન ખોટો છે. અને તે જગ્યાએ આગળ પાછળના સંબંધ પ્રમાણે તેનો એ ખોટો અર્થ બંધ બેસતો જ નથી તે મુનિશ્રી ઘાસીલાલજીએ તેમની ટીકામાં અનેક રીતે પ્રમાણો આપી સાબિત કરેલ છે અને अरिहंतचेइयाइं નો અર્થ સાધુ થાય છે. તે બતાવી આપેલ છે.

આ પ્રમાણે આ સૂત્રમાંથી શ્રાવકના શુદ્ધ ધર્મની માહિતી મળે છે તે ઉપરાંત તે શ્રાવકોની ઋદ્ધિ, રહેઠાણ. નગરી વગેરેના વર્ણનો ઉપરથી તે વખતની સામાજિક સ્થિતિ, રીતરિવાજ રાજવ્યવસ્થા વગેરે બાબતોની માહિતી મળે છે.

એટલે આ સૂત્ર દરેક શ્રાવકે અવશ્ય વાંચવું જોઈએ, એટલું જ નહિ પણ વારંવાર અધ્યયન કરવા માટે ઘરમાં વસાવવું જોઈએ.

પુસ્તકની શરૂઆતમાં વર્ધમાન શ્રમણસંઘના આચાર્ય શ્રી આત્મારામજી મહારાજનું સંમતિપત્ર તથા બીજા સાધુઓ તેમજ શ્રાવકોના સંમતિપત્રો આપેલ છે, તે સૂત્રની પ્રમાણભૂતતાની ખાત્રી આપે છે.

"જૈનસિદ્ધાંત" જાન્યુઆરી–પ૭

*

સેકડો સર્ટિફીકેટો ઉપરાંત હાલમાં મળેલ કેટલાક તાજા અભિપ્રાયો

શાસ્ત્રોદ્ધારના કાર્યને વેગ આપો

તંત્રીસ્થાનેથી (જૈનજ્યોતિ) તા. ૧૫-૯-૫૭

પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ ઠાણુા ૪ હાલમાં અમદાવાદ મુકામે સરસપુરના સ્થા. જૈન ઉપાશ્રયમાં બિરાજમાન છે. તેઓ શ્રી શાસ્ત્રોદ્ધારનું કાર્ય ખૂબ જ ખંત અને ઉત્સાહથી વૃદ્ધવયે પણ કરી રહ્યા છે. તેઓશ્રી વૃદ્ધ છે છતાં પણ આખો દિવસ શાસ્ત્રની ટીકાઓ લખી રહ્યા છે. આજ સુધીમાં તેમણે લગભગ ૨૦ જેટલાં શાસ્ત્રોની ટીકાઓ લખી નાખી છે અને બાકીનાં સૂત્રોની ટીકા જેમ બને તેમ જલદી પૂર્ણ કરવી તેવા મનોરથ સેવી રહેલ છે. સ્થા. જૈન સમાજમાં શાસ્ત્રો ઉપર સંસ્કૃત ટીકા લખવાનો આ પ્રથમ જ પ્રયાસ છે અને તે પ્રયાસ સંપૂર્ણ બને એવી અમે શાસનદેવ પ્રત્યે પ્રાર્થના કરીએ છીએ. આજ સુધી ઘણા મુનિવરોએ શાસ્ત્રોનું કામ શરૂ કરેલ છે પણ કોઈએ પૂર્ણ કરેલ નથી. પૂજ્યશ્રી અમુલખઋષીજી મહારાજે બત્રીસ શાસ્ત્રો ઉપર હિંદી અનુવાદ કરેલ અને સંપૂર્ણ બનેલ, ત્યારબાદ આચાર્ય શ્રી આત્મારામજી મહારાજશ્રીએ હિંદી ટીકા કેટલાક શાસ્ત્રો ઉપર લખેલ પણ ઘણાં શાસ્ત્રો બાકી રહી ગયાં. પૂજ્ય હસ્તિમલજી મહારાજે એક બે શાસ્ત્રો ઉપરની ટીકાઓના અનુવાદો કરેલ. પૂજ્ય શ્રી જવાહિરલાલ મહારાજશ્રીએ સૂયગડાંગસૂત્ર ટીકા સહિત હિન્દી અનુવાદ સાથે કરેલ. શ્રી સૌભાગ્યમલજી મહારાજે આચારાંગની હિંદી ટીકા લખેલ. પણ સંપૂર્ણ શાસ્ત્રો ઉપર સંસ્કૃત ટીકા હજી સુધી સ્થા. જૈન સાધુઓ તરફથી થયેલ નથી. જ્યારે પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજશ્રીએ ૨૦ શાસ્ત્રો ઉપર સંસ્કૃત ટીકા તેનો હિંદી ગુજરાતી અનુવાદ કરાવેલ છે આથી હવે આશા બંધાય છે કે તેઓશ્રી બત્રીસે બત્રીસ શાસ્ત્રો ઉપર સંસ્કૃત ટીકા લખવામાં સફળ થશે અને શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિએ આજ સુધી ૧૦ થી ૧૨ શાસ્ત્રો છપાવી પણ દીધાં છે અને હજી પણ તે શાસ્ત્રો વિશેષ જલદી છપાય તે માટે શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ સંપૂર્ણ પ્રયત્ન કરી રહેલ છે તે ધન્યવાદને પાત્ર છે.

જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિના રૂા. ૨૫૧) ભરીને લાઈફ મેમ્બર થનારને તમામ શાસ્ત્રો શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ તરફથી ભેટ મળે છે. આ રીતે એક પંથ અને દો કાજ. બન્ને રીતે લાભ થાય તેમ છે. રૂા. ૨૫૧ માં ૫૦૦ રૂપિયાની કિંમતમાં શાસ્ત્રો મળે એ પણ મોટો લાભ છે અને પ્રવચનની પ્રભાવના કરવાનો ધર્મ-લાભ પણ મળે છે.

આ સાલે પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજના સુશિષ્ય પં. મુનિશ્રી કનૈયાલાલજી મહારાજ મલાડ મુકામે ચાતુર્માસ બિરાજે છે અને તેઓશ્રી શાસ્ત્રોના મેમ્બરો કરવા માટે અથાગ પ્રયત્ન કરીને પ્રવચનની સેવા બજાવી રહ્યા છે. અને અત્યાર સુધીમાં મુંબઈ તેમજ પરાઓના લગભગ ૪૦ જેટલા ગૃહસ્થો લાઇફ મેમ્બર બની ગયા છે અને મુંબઈમાં લગભગ ૩૦૦ જેટલા મેમ્બરો થાય તે ઇચ્છવા યોગ્ય છે. શ્રીમંત ગૃહસ્થો હજારો રૂપિયા પોતાના ઘર ખર્ચમાં તેમજ મોજશોખના કામોમાં તેમજ વ્યવહારિક કામોમાં વાપરી રહ્યા છે તો આવા શાસ્ત્રોદ્ધાર જેવા પવિત્ર કાર્યમાં રૂપિયા વાપરશે તો ધર્મની સેવા કરી ગણાશે. અને બદલામાં ઉત્તમ આગમસાહિત્યની એક લાયબ્રેરી બની જશે. જેનું વાંચન કરવાથી આત્માને શાંતિ મળશે અને શાસ્ત્રાજ્ઞા પ્રમાણે વર્તવાથી જીવન સફળ થશે.



શતાવધાની મુનિશ્રી જયંતિલાલજી મહારાજશ્રીનો અમદાવાદનો પત્ર "સ્થાનકવાસી જૈન" તા. ૫–૯–૫૭ ના અંકમાં છપાએલ છે જે નીચે મુજબ છે.

સૂત્રોના મૂળ પાઠોમાં ફેરફાર હોઈ શકે ખરો ?

તા. ૭–૮–૫૭ના રોજ અત્રે બિરાજતા શાસ્ત્રોદ્ધારક આચાર્ય મહારાજશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ પાસે, મારા ઉપર આવેલ એક પત્ર લઈને હું ગયો હતો, તે સમયે મારે પૂ મ. સા. સાથે જે વાતચીત થઈ તે સમાજને જાણ કરાવા સારૂ લખું છું.

'શાસ્ત્રોનું કામ એક ગહન વસ્તુ છે. અપ્રમાદી થઈ તેમાં અવિરત પ્રયત્નો કરવા જોઇએ. સંપૂર્ણ શાસ્ત્રોનું જ્ઞાન તેમજ દરેક પ્રકારની ખાસ ભાષાઓનું જ્ઞાન હોય તોજ આગમોદ્ધારકનું કાર્ય સફળતાથી થાય છે. આ પ્રકારનો પ્રયત્ન હાલ અમદાવાદ ખાતે સરસપુર જૈન સ્થાનકમાં બિરાજતા પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ કરી રહ્યા છે. શાસ્ત્રલેખનનું આ કાર્ય થઈ રહ્યું છે, તેમાં અનેક વ્યક્તિઓને અનેક પ્રકારની શંકાઓ થાય છે તેમાં શાસ્ત્રોના મૂળ પાઠમાં ફેરફાર થાય છે? કરવામા આવે છે? એવો પ્રશ્ન પણ કેટલાકને થાય છે અને તેવો પ્રશ્ન થાય ને સ્વાભાવિક છે; કેમકે અમુક મુનિરાજો તરફથી પ્રગટ થયેલ સૂત્રોના મૂળ પાઠમાં ફેરફાર થયેલા છે. જેથી આ કાર્યમાં પણ સમાજને શંકા થાય.

પણ ખરી રીતે જોતાં, અત્યારે જે શાસ્ત્રોદ્ધારનું કામ ચાલી રહ્યું છે તે વિષે સમાજને ખાત્રિ આપવામાં આવે છે કે, શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ તરફથી અત્યાર સુધીમાં પ્રગટ થયેલાં આગમોના મૂળ પાઠમાં જરાપણ ફેરફાર કરવામાં આવેલ નથી અને ભવિષ્યમાં જે સૂત્રો પ્રગટ થશે તેમાં ફેરફાર થશે નહિ તેની સમાજ નોંધ લ્યે.

લી.

શતાવધાની શ્રી જયંત મુનિ–અમદાવાદ

*

શ્રી અખિલ ભારત શ્વેતામ્બર સ્થાનકવાસી જૈનશાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિનો ટુંક પરિચય

સ્થાનકવાસી સમાજની આ એકની એક સંસ્થા છે કે જેણે અત્યાર સુધીમાં તેર સૂત્રો છપાવી બહાર પાડી દીધાં છે. સાત સૂત્રો છપાય છે અને બીજાં કેટલાક છાપવા માટે તૈયાર થઈ ચૂકયા છે.

આ પ્રમાણે આ સંસ્થાએ મહાન્ પ્રગતિ સાધી છે તેનો ટુંક પરિચય આ પત્રિકામાં આપેલ છે તે વાંચી જઈ સર્વ સ્થા. જૈન ભાઈબહેનોએ આ સંસ્થાને યથાશક્તિ મદદ કરી તેના કાર્યને હજુ વિશેષ વેગવાન બનાવવાની જરૂર છે.

ખાલી ઘડો વાગે ઘણો એમ સ્થા. કોન્ફરન્સ જેમ ખોટાં બણગાં ફુંકનારી સંસ્થાની કિંમત નથી, ત્યારે નક્કર કામ કરનારી આ શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિને દરેક પ્રકારે ઉત્તેજન આપવાની દરેક સ્થાનકવાસી જૈનની અનિવાર્ય ફરજ છે.

અને આ સર્વ સૂત્રો તૈયાર કરનાર પૂજ્ય મુનિશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજનો સ્થાનકવાસી સમાજ ઉપર ઘણો મહાન ઉપકાર છે. વયોવૃદ્ધ હોવા છતાં તેઓશ્રી જે મહેનત લઈ સૂત્રો તૈયાર કરાવે છે તેવું કામ હજુ સુધી બીજા કોઈએ કર્યું નથી અને બીજું કોઇ કરી શકશે કે નહિ તે પણ શંકાભર્યું છે. પૂજ્ય મુનિશ્રીના આ મહાન્ ઉપકારનો કિંચિત બદલો સમાજે આ શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિને બની શકતી સહાય કરીને વાળવાનો છે. સ્થાનકવાસી સમાજ જ્ઞાનની કદર કરવામાં પાછો હઠે તેમ નથી એવી અમો આશા રાખીએ છીએ.

"જૈનસિદ્ધાંત પત્ર" ઓકટોમ્બર ૧૯૫૭

શ્રી દશવૈકાલિક તથા ઉપાસકદશાંગ સૂત્રો

ગુજરાતી ભાષામાં અનુવાદ થયેલાં પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ વિરચિત શ્રી ઉપરોક્ત બે સૂત્રો જૈન ધર્મ પાળતા દરેક ઘરમાં હોવા જ જોઈએ. તે વાંચવાથી શ્રાવક ધર્મ અને શ્રમણ ધર્મના આચારનું જ્ઞાન પ્રાપ્ત થઈ શકે છે અને શ્રાવકો પોતાની નિરવદ્ય અને એષણિય સેવા શ્રમણ પ્રત્યે બજાવી શકે છે. વર્તમાનકાળે શ્રાવકોમાં તે જ્ઞાન નહિ હોવાને લીધે અંધશ્રદ્ધાએ શ્રમણ વર્ગની વૈયાવચ્ચ તો કરી રહેલ છે. પરંતુ 'કલ્પ શું અને અકલ્પ શું' એનું જ્ઞાન નહિ હોવાને લીધે પોતે સાવદ્ય સેવા અર્પી પોતાના સ્વાર્થને ખાતર શ્રમણ વર્ગને પોતાને સહાયક થવામાં ઘસડી રહ્યા છે, અને શ્રમણ વર્ગની પ્રાયઃ કુસેવા કરી રહ્યા છે. તેમાંથી બચી લાભનું કારણ થાય અને શ્રમણને યથાતથ્ય સેવા અર્પી તેમને પણ જ્ઞાનદર્શન ચારિત્રની આરાધના કરવામાં સહાયક થઈ પોતાના જ્ઞાનદર્શન ચારિત્રની આરાધના કરી સુગતિ મેળવી શકે. શ્રમણની યથાતથ્ય સેવા કરવી તે અવશ્ય ગૃહસ્થની ફરજ છે.

પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મ. શાસ્ત્રોદ્ધારનું અનુવાદન ત્રણ ભાષામાં રૂડી રીતે કરી રહ્યા છે અને રૂપીયા ૨૫૧] ભરી મેમ્બર થનારને રૂા. ૪૦૦-૫૦૦ ની લગભગ કીંમતના બત્રીસે આગમો ફ્રી મળી શકે છે તો તે રૂા ૨૫૧] ભરી મેમ્બર થઈ બત્રીસે આગમો દરેક શ્રાવક ઘરે મેળવવા જોઈએ. બત્રીસે શાસ્ત્રોના લગભગ ૪૮ પુસ્તકો મળશે. તો તે લાભ પોતાની નિર્જરા માટે પુન્યાનુબંધી પુન્ય માટે જરૂર મેળવે. ઉપરોક્ત બંને સૂત્રોની કીંમત સમિતિ કંઈક ઓછી રાખે તો હરકોઈ ગામમાં શ્રીમંત હોય તે સૂત્રો લાવી અરધી કીંમતે, મફત અથવા પૂરી કીંમતે લેનારની સ્થિતિ જોઈ દરેક ઘરમાં વસાવી શકે.

—એક ગૃહસ્થ

નોંધ-ઉપરની સુચનાને અમે આવકારીએ છીએ. આવાં સૂત્રો દરેક ઘરમાં વસાવવા યોગ્ય તેમજ દરેક શ્રાવકે વાંચવા યોગ્ય છે. **તંત્રી**-

"રત્નજ્યોત" પત્ર

તા. ૧-૧૦-૫૭

*

પૂજ્ય આચાર્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજનાં
બનાવેલાં સૂત્રો

કાશ્મીર.....થી ....કન્યાકુમારી

તેમજ **કરાંચી.....થી.....કલકત્તા**

સુધી

દરેક સ્થળે હોંશથી વંચાય છે.

કારણ કે

આવી રીતે શાસ્ત્રો તૈયાર કરવાનું અનોખું કાર્ય
હજુ સુધી કોઇ કરી શક્યું નથી

* * *

શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સમાજ

ઉપરાંત

શ્રી દેરાવાસી સંપ્રદાયના મહાન આચાર્યશ્રી રામવિજયસૂરીજી
તથા અન્ય મુનિવરોએ

તેમજ

તેરાપંથી મહાસભા કલકત્તાવાળાએ આ સૂત્રો અપનાવ્યાં છે.

* * *

દેશ-પરદેશના મેમ્બરો સૂત્રો વાંચી જૈન ધર્મના શ્રુતજ્ઞાનનો અણમોલો લાભ લઈ રહ્યા છે.

હમણાંજ લંડનની ઈન્ડિઆ ઓફીસ લાયબ્રેરીએ આ સૂત્રો મંગાવ્યાં છે.

* * *

આપ રૂપીઆ ૨૫૧-૦-૦ મોકલી મેમ્બર તરીકે નામ નોંધાવી હપ્તે હપ્તે લગભગ રૂપીઆ પાંચસો સુધીની કિંમતનાં શાસ્ત્રો વિના મૂલ્યે મેળવી શકો છો.

વધુ વિગત માટે લખો:

ઠે. ગ્રીન લોજ પાસે,
ગરેડીઆકુવા રોડ
રાજકોટ.

મંત્રી
શ્રી અખિલ ભારત શ્વે. સ્થા. જૈન
શાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિ

श्री

દક્ષિણ, મધ્યપ્રદેશ, ઉત્તરપ્રદેશ, રાજસ્થાન, દિલ્હી, પંજાબ, ગુજરાત સૌરાષ્ટ્ર આદિ પ્રાંતોમાં ઉગ્ર વિહાર કરવાવાળાં–

સતીશિરોમણિ **પૂ. રંભાકુંવરજી** મહાસતીજીનો તથા પ્રસિદ્ધવ્યાખ્યાત્રી વિવિધભાષાવિશારદા શાસ્ત્રજ્ઞા, પૂજ્ય મહાસતી **શ્રીસુમતિકુંવરજી** મહાસતીજીનો પૂજ્યશ્રી ૧૦૦૮ શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ સા. નિર્મિત જૈનાગમોની સંસ્કૃત ટીકા તથા હિન્દી, ગુજરાતી, ભાષાંતર પર–

– અભિપ્રાય –

ॐ नमो सिद्धाणं

શાસ્ત્રવિશારદ, શ્રદ્ધેય પંડિતરત્ન **પૂજ્ય આચાર્ય મુનીશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ** સાહેબ જૈનાગમોના એક વિદ્વાન વૃદ્ધ વિચારક એવં ઉત્તમ લેખક છે.

સાહિત્યસર્જન એ તેમના જીવનનો ઉત્તમ સંકલ્પ છે. સામાજીક પ્રપંચોથી દૂર રહી અથાગ પરિશ્રમ દ્વારા વિરચિત સંપાદિત અને અનુવાદિત અનેક ગ્રંથો આજ તમામ જૈનોને માટે ચિંતન, મનન, અને અધ્યયન, અધ્યાપન માટે એક અપૂર્વ સાધન તૈયાર કરીને મહાન સાહિત્યસેવીના પદને દીપાવ્યું છે.

આગમના રહસ્યોથી અનભિજ્ઞ (અજાણ) આજની પ્રજા માટે શ્રદ્ધેય શ્રીમહારાજ સાહેબનું સાહિત્ય અત્યંત ઉપયોગી છે તેમ હું માનું છું.

સરસપુર, અમદાવાદ–તા. ૧–૫–૫૮

આર્યા–

સુમતિકુંવર

શ્રી વીતરાગાય નમઃ

આ અનંતાનંત સંસારમાં જન્મ અને મરણ પ્રાણિમાત્રને વળગેલા છે. માનવીઓ આવે છે અને જાય છે. પણ અનંતો સંસાર, અનંતાકાળની સાથે પગરવ માંડતો એની અલૌકિક ગતિએ વહ્યો જાય છે. માનવી પણ એની સાથે સ્મૃતિ-શેષ થતો જાય છે. માનવી આવ્યો-કેટલું ધન વધાર્યું-કેટલું માન વધાર્યું અને કેટલી નામના વધારી? તેની સાથે જગતને કાંઇ જ નિસ્બત નથી. અનંતાનંત આવ્યા અને અનંતાનંત કાળના ગર્ભમાં લુપ્ત થયા. પણ જેણે સ્વકાજે, પરકાજે, સમાજકાજે, ધર્મકાજે અને દેશકાજે પોતાના જીવનને ચંદનની માફક ઘસીને અન્યને શાતા ઉપજાવી છે તેવા ભદ્ર પુરુષોનું જીવન કાળની રેતી ઉપર પગલીઓ મુકતું જાય છે, જે ભવી જીવો માટે જીવનને ઉચ્ચ કક્ષાએ લઈ જવા માટે પ્રેરણાનું ચિરંતન સ્થાન બની ચૂકે છે.

પૂજ્ય આચાર્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ સાહેબ સ્થાનકવાસી તથા સમગ્ર જૈન સંપ્રદાયના ભવીજીવોના હિતાર્થે વયોવૃદ્ધ ઉમ્મર છતાં **અ. ભા૦ શ્વે૦ સ્થા૦ જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિના** સહકારથી જૈન આગમોના-શાસ્ત્રોદ્ધારનું કાર્ય કેટલાક વર્ષોથી કર્યે જાય છે. શાસ્ત્રોદ્ધારનું મોટા ભાગનું કાર્ય પૂર્ણતાની ટોચે પહોંચવા આવ્યું છે. છતાં હજી ઘણું કાર્ય બાકી છે. જે પૂજ્ય શ્રી હાલ સરસપુર (અમદાવાદ)ના ઉપાશ્રયે બીરાજી અથાગ કષ્ટ વેઠીને પણ શાસ્ત્રોદ્ધારનુ કાર્ય પૂર્ણ કરવા અથાગ પરિશ્રમ કરી રહ્યા છે જે શાસનદેવની કૃપાથી પરીપૂર્ણ થશે, એવી આશા રાખીએ છીએ. પૂજ્યશ્રીએ જે શાસ્ત્રોની ટીકા રચી છે તે પૈકીનું **શ્રી-નંદીસૂત્ર** આપના હસ્તકમળમાં આજે આવી રહ્યું છે.

શ્રી-નંદીસૂત્ર સરસપુર સંઘના સદ્દગત્ સંઘપતિ **શ્રી છગનલાલ શામળદાસ ભાવસાર** (માસ્તર)ના સ્મરણાર્થે છપાવી તેમના કુટુંબીજનોએ શાસ્ત્રોદ્ધારના કાર્યને સફળ બનાવવાની દિશામાં સારો એવો ટેકો આપ્યો છે. અને એ માટે શ્રી શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ તેઓને આભાર સાથે ધન્યવાદ આપે છે.

શ્રી છગનભાઇનો જન્મ સને ૧૮૮૨ ની ૧૫ મી ડીસેમ્બરના રોજ કડી-ઉત્તરગુજરાત મુકામે થયો હતો. તેમના પિતાનું નામ શામળદાસ તથા માતાનું નામ અચલા બહેન હતું. આર્થિક પરીસ્થિતિ સાનુકુળ ન હોવાને કારણે શામળદાસે પોતાનું ભાગ્યનિર્માણ કરવા મૂળ વતન કડી છોડીને પોતાના ત્રણ પુત્રો-**હરગોવનભાઇ, છગનભાઇ તથા મનસુખભાઇને** સાથે લઇને અમદાવાદ તરફ પ્રયાણ કર્યું. તે વખતના સરસપુર શ્રી સંઘના આદ્ય સંઘપતિ શ્રી જીવાભાઈ ઘેલાભાઇ ભાવસારે સંપૂર્ણ સહકાર આપી તેમને સરસપુરમાં સ્થાયી બનાવ્યા.

આંહી રહીને છગનભાઇએ ગામઠી શાળામાં અભ્યાસ કર્યો. ત્યાર બાદ **સુપ્રસિદ્ધ દાનવીર સર ચિનુભાઈની** માધુભાઈ મીલમાં માસિક ફક્ત ચાર રૂપીઆના પગારે નોકરીમાં દાખલ થયા. ધર્મનિષ્ઠતા, પ્રમાણિકતા અને કાર્યદક્ષતાને કારણે તેમણે શેઠશ્રી સર ચીનુભાઇનો પ્રેમ સંપાદન કર્યો. અને સામાન્ય કામદારમાંથી રૂા. ૭૦૦) રૂપીયા સાતસોના માસીક પગારથી યુરોપીઅન વીવીંગ માસ્તરની જગાએ તેમની નિમણુંક થઈ. તેમની સરળતા અને કાર્યદક્ષતાને કારણે બીજી જગાએથી આવતી વધારે પગારની ઓફરો તેમણે નકારી કાઢી. અને જણાવ્યું કે નોકરી તો સર ચીનુભાઈનીજ કરીશ. અને માધુભાઇ મીલમાં ૩૩ વર્ષની એકધારી સરવીસ બાદ રાજીનામું આપી આત્મકલ્યાણના માર્ગ તરફ વળ્યા. દરમ્યાન તેમના ભાઇ હરગોવીંદભાઈ સ્પીનીંગ માસ્તર અને મનસુખભાઇ વીવીંગ માસ્તરની પદવી સુધી પહોંચ્યા. એકવેળા તેઓ તેમના ગોરા ઓફીસર સાથે બેસીને વાત કરી રહ્યા હતા ત્યારે તેમના પિતાશ્રી શામળદાસભાઈ તેમને મળવા આવ્યા. પોતાના પુત્રને ગોરા ઓફીસરની હરોળમાં બેઠેલો જોઇ એમની આંખમાં હર્ષનાં આંસુ આવ્યાં. અને તેમને ખાત્રી થઈ કે પોતાના પુત્રોની ઉન્નતી પાછળ શાસનદેવની કૃપા છે. धर्मो रक्षति रक्षितः—જે ધર્મનું પાલન કરે છે તેનું રક્ષણ ધર્મ કરે છે એ પ્રમાણે જ બન્યું છે.

જૈન ધર્મના પ્રતાપે તેમનામા દયાનો ભાવ ઘણો જ ખીલ્યો હતો. તે સમયમાં રૂપીયા સાતસો માસીક કમાતો આ ઓફીસર જીવદયાના હેતુસર સવાર પડે ને હાથમાં કુતરાંના રોટલાની ઝોળી પકડી ઘેર ઘેર માગવા નીકળી પડે. ગામમાંથી રોટલા ઉઘરાવે, ઝોળી ખભે નાખી હાથમા ચકલાં કબુતર, ખીસકોલી માટે ચણા અને કીડીઓનાં નઘરાં પુરવા લોટ લઈને વગડામાં નીકળી પડે. પશુ પક્ષીઓ સમયસર તેમની રાહ જોતા ઉભાં જ હોય. आत्मवत् सर्वभूतेषु....ઉક્તિ મુજબ પ્રાણીઓ સાથે મૈત્રી બાંધી તેમની સેવા કર્યે જતા, અને યથાશક્ય ગરીબગરબાંને પણ સહાય કરતા. તેમાં તેમની નિરભિમાનતા અને જીવદયા પ્રત્યેની ઉંચી ભાવના જણાઈ આવે છે.

એકવાર એક કુતરૂં માંદુ હોવાથી ચાલી શકતું ન હોવાને કારણે તેની પાસે બેસીને તેનું મોં ઉઘાડી તેને ખવડાવતા હતા. ખવડાવતાં જ પંજો કુતરાના મોંમાં જતાં આંગળીએ પહેરેલી સોનાની વીંટી કુતરાના મોંમાં સરી ગઈ. તેઓ સમય પારખી ગયા કે જો હોહા કરીશ તો સોનાની વીટીની લાલચે કોઇ કુતરાને મારી નાખશે. તેથી મૌન સેવ્યું. અને જીવનની આખરી સંધ્યા સુધી એ જીવદયાનું કાર્ય યથાવત્ જારી રાખ્યુ.

સાતસોના વિવીંગમાસ્તર બનવા છતાં તેમણે કદી પણ પાટલુન પહેર્યું જ ન હતુ. એકવાર કોઈ કારણસર મજુર મહાજન તરફથી મીલને ઝાંપે સભા ભરાઈ હતી. પૂજ્ય ગાંધીજી અને અનસૂયા બહેન હાજર હતા. મીટીંગનું કાર્ય શરૂ થતાં ગાંધીજીએ માસ્તરને બોલાવવા જણાવ્યું. કારીગર વર્ગ બોલી ઉઠયો, "બાપુ! માસ્તર તો અમારી વચમાંજ બેઠેલા છે." સાબરમતિના એ સંત માસ્તરની આ સાદાઇ અને નીરભિમાનપણાને અને પોતાના કામદારો પ્રત્યેની મમતાને જોઈ નવાઈ પામ્યા.

રીટાયર્ડ થયા બાદ તેમણે પોતાના સમગ્ર જીવનનું વહેણ પાર્થિવ પ્રવૃત્તિમાંથી ખસેડી આધ્યાત્મિક પ્રવૃત્તિમાં વાળ્યું. સરસપુરનો તે વખતનો જુનો ઉપાશ્રય ઘણો અગવડ ભર્યો હતો. બારણાં એટલાં નીચાં હતાં કે સાધુ–સાધ્વીજીઓનાં માંથા અથડાય. છગનભાઈએ નિર્ણય કર્યો કે સાધુ–સાધ્વીજીઓને સારી રીતે રાખવાં હોય તો ઉપાશ્રયનો જીર્ણોદ્ધાર જરૂરી છે. પણ સંઘ પાસે જરૂરી નાણા નહતા. બીજેથી મદદ મળે તેમ ન હતી. તેથી **ગચ્છાધિપતિ પૂજ્યશ્રી હાથીજી મહારાજ** પાસે આશિર્વાદ માગી જીર્ણોદ્ધારનું શુભ કાર્ય પોતાના ભાઈઓ હરગોવનદાસ તથા મનસુખભાઈના સહકારથી સ્વખર્ચે શરૂ કર્યું. તે વખતે એમના એક જ્યોતિષી મિત્રે આગાહી કરી કે "માસ્તર, દૂર રહીને કામ લેજો માથે બારમો રાહુ ગાજે છે" તેથી દૂર રહીને ઉપાશ્રયના કાર્યની દેખરેખ રાખતા હતા. લલાટના લેખ મિથ્યા થતા નથી. તેમ કારણ ઉપસ્થિત થતાં તેમને ઉપાશ્રયમા દાખલ થવુ પડયું. સીડી ચઢતાં જ લોખંડની મોટી કોશ ઉપરથી સીધી તેમના માંથા ઉપર ઘા કરવા ધસી આવી. પણ જેને ધર્મનું શરણુ છે તેને મારનાર કોઈ નથી એ ઉક્તિ પ્રમાણે સાધારણ ઈજા થઇ. તેમના રક્તથી ઉપાશ્રયની ધરતીને તૃપ્તિ મળી અને તેઓ આ ભયંકર વિઘ્નમાંથી બચી ગયા એ દૈવી ચમત્કાર જ કહેવાય.

શાસનદેવની કૃપાથી ઉપાશ્રયનું કાર્ય પૂર્ણ થયું. છગનભાઇ એક દિવસ **પૂજ્યશ્રી હાથીજી મહારાજને** સુખશાતા પુછવા છીંપાપોળના ઉપાશ્રયે ગયા. પૂજ્યશ્રીએ ઉપાશ્રય અંગે પુછપરછ કરી. છગનભાઇએ શ્રી સંઘની આર્થીક સ્થિતિ અને કેવા સંજોગોમા ઉપાશ્રય બંધાયો તેની વીતકકથા કહી. પૂજ્યશ્રીએ જણાવ્યું કે ફીકર ન કરશો. શાસનદેવની કૃપાથી સૌ સારાં વાનાં થશે. ચાતુર્માસ પૂરૂં થએ પૂજ્યશ્રી સરસપુરના ઉપાશ્રયે પધાર્યા અને થોડા દિવસ બાદ સમાધિપૂર્વક કાળધર્મ પામ્યા. ઉછામણી સારી થઇ અને તેઓશ્રીના ધર્મોપદેશના પ્રતાપે સરસપુર શ્રી સંઘની ઉન્નતિ ઉત્તરોત્તર થતી ગઈ છે.

છગનભાઈ સવારે કુતરાંના રોટલા નાખ્યા પછી ઉપાશ્રયે વ્યાખ્યાનમાં જતા. સાંજના શહેરના ઉપાશ્રયોમાં સાધુસાધ્વીજીની સુખશાતા પુછવા જતા. તે પછી સાંજનો સમય ગુજરાત કલબમાં ગાળતા. એ તેમનો નિત્યક્રમ થઈ પડયો હતો.

સને ૧૯૪૪ ના મકરસંક્રાન્તિના દિવસે કુતરાંને રોટલા નાખવા જઈ આવ્યા પછી તેમને એકાએક હાર્ટ એટેક થયો. તેમાંથી બચવાની સંભાવના ઓછી લાગી એટલે ધર્મપ્રણાલિકા મુજબ વ્રત પચ્ચખાણ કરી લીધાં. પોતાના હાથે જે કાંઈ દાનપુણ્ય કરવા જેવું હતું તે કરી લીધું. તેઓશ્રી દેવલોક પામ્યા તે દિવસે સવારે **યુવાચાર્ય શાંતમૂર્તિ પૂજ્યશ્રી ભાઇચંદજી મહારાજ સાહેબ** તેમની ખબર કાઢવા પધાર્યા. તેમણે ફરીથી પ્રેમભાવે વ્રત પચ્ચખાણ કરાવ્યાં. છગનભાઇએ કીધું કે " મરણની મને ચિંતા નથી. બીસ્રા પોટલાં સાથે તૈયાર છું. આંહી પણ સાધુ–સાધ્વીજીની સેવા મળી અને બીજી ગતિમાં પણ કરીશ. મારે તો બન્ને સ્થળે આનંદ જ આનંદ છે " અને તેજ રાત્રે–તા. ૧૯–૧–૧૯૪૪ ના રોજ વાત કરતાં કરતાં તેમણે નશ્વર દેહનો ત્યાગ કર્યો. તેમના પરિચયમાં આવનાર સૌ કોઇએ આઘાત અનુભવ્યો. સંઘાડાનાં સર્વ સાધુ સાધ્વીજીઓ અને સંઘોમાં શોકની લાગણી છવાઈ ગઈ.

છગનભાઇ તો ગયા પણ તે પછીની તેમની અધુરી રહેલી શાસન સેવા તેમનાં પત્ની જમનાબેન તથા તેમના સુપુત્રો ભોગીભાઇ, છોટાભાઇ, શકરાભાઈ તથા તેમના બહોળા કુટુંબે ઉપાડી લીધી. **પૂજ્ય શ્રી ઇશ્વરલાલજી મહારાજ સાહેબ**ની શુભાશિષથી શ્રી ભોગીભાઈએ સરસપુર સંઘનું સુકાન સંભાળ્યું. શહેરની રોનક બદલાવા માંડી તેની સાથે મ્યુનીસીપાલીટી તરફથી આકરા કાયદાઓ થવા માંડયા. રસ્તા ઉપર પાણી પણ ઢોળી ન શકાય તો ધર્મ કરણી કરનારાઓએ ધર્મકરણી કરવી શી રીતે ? સમસ્ત શહેરના સંઘપતિઓને આ મુંઝવણ ઉભી થવા માંડી. સરસપુર સંઘના સદ્‌ભાગ્યે સદ્‌ગત સંઘપતિ શ્રી છગનભાઇએ ધર્મકરણી કરનારાઓના ઉપયોગ માટે વાડા સહિતની ખુલ્લી જમીન દીર્ઘદૃષ્ટિ વાપરી અગાઉથી રાખેલી હતી. આ જમીન ઉપર નજર મંડાઇ. આ જગામાં ઉપાશ્રય બાંધવામાં આવે તો ધર્મકરણી કરતા જીવોને કોઇ રીતે અગવડ ન પડે. એ હેતુથી ઉપાશ્રય બાંધવા માટે વિચાર કર્યો પણ શ્રી સંઘ પાસે પુરતું ભંડોળ ન હતું અને ઉપાશ્રય બાંધ્યા વગર ચાલે તેમ ન હતું.

વ્યાપારમાં સાહસ વગર દ્રવ્યોપાર્જન થતું નથી. તેમાં સૌ કોઈ સાહસ ખેડે પણ ધર્મના કાર્યમાં પૈસા ખરચવાનું સાહસ કોણ ખેડે ? ફક્ત વિરલા-

ઓજ ખેડી શકે. એક બાજુ સાધુ–સાધ્વીજીઓની સરસપુર સંઘ પ્રત્યેની ચાહના. બીજી બાજુ તેમને રાખવા માટેના મ્યુ. તરફથી થતા અંતરાયો. કાંતો ધર્મ પ્રત્યેની મમતા કાંતો ધન પ્રત્યેની મમતા. બન્નેમાંથી એક સ્વીકારવાનું હતું. તે પણુ કોઈની સહાય વિના **મધ્યમ વર્ગના એક માનવીને** પોતાના ગજા ઉપરાંતનું સાહસ ખેડવાનું હતું. સાહસ ખેડે તો જ આ કાર્ય થાય એમ હતું. શ્રી ભોગીભાઈએ વિચાર્યું કે જો કુદરતની ઇચ્છા આ ઉપાશ્રય બાંધવામાં મનેજ નિમિત્ત બનાવવા માંગતી હોય તો આ લાભ મારે શા માટે જતો કરવો ? ધન તો પુણ્યને આધીન છે. પુણ્ય હોય ત્યાં સુધીજ લક્ષ્મી ટકે છે. " ધર્મ કરતાં કોઈની લાજ ગઈ નથી જાણી રે " એ ઉક્તિ મુજબ વિચાર કરી પોતે ઉપાશ્રય બંધાવવા નિર્ણય કર્યો. પરોપકાર ખાતર તન, મન અને ધનનું સમર્પણુ કરનાર આવા વિરલા તો કોઈકજ હોય છે. તેઓશ્રીના ત્રણુ સુપુત્રો છે. જયંતીભાઈ, દીનેશભાઈ, અને રમણુભાઇ તે ઉપરાંત છોટાભાઈને લક્ષ્મણુભાઈ તથા શકરાભાઇને અરવિન્દભાઈ નામે સુપુત્રો છે. આ બધાં ભાઈઓમાં પણુ તેમના પૂર્વજોનો વારસો અત્યારથી જ પ્રજ્વલિત દેખાય છે આજે પૂજ્ય આચાર્યશ્રી દ્વારા જે અપૂર્વ સાહિત્ય–લેખનનું કાર્ય સરસપુર મુકામે સમિતિ કરાવે છે. તેમાં પણુ શ્રી ભોગીભાઇનો સારો એવો હિસ્સો છે અતિથિ, તથા સ્વધર્મિ બન્ધુઓ પ્રત્યે જે વાત્સલ્ય છે, તે અપૂર્વ છે, તેવો જ કાયમ માટે રહે તેમ પરમકૃપાલુ પરમાત્મા પ્રત્યે પ્રાર્થના છે. આ ઉપરના કાર્યને સુંદર બનાવવામાં તેમના ભાઈ છોટાલાલભાઇ તથા શકરાભાઈ તેમજ રતિલાલભાઇ આદિ સરસપુર શ્રી સંઘે પણુ ખૂબ સહકાર આપ્યો છે ને આપી રહ્યા છે. તે બદલ તે સૌને ધન્યવાદ ઘટે છે.

શ્રી ભોગીભાઈએ :આ ઉપાશ્રયના બાંધકામનું સાહસ ખેડયુ, અને શાસનદેવની કૃપાથી હેમખેમ કોઈ પણુ જાતની અડચણુ શીવાય કાર્ય પૂર્ણુ થયું. જાણેકે છગનભાઈનું અધુરૂં કાર્ય પૂર્ણુ થએલું જોવાજ જીવ્યાં હોય તેમ ઉપાશ્રયનું કામ આ બાજુ પૂર્ણુ થયુ અને શ્રી ભોગીભાઈનાં માતુશ્રી જમનાબેન ૨૦૧૩ના રામનવમીના રોજ દેવલોક પામ્યાં. તેઓની સેવા સૌ ભાઈઓએ બનતા પ્રયાસે ઘણી સારી રીતે કરી.

કુદરતની વાત ન્યારી છે. એક બાજુ અનુકુળતાવાળો ઉપાશ્રય- તૈયાર થયો. બીજી બાજુ શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિએ **પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ સાહેબને** શાસ્ત્રોદ્ધારનું ભગીરથ કાર્ય અમદાવાદ મુકામે રહીને કરવા વિનંતિ કરી. પૂજ્યશ્રીએ માન્ય રાખી. સમિતિના સદ્ગ્રહસ્થો આમંત્રણ તો આપી આવ્યા પણુ સ્થળની શોધમાં પડયા. જોગાનુજોગ તેમની દૃષ્ટિ સરસપુરના ઉપાશ્રય ઉપર પડી.

સમિતિના સભ્યો અને શ્રી ભોગીભાઈ ભદ્રિક **અને સરળ સ્વભાવી પૂજ્ય શ્રી ઇશ્વરલાલજી મહારાજસાહેબ** પાસે વિનંતિ કરવા ગયા. અને પૂજ્યશ્રીએ **પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ** સાહેબનું સંવત ૨૦૧૩નું ચાતુર્માસ સરસપુર મુકામે થાય તેમાં એમની સહર્ષ સંમતિ આપી, સરસપુરના શ્રી સંઘ અને સમિતિ ઉપર મહાન ઉપકાર કર્યો. ચાતુર્માસ નક્કિ થતાં સરસપુરના અને શહેરના અન્ય શ્રી સંઘોમાં અકથ્ય આનંદ વ્યાપી રહ્યો.

પૂજ્ય શ્રી અત્યારે સરસપુરના ઉપાશ્રયે બીરાજી વયોવૃદ્ધ ઉમ્મર હોવા છતાં ભાવિ પ્રજાના હીતાર્થે અવિરત પરિશ્રમ ઉઠાવી શાસ્ત્રોદ્ધારનું કાર્ય કરી રહ્યા છે. ભાગ્યયોગે શ્રી છગનભાઇના કુટુંબીજનો તથા સરસપુરના શ્રી સંઘને પૂજ્યશ્રી તથા શાસ્ત્રની સેવાનો પરમયોગ પ્રાપ્ત થયો તે તેમના માટે ગૌરવનો વિષય છે.

અ. ભા. શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ.



श्री

श्री नन्दीसूत्रस्थ

विषयानुक्रमणिका

अथ स्थविरावली

मूलम्—

८ १ २ ३

जयइ जगजीवजोणी,–वियाणओ जगगुरू जगाणंदो ।

४ ५ ९ ६ ७

जगणाहो जगबंधू, जयइ जगप्पियामहो भयवं ॥ १ ॥

छाया—

जयति जगज्जीवयोनि,–विज्ञायको जगद्गुरुर्जगदानन्दः ।
जगन्नाथो जगद्बन्धुर्जयति जगत्पितामहो भगवान् ॥१॥

अर्थः—

जगत् (तीन लोक) के जीवों की योनि (उत्पत्तिस्थान) के जाननेवाले तथा जगद्गुरु, जगदानन्द–संज्ञिपंचेन्द्रियरूप जगतको मोक्षाभ्युदयसाधक अमृतवर्षिणी देशना से ऐहलौकिक पारलौकिक आनन्द देनेवाले तथा दर्शनमात्र से आनन्द उत्पन्न करनेवाले, जगन्नाथ (चराचररूप जगत् के स्वामी) जगद्बन्धु (जगत् के बन्धुवत्)–सर्व प्राणि समुदायरूप जगत् को अहिंसारूपका उपदेश करनेसे रक्षक होने के कारण वन्धुके समान, जगत्पितामह (जगत् के जनक के जनक) – अर्थात्– सकल प्राणियों के नारकादि कुगति–विनिपात भय और अनर्थ (अनिष्ट) से रक्षा करनेके कारण पिताके समान सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित मूलगुण और उत्तरगुणों का समुदायरूप धर्म है उसके अर्थतः उत्पादक, भगवान् (सर्वैश्वर्य १ सम्पत् २ यश ३ श्री ४ ज्ञान ५ वैराग्य ६ रूप भगवाले) सर्वोत्कर्षसे वारंवार (सदा) विराजते हैं ॥ १ ॥

मूलम्—

९ १ २ ३ ४

जयइ सुयाणं पभवो, तित्थयराणं अपच्छिमो जयइ ।

१० ६ ५ ११ ७ ८

जयइ गुरू लोगाणं, जयइ महप्पा महावीरो ॥ २ ॥

छाया—

जयति श्रुतानां प्रभवः तीर्थकराणामपश्चिमोजयति ।
जयति गुरुर्लोकानां, जयति महात्मा महावीरः ॥ २ ॥

अर्थः—

द्वादशाङ्गरूप श्रुत (शास्त्र) के प्रभव (उत्पत्तिकारण) अर्थात् अर्थरूप से निर्माता तथा तीर्थंकरों के मध्य में अपश्चिम अवसर्पिणीकाल के २४ तीर्थंकरों के मध्यमें अन्तिम, और तीनों लोक के गुरु, तथा निःस्पृहभावसे तत्त्वोपदेशक महात्मा श्री महावीरस्वामी सर्वोत्कर्ष से वार वार (सदा) विराजते हैं ॥ २ ॥

मूलम्—

६ १ ७ ५ ४
भद्दं सव्वजगुज्जोयगस्स, भद्दं जिणस्स वीरस्स ।
८ २ ९ ३
भद्दं सुरासुरनमंसियस्स, भद्दं धूयरयस्स ॥ ३ ॥

छाया—

भद्रं सर्वजगदुद्द्योतकस्य, भद्रं जिनस्य वीरस्य ।
भद्रं सुरासुरनमस्यितस्य, भद्रं धूतरजसः ॥ ३ ॥

अर्थः—

सव जगत् के उद्द्योतक–ज्ञानरूप नेत्र दे कर जगत् को प्रकाशित करनेवाले सुर और असुरों से वन्दित कर्मधूली को निवारण करनेवाले श्रीमहावीरस्वामी जिन का वारं वार (सदा) कल्याण हो ॥ ३ ॥

मूलम्—

(श्री सङ्घस्तुति –)

१
गुण भवणगहणसुयरयण,–भरियदंसण विसुद्धरत्थागा ।
३ ४ २
संघनगर ! भद्दं ते, अखंडचारित्तपागारा ! ॥ ४ ॥

छाया—

गुणभवनगहनश्रुतरत्न,–भृतदर्शन विशुद्धरथ्याक ! ।
सङ्घनगर ! भद्रं ते, अखण्डचारित्रप्राकार ! ॥ ४ ॥

अर्थः—

गुणरूप घरोंसे गहन (दुर्गम) श्रुत (शास्त्र) रूप रत्नों से भरी हुई और

सम्यग्दर्शनरूप विशुद्ध (निर्मल) रथ्या (मार्ग) वाला और अखण्ड चारित्ररूप प्राकार (कोट) वाला हे सङ्घरूप नगर! तेरा कल्याण हो ॥ ४ ॥

मूलम्—

संजम तव तुंबारयस्स, नमो सम्मत्तपारियल्लस्स ।
अप्पडिचक्कस्स जओ, होउ सया संघचक्कस्स ॥ ५ ॥

छाया—

संयम तपस्तुम्बाऽऽरकस्य (काय) नमः सम्यक्त्वपरिकरस्य (राय)।
अप्रतिचक्रस्य (क्राय) जयो भवतु सदा सङ्घचक्रस्य (क्राय) ॥ ५ ॥

अर्थः—

संयमरूप नाभि (मध्य भाग) और तपरूप आरा (चारो तरफ के काष्ठ) वाले सम्यक्त्व परिकर (उपर के भाग) वाले ऐसे शत्रुरहित सङ्घरूप चक्र को नमस्कार और उसकी जय सदा हो ॥ ५ ॥

मूलम्

भद्दं सील पडागू सियस्स, तव नियम तुरयजुत्तस्स ।
संघ रहस्स भगवओ सज्झाय सुनंदिघोसस्स ॥ ६ ॥

छाया—

भद्रं शीलपताकोच्छ्रितस्य, तपो नियमतुरगयुक्तस्य ।
सङ्घरथस्य भगवतः स्वाध्यायसुनन्दि घोषस्य ॥ ६ ॥

अर्थः—

शील (सद्वृत्त) रूप पताका से उन्नत तप और नियमरूप दो घोडों से युक्त और पांच प्रकार के स्वाध्यायरूप माङ्गलिक शब्दवाले भगवान् (समस्तैश्वर्यादि षट्कसम्पन्न) सङ्घरूप रथका कल्याण हो ॥ ६ ॥

मूलम्

कम्मरयजलोह विणिग्गयस्स, सुयरयणदीहनालस्स ।
पंचमहव्वय थिरकण्णियस्स, गुणकेसरालस्स ॥ ७ ॥

छाया—

कर्मरजोजलौघविनिर्गतस्य, श्रुतरत्नदीर्घनालस्य ।
पञ्चमहाव्रतस्थिरकर्णिकस्य, गुणकेसरवतः ॥ ७ ॥

मूलम्

सावगजणमहुयरपरिवुडस्स, जिणसूरतेयबुद्धस्स ।
संघपउमस्स भद्दं, समणगणसहस्सपत्तस्स ॥ ८ ॥

छाया—

श्रावकजन मधुकर परिवृतस्य, जिनसूर्यतेजोबुद्धस्य ।
सङ्घपद्मस्य भद्रं, श्रमणगणसहस्रपत्रस्य ॥ ८ ॥ (युग्मम्)

अर्थः—

कर्मरूप रज (कीचड) और जलसमूहसे निकले हुए शास्त्ररूप रत्नमय लम्बायमान नालवाले अहिंसादि पांच महाव्रतरूप दृढ कर्णिकावाले, क्षमा-आर्जवादि उत्तरगुणरूप केसर (किञ्जल्क) वाले, श्रावक जनरूप भौंरों से घेरे हुए तीर्थङ्कर-रूप सूर्यके तेज (किरण) से विकसित साधुसमूहरूप हजार पत्रवाले सङ्घरूप कमल का कल्याण हो ॥ ७-८ ॥

मूलम्

तव संजममयलंछण, अकिरियराहुमुहदुद्धरिस ! निच्चं ।
जय संघचंद निम्मल,-सम्मत्तविसुद्धजोण्हागा ! ॥ ९ ॥

छाया—

तपः संयम मृगलाञ्छन ! अक्रियराहुमुखदुर्धर्ष ! नित्यम् ।
जय सङ्घचन्द्र ! निर्मल,-सम्यक्त्व विशुद्धज्योत्स्नाक ! ॥ ९ ॥

अर्थः—

तपः प्रधान संयमरूप मृगचिह्नवाले अक्रिय (नास्तिकत्व) रूप राहुमुखसे दुर्जय निर्दोष सम्यक्त्वरूप स्वच्छ चन्द्रिकावाले हे .सङ्घरूप चन्द्र ! तूं सदा सर्वोत्कृष्ट हो ॥ ९ ॥

मूलम्

१ २
परतित्थियगहपहनासगस्स, तवतेयदित्तलेसस्स ।
३ ५ ६ ४
नाणुज्जोयस्स जए, भद्दं दमसंघसूरस्स ॥ १० ॥

छाया—

परतीर्थिक ग्रहप्रभा नाशकस्य, तपस्तेजोदीप्तलेश्यस्य ।
ज्ञानोद् द्योतस्य जगति, भद्रं दमसङ्घसूरस्य ॥ १० ॥

अर्थः—

परतीर्थिक (परदर्शनानुयायी) रूप ग्रहोंकी प्रभा कों नाश करनेवाले तपस्तेजरूप चमकदार लेश्या (आत्मपरिणामविशेष) वाले ज्ञानरूप प्रकाशवाले, दम (इन्द्रियनिग्रह) प्रधानक सङ्घरूप सूर्यका जगत में कल्याण हो ॥ १० ॥

मूलम्

७ १ २
भद्दं धिइ वेला परिगयस्स, सज्झाय योग मगरस्स ।
३ ५ ६ ४
अक्खो हस्स भगवओ, संघसमुद्दस्स रुंदस्स ॥ ११ ॥

छाया—

भद्रं धृतिवेलापरिगतस्य, स्वाध्याययोगमकरस्य ।
अक्षोभस्य भगवतः, सङ्घसमुद्रस्य विस्तीर्णस्य ॥ ११ ॥

अर्थः—

धैर्यरूप वेला (जलवृद्धि) से युक्त स्वाध्याययोग (स्वाध्याय रूप जलचरवाले) क्षोभ रहित और विस्तृत-विस्तारवाले भगवान् सङ्घरूप समुद्र का कल्याण हो ॥ ११ ॥

मूलम्

सम्मद्दंसण वरवइर–दढरूढगाढावगाढपेढस्स[1] ।
धम्मवर रयण मंडिय,–चामीयर मेहलागस्स[2] ॥ १२ ॥
नियमूसियकणय,–सिलायलुज्जलजलंत चित्तकूडस्स[3] ।
नंदणवण मण हरसुरभि,–सीलगंधुद्धमायस्स[4] ॥ १३ ॥
जीवदयासुंदरकंदरुद्दरिय, मणिवर मइंद इन्नस्स[5] ॥
हेउसयधाउपलगंत,–रयणदित्तो सहिगुहस्स[6] ॥ १४ ॥
संवरवरजलपगलिय,–उज्झरप्पाविरायमाण हारस्स[7] ।
सावगजणपउररवंत–नच्चंतमोरकुहरस्स[8] ॥ १५ ॥
विणयनयप्पवरमुणिवर,–कुरंतविज्जुज्जलंतसिहरस्स[9] ।
विविहगुणकप्परुक्खग,–पलभरकुसुमाउलवणस्स[10] ॥ १६ ॥
नाण वर रयण दिप्पंत,–कंतवेरुलियविमलचूलस्स[11] ।
[14] वंदामि विणयपणओ,[13] संघमहामंदरगिरिस्स[12] ॥ १७ ॥ (कुलकं)

छाया—

सम्यग्दर्शन वर वज्र,–दृढ रूढ गाढावगाढपीठस्य ।
धर्मवररत्नमण्डित चामीकर मेखला कस्य ॥ १२ ॥
नियमकनकशिलातलोच्छ्रितोज्ज्वलज्वलच्चित्त(त्र)कूटस्य ।
नन्दनवन मनोहरसुरभि,–शील गन्धोद्धूमायस्य ॥ १३ ॥

जीवदया सुन्दरकन्दरोद्दृप्त मुनिवरमृगेन्द्राकीर्णस्य।
हेतुशतधातु प्रगलद्रत्न दीप्तौषधिगुहस्य ॥ १४ ॥

संवरवरजलप्रगलितोज्झर प्रविराजमान हा (धा) रस्य।
श्रावकजनप्रचुररवन्नृत्यन्मयूर कुहरस्य ॥ १५ ॥

विनयनत प्रवर मुनिवर स्फुरद्विद्युज्ज्वलच्छिखरस्य।
विविधगुणकल्पवृक्षक भरकुसुमाकुलवनस्य ॥ १६ ॥

ज्ञानवररत्नदीप्यमान कान्तवैडूर्यविमल चूलस्य।
वन्देविनयप्रणतः, सङ्घमहामन्दिरगिरेः ॥ १७ ॥ (कुलकम्)

अर्थः—

मैं सम्यग्दर्शनरूप उत्तम वज्रमय दृढ (स्थिर—चिरकालिक) अत्यन्त अव-गाढ (भूमि में गडा हुआ) पीठ (आधारशिला) वाले तथा धर्मरूप उत्तम रत्नों से शोभित सुवर्णमय मेखला (मध्यभाग) वाले नियमरूप सुवर्णमय शिलातल पर उच्च उज्ज्वल (विमल) और भास्वर (चमकदार) चित्तरूप अद्भुत कूट (शिखर —चोटी) वाले, सन्तोषरूप नन्दनवनसम्बन्धी चित्ताकर्षक सौरभ्य से युक्त शील (सदाचार) रूप सुवास-(खूसबु) से सम्पन्न, जीवदयारूप सुन्दर (अच्छी) कन्दरा (गुफा) में दृप्त (कर्मरूप शत्रु के प्रति और कुमतानुयायियों के प्रति वादलब्धिसे सात्त्विक अभिमानवाले) मुनि शिरोमणिरूप सिंहोंसे व्याप्त (अधिष्ठित) सैंकडों हेतुरूप धातु क्षायोपशमिकभाव से गिरते हुए शुभ विचाररूप रत्नों से प्रकाशित .आमर्षौषधि आदि औषधिवाली व्याख्यानशालारूप गुफा वाले पांच आस्रवों का निरोधरूप संवररूप स्वच्छजलके गिरे हुए प्रशमादि विचारधारारूप उन्नत झरनारूप धारावाले श्रावकजनरूप बहुत बोलते नाचते मोरवाली कन्दरावाले, विनयसे नम्रीभूत उत्तम मुनिवररूप चमकती हुई विजलियोंसे शोभा-यमान शिखरवाले, अनेक गुणरुप कल्पवृक्षके फलों के भर (समूह) और पुष्पोंसे व्याप्त वनवाले, उत्तम ज्ञानरूप रत्नों से शोभायमान सुन्दर वैडूर्य मणिमय चोटी-वाले सङ्घरूप महान् सुमेरु पर्वतको (मैं) विनय से प्रणत (अतिनम्र) हो वन्दन करता हूं ॥ १२–१७ ॥

मूलम्

१ २
गुणरयणुज्ज्वलकडयं, सीलसुगंधि तवमंडिउद्देसं ।
३ ४ ५
सुयबारसंगसिहरं, संघमहामंदरं वंदे ॥ १८ ॥

छाया—

गुणरत्नोज्ज्वलकटकं, शील सुगन्धि तपोमण्डितोद्देशम् ।
श्रुतद्वादशाङ्गशिखरं, सङ्घमहामन्दरं वन्दे ॥ १८ ॥

अर्थः—

मैं गुणरूप रत्नमय स्वच्छ मध्य भागवाले तथा शील (सदाचार) रूप सुवास (खुसबू) से सुवासित, और तपस्या से शोभित, और उद्देश (अवयव) वाले द्वादशाङ्गशास्त्र वा शास्त्रके द्वादशाङ्गरूप शिखरवाले सङ्घरूपवडे सुमेरु पर्वतको वंदता हूं ॥ १८ ॥

मूलम्

२ ३ ४ ५
नगर रह चक्क पउमे, चंदे सूरे समुद्द मेरुम्मि ।
१ ६ १० ७ ९ ८ ११
जो उवमिज्जइ सययं, तं संघ गुणायरं वंदे ॥ १९ ॥

छाया—

नगररथचक्रपद्मे, चन्द्रे सूरे समुद्रे मेरौ ।
य उपमीयते सततं, तं सङ्घं गुणाकरं वन्दे ॥ १९ ॥

अर्थः—

जो नगर, रथ, चक्र, कमल, चन्द्र, सूर्य, समुद्र और सुमेरु में तुलित किया जाता है अर्थात् नगरादियों की उपमा जिसमें दी जाती है उस गुणाकर (गुणकीखान) संघको मैं सदा वन्दन करता हूं इसमें समुद्र और संघ इन दोनो शब्दमें प्राकृत होनेके कारण विभक्ति लोप हुआ है ॥ १९ ॥

मूलम्

१ २ ३
(वंदे) उसभं अजियं संभव-अभिनंदणसुमइ सुप्पभसुपासं।
४ ५ ६
ससिपुप्फदंतसीयल, सिज्झंसं वासुपूज्जं च ॥ २० ॥
७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५
विमलमणंत च धम्मं, संतिं कुंथुं अरं च मल्लिं च ।
१६ १७ १८ १९ २०
मुनि सुव्वय नमिनेमिं, पासं तह वद्धमाणं च ॥ २१ ॥

छाया—

ऋषभमजितं सम्भव—मभिनन्दनसुमतिसुप्रभसुपार्श्वम् ।
शशिपुष्पदन्तशीतल—श्रेयांसं वासुपूज्यं च ॥ २० ॥
विमलमनन्तं च धर्मं, शान्ति कुन्थुमर च मल्लिं च ।
मुनिसुव्रत नमिनेमिं, पार्श्वं तथा वर्द्धमानं च ॥ २१ ॥

अर्थः—

मैं श्री ऋषभदेवस्वामी श्री अजितनाथजी श्री सम्भवनाथजी श्री अभिनन्दजी श्री सुमतिजी श्री सुप्रभजी श्री सुपार्श्वनाथजी श्री चन्द्रप्रभजी श्री पुष्पदन्तजी (श्री सुविधिनाथजी) श्री शीतलनाथजी श्री श्रेयांसनाथजी श्री वासुपूज्यजी श्री विमलनाथजी श्री अनन्तनाथजी श्री धर्मनाथजी श्री शान्तिनाथजी श्री कुन्थुनाथजी श्री अरनाथजी श्री मल्लिनाथजी श्री मुनि सुव्रतजी श्री नमिनाथजी श्री नेमिनाथजी श्री पार्श्वनाथजी और श्री वर्द्धमान (श्री महावीर) स्वामी को मैं वन्दन करता हूं ॥ २०–२१ ॥

मूलम्

२ १ ३ ५ ४ १५ ६ ७
पढमित्थ इंदभूई, बीए पुण होइ अग्गिभूइत्ति ।
९ ८ १० ११ १२ १३ १४
तइए य वाउ भूई, तओ वियत्ते सुहम्मे य ॥ २२ ॥

छाया—

प्रथमोऽत्र इन्द्रभूति द्वितीयः पुनर्भवत्यग्निभूतिरिति ।
तृतीयश्च वायुभूतिस्ततो व्यक्तः सुधर्मा च ॥ २२ ॥

अर्थः—

यहां (श्री महावीर स्वामीके शासनमें) प्रथम गणधर इन्द्रभूति (श्री गौतमस्वामी) हैं, फिर दूसरे अग्निभूति हैं और तीसरे वायुभूति हैं बाद चौथे व्यक्तस्वामी हैं पांचमें श्री सुधर्मास्वामी है ॥ २२ ॥

मूलम्

१　　　२　३　　　४　५

मंडियमोरियपुत्ते, अकंपिए चेव अयलभाया य ।

६　७　८　१०　११　९

मेयज्जे य पहासे गणहरा हुंति वीरस्स ॥ २३ ॥

छाया—

मण्डित–मौर्यपुत्रावकम्पितश्चैवाचल भ्राता च।
मेतार्यश्च प्रभासो गणधराः सन्ति वीरस्य ॥ २३ ॥

अर्थः—

छट्ठे मण्डित और सातमे मौर्यपुत्र गणधर हैं और ऐसे ही आठमे अकम्पित और नवमे अचलभ्राता गणधर हैं। दशवे मेतार्यस्वामी और ग्यारवे प्रभास-स्वामी ये सब श्री महावीरस्वामी के गणधर हैं ॥ २३ ॥

मूलम्

१　　६　　५　　　२

निव्वुइपह सासणयं, जयइ सया सव्वभाव देसणयं ।

३　　　　　४

कुसमय मय नासणयं, जिणिंदवर वीर सासणयं ॥ २४ ॥

छाया—

निर्वृतिपथ शासनकं, जयति सदा सर्वभाव देशनकम्।
कुसमय मद नाशनकं, जिनेन्द्रवरवीरशासनकम् ॥२४॥

अर्थ—

मोक्षमार्ग का शासक सवपदार्थों का उपदेशक और कुसिद्धान्तों के अहङ्कार को नष्ट करने वाला जिनेन्द्रोंमें श्रेष्ट श्री महावीर स्वामी का शासन सर्वोत्कर्ष से सदा विराजता है ॥२४॥

मूलम

२ १ ५ ३ ४

सुहम्मं अग्गिवेसाणं, जंबूनामं च कासवं ।

७ ६ ११ १० ९ ८

पभवं कच्चायणं वंदे, वच्छं सिज्जंभवं तहा ॥ २५ ॥

छाया--

सुधर्माण मग्निवेश्यायनं, जम्बूनामानं च काश्यपम् ।
प्रभवं कात्यायनं वन्दे, वात्स्यं शय्यम्भवं तथा ॥ २५ ॥

अर्थः—

मैं अग्निवेश्यायन गोत्र श्री सुधर्म स्वामी काश्यपगोत्र श्री जम्बूस्वामी कात्यायन गोत्र श्री प्रभवस्वामी और वत्सगोत्रोत्पन्न श्री शय्यम्भवस्वामी को मैं वंदन करता हुँ ॥२५॥

मूलम्

२ १ १२ ४ ५ ३

जसभद्दं तुंगियं वंदे, संभूयं चेव माढरं ।

७ ८ ६ १० ११ ९

भद्दबाहुं च पाइन्नं, थूलभद्दं च गोयमं ॥ २६ ॥

छाया—

यशोभद्रं तुङ्गिकं वन्दे, सम्भूतं चैव माढरम् ।
भद्रबाहुं च प्राचीनं, स्थूलभद्रं च गौतमम् ॥२६॥

अर्थः—

मैं तुङ्गिकगोत्र श्री यशोभद्रस्वामी माठर गोत्र श्री सम्भूतस्वामी प्राचीन गोत्र श्री भद्रबाहुस्वामी और गौतमगोत्र श्री स्थूलभद्रस्वामी को वंदन करता हुं, इन चारोंमें यशोभद्रस्वामी श्री शय्यम्भवस्वामी के शिष्य थे, श्री यशोभद्रस्वामी के शिष्य श्री सम्भूत (विजय) हैं. श्री सम्भूतस्वामी के शिष्य श्री स्थूलभद्राचार्य हैं ॥२६॥

मूलम्

१ ५ २ ३ ४

एलावच्चसगोत्तं, वंदामि महागिरिं सुहत्थिं च ।

६ ७ ८ ९ १०

तत्तो कोसियगोत्तं, बहुलस्स सरिव्वयं वंदे ॥ २७ ॥

छाया—

एलापत्यसगोत्रं, वन्दे महागिरिं सुहस्तिनञ्च ।
ततः कौशिकगोत्रं, वहुलस्य सदृग्वयसं वन्दे ॥२७॥

अर्थः—

मैं एलापत्य गोत्र वाले श्रीमहागिरि और श्रीसुहस्त्याचार्यको वंदन करता हूँ, उसके बाद कौशिक गोत्र [विश्वामित्र गोत्रोत्पन्नं] श्री वहुलमुनिके समान-वयवाले बलिस्सहजी को वन्दन करता हुं । इनमें श्रीमहागिरिजी श्रीस्थूलभद्रजी के शिष्य थे, और श्रीसुहस्तीजी भी श्रीस्थूलभद्रजी के ही शिष्य थे, श्रीमहागिरिजी के श्री वहुलजी और श्री बलिस्सहजी ये दो प्रधान शिष्य थे ॥२७॥

मूलम्

हारियगुत्तं साइं च, वंदिमो हारियं च सामज्जं ।
वंदे कौसियगोत्तं, संडिल्लं अज्जजीय धरं ॥ २८ ॥

छाया—

हारीतगोत्रं स्वातिं च, वन्दामहे हारीतं च श्यामार्यम् ।
वन्दे कौशिकगोत्रं, शाण्डिल्यमार्यजीतधरम् ॥२८॥

अर्थः—

हम हारीतगोत्र श्री स्वात्याचार्य और हरीतगोत्र श्री श्यामार्यजी को वन्दन करता हुं, मैं कौशिकगोत्र श्री शाण्डिल्याचार्य और श्रीआर्यजीतधराचार्यजी को वन्दन करता हुं, इनमें श्री स्वातिजी बलिस्सहजी के शिष्य थे, श्यामार्य श्रीस्वातिजी के शिष्य थे, किसीने श्यामार्य श्री शाण्डिल्यजी काही आर्यजीतधर यह विशेषण लगाकर वन्दन कहा है, उसका अर्थ-"मर्यादादर्शक सूत्रधारक है ॥२८॥

मूलम्

तिसमुद्दखायकित्तिं, दीवसमुद्देसु गहिय पेयालं ।
वंदे अज्जसमुद्दं, अक्खुभिय समुद्द गंभीरं ॥ २९ ॥

छाया—

त्रिसमुद्राख्यातकीर्तिं, द्वीपसमुद्रेषु गृहीत [पेचालम्] प्रमाणम् ।
वन्दे आर्यसमुद्रम्, अक्षुभितसमुद्रगम्भीरम् ॥२९॥

अर्थः—

मैं पूर्वदक्षिण और पश्चिम इन तीन समुद्रपर्यन्त ख्यात कीर्तिवाले अनेक द्वीप और समुद्र के विषयमें इन के प्रमाण के जानकर अर्थात् द्वीपसमुद्रप्रज्ञप्तिज्ञाता अक्षुभित-क्षोभ रहित स्थिर समुद्र के समान गम्भीर श्री आर्यसमुद्राचार्यजी को वन्दन करता हूँ। ये आर्य समुद्र जी-शाण्डिल्यजी के शिष्य थे ॥ २९ ॥

मूलम्

१ २ ३ ५ ४
भणगं करगं झरगं, पभावगं णाणदंसणगुणाणं ।
९ ८ ६ ७
वंदामि अज्जमंगुं, सुयसागरपारगं धीरं ॥ ३० ॥

छाया—

भाणकं कारकं स्मारकं, प्रभावकं ज्ञानदर्शनगुणानाम् ।
वन्दे आर्यमङ्गुं, श्रुतसागरपाटकं धीरम् ॥३०॥

अर्थः—

मैं कालिक आदि सूत्रों के पाठक [पढनेवाले] सूत्रोक्तक्रियाकलाप के कारक [करनेवाले] स्मारक धर्मके ध्यायक (ध्यान करनेवाले) इसी कारण से ज्ञान दर्शन और उपलक्षणतया चारित्ररूप गुणों के प्रभावक [प्रदीप्तकरने वाले] शास्त्र-रूप समुद्र के पारङ्गत और धीर [विकार कारण प्राप्त होने पर भी अक्षुब्धचित्तवाले] श्री आर्यमङ्गु-नामक आचार्य को वन्दन करता हुँ, ये आर्यमङ्गुजी श्री आर्यस-मुद्रजीके शिष्य थे ॥३०॥

मूलम्

२ १ ३ ७ ४ ५ ६
वंदामि अज्जधम्मं, तत्तो वंदे य भद्दगुत्तं च ।
८ ९ १२ १० ११
तत्तो य अज्जवइरं, तवनियमगुणेहिं वइरसमं ॥ ३१ ॥

छाया—

वन्दे आर्यधर्मं, ततो वन्दे च भद्रगुप्तं च।
ततश्चार्यवज्रं, तपोनियमगुणैर्वज्र समम् ॥३१॥

अर्थः—

मैं श्री आर्य धर्मनामक आचार्य को वन्दन करता हूँ, और उसके बाद श्री भद्रगुप्त नामक आचार्य को वन्दन करता हूँ, और उसके बाद तप नियम आदि गुणों से वज्र के समान बलवान् श्री आर्यवज्रस्वामी को वन्दन करता हुँ ॥३१॥

मूलम्

[७]वंदामि अज्जरक्खिय, [६]खवणे रक्खिय [५]चारित्त सव्वस्से ।
[२]रयणकरंण्डगभूओ, [३]अणुओगो [४]रक्खिओ [१]जेहिं ॥ ३२ ॥

छाया—

वन्दे आर्य रक्षित क्षपणान् रक्षित चारित्र सर्वस्वान्।
रत्न करण्डक भूतोऽनुयोगो रक्षितो यैः ॥ ३२ ॥

अर्थः—

मैं जिन्होंने रत्नमय पेटी के समान अनुयोग की उन चारित्र (संयम रूप सर्वस्व की) भूतकालमें रक्षा करने वाले श्री आर्य रक्षित क्षपण (तपस्वी) को वन्दन करता हुँ ॥ ३२ ॥

मूलम्

[१]नाणम्मि [२]दंसणम्मि [३]य, तव [४]विणए [५]णिच्चकाल [६]मुज्जुत्तं ।
[८]अज्जं नंदिल [९]खवणं, [१०]सिरसा [११]वंदे [७]पसण्णमणं ॥ ३३ ॥

छाया—

ज्ञाने दर्शने च, तपो विनये नित्यकालमुद्युक्तम्।
आर्य नन्दिल क्षपणं, शिरसा वन्दे प्रसन्नमनसम् ॥३३॥

अर्थः—

में सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन, च से सम्यक् चारित्र, तप और विनय में सदा उद्यत (अप्रमादी) रागद्वेष रहित होने के कारण सदा मध्यस्थभाववाले आर्यश्री नन्दिल नामक क्षपण (तपस्वी) को मस्तक से वन्दन करता हुँ। श्री नन्दिलजी श्री आर्यमङ्गुजी के शिष्य थे ॥३३॥

मूलम्

५ ३ ४ २

वड्ढउ वायगवंसो, जसवंतो अज्जनागहत्थीणं ।

१

वागरण करणभंगिय, कम्मप्पयडीपहाणाणं ॥ ३४ ॥

छाया—

वर्द्धतां वाचकवंशो, यशोवंश आर्यनागहस्तिनाम्।
व्याकरण करण भाङ्गिक-कर्मप्रकृतिप्रधानानाम् ॥ ३४ ॥

अर्थः—

व्याकरण, करण (ज्योतिष), भङ्गजाल और कर्मप्रकृति आदि की प्ररूपणा में सर्वश्रेष्ठ श्री आर्य नागहस्ती आचार्य की शिष्य परम्परा और यशपरम्परा सर्वदा बढे ॥ ३४ ॥

मूलम्

१ २

जच्चंजणधाउ समप्पहाणं, मुद्दिय कुवलयनिहाणं ।

५ ४ ३

वड्ढउ वायगवंसो, रेवइणक्खत्तणामाणं ॥ ३५ ॥

छाया—

जात्याञ्जन धातु समप्रभाणां, मृद्वीका कुवलयनिभानाम् ।
वर्द्धतां वाचकवंशो, रेवतीनक्षत्रनाम्नाम् ॥ ३५ ॥

अर्थः—

श्रेष्ठ जातिमान काले मणिके सदृश वर्णवाले तथा पकि द्राक्षा के समान काले वर्णवाले और नीलकमल के समान नील शरीर वर्णवाले रेवती नक्षत्र नामक आचार्यका वाचकवंश वढे। ये श्री रेवती नक्षत्रजी श्री आर्यनागहस्तीजीके शिष्य थे ॥ ३५ ॥

मूलम्

१ २ ३
अयलपुरा णिक्खंते, कालियसुय आणुओगिए धीरे।
७ ४ ५ ६
बंभद्दीवगसीहे, वायगपयमुत्तमं पत्ते ॥ ३६ ॥

छाया—

अचलपुरानिष्क्रान्तान् कालिकश्रुतानुयोगिकान् धीरान्।
ब्रह्मदीपकसिंहान्, वाचकपदमुत्तमं प्राप्तान् ॥ ३६ ॥

अर्थः—

मैं अचलपुर से निष्क्रान्त (प्रव्रजित) कालिकसूत्ररूप शास्त्रके अनुयोग (व्याख्या) के ज्ञाता धीर उत्तमवाचकपदप्राप्त ब्रह्मदीपकी शाखासे उपलक्षित श्री सिंहाचार्यको वन्दन करता हूं। ये रेवति नक्षत्राचार्यके शिष्य थे ॥ ३६ ॥

मूलम्

१ २ ५ ४ ३
जेसिं इमो अणुओगो, पयरइ अज्जावि अड्ढभरहम्मि।
७ ६ ९ ८
वहुनयरनिग्गायजसे, ते वंदे खंदिलायरिए ॥ ३७ ॥

छाया—

येषामयमनुयोगः प्रचरत्यद्याप्यर्द्धभरते।
वहुनगरनिर्गतयशसः, तान् वन्दे स्कन्दिलाचार्यान् ॥ ३७ ॥

अर्थः—

मैं जिनका यह (इस समय में उपलभ्यमान) अनुयोग अर्द्धभरत (भरतक्षेत्र के अर्ध–दक्षिण भरतक्षेत्र) में आज भी प्रचलित है अनेक नगरोंमें अभ्युदित प्रसृत

यशवाले उन श्रीस्कन्दिलाचार्य को वन्दन करता हूं, ये श्रीसिंहाचार्य के शिष्य थे ॥ ३७ ॥

मूलम्

१ २ ४
तत्तो हिमवंतमहंत-विक्कमे धिइपरक्कममणंते ।
५ ६ ८ ७
सज्झायमणंतधरे, हिमवंते वंदिमो सिरसा ॥ ३८ ॥

छाया--

ततो हिमवन्महाविक्रमान् अनन्तधृतिपराक्रमान् ।
अनन्तस्वाध्यायधरान्, हिमवतो वन्दे शिरसा ॥ ३८ ॥

अर्थः--

मैं उन (श्रीस्कन्दिलाचार्य) के बाद हिमालयपर्वतके समान बहुत क्षेत्रों में विहार करनेवाले अपरिमित धैर्यपराक्रमवाले और अर्थ की दृष्टिसे अपरिमित स्वाध्यायको धारण करनेवाले श्री हिमवदाचार्य को शिर (मस्तक) से वन्दन करता हूं । ये श्री स्कन्दिलाचार्य के शिष्य थे ॥ ३८ ॥

मूलम्

१ २ ५ ४ ३
कालियसुयअणुओगस्स, धारए धारए य पुव्वाणं ।
६ ८ ७
हिमवंतखमासमणे, वंदे णागज्जुणायरिए ॥ ३९ ॥

छाया--

कालिकश्रुतानुयोगस्य, धारकान् धारकांश्च पूर्वाणाम् ।
हिमवत्क्षमाश्रमणान्, वन्दे नागार्जुनाचार्यान् ॥ ३९ ॥

अर्थः--

मैं कालिकश्रुतके अनुयोग (व्याख्या) के धारण करनेवाले और उत्पात आदि पूर्वों के धारक श्री हिमवत् नामके क्षमाश्रमण और श्रीनागार्जुनाचार्य को वन्दन करता हूं, यहां श्री हिमवदाचार्य का वन्दन दुहराया गया है, श्री हिमवदाचार्यके शिष्यश्री नागार्जुनाचार्य हुए ॥ ३९ ॥

मूलम्

मिउमद्दवसंपन्ने, अणुपुव्वि वायगत्तणं पत्ते ।
ओहसुयसमायारे, नागज्जुणवायए वंदे ॥ ४० ॥

छाया—

मृदुमार्दवसम्पन्नान्, आनुपूर्व्या वाचकत्वं प्राप्तान् ।
ओघश्रुतसमाचारान् नागार्जुनवाचकान् वन्दे ॥ ४० ॥

अर्थः—

मैं अतीव कोमलता गुणसे सम्पन्न, क्रमसे वाचकपद प्राप्त और ओघश्रुत (उत्सर्ग-विधिमार्ग) के सम्यक् प्रकारसे आचरण करनेवाले श्रीनागार्जुनाचार्य को वन्दन करता हूं ॥ ४० ॥

मूलम्—

गोविंदाणं पि नमो, अणुओगे विउलधारणिंदाणं ।
णिच्चं खंतिदयाणं परूवणे दुल्लभिंदाणं ॥ ४१ ॥

छाया—

गोविन्देभ्योऽपि नमः, अनुयोगे विपुलधारणेन्द्रेभ्यः ।
नित्यं क्षान्तिदयानां, प्ररूपणे इन्द्रदुर्लभेभ्यः ॥ ४१ ॥

अर्थः—

अनुयोगकी अधिक धारण रखनेवालों में इन्द्रके समान, क्षमा और दया गुणों की प्ररूपणामें इन्द्रों के भी सदा दुर्लभ श्रीगोविन्द नामक आचार्य को भी मेरा नमस्कार हो ॥ ४१ ॥

मूलम्

तत्तो य भूयदिन्नं निच्चं तवसंजमे अनिव्विण्णं ।
पंडियजणसम्माणं, वंदामो संजमविहिण्णुं ॥ ४२ ॥

छाया—

ततश्च भूतदिन्नं, नित्यं तपःसंयमेऽनिर्विण्णम् ।
पण्डितजनसंमान्यं, वन्दामहे संयमविधिज्ञम् ॥ ४२ ॥

अर्थः—

उसके बाद हम तपस्या और संयममें सदा ग्लानिरहित तथा पण्डितजनों के खूब माननीय और संयमविधिके जाननेवाले श्रीभूतदिन्ननामक आचार्य को वन्दन करते हैं ॥ ४२ ॥

मूलम्

२
वरकणगतवियचंपग–विमउलवरकमलगब्भसरिवन्ने ।
३ ४ ५
भविजणहिययदइए, दयागुणविसारए धीरे ॥ ४३ ॥
६ ७
अड्ढभरहप्पहाणे, बहुविहसज्झायसुमुणियपहाणे ।
८ ९
अणुओगियवरवसभे, नाइलकुलवंसनंदिकरे ॥ ४४ ॥
१० १४ १
भूयहियप्पगब्भे, वंदेहं भूयदिन्नमायरिए ।
११ १३ १२
भवभयवुच्छेयकरे, सीसे नागाज्जुणरिसीणं ॥४५॥ (विसेसयं)

छाया—

वरतप्तकनकचम्पक–विमुकुलवरकमलगर्भसदृग्वर्णान् ।
भविकजनहृदयदयितान्, दयागुणविशारदान् धीरान् ॥ ४३ ॥
अर्द्धभरतप्रधानान् सुविज्ञातबहुविधस्वाध्यायप्रधानान् ।
अनुयोजितवरवृषभान्, 'नागिल' कुलवंशनन्दिकरान् ॥ ४४ ॥
भूतहितप्रगल्भान्, वन्देऽहं भूतदिन्नाचार्यान् ।
भवभयव्युच्छेदकरान्, शिष्यान् नागार्जुनर्षीणाम् ॥४५॥ (विशेषकम्)

अर्थः—

तप्त (तपाया हुआ) कनक (सुवर्ण) तथा चम्पापुष्प, विकसित उत्तमकमलगर्भ (अन्दरके भाग) के समान वर्णवाले, भव्यजनों के हृदयके प्रिय तथा दयारूप गुण के स्वयं धारण करने में औरों को भी धारण कराने में विशारद (निपुण) तथा धीर, भरतक्षेत्र के दक्षिणार्द्ध भागमें प्रधान (श्रेष्ठ), तथा अनेक प्रकारके आचाराङ्ग आदि शास्त्रके स्वाध्याय को अच्छी तरहसे जाननेवाले, तथा अनेक पुरुष श्रेष्ठ साधुओं को स्वाध्याय में लगानेवाले, नागिलकुल–नामक वंशको समृद्ध करनेवाले, प्राणियों के कल्याण करनेमें निर्भीक, और भव (जन्ममरणरूप संसार) के भयको मिटानेवाले नागार्जुनऋषि के शिष्य श्री भूतदिन्नाचार्यको वन्दन करता हूं ॥ ४३–४५ ॥

मूलम्

१ २ ६
सुमुणियनिच्चानिच्चं, सुमुणियसुत्तत्थधारयं वंदे ।
३ ४ ५
सब्भावुब्भावणया, तत्थं लोहिच्चणामाणं ॥ ४६ ॥

छाया—

सुज्ञातनित्यानित्यं, सुज्ञातसूत्रार्थधारकं वन्दे ।
सद्भावोद्भावनया, तथ्यं लौहित्यनामानम् ॥ ४६ ॥

अर्थः—

मैं, नित्य और अनित्य पदार्थों को अच्छी तरह से जाननेवाले, सूत्रार्थों को अच्छी तरहसे धारण करनेवाले, तथा सद्भाव (यथावस्थित विद्यमान पदार्थ) की उद्भावना (प्रकाशना) से तथ्य–(सत्य–पदार्थ तत्त्वों को यथार्थ प्रतिपादन करने के कारण सत्यार्थभाषी) श्रीलौहित्य नामक आचार्य को वन्दन करता हूं ॥ ४६ ॥

मूलम्—

१ २
अत्थमहत्थखाणिं, सुसमणवक्खाणकहणनिव्वाणिं ।
३ ४ ६ ७ ५
पयईए महुरवाणिं, पयओ पणमामि दूसगणिं ॥ ४७ ॥

छाया—

अर्थमहार्थखनिं, सुश्रवणव्याख्यानकथननिर्वाणिनम् ।
प्रकृत्या मधुरवाणीकं, प्रयतः प्रणमामि दूष्यगणिनम् ॥ ४७ ॥

अर्थः—

मैं अर्थ (साधारण अर्थ) महार्थ (विशिष्ट अर्थ) खनि (आकर-खान) सुश्रवण (अच्छा श्रवणवाला – कर्णप्रिय) व्याख्यान और पृष्ट विषयों के कथन (उत्तर देने) में शान्तचित्त वाले और स्वभावसे मधुरभाषी श्री दूष्यनामकगणी (आचार्य) को यतनापूर्वक वन्दन करता हूं ॥४७॥

मूलम्

१
तवनियमसच्चसंजम-विणयज्जवखंतिमद्दवरयाणं ।
२ ३
सीलगुणगद्दियाणं, अणुओगजुगप्पहाणाणं ॥ ४८ ॥
६ ४ ११ ७
सुकुमालकोमलतले, तेसिं पणमामि लक्खणपसत्थे ।
१० ५ ८ ९
पाए पावयणीणं, पडिच्छयसयएहिं पणिवइए ॥४९॥

छाया—

तपोनियमसत्यसंयम,-विनयार्जवक्षान्तिमार्दवरतानाम् ।
शीलगुणगर्वितानाम्, अनुयोगयुगप्रधानानाम् ॥ ४८ ॥
सुकुमारकोमलतलान्, तेषां प्रणमामि लक्षणप्रशस्तान् ।
पादान् प्रवचनिनां, प्रतीच्छकशतकैः प्रणिपतितान् ॥ ४९ ॥

अर्थः—

मैं तपस्या, नियम, सत्य, संयम, विनय, सरलता, क्षमा और कोमलता में रत (संलग्न–लगे हुए), शील (सदाचार) रूप गुण से गर्वित–सम्पन्न, अनुयोग (व्याख्यान) में युगप्रधान (युगप्रधान–पदप्राप्त) प्रशस्तप्रवचनसम्पन्न, (श्री-दूष्यगणी) के परम कोमलतलवाले, लक्षणों से प्रशस्त (सुलक्षण) और सैकडों प्रतीच्छकों (सूत्र और सूत्रार्थों के ग्रहण करनेवाले शिष्यों) से प्रणिपतित (अभिवन्दित) चरणों को नमस्कार करता हूं ॥ ४८–४९ ॥

मूलम्—

२ १ ५ ३ ४
जे अन्ने भगवंते कालियसुयअणुओगिए धीरे ।
६ ८ ७ ९ १० ११
ते पणमिऊण सिरसा, नाणस्स परूवणं वोच्छं ॥ ५० ॥

छाया—

येऽन्ये भगवन्तः कालिकश्रुतानुयोगिनो धीराः ।
तान् प्रणम्य शिरसा, ज्ञानस्य प्ररूपणां वक्ष्ये ॥ ५० ॥

अर्थः—

मैं पूर्वोक्त आचार्यों से अतिरिक्त जो आचार्य कालिकश्रुत के व्याख्यान करनेवाले, धीर और भगवान् (ऐश्वर्य सम्पन्न) हैं, उन्हें मस्तक से प्रणाम कर ज्ञान की प्ररूपणा करूंगा, अर्थात् ज्ञानविषयक रचना करूंगा। इस लेख से यह बात स्पष्ट होती है कि नंदीसूत्र देवर्द्धिगणीने नहीं रचा है, उन्होंने किसी अन्य ज्ञानविषयक ग्रंथ की रचना की है। इसका खुलासा इसी नंदीसूत्र की टीका में किया गया है। जिज्ञासु वहां से देख लें ॥ ५० ॥

॥ इति स्थविरावली सम्पूर्णा ॥



श्री-नन्दीसूत्रम्

॥ श्रीवीतरागाय नमः ॥



जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-पूज्यश्री-घासीलालजी-
महाराजविरचित-ज्ञानचन्द्रिका-टीका-समलङ्कृम्-

श्री-नन्दीसूत्रम् ।

॥ मङ्गलाचरणम् ॥

(मालिनी-छन्दः)

शिवसरणिविधानं जीवरक्षैकतानं,
सुरनरकृतगानं केवलोद्भासमानम् ।
प्रशमरसनिदानं ज्ञानदानप्रधानं,
परमसुखनिधानं नौम्यहं वर्धमानम् ॥ १ ॥
करणचरणधारं प्राप्तपूर्वाब्धिपारं,
शुभतरगुणधारं प्राप्तसंसारपारम् ।
कलितसकललब्धिं लब्धविज्ञानसिद्धिं,
गणधरमभिरामं गौतमं तं नमामि ॥ २ ॥

(अनुष्टुब्-वृत्तम्)

श्रीसुधर्मा महावीर-लब्धरत्नोज्ज्वलो गणी ।
निबबन्ध तदुक्तार्थं, नमस्तस्मै दयालवे ॥ ३ ॥

(पृथ्वी-छन्दः)

सगुप्तिसमितिं समां, विरतिमादधानं सदा,
क्षमावदखिलक्षमं, कलितमञ्जुचारित्रकम् ।
सदोर-मुखवस्त्रिका-विलसिताननेन्दुं शुभं,
प्रणौमि धिषणासवं, गुरुममुं भवाब्धौ प्लवम् ॥ ४ ॥

(अनुष्टुब्-वृत्तम्)

जैनीं सरस्वतीं नत्वा, नन्दीसूत्रार्थदर्शिका ।
घासीलालेन मुनिना, क्रियते ज्ञानचन्द्रिका ॥ ५ ॥

हिन्दीभाषानुवाद ।

मङ्गलाचरणका अर्थ—

(शिवसरणिविधानम्) मुक्तिमार्गके प्रणेता (जीवरक्षैकतानम्) जीवों के अद्वितीय रक्षक (सुरनरकृतगानम्) देव एवं मनुष्योंद्वारा स्तुत (केवलोद्भासमानम्) केवलज्ञानसे सदा प्रकाशित, (प्रशमरस निदानम्) प्रशमरसके स्रोत (ज्ञानदानप्रधानम्) अपनी दिव्य देशना-द्वारा मनुष्यों के लिये सम्यक्ज्ञानके दाता, तथा-(परमसुखनिधानम्) अव्याबाध सुखके भण्डार ऐसे (वर्धमानं नमामि) वर्धमान प्रभुको मैं मस्तक झुका कर नमस्कार करता हूं ॥

भावार्थ—टीकाकार ने इस श्लोकद्वारा मोक्षमार्गके प्रणेता, जीवोंको अभयके दाता, देव एवं मनुष्योंद्वारा सदा स्तूयमान, केवलज्ञानरूप प्रखर प्रभासम्पन्न, प्रशम रसके अभिनेता संसारी प्राणियों के लिये आत्म-ज्ञानरूप दिव्यनिधिके दाता, एवं परमसुखके एक निधान, ऐसे वर्धमान स्वामीको नमस्कार किया है । इसमें प्रायः सभी विशेषण अन्ययोग–

ગુજરાતી ભાષાનુવાદ.

મંગળાચરણનો અર્થ–

(शिवसरणिविधानम्) મુક્તિમાર્ગના પ્રણેતા (जीवरक्षैकतानम्) જીવોના અજોડ રક્ષક (सुरनरकृतगानम्) દેવો અને મનુષ્યોદ્વારા જેની સ્તુતિ થાય છે એવાં (केवलोद्भासमानम्) કેવળજ્ઞાનથી સદા પ્રકાશિત, (प्रशम-रसनिदानम्) શાન્તરસનુ ઝરણુ, (ज्ञानदानप्रधानम्) પોતાની દિવ્ય દેશના દ્વારા મનુષ્યોને માટે સમ્યક્જ્ઞાનના દાતા, તથા (परमसुखनिधानम्) અપાર સુખના ભંડાર એવા (वर्धमानं नमामि) વર્ધમાન પ્રભુને હું માથું નમાવીને નમન કરું છું.

ભાવાર્થ—ટીકાકારે આ શ્લોક-દ્વારા મોક્ષમાર્ગના પ્રણેતા, જીવોને અભય દેનારા, દેવો તથા મનુષ્યો દ્વારા સદા જેની સ્તુતિ થાય છે એવાં, કેવળ-જ્ઞાનરૂપ, મહાન, પ્રભાયુક્ત, શાન્ત રસના અભિનેતા, સંસારમાં રહેતા પ્રાણી-ઓને માટે આત્મજ્ઞાનરૂપી દૈવી ભંડારના દાતા અને પરમ સુખનું એક જ નિધાન એવા વર્ધમાન સ્વામીને પ્રણામ કર્યા છે. તેમાં મોટે ભાગે બધાં વિશે-

व्यवच्छेदपरक हैं। "शिवसरणिविधानं" इस पदसे जो ऐसा मानते हैं कि जीवात्मा परमात्मा नहीं बन सकता है, ऐसे मीमांसक आदि मतका व्युदास किया है। आत्मा ही जीवन्मुक्त परमात्मा बन परमात्मा बननेका भव्य जीवोंको उपदेश दे कर स्वयं सिद्धिगतिका नेता बन जाता है। "जीवरक्षैकतानं" इस पद द्वारा जो ऐसा मानते हैं कि 'मनुष्यके उपयोगके लिये ही मनुष्यसे अतिरिक्त शेष प्राणियों का निर्माण हुवा है अतः स्वेच्छानुसार मनुष्य इनका अपने लिये उपयोग कर सकता है' ऐसी मान्यताको दूर करते हुए यह बतलाया है कि प्रभुका आदेश संसारके समस्त एकेन्द्रियादिक जीवोंके रक्षण करने का है, उनकी दृष्टिमें ऐसा अनुचित पक्षपात नहीं है। "सुरनरकृतगानं" इस पदसे यह सूचित होता है कि-जो प्राणिमात्रके रक्षक होते हैं वे ही देव और मनुष्योंके स्तुतिपात्र होते हैं, अन्य नहीं। "केवलोद्भासमानम्" इस पद द्वारा वैशेषिक आदि मतकी मान्यता निरस्त की है। उनकी ऐसी कल्पना है कि-'ज्ञान आत्माका स्वभाव नहीं, तथा बुद्ध्यादिक नौ गुणोंके नाशसे ही मुक्ति होती है।' इस पर ऐसा यहां कहा गया है कि ज्ञान आत्माका स्वभाव है और यही ज्ञान ज्ञानावर-

---

षणो अन्ययोगव्यवच्छेद वाणा छे "शिवसरणिविधानं" आ पदथी जे एवुं माने छे के जीवात्मा परमात्मा बनी शकतो नथी, एवां मीमांसक वगेरे मतनुं खंडन कर्युं छे. आत्मा ज जीवन्मुक्त परमात्मा बनीने भव्य जीवोने परमात्मा बनवानो उपदेश दईने पोते सिद्धगतिनो नेता बनी जाय छे. "जीवरक्षैकतानं" आ पद द्वारा जे एवुं माने छे के "मनुष्यना उपयोगने माटे ज मनुष्य सिवायना बाकीना प्राणीओनुं निर्माण थयुं छे तेथी पोतानी इच्छा प्रमाणे मनुष्य तेमने पोताने माटे उपयोग करी शके छे" एवी मान्यताने दूर करीने ए बतावायुं छे के "प्रभुनो आदेश संसारना सर्व एकेन्द्रिय वगेरे जीवोनुं रक्षण करवानो छे. तेमनी दृष्टिए एवो अयोग्य पक्षपात नथी." "सुरनरकृतगानं" आ पदथी ए सूचित थाय छे के जे प्राणीमात्रना रक्षक होय छे तेओ ज देवो तथा मनुष्योनी स्तुतिने पात्र होय छे बीजां नहीं. "केवलोद्भासमानम्" आ पद द्वारा वैशेषिक वगेरे मतनी मान्यतानुं खंडन कर्युं छे. तेमनी एवी कल्पना छे के "ज्ञान आत्मानो स्वभाव नथी, तथा बुद्धि वगेरे नव गुणोना नाशथी ज मोक्ष होय छे" ते बाबतमां अहीं एवुं कहेवायुं छे के ज्ञान आत्मानो स्वभाव छे अने एज ज्ञान ज्ञानावरणीय

णीय कर्मके अभावमें सर्वथा निर्मल हो कर केवलज्ञानरूप परिणत हो जाता है। नैयायिकों ने २१ इक्कीस प्रकारके दुःखोंके साथ सुखका भी मुक्तिमें अभाव माना है, अतः इस मान्यताको हटानेके लिये "परमसुखनिधानम्" यह विशेषण दिया गया है ॥ १ ॥

(करणचरणधारम्) करणसत्तरी एवं चरणसत्तरी को धारण करनेवाले (सर्वपूर्वाब्धिपारम्) ग्यारह अंग एवं चौदह पूर्वरूप समुद्रके पारगामी (शुभतरगुणधारम्) शुभतर सम्यग्दर्शनादिक गुणोंके धारक (प्राप्तसंसारपारम्) संसारके पारको पानेवाले (कलितसकललब्धिम्) सकल लब्धियोंके धारक (लब्धविज्ञानसिद्धिम्) मनःपर्ययज्ञानके धारी ऐसे (अभिरामम्) सर्वोत्तम (तं गौतमं गणधरं नमामि) जगत् प्रसिद्ध गौतम गणधरको मैं नमन करता हूं।

भावार्थ—इस श्लोकद्वारा वर्धमान भगवान्के प्रसिद्ध गौतम गणधर को नमस्कार किया है। गौतम गणधर ने करणसत्तरी एवं चरणसत्तरी के सेवनसे अपने जीवनको बहुत अधिक श्रेष्ठतम बना लिया था। चौदहपूर्वके वे पूर्ण पाठी थे। सम्यग्दर्शनादिक गुणोंकी पूर्ण जागृति

કર્મના અભાવમાં સદા નિર્મળ થઈને કેવળજ્ઞાનના રૂપમાં પરિણમે છે. નૈયાયિકોએ એકવીસ પ્રકારનાં દુઃખોની સાથે સુખનો પણ મુક્તિમાં અભાવ માન્યો છે, તેથી તે માન્યતાનું ખંડન કરવા માટે "परमसुखनिधानम्" એ વિશેષણ મૂકાયું છે. ॥ ૧ ॥

(करणचरणधारम्) કરણસત્તરી અને ચરણસત્તરીને ધારણ કરનારા (सर्वपूर्वाब्धिपारम्) અગીયાર અંગ તથા ચૌદ પૂર્વરૂપ સમુદ્રને પાર જનારા (शुभतरगुणधारम्) શુભતર સમ્યગ્દર્શન વગેરે ગુણો ધારણ કરનારા (प्राप्तसंसारपारम्) સંસારનો પાર પામનારા (कलितसकललब्धिम्) બધી લબ્ધિઓ ધારણ કરનારા (लब्धविज्ञानसिद्धम्) મનઃપર્યય જ્ઞાન ધરાવનારા એવા (अभिरामम्) સર્વોત્તમ (तं गौतमं गणधरं नमामि) જગત વિખ્યાત ગૌતમ ગણધરને હું નમન કરૂં છું.

ભાવાર્થઃ-આ શ્લોક દ્વારા વર્ધમાન ભગવાનના પ્રસિદ્ધ ગૌતમ ગણધરને નમસ્કાર કરાયાં છે. ગૌતમ ગણધરે કરણસત્તરી અને ચરણસત્તરીના સેવનથી પોતાનાં જીવનને અત્યંત શ્રેષ્ઠ બનાવ્યું હતું. ચૌદપૂર્વના તેઓ પૂર્ણ પાઠી હતાં. સમ્યગ્દર્શન વગેરે ગુણોની પૂર્ણ જાગૃતિથી તેમણે એ જ ભવમાં મુક્તિ પ્રાપ્ત

से उन्होंने उसी भवसे मुक्ति प्राप्त कर ली थी। सकल लब्धियोंकी एवं मनःपर्यय ज्ञानकी सिद्धि उन्हें मुक्ति जानेसे पहिले हो चुकी थी ॥२॥

(महावीरलब्धरत्नोज्ज्वलो गणी) श्रमण भगवान् महावीरसे प्राप्त रत्नत्रयसे प्रकाशमान गणधर (श्रीसुधर्मा) श्रीसुधर्मास्वामी ने (तदुक्तार्थं) भगवानके द्वारा कथित अर्थको सकल जगज्जीवके उपकार के लिये (निबबन्ध) सूत्ररूप से गूंथा है। (नमस्तस्मै दयालवे) ऐसे परम उपकारी दयालु श्री सुधर्मास्वामीको मैं नमस्कार करता हूं ॥३॥

(समां सगुप्तिसमितिम्) सम्पूर्णरूपसे पांच समिति एवं तीन गुप्तियोंका पालन करनेवाले (सदा विरतिम् आदधानम्) सर्वदा सर्वविरति को धारण करनेवाले (क्षमावद् अखिलक्षमम्) पृथ्वीकी तरह सब प्रकारके परीषहोंको सहनेवाले (कलितमञ्जुचारित्रकम्) निरतिचार चारित्रके पालन करनेवाले (अपूर्वबोधप्रदम्) भव्य जीवोंको अपूर्व आत्मबोधको देनेवाले ऐसे (गुरुम्) गुरुदेवको कि जिनका (सदोरमुखवस्त्रिकाविलसिताननेन्दुम्) मुखचन्द्रमंडल सदा सदोरकमुखवस्त्रिकासे सुशोभित होता रहता है, तथा (भववारिधिप्लवम्) संसाररूप समुद्रमें

કરી લીધી હતી. સર્વે લબ્ધિયો તથા મનઃપર્યય જ્ઞાનની સિદ્ધિ તેમને મોક્ષ પામ્યાં પહેલાં થઈ ચુકી હતી. ॥ २ ॥

(महावीरलब्धरत्नोज्ज्वलो गणी) શ્રમણ ભગવાન મહાવીર દ્વારા પ્રાપ્ત રત્નત્રયથી પ્રકાશમાન ગણધર (श्रीसुधर्मा) શ્રી સુધર્મા સ્વામીએ (तदुक्तार्थं) ભગવાનદ્વારા કથિત અર્થને જગતના સકળ જીવોના ઉપકારાર્થે (निबबन्ध) સૂત્ર રૂપથી ગૂથેલ છે. (नमस्तस्मै दयालवे) એવાં પરમ ઉપકારી દયાળુ શ્રી સુધર્મા-સ્વામીને હું નમન કરૂં છું ॥ ૩ ॥

(समां सगुप्तिसमितिम्) પૂર્ણરૂપે પાંચ સમિતિ તથા ત્રણ ગુપ્તિને પાળનારા (सदा विरतिम् आदधानम्) સદા સર્વવિરતિને ધારણ કરનારા (क्षमावत् अखिलक्षमम्) પૃથ્વીની જેમ બધા પ્રકારના પરીષહો સહન કરનારા (कलितमञ्जुचारित्रकम्) નિરતિચાર ચારિત્રનાં પાળનારા (अपूर्वबोधप्रदम्) ભવ્ય જીવોને અપૂર્વ આત્મબોધ દેનારા એવાં (गुरुम्) ગુરૂદેવને કે જેનુ (सदोरमुखवस्त्रिकाविलसिताननेन्दुम्) મુખચન્દ્રમંડળ હંમેશા દોરા સાથેની મુહપત્તીથી સુશોભિત બની રહે છે, તથા (भववारिधिप्लवम्) જે સંસારરૂપી

इह खलु भगवत्तीर्थङ्करोपदिष्टमर्थरूपमागममुपादाय गणधराः सूत्ररूपेण जग्रन्थुः। उक्तञ्च—"अत्थं भासइ अरिहा, सुत्तं गंथंति गणहरा णिउणा" इत्यादि। तत्र पूर्वापरविरोधरहितानि स्वतःप्रमाणभूतानि द्वात्रिंशत् सूत्राणि संप्रति समुपलभ्यन्ते।

डूबते हुए जीवोंके लिये नौका जैसे हैं उनको मैं (प्रणौमि) मस्तक झुका कर नमस्कार करता हूं ॥ ४ ॥

मैं मुनि घासीलाल (जैनीं सरस्वतीं नत्वा) जिनेन्द्रदेवके मुखचन्द्रसे निर्गत दिव्यदेशनाको नमस्कार करके (नन्दीसूत्रार्थदर्शिका ज्ञानचन्द्रिका क्रियते) नन्दीसूत्रके अर्थको स्पष्ट करनेवाली यह 'ज्ञानचन्द्रिका' नामकी टीका बनाता हूं ॥ ५ ॥

'इह खलु' इत्यादि—इस कालमें भगवान् तीर्थङ्करोंद्वारा उपदिष्ट अर्थरूप आगमको लेकर गणधरोंने उसका सूत्ररूपसे ग्रथन किया है। अन्यत्र भी यही बात कही गई है—"अत्थं भासइ अरिहा, सुत्तं गंथंति गणहरा निउणा" इत्यादि।

अर्हन्त प्रभु अर्थरूपसे सर्व प्रथम आगमकी रचना करते हैं, पश्चात् गणधर उसकी प्ररूपणा सूत्ररूपसे करते हैं। वर्तमान समयमें पूर्वापर विरोधरहित होनेके कारण स्वतःप्रमाणभूत ३२ बत्तीस सूत्र उपलब्ध हैं, वे इस प्रकार हैं—

સાગરમાં ડૂબતાં જીવોને માટે નૌકાસમાન છે તેમને હું (प्रणौमि) માથું નમાવીને પ્રણામ કરૂં છું ॥ ४ ॥

હું મુનિ ઘાસીલાલ (जैनीं सरस्वतीं नत्वा) જિનેન્દ્ર દેવના મુખચન્દ્ર માંથી નીકળેલી દિવ્ય દેશનાને નમન કરીને (नन्दीसूत्रार्थदर्शिका ज्ञानचन्द्रिका क्रिण्ते) નન્દીસૂત્રના અર્થને સ્પષ્ટ કરનારી આ **જ્ઞાનચન્દ્રિકા** નામની ટીકા બનાવું છું ॥ ૫ ॥ 'इह खलु' ઈત્યાદિ.

આ કાળમાં તીર્થંકર ભગવાનો દ્વારા ઉપદેશાયેલ અર્થરૂપ આગમોને લઈને ગણધરોએ તેની સૂત્રરૂપે ગુંથણી કરી છે. અન્યત્ર પણ એ જ વાત કહેવાઈ છે—"अत्थं भासइ अरिहा, सुत्तं गंथंति गणहरा निउणा" ઈત્યાદિ

અર્હંત ભગવાન સર્વ પ્રથમ અર્થરૂપે આગમની રચના કરે છે. પછી ગણધરો સૂત્રરૂપે તેની પ્રરૂપણા કરે છે. વર્તમાન કાળમાં પૂર્વાપરવિરોધ વિનાના હોવાને કારણે સ્વતઃપ્રમાણભૂત (૩૨) બત્રીસ સૂત્રો ઉપલબ્ધ (પ્રાપ્ત) છે. તે નીચે પ્રમાણે છેઃ—

तत्राचाराङ्गादीन्येकादशाङ्गसूत्राणि (११), औपपातिकादीनि द्वादशोपाङ्गसूत्राणि (१२), नन्द्यादीनि चत्वारि मूलसूत्राणि (४) बृहत्कल्पादीनि चत्वारि छेदसूत्राणि (४) आवश्यकसूत्रमेकं (१) चेति [३२]।

तत्र " नन्दीसूत्रनाम्ना प्रसिद्धस्य मूलसूत्रस्य रचयिता देववाचकाचार्यः" इति केचिद् वदन्ति। केचित्तु "स तस्य सङ्कलयिता, न तु रचयिता" इति। एतत् पक्षद्वयमसंगतम्, गणधरसमये देववाचकाचार्यो नासीदिति सर्वसम्मतम्, गणधरकृते समवायाङ्गे (८८ स.) भगवतीसूत्रे (८ श., २ उ.) राजप्रश्नीयसूत्रे च "जहा नंदीए" इति पाठस्योपलभ्यमानत्वात् नन्दीसूत्रं गणधरसमये विद्यमानमासीदि-

आचाराङ्ग आदि ११ ग्यारह अङ्गसूत्र, औपपातिक आदि १२ बारह उपाङ्गसूत्र, नन्दी आदिक ४ चार मूलसूत्र, बृहत्कल्पादिक ४ चार छेदसूत्र, तथा १ एक आवश्यकसूत्र (३२)।

"मूलसूत्ररूपसे प्रसिद्ध इस नंदीसूत्रके रचयिता देववाचक आचार्य हैं" ऐसा कितनेक कहते हैं। कितनेक ऐसा कहते हैं कि "देववाचक आचार्य इस सूत्रके रचयिता नहीं हैं, किन्तु इसके संकलनकर्त्ता हैं" परन्तु यह दोनों धारणाएँ ठीक नहीं हैं, कारण कि गणधरोंके समयमें देववाचक आचार्य नहीं थे, यह तो सर्वविदित ही है। तथा यह नंदीसूत्र तो गणधरों के समयमें भी था, क्यों कि गणधरकृत समवायाङ्गसूत्रमें (८८ स.) भगवतीसूत्रमें (८श. २ उ.) तथा राजप्रश्नीयसूत्रमें "जहा नंदीए" ऐसा पाठ देखनेमें आता है। इस पाठसे गणधरोंके समयमें नन्दीसूत्रका अस्तित्व स्पष्टरूपसे सिद्ध होता है।

આચારાંગ વગેરે અગિયાર અંગસૂત્ર ૧૧, ઔપપાતિક વગેરે બાર ઉપાંગસૂત્ર૧૨, નંદી આદિ ચાર મૂલસૂત્ર ૪, બૃહત્કલ્પાદિક ચાર છેદ સૂત્ર ૪, તથા એક આવશ્યક સૂત્ર. (૩૨)

"મૂળસૂત્રરૂપથી પ્રસિદ્ધ આ નન્દીસૂત્રના કર્તા દેવવાચક આચાર્ય છે" એવું કેટલાક કહે છે. કેટલાક એવું કહે છે કે "દેવવાચક આચાર્ય આ સૂત્રના રચનાર નથી પણ તેનું સંકલન કરનાર છે." પણ આ બન્ને માન્યતાઓ બરાબર નથી, કારણ કે ગણધરેના સમયમાં દેવવાચક આચાર્ય હતા નહિ, તે તો સર્વવિદિત જ છે. વળી નંદીસૂત્ર તો ગણધરોના સમયમાં પણ હતું, કારણ કે ગણધરકૃત સમવાયાંગ સૂત્રમાં (८८ स.) ભગવતીસૂત્રમાં (८श २ उ) અને રાજપ્રશ્નીયસૂત્રમાં "जहा नंदीए" એવો પાઠ જોવામાં આવે છે, આ પાઠથી ગણધરોના સમયમાં નંદીસૂત્રનું અસ્તિત્વ સ્પષ્ટરૂપે સાબિત થાય છે. જો પૂર્વોક્ત

त्यवगम्यते। उक्तपक्षद्वयाङ्गीकारे तु गणधरसमये देववाचकस्यासद्भावेन तत्संकलितस्यापि नन्दीसूत्रस्याभावाद् "जहा नंदीए" इति गणधरवाक्यं नोपपद्यते। तन्मते नन्दीसूत्रसंकलनं कर्तुमुद्यतस्य देववाचकस्य तत्प्रारम्भसमये-"नाणस्स परूवणं वोच्छं" इति वाक्येन 'नन्दीसूत्रं वक्ष्ये' इत्यर्थो नोपलब्धुं शक्यते। नन्दीसूत्रातिरिक्तेन केनचिद् ग्रन्थान्तरेणापि ज्ञानप्ररूपणा भवितुमर्हति।

अथ 'नन्दीसूत्र'-मित्यस्य कः शब्दार्थः ?, उच्यते-नन्दनं-नन्दी='टुनदि समृद्धौ" इत्यस्माद्धातोः "इक्कृष्यादिभ्यः" इति वार्तिकेण भावे इक्प्रत्यये, यद्वा

यदि पूर्वोक्त बात ही स्वीकार की जावे तो यह समझने जैसी बात है कि गणधरोंके समयमें देववाचक आचार्यके न होनेसे फिर उनके द्वारा संकलित इस नंदीसूत्रका सद्भाव भी कैसे उस समय माना जायगा? अतः इसके सद्भावके अभावमें "जहा नंदीए" यह गणधरवचन संगत नहीं हो सकता है। तथा 'नन्दीसूत्रके संकलनकर्त्ता देववाचक आचार्य है' इस मान्यतामें "नाणस्स परूवणं वोच्छं" इस वाक्यसे "नन्दीसूत्रं वक्ष्ये" यह अर्थ उपलब्ध नहीं हो सकता है, कारण कि नंदीसूत्रातिरिक्त अन्य और भी किसी दूसरे ग्रन्थसे ज्ञानकी प्ररूपणा हो सकती है।

अब "नन्दीसूत्र" इस पदका क्या अर्थ है यह बात प्रदर्शित की जाती है-"टुनदि" धातु समृद्धि अर्थमें है। इसमें 'टु' और 'इ' ये दोनों इत्संज्ञक हैं। 'नद्'से "इक्कृष्यादिभ्यः" इस सूत्रद्वारा

વાત જ સ્વીકારવામાં આવે તો સમજવા જેવી વાત એ છે કે ગણધરોના સમયમાં દેવવાચક આચાર્ય ન થયાં હોય તો પછી તેમના દ્વારા સંકલિત આ નંદીસૂત્રનો સદ્ભાવ (અસ્તિત્વ) પણ કેવી રીતે એ સમયનો માની શકાય? તેથી તેના સદ્ભાવના અભાવમાં "जहा नंदीए" આ ગણધરનું વચન સુસંગત હોઈ શકે નહીં. તથા 'નંદીસૂત્રનુ સંકલન કરનાર દેવવાચક આચાર્ય છે' એ માન્યતામાં "नाणस्स परूवणं वोच्छं" આ વાકયથી નંદીसूत्रं वक्ष्ये" એવો અર્થ પ્રાપ્ત થઈ શકતો નથી. કારણ કે નંદીસૂત્ર સિવાયના બીજાં પણ કોઇ ગ્રન્થથી જ્ઞાનની પ્રરૂપણા થઇ શકે છે.

હવે "નંદીસૂત્ર" એ શબ્દનો શો અર્થ છે તે વાત દર્શાવાય છે— "टुनदि" ધાતુ સમૃદ્ધિના અર્થમાં છે. તેમાં "टु" અને "इ" એ બન્ને ઈત્સંજ્ઞક છે. "नद्"થી "इक् कृष्यादिभ्यः" એ સૂત્ર દ્વારા "इक्" પ્રત્યય, તથા "इदितो

"सर्वधातुभ्य इन्" इत्यौणादिकसूत्रेण भावे इन्-प्रत्यये 'इदितोनुम् धातोः' इति सूत्रेण नुमागमे नन्दिरिति। ततः "कृदिकारादक्तिनः" इति ङीष्प्रत्ययेऽनुबन्धलोपे च कृते "यस्येति च" इतीकारलोपे च 'नन्दी' इतिरूपं भवति। 'नन्दी-हर्षः, प्रमोदः' इति पर्यायाः। पञ्चविधज्ञानं स्वर्गापवर्गसुखजनकमिति नन्दीजनकत्वान्नन्दीत्युच्यते। पञ्चविधज्ञानसूचकत्वादिदं सूत्रं नन्दीसूत्रमुच्यते। तस्येदं श्रीसुधर्मजम्बूसंवादरूपमादिसूत्रम्—'से किं तं नाणं' इत्यादि।

'इक्" प्रत्यय, तथा "इदितो नुम् धातोः" इस सूत्रद्वारा 'नुम्' करने पर "नन्दि" ऐसा शब्द निष्पन्न हो जाता है। अथवा "सर्वधातुभ्यः इन्" इस औणादिक सूत्रसे भावमें 'इन्'-प्रत्यय और 'इदितो नुम् धातोः' इस सूत्रसे 'नुम्' होने पर भी "नन्दि" रूप बन जाता है। पश्चात् "कृदिकारादक्तिनः" इस सूत्र द्वारा "ङीष्' तथा "यस्येति च" इस सूत्रद्वारा "इ" का लोप करने पर "नन्दी" ऐसा रूप हो जाता है। "नन्दनं-नन्दी=हर्षः" नन्दी-शब्द का अर्थ हर्ष, प्रमोद है। जीवको प्रमोदके जनक मत्यादिक पांच ज्ञान हैं, क्यों कि स्वर्ग और मोक्षका सुख जीवको मत्यादिक पांच ज्ञानद्वारा ही प्राप्त होता है, अतः नन्दी-शब्दसे इन पांच ज्ञानोंकी सूचना करनेवाला होनेसे इस सूत्रका नाम 'नन्दीसूत्र' ऐसा कहा गया है। इसका यह सर्व प्रथम सूत्र है—'से किं तं नाणं' इत्यादि।

नुम् धातोः" એ સૂત્ર દ્વારા "नुम्" કરવાથી "नन्दि" એવો શબ્દ સિદ્ધ થાય છે. અથવા "सर्वधातुभ्यः इन्" એ ઔણાદિક સૂત્રથી ભાવ માં "इन्" પ્રત્યય અને "इदितो नुम् धातोः" આ સૂત્રથી 'नुम्' થતાં પણ "नन्दि" રૂપ બની જાય છે. ત્યાર પછી "कृदिकारादक्तिनः આ સૂત્ર દ્વારા "ङीष्" તથા "यस्येति च" એ સૂત્ર દ્વારા "इ" નો લોપ કરવાથી 'नन्दी' એવું રૂપ થાય છે. 'नन्दनं नन्दी=हर्षः' નન્દી શબ્દનો અર્થ હર્ષ, પ્રમોદ છે. જીવને પ્રમોદના દેનારાં મત્યાદિક પાંચ જ્ઞાન છે, કારણ કે સ્વર્ગ અને મોક્ષનું સુખ જીવને મત્યાદિક પાંચ જ્ઞાન દ્વારા જ મળે છે. તેથી 'नन्दी' શબ્દ એ પાંચ જ્ઞાનનુ સૂચક હોવાથી આ સૂત્રનુ નામ 'नन्दीसूत्र' કહેવાયું છે. તેનું આ સર્વ પ્રથમ સૂત્ર છેઃ-'से किं तं नाणं' ઇત્યાદિ.

मूलम्—से किं तं नाणं ? । नाणं पंचविहं पन्नत्तं, तं जहा—आभिणिबोहियनाणं, सुयनाणं, ओहिनाणं, मणपज्जवनाणं, केवलनाणं ॥ सू० १ ॥

छाया—अथ किं तद् ज्ञानम् ? । ज्ञानं पञ्चविधं प्रज्ञप्तं, तद् यथा—१ आभिनिबोधिकज्ञानं, २ श्रुतज्ञानम् , अवधिज्ञानं, ४ मनःपर्यवज्ञानं, ५ केवलज्ञानम् ॥

टीका—ज्ञानपदार्थस्य तत्त्वं जिज्ञासमानः श्रीजम्बूस्वामी श्रीसुधर्मस्वामिनं पृच्छति—'से किं तं नाणं' इति । अथ किं तज्ज्ञानम् ? 'अथ' इति प्रश्नार्थकः तत्–प्रसिद्धं ज्ञानं किम्=किंस्वरूपम् = हे भदन्त ! ज्ञानस्य स्वरूपं किमस्ति, तत् कृपया वर्ण्यतामित्यर्थः। श्रीसुधर्मा स्वामी जम्बूस्वामिनं प्रत्याह—'नाणं पंचविहं पण्णत्तं' इत्यादि । ज्ञानं–ज्ञप्तिर्वस्तुस्वरूपावधारणमित्यर्थः । ज्ञानावरणीयकर्मक्षयक्षयोपशमजनितो बोधरूप आत्मपर्यायः। तत् पञ्चविधं=पञ्चप्रकारकं मूलभेदापेक्षयेत्यर्थः, प्रज्ञप्तं=प्ररूपितम् , तीर्थङ्करैरित्यर्थः ।

'पन्नत्तं' इति पदेन–'यथा तीर्थकरैः प्रतिबोधितस्तथा कथयामि' इति सूचितम् ।

तद् यथेति । यथा–येन प्रकारेण, तत्–पञ्चविधं भवति, स प्रकारः प्रदर्श्यते—आभिनिबोधिकज्ञानं, श्रुतज्ञानम् , अवधिज्ञानं, मनःपर्ययज्ञानं, केवलज्ञानं चेति ।

सुधर्मास्वामी से जंबूस्वामी पूछते है कि–हे भदन्त ! जिन ज्ञानों का इस सूत्रमें वर्णन किया गया है वे ज्ञान कितने और कौन २ से हैं। इसके उत्तरमें श्रीसुधर्मा स्वामी जम्बूस्वामीसे कहते हैं कि–वे पांच प्रकारके हैं और उनके नाम इस प्रकार हैं—१ आभिनिबोधिकज्ञान, २ श्रुतज्ञान, ३ अवधिज्ञान, ४ मनःपर्ययज्ञान, ५ केवलज्ञान ।

भावार्थ—ज्ञानपदार्थके स्वरूपको जानने की इच्छासे श्री जंबूस्वामी श्री सुधर्मा स्वामीसे पूछ रहे हैं कि ज्ञानका स्वरूप क्या है? इसके उत्तरमें

જંબૂસ્વામી સુધર્માસ્વામીને પૂછે છેઃ—'હે ભદન્ત ! જે જ્ઞાનોનું આ સૂત્રમાં વર્ણન કરાયુ છે તે જ્ઞાન કેટલાં અને કયાં કયાં છે ?" તેના જવાબમાં શ્રી સુધર્માસ્વામી જમ્બૂસ્વામીને કહે છે–'તે પાંચ પ્રકારનાં છે અને તેમનાં નામ આ પ્રમાણે છે.–(૧) આભિનિબોધિકજ્ઞાન, (૨) શ્રુતજ્ઞાન (૩) અવધિ જ્ઞાન (૪) મનઃપર્યયજ્ઞાન અને (૫) કેવળજ્ઞાન.

ભાવાર્થ—જ્ઞાનપદાર્થના સ્વરૂપને જાણવાની ઇચ્છાથી શ્રી જમ્બૂસ્વામી શ્રી સુધર્માસ્વામીને પૂછે છે કે જ્ઞાનનું શું સ્વરૂપ છે ? તેના જવાબમાં તેમને

(१) आभिनिबोधिकज्ञानशब्दार्थः—

'अभि' इति-अभिमुखः-यो वस्तुनो योग्यदेशेऽवस्थानमपेक्षते स इत्यर्थः, तथा 'नि' इति नियतः-इन्द्रियमनः समाश्रित्य तत्तद् विषयमपेक्षते यो बोधः सोऽभिनिबोधः ।

उन्हें समझानेके लिये श्री सुधर्मा स्वामी कहते हैं कि-जिससे वस्तु-स्वरूपका अवधारण-निर्णय होता है वह ज्ञान है। यह ज्ञान आत्मामें ज्ञाना-वरणीय कर्मके क्षयसे, अथवा क्षयोपशमसे उत्पन्न होता है। आगममें इस ज्ञानके ५ पांच भेद बतलाये गये हैं। ये पांच भेद ज्ञानके मूल भेद हैं, और इसी अपेक्षा ज्ञान पांच प्रकारका बतलाया गया है। सूत्रमें जो "पन्नत्तं" शब्द आया है, उसका तात्पर्य ऐसा है कि तीर्थङ्कर भगवानने स्वयं ही ऐसा कहा है। इसीलिये सूत्रकार इस पद द्वारा यह सूचित कर रहे हैं कि तीर्थङ्कर भगवानने ज्ञानमें जो पांच प्रकारता बतलाई है वह इस प्रकार है, यह बात "तं जहा" पदसे समझाई गई है।

अब 'आभिनिबोधिक ज्ञान' इत्यादि पदोंका विग्रहपूर्वक अर्थ लिखा जाता है—

(१) आभिनिबोधिकज्ञान—

आभिनिबोधिक ज्ञानका अर्थ इस प्रकार है- आभिनिबोधिकरूप जो ज्ञान है उसका नाम आभिनिबोधिक ज्ञान है। आभिनिबोधिक

સમજાવવા માટે શ્રી સુધર્માસ્વામી કહે છે કે જેનાથી વસ્તુસ્વરૂપનું અવધારણ--નિર્ણય થાય છે તે જ્ઞાન છે. એ જ્ઞાન આત્મામાં જ્ઞાનાવરણીય કર્મોના ક્ષયથી અથવા ક્ષયોપશમથી ઉત્પન્ન થાય છે. આગમમાં એ જ્ઞાનના પાંચ ભેદ દર્શાવ્યા છે. તે પાંચ ભેદ જ્ઞાનના મૂળ ભેદ છે. અને એ જ કારણે જ્ઞાન પાંચ પ્રકારનું બતાવ્યું છે. સૂત્રમાં જે 'पन्नत्तं' શબ્દનો ઉપયોગ થયો છે તેનું તાત્પર્ય એવું છે કે તીર્થંકર ભગવાને પોતે જ એવું કહ્યું છે, તેથી સૂત્રકાર તે પદ દ્વારા એ સૂચિત કરે છે કે તીર્થંકર ભગવાને જ્ઞાનનાં જે પાંચ પ્રકાર બતાવ્યા છે તે આ પ્રમાણે છે. એ વાત 'तं जहा' પદથી સમજાવેલ છે—

હવે "आभिनिबोधिकज्ञान" વગેરે પદોનો વિગ્રહપૂર્વક અર્થ લખવામાં આવે છે:-

(૧) આભિનિબોધિકજ્ઞાન—

આભિનિબોધિક જ્ઞાનનો અર્થ આ પ્રમાણે છે-આભિનિબોધિકરૂપ જે જ્ઞાન છે તેનું નામ આભિનિબોધિક જ્ઞાન છે, આભિનિબોધિક જ્ઞાનમાં કર્મધારય સમાસ

यद्वा-अविपर्ययरूपत्वादर्थाभिमुखः, असंशयरूपत्वान्नियतो यो बोधः स अभिनिवोधः। स एवाभिनिवोधिकम्, इह विनयादित्वात् स्वार्थे ठक्, इन्द्रियपञ्च-कमनोनिमित्तो बोध इत्यर्थः। आभिनिवोधिकं च तज्ज्ञानं चाभिनिवोधिकज्ञानम्।

यद्वा—अभिनिबुध्यते ज्ञायतेऽनेनेत्यभिनिबोधः, स एवाभिनिबोधिकं तदावरणकर्मणः क्षयोपशमः। यद्वा-अभिनिबुध्यतेऽस्मिन्निति ज्ञानावरणीयकर्मणः

ज्ञानमें कर्मधारय समास हुआ है। योग्य देशमें वस्तुके अवस्थान की अपेक्षा रखना इसका नाम अभि-अभिमुख है। 'नि' का अर्थ नियत है। फलितार्थ इसका यह होता है कि पांच इन्द्रिय और मनकी अपेक्षा करके जो योग्य देशमें अवस्थित वस्तुका ज्ञान होता है वह अभिनिबोध है।

अथवा—ज्ञानमें संशयरूपता, अथवा विपर्ययरूपता का होना दोष माना गया है। इस संशयरूप तथा विपर्ययरूप दोषसे रहित जो बोध होता है वह अभिनिबोध है। अभिनिबोधका नाम ही आभिनिबो-धिक है। 'आभिनिबोधिक' पद स्वार्थमें 'ठक्' प्रत्यय होनेसे निष्पन्न होता है। इस तरह अभिनिबोधरूप ज्ञानका नाम ही आभिनिबोधिक ज्ञान है, ऐसा जानना चाहिये।

अथवा—जिसके द्वारा पदार्थ जाना जाता है वह अभिनिबोध है। अभिनिबोध ही आभिनिबोधिक है। यहां आभिनिबोधिक शब्दसे तदा-वरण कर्मका-ज्ञानावरण कर्मका क्षयोपशम ग्रहण हुआ है, कारण कि

થયો છે. યોગ્ય દેશમાં વસ્તુના અવસ્થાનની અપેક્ષા રાખવી તેનું નામ અભિ-અભિમુખ છે. "नि" નો અર્થ નિયત છે. તેનો ફલિતાર્થ એ થાય છે કે પાંચ ઇન્દ્રિયો અને મનની અપેક્ષા કરીને યોગ્ય દેશમાં અવસ્થિત વસ્તુનું જે જ્ઞાન થાય છે તે અભિનિબોધ છે

અથવા જ્ઞાનમા સશયરૂપતા અથવા વિપર્યયરૂપતાનું હોવું તે દોષ મનાયો છે. આ સશયરૂપ તથા વિપર્યયરૂપ દોષરહિત જે બોધ થાય છે તે અભિનિબોધ છે. અભિનિબોધનુ નામ જ આભિનિબોધિક છે. આભિનિબોધિક પદ સ્વાર્થમાં 'ठक्' પ્રત્યય હોવાથી સિદ્ધ થાય છ. આ રીતે અભિનિબોધરૂપ જ્ઞાનનું નામ જ આભિનિબોધિક જ્ઞાન છે. એમ જાણવું જોઈએ.

અથવા જેના વડે પદાર્થનું જ્ઞાન થાય છે તે અભિનિબોધ છે. અભિનિ-બોધ જ આભિનિબોધિક છે અહીં આભિનિબોધિક શબ્દથી તદાવરણ કર્મનો એટલે કે જ્ઞાનાવરણ કર્મનો ક્ષયોપશમ ગ્રહણ થયો છે, કારણ કે જ્ઞાનાવરણીય

क्षयोपशमे सति आत्मा रूपादिकं जानातीत्यतः क्षयोपशम एवाभिनिबोधः, स एवाभिनिबोधिकम्, आभिनिबोधिकं च यद् ज्ञानं तत्तथा। ज्ञानं प्रति ज्ञानावरणीयकर्मक्षयोपशमस्य कारणत्वात् कार्यकारणयोरभेदाच्च सामानाधिकरण्यम्।

यद्वा—अभिनिबुध्यते=जानातीत्यभिनिबोधः, स चात्मा। स एवाभिनिबोधिकम्, आभिनिबोधिकं च तज्ज्ञानं चेति पूर्ववत्। अस्मिन् पक्षे धर्मधर्मिणोरभेदादुपयोगरूपपरिणामादनन्यत्वमात्मनोऽस्तीति ज्ञानसामानाधिकरण्यम्। अस्यैव नामान्तरं मतिज्ञानमिति। उक्तञ्च—

ज्ञानावरणीय कर्मके क्षयोपशम होने पर ही आत्मा रूपादिक पदार्थोंको जानता है। ज्ञानावरणीय कर्मका क्षयोपशम ही ज्ञानके प्रति कारण होता है, इस लिये कारणरूप ज्ञानावरणीय कर्मके क्षयोपशममें कार्यरूप ज्ञानका अभेदोपचार करनेसे आभिनिबोधिक पदकी ज्ञानके साथ समानाधिकरणता बन जाती है।

अथवा—अभिनिबोध शब्दका अर्थ आत्मा भी है, क्योंकि आत्मा ही पदार्थों को जानता है अतः वही आभिनिबोधिक है। यहां जो आभिनिबोधिक-आत्मा-को ज्ञानस्वरूप प्रकट किया गया है वह धर्म और धर्मी में अभेद की अपेक्षा से जानना चाहिये। अपने उपयोगरूप परिणामसे अभिन्न होनेके कारण आत्मारूप आभिनिबोधिक पदकी इस पक्षमें भी ज्ञान पदके साथ समानाधिकरणता बननेमें कोई बाधा नहीं आती है। आभिनिबोधिक ज्ञानका अर्थ मतिज्ञान है। कहा भी है—

કર્મનો ક્ષયોપશમ થતાં જ આત્મા રૂપાદિક પદાર્થોને જાણે છે. જ્ઞાનાવરણીય કર્મનો ક્ષયોપશમ જ જ્ઞાનનું કારણ હોય છે, તેથી કારણરૂપ જ્ઞાનાવરણીય કર્મના ક્ષયોપશમમાં કાર્યરૂપ જ્ઞાનનો અભેદોપચાર કરવાથી આભિનિબોધિક પદની જ્ઞાનની સાથે સમાનાધિકરણતા બની જાય છે.

અથવા અભિનિબોધ શબ્દનો અર્થ આત્મા પણ છે, કારણ કે આત્મા જ પદાર્થોને જાણે છે તેથી તે જ આભિનિબોધિક છે. અહીં જે આભિનિબોધિક-આત્માને જ્ઞાન સ્વરૂપે પ્રગટ કરેલો છે તે ધર્મ અને ધર્મીમાં અભેદની અપેક્ષાથી જાણવો જોઈએ. પોતાના ઉપયોગરૂપ પરિણામથી અભિન્ન હોવાને કારણે આત્મરૂપ આભિનિબોધિક પદની આ પક્ષમાં પણ જ્ઞાનપદની સાથે સમાનાધિકરણતા બનવામાં કોઈ વાંધો આવતો નથી. આભિનિબોધિક જ્ઞાનનો અર્થ મતિજ્ઞાન છે. કહ્યું પણ છેઃ—

"मतिः, स्मृतिः, संज्ञा, चिन्ता, अभिनिबोध इत्यनर्थान्तरम् इति । न अर्थान्तरम् अनर्थान्तरम्, एते शब्दा एकार्थवाचका इत्यर्थः ।

(२) श्रुतज्ञानशब्दार्थः—

श्रुतज्ञानमिति । श्रुतं-श्रुतिः श्रवणं ज्ञानविशेषः इह श्रुतशब्देन स एव ग्राह्यः । स ज्ञानविशेषः कीदृशः? इति चेत्, उच्यते—शब्दार्थपर्यालोचनानुसारी इन्द्रियमनोनिमित्तो यो ज्ञानविशेषः स श्रुतमित्युच्यते । श्रुतं च तज्ज्ञानं चेति श्रुतज्ञानम् ।

यद्वा—शृणोतीति श्रुतम्, इह श्रुतशब्दार्थः श्रोता, स चात्मा, अस्मिन् पक्षे धर्मधर्मिणोरभेदविवक्षया श्रवणात्मकोपयोगरूपपरिणामादनन्यत्वमात्मनोऽस्तीति-

"मतिः स्मृतिः, संज्ञा, चिन्ता, अभिनिबोधः" ये सब पर्यायवाची शब्द हैं। पर्यायवाची शब्दों में शब्दकी अपेक्षा अन्तर होने पर भी अर्थकी अपेक्षा अन्तर नहीं होता है—एक ही अर्थके ये वाचक होते हैं ॥ १ ॥

(२) श्रुतज्ञान—

श्रुतज्ञान शब्दका अर्थ इस प्रकार है—श्रुतज्ञान शब्दका अर्थ शब्द श्रवणसे उत्पन्न ज्ञान है। यह पांच इन्द्रिय और मनके निमित्तसे उत्पन्न होता है। तथा इसमें शब्द और उसके अर्थकी पर्यालोचना होती है। इस तरह शब्दश्रवणसे जो ज्ञान आत्मामें उत्पन्न होता है वह श्रुतज्ञान है।

अथवा—"शृणोतीति श्रुतम्" जो सुनता है वह श्रुत है। इस विवक्षाके अनुसार श्रुतका अर्थ श्रोता है। श्रोता आत्माका पर्यायवाची

'मतिः स्मृतिः, संज्ञा, चिन्ता, अभिनिबोधः' એ બધાં પર્યાયવાચક શબ્દો છે. પર્યાયવાચક શબ્દોમાં શબ્દની અપેક્ષાએ અંતર હોવા છતાં અર્થની અપેક્ષાએ અંતર હોતુ નથી. એક જ અર્થના તે દર્શાવનારા હોય છે. ॥૧॥

(૨) શ્રુતજ્ઞાન—

શ્રુતજ્ઞાન શબ્દનો અર્થ આ પ્રમાણે છે:-શ્રુતજ્ઞાન શબ્દનો અર્થ-શબ્દ સાંભળવાથી ઉત્પન્ન થતું જ્ઞાન, આ જ્ઞાન પાંચ ઇન્દ્રિય અને મનના નિમિત્તથી ઉત્પન્ન થાય છે. તથા તેમાં શબ્દ અને તેના અર્થની પર્યાલોચના હોય છે. આ રીતે શબ્દના શ્રવણથી જે જ્ઞાન આત્મામા ઉત્પન્ન થાય છે તે શ્રુતજ્ઞાન છે.

અથવા-'शृणोतीति श्रुतम्' જે સાંભળે છે તે શ્રુત છે. આ વિવક્ષા પ્રમાણે શ્રુતનો અર્થ શ્રોતા થાય છે. શ્રોતા આત્માનો પર્યાયવાચી શબ્દ છે. આ રીતે

ज्ञानसामानाधिकरण्यम्। श्रोतुरात्मनः पर्यायतया ज्ञानं तदभिन्नमिति। श्रुतं च तज्ज्ञानं चेति श्रुतज्ञानम्। श्रुतमित्यत्रार्षत्वात् कर्तरि क्तप्रत्ययः क्लीवत्वं च। इह हि अग्रेवक्ष्यति—" सुणेइ-त्ति सुयं " इति।

(३) अवधिज्ञानशब्दार्थः—

अवधिज्ञानमिति। अवधानम्—आत्मनोऽर्थसाक्षात्करणव्यापारोऽवधिः। यद्वा—अव-शब्दोऽव्ययत्वेनानेकार्थत्वादधःशब्दार्थकः, अव-अधः, नीचप्रदेशे विस्तृतं वस्तु धीयते=परिच्छिद्यतेऽनेनेत्यवधिः, अधोविस्तृतविषयकज्ञानम्। अवधिश्चासौ

शब्द है। इस तरह श्रोतारूप ज्ञानका नाम श्रुतज्ञान हो जाता है। इस पक्षमें श्रवणात्मक उपयोगरूप परिणामसे आत्मामें अभिन्नता ज्ञापित की गई है, इस लिये श्रुत और ज्ञानमें समानाधिकरणता सुघटित हो जाती है, कारण कि श्रोता जो आत्मा है उसकी पर्याय होनेसे ज्ञान उससे भिन्न नहीं है। 'श्रु' धातु से आर्ष होनेकी वजहसे कर्तामें 'क्त' प्रत्यय हो कर 'श्रुतम्' ऐसा नपुंसक लिङ्गमें शब्द बना है। श्रुतज्ञानके विषयमें आगे फिर स्पष्ट लिखा जायेगा॥ २॥

(३) अवधिज्ञान—

अवधिज्ञान शब्दका अर्थ इस प्रकार है—अर्थको साक्षात्कार करने का आत्माका व्यापार होता है उसका नाम अवधि है। अथवा 'अव' शब्द अव्यय भी है। अव्ययके अनेक अर्थ होते हैं, अतः यहां 'अव' शब्दका अर्थ "नीचे" ऐसा जानना चाहिये। तात्पर्य इसका यह है कि

શ્રોતારૂપે જ્ઞાનનું નામ શ્રુતજ્ઞાન થાય છે. આ પક્ષમાં શ્રવણાત્મક ઉપયોગરૂપ પરિણામથી આત્મામાં અભિન્નતા સૂચિત કરાઈ છે, તેથી શ્રુત અને જ્ઞાનમાં સમાનાધિકરણતા બંધ બેસતી થઈ જાય છે, કારણ કે શ્રોતા કે જે આત્મા છે તેની પર્યાય થવાથી જ્ઞાન તેનાથી ભિન્ન નથી, "શ્રુ" ધાતુથી આર્ષ હોવાને કારણે કર્તામાં "क्त" પ્રત્યય લાગીને 'श्रुतम्' એવો નાન્યતર જાતિનો શબ્દ બન્યો છે. શ્રુતજ્ઞાનના વિષયમાં આગળ ફરીથી સ્પષ્ટતાપૂર્વક લખાશે ॥૨॥

(૩) અવધિજ્ઞાન—

"अवधिज्ञान" શબ્દનો અર્થ આ પ્રમાણે છે:-અર્થનો સાક્ષાત્કાર કરવાનો આત્માનો જે વ્યાપાર હોય છે તેનુ નામ અવધિ છે અથવા 'अव' શબ્દ અવ્યય પણ છે. અવ્યયના અનેક અર્થ થાય છે તેથી અહીં 'अव' શબ્દનો અર્થ 'નીચે' એવો જાણવો જોઈએ. તેનો ભાવાર્થ એ છે કે જેના દ્વારા નીચા પ્રદેશમાં

ज्ञानं चेत्यवधिज्ञानम् । विषयस्य बहुत्वं स्वीकृत्यैवं व्युत्पत्तिरिति बोध्यम्, अन्यथा तिर्यग् ऊर्ध्वं वा विषयं परिच्छिन्दानस्यावधिव्यपदेशो न स्यात् । यद्वा-अवधिर्मर्यादा रूपिष्वेव द्रव्येषु परिच्छेदकतया प्रवृत्तिरूपा, तदुपलक्षितं ज्ञानमवधिज्ञानम् । यद्वा-अवधिना=मर्यादया-रूपिद्रव्याण्येव जानातीति व्यवस्थया ज्ञानम् अवधिज्ञानम् । यद्वा-अव=मर्यादया='एतावत् क्षेत्रं पश्यन् एतावन्ति द्रव्याण्येतावन्तं कालं पश्यती'-त्यादिनियमितक्षेत्रादिलक्षणया, धीयते=परिच्छिद्यते रूपिवस्तुजातम् अनेनेत्यवधिः, अवधिश्चासौ ज्ञानं चेत्यवधिज्ञानम् । आत्मनो रूपिद्रव्यसाक्षात्कारणमिन्द्रियमनो-निरपेक्षो ज्ञानविशेषोऽवधिज्ञानम् । उक्तञ्च—

जिसके द्वारा नीचे प्रदेशमें विस्तृत वस्तुको आत्मा जानता है उसका नाम अवधि है । इस तरह अधोविस्तृत विषयको जाननेवाला ज्ञान अवधिज्ञान है, यह फलितार्थ निकलता है । विषयकी बाहुल्यता की अपेक्षा से ही यह व्युत्पत्ति की गई जाननी चाहिये, नहीं तो जो विषय तिरछे व ऊँचे फैले हुए हैं उनको जाननेवाला ज्ञान अवधिज्ञान नहीं कहा जा सकेगा । अथवा-अवधि-शब्दका अर्थ मर्यादा भी होता है। इस ज्ञानमें मर्यादा यही है कि यह रूपी द्रव्योंको ही स्पष्ट जानता है, अरूपी द्रव्योंको नहीं । अथवा—द्रव्य, क्षेत्र, काल एवं भावकी मर्यादाको लेकर जो ज्ञान, रूपी पदार्थों को स्पष्ट जानता है वह अवधि-ज्ञान है । इस ज्ञानमें इन्द्रिय और मनकी अपेक्षा नहीं रहती है। इनकी अपेक्षा विना किये ही यह ज्ञान द्रव्यादिक की मर्यादा को ले कर रूपी पदार्थ को जानता है, कहा भी है—

વિસ્તૃત વસ્તુને આત્મા જાણે છે, તેનુ નામ અવધિ છે. આ રીતે અધોવિસ્તૃત વિષયને જાણનારૂં જ્ઞાન અવધિજ્ઞાન છે, એવો ફલિતાર્થ નીકળે છે. વિષયની બાહુલ્યતાની અપેક્ષાએ જ આ વ્યુત્પત્તિ કરેલ છે, એમ માનવું જોઈએ, નહીં તો જે વિષય ત્રાસા, અથવા ઊંચે ફેલાયેલ છે તેમને જાણનારૂં જ્ઞાન અવધિજ્ઞાન કહી શકાશે નહી.

અથવા અવધિ-શબ્દનો અર્થ મર્યાદા પણ થાય છે. આ જ્ઞાનની મર્યાદા એ છે કે તે રૂપી દ્રવ્યોને જ સ્પષ્ટ જાણે છે, અરૂપી દ્રવ્યોને નહીં. અથવા દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર, કાળ અને ભાવની મર્યાદા લઈને જે જ્ઞાનરૂપી પદાર્થોને સ્પષ્ટ રીતે જાણે છે તે અવધિજ્ઞાન છે એ જ્ઞાનમાં ઈન્દ્રિય અને મનની આવશ્યકતા રહેતી નથી-તેની અપેક્ષા કર્યા વિના જ એ જ્ઞાન દ્રવ્યાદિકની મર્યાદાને લઇને રૂપી પદાર્થને જાણે છે. કહ્યું પણ છે—

" द्रव्याणि मूर्तिमन्त्येव, विषयो यस्य सर्वतः।
नैयत्यरहितं ज्ञानं, तत्स्यादवधिलक्षणम् "॥ १॥

अयमत्र-निष्कर्षः-नैयत्यरहितम्=इन्द्रियमनोऽपेक्षावर्जितमित्यर्थः। अवधिज्ञानावरणक्षयोपशमविशेषसमुद्भवं भवप्रत्ययं गुणप्रत्ययं च रूपिद्रव्यविषयकं ज्ञानमवधिज्ञानम्। तत्र भवप्रत्ययं=भवहेतुकं नारकाणां देवानां च। गुणप्रत्ययं सम्यग्दर्शनादिगुणनिमित्तकं तिरश्चां मनुष्याणां च भवति। अवधिज्ञानावरणीयकर्मणः क्षयोपशमविशेषः खलु भवप्रत्ययस्य गुणप्रत्ययस्य चावधिज्ञानस्य कारणम्। स हि क्षयोपशमस्तादृशभवं प्रति तादृशगुणं प्रति च साक्षात्कारणं अवधिज्ञानं प्रति परंपराकारणमिति। साक्षात्कारणापेक्षया भवप्रत्ययमित्युच्यते। गुणप्रत्ययमिति क्षायोपशमिक-शब्देन वक्ष्यते।

" द्रव्याणि मूर्तिमन्त्येव, विषयो यस्य सर्वतः।
नैयत्यरहितं ज्ञानं, तत्स्यादवधिलक्षणम् "॥ १॥

अर्थात्--जिस ज्ञानमें इन्द्रिय एवं मनकी सहायता नहीं है, तथा जो रूपी पुद्गल द्रव्यको ही जानता है वह अवधिज्ञान है। यह अवधिज्ञान अवधिज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशमसे जीवको प्राप्त होता है। इसके दो भेद हैं-१ गुणप्रत्यय, २ भवप्रत्यय। गुणप्रत्यय अवधिज्ञान मनुष्य एवं तिर्यञ्चोंके होता है। इस अवधिज्ञानकी उत्पत्तिमें सम्यग्दर्शन आदि गुण निमित्त माने गये हैं। जिस अवधिज्ञानकी उत्पत्तिमें भव कारण होता है वह अवधिज्ञान भवप्रत्यय माना गया है। यह अवधिज्ञान देव एवं नारकी जीवोंके होता है। इन दोनों प्रकारके अवधिज्ञानमें अवधिज्ञानावरणीय कर्मका क्षयोपशम कारणभूत होता है

" द्रव्याणि मूर्तिमन्त्येव, विषयो यस्य सर्वतः।
नैयत्यरहितं ज्ञानं, तत्स्यादवधिलक्षणम् "॥ १॥

એટલે કે જે જ્ઞાનમાં ઇન્દ્રિયો તથા મનની સહાયતા નથી, તથા જે રૂપી પુદ્ગલ દ્રવ્યને જ જાણે છે તે અવધિજ્ઞાન છે આ અવધિજ્ઞાન અવધિજ્ઞાનાવરણીય કર્મના ક્ષયોપશમથી જીવને પ્રાપ્ત થાય છેઃ તેના બે ભેદ છે(૧) ગુણપ્રત્યય (૨) ભવ પ્રત્યય. ગુણપ્રત્યય અવધિજ્ઞાન મનુષ્ય અને તિર્યંચોને થાય છે. આ અવધિજ્ઞાનની ઉત્પત્તિમા સમ્યગ્દર્શન વગેરે ગુણો નિમિત્તરૂપ મનાયા છે. જે અવધિજ્ઞાનની ઉત્પત્તિ માટે ભવ કારણરૂપ હોય છે તે અવધિજ્ઞાન ભવપ્રત્યય મનાય છે. આ અવધિજ્ઞાન દેવ તથા નારકી જીવોને થાય છે. એ બન્ને પ્રકારના અવધિજ્ઞાનમાં અવધિજ્ઞાનાવરણીય કર્મનો ક્ષયોપશમ જરૂર કારણરૂપ હોય છે ખરો

(४) मनःपर्यवज्ञानशब्दार्थः—

मनःपर्यवज्ञानमिति। अवनम् अवः। अव–रक्षणगतिकान्तिप्रीतितृप्त्यवगमाद्यर्थेषु पठितोऽस्ति, तत्रावगमार्थमाश्रित्य निष्पन्नः। अवः–अवगमः, बोध इत्यर्थः। परि–शब्दः सर्वतोभावे, पर्यवः=समन्तादवबोधः। मनसः पर्यवो मनःपर्यवः–मनो-

सही, परन्तु वह परंपरारूपसे होता है। साक्षात्कारण भवप्रत्यय अवधिमें देव एवं नारकी भव, तथा गुणप्रत्यय अवधिमें सम्यग्दर्शन आदि गुण माने गये हैं, कारण कि देव नारकीके भवके लिये वहां अवधिज्ञानावरणीय कर्मका क्षयोपशम होता है, तथा सम्यग्दर्शन आदि गुणोंके लिये मनुष्य एवं तिर्यञ्चपर्यायमें अवधिज्ञानावरणीय कर्मका क्षयोपशम होता है। गुणप्रत्यय अवधिका नाम क्षायोपशमिक अवधिज्ञान भी है। देव नारकीकी पर्यायमें अवधिज्ञानकी प्राप्ति जन्मसिद्ध अधिकार है, तब कि मनुष्य तिर्यञ्चोंमें नहीं ॥ ३ ॥

(४) मनःपर्यवज्ञान—

मनःपर्यवज्ञान शब्दका अर्थ इस प्रकार है–'अव' शब्द–रक्षण, गति, कान्ति, प्रीति, तृप्ति, अवगम आदि अर्थोंमें प्रयुक्त हुआ है। यहां इन अर्थोंमें के केवल 'अवगम' अर्थ इस शब्दका ग्रहण किया गया है। 'परि' शब्दका अर्थ सर्वतोभाव है। सर्वतोभावसे हुए बोधको

પણ તે પરમ્પરારૂપથી હોય છે, સાક્ષાત્કારણ ભવપ્રત્યય અવધિમાં દેવ અને નારકીનો ભવ માનવામાં આવ્યો છે. તથા ગુણપ્રત્યય અવધિમાં સમ્યગ્દર્શન આદિ ગુણો મનાયા છે. કારણ કે દેવ–નારકીના ભવને માટે ત્યાં અવધિજ્ઞાનાવરણીય કર્મનો ક્ષયોપશમ થાય છે. તથા સમ્યગ્દર્શન વગેરે ગુણોને માટે મનુષ્ય અને તિર્યંચ પર્યાયમાં અવધિજ્ઞાનાવરણીય કર્મનો ક્ષયોપશમ થાય છે. ગુણપ્રત્યય અવધિનું નામ ક્ષાયોપશમિક અવધિજ્ઞાન પણ છે. દેવ નારકીની પર્યાયમાં અવધિજ્ઞાનની પ્રાપ્તિ જન્મસિદ્ધ અધિકાર છે, પણ મનુષ્ય, તિર્યંચોમાં એવું નથી. ॥૩॥

(૪) મનઃપર્યવજ્ઞાન—

મનઃપર્યવજ્ઞાન શબ્દનો અર્થ આ પ્રકારનો છે—'અવ' શબ્દ, રક્ષણ, ગતિ, કાન્તિ, પ્રીતિ, તૃપ્તિ, અવગમ વગેરે અર્થોમાં વપરાયો છે. અહીં તે અર્થોમાંથી તે શબ્દનો ફક્ત 'અવગમ' અર્થ જ ગ્રહણ કરાયો છે. 'परि' શબ્દનો અર્થ સર્વતોભાવ છે, સર્વતોભાવથી થયેલ બોધને

विषयकः समन्तादवबोध इत्यर्थः। मनःपर्यवश्चासौ ज्ञानं चेति मनःपर्यवज्ञानम्। पर्यवः, पर्ययः, पर्यायः, एते शब्दा एकार्थवाचकाः। तत्र पर्यय इति 'अय'-धातोर्निष्पद्यते। अयनं=बोधनमित्ययः, पर्ययनं=समन्तात् परिच्छेदनं पर्ययः। पर्याय इति 'इण् गतौ' इत्यस्मान्निष्पद्यते। अयनम् आयः, परि-समन्तादायः पर्यायः। मनसः पर्यायो मनःपर्यायः। मनःपर्यायश्चासौ ज्ञानं चेति मनःपर्यायज्ञानमिति। तथा मनःपर्यवज्ञानवद् मनःपर्यायज्ञानमित्यपि शास्त्रे प्रयुज्यते।

यद्वा-पर्यवाः, पर्ययाः, पर्यायाः, धर्माः, इत्येकार्थवाचकाः। मनसः पर्यवाः बाह्यवस्तुचिन्तनानुगुणा ये धर्माः परिणामाःअवस्थाविशेषाः, बाह्यवस्त्वालोचनादि-

---

यहां 'पर्यव' शब्दका वाच्यार्थ कहा गया है। इस तरह मनका-परकीय मनोगत पदार्थका जिसके द्वारा स्पष्टरूपसे बोध होता है वह मनःपर्यवज्ञान है। 'पर्यव, पर्यय तथा पर्याय' ये शब्द एकार्थवाचक हैं। 'पर्यय' यह शब्द "अय गतौ" गत्यर्थक अय धातुसे बना है। इसका अर्थ बोधन होता है। 'परि-समन्तात्'-सर्व प्रकारसे 'अयन'-परिच्छेदन जिसके द्वारा होता है वह पर्यय है, ऐसे इसका उक्त अर्थ हो जाता है। मनसंबंधी जो पर्यय वह मनःपर्यय है। 'पर्याय' यह शब्द जब रखते हैं तब उसका अर्थ ऐसा होता है कि मनकी जो पर्यायें हैं वे मनःपर्याय हैं। इस विवक्षामें "इण् गतौ" धातुसे यह 'आय' शब्द निष्पन्न हुआ है।

अथवा--पर्यव, पर्यय, पर्याय, धर्म, ये शब्द एकार्थवाचक हैं, अर्थात् जो कोई व्यक्ति मनःपर्यवज्ञानसे बाह्य वस्तु के धर्मका विचार

અહીં પર્યવ શબ્દનો વાચ્યાર્થ કહેલ છે. આ રીતે મનનો એટલે પરકીય મનોગત પદાર્થનો જેના દ્વારા સ્પષ્ટરૂપથી બોધ થાય છે તે મનઃપર્યવ જ્ઞાન છે. 'પર્યવ, પર્યાય તથા પર્યય' એ શબ્દો એક જ અર્થ દર્શાવે છે. 'પર્યય' આ શબ્દ 'अय गतौ' ગતિવાચક 'अय' ધાતુમાંથી બન્યો છે. તેનો અર્થ બોધન થાય છે. परि-समन्तात्-સર્વ રીતે અયન-પરિચ્છેદન જેના દ્વારા થાય છે તે પર્યય છે. એ રીતે તેનો ઉપરોકત અર્થ થઈ જાય છે. મનસંબંધી જે પર્યય તે મનઃપર્યય છે. 'પર્યાય' આ શબ્દ જ્યારે વપરાય છે ત્યારે તેનો અર્થ એવો થાય છે કે મનની જે પર્યાય છે તે મનઃપર્યાય છે. આ વિવક્ષામાં 'इण् गतौ' ધાતુથી આ 'आय' શબ્દ સિદ્ધ થયો છે.

અથવા—પર્યવ, પર્યય, પર્યાય, ધર્મ, એ શબ્દો એક જ અર્થના વાચક છે. અર્થાત્ જે કોઈ વ્યકિત મનઃપર્યવજ્ઞાનથી બાહ્ય વસ્તુના ધર્મનો વિચાર

प्रकारास्तेषां ज्ञानम् ' इदमित्थंभूतमनेन चिन्तितम् ' इत्येवंरूपं ज्ञानं मनःपर्यवज्ञानमिति ज्ञानशब्देन सह षष्ठीतत्पुरुषसमासः ।

इदं चार्धतृतीयद्वीपसमुद्रान्तर्वर्तिसंज्ञिमनोगतद्रव्यालम्बनमेवेति भावः ।

इदमत्रावधेयम्-मनो द्विविधं-द्रव्यमनो भावमनश्च। तत्र द्रव्यमनो मनोवर्गणा, भावमनस्तु ता एव वर्गणा जीवेन गृहीताः सत्यो मन्यमानाश्चिन्त्यमाना भावमनोऽभिधीयते। तत्रेह भावमनः परिगृह्यते, तस्य भावमनसः पर्यायास्ते चैवंविधाः-यदा कश्चिदेवं चिन्तयेत्-'किं स्वभाव आत्मा ?, ज्ञानस्वभावो रूपरहितः कर्ता सुखादीनामनुभविता ' इत्यादयो ज्ञेयविषयाध्यवसायाः परगतास्तेषु तेषां वा यज्ज्ञानं तन्मनःपर्यायज्ञानम्। तानेव मनःपर्यायान् परमार्थतः समवबुध्यते। बाह्यांस्तु अनुमानादेवेति ।

करता है उसे उस वस्तुका स्पष्ट बोध होता है। इसमें भी इन्द्रिय और मनकी सहायता की आवश्यकता नहीं होती है। मनःपर्ययज्ञानी "इसने यह तथा इस प्रकार विचार किया है " यह बात बतला देता है।

इसका विषय अढाई द्वीप एवं तदन्तर्गत समुद्रके भीतर रहे हुए संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवोंका मनोगत द्रव्य हैं। मन, द्रव्यमन और भाव मनके भेदसे दो प्रकारका है। द्रव्यमन मनोवर्गणारूप है। यही वर्गणा जीवसे जब गृहीत हो जाती हैं और जीव जब उनका विचार करने लगता है तो उस विचारका नाम ही भावमन है, यहां मनसे भावमनका ग्रहण हुआ है। इस भावमनकी पर्यायें इस प्रकार होती है-आत्माका क्या स्वभाव है? यह आत्मा ज्ञानस्वभाववाला है, रूपरहित एवं कर्त्ता और सुखादि-

કરે છે તેને તે વસ્તુનો સ્પષ્ટ બોધ થાય છે. તેમા પણ ઇન્દ્રિયો તથા મનની સહાયતાની જરૂર રહેતી નથી "આને આ વિચાર કર્યો છે તથા આ રીતે વિચાર કર્યો છે" તે વાત મનઃપર્યવજ્ઞાની બતાવી દે છે.

તેનો વિષય અઢાઈ દ્વીપ અને તેની અંદર આવેલા સમુદ્રની અંદર રહેલા સંજ્ઞી પચેન્દ્રિય જીવોનું મનોગત દ્રવ્ય છે. દ્રવ્યમન અને ભાવમન એ ભેદથી મન બે પ્રકારનું છે. દ્રવ્યમન મનોવર્ગણારૂપ છે. આ જ વર્ગણા જ્યારે જીવથી ગૃહીત થઇ જાય છે અને જ્યારે જીવ તેમનો વિચાર કરવા લાગે છે ત્યારે એ વિચારનું નામ જ ભાવમન છે. અહીં મનથી ભાવમનનુ ગ્રહણ થયું છે. એ ભાવમનની પર્યાયો આ પ્રમાણે હોય છે-આત્માનો કયો સ્વભાવ છે ? આ આત્મા જ્ઞાન સ્વભાવવાળો છે, રૂપરહિત તથા કર્ત્તા અને સુખાદિનો ભોક્તા છે. એ જ

(५) केवलज्ञानशब्दार्थः—

केवलज्ञानमिति। केवलम्=एकम्-असहायम् इन्द्रियादिसाहाय्यानपेक्षणात्१। यद्वा-केवलं=शुद्धं-निर्मलं-सकलावरणमलव्यपगमसमुद्भूतत्वात् २। यद्वा-केवलं

कोंका भोक्ता है। यही भावमनकी पर्यायें है। तात्पर्य-जितनी भी विचारधाराएँ है वे सब ही भावमनकी पर्याये जानना चाहिये। ये भावमनकी पर्यायें निजात्मगत नहीं किन्तु परमनोगत ही यहां मनःपर्ययज्ञानके प्रकरणमें गृहीत की गई हैं। बाह्यद्रव्योंकी पर्याये तो अनुमानसे ही जानी जा सकती हैं। निष्कर्ष केवल इतना ही है कि परमनोगत विचारधारारूप पर्यायों को स्पष्टरूपसे जाननेवाला ज्ञानका नाम ही मनःपर्ययज्ञान है ॥४॥

(५) केवलज्ञान—

केवलज्ञानका शब्दार्थ इस प्रकार है—जो एक-असहाय ज्ञान होता है उसका नाम केवलज्ञान है। यहां केवल शब्दका अर्थ एक-असहाय, ऐसा लिया गया है, क्यों कि इसमें इन्द्रिय आदिकोंकी तथा अन्य ज्ञान की अपेक्षा नहीं रहती है, इसी लिये इसे परकी सहायतासे रहित होने की वजहसे एक-असहाय माना गया है १। अथवा जो शुद्ध ज्ञान होता है वह केवलज्ञान है। यहां केवल शब्दका अर्थ 'शुद्ध' लिया गया है,

ભાવમનની પર્યાયો છે. સારાંશ-જેટલી પણ વિચારધારાઓ છે તે બધીજ ભાવમનની પર્યાયો જાણવી જોઇએ. તે ભાવમનની પર્યાયો જ નિજાત્મગત નહીં પણ પરમનોગત જ અહીં મનઃપર્યયજ્ઞાનના પ્રકરણમાં ગ્રહણ કરાઈ છે. બાહ્ય દ્રવ્યોની પર્યાયો તો અનુમાનથી જ જાણી શકાય છે. તાત્પર્ય ફક્ત આટલુ જ છે કે બીજાંના મનમાં રહેલી વિચારધારારૂપ પર્યાયોને સ્પષ્ટ રૂપથી જાણનારા જ્ઞાનનુ નામ જ મનઃપર્યયજ્ઞાન છે. ॥૪॥

(૫) કેવળજ્ઞાન—

કેવળજ્ઞાનનો શબ્દાર્થ આ પ્રમાણે છેઃ-જે એક-અસહાય જ્ઞાન હોય છે તેનું નામ કેવળજ્ઞાન છે. અહીં કેવળ-શબ્દનો અર્થ એક-અસહાય એવો લીધો છે. કારણ કે તેમાં ઈન્દ્રિય વગેરેની તથા અન્યજ્ઞાનની આવશ્યકતા રહેતી નથી, તેથી તેને પરની સહાયતા વિનાનુ હોવાના કારણે એક-અસહાય મનાયું છે ૧. અથવા જે શુદ્ધ જ્ઞાન હોય છે તે કેવળજ્ઞાન છે. અહીં 'કેવળ શબ્દનો અર્થ

=सकलं-परिपूर्णं, संपूर्णज्ञेयग्राहित्वात् ३। यद्वा-केवलम्=असाधारणम्, अनन्यसदृशं, तादृशाऽपरज्ञानाभावात् ४ । यद्वा-केवलम्=अनन्तम् अप्रतिपातित्वेन पर्यवसानरहितत्वात्, ज्ञेयानन्तत्वाच्च ५। इत्येवमेकादिष्वर्थेषु केवलशब्दोऽत्र वर्तते। केवलं च तज्ज्ञानं चेति केवलज्ञानम्। आत्यन्तिक-निरवशेष-ज्ञानावरणीयकर्मक्षयप्रभवं करतलकलितनिस्तुलस्थूलमुक्ताफलायमानयथाऽवस्थिताऽशेषभूतभवद्भाविभावस्वभावावभासकं ज्ञानं केवलज्ञानम्।

कारण कि यह ज्ञान सकल आवरणों के क्षय होने पर ही होता है २। अथवा-जो ज्ञान सम्पूर्ण होता है वह केवलज्ञान है। यहां केवलका अर्थ सम्पूर्ण ऐसा बतलाया गया है, कारण कि यह ज्ञान सम्पूर्ण पदार्थों को रूपी अरूपी समस्त त्रिकालवर्ती पदार्थसमूह को ग्रहण करता है ३। अथवा-जो ज्ञान असाधारण होता है उसका नाम केवलज्ञान है। यहां केवल शब्दका अर्थ असाधारण किया गया है, कारण कि इसके जैसा और कोई दूसरा ज्ञान नहीं होता है ४। अथवा जो ज्ञान अनंत होता है उसका नाम केवलज्ञान है। यहां केवलका अर्थ अनंत किया गया है, कारण कि एक वार आत्मामें इस ज्ञानके हो जाने पर फिर इसका प्रतिपात नहीं होता है। तथा अनंत ज्ञेयों के जानने से भी यह अनंत माना गया है ५। इस तरह इन पांच अर्थोंवाला जो ज्ञान होता है वही केवलज्ञान है, ऐसा जानना चाहिये। तात्पर्य इसका यही है कि इस ज्ञानमें ज्ञानावरणीय कर्मका समूल क्षय होता है। भूत भविष्यत् एवं वर्त-

---

'शुद्ध' कर्यो छे. कारण के आ ज्ञान सर्व आवरणो नष्ट थतां ज थाय छे २. अथवा जे ज्ञान संपूर्ण होय छे ते केवळज्ञान छे. अहीं केवळनो अर्थ संपूर्ण दर्शावायो छे, कारण के आ ज्ञान संपूर्ण पदार्थोने-रूपी, अरूपी समस्त त्रिकालवर्ती पदार्थसमूहने ग्रहण करे छे ३ अथवा जे ज्ञान असाधारण होय छे तेनुं नाम केवळज्ञान छे. अहीं केवळ शब्दनो अर्थ असाधारण करायो छे, कारण के तेना जेवुं बीजुं कोई ज्ञान नथी ४. अथवा जे ज्ञान अनंत होय छे तेनुं नाम केवळज्ञान छे. अहीं केवळनो अर्थ अनंत करायो छे, कारणके आत्मामां एक वखत आ ज्ञान थयां पछी तेनो नाश थतो नथी. तथा अनंत ज्ञेयोने जाणवाथी पण ते अनंत मनायुं छुं ५. आ रीते ए पांच अर्थोवाळुं जे ज्ञान थाय छे ए ज केवळज्ञान छे, एवुं जाणवुं जोईए. तेनुं तात्पर्य ए छे के आ ज्ञानमां ज्ञानावरणीय कर्मोनो मूळमांथी ज क्षय थाय छे. भूत, भविष्य अने वर्तमानकाळना सर्व पदार्थो हस्तामलकवत् तेमां प्रतिबिं-

केवलज्ञानं मत्यादिनिरपेक्षं भवति, केवलज्ञानप्रादुर्भावे मत्यादीनामसंभवात्। ननु कथं तदा मत्यादीनामसंभवः?, यदि मतिज्ञानादीनि स्वस्वावरणक्षयोपशमेऽपि प्रादुर्भवन्ति, तर्हि सर्वथा स्वस्वावरणक्षये तु तानि सुतरां प्रादुर्भविष्यन्ति चारित्र-परिणामवत्। उक्तञ्च—

"आवरणदेसविगमे, जाइं विज्जंति मइसुयाईणि।
आवरणसव्वविगमे, कह ताइं न होंति जीवस्स"॥ १॥

छाया—आवरणदेशविगमे यानि विद्यन्ते मतिश्रुतादीनि।
आवरणसर्वविगमे कथं तानि न भवन्ति जीवस्य ॥ १॥

इति चेत्, उच्यते—कथंचिन्मलसंपृक्तस्य मरकतादिमणेर्यावत् सर्वथा मला-

---

मानकालके समस्तपदार्थ हस्तामलकवत् इसमें प्रतिबिम्बित होते रहते हैं। तथा यह केवलज्ञान मत्यादिक क्षायोपशमिक ज्ञानों से निरपेक्ष रहता है, क्यों कि इसकी उत्पत्ति होने पर मत्यादिक ज्ञान रहते नहीं हैं।

शङ्का—केवलज्ञानके सद्भावमें मत्यादिकोंका असद्भाव क्यों रहता है? जब मत्यादिक ज्ञान अपने२ आवरणों के क्षयोपशम होने पर ही होते हैं तो यह बात मानने में और अधिक सरल पड़ जाती है कि जब अपने २ आवरणों का सर्वथा क्षय हो जायगा तो वे अपने आप ही प्रगट होने लगेंगे जैसे चारित्रपरिणाम होता है। कहा भी है—

"आवरणदेसविगमे, जाइं विज्जंति मइसुयाईणि।
आवरणसव्वविगमे, कह ताइं न होंति जीवस्स"॥ १॥

इस शङ्काका उत्तर इस प्रकार है-जिस प्रकार मलयुक्त मणिसे जब

બિત થતાં રહે છે. તથા એ કેવળજ્ઞાન મત્યાદિક ક્ષાયોપશમિક જ્ઞાનોથી નિરપેક્ષ રહે છે, કારણ કે તેની ઉત્પત્તિ થતાં મત્યાદિક જ્ઞાન રહેતાં નથી.

શંકા:-કેવળજ્ઞાનના સદ્‌ભાવમાં મત્યાદિકોનો અસદ્‌ભાવ કેમ રહે છે? જ્યારે મત્યાદિક જ્ઞાન પોતપોતાનાં આવરણોનો ક્ષયોપશમ થતાં જ થાય છે ત્યારે તે વાત માનવી વધુ સરળ પડે છે, કે જ્યારે પોત પોતાનાં આવરણોનો સદંતર ક્ષય થઈ જશે ત્યારે તેઓ આપો આપ જ પ્રગટ થવા લાગશે, જેવી રીતે ચારિત્ર પરિણામ હોય છે. કહ્યું પણ છેઃ-

"आवरणदेसविगमे, जाइं विज्जंति मइसुयाईणि।
आवरणसव्वविगमे, कह ताइं न होंति जीवस्स ॥ १॥

એ શંકાનો ઉત્તર આ પ્રમાણે છે—જે રીતે મેલ વાળા મણીમાંથી જ્યાં

पगमो न भवति, तावद् यथा यथा देशतो मलव्यपगमस्तथा तथा देशतस्तत्स्वरूपाभिव्यक्तिरुपजायते, साऽपि क्वचित् कदाचिद् कथंचित् भवतीत्यनेकविधा, तथाऽऽत्मनोऽपि कालत्रयवर्तिसकलपदार्थसाक्षात्कारकैकपारमार्थिकस्वरूपस्याप्यनादिकालोपचितज्ञानावरणीयकर्ममलपटलतिरोहितस्य यावत् सर्वथा कर्ममलव्यपगमो न भवति, तावद् यथा यथा देशतः कर्ममलक्षयो जायते, तथा तथा देशतस्तस्य ज्ञप्तिः प्रादुर्भवति। साऽपि क्वचित् कदाचित् कथंचिद् भवतीत्यनेकविधा भवति। उक्तञ्च—

तक सर्वथा मैलका अभाव नहीं होता है तब तक जैसे उससे थोडे २ रूपमें मैलका अभाव होता रहता है और वह मणि उस थोडे २ मैलके विगमसे थोडे२ रूपमें अपने स्वरूपकी अभिव्यक्ति करता रहता है। यह स्वरूपाभिव्यक्ति उस मणिमें सर्वदेशमें न हो कर क्वचित् कदाचित् कथंचित् रूपसे होती है अतः यह स्वरूपाभिव्यक्ति अनेकविध मानी जाती है, उसी प्रकार कालत्रयवर्ती सकल पदार्थोंको साक्षात जाननेका जिसका पारमार्थिक स्वभाव है, और यह स्वभाव जिसका अनादिकालसे लगे हुए ज्ञानावरणीय कर्मपटलसे तिरोहित हो रहा है सो जब तक आत्मासे सर्वथा कर्ममलका व्यपगम नहीं हो जाता है तब तक एक देशसे जैसा२ कर्ममलका विगम होता रहता है वैसे२ उसके स्वरूपकी ज्ञप्ति होती रहती है। यह आत्माके स्वरूपकी ज्ञप्ति भी जीवकी क्वचित् कदाचित् कथंचित् रूपमें ही होती है, सर्वरूपमें नहीं, अतः यह ज्ञप्ति भी अनेकविध मानी जाती है। कहा भी है—

સુધી મેલનો સદંતર અભાવ થતો નથી ત્યાં સુધી જેમ તેનાથી થોડાં થોડાં પ્રમાણમાં મેલનો અભાવ થયા કરે છે અને તે મણી તે થોડા થોડા મેલના જવાથી થોડાં થોડા પ્રમાણમાં પોતાના સ્વરૂપની અભિવ્યકિત કરતો રહે છે. આ સ્વરૂપાભિવ્યકિત તે મણિમાં સર્વ દેશમાં ન હોતાં કવચિત્ (કોઈ કોઈ જગ્યાએ) કદાચિત્ (કોઈક વખતે) કથંચિત્ રૂપથી (કોઈ કોઈ પ્રકારે) હોય છે તેથી તે સ્વરૂપાભિવ્યકિત અનેક પ્રકારે મનાય છે. એજ પ્રમાણે ત્રિકાળવર્તી સર્વે પદાર્થોને સાક્ષાત્ જાણવાનો જેનો પારમાર્થિક સ્વભાવ છે, અને જેનો એ સ્વભાવ અનાદિ કાળથી લાગેલા જ્ઞાનાવરણીય કર્મપટલથી તિરોહિત થઈ રહ્યો છે તે જ્યાં સુધી આત્મામાંથી કર્મમળનો સદંતર નાશ થઈ જતો નથી ત્યાં સુધી એક દેશથી જેમ જેમ કર્મમળ જતો જાય છે તેમ તેમ તેનાં સ્વરૂપની 'જ્ઞપ્તિ' (જાણ) થતી રહે છે. આ આત્માના સ્વરૂપની જાણ પણ જીવને કવચિત્, કદાચિત્ કથંચિત્ રૂપથીજ થાય છે, સમસ્ત રૂપે નહીં. તેથી આ જ્ઞપ્તિ-(જાણ) પણ અનેક પ્રકારે મનાય છે. કહ્યુ પણ છેઃ-

"मलविद्धमणिव्यक्तिर्यथाऽनेकप्रकारतः।
कर्मविद्धाऽऽत्मविज्ञप्तिस्तथाऽनेकप्रकारतः" ॥१॥

तदनेकविधत्वं मतिश्रुतादिभेदाद् भवति।

यदा तु तस्य मरकतमणेर्निरवशेषमलव्यपगमस्तदा परिस्फुटरूपैकाभिव्यक्तिरुपजायते, तद्वदात्मनोऽपि ज्ञानदर्शनचारित्रप्रभावतो निरवशेषावरणक्षये सति एकरूपं परिस्फुटं सर्ववस्तुपर्यायसाक्षात्कारकं ज्ञानमाविर्भवति। तथा चोक्तम्—

"यथा जात्यस्य रत्नस्य, निःशेषमलहानितः।
स्फुटैकरूपाभिव्यक्तिर्विज्ञप्तिस्तद्वदात्मनः" ॥ १ ॥

तस्मात् केवलज्ञानं मत्यादिनिरपेक्षं भवतीति सिद्धम्।

"मलविद्धमणिव्यक्तिर्यथाऽनेकप्रकारतः।
कर्मविद्धात्मविज्ञप्तिस्तथाऽनेकप्रकारतः ॥ १ ॥"

यह अनेकविध आत्मज्ञप्ति ही मत्यादिक चार ज्ञानस्वरूप है। जब उस मरकतमणिसे समस्त रूपमें मलका अपगम हो जाता है तो जैसे उसके रूपकी स्फुटरूपमें अभिव्यक्ति हो जाती है उसी तरह आत्माके भी ज्ञानदर्शनचारित्रके प्रभावसे सम्पूर्ण रूपमें आवरणके क्षय होने पर एक स्वरूपकी कि जो सर्ववस्तुओं एवं उनकी समस्त पर्यायोंको विशदरूपसे साक्षात्कार करनेवाला होता है अभिव्यक्ति हो जाती है। कहा भी है—

"यथा जात्यस्य रत्नस्य, निःशेषमलहानितः।
स्फुटैकरूपाभिव्यक्ति,-र्विज्ञप्तिस्तद्वदात्मनः" ॥१॥

इससे यह सिद्ध हुआ कि-केवलज्ञान मत्यादिनिरपेक्ष होता है।

"मलविद्धमणिव्यक्ति,-र्यथाऽनेकप्रकारतः।
कर्मविद्धात्मविज्ञप्ति,-स्तथाऽनेकप्रकारतः" ॥१॥

આ અનેકવિધ આત્મજ્ઞપ્તિ જ મત્યાદિક ચાર જ્ઞાન સ્વરૂપ છે. જ્યારે તે મરકતમણિમાંથી સંપૂર્ણ રીતે મેલનો નાશ થાય છે ત્યારે જેમ તેનાં રૂપની સ્પષ્ટ રીતે અભિવ્યકિત થાય છે તેજ પ્રમાણે જ્ઞાન-દર્શન-ચારિત્રના પ્રભાવથી આત્માના આવરણનો પણ સંપૂર્ણ રીતે ક્ષય થતાં એક સ્વરૂપની, કે જે સર્વ વસ્તુઓ તેમજ તેમની સમસ્ત પર્યાઓનો વિશદરૂપથી સાક્ષાત્કાર કરનાર હોય છે, અભિવ્યકિત થઈ જાય છે. કહ્યું પણ છેઃ-

"यथा जात्यस्य रत्नस्य, निःशेषमलहानितः।
स्फुटैकरूपाभिव्यक्ति,-र्विज्ञप्तिस्तद्वदात्मनः" ॥१॥

આથી એ સિદ્ધ થાય છે કે-કેવળજ્ઞાન મત્યાદિનિરપેક્ષ હોય છે.

नन्ववध्यादिज्ञानतः पूर्वं मतिश्रुतज्ञाननिर्देशे को हेतुः ?, अत्रोच्यते—इह स्वामिकालकारणविषयपरोक्षत्वसाम्यात्, तत्सत्त्वे चावध्यादिज्ञानसंभवादादावेव तयोरुपन्यास इति। तथाहि-य एव मतिज्ञानस्य स्वामी स एव श्रुतज्ञानस्यापि। तथा चोक्तम्-'जत्थ मइनाणं तत्थ सुयनाणं' इति।

तथा-यावान् मतिज्ञानस्य स्थितिकालस्तावानेव श्रुतज्ञानस्य। यथा मतिज्ञानं क्षयोपशमहेतुकं तथा श्रुतज्ञानमपि। यथा च-मतिज्ञानं देशतः सर्वद्रव्यादिविषयं, तथा श्रुतज्ञानमपि। यथा मतिज्ञानं परोक्षं, तथा श्रुतज्ञानमपि। मतिज्ञानश्रुतज्ञानयोः सत्त्वे एव चावधिज्ञानादीनि भवन्ति।

शङ्का—अवधि आदि ज्ञानों के पहिले जो मतिश्रुतज्ञानका निर्देश किया गया है इसमें क्या कारण है ?।

उत्तर—इन दोनोंमें पहिले जो मतिश्रुत ज्ञानका निर्देश किया गया है उसमें एक कारण तो यह है कि मतिज्ञान एवं श्रुतज्ञान, इन दोनोंके एक ही स्वामी होते हैं, भिन्न२ स्वामी नहीं। तथा-इनका काल भी एक ही है, भिन्न २ काल नहीं है। तथा विषयकी अपेक्षा भी इनमें समानता है, असमानता नहीं। तथा ये दोनों ज्ञान परोक्ष हैं। दूसरा कारण यह है कि इनके होने पर ही अवधि आदि ज्ञान होते हैं। कहा भी है—"जत्थ मइनाणं तत्थ सुयनाणं"।

जिस आत्मामें मतिज्ञान होता है उसी आत्मामें श्रुतज्ञान होता है। जितना स्थितिकाल मतिज्ञानका है उतना ही स्थितिकाल श्रुतज्ञानका है। मतिज्ञान जिस प्रकार मतिज्ञानावरणीय कर्मके क्षयोपशमसे उत्पन्न होता

શંકાઃ—અવધિ આદિ જ્ઞાનોમાં પહેલાં જે મતિ શ્રુત જ્ઞાનનો ઉલ્લેખ કરાયો છે તેનું શું કારણ છે?

ઉત્તરઃ—એ જ્ઞાનોમાં પહેલાં જે મતિ શ્રુત જ્ઞાનનો નિર્દેશ કરાયો છે તેનું એક કારણ તો એ છે કે મતિજ્ઞાન અને શ્રુતજ્ઞાન એ બન્નેનો એક જ સ્વામી હોય છે, અલગ અલગ સ્વામી હોતો નથી. વળી તેનો કાળ પણ એક જ છે, જુદો જુદો કાળ નથી. વળી વિષયની અપેક્ષાએ પણ એમાં સમાનતા છે—અસમાનતા નથી. તથા તે બન્ને જ્ઞાન પરોક્ષ છે. બીજું કારણ એ છે કે એ હોય તો જ અવધિ આદિ જ્ઞાન થાય છે. કહ્યું પણ છેઃ—

"જત્થ મઇનાણં તત્થ સુયનાણં" જે આત્મામાં મતિજ્ઞાન થાય છે એ જ આત્મામાં શ્રુતજ્ઞાન થાય છે. જેટલો સ્થિતિકાળ મતિજ્ઞાનનો છે એટલો જ સ્થિતિકાળ શ્રુતજ્ઞાનનો છે. મતિજ્ઞાન જે પ્રમાણે મતિજ્ઞાનાવરણીય કર્મના ક્ષયો-

ननु मतिज्ञानानन्तरं श्रुतज्ञाननिर्देशे को हेतुः?, उच्यते—श्रुतज्ञानस्य मतिपूर्वकत्वाद् विशिष्टमत्यंशरूपत्वाद् वा श्रुतज्ञानं मतिज्ञानानन्तरमुपन्यस्तम्। उक्तञ्च—

"मइपुव्वं जेण सुयं, तेणादीए मइविसिट्ठो वा।
मइभेओ चेव सुयं, तो मइसमणंतरं भणियं"॥

छाया—मतिपूर्वं येन श्रुतं, तेनादितो मतिविशिष्टं वा।
मतिभेदश्चैव श्रुतं, ततो मतिसमनन्तरं भणितम्॥

है उसी प्रकार श्रुतज्ञान भी श्रुतज्ञानावरणीय कर्मके क्षयोपशमसे उत्पन्न होता है। जिस प्रकार मतिज्ञान सर्व द्रव्योंको परोक्षरूपसे विषय करता है उसी प्रकार श्रुतज्ञान भी विषय करता है। मतिज्ञान जिस प्रकार परोक्ष माना गया है। उसी प्रकार श्रुतज्ञान भी परोक्ष माना गया है। इन मतिज्ञान एवं श्रुतज्ञानके सद्भावमें ही अवधिज्ञान आदि हुआ करते हैं।

शंका—मतिज्ञान के बाद श्रुतज्ञानका जो पाठ रक्खा गया है। उसमें क्या कारण है?।

उत्तर—मतिज्ञानके बाद श्रुतज्ञानके पाठ रखनेमें कारण यह है कि श्रुतज्ञान, मतिज्ञानपूर्वक होता है, अथवा वह मतिज्ञानका ही एक विशिष्ट अंश है। कहा भी है—

"मइपुव्वं जेण सुयं, तेणादीए मइविसिट्ठो वा।
मइभेओ चेव सुयं, तो मइसमणंतरं भणियं॥१॥"

પશમથી ઉત્પન્ન થાય છે એજ પ્રમાણે શ્રુતજ્ઞાન પણ શ્રુતજ્ઞાનાવરણીય કર્મના ક્ષયોપશમથી ઉત્પન્ન થાય છે. જે પ્રમાણે મતિજ્ઞાન સર્વ દ્રવ્યોને પરોક્ષ રૂપથી વિષય કરે છે એ જ પ્રમાણે શ્રુતજ્ઞાન પણ વિષય કરે છે. જે રીતે મતિજ્ઞાન પરોક્ષ મનાયું છે એ જ રીતે શ્રુતજ્ઞાન પણ પરોક્ષ મનાયુ છે. એ મતિજ્ઞાન તથા શ્રુતજ્ઞાનના સદ્‌ભાવમાં જ અવધિજ્ઞાન વગેરે થયા કરે છે.

શંકા:—મતિજ્ઞાનની પછી શ્રુતજ્ઞાનનો જે પાઠ રખાયો છે તેનું શું કારણ છે?

ઉત્તર—મતિજ્ઞાનની પછી શ્રુતજ્ઞાનનો પાઠ રાખવાનું કારણ એ છે કે શ્રુતજ્ઞાન મતિજ્ઞાન સાથે થાય છે. અથવા તે મતિજ્ઞાનનો એક વિશિષ્ટ અંશ છે. કહ્યું પણ છે—

"મइपुव्वं जेण सुयं, तेणादीए मइविसिट्ठो वा।
मइभेओ चेव सुयं, तो मइसमणंतरं भणियं"॥१॥

ननु मतिश्रुतज्ञानानन्तरमवधिज्ञानस्योपन्यासे को हेतुः?, उच्यते--काल-विपर्यय-स्वामि-लाभतः साम्यादवधिज्ञानस्य मतिश्रुतानन्तरं कथनमिति। तथाहि-

एकजीवापेक्षया, नानाजीवापेक्षया च मतिज्ञानश्रुतज्ञानयोर्यावान् स्थितिकालोऽस्ति, तावानवधिज्ञानस्यापि स्थितिकालोस्तीति कालतः साम्यम्। यथा च मिथ्यात्वोदये मतिश्रुतज्ञाने अज्ञानरूपं विपर्ययं प्रतिपद्येते, तथाऽवधिज्ञानमपीति विपर्ययसाम्यम्। तथा य एव मतिज्ञानश्रुतज्ञानयोः स्वामी स एवावधिज्ञानस्यापि स्वामी भवतीति स्वामिना साम्यम्। तथा विभङ्गज्ञानिनस्त्रिदशादेः सम्यग्दर्शनप्राप्तौ युगपदेव ज्ञानत्रयलाभसंभवात् लाभतः साम्यम्।

शङ्का--मतिज्ञान एवं श्रुतज्ञानके बाद अवधिज्ञानका जो कथन सूत्रमें किया गया है उसका क्या कारण है ?।

उत्तर--इसका कारण-काल, विपर्यय, स्वामी एवं लाभकी समानता है। इसका खुलासा इस प्रकार है-एक जीव अथवा नाना जीवोंकी अपेक्षा जितना मतिज्ञान एवं श्रुतज्ञानका स्थितिकाल है उतना ही स्थितिकाल अवधिज्ञानका भी है। यह कालकी अपेक्षा मतिज्ञान श्रुतज्ञानके साथ अवधिज्ञानकी समानता है। मिथ्यात्वके उदय होने पर जिस प्रकार मतिज्ञान एवं श्रुतज्ञान विपर्ययरूप हो जाते हैं उसी प्रकार अवधिज्ञान भी विपर्ययरूप हो जाता है। यह विपर्ययकी अपेक्षा इन दोनोंके साथ इसकी समानता है। मतिज्ञान एवं श्रुतज्ञानका जो स्वामी होता है वही अवधिज्ञानका भी स्वामी होता है। इस प्रकार स्वामीकी अपेक्षा इसमें उनके साथ समानता घट जाती है। विभङ्गज्ञानी देव आदिको सम्यग्द-

---

શંકા—મતિજ્ઞાન અને શ્રુતજ્ઞાનની પછી અવધિ જ્ઞાનનું જે કથન સૂત્રમાં કરાયું છે તેનું શું કારણ છે?

ઉત્તર—એનું કારણ-કાળ, વિપર્યય, સ્વામી અને લાભની સમાનતા છે. તેનો ખુલાસો આ પ્રમાણે છે:-એક જીવ અથવા અનેક જીવોની અપેક્ષાએ જેટલો મતિજ્ઞાન અને શ્રુતજ્ઞાનનો સ્થિતિકાળ છે એટલો જ સ્થિતિકાળ અવધિજ્ઞાનનો પણ છે. આ કાળની અપેક્ષાએ મતિજ્ઞાન, શ્રુતજ્ઞાનની સાથે અવધિજ્ઞાનની સમાનતા છે. મિથ્યાત્વનો ઉદય થતાં જે રીતે મતિજ્ઞાન અને શ્રુતજ્ઞાન વિપર્યયરૂપ થઈ જાય છે તે જ પ્રમાણે અવધિજ્ઞાન પણ વિપર્યયરૂપ થઈ જાય છે. એ વિપર્યયની અપેક્ષાએ તે બન્નેની સાથે તેની સમાનતા છે. મતિજ્ઞાન અને શ્રુતજ્ઞાનનો જે સ્વામી હોય છે તે જ અવધિજ્ઞાનનો પણ સ્વામી હોય છે. આ રીતે સ્વામીની અપેક્ષાએ તેમાં તેમની સાથે સમાનતા બંધબેસતી થઈ જાય છે.

तथा—छद्मस्थविषयभावप्रत्यक्षत्वसाधर्म्यादवधिज्ञानानन्तरं मनःपर्यवज्ञानस्य कथनम्। तथाहि—यथाऽवधिज्ञानं छद्मस्थस्य भवति, तद्वन्मनःपर्यवज्ञानमपि छद्मस्थस्यैवेति छद्मस्थसाम्यम्। तथा-यथाऽवधिज्ञानं रूपिद्रव्यविषयम्, तथा मनःपर्यवज्ञानमपि सामान्येनेति विषयसाम्यम्। यथाऽवधिज्ञानं क्षायोपशमिके भावे, तथा मनःपर्ययज्ञानमपीति भावतः साम्यम्। यथाऽवधिज्ञानं प्रत्यक्षं, तथा मनःपर्यवज्ञानमपीति प्रत्यक्षतया साम्यम्।

र्शनकी प्राप्ति होने पर युगपत् उसे मतिज्ञान, श्रुतज्ञान एवं अवधिज्ञानका लाभ हो जाता है, यह लाभकी अपेक्षा समानता है।

तथा—छद्मस्थ, विषय, भाव, प्रत्यक्षत्वकी समानता की अपेक्षाको लेकर अवधिज्ञानके बाद मनःपर्यवज्ञानका सूत्रमें निर्देश किया गया है।-जिस प्रकार अवधिज्ञान छद्मस्थ जीवोंको होता है उसी प्रकार मनःपर्यवज्ञान भी उन्हीं जीवोंको होता है। यह अवधिज्ञान और मनःपर्यव ज्ञानकी छद्मस्थकी अपेक्षा समानता है। अवधिज्ञान जिस प्रकार रूपी द्रव्यको विषय करता है उसी प्रकार मनःपर्यवज्ञान भी रूपी द्रव्योंको विषय करता है। यह विषयकी अपेक्षा दोनोंमें समानता है। क्षायोपशमिकभावमें जिस प्रकार अवधि ज्ञानको गिनाया गया है उसी प्रकार मनःपर्यवज्ञान को भी क्षायोपशमिक भावमें गिनाया गया है। यह भावकी अपेक्षा समानता है। अवधिज्ञान जिस प्रकार आत्मजन्य होनेसे प्रत्यक्ष माना जाता है उसी प्रकार इन्द्रिय और मनकी सहायता

વિભંગજ્ઞાની દેવ આદિને સમ્યગ્દર્શનની પ્રાપ્તિ થતાં યુગપત્ (એકીસાથે) તેને મતિજ્ઞાન, શ્રુતજ્ઞાન અને અવધિજ્ઞાનનો લાભ થઈ જાય છે, આ લાભની અપેક્ષાએ સમાનતા છે.

તથા-છદ્મસ્થ, વિષય, ભાવ, પ્રત્યક્ષત્વની સમાનતાની અપેક્ષાએ અવધિજ્ઞાનની પછી મનઃપર્યવજ્ઞાનનો સૂત્રમાં નિર્દેશ કરાયો છે. જે રીતે અવધિજ્ઞાન છદ્મસ્થ જીવોને થાય છે એ જ રીતે મનઃપર્યવજ્ઞાન પણ એ જ જીવોને થાય છે આ અવધિજ્ઞાન અને મનઃપર્યવજ્ઞાનની છદ્મસ્થની અપેક્ષાએ સમાનતા છે. અવધિજ્ઞાન જે પ્રમાણે રૂપી દ્રવ્યોને વિષય કરે છે એ જ પ્રમાણે મનઃપર્યવજ્ઞાન પણ રૂપી દ્રવ્યોને વિષય કરે છે. આ વિષયની અપેક્ષાએ બન્નેમાં સમાનતા છે. ક્ષાયોપશમિક ભાવમાં જે પ્રમાણે અવધિજ્ઞાન ગણાવ્યું છે એ જ પ્રમાણે મનઃપર્યવ જ્ઞાનને પણ ક્ષાયોપશમિક ભાવમાં ગણાવ્યું છે. આ ભાવની અપેક્ષાએ સમાનતા છે. અવધિજ્ઞાન જે રીતે આત્મજન્ય હોવાથી પ્રત્યક્ષ મનાય છે. એ જ રીતે મનઃપર્યવજ્ઞાન પણ ઈન્દ્રિય અને મનની સહાયતા વિના ફક્ત

तथा—अप्रमत्तसंयतस्वामिसाम्यात् विपर्ययाभावसाम्याच्च, मनःपर्यवज्ञानानन्तरं केवलज्ञानमुपन्यस्तम्। तथाहि-यथा मनःपर्यवज्ञानं प्रमादरहितस्यैव भावमुनेर्भवति, तथा केवलज्ञानमपि तादृशस्यैव भावमुनेर्भवतीति स्वामिसाम्यम्। यथा च-मनःपर्यवज्ञानं विपर्ययज्ञानं न भवति, तथा केवलज्ञानमपीति विपर्ययाभावसाम्यम्।

किञ्च—मत्यादिज्ञानचतुष्टयापेक्षया उत्तमत्वात्, अवसाने लाभाच्च केवलज्ञानं चरममिति। केवलज्ञानस्यातीतानागतवर्त्तमाननिःशेषज्ञेयस्वरूपावभासित्वादुत्त-

---

के बिना केवल आत्मासे जन्य होनेकी वजहसे मनःपर्यवज्ञान भी प्रत्यक्ष माना गया है। यह इन दोनोंमें प्रत्यक्षत्वकी अपेक्षा समानता है।

तथा—अप्रमत्तसंयतस्वामी, तथा अविपर्ययकी अपेक्षासे समानता होनेसे मनःपर्यवज्ञानके बाद केवलज्ञानका पाठ रक्खा है। मनःपर्यवज्ञान जिस प्रकार अप्रमत्त भावमुनिके होता है उसी तरह केवलज्ञान भी अप्रमत्तभावमुनिके होता है। यह स्वामीकी अपेक्षा समानता है। मनःपर्यवज्ञान जिस प्रकार विपर्ययसे रहित होता है उसी प्रकार केवलज्ञानमें भी विपर्यय नहीं होता है। यह अविपर्ययकी अपेक्षासे समानता है।

दूसरे-केवलज्ञानको जो सबसे अन्तमें रखा गया है उसमें कारण यह है कि यह ज्ञान मत्यादिक चार ज्ञानोंकी अपेक्षा उत्तम है, तथा इन सबके अन्तमें ही इसकी प्राप्ति होती है। उन ज्ञानोंकी अपेक्षा उत्तमता इसमें इसलिये है कि इस ज्ञानमें अतीत, अनागत, तथा वर्तमानकालीन समस्त ज्ञेय पदार्थों का अवभासन होता है। तथा जिस जीवको चार ज्ञान

આત્મજન્ય હોવાથી પ્રત્યક્ષ મનાય છે. આ બન્નેમાં પ્રત્યક્ષત્વની અપેક્ષાએ સમાનતા છે.

તથા—અપ્રમત્તસંયતસ્વામી, તથા અવિપર્યયની અપેક્ષાએ સમાનતા હોવાથી મનઃપર્યવ જ્ઞાનની પછી કેવળજ્ઞાનનો પાઠ રાખ્યો છે. મનઃપર્યવજ્ઞાન જે પ્રમાણે અપ્રમત્ત ભાવમુનિને થાય છે એ જ રીતે કેવળજ્ઞાન પણ અપ્રમત્ત ભાવ-મુનિને થાય છે આ સ્વામીની અપેક્ષાએ સમાનતા છે. મનઃપર્યવજ્ઞાન જે રીતે વિપર્યરહિત હોય છે એ જ રીતે કેવળજ્ઞાનમાં પણ વિપર્યય થતો નથી. આ અવિપર્યયની અપેક્ષાએ સમાનતા છે. બીજું કેવળજ્ઞાનને જે બધાની અંતે રાખવામાં આવ્યુ છે તેનું કારણ એ છે કે એ જ્ઞાન મત્યાદિક ચાર જ્ઞાનો કરતાં ઉત્તમ છે અને એ બધાને અંતે જ તેની પ્રાપ્તિ થાય છે. એ જ્ઞાનો કરતાં તેમાં ઉત્તમતા એથી છે કે આ જ્ઞાનમાં ભૂત, ભવિષ્ય અને વર્તમાન

त्वम् । तथा यः पञ्चविधं ज्ञानं प्राप्नोति सोऽप्यन्त एवेदं लभते, इत्येवं केवलज्ञानमन्ते निर्दिष्टम् ॥ सू०१ ॥

मूलम्—तं समासओ दुविहं पण्णत्तं, तं जहा—पच्चक्खं च परोक्खं च ॥ सू०२ ॥

छाया—तत् समासतो द्विविधं प्रज्ञप्तम् । तद् यथा—प्रत्यक्षं च परोक्षं च ॥२॥

टीका–'तं समासओ'इत्यादि । तत् पूर्वोक्तं पञ्चविधं ज्ञानं, समासतः=संक्षेपेण, द्विविधं प्रज्ञप्तं=प्ररूपितम्। तद् यथा-प्रत्यक्षं च परोक्षं च। अयं भावः-तदेतत् पञ्चविधमपि ज्ञानं द्वे प्रमाणे भवतः, प्रत्यक्षं परोक्षं चेति । पञ्चविधेषु ज्ञानेष्ववधिज्ञानादिकं त्रयं प्रत्यक्षम्, आभिनिबोधिकज्ञानं श्रुतज्ञानं चेति द्वयं परोक्षमिति ।

अथ प्रत्यक्षशब्दार्थः—

ननु प्रत्यक्षमित्यस्य कः शब्दार्थः ?, उच्यते—अश्नुते=ज्ञानात्मना सर्वानर्थान्

प्राप्त हो चुके हैं उस जीवको ही अन्तमें केवलज्ञानका लाभ होता है॥ सू० १ ॥

'तं समासओ' इत्यादि ।

(तत्) वह पूर्वोक्त पांच प्रकारका ज्ञान (समासतः) संक्षेपसे (द्विविधं) दो प्रकारका (प्रज्ञप्तम्) कहा गया है। (तद् यथा) वे दो प्रकार ये है—(प्रत्यक्षं च परोक्षं च) प्रत्यक्ष और परोक्ष। इनमें अवधिज्ञान मनःपर्यवज्ञान तथा केवलज्ञान, ये प्रत्यक्ष हैं। मतिज्ञान और श्रुतज्ञान ये दो ज्ञान परोक्ष हैं।

प्रत्यक्ष शब्दका अर्थ

शङ्का—प्रत्यक्ष-शब्दका क्या अर्थ है ?।

કાળના સર્વ જ્ઞેય પદાર્થોનો આભાસ થાય છે તથા જે જીવને ચાર જ્ઞાન પ્રાપ્ત થઇ ચૂકયાં છે તે જીવને જ છેવટે કેવળજ્ઞાનનો લાભ થાય છે ॥ સૂ૦ ૧ ॥

'तं समासओ' ઈત્યાદિ.

(तत्) પૂર્વોકત પાંચ પ્રકારનાં તે જ્ઞાન (समासतः) ટુંકાણમાં (द्विविधं) બે પ્રકારના (प्रज्ञप्तम्) કહેવાયા છે. (तद् यथा) તે બે પ્રકાર આ છેઃ—(प्रत्यक्षं च परोक्षं च) પ્રત્યક્ષ અને પરોક્ષ. તેઓમાં અવધિજ્ઞાન, મનઃપર્યવજ્ઞાન અને કેવળજ્ઞાન તે પ્રત્યક્ષ છે. મતિજ્ઞાન અને શ્રુતજ્ઞાન એ બે જ્ઞાન અપરોક્ષ છે.

પ્રત્યક્ષ શબ્દનો અર્થ

શંકા—પ્રત્યક્ષ શબ્દનો શો અર્થ છે ?

व्याप्नोतीत्यक्षो जीवः। 'अशूङ् व्याप्तौ' इत्यस्मादौणादिकः सक्-प्रत्ययः। अक्षं= जीवं प्रति साक्षाद् गतम्, अन्यनिरपेक्षं वर्तते यद् ज्ञानं, तत्प्रत्यक्षम्। 'अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया' इति वार्तिकेन समासः। अवधि-मनःपर्यव-केवलानि त्रीणि प्रत्यक्षात्मकानि ज्ञानानि, अन्यानपेक्षतया साक्षादर्थबोधकत्वेन तेषां जीवं प्रति साक्षाद्वर्तित्वात्। इह 'च'-शब्दः स्वगताऽनेकभेदसंसूचकः।

उत्तर-प्रत्यक्ष-शब्दका अर्थ है जो इन्द्रियादिकोंकी सहायताके विना केवल आत्माकी ही सहायतासे उत्पन्न होता है वह ज्ञान प्रत्यक्ष है। प्रत्यक्षमें प्रति+अक्ष, ऐसे दो शब्द हैं। 'अक्ष' यह शब्द "अशूङ्-व्याप्तौ" इस व्याप्त्यर्थक 'अशूङ्' धातुसे औणादिक 'सक्'-प्रत्यय करने पर बनता है। "अक्षं प्रति वर्तते तत् प्रत्यक्षम्" अर्थात्-जो ज्ञान जीवके प्रति अन्य निरपेक्ष होकर रहता है वह प्रत्यक्ष है, ऐसा इसका फलितार्थ होता है। "अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया" इस वार्तिकसे यहां द्वितीया विभक्तिके साथ समास हुआ है। अवधिज्ञान, मनःपर्यव-ज्ञान तथा केवलज्ञान, ये तीन ज्ञान प्रत्यक्षस्वरूप इस लिये कहे गये हैं कि इनमें इन्द्रियादिक अन्य पदार्थों की सहायता की अपेक्षा नहीं रहती है, तथा इनकी सहायताके विना ही ये स्पष्टरूपसे अपने विषयभूत पदार्थ को ग्रहण करते हैं, इसलिये इन्हें जीवके प्रति साक्षाद्वर्ती कहा गया है। सूत्रमें जो "च" शब्द आया है वह प्रत्यक्षगत अनेक भेदोंका बोधक है।

ઉત્તર—જે ઈન્દ્રિયોની મદદ વિના કેવળ આત્માની મદદથી જ ઉત્પન્ન થાય છે તે જ્ઞાન પ્રત્યક્ષ છે. પ્રત્યક્ષમાં प्रति+अक्ष એ બે શબ્દો છે. 'अक्ष' આ શબ્દ "अशूङ् व्याप्तौ" આ વ્યાપ્ત્યર્થક "अशूङ्" ધાતુથી औणादिक सक् પ્રત્યય કરતાં બને છે. "अक्षं प्रति वर्तते तत् प्रत्यक्षम्" એટલે કે જે જ્ઞાન જીવોમાં અન્યનિરપેક્ષ (બીજાની અપેક્ષારહિત) થઈને રહે છે તે પ્રત્યક્ષ છે, એવો તેનો અર્થ ફલિત થાય છે. "अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया" આ વાર્તિકથી અહીં બીજી વિભકિત સાથે સમાસ થયો છે. અવધિજ્ઞાન, મનઃપર્યવજ્ઞાન, તથા કેવળજ્ઞાન એ ત્રણ જ્ઞાન પ્રત્યક્ષસ્વરૂપ એ માટે કહેવાયાં છે કે તેઓમાં ઈન્દ્રિયાદિક બીજાં પદાર્થોની સહાયતાની આવશ્યકતા રહેતી નથી, તથા તેમની મદદ વિના જ તે પોતાના વિષયભૂત પદાર્થને સ્પષ્ટરૂપે ગ્રહણ કરે છે, તેથી તેમને જીવની તરફ સાક્ષાદ્વર્તી કહેવાયાં છે. સૂત્રમાં જે 'च' શબ્દ આવ્યો તે પ્રત્યક્ષગત અનેક ભેદોનો બોધક છે.

अथ प्रत्यक्षलक्षणम्—

इह प्रत्यक्षलक्षणमुच्यते-मतिश्रुताभ्यां यदन्यत् त्रिविधं ज्ञानं तत् प्रत्यक्षम्। यत् प्राणिनां ज्ञानदर्शनावरणयोः क्षयोपशमात् क्षयाच्च इन्द्रियानिन्द्रियनिरपेक्षमात्मानमेव केवलमाश्रित्योत्पद्यते तत् प्रत्यक्षमिति निष्कर्षः। तच्चावध्यादि। एतत्त्रयं प्रत्यक्षं निश्चयनयेनेति बोध्यम्। व्यवहारतस्तु चक्षुरादीन्द्रियजन्यं ज्ञानं प्रत्यक्षम्। अस्मिन् पक्षे 'अक्ष'-शब्द इन्द्रियार्थकः, अक्षम्-इन्द्रियं प्रति गतं, प्रत्यक्षम्, इन्द्रियाधीनतया यदुत्पद्यते तत् प्रत्यक्षमिति।

प्रत्यक्षका लक्षण

इस प्रकार प्रत्यक्ष शब्दका अर्थ कह कर अब प्रत्यक्षका लक्षण स्पष्ट किया जाता है, वह इस प्रकार है-मतिज्ञान और श्रुतज्ञानसे अन्य जो तीन प्रकारके ज्ञान हैं वे प्रत्यक्ष हैं। अर्थात्-जो ज्ञान प्राणियों के ज्ञानावरण एवं दर्शनावरणके क्षयोपशम से तथा क्षय से इन्द्रिय और अनिन्द्रिय निरपेक्ष होकर केवल आत्मा को आश्रित करके उत्पन्न होता है वह प्रत्यक्ष है, ऐसा जानना चाहिये। यह प्रत्यक्ष अवधि आदि तीन ज्ञान हैं। इन तीन ज्ञानोंको जो प्रत्यक्ष कहा है वह निश्चयनयकी अपेक्षा से ही कहा है। व्यवहार की अपेक्षासे तो चक्षु आदि पांच इन्द्रियोंसे जो ज्ञान होता है वह प्रत्यक्ष कहा जाता है। व्यवहारनयकी अपेक्षा से जब इन्द्रियजन्य ज्ञान को प्रत्यक्ष कहा जाता है तो इस स्थितिमें अक्ष-शब्द इन्द्रिय अर्थका बोधक होता है। इसका तात्पर्य यह होता है कि जो ज्ञान इन्द्रियोंकी अधीनता से उत्पन्न है वह प्रत्यक्ष है।

પ્રત્યક્ષ શબ્દનું લક્ષણ

આ પ્રમાણે પ્રત્યક્ષ શબ્દનો અર્થ કહીને હવે પ્રત્યક્ષનું લક્ષણ સ્પષ્ટ કરવામાં આવે છે. તે આ પ્રમાણે છેઃ-મતિજ્ઞાન અને શ્રુતજ્ઞાન સિવાયનાં જે ત્રણ પ્રકારનાં જ્ઞાન છે તે પ્રત્યક્ષ છે. એટલે કે જે જ્ઞાન પ્રાણીઓનાં જ્ઞાનાવરણ અને દર્શનાવરણના ક્ષયોપશમ તથા ક્ષયથી ઈન્દ્રિય અને અનિન્દ્રિય નિરપેક્ષ થઈને ફક્ત આત્માને આશ્રિત કરીને ઉત્પન્ન થાય છે તે પ્રત્યક્ષ છે. એમ માનવું જોઈએ. આ પ્રત્યક્ષ અવધિ આદિ ત્રણ જ્ઞાન છે. એ ત્રણ જ્ઞાનોને જે પ્રત્યક્ષ કહ્યાં છે તે નિશ્ચયનયની અપેક્ષાએ જ કહ્યાં છે. વ્યવહારની અપેક્ષાએ તો ચક્ષુ વગેરે પાંચ ઈન્દ્રિયોથી જન્ય જે જ્ઞાન હોય છે તે પ્રત્યક્ષ કહેવાય છે. વ્યવહારનયની અપેક્ષાએ જ્યારે ઇન્દ્રિયજન્ય જ્ઞાનને પ્રત્યક્ષ કહેવાય છે ત્યારે આ સ્થિતિમાં 'અક્ષ' શબ્દ ઈન્દ્રિય અર્થનો બોધક હોય છે. એનું તાત્પર્ય એ હોય છે કે જે જ્ઞાન ઇન્દ્રિયોની અધીનતાથી ઉત્પન્ન થાય છે તે પ્રત્યક્ષ છે.

ननु प्रतिपूर्वादक्षिशब्दात् 'प्रतिपरसमनुभ्योऽक्ष्णः' इत्यव्ययीभावसमासान्ते टचि प्रत्यये प्रत्यक्षमिति सिध्यति तदत्र किं तत्पुरुषसमासाश्रयणेन ?

न चैवं स्पार्शनादिप्रत्यक्ष प्रत्यक्षशब्दस्यार्थो न स्यादिति वाच्यम्, अत्र हि व्युत्पत्तिनिमित्तमात्रप्रदर्शनार्थमक्षिशब्दः प्रयुज्यते, प्रत्यक्षशब्दस्य प्रवृत्तिनिमित्तं तु स्पार्शनादिप्रत्यक्षेऽप्यस्तीति तत्र प्रत्यक्षशब्दवाच्यतोपपत्तेः। कथमन्यथाऽक्षशब्दोपादानेऽप्यनिन्द्रियप्रत्यक्षस्य प्रत्यक्षशब्दवाच्यतोपपत्तिः स्यात्।

न चाव्ययीभावसमासाङ्गीकारे 'प्रत्यक्षोऽयं घटः, प्रत्यक्षा चेयं लता' इत्या-

---

शंका-जब प्रतिपूर्वक अक्षि शब्दसे "प्रति-पर-समनुभ्योऽक्ष्णः" इस सूत्रसे अव्ययीभावसमासान्तटच्-प्रत्यय होने पर प्रत्यक्ष शब्द सिद्ध होता है तो यहां तत्पुरुषसमास करनेकी आवश्यकता ही क्या है?। यदि इस पर ऐसा कहा जावे कि अक्षि-शब्दसे अव्ययीभाव-समासान्तटच्प्रत्यय करने पर जब प्रत्यक्ष शब्दकी सिद्धि की जावेगी तो एसी हालतमें स्पार्शनादि प्रत्यक्ष, प्रत्यक्ष-शब्दके वाच्यार्थ नहीं हो सकेंगे सो ऐसी आशंका भी उचित नहीं है, कारण कि यहां केवल व्युत्पत्ति-निमित्त दिखलाने के लिये ही अक्षि-शब्दका प्रयोग किया गया है। प्रत्यक्ष शब्दका प्रवृत्तिनिमित्त तो स्पार्शनादिप्रत्यक्षमें भी है ही, इस-लिये वहां प्रत्यक्ष-शब्दवाच्यता बन जावेगी। नहीं तो अक्ष शब्दके उपादानमें भी अनिन्द्रियप्रत्यक्षमें प्रत्यक्षशब्दवाच्यता कैसे आ सकेगी।

यदि फिर ऐसी शंका की जावे कि-जब अव्ययीभाव समास स्वीकृत

શંકા--જ્યારે પ્રતિપૂર્વક અક્ષિ શબ્દથી "प्रति-पर-समनुभ्योऽक्ष्णः" આ સૂત્રથી અવ્યયીભાવસમાસાન્ત 'टच्' પ્રત્યય હોવાથી પ્રત્યક્ષ શબ્દ સિદ્ધ થાય છે તો અહીં તત્પુરૂષસમાસ કરવાની આવશ્યકતા જ શી છે? જો અહીં એવું કહેવાય કે 'अक्षि' શબ્દથી અવ્યયીભાવસમાસાન્ત 'टच्' પ્રત્યય કરવાથી જ્યારે પ્રત્યક્ષ શબ્દની સિદ્ધિ કરાશે ત્યારે એવી હાલતમાં સ્પર્શનાદિપ્રત્યક્ષ પ્રત્યક્ષ શબ્દના વાચ્યાર્થ થઈ શકશે નહીં, તો એવી આશંકા પણ યોગ્ય નથી, કારણ કે અહીં ફક્ત વ્યુત્પત્તિનિમિત્ત બતાવવાને માટે જ અક્ષિ શબ્દનો પ્રયોગ કરાયો છે. પ્રત્યક્ષ શબ્દનું પ્રવૃત્તિનિમિત્ત તો સ્પર્શનાદિપ્રત્યક્ષમાં પણ છે જ, તેથી ત્યાં પ્રત્યક્ષશબ્દવાચ્યતા બની જશે. નહીં તો અક્ષ શબ્દના ઉપાદાનમાં પણ અનિન્દ્રિયપ્રત્યક્ષમાં પ્રત્યક્ષશબ્દવાચ્યતા કેવી રીતે આવી શકશે?

જો ફરીથી એવી શંકા કરવામાં આવે કે જ્યારે અવ્યયીભાવ સમાસ

दयः प्रयोगा न स्युः, अव्ययीभावस्य सदा नपुंसकत्वादिति वाच्यम्, प्रत्यक्षमस्यास्तीत्यर्थेऽर्श आदित्वादच्-प्रत्यये कृते तत्सिद्धिसंभवादिति चेत् अत्रोच्यते—एवमपि 'प्रत्यक्षो बोधः' 'प्रत्यक्षा बुद्धिः' इत्यादिप्रयोगाणां साधुत्वं न स्यात्, न ह्यत्र मत्वीयार्थो घटते, प्रत्यक्षात्मकज्ञानस्यैव बोधबुद्धिशब्दाभ्यामभिधानादिह तत्पुरुषसमासाश्रयणमेव श्रेय इति।

किया जायगा तो "प्रत्यक्षोऽयं घटः प्रत्यक्षा चेयं लता" इत्यादिक प्रयोग नहीं बन सकेंगे, कारण कि जो अव्ययीभाव समास होता है वह सदा नपुंसकलिङ्ग होता है सो ऐसी आशंका भी ठीक नहीं है, कारण कि "प्रत्यक्षमस्यास्तीति" इस अर्थमें "अर्शआदिभ्योऽच्" इस सूत्रद्वारा अच्-प्रत्यय होने पर "प्रत्यक्षः प्रत्यक्षा" इन शब्दों की सिद्धि हो जाती है तो फिर तत्पुरुष समास की आवश्यकता नहीं रहती।

उत्तर-अव्ययीभाव समास की सिद्धिके निमित्त ऐसा समाधान देना ठीक नहीं है। कारण कि ऐसा मानने पर भी "प्रत्यक्षो बोधः" "प्रत्यक्षा बुद्धिः" इत्यादि प्रयोगोंमें साधुता नहीं आ सकती है, क्यों कि यहां मत्वीय अर्थ घटित ही नहीं होता है। यहां तो प्रत्यक्षात्मक ज्ञानका ही बोध एवं बुद्धि शब्दों के द्वारा कथन किया गया है, इस लिये "प्रत्यक्ष" यहां तत्पुरुषसमास ही ठीक मानना चाहिये; अव्ययीभाव समास नहीं।

સ્વીકૃત કરવામાં આવશે તો "प्रत्यक्षोऽयं घटः, प्रत्यक्षा चेयं लता" વગેરે પ્રયોગ બની શકશે નહીં, કારણ કે જે અવ્યયીભાવ સમાસ હોય છે તે સદા નાન્યેતર જાતિમાં હોય છે તો એવી આશંકા પણ બરાબર નથી, કારણ કે "प्रत्यक्षमस्यास्तीति" આ અર્થમાં 'अर्श आदिभ्योऽच्' આ સૂત્રદ્વારા 'अच्' પ્રત્યય હોવાથી 'प्रत्यक्षः प्रत्यक्षा' એ શબ્દોની સિદ્ધિ થઈ જાય છે તો પછી તત્પુરૂષ સમાસની આવશ્યકતા રહેતી નથી.

ઉત્તર—અવ્યયીભાવ સમાસની સિદ્ધિના નિમિત્તે એવું સમાધાન દેવું બરાબર નથી. કારણ કે એવું માનવા છતાં પણ 'प्रत्यक्षो बोधः' 'प्रत्यक्षा बुद्धिः' વગેરે પ્રયોગોમાં સાધુતા આવી શકતી નથી, કારણ કે અહીં મત્વીય અર્થ બંધબેસતો જ થતો નથી. અહીં તો પ્રત્યક્ષાત્મક જ્ઞાનનું બોધ અને બુદ્ધિ શબ્દોના દ્વારા કથન કરાયું છે. તેથી 'પ્રત્યક્ષ' અહીં તત્પુરૂષસમાસ જ યોગ્ય માનવો જોઈએ, અવ્યયીભાવ સમાસ નહીં.

अथ परोक्षशब्दार्थः—

ननु परोक्षमित्यस्य कोऽर्थः ?, उच्यते—पराणि=अक्षापेक्षया भिन्नानि द्रव्येन्द्रिय द्रव्यमनांसि पुद्गलमयत्वेन रूपित्वात्, तेभ्यः परेभ्योऽक्षस्य जीवस्य यदुत्पद्यते, तत्परोक्षम्। परनिमित्तत्वात् परोक्षमिति जिनमते परिभाषितम् ॥सू०२॥

मूलम्—से किं तं पच्चक्खं ?। पच्चक्खं दुविहं पन्नत्तं, तं जहा—इंदियपच्चक्खं, नोइंदियपच्चक्खं च ॥ ३ ॥

छाया——अथ किं तत् प्रत्यक्षम् ?। प्रत्यक्षं द्विविधं प्रज्ञप्तम्। तद् यथा—इन्द्रिय-प्रत्यक्षं नोइन्द्रियप्रत्यक्षं च ॥ ३ ॥

'से किं तं पच्चक्खं' इत्यादि।

टीका——'से' इति मगधदेशप्रसिद्धोऽथशब्दार्थकः। तत्=पूर्वमुपदिष्टं, प्रत्यक्षं किम् ? पूर्वोक्तस्य प्रत्यक्षस्य किंस्वरूपम् ? इति शिष्यस्य प्रश्नवाक्यम्। उत्तरमाह—

परोक्ष शब्दका अर्थ—

परोक्ष शब्द का अर्थ इस प्रकार है—आत्मासे भिन्न द्रव्येन्द्रिय एवं द्रव्यमन हैं, क्यों कि ये पुद्गलमय होनेसे रूपी हैं। आत्मा अपौद्ग-लिक होनेसे रूपी नहीं है। इस अक्ष—आत्मा—से जो पर द्रव्येन्द्रिय एवं द्रव्यमन हैं उनसे जीव को—आत्मा को—जो ज्ञान उत्पन्न होता है वह परोक्ष है, प्रत्यक्षमें परनिमित्तसे ज्ञान उत्पन्न नहीं होता, किन्तु परोक्षमें निमि-त्तसे ज्ञान उत्पन्न होता है इसलिये उसका नाम परोक्ष है। ऐसा जिनेन्द्र देवका आदेश है ॥सू०२॥

'से किं तं पच्चक्खं' इत्यादि।

पूर्वोक्त प्रत्यक्षका क्या स्वरूप है ? इस प्रकार शिष्यका प्रश्न सुन-

પરોક્ષ શબ્દનો અર્થ—

પરોક્ષ શબ્દનો અર્થ આ પ્રમાણે છેઃ—દ્રવ્યેન્દ્રિય અને દ્રવ્યમન આત્માથી ભિન્ન છે. કારણ કે તેઓ પુદ્ગલમય હોવાથી રૂપી છે. આત્મા અપૌદ્ગલિક હોવાથી રૂપી નથી. આ અક્ષ—આત્માથી પર જે દ્રવ્યેન્દ્રિય અને દ્રવ્યમન છે આવા જીવ—આત્માને જે જ્ઞાન ઉત્પન્ન થાય છે તે પરોક્ષ છે. પ્રત્યક્ષમાં બીજાનાં નિમિત્તથી જ્ઞાન ઉત્પન્ન થતું નથી પણ પરોક્ષમાં બીજાનાં નિમિત્તથી જ્ઞાન ઉત્પન્ન થાય છે તેથી તેનું નામ પરોક્ષ છે. એવો જીનેન્દ્ર દેવનો આદેશ છે ॥સૂ. ૨॥

"से किं तं पच्चक्खं" ઇત્યાદિ.

પૂર્વોક્ત પ્રત્યક્ષનું શું સ્વરૂપ છે ? આ પ્રકારનો શિષ્યનો પ્રશ્ન સાંભળીને

—'पच्चक्खं दुविहं पन्नत्तं' इत्यादि। प्रत्यक्षं द्विविधं=द्विप्रकारकं, प्रज्ञप्तं=प्ररूपितं तीर्थङ्करैरिति भावः। तद् यथा=तद्-द्वैविध्यं यथाऽस्ति तथा कथयामीत्यर्थः। इन्द्रियप्रत्यक्षं, नोइन्द्रियप्रत्यक्षं चेति भेदद्वयेन प्रत्यक्षं द्विविधमित्यर्थः। इह द्रव्यभावरूपं द्विविधमिन्द्रियं गृह्यते, एकस्याप्यभावे इन्द्रियप्रत्यक्षत्वाऽनुपपत्तेः। तत्रेन्द्रियस्य प्रत्यक्षमिन्द्रियप्रत्यक्षम्, इन्द्रियनिमित्तकम् इन्द्रियसम्बन्धि वा यत् प्रत्यक्षं, तदिन्द्रियप्रत्यक्षम्। नोइन्द्रियप्रत्यक्षम् यद् इन्द्रियप्रत्यक्षं न भवति, तत् नोइन्द्रियप्रत्यक्षम्। नोशब्दः सर्वनिषेधवाची, तेन मनसोऽपि कथञ्चिदिन्द्रियत्वाङ्गीकारात् तन्निमित्तकं यद् ज्ञानं तत् परमार्थतः प्रत्यक्षं न भवतीति सिद्धम् ॥सू० ३॥

इन्द्रियप्रत्यक्षस्य पञ्चविधत्वमाह—'से किं तं इंदियपच्चक्खं' इत्यादि।

कर गुरु महाराज अब उसका उत्तर देनेका उपक्रम करते हुए कहते हैं कि हे शिष्य! तीर्थंकरोंने प्रत्यक्ष दो प्रकार का बतलाया है वह इस प्रकार है—

१ इन्द्रियप्रत्यक्ष और २ नोइन्द्रियप्रत्यक्ष। इन्द्रियप्रत्यक्ष वह है जो द्रव्य-इन्द्रिय और भाव-इन्द्रिय के द्वारा होता है। द्रव्यइन्द्रिय एवं भाव इन्द्रिय इन दोनोंमें से किसी एक के अभावमें इन्द्रियप्रत्यक्ष ज्ञान उत्पन्न नहीं हो सकता है। जिसमें इन इन्द्रियों की सहायता की अपेक्षा नहीं होती है वह नोइन्द्रियप्रत्यक्ष है। नोइन्द्रियमें 'नो' शब्द सर्व इन्द्रियों के निषेध का वाचक है। इससे यह सिद्ध हुआ कि अगर मनको भी कथंचित् इन्द्रियस्वरूप मान लिया जाय तो भी तज्जन्य ज्ञान परमार्थसे प्रत्यक्ष नहीं है ॥सू० ३॥

अब इन्द्रियप्रत्यक्ष को कहते हैं-'से किं तं इन्द्रियपच्चक्खं' इत्यादि।

ગુરૂમહારાજ તેનો ઉત્તર દેવાનો ઉપક્રમ કરતાં કહે છે કે હે શિષ્ય! તીર્થંકરોએ 'પ્રત્યક્ષ' બે પ્રકારના બતાવ્યાં છે તે આ પ્રમાણે છેઃ-(૧) ઈન્દ્રિય પ્રત્યક્ષ અને (૨) નોઈન્દ્રિયપ્રત્યક્ષ. ઈન્દ્રિયપ્રત્યક્ષ એ છે કે જે દ્રવ્ય ઈન્દ્રિય અને ભાવઇન્દ્રિયના દ્વારા થાય છે. દ્રવ્યઈન્દ્રિય અને ભાવઈન્દ્રિય, એ બન્નેમાંથી એકના અભાવમાં ઈન્દ્રિયપ્રત્યક્ષ જ્ઞાન ઉત્પન્ન થઈ શકતું નથી. જેમાં એ ઈન્દ્રિયોની સહાયતાની અપેક્ષા રહેતી નથી તે નોઇન્દ્રિયપ્રત્યક્ષ છે. નો ઈન્દ્રયમાં 'नो' શબ્દ સર્વ ઈન્દ્રિયોના નિષેધનો વાચક છે, આથી એ સાબિત થયું કે જો મનને પણ કથંચિત્ ઈન્દ્રિયસ્વરૂપ માનવામાં આવે તો પણ તજ્જન્ય જ્ઞાન પરમાર્થથી પ્રત્યક્ષ નથી ॥ સૂ૦૩ ॥

હવે ઈન્દ્રિયપ્રત્યક્ષને કહે છે—'से किं तं इदियपच्चक्खं' ઈત્યાદિ.

मूलम्—से किं तं इंदियपच्चक्खं ? इंदियपच्चक्खं पंचविहं पण्णत्तं, तं जहा—सोइंदियपच्चक्खं १, चक्खिंदियपच्चक्खं २, घाणिंदियपच्चक्खं ३, जिब्भिंदियपच्चक्खं ४, फासिंदियपच्चक्खं ५, से तं इंदियपच्चक्खं ॥ सू० ४ ॥

छाया—अथ किं तदिन्द्रियप्रत्यक्षम् ?। इन्द्रियप्रत्यक्षं पञ्चविधं प्रज्ञप्तं, तद् यथा-श्रोत्रेन्द्रियप्रत्यक्षं १, चक्षुरिन्द्रियप्रत्यक्षं २, घ्राणेन्द्रियप्रत्यक्षं ३, जिह्वेन्द्रियप्रत्यक्षं ४, स्पर्शेन्द्रियप्रत्यक्षं ५, तदेतद् इन्द्रियप्रत्यक्षम् ॥सू०४॥

टीका—'से-अथ' इति प्रश्नसूचकः। तत्-पूर्वोक्तम् इन्द्रियप्रत्यक्षं, किम् ?, पूर्वोक्तस्य इन्द्रियप्रत्यक्षस्य किं स्वरूपमिति। उत्तरमाह-इन्द्रियप्रत्यक्षं पञ्चविधं प्रज्ञप्तम्। तद् यथा-श्रोत्रेन्द्रियप्रत्यक्षमित्यादि। श्रोत्रेन्द्रियप्रत्यक्षं, श्रोत्रेन्द्रियप्रत्यक्षं=श्रोत्रेन्द्रियनिमित्तकमित्यर्थः। श्रोत्रेन्द्रियं निमित्तीकृत्य यदुत्पन्नं ज्ञानं तत् श्रोत्रेन्द्रियप्रत्यक्षमिति भावः। एवं चक्षुरिन्द्रियप्रत्यक्षादिषु भावनीयम्। तत्-

शिष्य गुरु महाराज से प्रश्न कर रहा है कि हे गुरु महाराज! इन्द्रियप्रत्यक्षका क्या स्वरूप है। उत्तरमें गुरु महाराज कहते हैं कि इन्द्रियप्रत्यक्ष पांच प्रकारका कहा है वह इस प्रकार है-जो प्रत्यक्ष श्रोत्रेन्द्रियके निमित्तसे होता है वह श्रोत्रेन्द्रिय-प्रत्यक्ष है, अर्थात् श्रोत्रेन्द्रियको निमित्त करके जो ज्ञान उत्पन्न होता है वह श्रोत्रेन्द्रिय प्रत्यक्ष है १। इसी प्रकार चक्षु आदि इन्द्रियोंसे होने वाले ज्ञानमें तत्तदिन्द्रियप्रत्यक्षता समझ लेनी चाहिये, अर्थात् चक्षु-इन्द्रियसे उत्पन्न हुए ज्ञानको चक्षु-इन्द्रिय-प्रत्यक्ष २, घ्राण-इन्द्रियसे उत्पन्न हुए ज्ञानको घ्राणेन्द्रिय-प्रत्यक्ष ३, जिह्वाइन्द्रियसे उत्पन्न ज्ञानको जिह्वेन्द्रिय-प्रत्यक्ष ४,

શિષ્ય ગુરૂમહારાજને પ્રશ્ન કરે છે કે હે ગુરૂમહારાજ! ઈન્દ્રિયપ્રત્યક્ષનુ શું સ્વરૂપ છે? ઉત્તરમાં ગુરૂમહારાજ કહે છે કે ઈન્દ્રિયપ્રત્યક્ષ પાંચ પ્રકારનાં કહ્યાં છે. તે આ પ્રમાણે છેઃ-(૧) જે શ્રોત્રેન્દ્રિયનાં નિમિત્તથી પ્રત્યક્ષ થાય છે તે શ્રોત્રેન્દ્રિયપ્રત્યક્ષ છે એટલે કે શ્રોત્રેન્દ્રિયને નિમિત્ત કરીને જે જ્ઞાન ઉત્પન્ન થાય છે તે શ્રોત્રેન્દ્રિયપ્રત્યક્ષ છે એ જ પ્રમાણે ચક્ષુ આદિ ઈન્દ્રિયોથી થનારાં જ્ઞાનમાં તે તે ઈન્દ્રિયની પ્રત્યક્ષતા સમજી લેવી જોઇએ. એટલે કે-(૨) ચક્ષુ ઈન્દ્રિયથી ઉત્પન્ન થયેલાં જ્ઞાનને ચક્ષુઈન્દ્રિયપ્રત્યક્ષ (૩) ઘ્રાણેન્દ્રિયથી ઉત્પન્ન થયેલાં જ્ઞાનને ઘ્રાણેન્દ્રિયપ્રત્યક્ષ (૪) જીહ્વા ઈન્દ્રિયથી ઉત્પન્ન થયેલા જ્ઞાનને

अनन्तरोक्तम्, एतत्-पञ्चविधं, प्रत्यक्षम् इन्द्रियप्रत्यक्षं भवतीति शेषः। एतच्च पञ्चविधं प्रत्यक्षम् व्यवहारादुच्यते, न तु परमार्थतः।

नन्वेतत् पञ्चविधं प्रत्यक्षं व्याहारिकमित्यत्र किं प्रमाणम्? इति चेत् उच्यते- अस्त्यत्रागमप्रमाणम्, तथाहि-इहैवाग्रे प्रत्यक्षभेदाभिधानानन्तरं वक्ष्यते। 'परोक्खं दुविहं पण्णत्तं, तं जहा-आभिणिवोहियणाणपरोक्खं च सुयणाणपरोक्खं च' इति।

तत्राभिनिवोधिकज्ञानमवग्रहादिरूपम्, अवग्रहादयश्च श्रोत्रेन्द्रियाद्याश्रितास्तत्र वर्णिताः, तद् यदि श्रोत्रादीन्द्रियाश्रितं ज्ञानं परमार्थतः प्रत्यक्ष, तत् कथमवग्रहादयः

तथा स्पर्शन-इन्द्रियसे उत्पन्न हुए ज्ञानको स्पर्शनेन्द्रिय-प्रत्यक्ष ५ जानना चाहिये। इस प्रकार इन पांच इन्द्रियोंसे जो भी ज्ञान होता है वह सब इन्द्रियप्रत्यक्ष है, ऐसा व्यवहारकी अपेक्षा जानना चाहिये, परमार्थकी अपेक्षासे नहीं।

शंका-इन्द्रियोंसे उत्पन्न यह पांच प्रकार का प्रत्यक्ष व्यावहारिक प्रत्यक्ष है, पारमार्थिक प्रत्यक्ष नहीं है, इसमें क्या प्रमाण है?

उत्तर-इन्द्रियोंसे होनेवाला ज्ञान वास्तवमें प्रत्यक्ष नहीं है किन्तु परोक्ष है, इस कथनमें आगमप्रमाण है। यहीं पर आगे प्रत्यक्ष के भेद कथन के बाद सूत्रकार ऐसा सूत्र कहेंगे-"परोक्खं दुविहं पण्णत्तं तंजहा- आभिणिवोहियणाणपरोक्खं सुयणाणपरोक्खं च" परोक्षज्ञान दो प्रकार है-एक आभिनिबोधिकज्ञान और दूसरा श्रुतज्ञान। अवग्रह, ईहा आदि रूप आभिनिबोधिक ज्ञान होता है। अवग्रहादिक ज्ञान श्रोत्र आदि

જીહ્વેન્દ્રિયપ્રત્યક્ષ તથા (૫) સ્પર્શનેન્દ્રિયથી ઉત્પન્ન થયેલાં જ્ઞાનને સ્પર્શનેન્દ્રિય પ્રત્યક્ષ જાણવું જોઈએ. આ પ્રમાણે તે પાંચ ઈન્દ્રિયોથી જે કોઇ જ્ઞાન થાય છે તે સર્વે ઈન્દ્રિયપ્રત્યક્ષ છે એમ વ્યવહારની અપેક્ષાએ જાણવું જોઈએ. પરમાર્થની અપેક્ષાએ નહીં.

શંકાઃ—ઈન્દ્રિયોથી ઉત્પન્ન થતું આ પાંચ પ્રકારનું પ્રત્યક્ષ વ્યવહારિક પ્રત્યક્ષ છે પારમાર્થિક પ્રત્યક્ષ નહીં તેની સાબિતી શી છે?

ઉત્તરઃ—ઈન્દ્રિયો વડે થનારૂં જ્ઞાન વાસ્તવમાં પ્રત્યક્ષ નહીં પણ પરોક્ષ છે. આ કથનમાં આગમ પ્રમાણરૂપ છે. અહીં આગળ પ્રત્યક્ષના ભેદ કહ્યાં પછી સૂત્રકાર આવું સૂત્ર કહેશે-"परोक्खं दुविहं पण्णत्तं तं जहा-आभिणिवोहियणाणपरोक्खं सुयणाणपरोक्खं च" પરોક્ષ જ્ઞાન બે પ્રકારનું છે (૧) આભિનિબોધિક જ્ઞાન અને બીજું શ્રુતજ્ઞાન. અવગ્રહ, ઈહા આદિરૂપ આભિનિબોધિક જ્ઞાન હોય છે. અવગ્રહાદિક જ્ઞાન શ્રોત્ર આદિ ઇન્દ્રિયોને આશ્રિત છે. જો એ

परोक्षत्वेनाग्रे वर्णिताः ?। तस्मादुत्तरत्रेन्द्रियाश्रितज्ञानस्य परोक्षत्वेन वर्णनादिदं निश्चीयते–' इन्द्रियाश्रितज्ञानं संव्यवहारमधिकृत्य प्रत्यक्षमुक्तं न तु परमार्थत इति। किञ्च—इन्द्रियमनोनिमित्तकं मतिश्रुताभ्यामन्यत् किमपि ज्ञानं भवतीति चेत् तर्हि षष्ठज्ञानप्रसंगादागमविरोधः स्यादिति परमार्थतः परोक्षमेवेदमिति।

नन्विह लोके बाह्यधूमादिहेतुकं यज्ज्ञानं, तदेव परोक्षमिति प्रसिद्धं, नत्विन्द्रियजन्यं, कथं तर्हि परमार्थतोऽस्य परोक्षत्व मन्यसे ? इति चेत्,

---

इन्द्रियोंके आश्रित हैं। यदि ये श्रोत्र आदि इन्द्रियाश्रित ज्ञान परमार्थतः प्रत्यक्ष माने गये होते तो फिर इन अवग्रहादिकों के आगे जो परोक्षरूपसे वर्णित किया गया है वह क्यों करते? प्रत्यक्षरूपसे ही उनका वर्णन करना चाहिये था, सो ऐसा नहीं है, इसलिये आगे आनेवाले इस इन्द्रियाश्रित ज्ञानके परोक्षरूपसे वर्णन होनेकी वजहसे यह निश्चित हो जाता है कि इन्द्रियाश्रित ज्ञानमें जो प्रत्यक्षता मानी जाती है वह व्यवहारकी अपेक्षासे ही मानी जाती है, परमार्थकी अपेक्षासे नहीं।

फिर भी–इन्द्रिय और मनके निमित्तसे होने वाला ज्ञान मतिज्ञान एवं श्रुतज्ञानसे भिन्न और दूसरा कोई ज्ञान माना जाय तो छ प्रकारका ज्ञान मानना पड़ेगा, और छ प्रकार का ज्ञान मानना आगमविरुद्ध होगा, इसलिये यह ज्ञान वस्तुतः परोक्ष ज्ञान ही है, प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं।

शंका—लोकमें तो ऐसी बात देखी जाती है कि जो ज्ञान बाह्य धूमादिक चिह्नोंकी सहायतासे होता है वही परोक्ष मानाजाता है, इन्द्रिय-

---

શ્રોત્ર આદિ ઈન્દ્રિયાશ્રિત જ્ઞાન પરમાર્થતઃ પ્રત્યક્ષ મનાયાં હોત તો પછી તે અવગ્રહાદિકોને આગળ જે પરોક્ષરૂપથી વર્ણિત કરાયાં છે તે શા માટે કહેત? પ્રત્યક્ષરૂપથી જ તેમનું વર્ણન કરવું જોઇતુ હતું. પણ એવું નથી તેથી આગળ આવનારૂં આ ઇન્દ્રિયાશ્રિત જ્ઞાનના પરોક્ષ રૂપે વર્ણન થવાના કારણે આ ચોક્કસ થઈ જાય છે કે ઇન્દ્રયાશ્રિત જ્ઞાનમાં જે પ્રત્યક્ષતા મનાય છે તે વ્યવહારની અપેક્ષાએ જ મનાય છે, પરમાર્થની અપેક્ષાએ નહીં.

વળી ઈન્દ્રિય અને મનનાં નિમિત્તથી થતું જ્ઞાન, મતિજ્ઞાન અને શ્રુતજ્ઞાનથી ભિન્ન ફરી બીજું કોઈ જ્ઞાન માનવામાં આવે તો જ્ઞાન છ પ્રકારનું માનવું પડશે, પણ છ પ્રકારનું જ્ઞાન માનવું તે આગમવિરૂદ્ધનું ગણાશે, તેથી આ જ્ઞાન વસ્તુતઃ પરોક્ષજ્ઞાન જ છે, પ્રત્યક્ષ જ્ઞાન નથી.

શંકાઃ—લોકમાં તો એવી વાત જોવામાં આવે છે કે જે જ્ઞાન બાહ્ય ધૂમાદિક ચિહ્નોની સહાયતાથી થાય છે એજ પરોક્ષ છે. ઇન્દ્રિયજન્ય જ્ઞાનને

उच्यते—इन्द्रियमनोभिर्बाह्यधूमादिनिमित्तकं यदुत्पद्यते ज्ञानं, तदेकान्ते नैवेन्द्रियाणामात्मनश्च परोक्षं, परनिमित्तत्वात्, धूमाद् वह्निज्ञानवत्, अतस्तत् परोक्षतया लोके प्रसिद्धमस्ति, यत्तु साक्षादिन्द्रियमनोनिमित्तकं, तदिन्द्रियाणामेव प्रत्यक्षम्, इन्द्रियाश्रितमेव (इन्द्रियमेवाश्रित्य) प्रत्यक्षम्; न त्वात्मनः, यथाऽवध्यादिकं ज्ञानं साक्षादात्मनिमित्तकम्। तत्र हि अन्यानपेक्षणादात्मैव साक्षात्कारणं भवति। तथेन्द्रियाणां बाह्यधूमादिपदार्थोऽपेक्षया यत् प्रत्यक्षं भवति तदिन्द्रियाणामेव, न त्वात्मनः; आत्मनस्तु तत् परोक्षमेव, परनिमित्तकत्वात् अनुमतिज्ञानवत्, इन्द्रियाणामपि तत् प्रत्यक्षं न परमार्थतः, किन्तु व्यवहारादेव। कथम्? इन्द्रियाणामचेतनत्वात्।

जन्य ज्ञान परोक्ष नहीं माना जाता, तो फिर आप इन्द्रियजन्य ज्ञानको परमार्थतः परोक्ष कैसे मानते हैं?।

उत्तर—इन्द्रिय और मनके द्वारा जो ज्ञान बाह्य धूमादिक चिह्नोंको निमित्त करके उत्पन्न होता है वह परके निमित्तसे होनेवाला होने के कारण एकान्तरूपसे परोक्ष माना गया है, कारण कि इस ज्ञानमें न तो साक्षात्कारण इन्द्रियाँ हैं और न आत्मा, धूमादिक बाह्य साधन ही उसमें साक्षात्कारण है। जिस ज्ञानमें इन्द्रियाँ एवं मन निमित्त होते हैं वह ज्ञान इन्द्रियप्रत्यक्ष माना गया है, कारण कि इन्द्रियप्रत्यक्षमें इन्द्रियां ही साक्षात्कारण होती हैं। यद्यपि परोक्षज्ञानमें भी इन्द्रियां निमित्त होती हैं परन्तु वे परंपरारूपसे निमित्त होती हैं, साक्षात् रूपसे नहीं। इन्द्रियप्रत्यक्षमें इन्द्रियां ही साक्षात्कारण होती हैं। इस-

---

પરોક્ષ મનાય, નહીં તો પછી આપ ઈન્દ્રિયજન્ય જ્ઞાનને પરમાર્થતઃ પરોક્ષ કેવી રીતે માનો છો?

ઉત્તરઃ—ઈન્દ્રિય અને મનનાં દ્વારા જે જ્ઞાન બાહ્ય ધૂમાદિક ચિહ્નોને નિમિત્ત કરીને ઉત્પન્ન થાય છે તે પરનાં નિમિત્તથી થનાર હોવાને કારણે એકાન્તરૂપથી પરોક્ષ મનાયું છે, કારણ કે આ જ્ઞાનમાં સાક્ષાત્કારણ ઈન્દ્રિયો પણ નથી અને આત્મા પણ નથી.

ધૂમાદિક બાહ્ય સાધન જ તેમાં સાક્ષાત્ કારણ છે. જે જ્ઞાનમાં ઈન્દ્રિયો અને મન નિમિત્તરૂપ હોય છે તે જ્ઞાન ઇન્દ્રિયપ્રત્યક્ષ મનાયું છે, કારણ કે ઇન્દ્રિયપ્રત્યક્ષમાં ઈન્દ્રિયો જ સાક્ષાત્કારણ હોય છે. જો કે પરોક્ષ જ્ઞાનમાં પણ ઈન્દ્રિયો નિમિત્ત હોય છે પણ તેઓ પરંપરારૂપથી નિમિત્ત થાય છે, સાક્ષાતરૂપથી નહીં. ઈન્દ્રિય પ્રત્યક્ષમાં ઈન્દ્રિયો જ સાક્ષાત્કારણ હોય છે

लिये वह इन्द्रियों का ही प्रत्यक्ष माना जाता है, आत्मा का नहीं। आत्मा ही जिस ज्ञान की उत्पत्तिमें साक्षात्कारण होता है वह ज्ञान ही आत्माका प्रत्यक्ष माना गया है, जैसे अवधिज्ञान आदि। आत्मा के प्रत्यक्षमें आत्माके सिवाय अन्य इन्द्रियादिक साक्षात् या परंपरारूपसे भी कारण नहीं होते हैं, केवल आत्मा ही साक्षात्कारण होता है। इसी तरह बाह्य धूमादिक चिह्न जिस ज्ञानमें साक्षात्कारण नहीं होते हैं, केवल इन्द्रियां ही साक्षात्कारण होती हैं वह इन्द्रियोंका प्रत्यक्ष है–इन्द्रियप्रत्यक्ष है, आत्मप्रत्यक्ष नहीं। आत्मा के लिये तो वह परोक्ष ही है, क्योंकि यहां परनिमित्तता है, आत्मनिमित्तता नहीं, अर्थात्–आत्मासे भिन्न जो इन्द्रियादिक हैं वे आत्मासे पर हैं, और इन्हीं पररूप इन्द्रियोंसे वह प्रत्यक्ष ज्ञान उत्पन्न हुआ है अतः वह परोक्ष ही है, जिस प्रकार अनुमानज्ञान बाह्य लिङ्गादिकों से होता है, और इसीलिये वह परोक्ष माना जाता है। यहां जो इन्द्रियोंके साक्षात्कारण होने की वजहसे होने वाले ज्ञान को प्रत्यक्ष कहा है वह परमार्थतः नहीं, किन्तु व्यवहार की अपेक्षा से ही कहा गया है, ऐसा जानना चाहिये, क्यों कि इन्द्रियां अचेतन हैं।

તેથી તે ઇન્દ્રિયોનું પ્રત્યક્ષ મનાય છે. આત્માનું નહીં. આત્મા જ જે જ્ઞાનની ઉત્પત્તિમાં સાક્ષાત્કારણ હોય છે તે જ્ઞાન જ આત્માનું પ્રત્યક્ષ મનાયું છે, જેવાંકે અવધિજ્ઞાન આદિ. આત્માના પ્રત્યક્ષમાં આત્મા સિવાય અન્ય ઇન્દ્રિયાદિક સાક્ષાત્ કે પરંપરા રૂપથી પણ કારણ હોતાં નથી, કેવળ આત્મા જ સાક્ષાત્ કારણ હોય છે. આ રીતે બાહ્ય ધૂમાદિક ચિહ્ન જે જ્ઞાનમાં સાક્ષાત્કારણ હોતાં નથી કેવળ ઇન્દ્રિયો જ સાક્ષાત્કારણ હોય છે તે ઇન્દ્રિયોનું પ્રત્યક્ષ છે–ઇન્દ્રિયપ્રત્યક્ષ છે, આત્મપ્રત્યક્ષ નહીં. આત્માને માટે તો તે પરોક્ષ જ છે, કારણ કે અહીં પરનિમિત્તતા છે, આત્મનિમિત્તતા નથી. એટલે કે આત્માથી ભિન્ન જે ઇન્દ્રિયાદિક છે તે આત્માથી પર છે અને એજ પરરૂપ ઇન્દ્રિયોથી તે પ્રત્યક્ષ જ્ઞાન ઉત્પન્ન થયું છે, તેથી તે પરોક્ષ જ છે. જે રીતે અનુમાન જ્ઞાન બાહ્ય લિંગાદિકોથી થાય છે, અને તેથી તે પરોક્ષ મનાય છે. અહીં જે ઇન્દ્રિયોના સાક્ષાત્કારણ હોવાને કારણે થનારા જ્ઞાનને પ્રત્યક્ષ કહ્યું છે તે પરમાર્થતઃ નહીં પણ વ્યવહારની અપેક્ષાએ જ કહેવાયું છે, એમ માનવું જોઈએ, કારણ કે ઇન્દ્રિયો અચેતન છે.

ननु स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्राणीन्द्रियाणीति क्रमः, अयमेव च समीचीनः, पूर्वपूर्वलाभे सत्येवोत्तरोत्तरलाभसंभवात्, ततः किमर्थमुत्क्रमोपन्यासः कृतः? इति चेत्, उच्यते-" अस्ति पूर्वानुपूर्वी, अस्ति पश्चानुपूर्वी " इति न्यायप्रदर्शनार्थोऽयमुत्क्रमोपन्यासः कृतः। अपि च—शेषेन्द्रियापेक्षया श्रोत्रेन्द्रियं प्रधानं, श्रोत्रेन्द्रियस्य हि यत् प्रत्यक्षं तदितरेन्द्रियप्रत्यक्षापेक्षया स्पष्टसंवेदनं भवति। स्पष्टसंवेदनं चोपवर्ण्यमानं शिष्यः सुखेनावबुध्यते, ततः स्पष्टसंवेदनद्वारेण सुखपूर्वकाववोधप्राप्तिहेतुत्वादिह श्रोत्रेन्द्रियादिक्रम उक्तः॥ सू० ४॥

शंका—स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र, इस प्रकार इन्द्रियों का क्रम है और यही समीचीन है, कारण कि पूर्व पूर्व इन्द्रियोंके लाभ होने पर ही उत्तर२की इन्द्रियोंका लाभ होता है, तो फिर सूत्रमें इस प्रकारका क्रम न रखकर व्युत्क्रमरूपसे उपन्यास क्यों किया गया है?।

उत्तर—"पूर्वानुपूर्वी है तथा पश्चानुपूर्वी भी है" इस न्याय को दिखाने के लिये सूत्रकारने सूत्रमें यह व्युत्क्रमरूपसे उपन्यास किया है। अर्थात्-पूर्वानुपूर्वीरूप तथा पश्चानुपूर्वीरूपसे क्रम दो प्रकार का होता है। दोनों प्रकारसे वर्णन करनेमें क्रमका विघात नहीं होता है। फिर यह कि समस्त इन्द्रियोंमें श्रोत्र इन्द्रिय प्रधान है, कारण कि श्रोत्रेन्द्रियका जो प्रत्यक्ष होता है वह इतर इन्द्रियोंसे होनेवाले प्रत्यक्षकी अपेक्षा अधिक स्पष्ट होता है। शिष्यजन वर्ण्यमान विषय को श्रोत्र इन्द्रिय द्वारा सुनकर ही उस विषयको अच्छी तरह जानते हैं। इसलिये स्पष्ट संवेदन द्वारा

શંકાઃ—સ્પર્શન, રસના, ઘ્રાણ, ચક્ષુ, અને શ્રોત્ર, આ પ્રમાણે ઈન્દ્રિયોનો ક્રમ છે અને એજ સમીચીન છે કારણ કે પૂર્વ પૂર્વ ઇન્દ્રિયોના લાભ થવાથી જ ઉત્તર, ઉત્તરની ઈન્દ્રિયોનો લાભ થાય છે, તો પછી સૂત્રમાં આ પ્રકારનો ક્રમ ન રાખતાં ઉલટા ક્રમથી ઉપન્યાસ કેમ કરાયો છે?

ઉત્તરઃ—" પૂર્વાનુપૂર્વી છે તથા પશ્ચાનુપૂર્વી પણ છે" આ ન્યાયને દર્શાવવા માટે સૂત્રકારે સૂત્રમાં આ વ્યુત્ક્રમ (અવળા) રૂપથી ઉપન્યાસ કર્યો છે, એટલે કે પૂર્વાનુપૂર્વીરૂપ તથા પશ્ચાનુપૂર્વીરૂપથી બે પ્રકારનો ક્રમ થાય છે. બન્ને રીતે વર્ણન કરવામાં ક્રમનો વિઘાત થતો નથી. ફરીએ કે સર્વે ઈન્દ્રિયોમાં શ્રોત્રેન્દ્રિય મુખ્ય છે, કારણ કે શ્રોત્રેન્દ્રિયનું જે પ્રત્યક્ષ હોય છે તે બીજી ઇન્દ્રિયોથી થનારાં પ્રત્યક્ષની અપેક્ષાએ વધારે સ્પષ્ટ હોય છે. શિષ્યજન વર્ણ્યમાન વિષયને 'શ્રોત્ર' ઈન્દ્રિય દ્વારા સાંભળીને જ તે વિષયને સારી રીતે જાણે છે. તેથી સ્પષ્ટ

मूलम्—से किं तं नोइंदियपच्चक्खं ? नोइंदियपच्चक्खं तिविहं पण्णत्तं, तं जहा—ओहिनाणपच्चक्खं, मणपज्जवनाण-पच्चक्खं केवलनाणपच्चक्खं ॥ सू० ५ ॥

छाया—अथ किं तत् नोइन्द्रियप्रत्यक्षम् ?, नोइन्द्रियप्रत्यक्षं त्रिविधं प्रज्ञप्तम् । तद् यथा—अवधिज्ञानप्रत्यक्षं १, मनःपर्यवज्ञानप्रत्यक्षं २, केवलज्ञान-प्रत्यक्षम् ३ ॥ सू० ५ ॥

'से किं तं नोइंदियपच्चक्खं' इत्यादि ।

टीका—'से-अथ' इति प्रश्नार्थकः । तत्-पूर्वोक्तं, नोइन्द्रियप्रत्यक्षम्= इन्द्रियप्रत्यक्षभिन्नं प्रत्यक्षं, किम्?=इन्द्रियप्रत्यक्षभिन्नस्य प्रत्यक्षस्य स्वरूपं किमस्ति?। उत्तरमाह—'नोइंदियपच्चक्खं तिविहं पण्णत्तं' इत्यादि । एतत् सुगमम् ॥सू०५॥

मूलम्—से किं तं ओहिनाणपच्चक्खं ?, ओहिनाणपच्चक्खं दुविहं पण्णत्तं, तं जहा—भवपच्चइयं च खाओवसमियं च ॥सू०६॥

छाया—अथ किं तदवधिज्ञानप्रत्यक्षम्?, अवधिज्ञानप्रत्यक्षं द्विविधं प्रज्ञप्तम् । तद् यथा—भवप्रत्ययिकं च, क्षायोपशमिकं च ॥ ६ ॥

सुखपूर्वक अवबोध की प्राप्तिका हेतु होनेसे यहां सूत्रमें श्रोत्रेन्द्रियादिका क्रम रखा गया है ॥ सू०४ ॥

'से किं तं नोइंदियपच्चक्खं' इत्यादि ।

पूर्वोक्त नोइन्द्रियप्रत्यक्ष का क्या स्वरूप है, ? उत्तर—नोइन्द्रिय-प्रत्यक्ष—जो इन्द्रियप्रत्यक्ष से सर्वथा भिन्न माना गया है उसका स्वरूप अवधिज्ञान, मनःपर्यवज्ञान एवं केवलज्ञान रूप है । यहां नो-शब्द इन्द्रियोंकी सहायतासे सर्वथा रहित अर्थका बोधक है । इन्द्रियों की सहायता—अवधिज्ञान, मनःपर्यवज्ञान एवं केवलज्ञानमें बिलकुल नहीं होती है, इसलिये ये ही तीन ज्ञान नोइन्द्रियप्रत्यक्ष कहे गये हैं ॥सू ५॥

સંવેદનદ્વારા સુખપૂર્વક અવબોધની પ્રાપ્તિનો હેતુ હોવાથી અહીં સૂત્રમાં શ્રોત્રેન્દ્રિ-યાદિકનો ક્રમ રાખવામાં આવેલ છે. ॥સૂ૦૪॥

"से किं तं नोइंदियपच्चक्खं" ઈત્યાદિ.

પૂર્વોક્ત 'નોઈન્દ્રિયપ્રત્યક્ષ' નું શું સ્વરૂપ છે? ઉત્તરઃ—'નોઈન્દ્રિય-પ્રત્યક્ષ' જે ઈન્દ્રિયપ્રત્યક્ષથી સદંતર ભિન્ન મનાયું છે, તેનુ સ્વરૂપ અવધિજ્ઞાન, મનઃપર્યવજ્ઞાન અને કેવળજ્ઞાન રૂપ છે. અહીં 'નો' શબ્દ ઈન્દ્રિયોની સહાયતાથી સદંતર રહિત અર્થનો બોધક છે. અવધિજ્ઞાન, મનઃપર્યવજ્ઞાન અને કેવળજ્ઞાનમાં ઈન્દ્રિયોની સહાયતા બિલકુલ હોતી નથી તેથી જ તે ત્રણ જ્ઞાનને નોઈન્દ્રિય-પ્રત્યક્ષ કહેલ છે. ॥ સૂ૦૫ ॥

'से किं तं ओहिनाणपच्चक्खं' इत्यादि।

टीका--शिष्यः पृच्छति-अथ किं तदवधिज्ञानप्रत्यक्षम्?, पूर्वनिर्दिष्टस्यावधिज्ञानप्रत्यक्षस्य किं स्वरूपमिति प्रश्नः। उत्तरमाह-'ओहिनाणपच्चक्खं दुविहं पण्णत्तं' इत्यादि। अवधिज्ञानप्रत्यक्षं द्विविधं प्रज्ञप्तम्। तद् द्वैविध्यं प्रदर्शयितुमाह-'त जहा' इत्यादि, 'तद् यथा-भवप्रत्ययिकं च क्षायोपशमिकं चेति। भवनं भवःजन्म, स प्रत्ययः कारणं यस्य तद् भवप्रत्ययम्।

यद्वा-भवन्ति-वर्तन्ते कर्मवशवर्तिनः प्राणिनोऽस्मिन्निति भवः=नरकादिजन्म, भव एव प्रत्ययः=कारणं यस्य तद् भवप्रत्ययम्। प्रत्ययशब्दश्चेह कारणेऽर्थे वर्तते।

उक्तञ्च--'प्रत्ययः शपथ-ज्ञान-हेतु-विश्वास-निश्चये' इति।

तदेव भवप्रत्ययिकं जन्महेतुकमित्यर्थः। चकारः पूर्ववत् स्वगतदेवनारकाश्रित-भेदद्वयसूचकः। तथा-क्षयश्चोपशमश्च क्षयोपशमौ, ताभ्यां निर्वृत्तं क्षायोपमिकं चेति।

'से किं तं ओहिनाणपच्चक्खं' इत्यादि।

शिष्य यहां प्रश्न करता हुआ पूछ रहा है कि हे भदन्त! जिस अवधि ज्ञान को आपने अभी नोइन्द्रियप्रत्यक्ष कहा है उसका क्या स्वरूप है? उत्तरमें गुरुमहाराज कहते हैं कि वह अवधिज्ञान दो प्रकार का है-१ भवप्रत्ययिक, २ क्षायोपशमिक। जिस अवधिज्ञान की उत्पत्तिमें जन्म कारण होता है वह भवप्रत्ययिक अवधिज्ञान है। यह अवधिज्ञान देव और नारकियों के होता है, कारण कि वहां जन्म लेते ही जीव को अवधिज्ञान उत्पन्न हो जाता है। क्षय और उपशम से जो अवधिज्ञान उत्पन्न होता है वह क्षायोपशमिक अवधिज्ञान है। यह अवधि ज्ञान तिर्यञ्च और मनुष्यगति के जीवों को होता है। क्षयोपशम-शब्दका अर्थ 'क्षयसहित उपशम' ऐसा है। उदयप्राप्त कर्म का विनाश क्षय है,

---

"से किं तं ओहिनाणपच्चक्खं" ઇત્યાદિ.

શિષ્ય અહીં પ્રશ્ન કરે છે કે હે ભદન્ત! જે અવધિજ્ઞાનને આપે હમણાં જ 'નોઇન્દ્રિયપ્રત્યક્ષ' કહ્યું છે તેનું શું સ્વરૂપ છે? ઉત્તરમાં ગુરૂ મહારાજ કહે છે કે તે અવધિજ્ઞાન બે પ્રકારનુ છે. (૧) ભવપ્રત્યયિક (૨) ક્ષાયોપશમિક. જે અવધિજ્ઞાનની ઉત્પત્તિમાં જન્મ કારણરૂપ હોય છે તે ભવપ્રત્યયિક અવધિજ્ઞાન છે. આ અવધિજ્ઞાન દેવ અને નારકીઓને થાય છે, કારણ કે ત્યાં જન્મ લેતાં જ જીવને અવધિજ્ઞાન ઉત્પન્ન થઈ જાય છે. ક્ષય અને ઉપશમથી જે અવધિજ્ઞાન ઉત્પન્ન થાય છે તે ક્ષાયોપશમિક અવધિજ્ઞાન છે. આ અવધિજ્ઞાન તિર્યંચ અને મનુષ્યગતિના જીવોને થાય છે. ક્ષયોપશમ શબ્દનો અર્થ "ક્ષયસહિત ઉપશમ" એવો છે. ઉદયપ્રાપ્ત કર્મનો વિનાશ ક્ષય છે, ઉદયનો નિરોધ ઉપશમ છે.

यद्वा—क्षयेण=उदयप्राप्तकर्मणो विनाशेन सहितः क्षयसहितः, उपशमः=उदयनिरोधः, क्षयसहितश्चासावुपशमः क्षयोपशमः। इह मध्यमपदलोपी समासः शाकपार्थिवादिवत्। यद्वा–विवक्षितज्ञानादिगुणविघातकस्य कर्मण उदयप्राप्तस्य क्षयः=सर्वथाऽपगमः, अनुदीर्णस्य तु तस्यैव उपशमः=विपाकत उदयाभावः। क्षयोपलक्षित उपशमः क्षयोपशमः। क्षयोपशमे भवं क्षायोपशमिकम् ॥ सू०६ ॥

मूलम्—**से किं तं भवपच्चइयं ?, भवपच्चइयं दुण्हं, तं जहा–देवाण य, नेरइयाण य ॥ सू० ७॥**

छाया—-अथ किं तद् भवप्रत्ययिकम् ?। भवप्रत्ययिकं द्वयोः, तद् यथा–देवानां च नैरयिकाणां च ॥ सू०७ ॥

'से किं तं भवपच्चइयं' इत्यादि।

टीका—शिष्यः पृच्छति–अथ किं तद् भवप्रत्ययिकम् ?=पूर्वनिर्दिष्टस्य भवप्रत्ययिकस्य किं स्वरूपमिति। उत्तरमाह–'भवपच्चइयं दुण्हं' इत्यादि। भवप्रत्य-

---

उदय का निरोध उपशम है। क्षयसहितउपशममें मध्यमपदलोपी समास हुआ है, जैसे शाकपार्थिवमें होता है। अथवा–विवक्षित ज्ञानादिक गुण के विघातक कर्म का कि जो उदयागत है सर्वथा विनाश होना, एवं उसी का जो जितना अनुदीर्ण–उदयमें प्राप्त नहीं हुआ–है उसका उपशम होना–विपाक की अपेक्षा उदय का अभाव होना इसका नाम क्षयोपशम है। इस क्षयोपशम के होने पर जो अवधिज्ञान होता है वह क्षायोपशमिक अवधिज्ञान है ॥सू०६॥

'से किं तं भवपच्चइयं' इत्यादि।

शिष्य पूछता है–हे गुरुमहाराज ! भवप्रत्ययिक अवधिज्ञान का क्या स्वरूप है ? उत्तरमें गुरुमहाराज कहते हैं कि–यह भवप्रत्ययिक अवधि-

---

ક્ષયસહિત ઉપશમમાં મધ્યમપદલોપી સમાસ થયો છે જેવી રીતે શાકપાર્થિવમાં થાય છે. અથવા વિવક્ષિત જ્ઞાનાદિક ગુણના વિઘાતક કર્મ કે જે ઉદયાગત છે, તેનો સદંતર વિનાશ થવો અને જેટલા અનુદીર્ણ–ઉદય પામ્યાં નથી–તેનો ઉપશમ થવો–વિપાકની અપેક્ષાએ ઉદયનો અભાવ હોવો એનુ નામ ક્ષયોપશમ છે. આ ક્ષયોપશમના હોવાથી જે અવધિજ્ઞાન થાય છે તે ક્ષાયોપશમિક અવધિજ્ઞાન છે. ॥સૂ૬॥

'से किं तं भवपच्चइयं' ઈત્યાદિ.

શિષ્ય પૂછે છે–હે ગુરુ મહારાજ ! ભવપ્રત્યયિક અવધિજ્ઞાનનું શું સ્વરૂપ છે ? જવાબમાં ગુરુ મહારાજ કહે છે કે:–આ ભવપ્રત્યયિક અવધિજ્ઞાન બે જીવોને

यिकं द्वयोः=जीवसमूहयोर्भवति। कयोर्द्वयोरिति जिज्ञासायामाह-'तंजहा' इत्यादि।

तद् यथा-देवानां च नैरयिकाणां च। भवनिमित्तकमवधिज्ञानं देवानां नारकाणां चेत्युभयेषां भवतीत्यर्थः। चकार उभयत्र स्वगताऽनेकभेदसंसूचकः।

नन्ववधिज्ञानं क्षायोपशमिके भावे वर्तते, नारकादिभवश्चौदयिके, तत् कथं देवादीनामवधिज्ञानं भवप्रत्ययिकमिति व्यपदिश्यते?। नैष दोषः संभवति, अवधिज्ञानं हि परमार्थतः क्षायोपशमिकमेव, किन्तु अवधिज्ञानावरणीयकर्मक्षयोपशमो देवनारकभवयोरवश्यंभावीत्यवधिज्ञानं देवनारकाणामवश्यं भवत्येव, पक्षिणामाकाशगमनलब्धिवत्, तस्माद् भवप्रत्ययमिति व्यपदिश्यते। यद्वा-अवधिज्ञानं प्रति यो भवः साक्षात्कारणं तमधिकृत्य भवप्रत्ययिकमिति भेदोपन्यासः कृतः॥ सू०७॥

शिष्यः पृच्छति-'से किं तं खाओवसमियं' इत्यादि।

ज्ञान दो जीवोंके होता है। वे दो जीव ये हैं-देव और नारकी। भवप्रत्ययिक अवधिज्ञान देव और नारकियों के होता है।

शंका—अवधिज्ञान क्षायोपशमिक भावमें गिनाया गया है, तथा नारकादिकभव औदयिक भावमें, तब फिर देवादिकोंका अवधिज्ञान भवप्रत्ययिक कैसे कहला सकता है? वह तो क्षायोपशमिक ही कहलावेगा।

उत्तर—अवधिज्ञान परमार्थतः क्षायोपशमिक ही होता है, किन्तु 'अवधिज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम देव और नारकियों के भवमें अवश्य ही होता है' इस अपेक्षा से उस अवधिज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम में भव साक्षात्कारण होने से उसको भवप्रत्ययिक कहा है, जैसे पक्षियों में उड़ना भवप्रत्ययिक कहा जाता है, शिक्षा आदि गुणनिमित्तक नहीं। इसी प्रकार देव नारकियों का अवधिज्ञान तपस्या आदि द्वारा होनेवाले अवधिज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशमनिमित्तक नहीं

થાય છે. તે બે જીવ આ છે-દેવ અને નારકી. ભવપ્રત્યયિક અવધિજ્ઞાન દેવ અને નારકીઓને થાય છે.

શંકા:—અવધિજ્ઞાન ક્ષાયોપશમિક ભાવમાં ગણાવ્યું છે તથા નારકાદિક ભવ ઔદયિક ભાવમાં ગણાવેલ છે તો પછી દેવાદિકોનું અવધિજ્ઞાન ભવપ્રત્યયિક કેવી રીતે કહી શકાય? તે તો ક્ષાયોપશમિક જ કહેવાશે.

ઉત્તર:—અવધિજ્ઞાન પરમાર્થતઃ ક્ષાયોપશમિક જ હોય છે, પણ "અવધિજ્ઞાનાવરણીય કર્મનો ક્ષયોપશમ દેવ અને નારકીઓના ભવોમાં અવશ્ય થાય છે જ" આ અપેક્ષાએ તે અવધિજ્ઞાનાવરણીય કર્મના ક્ષયોપશમમાં ભવ સાક્ષાત્કારણ હોવાથી તેને ભવપ્રત્યયિક કહ્યું છે, જેવી રીતે પક્ષીઓમાં 'ઉડવું' તે ભવપ્રત્યયિક કહેવાય છે શિક્ષા આદિ ગુણનિમિત્તક નહીં. એજ પ્રમાણે દેવ, નારકીઓનું અવધિજ્ઞાન તપસ્યા આદિ દ્વારા થનારાં અવધિજ્ઞાનાવરણીય કર્મના

मूलम्—से किं तं खाओवसमियं ?। खाओवसमियं दुण्हं। तं जहा—मणुस्साण य, पंचेंदियतिरिक्खजोणियाण य। को हेऊ खाओपसमियं ?। खाओवसमियं तयावरणिज्जाणं कम्माणं उदिण्णाणं खएणं, अणुदिण्णाणं उवसमेणं ओहिनाणं समुप्पज्जइ ॥ सू० ८॥

छाया—अथ किं तत् क्षायोपशमिकम् ?। क्षायोपशमिकं द्वयोः। तद् यथा—मनुष्याणां च पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकानां च। को हेतुः क्षायोपशमिकं ?, क्षायोपशमिकं तदावरणीयानां कर्मणाम् उदीर्णानां क्षयेण, अनुदीर्णानामुपशमेन, अवधिज्ञानं समुत्पद्यते ॥ सू० ८॥

टीका—'अथ किं तत् क्षायोपशमिकम्' इति। क्षायोपशमिकस्यावधिज्ञानस्य किं स्वरूप ? मिति। उत्तरमाह—'खाओवसमियं दुण्हं' इत्यादि। क्षायोपशमिकं=क्षयोपशमनिमित्तकं द्वयोः=जीवसमूहयोः। कयोर्द्वयोः ? इति जिज्ञासायामाह—'तं जहा' इत्यादि। तद् यथा—मनुष्याणां च पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकानां च। क्षायोपशमिकमवधिज्ञानं मनुष्याणां पञ्चेन्द्रियतिरश्चां चेत्युभयेषां भवतीत्यर्थः।

पुनरपि शिष्यः पृच्छति—'को हेऊ' इत्यादि। को हेतुः क्षायोपशमिकम् ? इति। अवधिज्ञानं क्षायोपशमिकं भवतीत्यत्र किं कारणमिति प्रश्नः। उत्तरमाह—

होता है, किन्तु वहांके भवनिमित्तक ही होता है, अतः इस अपेक्षा वह भवप्रत्ययिक कहा जाता है॥ सू०७॥

'से किं तं खाओवसमियं' इत्यादि।

शिष्य पूछता है—क्षायोपशमिक अवधिज्ञान का क्या स्वरूप है? गुरु कहते हैं—क्षायोपशमिक अवधिज्ञान मनुष्यों के तथा पंचेन्द्रियतिर्यञ्च जीवों के होता है।

प्रश्न—क्षायोपशमिक अवधिज्ञान का क्या स्वरूप है ?

ક્ષયોપશમનિમિત્તક હોતું નથી, પણ ત્યાંના ભવનિમિત્તક જ થાય છે, તેથી એ અપેક્ષાએ તે ભવપ્રત્યયિક કહેવાય છે. ॥ સૂ ૭ ॥

"से किं तं खाओवसमियं" ઇત્યાદિ.

શિષ્ય પૂછે છે—" ક્ષાયોપશમિક અવધિજ્ઞાનનું શું સ્વરૂપ છે? ગુરુ કહે છેઃ—ક્ષાયોપશમિક અવધિજ્ઞાન મનુષ્યો તથા પંચેન્દ્રિયતિર્યંચ જીવોને થાય છે.

પ્રશ્નઃ—ક્ષાયોપશમિક અવધિજ્ઞાનનું શું સ્વરૂપ છે? ઉત્તર—અવધિજ્ઞાનના

'खाओवसमियं' इत्यादि। तदावरणीयानाम्=तस्य-अवधिज्ञानस्य, यानि आवरणीयानि-आवरकाणि, तेषां कर्मणां मध्ये, उदीर्णानाम्=उदयावलिकां प्राप्तानां कर्मदलिकानां क्षयेण=क्षयकरणेन, तथा-अनुदीर्णानाम्-अवधिज्ञानावरणीयकर्मसु यान्यनुदितानि आत्मनि स्थितानि कर्मदलिकानि तेषाम्, उपशमेन=उपशमनकरणेन विपाकोदयनिरोधेन, यदवधिज्ञानं समुत्पद्यते, तदवधिज्ञानं क्षायोपशमिकमित्युच्यते। अनेन क्षायोपशमिकमवधिज्ञानं प्रति अवधिज्ञानावरणीयकर्मणां क्षयोपशमरूपो हेतुरुक्तः। क्षयोपशमश्च देशघातिरसस्पर्धकानामुदये सति भवति न तु सर्वघातिरसस्पर्धकानाम्।

मनुष्याणां पञ्चेन्द्रियतिरश्चां चावधिज्ञानं नावश्यंभावि, तस्मात् समानेऽपि, क्षायोपशमिकत्वे भवप्रत्ययिकादिदं भिद्यते। परमार्थतस्तु सकलमप्यवधिज्ञानं

उत्तर--अवधिज्ञान के आवारक जितने कर्म हैं उनके उदीर्ण दलिकों का क्षय होता है, तथा अनुदीर्ण दलिकों का सदवस्थारूप उपशम रहता है, इस स्थितिमें जो अवधिज्ञान होता है वह क्षायोपशमिक अवधिज्ञान है। इस तरह अवधिज्ञान के प्रति अवधिज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम हेतुरूपसे कहा गया है। अवधिज्ञानमें अवधिज्ञानावरणीय कर्म के देशघातिरसस्पर्धकों (कर्मांशों) का उदय तथा सर्वघातिरसस्पर्धकों का कुछ का क्षय और कुछ का सदवस्थारूप उपशम रहता है। मनुष्यों के तथा पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों के अवधिज्ञान अवश्यंभावी नहीं होता है, अर्थात् क्षायोपशमिक अवधिज्ञान समस्त मनुष्य एवं पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों के होता ही है, ऐसा नियम नहीं है किन्तु जिनके अवधिज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम होता है उन्हीं के यह होता है, ऐसा नियम है, अतः भवप्रत्ययिक अवधिज्ञान जो समस्त देव और नारकियों के अवश्यंभावी

આવારક જેટલાં કર્મ છે તેમના ઉદીર્ણ દલિકોનો ક્ષય થાય છે અને અનુદીર્ણ દલિકોનો સદવસ્થારૂપ ઉપશમ રહે છે. આ સ્થિતિમાં જે અવધિજ્ઞાન થાય છે તે ક્ષાયોપશમિક અવધિજ્ઞાન છે. આ રીતે અવધિજ્ઞાનની પ્રતિ અવધિજ્ઞાનાવરણીય કર્મનો ક્ષયોપશમ હેતુરૂપે કહેવાયો છે. અવધિજ્ઞાનમાં અવધિજ્ઞાનાવરણીયના દેશઘાતિ સ્પર્ધકો (કર્માંશો) નો ઉદય તથા સર્વઘાતિરસસ્પર્ધકોમાંના કેટલાંકનો ક્ષય તથા કેટલાકનો સદવસ્થારૂપ ઉપશમ રહે છે. મનુષ્યોનું તથા પંચેન્દ્રિય તિર્યંચોનું અવધિજ્ઞાન અવશ્યંભાવી હોતું નથી, એટલે કે ક્ષાયોપશમિક અવધિજ્ઞાન સર્વે મનુષ્યો તથા પંચેન્દ્રિય તિર્યંચોને થાય જ છે એવો નિયમ નથી, પણ જેને અવધિજ્ઞાનાવરણીય કર્મનો ક્ષયોપશમ થાય છે તેમને તે થાય જ છે એવો નિયમ છે. તેથી ભવપ્રત્યયિક અવધિજ્ઞાન જે સમસ્ત દેવ અને નારકીઓને

क्षायोपशमिकमेव। तत्रावधिज्ञानावरणकर्मप्रकृतीनां तथाविधविशुद्धाध्यवसायतः प्रचुरीभूतरसस्याल्पीकरणेन सर्वघातिषु रसस्पर्धकेषु देशघातिरूपतया परिणमितेषु, देशघातिरसस्पर्धकेष्वपि यानि अतिस्निग्धानि रसस्पर्धकानि सन्ति तेषु अल्परसीकृतेषु उदयावलिकाप्राप्तस्यांशस्य क्षयेऽनुदीर्णस्य चोपशमे—विपाकोदयविष्कम्भरूपे जीवस्यावध्यादयो गुणाः प्रादुर्भवन्ति।

होता है उससे इसमें भिन्नता है। यद्यपि भवप्रत्यय अवधिज्ञानमें और क्षायोपशमिक अवधिज्ञान में अवधिज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम की समानता है, फिर भी भवप्रत्यय अवधि तो समस्त देव और नारकियों के अवश्यंभावी है, तब कि मनुष्य और तिर्यञ्चों का अवधिज्ञान ऐसा नहीं है, अर्थात् होता भी है और नहीं भी होता है। अवधिज्ञान चाहे क्षायोपशमिक हो चाहे भवप्रत्ययिक हो वह परमार्थतः क्षायोपशमिक ही है। उसमें कारण यह है कि अवधिज्ञान के आवारक जितने भी अवधिज्ञानावरणीय कर्म के रसस्पर्धक हैं उनमें प्रचुरीभूत जो रस है वह तथाविध शुभ अध्यवसाय के वशसे अल्प कर दिया जाता है, एवं सर्वघातिरस स्पर्धकों को देशघातिरसस्पर्धकरूप परिणमा दिया जाता है, तथा उदित देशघातिरसस्पर्धकों में भी जो अतिस्निग्ध रसस्पर्धक हैं वे अल्प रसवाले कर दिये जाते हैं, ऐसी स्थितिमें उदयावलिमें प्राप्त जो अंश होता है उस के क्षय होने पर, तथा अनुदीर्ण अंश के उपशम होने पर जीव के अवधि आदि गुण प्रादुर्भूत हुआ करते हैं।

અવશ્યંભાવી હોય છે તેથી તેમાં ભિન્નતા છે. જો કે ભવપ્રત્યય અવધિજ્ઞાનમાં અને ક્ષાયોપશમિક અવધિજ્ઞાનમાં અવધિજ્ઞાનાવરણીય કર્મના ક્ષયોપશમની સમાનતા છે તો પણ ભવપ્રત્યય અવધિ તો સમસ્ત દેવ અને નારકીઓને અવશ્યંભાવી છે ત્યારે મનુષ્ય અને તિર્યંચોનું અવધિજ્ઞાન એવું નથી, એટલે કે હોય છે પણ ખરૂં અને નથી પણ હોતું. અવધિજ્ઞાન ભલે ક્ષાયોપશમિક હોય કે ભલે ભવપ્રત્યયિક હોય પણ તે પરમાર્થતઃ ક્ષાયોપશમિક જ છે. તેનું કારણ એ છે કે અવધિજ્ઞાનના આવારક જેટલાં પણ અવધિજ્ઞાનાવરણીય કર્મના રસસ્પર્ધક છે તેઓમાં પ્રચુરીભૂત જે રસ છે તે, તે પ્રકારના શુભ અધ્યવસાયના વશથી અલ્પ કરી દેવાય છે, અને સર્વઘાતિરસસ્પર્ધકોને દેશઘાતિરસસ્પર્ધકરૂપ પરિણમાવાય છે, તથા ઉદિત દેશઘાતિરસસ્પર્ધકોમાં પણ જે અતિસ્નિગ્ધ રસ સ્પર્ધકો છે તેઓને અલ્પ રસવાળાં કરી દેવાય છે, એવી સ્થિતિમાં ઉદયાવલિમાં પ્રાપ્ત જે અંશ હોય છે તેનો ક્ષય થતાં તથા અનુદીર્ણ અંશનો ઉપશમ થતાં અવધિઆદિ ગુણ પ્રાદુર્ભૂત થયા કરે છે.

कदाचिद् विशिष्टगुणप्रतिपत्तिमन्तरेण कदाचिद् विशिष्टगुणप्रतिपत्तितश्च सर्वघातीनि रसस्पर्धकानि देशघातीनि भवन्ति ।

तत्र विशिष्टगुणप्रतिपत्तिमन्तरेण कथम्? इति चेत्, उच्यते-यथाऽऽकाशे जलदपटलाच्छादितस्य सूर्यमण्डलस्य कथंचिद् विस्रसापरिणामेन जलदपटलैकदेश पुद्गलानां निःस्नेहीभूय व्यपगमे सति संजातेन तेन छिद्रेण निर्गतास्तिमिरनिकरोपसंहारहेतवो रश्मयः स्वावपातदेशावस्थितं वस्तु विद्योतयन्ति, तथा मिथ्यात्वाविरतिप्रमादादिहेतूपचयोपजनितावधिज्ञानावरणकर्ममलपटलाच्छादितस्यानादिसंसारे

शंका—सर्वघातिरसस्पर्धक देशघातिरसस्पर्धकरूप कैसे होते हैं?

उत्तर—कदाचित् विशिष्ट गुण की प्रतिपत्ति से, तथा कदाचित् इसके विना भी वे उसरूप हो जाते हैं। विशिष्टगुण की प्रतिपत्ति के विना सर्वघातिस्पर्धक देशघातिस्पर्धकरूप हो जाते हैं, इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है-जैसे आकाशमें जब सूर्यमंडल मेघपटल से घिर जाता है-ढक जाता है तब उसका प्रकाश रुक जाता है, और जब वही मेघपटल विस्रसापरिणामस्वभाव से एकदेशरूपमें-थोडे २ रूपमें उसके ऊपर से जैसे २ हटने लगता है वैसे २ उनके भीतर से सूर्य की तिमिर निकर (अन्धकारसमूह) का संहार करनेवाली किरणें छिटकने लगती हैं, और अपने द्वारा प्रकाशित स्थानमें स्थित पदार्थों को वे प्रकाशित करती हैं, इसी तरह मिथ्यात्व, अविरति एवं प्रमाद आदि हेतु के उपचय से जनित जो अवधिज्ञानावरणीयरूप कर्ममल उससे आच्छादित तथा

શંકા—સર્વઘાતિરસસ્પર્ધક દેશઘાતિરસસ્પર્ધકરૂપ કેવી રીતે થાય છે?

ઉત્તર—ક્યારેક વિશિષ્ટ ગુણની પ્રતિપત્તિથી તથા ક્યારેક તેના વિના પણ તેઓ એ રૂપ થઇ જાય છે. વિશિષ્ટગુણની પ્રતિપત્તિ વિના સર્વઘાતિસ્પર્ધક દેશઘાતિસ્પર્ધકરૂપ થઈ જાય છે તેનું સ્પષ્ટીકરણ આ પ્રમાણે છે-જેમ આકાશમાં જ્યારે સૂર્યમંડળ મેઘપટલથી આચ્છાદિત થઇ જાય છે (ઢંકાઇ જાય છે) ત્યારે તેનો પ્રકાશ રોકાય છે, અને જ્યારે એજ મેઘપટલ વિસ્રસાપરિણામ સ્વભાવ-થી એકદેશરૂપમાં થોડાં થોડાં પ્રમાણમાં તેના ઉપરથી જેમ જેમ દૂર થવા લાગે છે તેમ તેમ તેમની અંદરથી સૂર્યની તિમિરનિકર (અંધકારસમૂહ)નો સંહાર કરનારી કિરણો નિકળવા લાગે છે, અને પોતાના દ્વારા પ્રકાશિત સ્થાનમાં રહેલાં પદાર્થોને તેઓ પ્રકાશિત કરે છે, એ જ રીતે મિથ્યાત્વ, અવિરતિ અને પ્રમાદ આદિ હેતુના ઉપચયથી પેદા થયેલ જે અવધિજ્ઞાનાવરણીયરૂપ કર્મમળ તેનાથી

भ्राम्यमाणस्य भास्वरस्वरूपस्यात्मनः कथंचिदेव यथाप्रवृत्त्याऽनादिकालतोऽनादिसंसिद्धप्रकारेण कर्मक्षपणप्रवृत्ताध्यवसायविशेषरूपया तथाविधशुभाध्यवसायप्रवृत्तितोऽवधिज्ञानावरणसम्बन्धिनां सर्वघातिरसस्पर्धकानां देशघातिरसस्पर्धकतया जातानामुदयावलिकाप्राप्तस्यांशस्य परिक्षयतोऽनुदयावलिकाप्राप्तस्योपशमतः समुद्भूतेन क्षयोपशमरूपेण रन्ध्रेणावधिज्ञानरूपः प्रकाशः प्रादुर्भवति। येनेन्द्रियमनोनिरपेक्षाः सन्तो देवा नारकाश्च रूपिद्रव्यं विजानन्ति। तदेतदवधिज्ञानं भवप्रत्ययिकमित्युच्यते। विशिष्टगुणप्रतिपत्तिस्तु मूलगुणादिप्रतिपत्तेर्भवतीत्यनन्तरसूत्र एव वक्ष्यते।

यथाप्रवृत्तिकरण से अनादि संसारमें भ्रमण करनेवाले सूर्यतुल्य इस आत्माके कथंचित् कर्मक्षपण में प्रवृत्त जो शुभाध्यवसायविशेष हैं उनमें प्रवृत्ति करने से जीव अवधिज्ञानावरणीय कर्मों के सर्वघातिरसस्पर्धकों को देशघातिरसस्पर्धकरूप परिणमा देता है। एवं जो उनका अंश उदयावलीमें प्राप्त होता है उसे क्षय कर देता है, तथा जो अंश उदयावलीमें प्राप्त नहीं होता है उसे उपशमित कर देता है, इस तरह इस क्षायोपशमिकरूप छिद्र से अवधिज्ञानरूप प्रकाश छिटकने लगता है। इसके द्वारा देव एवं नारकी इन्द्रिय और मनकी सहायता के विना ही रूपी द्रव्य को जानते हैं। इस तरह यह अवधिज्ञान भवप्रत्ययिक कहा जाता है। मूलगुणादिक की प्रतिपत्ति से ही जीव को विशिष्टगुणों की प्रतिपत्ति होती है, यह बात स्वयं सूत्रकार अनन्तर सूत्रमें कहेंगे।

આચ્છાદિત તથા યથાપ્રવૃતિકરણથી અનાદિ સંસારમાં ભ્રમણ કરનારા સૂર્યતુલ્ય આ આત્માના કથંચિત્ કર્મક્ષપણમાં પ્રવૃત્ત શુભાધ્યવસાયવિશેષ છે તેઓમાં પ્રવૃત્તિ કરવાથી જીવ અવધિજ્ઞાનાવરણીય કર્મોના સર્વઘાતી રસસ્પર્ધકોને દેશઘાતી રસસ્પર્ધકરૂપ પરિણમા દે છે અને તેમનો જે અંશ ઉદયાવલીમાં પ્રાપ્ત હોય છે તેનો ક્ષય કરી નાખે છે, તથા જે અંશ ઉદયાવલીમાં પ્રાપ્ત હોતો નથી તેને ઉપશમિત કરી નાખે છે. આ રીતે આ ક્ષાયોપશમિકરૂપ છિદ્રમાંથી અવધિજ્ઞાન રૂપી પ્રકાશ વેરાવા લાગે છે. તેના દ્વારા દેવ અને નારકી ઈન્દ્રિય અને મનની સહાયતા વિના જ રૂપી દ્રવ્યને જાણે છે. આ રીતે આ અવધિજ્ઞાન ભવપ્રત્યયિક કહેવાય છે. મૂલગુણાદિકની પ્રતિપત્તિથી જ જીવને વિશિષ્ટ ગુણોની પ્રતિપત્તિ થાય છે, આ વાત સ્વયં સૂત્રકાર આગળના સૂત્રમા કહેશે.

ननु यदुक्तं—"क्षयोपशमः खलु देशघातिरसस्पर्धकानामुदये सति भवति, न तु सर्वघातिरसस्पर्धकानाम्" इति, तत्र रसस्पर्धकशब्दस्य कोऽर्थः ?।

उच्यते—कर्मपुद्गलानां परस्परसंश्लेषहेतुर्यः स्नेहस्तन्निमित्तकं स्पर्धकं रसस्पर्धकमित्युच्यते। रसस्पर्धकं, स्नेहप्रत्ययस्पर्धकमित्येक एव पदार्थः। स्नेहः=चिक्कणता प्रत्ययो=निमित्तं यस्य तत् स्नेहप्रत्ययम्। स्नेहप्रत्ययं यत् स्पर्धकं तत् स्नेहप्रत्ययस्पर्धकम्। स्पर्धन्ते इवोत्तरोत्तरवृद्धया कर्मवर्गणा अत्रेति स्पर्धकं= वर्गणानां समुदायः।

पुद्गलद्रव्याणां परस्परं सम्बन्धः स्नेहतो भवति ततोऽवश्यं स्नेहप्ररूपणा कर-

---

शंका—यहां जो कहा गया है कि–देशघातिरसस्पर्धकों के उदय होने पर ही क्षयोपशम कहलाता है, सर्वघातिरसस्पर्धकों के उदय में नहीं, सो यहां पर रसस्पर्धक शब्द का क्या अर्थ है ?

उत्तर—कर्मपुद्गलोंमें जो परस्पर में बंध का हेतु स्नेह होता है वह स्नेह जिन स्पर्धकों का निमित्त होता है उसका नाम रसस्पर्धक है। यही रसस्पर्धक शब्द का अर्थ है। रसस्पर्धक और स्नेहप्रत्ययस्पर्धक, ये दोनों शब्द पर्यायवाची शब्द हैं। शब्दभेद होने पर भी इनके अर्थमें कोई भेद नहीं है। स्नेह शब्द का अर्थ चिक्कणता–चिकनाई है। यह चिकनाई जिस स्पर्धकमें निमित्त होती है वह स्नेहप्रत्ययस्पर्धक है। उत्तरोत्तर वृद्धिरूप से कर्मवर्गणा जहाँ परस्परमें स्पर्धा–ईर्ष्या जैसे करे वह स्पर्धक है। यह स्पर्धक कर्मवर्गणाओंका एक समुदाय है।

पुद्गल द्रव्यों का परस्पर में बंध स्नेहगुण से होता है अतः स्नेह की

શંકા—અહીં જે કહેવામાં આવ્યું છે કે દેશઘાતી રસસ્પર્ધકોનો ઉદય થતાં જ ક્ષયોપશમ કહેવાય છે, સર્વઘાતી રસસ્પર્ધકોના ઉદયમાં નહીં તો અહીં રસસ્પર્ધક શબ્દનો અર્થ શો છે ?

ઉત્તર—કર્મપુદ્ગલોમાં પરસ્પરમાં બંધનો હેતુ જે સ્નેહ હોય છે તે સ્નેહ જે સ્પર્ધકોનું નિમિત્ત હોય છે તેનું નામ રસસ્પર્ધક છે. આ જ રસસ્પર્ધક શબ્દનો અર્થ છે. રસસ્પર્ધક અને સ્નેહપ્રત્યયસ્પર્ધક એ બન્ને પર્યાયવાચી શબ્દ છે. શબ્દ ભેદ હોવા છતાં પણ તેમના અર્થમાં કોઇ ભેદ નથી. સ્નેહ શબ્દનો અર્થ ચિક્કણતા (ચિકાશ) છે. આ ચિકાશ જે સ્પર્ધકમાં નિમિત્ત હોય છે તે સ્નેહપ્રત્યયસ્પર્ધક છે. ઉત્તરોત્તર વૃદ્ધિરૂપથી કર્મવર્ગણા જ્યાં પરસ્પરમાં સ્પર્ધા–ઇર્ષ્યા જેવી કરે તે સ્પર્ધક છે. આ સ્પર્ધક કર્મવર્ગણાઓનો એક સમુદાય છે.

પુદ્ગલ દ્રવ્યોનો પસ્પરમાં બંધ સ્નેહગુણથી થાય છે, તેથી સ્નેહની પ્રરૂપણા

णीया। सा च त्रिधा भवति-स्नेहप्रत्ययस्पर्धकप्ररूपणा १, नामप्रत्ययस्पर्धकप्ररूपणा २, प्रयोगप्रत्ययस्पर्धकप्ररूपणा ३ च।

तत्र स्नेहप्रत्ययस्य=स्नेहनिमित्तस्य स्पर्धकस्य प्ररूपणा स्नेहप्रत्ययस्पर्धकप्ररूपणा १।

तथा-शरीरबन्धननामकर्मोदयतः परस्परं बद्धानां शरीरपुद्गलानां स्नेहमधिकृत्य स्पर्धकप्ररूपणा नामप्रत्ययस्पर्धकप्ररूपणा। शब्दार्थश्चायम्-नामप्रत्ययस्य=बन्धननामनिमित्तस्य शरीरपुद्गलस्पर्धकस्य प्ररूपणा नामप्रत्ययस्पर्धकप्ररूपणा २।

तथा-प्रकृष्टो योगः प्रयोगः=वाङ्मनःकायव्यापारः, तेन प्रत्ययभूतेन-कारणभूतेन ये गृहीताः पुद्गलास्तेषां स्नेहमधिकृत्य स्पर्धकप्ररूपणा प्रयोगप्रत्ययस्पर्धकप्ररूपणा ३।

प्ररूपणा की जाती है। स्नेह की प्ररूपणा तीन तरह से होती है-(१) स्नेहप्रत्ययस्पर्धक प्ररूपणा (२) नामत्ययस्पर्धकप्ररूपणा, (३) प्रयोगप्रत्ययस्पर्धक प्ररूपणा।

जिस स्पर्धक का कारण स्नेह होता है उस स्पर्धककी प्ररूपणा का नाम स्नेहप्रत्ययस्पर्धकप्ररूपणा है १। जिस स्पर्धक का कारण बन्धन नामकर्म होता है उस स्पर्धक की प्ररूपणा का नाम नामप्रत्ययस्पर्धक प्ररूपणा है। अर्थात् शरीरबन्धननामकर्म के उदय से परस्पर बद्ध जो शरीरपुद्गल हैं उनके स्नेहगुण को लेकर जो स्पर्धक की प्ररूपणा की जाती है वह नामप्रत्ययस्पर्धकप्ररूपणा है। शरीरपुद्गलोंका कारण बंधननामकर्म है। इस शरीररूप पुद्गलस्पर्धक की प्ररूपणा का नाम नामप्रत्ययस्पर्धकप्ररूपणा है, ऐसा जानना चहिये २। तथा प्रकृष्ट योग का नाम प्रयोग है। वह मन वचन एवं काय का व्यापाररूप बतलाया गया है। इस

કરવામાં આવી છે. સ્નેહની પ્રરૂપણા ત્રણ રીતે થાય છે.-(૧) સ્નેહપ્રત્યયસ્પર્ધક પ્રરૂપણા (૨) નામપ્રત્યયસ્પર્ધકપ્રરૂપણા. (૩) પ્રયોગપ્રત્યયસ્પર્ધકપ્રરૂપણા.

(૧) જે સ્પર્ધકનું કારણ સ્નેહ હોય છે તે સ્પર્ધકની પ્રરૂપણાનું નામ સ્નેહપ્રત્યયસ્પર્ધકપ્રરૂપણા છે. (૨) જે સ્પર્ધકનું કારણ બન્ધન નામકર્મ હોય છે તે સ્પર્ધકની પ્રરૂપણાનું નામ નામપ્રત્યયસ્પર્ધકપ્રરૂપણા છે. એટલે કે શરીરબન્ધનનામકર્મના ઉદયથી પરસ્પર બદ્ધ જે શરીર-પુદ્ગલ છે તેમના સ્નેહગુણને લઈને જે સ્પર્ધકની પ્રરૂપણા કરવામાં આવે છે તે નામપ્રત્યયસ્પર્ધકપ્રરૂપણા છે. શરીરપુદ્ગલોનું કારણ બંધનનામકર્મ છે. આ શરીરરૂપ પુદ્ગલ સ્પર્ધકની પરૂપણાનું નામ નામપ્રત્યયસ્પર્ધકપ્રરૂપણા છે, એવું જાણવું જોઈએ. (૩) તથા પ્રકૃષ્ટ યોગનું નામ પ્રયોગ છે. તે મન, વચન, અને કાયાના વ્યાપાર

इह स्नेहप्रत्ययस्पर्धकस्याधिकारात् तत्प्ररूपणा क्रियते—

स्नेहप्रत्ययस्पर्धकम्- स्नेहप्रत्ययं=स्नेहनिमित्तम् एकैकस्नेहाविभागवृद्धानां[1] पुद्गलवर्गणानां समुदायरूपं यत् स्पर्धकं तत् स्नेहप्रत्ययस्पर्धकम्। तद् एकं भवति। तस्मिंश्च स्पर्धके अविभागवर्गणाः=एकैकस्नेहाविभागाधिकपरमाणुसमुदायरूपा वर्गणा अनन्ता द्रष्टव्याः। तासु वर्गणासु अल्पस्नेहयुक्ताः पुद्गला बहवः सन्ति, प्रभूतस्नेहयुक्तास्तु पुद्गलाः स्वल्पाः।

योग के निमित्त से जो पुद्गल ग्रहण किये जाते हैं ऊन के स्नेहगुण को लेकर स्पर्धक की प्ररूपणा की जाती है वह प्रयोगप्रत्ययस्पर्धक प्ररूपणा है ३।

यहां स्नेहप्रत्ययस्पर्धकका अधिकार है अतः उसकी प्ररूपणा की जाती है।

एक २ स्नेहगुण के अविभाग से वर्धित जो पुद्गलवर्गणाओं का समुदायरूप स्पर्धक होता है वह स्नेहप्रत्ययस्पर्धक है, और वह एक है। इस एक स्पर्धक में अविभागवर्गणाएँ—एक २ स्नेहगुण के अविभाग की अधिकतावाले परमाणुओं के समुदायरूप वर्गणाएँ अनंत होती हैं। इन वर्गणाओं में अल्पस्नेहगुणयुक्त पुद्गल बहुत होते हैं, तथा प्रभूतस्नेहगुणयुक्त पुद्गल बहुत थोडे होते हैं।

રૂપ બતાવાયું છે. આ યોગના નિમિત્તથી જે પુદ્ગલો ગ્રહણ કરાય છે, તેમના સ્નેહગુણને લઈ ને સ્પર્ધકની પ્રરૂપણા કરાય છે, તે પ્રયોગપ્રત્યયસ્પર્ધક પ્રરૂપણા છે.

અહીં સ્નેહપ્રત્યયસ્પર્ધકનો અધિકાર છે તેથી તેની પ્રરૂપણા કરવામાં આવે છે.

એક એક સ્નેહગુણના અવિભાગથી વર્ધિત જે પુદ્ગલવર્ગણાઓના સમુદાયરૂપ સ્પર્ધક હોય છે તે સ્નેહપ્રત્યયસ્પર્ધક છે, અને તે એક છે આ એક સ્પર્ધકમાં અવિભાગ વર્ગણાઓ—એક એક સ્નેહગુણના અવિભાગની અધિકતા વાળાં પરમાણુઓના સમુદાયરૂપ વર્ગણાઓ અનંત હોય છે. એ વર્ગણાઓમાં અલ્પસ્નેહગુણવાળાં પુદ્ગલ ઘણાં જ હોય છે, તથા વધારે સ્નેહ ગુણવાળાં પુદ્ગલો ઘણાં થોડાં હોય છે.

(१) स्नेहाविभागः=रसाणुः।

इयमत्र भावना—इह यः सर्वोत्कृष्टः स्नेहः स केवलिप्रज्ञाछेदनकेन छिद्यते, छित्त्वा छित्त्वा च निर्विभागा भागाः पृथक् पृथग् व्यवस्थाप्यन्ते। तत्र जगति ये केचित् परमाणव एकेन स्नेहस्य निर्विभागेन भागेन युक्ताः सन्ति, तेषां समुदायः प्रथमा वर्गणा। ये तु द्वाभ्यां स्नेहाविभागाभ्यां युक्ताः परमाणवः सन्ति तेषां समुदायो द्वितीया वर्गणा। एवं त्रिभिश्चतुर्भिः पञ्चभिश्च स्नेहाविभागयुक्तानां पुद्गलानां समुदायस्तृतीया, चतुर्थी, पञ्चमी च वर्गणा। एवं संख्येयैः स्नेहाविभागैर्युक्तानां पुद्गलानां समुदायः संख्येया वर्गणा वाच्याः। असंख्येयैः स्नेहाविभागैर्युक्तानां पुद्गलानां समुदायस्तु असंख्येया वर्गणा भवन्ति। अनन्तैः स्नेहाविभागैर्युक्तानां पुद्ग-

इसका अभिप्राय इस प्रकार है—इन वर्गणाओंमें जो सर्वोत्कृष्ट स्नेह है उसके, केवली की प्रज्ञारूप छैनी से छेद—खंड—करो, छेद करते २ जो अंतमें अविभाग खंड निकले उन्हें पृथक् एक तरफ रख दो। इस तरह जगतमें जो कोइ परमाणु एकस्नेहगुण के अविभाग भागवाले हैं, उनके समुदायरूप यह प्रथम वर्गणा निकल आती है। इसी तरह जो पुद्गलपरमाणु दो स्नेहगुण के अविभाग भाग से युक्त हैं उनके समुदायरूप द्वितीयवर्गणा स्थापित हो जाती है। इसी तरह तीन, चार पांच स्नेहगुण के अविभाग भागों से युक्त पुद्गलपरमाणुओं के समुदायरूप तृतीय चतुर्थ, पंचम वर्गणाएँ हो जाती हैं। इसी प्रकार संख्यात स्नेहगुण के अविभागभागों से विशिष्ट पुद्गलों के समुदायरूप संख्यातवर्गणाएँ, असंख्यात स्नेहगुण के अविभागभागों से युक्त पुद्गलों के समुदायरूप असंख्यात वर्गणाएँ, एवं अनंत स्नेहगुण के अविभागभागों से युक्त

તેનુ તાત્પર્ય આ પ્રમાણે છે—એ વર્ગણાઓમાં જે સર્વોત્કૃષ્ટ સ્નેહ છે તેના કેવળીની પ્રજ્ઞારૂપી છૈની (છીણી) થી છેદ (ખંડ) કરો, છેદ કરતાં કરતાં છેવટે જે અવિભાજ્ય નિકળે તેને જુદો એક બાજુ મૂકી દો. આ રીતે જગતમાં જે કોઈ પરમાણુ એક સ્નેહગુણના અવિભાજ્ય ભાગવાળાં છે એમના સમુદાયરૂપ આ પહેલી વર્ગણા નિકળી આવે છે. આ રીતે જે પુદ્ગલપરમાણુ બે સ્નેહ-ગુણના અવિભાજ્ય ભાગથી યુક્ત છે તેમના સમુદાયરૂપ બીજી વર્ગણા સ્થાપિત થઈ જાય છે. એ જ પ્રમાણે ત્રણ, ચાર પાંચ સ્નેહગુણના અવિભાજ્ય ભાગોથી યુક્ત પુદ્ગલ પરમાણુઓના સમુદાયરૂપ ત્રીજી, ચોથી, પાંચમી વર્ગણાઓ થઈ જાય છે. એ જ રીતે સંખ્યાત સ્નેહ ગુણના અવિભાજ્ય ભાગોથી વિશિષ્ટ પુદ્ગલોના સમુદાયરૂપ સંખ્યાત વર્ગણાઓ, અસંખ્ય સ્નેહગુણના અવિભાજ્ય ભાગોથી યુકત પુદ્ગલોના સમુદાયરૂપ અસંખ્યવર્ગણાઓ, અને અનંત સ્નેહગુ-

लानां समुदायस्त्वनन्ता वर्गणा भवन्ति। आभिः सर्वाभिर्वर्गणाभिरेकं स्पर्धकं भवति। तानि च स्पर्धकानि अभव्येभ्योऽनन्तगुणानि, सिद्धेभ्योऽनन्तभागहीनानि भवन्ति।

॥ इति स्नेहप्रत्ययस्पर्धकप्ररूपणा ॥

नामप्रत्ययस्पर्धकं २ प्रयोगप्रत्ययस्पर्धकं ३ चान्यत्र प्ररूपितम्, इहानुपयुक्तत्वाद् विस्तरभयाच्च विरम्यते।

इह रसभेदतः प्रकृतीनां सर्वघातित्वं देशघातित्वं च भवति, अतः सर्वघातिदेशघाति-प्रकृतयः प्रोच्यन्ते। तत्र सर्वघातिन्यः प्रकृतयो विंशतिसंख्यका भवन्ति,

---

पुद्गलों के समुदायरूप अनंतवर्गणाएँ हो जाती हैं। इन समस्तवर्गणाओं से एक स्पर्धक बनता है। अर्थात् एक स्पर्धक में संख्यात असंख्यात एवं अनंतवर्गणाएँ तक रहती हैं। ये वर्गणाएँ अभव्यराशि से अनंतगुणी और सिद्धराशि के अनंतवें भाग बतलाई गई हैं ॥१॥

यह स्नेहप्रत्ययस्पर्धकपरूपणा हुई ॥ १ ॥

नामप्रत्ययस्पर्धक एवं प्रयोगप्रत्ययस्पर्धक, इन दोनों का यहां प्रकरण नहीं है अतः इनका कथन यहां विस्तारभय से नहीं किया गया है, वह ग्रन्थान्तर से समझलेवें।

कर्मप्रकृतियोंमें जो सर्वघातिपना एवं देशघातिपना है वह रसभेद की अपेक्षा से ही है, इसलिये सर्वघाती प्रकृतियां कौन२ सी हैं और देशघातीप्रकृतियां कौन२ सी हैं यह बतलाया जाता है—सर्वघातिप्रकृतियां २० बीस हैं और वे इस प्रकार हैं—केवलज्ञानावरणीय १, केवल-

---

ણુના અવિભાજ્ય ભાગોથી યુક્ત પુદ્ગલોના સમુદાયરૂપ અનંત વર્ગણાઓ થઈ જાય છે. એ સમસ્ત વર્ગણાઓ વડે એક સ્પર્ધક બને છે. એટલે કે એક સ્પર્ધકમાં સંખ્યાત, અસંખ્યાત અને અનંત વર્ગણાઓમાં પણ રહે છે. એ વર્ગણાઓ અભવ્યરાશીથી અનેક ગણી અને સિદ્ધરાશીના અનંતમાં ભાગની બતાવવામાં આવી છે. ॥૧॥

॥ આ સ્નેહપ્રત્યયસ્પર્ધકપ્રરૂપણા થઈ ॥૧॥

નામપ્રત્યયસ્પર્ધક અને પ્રયોગપ્રત્યયસ્પર્ધક એ બન્નેનું પ્રકરણ અહીં નહીં હોવાથી તેમનું વર્ણન અહીં વિસ્તારભયથી કરાયું નથી. તે બીજા ગ્રંથોમાંથી સમજી લેવું.

કર્મપ્રકૃતિયોમાં જે સર્વઘાતિપણું અને દેશઘાતિપણું છે તે રસભેદની અપેક્ષાએ જ છે, તેથી સર્વઘાતી પ્રકૃતિયો કઈ કઇ છે, અને દેશઘાતી પ્રકૃતિયો કઈ કઇ છે તે બતાવવામાં આવે છે—સર્વઘાતી પ્રકૃતિયો વીસ છે અને તે આ પ્રમાણે છે—

तथाहि–केवलावरणद्विकम्–केवलज्ञानावरणीयम् १, केवलदर्शनावरणीयम् २। निद्रापञ्चकम्–निद्रा १, निद्रा–निद्रा २, प्रचला ३, प्रचला–प्रचला ४, स्त्यानर्द्धिः ५। द्वादश कषायाः–क्रोधमानमायालोभानां चतुर्णां प्रत्येकमनन्तानुबन्ध्य १,-प्रत्याख्यानवरण २–प्रत्याख्यानावरण ३–नामत्रयेण द्वादशविधत्वम्। तथा–मिथ्यात्वमोहनीयं चेति २०। एता विंशतिः प्रकृतयः–सर्वमपि स्वाऽऽवार्यगुणं घातयन्तीत्येवंशीलाः सर्वघातिन्य उच्यन्ते। सर्वघातिप्रकृतीनां सर्वघातीन्येव रसस्पर्धकानि भवन्ति।

अथ देशघातिन्यः प्रकृतय उच्यन्ते–देशघातिरसस्पर्धकयुक्ताः प्रकृतयो मतिज्ञानावरणादिरूपाः पञ्चविंशतिसंख्यका देशघातिन्यो व्यवह्रियन्ते, तथाहि–ज्ञानावरणीयचतुष्टयम्–मतिज्ञानावरणीयम् १, श्रुतज्ञानावरणीयम् २, अवधिज्ञानावरणीयम् ३, मनःपर्ययज्ञानावरणीयम् ४। दर्शनावरणीयत्रिकम्=चक्षुर्दर्शनावरणीयम् १,

---

दर्शनावरणीय २, निद्रा ३, निद्रानिद्रा ४, प्रचला ५, प्रचलाप्रचला ६, स्त्यानर्द्धि ७, अनंतानुबंधी ८, क्रोध–मान ९, माया १०, लोभ ११, अप्रत्याख्यानावरण–क्रोध १२, मान १३, माया १४, लोभ १५, प्रत्याख्यानावरण-क्रोध १६, मान १७, माया १८, लोभ १९, तथा मिथ्यात्वमोहनीय २०। ये सर्वघातिप्रकृतियां इस लिये कही जाती हैं कि ये अपने द्वारा आवार्य ज्ञानादिक गुणों का सर्वरूप से घात करती हैं। इनके रसस्पर्धक भी सर्वघातिरूप ही हुआ करते हैं।

देशघाति प्रकृतियां २५ पच्चीस होती हैं। इनके रसस्पर्धक देशघाती हुआ करते हैं। मतिज्ञानावरणीय १, श्रुतज्ञानावरणीय २, अवधिज्ञानावरणीय ३, मनःपर्ययज्ञानावरणीय ४, चक्षुर्दर्शनावरणीय ५, अचक्षु-

---

(૧) કેવળજ્ઞાનાવરણીય, (૨) કેવળદર્શનાવરણીય, (૩) નિદ્રા (૪) નિદ્રાનિદ્રા (૫) પ્રચલા, (૬) પ્રચલાપ્રચલા, (૭) સ્ત્યાનર્દ્ધિ, અનંતાનુ-બંધી–(૮) ક્રોધ, (૯) માન. (૧૦) માયા, (૧૧) લોભ, અપ્રત્યાખ્યાનાવરણ–(૧૨) ક્રોધ, (૧૩) માન, (૧૪) માયા, (૧૫) લોભ, પ્રત્યાખ્યાનાવરણ–(૧૬) ક્રોધ, (૧૭) માન, (૧૮) માયા, (૧૯) લોભ, તથા (૨૦) મિથ્યાત્વમોહનીય. તેઓ સર્વઘાતી પ્રકૃતિયો એટલા માટે કહેવાય છે કે તેઓ પોતાના વડે આવાર્ય જ્ઞાનાદિક ગુણોના સર્વરૂપથી ઘાત કરે છે. તેમના રસસ્પર્ધક પણ સર્વઘાતિરૂપ જ થયા કરે છે.

દેશઘાતી પ્રકૃતિયો પચ્ચીશ હોય છે તેમના રસસ્પર્ધક દેશઘાતી થયા કરે છે.—(૧) મતિજ્ઞાનાવરણીય, (૨) શ્રુતજ્ઞાનાવરણીય, (૩) અવધિજ્ઞાનાવરણીય, (૪) મનઃપર્યયજ્ઞાનાવરણીય, (૫) ચક્ષુર્દર્શનાવરણીય, (૬) અચક્ષુર્દર્શના-

अचक्षुर्दर्शनावरणीयम् २, अवधिदर्शनावरणीयम् ३। संज्वलनरूपाश्चत्वारः क्रोधादिकषायाः ४। नोकषाया नव-हास्य १-रत्य २-रति ३-शोक ४-भय ५-जुगुप्सा ६-स्त्रीवेद ७-पुंवेद ८-नपुंसकवेद ९-स्वरूपाः। पञ्चविधमन्तरायम्-दान १-लाभ २-भोगो ३-पभोग ४-वीर्य ५-रूपम्। एवं देशघातिन्यः पञ्चविंशतिसंख्यकाः प्रकृतयो भवन्ति। देशघातिप्रकृतीनां देशघातीनि सर्वघातीनि च रसस्पर्धकानि भवन्ति।

तत्प्रतिपक्षभूता अघातिन्यः प्रकृतयो भवन्ति। एताः पञ्चसप्ततिसंख्यकाः प्रकृतयो न कञ्चिद् गुणं घातयन्ति तस्मादघातिन्य उच्यन्ते। एता अघातिन्योऽपि सर्व-

---

दर्शनावरणीय ६, अवधिदर्शनावरणीय ७, संज्वलन-क्रोध ८, मान ९, माया १०, लोभ ११, हास्य १२, रति १३, अरति १४, शोक १५, भय १६, जुगुप्सा १७, स्त्रीवेद १८, पुवेद १९, नपुंसकवेद २०, दानान्तराय २१, लाभान्तराय २२, भोगान्तराय २३, उपभोगान्तराय २४, वीर्यान्तराय २५। इस प्रकार ये पच्चीस हो जाती हैं।

देशघातिप्रकृतियों के रसस्पर्धक देशघाती एवं सर्वघाती दोनों प्रकार के होते है। ये २५ पच्चीस प्रकृतियां देशघाती इसलिये कही गई हैं कि ये अपने द्वारा आवार्य ज्ञानादिक गुणों का सर्वरूप से घात नहीं करती हैं किन्तु एकदेशरूप से घात करती हैं। ये पूर्वोक्त भेद घातिया कर्मों की प्रकृतियोंमें होते हैं।

अब इनके प्रतिपक्षभूत जो अघातिया कर्म हैं उनकी प्रकृतियां ७५ पचहत्तर हैं। ये पचहत्तर प्रकृतियां किसी गुणका घात नहीं करती हैं

વરણીય, (૬) અવધિદર્શનાવરણીય, (૭) સંજવલન (૮) ક્રોધ, (૯) માન, (૧૦) માયા, (૧૧) લોભ, (૧૨) હાસ્ય, (૧૩) રતિ, (૧૪) અરતિ, (૧૫) શોક, (૧૬) ભય, (૧૭) જુગુપ્સા, (૧૮) સ્ત્રીવેદ, (૧૯) પુંવેદ, (૨૦) નપુંસકવેદ, (૨૧) દાનાન્તરાય, (૨૨) લાભાન્તરાય, (૨૩) ભોગાન્તરાય, (૨૪) ઉપભોગાન્તરાય, (૨૫) વીર્યાન્તરાય, આ રીતે તે પચ્ચીશ હોય છે.

દેશઘાતી પ્રકૃતિયોના રસસ્પર્ધક દેશઘાતી અને સર્વઘાતી એ બન્ને પ્રકારના હોય છે. તે પચ્ચીશ પ્રકૃતિયોને દેશઘાતી એટલા માટે કહેવામાં આવી છે કે તેઓ પોતાના વડે આવાર્ય જ્ઞાનાદિક ગુણોનો સર્વરૂપે ઘાત કરતી નથી પણ એક દેશ રૂપે ઘાત કરે છે. પૂર્વોક્ત તે ભેદ ઘાતિયા કર્મોની પ્રકૃતિયોમાં હોય છે.

હવે તેમના પ્રતિપક્ષભૂત જે અઘાતિયા કર્મ છે તેમની પ્રકૃતિયો ૭૫ પંચોતેર છે. તે પંચોતેર પ્રકૃતિયો કોઈ ગુણનો ઘાત કરતી નથી, તેથી અઘાતી

घातिनीभिः सह वेद्यमानाः सर्वघातिरसविपाकं दर्शयन्ति। देशघातिनीभिः सह-वेद्यमानास्तु देशघातिरसविपाकं दर्शयन्ति। यथा स्वयमचौरश्चौरैः सह वर्त्तमानश्चौर इवावभासते।

आसां नामानि-प्रत्येकनामकर्मप्रकृतयोऽष्टौ-पराघातो१-च्छ्वासा२-ऽऽतपो३-द्द्योता ४-ऽगुरुलघु ५-तीर्थकर ६-निर्माणो ७-पघात ८-रूपाः। शरीराष्टकम्-औदारिक१-वैक्रिया२-ऽऽहारक३-तैजस४-कार्मण ५-शरीराणि पञ्च, उपाङ्गानि त्रीणि-औदारिक-वैक्रिया-ऽऽहारकाङ्गोपाङ्गरूपाणि, एतान्यष्टौ। संस्थानानि षट्। संहननानि षट्। जातयः पञ्च। गतयश्चतस्रः। विहायोगती द्वे। आनुपूर्व्यश्चतस्रः। आयूंषि चत्वारि। त्रसदशकम्। स्थावरदशकम्। गोत्रद्विकम्। वेदनीयद्वयम्। वर्णादयश्चतस्रः। इति पञ्चसप्ततिः ७५।

अतः अघाती कहलाती हैं। ये अघाती प्रकृतियां सर्वघाती प्रकृतियों के साथ जब वेद्यमान होती हैं तब सर्वघाती रसविपाक को दिखलाती हैं। और जब देशघाती प्रकृतियों के साथ वेद्यमान होती हैं तब देशघाती रसविपाक को दिखलाती हैं। जैसे कोई स्वयं चोर नहीं होते हुए भी चोरों के साथमें रहने से चोर जैसा हो जाता है वैसे ही ये प्रकृतियां हैं।

वे ७५ पचहत्तर प्रकृतियां इस प्रकार हैं—पराघात १, उच्छ्वास २, आतप ३, उद्योत ४, अगुरुलघु ५, तीर्थंकर ६, निर्माण ७, उपघात ८, औदारिक ९, वैक्रियिक १०, आहारक ११, तैजस १२, कार्मण १३, औदारिक अंगोपांग १४, वैक्रियिक अंगोपांग १५, आहारक अंगो-पांग १६, संस्थान ६ (२२), संहनन ६ (२८), जाति ५ (३३), गति ४ (३७),

---

કહેવાય છે. એ અઘાતી પ્રકૃતિયો સર્વઘાતી પ્રકૃતિયોની સાથે જ્યારે વેદ્યમાન થાય છે ત્યારે સર્વઘાતી રસવિપાકને દર્શાવે છે, અને જ્યારે દેશઘાતી પ્રકૃતિ-યોની સાથે વેદ્યમાન થાય છે ત્યારે દેશઘાતી રસવિપાકને દર્શાવે છે. જેવી રીતે કોઇ પોતે ચોર ન હોવા છતાં પણ ચોરોની સાથે રહેવાથી ચોર જેવો બની જાય છે. એવી જ એ પ્રકૃતિયો છે.

તે ૭૫ પચોતેર પ્રકૃતિયો આ પ્રમાણે છે—(૧) પરાઘાત, (૨) ઉચ્છ્-વાસ, (૩) આતપ, (૪) ઉદ્યોત, (૫) અગુરૂલઘુ, (૫) તીર્થંકર, (૭) નિર્માણ, (૮) ઉપઘાત, (૯) ઔદારિક, (૧૦) વૈક્રિયિક, (૧૧) આહારક, (૧૨) તૈજસ, (૧૩) કાર્મણ, (૧૪) ઔદારિક અંગોપાગ, (૧૫) વૈક્રિયિક અંગોપાંગ, (૧૬) આહારક અંગોપાંગ, સંસ્થાન ૬ (૧૭થી૨૨), સંહનન ૬ (૨૩થી૨૮), જાતિ ૫ (૨૯થી૩૩), ગતિ ૪ (૩૪થી૩૭), વિહાયોગતિ ૨ (૩૮થી૩૯), આનુપર્વી ૪ (૪૦થી૪૩),

इह रसभेदतः प्रकृतीनां सर्वघातित्वं देशघातित्वं च भवतीत्युक्तम्। रसः सर्वघातित्वेन देशघातित्वेन च प्ररूप्यते। तत्र प्रथमं सर्वघातिरसस्वरूपमुच्यते—

जो घाएइ सविसयं, सयलं सो होइ सव्वघाइरसो।
निच्छिद्दो निद्धो तणु, फलिहब्भहारअइविमलो ॥ १ ॥

छाया—यः घातयति स्वविषयं सकलं स भवति सर्वघातिरसः।
निश्छिद्रः स्निग्धस्तनुः स्फटिकाभ्रहारातिविमलः ॥ १ ॥

यः स्वविषयं ज्ञानादिकं सकलमपि घातयति=स्वकार्यसाधनं प्रत्यसमर्थं करोति, स रसः सर्वघाती भवति। स च ताम्रभाजनवत् निश्छिद्रो, घृतमिवातिशयेन स्निग्धः, तथा–तनुः=द्राक्षावत् तनुप्रदेशोपचितः, तथा–स्फटिकाभ्रहारवच्चातीव

विहायोगति २ (३९), आनुपूर्वी ४ (४३), आयु ४ (४७), त्रस १० (५७), स्थावर १० (६७), गोत्र २ (६९), वेदनीय २ (७१), वर्णादिक ४ (७५)।

रस के भेद से प्रकृतियों में सर्वघातिपना एवं देशघातिपना होता है, यह बात समझा दी गई, अब सर्वघाती एवं देशघाती रसों में से प्रथम सर्वघाती रसका स्वरूप कहते हैं—

"जो घाएइ सविसयं, सयलं सो होइ सव्वघाइरसो।
निच्छिद्दो निद्धो तणु, फलिहब्भहारअइविमलो" ॥१॥

जो अपने विषयभूत ज्ञानादिकों का सम्पूर्णरूप से घात करता है वह सर्वघाती रस कहलाता है। यह ताम्रभाजन के समान निश्छिद्र होता है। घृतके समान अतिशय स्निग्ध होता है। द्राक्षा की तरह तनु-प्रदेशों से उपचित होता है। तथा स्फटिक, शरद ऋतु का मेघ एवं हार

આયુ ૪ (૪૪થી૪૭), ત્રાસ ૧૦ (૪૮થી૫૭), સ્થાવર ૧૦ (૫૮થી૬૭), ગોત્ર ૨ (૬૮થી૬૯), વેદનીય ૨ (૭૦, ૭૧), વર્ણાદિક ૪ (૭૨થી૭૫).

રસના ભેદથી પ્રકૃતિયોમાં સર્વઘાતિપણું અને દેશઘાતિપણું થાય છે એ વાત સમજાવી દેવામાં આવી છે. હવે સર્વઘાતી અને દેશઘાતી રસોમાંથી પહેલાં સર્વઘાતી રસનું સ્વરૂપ કહે છે—

"जो घाएइ सविसयं, सयलं सो होइ सव्वघाइरसो।
निच्छिद्दो निद्धो तणु, फलिहब्भहारअइविमलो" ॥१॥

જે પોતાના વિષયભૂત જ્ઞાનાદિકોનો સંપૂર્ણરૂપથી ઘાત કરે છે તે સર્વઘાતિરસ કહેવાય છે. આ તામ્રપાત્રની જેમ નિશ્છિદ્ર (છેદરહિત) હોય છે. ઘીના જેવું અતિશય સ્નિગ્ધ હોય છે. દ્રાક્ષની જેમ તનુપ્રદેશથી ઉપચિત હોય છે. તથા

निर्मलो भवति। इह रसः केवलो न भवति, तस्माद्रसस्पर्धकसंघात एवंरूपो भवतीति ज्ञेयम्। अथ देशघातिरसस्वरूपमुच्यते—

देशविघाइत्तणओ, इयरो कडकंबलंसुसंकासो।
विविहबहुछिद्दभरिओ, अप्पसिणेहो अविमलो य॥ १॥

छाया—देशविघातित्वात्, इतरः कट-कम्बलां-शुकसंकाशः।
विविध-बहुच्छिद्र-भृतः, अल्पस्नेहः अविमलश्च॥ १॥

व्याख्या—इतरः देशघाती रसः, देशघातित्वात्=स्वविषयैकदेशघातित्वात्, विविधबहुच्छिद्रभृतो भवति। तत्र दृष्टान्तमाह—'कडकंबलंसुसंकासो' इति। कट-कम्बलां-शुकसंकाशः=कटो वंशदलनिर्मितः, 'चटाइ' इति भाषाप्रसिद्धः। कम्बल ऊर्णामयः, अंशुकं=वस्त्रं, तत्सङ्काशः=तत्सदृशः। कश्चित्-कटवद् अतिस्थूलच्छिद्रशतसंकुलः, कश्चित् कंबल इव मध्यमविवरशतसंकुलः, कश्चित्तु तथाविधमसृ-

की तरह अत्यंत निर्मल होता है। इस रसका स्वतंत्र अस्तित्व नहीं पाया जाता है। इस लिये यहां रस से रसस्पर्धकरूप संघात का ग्रहण करना चाहिये और वह रसस्पर्धक संघात पूर्वोक्त स्वरूप वाला है।

अब देशघाती रसका स्वरूप कहते हैं—

"देशविघाइत्तणओ, इयरो कडकंबलंसुसंकासो।
विविहबहुछिद्दभरिओ, अप्पसिणेहो अविमलो य" ॥१॥

अपने विषयभूत ज्ञानादिक गुणों का एकदेशरूप से घात करने के कारण वह रस देशघाती कहलाता है। यह विविध बहुछिद्रों से युक्त होता है। कोई २ देशघाती रस चटाई के समान सैकड़ों अतिस्थूल छिद्रों से युक्त होता है। कोई २ कंबल के समान सैकड़ों मध्यम छेदों

સ્ફટિક, શરદઋતુના મેઘ અને હારના જેવું અત્યંત નિર્મળ હોય છે. આ રસનું સ્વતંત્ર અસ્તિત્વ જણાતું નથી, તેથી અહીં રસથી રસસ્પર્ધકરૂપ સંઘાતને ગ્રહણ કરવો જોઈએ, અને તે રસસ્પર્ધકસંઘાત પૂર્વકથિત સ્વરૂપવાળો છે.

હવે દેશઘાતી રસનું સ્વરૂપ કહે છે—

"देसविघाइत्तणओ, इयरो कड-कवलं-सु-संकासो।
विविह-बहुछिद्दभरिओ, अप्पसिणेहो अविमलो य" ॥१॥

પોતાના વિષયભૂત જ્ઞાનાદિક ગુણોનો એક દેશરૂપથી ઘાત કરવાને કારણે તે રસ દેશઘાતી કહેવાય છે. તે વિવિધ બહુ છિદ્રોવાળો હોય છે. કોઈ કોઈ દેશઘાતી રસ ચટાઈનાં જેવાં સેંકડો અતિસ્થૂળ છિદ્રોવાળો હોય છે. કોઈ કોઈ કામળાનાં જેવાં સેંકડો મધ્યમ છિદ્રોવાળો હોય છે. કોઈ કોઈ ચિકણાં વસ્ત્રની

णवस्त्रवदतीवसूक्ष्मविवरसंवृतो भवतीत्यर्थः। तथा-अल्पस्नेहः—स्वरूपतोऽल्पस्नेहः, स्तोकस्नेहाऽविभागसमुदायरूप इत्यर्थः। तथा अविमलश्च नैर्मल्यरहितश्च भवति ॥१॥

कर्मणामुदये क्षायोपशमिकभावस्य प्रादुर्भावः।

ननु क्षायोपशमिको भावः कर्मणामुदये सति भवत्यनुदये वा ?, न तावदुदये, विरोधात्। तथाहि-क्षायोपशमिको भाव उदयावलिकाप्रविष्टस्यांशस्य क्षये सति, अनुदितस्य चोपशमे विपाकोदयनिरोधलक्षणे प्रादुर्भवति, नान्यथा। ततो यद्युदयः, कथं क्षयोपशमः ?, क्षयोपशमश्चेत् कथमुदयः, तमःप्रकाशवत् तयोर्विरोधादिति ?।

वाला होता है। कोई२ चिकने वस्त्र की तरह अत्यंत सूक्ष्म छिद्रों से युक्त होता है। इसमें स्नेहगुण अल्परूपमें रहता है अर्थात् यह थोडे से स्नेह-गुण के अविभागवाले समुदायरूप होता है। तथा निर्मलता से रहित होता है ॥१॥

कर्मों के उदयमें क्षायोपशमिक भाव का प्रादुर्भाव—

शंका—क्षायोपशमिक भाव कर्मों के उदय होने पर होता है या अनुदयमें होता है ? उदयमें तो हो नहीं सकता, क्यों कि क्षायोपशमिक और उदय का विरोध है। उदयावलिमें प्रविष्ट अंश के क्षय होने पर, अनुदित अंश के उपशम होने पर-विपाकोदय के निरोध होने पर-क्षायोपशमिक भाव उत्पन्न होता है, अन्यरूप से क्षायोपशमिक भाव नहीं होता है, इसलिये यदि क्षायोपशमिक को उदयजन्य माना जायगा तो वह क्षायोपशमिक कैसे कहलावेगा? अर्थात् वह तो औदयिक भाव रूप ही कहलावेगा। यदि उसको औदयिक माना जाय तो क्षायोपश-

---

જેમ અત્યંત સૂક્ષ્મ છિદ્રોવાળો હોય છે. આમાં સ્નેહગુણ અલ્પરૂપમાં રહે છે. એટલે કે તે થોડાં પ્રમાણમાં સ્નેહગુણના અવિભાગવાળાં સમુદાયરૂપ હોય છે. તથા નિર્મળતાથી રહિત હોય છે (૧)

કર્મોના ઉદયમાં ક્ષાયોપશમિક ભાવનો પ્રાદુર્ભાવ—

શંકા—ક્ષાયોપશમિક ભાવ કર્મોનો ઉદય થતાં થાય છે કે અનુદયમાં થાય છે? ઉદયમાં તો થઇ શકતો નથી, કારણ કે ક્ષાયોપશમિક અને ઉદયનો વિરોધ હોય છે ઉદયાવલિમાં પ્રવિષ્ટ અંશનો ક્ષય થતા, તથા અનુદિત અંશનો ઉપશમ થતાં-વિપાકોદયનો નિરોધ થતાં-ક્ષાયોપશમિક ભાવ ઉત્પન્ન થાય છે, અન્યરૂપથી ક્ષાયોપશમિક ભાવ થતો નથી, તેથી જો ક્ષાયોપશમિકને ઉદયજન્ય માનવામાં આવે તો તે ક્ષાયોપશમિક કેવી રીતે કહેવાય? એટલે કે તે તો ઔદયિકભાવરૂપ જ કહેવાશે. જો ઔદયિક માનવામાં આવે તો તેમાં ક્ષાયો-

अथानुदये भवतीति पक्षः, तथा सति किं तेन क्षायोपशमिकेन भावेन, उदयाभावादेव विवक्षितफलसिद्धिसंभवात्। तथाहि—मतिज्ञानादीनि ज्ञानावरणाद्युदयाभावादेव सेत्स्यन्ति, किं क्षायोपशमिकभावपरिकल्पनेन ?।

उच्यते—कर्मणामुदये क्षायोपशमिको भावः प्रादुर्भवति। न च तत्र विरोधोऽस्ति। उक्तञ्च—

उदये वि य अविरुद्धो, खाउवसम्मो अणेगभेउत्ति।
जइ भवइ तिण्ह एसो, पदेसउदयम्मि मोहस्स ॥ १ ॥

छाया—उदयेऽपि च अविरुद्धः, क्षायोपशमोऽनेकभेद इति।
यदि भवति त्रयाणाम् एषः, प्रदेशोदये मोहस्य ॥ १ ॥

मिकता उसमें कैसे आसकेगी, इसलिये जैसे अंधकार एवं प्रकाशमें विरोध रहा करता है उसी प्रकार उदय और क्षयोपशममें भी विरोध है।

यदि कहो कि कर्मों के अनुदयमें होता है तो ऐसी मान्यतामें क्षायोपशमिक भाव से मतलब ही क्या सध सकता है, कारण कि कर्मों के उदय के अभाव से ही विवक्षित फल की सिद्धि सध जायगी, अर्थात् मतिज्ञान आदि ज्ञान ज्ञानावरणीय आदि कर्मों के उदय के अभाव से ही उत्पन्न होने लगेंगे फिर इन्हें क्षायोपशमिक भावरूप से मानने की क्या आवश्यकता है?।

उत्तर—क्षायोपशमिक भाव कर्मों के उदयमें होता है इसमें कोइ विरोध नहीं है। कहा भी है—

" उदये वि य अविरुद्धो, खाउवसम्मो अणेगभेउत्ति।
जइ भवइ तिण्ह एसो, पएसउदयम्मि मोहस्स " ॥१॥

પશમિકતા કેવી રીતે આવશે ? તેથી જેમ અંધકાર અને પ્રકાશમાં વિરોધ રહ્યા કરે છે, એજ પ્રમાણે ઉદય અને ક્ષયોપશમમા વિરોધ છે.

જો એમ કહો કે કર્મોના અનુદયમાં થાય છે તો એવી માન્યતામાં ક્ષાયોપશમિક ભાવથી મતલબ જ શી સધાય છે ? કારણ કે કર્મોના ઉદયના અભાવથી જ વિવક્ષિત ફળની સિદ્ધિ સધાશે, એટલે કે મતિજ્ઞાન આદિ જ્ઞાન જ્ઞાનાવરણીય આદિ કર્મોના ઉદયના અભાવથી જ ઉત્પન્ન થવાં લાગશે, તો પછી તેમને ક્ષાયોપશમિકભાવ રૂપે માનવાની શી આવશ્યકતા છે ?

ઉત્તર—ક્ષાયોપશમિક ભાવ કર્મોના ઉદયમા થાય છે આમાં કોઇ વિરોધ નથી. કહ્યુ પણ છે.—

" उदये वि य अविरुद्धो, खाउवसम्मो अणेगभेउत्ति।
जइ भवइ तिण्ह एसो, पएसउदयम्मि मोहस्स " ॥१॥

व्याख्या—इह यानि ज्ञानावरणीयादीनि कर्माणि सर्वथाक्षयात् प्राग् ध्रुवोदयानि, तेषामुदयावस्थायामेव क्षयोपशमो भवितुमर्हति, नानुदये। उदयाभावे तेषां ज्ञानावरणीयादिकर्मणामेवासंभवात्। तस्मादुदयाऽविरुद्धः क्षायोपशमिको भावः।

यत्तु विरोधोद्भावनं 'यद्युदयः कथं क्षयोपशमः' इत्यादि, तदप्ययुक्तम्, देशघातिस्पर्धकानामुदयेऽपि कतिपयदेशघातिस्पर्धकापेक्षया यथोक्तक्षयोपशमाविरोधात्।

स च क्षयोपशमो नैकभेदः, किं तु तत्र द्रव्यक्षेत्रकालादिसामग्रीतो वैचित्र्यसम्भवादनेकभेद इति। अयमुदयाऽविरुद्धः क्षायोपशमिको भावो यदि भवति, तर्हि त्रयाणामेव कर्मणां ज्ञानावरण-दर्शनावरणा-न्तरायाणाम्, न तु सर्वप्रकृतीनाम्।

इस गाथा का अर्थ इस प्रकार है—क्षय होने से पहिले ज्ञानावरणीय आदि कर्म ध्रुवोदयवाले माने गये हैं इसलिये उदयावस्थामें ही इनका क्षयोपशम होता है, अनुदय अवस्थामें नहीं, अतः जब उदयावस्थामें ही इनका क्षयोपशम होता है और अनुदयावस्थामें नहीं होता है तो ऐसी स्थितिमें क्षायोपशमिक भाव कर्मों के उदय के साथ विरुद्ध नहीं हो सकता है। उदय के साथ जो इसका विरोधोद्भावन किया गया है सो वह इसलिये युक्तियुक्त नहीं प्रतीत होता है कि क्षायोपशमिकभावमें देशघाती स्पर्धकों का ही उदय रहता है, तथा सर्वघाती स्पर्धकों का उदयाभावरूप क्षय एवं कितनेक सर्वघाती स्पर्धकों का सदवस्थारूप उपशम रहता है, अतः देशघातिस्पर्धकों के उदय की अपेक्षा क्षायोपशमिक भाव में कर्मों का क्षयोपशम विरुद्ध नहीं पड़ता है। यह क्षयोपशम अनेक प्रकार का होता है, कारण कि इसमें द्रव्य, क्षेत्र, काल आदि

આ ગાથાનો અર્થ આ પ્રમાણે છે—ક્ષય થતાં પહેલાં જ્ઞાનાવરણીય આદિ કર્મ ધ્રુવોદયવાળાં મનાયાં છે, તેથી ઉદયાવસ્થામાં જ તેમનો ક્ષયોપશમ થાય છે, અનુદય અવસ્થામાં નહીં. તેથી જ્યારે ઉદયાવસ્થામાં જ તેમનો ક્ષયોપશમ થાય છે અને અનુદયાવસ્થામાં થતો નથી ત્યારે એવી સ્થિતિમાં ક્ષાયોપશમિક ભાવ કર્મોના ઉદયની સાથે વિરૂદ્ધ હોઈ શકતો નથી. ઉદયની સાથે જે તેનું વિરોધોદ્ભાવન કરવામાં આવ્યું છે તે આ કારણે યુકિતયુકત પ્રતીત થતું નથી કે ક્ષાયોપશમિક ભાવમાં દેશઘાતિસ્પર્ધકોનો જ ઉદય રહે છે, તથા સર્વઘાતિસ્પર્ધકોનો ઉદયાભાવરૂપ ક્ષય અને કેટલાંક સર્વઘાતિસ્પર્ધકોના સદવસ્થારૂપ ઉપશમ રહે છે, તેથી દેશઘાતિસ્પર્ધકોના ઉદયની અપેક્ષાએ ક્ષાયોપશમિક ભાવમાં કર્મોનો ક્ષયોપશમ વિરૂદ્ધ પડતો નથી. આ ક્ષયોપશમ અનેક પ્રકારનું હોય છે, કારણ કે તેમાં દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર, કાળ આદિ સમગ્રીની

ननु तर्हि मोहनीयस्य कर्मणः क्षयोपशमः कथं भवतीति जिज्ञासायामाह— 'पदेसउदयम्मि मोहस्स ' इति । मोहस्य=मोहनीयस्य प्रदेशोदये क्षायोपशमिक-भावस्य नास्ति विरोधः, किन्तु विपाकोदय एव । किमत्र कारणमिति चेत् ?

सामग्री की अपेक्षा से अनेकविधता आ जाती है। क्षायोपशमिक भाव में जो कर्मों के उदय के साथ अविरोधता बतलाई गई है वह ज्ञानावरण दर्शनावरण एवं अन्तराय, इन तीन कर्मों के उदय के साथ ही जाननी चाहिये, अन्य सर्व प्रकृतियों के उदय के साथ नहीं। तात्पर्य इसका यह है कि क्षायोपशमिक भाव इन तीन कर्मों के उदयमें ही होता है अन्य कर्मों के उदयमें नहीं। इन तीन कर्मों के उदय का तात्पर्य होता है देशघातिरसस्पर्धकों का उदय।

शंका—मोहनीय कर्म का क्षयोपशम कैसे होता है?। शंकाकार का पूछने का तात्पर्य यह है कि जब क्षयोपशम इन तीन कर्मों का ही होता है तो फिर मोहनीय कर्म का क्षयोपशम कैसे होता है?।

उत्तर—मोहनीय कर्म का क्षयोपशम प्रदेशोदय की अपेक्षा से होता है, विपाकोदय की अपेक्षा से नहीं, इसलिये क्षायोपशमिक भाव मोहनीय कर्म के प्रदेशोदयमें विरुद्ध नहीं पडता है। अर्थात् मोहनीय कर्म का प्रदेशोदय भी हो और उसके साथ क्षायोपशमिक भाव भी हो, इसमें विरोध के लिये कोई गुंजाइश नहीं है। हाँ, विरोध विपाकोदयमें ही है।

અપેક્ષાએ અનેકવિધતા આવી જાય છે. ક્ષાયોપશમિક ભાવમાં કર્મોના ઉદયની સાથે જે અવિરોધતા બતાવવામાં આવી છે તે જ્ઞાનાવરણ, દર્શનાવરણ, અને અન્તરાય, એ ત્રણ કર્મોના ઉદયની સાથે જ જાણવી જોઈએ, બીજી સર્વે પ્રકૃતિઓના ઉદયની સાથે નહીં. તેનું તાત્પર્ય એ છે કે ક્ષાયોપશમિક ભાવ એ ત્રણ કર્મોના ઉદયમાં જ થાય છે, બીજાં કર્મોના ઉદયમાં નહીં. એ ત્રણ કર્મોના ઉદયનું તાત્પર્ય દેશઘાતિરસસ્પર્ધકોનો ઉદય, એવું થાય છે.

શંકા—મોહનીય કર્મનો ક્ષયોપશમ કેવી રીતે થાય છે? શંકા કરનારની શંકાનું તાત્પર્ય એ છે કે જો એ ત્રણ કર્મોનો જ ક્ષયોપશમ થતો હોય તો પછી મોહનીય કર્મનો ક્ષયોપશમ કેવી રીતે થાય છે?

ઉત્તર—મોહનીય કર્મનો ક્ષયોપશમ પ્રદેશોદયની અપેક્ષાએ થાય છે, વિપાકોદયની અપેક્ષાએ નહીં. તેથી ક્ષાયોપશમિક ભાવ મોહનીય કર્મના પ્રદેશોદયમાં વિરૂદ્ધ પડતો નથી. એટલે કે મોહનીય કર્મનો પ્રદેશોદય પણ હોય અને તેની સાથે ક્ષાયોપશમિક ભાવ પણ હોય, તેમાં વિરોધને માટે કોઈ

उच्यते-यतोऽनन्तानुबन्ध्यादिप्रकृतयः सर्वघातिन्यः सन्ति, सर्वघातिनीनां च रसस्पर्धकानि सर्वाण्यपि सर्वघातीन्येव, न तु देशघातीनि भवन्ति। सर्वघातीनि च रसस्पर्धकानि स्वघात्यं गुणं सर्वथा घ्नन्ति, न तु देशतः, अतस्तेषां विपाकोदये क्षयोपशमसम्भवो नास्ति, किन्तु प्रदेशोदये क्षयोपशमो भवितुमर्हति।

ननु प्रदेशोदयेऽपि कथं क्षायोपशमिकभावस्य सम्भवः, सर्वघातिरसस्पर्धकप्रदेशानां सर्व-स्वघात्यगुणघातकत्वादिति चेत्? तदयुक्तम्-वस्तुतत्त्वापरिज्ञानात्।

इसका कारण यह है कि अनंतानुबंधी आदि प्रकृतियां सर्वघाती ही हैं। सर्वघाती प्रकृतियों के समस्त रसस्पर्धक सर्वघाती ही होते हैं, देशघाती नहीं होते हैं, अतः सर्वघाती जो रसस्पर्धक होते हैं वे अपने द्वारा घात करने योग्य गुण का सर्वथा रूपमें ही घात करते हैं, देशरूपमें नहीं, इस लिये सर्वघाती रसस्पर्धकों के विपाकोदयमें क्षयोपशम की संभावना ही नहीं होती है, किन्तु यह संभावना प्रदेशोदयमें ही होती है, इसलिये मोहनीय कर्म के प्रदेशोदयमें क्षयोपशम हो सकता है।

शंका—प्रदेशोदयमें भी क्षायोपशमिक भाव कैसे हो सकता है? कारण कि जो सर्वघातिरसस्पर्धकों के प्रदेश हैं वे अपने द्वारा घात करने योग्य ज्ञानादिक गुणों का सर्वरूप से ही घात करनेवाले होते हैं फिर इनके प्रदेशोदयमें क्षायोपशमिक भावकी सत्ता अविरुद्ध कैसे मानी जावेगी।

સ્થાન નથી. હા, વિરોધ વિપાકોદયમાં જ છે. તેનું કારણ એ છે કે અનંતાનુબંધી આદિ પ્રકૃતિયો સર્વઘાતી જ છે. સર્વઘાતીપ્રકૃતિયોના સમસ્ત રસસ્પર્ધકો સર્વઘાતી જ હોય છે, દેશઘાતી હોતાં નથી, તેથી જે સર્વઘાતિરસસ્પર્ધકો હોય છે તેઓ પોતાના દ્વારા ઘાત કરવા લાયક ગુણનો સદંતરજ ઘાત કરે છે, દેશરૂપમાં નહીં, તેથી સર્વઘાતિરસસ્પર્ધકોના વિપાકોદયમાં ક્ષયોપશમની શકયતા જ હોતી નથી, પણ તે શકયતા પ્રદેશોદયમાં જ હોય છે, તેથી મોહનીય કર્મના પ્રદેશોદયમાં ક્ષયોપશમ થઈ શકે છે.

શંકા—પ્રદેશોદયમાં પણ ક્ષાયોપશમિક ભાવ કેવી રીતે હોઈ શકે છે? કારણ કે જે સર્વઘાતિરસસ્પર્ધકોના પ્રદેશ છે તે પોતાના દ્વારા ઘાત કરવા લાયક જ્ઞાનાદિક ગુણોનું સર્વરૂપે જ ઘાત કરનારા હોય છે, તો પછી તેમના પ્રદેશોદયમાં ક્ષાયોપશમિક ભાવની સત્તા અવિરુદ્ધ કેવી રીતે માની શકાશે?

ते हि सर्वघातिरसस्पर्धकप्रदेशास्तथाविधविशुद्धाऽध्यवसायविशेषेण मनाग् मन्दानुभावीकृत्य विरल-विरलतया वेद्यमानदेशघातिरसस्पर्धकेष्वन्तः प्रवेशिता न यथावस्थितं स्वमाहात्म्यं प्रकटयितुं समर्था भवन्ति, ततो न ते क्षयोपशमहन्तार इति न विरुध्यते प्रदेशोदये क्षायोपशमिको भावः ।

'अणेगभेउत्ति' इत्यत्रेति—शब्दस्याधिकस्याधिकार्थसंसूचनादयमर्थः सूच्यते—मोहनीयप्रकृतिषु मिथ्यात्वमोहनीयं तथाऽनन्तानुबन्ध्यादिद्वादशकषायाश्च सर्वघातिप्रकृतयः सन्ति, तद्भिन्नानां संज्वलनकषायनोकषायप्रकृतीनां त्रयो-

---

उत्तर—यह शंका ठीक नहीं है क्यों कि जो सर्वघातिरसस्पर्धकों के प्रदेश होते हैं वे तथाविध विशुद्ध अध्यवसायविशेष से धीरे २ मन्दरसवाले बना दिये जाते हैं, और इस तरह वे थोडे२ रूपमें करके वेद्यमानदेशघातिरसस्पर्धकोंमें मिला दिये जाते हैं। इस तरह उनकी सर्वघातिरूप शक्ति मन्द कर दी जाती है और इसी कारण वे अपने प्रभाव को प्रकट करनेमें असमर्थ बन जाते हैं। यही कारण है कि वे क्षयोपशम के विघातक नहीं हो सकते हैं। इसीलिये इन के प्रदेशोदयमें क्षायोपशमिक भाव का होना विरुद्ध नहीं पड़ता है। यही बात "अणेगभेउत्ति" इस गाथांश द्वारा प्रकट की गई है। इसमें यह बतलाया गया है कि मोहनीय कर्म की प्रकृतियोंमें मिथ्यात्व मोहनीय, अनंतानुबंधी आदि द्वादश कषाय, ये सब सर्वघाती प्रकृतियां हैं। इनसे भिन्न संज्वलनकषाय तथा नोकषाय (नव नो कषाय) इन तेरह १३ प्रकृतियों

ઉત્તર—આ શંકા બરાબર નથી, કારણ કે, સર્વઘાતિરસસ્પર્ધકોના જે પ્રદેશ હોય છે તેઓ તથાવિધવિશુદ્ધઅધ્યવસાયવિશેષથી ધીમે ધીમે મંદ રસવાળા બનાવી દેવાય છે, અને એ રીતે તેઓ થોડાં થોડાં રૂપમાં કરીને વેદ્યમાન દેશઘાતિ સ્પર્ધકોમાં મેળવી દેવામાં આવે છે. આ રીતે તેમની સર્વઘાતિરૂપ શક્તિ મન્દ કરી નાખવામાં આવે છે અને એજ કારણે તેઓ પોતાના પ્રભાવને પ્રગટ કરવાને અસમર્થ બની જાય છે. આજ કારણે તેઓ ક્ષયોપશમના વિઘાતક થઈ શકતા નથી, તેથી તેમના પ્રદેશોદયમાં ક્ષાયોપશમિક ભાવનું હોવું તે વિરૂદ્ધ પડતું નથી. એજ વાત "अणेगभेउत्ति" આ ગાથાંશ દ્વારા પ્રગટ કરાઈ છે, તેમાં એ બતાવાયું છે કે મોહનીયકર્મની પ્રકૃતિયોમાં મિથ્યાત્વ-મોહનીય, અનંતાનુબંધી આદિ બાર કષાય, એ બધી સર્વઘાતી પ્રકૃતિયો છે. તેમનાથી ભિન્ન સંજવલન કષાય તથા નોકષાય (નવ નોકષાય) એ તેર પ્રકૃતિયોને।

दशानां प्रदेशोदयो वा विपाकोदयो वा भवेत्, तदा क्षयोपशमो भवति, तासां प्रकृतीनां देशघातित्वात् ।

सप्तविंशतिः प्रकृतयो ध्रुवोदयाः सन्ति । तद् यथा-द्वादश नामकर्माणि-१निर्माणं, २स्थिरम्, ३अस्थिरम्, ४अगुरुलघु, ५शुभनाम, ६अशुभनाम, ७तैजसं, ८कार्मणं, वर्णादीनि चत्वारि-९वर्ण, १०गन्ध, ११रस, १२स्पर्शरूपाणि, तथा-ज्ञानावरणपञ्चकम् १७, अन्तरायपञ्चकं२२, दर्शनचतुष्कं२६, मिथ्यात्वमिति२७। एताः सप्तविंशतिः प्रकृतयो नित्योदयाः। आसां सर्वासामपि सर्वथाक्षयात् प्राग् अव्यवच्छिन्नोदयत्वादिति ।

का चाहे प्रदेशोदय हो, चाहे विपाकोदय हो उसमें क्षयोपशम भाव होता है, क्यों कि ये प्रकृतियां देशघाती हैं ।

सत्ताईस २७ प्रकृतियां ध्रुवोदयवाली हैं और वे इस प्रकार हैं-बारह १२ नामकर्म की-(१) निर्माण, २ स्थिर, ३ अस्थिर, अगुरुलघु ४, शुभनाम ५, अशुभनाम ६, तैजस ७, कार्मण ८, वर्णादिचार-वर्ण, रस, गंध, स्पर्श (१२), ज्ञानावरण की ५, (१७) अन्तरायकी ५ (२२), दर्शनचतुष्क-चक्षुदर्शन १, अचक्षुदर्शन २, अवधिदर्शन ३, केवलदर्शन ४ (२६), और १ मिथ्यात्व (२७)। इस प्रकार ये सत्ताईस २७ प्रकृतियां ध्रुव प्रकृतियां हैं। जब तक इन सबका क्षय नहीं हो जाता है उस के पहिले इनका उदय व्यवच्छिन्न नहीं होता है, अर्थात् उदय रहता ही है।

ચાહે પ્રદેશોદય થાય, કે ચાહે વિપાકોદય થાય પણ તેમાં ક્ષયોપશમ ભાવ હોય છે, કારણ કે તે પ્રકૃતિયો દેશઘાતી છે.

સત્તાવીશ (૨૭) પ્રકૃતિયો ધ્રુવોદયવાળી છે અને તે આ પ્રમાણે છે—

બાર (૧૨) નામકર્મની-(૧) નિર્માણ, (૨) સ્થિર, (૩) અસ્થિર, (૪) અગુરૂલઘુ, (૫) શુભનામ, (૬) અશુભનામ, (૭) તૈજસ, (૮) કાર્મણ, વર્ણાદિચાર-વર્ણ૧, રસ૨, ગંધ૩, સ્પર્શ૪ (૯થી૧૨), જ્ઞાનાવરણની ૫ (૧૩થી૧૭), અન્તરાયની ૫ (૧૮થી૨૨), દર્શનચતુષ્ક—ચક્ષુદર્શન૧, અચક્ષુદર્શન૨, અવધિદર્શન૩, કેવળદર્શન૪ (૨૩થી૨૬), અને મિથ્યાત્વ (૨૭). આ પ્રમાણે તે સત્તાવીશ (૨૭) પ્રકૃતિયો ધ્રુવપ્રકૃતિયો છે. જ્યાં સુધી તે બધીને ક્ષય થતો નથી તેનાં પહેલાં ઉદય વ્યવચ્છિન્ન થતો નથી. એટલે કે ઉદય રહે છે જ.

अथ स्पर्धकभेदप्ररूपणा—

प्रकृतीनामौदयिको भावो द्विधा भवति, तद् यथा-शुद्धः, क्षयोपशमानुविद्धश्च। एतत्स्पष्टप्रतिपत्तये स्पर्धकभेदप्ररूपणा वाच्या, अतस्तावत् स्पर्धकभेदप्ररूपणा क्रियते। उक्तश्च—

चउतिट्ठाण-रसाइं, सव्वघाईणि होंति फड्डाइं।
दुट्ठाणयाणि मीसाणि, देसघाईणि सेसाणि ॥ १ ॥

छाया—चतुस्त्रिस्थानरसानि, सर्वघातीनि भवन्ति स्पर्धकानि।
द्विस्थानकानि मिश्राणि, देशघातीनि शेषाणि ॥ १ ॥

अन्वयः—(यानि) चतुस्त्रिस्थानरसानि द्विस्थानकानि स्पर्धकानि (सन्ति) तानि (सर्वघातिप्रकृतीनां) सर्वघातीनि भवन्ति। (देशघातिप्रकृतीनां तु) मिश्राणि भवन्ति। शेषाणि देशघातीनि भवन्ति।

व्याख्या—स्पर्धकानि=रसस्पर्धकानि चतुर्धा भवन्ति। तद् यथा-एकस्थानकानि द्विस्थानकानि, त्रिस्थानकानि, चतुःस्थानकानि च।

॥ स्पर्धकभेदप्ररूपणा ॥

प्रकृतियों का औदयिक भाव दो प्रकार का होता है-(१) शुद्ध, (२) क्षयोपशमानुविद्ध। इस बात को स्पष्टरूप से समझाने के लिये अब स्पर्धकों के भेद की प्ररूपणा की जाती है। वह इस प्रकार है—

"चउतिट्ठाणरसाइं, सव्वघाईणि होंति फड्डाइं।
दुट्ठाणयाणि मीसाणि देसघाईणि सेसाणि ॥१॥"-

इस गाथा का अर्थ इस प्रकार है—रसस्पर्धक चार प्रकार के होते है-१एकस्थानक, २ द्विस्थानक, ३ त्रिस्थानक, ४ चतुः स्थानक। शुभ-

---

સ્પર્ધકભેદપ્રરુપણા—

પ્રકૃતિયોનો ઔદયિક ભાવ બે પ્રકારનો હોય છે-(૧) શુદ્ધ, (૨) ક્ષયોપશમાનુવિદ્ધ. આ વાતને સ્પષ્ટરૂપે સમજાવવાને માટે હવે સ્પર્ધકોના ભેદની પ્રરૂપણા કરવામાં આવે છે. તે આ પ્રમાણે છે—

"चउतिट्ठाणरसाइं, सव्वघाईणि होंति फड्डाइं।
दुट्ठाणयाणि मीसाणि देस घाईणि सेसाणि ॥१॥"

આ ગાથાનો અર્થ આ પ્રમાણે છે-રસસ્પર્ધક ચાર પ્રકારનાં હોય છે. (૧) એકસ્થાનક, (૨) દ્વિસ્થાનક, (૩) ત્રિસ્થાનક, (૪) ચતુઃસ્થાનક. શુભ પ્રકૃતિયોનો

अथ किमिदं रसस्यैकस्थानकत्व-द्विस्थानकत्वादि ?। उच्यते—इह शुभप्रकृतीनां रसः क्षीरखण्डादिरसोपमो भवति। अशुभप्रकृतीनां तु निम्ब-कोषातक्यादिरसोपमः। क्षीरादि-रसश्च-एककर्षपरिमितः 'एकतोला' इति भाषाप्रसिद्धः, स्वाभाविक एकस्थानक उच्यते। स एव मन्दरस इत्यभिधीयते। द्वयोस्तु कर्षयोर्वह्नितापैरुत्कालने कृते सति योऽवशिष्यते एकः कर्षः, स द्विस्थानकः। स तीव्ररस इत्युच्यते। त्रयाणां कर्षाणां तथैवोत्कालने कृते सति य एकः कर्षोऽवशिष्टः स त्रिस्थानकः। स तीव्रतररस इत्युच्यते। चतुर्णां कर्षाणामावर्तने कृते सति योऽवशिष्ट एकः कर्षः, स चतुःस्थानकः। स तीव्रतमरस इत्युच्यते। एकस्थानकोऽपि

प्रकृतियोंका रस खीर खांड आदि के रस के समान होता है। तथा अशुभ प्रकृतियों का रस नीम एवं कोषातकी (कडवी तुरई) आदि के रस के समान होता है। दूधआदिमें जो एक तोला प्रमाण स्वाभाविक रस होता है वह एकस्थानिक रस जानना चाहिये। इसी का दूसरा नाम मन्द रस भी है १। दो तोला प्रमाण रस जब अग्नि द्वारा उकाला जाता है और इस तरह उकालते २ जब वह दो तोला का १ तोला प्रमाणमें रह जाता है तो उसे द्विस्थानिक रस समझना चाहिये। इसका दूसरा नाम तीव्र रस भी है २। तीन तोला प्रमाण रस जब उकालते २ एक तोला रह जाता है तो इसे त्रिस्थानिक रस जानना चाहिये। इसका दूसरा नाम तीव्रतर रस भी है ३। इसी तरह चार तोला प्रमाण दुग्धादि का रस उकालते२ जब एक तोला प्रमाणमें बच जाता है तो वह चतुःस्थानिक रस समझना चाहिये। इसका दूसरा नाम तीव्रतम रसभी है ४। एक स्था-

---

રસ ખીર, ખાંડ વગેરેના રસ જેવા હોય છે. તથા અશુભ પ્રકૃતિયોના રસ લીમડો અને કોષાતકી (કડવું તુરીયું) વગેરેના રસ જેવા હોય છે. દૂધ આદિમાં જે એક તોલા પ્રમાણ સ્વાભાવિક રસ હોય છે તે એકસ્થાનિક રસ જાણવો જોઈએ. તેનું બીજું નામ મન્દરસ પણ છે. બે તોલા માપના રસને જ્યારે અગ્નિવડે ઉકાળવામાં આવે અને આ રીતે ઉકાળતાં ઉકાળતાં જ્યારે તે બે તોલામાંથી એક તોલાના પ્રમાણમાં રહી જાય ત્યારે તેને દ્વિસ્થાનિક રસ જાણવો જોઈએ. એનું બીજું નામ તીવ્ર રસ પણ છે. ત્રણ તોલા વજનનો રસ જ્યારે ઉકાળતાં ઉકાળતાં એક તોલોજ રહી જાય ત્યારે તેને ત્રિસ્થાનિક રસ જાણવો જોઈએ. તેનું બીજુ નામ તીવ્રતર પણ છે. એ જ રીતે ચાર તોલા વજનનો દુગ્ધાદિક રસ ઉકાળતાં ઉકાળતાં જ્યારે એક તોલો બાકી રહે ત્યારે તે ચતુઃસ્થાનિક રસ જાણવો જોઈએ તેનું બીજું નામ તીવ્રતમ પણ છે.

च रसो जल-लव-विन्दु-चुल्लक-प्रसृत्य-अञ्जलि-करक-(लोटा)-कुम्भ-द्रोण्या-(कुडा) दिषु प्रक्षेपाद् मन्द-मन्दतराद्यनेकभेदत्वं प्रतिपद्यते। एवं द्विस्थानकादिष्वपि रसेष्वनेकभेदत्वं वाच्यम्। तथा कर्मणामपि रसेष्वेकस्थानकत्वादिकं स्वधिया भावनीयम्। प्रत्येकमनन्तभेदभिन्नाश्च कर्मणां चैकस्थानकरसात् द्विस्थानकादयो रसा यथोत्तरमनन्तगुणा वाच्याः। तत्र सर्वघातिनीनां देशघातिनीनां वा प्रकृतीनां यानि चतुःस्थानकरसानि, त्रिस्थानकरसानि, द्विस्थानकरसानि वा स्पर्धकानि, तानि सर्वघातिनीनां सर्वघातीन्येव। देशघातिनीनां तु मिश्राणि=कानिचित् सर्वघातीनि

नवाला रस भी जब हम जल के अंशमें, विन्दुओंमें, चुल्लूमें, पसलिमें, अंजलिमें, लोटा, कुंभ, कुंड आदिमें डालते हैं तो वह भी मन्द मन्दतर आदि अनेक भेदवाला बन जाता है। इसी तरह द्विस्थानक आदि रस भी मन्द मन्दतर आदि अनेक भेदवाला बन जाता है। जिस प्रकार दुग्धादिक के रसमें यह एकस्थानिक द्विस्थानिक आदि रस की व्यवस्था समझाई गई है उसी प्रकार कर्मों के रसोंमें भी एकस्थानिक आदि की और उनमें भी तीव्र तीव्रतर आदि अनेक भेदोंकी कल्पना अपनी बुद्धि से कर लेना चाहिये। इस तरह एकस्थानिक रस से द्विस्थानिक रस, द्विस्थानिक रस से त्रिस्थानिक रस, एवं त्रिस्थानिकरस से चतुःस्थानिक रस अनंताऽनंत भेदवाले बन जाते हैं। इनमें जो सर्वघाती अथवा देशघाती प्रकृतियों के चतुःस्थानिक, त्रिस्थानिक एवं द्विस्थानिक रस-वाले स्पर्धक हैं वे सर्वघाती प्रकृतियों के तो सर्वघाती ही हैं। देशघाती प्रकृतियों के मिश्र होते हैं। इनमें कितनेक सर्वघाती होते हैं और कित-

એક સ્થાનવાળો રસ પણ જ્યારે આપણે જળના અંશમાં, બિન્દુઓમાં, પસલીમાં, અંજલિમાં, લોટા, કુંભ, કુંડ આદિમાં નાખીએ છીએ તો તે પણ મન્દ, મન્દતર વગેરે અનેક ભેદવાળો થઇ જાય છે. જે રીતે દૂધ વગેરેના રસમાં આ એકસ્થાનિક, દ્વિસ્થાનિક વગેરે રસની વ્યવસ્થા સમજાવવામાં આવી છે એ જ પ્રમાણે કર્મોના રસોમાં પણ એકસ્થાનિક આદિની અને તેઓમાં પણ તીવ્ર, તીવ્રતર આદિ અનેક ભેદોની કલ્પના પોતાની બુદ્ધિથી કરી લેવી જોઈએ. આ રીતે એકસ્થાનિક રસમાંથી દ્વિસ્થાનિક રસ, દ્વિસ્થાનિક રસમાંથી ત્રિસ્થાનિક રસ અને ત્રિસ્થાનિક રસમાંથી ચતુઃસ્થાનિક રસ, અનંતાનંત ભેદવાળા બની જાય છે. તેમનામાં જે સર્વઘાતી અથવા દેશઘાતી પ્રકૃતિયોના ચતુઃસ્થાનિક, ત્રિસ્થાનિક અને દ્વિસ્થાનિક રસવાળા સ્પર્ધક છે તેઓ સર્વઘાતી પ્રકૃતિયોના તો સર્વઘાતી છે. દેશઘાતી પ્રકૃતિયોના મિશ્ર હોય છે.

कानिचिद्देशघातीनि स्पर्धकानि भवन्तीत्यर्थः। शेषाणि=एकस्थानकरसानि स्पर्धकानि तु सर्वाण्यपि देशघातीन्येव। तानि च देशघातिनीनां संभवन्ति, न तु सर्वघातिनीनामिति कृता स्पर्धकभेदप्ररूपणा।

अथौदयिकभावस्य द्वैविध्यं प्ररूप्यते। उक्तञ्च—

निहएसु सव्वघाई,-रसेसु फड्डेसु देसघाईणं।
जीवस्स गुणा जायं,-ति ओहिमणचक्खुमाई य ॥१॥

छाया—निहतेषु सर्वघातिरसेषु, स्पर्धकेषु देशघातिनाम्।
जीवस्य गुणा जायन्ते, अवधिमनश्चक्षुरादयश्च ॥ १ ॥

व्याख्या—देशघातिनाम्=अवधिज्ञानावरणप्रभृतीनां कर्मणां सम्बन्धिषु सर्वघातिरसेषु=सर्वघाती रसो यत्र स सर्वघातिरसस्तेषु सर्वघातिरसवत्सु स्पर्धकेषु निह-

---

नेक देशघाती होते है। शेष जो एकस्थानिक रसवाले स्पर्धक होते हैं वे तो देशघाती ही होते हैं, क्यों कि एकस्थानिक रसवाले ये स्पर्धक देशघाती प्रकृतियोंमें ही संभवित होते हैं, सर्वघातिप्रकृतीयोंमें नहीं। इस तरह यह स्पर्धकभेदप्ररूपणा जाननी चाहिये।

अब औदयिकभाव के शुद्ध और क्षयोपशमानुविद्ध, इन दो भेदों की प्ररूपणा की जाती है, वह इस प्रकार है—

"निहएसु सव्वघाई,-रसेसु फड्डेसु देसघाईणं।
जीवस्स गुणा जायं-ति ओहिमणचक्खुमाई य" ॥१॥

इस गाथा का अर्थ इस प्रकार है—

सर्वघाती रसवाले स्पर्धकों को तथाविध विशुद्ध अध्यवसाय के बल

તેઓમાં કેટલાંક સર્વઘાતી હોય છે અને કેટલાંક દેશઘાતી હોય છે. બાકીના જે એકસ્થાનિક રસવાળાં સ્પર્ધક હોય છે તેઓ તે દેશઘાતી જ હોય છે, કારણ કે એકસ્થાનિક રસવાળાં તે સ્પર્ધકો દેશઘાતી પ્રકૃતિયોમાં જ સંભવિત હોય છે. સર્વઘાતિપ્રકૃતિયોમાં નહીં. આ રીતે આ સ્પર્ધકભેદપ્રરૂપણા જાણવી જોઈએ.

હવે ઔદયિક ભાવના શુદ્ધ અને ક્ષયોપશમાનુવિદ્ધ, એ બે ભેદોની પ્રરૂપણા કરવામાં આવે છે. તે આ પ્રમાણે છે—

"निहएसु सव्वघाई,-रसेसु फड्डेसु देसघाईणं।
जीवस्स गुणा जायं - ति ओहि-मण चक्खु-माई य" ॥ १ ॥

આ ગાથાનો અર્થ આ પ્રમાણે છે—

સર્વઘાતીરસવાળા સ્પર્ધકોને તથાવિધ વિશુદ્ધ અધ્યવસાયના બળથી

तेषु=तथाविधविशुद्धाध्यवसायविशेषबलेन देशघातिरूपतया परिणमितेषु, देशघातिरसस्पर्धकेष्वपि च अतिस्निग्धेषु अल्परसीकृतेषु, तेषां मध्येकतिपयरसस्पर्धकगतस्योदयावलिकाप्रविष्टस्यांशस्य क्षये, शेषस्य चोपशमे विपाकोदयविष्कम्भरूपे सति जीवस्यावधिमनःपर्ययज्ञानचक्षुर्दर्शनादयो गुणाः=क्षायोपशमिकाः, जायन्ते =प्रादुर्भवन्ति ।

अयं भावः—यदाऽवधिज्ञानावरणीयादीनां देशघातिनां कर्मणां सर्वघातीनि रसस्पर्धकानि विपाकोदयमागतानि वर्तन्ते, तदा तद्विषयः केवल एक एव शुद्ध औदयिकभावो भवति १। यदा तु देशघातिरसस्पर्धकानामुदयस्तदा तदुदयादौदयिको भावः कतिपयानां च देशघातिरसस्पर्धकानां सम्बन्धिन उदयावलिकाप्रविष्टस्यांशस्य क्षये,

---

से देशघातीरूप परिणमाने पर, तथा अतिस्निग्ध देशघाती के रसस्पर्धकों को भी अल्परसरूप करने पर, और इनके बीचमें भी जो कितनेक रसस्पर्धकों का अंश है कि जो उदयावलिमें प्रविष्ट हो चुका है वह जब नष्ट हो जाता है, तथा अवशिष्ट उपशम अवस्थामें रहता है, ऐसी स्थितिमें जीव के क्षायोपशमिक अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान तथा चक्षुर्दर्शन आदि गुण प्रकट होते हैं।

फलितार्थ इसका यह है कि—जिस समय अवधिज्ञानावरणीय आदि देशघाती कर्मों के सर्वघातिरसस्पर्धक, विपाकोदय वाले होते हैं तो उस समय तद्विषयक केवल एक ही शुद्ध औदयिकभाव होता है १। तथा-जिस समय उनके देशघातीरसस्पर्धकों का उदय होता है उस समय उनके उदयसे औदयिक भाव, तथा कितनेक देशघातिरसस्पर्धकों के संबन्धी उदयावलिकाप्रविष्ट अंश का क्षय होने पर और अव-

---

દેશઘાતિરૂપ પરિણમાતા, તથા અતિસ્નિગ્ધ દેશઘાતીના રસસ્પર્ધકોને પણ અલ્પરસ રૂપ કરતાં, અને તેમની વચ્ચે પણ જે કેટલાંક રસસ્પર્ધકોનો અંશ છે કે જે ઉદયાવલિમાં પ્રવેશ કરી ચૂક્યાં છે, તે જ્યારે નષ્ટ થાય છે, તથા અવશિષ્ટ ઉપશમ અવસ્થામાં રહે છે, એવી સ્થિતિમાં જીવને ક્ષાયોપશમિક અવધિજ્ઞાન, મન.પર્યયજ્ઞાન તથા ચક્ષુર્દર્શન આદિ ગુણ પ્રગટ થાય છે (૧)

તેનું તાત્પર્ય એ છે કે જ્યારે અવધિજ્ઞાનાવરણીય આદિ દેશઘાતી કર્મોનાં સર્વઘાતિરસસ્પર્ધક વિપાકોદયવાળા થાય છે ત્યારે તે વિષયનો ફક્ત એક જ શુદ્ધ ઔદયિક ભાવ હોય છે (૧). તથા જે સમયે તેમના દેશઘાતિરસસ્પર્ધકોનો ઉદય થાય છે તે સમયે તેના ઉદયથી ઔદયિક ભાવ, તથા કેટલાંક દેશઘાતિરસસ્પર્ધકોનાં સબંધી ઉદયાવલિકાપ્રવિષ્ટ અંશનો ક્ષય થતાં અને અવ-

शेषस्य चानुदितस्योपशमे क्षायोपशमिक इति क्षयोपशमानुविद्ध औदयिकभावः२। मतिश्रुतावरणचक्षुर्दर्शनावरणप्रकृतीनां तु सदैव देशघातिनामेव रसस्पर्धकानामुदयो, न सर्वघातिनाम्, तेन सर्वदापि तासामौदयिक-क्षायोपशमिकौ भावौ सन्मिश्रौ प्राप्येते, न तु केवल औदयिक इति।

अथ प्रसङ्गवशात् प्रकृतीनां भावा उच्यन्ते—

मोहनीयस्य क्षायिक-क्षायोपशमिकौ-पशमिकौ-दयिक-पारिणामिकलक्षणाः पञ्चापि भावाः सम्भवन्ति। ज्ञानावरण-दर्शनावरणा-न्तरायाणामौपशमिकवर्जाः शेषाश्चत्वारो भावाः। नाम-गोत्र-वेदनीया-युषां क्षायिकौ-दयिक-पारिणामिकलक्षणास्त्रयो भावाः सम्भवन्ति॥ सू० ८॥

शिष्टका-जो उदित नहीं है-उपशम होने पर क्षायोपशमिक भाव होता है। इस तरह औदयिक भाव क्षयोपशमानुविद्ध माना गया है २। जैसे -मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, चक्षुर्दर्शन की उत्पत्तिमें मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, चक्षुदर्शनावरण प्रकृतियों के देशघाति-रसस्पर्धकों का ही सदा उदय रहा करता है, सर्वघातिरसस्पर्धकों का नहीं, इसलिये सर्वदा इनके उदयमें औदयिक एवं क्षायोपशमिक ये दोनों भाव मिले हुए होते हैं, केवल औदयिक भाव नहीं। इस तरह औदयिक भाव क्षयोपशमानुविद्ध सिद्ध हो जाता है।

प्रसंगवश अब प्रकृतियों के भाव बतलाये जाते हैं—

मोहनीयकर्मके क्षायिक, क्षायोपशमिक, औपशमिक, औदयिक एवं पारिणामिक ये पांचों ही भाव होते हैं। ज्ञानावरण, दर्शनावरण एवं अन्तराय, इन तीन कर्मों के औपशमिक भाव को छोड़कर शेष चार

શિષ્ટનો કે જે ઉદિત નથી તેનો ઉપશમ થતાં ક્ષાયોપશમિક ભાવ થાય છે. આ રીતે ઔદયિકભાવ ક્ષયોપશમાનુવિદ્ધ મનાયો છે (૨). જેમ-મતિજ્ઞાન, શ્રુતજ્ઞાન, ચક્ષુર્દર્શનની ઉત્પત્તિમાં મતિજ્ઞાનાવરણ, શ્રુતજ્ઞાનાવરણ, ચક્ષુર્દર્શનાવરણ, પ્રકૃતિયોના દેશઘાતિરસસ્પર્ધકોનો જ સદા ઉદય રહ્યા કરે છે, સર્વઘાતિરસસ્પર્ધકોનો નહીં. તેથી હમેશાં તેના ઉદયમાં ઔદયિક અને ક્ષાયોશમિક, એ બન્ને ભાવ મળેલા હોય છે, ફક્ત ઔદયિક ભાવ નહીં. આ રીતે ઔદયિકભાવ ક્ષયોપશમાનુવિધ્ધ સિધ્ધ થઈ જાય છે.

પ્રસંગવશ હવે પ્રકૃતિયોના ભાવ બતાવવામાં આવે છે—

મોહનીયકર્મના ક્ષાયિક, ક્ષાયોપશમિક, ઔપશમિક, ઔદયિક અને પારિણામિક, એ પાંચ જ ભાવ છે. જ્ઞાનાવરણ, દર્શનાવરણ અને અન્તરાય, એ ત્રણ

मूलम्—अहवा गुणपडिवन्नस्स अणगारस्स ओहिनाणं समुप्पज्जइ। तं समासओ छव्विहं पन्नत्तं। तं जहा—आणुगामियं१, अणाणुगामियं२, वड्ढमाणयं३, हीयमाणयं४, पडिवाइयं५, अप्पडिवाइयं६ ॥ सू० ९ ॥

छाया—अथवा गुणप्रतिपन्नस्यानगारस्यावधिज्ञानं समुत्पद्यते। तत् समासतः षड्विधं प्रज्ञप्तम्। तद् यथा—आनुगामिकम् १, अनानुगामिकम् २, वर्धमानकं३, हीयमानकं४, प्रतिपातिकम् ५, अप्रतिपातिकम् ६ ॥ सू० ९ ॥

टीका—'अहवा' इत्यादि—'अथवा' इति प्रकारान्तरं प्रतिबोधयति। विशिष्टगुणप्रतिपत्तिमन्तरेणावधिज्ञानावरणक्षयोपशमो भवतीत्यस्मादन्योऽयं प्रकारः

भाव होते हैं। नाम, गोत्र, वेदनीय तथा आयु, इन चार कर्मों के क्षायिक, औदयिक और पारिणामिक, ये तीन भाव होते हैं ॥सू०८॥

'अहवा' इत्यादि। अथवा गुणप्रतिपन्न अनगार के अवधिज्ञान होता है, वह छह प्रकारका होता। आनुगामिक १, अनानुगामिक २, वर्धमानक ३, हीयमानक ४, प्रतिपातिक ५, और अप्रतिपातिक ६, ।

विशेषार्थ—सूत्रमें रहा हुआ "अहवा" शब्द यह बतलाता है कि विशिष्टगुणप्रतिपत्ति के विना भी अवधिज्ञानावरण का क्षयोपशम होता है इस कारण उस के क्षयोपशम के लिये और भी दूसरा प्रकार है जो इस तरह है—मूलगुण एवं उत्तरगुणों को यहां गुण—शब्द से ग्रहण किया

કર્મોના ઔપશમિક ભાવને છોડતાં બાકી ચાર ભાવ હોય છે. નામ, ગોત્ર, વેદનીય તથા આયુ, એ ચાર કર્મોના ક્ષાયિક, ઔદયિક અને પારિણામિક, એ ત્રણ ભાવ હોય છે. ॥ સૂ૦ ૮ ॥

'अहवा' ઇત્યાદિ. અથવા ગુણપ્રતિપન્ન અણગારને અવધિજ્ઞાન થાય છે. તે છ પ્રકારનું હોય છે-(૧) આનુગામિક (૨) અનાનુગામિક (૩) વર્ધમાનક (૪) હીયમાનક (૫) પ્રતિપાતિક (૬) અપ્રતિપાતિક.

વિશેષાર્થઃ-સૂત્રમાં આવતો "अहवा" શબ્દ એ દર્શાવે છે કે વિશિષ્ટગુણ પ્રતિપત્તિના વિના પણ અવધિજ્ઞાનાવરણનો ક્ષયોપશમ થાય છે, તે કારણે તેના ક્ષયોપશમને માટે એક બીજો પ્રકાર પણ છે જે આ પ્રમાણે છે-મૂળગુણ અને ઉત્તરગુણોને અહીં ગુણ શબ્દથી ગ્રહણ કરેલ છે. એ મૂળગુણ અને ઉત્તરગુણોને

प्रदर्श्यते, इति भावः । गुणप्रतिपन्नस्य=गुणाः-मूलोत्तररूपास्तान् प्रतिपन्नो गुणप्रतिपन्नः । अथवा-गुणैः प्रतिपन्नः, 'अयमनगारोऽस्माकमवस्थानपात्र'मिति कृत्वा गुणैराश्रित इत्यर्थः । अनेन पात्रतायां सत्यां स्वयमेव गुणा आयान्तीति सूचितम् । उक्तञ्च—

" नोदन्वानर्थितामेति, न चाम्भोभिर्न पूर्यते ।
आत्मा तु पात्रतां नेयः, पात्रमायान्ति संपदः " ॥ १ ॥

है । इन मूलगुण और उत्तरगुणों को जो धारण करते हैं वे गुणप्रतिपन्न हैं । अथवा जो गुणों के द्वारा आश्रित किये गये हों वे गुणप्रतिपन्न हैं । "यह साधु हमारे ठहरने का स्थान हैं" ऐसा विचार कर मानो गुण स्वयं उसमें आकर निवास करने लग जाते हैं, क्यों कि जब पात्रता आजाती है तो गुणों का ऐसा स्वभाव होता है कि वे विना बुलाये ही स्वयमेव आकर उस पात्र आत्मा को अपना निवासस्थान बना लिया करते हैं, कहा भी है—

" नोदन्वानर्थितामेति, न चाम्भोभिर्न पूर्यते ।
आत्मा तु पात्रतां नेयः, पात्रमायान्ति संपदः " ॥१॥

समुद्र जल से यह याचना नहीं करता है कि तुम हमें आकर भरदो किन्तु समुद्रमें पात्रता देखकर जल स्वयं उसमें आकर भर जाता है । अतः प्राणी का कर्तव्य है कि वह सर्व प्रथम अपने आपको पात्र बनावे । पात्रता आने पर गुण-रूप संपत्तियां स्वयं ही उसे अपना निवास स्थान बना लेती हैं ॥ १ ॥

જે ધારણ કરે છે તેઓ ગુણપ્રતિપન્ન છે. અથવા જે ગુણોવડે આશ્રિત કરાયા હોય તેઓ ગુણપ્રતિપન્ન છે. 'આ સાધુ અમારે રહેવાનુ સ્થાન છે.' એવો વિચાર કરીને જાણે કે ગુણ જાતે જ આવીને તેનામાં નિવાસ કરવા માંડે છે, કારણ કે જ્યારે યોગ્યતા આવી જાય છે ત્યારે ગુણનો એવો સ્વભાવ છે કે તે વગર બોલાવ્યે જાતે જ આવીને તે લાયક (પાત્ર) આત્માને પોતાનું નિવાસ સ્થાન બનાવી દે છે. કહ્યું પણ છે—

" नोदन्वानर्थितामेति, न चाम्भोभिर्न पूर्यते ।
आत्मा तु पात्रतां नेयः, पात्रमायान्ति सपदः ॥१॥ "

સમુદ્ર જળને એ યાચના કરતો નથી કે તુ આવીને મને ભરી દે, પણ સમદ્રમાં પાત્રતા જોઈને જળ જાતે જ આવીને તેમાં ભરાઈ જાય છે. તેથી પ્રાણીની ફરજ છે કે તેણે સૌથી પહેલાં પોતાની જાતને લાયક બનાવવી જોઈએ. પાત્રતા આવતાંજ ગુણરૂપ સંપત્તિ પોતેજ તેને પોતાનુ નિવાસસ્થાન બનાવી લે છે.

तस्य गुणप्रतिपन्नस्य अनगारस्य=न गच्छन्तीत्यगाः=काष्ठपाषाणादयस्तान् ऋच्छति=समाश्रयति, इत्यगारं=गृहं, न विद्यते अगारं यस्यासावनगारः-परित्यक्त-द्रव्यभावगृह इत्यर्थः। तस्य प्रशस्तेष्वध्यवसायेषु वर्तमानस्य सर्वघातिरसस्पर्धकेषु देशघातिरसस्पर्धकतया जातेषु पूर्वोक्तक्रमेण अवधिज्ञानावरणकर्मक्षयोपशमे सति, अवधिज्ञानमुत्पद्यते।

अथ मनःपर्ययज्ञानप्ररूपणा।

मनःपर्ययज्ञानावरणीयस्य तु विशिष्टसंयमाप्रमादादिप्रतिपत्तावेव सर्वघातीनि रसस्पर्धकानि देशघातीनि भवन्ति, तथास्वाभाव्यात्। तच्च तथास्वाभाव्यं,

जिनके अगार (घर) नहीं है वे अनगार हैं। काष्ठ पाषाण आदि का जो आश्रय करता है-अर्थात् लकडी पत्थर आदि की सहायता से जिसका निर्माण होता है उसका नाम अगार-घर है। इस अगार का जिन्होंने परित्याग कर दिया है वे अनगार है। अनगार के द्रव्य और भावरूप दोनों प्रकार के अगार-घर का परित्याग होता है। इस तरह प्रशस्त अध्यवसायोंमें लवलीन उस अनगार के सर्वघाती जो रसस्पर्धक होते हैं वे देशघातिरसस्पर्धकरूपसे परिणमित हो जाते हैं, तब पूर्वोक्त क्रम से अवधिज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम होने पर उसके अवधिज्ञान उत्पन्न हो जाता है।

अब मनःपर्ययज्ञान की प्ररूपणा की जाती है—

मनःपर्ययज्ञानावरणीय कर्म के सर्वघातिरसस्पर्धक, विशिष्ट संयम अप्रमाद आदि गुणों की प्रतिपत्ति होने पर ही देशघातिरूप होते हैं, क्यों

જેઓને અગાર (ઘર) નથી તે અનગાર છે. કાષ્ઠ, પાષાણ આદિનો જે આશ્રય લે છે-એટલે કે લાકડું, પથ્થર વગેરેની સહાયતાથી જેનું નિર્માણ થાય છે તેનું નામ અગાર (ઘર) છે. આ અગારનો જેણે ત્યાગ કર્યો છે તે અનગાર છે. અનગારને દ્રવ્ય અને ભાવરૂપ બન્ને પ્રકારના અગાર-ઘરનો પરિત્યાગ હોય છે. આ રીતે પ્રશસ્ત અધ્યવસાયોમાં લવલીન તે અનગારના જે સર્વઘાતિરસસ્પર્ધક હોય છે, તે દેશઘાતિરસસ્પર્ધકનારૂપે પરિણમિત થઈ જાય છે, ત્યારે પૂર્વોક્ત ક્રમથી અવધિજ્ઞાનાવરણ કર્મનો ક્ષયોપશમ થતાં તેને અવધિજ્ઞાન ઉત્પન્ન થઈ જાય છે.

હવે મનઃપર્યયજ્ઞાનની પ્રરૂપણા કરવામાં આવે છેઃ-

મનઃપર્યયજ્ઞાનાવરણીય કર્મના, સર્વઘાતિરસસ્પર્ધક, વિશિષ્ટ સંયમ, અપ્રમાદ આદિ ગુણોની પ્રતિપત્તિ થતાં જ દેશઘાતિરૂપ થાય છે, કારણ કે આ

बन्धकाले तथारूपाणामेव तेषां बन्धनात् । ततो मनःपर्ययज्ञानं विशिष्टगुणप्रतिपन्नस्यैव वेदितव्यम् ।

मतिश्रुतावरणाचक्षुर्दर्शनावरणाऽन्तरायप्रकृतीनां तु सर्वघातीनि रसस्पर्धकानि येन केनचित् तथारूपविशुद्धाध्यवसायेन तदध्यवसायानुरूपं देशघातीनि भवन्ति, तेषां तथास्वाभाव्यात् । ततो मतिज्ञानावरणादीनां सदैव देशघातिनामेव रसस्पर्धकानामुदयः, सदैव च क्षयोपशमः । उक्तश्च पञ्चसंग्रह टीकायाम्-(द्वा. ३ गा. २९)

कि इस अवस्थामें उनका ऐसा ही स्वभाव होता है। इसका भी कारण यह है कि बंधकालमें इनका जो बंध होता है वह इसी प्रकार के ही सर्वघातिरसस्पर्धकों का बंध होता है। इसलिये मनःपर्ययज्ञान विशिष्टगुणाश्रित अनगार के ही होता है, ऐसा जानना चाहिये। मनःपर्ययज्ञान की उत्पत्तिमें अवधिज्ञानकी उत्पत्ति की तरह उसमें विशिष्टगुणप्रतिपन्नताका अभाव नहीं होता है।

मतिश्रुतावरण, अचक्षुर्दर्शनावरण, अन्तराय, इन प्रकृतियों के सर्वघातिरसस्पर्धक जिस किसी भी तथारूप विशुद्ध अध्यवसाय से उसीं के अनुसार देशघातिरूपमें परिणमित हो जाते हैं, क्यों कि इनका ऐसा ही स्वभाव होता है। इसलिये मतिज्ञानावरणादिकों के सदा ही देशघातिरसस्पर्धकों का ही उदय रहता है और सदा ही उनका क्षयोपशम होता है। पंचसंग्रहटीकामें (द्वा० ३ गा० २९) यही बात कही है—

અવસ્થામાં તેનો એવો જ સ્વભાવ હોય છે. તેનું કારણ પણ એ જ છે કે બંધ કાળમાં તેમનો જે બંધ હોય છે તે એ પ્રકારના જ સર્વઘાતિરસસ્પર્ધકોનો બંધ હોય છે, તેથી મનઃપર્યયજ્ઞાન વિશિષ્ટગુણાશ્રિત અનગારને જ થાય છે એમ માનવું જોઈએ. મનઃપર્યયજ્ઞાનની ઉત્પત્તિમાં અવધિજ્ઞાનની ઉત્પત્તિની જેમ વિશિષ્ટગુણપ્રતિપન્નતાનો અભાવ હોતો નથી

મતિશ્રુતાવરણ, અચક્ષુર્દર્શનાવરણ, અને અન્તરાય, એ પ્રકૃતિયોના સર્વઘાતિરસસ્પર્ધક કોઈ પણ એવા રૂપના વિશુદ્ધ અધ્યવસાયથી તેના પ્રમાણે દેશઘાતિરૂપમાં પરિણમિત થઈ જાય છે, કારણ કે તેમનો એવો જ સ્વભાવ હોય છે, તેથી મતિજ્ઞાનાવરણાદિકોના દેશઘાતિરસસ્પર્ધકોનો જ હમેશા ઉદય રહે છે, અને હમેશાં તેમનો જ ક્ષયોપશમ થાય છે. પંચસંગ્રહ ટીકામા (દ્વા. ૩ ગા. ૨૯) આજ વાત કહી છે—

"मतिश्रुतावरणाचक्षुर्दर्शनावरणान्तरायप्रकृतीनां च सदैव देशघातिरसस्पर्धकानामेवोदयः। ततस्तासां सदैवौदयिकक्षायोपशमिकौ भावौ" इति।

'तं समासओ' इत्यादि। तत्=अवधिज्ञानं, समासतः=संक्षेपेण षड्विधं=षट्प्रकारकं, प्रज्ञप्तं=प्ररूपितम्। तद् यथा-आनुगामिकम् १, अनानुगामिकम्२, वर्धमानकं ३, हीयमानकं ४, प्रतिपातिकम् ५, अप्रतिपातिकम् ६, इति।

तत्रानुगामिकम्—अनुगमनशीलम्, यदवधिज्ञानं गच्छन्तमवधिज्ञानिनं लोचनवदनुगच्छति, तदिति भावः १। अनानुगामिकम्-यद् गच्छन्तमवधिज्ञानिनं नानुगच्छति शृंखलाप्रतिबद्धप्रदीपवत्, तदित्यर्थः २। वर्धमानकम्-वर्धते, इति वर्धमानं,

---

"मतिश्रुतावरण, अचक्षुर्दर्शनावरण एवं अन्तराय प्रकृतियों के देशघातिरसस्पर्धकों का ही सदा उदय रहता है अतः उनके सदा ही औदयिक एवं क्षायोपशमिक भाव होते हैं।"

वह अवधिज्ञान संक्षेप से छह प्रकार का बतलाया गया है-(१) आनुगामिक, (२) अनानुगामिक, (३) वर्धमानक, (४) हीयमानक, (५) प्रतिपातिक, (६) अप्रतिपातिक। जिस प्रकार दूसरे क्षेत्रमें जाते हुए मनुष्य के साथ उसकी आंखे साथ जाती हैं उसी प्रकार जो अवधिज्ञान अवधिज्ञानी के साथ दूसरी जगह चले जाने पर साथ जाता है उसका नाम आनुगामिक अवधिज्ञान है १। सांकल से जकडे हुए दीपककी तरह जो अवधिज्ञान अपने उत्पत्तिस्थान को छोड देने पर जीव के साथ नहीं जाता है वह अनानुगामिक है २। जैसे शुक्लपक्ष का चंद्रमंडल प्रतिदिन बढता रहता है उसी प्रकार जो अवधिज्ञान उत्पत्ति कालमें अल्पविषयक होनेपर भी परिणामशुद्धि बढने के साथ ही क्रमशः अधिक २

"મતિશ્રુતાવરણ, અચક્ષુર્દર્શનાવરણ, અને અન્તરાય પ્રકૃતિયોના દેશઘાતિરસસ્પર્ધકોનો જ સદા ઉદય રહે છે, તેથી તેમનામાં હંમેશા જ ઔદયિક અને ક્ષાયોપમિક ભાવ હોય છે.

તે અવધિજ્ઞાન સંક્ષિપ્તમાં છ પ્રકારનુ બતાવાયું છે—(૧) આનુગામિક, (૨) અનાનુગામિક, (૩) વર્ધમાનક, (૪) હીયમાનક, (૫) પ્રતિપાતિક અને (૬) અપ્રતિપાતિક. (૧) જે રીતે બીજા ક્ષેત્રમાં જતાં મનુષ્યની સાથે તેની આંખો જાય છે એ જ રીતે જે અવધિજ્ઞાન, અવધિજ્ઞાનીની સાથે બીજી જગ્યાએ જતાં પણ સાથે જ જાય છે તેનું નામ આનુગામિક અવધિજ્ઞાન છે. (૨) સાંકળની સાથે જકડેલા દીવાની જેમ જે અવધિજ્ઞાન પોતાનાં ઉત્પત્તિસ્થાનને છોડી દેવાતાં જીવની સાથે જતું નથી તે અનાનુગામિક છે. (૩) જેમ શુકલપક્ષનું ચન્દ્ર-

तदेव वर्धमानकम्, उत्पत्तिकालतः समारभ्य प्रवर्धमानं शुक्लपक्षचन्द्रवदित्यर्थः ३। तथा हीयमानकम्-हीयते इति हीयमानं, तदेव हीयमानकम्, उदयसमयसमनन्तरमेव हीयमानं कृष्णपक्षचन्द्रवदित्यर्थः ४। तथा-प्रतिपातिकम्-प्रतिपतनशीलं प्रतिपाति, तदेव प्रतिपातिकम्, यत्फूत्कारनष्टप्रदीपवत् सर्वथा विनश्यति तदित्यर्थः५। तथा-अप्रतिपातिकम्-न प्रतिपाति, अप्रतिपाति, तदेव-अप्रतिपातिकम्, यत् केवलज्ञानात्पूर्वं न विनश्यति तदित्यर्थः ६।

नन्वानुगामिकानानुगामिकभेदद्वये शेषभेदा वर्धमानकादयोऽन्तर्भूताः सन्ति, कथं तर्हि शेषभेदानां वर्धमानकादीनां पृथगुपन्यासः ? इति।

विषयक होता जाता है वह वर्धमानक है ३। जिस प्रकार कृष्णपक्ष का चंद्रमा प्रतिदिन घटता जाता है उसी प्रकार जो अवधिज्ञान उत्पत्ति के समय अधिकविषयवाला होने पर भी परिणामशुद्धि कम हो जाने से क्रमशः अल्पविषयक होता जाता है वह हीयमानक है ४। जिस प्रकार जलता हुआ दीपक फूंक से बुझ जाता है उसी प्रकार जो अवधिज्ञान बिलकुल छूट जाता है वह प्रतिपातिक है ५। केवलज्ञान जबतक आत्मामें न हो जावे तबतक जो बना रहे वह अप्रतिपातिक है ६।

शंका—आनुगामिक अनानुगामिक, ये जो अवधिज्ञान के दो भेद बतलाये गये हैं उनमें ही वर्धमानक आदि अवशिष्ट अवधिज्ञान के भेद अन्तर्भूत हो जाते हैं फिर क्यों इन का पृथक्रूप से निरूपण किया गया है ?।

મંડળ પ્રતિદિન વધતું જાય છે એ જ પ્રમાણે જે અવધિજ્ઞાન ઉત્પત્તિના વખતે અલ્પવિષયક હોવા છતાં પરિણામશુદ્ધિ વધવાની સાથે જ ક્રમે ક્રમે વધારે ને વધારે વિષયક થતું જાય છે તે વર્ધમાનક છે. (૪) જે રીતે કૃષ્ણપક્ષનો ચન્દ્રમા દિવસે દિવસે ક્ષય પામતો જાય છે એ જ રીતે જે અવધિજ્ઞાન ઉત્પત્તિને વખતે વધારે વિષયવાળું હોવા છતાં પણ પરિણામશુદ્ધિ ઓછી થવાથી ક્રમે ક્રમે અલ્પવિષયક થતું જાય છે તે હીયમાનક છે. (૫) જે રીતે બળતો દીવો ફૂંક મારવાથી ઓલવાઈ જાય છે તે જ પ્રમાણે જે અવધિજ્ઞાન તદ્દન છૂટી જાય છે તે પ્રતિપાતિક છે. (૬) કેવળજ્ઞાન જ્યાં સુધી આત્મામાં પેદા ન થાય ત્યાં સુધી જે ટકે તે અપ્રતિપાતિક છે.

શંકા—આનુગામિક અને અનાનુગામિક એ બે અવધિજ્ઞાનના જે ભેદ બતાવ્યા છે તેમનામાં જ વર્ધમાનક આદિ અવશિષ્ટ અવધિજ્ઞાનના ભેદનો સમાવેશ થઇ જાય છે તો પછી તેમનું જુદું જ નિરૂપણ શા માટે કરાયું છે?

उच्यते— आनुगामिकादिभेदद्वये शेषभेदानामन्तर्भावे सत्यपि तद्भेदद्वयादेव शेषभेदानां परिच्छेदो न भवति। तथाहि—आनुगामिकमनानुगामिकं चेति द्वयमेव यद्युक्तं स्यात्, तर्हि वर्धमानकादयो भेदा नावगम्यन्ते, इत्यज्ञातज्ञापनार्थं शास्त्रे तेषां पृथगुपन्यासोऽस्तीति ॥ सू० ९ ॥

मूलम्—से किं तं आणुगामियं ओहिनाणं ?। आणुगामियं ओहिनाणं दुविहं पण्णत्तं। तं जहा—अंतगयं च मज्झगयं च। से किं तं अंतगयं ?। अंतगयं तिविहं पण्णत्तं। तं जहा—पुरओअंतगयं १, मग्गओअंतगयं २, पासओअंतगयं ३।

से किं तं पुरओअंतगयं ?। पुरओअंतगयं—से जहानामए केइ पुरिसे उक्कं वा, चडुलियं वा, अलायं वा, मणिं वा, पईवं वा, जोइं वा, पुरओ काउं पणोल्लेमाणे२, गच्छेज्जा, से त्तं पुरओअंतगयं१।

से किं तं मग्गओअंतगयं ?। मग्गओअंतगयं से जहा नामए केइ पुरिसे उक्कं वा, चडुलियं वा, अलायं वा, मणिं वा, पईवं वा, जोइं वा, मग्गओ काउं अणुकड्ढेमाणे२, गच्छिज्जा, से त्तं मग्गओअंतगयं २।

से किं तं पासओअंतगयं ?। पासओअंतगयं से जहा नामए केइ पुरिसे उक्कं वा, चडुलियं वा, अलायं वा, मणिं वा,

---

उत्तर—इनके पृथक्रूप से निरूपण करने का कारण केवल एक यही है कि इन दोनों से शेष भेदों का परिच्छेद-ज्ञान नहीं हो सकता है। यदि आनुगामिक तथा अनानुगामिक ये दो ही अवधिज्ञान के भेद कहे जाते तो वर्धमानकादिक दूसरे भेद नहीं जाने जा सकते। इसलिये अल्पबुद्धिवालों को समझाने के लिये शास्त्रमें इन भेदों का पृथक्रूप से प्रतिपादन करनेमें आया है ॥ सू०९ ॥

ઉત્તર—તેમનું જુદું નિરૂપણ કરવાનું કારણ ફક્ત એક જ છે કે તે બન્નેથી શેષ (બાકીના) ભેદોનું જ્ઞાન (પરિચ્છેદ) થઈ શકતું નથી. જો આનુગામિક અને અનાનુગામિક એ બેજ અવધિજ્ઞાનના ભેદ કહેવાયા હોત તો વર્ધમાનકાદિક બીજા ભેદો જાણી શકાત નહીં. તેથી અલ્પબુદ્ધિવાળાંઓને સમજાવવા માટે શાસ્ત્રમાં એ ભેદોનું અલગ રૂપથી પ્રતિપાદન કરવામાં આવ્યું છે. ॥સૂ૦ ૯॥

पईवं वा, जोइं वा, पासओ काउं परिकड्ढेमाणे२ गच्छिज्जा, से तं पासओअंतगयं ३, से त्तं अंतगयं ।

से किं तं मज्झगयं ?। मज्झगयं से जहा नामए केइ पुरिसे उक्कं वा चडुलियं वा, अलायं वा, मणिं वा, पईवं वा, जोइं वा, मत्थए काउं समुव्वहमाणे२, गच्छिज्जा, से तं मज्झगयं।

अंतगयस्स मज्झगयस्स य को पइविसेसो ?। गोयमा ! पुरओअंतगएणं ओहिनाणेणं पुरओ चेव संखेज्जाणि वा असंखेज्जाणि वा जोयणाइं जाणइ पासइ, मग्गओ अंतगएणं ओहिनाणेणं मग्गओ चेव संखेज्जाणि वा असंखेज्जाणि वा जोयणाइं जाणइ पासइ, पासओअंतगएणं ओहिनाणेणं पासओ चेव संखेज्जाणि वा असंखेज्जाणि वा जोयणाइं जाणइ पासइ, मज्झगएणं ओहिनाणेणं सव्वओ समंता संखेज्जाणि वा असंखेज्जाणि वा जोयणाइं जाणइ पासइ। से तं आणुगामियं ओहिनाणं ॥ सू० १० ॥

छाया—अथ किं तद् आनुगामिकमवधिज्ञानम् ? आनुगामिकमवधिज्ञानं द्विविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—अन्तगतं च मध्यगतं च । अथ किं तदन्तगतम् ? अन्तगतं त्रिविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—पुरतोऽन्तगतं १, मार्गतोऽन्तगतं२, पार्श्वतोऽन्तगतम्३ ।

अथ किं तत् पुरतोऽन्तगतं ? स यथानामकः कश्चित् पुरुषः—उल्कां वा, चटुलिकां वा, अलातं वा, मणिं वा, प्रदीपं वा, ज्योतिर्वा, पुरतः कृत्वा प्रणुदन् २ गच्छेत्, तदेतत् पुरतोऽन्तगतम् १।

अथ किं तन्मार्गतोऽन्तगतं ? मार्गतोऽन्तगतं, स यथानामकः कश्चित्पुरुषः—उल्कां वा, चटुलिकां वा, अलातं वा, मणिं वा, प्रदीपं वा, ज्योतिर्वा, मार्गतः कृत्वाऽनुकर्षन्२ गच्छेत्, तदेतन्मार्गतोऽन्तगतम् २।

अथ किं तत् पार्श्वतोऽन्तगतं ? पार्श्वतोऽन्तगतं, स यथानामकः कश्चित्पुरुषः उल्कां वा, चटुलिकां वा, अलातं वा मणिं वा, प्रदीपं वा, ज्योतिर्वा, पार्श्वतः कृत्वा परिकर्षन्२ गच्छेत्, तदेतत् पार्श्वतोऽन्तगतं३, तदेतदन्तगतम् ।

अथ किं तन्मध्यगतं ? मध्यगतं, स यथानामकः कश्चित्पुरुषः—उल्कां वा,

चटुलिकां वा, अलातं वा, मणिं वा, प्रदीपं वा, ज्योतिर्वा, मस्तके कृत्वा समुद्वहन्२, गच्छेत्, तदेतन्मध्यगतम् ।

अन्तगतस्य मध्यगतस्य च कः प्रतिविशेषः? गौतम! पुरतोऽन्तगतेनाऽवधिज्ञानेन पुरतश्चैव संख्येयानि वा, असंख्येयानि वा योजनानि जानाति पश्यति, मार्गतोऽन्तगतेनाऽवधिज्ञानेन मार्गतश्चैव संख्येयानि वा, असंख्येयानि वा योजनानि जानाति पश्यति, पार्श्वतोऽन्तगतेनाऽवधिज्ञानेन पार्श्वतश्चैव संख्येयानि वा, असंख्येयानि वा योजनानि जानाति पश्यति, मध्यगतेनाऽवधिज्ञानेन सर्वतः समन्तात् संख्येयानि वा असंख्येयानि वा योजनानि जानाति पश्यति, तदेतदानुगामिकमवधिज्ञानम्॥सू० १०॥

टीका—'से किं तं आणुगामियं' इत्यादि । शिष्यः पृच्छति-अथ किं तदानुगामिकमवधिज्ञानम्? यदवधिज्ञानं पूर्वमानुगामिकमिति नाम्ना निर्दिष्टं, तस्य किं स्वरूपमित्यर्थः । उत्तरमाह—आनुगामिकमवधिज्ञानं द्विविधं प्रज्ञप्तम् । तद् यथा-अन्तगतं च मध्यगतं च । इहान्त-शब्दः पर्यन्तवाची, वनान्तवत्, देशान्तवत्, वस्त्रान्तवत् । अन्ते=पर्यन्ते गतं=व्यवस्थितम्; अन्तगतम् । आत्मप्रदेशानां पर्यन्ते स्थितमित्यर्थः ।

'से किं तं आणुगामियं' इत्यादि । शिष्य पूछता है कि-हे भदन्त! आनुगामिक अवधिज्ञान का क्या स्वरूप है?।

उत्तर—अवधिज्ञानका प्रथम भेद जो आनुगामिक बतलाया गया है उसके दो प्रकार हैं । १ अन्तगत, २ मध्यगत । वनान्त की तरह, देशान्त की तरह, तथा वस्त्रान्त की तरह यहां अन्त-शब्द पर्यन्त का अर्थात् अन्तभाग का वाचक है किन्तु नाश आदि अर्थका वाचक नहीं है। पर्यन्तमें जो व्यवस्थित हो उसका नाम अन्तगत आनुगामिक अवधिज्ञान है । यह अवधिज्ञान आत्मप्रदेशों के पर्यन्तमें व्यवस्थित होता है ।

"से कि तं आणुगामियं" ઈત્યાદિ.

શિષ્ય પૂછે છે કે હે ભદન્ત! આનુગામિક અવધિજ્ઞાનનું સ્વરૂપ શું છે?

ઉત્તર—અવધિજ્ઞાનનો પહેલો ભેદ જે આનુગામિક બતાવવામાં આવ્યો છે તેના બે પ્રકાર છે. (૧) અન્તગત (૨) મધ્યગત. વનાન્તની જેમ, દેશાન્તની જેમ અને વસ્ત્રાન્તની જેમ અહીં 'अन्त' શબ્દ પર્યન્ત એટલે કે અન્તભાગનો વાચક છે પણ નાશ વગેરે અર્થનો વાચક નથી. પર્યન્તમાં જે વ્યવસ્થિત હોય તેનું નામ અન્તગત આનુગામિક અવધિજ્ઞાન છે. આ અવધિજ્ઞાન આત્મપ્રદેશોનાં પર્યન્તમાં વ્યવસ્થિત હોય છે. તેનું તાત્પર્ય આ પ્રમાણે છે—

इयमत्र भावना—उत्पद्यमानः कोऽप्यवधिः स्पर्धकरूपानुसारेण जायते। इह स्पर्धकानि नाम–गवाक्षजालाभ्यन्तरस्थितप्रदीपप्रभानिर्गमस्थानानीव अवधिज्ञानावरणक्षयोपशमजन्यानि छिद्ररूपाणि–अवधिज्ञाननिर्गमस्थानानि। तानि स्पर्धकानि चैकजीवस्य संख्येयानि असंख्येयानि वा भवन्ति। तानि च विचित्ररूपाणि भवन्ति। तथा हि–कानिचित् स्पर्धकानि पर्यन्तवर्तिष्वात्मप्रदेशेषु क्षयोपशमानुविद्धमुदयं प्राप्नुवन्ति। तत्रापि कानिचित् पुरतः, कानिचित् पृष्ठतः, कानिचित् अधोभागे, कानिचिदुपरितनभागे, कानिचिन्मध्यवर्तिष्वात्मप्रदेशेषु क्षयोपशमानुविद्धमुदयं प्राप्नुवन्ति। यत्र यथा स्पर्धकानि भवन्ति, तत्र तथाऽवधिज्ञानमुपजायते। तदा-

तात्पर्य इसका इस प्रकार है–कोई २ अवधिज्ञान स्पर्धकों के अनुसार उत्पन्न होता है। जिस प्रकार मकान के भीतर से प्रदीप की प्रभा को बाहर निकलने के लिये गवाक्षजाल होते हैं इसी प्रकार अवधिज्ञान के निर्गमस्थान भी होते हैं। ये अवधिज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशमजन्य होते हैं। इन्हीं का नाम स्पर्धक हैं। ये स्पर्धकरूप छिद्र एक जीव के संख्यात अथवा असंख्यात तक होते हैं और विविध प्रकार के होते हैं। कितनेक स्पर्धक तो ऐसे होते हैं जो पर्यन्तवर्ती आत्मप्रदेशोंमें क्षयोपशमसे मिश्रित उदयावस्थापन्न होते हैं। इनमें भी कितने ऐसे होते हैं जो आत्मा के आगेके प्रदेशोंमें क्षयोपशमानुविद्ध उदय को प्राप्त करते हैं, कितनेक ऐसे होते हैं जो आत्मा के पीछे के प्रदेशोंमें क्षयोपशम से युक्त उदय को पाते हैं। कितनेक अधोभागमें, कितनेक उपरितनभागमें, कितनेक मध्यवर्ती आत्मप्रदेशोंमें क्षयोपशमानुविद्ध उदय को प्राप्त करते हैं। जहां जैसे स्पर्धक होते हैं वहां वैसा अवधिज्ञान उत्पन्न होता है।

કોઈ કોઈ અવધિજ્ઞાન સ્પર્ધકોના પ્રમાણે ઉત્પન્ન થાય છે. જે પ્રમાણે મકાનની અંદરથી દીવાના પ્રકાશને બહાર નિકળવા માટે ગવાક્ષજાળી હોય છે એજ પ્રમાણે અવધિજ્ઞાનનાં નિર્ગમસ્થાનો પણ હોય છે. તેઓ અવધિજ્ઞાનાવરણ કર્મના ક્ષયોપશમજન્ય હોય છે. તેમનું જ નામ સ્પર્ધક છે. એ સ્પર્ધકરૂપ છિદ્ર એક જીવને સંખ્યાત કે અસંખ્યાત સુધી હોય છે અને વિવિધ પ્રકારના હોય છે. કેટલાંક સ્પર્ધક તો એવાં હોય છે કે જે પર્યન્તવર્તી આત્મપ્રદેશોમાં ક્ષયોપશમથી મિશ્રિત ઉદયાવસ્થાપન્ન હોય છે. તેમનામાં પણ કેટલાંક એવાં હોય છે કે જે આત્માના આગળના પ્રદેશોમાં ક્ષયોપશમાનુવિદ્ધ ઉદય પ્રાપ્ત કરે છે. કેટલાંક એવાં હોય છે કે જે આત્માની પાછળના પ્રદેશોમાં ક્ષયોપશમથી યુક્ત ઉદય પ્રાપ્ત કરે છે, કેટલાંક નીચેના ભાગમાં, કેટલાંક ઉપરના ભાગમાં, કેટલાંક મધ્યવર્તી આત્મપ્રદેશોમાં ક્ષયોપશમથી યુક્ત ઉદય પ્રાપ્ત કરે છે. જ્યાં જેવાં સ્પર્ધક હોય છે ત્યાં તેવું અવધિજ્ઞાન ઉત્પન્ન થાય છે. જો તે સ્પર્ધકો

त्मनोऽन्ते पर्यन्ते स्थितमितिकृत्वा—अन्तगतमित्युच्यते, तैरेव पर्यन्तवर्तिभिरात्मप्रदेशैः साक्षादवधिरूपं ज्ञानं जायते, न त्वशेषैरात्मप्रदेशैः १ इति प्रथमोऽर्थः।

अथवा—औदारिकशरीरस्य अन्ते गतं—स्थितमन्तगतम्, कयाचिदेकदिशयोपलम्भात् । इदमपि स्पर्धकानुरूपमवधिज्ञानम् । सर्वेषामप्यात्मप्रदेशानां क्षयोपशमभावेऽपि औदारिकशरीरान्ते कयापि दिशया यद्वशादुपलभ्यते, तदप्यन्तगतम् २ ।

ननु यदि सर्वात्मप्रदेशानां क्षयोपशमस्ततः सर्वतः किं न पश्यति ? उच्यते—

यदि ये स्पर्धक आत्मा के प्रदेशों के अन्तमें स्थित हैं तो इन पर्यन्तवर्ती आत्मप्रदेशोंसे ही साक्षात् अवधिरूप ज्ञान उत्पन्न होगा, आत्मा के समस्तप्रदेशोंसे नहीं। इस प्रकार यह अन्तगत आनुगामिक अवधिज्ञान का भाव है। यह प्रथम अर्थ १।

अथवा—अन्तगत—शब्द का दूसरा अर्थ "जो औदारिक शरीर के अन्तमें स्थित हो" ऐसा भी होता है। औदारिक शरीर के अन्तमें स्थित रहनेवाला यह अवधिज्ञान भी स्पर्धकों के अनुरूप ही होता है, और किसी एक दिशामें स्थित रूपी पदार्थों को स्पष्ट जानता है। यद्यपि अवधिज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम समस्त आत्मप्रदेशोंमें होता है तो भी यह औदारिक शरीर के अन्तमें स्थित होकर ही किसी एक दिशामें व्यवस्थित रूपी पदार्थों को विषय करता है।

शंका—यदि अवधिज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम समस्त आत्मप्रदेशोंमें होता है तो समस्त आत्मप्रदेशों से ही यह अवधिज्ञान रूपी पदार्थों को क्यों नहीं जानता देखता है ? ।

આત્માના પ્રદેશોના અન્તમાં રહેલ હોય તો એ પર્યન્તવર્તી આત્મપ્રદેશોમાંથી જ સાક્ષાત્ અવધિરૂપ જ્ઞાન ઉત્પન્ન થશે, આત્માના સમસ્ત પ્રદેશોમાંથી નહીં આ પ્રમાણે આ અન્તગત આનુગામિક અવધિજ્ઞાનનો ભાવ છે. આ પહેલો અર્થ.

અથવા—અન્તગત શબ્દનો બીજો અર્થ "જે ઔદારિક શરીરના અન્તમાં સ્થિત હોય" એવો પણ થાય છે ઔદારિક શરીરના અન્તમાં સ્થિત રહેનારૂં અવધિજ્ઞાન પણ સ્પર્ધકોને અનુરૂપ જ હોય છે, અને કોઈ એક દિશામાં રહેલાં રૂપી પદાર્થોને સ્પષ્ટ જાણે છે જો કે અવધિજ્ઞાનાવરણ કર્મનો ક્ષયોપશમ સમસ્ત આત્મપ્રદેશોમાં થાય છે. તો પણ તે ઔદારિક શરીરના અન્તમાં સ્થિત થઈને જ કોઈ એક દિશામાં વ્યવસ્થિત રૂપી પદાર્થોને વિષય કરે છે.

શંકા—જો અવધિજ્ઞાનાવરણ કર્મનો ક્ષયોપશમ સમસ્ત આત્મપ્રદેશોમાં થાય છે તો સમસ્ત આત્મપ્રદેશોવડે જ આ અવધિજ્ઞાન રૂપી પદાર્થોને કેમ જાણતું દેખતું નથી ?

एकदिशयैव वस्तुनो ज्ञानसंभवात्। विचित्रो हि क्षयोपशमस्ततः सर्वेषामप्यात्मप्रदेशानामित्थंभूत एव स्वसामग्रीवशात् क्षयोपशमः सम्भवति, यदौदारिकशरीरमपेक्ष्य कयाचिद् विवक्षितया एकदिशया पश्यतीति द्वितीयोऽर्थः २।

अथवा—एकदिग्भाविनाऽवधिज्ञानेन यदुद्योतितं क्षेत्रं तस्यां दिशि तदवधिज्ञानं वर्तते, अत्रधिज्ञानवतस्तदन्ते वर्तमानत्वात्। ततोऽन्ते=एकदिग्रूपस्यावधिज्ञानविषयस्य पर्यन्ते, व्यवस्थितं तस्मादवधिज्ञानमन्तगतमित्युच्यते। इति तृतीयोऽर्थः३।

इदमत्र तत्त्वम्—अन्तगतमवधिज्ञानं त्रिधा व्याख्येयम्—आत्मप्रदेशान्ते, वा औदारिकशरीरान्ते वा तदुद्योतितक्षेत्रान्ते वा व्यवस्थितं भवति। सर्वात्मप्रदेश-

---

उत्तर—वस्तु का ज्ञान एक दिशाको लेकर ही होता है इसलिये यद्यपि अवधिज्ञानावरण कर्म का क्षायोपशम समस्त आत्मप्रदेशोंमें होता है फिर भी वह क्षयोपशम स्वसामग्री के वश से इसी ढंग का होता है कि वह औदारिक शरीर की अपेक्षा करके किसी एक विवक्षित दिशा के सहारे उसी दिशामें स्थित रूपी पदार्थों को जानता देखता है। यह दूसरा अर्थ २।

अन्तगत का तीसरा अर्थ ऐसा भी होता है कि-यह अवधिज्ञान एकदिग्भावी होता है अतः उस के द्वारा जितना भी क्षेत्र प्रकाशित किया जाता है उस प्रकाशित क्षेत्र के एकदिग्रूप विषय के अन्तमें यह व्यवस्थित होता है इसलिये यह अन्तगत कहलाता है। यह तीसरा अर्थ३।

तात्पर्य इसका इस प्रकार जानना चाहिये कि अन्तगत अवधिज्ञान आत्मप्रदेशान्तमें १, औदारिकशरीरान्तमें २, तथा अपने द्वारा प्रकाशित

ઉત્તર-વસ્તુનું જ્ઞાન એક દિશાને લઈને જ થાય છે. તેથી જો કે અવધિજ્ઞાનાવરણ કર્મનો ક્ષયોપશમ સમસ્ત આત્મપ્રદેશોમાં થાય છે તો પણ તે ક્ષયોપશમ સ્વસામગ્રીના વશથી એવા પ્રકારનો થાય છે કે તે ઔદારિક શરીરની અપેક્ષા કરીને કોઈ એક વિવક્ષિત દિશાની મદદથી એજ દિશામાં રહેલ રૂપી પદાર્થોને જાણે છે તથા દેખે છે. આ બીજો અર્થ.

અન્તગતનો ત્રીજો અર્થ એવો પણ થાય છે કે આ અવધિજ્ઞાન એક દિગ્ભાવી હોય છે તેથી તેના દ્વારા જેટલું પણ ક્ષેત્ર પ્રકાશિત કરાય છે તે પ્રકાશિત ક્ષેત્રના એક દિગ્રૂપ વિષયના અન્તમાં તે વ્યવસ્થિત હોય છે તેથી તે અન્તગત કહેવાય છે. આ ત્રીજો અર્થ.

તેનું તાત્પર્ય આ રીતે સમજવું જોઈએ કે અન્તગત અવધિજ્ઞાન—(૧) આત્મપ્રદેશાન્તમાં, (૨) ઔદારિકશરીરાન્તમાં અને (૩) પોતાના દ્વારા

क्षयोपशमात् सकलजीवोपयोगे सत्यपि साक्षादेकदेशे नैव दर्शनादात्मप्रदेशान्तगतं यदवधिज्ञानं तदन्तगतमुच्यते, इति प्रथमम्। अथवा—औदारिकशरीरैकदेशे नैव दर्शनादौदारिकशरीरान्ते गतं यदवधिज्ञानं तदप्यन्तगतमुच्यते, औदारिकशरीरस्यैकदेशे एकस्यां दिशि तदवधिज्ञानमुत्पद्यते, इति द्वितीयम्। क्षेत्रान्तगतं तु अवधिज्ञानोद्योतितक्षेत्रदिग्भागे अवधिमतो जीवस्य वर्तमानत्वादेकदिग्रूपस्य क्षेत्रस्य पर्यन्ते व्यवस्थितमवधिज्ञानमन्तगतं भवतीति व्यपदिश्यते, इति तृतीयम्।

क्षेत्र के अन्तमें ३, व्यवस्थित होने की वजह से तीन प्रकार का बतलाया गया है।

यद्यपि अवधिज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम सर्व आत्मप्रदेशोंमें होता है, और इस अपेक्षा उसका उपयोग सर्व आत्मप्रदेशों के साथ ही होता है, फिर भी साक्षात् उसकी उत्पत्ति जीवके एकदेश से ही होती देखी जाती है, इसलिये वह आत्मप्रदेशान्तगत कहा गया है १। यह प्रथम भेद १।

अथवा औदारिक शरीर की अपेक्षा कर के उसके एक देश से ही यह उत्पन्न होता देखा जाता है इसलिये भी यह अन्तगत कहा गया है। औदारिक शरीर के एक देशमें एक दिशामें वह अवधिज्ञान उत्पन्न होता है यह अन्तगत का द्वितीय प्रकार है २। तृतीय प्रकार ऐसा है कि-अवधिज्ञान से उद्योतित क्षेत्र के दिग्भागमें अवधिज्ञान से युक्त जीवमें वर्तमान होने के कारण एकदिग्रूप अर्थ के अन्तमें यह व्यवस्थित होता है, अतः यह अवधिज्ञान अंतगत कहा जाता है ३।

પ્રકાશિત ક્ષેત્રના અન્તમાં વ્યવસ્થિત હોવાથી ત્રણ પ્રકારનું બતાવવામાં આવ્યું છે

જો કે અવધિજ્ઞાનાવરણ કર્મનો ક્ષયોપશમ સર્વ આત્મપ્રદેશોમાં થાય છે અને એ અપેક્ષાએ તેનો ઉપયોગ સર્વ આત્મપ્રદેશોની સાથે જ થાય છે છતાં પણ તેની સાક્ષાત ઉત્પત્તિ જીવના એક દેશથી જ થતી દેખાય છે, તેથી તે આત્મપ્રદેશાન્તગત કહેવાયેલ છે ૧ આ પહેલો ભેદ.

અથવા ઔદારિક શરીરની અપેક્ષા કરીને તેના એક દેશથી જ તે ઉત્પન્ન થતું દેખાય છે તેથી પણ તે અન્તગત કહેવાયું છે. ઔદારિક શરીરના એક દેશમાં, એક દિશામાં તે અવધિજ્ઞાન ઉત્પન્ન થાય છે. આ અન્તગતનો બીજો પ્રકાર છે ૨.

ત્રીજો પ્રકાર એવો છે કે અવધિજ્ઞાનથી ઉદ્યોતિત ક્ષેત્રના દિગ્ભાગમાં અવધિજ્ઞાનવાળા જીવમાં વર્તમાન હોવાને કારણે એકદિગ્રૂપ અર્થના અન્તે તે વ્યવસ્થિત થાય છે, તે અવધિજ્ઞાનને અંતગત કહેવામાં આવે છે ૩.

मध्यगतं चेति। इह मध्यः प्रसिद्ध एव जम्बूद्वीपमध्यवत्। मध्ये गतं मध्यगतं मध्ये स्थितमित्यर्थः। तच्च सर्वत्र स्पर्धकविशुद्धेरात्ममध्ये–सर्वात्मप्रदेशमध्ये, यद्वा–सर्वात्मप्रदेशानां क्षयोपशमयोगाविशेषेऽप्यौदारिकशरीरमध्योपलब्धेस्तन्मध्ये, यद्वा–सर्वदिगुपलम्भात् तत्प्रकाशितक्षेत्रमध्ये गतमवधिज्ञानं मध्यगतम्।

इदमत्र तत्त्वम्—मध्यगतमपि त्रिधा व्याख्येयम्–आत्ममध्यगतम् १, औदारिकशरीरमध्यगतं २, तत्प्रद्योतितक्षेत्रमध्यगत३मिति। आत्मप्रदेशानां मध्येमध्यवर्त्तिपु आत्मप्रदेशेषु गतं स्थितम् आत्ममध्यगतम्, इदं च

मध्यगत जो आनुगामिक अवधिज्ञान का भेद है वह भी तीन प्रकार का बतलाया गया है–आत्ममध्यगत १, औदारिकशरीरमध्यगत २ तत्प्रद्योतितक्षेत्रमध्यगत ३। यहां मध्यशब्द जम्बूद्वीप के मध्य की तरह बीच का वाचक है। जो बीचमें स्थित होता है वह मध्यगत का वाच्यार्थ है। स्पर्धकों की विशुद्धि से समस्त आत्मप्रदेशों के मध्यमें होने के कारण आत्ममध्यगत कहलाता है १। तथा सर्वात्मप्रदेशोंमें क्षयोपशम की अविशेषता होने पर भी औदारिक शरीर के मध्यमें ही उपलब्धि होने के कारण यह औदारिकशरीरमध्यगत कहा जाता है २। तथा समस्तदिशारूप अर्थ की इस ज्ञान से उपलब्धि होती है फिर भी अवधिज्ञानद्वारा प्रकाशित उनके क्षेत्र के मध्यमें ही यह अवधिज्ञान व्यवस्थित होता है अतः यह तत्प्रद्योतितक्षेत्रमध्यगत माना जाता है ३। तात्पर्य इसका इस प्रकार है—मध्यगत अवधिज्ञान के जो ये तीन प्रकार बतलाये गये हैं उनमें आत्ममध्यगत अवधिज्ञान आत्मा के मध्यवर्ती

મધ્યગત આનુગામિક અવધિજ્ઞાનના જે ભેદ છે તે પણ ત્રણ પ્રકારના છે—(૧) આત્મમધ્યગત, (૨) ઔદારિકશરીરમધ્યગત, (૩) તત્પ્રદ્યોતિતક્ષેત્રમધ્યગત. અહીં "મધ્ય" શબ્દ જમ્બુદ્વીપની મધ્યેની જેમ "વચ્ચે" એવા અર્થનો વાચક છે. જે વચ્ચે રહેલ હોય છે તે મધ્યગતનો વાચ્યાર્થ છે. સ્પર્ધકોની વિશુદ્ધિથી સમસ્ત આત્મપ્રદેશોની વચ્ચે હોવાને કારણે તે આત્મમધ્યગત કહેવાય છે ૧. તથા સર્વાત્મપ્રદેશોમાં ક્ષયોપશમની અવિશેષતા હોવા છતાં પણ ઔદારિક શરીરની મધ્યમાં જ ઉપલબ્ધિ હોવાને કારણે આ ઔદારિકશરીર મધ્યગત કહેવાય છે. ૨. તથા સમસ્તદિશારૂપ અર્થની આ જ્ઞાનથી ઉપલબ્ધિ થાય છે તો પણ અવધિજ્ઞાનદ્વારા પ્રકાશિત તેમનાં ક્ષેત્રની મધ્યમાં જ આ અવધિજ્ઞાન વ્યવસ્થિત થાય છે તેથી આ અવધિજ્ઞાન તત્પ્રદ્યોતિતક્ષેત્રમધ્યગત માનવામાં આવે છે ૩. તેનું તાત્પર્ય આ પ્રમાણે છે—મધ્યગત અવધિજ્ઞાનના આ જે ત્રણ પ્રકાર બતાવ્યા છે તેઓમાં આત્મમધ્યગત અવધિજ્ઞાન આત્માના

स्पर्धकानुरूपमवधिज्ञानं सर्वदिगुपलम्भकारणं मध्यवर्तिनामात्मप्रदेशानामवसेयम्। सर्वात्मोपयोगे सत्यपि मध्ये एव स्पर्धकसद्भावात् साक्षान्मध्यभागेनोपलब्धेः १। तथा-सर्वेषामप्यात्मप्रदेशानां क्षयोपशमभावेऽप्यौदारिकशरीरमध्यभागेनोपलब्धेस्तन्मध्ये गतम् औदारिकशरीरमध्यगतम् २। तथा-तेनावधिज्ञानेन यदुद्द्योतितं क्षेत्रं सर्वासु दिक्षु, तस्य मध्ये=मध्यभागे गतं। स्थितं तत्प्रद्योतितक्षेत्रमध्यगतम्। अवधिज्ञानिनस्तदुद्द्योतितक्षेत्रमध्यवर्तित्वात् ३।

शिष्यः पृच्छति—'से किं तं अंतगयं' इति। अथ किं तद् अन्तगतम्?, पूर्वनिर्दिष्टस्यान्तगतस्य किं स्वरूपमित्यर्थः। उत्तरमाह-'अंतगयं तिविहं पण्णत्तं'

प्रदेशोंमें स्थित रहा करता है। यह मध्यगत अवधिज्ञान स्पर्धकों के अनुसार होता है, इससे समस्त दिग्रूप अर्थ की उपलब्धि होती है। यद्यपि इसका उपयोग पूर्ण आत्मा में होता है तो भी उस के मध्यमें ही स्पर्धकों का सद्भाव रहा करता है इससे वह साक्षात् मध्यभाग से ही उपलब्ध होता है १। तथा-समस्त आत्मप्रदेशोंमें क्षयोपशमका सद्भाव होता है तो भी औदारिक शरीर के मध्यभाग से इसकी उपलब्धि होती है इसलिये औदारिकशरीरमध्यगत यह कहा जाता है २। तथा उस अवधिज्ञान द्वारा समस्त दिशाओंमें जो क्षेत्र प्रकाशित किया जाता है उस क्षेत्र के मध्यमें इस की उपलब्धि होती है अतः यह तत्प्रद्योतितक्षेत्रमध्यगत कहलाता है, कारण कि वह अधिज्ञानी उस अवधिज्ञान द्वारा प्रकाशित क्षेत्र के मध्यमें ही रहा करता है, उससे बाहर नहीं ३।

फिर शिष्य पूछता है—'से किं तं अंतगयं' इति। पूर्वनिर्दिष्ट अन्त-

---

મધ્યવર્તી પ્રદેશોમાં સ્થિત રહ્યા કરે છે આ મધ્યગત અવધિજ્ઞાન સ્પર્ધકોને અનુસાર હોય છે. તેનાથી સમસ્ત દિગ્રૂપ અર્થની પ્રાપ્તિ થાય છે. જો કે તેનો ઉપયોગ પૂર્ણ આત્મામાં થાય છે તો પણ તેની મધ્યમાં જ સ્પર્ધકોનો સદ્ભાવ રહ્યા કરે છે. તેથી તે સાક્ષાત્ મધ્યભાગથી જ પ્રાપ્ત થાય છે ૧। તથા સમસ્ત આત્મપ્રદેશોમાં ક્ષયોપશમનો સદ્ભાવ હોય છે તો પણ ઔદારિક શરીરના મધ્યભાગથી તેની પ્રાપ્તિ થાય છે, તેથી તે ઔદારિકશરીરમધ્યગત માનવામાં આવે છે. ૨। તથા તે અવધિજ્ઞાનદ્વારા સમસ્ત દિશાઓમાં જે ક્ષેત્ર પ્રકાશિત કરાય છે તે ક્ષેત્રની મધ્યમાં તેની પ્રાપ્તિ થાય છે, તેથી તે તત્પ્રદ્યોતિતક્ષેત્રમધ્યગત કહેવાય છે, કારણ કે તે અવધિજ્ઞાની તે અવધિજ્ઞાન વડે પ્રકાશિત ક્ષેત્રની મધ્યમાં જ રહ્યા કરે છે, તેનાથી બહાર નહીં. ૩।

વળી શિષ્ય પૂછે છે—"से किं तं अंतगयं" એ, પૂર્વનિર્દિષ્ટ અન્તગત

इत्यादि। अन्तगतं त्रिविधं प्रज्ञप्तम्। तद् यथा-पुरतोऽन्तगतं१, मार्गतोऽन्तगतं२, पार्श्वतोऽन्तगतम् ३।

पुनरपि शिष्यः पृच्छति—'से किं तं' इति। अथ किं तत् पुरतोऽन्तगतम्? इति। उत्तरमाह-'पुरओ अंतगयं से जहा नामए' इत्यादि। पुरतोऽन्तगतं स यथानामकः=विविक्षितः कश्चित् पुरुषः उल्कां=प्रज्वलज्ज्वालारूपां वा 'मसाल' इति प्रसिद्धां, चटुलिकाम्=अग्रभागप्रज्वलिततृणपूलिकां वा, अलातम्=उल्मुकम्-अग्रभागप्रज्वलत्काष्ठं वा, मणिं = पद्मरागादिकं वा, प्रदीपं=दीपकं वा, ज्योतिः = प्रज्वलदग्निं 'बिजली, बेटरी' इत्यादिभाषाप्रसिद्धं प्रकाशोत्पादकं यंत्रविशेषं वा पुरतः कृत्वा=अग्रतो हस्तदण्डादौ गृहीत्वा, 'पणोल्लेमाणे २' प्रणुदन्२=प्रेरयन्२ गच्छति, तदेतत् पुरतोऽन्तगम्। विवक्षितः कश्चित्

गत अवधिज्ञान का क्या स्वरूप है? आचार्य कहते हैं-"अंतगयं तिविहं पण्णत्तं" अंतगत अवधिज्ञान तीन प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार-पुरतोऽन्तगत १, मार्गतोऽन्तगत २ और पार्श्वतोऽन्तगत ३। फिर शिष्य पूछता है-"से किं तं पुरओअंतगयं" इति। पुरतोऽन्तगत अवधिज्ञान का क्या स्वरूप है?।

अब गुरुमहाराज पुरतोऽन्तगत अवधिज्ञानका स्वरूप दृष्टान्तपूर्वक समझाते हैं-'पुरओ अंतगयं से जहानामए' इत्यादि। जैसे कोई (विवक्षित) पुरुष उल्काको-जाज्वल्यमान ज्वाला-मसाल को, चटुलिकाको जिसके अग्रभागमें अग्नि जलती है ऐसे तृण के पूलाको, अलातको-अग्रभागमें अग्निवाले काठ को, मणिको-पद्मराग आदि मणि को, प्रदीपको, ज्योति को-सामान्यजलती हुई अग्नि को आगे कर के उन्हें सँभालता हुआ। २ उनसे प्रकाशित मार्गमें चलता है यही पुरतोन्तगत

અવધિજ્ઞાનનું શું સ્વરૂપ છે? આચાર્ય કહે છે-"अंतगयं तिविहं पण्णत्तं" અંતગત અવધિજ્ઞાન ત્રણ પ્રકારનું કહેવાયું છે. તે આ પ્રમાણે છે-(૧) पुरतोऽन्तगत (२) मार्गतोऽन्तगत (३) पार्श्वतोऽन्तगत. ફરીને શિષ્ય પૂછે છે. "से किं तं पुरओअंतगयं ?" पुरतोऽन्तगत અવધિજ્ઞાનનું શું સ્વરૂપ છે? હવે ગુરુમહારાજ "पुरतोऽन्तगत" અવધિજ્ઞાનનું સ્વરૂપ દૃષ્ટાંત સાથે સમજાવે છે-"पुरओ अंतगयं से जहा नामए" જેમ કોઈ (विवक्षित) પુરૂષ ઉલ્કાને-પ્રકાશિત જવાળા-મશાલને, ચટુલિકાને-જેના આગળના ભાગમાં અગ્નિ સળગતી હોય તેવા પૂળાને, અલાતને-આગળના ભાગમાં અગ્નિવાળાં લાકડાને, મણીને-પદ્મરાગ આદિ મણીને, દીવાને, જ્યોતિને-સામાન્ય બળતી અગ્નિને, આગળ ધરીને તેને સંભાળતો સંભાળતો તેમનાથી પ્રકાશિત માર્ગમાં ચાલે છે એજ પુરતોન્તગત

पुरुषः उल्कादिकं प्रकाशं हस्तादिना गृहीत्वाऽग्रेऽग्रे नयन् यथा गच्छति तद्वत्। एतावता अंशेन दृष्टान्त उक्तः। अयं भावः-स हि गच्छन् उल्कादिभ्यः सकाशात् पुरत एव पश्यति, नान्यत्र, एवमग्रगामिप्रकाशतुल्याद् यस्मादवधिज्ञानादेष पुरत एव पश्यति, नान्यत्र तत् पुरतोऽन्तगतमित्युच्यते। एवं सर्वत्र दृष्टान्तो योजनीयः।

शिष्यःपृच्छति—'से किं तं मग्गओअंतगयं' इति। अथ किं तन्मार्गतोऽन्तगतम् ?, मार्गतो यदन्तगतं भवति, तस्य किं स्वरूपमिति प्रश्नः। उत्तरमाह—'मग्गओअंतगयं से जहा नामए' इत्यादि। मार्गतोऽन्तगतं स यथानामकः कश्चित् पुरुषः, उल्कां वा चटुलिकां वा अलातं वा मणिं वा प्रदीपं वा ज्योतिर्वा मार्गतः=पृष्ठतः कृत्वाऽनुकर्षन् २=पश्चाद्भागे प्रकाशं नयन्२ गच्छति, तद्वत्। तदेतन्मार्गतोऽन्तगतम्। अयं भावः—यस्मादवधिज्ञानादात्मा पृष्ठभागवर्तिनं क्षेत्रं पश्यति तत् पृष्ठगाम्यवधिज्ञानं मार्गतोऽन्तगतमित्युच्यते।

अवधिज्ञान है। अर्थात्—जैसे कोई पुरुष रात्रि के समय उल्कादिक प्रकाशको हाथमें लेकर उन्हें आगे करके चलता है और उनसे प्रकाशित आगेके मार्गकी ओर ही देखता है अन्यत्र नहीं, उसी प्रकार अग्रगामी प्रकाश के समान जिस अवधिज्ञान से आगे की ओर ही अवधिज्ञानी देखता है अन्यत्र नहीं, वह पुरतोऽन्तगत अवधिज्ञान है १। अब शिष्य पूछता है—मार्गतोऽन्तगत अवधिज्ञान का क्या स्वरूप है ?। उत्तरमें आचार्य कहते हैं—"मग्गओअंतगयं से जहानामए" इत्यादि। जैसे कोई व्यक्ति उल्का को, चटुलिका को, अलातको, मणिको, प्रदीपको, ज्योतिको पीछे कर के चलता है, यह मार्गतोऽन्तगत अवधिज्ञान है। अर्थात्—जिस प्रकार पीठ के पीछे प्रकाशको कर के चलने वाला व्यक्ति पीछे के पदार्थोंको

અવધિજ્ઞાન છે. એટલે કે રાત્રે જેમ કોઇ પુરૂષ ઉલ્કાદિક પ્રકાશને હાથમાં લઇને તેને આગળ ધરીને ચાલે છે અને તેમનાથી પ્રકાશિત થયેલા આગળના માર્ગની તરફ જ દેખે છે, બીજે નહીં, એજ પ્રમાણે આગળ જતા પ્રકાશની જેમ જે અવધિજ્ઞાનથી આગળના તરફ જ અવધિજ્ઞાન દેખે છે બીજે નહીં, તે पुरतोऽन्तगत અવધિજ્ઞાન છે ૧.

વળી શિષ્ય પૂછે છે–'मार्गतोऽन्तगत' અવધિજ્ઞાનનું શું સ્વરૂપ છે ? આચાર્ય જવાબ આપે છે–"मग्गओअंतगयं से जहा नामए" ઇત્યાદિ. જેમ કોઈ વ્યક્તિ ઉલ્કાને, ચટુલિકાને, અલાતને, મણીને, દીવાને, કે જ્યોતિને પાછળ રાખીને ચાલે છે તે 'मार्गतोन्तगत' અવધિજ્ઞાન છે, એટલે કે જે રીતે પીઠની પાછળ પ્રકાશ કરીને ચાલનારી વ્યક્તિ પાછળનાં પદાર્થોને દેખે છે, એજ રીતે એ અવધિ-

शिष्यः पृच्छति—'से किं तं पासओ अंतगयं' इति। अथ किं तत् पार्श्वतोऽन्तगतम्' इति। यत् पार्श्वतोऽन्तगतं, तस्य किंस्वरूपमित्यर्थः। उत्तरमाह—'पासओ-अंतगयं से जहानामए' इत्यादि। पार्श्वतोऽन्तगतं, स यथानामकः कश्चित् पुरुषः उल्कां वा, चटुलिकां वा, अलातं वा मणिं वा, प्रदीपं वा ज्योतिर्वा पार्श्वतः कृत्वा परिकर्षन्२ गच्छति, तदेतत् पार्श्वतोऽन्तगतम्। यथा—विवक्षितः कश्चित् पुरुषः उल्कादिकं स्वपार्श्वभागे कृत्वा पार्श्वप्रदेशस्थितं वस्तु प्रकाशयन् गच्छति, तद्वत्, तत्—पूर्वनिर्दिष्टम्, एतत् पार्श्वतोऽन्तगतम्। अयं भावः—यस्मादवधिज्ञानात् पार्श्व-गतान् पदार्थान् पश्यति, तत् पार्श्वतोऽन्तगतमवधिज्ञानम्। 'तदेतदन्तगतम्' इति, एवमेतत् पूर्वनिर्दिष्टमन्तगतं वर्णितमित्यर्थः।

देखता है उसी प्रकार अवधिज्ञानी भी जिस अवधिज्ञान से पृष्ठभाग-वर्ती क्षेत्र को देखता है वह पृष्ठगामी अवधिज्ञान मार्गतोऽन्तगत अव-धिज्ञान है २। फिर शिष्य पूछता है–" से किं तं पासओ अंतगयं" पार्श्वतोऽन्तगत अवधिज्ञान का क्या स्वरूप है? उत्तरमें आचार्य कहते हैं–" से जहानामए" इत्यादि। जैसे कोई व्यक्ति उल्का को चटुलिका को, अलात को, मणि को, प्रदीप को, ज्योति को पसवाडेमें करके आजू-बाजूमें प्रकाश को करता हुआ चलता है उसी तरह यह पार्श्वतोऽन्तगत अवधिज्ञान है। अर्थात् उल्कादिक प्रकाशमय पदार्थ को अपने पार्श्व-भागमें करके मार्गमें चलनेवाला व्यक्ति जिस तरह आजूबाजू के पदार्थोंका निरीक्षण करता चलता है उसी प्रकार जिस अवधिज्ञान से अवधिज्ञानी पार्श्वगत पदार्थोंका निरीक्षण करता है वह पार्श्वतोऽन्तगत अवधिज्ञान है।

જ્ઞાની પણ જે અવધિજ્ઞાનથી પાછળના ભાગમાં રહેલા ક્ષેત્રને દેખે છે તે પૃષ્ઠગામી અવધિજ્ઞાન मार्गतोऽन्तगत અવધિજ્ઞાન છે. ૨।

વળી શિષ્ય ફરીથી પૂછે છે–"से कि तं पासओअंतगयं" पार्श्वतोऽन्तगत અવધિજ્ઞાનનું શું સ્વરૂપ છે?

જવાબમાં આચાર્ય કહે છે–"से जहा नामए" ઈત્યાદિ જેમ કોઈ વ્યક્તિ ઉલ્કાને, ચટુલિકાને, અલાતને, મણીને, દીવાને કે જ્યોતિને પડખે કરીને આજુબાજુમાં પ્રકાશ કરતો ચાલે છે એનાં જેવું આ પાર્શ્વતોન્તગત અવધિજ્ઞાન છે. એટલે કે ઉલ્કાદિક પ્રકાશમય પદાર્થને પોતાની બાજુમાં રાખીને ચાલનાર વ્યક્તિ જે રીતે આજુબાજુના પદાર્થોનું નિરીક્ષણ કરતો કરતો ચાલે છે એજ પ્રમાણે જે અવધિજ્ઞાનથી અવધિજ્ઞાની આજુબાજુના પદાર્થોનુ નિરીક્ષણ કરે છે તે પાર્શ્વતોન્તગત અવધિજ્ઞાન છે. ૩.

एवमन्तगतस्यावधिज्ञानस्य स्वरूपं विज्ञाय शिष्यः पृच्छति-'से किं तं मज्झगयं' इति। अथ किं तन्मध्यगतम्? इति। यदवधिज्ञानं मध्यगतमिति नाम्ना पूर्वं निर्दिष्टं तस्य किं स्वरूपमित्यर्थः?। उत्तरमाह-'मज्झगयं से जहानामए' इत्यादि। 'मज्झगयं' इति। मध्यगतं कथयामीत्यर्थः। स यथानामकः=विवक्षितः कश्चित् पुरुषः उल्कां वा चटुलिकां वा अलातं वा मणिं वा प्रदीपं वा ज्योतिर्वा प्रकाशकारकं वस्तु मस्तके कृत्वा=शिरसि निधाय, समुद्वहन्२=धारयन्२ गच्छति, तद्वत्। तदेतन्मध्यगतम्=तत्-पूर्वनिर्दिष्टम्, मध्यगतं-मध्यगतनामकम्, एतत्-अवधिज्ञानमिति। अयं भावः-यथा कश्चित् पुरुषो गच्छन् मस्तकस्थेनोल्कादिना सर्वत्र तत्प्रकाशितमर्थं पश्यति, एवमात्मा यस्मादवधिज्ञानात् तत्प्रद्योतितं चवसृषु दिक्ष्ववस्थितं वस्तु पश्यति, तन्मध्यगतमिति।

पुनरपि शिष्यः पृच्छति-'अंतगयस्स मज्झगयस्स य को पइविसेसो?' इति।

फिर शिष्य पूछता है-"से किं तं मज्झगयं" इति।

उत्तर—"से जहा नामए" इत्यादि। जैसे कोई पुरुष उल्का को अथवा चटुलिका से लेकर ज्योतिपर्यन्त के प्रकाशात्मक पदार्थ को मस्तक ऊपर धर कर मार्गमें चलता है वह मध्यगत अवधिज्ञान है। अर्थात् उल्कादिक प्रकाशात्मक पदार्थो को अपने मस्तक ऊपर धरकर चलनेवाला पुरुष जिस प्रकार सर्वत्र फैले हुए प्रकाशगत पदार्थों को देखता चलता है उसी प्रकार जिस अवधिज्ञान के द्वारा जीव चारों दिशाओं के प्रकाशित पदार्थों को देखता है वह मध्यगत अवधिज्ञान है। शिष्य पूछता है-'अंतगयस्स य' इत्यादि। अन्तगत अवधिज्ञानमें और मध्यगत अवधिज्ञानमें क्या अन्तर है? अभिप्राय यह है कि अंतगत अवधिज्ञान के

ફરીથી શિષ્ય પૂછે છે-"से किं तं मज्झगयं" इति।

ઉત્તરઃ—"से जहानामए" ઈત્યાદિ.

જેમ કોઈ પુરુષ ઉલ્કાને અથવા 'ચટુલિકા' થી લઈને 'જ્યોતિ' સુધીના પ્રકાશિત પદાર્થને માથે ધરીને માર્ગમાં ચાલે છે એજ પ્રકારનું આ મધ્યગત અવધિજ્ઞાન છે. એટલે કે ઉલ્કાદિકથી પ્રકાશિત પદાર્થોને પોતાના માથા ઉપર ધરીને ચાલનાર પુરુષ જે રીતે સર્વત્ર ફેલાયેલા પ્રકાશમાં આવતા પદાર્થોને જોતો જોતો ચાલે છે એજ રીતે જે અવધિજ્ઞાન વડે જીવ ચારે દિશાઓના પ્રકાશિત પદાર્થોને જુવે છે તે 'મધ્યગત અવધિજ્ઞાન છે.'

શિષ્ય પૂછે છે-'अंतगयस्स य' ઈત્યાદિ. અન્તગત અવધિજ્ઞાનમાં અને મધ્યગત અવધિજ્ઞાનમાં શો ભેદ છે? ભાવાર્થ એ છે કે અંતગત અવધિજ્ઞાનના

न्तगतस्य मध्यगतस्य च कः प्रतिविशेषः? =को भेदः? इति। उत्तरमाह-पुरतोऽन्तगतेनाऽवधिज्ञानेन पुरतश्चैव=अग्रवर्तीन्येव वस्तूनि संख्येयानि वा, असंख्येयानि वा योजनानि=संख्यातयोजनपर्यन्तं, तथा-असंख्यातयोजनपर्यन्तं वा जानाति पश्यति। मार्गतोऽन्तगतेनाऽवधिज्ञानेन मार्गतश्चैव=पृष्ठतश्चैव संख्येयानि वा असंख्येयानि वा योजनानि जानाति पश्यति। पार्श्वतोऽन्तगतेनाऽवधिज्ञानेन पार्श्वतश्चैव संख्येयानि वा असंख्येयानि वा योजनानि जानाति पश्यति। मध्यगतेनाऽवधिज्ञानेन तु-आत्मा सर्वतः=सर्वासु दिक्षु समन्तात्=सर्वासु विदिक्षु विशुद्धस्पर्धकैः, 'संखिज्जाणि वा' 'संख्येयानि वा' इति, संख्यायन्ते, इति संख्येयानि, एकादीनि शीर्षप्रहेलिकापर्यन्तानि गृह्यन्ते, तत ऊर्ध्वमसंख्येयानि, तदाह-

जो तीन भेद किये गये हैं उनमें और मध्यगत अवधिज्ञानमें क्या भेद है?, इसका उत्तर इस प्रकार है-'पुरओअंतगएणं' इत्यादि। पुरतोऽन्तगतअवधिज्ञानद्वारा अवधिज्ञानी अग्रवर्ती वस्तुओं को ही संख्यात योजनपर्यन्त अथवा असंख्यातयोजन पर्यन्त जानता और देखता है। मार्गतोऽन्तगत अवधिज्ञान द्वारा अवधिज्ञानी पृष्ठगत पदार्थों को ही संख्यात तथा असंख्यात योजन पर्यन्त जानता देखता है। पार्श्वतोऽन्तगत अवधिज्ञानद्वारा अवधिज्ञानी आजूबाजू के संख्यात अथवा असंख्यात योजन पर्यन्त रहे हुए पदार्थों को जानता और देखता है परन्तु मध्यगत अवधिज्ञान के द्वारा अवधिज्ञानी आत्मा समस्त दिशाओंमें तथा समस्त विदिशाओंमें स्थित पदार्थों को विशुद्ध स्पर्धकों से संख्यात-एकादिक शीर्षप्रहेलिका योजन पर्यन्त, अथवा असंख्यात योजन

જે ત્રણ ભેદ કહેલ છે તેમાં અને મધ્યગત અવધિજ્ઞાનમાં શો ભેદ છે? તેનો જવાબ આ પ્રમાણે છે-"पुरओअंतगएण" ઈત્યાદિ.

પુરતોન્તગત અવધિજ્ઞાન વડે અવધિજ્ઞાની અગ્રવર્તી વસ્તુઓને જ સંખ્યાત યોજન સુધી અથવા અસંખ્યાત યોજન સુધી જાણે છે અને દેખે છે. માર્ગતોન્તગત અવધિજ્ઞાન વડે અવધિજ્ઞાની પૃષ્ઠગત પદાર્થોને સંખ્યાત અથવા અસંખ્યાત યોજન સુધી જાણે છે તથા દેખે છે. પાર્શ્વતોન્તગત અવધિજ્ઞાન વડે અવધિજ્ઞાની આજુબાજુના સંખ્યાત અથવા અસંખ્યાત યોજન સુધી રહેલા પદાર્થને જાણે છે અને દેખે છે. પણ મધ્યગત અવધિજ્ઞાન વડે અવધિજ્ઞાની આત્મા સમસ્ત દિશાઓમાં તથા સમસ્ત વિદિશાઓમાં રહેલ પદાર્થોને વિશુદ્ધ સ્પર્ધકોથી સંખ્યાત-એકાદિક શીર્ષપ્રહેલિકા યોજન પર્યન્ત, અથવા

'असंखिज्जाणि वा' इति, असंख्येयानि वा योजनानि। संख्यातयोजनमध्यवर्तीनि, असंख्यातयोजनमध्यवर्तीनि वस्तूनि जानाति पश्यति। अनयोरयमेव भेदोऽस्तीति। तदेतदानुगामिकमवधिज्ञानम्। इत्यवधेः प्रथमो भेदः १॥ ॥ सू० १०॥

मूलम्—से किं तं अणाणुगामियं ओहिनाणं?। अणाणुगामियं ओहिनाणं से जहानामए केइ पुरिसे एगं महंतं जोइट्ठाणं काउं तस्सेव जोइट्ठाणस्स परिपेरंतेहिं २ परिघोलेमाणे २ तमेव जोइट्ठाणं जाणइ पासइ, अन्नत्थगए न जाणइ न पासइ, एवामेव अणाणुगामियं ओहिनाणं जत्थेव समुप्पज्जइ, तत्थेव संखेज्जाणि वा असंखेज्जाणि वा संबद्धाणि वा असंबद्धाणि वा जोयणाइं जाणइ पासइ, अन्नत्थगए ण जाणइ ण पासइ, से तं अणाणुगामियं ओहिनाणं ॥ सू० ११॥

छाया—अथ किं तदनानुगामिकमवधिज्ञानम्? अनानुगामिकमवधिज्ञानं स यथानामकः कश्चित्पुरुषः एकं महत्—ज्योतिःस्थानं कृत्वा तस्यैव ज्योतिःस्थानस्य परिपर्यन्तेषु२ परिघूर्णन्२ तदेव ज्योतिःस्थानं जानाति, पश्यति, अन्यत्र गतो न जानाति न पश्यति, एवमेवाऽनानुगामिकमवधिज्ञानं यत्रैव समुत्पद्यते तत्रैव संख्येयानि वा असंख्येयानि वा सम्बद्धानि वाऽसम्बद्धानि वा योजनानि जानाति पश्यति, अन्यत्र-गतो न जानाति न पश्यति, तदेतदनानुगामिकमवधिज्ञानम् ॥ सू० ११ ॥

टीका—शिष्यः पृच्छति—'से किं तं अणाणुगामियं ओहिनाणं' इति। अथ किं तदनानुगामिकमवधिज्ञानम्?। उत्तरमाह—'अणाणुगामियं ओहिनाणं' इत्यादि। अनानुगामिकमवधिज्ञानं कथयामीति शेषः। स यथानामकः—विवक्षितः, कश्चित्

पर्यन्त जानता देखता है। यही अंतगत और मध्यगत अवधिज्ञानमें भिन्नता है ॥सू०१०॥

'से किं तं अणाणुगामियं' इत्यादि।

शिष्य पूछता है—अनानुगामिक अवधिज्ञान का क्या स्वरूप है? आचार्य कहते हैं—अनानुगामिक अवधिज्ञान इस प्रकार है—जैसे कोई पुरुष

અસંખ્યાત યોજન સુધી જાણે તથા દેખે છે. અંતગત અને મધ્યગત અવધિજ્ઞાનમાં આજ ભિન્નતા છે ॥ સૂ ૧૦ ॥

"से कि तं अणाणुगामियं" ઇત્યાદિ.

શિષ્ય પૂછે છે—અનાનુગામિક અવધિજ્ઞાનનુ કેવું સ્વરૂપ હોય છે?

આચાર્ય જવાબ આપે છે—અનાનુગામિક અવધિજ્ઞાન આ પ્રકારનું છે—જેવી

पुरुषः, एकं महत्=विशालं, ज्योतिःस्थानं=अग्निस्थानं कृत्वा, तस्यैव ज्योतिःस्थानस्य 'परिपेरंतेहिं' परिपर्यन्तेषु२=परि-सर्वतः पर्यन्तेषु, न त्वेकदिग्गतेषु, 'परिघोलेमाणे २' परिघूर्णन् २=परिभ्रमन् २, तदेघ ज्योतिः स्थानं=ज्योतिः प्रकाशितं क्षेत्रं पश्यति, अन्यत्र गतो न पश्यति। तथैव-अनानुगामिकमवधिज्ञानं यत्रैव क्षेत्रे व्यवस्थितस्याऽऽत्मनः समुत्पद्यते, तत्रैव व्यवस्थितः सन् संख्येयानि वा असंख्येयानि वा योजनानि, संबद्धानि वा असंबद्धानि वा जानाति पश्यति, अन्यत्र गतो न पश्यति, अवधिज्ञानावरणक्षयोपशमस्य क्षेत्रसंबन्धसापेक्षत्वात्। तदेतत् अनानुगामिकमवधिज्ञानम्। इति द्वितीयो भेदः ॥ सू०११॥

एक बडा भारी अग्नि का स्थान बनावे और उसमें खूब अग्नि जलावे तो जैसे अग्निका प्रकाश जब उस अग्निस्थानसे बाहर इधर उधर निकल कर फैले, और फैले हुए उस प्रकाशमें इधर उधर परिभ्रमण करता हुआ वह पुरुष वहां के चारों तरफ के पदार्थों को देखता है और वहां से हट जाने पर अन्यत्र पहुंच कर वह नहीं देखता है, उसी तरह अनानुगामिक अवधिज्ञान जिस क्षेत्रमें स्थित जीवात्मा को उत्पन्न होता है वह जीवात्मा वहीं रह कर संबद्ध अथवा असंबद्ध संख्यात अथवा असंख्यात योजन के भीतर रहे हुए पदार्थों को जानता और देखता है। वहां से हटते ही फिर वह दूसरी जगह जाकर उन पदार्थों को न देखता है और न जानता है। इस अवधिज्ञानमें अवधिज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम क्षेत्रसापेक्ष होता है। इस प्रकार यह अनानुगामिक अवधिज्ञान का स्वरूप है ॥सू०११॥

રીતે કોઇ પુરુષ એક ઘણું મોટું અગ્નિનું સ્થાન બનાવે અને તેમાં ખૂબ અગ્નિ સળગાવે તો જેમ અગ્નિનો પ્રકાશ જ્યારે તે અગ્નિસ્થાનની બહાર આમ તેમ ફેલાય છે અને તે ફેલાયેલા પ્રકાશમાં આમ તેમ પરિભ્રમણ કરતો તે પુરૂષ ત્યાંના ચારે તરફના પદાર્થોને જોવે છે, અને ત્યાંથી ખસીને બીજે જવાથી તે તેમને જોતો નથી. એજ પ્રમાણે અનાનુગામિક અવધિજ્ઞાન જે ક્ષેત્રમાં રહેલા જીવને ઉત્પન્ન થાય છે તે જીવાત્મા ત્યાંજ રહીને સંબદ્ધ અસંબદ્ધ, સંખ્યાત કે અસંખ્યાત યોજનની અંદર રહેલા પદાર્થોને જાણે અને દેખે છે. ત્યાંથી ખસીને વળી બીજી જગ્યાએ જવાથી તે તે પદાર્થોને જોતો નથી અને જાણતો પણ નથી. આ અવધિજ્ઞાનમાં અવધિજ્ઞાનાવરણીય કર્મનો ક્ષયોપશમ ક્ષેત્ર-સાપેક્ષ હોય છે, આ પ્રકારનું આ અનાનુગામિક અવધિજ્ઞાનનું સ્વરૂપ છે ॥ સૂ ૧૧ ॥

मूलम्—से किं तं वड्ढमाणयं ओहिनाणं ? । वड्ढमाणयं ओहिनाणं पसत्थेसु अज्झवसायट्ठाणेसु वड्ढमाणस्स, वट्टमाणचरित्तस्स, विसुज्झमाणस्स विसुज्झमाणचरित्तस्स सव्वओ समंता ओहीवड्ढइ ॥

छाया—अथ किं तद् व मानकमवधिज्ञानम्? वर्धमानकमवधिज्ञानं प्रशस्तेषु अध्यवसायस्थानेषु वर्तमानस्य वर्धमानचारित्रस्य विशुद्ध्यमानस्य विशुद्ध्यमानचारित्रस्य सर्वतः समन्तादवधिर्वर्धते ॥

टीका—'से किं तं वड्ढमाणयं' इत्यादि । शिष्यः पृच्छति—अथ किं तद् वर्धमानकमवधिज्ञानम्?= पूर्वनिर्दिष्टस्य वर्धमानावधिज्ञानस्य किं स्वरूपमित्यर्थः ?। उत्तरमाह—'वड्ढमाणयं' इत्यादि । वर्धमानकमित्यत्र स्वार्थे 'क' प्रत्ययः । वर्धमानकमवधिज्ञानं कथयामीत्यर्थः। 'प्रशस्तेषु अध्यवसायस्थानेषु वर्तमानस्य'=प्रशस्ताध्यवसायवत इत्यर्थः, सर्वतः समन्तादवधिर्वर्धते, इत्यन्वयः। वर्धमानमवधिज्ञानमविरतसम्यग्दृ-

---

'से किं तं वड्ढमाणयं' इत्यादि ।

शिष्य पूछता है–वर्धमानक अवधिज्ञान का क्या स्वरूप है? उत्तर–'वड्ढमाणयं ओहिनाणं' इत्यादि । वर्धमान अवधिज्ञान अवधिज्ञानावरणीयकर्मरूप मल के अपगम से उत्तरोत्तर शुद्धिका अनुभव करने वालेऐसे प्रशस्त अध्यवसायसंपन्न चतुर्थगुणस्थानवर्ती अविरत सम्यग्दृष्टिजीव के होता है। तथा देशविरत अथवा सर्वविरत–पंचमगुणस्थानवर्ती, अथवा षष्ठगुणस्थानवर्ती जीव के होता है। चतुर्थगुणस्थानवर्ती पंचमगुणस्थानवर्ती एवं षष्ठगुणस्थानवर्ती जीव के यह वर्धमान अवधिज्ञान चारों दिशाओंमें प्रवर्धमान होता रहता है। यहां अध्यवसायस्थान

'से किं तं वड्ढमाणयं' ઇત્યાદિ.

શિષ્ય પૂછે છે–વર્ધમાનક અવધિજ્ઞાનનું કેવું સ્વરૂપ છે?

ઉત્તર–'वड्ढमाणयं ओहिनाणं' ઇત્યાદિ.

વર્ધમાન અવધિજ્ઞાન અવધિજ્ઞાનાવરણ કર્મ રૂપ મળના અપગમથી ઉત્તરોત્તર શુદ્ધિનો અનુભવ કરનાર એવાં પ્રશસ્ત અધ્યવસાય સંપન્ન ચતુર્થગુણસ્થાનવર્તી અવિરત સમ્યગ્દૃષ્ટિ જીવને થાય છે. તથા દેશવિરત અથવા સર્વવિરત–પંચમગુણસ્થાનવર્તી અથવા ષષ્ઠગુણસ્થાનવર્તી જીવને થાય છે. ચતુર્થગુણસ્થાનવર્તી, અને ષષ્ઠગુણસ્થાનવર્તી જીવને આ વર્ધમાન અવધિજ્ઞાન ચારે દિશાઓમાં પ્રવર્ધમાન થતું રહે છે. અહીં અધ્યવસાયસ્થાન–શબ્દમાંથી ઓઘ

ष्टेरपि भवतीति भावः। इहाध्यवसायस्थान शब्देन ओघतो द्रव्यलेश्योपरञ्जितं चित्त-मुच्यते, तस्य चानवस्थितत्वात् तत्तद्द्रव्यसाचिव्ये सति बहुभेदत्वाद् बहुत्वम् । अत्र प्रशस्तेष्विति विशेषणेन अप्रशस्तकृष्णनीलकापोतद्रव्यलेश्योपरञ्जितं चित्तं नावधिज्ञान योग्यमिति सूचितम् । 'वर्धमानचारित्रस्य' वर्धनशील चारित्रसंपन्नस्येत्यर्थः । इहापि 'सर्वतः समन्तादवधिर्वर्धते' इत्यन्वयः। देशविरतस्य सर्वविरतस्य च वर्धमानमवधिज्ञानं भवतीति भावः। अवधिज्ञानं विशुद्धिजन्यमित्याह-'विसुज्झमाणस्स' इत्यादि । 'विशुध्यमानस्य '=अवधिज्ञानावरणीयकर्ममलापगमादुत्तरोत्तरां शुद्धिमनुभवतः, अविरत-सम्यग्दृष्टेरित्यर्थः । ' विशुध्य मानचारित्रस्य ' परिणामविशुद्ध्या निर्मलचारित्र-वतः, देशविरतस्य सर्वविरतस्य चेति शेषः, सर्वतः समन्तादवधिर्वर्धते। इदमुक्तं

शब्द से ओघ (सामान्य) की अपेक्षा करके द्रव्यलेश्या से अनुरंजित चित्त लिया गया है। यह चित्त अनवस्थित होने के कारण उस उस द्रव्य के संबंध से बहुत भेद वाला माना गया है। यहां प्रशस्तपदरूप विशेषण से सूत्रकार यह बात बतलाते हैं कि अप्रशस्त जो कृष्णनील एवं कापोत लेश्या से अनुरंजितचित्त अवधिज्ञान के योग्य नहीं होता है। "विसुज्झमाणचारित्तस्स" यह पद पंचमगुणस्थानवर्ती एवं षष्ठगुणस्थानवर्ती जीव का सूचक है। इसका अर्थ "निर्मलचारित्र शाली जीव " ऐसा होता है। " सव्वओ समंता " यह दोनों पद अवि-रत सम्यग्दृष्टि के तथा देशविरत एवं सर्वविरत के साथ संबंध रखतेहैं। तात्पर्य इस सूत्रका इस प्रकार है-परिणामों की विशुद्धि के द्वारा

(સામાન્ય) ની અપેક્ષા કરીને દ્રવ્યલેશ્યાથી અનુરંજિત ચિત્ત લેવાયેલ છે. આ ચિત્ત અનવસ્થિત હોવાને કારણે તે તે દ્રવ્યનાં સંબંધથી ઘણું જ ભેદવાળું મનાયું છે. અહીં પ્રશસ્ત-પદરૂપ વિશેષણથી સૂત્રકાર એ વાત બતાવે છે કે અપ્રશસ્ત જે કૃષ્ણ, નીલ અને કાપોત લેશ્યાથી અનુરંજિત ચિત્ત અવધિજ્ઞાનને યોગ્ય હોતું નથી.

"विसुज्झमाणचरित्तस्स" આ પદ પંચમગુણસ્થાનવતી અને ષષ્ઠગુણસ્થાનવતી જીવનું સૂચક છે. તેનો અર્થ "નિર્મળ ચારિત્રવાળો જીવ" એવો થાય છે. "सव्वओ समंता" આ બન્ને પદ અવિરત સમ્યગ્દષ્ટિની તથા દેશવિરત અને સર્વવિરતની સાથે સંબંધ રાખે છે. આ સૂત્રનું તાત્પર્ય આ પ્રમાણે છે- પરિણામોની વિશુદ્ધિ વડે અવધિજ્ઞાની જીવનું જે અવધિજ્ઞાન ચારે દિશાઓમાં

भवति-परिणामविशुद्ध्याऽवधिज्ञानिनो यद वधिज्ञानं चतसृषु दिक्षु प्रवर्धमानं भवति, तदवधिज्ञानं वर्धमानमिति ॥

अथावधेर्जघन्यः क्षेत्रमाह—

मूलम्—जावइया तिसमया—हारगस्स सुहुमस्स पणगजीवस्स।
ओगाहणा जहन्ना, ओही—खित्तं जहन्नं तु ॥ १ ॥

छाया——यावती त्रिसमया,—ऽऽहारकस्य सूक्ष्मस्य पनकजीवस्य।
अवगाहना जघन्या, अवधिक्षेत्रं जघन्यं तु ॥१ ॥

टीका——'जावइया' इत्यादि। त्रिसमयाऽऽहारकस्य=त्रयः समया यस्यासौ त्रिसमयः, स चासौ अविग्रहगत्या समुत्पन्नत्वादाहारकश्च=त्रिसमयाहारकः, तस्य—उत्पत्तिसमयादारभ्य तृतीयसमये वर्त्तमानस्येत्यर्थः, सूक्ष्मस्य—सूक्ष्मनामकर्मोदयात् सूक्ष्मस्तस्य, पनकजीवस्य=निगोदजीवस्य वनस्पति विशेषस्य, यावती=यत्प्रमाणा, जघन्या=सर्वतोऽल्पा, अवगाहना=अवगाहन्ते यस्यां प्राणिनः साऽवगाहना, शरीरमानं भवति, जघन्यं—सर्वतोऽल्पं तु अवधिक्षेत्रम्—अवधिज्ञानस्य क्षेत्रं तावदेव भवति। इह 'तु'—शब्द एवार्थे, इति गाथार्थः।

अवधिज्ञानी जीव के जो अवधिज्ञान चारों दिशाओंमें प्रवर्धमान होता रहता है वह वर्धमान अवधिज्ञान है।

अब सूत्रकार अवधिज्ञान का जघन्य क्षेत्र बतलाते हैं—

'जावइया' इत्यादि गाथा। उत्पत्ति समय से लेकर तृतीय समयमें वर्तमान ऐसे सूक्ष्म एकेन्द्रिय निगोदिया जीव की जितनी जघन्य अवगाहना होती है उतना ही जघन्य क्षेत्र अवधिज्ञान का होता है।

भावार्थ—अपने उत्पत्ति समय से लेकर तृतीय समयमें आहारक बने हुए सूक्ष्म एकेन्द्रिय निगोदिया पनक जीव के शरीर का जितना प्रमाण होता है उतना ही अवधिज्ञान के जघन्य क्षेत्र का प्रमाण होता है।

પ્રવર્ધમાન થતું રહે છે તે વર્ધમાન અવધિજ્ઞાન છે. હવે સૂત્રકાર અવધિજ્ઞાનનું જઘન્ય ક્ષેત્ર બતાવે છે-

"जावइया" ઈત્યાદિ ગાથા-ઉત્પત્તિ કાળથી શરૂ કરીને તૃતીય સમયમાં વર્તમાન એવાં સૂક્ષ્મ એકેન્દ્રિય જીવની જેટલી જઘન્ય અવગાહના હોય છે એટલું જઘન્ય ક્ષેત્ર અવધિજ્ઞાનનું હોય છે.

ભાવાર્થ:—પોતાના ઉત્પત્તિ કાળથી લઈને તૃતીય સમયમાં આહારક બનેલા સૂક્ષ્મ એકેન્દ્રિય નિગોદિયા પનક જીવના શરીરનું જેટલું પ્રમાણ હોય છે એટલું જ અવધિજ્ઞાનના જઘન્ય ક્ષેત્રનું પ્રમાણ હોય છે.

अयमर्थः—यः किल योजनसहस्रायाममानो मत्स्यो मृत्वा स्वशरीरैकदेश संलग्नपनके समुत्पद्यमानः प्रथमसमये स्वात्मप्रदेशानामायामं संहृत्य स्वात्मप्रदेश विष्कम्भतुल्यं करोति, तेनायामतो विष्कम्भतश्च तुल्यप्रमाणः प्रतरः संपद्यते। तत्र–आयामो–दैर्घ्यम्, विष्कम्भो=विस्तारः। बाहल्यतश्चाङ्गुलासंख्येयभागप्रमाणो भवति। तेन स्थूलत्वं संक्षिप्य तनुत्वमापादितम्।

'एवंभूतं प्रतरं प्रथमसमये कृत्वा द्वितीयसमये तमेव प्रतरं सूचीं करोति। तत्र स्वात्मप्रदेशविष्कम्भं संक्षिप्यांगुलासंख्येसभागप्रमाणं करोति। तेनाऽऽयामतः स्वात्मप्रदेशविष्कम्भप्रमाणा, विष्कम्भतस्तु–अंगुलासंख्येयभागप्रमाणा सूची भवति।

इसका खुलाशा अर्थ इस प्रकार है—एक हजार योजन की अवगाहनावाला महामत्स्य मरकर अपने शरीरके एक प्रदेशमें लगे हुए पनक (शेवाल)में उत्पन्न होता हुआ प्रथम समयमें अपने आत्मप्रदेशों के आयाम को संकुचित करता है, और संकुचित करके उस आयाम को वह आत्मप्रदेशों के विष्कंभ के बराबर बनाता है। इस प्रकार यह प्रथम समयमें ही आयाम और विष्कंभ की अपेक्षा तुल्यप्रमाणवाला बन जाता है। इसका नाम ही प्रतर है। आयाम शब्द का अर्थ दीर्घता (लंबाई) और विष्कंभ का अर्थ विस्तार (चौडाई) है। इस समय यह अंगुल से असंख्यातवें भागप्रमाण अवगाहना वाला होता है, क्यों कि इसमें स्थूलता का संकोच होकर तनुता आजाती है। अर्थात् पहिले की स्थूलता सकुचित होकर तनुतारूपमें परिणत हो जाती है। इस प्रकार प्रथम समयमें प्रतर करके फिर वह द्वितीय समयमें उस प्रतर को सूची रूप करता है। इस सूची अवस्थामें वह जीव अपने आत्मा के विष्कम्भ

તેનો ખુલાસાવાર અર્થ આ પ્રમાણે છે–એક હજાર યોજનની અવગાહનાવાળો મહામત્સ્ય મરીને પોતાનાં શરીરના એક દેશમાં લાગેલા પનકમાં ઉત્પન્ન થતાં પહેલા સમયમાં પોતાના આત્મપ્રદેશોના આયામને સંકુચિત કરે છે. અને સંકુચિત કરીને તે આયામને તે આત્મપ્રદેશોના વિષ્કંભની બરાબર છે. આ રીતે આ પ્રથમ સમયમાં જ આયામ અને વિષ્કંભની અપેક્ષાએ તુલ્યપ્રમાણવાળો બની જાય છે. આનું નામ જ પ્રતર છે. આયામ શબ્દનો અર્થ દીર્ઘતા (લંબાઇ) અને વિષ્કંભનો અર્થ પહોળાઈ છે. આ સમયે તે અંગુલના અસંખ્યાતમાં ભાગ પ્રમાણ અવગાહનાવાળો હોય છે. કારણ કે તેમાં સ્થૂળતાનો સંકુચન થઇને તનુતા આવી જાય છે. એટલે કે પહેલાની સ્થૂળતા સંકુચિત થઇને તનુતા રૂપમાં પરિણમે છે. આ પ્રમાણે પહેલા સમયમાં પ્રતર કરીને ફરીથી તે બીજા સમયમાં તે પ્રતરને સૂચીરૂપ કરે છે. આ સૂચી અવ-

वाहल्यतश्च पूर्ववदंगुलाऽसंख्येयभागप्रमाणैव। द्वितीयसमये एवंभूतां सूचीं कृत्वा तृतीयसमये तत्र पनकत्वेन समुत्पद्यते। पनकजीवस्योत्पत्तिसमयादारभ्य तृतीय-समये शरीरमानं यावद् भवति तावत्परिमितं क्षेत्रं जघन्यमवधिज्ञानस्य भवती'-ति वृद्धाः। उक्तञ्च—

योजनसहस्रमानो, मत्स्यो मृत्वा स्वकायदेशे यः।
उत्पद्यते हि सूक्ष्मः, पनकत्वेनेह स ग्राह्यः ॥ १ ॥

को संक्षिप्त कर के उसे अंगुल के असख्यातवें भागप्रमाण बना लेता है। आयाम की अपेक्षा अपने आत्मा के प्रदेशों के विष्कंभ प्रमाण, तथा विष्कंभ की अपेक्षा अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण यह सूची होती है। तथा बाहल्य की अपेक्षा पहिले की तरह यह सूची अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण ही रहती है। इस प्रकार द्वितीय समयमें ऐसी सूची कर के वह जीव तृतीय समयमें पनकरूप पर्याय से उत्पन्न होता है। इस पनक जीव का उत्पत्ति के समय से लेकर तृतीय समयमें शरीर का प्रमाण जितना होता है उतना ही क्षेत्र जघन्यरूप से अवधि-ज्ञान का होता। ऐसा वृद्धसम्प्रदाय कहते है। कहा भी है—

"योजनसहस्रमानो, मत्स्यो मृत्वा स्वकायदेशे यः।
उत्पद्यते हि सूक्ष्मः, पनकत्वेनेह स ग्राह्यः ॥ १ ॥

સ્થામાં તે જીવ પોતાના આત્માના વિષ્કંભને ટુંકાવીને તેને અંગુલના અસં-ખ્યાતમાં ભાગ પ્રમાણુ બનાવી લે છે. આયામની અપેક્ષાએ પોતાના આત્માના પ્રદેશોનું વિષ્કંભ પ્રમાણ, તથા વિષ્કંભની અપેક્ષાએ અંગુલના અસંખ્યાતમાં ભાગ પ્રમાણુ આ સૂચી થાય છે તથા બહુતાની અપેક્ષાએ પહેલાની જેમ આ સૂચી અગુંગલના અસખ્યાતમાં ભાગ પ્રમાણુજ રહે છે. આ રીતે બીજા સમયે એવી સૂચી કરીને તે જીવ ત્રીજા સમયમાં પનકરૂપ પર્યાયે ઉત્પન્ન થાય છે. આ પનક જીવના ઉત્પત્તિના સમયથી લઈને તૃતીય સમયમાં શરીરનું પ્રમાણુ જેટલું હોય છે એટલું જ ક્ષેત્ર જઘન્યરૂપથી અવધિજ્ઞાનનું હોય છે. એવું વૃદ્ધલોકો કહે છે. કહ્યું પણ છે—

योजनसहस्रमानो, मत्स्यो मृत्वा स्वकायदेशे यः।
उत्पद्यते हि सूक्ष्मः, पनकत्वेनेह स ग्राह्यः ॥१॥

संहृत्य चाद्यसमये, स ह्यायामं करोति च प्रतरम्।
संख्यातीताख्यांगुल-विभागबाहल्यमानं तु ॥ २ ॥
स्वतनुपृथुत्वमात्रं, दीर्घत्वेनापि जीवसामर्थ्यात्।
तमपि द्वितीयसमये, संहृत्य करोत्यसौ सूचिम् ॥३॥
संख्यातीताङ्गुल-वि,-भागविष्कम्भमाननिर्दिष्टाम्।
निजतनुपृथुत्वदीर्घां, तृतीयसमये तु संहृत्य ॥ ४ ॥
उत्पद्यते च पनकः, स्वदेह देशे स सूक्ष्मपरिमाणः।
समयत्रयेण तस्याऽवगाहना यावती भवति ॥ ५ ॥
तावज्जघन्यमवधे-रालम्बनवस्तुभाजनं क्षेत्रम्।
इदमित्थमेव मुनिगण-सुसम्प्रदायात् समवसेयम् ॥६॥

संहृत्य चाद्यसमये, सह्यायामं करोति च प्रतरम्।
संख्यातीताख्याङ्गुलविभागबाहल्यमानं तु ॥२॥
स्वतनुपृथुत्वमानं, दीर्घत्वेनापि जीवसामर्थ्यात्।
तमपि द्वितीयसमये, संहृत्य करोत्यसौ सूचिम्॥३॥
संख्यातीताङ्गुलविभाग विष्कम्भ मान निर्दिष्टाम्।
निजतनुपृथुत्वदीर्घां, तृतीयसमये तु संहृत्य ॥ ४ ॥
उत्पद्यते च पनकः स्वदेहदेशे स सूक्ष्मपरिमाणः।
समयत्रयेण तस्यावगाहना यावती भवति ॥ ५ ॥
तावज्जघन्यमवधेरालम्बनवस्तुभाजनं क्षेत्रम्।
इदमित्थमेव मुनिगण सुसंप्रदायात्समवसेयम्" ॥६॥

इन श्लोकों का भाव ऊपर प्रमाण ही है।

संहृत्य चाद्यसमये, स हायामं करोति च प्रतरम्।
संख्यातीताख्याङ्गुलविभागबाहल्यमानं तु ॥ २ ॥
स्वतनुपृथुत्वमानं, दीर्घत्वेनापि जीवसामर्थ्यात्।
तमपि द्वितीयसमये, संहृत्य करोत्यसौ सूचिम् ॥३॥
संख्यातीताङ्गुलविभागविष्कंभमाननिर्दिष्टाम्।
निजतनु पृथत्व दीर्घां, तृतीयसमये तु संहृत्य ॥४॥
उत्पद्यते च पनकः, स्वदेहदेशे स सूक्ष्मपरिमाणः।
समयत्रयेण तस्यावगाहना यावती भवति ॥ ५ ॥
तावज्जघन्यमवधेरालम्बनवस्तुभाजनं क्षेत्रम्।
इदमित्थमेव मुनिगण, सुसंप्रदायात्समवसेयम् ॥६॥

એ શ્લોકોનો ભાવ ઉપર પ્રમાણે જ છે.

ननु किमिति महान् मत्स्यः कल्प्यते ? (१), किं वा तृतीयसमये मत्स्यजीजीवस्य स्वदेहदेशे समुत्पत्तिः स्वीक्रियते ? (२), अपि च त्रिसमयाहारकत्व वा तस्य केन कारणेन कल्प्यते ? (३), किं वा सूक्ष्मो गृह्यते ? (४) किं वा पनक इत्युच्यते ? (५), किं वा जघन्यावगाहना गृह्यते ? (६) इति षट् प्रश्नाः । अत्रोच्यते—

योजनसहस्रप्रमाण एव हि महामत्स्यजीवस्त्रिभिः समयैरात्मप्रदेशान् संक्षिपन् प्रयत्नविशेषतः सूक्ष्मावगाहनावान् भवति नान्यः, इति महामत्स्यग्रहणम् ।१।

स च महामत्स्यजीवः प्रथमसमये प्रतरं करोति, द्वितीयसमये सूचीं करोति, तृतीयसमये पनकभवं प्राप्नोति, अतस्तृतीयसमये समुत्पत्तिः स्वीक्रियते ।२।

शंका—इतने लंबे चौडे मत्स्य की कल्पना क्यों करते हैं ? १, क्यों उसकी अपने देह प्रदेशमें ही तृतीय समवमें उत्पत्ति मानते हैं ? २ क्यों उसको उत्पत्तिसमय से लेकर तृतीय समयमें वर्तमान कहते है ? ३, क्यों उसको सूक्ष्मरूप से ग्रहण करते हैं ? ४, क्यों उसको 'पनक' इस संज्ञा से संबोधित करते हैं ? ५, और क्यों यहां उसकी जघन्य अवगाहना लेते हैं ? ६ । इस प्रकार यहां ये छह प्रश्न हैं । इनका उत्तर इस प्रकार है—

एक हजार योजन की अवगाहना वाला महामत्स्य ही तीन समयों में आत्मप्रदेशों को संकुचित करता हुआ प्रयत्नविशेष से सूक्ष्म अवगाहना वाला होता है, अन्यजीव नहीं, इसलिये उसी का ग्रहण किया है ।१।

यह महामत्स्य प्रथम समयमें प्रतर करता है। द्वितीय समयमें सूची करता है । तृतीय समयमें पनक की पर्याय से उत्पन्न होता है। इसलिये तृतीय समयमें ही पनकरूप पर्याय की उत्पत्ति मानी गई है ।२।

શંકા—(૧) આટલા લાંબા-પહોળા મત્સ્યની કલ્પના શા માટે કરો છો ? (૨) શા માટે તેની પોતાના દેહ પ્રદેશમાં જ ત્રીજા સમયમાં ઉત્પત્તિ માનો છો ? (૩) શા માટે તેને ઉત્પત્તિ સમયથી લઈને તૃતીય સમયમાં વર્તમાન કહો છો ? (૪) શા માટે તેને સૂક્ષ્મરૂપે ગ્રહણ કરો છો ? (૫) શા માટે તેને 'पनक' આ સંજ્ઞાથી સંબોધિત કરો છો ? (૬) અને શા માટે તેની જઘન્ય અવગાહના લો છો ? આ પ્રમાણે અહીં એ છ પ્રશ્નો છે. તેનો ઉત્તર આ પ્રમાણે છે—

(૧) એક હજાર યોજનની અવગાહનાવાળો મહામત્સ્ય જ ત્રણ સમયોમાં આત્મપ્રદેશોને સંકુચિત કરતો પ્રયત્નવિશેષથી સૂક્ષ્મ અવગાહનાવાળો થાય છે, બીજા જીવ નહીં. તેથી જ તેને ગ્રહણ કરેલ છે.

(૨) આ મહા મત્સ્ય પ્રથમ સમયમાં 'પ્રતર' કરે છે. બીજા સમયમાં સૂચી કરે છે. ત્રીજા સમયમાં પનકની પર્યાયથી ઉત્પન્ન થાય છે, તેથી તૃતીય સમયમાં જ પનકરૂપ પર્યાયની ઉત્પત્તિ માનેલી છે.

स पनकजीव उत्पत्तिकालादारभ्य प्रथमे द्वितीये च समयेऽतिसूक्ष्मो भवति, चतुर्थादिषु समयेषु चातिस्थूलो भवति, तृतीयसमय एव जघन्यावधिक्षेत्रयोग्याव-गाहनावान् भवत्यतस्त्रिसमयाहारकत्वं कल्प्यते ।३।

अविग्रहगत्या स्वशरीरैकदेश एव समुत्पन्नत्वेन स पनकजीवः सूक्ष्मो भवत्यतः सूक्ष्मग्रहणम् । अन्यथा-यदि स्वशरीराद्दूरे गत्वाऽन्यत्र पनकत्वेन समुत्पद्येत, विग्रह-गत्या च गच्छेत् तदा जीवप्रदेशा विस्तरत्वं प्राप्नुयुरित्यवगाहना स्थूलतरा स्यात्।४।

पनक जीव उत्पत्तिसमय से लेकर प्रथम और द्वितीय समयमें अतिसूक्ष्म रहता है, चतुर्थ आदि समयोंमें अतिस्थूल हो जाता है, इसलिये इन समयोंकी उस की अवगाहना ग्रहण न कर के जो तृतीय समय की अवगाहना ग्रहण की गई है उसका कारण केवल यही है कि यह इस तृतीय समयमें ही जघन्य अवधिज्ञान के क्षेत्रयोग्य अवगाहना वाला होता है । इसलिये " उत्पत्ति के समय से लेकर तृतीय समयमे वर्तमान " ऐसा कहा है ।३।

अविग्रहगति से अपने शरीर के एकदेशमें ही उत्पन्न होने के कारण वह पनक जीव सूक्ष्म होता है। इस बात को बतलाने के लिये ही सूक्ष्मपद रखा गया है। यदि वह अपने शरीर से किसी और दूसरी जगह दूर जाकर पनक की पर्याय से उत्पन्न होता और विग्रहगति से जाता तो जीवके प्रदेश अवश्य विस्तार को प्राप्त करते, इस तरह उसकी अवगाहना स्थूलतर हो जाती।४।

---

(૩) પનક જીવ ઉત્પત્તિસમયથી લઈને પહેલા અને બીજા સમયમાં અતિસૂક્ષ્મ રહે છે. ચતુર્થ આદિ સમયમાં અતિસ્થૂળ થઈ જાય છે. તેથી તે સમયોની તેની અવગાહના ગ્રહણ ન કરીને જે ત્રીજા સમયની અવગાહના ગ્રહણ કરેલ છે તેનું કારણ ફક્ત એટલું જ છે કે તે આ તૃતીય સમયમાં જ જઘન્ય અવધિજ્ઞાનના ક્ષેત્રને યોગ્ય અવગાહનાવાળો થાય છે. તેથી "ઉત્પત્તિના સમ-યથી શરૂ કરીને તૃતીય સમયમાં વર્તમાન " એવું કહેલ છે.

(૪) અવિગ્રહગતિથી પોતાનાં શરીરના એક દેશમાં જ ઉત્પન્ન થવાને કારણે તે પનક જીવ સૂક્ષ્મ હોય છે. આ વાતને બતાવવા માટે જ સૂક્ષ્મ પદ રાખવામાં આવેલ છે. જો તે પોતાના શરીરથી કોઈ બીજી જ જગ્યાએ દૂર જઈને પનકની પર્યાયથી ઉત્પન્ન થતો અને વિગ્રહ ગતિથી જતો તો જીવના પ્રદેશ જરૂર વિસ્તારને પામત, આ રીતે તેની અવગાહના સ્થૂળતર થઈ જાત.

पनकजीव एव पृथिव्याद्यन्यजीवापेक्षया सूक्ष्मः सूक्ष्मतरः सुक्ष्मतमश्च भवतीत्यतः पनकग्रहणम् ।५।

पनकजीव एव च सर्वजघन्यदेहो भवतीति जघन्यावगाहनाग्रहणम् ।६।

केचित्तु—'त्रिसमयाहारकस्य' इति–आयामसंहरणप्रतरकरणरूपः प्रथमः समयः १, प्रतरसंहरणसूचीकरणरूपो द्वितीयः समयः २, तृतीयस्तु सूचीसंहारेण पनकत्वेनोत्पत्तिसमयः ३, ततश्च त्रयः समया यस्यासौ त्रिसमयः, विग्रहगत्यभावादाहारकश्च एतेषु त्रिष्वपि समयेष्वाहारकस्तस्मादुत्पत्तिसमय एव त्रिस-

इस पनक संज्ञा से संबोधन करने का प्रयोजन यह है कि अन्य पृथिवी आदि जीवों की अपेक्षा पनक जीव ही सूक्ष्म, सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतम होता है । ५ ।

इसकी जघन्य अवगाहना का ग्रहण इसलिये किया गया है कि पनक जीव ही सर्व जीवों की अपेक्षा जघन्य शरीर वाला होता है । ६ ।

कोई २ आचार्य ऐसा कहते हैं कि पनक जीव की पर्यायमें उत्पन्न होने वाला वह महामत्स्य का जीव प्रथम समयमें अपने शरीर के आयाम का संहरण करता है और यह आयाम का संहरण ही प्रतर का करना है। द्वितीय समयमें प्रतर का संहरण और सूची का करना होता है। तृतीय समयमें सूची के संहार से और पनकरूप पर्याय से उत्पन्न होता है। इस तरह तीन समय लगते हैं। तथा विग्रहगति के अभाव से यह आहारक हो जाता है। इस प्रकार तीनों समयोंमें यह आहारक होता है। इसलिये उत्पत्तिसमयमें ही तीन समय वाला वह आहारक

(५) આ પનકસંજ્ઞાથી સંબોધન કરવાનું પ્રયોજન એ છે કે બીજા પૃથિવી આદિ જીવોની અપેક્ષાએ પનક જીવજ સૂક્ષ્મ, સૂક્ષ્મતર અને સૂક્ષ્મતમ હોય છે.

(૬) તેની જઘન્ય અવગાહના એ માટે ગ્રહણ કરવામાં આવેલ છે કે પનક જીવ જ સર્વજીવોની અપેક્ષાએ જઘન્ય શરીરવાળો હોય છે.

કોઈ કોઈ આચાર્ય એવું કહે છે કે પનક જીવની પર્યાયમાં ઉત્પન્ન થનારા તે મહામત્સ્યનો જીવ પ્રથમ સમયમાં પોતાના શરીરના આયામનું સંહરણ કરે છે અને આ આયામનું સંહરણ જ પ્રતરનું કરવું છે. બીજા સમયમાં પ્રતરનું સંહરણ અને સૂચીનું કરવું થાય છે. ત્રીજા સમયમાં સૂચીનું સંહારણ કરીને પનકરૂપ પર્યાયથી ઉત્પન્ન થાય છે. આ રીતે ત્રણ સમય લાગે છે. તથા વિગ્રહગતિના અભાવથી તે આહારક થઈ જાય છે. આ રીતે ત્રણે સમયોમાં તે આહારક હોય છે. તેથી ઉત્પત્તિ સમયે જ ત્રણ સમયવાળો તે આહારક

मयाहारकः सूक्ष्मः पनकजीवो जघन्यावगाहनावान् भवति, अतस्तच्छरीरप्रमाणं जघन्यमवधिक्षेत्र-मिति वदन्ति।

तदयुक्तम्—त्रिसमयाहारकत्वं हि पनकजीवविशेषणतया प्रोक्तं मत्स्यभवस्यायामप्रतर-संहरणसमयद्वयं च पनकभवसम्बन्धि न संभवतीति त्रिसमयाहारकत्वरूपं विशेषणं पनकजीवस्य नोपपद्यते ॥

अत्रेदं बोध्यम्—एतावत्प्रमाणस्य जघन्यक्षेत्रस्य तैजसप्रायोग्यवर्गणापान्तरालवर्ति द्रव्यं भाषाप्रायोग्यवर्गणापान्तरालवर्ति च द्रव्यमालम्ब्यावधिः प्रवर्तते। तदपि चालम्ब्यमानं द्रव्यं द्विविधम्-गुरुलघु, अगुरुलघु च। तत्र तैजसप्रत्यासन्नं गुरुलघु,

---

सूक्ष्म पनक जीव जघन्य अवगाहना वाला होता है। इस तरह उस के शरीर का जो प्रमाण होता है तत्प्रमाण जघन्यक्षेत्र अवधिज्ञान का बतलाया गया है।

ऐसा कहना उनका ठीक नहीं है कारण कि "त्रिसमयाहारकत्व" यह विशेषण पनक जीव का ही कहा है। इसलिये प्रथम समयमें मत्स्यभव के शरीर के आयाम के संहरण तथा द्वितीय समयमें प्रतर के संहरण करनेमें जो दो समय लगते हैं वे पनकभवसंबंधी नहीं हैं, अतः त्रिसमयाहारकत्वरूप विशेषण पनक जीव का नहीं बनता है।

यहाँ यह समझना चाहिये-पूर्वोक्तप्रमाणपरिमित जघन्य क्षेत्र के तैजसप्रायोग्यवर्गणा के मध्यवर्ती द्रव्य का और भाषाप्रायोग्यवर्गणाके मध्यवर्त्ती द्रव्य का अवलम्बन कर के अवधिज्ञान प्रवृत्त होता है। वह अवलम्ब्यमान द्रव्य गुरुलघु और अगुरुलघु के भेद से दो प्रकार का है। उनमें तैजसप्रत्यासन्न द्रव्य गुरुलघु है और भाषाप्रत्यासन्न द्रव्य अगुरु-

---

સૂક્ષ્મ પનક જીવ જઘન્ય અવગાહનાવાળો હોય છે. આ રીતે તેના શરીરનું જે પ્રમાણ હોય છે તે પ્રમાણ જ જઘન્યક્ષેત્ર અવધિજ્ઞાનનું બતાવ્યું છે.

તેમનું એવું કથન બરાબર નથી કારણ કે "त्रिसमयाहारकत्व" આ વિશેષણ પનક જીવનું જ કહેલ છે, તેથી પ્રથમ સમયમાં મત્સ્યભવના શરીરના આયામનું સંહરણ, તથા બીજા સમયમાં પ્રતરનું સંહરણ કરવામાં જે બે સમય લાગે છે તે પનકભવસંબધી નથી તેથી त्रिसमयाहारकत्व રૂપ વિશેષણ પનક જીવનું બનતું નથી.

અહીં એમ સમજવું જોઈએ-પૂર્વોક્તપ્રમાણપરિમિત જઘન્ય ક્ષેત્રના તૈજસપ્રાયોગ્યવર્ગણાના મધ્યવર્તી દ્રવ્યનું, અને ભાષાપ્રાયોગ્યવર્ગણાના મધ્યવર્તી દ્રવ્યનું અવલંબન કરીને અવધિજ્ઞાન પ્રવૃત્ત થાય છે. તે અવલંબ્યમાન દ્રવ્ય ગુરુલઘુ અને અગુરુલઘુના ભેદથી બે પ્રકારનું છે. તેઓમાં તૈજસપ્રત્યાસન્ન દ્રવ્ય

भाषाप्रत्यासन्नं चागुरुलघु। तद्गतांश्च पर्यायान् चतुःसंख्यानेव वर्णगन्धरसस्पर्शलक्षणान् जघन्यावधिज्ञानी पश्यति, न शेषानिति।

अयमत्र सारांशः--अंगुलासंख्येयभागप्रमाणं जघन्यं क्षेत्रमवधिज्ञानस्य भवति। अर्थात्-अंगुलप्रमाणस्य क्षेत्रस्य असंख्येयानि खण्डानि कृतस्य एकस्मिन् असंख्येयभागे यावन्ति द्रव्याणि समवस्थितानि तानि जघन्यावधिज्ञानी पश्यति ॥ गा०१ ॥

एवं जघन्यमवधिक्षेत्रमुक्त्वा, उत्कृष्टमवधिक्षेत्रमाह—

मूलम्—सव्व–बहु–अगणिजीवा, निरंतरं जत्तियं भरिज्जंसु।
खित्तं सव्वदिसागं, परमोही खित्तनिद्दिट्ठो ॥ २ ॥

छाया—सर्वबह्वग्निजीवा,–निरन्तरं यावद् भृतवन्तः।
क्षेत्रं सर्वदिक्कं, परमावधिः क्षेत्रनिर्दिष्टः ॥ २ ॥

टीका—'सव्वबहुअगणिजीवा' इत्यादि। सर्वबह्वग्निजीवाः—इह सर्व-

लघु है। इनमें रहे हुए वर्ण रस गंध स्पर्शरूप चार पर्यायों को ही जघन्य अवधिज्ञानी देखता है, शेष को नहीं। इसका सारांश यह है—

अंगुलका असंख्यातवां भाग क्षेत्र अवधिज्ञान का जघन्य विषय है, इस का तात्पर्य यह है कि अंगुलप्रमाण क्षेत्र के असंख्यात टुकडे करो, अंत का जो असंख्यातवां टुकड़ा बचे उसमें जितने रूपी द्रव्य अवस्थित हों उन्हे जघन्य अवधिज्ञानी जानता और देखता है।

इस प्रकार अवधिज्ञान का जघन्य क्षेत्र कह कर अब उत्कृष्ट क्षेत्र कहते हैं—'सव्व–बहु–अगणि जीवा' इत्यादि।

ગુરુલઘુ છે અને ભાષાપ્રત્યાસન્ન દ્રવ્ય અગુરુલઘુ છે. તેમનામાં રહેલ વર્ણ, ગંધ, સ્પર્શરૂપ ચાર પર્યાયોને જ જઘન્યઅવધિજ્ઞાની જુએ છે, બીજાને કોઈ નહીં. તેનો સારાંશ આ છે—

અંગુલનો અસંખ્યાતમો ભાગ ક્ષેત્ર અવધિજ્ઞાનનો જઘન્ય વિષય છે. તેનું તાત્પર્ય એ છે કે અંગુલના માપના ક્ષેત્રના અસંખ્ય ટુકડા કરો. છેવટનો જે અસંખ્યાતમો ટુકડો બચે તેમાં જેટલા રૂપી દ્રવ્યો રહેલ હોય તેમને જઘન્ય અવધિજ્ઞાની જાણે અને દેખે છે.

આ રીતે અવધિજ્ઞાનનું જઘન્ય ક્ષેત્ર કહીને હવે ઉત્કૃષ્ટ ક્ષેત્ર કહે છે—"सव्वबहुअगणिजीवा" ઇત્યાદિ.

शब्देन विवक्षितकालवर्तिनो वह्निजीवा यावन्तः सन्ति, त एव सर्वे गृह्यन्ते। ततश्च ये भूत-भविष्यत्कालावस्थायि वह्निजीवाः, ये च शेषजीवास्तेषां ग्रहणं नास्ति, असंभवात्। सर्वेभ्यः=विवक्षितकालवर्तिभ्योऽग्निजीवेभ्य एव ये बहवस्ते सर्वबहवः, अग्नयश्च ते जीवाः, अग्निजीवाः, सर्वबहवश्च तेऽग्निजीवाः सर्वबह्वग्निजीवाः, सर्वदिक्कं=सर्वदिग्भावावस्थितं क्षेत्रम्-आकाशं, निरन्तरं-अन्तररहितं, क्रियाविशेषणमेतत्, विशिष्टसूचीरचनया रचिताः सन्तः, यावत्=यत्परिमाणं भृतवन्तः=व्याप्तवन्तः, परमावधिः-परमश्चासाववधिः स तथा, क्षेत्रनिर्दिष्टः-क्षेत्रम्-अनन्तरोक्तं प्रभूताग्निजीवप्रमितमङ्गीकृत्य निर्दिष्टः=प्रतिपादितो गणधरादिभिरिति। ततश्चावधेः पर्यायेण एतावत् क्षेत्रमुत्कृष्टतो विषय इति भावः।

'भृतवन्तः' इति भूतकालनिर्देशश्च 'अजितस्वामिकाल एव प्रायः सर्वबहवोऽग्निजीवा भवन्ति स्म' इति सूचयितुम्-'सर्वबहु' इति विशेषणम्। 'अस्यामवसर्पिण्या'-मित्य-

इस गाथामें सर्वशब्द से विवक्षित कालवर्ती अग्निजीव जितने हैं वे ही सब ग्रहण किये गये हैं। भूत-भविष्यत-कालवर्ती अग्निजीव तथा और जो शेष जीव हैं वे ग्रहण नहीं किये गये हैं। इस तरह विवक्षितकालवर्ती अग्निजीवों से और भी जो अग्निजीव हैं वे सर्वबहु अग्नि जीव समस्त दिगवस्थित जितने आकाशरूपी क्षेत्र को निरन्तर रूपमें-अन्तर न रहे इस रूपमें-भरते हैं-उसे व्याप्त करते हैं उतना क्षेत्र उत्कृष्ट अवधिज्ञान का विषय है। ऐसा गणधरादिकों ने कहा है।

इस गाथामें "भृतवन्तः" ऐसा जो भूतकालिक निर्देश किया है वह इस बात की सूचना के लिए है कि अजित स्वामी के समयमें ही प्रायः सर्वबहुअग्निजीव थे। "सर्व बहु" यह विशेषण इस अवस-

આ ગાથામાં 'સર્વ' શબ્દથી વિવક્ષિતકાળવર્તી અગ્નિજીવ જેટલાં છે તે બધાં ગ્રહણ કરેલ છે. ભૂત-ભવિષ્યકાળવર્તી અગ્નિજીવ તથા બીજાં જે બાકીનાં જીવો છે તે ગ્રહણ કરેલ નથી. આ રીતે વિવક્ષિતકાળવર્તી અગ્નિજીવો સિવાયના બીજા પણ જે અગ્નિજીવો છે તે બધા-બહુઅગ્નિજીવ સમસ્ત દિગવસ્થિત જેટલા આકાશરૂપ ક્ષેત્રને નિરંતર રૂપમાં (અંતર ન રહે તે રૂપમાં) ભરે છે, તેને વ્યાપ્ત કરે છે, એટલું ક્ષેત્ર ઉત્કૃષ્ટ અવધિજ્ઞાનનો વિષય છે. એવું ગણધરાદિકોએ કહ્યું છે.

આ ગાથામાં 'भृतवन्तः' એવો જે ભૂતકાળનો નિર્દેશ કરેલ છે તે આ વાતની સૂચનાને માટે છે કે અજિતસ્વામીના સમયમાં જ પ્રાયઃ સર્વબહુઅગ્નિજીવ હતા. 'सर्वबहु' આ વિશેષણ આ અવસર્પિણી કાળનું સૂચક છે. તથા

र्थस्य ख्यापनार्थम्। 'सर्वदिक्कम्' इत्यनेन सर्वतः सूचीपरिभ्रमण प्रमितमेव सूचितम्।

अथवा—सर्वबह्वग्निजीवा निरन्तरं यावत् सर्वदिक्कं क्षेत्रं भृतवन्तः, एतावति क्षेत्रे यान्यवस्थितानि द्रव्याणि, तत्परिच्छेदसामर्थ्ययुक्तः परमावधिः, क्षेत्रमङ्गीकृत्य निर्दिष्टः, इति। अथ सांप्रदायिकोऽर्थ उच्यते—

अग्निजीवोत्पत्तेर्महावृष्ट्यादिना व्याघाताभावे समस्तभरतैरवतविदेहलक्षणासु पञ्चदशसु कर्मभूमिषु सर्ववह्वो बादराग्निजीवा भवन्ति। अवसर्पिण्यां द्वितीयतीर्थंकरकाले ये भवन्ति स्म, त एव गृह्यन्ते। तत्र हि बादराग्निजीवानां संधुक्षण-

र्पिणी काल का सूचक है। तथा—"सर्वदिक्कम्" यह विशेषण सूचिपरिभ्रमणपरिमित क्षेत्र का ही सूचक है।

अथवा—सर्वबहुअग्निजीव निरन्तर सब दिशाओंमें रहे हुए जितने क्षेत्र को व्याप्त करते हैं इतने क्षेत्रमें जितने द्रव्य अवस्थित होते उतने द्रव्यों को जानने की शक्ति वाला यह परमावधिज्ञान, क्षेत्रकी अपेक्षा से कहा गया है।

अब साम्प्रदायिक अर्थ क्या है सो बतलाया जाता है—

अग्नि जीवों की उत्पत्ति का महावृष्टि आदि के द्वारा भी व्याघात नहीं होता है इसलिये पांच भरत, पांच ऐरवत, एवं पांच महाविदेह, ये जो पन्द्रह कर्मभूमियां है इनमें सर्वबहुबादरअग्निजीव होते हैं। अवसर्पिणी कालमें द्वितीय तीर्थंकर के समयमें जो अग्नि जीव होते हैं वे ही यहां ग्रहण किये गये हैं, कारण कि उस समय बादर अग्नि

'सर्वदिक्कम्' આ વિશેષણ સૂચીપરિભ્રમણપરિમિત ક્ષેત્રનું જ સૂચક છે.

અથવા—સર્વબહુઅગ્નિજીવ નિરંતર બધી દિશાઓમાં રહેલ જેટલા ક્ષેત્રને વ્યાપ્ત કરે છે એટલા ક્ષેત્રમાં જેટલા દ્રવ્ય રહેલાં હોય છે એટલા દ્રવ્યોને જાણવાની શક્તિવાળું આ પરમાવધિજ્ઞાન ક્ષેત્રની અપેક્ષાએ કહેલ છે.

હવે સાંપ્રદાયિક અર્થ શો છે તે બતાવે છે—

અગ્નિજીવોની ઉત્પત્તિનો મહાવૃષ્ટિ આદિ વડે પણ વ્યાઘાત થતો નથી. તેથી પાંચ ભરત, પાંચ ઐરવત, અને પાંચ મહાવિદેહ, તે પંદર જે કર્મભૂમિઓ છે તેઓમાં સર્વબહુબાદરઅગ્નિજીવ હોય છે. અવસર્પિણી કાળમાં બીજા તીર્થંકરના સમયમાં જે અગ્નિજીવ હોય છે તેમને જ અહીં ગ્રહણ કરેલ છે, કારણ કે તે સમયે બાદર અગ્નિજીવોની સંધુક્ષણ અને જ્વાલન આદિ

ज्वालनाद्यारम्भपराः सर्वेभ्योऽप्यतीताऽनागतेभ्यः प्रचुरा गर्भजमनुष्याः स्वभावादेव भवन्ति स्म।

यदोत्कृष्टाश्च सूक्ष्माग्नि जीवाः स्वभावत एव कथमपि संभवन्ति, तदैव एतैर्बादराग्निजीवैः सह सर्वबह्वग्निजीवानां परिमाणं भवति। इदमत्र हृदयम्-अनन्तानन्तारकवसर्पिणीषु मध्ये स एव कश्चित् तीर्थंकरकालो गृह्यते, यत्र सूक्ष्माग्नि जीवा उत्कृष्टपदिनः प्राप्यन्ते। ततश्च तैर्बादरैः सूक्ष्मैश्चाग्निजीवैरुत्कृष्टपदिभिर्मिलितैः सर्वबह्वग्निजीवानां परिमाणं भवति।

तच्च संभवमात्रमाश्रित्य बुद्धया षड्विधरचनयाऽग्निजीवान् व्यवस्थापयितुं रचनाया षड् भेदाः घनद्वय-प्रतरद्वय-श्रेणिद्वय-रूपाः कल्प्यन्ते। तत्र षष्ठो भेदो

जीवों की संधुक्षण एवं ज्वालन आदि आरंभक्रियाद्वारा उत्पत्ति करनेमें तत्पर गर्भज मनुष्य अतीतअनागतकालोद्भूत गर्भज मनुष्यों की अपेक्षा प्रचुर मात्रामें स्वभाव से ही थे।

जब उत्कृष्ट सूक्ष्मअग्निजीव स्वभावतः किसी निमित्तद्वारा उत्पन्न होते हैं तब ही इन बादराग्नि जीवों के साथ सर्वबहुअग्निजीवों का परिमाण आता है। तात्पर्य यह है कि अनंतानंत अवसर्पिणियों के बीच वही कोई एक तीर्थंकरकाल ग्रहण किया जाता है कि जिसमें सूक्ष्मअग्निजीव उत्कृष्ट पद को प्राप्त होते हैं। इस तरह उत्कृष्टपदप्राप्त ये बादर और सूक्ष्मअग्नि जीवों को मिलाने पर सर्वबहुअग्निजीवों का परिमाण होता है।

सर्वबहुअग्निजीवों का परिमाण निकालने के लिये अपनी बुद्धि से छह प्रकार की रचना की कल्पना करो, वे छह प्रकार ये हैं-(१) दो

આરંભક્રિયાવડે ઉત્પત્તિ કરવામાં તત્પર ગર્ભજ મનુષ્ય અતીત અનાગત કાળના જન્મેલા ગર્ભજ મનુષ્યોની અપેક્ષાએ મોટી માત્રામાં સ્વભાવથી જ હતા.

જ્યારે ઉત્કૃષ્ટ સૂક્ષ્મ અગ્નિજીવ સ્વભાવતઃ કોઇ નિમિત્ત વડે પેદા થાય છે ત્યારે જ એ બાદરાગ્નિજીવોની સાથે સર્વબહુ અગ્નિજીવોનું પરિમાણ આવે છે. ભાવાર્થ એ કે અનંતાનંત અવસર્પિણીઓની વચ્ચે કોઈ એક તીર્થંકરનો સમય ગ્રહણ કરાય છે કે જેમાં સૂક્ષ્માગ્નિજીવ ઉત્કૃષ્ટ પદને મેળવે છે. આ રીતે ઉત્કૃષ્ટ પદ પ્રાપ્ત કરનારા તે બાદર અને સૂક્ષ્મ અગ્નિજીવોને મેળવતા સર્વબહુ અગ્નિજીવોનું પરિમાણ થાય છે.

સર્વબહુ અગ્નિજીવોનું પરિમાણ કાઢવાને માટે પોતાની બુદ્ધિથી છ પ્રકારની રચનાની કલ્પના કરો. તે છ પ્રકાર આ પ્રમાણે છે-(૧) બે ઘન (૨) બે પ્રતર

बहुतरक्षेत्रपूरणं करोति । अन्ये पञ्च अनादेशाः, षष्ठस्तु श्रुतादेश इति । तथाहि–सर्वैरप्यग्निजीवैः समचतुरस्रो घनो द्विप्रकारकः स्थाप्यते । तत्र एकैकाकाशप्रदेशे एकैकाग्निजीव स्थापनया प्रथमो घनः । स्वावगाहे च देहासंख्येयाकाशप्रदेश लक्षणे एकैकाग्निजीवस्थापनया द्वितीयो घनः । घनरचनायां नवाग्निजीवाः असत्कल्पनया स्थाप्यन्ते ।

अत्र स्थापना—

०	०	०
०	०	०
०	०	०

एतेषां नवानामग्निजीवानां प्रत्येकमेकैकाकाशप्रदेशे व्यवस्थापिताना-

---

घन, (२) दो प्रतर (वर्ग), (३) दो श्रेणि ६। इनमें छठवां श्रेणीरूप भेद ही बहुतर क्षेत्र को पूरण करता है। अन्य पांच भेद अनादेशशास्त्रसंमत नहीं है। छठवां ही श्रुतादेश–शास्त्रसंमत है।

इस का खुलाशा इस प्रकार से है–समस्त अग्निजीवों का जो घन बनाया गया है वह समचतुरस्र–समचतुष्कोण है, और उस की दो प्रकार से स्थापना की गई है–प्रथम प्रकारमें एक एक आकाश के प्रदेशमें एक एक अग्निजीव स्थापित किया गया है। द्वितीय प्रकारमें जितने असंख्यातप्रदेशरूप आकाशक्षेत्र को एक अग्निजीवके शरीर ने रोक रखा है उस स्वावगाहित देहरूप आकाश के असंख्यात प्रदेशमें एक एक अग्निजीव की स्थापना की गई है। इस तरह इस घनरचनामें असत्कल्पना द्वारा नौ अग्निजीव स्थापित किये जाते हैं।

स्थापना यंत्र—

०	०	०
०	०	०
०	०	०

(વર્ગ) (૩) બે શ્રેણિ. તેઓમાં છઠ્ઠી શ્રેણીરૂપ ભેદ જ બહુતર ક્ષેત્રને પૂર્ણ કરે છે અન્ય પાંચ ભેદ અનાદેશ–શાસ્ત્રસંમત નથી. છઠ્ઠો શ્રુતાદેશ જ શાસ્ત્રસંમત છે.

તેનો ખુલાસો આ પ્રમાણે છે—સમસ્ત અગ્નિજીવોનો જે ઘન બનાવવામાં આવેલ છે તે સમચતુરસ્ર–સમચોરસ છે, અને તેની બે રીતે સ્થાપના કરેલ છે. (૧) પહેલા પ્રકારમાં એક એક આકાશના પ્રદેશમાં એક એક અગ્નિજીવ સ્થાપિત કરેલ છે. (૨) બીજા પ્રકારમાં જેટલા અસંખ્યાતપ્રદેશરૂપ આકાશ ક્ષેત્રને એક અગ્નિજીવશરીરે રોકી રાખેલ છે તે સ્વાવગાહિત દેહરૂપ આકાશના અસંખ્યાત પ્રદેશમાં એક એક અગ્નિજીવનીસ્થાપના કરેલ છે. આ રીતે આ ઘનરચનામાં અસત્કલ્પના વડે નવ અગ્નિજીવ સ્થાપિત કરાય છે.

સ્થાપનાયંત્ર—

०	०	०
०	०	०
०	०	०

मधस्तात् उपरिष्टाच्च अन्येऽपि नव नव जीवा इत्थमेव स्थाप्यन्ते। एष कल्पनया सप्तविंशत्या प्रथमो घनो भवति। स्थापना चेयम्

सद्भावतस्त्व संख्येयैरग्नि जीवैरेकैकाकाशप्रदेशव्यवस्थापितै र्घनो भवति। द्वितीयोऽपि घन इत्थमेव द्रष्टव्यः, किन्तु इह देहासंख्येयाकाशप्रदेशेष्वेकैक जीवो व्यवस्थाप्यते२।

एवं वृत्ताकारः प्रतरोऽपि द्विविधो भवति। तथा हि-एकैकाकाशप्रदेशे एकैकाग्निजीवस्थापनया प्रथमः, देहासंख्ये-

इन नौ अग्नि जीवों के भी प्रत्येक अग्नि जीव के ऊपर नीचे और भी नौ नौ अग्नि जीव स्थापित किये जाते हैं। स्थापना—

इस तरह की स्थापना से सत्ताईस २७ जीवों का यह प्रथम घन बन जाता है। इससे यह तात्पर्य निकलता है कि एक एक आकाश के प्रदेशमें व्यवस्थापित हुए असंख्यात अग्नि जीवों का एक घन बन जाता है। द्वितीय घन भी इस तरह से होता है। किन्तु इस घनमें देहरूप असंख्येय आकाशप्रदेशमें एक एक जीव ही स्थापित किया जाता है। इसी प्रकार वृत्ताकार प्रतर भी दो तरह से होता है—एक २ आकाश के प्रदेशमें एक एक अग्निजीवकी स्थापना से प्रथम प्रतर, और आकाश के असंख्यात प्रदेशरूप स्वावगा-

તે નવ અગ્નિજીવોના પણ પ્રત્યેક અગ્નિજીવની ઉપર નીચે બીજા પણ નવ નવ અગ્નિજીવ સ્થાપિત કરાય છે.

સ્થાપના—

આ પ્રકારની સ્થાપનાથી સત્યાવીસ (૨૭) જીવોનો આ પ્રથમ ઘન બની જાય છે. તેથી એ તાત્પર્ય નિકળે છે કે એક એક આકાશના પ્રદેશમાં વ્યવસ્થાપિત થયેલ અસંખ્યાત અગ્નિજીવોનો એક ઘન બની જાય છે. બીજો ઘન પણ એજ રીતે થાય છે. પણ આ ઘનમાં દેહરૂપ અસંખ્યેય આકાશ પ્રદેશમાં એક એક જીવ જ સ્થાપિત કરાય છે. આજ રીતે વૃત્તાકાર પ્રતર પણ બે રીતે થાય છે. એક એક આકાશના પ્રદેશમાં એક એક અગ્નિજીવની સ્થાપના વડે પ્રથમ પ્રતર અને આકાશના

याकाशप्रदेशात्मके स्वावगाहे एकैकाग्नि जीवस्थापनया च द्वितीयः २। एवमायता सूच्याकारा श्रेणिरपि द्विभेदा। तत्र चत्वारो घनप्रतरपक्षाः, पञ्चमश्च–एकैकाकाशप्रदेशस्थापितैकैकजीवलक्षणः श्रेणिपक्षः, एते पञ्चापि न ग्राह्याः, दोषद्वयानुषङ्गात्। तथाहि–पञ्चविधयाऽप्यनया स्थापनया स्थापिता अग्निजीवा अवधिज्ञानधरस्य षट्स्वपि दिक्षु असत्कल्पनया भ्राम्यमाणाः स्तोकमेव क्षेत्रं स्पृशन्तीत्येको दोषः। एकैकाकाशप्रदेशे एकैकजीवस्थापनायामागमविरोधश्च द्वितीयो दोषः।

नन्नु असंख्येयाकाशप्रदेशान् विना आगमे जीवावगाहनिषेधादसत्कल्पनया

हित देहमें एक २ अग्नि जीव की स्थापना से द्वितीय प्रतर बनता है। इसी तरह सूची के आकार जैसी लंबी श्रेणि भी दो प्रकार की है। इनमें घन और प्रतर के दो२ भेदरूप चार पक्ष, तथा एक २ आकाशप्रदेशमें स्थापित एक एक जीवरूप पांचवां श्रेणिपक्ष, ये पांचों पक्ष ग्राह्य नहीं हुए हैं, कारण कि ये दो दोषों से दूषित हैं? इन दोनों दोषों का खुलाशा इस प्रकार है–जब पांच प्रकार की इस स्थापना से स्थापित किये गये ये अग्निजीव अवधिज्ञानी की छहों दिशाओंमें असत्कल्पना से इधर से उधर घुमाये जावेंगे तब ये स्तोक क्षेत्र का ही स्पर्श करेंगे एक तो यह दोष आता है १, दूसरा–एक २ आकाशप्रदेश के ऊपर एक २ जीव की स्थापना करना यह आगम से विरुद्ध पडता है २।

शंका—यद्यपि असंख्यात आकाश प्रदेशों के विना आगममें एक जीव के अवगाह का निषेध बतलाया गया है फिर भी असत्कल्पना

અસંખ્યાત પ્રદેશરૂપ સ્વાવગાહિત દેહમાં એક એક અગ્નિજીવની સ્થાપના વડે બીજો પ્રતર બને છે. આજ પ્રમાણે સૂચીના આકાર જેવી લાંબી શ્રેણી પણ બે પ્રકારની છે. તેમનામાં ઘન અને પ્રતરના બે બે ભેદરૂપ ચાર પક્ષ તથા એક એક આકાશ પ્રદેશમાં સ્થાપિત એક એક જીવરૂપ પાંચમો શ્રેણીપક્ષ, એ પાંચે પક્ષ ગ્રાહ્ય થયા નથી, કારણ કે તે બે દોષો વડે દૂષિત છે. એ બન્ને દોષોનો ખુલાસો આ પ્રમાણે છે—જ્યારે પાંચ પ્રકારની આ સ્થાપનાથી સ્થાપિત કરેલ એ અગ્નિજીવ અવધિજ્ઞાનીની છએ દિશાઓમાં અસત્કલ્પનાથી અહીંથી તહીં ઘુમાવાશે ત્યારે એ સ્તોક ક્ષેત્રનો જ સ્પર્શ કરશે. એક તો આ દોષ આવશે (૧)

બીજું–એક એક આકાશ પ્રદેશની ઉપર એક એક જીવની સ્થાપના કરવી તે આગમની વિરૂદ્ધનું ગણાશે (૨)

શંકા—જો કે અસંખ્યાત આકાશ પ્રદેશોના વિના આગમમાં એક જીવની અવગાહનાનો નિષેધ બતાવ્યો છે તે છતાં અસત્કલ્પનાથી એક એક પ્રદેશમાં એક

प्रदेशावगाहोऽप्यस्तु, इति चेन्नैवम्, कल्पनाऽपि सति संभवेऽविरोधिन्येव कर्तव्या, किं विरोधेन ? तस्मात्-असंख्येयाकाशप्रदेशलक्षणस्वावगाहे श्रेण्यामेकैकजीव स्थापनेन यः श्रेणिलक्षणः षष्ठः पक्षः स एव श्रुते आदिष्टत्वात् ग्राह्यः। शेषास्तु

से एक एक प्रदेशमें एक एक जीवका अवगाह मान लिया जावे तो आगम विरुद्धता कैसे आसकेगी ?

उत्तर—ऐसा नहीं कहना चाहिये, कारण कि कल्पना भी वही की जानी चाहिये कि जो वहां संभवित होती हो, और जिसमें कोई विरोध नहीं आता हो। पूर्वोक्त कल्पना तो अविरोधिनी नहीं है। उसमें आगम से दोष आता है, आगममें एक जीव का आधारक्षेत्र लोकाकाश के असंख्यातवें भाग से लेकर सम्पूर्ण लोकाकाशतक हो सकने का बतलाया गया है। यद्यपि लोकाकाश असंख्यातप्रदेश परिमाण है तथापि असंख्यात संख्या के भी असंख्य प्रकार होने से लोकाकाश के ऐसे असंख्यात भागों की कल्पना की जा सकती है, जो अंगुलासंख्येयभाग परिमाण हों। इतना छोटा एक भाग भी असंख्यात प्रदेशात्मक ही होता है। उस एक भागमें कोई एक जीव रह सकता है, उतने दो भागमें भी रह सकता है। इसी तरह एक २ भाग बढते २ आखिरकार सर्वलोकमें भी एक जीव रह सकता है, अर्थात् जीवद्रव्य का छोटे से छोटा आधारक्षेत्र अंगुलासंख्येय भाग

એક જીવની અવગાહના માનવામાં આવે તો આગમવિરૂદ્ધતા કેવી રીતે આવી શકશે ?

ઉત્તર—એવું ન કહેવું જોઈએ કારણ કે કલ્પના પણ એવી જ કરવી જોઈએ કે જે ત્યાં સંભવિત થતી હોય, અને જેમાં કોઈ વિરોધ આવતો ન હોય. પૂર્વોક્ત કલ્પના તો અવિરોધિની નથી. તેમાં આગમથી દોષ આવે છે. આગમમાં એક જીવનું આધારક્ષેત્ર લોકાકાશના અસંખ્યાતમાં ભાગથી લઈને સંપૂર્ણ લોકાકાશ સુધી હોઈ શકવાનુ બતાવ્યુ છે. જો કે લોકાકાશ અસંખ્યાત પ્રદેશપરિમાણ છે તો પણ અસંખ્યાત સંખ્યાના પણ અસંખ્યાત પ્રકાર હોવાથી લોકાકાશના એવા અસંખ્યાત ભાગોની કલ્પના કરી શકાય છે કે જે આગળના અસંખ્યેયભાગપરિમાણ હોય. આવડો નાનો એક ભાગ પણ અસંખ્યાત પ્રદેશાત્મક જ હોય છે. તે એક ભાગમાં કોઈ એક જીવ રહી શકે છે, એટલા બે ભાગમાં પણ રહી શકે છે, આ રીતે એક એક ભાગ વધતા વધતા છેવટે સર્વલોકમાં પણ એક જીવ રહી શકે છે, એટલે કે જીવદ્રવ્યનું નાનામાં નાનું

पश्चानादेशाः, संभवोपदर्शनमात्रेणोक्तत्वात् परिहार्याः। इयं हि यथोक्तश्रेणिः एकैकजीवस्या संख्येयाकाशप्रदेशावगाहे व्यवस्थापितत्वाद् बहुतरं क्षेत्रं स्पृशतीत्येको गुणः, अवगाहविरोधाभावस्तु द्वितीयः। ततश्च-एषाऽग्निजीवश्रेणिरवधिज्ञानिनः षट्स्वपि दिक्षु असत्कल्पनया भ्रामिता सती अलोके लोकप्रमाणानि

परिमाण का खंड होता है जो समग्र लोकाकाश का एक असंख्यातवां हिस्सा होता है।

अब एक एक प्रदेशमें असत्कल्पना से जीव का अवगाह-मानना आगमविरोध से विहीन कैसे हो सकता है। अतः असंख्यात-प्रदेशरूप स्वावगाहित श्रेणीमें एक २ जीव की स्थापना से जो श्रेणिरूप छठवां पक्ष है वही आगममें आदिष्ट होने से ग्राह्य माना गया है। बाकी के पांच पक्ष आदिष्ट न होने की वजह से परिहार्य बतलाये गये हैं। यहां जो उनका कथन किया गया है वह केवल संभावनामात्र को दिखलाने के लिये ही किया गया है। यह यथोक्त श्रेणि एक एक जीव को असंख्येय आकाशप्रदेशरूप आधारमें व्यवस्थापित होनेका वजह से एक तो बहुत अधिक क्षेत्र का स्पर्श कर लेती है। दूसरे-इस मान्यतामें अवगाह का विरोध भी नहीं आता है। इस तरह यह अग्निजावों की श्रेणि अवधि ज्ञानी की छहों दिशाओमें असत्कल्पना से घुमाने पर अलोकमें लोक-प्रमाण असंख्येय आकाशखंडों को स्पर्श करती है, इसलिये इतना उत्कृष्ट

આધારક્ષેત્ર આંગળના અસંખ્યેયભાગપરિમાણનો ખંડ હોય છે. જે સમગ્ર લોકાકાશનો એક અસંખ્યાતમો ભાગ હોય છે.

હવે એક એક પ્રદેશમાં અસત્કલ્પનાથી જીવની અવગાહના માનવી તે આગમવિરોધ વિનાનું કેવી રીતે થઈ શકે છે, તેથી અસંખ્યાત પ્રદેશરૂપ સ્વાવગાહિત શ્રેણીમાં એક એક જીવની સ્થાપનાથી જે શ્રેણિરૂપ છઠો પક્ષ છે એ જ આગમમાં આદિષ્ટ હોવાથી ગ્રાહ્ય (સ્વીકારવા યોગ્ય) મનાયો છે. બાકીના પાંચ પક્ષ આદિષ્ટ ન હોવાને કારણે પરિહાર્ય બતાવ્યા છે. અહીં જે તેમનું કથન કરેલ છે તે ફક્ત સંભાવનામાત્રને જ દર્શાવવા માટે કરેલ છે. આ યથોક્ત શ્રેણિ એક એક જીવને અસંખ્યેય આકાશપ્રદેશરૂપ આધારમાં વ્યવસ્થાપિત હોવાને કારણે એક તો ઘણા જ અધિક ક્ષેત્રનો સ્પર્શ કરી લે છે. બીજું આ માન્યતામાં અવગાહનાનો વિરોધ પણ આવતો નથી. આ રીતે આ અગ્નિજીવોની શ્રેણિ અવધિજ્ઞાનીની છએ દિશાઓમાં અસત્કલ્પનાથી ઘૂમાવવાથી અલોકમાં લોકપ્રમાણ અસંખ્યેય આકાશ ખંડોનો સ્પર્શ કરે છે તેથી આટલું ઉત્કૃષ્ટ ક્ષેત્ર

असंख्येयाकाशखण्डानि स्पृशति, अत एतावदुत्कृष्टक्षेत्रमवधेर्विषयः, इत्युक्तं भवतीत्यादि स्वयमेव वक्ष्यतीति ॥

ननु षड्भेदानां कल्पनं किमर्थं क्रियते, अयुक्तमेतत्, तथाहि-एकैकाकाशप्रदेशावगाहिनां जीवानां घनो यावत एव आकाशप्रदेशान् आक्रामति, प्रतरोऽपि तेषां तावत एव आकाशप्रदेशान् आक्रामति, श्रेणिरपि तेषां तावत एव तान् स्पृशति। संवृत्तप्रसारितनेत्रपट्टाक्रान्ताकाशप्रदेशवदित्येवमसंख्येयाकाशप्रदेशावगाढजीवघन-प्रतर-श्रेण्याक्रान्ताकाशप्रदेशानामपि स्वस्थाने संख्या तुल्यैव भावनीयेत्यतोऽवगाहभेदद्वयवान् घन एवास्तु, प्रतरो वा श्रेणिरेव वाऽस्तु, इति चेत्,

क्षेत्र अवधिज्ञान का विषयभूत निर्दिष्ट किया गया है। इत्यादि सब बातें सूत्रकार आगे स्वयं ही स्पष्ट करेंगे।

शंका—यह जो छह भेदों की कल्पना की गई है-वह अयुक्त है, क्यों कि एक एक आकाश के प्रदेशमें अवगाही जीवों का घन जितने आकाश के प्रदेशों का छूता है उतने ही प्रदेशों को उनका प्रतर भी छूता है और श्रेणि भी उनकी उतने ही प्रदेशों को छूती है। जिस प्रकार संकुचित अवस्थामें रक्खा हुआ नेत्रपट्ट जब पसार दिया जाता है तो वह जैसे संकुचित अवस्थामें जितने आकाशप्रदेशों को घेरे हुए था उतने ही प्रदेशों को वह पसार देने पर भी घेरता है। इस तरह असंख्येय आकाश प्रदेशोंमें अवगाही जीव का घन, प्रतर एवं श्रेणी ये सब अपने २ द्वारा आक्रान्त हुए आकाश प्रदेशों को उतना ही छूएंगे कि जितने आकाश प्रदेशों को एक दूसरेने छूआ है, कारण अपने २ स्थानमें आकाशप्रदेशों

અવધિજ્ઞાનનું વિષયભૂત નિર્દિષ્ટ કરવામાં આવ્યું છે. ઇત્યાદિ બધી વાતો સૂત્રકાર આગળ જાતે જ સ્પષ્ટ કરશે.

શંકા—આ જે છભેદોની કલ્પના કરેલ છે. તે અયોગ્ય છે, કારણ કે એક એક આકાશના પ્રદેશમાં અવગાહી જીવોનો ઘન જેટલા આકાશના પ્રદેશને સ્પર્શે છે એટલાજ પ્રદેશને તેનો પ્રતર પણ સ્પર્શે છે, અને તેમની શ્રેણિ પણ એટલા જ પ્રદેશને સ્પર્શે છે. જે રીતે સંકુચિત અવસ્થામાં રાખેલ નેત્રપટ્ટ જ્યારે વિસ્તારવામાં આવે છે ત્યારે તે જેમ સંકુચિત અવસ્થામાં જેટલા આકાશ પ્રદેશોને ઘેરેલ હતો એટલા જ પ્રદેશને તે વિસ્તારવાથી પણ ઘેરે છે, એજ રીતે અસંખ્યેય આકાશ પ્રદેશોમાં અવગાહી જીવના ઘન પ્રતર અને શ્રેણી એ સૌ પોત પોતાના વડે આક્રાન્ત થયેલ આકાશ પ્રદેશોને એટલો જ સ્પર્શશે કે જેટલો આકાશ પ્રદેશોને એક બીજાએ સ્પર્શ્યો છે કારણ કે પોત પોતાનાં સ્થાનમાં અકાશ પ્રદેશોની સંખ્યા તુલ્ય જ છે

उच्यते—अस्याः षड्विधकल्पनाया भेदोऽवश्यं मन्तव्यः । घनाद्याक्रान्ता ये आकाशप्रदेशास्तेषां संख्या समत्वविषमत्वेन चिन्त्ये, किं तु घनादीनां मध्याद् यः कश्चिद् रचनाविशेषोऽवधिज्ञानिनः सर्वासु दिक्षु भ्राम्यमाणो बहुतरं क्षेत्रं

की संख्या तुल्य ही है। यद्यपि संवृत अवस्थामें रक्खा हुआ नेत्रपट्ट पसारने पर जगह अधिक घेरता है, इस तरह वह पहिले की अपेक्षा अधिक प्रदेशों को घेरने वाला मानना चाहिये, परन्तु संवृत अवस्थामें जितने स्थान को उसने घेर रक्खा है उतने स्थानमें भी असंख्यात प्रदेश हैं और जितने स्थान को बादमें उसने पसारने पर घेरा है उतनेमें भी असंख्यात ही प्रदेश हैं। इस अपेक्षा से यहां स्वस्थानमें प्रदेशों की संख्या तुल्य बतलाई गई है। इस अपेक्षा को लेकर ऐसा कहना है कि या तो अवगाह के दो भेदो वाला घन मानो, प्रतर मानो या श्रेणि मानो। इन छह भेदों की कल्पना करना व्यर्थ है। कारण इनमें कोई भेद नहीं बनता है।

उत्तर—ऐसा कहना ठीक नहीं है। कारण इस छह प्रकार की कल्पनामें भेद तो अवश्य मानना चाहिये। यहां यह विचार नहीं किया गया है कि घनादि द्वारा आक्रान्त जितने आकाश के प्रदेश हैं वे सम हैं या विषम हैं। यहां तो यह प्रकट किया जा रहा है कि इन घन आदिकों में से जो कोई रचनाविशेष अवधिज्ञानी की समस्त दिशाओंमें

જો કે સંવૃત્ત અવસ્થામાં રાખેલ નેત્રપટ્ટ વિસ્તારવાથી જગ્યા વધારે ઘેરે છે, આ રીતે તે પહેલાં કરતાં વધારે પ્રદેશોને ઘેરનાર માનવો જોઈએ, પણ સંવૃત્ત અવસ્થામાં જેટલાં સ્થાનને તેણે ઘેરી રાખેલ છે એટલાં સ્થાનમાં પણ અસંખ્યાત પ્રદેશ છે, અને જેટલા સ્થાનને ત્યાર પછી તેણે વિસ્તાર પામતાં ઘેરેલ છે એટલામાં પણ અસંખ્યાત જ પ્રદેશ છે આ અપેક્ષાએ અહીં સ્વસ્થાનમાં પ્રદેશોની સંખ્યા તુલ્ય બતાવેલ છે આ અપેક્ષાને લઈને એવું કહેવું જોઈએ કે કાંતો અવગાહનાને બે ભેદોવાળો ઘન માનો, પ્રતર માનો કે શ્રેણિ માનો. એ છ ભેદોની કલ્પના કરવી તે વ્યર્થ છે, કારણ કે તેઓમાં કોઈ ભેદ બનતો નથી.

ઉત્તર—એમ કહેવું તે બરાબર નથી. કારણ કે તે છ પ્રકારની કલ્પનામાં ભેદ તો જરૂર માનવો જોઇએ. અહીં આ વિચાર કરવામાં આવ્યો નથી કે ઘનાદિ વડે આક્રાન્ત જેટલા આકાશના પદાર્થ છે તેઓ સમ છે કે વિષમ છે? અહીં તો આ પ્રગટ કરાય છે કે એ ઘન આદિકોમાંથી જે કોઇ રચનાવિશેષ અવધિજ્ઞાનીની સમસ્ત દિશાઓમાં ઘુમતા બહુતર ક્ષેત્રનો સ્પર્શ કરે છે એજ ગ્રાહ્ય

स्पृशति, स एव इह ग्राह्यः। एवं च सति तेषां भेदः स्वीकरणीयः। तथाहि-एकैकप्रदेशावगाढजीवघनो भ्राम्यमाणो यावत् क्षेत्रं स्पृशति, तस्मादसंख्येयप्रदेशावगाढजीवघनोऽसंख्येयगुणं स्पृशति। ततोऽप्येकैकप्रदेशावगाढजीवप्रतरोऽसंख्येयगुणं स्पृशति। तस्मादप्यसंख्येयप्रदेशावगाढजीवप्रतरोऽसंख्येयगुणं स्पृशति। तस्मादप्येकैकप्रदेशावगाढजीवश्रेणिरसंख्येयगुणं स्पृशति। तस्मादप्यसंख्येयाकाशप्रदेशावगाढैकैकाग्निजीवश्रेणिरसंख्येयगुणं क्षेत्रं स्पृशति। तच्चालोकेलोकप्रमाणान्यसंख्येयाकाशखण्डानि स्पृशति। अत एव एतावत् उत्कृष्टक्षेत्रमवधेर्विषय इत्युक्तम्।

घूमता हुआ बहुतर क्षेत्र का स्पर्श करता है वही ग्राह्य माना है। इस प्रकार मानने पर यह बात स्वतः सिद्ध हो जाती है कि इन छह प्रकारोंमें भेद है। जैसे-एक एक आकाश के प्रदेशमें अवगाढ-रहा हुआ जो एक जीव का घन है वह घूमता हुआ जितने क्षेत्र का स्पर्श करता है उसकी अपेक्षा असंख्यात आकाश प्रदेशोंमें अवगाढ हुआ जीव का घन असंख्यात गुणित क्षेत्र का स्पर्श करने वाला होगा। उस की अपेक्षा भी एक एक प्रदेशमें अवगाढ जीव प्रतर असंख्यात गुण क्षेत्र का स्पर्श करेगा, उससे भी असंख्यातगुणित क्षेत्र का स्पर्श असंख्येयप्रदेशावगाढ जीवप्रतर करेगा, इस की अपेक्षा भी जो एकएकप्रदेशावगाढ जीव श्रेणि होगी वह असंख्यात गुणित क्षेत्र को स्पर्श करेगी, और इस की अपेक्षा भी जो असंख्यातआकाश प्रदेशावगाढ एकएकअग्नि जीवश्रेणि होगी वह असंख्यात गुणित क्षेत्र का स्पर्श करेगी। इस तरह एक एक प्रदेशावगाढ जीव घन से लेकर असंख्यात आकाशप्रदेशावगाढ एक-एक

(સ્વીકારવા યોગ્ય) માન્યું છે. આ રીતે માનવાથી એ વાત સ્વતઃ સિદ્ધ થઈ જાય છે કે તે છ પ્રકારોમાં ભેદ છે. જેમ-એક એક આકાશના પ્રદેશમાં અવગાઢ (રહેલ) જે એક જીવનો ઘન છે તે ઘૂમતા ઘૂમતા જેટલાં ક્ષેત્રનો સ્પર્શ કરે છે તેના કરતાં અસંખ્યાત આકાશ પ્રદેશોમાં અવગાઢ (રહેલ) જીવનો ઘન અસંખ્યાતગણાં ક્ષેત્રનો સ્પર્શ કરનાર હશે. તેનાં કરતાં પણ એક એક પ્રદેશમાં અવગાઢ જીવનો પ્રતર અસંખ્યાત ગણા ક્ષેત્રનો સ્પર્શ કરશે, તેનાં કરતાં પણ અસંખ્યાત ગણાં ક્ષેત્રનો સ્પર્શ અસંખ્યેય પ્રદેશાવગાઢ જીવ પ્રતર કરશે, તેનાં કરતાં પણ જે એક-એક-પ્રદેશાવગાઢ જીવશ્રેણિ હશે તે અસખ્યાત ગણાં ક્ષેત્રનો સ્પર્શ કરશે, અને તેનાં કરતાં પણ જે અસંખ્યાતઆકાશપ્રદેશાવગાઢ એક એક અગ્નિજીવ શ્રેણિ હશે તે અસંખ્યાત ગણાં ક્ષેત્રનો સ્પર્શ કરશે. આ રીતે એક-એક-પ્રદેશાવગાઢ જીવ ઘનથી લઈને અસંખ્યાત આકાશપ્રદેશાવગાઢ

ननु रूपिद्रव्याण्येवावधिः पश्यति, क्षेत्रं त्वमूर्तत्वात् कथं तद्विषयः?, इति चेत्, उच्यते-'एतावत् क्षेत्रमवधेर्विषयः' इति यदुच्यते, तदे तत् तस्य सामर्थ्यमात्र-

अग्नि जीवश्रेणितक क्रमशः आकाशप्रदेश असंख्यातगुणित होता जाता है, और यह अलोकमें लोकप्रमाण असंख्येय आकाशखंडों तक बढ जाता है। इस तरह छठवां भेदरूप जो श्रेणि है वह अलोकमें लोक-प्रणाण असंख्यात आकाशखंडों को स्पर्श करने वाली बन जाती है, और इतना ही अवधिज्ञान का उत्कृष्ट विषयक्षेत्र सिद्ध होता है।

शंका—अवधिज्ञान का विषय तो शास्त्रकारोंने रूप, गंध, रस, और स्पर्शवाला रूपी पदार्थ ही बतलाया है फिर आप उसका विषय अरूपी पदार्थ क्यों बतला रहे हैं? क्षेत्र तो अमूर्त है और वह अवधिज्ञान का जब विषयभूत होगा तब 'अवधिज्ञान अरूपी पदार्थ को जाननेवाला है' यह बात माननी पडेगी जो सिद्धान्त की मान्यता से प्रतिकूल पड़ती है। इस प्रतिकूलता के वारण करने के लिये यदि कहा जाय कि अरूपी पदार्थ अवधिज्ञान का विषय नहीं होता है तो फिर क्षेत्र अमूर्त होने से उसका विषय कैसे माना जा सकता है?।

उत्तर—यह शंका विना समझे की गई है, क्यों कि-सूत्रकार यह कहां कहते हैं कि-'इतना आकाशरूप क्षेत्र अवधिज्ञान का विषय है'।

એક એક અગ્નિજીવશ્રેણિ સુધી ક્રમશઃ આકાશપ્રદેશ અસંખ્યાત ગણો થતો જાય છે, અને આ અલોકમાં લોકપ્રમાણ અસંખ્યેય આકાશખંડો સુધી વધી જાય છે. આ રીતે છઠ્ઠા ભેદરૂપ જે શ્રેણિ છે તે અલોકમાં લોકપ્રમાણ અસંખ્યાત આકાશખંડોનો સ્પર્શ કરનારી બની જાય છે, અને એટલું જ અવધિજ્ઞાનનું ઉત્કૃષ્ટ વિષયક્ષેત્ર સિદ્ધ થાય છે.

શંકા—અવધિજ્ઞાનનો વિષય તો શાસ્ત્રકારોએ વર્ણ, ગંધ, રસ, અને સ્પર્શવાળો રૂપી પદાર્થ જ બતાવ્યો છે તો પછી આપ તેનો વિષય અરૂપી પદાર્થ શા માટે બતાવો છો. ક્ષેત્ર તો અમૂર્ત છે અને તે જ્યારે અવધિજ્ઞાનના વિષયભૂત થશે ત્યારે 'અવધિજ્ઞાન અરૂપી પદાર્થને જાણનારૂ છે" આ વાત માનવી પડશે કે જો સિદ્ધાંતની માન્યતાથી પ્રતિકૂળ છે. આ પ્રતિકૂળતાનું નિવારણ કરવા માટે જો એમ કહેવાય કે અરૂપી પદાર્થ અવધિજ્ઞાનનો વિષય હોતો નથી તો પછી ક્ષેત્ર અમૂર્ત હોવાથી તેનો વિષય કેવી રીતે માની શકાય?

ઉત્તર—આ શંકા સમજ્યા વિના કરેલ છે, કારણ કે સૂત્રકાર એવું ક્યાં કહે છે કે "આટલું આકાશરૂપ ક્ષેત્ર અવધિજ્ઞાનનો વિષય છે." તે તો અમૂર્ત

मेवोच्यते। यद्येतावति क्षेत्रे द्रष्टव्यं किमपि द्रव्यं भवेत्, तत् तदाऽवधिज्ञानी पश्येत्, न च तद् द्रष्टव्यं तत्रालोके किमपि संभवति, यतोऽयमवधिस्तीर्थकरादिभिः 'रूपिद्रव्यमात्रविषयको भवती'-त्युक्तम्, तच्च रूपिद्रव्यमलोके नास्तीति।

ननु यद्येवमवधिर्लोकप्रमाणो भूत्वा विशुद्धिवशेन लोकाद् बहिरप्यसौ वर्धते तत्र तद्वृद्धेः किं फलम्? लोकाद् बहिर्द्रष्टव्याभावादिति चेत्,

---

वह तो अमूर्त है, वह उसका विषय भी कैसे हो सकता है? परन्तु 'इतना क्षेत्र अवधिज्ञान का विषय है' ऐसा जो कहा जाता है इससे केवल उसका सामर्थ्य ही दिखलाया जाता है, और इसका तात्पर्य यह निकलता है कि यदि इतने क्षेत्रमें द्रष्टव्य ज्ञातव्य यदि कोई भी द्रव्य हो, तो अवधिज्ञानी उस को देख सकता है, परन्तु अलोकाकाशरूप क्षेत्रमें तो कोई ऐसा द्रव्य द्रष्टव्य है ही नहीं कि जिस को यह देख सके, यदि वहां ऐसा कोई द्रव्य होता तो उस को यह देख लेता। इसीलिये तीर्थंकरादिकोंने-'अवधिज्ञान का विषय रूपी द्रव्य है' ऐसा कहा है। आकाश के सिवाय और कोई द्रव्य अलोकाकाशमें नहीं है।

शंका—इस तरह से अवधिज्ञान, लोकप्रमाण होकर यदि विशुद्धि के वश से लोक के बाहिर भी बढ़ जाता है तो फिर इसकी वहां पर वृद्धि से क्या फल निकल सकता है? वहां पर तो इसकी वृद्धि केवल निष्फल ही मानी जावेगी, कारण-वहां द्रष्टव्य तो कोई द्रव्य है ही नहीं कि जिस को देखकर यह अपनी वृद्धिमें सफलित हो सके?

છે, તે તેનો વિષય પણ કેવી રીતે હોઈ શકે? પણ "આટલું ક્ષેત્ર અવધિજ્ઞાનનો વિષય છે" એવું જે કહેવાય છે તેના વડે ફક્ત તેની શક્તિ જ બતાવવામાં આવે છે, અને તેનું તાત્પર્ય આ નિકળે છે કે જો આટલાં ક્ષેત્રમાં દ્રષ્ટવ્ય-જ્ઞાતવ્ય જો કોઇ પણ દ્રવ્ય હોય તો અવધિજ્ઞાની તેને જોઇ શકે છે. પણ અલોકાકાશરૂપ ક્ષેત્રમાં તો એવું કોઈ દ્રવ્ય દ્રષ્ટવ્ય છે જ નહીં કે જેને તે જોઇ શકે, જો ત્યાં એવું કોઈ દ્રવ્ય હોત તો તેને તે જોઈ લેત. તેથી જ તીર્થંકરાદિકોએ એવું કહ્યું છે કે "અવધિજ્ઞાનનો વિષય, રૂપી દ્રવ્ય છે." આકાશના સિવાય બીજું કોઈ દ્રવ્ય અલોકાકાશમાં નથી.

શંકા—આ રીતે અવધિજ્ઞાન, લોકપ્રમાણ થઈને જો વિશુદ્ધિના વશવડે લોકની બહાર પણ વધી જાય છે તો પછી તેની ત્યાં વૃદ્ધિથી કયું પરિણામ આવી શકે છે? ત્યાં તો તેની વૃદ્ધિ તદ્દન નિષ્ફળજ મનાશે, કારણ કે ત્યાં દ્રષ્ટવ્ય તો કોઈ દ્રવ્ય છે જ નહીં કે જેને જોઈને તે પોતાની વૃદ્ધિમાં સફળ થઇ શકે?

उच्यते—विशुद्धिवशेन लोकाद् बहिर्वर्धमानोऽवधिर्लोकस्थमेवाधिकतरं पश्यति। सूक्ष्मं, सूक्ष्मतरं, सूक्ष्मतमं च यावत् सर्वतः सूक्ष्मं परमाणुमपि परमावधिः पश्यति। एतदेव तद्वृद्धेस्तात्त्विकं फलमिति। अलोके तु तस्य लोकप्रमाणा संख्येयाकाशखण्डेषु द्रव्यदर्शनसामर्थ्यमेवास्तीति ॥ गा० २ ॥

जघन्यमुत्कृष्टं चावधिक्षेत्रमुक्तम्, अथ एतस्मादन्यत् सर्वं मध्यमं क्षेत्रमिति परिशेषादवगम्यत एव। यस्मिन् मध्यमक्षेत्रविशेषे यत् कालमानं भवति, यावति च काले यद् मध्यमं क्षेत्रं भवति, तत्प्रदर्शनाय गाथाचतुष्टयमाह—

उत्तर—इस की वृद्धि का यह फल थोडे ही है कि यह अलोकाकाशमें भी यदि द्रव्य होवे तो उसे देखकर अपनी वृद्धि की सफलता सार्थक करे, और वहां पर जब द्रष्टव्य द्रव्य है नहीं तो उसके अभावमें यह अपनी वृद्धिमें असफलित माना जावे। वृद्धि का तात्पर्य तो केवल इतना ही है कि विशुद्धि के वश से लोक से भी बाहिर वर्द्धित हुआ यह अवधिज्ञान अपने विषयभूत लोकस्थ रूपी द्रव्य को ही अधिकतर रूपमें विशुद्ध देखता है। परमावधि जो अवधिज्ञान होता है वह सूक्ष्म, सूक्ष्मतर, सूक्ष्मतम द्रव्य को देखता हुआ सब से सूक्ष्म परमाणु को भी देखने वाला होता है। यही अवधिज्ञान की वर्द्धमानता का तात्त्विक फल है। अलोकाकाशमें तो लोकप्रमाण असंख्येय आकाशखंडोंमें द्रव्यदर्शन की इसमें सामर्थ्य ही है। वहां कोई भी दूसरा द्रव्य है नहीं अतः वह उस अपेक्षा वहां अनभिव्यक्त है॥ गा. २ ॥

ઉત્તર—તેની વૃદ્ધિનું આ ફળ થોડું જ છે કે તે અલોકાકાશમાં પણ જો દ્રવ્ય હોય તો તેને જોઈને પોતાની વૃદ્ધિની સફળતા સાર્થક કરે, અને ત્યાં જો દ્રષ્ટવ્ય દ્રવ્ય નથી તો તેના અભાવમાં તે પોતાની વૃદ્ધિમાં નિષ્ફળ મનાય! વૃદ્ધિનું તાત્પર્ય તો ફક્ત એટલું જ છે કે વિશુદ્ધિવશથી લોકથી પણ બહાર વધેલ તે અવધિજ્ઞાન પોતાના વિષયભૂત લોકસ્થ રૂપી દ્રવ્યને જ અધિકતરરૂપે વિશુદ્ધ જોવે છે. જે પરમાવધિ અવધિજ્ઞાન હોય છે તે સૂક્ષ્મ, સૂક્ષ્મતર, અને સૂક્ષ્મતમ દ્રવ્યને જોતાં જોતાં બધા કરતાં સૂક્ષ્મ પરમાણુને પણ જોનાર હોય છે. આજ અવધિજ્ઞાનની વૃદ્ધિનુ તાત્ત્વિક ફળ છે. અલોકાકાશમાં તો લોકપ્રમાણ અસંખ્યેય આકાશખંડોમાં દ્રવ્યદર્શનની તેનામાં શક્તિ છે જ. ત્યાં કોઈ પણ બીજું દ્રવ્ય નથી તેથી તે અપેક્ષાએ ત્યાં અનભિવ્યક્ત છે ॥ ગા. ૨ ॥

मूलम्—अंगुलमावलियाणं, भागमसंखेज्ज दोसु संखेज्जा ॥
अंगुलमावलियंतो, आवलिया अंगुलपुहुत्तं ॥ ३ ॥

छाया—अंगुलावलिकयोः, भागमसंख्येयं द्वयोः संख्येयम् ।
अंगुलमावलिकान्तः, आवलिकामंगुलपृथक्त्वम् ॥ ३ ॥

टीका—'अंगुलमावलियाणं' इत्यादि। अंगुलमिह क्षेत्राधिकारात् प्रमाणांगुलं गृह्यते । अवध्यधिकाराद्गुत्सेधांगुलमिति च केचिदाहुः । असंख्येयसमयसंघातात्मकः कालविशेष आवलिका । अंगुलं चावलिका च अंगुलावलिके, तयोरंगुलावलिकयोर्भागमसंख्येयं पश्यति अवधिज्ञानी ।

यहां तक अवधिज्ञान का जघन्य और उत्कृष्ट विषयभूत क्षेत्र बतलाया गया है। इन दोनों के बीच का जो क्षेत्र है वह सब मध्यमक्षेत्र है, इस मध्यम क्षेत्रविशेषमें जो कालका मान होता है, और जितने कालमें वह मध्यमक्षेत्र होता है इस बात को सूत्रकार चार गाथाओं द्वारा स्पष्ट करते हैं—

'अंगुलमावलियाणं' इत्यादि।

क्षेत्र का अधिकार होने से यहां अंगुल-शब्द से प्रमाणांगुल ग्रहण किया है। कोई २ ऐसा भी कहते हैं कि अवधिज्ञान का अधिकार होने से अंगुल-शब्द से उत्सेधांगुल लिया गया है। असंख्यात समय का समुदायरूप कालविशेष है उसका नाम आवलिका है। अवधिज्ञानी अंगुल एवं आवलिका के असंख्यातवें भाग को जानता है, देखता है।

અહીં સુધી અવધિજ્ઞાનનું જઘન્ય અને ઉત્કૃષ્ટ વિષયભૂત ક્ષેત્ર બતાવ્યું છે. તે બન્નેની વચ્ચેનું જે ક્ષેત્ર છે તે બધું મધ્યમ ક્ષેત્ર છે. આ મધ્યમ ક્ષેત્ર વિશેષમાં જે કાળનું માન હોય છે, અને જેટલા કાળમાં તે મધ્યમક્ષેત્ર થાય છે તે વાતને સૂત્રકાર ચાર ગાથાઓ વડે સ્પષ્ટ કરે છે—"अंगुलमावलियाणं" ઇત્યાદિ.

ક્ષેત્રનો અધિકાર હોવાથી અહીં 'अंगुल' શબ્દથી પ્રમાણાંગુલ ગ્રહણ કરેલ છે. કોઇ કોઇ એવું પણ કહે છે કે અવધિજ્ઞાનનો અધિકાર હોવાથી અંગુલ-શબ્દથી उत्सेधांगुल લેવાયું છે. અસંખ્યાત સમયના સમુદાયરૂપ જે કાળવિશેષ છે, તેનું નામ આવલિકા છે. અવધિજ્ઞાની અંગુલ અને આવલિકાના અસંખ્યાતમા ભાગને જાણે છે, દેખે છે. તેનું તાત્પર્ય આ પ્રમાણે છે—જ્યારે

एतदुक्तं भवति—अवधिज्ञानी यदा क्षेत्रतोऽङ्गुलस्यासंख्येयभागमात्रं पश्यति तदा कालतः-आवलिकाया अप्यसंख्येयमेव भागमतीतमनागतं च पश्यतीति। क्षेत्रकालदर्शनं चोपचारेणोच्यते। यतः क्षेत्रतः क्षेत्रव्यवस्थितानि दर्शनयोग्यानि द्रव्याणि पश्यति, कालतस्तु द्रव्यपर्यायान् विवक्षितकालान्तर्वर्तिनः पश्यत्यवधिर्न तु क्षेत्रकालौ, तस्य रूपिद्रव्यालम्बनत्वात्। एवमग्रेऽपि सर्वत्र द्रष्टव्यम्। इह गाथात्रयेऽपि 'जानाति, पश्यति' इति क्रियापदमध्याहार्यम्।

तथा—'दोसु संखिज्जा' इति-द्वयोः=अंगुलावलिकयोः संख्येयं भागं पश्यति। यदाऽवधिज्ञानी-अंगुलस्य संख्येयभागमात्रं पश्यति तदा-आवलिकाया अपि संख्येयमेव भागं पश्यतीत्यर्थः।

इस का तात्पर्य इस प्रकार से है-जब अवधिज्ञानी क्षेत्र की अपेक्षा अंगुल के असंख्येयभागमात्र क्षेत्र को देखता है उस समय वह काल की अपेक्षा आवलिका के असंख्यातवें भागमात्र ही अतीत अनागत काल को भी देखता है। क्षेत्र और काल को अवधि देखता है, यह तो उपचार से कहा जाता है, कारण कि क्षेत्र की अपेक्षा क्षेत्रव्यवस्थित दर्शनयोग्य द्रव्यों को ही अवधिज्ञानी देखता है, और काल की अपेक्षा विवक्षित कालान्तर्वर्ती पुद्गलद्रव्य की पर्यायों को ही देखता है, क्षेत्र और काल को नहीं देखता है, क्यों कि ये अमूर्त्तिक हैं, और अवधिज्ञान का विषय मूर्त्तिक द्रव्य है। "जानाति पश्यति" इन क्रियापदों का अध्याहार आगेकी तीन गाथाओंमें और लगा लेना चाहिये। अवधिज्ञानी जीव जिस समय अंगुल के असंख्येयभागमात्र क्षेत्र को देखता है, उस समय वह आवलिका के संख्येयभाग मात्र काल को भी देखता है।

અવધિજ્ઞાની ક્ષેત્રની અપેક્ષાએ આંગળના અસંખ્યેય ભાગમાત્ર ક્ષેત્રને દેખે છે તે વખતે તે કાળની અપેક્ષાએ આવલિકાના અસંખ્યાતમાં ભાગમાત્ર જ અતીત (ભૂત) અનાગત (ભવિષ્ય) કાળને પણ દેખે છે. ક્ષેત્ર અને કાળને અવધિ 'દેખે છે' એ તો ઉપચારથી કહેવાય છે, કારણ કે ક્ષેત્રની અપેક્ષાએ ક્ષેત્રવ્યવસ્થિત દર્શનયોગ્ય દ્રવ્યોને જ અવધિજ્ઞાની દેખે છે, અને કાળની અપેક્ષાએ વિવક્ષિત કાલાન્તર્વર્તી પુદ્ગલ દ્રવ્યની પર્યાયોને જ જાણે છે, ક્ષેત્ર અને કાળને જાણતા નથી, કારણ કે તેઓ અમૂર્ત્તિક છે. અને અવધિજ્ઞાનનો વિષય મૂર્ત્તિક દ્રવ્ય છે. "जानाति, पश्यति" આ ક્રિયાપદોનું અધ્યાહાર આગળની ત્રણ ગાથાઓમાં વધુમાં લગાડી લેવું જોઈએ. અવધિજ્ઞાની જીવ જે સમયે આંગળના અસંખ્યાતમા ભાગમાત્ર ક્ષેત્રને દેખે છે, તે સમયે તે આવલિકાના સંખ્યેયભાગમાત્ર કાળને પણ દેખે છે.

तथा—'अंगुलमावलिअंतो' इति। यदा क्षेत्रतोऽङ्गुलं पश्यति तदा कालत आवलिकान्तः=आवलिकाया अन्तरे, न तु बहिः, किंचिन्न्यूनामावलिकां पश्यतीत्यर्थः। तथा—'आवलिया अंगुलपुहुत्तं' इति, यदा कालत आवलिकां पश्यति तदा क्षेत्रतोऽङ्गुलपृथक्त्वम्—अङ्गुलपृथक्त्वपरिमितं क्षेत्रं पश्यति। पृथक्त्वं च—शास्त्रपरिभाषया 'द्विप्रभृति नवपर्यन्ता संख्या' इति सर्वत्र द्रष्टव्यम् ॥गा.३॥

तथा क्षेत्र की अपेक्षा जिस समय वह एकअंगुलप्रमाण क्षेत्र को देखता है उस समय वह काल की अपेक्षा किञ्चित् न्यून आवलिकाप्रमाण काल को भी देखता है। जिस समय काल की अपेक्षा एक आवलिका प्रमाण काल को देखता है उस समय वह क्षेत्र की अपेक्षा अंगुलपृथक्त्वपरिमित क्षेत्र को देखता है। 'पृथक्त्व' यह दो से लेकर नौ पर्यन्त की संख्या का नाम शास्त्रीय परिभाषामें बतलाया गया है।

भावार्थ—इस गाथामें क्षेत्र और काल को विषय करने की बात सूत्रकार ने कही है। यद्यपि क्षेत्र और काल, ये दोनों अमूर्तिक हैं, इन्हें अवधिज्ञानी नहीं जान सकता है, कारण अवधिज्ञान का विषय मूर्तिक पदार्थ ही बतलाया गया है। इसलिये जहां ऐसा कहा गया है कि अवधिज्ञानी क्षेत्र और काल को इतने २ रूपमें जानता है वहां ऐसा ही जानना

તથા ક્ષેત્રની અપેક્ષાએ જ્યારે તે એકઅંગુલપ્રમાણ ક્ષેત્રને દેખે છે તે સમયે તે કાળની અપેક્ષાએ કાંઇક ઓછા આવલિકા પ્રમાણ કાળને પણ દેખે છે જે સમયે કાળની અપેક્ષાએ એક આવલિકા પ્રમાણ કાળને દેખે છે તે સમયે તે ક્ષેત્રની અપેક્ષાએ અંગુલપૃથકત્વપરિમિત ક્ષેત્રને દેખે છે. "પૃથક્ત્વ" આ બેથી લઈને નવ સુધીની સંખ્યાનું નામ શાસ્ત્રીયપરિભાષામાં બતાવવામાં આવ્યું છે.

ભાવાર્થ—આ ગાથામાં ક્ષેત્ર અને કાળને વિષય કરવાની વાત સૂત્રકારે કહી છે. જો કે ક્ષેત્ર અને કાળ એ બન્ને અમૂર્તિક છે, તેમને અવધિજ્ઞાની જાણી શકતો નથી, કારણ કે અવધિજ્ઞાનનો વિષય મૂર્તિક પદાર્થ જ બતાવાયો છે. તેથી જ્યાં એવું કહેવાયું છે કે અવધિજ્ઞાની ક્ષેત્ર અને કાળને આટલા રૂપમાં જાણે છે ત્યાં એમ જ જાણવું જોઈએ કે એટલા ક્ષેત્રગત અને કાળગત રૂપી

मूलम्—हत्थम्मि मुहुत्तंतो दिवसंतो गाउयम्मि बोद्धव्वो ॥
जोयणदिवसपुहुत्तं, पक्खंतो पन्नवीसाओ ॥ ४ ॥

छाया—हस्ते मुहूर्तान्तो, दिवसान्तो गव्यूते बोद्धव्यः ।
योजनदिवसपृथक्त्वं, पक्षान्तः पञ्चविंशतिम् ॥ ४ ॥

टीका—'हत्थम्मि मुहुत्तंतो' इत्यादि । हस्ते=क्षेत्रतो हस्तप्रमाणक्षेत्र-

---

चाहिये कि उतने क्षेत्रगत और कालगत रूपी द्रव्य को ही वह जानता है। जिस समय यह अंगुल के असंख्यातवें भागमात्रगत द्रव्य को जानेगा, उस समय यह आवलिका के असंख्यातवें भाग गत द्रव्यपर्यायों को भी जानेगा, इससे अधिक कालगत द्रव्यपर्यायों को नहीं जान सकेगा। तथा-जिस समय यह अंगुल के संख्यातवें भाग गत द्रव्य को जानेगा, उस समय यह आवलिका के संख्यातवें भागगत ही द्रव्यपर्यायों का जानेगा। इसी तरह जब यह क्षेत्र की अपेक्षा अंगुलपरिमित क्षेत्रान्तर्गत वस्तु-द्रव्य-को जानेगा उस समय यह काल की अपेक्षा किञ्चिन्न्यून आवलिकान्तर्गत द्रव्यपर्यायों को भी जानेगा। तथा जब यह काल की अपेक्षा आवलिकाप्रमाण काल का जाननेवाला होगा तो उस समय यह अंगुलपृथक्त्वपरिमित क्षेत्र का जानने वाला होगा ॥ गा. ३ ॥

'हत्थम्मि मुहुत्तंतो' इत्यादि ।

क्षेत्र की अपेक्षा-हस्तप्रमाण क्षेत्र को विषय करने वाला अवधिज्ञान

દ્રવ્યને જ તે જાણે છે જે સમયે તે અંગુલના અસંખ્યાતમાભાગમાત્રગત દ્રવ્યને જાણશે તે સમયે તે આવલિકાના અસંખ્યાતમાભાગગત દ્રવ્યપર્યાયોને પણ જાણશે. તેનાથી વધારે કાલગત દ્રવ્યપર્યાયોને નહીં જાણી શકે. તથા—જે સમયે તે અંગુલના અસંખ્યાતમાભાગગત દ્રવ્યને જાણશે તે સમયે તે આવલિકાના સંખ્યાતમાભાગગત જ દ્રવ્યપર્યાયોને જાણશે. એજ રીતે જ્યારે તે ક્ષેત્રની અપેક્ષાએ અંગુલપરિમિતક્ષેત્રાન્તર્ગત વસ્તુ-દ્રવ્યને જાણશે તે સમયે તે કાળની અપેક્ષાએ થોડા ઓછા આવલિકાન્તર્ગત દ્રવ્યપર્યાયોને પણ જાણશે. તથા જ્યારે તે કાળની અપેક્ષાએ આવલિકાપ્રમાણ કાળનો જ્ઞાતા થશે ત્યારે તે સમયે તે અંગુલપૃથકત્વપરિમિત ક્ષેત્રનો પણ જ્ઞાતા થશે ।।ગા ૩।।

"हत्थम्मि मुहुत्तंतो" ઈત્યાદિ.

ક્ષેત્રની અપેક્ષાએ હસ્તપ્રમાણ ક્ષેત્રને વિષય કરનારૂં અવધિજ્ઞાન કાળની

विषयोऽवधिः कालतो मुहूर्त्तान्तः=किञ्चिन्न्यूनं मुहूर्तं पश्यतीत्यर्थः। अवध्यवधिमतोरभेदोपचारादवधिः पश्यतीत्युच्यते। 'दिवसंतो गाउयम्मि बोद्धव्वो' इति, यदा कालतः दिवसान्तः=किञ्चिन्न्यूनं दिवसं पश्यति तदा-क्षेत्रतो गव्यूते-गव्यूतविषयोऽवधिर्बोद्धव्यः, क्रोशपरिमितक्षेत्रं पश्यतीत्यर्थः। 'जोयणदिवसपुहुत्तं' योजनदिवसपृथक्त्वम्' इति, क्षेत्रतः-योजनक्षेत्रविषयोऽवधिः, कालतो दिवसपृथक्त्वं पश्यति। 'पक्खंतो पन्नवीसाओ' 'पक्षान्तः पञ्चविंशतिम्' इति। यदा कालतः पक्षान्तः=किञ्चिन्न्यूनं पक्षं पश्यति तदा क्षेत्रतः पञ्चविंशतिं=पञ्चविंशतियोजनानि पश्यति॥ गा. ४॥

मूलम्-भरहम्मि अद्धमासो, जंबुद्दीवंमि साहिओ मासो।
वासं च मणुयलोए, वासपुहुत्तं च रुयगम्मि॥५॥

छाया—भरतेऽर्धमासो, जम्बूद्वीपे साधिको मासः।
वर्षं च मनुष्यलोके, वर्षपृथक्त्वं च रुचके॥ ५॥

काल की अपेक्षा किञ्चित् न्यून एक मुहूर्त को देखता है। सूत्रमें जो ऐसा कहा है कि अवधि देखता है वह अवधिज्ञानीमें अभेद के उपचार से ही कहा गया है। जिस समय काल की अपेक्षा अवधिज्ञान कुछ कम एक दिवसरूप काल को जानता है उस समय क्षेत्र की अपेक्षा वह गव्यूतिपरिमित क्षेत्र को-एक कोश प्रमाण क्षेत्रस्थित द्रव्य को जानता है। क्षेत्र की अपेक्षा एक योजन क्षेत्रविषयक अवधि काल की अपेक्षा से दिवसपृथक्त्व को जानता है। तथा काल की अपेक्षा जिस समय अवधिज्ञान किञ्चिन्न्यून एक पक्षको जानता है उस समय वह क्षेत्रकी अपेक्षा पचीसयोजनपरिमित क्षेत्र को जानता है॥गा. ४॥

અપેક્ષાએ કાંઈક ન્યૂન એક મુહૂર્તને દેખે છે. સૂત્રમાં જે એવું કહ્યું છે કે 'અવધિ દેખે છે' તે અવધિજ્ઞાન અને અવધિજ્ઞાનીમાં અભેદના ઉપચારથી જ કહેલ છે. જે સમયે કાળની અપેક્ષાએ અવધિજ્ઞાન થોડા ઓછા એક દિવસરૂપ કાળને જાણે છે તે સમયે ક્ષેત્રની અપેક્ષાએ તે ગવ્યૂતિપરિમિત ક્ષેત્રને-એક કોશ પ્રમાણ ક્ષેત્રસ્થિત દ્રવ્યને-જાણે છે. ક્ષેત્રની અપેક્ષાએ એકયોજનક્ષેત્રવિષયક અવધિ કાળની અપેક્ષાએ દિવસપૃથકત્વને જાણે છે. તથા કાળની અપેક્ષાએ જે સમયે અવધિજ્ઞાન કાંઈક ઓછું એક પક્ષને જાણે છે તે સમયે ક્ષેત્રની અપેક્ષાએ પચીશયોજનપરિમિત ક્ષેત્રને જાણે છે. ॥ગા. ૪॥

टीका—'भरहम्मि अद्धमासो' इत्यादि। क्षेत्रतः—भरते=भरतक्षेत्रविषयेऽवधौ जाते सति कालतोऽर्धमासस्तद्विषयत्वेन बोद्धव्यः। 'जंबुद्दीवम्मि साहिओ मासो' इति, क्षेत्रतो—जम्बूद्वीपविषये तु अवधौ, कालतः साधिको मासः=किञ्चिदधिकमासविषयकोऽवधिर्भवति। 'वासं च मणुयलोए' इति, क्षेत्रतो मनुष्यलोके=अर्धतृतीयद्वीपसमुद्रपरिमाणमनुष्यलोकविषयेऽवधौ जाते सति कालतो वर्षं=संवत्सरपर्यन्तं पश्यतीत्यर्थः। तथा-'वासपुहुत्तं च रुयगम्मि' इति, क्षेत्रतो रुचकाख्यबाह्यद्वीपविषयकेऽवधौ जाते सति कालतः वर्षपृथक्त्वं पश्यतीत्यर्थः ॥ ५ ॥

मूलम्—संखेज्जम्मि उ काले, दीवसमुद्दा वि हुंति संखेज्जा।
कालम्मि असंखेज्जे, दीवसमुद्दा उ भइयव्वा ॥६॥

छाया—संख्येये तु काले, द्वीपसमुद्रा अपि भवन्ति संख्येयाः।
काले असंख्येये, द्वीपसमुद्रास्तु भाज्याः ॥ ६ ॥

'भरहम्मि अद्धमासो' इत्यादि।

क्षेत्र की अपेक्षा-भरतक्षेत्र को विषय करनेवाले अवधिज्ञान के उत्पन्न होने पर काल की अपेक्षा वह अवधिज्ञान अर्धमास को-पन्द्रह दिन को विषय करनेवाला होगा। जो अवधिज्ञान क्षेत्र की अपेक्षा जम्बूद्वीप को विषय करनेवाला उत्पन्न होगा वह अवधिज्ञान काल की अपेक्षा कुछ अधिक एक मास को विषय करनेवाला होगा। इसी तरह जो अवधिज्ञान अढाई द्वीप को विषय करनेवाला उत्पन्न होगा वह काल की अपेक्षा एक वर्ष पर्यन्त के काल का ज्ञाता होगा। तथा क्षेत्र की अपेक्षा जो रुचक नाम के द्वीप को विषय करनेवाला अवधि होगा वह काल की अपेक्षा वर्षपृथक्त्व का जाननेवाला होगा॥ गा० ५॥

"भरहम्मि अद्धमासो" ઈત્યાદિ.

ક્ષેત્રની અપેક્ષાએ ભરત ક્ષેત્રને વિષય કરનારૂં અવધિજ્ઞાન ઉત્પન્ન થતાં કાળની અપેક્ષાએ તે અવધિજ્ઞાન અર્ધા માસને (પંદર દિનને) વિષય કરનારૂં હશે અવધિજ્ઞાન ક્ષેત્રની અપેક્ષાએ જમ્બૂદ્વીપને વિષય કરનારૂં ઉત્પન્ન થશે તે અવધિજ્ઞાન કાળની અપેક્ષાએ એક માસ કરતાં કંઈક વધુ કાળ વિષય કરનારૂં હશે. એજ પ્રમાણે જે અવધિજ્ઞાન અઢાઈદ્વીપને વિષય કરનારૂં ઉત્પન્ન થશે તે કાળની અપેક્ષાએ એક વર્ષ સુધીના કાળનું જ્ઞાતા હશે તથા ક્ષેત્રની અપેક્ષાએ જે રૂચક નામના દ્વીપને વિષય કરનારૂં અવધિ હશે- તે કાળની અપેક્ષાએ વર્ષ પૃથકત્વનું જાણુનાર હશે. ॥ગા. ૫॥

टीका—'संखेज्जम्मि उ काले' इत्यादि। 'संख्येये' इति। संख्यायते, इति संख्येयः, स च संवत्सरमासादिरूपोऽपि भवति, अत इह 'तु' शब्दो विशेषणार्थः कृतः। कथंभूतकाले ? संख्येये=वर्षसहस्रात् परोऽत्र संख्येय-शब्देन गृह्यते, तस्मिन् वर्षसहस्रात् परतोवर्तिनि काले-असंख्येयकालात् प्राक्, कालतः=संख्येयकालविषयकेऽवधौ जाते सति, क्षेत्रतः संख्येया द्वीपसमुद्रास्तस्यावधेर्विषया भवन्ति। अपि-शब्दान्महानेकोऽपि तदेकदेशोऽप्यवधेर्विषयो भवति। अयमर्थः-असंख्ययोजनप्रमाणस्वयंभूरमणद्वीपसमुद्रात्मकं महान्तमेकं पश्यति, तथा स्वयंभूरमणद्वीपसमुद्रसमुत्पन्नतिरश्चोऽवधिस्तदेकदेशं योजनप्रमाणं पश्यतीति।

तथा—'कालम्मि असंखिज्जे' इत्यादि। कालतोऽसंख्येये=पल्योपमादि-

'संखेज्जंमि उ काले' इत्यादि।

इस गाथा में संख्येय-शब्द से एक हजार वर्ष के बाद का और असंख्यात वर्ष से पहिले का काल ग्रहण किया गया है। जो अवधिज्ञान काल की अपेक्षा संख्येय काल को विषय करनेवाला होगा वह अवधिज्ञान क्षेत्र की अपेक्षा संख्यात द्वीप और समुद्रों को विषय करनेवाला होगा। इसी तरह जो अवधिज्ञान काल की अपेक्षा संख्यात काल को विषय करनेवाला होगा, वह अवधिज्ञान असंख्यातयोजनप्रमाण अन्तिम स्वयंभूरमण द्वीप और स्वयंभूरमणसमुद्ररूप एक महान क्षेत्र को भी जाननेवाला होगा। तथा स्वयंभूरमण द्वीप और समुद्र में उत्पन्न हुए तिर्यञ्च का अवधिज्ञान उसके योजनप्रमाण एकदेश को विषय करनेवाला होता है।

तथा काल की अपेक्षा जो अवधिज्ञान पल्योपम आदि असंख्येय

"संखेज्जंमि उ काले" ઈત્યાદિ.

આ ગાથામાં સંખ્યેય શબ્દ વડે એક હજાર વર્ષ પછીનો અને અસંખ્યાત વર્ષ પહેલાનો કાળ ગ્રહણ કરેલ છે. જે અવધિજ્ઞાન કાળની અપેક્ષાએ સંખ્યેય કાળને વિષય કરનારૂં હશે. એ જ રીતે જે અવધિજ્ઞાન કાળની અપેક્ષાએ સંખ્યાત કાળને વિષય કરનારૂં હશે તે અવધિજ્ઞાન અસંખ્યાત યોજન પ્રમાણ અન્તિમ સ્વયંભૂરમણદ્વીપ અને સ્વયંભૂરમણ સમુદ્રરૂપ એક મહાન ક્ષેત્રને પણ જાણનારૂં હશે, તથા સ્વયંભૂરમણ દ્વીપ અને સમુદ્રમાં ઉત્પન્ન થયેલ તિર્યંચનું અવધિજ્ઞાન તેના યોજનપ્રમાણ એક દેશને વિષય કરનારૂં હોય છે.

તથા કાળની અપેક્ષાએ જે અવધિજ્ઞાન પલ્યોપમ આદિ અસંખ્યેય કાળને

लक्षणेऽवधिविषये सति, तस्यैवासंख्येयकालपरिच्छेदकस्यावधेः क्षेत्रतः परिच्छेद्यतया द्वीपसमुद्रास्तु भाज्याः=विकल्पयितव्याः। कस्यचिद्–असंख्येयाः २, कस्यचित् संख्येयाः२, कस्यचिद् एकदेशः ३ इत्यर्थः। अयं भावः—

यदा इह मनुष्यस्य असंख्येयकालविषयोऽवधिरुत्पद्यते, तदानीमसंख्येया द्वीपसमुद्रास्तस्य विषयः।१। यदा तु बहिर्द्वीपे समुद्रे वा वर्तमानस्य कस्यचित् तिरश्चः असंख्येयकालविषयोऽवधिरुत्पद्यते, तर्हि तस्य संख्येया द्वीपसमुद्रास्तस्य विषयो भवति।२। तथा–यस्य मनुष्यस्य असंख्येयकालविषयोऽवधिर्जायते, तदानीं तस्य क्षेत्रतः स्वयंभूरमणस्य द्वीपस्य समुद्रस्य वा एकदेशोऽवधेर्विषयः, तथा मनुष्य-

---

काल को विषय करनेवाला होगा उस अवधिज्ञान के क्षेत्र की अपेक्षा को लेकर द्वीप और समुद्र विषयतया भजनाय होंगे–किसी का वह असंख्यात द्वीप समुद्रों को, किसी का वह संख्यात द्वीप समुद्रों को और किसी का वह उनके एक देश को जाननेवाला होगा। इसका तात्पर्य इस प्रकार है–जिस समय यहां मनुष्य के असंख्यातकालविषयक अवधिज्ञान उत्पन्न होगा उस समय उस अवधिज्ञान के असंख्यात द्वीप और समुद्र विषयभूत होंगे, परन्तु जब बाहिर द्वीप समुद्र में वर्तमान किसी तिर्यञ्च के असंख्यात काल को विषय करनेवाला अवधिज्ञान उत्पन्न होगा तो वह उसका अवधिज्ञान संख्यात द्वीप और समुद्रों को विषय करनेवाला होगा। तथा जिस मनुष्य के असंख्यात काल को विषय करनेवाला अवधिज्ञान उत्पन्न हुआ है उसका वह अवधिज्ञान उस समय क्षेत्र की अपेक्षा अन्तिम स्वयंभूरमण द्वीप के और समुद्र के एक देश को विषय

વિષય કરનારૂં હશે તે અવધિજ્ઞાનના ક્ષેત્રની અપેક્ષાને લઈને દ્વીપ અને સમુદ્ર વિષયતયા ભજનીય હશે–કોઈનું તે અસંખ્યાત દ્વીપ સમુદ્રોને, કોઈનું તે સંખ્યાત દ્વીપ સમુદ્રોને, અને કોઇનું તે તેમના એક દેશને જાણનારૂં હશે. તેનું તાત્પર્ય આ પ્રમાણે છે–જે સમયે અહીં મનુષ્યને અસંખ્યાતકાળવિષયક અવધિજ્ઞાન ઉત્પન્ન થશે તે વખતે તે અવધિજ્ઞાનના અસંખ્યાત દ્વીપ અને સમુદ્ર વિષયભૂત થશે, પણ બહાર દ્વીપ સમુદ્રમાં વર્તમાન કોઈ તિર્યંચને અસંખ્યાતકાળને વિષય કરનારૂં અવધિજ્ઞાન ઉત્પન્ન થશે ત્યારે તેનું તે અવધિજ્ઞાન સંખ્યાત દ્વીપ અને સમુદ્રોને વિષય કરનારૂં હશે. તથા જે માણસને અસંખ્યાત કાળને વિષય કરનારૂં અવધિજ્ઞાન ઉત્પન્ન થયું છે તેનું તે અવધિજ્ઞાન તે સમય ક્ષેત્રની અપેક્ષાએ અન્તિમ સ્વયંભૂરમણ દ્વીપના અને સમુદ્રના એક દેશને વિષય કરનારૂં હશે.

क्षेत्रबहिर्वर्तिनः स्वयंभूरमणसमुद्रोत्पन्नस्य तिरश्चोऽवधेस्तदेकदेशो विषयः। क्षेत्रपरिमाणं तु योजनापेक्षया सर्वत्रापि जम्बूद्वीपादारभ्य असंख्येयद्वीपसमुद्रपरिमाणमवसेयम्। अपि च-स्वयंभूरमणभिन्ना ये मनुष्यक्षेत्रबहिर्वर्त्तिनो द्वीपसमुद्रास्तत्र समुत्पन्नस्य तिरश्चोऽप्यवधिस्तदेकदेशविषयको भवति ॥ गा० ६ ॥

तदेवं क्षेत्रवृद्धौ कालवृद्धिरनियता, कालवृद्धौ तु क्षेत्रवृद्धिर्भवत्येवेति कथितम्, तदानीं द्रव्यक्षेत्रकालभावानां मध्ये यस्य वृद्धौ यस्य वृद्धिर्भवति, यस्य च न भवति, तमर्थं बोधयितुमाह—

मूलम्—काले चउण्ह वुड्ढी, कालो भइयव्वु खेत्तवुड्ढीए॥
वुड्ढीए दव्वपज्जव, भइयव्वा खेत्तकाला उ ॥ ७ ॥

छाया—काले चतुर्णां वृद्धिः, कालो भजनीयः क्षेत्रवृद्धयै।
वृद्धयै द्रव्यपर्याययोः भाज्यौ क्षेत्रकालौ तु ॥ ७ ॥

करनेवाला होगा मनुष्यक्षेत्र से बहिर्वर्ती तिर्यञ्च के कि जो स्वयंभूरमण समुद्र में उत्पन्न हुआ है उसके अवधिज्ञान का विषय स्वयंभूरण समुद्र का एक देश होगा। क्षेत्र का परिमाण तो योजन की अपेक्षा सर्वत्र जंबूद्वीप से लेकर असंख्यातद्वीपसमुद्रपर्यंत जानना चाहिये। और स्वयंभूरमण समुद्र से भिन्न जितने भी मनुष्यक्षेत्रबहिर्वर्ती द्वीप और समुद्र हैं उनमें उत्पन्न हुए तिर्यञ्च का अवधिज्ञान उनके एक देश को विषय करनेवाला होता है ॥ गा० ६ ॥

इस तरह क्षेत्र की वृद्धि में काल की वृद्धि अनियमित है, परन्तु काल की वृद्धि होनेसे क्षेत्रकी वृद्धि नियमित है-वह होती ही है, यह बात यहां प्रकट की गई है। जब यह बात है तो द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव, इन के बीच में जिसकी वृद्धि होने पर जिसकी वृद्धि होती है, और जिसकी

તથા મનુષ્ય ક્ષેત્રની બહારના તીર્યંચ કે જે સ્વયંભૂરમણ સમુદ્રમાં ઉત્પન્ન થયેલ છે, તેમના અવધિજ્ઞાનનો વિષય સ્વયંભૂરમણ સમુદ્રનો એક દેશ હશે. ક્ષેત્રનું પરિમાણ તો યોજનની અપેક્ષાએ સર્વત્ર જંબૂદ્વીપથી લઈને અસંખ્યાત દ્વીપ સમુદ્ર સુધી જાણવું જોઈએ. અને સ્વયંભૂરમણ સમુદ્રથી ભિન્ન જેટલાં મનુષ્ય-ક્ષેત્ર બહારનાં દ્વીપ અને સમુદ્ર છે તેઓમાં ઉત્પન્ન થયેલ તિર્યંચનું અવધિજ્ઞાન તેમના એક દેશને વિષય કરનાર હોય છે. ॥ गा. ६ ॥

આ રીતે ક્ષેત્રની વૃદ્ધિમાં કાળની વૃદ્ધિ અનિયમિત છે પણ કાળની વૃદ્ધિ થતા ક્ષેત્રની વૃદ્ધિ નિયમિત છે-તે હોય છે જ. આ વાત અહીં પ્રગટ કરેલ છે. જો આ વાત છે તો દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર, કાળ અને ભાવ, તેમની વચ્ચે જેની વૃદ્ધિ

टीका—'काले चउण्हवुड्ढी' इत्यादि। काले=अवधिविषये वर्धमाने सति चतुर्णां वृद्धिः=द्रव्यक्षेत्रकालभावानां चतुर्णामपि नियमतो वृद्धिर्भवति। तत्र भावः पर्यायरूपः। कालात्-सूक्ष्म-सूक्ष्मतर-सूक्ष्मतमात् क्षेत्रद्रव्यपर्यायाणां वृद्धिर्भवति। तथाहि-कालस्य समयेऽपि वर्धमाने क्षेत्रस्य प्रभूतप्रदेशा वर्धन्ते, तद्वृद्धौ चावश्यंभाविनी द्रव्यवृद्धिः, प्रत्याकाशप्रदेशं देशद्रव्यप्राचुर्यात्, द्रव्यवृद्धौ च पर्यायवृद्धिर्भवति, प्रतिद्रव्यं पर्यायबाहुल्यादिति।

नहीं होती है इस अर्थ को समझाने के लिये अब सूत्रकार गाथा कहते हैं—

'काले चउण्ह वुड्ढी' इत्यादि।

काल की वृद्धि होने पर द्रव्य, क्षेत्र, काल, और भाव, इन चारों की भी नियमतः वृद्धि होती है। यहां 'भाव' यह शब्द पर्याय का बोधक है। 'काल की वृद्धि होने पर चारों की वृद्धि होती हे' इस का तात्पर्य इस प्रकार से है-जब सूक्ष्म, सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतम रूप से अवधिज्ञान का विषयभूत काल वर्द्धित होता है तब ऐसी स्थिति में उस काल से क्षेत्र की, द्रव्य की एवं द्रव्यपर्यायों की वृद्धि होती है। काल का जब एक भी समय वर्धमान हो जाता है-तब उस समय क्षेत्र के प्रभूत प्रदेश बढ जाते हैं, और प्रभूत प्रदेश ढने पर द्रव्य की भी वृद्धि हो जाती है, कारण आकाशरूप क्षेत्र के प्रत्येक प्रदेश पर द्रव्य की प्रचुरता रही हुई है। जब द्रव्य की प्रचुरतारूप वृद्धि हो जाती है तो इस से स्वतः यह

થતાં જેની વૃદ્ધિ થાય છે અને જેની થતી નથી, એ અર્થને સમજાવવા માટે હવે સૂત્રકાર આ ગાથા કહે છે—

"काले चउण्ह वुड्ढी" ઇત્યાદિ.

કાળની વૃદ્ધિ થવાથી દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર, કાળ અને ભાવ, એ ચારેની પણ નિયમિત વૃદ્ધિ થાય છે, અહીં "ભાવ" આ શબ્દ પર્યાયનો બોધક છે. "કાળની વૃદ્ધિ થવાથી ચારેની વૃદ્ધિ થાય છે" તેનું તાત્પર્ય આ પ્રમાણે છે-જ્યારે સૂક્ષ્મ, સૂક્ષ્મતર અને સૂક્ષ્મતમ રૂપથી અવધિજ્ઞાનનો વિષયભૂત કાળ વર્દ્ધિત થાય છે ત્યારે એવી સ્થિતિમાં તે કાળથી ક્ષેત્રની, દ્રવ્યની, અને દ્રવ્યપર્યાયોની વૃદ્ધિ થાય છે. કાળનો જ્યારે એક પણ સમય વર્ધિત થઈ જાય છે ત્યારે એ સમયે ક્ષેત્રનો પ્રભૂત પ્રદેશ વધી જાય છે, અને પ્રભૂત પ્રદેશ વધતાં જ દ્રવ્યની પણ વૃદ્ધિ થઈ જાય છે, કારણ કે આકાશરૂપ ક્ષેત્રના પ્રત્યેક પ્રદેશ પર દ્રવ્યની પ્રચુરતા રહેલ હોય છે. જ્યારે દ્રવ્યની પ્રચુરતારૂપ વૃદ્ધિ થઇ જાય છે ત્યારે

ननु यद्येवं काले वर्धमाने शेषस्य क्षेत्रादित्रयस्य वृद्धिर्भवतीत्येवमेव वक्तुमुचितं, कथं चतुर्णामपि वृद्धिरित्युक्तम्? इति चेत्, सत्यम्-किन्तु सामान्यवचनमेतत्। यथा 'देवदत्ते भुञ्जाने सर्वोऽपि कुटुम्बो भुङ्क्ते' इत्यादि। अन्यथा हि—तत्रापि 'देवदत्तं विहाय शेषोऽपि कुटुम्बो भुङ्क्ते' इति वक्तव्यं स्यादित्यदोषः।

भी सिद्ध हो जाता है कि पर्यायें भी वर्धित हो जाती हैं, क्यों कि प्रत्येक द्रव्य में पर्यायों की बहुलता रही हुई है।

शंका—काल की वृद्धि होने पर तो इस तरह से द्रव्य, क्षेत्र और भाव की वृद्धि होना साबित होता है, काल की नहीं, फिर ऐसा सूत्रकार क्यों कह रहे हैं कि काल की वृद्धि होने पर द्रव्यादि चार की वृद्धि होती है। यहां तो ऐसा ही कहना चाहिये था कि काल की वृद्धि होने पर द्रव्यादि तीन की ही वृद्धि होती है?

उत्तर—शंका तो ठीक है, परन्तु ऐसा जो सूत्रकारने कहा है वह सामान्यरूप से ही कहा है। जैसे-देवदत्त के खा लेने पर "सब कुटुंब खा रहा है" ऐसा व्यवहार में कह दिया जाता है। नहीं तो ऐसा कहना चाहिये था, कि देवदत्त को छोड़कर शेष कुटुम्ब खा रहा है। कुटुम्ब के अन्तर्गत तो देवदत्त भी आ जाता है परन्तु वह तो उस समय खा नहीं रहा है-वह तो खा चुका है फिर भी 'सब कुटुम्ब खा रहा है' ऐसा व्यवहार में कहा ही जाता है, इसी तरह काल के वर्धमान होने

તેનાથી આપો આપ તે પણ સિદ્ધ થઇ જાય છે કે પર્યાયો પણ વર્ધિત થઈ જાય છે, કારણ કે દરેક દ્રવ્યમાં પર્યાયોની પુષ્કળતા રહેલી હોય છે.

શંકા—કાળની વૃદ્ધિ થવાથી તો આ રીતે દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર અને ભાવની જ વૃદ્ધિ થવાનું સાબિત થાય છે, કાળની નહી. તો પછી સૂત્રકાર એવું કેમ કહે છે કે કાળની વૃદ્ધિ થતાં દ્રવ્યાદિ ચારની વૃદ્ધિ થાય છે? અહીં તો એવું જ કહેવું જોઈએ કે કાળની વૃદ્ધિ થવાથી દ્રવ્યાદિ ત્રણની જ વૃદ્ધિ થાય છે.

ઉત્તર—શંકા તો બરાબર છે પણ સૂત્રકારે એવું જે કહ્યું છે તે સામાન્ય રૂપથી કહ્યું છ. જેમ-દેવદત્તે ખાઈ લીધાથી "આખું કુટુંબ ખાય છે" એવુ વહેવારમાં કહેવાય છે. નહીં તો એવું કહેવું જોઈએ કે દેવદત્ત સિવાયનું આખું કુટુંબ ખાય છે. કુટુંબની અંદર તો દેવદત્ત પણ આવી જાય છે, તે તો એ સમયે ખાતો હોતો નથી. તેણે તો, ખાઈ લીધું છે, છતાં પણ "આખું કુટુંબ ખાય છે" એવું વ્યવહારમાં કહેવાય છે. એજ પ્રમાણે કાળની વૃદ્ધિ થવાથી દ્રવ્યાદિ

'कालो भइयव्वु खित्तवुड्ढीए' इति–क्षेत्रवृद्धौ=क्षेत्रस्य–अवधेर्विषयस्य वृद्धौ=आधिक्ये सति कालो भक्तव्यः=भजनीयः, वर्धते वा, न वा वर्धते इत्यर्थः। क्षेत्रं हि अत्यन्तं सूक्ष्मं, कालस्तु तदपेक्षया परिस्थूलः। प्रभूते क्षेत्रे वृद्धिगते कालो वर्धते, न तु स्वल्पे क्षेत्रे इति भावः। अन्यथा हि यदि क्षेत्रस्य प्रदेशादिवृद्धौ कालस्य नियमेन समयादिवृद्धिः स्यात्, तदाऽङ्गुलमात्रे श्रेणिरूपेऽपि वर्धिते क्षेत्रे कालस्य असंख्येयावसर्पिणीरूपस्य वृद्धिः स्यात्। तथा च वक्ष्यति–'अंगुलसेढीमित्ते, ओसप्पिणीओ असंखेज्जा' इति, ततश्च–'आवलिया अंगुलपुहुत्तं' इति तृतीयगाथोक्तं विरु-

पर द्रव्यादि चारों की वृद्धि होती है यह कथन भी व्यावहारिक है कारण कि तीनकी ही वृद्धि होती है, काल तो स्वयं वर्धमान है ही।

अवधिज्ञान के विषयभूत क्षेत्र की वृद्धि होने पर काल में वृद्धि भजनीय है–होती भी है और नहीं भी होती है। क्षेत्र अत्यन्त सूक्ष्म है और काल उसकी अपेक्षा स्थूल है। जब अवधिज्ञान का प्रभूत क्षेत्र बढ जाता है तब तो उसके काल में भी वर्धमानता आ जाती है, परन्तु जब क्षेत्र अल्प रहता है उस समय काल में वृद्धि नहीं होती है। यदि ऐसा न माना जावे तो जब क्षेत्र में प्रदेश आदि रूप से वृद्धि होगी तो उस समय में काल की भी नियम से समयादिरूप से वृद्धि होगी ही, ऐसी स्थिति में क्षेत्र के अंगुलमात्र–श्रेणिरूप में भी बढने पर असंख्येय अवसर्पिणीरूप से काल में वृद्धि होने लगेगी–"अंगुलसेढीमित्ते ओसप्पिणीओ असंखिज्जा" ऐसा सिद्धान्त वचन है तब तृतीय गाथा में जो ऐसा कहा है कि–"आवलिया अंगुलपुहुत्तं" अर्थात्–जिस

ચારેની વૃદ્ધિ થાય છે. આ કથન પણ વ્યાવહારિક છે, કારણ કે ત્રણની જ વૃદ્ધિ થાય છે; કાળ તો જાતે જ વૃદ્ધિ પામેલો જ છે. અવધિજ્ઞાનના વિષયભૂત ક્ષેત્રની વૃદ્ધિ થવાથી કાળમાં વૃદ્ધિ ભજનીય છે–થાય પણ છે અને નથી પણ થતી. ક્ષેત્ર અત્યન્ત સૂક્ષ્મ છે, અને કાળ તેની અપેક્ષાએ સ્થૂળ છે. જ્યારે અવધિજ્ઞાનનું પ્રભૂત ક્ષેત્ર વધી જાય છે ત્યારે તો એના કાળમાં પણ વૃદ્ધિ આવી જાય છે, પણ જ્યારે ક્ષેત્ર અલ્પ રહે છે તે સમયે કાળમાં વૃદ્ધિ થતી નથી. જો એવું માનવામાં ન આવે તો જ્યારે ક્ષેત્રમાં પ્રદેશ આદિ રૂપે વૃદ્ધિ થશે ત્યારે તે સમયે કાળની પણ નિયમથી સમયાદિરૂપથી વૃદ્ધિ થશે જ, એવી સ્થિતિમાં ક્ષેત્રના અંગુલમાત્ર–શ્રેણિરૂપમાં વધવાથી અસંખ્યેય અવસર્પિણીરૂપથી કાળમાં વૃદ્ધિ થવા લાગશે–" अंगुलसेढीमित्ते ओसप्पिणीओ असंखिज्जा " આવું સિદ્ધાંત વચન છે તો ત્રીજી ગાથામાં જે એવું કહ્યું છે કે–" आवलिया अंगुलपुहुत्तं "અર્થાત્–જે

ध्येत । तस्मात् क्षेत्रवृद्धौ कालवृद्धिर्भजनीयैव । द्रव्यपर्यायौ तु क्षेत्रवृद्धौ नियमाद् वर्धते एवेति स्वयमेव बोध्यमिति ।

'वुड्ढीए दव्व-पज्जवे' इत्यादि । द्रव्यपर्याययोर्वृद्धौ सत्यां क्षेत्रकालौ भक्तव्यौ=भजनीयौ कदाचिद् न वा वर्धेते कदाचिद् वर्धेते इत्यर्थः। द्रव्यपर्यायापेक्षया क्षेत्रकालयोः परिस्थूलत्वात् । यतो द्रव्यं क्षेत्रादपि सूक्ष्मम्, एकस्मिन्नपि नभःप्रदेशेऽनन्तस्कन्धा-

समय काल की अपेक्षा अवधिज्ञानी एक-आवलिकारूप काल को देखता है तब वह अंगुलपृथक्त्वपरिमित क्षेत्र को देखता है" सो वह विरुद्ध पडेगा, क्योंकि अंगुलपृथक्त्वपरिमित क्षेत्र के विषय होने पर असंख्येय अवसर्पिणी रूप में काल वर्द्धित है अतः आवलिकारूप काल को न देखकर असंख्येय अवसर्पिणीरूप काल को ही देखना चाहिये, परन्तु ऐसा नहीं है, कारण यहां प्रभूतरूप में क्षेत्र की वृद्धि नहीं हुई है, अतः क्षेत्र की वृद्धि में काल की वृद्धि भजनीय ही माननी चाहिये । जब क्षेत्र की वृद्धि होती है तब द्रव्य और पर्याय, ये दोनों ही नियमतः वर्धित होते हैं, यह स्वयं समझने जैसी बात है ।

जब द्रव्य और पर्याय में वृद्धि होती है उस समय क्षेत्र और काल में वृद्धि भजनीय होती है-ये कभी बढते भी हैं और कभी नहीं भी बढते हैं, क्यों कि द्रव्य और पर्याय की अपेक्षा क्षेत्र और काल स्थूल हैं । एक ही नभःप्रदेशरूप क्षेत्र में अनंत स्कंधों का अवगाह हो रहा है,

સમય કાળની અપેક્ષાએ અવધિજ્ઞાન એક આવલિકારૂપ કાળને દેખે છે ત્યારે તે અંગુલપૃથકત્વપરિમિત ક્ષેત્રને દેખે છે" તે વિરૂદ્ધ પડશે. કારણ કે અંગુલપૃથકત્વપરિમિતક્ષેત્રનો વિષય હોવાથી અસંખ્ય અવસર્પિણીરૂપમાં કાળ વર્દ્ધિત છે. તેથી આવલિકારૂપ કાળને ન જોતાં અસંખ્યેયઅવસર્પિણીરૂપ કાળને જ જોવો જોઈએ, પણ એવું નથી, કારણ કે અહીં પ્રભૂતરૂપમાં ક્ષેત્રની વૃદ્ધિ થઈ નથી, તેથી ક્ષેત્રની વૃદ્ધિમાં કાળની વૃદ્ધિ ભજનીય જ માનવી જોઈએ. જ્યારે ક્ષેત્રની વૃદ્ધિ થાય છે ત્યારે દ્રવ્ય અને પર્યાય, એ બન્ને જ નિયમથી જ વર્ધિત થાય છે, આ જાતે જ સમજવા જેવી વાત છે.

જ્યારે દ્રવ્ય અને પર્યાયમાં વૃદ્ધિ થાય છે તે સમયે ક્ષેત્ર અને કાળમાં વૃદ્ધિ ભજનીય હોય છે—તે કયારેક વધે પણ છે કયારેક નથી પણ વધતા, કારણ કે દ્રવ્ય અને પર્યાયની અપેક્ષાએ ક્ષેત્ર અને કાળ સ્થૂળ છે એક જ નભ:પ્રદેશરૂપ ક્ષેત્રમાં અનંત સ્કંધોનો અવગાહ થઈ રહ્યો છે તેથી એ

वगाहनात्। द्रव्यादपि सूक्ष्मः पर्यायः, एकस्मिन्नेव द्रव्येऽनन्तपर्यायसंभवात्। तस्माद् द्रव्यपर्यायवृद्धौ क्षेत्रकालौ भजनीयावेव भवतः। तथाहि—अवस्थितयोरपि क्षेत्रकालयोस्तथाविधशुभाध्यवसायतः क्षयोपशमवृद्धौ द्रव्यं वर्धते एव, अधिकद्रव्यदर्शनादिति भावः। द्रव्यवृद्धौ च पर्याया नियमतो वर्धन्ते। प्रतिद्रव्यं संख्येयानामसंख्येयानां वा पर्यायाणामवधिना परिच्छेदसंभवात्। पर्यायवृद्धौ च द्रव्यवृद्धिर्भाज्या=भवति न वा भवतीति भजनीया। एकस्मिन्नपि द्रव्ये पर्यायविषयावधिवृद्धिसंभवेन तत्तत्पर्यायविशिष्टद्रव्यवृद्धिर्भवति। अवस्थितेऽपि हि द्रव्ये तथाविधक्षयोपशमवृद्धौ पर्याया वर्धन्ते, पर्यायवृद्धौ न द्रव्यवृद्धिरिति भावः॥

इससे यह निश्चित है कि क्षेत्र की अपेक्षा द्रव्य सूक्ष्म है, और द्रव्य की अपेक्षा क्षेत्र स्थूल है। इसी तरह द्रव्य की अपेक्षा पर्याय सूक्ष्म है, कारण एक ही द्रव्य में अनंत पर्यायों का होना संभवित है, इसी लिये द्रव्य और पर्याय की वृद्धि में क्षेत्र और काल की वृद्धि भजनीय बतलाई गई है। क्षेत्र और काल, ये अवस्थित हैं तो भी जब तथाविध शुभ अध्यसाय के वश से अवधिज्ञान में अवधिज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम की वृद्धि होती है तब वह अधिक द्रव्य को विषय करनेवाला होता है, इस तरह क्षेत्र और काल में अवस्थितता होने पर भी द्रव्य बढ ही जाता है। जब द्रव्य की वृद्धि होती है तब पर्यायें भी नियमतः बढ जाती हैं, क्यों कि प्रत्येक द्रव्य में संख्येय अथवा असंख्येय पर्यायों का परिच्छेद होना अवधिज्ञान द्वारा होता है। पर्यायों की वृद्धि में द्रव्य की वृद्धि भजनीय है—वह होती भी है और नहीं भी होती है। इस तरह

ચોક્કસ છે કે ક્ષેત્રની અપેક્ષાએ દ્રવ્ય સૂક્ષ્મ છે અને દ્રવ્યની અપેક્ષાએ ક્ષેત્ર સ્થૂળ છે. એજ પ્રમાણે દ્રવ્યની અપેક્ષાએ પર્યાય સૂક્ષ્મ છે, કારણ કે એક જ દ્રવ્યમાં અનેક પર્યાયોનું હોવું સંભવિત છે, તેથી દ્રવ્ય પર્યાયની વૃદ્ધિમાં ક્ષેત્ર અને કાળની વૃદ્ધિ ભજનીય બતાવી છે. ક્ષેત્ર અને કાળ, એ અવસ્થિત છે, તો પણ જ્યારે તે પ્રમાણેના શુભ અધ્યવસાયવશથી અવધિજ્ઞાનમાં અવધિજ્ઞાનાવરણ કર્મના ક્ષયોપશમના વૃદ્ધિ થાય છે ત્યારે તે વધારે દ્રવ્યને વિષય કરનારૂં થાય છે. આ રીતે ક્ષેત્ર અને કાળમાં અવસ્થિતતા હોવા છતાં પણ દ્રવ્ય વધી જ જાય છે. જ્યારે દ્રવ્યની વૃદ્ધિ થાય છે ત્યારે પર્યાયો પણ નિયમથી જ વધી જાય છે, કારણ કે પ્રત્યેક દ્રવ્યમાં સંખ્યેય અથવા અસંખ્યેય પર્યાયોનો પરિચ્છેદ થવાનું અવધિજ્ઞાન દ્વારા થાય છે. પર્યાયોની વૃદ્ધિમાં દ્રવ્યની વૃદ્ધિ ભજનીય છે—તે થાય પણ છે અને નથી પણ થતી. આ પ્રમાણે કાળની વૃદ્ધિમાં દ્રવ્યાદિ-

ननु 'अंगुलमावलियाणं भागमसंखेज्ज' इत्यादिना परस्परसम्बन्धत्वेनावधि विषयतया प्रोक्तयोर्जघन्ययोर्मध्यमयोरुत्कृष्टयोश्च क्षेत्रकालयोरंगुलावलिकाऽसंख्येय-भागादिरूपयोः सम्बन्धिनां परस्परतः प्रदेशानां समयानां च संख्यामाश्रित्य किं तुल्यत्वम् ?, उत हीनाधिकत्वम् ?, उच्यते–हीनाधिकत्वम्, तथाहि–आवलिकाया असंख्येयभागे जघन्यावधिविषये ये असंख्याः समयास्तदपेक्षया अङ्गुलस्या-संख्येयभागे जघन्यावधिविषये एव ये असंख्येया नभःप्रदेशास्ते असंख्येयगुणाः, एवं सर्वत्राप्यवधिविषयात् कालादसंख्येयगुणत्वमवधिविषयस्य क्षेत्रस्यावगन्तव्यम्।गा.७।

से काल की वृद्धि में द्रव्यादिकों में नियमतः वृद्धि का, क्षेत्रवृद्धि होने पर कालवृद्धि में भजनीयता का, तथा द्रव्यपर्यायों में नियमतः वृद्धि का, द्रव्यप्रर्यायों की वृद्धि में क्षेत्र और काल की भजनीयता का, द्रव्यवृद्धि में पर्यायों की नियमतः वृद्धि का और पर्यायवृद्धि में द्रव्यवृद्धि की भज-नीयता का स्पष्टीकरण किया गया है।

शंका—" अंगुलमावलियाणं भागमसंखेज्ज " इत्यादिगाथाद्वारा परस्पर सम्बन्ध होने से अवधिज्ञान के विषयभूत प्रकट किये क्षेत्र और काल कि–जो जघन्य मध्यम, एवं उत्कृष्ट रूप में वर्णित हुए हैं तथा जो अंगुल एवं आवलिका के असंख्येय भाग आदि रूप से प्रकट किये गये हैं ऐसे क्षेत्रके प्रदेशों की, और कालके समयों की संख्या में आपस में तुल्यता है या हीनाधिकता है ?

उत्तर—हीनाधिकता है, वह इस प्रकार से है–जघन्य अवधिज्ञान का विषयभूत जो आवलिका का असंख्यातवां भागरूप काल है उसमें

કોમાં નિયમતઃ વૃદ્ધિનું, ક્ષેત્ર વૃદ્ધિ થતાં કાળવૃદ્ધિમાં ભજનીયતાનું, તથા દ્રવ્ય પર્યાયોમાં નિયમતઃ વૃધ્ધિનું, દ્રવ્ય–પર્યાયોની વૃધ્ધિમાં ક્ષેત્ર અને કાળની ભજની-યતાનું, દ્રવ્યવૃધ્ધિમાં પર્યાયોની નિયમતઃ વૃધ્ધિનું અને પર્યાયવૃધ્ધિમાં દ્રવ્ય વૃધ્ધિની ભજનીયતાનું સ્પષ્ટીકરણ કરાયું છે.

શંકા—" અંગુલમાવલિયાણં ભાગમસંખેજ્જ. " ઈત્યાદિગાથાદ્વારા પરસ્પર સંબંધ હોવાથી અવધિજ્ઞાનના વિષયભૂત પ્રગટ કરેલ ક્ષેત્ર અને કાળના કે–જે જઘન્ય મધ્યમ અને ઉત્કૃષ્ટ રૂપે વર્ણવેલા છે તથા જે અંગુલ અને આવ-લિકાના અસંખ્યેય ભાગ આદિ રૂપે પ્રગટ કરેલ છે એવા ક્ષેત્રના પ્રદેશોની અને કાળના સમયોની સંખ્યામાં અંદરો–અંદર તુલ્યતા છે કે હીનાધિકતા છે ?

ઉત્તર—હીનાધિકતા છે, તે આ પ્રમાણે છે–જઘન્ય અવધિજ્ઞાનના વિષય-ભૂત જે આવલિકાનો અસંખ્યાતમાં ભાગરૂપ કાળ છે તેમાં જેટલા અસંખ્યાત

नन्वेवं क्षेत्रस्य कालादसंख्येयगुणता कथमवसीयते? तत्राह--

मूलम्--सुहुमो य होइ कालो, तत्तो सुहुमयरं हवइ खेत्तं ।
अंगुलसेढीमेत्ते, ओसप्पिणिओ असंखेज्जा ॥ ८ ॥
से त्तं वड्ढमाणयं ओहिनाणं ॥ सू० १२ ॥

छाया--सूक्ष्मश्च भवति कालः, ततः सूक्ष्मतरं भवति क्षेत्रम् ।
अङ्गुलश्रेणिमात्रे, अवसर्पिण्यः असंख्येयाः ॥ ८ ॥
तदेतद् वर्द्धमानकम् अवधिज्ञानम् ॥ सू० १२ ॥

टीका--"सुहुमो य' इत्यादि ।

'सुहुमो य होइ कालो' इति-यथा सूक्ष्मस्तावत् कालो भवति, यथा उत्पलपत्रशतभेदे प्रतिपत्रभेदमसंख्येयाः समया लगन्तीत्यागमे प्रतिपाद्यते । न चाति-

---

जितने असंख्यात समय हैं उनकी अपेक्षा जघन्य अवधिज्ञान के विषयभूत हुए अंगुल के असंख्यातवें भागरूप क्षेत्र में ही जो असंख्यात प्रदेश हैं वे असंख्यात गुणे हैं। इसी तरह से सर्वत्र अवधि के विषयभूत काल की अपेक्षा अवधि के विषयभूत क्षेत्र में असंख्येय गुणे प्रदेश जानने चाहिये ॥ गा० ७ ॥

इस तरह के वर्णन से काल की अपेक्षा क्षेत्र में असंख्येयगुणता कैसे जानी जाती है? सो कहते हैं—'सुहुमो य होइ कालो' इत्यादि।

काल सूक्ष्म होता है, और इसकी अपेक्षा क्षेत्र सूक्ष्म होता है। अंगुलश्रेणिमात्र क्षेत्र में असंख्यात अवसर्पिणीकाल स्थित है। इस गाथा का खुलाशा अर्थ इस प्रकार है-काल इतना सूक्ष्म होता है कि कमल के तरा ऊपर रखे हुए अर्थात् एक ऊपर-एक रखे हुए सौ पत्रों

સમય છે તેમની અપેક્ષાએ જઘન્ય અવધિજ્ઞાનના વિષયભૂત થયેલ અંગુલનાં અસંખ્યાતમાં ભાગ રૂપ ક્ષેત્રમાં જ જે અસંખ્યાત પ્રદેશ છે તેઓ અસંખ્યાત ગણાં છે. આ પ્રમાણે સર્વત્ર અવધિના વિષયભૂત કાળની અપેક્ષાએ અવધિના વિષયભૂત ક્ષેત્રમાં અસંખ્યેય ગણાં પ્રદેશ જાણવા જોઈએ.

આ પ્રમાણેનાં વર્ણનથી કાળની અપેક્ષાએ ક્ષેત્રમાં અસંખ્યેયગુણતા કેવી રીતે જણાય છે? તો કહે છે-"सुहुमो य होइ कालो" ઈત્યાદિ. કાળ સૂક્ષ્મ હોય છે. અને તેનાં કરતાં ક્ષેત્ર સૂક્ષ્મ હોય છે. અંગુલશ્રેણિમાત્ર ક્ષેત્રમાં અસંખ્યાત અવસર્પિણી કાળ સ્થિત છે. આ ગાથાનો ખુલાસાવાર અર્થ આ પ્રમાણે છે-કાળ એટલો સૂક્ષ્મ હોય છે કે કમળના તરા ઉપર રાખેલાં એટલે કે એક

सूक्ष्मत्वेन ते पृथग् विभाव्यन्ते। 'तत्तो सुहुमयरं हवइ खित्तं' इति-तस्मादपि कालात् सूक्ष्मतरं क्षेत्रं भवति। कुतः ?-'अंगुलसेढीमित्ते ओसप्पिणिओ असंखिज्जा' इति, यस्मादङ्गुलश्रेणिमात्रे प्रमाणाङ्गुलैकमात्रे श्रेणिरूपे नभःखण्डे क्षेत्रे प्रतिप्रदेशं समयगणनया तत्प्रदेशपरिमाणमवसर्पिण्योऽसंख्येयास्तीर्थकरैरुक्ताः। अयं भावः-प्रमाणांगुलैकमात्रे एकैकप्रदेशश्रेणिरूपेनभःखण्डे यावन्तोऽसंख्येयासु अवसर्पिणीषु समयास्तावत्प्रमाणाः प्रदेशा वर्तन्ते, तस्मात् कालादसंख्येयगुणं क्षेत्रं, क्षेत्रादपि चानन्तगुणं द्रव्यं, द्रव्यादपि चावधिविषयाः पर्यायाः संख्येयगुणा असंख्येयगुणा वा। तस्माद्-अंगुलश्रेणिमात्रक्षेत्रप्रदेशाग्रमसंख्येयावसर्पिणीसमयराशिपरिमाणमिति सिद्धम्। "से तं" इत्यादि। तदेतद् वर्धमानकमवधिज्ञानं वर्णितम् ॥ गा. ८ ॥ सू० १२।

के भेदन करने पर एक २ पत्र के छेदने में असंख्यात समय लग जाते हैं, ऐसा आगम में प्रतिपादित किया है। समय इतना अतिसूक्ष्म है कि जिससे वे असंख्यात समय भिन्न २ रूप से विभाजित नहीं किये जा सकते हैं। इस काल से क्षेत्र सूक्ष्मतर होता है, क्यों कि एक प्रमाणाङ्गुलमात्र श्रेणिरूप आकाशखंड क्षेत्र में प्रत्येक प्रदेश के उपर समय की गणना से असंख्यात अवसर्पिणियों में जितने समय होते हैं उतने प्रमाण प्रदेश रहते हैं। इस लिये काल से असंख्यात गुणा क्षेत्र होता है। क्षेत्र से भी असंख्यात गुण द्रव्य होता है। तथा द्रव्य की अपेक्षा, अवधिज्ञान की विषयभूत पर्यायें संख्यातगुणी अथवा असंख्यातगुणी होती हैं, अतः अंगुल श्रेणि मात्र क्षेत्र में प्रदेशों का प्रमाण असंख्यात अवसर्पिणियों के समयों की राशिप्रमाण सिद्ध हो जाता है। इस तरह वर्धमान अवधिज्ञान का वर्णन हुआ ॥ गा० ८ ॥ सू० १२ ॥

ઉપર એક રાખેલાં સો પાનને ભેદતાં એક એક પાનના ભેદનમાં અસંખ્યાત સમય લાગે છે, એવું આગમમાં પ્રતિપાદિત કરાયું છે. સમય એટલો બધો સૂક્ષ્મ છે કે જેથી તે અસંખ્યાત સમય ભિન્ન-ભિન્ન-રૂપે વિભાજીત કરી શકાતાં નથી. આ કાળથી ક્ષેત્ર સૂક્ષ્મતર હોય છે, કારણ કે એક પ્રમાણાંગુલમાત્ર શ્રેણિરૂપ નભઃખંડ ક્ષેત્રમાં પ્રત્યેક પ્રદેશની ઉપર સમયની ગણત્રીથી અસંખ્યાત અવસર્પિણીઓમાં જેટલા સમય હોય છે એટલા પ્રમાણ પ્રદેશ રહે છે, તેથી કાળથી અસંખ્યાત ગણું ક્ષેત્ર હોય છે. ક્ષેત્ર કરતાં પણ અસંખ્યાત ગણું દ્રવ્ય હોય છે. તથા દ્રવ્યનાં કરતાં અવધિજ્ઞાનની વિષયભૂત પર્યાયો સંખ્યાત ગણી અથવા અસંખ્યાત ગણી હોય છે, તેથી અંગુલશ્રેણિમાત્ર ક્ષેત્રમાં પ્રદેશોનું પ્રમાણ અસંખ્યાત અવસર્પિણીઓનાં રાશિપ્રમાણ સિદ્ધ થાય છે. આ પ્રમાણે વર્ધમાન અવધિજ્ઞાનનું વર્ણન થયું ॥ ગા. ૮॥ સૂ ૧૨ ॥

अथ हीयमानवधिज्ञानं वर्णयति—

मूलम्—से किं तं हीयमाणयं ओहिनाणं ?। हीयमाणयं ओहिनाणं अप्पसत्थेहिं अज्झवसाणट्ठाणेहिं वट्टमाणस्स वट्टमाणचरित्तस्स संकिलिस्समाणस्स संकिलिस्समाणचरित्तस्स सव्वओ समंता ओही परिहायइ, से तं हीयमाणयं ओहिनाणं४ ॥सू० १३ ॥

छाया—अथ किं तद् हीयमानकमवधिज्ञानं ? हीयमानकमवधिज्ञानम्—अप्रशस्तेष्वध्यवसायस्थानेषु वर्त्तमानस्य वर्त्तमानचारित्रस्य संक्लिश्यमानस्य संक्लिश्यमानचारित्रस्य सर्वतः समन्तादवधिः परिहीयते, तदेतद् हीयमानकमवधिज्ञानम् ॥सू० १३॥

टीका—'से किं तं हीयमाणयं' इत्यादि। शिष्यः पृच्छति—हे भदन्त ! अथ किं तद् हीयमानकमवधिज्ञानम् ?,=पूर्वनिर्दिष्टस्य हीयमानावधिज्ञानस्य किं स्वरूपमित्यर्थः ?। उत्तरमाह—'हीयमाणयं' इत्यादि। हे शिष्य ! हीयमानं=पूर्वावस्थाऽपेक्षयाऽधोऽधोह्रासमुपगच्छदवधिज्ञानं वर्ण्यते। अप्रशस्तेषु अध्यवसायस्थानेषु

अब सूत्रकार हीयमान अवधिज्ञान का वर्णन करते हैं—

'से किं तं हीयमाणयं ओहिनाणं' इत्यादि।

शिष्य पूछता है-हे भदन्त ! पूर्वनिर्दिष्ट हीयमान अवधिज्ञान का क्या स्वरूप है ? उत्तर—हे शिष्य ! यह अवधिज्ञान जब उत्पन्न होता है तब अधिक विषयवाला होता है परन्तु परिणामशुद्धि कम हो जाने से क्रमशः अल्पर विषयक होता जाता है, यही बात टीकाकारने "पूर्वावस्थापेक्षयाऽधोऽधो ह्रासमुपगच्छत्" इस वाक्य द्वारा प्रकट की है। अप्रशस्त अध्यवसाय स्थानों में वर्तमान जीव का अवधिज्ञान सर्वतः-चारों दिशाओं में वर्तमान पदार्थों के जानने रूप क्रिया करने से

હવે હીયમાન અવધિજ્ઞાનનું વર્ણન કરે છે—

"से किं तं हीयमाणयं ओहिनाणं" ઈત્યાદિ.

શિષ્ય પૂછે છે—હે ભદન્ત ! પૂર્વ નિર્દિષ્ટ હીયમાન અવધિજ્ઞાનનું શું સ્વરૂપ છે ? ઉત્તર—હે શિષ્ય ! આ અવધિજ્ઞાન જ્યારે ઉત્પન્ન થાય છે ત્યારે વધારે વિષયવાળું હોય છે પણ પરિણામશુદ્ધિ ઓછી થઈ જવાથી ક્રમશઃ અલ્પ–અલ્પ વિષયક થતું જાય છે. એ જ વાત ટીકાકારે "पूर्वावस्थापेक्षयाऽधोऽधो ह्रासमुपगच्छत्" આ વાકય દ્વારા પ્રગટ કરી છે.

અપ્રશસ્ત અધ્યવસાય સ્થાનોમાં વર્તમાન જીવનું અવધિજ્ઞાન સર્વતઃ–ચારે દિશાઓમાં વર્તમાન પદાર્થોને જાણુવારૂપ ક્રિયા કરવાથી ક્રમશઃ ઘટતું

वर्तमानस्य=अप्रशस्ताध्यवसायवत इत्यर्थः 'सर्वतः समन्तादवधिः परिहीयते' इत्यन्वयः। शुभाध्यवसायवशात् प्राप्तं सदवधिज्ञानमविरतसम्यग्दृष्टेर्हीयमानं भवतीति भावः। तथा-वर्तमानचारित्रस्य=चारित्रसम्पन्नस्येत्यर्थः, इहापि-'सर्वतः समन्तादवधिः परिहीयते' इत्यन्वयः। देशविरतस्य सर्वविरतस्य च हीयमानमवधिज्ञानं भवतीति भावः।

तथा—'संक्लिश्यमानस्य' बध्यमानकर्मसंसर्गादुत्तरोत्तरं संक्लेशमासादयतः, अविरतसम्यग्दृष्टेरित्यर्थः, अप्रशस्तलेश्योपरञ्जितं चित्तम्, अर्थात्-अनेकशुभार्थचिन्तनपरं चित्तं संक्लिष्टमुच्यते। तथा—संक्लिश्यमानचारित्रस्य=अप्रशस्तलेश्योपरञ्जितस्य अनेकाऽशुभार्थचिन्तनपरस्य अविशुद्धचारित्रवतो देशविरतस्य, सर्वविरतस्य चेति शेषः, सर्वतः समन्तादवधिः परिहीयते=परिक्षीयते। तदेतद् हीयमानवधिज्ञानं वर्णितम्। इति चतुर्थो भेदः ४। ॥ सू० १३ ॥

क्रमशः घटता रहता है। शुभ अध्यवसाय के वश से प्राप्त किया गया अवधिज्ञान अविरतसम्यग्दृष्टि के हीयमान होता जाता है। चारित्र-संपन्न अवधिज्ञानी का भी अवधिज्ञान हीयमान होता है। अर्थात् चाहे देशविरति श्रावक हो चाहे सर्वविरतिसंपन्न अनगार हो उसका भी अवधिज्ञान हीयमान होता जाता है। संक्लिश्यमान जीव का-बध्यमान कर्म के संसर्ग से उत्तरोत्तर संक्लेश भाव को प्राप्त हुए जीव का तथा अप्रशस्तलेश्या से उपरंजित हुए अनेक अशुभ अर्थ के चिन्तन करने में तत्पर बने हुए ऐसे अविशुद्धचारित्रसंपन्न देशविरति गृहस्थ का एवं सर्वविरतिसंपन्न साधु का भी अवधिज्ञान सर्वतः समन्तात् हीयमान होता है। इस प्रकार हीयमान अवधिज्ञान का स्वरूप है। भावार्थ इसका केवल इतना ही है कि जिस प्रकार परिमित दाह्य वस्तुओं में लगी हुई अग्नि नया दाह्य पदार्थ न मिलने से क्रमशः घटती जाती है, उसी

રહે છે. શુભ અધ્યવસાયના વશથી પ્રાપ્ત કરાયેલું અવધિજ્ઞાન અવિરત સમ્યગ્દૃષ્ટિનું હીયમાન થતું જાય છે. ચારિત્રસંપન્ન અવધિજ્ઞાનીનું અવધિજ્ઞાન પણ હીયમાન હોય છે. એટલે કે ચાહે દેશવિરતિ શ્રાવક હોય કે ચાહે સર્વવિરતિ સંપન્ન અણગાર હોય, તેનું પણ અવધિજ્ઞાન હીયમાન થતું જાય છે. સંક્લિશ્યમાન જીવનું-બધ્યમાન કર્મના સંસર્ગથી ઉત્તરોત્તર સંકલેશ ભાવને પામેલ જીવનું, તથા અપ્રશસ્તલેશ્યાથી ઉપરંજિત થયેલ અનેક અશુભ અર્થનું ચિન્તન કરવામાં તત્પર બનેલ એવાં અવિશુદ્ધ ચારિત્રસંપન્ન દેશવિરતિ ગૃહસ્થનું અને સર્વવિરતિસંપન્ન સાધુનું પણ અવધિજ્ઞાન સર્વતઃ સમન્તાત્ હીયમાન હોય છે. આ પ્રકારનું હીયમાન અવધિજ્ઞાનનું સ્વરૂપ છે. તેનો ભાવાર્થ ફક્ત એટલો જ છે કે જે રીતે પરિમિત દાહ્યવસ્તુઓમાં લાગેલી અગ્નિ નવો દાહ્ય પદાર્થ ન મળવાથી

मूलम्——से किं तं पडिवाइ ओहिनाणं ?। पडिवाइ ओहिनाणं जहण्णेणं अंगुलस्स असंखिज्जभागं वा संखिज्जभागं वा, बालग्गं वा बालग्गपुहत्तं वा, लिक्खं वा लिक्खपुहत्तं वा, जूयं वा जूयपुहत्तं वा, जवं वा जवपुहत्तं वा, अंगुलं वा अंगुलपुहत्तं वा, पायं वा पायपुहत्तं वा, विहत्थिं वा विहत्थिपुहत्तं वा, रयणिं वा रयणिपुहत्तं वा, कुच्छिं वा कुच्छिपुहत्तं वा, धणुं वा धणुपुहत्तं वा, गाउयं वा गाउयपुहत्तं वा, जोयणं वा जोयणपुहत्तं वा, जोयणसयं वा जोयणसयपुहत्तं वा, जोयणसहस्सं वा जोयणसहस्सपुहत्तं वा, जोयणलक्खं वा जोयणलक्खपुहत्तं वा, जोयणकोडिं वा जोयणकोडिपुहत्तं वा, जोयणकोडाकोडिं वा जोयणकोडाकोडिपुहत्तं वा, जोयणसंखिज्जं वा जोयणसंखिज्जपुहत्तं वा, जोयणअसंखेज्जं वा जोयणअसंखेज्जपुहत्तं वा, उक्कोसेणं लोगं वा पासित्ता णं पडिवइज्जा, से तं पडिवाइ ओहिनाणं॥सू०१४॥

छाया—अथ किं तत्प्रतिपाति-अवधिज्ञानं ? प्रतिपाति-अवधिज्ञानं जघन्येनाऽङ्गुलस्याऽसंख्येयभागं वा, संख्येयभागं वा, बालाग्रं वा, बालाग्रपृथक्त्वं वा, लिक्षां वा, लिक्षापृथक्त्वं वा, यूकां वा, यूकांपृथक्त्वं वा, यवं वा, यवपृथक्त्वं वा, अंगुलं वाऽअंगुलपृथक्त्वं वा, पादं वा, पादपृथक्त्वं वा, वितस्तिं वा वितस्तिपृथक्त्वं वा, रत्निं वा, रत्निपृथक्त्वं वा, कुक्षिं वा, कुक्षिपृथक्त्वं वा, धनुर्वा, धनुःपृथक्त्वं वा, गव्यूतं वा गव्यूतपृथक्त्वं वा, योजनं वा, योजनपृथक्त्वं वा, योजनशतं वा, योजनशतपृथक्त्वं वा, योजनसहस्रं वा, योजनसहस्रपृथक्त्वं वा, योजनलक्षं वा, योजनलक्षपृथक्त्वं वा, योजनकोटिं वा, योजनकोटिपृथक्त्वं वा, योजनकोटीकोटिं वा, योजनकोटीकोटिपृथक्त्वं वा, योजनसंख्येयं वा, योजनसंख्येयपृथक्त्वं वा, योजनाऽसंख्येयं वा, योजनाऽसंख्येयपृथक्त्वं वा, उत्कर्षेण लोकं वा दृष्ट्वा प्रतिपतेत्, तदेतत्प्रतिपात्यवधिज्ञानम् ॥ सू० १४ ॥

प्रकार जो अवधिज्ञान परिणामों की विशुद्धि के अभाव से क्रमशः घटता जाता है वह हीयमान है ॥ सू० १३ ॥

ક્રમશઃ ઘટતી જાય છે એજ પ્રમાણે જે અવધિજ્ઞાન પરિણામોની વિશુદ્ધિના અભાવે ક્રમશઃ ઘટતું જાય છે તે હીયમાન છે ॥ સૂ૦ ૧૩ ॥

टीका—'से किं तं पडिवाइ' इत्यादि। शिष्यः पृच्छति-अथ किं तत् प्रतिपाति अवधिज्ञानम् ? = हे भदन्त ! पूर्वनिर्दिष्टस्य प्रतिपात्यवधिज्ञानस्य किं स्वरूपमित्यर्थः। उत्तरमाह—'पडिवाइ ओहिनाण' इत्यादि। हे शिष्य ! प्रतिपाति=फूत्कारेण दीपकप्रकाश इव नश्वरम्, अवधिज्ञानं वर्णयामि। यत्-अवधिज्ञानं जघन्येन=सर्वस्तोकतया, अंगुलस्यासंख्येयभागमात्रं संख्येयभागमात्रं वा वालाग्रं वा, वालाग्रपृथक्त्वं वा, लिक्षां वा=वालाग्राष्टकप्रमाणां, लिक्षापृथक्त्वं वा, यूकां वा=लिक्षाष्टकमानां, यूकापृथक्त्वं वा, यवं वा=यूकाष्टकमानं वा, यवपृथक्त्वं वा, अंगुलं वा=यवाष्टकमान वा, अंगुलपृथक्त्वं वा, एवमंगुलषट्कमानात् पादादारभ्य यावदु-

'से किं तं पडिवाइ ओहिनाणं' इत्यादि।

शिष्यकाप्रश्न-प्रतिपाति अवधिज्ञान का क्या स्वरूप है ?, उत्तर-प्रतिपाति अवधिज्ञान का स्वरूप इस प्रकार है—

जो अवधिज्ञान जघन्य से अङ्गुल के असंख्यातवें भाग को अथवा संख्यातवें भागको, वालाग्र को अथवा वालाग्रपृथक्त्व को, लिक्षा को अथवा लिक्षापृथक्त्व को, यूका को अथवा यूकापृथक्त्व को, यवमध्य को अथवा यवमध्यपृथक्त्वको, अङ्गुल को अथवा अङ्गुलपृथक्त्व को, पाद को अथवा पादपृथक्त्व को, वितस्ति को अथवा वितस्तिपृथक्त्व को रत्नि को अथवा रत्निपृथक्त्व को, कुक्षि को अथवा कुक्षिपृथक्त्व को, धनुष को अथवा धनुषपृथक्त्व को, गव्यूत को अथवा गव्यूतपृथक्त्व को, योजन को अथवा योजनपृथक्त्व को, योजनशत को अथवा योजनशतपृथक्त्व को, योजनसहस्र को अथवा योजनसहस्रपृथक्त्व को, योजनलक्ष को अथवा योजनलक्षपृथक्त्व को, योजनकोटि को अथवा

"से किं तं पडिवाइ ओहिनाणं" ઇત્યાદિ.

શિષ્યનો પ્રશ્ન—"પ્રતિપાતિ અવધિજ્ઞાનનું શું સ્વરૂપ છે ?"

ઉત્તર—પ્રતિપાતિ અવધિજ્ઞાનનું સ્વરૂપ આ પ્રમાણે છેઃ—જે અવધિજ્ઞાન જઘન્યથી અંગુલના અસંખ્યાતમાં ભાગને અથવા સંખ્યાતમાં ભાગને, બાલાગ્રને અને બાલાગ્રપૃથકત્વને, લિક્ષાને અથવા લિક્ષાપૃથકત્વને, યૂકાને અથવા યૂકાપૃથકત્વને, યવમધ્યને અથવા યવમધ્યપૃથકત્વને, અંગુલને અથવા અંગુલપૃથકત્વને, પાદને અથવા પાદપૃથકત્વને, કુક્ષિને અથવા કુક્ષિપૃથકત્વને, ધનુષને અથવા ધનુષપૃથકત્વને, ગવ્યૂતને અથવા ગવ્યૂતપૃથકત્વને, યોજનને અથવા યોજન પૃથકત્વને, યોજનશતને અથવા યોજનશતપૃથકત્વને, યોજન સહસ્રને અથવા યોજનસહસ્રપૃથકત્વને, યોજનલક્ષને, અથવા યોજનલક્ષપૃથકત્વને યોજનકોટીને અથવા યોજનકોટીપૃથકત્વને, યોજનસંખ્યેયને અથવા યોજનસંખ્યેયપૃથકત્વને.

त्कर्षेण=सर्वप्रचुरतया यावत् लोकं दृष्ट्वा=लोकमुपलभ्य प्रतिपतेत्=न भवेत्, प्रदीप इव नाशमुपगच्छेत्, तस्य तथाविधक्षयोपशमजन्यत्वात्, तदेतत् प्रतिपात्यवधिज्ञानम्। शेषं सुगमम्। नवरं यव इति यवमध्यम्, पाद इति पादमध्यतलप्रदेशः, कुक्षिर्द्विहस्तप्रमाणः, धनुश्चतुर्हस्तप्रमाणं, पृथक्त्वं=सर्वत्रापि द्विप्रभृति आनवभ्य इति सिद्धान्तपरिभाषया द्रष्टव्यम्। इति पञ्चमो भेदः५ ॥ सू०१४ ॥

योजनकोटिपृथक्त्व को, योजनकोटीकोटि को अथवा योजनकोटीकोटि पृथक्त्व को, योजनसंख्येय को, अथवा योजनसंख्येयपृथक्त्व को, योजन-असंख्येयको, अथवा योजन–असंख्येय पृथक्त्व को, उत्कृष्टरूप से समस्त-लोक को देखकर भी तथाविध–क्षयोपशमजन्य होने से प्रदीप की तरह नष्ट हो जाता है, वह प्रतिपाति अवधिज्ञान है।

यहाँ पर यह जानना चाहिये–आठ बालाग्रों की एक लिक्षा होती है, आठ लिक्षाओं की एक यूका, आठ यूकाओं का एक यवमध्य, आठ यवमध्यों का एक अङ्गुल, छ अङ्गुल का एक पाद (पादमध्यतल प्रदेश), दो पादों की एक वितस्ति–(बेंत), दो वितस्तियों की एक रत्नि (हाथ), दो रत्नियों की एक कुक्षि, दो कुक्षियों का एक धनुष, दो हजार धनुषों का एक गव्यूत (कोस) और चार गव्यूतों (कोसों) का एक योजन होता है। योजनसंख्या की उत्तरोत्तर वृद्धि होने से योजनशत, योजनसहस्र, योजनलक्ष, योजनकोटि, योजनकोटीकोटि, योजनसंख्येय और योजन–असंख्येय होता है। दो से लेकर नौ तक को पृथक्त्व कहते हैं यह ज्ञान का पांचवां भेद हुआ ५ ॥ सू० १४ ॥

યોજનઅસંખ્યેયને અથવા યોજનઅસંખ્યેયપૃથકત્વને, ઉત્કૃષ્ટ રૂપથી સમસ્ત લોકને દેખીને પણ તેવા પ્રકારના ક્ષયોપશમજન્ય હોવાથી પ્રદીપની જેમ નષ્ટ થઈ જાય છે તે પ્રતિપાતિ અવધિજ્ઞાન છે.

અહીં એ જાણવું જોઈએ કે આઠ બાલાગ્રોની એક લિક્ષા થાય છે, આઠ લિક્ષાઓની એક યૂકા, આઠ યૂકાઓનો એક યવમધ્ય, આઠ યવમધ્યોનો એક અંગુલ, છ અંગુલનો એક પાદ (પાદનો મધ્યતલ પ્રદેશ), બે પાદની એક વિતસ્તિ (વેંત) બે વિતસ્તિઓની એક રત્નિ (હાથ). બે રત્નિઓની એક કુક્ષિ, બે કુક્ષિઓનું એક ધનુષ, બે હજાર ધનુષોનું એક ગવ્યૂત (કોસ) અને ચાર ગવ્યૂતોનો એક યોજન થાય છે. યોજનસંખ્યાની ઉત્તરોત્તર વૃદ્ધિ થવાથી યોજનશત, યોજનસહસ્ર, યોજનલક્ષ, યોજનકોટી, યોજનકોટીકોટી, યોજનસંખ્યેય અને યોજનઅસંખ્યેય થાય છે. બેથી લઇને નવ સુધીનાને પૃથકત્વ કહે છે. આ જ્ઞાનનો પાંચમો ભેદ થયો. ॥ સૂ. ૧૪ ॥

मूलम्—से किं तं अपडिवाइ ओहिनाणं ? । अपडिवाइ ओहिनाणं जेणं अलोगस्स एगमवि आगासपएसं जाणइ पासइ, तेण परं अपडिवाइ ओहिनाणं, से तं अपडिवाइ ओहिनाणं६ ॥ सू० १५ ॥

छाया—अथ किं तदप्रतिपात्यवधिज्ञानम् ? अप्रतिपात्यवधिज्ञानं येन अलोकस्य एकमपि आकाशप्रदेशं जानाति पश्यति, तेन परम् अप्रतिपाति अवधिज्ञानम्, तदेतत् प्रतिपात्यवधिज्ञानम् ६ ॥ सू० १५ ॥

टीका—से किं तं अपडिवाइ ओहिनाणं ' इत्यादि । शिष्यः पृच्छति—अथ किं तद् अप्रतिपात्यवधिज्ञानम्=हे भदन्त ! पूर्वनिर्दिष्टस्य अप्रतिपात्यवधिज्ञानस्य किं स्वरूपमित्यर्थः ? । उत्तरमाह—' अपडिवाइ ओहिनाणं ' इत्यादि । हे शिष्य ! अप्रतिपात्यवधिज्ञानं वर्ण्यते । येनावधिज्ञानेन, अलोकस्य=अलोकाकाशस्य सम्बन्धिनमेकमप्याकाशप्रदेशम्, अपि शब्दात् बहून् वा—आकाशप्रदेशान् जानाति, पश्यति,

---

'से किं तं अपडिवाइ ओहिनाणं' इत्यादि ।

शिष्य प्रश्न करता है—अप्रतिपाति अवधिज्ञान का क्या स्वरूप है ?

उत्तर—अप्रतिपाति अवधिज्ञान का स्वरूप इस प्रकार है—जिस अवधिज्ञान की सहायता से अवधिज्ञानी आत्मा अलोकाकाशतक के एक भी आकाशप्रदेश को अथवा बहुत से आकाशप्रदेशों को जानता और देखता है वह अप्रतिपाती अवधिज्ञान है । यही बात—" जेणं अलोगस्स एगमवि आगासपएसं जाणइ पासइ० " इत्यादि पंक्तियों द्वारा बतलाई गई है । यद्यपि अलोकाकाश में अवधिज्ञान के द्वारा दृष्टव्य कोई वस्तु नहीं है फिर भी जो ऐसा कहा गया है कि—" अवधिज्ञानी अलोकाकाश के एक अथवा अनेक प्रदेशों को जानता देखता है " वह

" से किं तं अपडिवाइ ओहिनाणं " ઈત્યાદિ.

શિષ્ય પૂછે છે—" અપ્રતિપાતિ અવધિજ્ઞાનનું શું સ્વરૂપ છે ? "

ઉત્તરઃ—અપ્રતિપાતિ અવધિજ્ઞાનનું સ્વરૂપ આ પ્રમાણે છે-જે અવધિજ્ઞાનની સહાયતાથી અવધિજ્ઞાની આત્મા અલોકાકાશ સુધીના એક પણ આકાશ પ્રદેશને અથવા ઘણાં આકાશપ્રદેશોને જાણે અને દેખે છે તે અપ્રતિપાતિ અવધિજ્ઞાન છે. એજ વાત " जेणं अलोगस्स एगमवि आगासपएसं जाणइ पासइ " ઈત્યાદિ. પંક્તિઓ દ્વારા બતાવવામાં આવી છે જો કે અલોકાકાશમાં અવધિજ્ઞાન વડે દ્રષ્ટવ્ય કોઇ વસ્તુ નથી તો પણ જે એવું કહ્યું છે કે " અવધિજ્ઞાની અલોકાકાશના એક અથવા અનેક પ્રદેશોને જાણે દેખે છે " તે માત્ર તેની

तथाविधक्षयोपशमजनितसामर्थ्यसद्भावादिति भावः। एतच्च सामर्थ्यमात्रं वर्ण्यते, अलोके हि अवधिज्ञानस्य द्रष्टव्यं वस्तु किमपि नास्ति, अवधिज्ञानस्य रूपि-द्रव्यमात्रविषयकतयाऽऽकाशप्रदेशोऽपि नास्ति द्रष्टव्यः, अरूपित्वात्, अन्यस्य कस्यापि द्रव्यस्य तत्राभावाच्च। अवधिज्ञानमलोकाकाशस्यैकं प्रदेशं बहून् वा प्रदेशान् व्याप्तुं शक्नोतीति भावः। लोकालोकविभागस्त्वेवमवगन्तव्यः धर्मादीनां द्रव्याणां वृत्तिर्भवति यत्र तत् क्षेत्रं लोकः। तद्विपरीतं हि क्षेत्रमलोकः। ततः परं=तदनन्तरं तदवधिज्ञानमप्रतिपाति भवति, केवलज्ञानमनुत्पाद्य न निवर्तते।

केवलइसकी शक्तिमात्र को बतलाने के लिये कह दिया गया है। अर्थात् इस अप्रतिपाति अवधिज्ञान में इतनी शक्ति है कि वह अलोकाकाशतक के भी एक अथवा अनेक प्रदेशों को जान सकता है, देख सकता है ऐसी शक्ति भी इस में तथाविध क्षयोपशम से जनित सामर्थ्य से ही होती है। अवधिज्ञान सिर्फ रूपी द्रव्य को ही विषय करता है, अरूपी द्रव्य को नहीं। आकाश के प्रदेश भी इस तरह अरूपी ही हैं, वे इसका विषय हो नहीं सकते हैं, तथा और अन्य द्रव्य अलोकाकाश में हैं नहीं। ऐसी स्थिति में सूत्र में जो 'अलोकाकाश के एक प्रदेश को अथवा बहुत प्रदेशों को वह जानता देखता है' ऐसा कहा है वह केवल इसके सामर्थ्य को प्रकट करने के लिये कहा गया जानना चाहिये। धर्मादिक द्रव्यों का जितने आकाश में निवास है वह लोकाकाश, तथा इससे बहिर्भूत आकाश का नाम अलोकाकाश है। अप्रतिपाती अवधि-ज्ञान केवलज्ञान को उत्पन्न किये विना नहीं छूटता है।

શક્તિમાત્રને જ બતાવવા માટે કહેલ છે. એટલે કે આ અપ્રતિપાતિ અવધિજ્ઞાનમાં એટલી શક્તિ છે કે તે અલોકાકાશ સુધીના પણ એક અથવા અનેક પ્રદેશોને જાણી શકે છે એવી શકિત પણ તેમાં તેવા પ્રકારના ક્ષયોપશમથી પેદા થયેલ સામર્થ્યથી જ હોય છે. અવધિજ્ઞાન ફક્ત રૂપી દ્રવ્યને જ વિષય કરે છે. અરૂપી દ્રવ્યને નહીં. આકાશના પદાર્થો પણ આ રીતે અરૂપી જ છે, તે એ તેનો વિષય થઈ શકતા નથી તથા બીજાં કોઈ દ્રવ્ય અલોકાકાશમાં નથી. આવી સ્થિતિમાં સૂત્રમાં જે "અલોકાકાશના એક પ્રદેશ પ્રદેશને અથવા ઘણા પ્રદેશોને તે જાણે દેખે છે" એવું કહેલ છે તે ફક્ત તેના સમાર્થ્યને પ્રગટ કરવાને માટે જ કહેલ છે એમ માનવું જોઈએ. ધર્માદિક દ્રવ્યોનો જેટલાં આકાશમાં નિવાસ છે તે લોકાકાશ તથા તેની બહાર આવેલ આકાશનું નામ અલોકાકાશ છે. અપ્રતિપાતિ અવધિજ્ઞાન કેવળજ્ઞાનને ઉત્પન્ન કર્યા વિના છૂટતું નથી.

अयं भावः—यथा प्राभातिकः प्रकाशः सूर्योदयं विना नैव निवर्तते, यथा वा कुसुमं फलमनुत्पाद्यन निवर्तते तथा यदवधिज्ञानं केवलप्राप्तिं विना न निवर्तते इति। यथा वा नृपः प्रतिपक्षनायके निहते सति तदितरैः प्रतिपक्षैर्न पुनः परिभूयते शेषमपि शत्रुसंघं विनिर्जित्य राज्यश्रियं लभते, तथा तादृशः क्षयोपशमो लभ्यते, यतः—कर्मशत्रुनायकं मोहनीयाख्यं कर्मशत्रुं निहत्यावधिज्ञानी तदितरैः कर्मशत्रुभिर्न पुनः परिभूयते, किं तु शेषमपि कर्मशत्रुं विनिर्जित्यावधिज्ञानी केवलं प्राप्नोत्येवेति। तदेतदप्रतिपात्यवधिज्ञानं वर्णितम् इत्यवधेः षष्ठो भेदः ६ ॥सू० १५॥

इसका भाव यह है कि—जिस प्रकार प्राभातिक प्रकाश सूर्योदय हुए विना नहीं हटता है, अथवा जिस प्रकार फलवाले वृक्ष का फूल, विना नहीं जाता है उसी तरह जो अवधिज्ञान केवलज्ञान की प्राप्ति किये विना फल उत्पन्न किये जीव से नहीं छूटता है वह अप्रतिपाति अवधिज्ञान है। अथवा—जिस प्रकार प्रतिपक्ष शत्रुसेना के नायक के निहत होने पर उसकी सेना के अन्य व्यक्तियों द्वारा विजयशील नरेश पराभव को प्राप्त नहीं होता है, तथा अवशिष्ट शत्रुदलको परास्त कर वह जैसे राज्यश्री का भोक्ता बनता है उसी तरह अवधिज्ञानी आत्मा में कोई ऐसे कर्मोंका—अवधिज्ञानावरणीय कर्मों का—क्षयोपशम होता है कि जिसके प्रभाव से वह कर्म शत्रुओं के नायकस्वरूप मोहनीय कर्म को नाश कर, और उसके अभाव में अन्य कर्मशत्रुओं से अजेय होकर पराभूत नहीं होता है, किन्तु अवशिष्ट शेषकर्मशत्रुओं को भी जीतकर अवश्य ही केवलज्ञान को प्राप्त करता है। यही अप्रतिपाति अवधिज्ञान का स्वरूप है ॥ सू० १५ ॥

તેનો ભાવાર્થ આ છે કે જેમ પ્રાભાતિક પ્રકાશ સૂર્યોદય થયા વિના હટતો નથી, અથવા જેમ ફળવાળાં વૃક્ષના ફૂલ વિના ફળ ઉત્પન્ન કરતાં નથી એ જ પ્રમાણે જે અવધિજ્ઞાન કેવળજ્ઞાનની પ્રાપ્તિ કર્યા વિના જીવથી છૂટતું નથી તે અપ્રતિપાતિ અવધિજ્ઞાન છે. અથવા જેમ સામા પક્ષનો નાયક હણાતાં તેની સેનાની અન્ય વ્યક્તિઓ દ્વારા વિજયશીલ રાજા પરાભવ પામતો નથી, તથા બાકીનાં શત્રુ દળને હરાવીને તે જેમ રાજ્યશ્રીનો ભોક્તા બને છે એજ પ્રમાણે અવધિજ્ઞાની આત્મામાં કોઇ એવાં કર્મોનો અવધિજ્ઞાનાવરણીય કર્મોનો ક્ષયોપશમ હોય છે કે જેના પ્રભાવથી તે કર્મશત્રુઓના નાયક રૂપી મોહનીય કર્મનો નાશ કરીને અને તેના અભાવમાં અન્ય કર્મશત્રુએ વડે અવિજિત થઈ ને પરાભવ પામતો નથી, પણ બાકી રહેલ શેષકર્મશત્રુઓને પણ જીતીને અવશ્ય જ કેવળજ્ઞાન પ્રાપ્ત કરે છે. આજ અપ્રતિપાતિ અવધિજ્ઞાનનું સ્વરૂપ છે. ॥સૂ. ૧૫॥

अवधिज्ञानस्य षडपि भेदा उक्ताः, सम्प्रति द्रव्याद्यपेक्षयाऽवधिज्ञानस्य भेदा उच्यन्ते—

मूलम्—तं समासओ चउव्विहं पण्णत्तं, तं जहा—दव्वओ, खित्तओ, कालओ, भावओ। तत्थ दव्वओ णं ओहिनाणी जहन्नेणं अणंताइं रूविदव्वाइं जाणइ पासइ। उक्कोसेणं सव्वाइं रूविदव्वाइं जाणइ पासइ। खित्तओ णं ओहिनाणी जहन्नेणं अंगुलस्स असंखिज्जइभागं जाणइ पासइ। उक्कोसेणं असंखिज्जाइं अलोगे लोगप्पमाणमित्ताइं खंडाइं जाणइ पासइ। कालओ णं ओहिनाणी जहन्नेणं आवलियाए असंखिज्जइभागं जाणइ पासइ। उक्कोसेणं असंखिज्जाओ उस्सप्पिणीओ, ओसप्पिणीओ अईयमणागयं च कालं जाणइ पासइ। भावओ णं ओहिनाणी जहन्नेणं अणंते भावे जाणइ पासइ। उक्कोसेण वि अणंते भावे जाणइ पासइ। सव्वभावाणमणंतभागं जाणइ पासइ ॥सू०१६॥

छाया—तत् समासतश्चतुर्विधं प्रज्ञप्तम्। तद् यथा—द्रव्यतः, क्षेत्रतः, कालतो भावतः। तत्र द्रव्यतः अवधिज्ञानी जघन्येन अनन्तानि रूपिद्रव्याणि जानाति पश्यति। उत्कर्षेण सर्वाणि रूपिद्रव्याणि जानाति पश्यति। क्षेत्रतोऽवधिज्ञानी जघन्येनांगुलस्याऽसंख्येयभागं जानाति पश्यति, उत्कर्षेणाऽसंख्येयानि अलोके लोकप्रमाणमात्राणि खण्डानि जानाति, पश्यति। कालतोऽवधिज्ञानी जघन्येन आवलिकाया असंख्येयभागं जानाति पश्यति। उत्कर्षेण असंख्येया उत्सर्पिणीरवसर्पिणीः—अतीतमनागतं च कालं जानाति, पश्यति। भावतोऽवधिज्ञानी जघन्येन अनन्तान् भावान् जानाति, पश्यति, उत्कर्षेणापि अनन्तान् भावान् जानाति, पश्यति। सर्वभावानामनन्तभागं जानाति पश्यति ॥ सू० १६ ॥

इस प्रकार अवधिज्ञान के छह भेदों का कथन कर अब द्रव्य आदि की अपेक्षा से उसके भेद बतलाते हैं—'तं समासओ चउव्विहं' इत्यादि।

આ રીતે અવધિજ્ઞાનના છ ભેદોનું કથન કરીને હવે દ્રવ્ય આદિની અપેક્ષાએ તેના ભેદ બતાવે છે—"तं समासओ चउव्विहं" ઇત્યાદિ—

टीका—'तं समासओ' इत्यादि। तद् अवधिज्ञानं, समासतः=संक्षेपेण, चतुर्विधं प्रज्ञप्तम्=प्ररूपितम्। तद् यथा-द्रव्यतः क्षेत्रतः कालतो भावतश्च। तत्र द्रव्यतः खलु अवधिज्ञानी जघन्येन अनन्तानि रूपिद्रव्याणि=तैजसभाषाप्रायोग्यवर्गणान्तरालवर्तीनि द्रव्याणि जानाति=विशेषाकारेण जानाति। पश्यति=सामान्याकारेण बुध्यते। इह-ज्ञानं विशेषग्रहणात्मकम्, दर्शनं-सामान्यग्रहणात्मकमिति भावः। उत्कर्षेण सर्वाणि रूपिद्रव्याणि=बादरसूक्ष्माणि जानाति पश्यति। ज्ञानं दर्शनं च पूर्ववत्।

ननु प्रथमं दर्शनं भवति, ततो ज्ञानमिति क्रमः, तर्हि किमर्थं क्रमं परित्यज्य प्रथमं जानातीत्युक्तम्?,

---

द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा वह अवधिज्ञान संक्षेप से चार प्रकार का कहा गया है। यही बात इस सूत्र द्वारा प्रकट की जा रही है-वह अवधिज्ञान संक्षेप से चार प्रकार का प्ररूपित किया गया है। वे चार प्रकार उसके इस प्रकार हैं-द्रव्य की अपेक्षा, क्षेत्र की अपेक्षा, काल की अपेक्षा और भाव की अपेक्षा से। इनमें द्रव्य की अपेक्षा से अवधिज्ञानसंपन्न आत्मा जघन्य अवस्था में अनंत रूपी द्रव्यों को-तैजस और भाषा के प्रायोग्य वर्गणाओं के अन्तरालवर्ती द्रव्यों को-विशेषरूप आकार से जानता है, और सामान्यरूप आकार से देखता है। वस्तु का विशेषरूप से जानना ज्ञान है और सामान्यरूप से उसका ग्रहण करना दर्शन है। तथा उत्कृष्ट रूप से वह अवधिज्ञानी आत्मा समस्तरूपी द्रव्यों को-बादर सूक्ष्म रूपी पदार्थों को-जानता है और देखता है।

દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર, કાળ અને ભાવની અપેક્ષાએ તે અવધિજ્ઞાન સંક્ષેપથી ચાર પ્રકારનું કહેલ છે. એ જ વાત. આ સૂત્ર દ્વારા પ્રગટ કરવામાં આવે છે-તે અવધિજ્ઞાન સંક્ષેપમાં ચાર પ્રકારનું પ્રરૂપિત કરાયું છે. તે ચાર પ્રકાર આ છે- દ્રવ્યકી અપેક્ષાએ, ક્ષેત્રની અપેક્ષાએ, કાળની અપેક્ષાએ અને ભાવનીં અપેક્ષાએ તેઓમાં દ્રવ્યની અપેક્ષાએ અવધિજ્ઞાનવાળો આત્મા જઘન્ય અવસ્થામાં અનેક રૂપી દ્રવ્યોને, તૈજસભાષાની પ્રાયોગ્ય વર્ગણાઓના અન્તરાલવર્તી દ્રવ્યોને વિશેષ રૂપ આકારથી જાણે છે અને સામાન્ય રૂપ આકારથી દેખે છે. વસ્તુને વિશેષરૂપથી જાણવી તે જ્ઞાન છે અને સામાન્યરૂપથી તેને ગ્રહણ કરવી તે દર્શન છે. તથા ઉત્કૃષ્ટ રૂપે તે અવધિજ્ઞાની આત્મા સમસ્ત રૂપી દ્રવ્યોને-બાદર સૂક્ષ્મ રૂપી પદાર્થોને જાણે છે અને દેખે છે.

उच्यते—इह सर्वा लब्धयः साकारोपयोगवतः प्रजायन्ते, अवधिरपि लब्धिविशेषतया प्रोच्यते, अतोऽसौ प्रथममुत्पद्यमानो ज्ञानरूप एव जायते, न तु दर्शनरूपः, तत्र हि क्रमेणोपयोगः प्रवर्तते, ज्ञानोपयोगानन्तरं दर्शनरूपोऽपि, तस्मात् प्रथमतो ज्ञानमुक्तं, पश्चाद्दर्शनम् ।

अथवा—इहाध्ययने सम्यग्ज्ञानं प्ररूपयितुमुपक्रान्तम् । यतोऽनुयोगमारम्भेऽवश्यं मङ्गलाय ज्ञानपञ्चकरूपो भावनन्दिर्वक्तव्य इति तत्प्ररूपणार्थमिदमध्यय-

शंका—ज्ञान के पहिले दर्शन होता है बाद में ज्ञान, फिर क्या कारण है जो ऐसे क्रम का उल्लंघन करके सूत्रकारने सूत्र में पहिले "जानता है" ऐसा कहा और पश्चात् "देखता है" ऐसा कहा ?।

उत्तर—इस प्रकार के कहने का भाव सूत्रकार का यह है-जितनी भी लब्धियां होती हैं वे सब साकार उपयोग वाले जीव के होती हैं-निराकार उपयोग वाले जीव के नहीं, अतः अवधि भी एक लब्धिविशेष है। इस कारण जब यह प्रथम उत्पन्न होती है तो ज्ञानरूप ही उत्पन्न होती है, दर्शनरूप नहीं। इस में क्रमशः उपयोगों की प्रवृत्ति होती है। ज्ञानोपयोग के बाद दर्शनरूप भी उपयोग होता है, इसलिये सूत्रकारने सूत्र में पहिले ज्ञान कहा और इसके बाद में दर्शन कहा है।

अथवा-इस अध्ययन में सम्यग्ज्ञान की प्ररूपणा ही मुख्यतः करनी है, इसी लिये अनुयोग के प्रारंभ में मंगलनिमित्त ज्ञानपंचकरूप भावनंदी वक्तव्य है, और इसी भावनंदी की प्ररूपणा के लिये इस

શંકાઃ—જ્ઞાનની પહેલા દર્શન હોય છે પછી જ્ઞાન. તો પછી શા માટે એવા ક્રમનું ઉલ્લંઘન કરીને સૂત્રકારે સૂત્રમાં પહેલાં "જાણે છે" એવું કહ્યું અને પછી "દેખે છે" એવું કહ્યું છે?

ઉત્તરઃ—આ પ્રમાણે સૂત્રકારના કથનનો ભાવ આ છે-જેટલી પણ લબ્ધિઓ હોય છે તે બધી સાકાર ઉપયોગવાળા જીવને હોય છે, નિરાકાર ઉપયોગવાળાં જીવને નહીં. કારણ કે અવધિ પણ એક ખાસ લબ્ધિ છે. તે કારણે તે જ્યારે પ્રથમ ઉત્પન્ન થાય છે ત્યારે જ્ઞાનરૂપે જ ઉત્પન્ન થાય છે. દર્શન રૂપે નહી. તેમાં ક્રમશઃ ઉપયોગોની પ્રવૃત્તિ થાય છે. જ્ઞાનોપયોગની પછી દર્શનરૂપ પણ ઉપયોગ હોય છે. તેથી સૂત્રકારે સૂત્રમાં પહેલું જ્ઞાન કહ્યું છે અને પછી દર્શન કહ્યું છે.

અથવા-આ અધ્યયનમાં સમ્યગ્જ્ઞાનની પ્રરૂપણા જ મુખ્યત્વે કરવાની છે. તેની અનુયોગની શરૂઆતમાં મંગળ નિમિત્ત જ્ઞાન પંચકરૂપ ભાવનંદી વક્તવ્ય છે. અને એજ ભાવનંદીની પ્રરૂપણાને માટે આ અધ્યયનનો આરંભ થયો છે.

नमारब्धम्, तस्मात् सम्यग्ज्ञानमिह प्रधानं, न तु मिथ्याज्ञानं, तस्य माङ्गल्यहेतुत्वाभावात्। दर्शनं तु अवधिज्ञानविभङ्गसाधारणमिति तदप्रधानम्, प्रधानानुयायी च लौकिको लोकोत्तरश्च मार्गः। तथा च प्रधानत्वात् प्रथमं ज्ञानमुक्तं पश्चाद् दर्शनमिति।

क्षेत्रतोऽवधिज्ञानी जघन्येन=सर्वतः स्तोकतया, जघन्येनेति भावप्रधानो निर्देशः। अंगुलस्यासंख्येयभागं जानाति पश्यति। उत्कर्षेण=उत्कर्षतः, असंख्येयानि=असंख्यातसंख्यकानि, अलोके=अलोकाकाशे लोकप्रमाणानि=चतुर्दशरज्ज्वात्मकानि खण्डानि जानाति, पश्यति, अलोके यदि असंख्यातानि लोकप्रमाणानि खंडानि-

---

अध्ययन का प्रारंभ हुआ है, अतः इस स्थिति में सम्यग्ज्ञान यहां प्रधान माना गया है, मिथ्याज्ञान नहीं, क्यों कि मिथ्याज्ञान में मंगल के प्रति हेतुरूपता नहीं है। यह हेतुरूपता सम्यग्ज्ञान में ही है, क्यों कि वह मिथ्यादर्शन के साथ नहीं रहता है। दर्शन में ऐसी बात नहीं है-वह जिस प्रकार अवधिज्ञानरूप सम्यग्ज्ञान के साथ रहता है उसी प्रकार मिथ्याज्ञानरूपविभङ्गावधि के भी साथ रहता है, इसलिये दर्शन में प्रधानता नहीं है। जो प्रधान हुआ करता है उसका ही अनुयायी लौकिक और लोकोत्तर मार्ग होता है, इसलिये प्रधान होने से सूत्र में प्रथम ज्ञान कहा गया है और बाद में दर्शन।

क्षेत्र की अपेक्षा अवधिज्ञानी जघन्यरूपसे अंगुल के असंख्यातवें भाग क्षेत्र को जानता है और देखता है। उत्कृष्टरूप से अलोकाकाश में यदि लोकप्रमाण असंख्यात खंड संभवित होजावें तो उन्हें भी अवधिज्ञानी जान सकता है और देख सकता है। लोक का प्रमाण चौदह

તેથી આ સ્થિતિમાં સમ્યગ્ જ્ઞાન અહીં મુખ્ય માનેલ છે, મિથ્યાજ્ઞાન નહીં. કારણ કે મિથ્યાજ્ઞાનમાં મંગળની તરફ હેતુરૂપતા નથી. આ હેતુરૂપતા સમ્યગ્ જ્ઞાનમાં જ છે કારણ કે મિથ્યાદર્શનની સાથે રહેતું નથી. દર્શનમાં એવી વાત નથી. તે જે પ્રમાણે અવધિજ્ઞાન રૂપ સમ્યગ્જ્ઞાનની સાથે રહે છે તે જ પ્રમાણે મિથ્યા-જ્ઞાનરૂપ-વિભંગાવધિની સાથે પણ રહે છે તેથી દર્શન મુખ્ય નથી. જે પ્રધાન (મુખ્ય) હોય છે તેનો જ અનુયાયી લૌકિ અને લોકોત્તર માર્ગ હોય છે. આ રીતે પ્રધાન હોવાથી સૂત્રમાં પ્રથમ જ્ઞાન કહ્યું છે અને પછી દર્શન કહ્યુ છે.

ક્ષેત્રની અપેક્ષાએ અવધિજ્ઞાની જઘન્ય રૂપથી અંગુલના અસખ્યાતમાં ભાગના ક્ષેત્રને જાણે છે અને દેખે છે. ઉત્કૃષ્ટરૂપથી અલોકાકાશમાં જો અસંખ્યાત ખંડ સંભવિત થઈ જાય તો તેમને પણ અવધિજ્ઞાની જાણી શકે છે અને દેખી શકે છે. લોકોનું પ્રમાણ ચૌદ રાજુ બતાવ્યું છે. કાળની અપેક્ષાએ અવધિજ્ઞાની

संभवेयुस्तर्हि तान्यपि अवधिज्ञानी पश्येदित्यर्थः । कालतोऽवधिज्ञानी जघन्येन आवलिकाया असंख्येयभागं जानाति पश्यति। उत्कर्षतोऽसंख्येया उत्सर्पिणीः= असंख्यातोत्सर्पिणीप्रमाणम्, असंख्येया अवसर्पिणी=असंख्यातावसर्पिणीप्रमाणम्, अतीतमनागतं च कालं जानाति पश्यति। च शब्दात् वर्तमानमपि कालं जानाति पश्यतीति।

भावतोऽवधिज्ञानी जघन्येन अनन्तान् भावान्=पर्यायान्, जानाति, पश्यति। इदं च-पर्यायाधारद्रव्यानन्तत्वादुक्तम्, न तु प्रतिद्रव्यापेक्षया, एकद्रव्यमाश्रित्य हि संख्येयानसंख्येयान् वा पर्यायानेव अवधिज्ञानी जानाति पश्यति। उत्कर्षेणाऽपि अनन्तान् भावान् जानाति, पश्यति। तत्र जघन्यापेक्षया उत्कृष्टमनन्तगुणम् भवती-

---

राजू बतलाया गया है। काल की अपेक्षा अवधिज्ञानी जघन्य से आवलिका के असंख्यातवें भाग को जानता और देखता है, और उत्कृष्ट की अपेक्षा से असंख्यात उत्सर्पिणीप्रमाण और असंख्यात अवसर्पिणी-प्रमाण अतीत एवं अनागतकाल को जानता और देखता है। तथा वर्तमानकाल को भी जानता देखता है। भाव की अपेक्षा अवधिज्ञानी जघन्यरूप से अनंतपर्यायों को जानता और देखता है। पर्यायों के आधारभूत द्रव्य अनंत हैं, अतः इस अपेक्षा अनंतपर्यायों को जानने देखने की बात अवधिज्ञानी के भाव की अपेक्षा से कही गई है, एक द्रव्य की अपेक्षा नहीं। एक द्रव्य की अपेक्षा तो अवधिज्ञानी संख्यात अथवा असंख्यात पर्यायों को ही जानता देखता है। उत्कर्ष से अवधिज्ञानी जीव अनंतपर्यायों को जानता और देखता है। जघन्यरूप से भी अवधिज्ञानी अनंतपर्यायों को जानता है और

જઘન્યથી આવલિકાના અસંખ્યાતમાં ભાગને જાણે છે અને દેખે છે. અને ઉત્કૃષ્ટની અપેક્ષાએ અસંખ્યાત ઉત્સર્પિણી પ્રમાણુ અને અસખ્યાત અવસર્પિણી પ્રમાણુ ભૂત અને ભવિષ્યકાળને જાણે છે અને દેખે છે. તથા વર્તમાનકાળને પણ જાણે છે અને દેખે છે. ભાવની અપેક્ષાએ અવધિજ્ઞાની જઘન્યરૂપથી અનેક પર્યાયોને જાણે છે અને દેખે છે. પર્યાયોના આધારભૂત દ્રવ્ય અનંત છે તેથી તે અપેક્ષાએ અનંત પર્યાયોને જાણવા દેખવાની વાત અવધિજ્ઞાનીના ભાવની અપેક્ષાએ કહેલ છે, એક દ્રવ્યની અપેક્ષાએ નહીં. એક દ્રવ્યની અપેક્ષાએ તો અવધિજ્ઞાની સંખ્યાત અથવા અસંખ્યાત પર્યાયોને જ જાણે છે તથા દેખે છે ઉત્કર્ષથી અવધિજ્ઞાની જીવ અનંત પર્યાયોને જાણે અને દેખે છે. જઘન્ય રૂપથી પણ અવધિજ્ઞાની અનંત પર્યાયોને જાણે છે અને ઉત્કૃષ્ટથી પણ અનંત પર્યા-

त्याशयेनावधिज्ञानी जघन्येन सर्वरूपिद्रव्यापेक्षया पर्यायाणामनन्तभागं जानाति पश्यति। तदुच्यते-'सव्वभावाण' इत्यादि। सर्वभावानामनन्तभागं जानाति पश्यति॥

तदेवमवधिज्ञानं द्रव्यादिभेदतोऽप्यभिधाय संप्रति संग्रहगाथामाह—

मूलम्—ओही भवपच्चइओ, गुणपच्चइओ य वण्णिओ दुविहो।
तस्स य बहू विकप्पा, दव्वे खित्ते य काले य॥ १॥

छाया—अवधिर्भवप्रत्ययिको, गुणप्रत्ययिकश्च वर्णितो द्विविधः।
तस्य च बहवो विकल्पाः, द्रव्ये क्षेत्रे च काले च॥ १॥

टीका—'ओही' इत्यादि। भवप्रत्ययिकगुणप्रत्ययिकश्चेति द्विविधोऽवधिर्वर्णितः। तस्य द्विविधस्य च बहवो विकल्पा भवन्ति। द्रव्ये इति-द्रव्यविषयाः, परमाणुस्कन्धादि-

---

उत्कृष्ट से भी अनंतपर्यायों को जानता है। उसमें जघन्य की अपेक्षा उत्कृष्ट अनंतगुणा होता है, अतः अवधिज्ञानी जघन्य से सर्व रूपी द्रव्यों की अपेक्षा पर्यायों के अनंतवें भाग को जानता और देखता है॥

इस प्रकार अवधिज्ञान का द्रव्यादिक भेदों की अपेक्षा वर्णन करके सूत्रकार अब इस विषयमें संग्रह गाथा का कथन करते हैं—'ओही भवपच्चइओ' इत्यादि।

भवप्रत्ययिक और गुणप्रत्ययिक के भेद से अवधिज्ञान दो प्रकार का होता है। इन दोनों प्रकार के अवधिज्ञान के अनेक भेद हैं। द्रव्य, क्षेत्र और काल, तथा "च" शब्द से भाव को विषय करने के कारण अवधिज्ञान के और भी चार भेद होते हैं। परमाणु तथा स्कंध आदि द्रव्य को विषय करनेवाला अवधिज्ञान द्रव्य-अवधिज्ञान है। अंगुल के

ચોને જાણે છે. તેમાં જઘન્યના કરતાં ઉત્કૃષ્ટ અનંતગણું હોય છે, તેથી અવધિજ્ઞાની જઘન્યથી સર્વ રૂપી દ્રવ્યોની અપેક્ષાએ પર્યાયોના અનંતમાં ભાગને જાણે અને દેખે છે.

આ રીતે અવધિજ્ઞાનનું દ્રવ્યાદિક ભેદોની અપેક્ષાએ વર્ણન કરીને સૂત્રકાર હવે આ વિષયમાં સંગ્રહ ગાથાનુ કથન કરે છે—

"ओही भव पच्चइओ" ઇત્યાદિ—

ભાવપ્રત્યયિક અને ગુણપ્રત્યયિકના ભેદથી અવધિજ્ઞાન બે પ્રકારનુ હોય છે. આ બન્ને પ્રકારનાં અવધિજ્ઞાનના અનેક ભેદ છે. દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર અને કાળ તથા "च" શબ્દથી ભાવકો વિષય કરવાના કારણે અવધિજ્ઞાનનાં બીજાં પણ ચાર ભેદ થાય છે. પરમાણુ અને સ્કંધ આદિ દ્રવ્યને વિષય કરનારૂં અવધિજ્ઞાન

द्रव्यभेदात्। क्षेत्रे इति-क्षेत्रविषयाः अंगुलाऽसंख्येयभागादिविशिष्टक्षेत्रभेदात्। काले इति कालविषयाः आवलिकाऽसंख्येयभागाद्युपलक्षितकालभेदात्। च-शब्दात् भावविषयाश्च वर्णाद्यनेकप्रकारत्वाद् भावानामित्यर्थः॥ १॥

एवमवधिज्ञानमुक्तं, संप्रति ये नियतावधिकाः, ये चानियतावधिका भवन्ति तान् प्राह—

मूलम्—नेरइय-देव-तित्थंकरा य, ओहिस्सऽबाहिरा हुंति।
पासंति सव्वओ खलु, सेसा देसेण पासंति॥२॥
से त्तं ओहिनाणपच्चक्खं॥

छाया—नैरयिक-देव-तीर्थंकराश्च, अवधेरबाह्या भवन्ति।
पश्यन्ति सर्वतः खलु, शेषा देशेन पश्यन्ति॥ २॥
तदेतदवधिज्ञानप्रत्यक्षम्॥

असंख्यातवें भाग आदि विशिष्ट क्षेत्र के भेद से क्षेत्र को विषय करनेवाला अवधिज्ञान क्षेत्र-अवधिज्ञान है। आवलिका के असंख्येयभाग आदि से उपलक्षित काल के भेद से काल को विषय करनेवाला अवधिज्ञान काल-अवधिज्ञान है। वर्ण आदि की अपेक्षा अनेक २ प्रकार के होने से भावों को-पर्यायों को-विषय करनेवाला अवधिज्ञान भाव-अवधिज्ञान है॥ १॥

इस प्रकार अवधिज्ञान का वर्णन करके अब सूत्रकार नियत अवधिवालों का और अनियत अवधिवालों का वर्णन करते हैं—'नेरइय-देव-तित्थंकरा' इत्यादि।

દ્રવ્ય અવધિજ્ઞાન છે. અંગુલના અસંખ્યાતમાં ભાગ આદિ વિશિષ્ટ ક્ષેત્રના ભેદથી ક્ષેત્રને વિષય કરનારૂં અવધિજ્ઞાન ક્ષેત્ર અવધિજ્ઞાન છે. આવલિકાના અસંખ્યેય ભાગ આદિથી ઉપલક્ષિત કાળના ભેદથી કાળને વિષય કરનારૂં અવધિજ્ઞાન કાળ અવધિજ્ઞાન છે.

વર્ણ આદિની અપેક્ષાએ અનેક અનેક પ્રકારનું હોવાથી ભાવોને-પર્યાયોને વિષય કરનારૂં અવધિજ્ઞાન ભાવ અવધિજ્ઞાન છે॥ ૧॥

આ પ્રમાણે અવધિજ્ઞાનનું વર્ણન કરીને હવે સૂત્રકાર નિયત અવધિવાળાનું અને અનિયત અવધિવાળાનું વર્ણન કરે છે—"नेरइय देव तित्थकरा" ઇત્યાદિ.

टीका-'नेरइय-देव०' इत्यादि। नैरयिक-देव-तीर्थंकराश्च=नैरयिकाश्च देवाश्च तीर्थंकराश्च, नैरयिकदेवतीर्थंकराः, च-शब्दोऽवधारणे, स च भिन्नक्रमस्तेन नैरयिक-देवतीर्थंकराः, अवधेः=अवधिज्ञानस्य, अबाह्या एव भवन्ति, कदापि बाह्या न भवन्ति, एषामवधिर्नियमेन भवतीत्यर्थः। तेन चावधिना सर्वत एव पश्यन्ति, न तु देशतः। 'तीर्थङ्कराः' इत्यत्र 'तीर्थाच्चैके' इति वचनात् 'ख' प्रत्यये तीर्थ-शब्दात् 'मम्' भवति।

ननु 'पश्यन्ति सर्वतः खलु' इत्येवास्तु 'अवधेरबाह्या भवन्ती'-त्येतत्कथनं त्वनर्थकम्, नियतावधिकत्वरूपार्थस्य सुतरां लाभात्, तथाहि-'दोण्हं भवपच्चइयं,

नारकी जीव, देव और तीर्थंकर ये नियमतः अवधिज्ञान से युक्त होते हैं। इस अवधिज्ञान के द्वारा वे सर्व पदार्थों को सर्वदेश से जानते हैं और देखते हैं, एक देश से नहीं। तात्पर्य इसका केवल यही है कि अवधिज्ञान का विषय कुछ पर्यायोंसहित रूपी द्रव्य है। तीर्थंकर देव और नारकी, ये लोक में रहे हुए पदार्थों को सर्वदेश से जानते और देखते हैं। मनुष्य और तिर्यञ्च कुछ पर्यायोंसहित रूपी पदार्थ को एकदेश से जानते हैं। इनमें मनुष्य सर्वदेश से भी जानते हैं।

शंका—गाथा में जो "पासंति सव्वओ खलु" ऐसा पद रखा है उससे ही "ओहिस्सऽबाहिरा हुंति" इस गाथांश का अर्थ गृहीत हो जाता है। अतः इसकी कोई सार्थकता नहीं है। कारण कि "अवधेः अबाह्याः भवन्ति" इससे जो नैरयिक देव, तथा तीर्थंकरों में नियता-वधिकत्वरूप अर्थ प्रकट किया जाता है उसका लाभ "पश्यन्ति सर्वतः खलु" इस कथन से सर्वथा हो जाता है। अन्यत्र भी ऐसा ही कहा है—

નારકી જીવ, દેવ અને તીર્થંકર એ નિયમતઃ અવધિજ્ઞાનવાળાં હોય છે. આ અવધિજ્ઞાન વડે તેઓ સર્વ પદાર્થોને સર્વદેશથી જાણે છે અને દેખે છે, એક દેશથી નહીં. તેનું તાત્પર્ય ફક્ત એજ છે કે અવધિજ્ઞાનનો વિષય કેટલીક પર્યાયો સહિત રૂપી દ્રવ્ય છે. તીર્થંકર, દેવ અને નારકી એ, લોકમાં રહેલાં પદાર્થોને સર્વદેશથી જાણે છે અને દેખે છે. મનુષ્ય અને તીર્યંચ કેટલીક પર્યાયો સહિત રૂપી પદાર્થને એક દેશથી જાણે છે. તેમનામાં મનુષ્યો સર્વદેશથી પણ જાણે છે.

શંકા—ગાથામાં જે "पश्यन्ति सर्वतः खलु" એવું પદ રાખ્યુ છે તેથી જ "अवधेः अबाह्याः भवन्ति" આ ગાથાંશનો અર્થ ગ્રહણ થઈ જાય છે તેથી તેની કોઈ સાર્થકતા નથી. કારણ કે "अवधेः अबाह्याः भवन्ति" તેનાથી જે નારકી, દેવ તથા તીર્થંકરોમાં નિયતાવધિકત્વ રૂપ અર્થ પ્રગટ કરાયો છે તેનો લાભ

तं जहा-देवाणं नेरइयाणं च' इति। देवानां नारकाणां चावधिर्भवप्रत्ययिको भवति, जन्मत एव तेषामवधिज्ञानं सिद्धम्। तीर्थंकराणामपि परभवसमुत्पन्नावधिज्ञानस्य प्राप्तिर्जन्मतः सुतरां सिद्धा?।

उच्यते—'पश्यन्ति सर्वतः खलु' इत्येतावन्मात्रोक्तौ नैरयिकदेवादीनां नियतावधित्वे सिद्धेऽपि तदवधिज्ञानस्य न सर्वकालावस्थायित्वसिद्धिस्तस्मात् 'नैरयिकदेव-तीर्थंकराः सदाऽवधिज्ञानवन्तो भवन्ती'-ति ज्ञापनार्थम् 'अवधेरबाह्या भवन्ती'-त्युक्तमिति।

देव तथा नारकियों के भवप्रत्ययिक अवधिज्ञान होता है। इस कथन से इस बात की पुष्टि होने में कोई बाधा नहीं आती है कि देव और नारकियों के अवधिज्ञान जन्म से ही होता है। तथा तीर्थंकरों के भी जो जन्मतः अवधिज्ञान होता है वह उन्हें परभव से ही प्राप्त हुआ रहता है अतः परभव में समुत्पन्न अवधिज्ञान की प्राप्ति जन्मतः उनमें सहज ही सिद्ध हो जाती है।

उत्तर—यद्यपि "पश्यन्ति सर्वतः खलु" इतनामात्र कहनेपर नैरयिक तथा देवादिकों में नियतावधिकता सिद्ध हो जाती है फिर भी 'उनमें अवधिज्ञान सर्वकालावस्थायी होता है' इसकी सिद्धि "पश्यन्ति सर्वतः खलु" इतने मात्र कहने से नहीं होती है इसलिये 'नैरयिक, देव तथा तीर्थंकर सदा अवधिज्ञान वाले होते हैं' इस बात को बतलाने के के लिये "अवधेः अबाह्याः भवन्ति" ऐसा कहा है। अतः यह कहना सार्थक ही है, निरर्थक नहीं।

"पश्यन्ति सर्वतः खलु" આ ગાથાંશથી બરાબર થઈ જાય છે. બીજે પણ એવું કહ્યું છે-દેવ તથા નારકીઓને ભવપ્રત્યયિક અવધિજ્ઞાન થાય છે. આ કથનથી આ વાતને સમર્થન મળવામાં કોઈ મુશ્કેલી પડતી નથી. કે દેવ અને નારકીઓને અવધિજ્ઞાન જન્મથી જ હોય છે. તથા તીર્થંકરોને પણ જે જન્મથી જ અવધિજ્ઞાન હોય છે તે તેમને પરભવથી જ મળેલું હોય છે. તેથી પરભવમાં સમુત્પન્ન અવધિજ્ઞાનની પ્રાપ્તિ જન્મથી જ તેઓમાં સ્વાભાવિક રીતે જ સિદ્ધ થાય છે.

ઉત્તર—જો કે "पश्यन्ति सर्वतः खलु" માત્ર એટલું જ કહેવાથી નારકી તથા દેવાદિકોમાં નિયતાવધિકતા સિદ્ધ થઈ જાય છે તો પછી "તેઓમાં અવધિજ્ઞાન સર્વકાળ અવસ્થાયી હોય છે" તેની સિદ્ધિ "पश्यन्ति सर्वतः खलु" એટલું માત્ર કહેવાથી થતી નથી. તેથી નારકી, દેવ તથા તીર્થંકર સદા અવધિજ્ઞાનવાળાં હોય છે એ વાતને બતાવવાને માટે "अवधेः अबाह्याः भवन्ति" એવું કહ્યું છે. તેથી આ ગાથાંશ સાર્થક જ છે નિરર્થક નથી.

यद्येवं, तर्हि तीर्थंकराणामवधेः सर्वकालावस्थायित्वं विरुध्यते, इति चेन्न, छद्मस्थकालस्यैव विवक्षितत्वात्।

यद्वा—तदेवमवधिज्ञानमुक्तम्, संप्रति ये बाह्यावधिकाः, ये चाबाह्यावधिका भवन्ति, तान् प्रदर्शयति–' नेरइय ' इत्यादि। नैरयिक देवतीर्थंकराः, अवधेः=अवधिज्ञानस्य, अबाह्याः भवन्ति, बाह्या न भवन्तीत्यर्थः। अवध्युपलब्ध क्षेत्रस्यान्तराले वर्तन्ते इति भावः। तथा-सर्वतः=सर्वासु दिक्षु विदिक्षु च, खलु-शब्दोऽवधारणार्थकः, सर्वास्वेव दिक्षु विदिक्षु पश्यन्ति।

शंका—'तीर्थंकरों में अवधिज्ञान सर्वकाल रहता है' यह कथन आप का विरुद्ध पड़ता है, क्यों कि केवलज्ञान होने पर उनसे अवधिज्ञान छूट जाता है।

उत्तर—'तीर्थंकरों के अवधिज्ञान सर्वकाल अवस्थायी रहता है' यह कथन उनमें छद्मस्थकाल की अपेक्षा से ही जानना चाहिये, और उसी काल की यहां विवक्षा है।

इस गाथाका अर्थ अवतरणासहित दूसरे प्रकारसे किया जाता है–

अथवा-इस तरह अवधिज्ञान कह दिया गया है, अब जो बाह्यावधिक होते हैं तथा जो बाह्यावधिक नहीं होते हैं उन्हें बतलाया जाता है-'नेरइयदेव०' इत्यादि।

नैरयिक, देव, तथा तीर्थंकर ये अवधिज्ञान के अबाह्य होते हैं अर्थात् उससे बाहिर नहीं होते हैं, अर्थात्-अवधिज्ञान से उपलब्धक्षेत्र के अन्तरालवर्ती होते हैं, तथा सर्वतः समस्त ही दिशाओं में विदिशाओं में देखते हैं।

શંકા—તીર્થંકરોમાં અવધિજ્ઞાન સર્વકાળ રહે છે આ કથન આપની વિરૂદ્ધ પડે છે, કારણ કે કેવળજ્ઞાન થતાં તેઓમાંથી અવધિજ્ઞાન છૂટી જાય છે.

ઉત્તર—તીર્થંકરોનું અવધિજ્ઞાન સર્વકાળ અવસ્થાયી રહે છે. આ કથન તેઓમા છદ્મસ્થ કાળની અપેક્ષાએ જ જાણવું જોઈએ. અને એજ કાળની અહીં વિવક્ષા છે.

આ ગાથાનો અર્થ અવતરણા સહિત બીજી રીતે કરાય છે–અથવા આ રીતે અવધિજ્ઞાન કહી દેવાયું છે–હવે જે બાહ્યાવધિક હોય છે તથા જે બાહ્યાવધિક નથી હોતાં તેમને બતાવવામાં આવે છે—" नेरइय-देव० " ઇત્યાદિ.

નૈરયિક, દેવ તથા તીર્થંકર તેઓ અવધિજ્ઞાનથી અબાહ્ય હોય છે એટલે કે તેઓ તેનાથી બહાર હોતા નથી. એટલે કે અવધિજ્ઞાનથી પ્રાપ્ત ક્ષેત્રને અન્તરાલવર્તી હોય છે. તથા સર્વતઃ સમસ્ત જ દિશાઓમાં અને વિદિશાઓમાં દેખે છે.

ननु—अवधेरबाह्या भवन्तीत्यत एव ‘सर्वतः’ इत्यस्य सिद्धत्वात् ‘सर्वतः’ इति पुनः कथनं व्यर्थम् ?,

अत्रोच्यते—अवधेरभ्यन्तरत्वाभिधानेऽपि न सर्वे सर्वतः पश्यन्ति, कस्यचिद् दिगन्तरालादर्शनादवधिज्ञानस्य विचित्ररूपत्वादिति ‘सर्वतः’ इति कथनं न व्यर्थमिति । शेषाः=तिर्यञ्चो मनुष्याश्च, देशेन=एकदेशेन पश्यन्ति ॥२ ॥ तदेतदवधिज्ञानप्रत्यक्षं वर्णितम् ॥ सू० १६ ॥

मूलम्—से किं तं मणपज्जवनाणं ?, मणपज्जवनाणे णं भंते ! किं मणुस्साणं उप्पज्जइ, अमणुस्साणं ?, गोयमा ! मणुस्साणं उप्पज्जइ नो अमणुस्साणं ॥

छाया—अथ किं तन्मनःपर्यवज्ञानं ? मनःपर्यवज्ञानं खलु भदन्त ! किं मनुष्याणामुत्पद्यते, अमनुष्याणाम् ? । गौतम ! मनुष्याणामुत्पद्यते, नो अमनुष्याणाम् ॥

शंका—“अवधेः अबाह्याः भवन्ति” इतने से ही “सर्वतः” इसके अर्थ की सिद्धि हो जाती है, फिर “सर्वतः” यह कथन क्यों किया जाता है ?

उत्तर—ऐसा नहीं है, अवधिज्ञान के सद्भाव में भी समस्त अवधिज्ञानी सर्व तरफ के पदार्थों को नहीं देखते हैं । कोई २ अवधिज्ञानी ऐसे भी होते हैं जो दिगन्तराल को भी नहीं देख सकते हैं । अवधिज्ञानकी यह विचित्रता है, इसलिये “सर्वतः” यह कथन व्यर्थ नहीं पड़ता है ॥ २ ॥ यह प्रत्यक्ष प्रमाणरूप अवधिज्ञान का वर्णन हुआ ॥ सू० १६ ॥

શંકા—“अवधेः अबाह्याः भवन्ति” એટલાથી જ “सर्वतः” આના અર્થની સિદ્ધિ થઇ જાય છે તો પછી “सर्वतः” આ કથન નિરર્થક થઇ જાય છે ?

ઉત્તર—એવું નથી. અવધિજ્ઞાનના સદ્‌ભાવમાં પણ સમસ્ત અવધિજ્ઞાની સર્વ તરફના પદાર્થોને જોતા નથી. કોઈ કોઇ અવધિજ્ઞાની એવાં પણ હોય છે જેમને દિગન્તરાલનું પણ દર્શન થતું નથી. અવધિજ્ઞાનની આ વિચિત્રતા છે તેથી “सर्वतः” આ કથન વ્યર્થ જતું નથી. ॥૨॥ આ પ્રત્યક્ષ પ્રમાણ રૂપ અવધિજ્ઞાનનું વર્ણન થયું. ॥ સૂ० ૧૬ ॥

હવે સૂત્રકાર મનઃપર્યવજ્ઞાનનું વર્ણન કરે છે–“से किं तं मणपज्जवनाणं” ઇત્યાદિ.

टीका—जम्बूस्वामी सुधर्मस्वामिनं पृच्छति-'से किं तं मणपज्जवनाणं' इति। पूर्वनिर्दिष्टं यन्मनःपर्यवज्ञानं तस्य किं स्वरूपमिति। एवं जम्बूस्वामिना पृष्टः सुधर्मा स्वामी मनःपर्यवज्ञानविषये भगवद्गौतमयोः संवादप्रदर्शनपूर्वकमुत्तरमाह- 'मणपज्जवनाणे' इत्यादि। गौतमः पृच्छति—हे भदन्त! मनःपर्यवज्ञानं किं मनुष्याणामुत्पद्यते, उत अमनुष्याणाम्? भगवानाह-हे गौतम! मनुष्याणां मनः-पर्यवज्ञानमुत्पद्यते, न तु अमनुष्याणां, मनुष्यजातिभिन्नानां देवनारकतिरश्चां मनः पर्यवज्ञानं नोत्पद्यते इत्यर्थः, तेषां विशिष्टचारित्रप्रतिपत्त्यभावादिति भावः। भगवता श्रीवर्धमानस्वामिना गौतमं प्रति यथा मनःपर्यवज्ञानं वर्णितं तथा वर्णितेन जम्बू -शिष्यः सम्यग् विज्ञास्यतीत्याशयेन सुधर्मा स्वामी भगवद्गौतमयोः संवादं प्राह-

---

अब सूत्रकार मनःपर्यवज्ञान का वर्णन करते हैं-'से किं तं मणपज्जवनाणं इत्यादि।

जंबूस्वामी श्री सुधर्मा स्वामी से पूछते हैं-हे भदन्त! पूर्वनिर्दिष्ट मनःपर्यवज्ञान का क्या स्वरूप है। उत्तरमें सुधर्मा स्वामी, भगवान् महावीर और गौतमस्वामी का मनःपर्यवज्ञान के विषय में जो संवाद हुआ उसको कहते हैं-गौतमस्वामी पूछते हैं-'मणपज्जवनाणे णं' इत्यादि' हे भदन्त! मनःपर्यवज्ञान मनुष्यों को उत्पन्न होता है कि अमनुष्यों को? प्रत्युत्तर में भगवान् ने कहा-हे गौतम! मनःपर्यवज्ञान मनुष्यों को उत्पन्न होता है, अमुनुष्यों को नहीं। मनुष्यजाति से भिन्न देव नारकी एवं तिर्यञ्च गति के जीवों को मनःपर्यवज्ञान उत्पन्न नहीं होता है, क्यों कि मनःपर्यवज्ञान की उत्पत्ति का कारण विशिष्ट चारित्र की पालना है। विशिष्ट चारित्र की पालना इन गति के जीवों के नहीं होती है। इस प्रकार का जो इस सूत्र में भगवान् श्री वर्धमानस्वामी और गौतम का संवाद मनःपर्यवज्ञान के विषय में श्री सुधर्मास्वामीने

જંબૂ સ્વામી શ્રી સુધર્મા સ્વામીને પૂછે છે-હે ભદન્ત! પૂર્વ નિર્દિષ્ટ મન-પર્યવજ્ઞાનનું શું સ્વરૂપ છે? ઉત્તરમાં સુધર્માસ્વામી, ભગવાન મહાવીર, અને ગૌતમસ્વામીનો મન પર્યવજ્ઞાનના વિષયમાં જે સંવાદ થયો તે કહે છે. ગૌતમ સ્વામી પૂછે છે. "મણપજ્જવનાણેણં ઈત્યાદિ. હે ભદન્ત! મન:પર્યવજ્ઞાન મનુ-ષ્યોને ઉત્પન્ન થાય છે કે અમનુષ્યોને?

જવાબમાં ભગવાને કહ્યું-"હે ગૌતમ! મનઃપર્યવજ્ઞાન મનુષ્યોને ઉત્પન્ન થાય છે અમનુષ્યોને નહીં. મનુષ્ય જાતિથી ભિન્ન દેવ, નારકી અને તિર્યંચ ગતિના જીવોને મનઃપર્યવજ્ઞાન ઉત્પન્ન થતું નથી, કારણ કે મનઃપર્યવ જ્ઞાનની

ननु गौतमोऽपि चतुर्दशपूर्वधरः सर्वाक्षरसंनिपाती संभिन्नश्रोताः सकलप्रज्ञापनीयभावपरिज्ञानकुशलः प्रवचनस्य प्रणेता सर्वज्ञकल्प एव, तर्हि किमर्थं पृच्छति?, उच्यते–हितमर्थं स्वशिष्येभ्यः प्ररूप्य, शिष्यश्रद्धादृढीकरणार्थं तत्समक्षं भूयोऽपि भगवन्तं पृच्छति । अथवा–इत्थमेव सूत्ररचनामर्यादा ततो न कश्चिद्दोष इति ॥

प्रकट किया है उसके प्रकट करने का उनका अभिप्राय यह है कि इस वर्णन से जम्बूस्वामी मनःपर्ययवज्ञान के विषय में सम्यक्रूप से अवबुद्ध हो जावें ।

शंका—श्री वर्धमानस्वामी से गौतमस्वामीने मनःपर्यवज्ञान के विषय में क्यों पूछा ? कारण कि वे स्वयं भी चतुर्दशपूर्व के धारी थे, सर्वाक्षरसंनिपाती थे, संभिन्नश्रोतोलब्धि के धारक थे, समस्त प्रज्ञापनीय पदार्थों के परिज्ञान में कुशल थे, प्रवचन के प्रणेता और सर्वज्ञकल्प थे।

उत्तर—यद्यपि गौतम स्वामी स्वयं मनःपर्ययज्ञान के विषय में अच्छी जानकारी रखते थे फिर भी भगवान से जो इस विषय में पूछा उसका कारण यह है कि वे अपने शिष्यों को हितकारी शिक्षा देते रहने पर भी शिष्यों की श्रद्धा में दृढता लाने के लिये उनके सामने फिर पूछते हैं । अथवा–सूत्र रचने की मर्यादा इसी पद्धति से चलती है इसलिये भी गौतमस्वामी का प्रभु से इस प्रकार पूछना कोई दोषावह नहीं है ॥

ઉત્પત્તિનુ કારણુ વિશિષ્ટ ચારિત્રનું પાલન છે. વિશિષ્ટ ચારિત્રનું પાલન એ ગતિના જીવોથી થતુ નથી. આ પ્રમાણેના ભગવાન શ્રી વર્ધમાન સ્વામી અને ગૌતમનો મનઃપર્યયજ્ઞાનના વિષયમાં સંવાદ જે આ સૂત્રમાં સુધર્માસ્વામીએ પ્રગટ કર્યો છે તેને પ્રગટ કરવાનો તેમનો હેતુ એ છે કે આ વર્ણનથી જંબૂસ્વામી મનઃપર્યયજ્ઞાનના વિષયમાં સારી રીતે જાણકાર થાય.

શંકા—શ્રી વર્ધમાન સ્વામીને, ગૌતમ સ્વામીએ મનઃપર્યયજ્ઞાનના વિષયમાં શા માટે પૂછ્યું ? કારણ કે તેઓ પોતે જ ચૌદ પૂર્વના ધારણ કરનારા હતાં, સર્વાક્ષરસંનિપાતી હતાં, સંભિન્નશ્રોતોલબ્ધિના ધારક હતા, સમસ્ત પ્રજ્ઞાપનીય પદાર્થોના પરિજ્ઞાનમાં કુશળ હતાં, પ્રવચનના પ્રણેતા અને સર્વજ્ઞકલ્પ હતાં.

ઉત્તર—જો કે ગૌતમ સ્વામી પોતે જ મનઃપર્યયજ્ઞાનના વિષયમાં સારૂં જ્ઞાન ધરાવતાં હતા તો પણ ભગવાનને આ વિષયમાં જે પૂછ્યું તેનું કારણ એ છે કે તેઓ પોતાના શિષ્યોને હિતકારી શિક્ષા દેતાં છતાં પણ શિષ્યોની શ્રદ્ધામાં દૃઢતા લાવવાને માટે તેમની સામે ફરીથી પૂછે છે. અથવા–સૂત્ર રચવાની મર્યાદા આજ પદ્ધતિથી ચાલે છે તેથી પણ ગૌતમસ્વામીએ પ્રભુને એ પ્રમાણે પૂછ્યું તે કોઈ રીતે દોષપાત્ર નથી.

मूलम्—जइ मणुस्साणं, उप्पज्जइ किं संमुच्छिममणुस्साणं? गब्भवक्कंतियमणुस्साणं? गोयमा! गब्भवक्कंतियमणुस्साणं उप्पज्जइ नो संमुच्छिममणुस्साणं ॥

छाया—यदि मनुष्याणामुत्पद्यते किं संमूर्छिममनुष्याणां? गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणाम्?, गौतम! गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणामुत्पद्यते, नो संमूर्छिममनुष्याणाम् ॥

टीका—'जइ मणुस्साणं' इत्यादि। गौतमः पृच्छति–यदि मनुष्याणामेव मनःपर्यवज्ञानमुत्पद्यये, तर्हि तत् किं संमूर्छिममनुष्याणामुत्पद्यते, उत गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणाम्?, भगवानाह–हे गौतम! संमूर्छिममनुष्याणां नोत्पद्यते, किंतु गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणाम्–गर्भजमनुष्याणामेव मनःपर्ययज्ञानमुत्पद्यत इत्यर्थः। संमूर्छनं–संमूर्छः, भावे घञ्, तेन निर्वृत्ताः संमूर्छिमाः, स्त्रीपुरुषयोः संयोगेन विना ये प्राणिनः समुत्पद्यन्ते, ते संमूर्छिमाः, उच्चारादिसमुद्भवाः। संमूर्छिमविषयेऽधिकं जिज्ञासुभिरावश्यकसूत्रस्य मत्कृतायां मुनितोषिणीटीकायां विलोकनीयम्। ये तु

'जइ मणुस्साणं उप्पज्जइ' इत्यादि।

फिर गौतम पूछते हैं–हे भदन्त! यदि मनःपर्ययज्ञान मनुष्यों के ही उत्पन्न होता है तो क्या संमूर्च्छिम मनुष्यों को उत्पन्न होता है अथवा गर्भज मनुष्यों को? भगवान् कहते है–हे गौतम! यह मनःपर्ययज्ञान गर्भज मनुष्यों को ही उत्पन्न होता हैं, संमूर्च्छिम मनुष्यों को नहीं। स्त्री और पुरुष के संयोग के विना जिनकी उत्पत्ति होती है वे संमूर्च्छिम कहलाते हैं। जैसे–उच्चार प्रस्रवण आदि में जीवों की उत्पत्ति होती है। यह जन्म एकेन्द्रिय जीवों से लेकर असंज्ञी पंचेन्द्रियतक के जीवों

"जइ मणुस्साणं उप्पज्जइ" ઈત્યાદિ.

ફરીથી ગૌતમ સ્વામી પૂછે છે–"હે ભદન્ત! જો મનઃપર્યયજ્ઞાન મનુષ્યોને જ ઉત્પન્ન થાય છે તો શું સંમૂર્ચ્છિમમનુષ્યોને ઉત્પન્ન થાય છે કે ગર્ભજ મનુષ્યોને?" ભગવાન કહે છે–"હે ગૌતમ! આ મનઃપર્યયજ્ઞાન ગર્ભજ મનુષ્યોને જ ઉત્પન્ન થાય છે, સંમૂર્ચ્છિમ મનુષ્યોને નહીં." સ્ત્રી અને પુરુષના સંયોગ વિના જેમની ઉત્પત્તિ થાય છે તે સંમૂર્ચ્છિમ કહેવાય છે. જેમકે ઉચ્ચાર પ્રસ્રવણ આદિમાં જીવોની ઉત્પત્તિ થાય છે આ જન્મ એકેન્દ્રિય જીવોથી લઈને અસંજ્ઞી પચેન્દ્રિય સુધીના જીવોને હોય છે. આ વિષયમાં વિશેષ જાણવું હોય તો આવશ્યક સૂત્રની અમારી બનાવેલી મુનિતોષિણી ટીકા જોવી

गर्भाशये समुत्पद्यन्ते ते गर्भव्युत्क्रान्तिकाः, शब्दार्थस्त्वेवम्=गर्भे-गर्भाशये, व्युत्क्रान्तिः=उत्पत्तिर्येषां ते गर्भव्युत्क्रान्तिकाः, व्युत्क्रान्ति-शब्दोऽत्रोत्पत्तिवाची। यद्वा-गर्भाद्-गर्भावासाद् व्युत्क्रान्तिर्निष्क्रमणं येषां ते गर्भव्युत्क्रान्तिकाः । ते द्विधा-मनुष्याः१, पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकार२श्चेति। गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्यास्त्रिधा भवन्ति-कर्मभूमिजाः, अकर्मभूमिजाः, अन्तर्द्वीपजाश्चेति ॥

मूलम्—**जइ गब्भवक्कंतियमणुस्साणं, उप्पज्जइ किं कम्मभूमिय-गब्भवक्कंतियमणुस्साणं ? अकम्मभूमिय—गब्भवक्कंतियमणुस्साणं ?, अंतरदीवगगब्भवक्कंतियमणुस्साणं ?, गोयमा ! कम्मभूमिय—गब्भवक्कंतिय-मणुस्साणं उप्पज्जइ, नो अकम्मभूमिय—गब्भवक्कंतिय—मणुस्साणं, नो अंतरदीवग—गब्भवक्कंतिय-मणुस्साणं ॥**

के होता है। इस विषय में यदि विशेष जानना हो तो आवश्यकसूत्र की हमारी बनाई मुनितोषिणी टीका देखना चाहिये। जिन जीवों की उत्पत्ति गर्भाशय से होती है वे गर्भव्युत्क्रान्तिक हैं। गर्भ-गर्भाशय-में जिन जीवों की व्युत्क्रान्ति-उत्पत्ति होती है वे गर्भव्युत्क्रान्तिक हैं, यह गर्भव्युत्क्रान्तिक का शब्दार्थ है। अथवा गर्भ से जिनका व्युत्क्रान्ति-निष्क्रमण-निकलना-होता है वे गर्भव्युत्क्रान्तिक हैं। गर्भव्युत्क्रान्तिक जीव दो प्रकार के होते हैं-एक मनुष्य, दूसरे पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक। गर्भव्युत्क्रान्तिक मनुष्य भी कर्मभूमिज, अकर्मभूमिज, एवंअन्तरद्वीपज, इस तरह तीन प्रकार के होते हैं। पन्द्रह कर्मभूमियों में, जो उत्पन्न होते हैं वेकर्मभूमिज मनुष्य कहलाते हैं। तीस अकर्मभूमियों में जो उत्पन्न होते हैं वे अकर्मभूमिज मनुष्य कहलाते हैं, एवं छप्पन अंतरद्वीपों में जो उत्पन्न होते हैं वे अन्तरद्वीपज मनुष्य कहलाते हैं ॥

જોઈએ. જે જીવોની ઉત્પત્તિ ગર્ભાશયમાંથી થાય છે તેઓ ગર્ભવ્યુત્ક્રાન્તિક છે. ગર્ભાશયમાં જે જીવોની વ્યુત્ક્રાન્તિ (ઉત્પત્તિ) થાય છે તેઓ ગર્ભવ્યુત્ક્રાન્તિક છે, આ ગર્ભવ્યુત્ક્રાન્તિકનો શબ્દાર્થ છે. અથવા ગર્ભમાંથી જેમની વ્યુત્ક્રાન્તિ (નિષ્ક્રમણ, (નિકળવાનુ) થાય છે તેઓ ગર્ભવ્યુત્ક્રાન્તિક છે. ગર્ભવ્યુત્ક્રાન્તિક જીવ બે પ્રકારના હોય છે-એક મનુષ્ય, બીજાં પંચેન્દ્રિયતિર્યંચયોનિક. ગર્ભવ્યુત્ક્રાન્તિક મનુષ્યો પણ કર્મભૂમિજ, અકર્મભૂમિજ એટલે કે ભોગભૂમિજ, અને અન્તરદ્વીપજ, આ રીતે ત્રણ પ્રકારનાં હોય છે. પંદર કર્મભૂમિઓમાં, ત્રીસ અકર્મભૂમિઓમા અને છપ્પન અંતરદ્વીપોમાં જે ઉત્પન્ન થાય છે, તેઓ કર્મભૂમિજ, અકર્મભૂમિજ અને અન્તરદ્વીપજ મનુષ્યો કહેવાય છે.

छाया—यदि गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणामुत्पद्यते, किं कर्मभूमिजगर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणां ?, अकर्मभूमिजगर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणाम् ?, अन्तर्द्वीपजगर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणाम् ?, गौतम! कर्मभूमिजगर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणामुत्पद्यते, नोअकर्मभूमिजगर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणाम्, नो अन्तर्द्वीपज–गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणाम् ॥

टीका—'जइ गब्भवक्कंतियमणुस्साणं' इत्यादि। यदि गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणां मनःपर्यवज्ञानमुत्पद्यते, तर्हि तत् किं कर्मभूमिज–गर्भव्युत्क्रान्तिक–मनुष्याणाम् ?, कृषिवाणिज्यतपःसंयमानुष्ठानादिकर्मप्रधाना भूमयः कर्मभूमयः, भरतपञ्चकैरवतपञ्चकमहाविदेहपञ्चकलक्षणाः पञ्चदश कर्मभूमयः, तत्र समुत्पन्नाः कर्मभूमिजाः, ये गर्भव्युत्क्रान्तिकाः=गर्भजाः मनुष्यास्तेषां मनःपर्यवज्ञानमुत्पद्यते किम्, उत अकर्मभूमिजगर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणां=कृष्यादिकर्मरहिताः कल्पपादपफलोपभोगप्रधाना भूमयो हैमवतपञ्चकै–रण्यवतपञ्चक–हरिवर्षपञ्चक–रम्यकवर्षपञ्चक–देवकुरुपञ्चको–त्तरकुरुपञ्चक रूपास्त्रिंशत् अकर्मभूमयस्तत्र समुत्पन्ना अकर्मभू-

---

'जइ गब्भवक्कंतियमणुस्साणं' इत्यादि।

यदि गर्भव्युत्क्रान्तिक मनुष्यों को मनःपर्ययज्ञान उत्पन्न होता है तो वह क्या कर्मभूमिगर्भज मनुष्यों को उत्पन्न होता हैं, अथवा अकर्मभूमिगर्भज मनुष्यों को उत्पन्न होता है या अन्तरदीपगर्भज मनुष्यों को उत्पन्न होता है। जिन भूमियों में कृषि, वाणिज्य, तपःसंयम आदि का अनुष्ठान प्रधानरूप से किया जाता है वे कर्मभूमियां हैं। ये कर्मभूमियां पांच भरत पांच ऐरवत और पांच महाविदेह के भेद से पन्द्रह बतलाई गई हैं। इनमें जो गर्भ से उत्पन्न होते हैं वे कर्मभूमिजगर्भव्युत्क्रान्तिक मनुष्य हैं। जिन भूमियों में पूर्वोक्त कृष्यादिकर्मानुष्ठान नहीं होता है किन्तु कल्पवृक्षों से ही जहां जीवों को भोग और उपभोग की सामग्री प्राप्त होती रहती है वे अकर्म भूमियां हैं, ये पांच हैमवत

"जइ गब्भवक्कंतियमणुस्साणं" ઇત્યાદિ.

જો ગર્ભવ્યુત્ક્રાન્તિક મનુષ્યોને મનઃપર્યયજ્ઞાન ઉત્પન્ન થાય છે તો તે શું કર્મભૂમિગર્ભજમનુષ્યોને ઉત્પન્ન થાય છે, અથવા અકર્મભૂમિગર્ભજમનુષ્યોને ઉત્પન્ન થાય છે, કે અન્તરદ્વીપ ગર્ભજમનુષ્યોને ઉત્પન્ન થાય છે? જે ભૂમિયોમાં કૃષિ, વેપાર, તપઃસંયમ આદિનું અનુષ્ઠાન મુખ્યત્વે કરાય છે તે કર્મભૂમિયો છે. તે કર્મભૂમિયો પાંચ ભરત, પાંચ ઐરાવત અને પાંચ મહવિદેહના ભેદથી પંદર બતાવેલ છે. તેઓમાં જે ગર્ભથી ઉત્પન્ન થાય છે તે કર્મભૂમિજ–ગર્ભવ્યુત્ક્રાન્તિક મનુષ્ય છે. જે ભૂમિયોમાં પૂર્વકથિત કૃષિ વગેરે કર્માનુષ્ઠાન હોતા નથી પણ કલ્પવૃક્ષો વડે જ જ્યાં જીવોને ભોગ અને ઉપભોગની સામગ્રી મળતી રહે છે

मिजाः, ये गर्भव्युत्क्रान्तिका मनुष्यास्तेषां वा, उत किम् अन्तरद्वीपज गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणाम् ?=अन्तरे=लवणसमुद्रस्य मध्ये द्वीपाः अन्तरद्वीपाः, ते च-हिमवत्पर्वतपादप्रतिष्ठिता एकोरुकाद्याः षट्पञ्चाशत्संख्यका भवन्ति, तत्र ये समुत्पन्ना गर्भव्युत्क्रान्तिका मनुष्यास्तेषां वा मनःपर्ययज्ञानमुत्पद्यते, किमिति प्रश्नः । भगवानाह-'गोयमा ! ' इत्यादि । हे गौतम! कर्मभूमिज-गर्भव्युत्क्रान्तिक-मनुष्याणामेव मनः पर्ययज्ञानमुत्पद्यते, न तु अकर्मभूमिजानां गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणां नापि चान्तरद्वीपजानां गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणामिति ।

क्षेत्र, पांच ऐरण्यवत क्षेत्र, पांच हरिवर्ष क्षेत्र, पांच रम्यक क्षेत्र, पांच देवकुरु, पांच उत्तरकुरु, इस प्रकार तीस हैं। जंबूद्वीप में भरतक्षेत्र की सीमापर स्थित हिमवान् पर्वत के दोनों छोर-किनारे-पूर्वपश्चिम लवण समुद्र में फैले हुए हैं। इसी प्रकार ऐरवतक्षेत्र की सीमापर स्थित शिखरीपर्वत के दोनों छोर भी लवणसमुद्र में फैले हुए हैं। प्रत्येक छोर दो भाग में विभाजित होने के कारण कुल मिलाकर दोनों पर्वतों के आठ भाग लवणसमुद्र में आये हुए हैं। ये भाग दाढके आकार के हैं। प्रत्येक भाग पर युगलियों की वस्तीवाले सात २ द्वीप होने से सब छप्पन हैं। ये लवणसमुद्र में आये हुए होने के कारण अन्तरद्वीप कहलाते हैं। ये एकोरुकादि नाम से प्रसिद्ध हैं। उनमें अकर्मभूमि (भोगभूमि)की रचना है। इस प्रकार गौतम का प्रश्न सुनकर प्रभुने कहा-हे गौतम ! मनःपर्ययज्ञान कर्मभूमिज गर्भव्युत्क्रान्तिक मनुष्यों के ही होता है। अकर्मभूमिज गर्भव्युत्क्रान्तिक मनुष्यों के नहीं और न अन्तरदीपज गर्भव्युत्क्रान्तिक मनुष्यों को ॥

તે અકર્મભૂમિયો છે. તેઓ પાંચ હૈમવત ક્ષેત્ર, પાંચ ઐરાણ્યવત ક્ષેત્ર, પાંચ હરિવર્ષક્ષેત્ર, પાંચ રમ્યકવર્ષ, પાંચ દેવકુરુ, પાંચ ઉત્તરકુરુક્ષેત્ર, આ પ્રમાણે ત્રીસ છે. જંબૂદ્વીપમાં ભરતક્ષેત્રની સીમા પર રહેલ હિમવાન પર્વતની બન્ને કોર (છેડા) પૂર્વપશ્ચિમ લવણસમુદ્રમાં ફેલાયેલી છે. આ રીતે ઐરવત ક્ષેત્રની સીમા પર રહેલ શિખરી પર્વતના બન્ને છેડા પણ લવણસમુદ્રમાં ફેલાયેલાં છે. પ્રત્યેક છેડો બે ભાગમાં વિભાજિત હોવાને કારણે કુલ મળીને બન્ને પર્વતોના આઠ ભાગો લવણસમુદ્રમાં આવેલા છે. તે ભાગો દાઢના આકારના છે. પ્રત્યેક ભાગ પર યુગલિયોની વસ્તીવાળા સાત, સાત, દ્વીપ હોવાથી કુલ મળીને છપ્પન છે. તેઓ લવણસમુદ્રમાં આવેલા હોવાથી અન્તરદ્વીપ કહેવાય છે. તેઓમાં અકર્મભૂમિ (ભોગભૂમિ)ની રચના છે. ગૌતમનો એવો પ્રશ્ન સાંભળીને પ્રભુએ કહ્યું-"હે ગૌતમ! મનઃપર્યય જ્ઞાન કર્મભૂમિજ ગર્ભવ્યુત્ક્રાન્તિક મનુષ્યોને જ થાય છે, અકર્મભૂમિજ ગર્ભવ્યુત્ક્રાન્તિક મનુષ્યોને નહી. અને અન્તરદ્વીપજ ગર્ભવ્યુત્ક્રાન્તિક મનુષ્યોને પણ નહીં."

मूलम्—जइ कम्मभूमिय—गब्भवक्कंतिय—मणुस्साणं, उप्पज्जइ किं संखिज्जवासाउय-कम्मभूमिय-गब्भवक्कंतियमणुस्साणं?, असंखिज्जवासाउय—कम्मभूमियं—गब्भवक्कंतिय—मणुस्साणं ?, गोयमा! संखेज्जवासाउय-कम्मभूमिय-गब्भवक्कंतिय—मणुस्साणं उप्पज्जइ, नो असंखेज्जवासाउय—कम्मभूमिय—गब्भवक्कंतिय-मणुस्साणं ॥

छाया—यदि कर्मभूमिज—गर्भव्युत्क्रान्तिक—मनुष्याणामुत्पद्यते किं संख्येय-वर्षायुष्क-कर्मभूमिज—गर्भव्युत्क्रान्तिक-मनुष्याणाम्?, असंख्येयवर्षायुष्ककर्मभूमिज-गर्भव्युत्क्रान्तिक-मनुष्याणाम्?, गौतम! संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज-गर्भव्युत्क्रान्तिक-मनुष्याणामुत्पद्यते, नो असंख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज—गर्भव्युत्क्रान्तिक-मनुष्याणाम्।

टीका—'जइ कम्मभूमिय०' इत्यादि। व्याख्या निगदसिद्धा। नवरं—संख्येयवर्षायुष्काः=पूर्वकोटयादिजीविनः, असंख्येयवर्षायुष्काः=पल्योपमादिजीविन इति।

'जइ कम्मभूमिय०' इत्यादि।

अब पुनः गौतमस्वामी प्रभु से पूछते हैं—हे भदन्त! यदि मनःपर्यय-ज्ञान कर्मभूमिगर्भज मनुष्यों को होता है तो क्या संख्यात वर्ष की आयुवाले कर्मभूमिगर्भज मनुष्य हैं उनको होता है अथवा जो असंख्यात वर्ष की आयुवाले कर्मभूमिगर्भज मनुष्य हैं उनको होता है। एककोटि पूर्व आदि आयुवालों का नाम संख्यातवर्षायुष्क और गणना से परे पल्योपम आदि आयुवालों का नाम असंख्यातवर्षायुष्क है। गौतम के इस प्रश्न को सुनकर भगवान् ने कहा—हे गौतम! मनःपर्ययज्ञान संख्यात-वर्ष की आयुवाले ऐसे कर्मभूमिगर्भज मनुष्यों को ही उत्पन्न होता है असंख्यातवर्ष की आयुवाले कर्मभूमिगर्भज मनुष्यों को नहीं ॥

"जइ कम्मभूमिय०" ઈત્યાદિ

હવે ગૌતમ સ્વામી ફરીથી પ્રભુને પૂછે છે—"હે ભદન્ત! જો મનઃપર્યયજ્ઞાન કર્મભૂમિગર્ભજ મનુષ્યોને થાય છે તો શું સંખ્યાત વર્ષના આયુષ્યવાળા કર્મભૂમિગર્ભજ મનુષ્યો છે તેમને થાય છે કે જે અસંખ્યાત વર્ષના આયુષ્યવાળા કર્મભૂમિગર્ભજ મનુષ્યો છે તેમને થાય છે?" એક કોટિ પૂર્વ આદિ આયુવાળાઓનું નામ સંખ્યાતવર્ષના આયુવાળા, અને ગણનાથી પર પલ્યોપમ આદિ આયુવાળાઓનુ નામ અસંખ્યાત વર્ષના આયુવાળાં છે. ગૌતમનો એ પ્રશ્ન સાંભળીને ભગવાને કહ્યું: "હે ગૌતમ! મન.પર્યયજ્ઞાન સંખ્યાત વર્ષનાં આયુષ્યવાળા એવા કર્મભૂમિગર્ભજ મનુષ્યોને જ ઉત્પન્ન થાય છે. અસંખ્યાત વર્ષનાં આયુષ્યવાળા કર્મભૂમિગર્ભજ મનુષ્યોને નહીં."

मूलम्—जइ संखेज्जवासाउय-कम्मभूमियं-गब्भवक्कंतिय-मणुस्साणं उप्पज्जइ किं पज्जत्तग-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमिय-गब्भवक्कंतियमणुस्साणं ?, अपज्जत्तग-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमिय-गब्भवक्कंतिय-मणुस्साणं ?, गोयमा ! पज्जत्तग-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमिय-गब्भवक्कंतिय-मणुस्साणं, उप्पज्जइ, नो अपज्जत्तग-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमिय-गब्भवक्कंतियमणुस्साणं॥

छाया—यदि संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज-गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणामुत्पद्यते, किं पर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज-गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणाम् ?, अपर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज-गर्भव्युत्क्रान्तिक-मनुष्याणाम् ?, गौतम ! पर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज-गर्भव्युत्क्रान्तिक-मनुष्याणामुत्पद्यते, नो अपर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज-गर्भव्युत्क्रान्तिक-मनुष्याणाम् ॥

टीका—'जइ संखेज्जवासाउय' इत्यादि । व्याख्या निगदसिद्धा । नवरं-पर्याप्तकनामकर्मोदयान्निष्पन्नपर्याप्तिमन्तः पर्याप्ताः 'अर्शआदिभ्योऽच्' इति मत्वर्थीयोऽच् । त एव पर्याप्तकनामकर्मोदयादनिष्पन्नपर्याप्तियोगादपर्याप्तास्त एवापर्याप्तका इति ॥

'जइ संखेज्जवासाउय०' इत्यादि ।

प्रभु से कथित इस उत्तर को सुनकर गौतमने पुनः प्रभु से पूछा-हे भदंत ! यदि मनःपर्ययज्ञान संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिगर्भज मनुष्यों को उत्पन्न होता है तो क्या वह पर्याप्त संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिगर्भज मनुष्यों को होता है अथवा अपर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिगर्भज मनुष्यों को होता है ? । गौतम के इस प्रश्न को सुनकर प्रभुने कहा-हे गौतम ! मनःपर्ययज्ञान, प्रर्याप्त संख्यातवर्ष की आयुवाले कर्मभूमिगर्भज

" जइ संखेज्जवासाउय० " ઇત્યાદિ.

પ્રભુએ કહેલ તે ઉત્તર સાંભળીને ગૌતમે ફરીથી પ્રભુને પૂછયું-" હે ભદન્ત ! જો મનઃપર્યયજ્ઞાન સંખ્યાત વર્ષના આયુવાળા કર્મભૂમિગર્ભજ મનુષ્યોને ઉત્પન્ન થાય છે તો તે શું પર્યાપ્તક સંખ્યાત વર્ષનાં આયુવાળા કર્મભૂમિગર્ભજ મનુષ્યોને થાય છે અથવા અપર્યાપ્તક સંખ્યાત વર્ષનાં આયુવાળા કર્મભૂમિગર્ભજ મનુષ્યોને થાય છે ? " ગૌતમનો આ પ્રશ્ન સાંભળીને પ્રભુએ કહ્યું-" હે ગૌતમ ! મનઃપર્યયજ્ઞાન પર્યાપ્તક સંખ્યાત વર્ષનાં આયુવાળા કર્મભૂમિગર્ભજ મનુષ્યોને

मूलम्—जइ पज्जत्तग—संखेज्जवासाउय—कम्मभूमिय—गब्भवक्कंतिय-मणुस्साणं उप्पज्जइ, किं सम्मदिट्ठि—पज्जत्तग—संखेज्जवासाउय-कम्मभूमिय—गब्भवक्कंतिय-मणुस्साणं ?, मिच्छदिट्ठि-पज्जत्तग-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमिय-गब्भवक्कंतिय-मणुस्साणं?, सम्मामिच्छादिट्ठि-पज्जत्तग-संखेज्जवासाउ य—कम्मभूमिय—गब्भवक्कंतिय-मणुस्साणं ?, गोयमा ! सम्मदिट्ठि—पज्जत्तग—संखेज्जवासाउय—कम्मभूमिय—गब्भवक्कंतिय-मणुस्साणं उप्पज्जइ, नो मिच्छदिट्ठि—पज्जत्तग—संखेज्जवासाउय—कम्मभूमिय—गब्भवक्कंतिय-मणुस्साणं, नो सम्ममिच्छदिट्ठि—पज्जत्तग—संखेज्जवासाउय—कम्मभूमिय—गब्भवक्कंतिय-मणुस्साणं ॥

छाया—यदि पर्याप्तक—संख्येयवर्षायुष्क—कर्मभूमिज—गर्भव्युत्क्रान्तिक—मनुष्याणामुत्पद्यते, किं सम्यग्दृष्टि—पर्याप्तक—संख्येयवर्षायुष्क—कर्मभूमिज—गर्भव्युत्क्रान्तिक—मनुष्याणां?, मिथ्यादृष्टि-पर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज—गर्भव्युत्क्रान्तिक मनुष्याणां ?, सम्यग्मिथ्यादृष्टि—पर्याप्तक—संख्येयवर्षायुष्क—कर्मभूमिज—गर्भव्युत्क्रान्तिक—मनुष्याणाम् ?, गौतम ! सम्यग्दृष्टि—पर्याप्तक—संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज—गर्भव्युत्क्रान्तिक—मनुष्याणामुत्पद्यते, नो मिथ्यादृष्टिपर्याप्तक—संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज-गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणाम्, नो सम्यग्मिथ्यादृष्टि—(मिश्रदृष्टि)—पर्याप्तक—संख्येयवर्षायुष्क—कर्मभूमिज—गर्भव्युत्क्रान्तिक—मनुष्याणाम् ॥

मनुष्यों को ही होता है। अपर्याप्त संख्यातवर्ष की आयुवाले कर्मभूमि-गर्भज मनुष्यों को नहीं। पर्याप्त नामकर्म के उदय से जिनकी छह पर्याप्तियां निष्पन्न हो चुकी हैं वे पर्याप्त मनुष्य हैं, अपर्याप्त नामकर्म के उदय से जिनकी पर्याप्तियां निष्पन्न नहीं हुई हैं वे अपर्याप्त मनुष्य हैं।

જ થાય છે, અપર્યાપ્તક સંખ્યાત વર્ષનાં આયુવાળા કર્મભૂમિ ગર્ભજ મનુષ્યોને નહી." પર્તાપ્તક નામ-કર્મના ઉદયથી જેમની છ પર્યાપ્તિયો પૂર્ણ થઈ ચૂકી છે તે પર્યાપ્તક મનુષ્યો છે અને અપર્યાપ્ત-નામકર્મના ઉદયથી જેમની પર્યાપ્તિયો પૂર્ણ થઈ નથી તે અપર્યાપ્તક મનુષ્યો છે.

टीका—'जइ पज्जत्तग-संखेज्जवासाउय' इत्यादि। व्याख्या निगदसिद्धा। नवरं-सम्यग्दृष्टयः-सम्यक्=अविपरीता दृष्टिर्येषां ते तथा, मिथ्या=विपरीता दृष्टिर्येषां ते तथा, सम्यग्मिथ्यादृष्टयस्तु प्रतिपत्त्यभिमुखा अन्तर्मुहूर्तमात्रं भवन्ति, न तु परित्यागाभिमुखा इति ॥

'जइ पज्जत्तग०' इत्यादि।

प्रभुद्वारा इस पूर्वोक्त उत्तर को सुनकर पुनः गौतमने पूछा-हे भदन्त! यदि मनःपर्ययज्ञान, पर्याप्तक संख्यातवर्ष की आयुवाले कर्मभूमि गर्भज मनुष्यों को ही होता है तो क्या सम्यग्दृष्टि-पर्याप्तक-संख्यात-वर्षायुष्क कर्मभूमिगर्भज मनुष्यों को उत्पन्न होता है? अथवा पूर्वोक्त विशेषण विशिष्ट मिथ्यादृष्टि मनुष्यों को उत्पन्न होता है? या पूर्वोक्त विशेषण सहित सम्यग्मिथ्यादृष्टि मनुष्यों को उत्पन्न होता है?। गौतम के इस प्रश्न को सुनकर प्रभुने कहा-हे गौतम! वह मनःपर्ययज्ञान पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमि गर्भज सम्यग्दृष्टि मनुष्यों को ही उत्पन्न होता है। पर्याप्तक, संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिगर्भज मिथ्यादृष्टि मनुष्यों को, तथा पर्याप्तक आदि विशेषण विशिष्ट मिश्रदृष्टिसंपन्न मनुष्यों को उत्पन्न नहीं होता है। तत्त्वों में अविपरीत जिनकी दृष्टि-रुचि-होती है वे सम्यग्दृष्टि हैं, तथा तत्त्वों में जिनकी रुचि विपरीत होती है वे मिथ्यादृष्टि हैं। अन्तर्मुहूर्ततक प्रतिपत्ति के अभिमुख जो होवें वे मिश्रदृष्टि हैं। अर्थात् जिसके उदय समय में यथार्थता की रुचि या अरुचि न होकर दोलायमानस्थिति रहे वह मिश्रदृष्टि है ॥

"जइ पज्जत्तग०" ઇત્યાદિ.

પ્રભુદ્વારા પૂર્વોક્ત ઉત્તરને સાંભળીને ફરી ગૌતમે પૂછયું-"હે ભદન્ત! જો મનઃપર્યયજ્ઞાન, પર્યાપ્તક સંખ્યાત વર્ષનાં આયુવાળા કર્મભૂમિગર્ભજમનુષ્યોને જ થાય છે તો શું સમ્યક્દૃષ્ટિ-પર્યાપ્તક-સંખ્યાતવર્ષાયુષ્ક કર્મભૂમિજ મનુષ્યોને ઉત્પન્ન થાય છે? કે પૂર્વોક્તવિશેષણ વિશિષ્ટમિથ્યાદૃષ્ટિ મનુષ્યોને ઉત્પન્ન થાય છે? કે પૂર્વોક્તવિશેષણસહિત સમ્યક્મિથ્યાદૃષ્ટિ મનુષ્યોને ઉત્પન્ન થાય છે?" ગૌતમનો આ પ્રશ્ન સાંભળીને પ્રભુએ કહ્યું-"તે મનઃપર્યયજ્ઞાન કર્મભૂમિગર્ભજ, પર્યાપ્તક સંખ્યાતવર્ષાયુષ્ક (સંખ્યાત વર્ષના આયુવાળા) સમ્યગ્દૃષ્ટિ મનુષ્યોને જ ઉત્પન્ન થાય છે. પર્યાપ્તક, સંખ્યાવર્ષાયુષ્ક કર્મભૂમિગર્ભજ મિથ્યાદૃષ્ટિ મનુષ્યોને તથા પર્યાપ્તકઆદિવિશેષણ-વિશિષ્ટ મિશ્રદૃષ્ટિસંપન્ન મનુષ્યોને ઉત્પન્ન થતું નથી." તત્ત્વોમાં અવિપરીત જેમની દૃષ્ટિ-રૂચિ હોય છે તેઓ સમ્યગ્દૃષ્ટિ છે, તથા તત્ત્વોમાં જેમની રુચિ વિપરીત હોય છે તેઓ મિથ્યાદૃષ્ટિ છે. અન્તર્મુહૂર્ત સુધી પ્રતિપત્તિને અભિમુખ જે હોય તેઓ મિશ્રદૃષ્ટિ છે. એટલે કે જેના ઉદયસમયમાં યથાર્થતાની રુચિ અથવા અરુચિ ન થતાં દોલાયમાન સ્થિતિ રહે તે મિશ્રદૃષ્ટિ છે.

मूलम्—जइ सम्मदिट्ठि—पज्जत्तग—संखेज्जवासाउय—कम्मभूमिय—गब्भवक्कंतिय-मणुस्साणं उप्पज्जइ, किं संजय-सम्मदिट्ठि-पज्जत्तग—संखेज्जवासाउय—कम्मभूमिय—गब्भवक्कंतिय—मणुस्साणं ?, असंजय—सम्मदिट्ठि—पज्जत्तग—संखेज्जवासाउ य—कम्मभूमिय-गब्भवक्कंतिय-मणुस्साणं ?, संजयासंजय-समदिट्ठि-पज्जत्तग-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमिय-गब्भवक्कंतिय-मणुस्साणं? गोयमा ! संजय-सम्मदिट्ठि-पज्जत्तग-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमिय-गब्भवक्कंतिय-मणुस्साणं उप्पज्जइ, नो असंजय-सम्मदिट्ठि-पज्जत्तग-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमिय-कम्मवक्कंतिय-मणुस्साणं, नो संजयासंजय-सम्मदिट्ठि-पज्जत्तग-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमिय-गब्भवक्कंतिय-मणुस्साणं ॥

छाया—यदि सम्यग्दृष्टिपर्याप्तक—संख्येयवर्षायुष्क—कर्मभूमिजगर्भव्युत्क्रान्तिक—मनुष्याणामुत्पद्यते, किं संयत—सम्यग्दृष्टि—पर्याप्तक—संख्येयवर्षायुष्क—कर्मभूमिज—गर्भव्युत्क्रान्तिक- मनुष्याणाम्?, असंयत—सम्यग्दृष्टि—पर्याप्तक—संख्येयवर्षायुष्क—कर्मभूमिज—गर्भव्युत्क्रान्तिक—मनुष्याणां ?, संयतासंयतसम्यग्दृष्टि—पर्याप्तक—संख्येयवर्षायुष्क—कर्मभूमिज—गर्भव्युत्क्रान्तिक—मनुष्याणाम् ?, गौतम ! संयत—सम्यग्दृष्टि-पर्याप्तक—संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज-गर्भव्युत्क्रान्तिक मनुष्याणामुत्पद्यते, नो असंयत—सम्यग्दृष्टि—पर्याप्तक—संख्येयवर्षायुष्क—कर्मभूमिज—गर्भव्युत्क्रान्तिक—मनुष्याणां, नो संयतासंयत—सम्यग्दृष्टि—पर्याप्तक—संख्येयवर्षायुष्क—कर्मभूमिज—गर्भव्युत्क्रान्तिक—मनुष्याणाम् ॥

टीका—'जइ सम्मदिट्ठि' इत्यादि। व्याख्या निगदसिद्धा। नवरं संयताः =सर्वविरतिमन्तः, असंयताः=अविरतसम्यग्दृष्टयः, संयतासंयताः=देशविरतिमन्तः श्रावका इति ॥

'जइ सम्मदिट्ठि०' इत्यादि।

फिर गौतम पूछते हैं—हे भदन्त ! यदि यह मनःपर्ययज्ञान पर्याप्तक, संख्यातवर्ष की आयुवाले, कर्मभूमिगर्भज सम्यग्दृष्टि मनुष्यों को उत्पन्न होता है तो क्या जो पूर्वोक्तविशेषणसहित संयत—सम्यग्दृष्टि

"जइ सम्म दिट्ठि०" ઇત્યાદિ

વળી ગૌતમ સ્વામી પૂછે છે–"હે ભદન્ત ! આ મનઃપર્યય જ્ઞાન પર્યાપ્તક, સંખ્યાત વર્ષનાં આયુવાળા, કર્મભૂમિગર્ભજ સમ્યક્દૃષ્ટિ મનુષ્યોને ઉત્પન્ન થાય છે તો શું પૂર્વોક્તવિશેષણસહિત સંયતસમ્યગ્દૃષ્ટિ મનુષ્યોને ઉત્પન્ન

मनुष्यों को उत्पन्न होता है अथवा पूर्वोक्तविशेषणसहित असंयत सम्यग्दृष्टि मनुष्यों को उत्पन्न होता है? या पूर्वोक्तविशेषणविशिष्ट संयतासंयत (पंचमगुणस्थानवर्ती श्रावक) सम्यग्दृष्टि मनुष्यों को उत्पन्न होता है?। गौतम के इस प्रश्न को सुनकर प्रभुने कहा–हे गौतम! यह मनःपर्ययज्ञान जो सम्यग्दृष्टि संयत हैं पर्याप्तक हैं संख्यातवर्ष की आयुवाले हैं कर्मभूमि में उत्पन्न हुए हैं, गर्भ से जिनका जन्म हुआ है उनके ही उत्पन्न होता है, जो सम्यग्दृष्टि मनुष्य संयत नहीं हैं चाहे भले वे पर्याप्तक हों, संख्यातवर्ष की आयुवाले हों, कर्मभूमि में जन्मे हों, गर्भ से उत्पन्न हुए हों उनको मनःपर्ययज्ञान नहीं होता है, और जो सम्यग्दृष्टि मनुष्य संयतासंयत हैं, पंचमगुणस्थानवर्ती हैं, पर्याप्तक हैं, संख्यातवर्ष की आयुवाले हैं कर्मभूमिज हैं, गर्भजन्मवाले हैं तो भी उनके उत्पन्न नहीं होता है। संयत का तात्पर्य सर्वविरतिसंपन्न मुनिजनों से है। असंयतका तात्पर्य चतुर्थगुणस्थानवर्ती अविरत सम्यग्दृष्टि से और संयतासंयत से पंचमगुणस्थानवर्ती देशसंयमी श्रावक से है।

भावार्थ–यह मनःपर्ययज्ञान मुनिजनों के ही होता है। चतुर्थगुणस्थानवर्ती या पंचमगुणस्थानवर्ती जीवों के नहीं होता है॥

થાય છે કે પૂર્વોક્તવિશેષણસહિત અસંયત–સમ્યગ્દૃષ્ટિ મનુષ્યોને ઉત્પન્ન થાય છે? કે પૂર્વોક્તવિશેષણવિશિષ્ટ સંયતાસંયત (પંચમગુણસ્થાનવર્ત્તી શ્રાવક) સમ્યગ્દૃષ્ટિ મનુષ્યોને ઉત્પન્ન થાય છે?" ગૌતમનો આ પ્રશ્ન સાંભળીને ભગવાને કહ્યું–"હે ગૌતમ! આ મનઃપર્યયજ્ઞાન જે સમ્યગ્દૃષ્ટિ સંયત છે, પર્યાપ્તક છે, સંખ્યાત વર્ષનાં આયુષ્યવાળા છે, કર્મભૂમિમાં ઉત્પન્ન થયા છે, અને ગર્ભમાંથી જેનો જન્મ થયો છે તેમને જ ઉત્પન્ન થાય છે. જે સમ્યગ્દૃષ્ટિ મનુષ્ય સંયત નથી ભલે તેઓ પર્યાપ્તક હોય, સંખ્યાત વર્ષનાં આયુષ્યવાળા હોય, કર્મભૂમિમાં જન્મ્યા હોય, ગર્ભથી ઉત્પન્ન થયાં હોય, છતાં તેમને મનઃપર્યયજ્ઞાન થતું નથી, તથા જે સમ્યગ્દૃષ્ટિ મનુષ્યો સંયતાસંયત છે, (પંચમગુણસ્થાનવર્તી છે), પર્યાપ્તક છે, સંખ્યાત વર્ષનાં આયુષ્યવાળાં છે, કર્મભૂમિમાં જન્મેલા છે. ગર્ભથી જન્મેલાં છે તો પણ તેમને ઉત્પન્ન થતું નથી. સંયતનું તાત્પર્ય સર્વવિરતિવાળા મુનિજનો છે. અસંયતનું તાત્પર્ય ચતુર્થગુણસ્થાનવર્તી અવિરત સંયમદૃષ્ટિ, અને સંયતાસંયતથી પંચમગુણસ્થાનવર્તી દેશવિરતિ શ્રાવક છે. તાત્પર્ય એ છે કે આ મનઃપર્યયજ્ઞાન મુનિજનોને જ થાય છે. ચતુર્થગુણસ્થાનવર્તી કે પંચમગુણસ્થાનવર્ત્તી જીવોને થતું નથી.

मूलम्—जइ संजयसमदिट्ठि—पज्जत्तग—संखेज्जवासाउय-कम्मभूमिय—गब्भवक्कंतिय मणुस्साणं उप्पज्जइ, किं पमत्तसंजय—सम्मदिट्ठि—पज्जत्तग—संखेज्जवासाउय—कम्मभूमिय—गब्भवक्कंतिय—मणुस्साणं? अपमत्तसंजय—सम्मदिट्ठि—पज्जत्तग—संखेज्जवासाउय— कम्मभूमिय—गब्भवक्कंतिय--मणुस्साणं?, गोयमा! अपमत्तसंजय—सम्मदिट्ठि—पज्जत्तग—संखेज्जवासाउय-कम्मभूमिय—गब्भवक्कंतिय-मणुस्साणं उपज्जइ, नो पमत्तसंजय-सम्मदिट्ठि-पज्जत्तग-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमिय-गब्भवक्कंतिय-मणुस्साणं॥

छाया—यदि संयतसम्यग्दृष्टि—पर्याप्तक—संख्येयवर्षायुष्क—कर्मभूमिज—गर्भव्युत्क्रान्तिक—मनुष्याणामुत्पद्यते, किं प्रमत्तसंयतसम्यग्दृष्टि—पर्याप्तक—संख्येयवर्षायुष्क—कर्मभूमिज—गर्भव्युत्क्रान्तिक—मनुष्याणाम्?, अप्रमत्तसंयत—सम्यग्दृष्टि—पर्याप्तक—संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज-गर्भव्युत्क्रान्तिक-मनुष्याणाम्? गौतम! अप्रमत्त-संयत सम्यग्दृष्टि—पर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज-गर्भव्युत्क्रान्तिक मनुष्याणामुत्पद्यते, नो प्रमत्त—संयत—सम्यग्दृष्टि-पर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क—कर्मभूमिज-गर्भव्युत्क्रान्तिक-मनुष्याणाम्॥

टीका—'जइ संजय—सम्मदिट्ठि' इत्यादि। व्याख्या निगदसिद्धा। नवरं—प्रमत्तसंयताः—प्रमाद्यन्ति—मोहनीयादिकर्मप्रभावतः संज्वलन कषायनिद्राद्यन्यतमप्रमादयोगतः संयमयोगेषु सीदन्तीति प्रमत्ताः, 'कर्तरि क्तः,' प्रमत्ताश्च ते संयताः प्रमत्त-

---

'जइ संजयसम्मदिट्ठि०' इत्यादि।

फिर गौतम पूछते हैं—हे भदन्त! यदि मनःपर्ययज्ञान संयत सम्यग्दृष्टि मनुष्यों को होता है जैसा कि ऊपर आपने कहा है कि जो मनुष्य पर्याप्तक हैं, संख्यातवर्ष की आयुवाला है, कर्मभूमि में जन्मा है और गर्भ से उत्पन्न हुआ है ऐसे सकलसंयमी सम्यग्दृष्टि मनुष्य

"जइ संजयसम्मदिट्ठि ઇત્યાદિ.

વળી ગૌતમ પૂછે છે—"હે ભદન્ત! જો મનઃપર્યયજ્ઞાન સંયત-સમ્યગ્દૃષ્ટિ મનુષ્યોને થાય છે જેમ કે આપે ઉપર કહ્યું કે જે મનુષ્યો પર્યાપ્તક છે, સંખ્યાત વર્ષનાં આયુષ્યવાળા છે, કર્મભૂમિમાં જન્મ્યાં છે, અને ગર્ભમાંથી ઉત્પન્ન થયાં છે એવાં સકળસંયમી સમ્યગ્દૃષ્ટિ મનુષ્યોને મનઃપર્યયજ્ઞાન થાય

संयतास्ते च प्रायो गच्छवासिनः, तेषां क्वचिदनुपयोगसंभवात् । अप्रमत्तसंयतास्तु प्रायो जिनकल्पिकाः परिहारविशुद्धिकाः, यथालंदकल्पिकाः, प्रतिमाप्रतिपन्नास्तेषां सततोपयोगात् । इह तु ये गच्छवासिनः प्रमादरहितास्तेऽप्यप्रमत्ता द्रष्टव्याः । गच्छनिर्गता अपि प्रमादरहिता अप्रमत्ता बोध्याः ॥

के मनःपर्ययज्ञान होता है, तो क्या पूर्वोक्त विशेषणवाले प्रमत्त-संयत सम्यग्दृष्टि को होता है? अथवा इन विशेषणोंवाले अप्रमत्त संयत सम्यग्दृष्टि मनुष्यों को होता है?

भावार्थ—गौतम का प्रश्न-यह मनःपर्ययज्ञान छठवें गुणस्थानवर्ती मुनिजनों के होता है या सातवें गुणस्थानवर्ती मुनिजनों के होता है? भगवान् कहते हैं-हे गौतम! यह मनःपर्ययज्ञान उन्हीं सम्यग्दृष्टि मनुष्यों के होता है जो पर्याप्तक आदि विशेषणोंवाले होते हुए अप्रमत्त बनकर संयम का पालन करते हैं, अर्थात्-सप्तमगुणस्थानवर्ती होते हैं। जो सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक आदि विशेषणों से सुशोभित होते हुए भी प्रमाद्युक्त हो संयम का पालन करते हैं-षष्ठगुणस्थानवर्ती होते हैं-उनको मनःपर्ययज्ञान नहीं होता है। मोहनीय आदि कर्म के प्रभाव से जो मुनिजन संज्वलन कषाय एवं निद्रा आदिरूप किसी एक प्रमाद में पतित होकर संयममें शिथिलता करते हैं वे प्रमत्तसंयत हैं। ऐसे साधुजन प्रायः गच्छवासी होते हैं। इनका संयमस्थान में कहीं अनुपयोग भी हो सकता है। जो अप्रमत्तसंयत होते हैं वे प्रायः जिनकल्पी होते हैं।

છે, તો શું પૂર્વોક્તવિશેષણવાળા પ્રમત્ત-સંયત-સમ્યગ્દૃષ્ટિને થાય છે? અથવા એ વિશેષણોથી યુકત અપ્રમત્ત-સંયત-સમ્યગ્દૃષ્ટિ મનુષ્યોને થાય છે?”

ભાવાર્થ—ગૌતમનો પ્રશ્ન-આ મનઃપર્યય જ્ઞાન છઠ્ઠાં ગુણસ્થાનવર્તી મુનિજનોને થાય છે કે સાતમાં ગુણસ્થાનવર્તી મુનિજનોને થાય છે? ભગવાન કહે છે-“હે ગૌતમ! આ મનઃપર્યયજ્ઞાન એજ સમ્યગ્દૃષ્ટિ મનુષ્યોને થાય છે કે જેઓ પર્યાપ્તક આદિ વિશેષણોવાળા હોય છે, અ પ્રમત્ત બનીને સંયમનું પાલન કરે છે, એટલે કે સપ્તમગુણસ્થાનવર્તી હોય છે, જેઓ સમ્યગ્દૃષ્ટિ પર્યાપ્તક આદિ વિશેષણોથી સુશોભિત હોવા છતાં પણ પ્રમાદવાળા થઈને સંયમનું પાલન કરે છે-છઠ્ઠાગુણસ્થાનવર્તી હોય છે-તેમને મનઃપર્યયજ્ઞાન થતું નથી.” મોહનીય આદિ કર્મના પ્રભાવથી જે મુનિજન સંજ્વલન કષાય અને નિદ્રા આદિ રૂપ કોઈ એક પ્રમાદમાં પડીને સંયમમાં શિથિલતા કરે છે તેઓ પ્રમત્તસંયત છે. એવાં સાધુજન પ્રાયઃ ગચ્છવાસી હોય છે. તેમના સંયમ-સ્થાનમાં ક્યાંક અનુપયોગ પણ હોઈ શકે છે. જેઓ અપ્રમત્ત-સંયત હોય છે

मूलम्—जइ अप्पमत्त संजय-सम्मदिट्ठि-पज्जत्तग-संखेज्जवासाउयकम्मभूमिय-गब्भवक्कंतिय-मणुस्साणं उप्पज्जइ, किं इड्ढिपत्त-अप्पमत्त-संजय-सम्मदिट्ठि-पज्जत्तग - संखेज्जवासाउय-कम्मभूमिय-गब्भवक्कंतिय-मणुस्साणं ?, अणिड्ढिपत्त-अप्पमत्त-संजय-सम्मदिट्ठि- पज्जत्तग - संखेज्जवासाउय-कम्मभूमिय-गब्भवक्कंतिय-मणुस्साणं ?, गोयमा ! इड्ढिपत्त-अपमत्त-संजय-सम्मदिट्ठि-पज्जत्तग-संखेज्जवासाउय - कम्मभूमिय-गब्भवक्कंतिय -मणुस्साणं उप्पज्जइ, नो अणिड्ढिपत्त-अप्पमत्त-संजय-सम्मदिट्ठिपज्जत्तग-संखेज्जवासाउय--कम्मभूमिय--गब्भवक्कंतिय--मणुस्साणं मणपज्जवनाणं समुप्पज्जइ ॥ सू० १७ ॥

छाया—यदि अप्रमत्तसंयत–सम्यग्दृष्टि–पर्याप्तक–संख्येयवर्षायुष्ककर्मभूमिज–गर्भव्युत्क्रान्तिक-मनुष्याणामुत्पद्यते, किं ऋद्धिप्राप्ताऽप्रमत्त-संयत-सम्यग्दृष्टि-पर्याप्तक–संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज–गर्भव्युत्क्रान्तिक–मनुष्याणाम् ?, अनृद्धिप्राप्ताप्रमत्त-संयत-सम्यग्दृष्टि-पर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज–गर्भव्युत्क्रान्तिक–मनुष्याणाम् ?, गौतम ! ऋद्धिप्राप्ताऽप्रमत्त-संयत-सम्यग्दृष्टि- पर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज–गर्भव्युत्क्रान्तिक–मनुष्याणामुत्पद्यते, नो अनृद्धिप्राप्ताऽप्रमत्तसंयत–सम्यग्दृष्टि–पर्याप्तक–संख्येयवर्षायुष्क–कर्मभूमिज – गर्भव्युत्क्रान्तिक–मनुष्याणां मनःपर्ययज्ञानं समुत्पद्यते ॥ सू० १७ ॥

परिहार विशुद्धि नामक चारित्र का पालन करते हैं । यथालंदकल्पिक होते है । पतिमाप्रतिपन्न होते हैं । संयम में इनका सतत उपयोग रहता है । वहां पर जो गच्छवासी साधुजन हैं वे यदि प्रमादरहित होकर संयम का पालन करते हैं तो वे भी अप्रमत्तसंयत हैं । तथा गच्छ से निकले हुए भी प्रमादरहित साधुजन अप्रमत्त ही जानना चाहिये ।

તેઓ સામાન્ય રીતે જિનકલ્પી હોય છે, પરિહાર વિશુદ્ધિ નામનાં ચારિત્રનું પાલન કરે છે. યથાલંદકલ્પિક હોય છે, પ્રતિમાપ્રતિપન્ન હોય છે, સંયમમાં તેમનો હંમેશા ઉપયોગ રહે છે. અહીં જે ગચ્છવાસી સાધુજન છે તેઓ જો પ્રમાદ રહિત થઈને સંયમનું પાલન કરે છે તો તેઓ પણ અપ્રમત્ત સંયત છે. તથા ગચ્છમાંથી નીકળી ગયેલ પ્રમાદરહિત સાધુજનોને પણ અપ્રમત્ત જ જાણવા જોઈએ.

टीका—' जइ अप्पमत्तसंजय० ' इत्यादि । व्याख्या स्पष्टा, नवरम्—ऋद्धीः—आमर्शौषध्यादिलक्षणाः प्राप्ता ऋद्धिप्राप्ताः, तद्विपरीताः अनृद्धिप्राप्ताः । विशिष्टमुत्तरोत्तरपूर्वार्थप्रतिपादकं श्रुतमवगाहमानाः श्रुतसामर्थ्यतस्तीव्रां तीव्रतरां शुभभावनामधिरोहन्तोऽप्रमत्तसंयता ऋद्धीः प्राप्नुवन्ति । आमर्शौषध्यादीनामन्यतमामृद्धिमवधिऋद्धिं वा प्राप्तस्य मनःपर्ययज्ञानमुत्पद्यते, नत्वनृद्धिप्राप्तस्येति भावः ।

' जइ अप्पमत्तसंजय० ' इत्यादि ।

गौतम मनःपर्ययज्ञान की प्राप्ति का यह पूर्वोक्त सब निमित्त सुनकर प्रभु से पुनः पूछते हैं कि—हे भदन्त ! यदि यही बात है कि मनःपर्ययज्ञान पर्याप्तक, संख्येय वर्षायुष्क, कर्मभूमिज—गर्भव्युत्क्रान्तिक अप्रमत्त-संयत सम्यग्दृष्टि मनुष्यों को ही उत्पन्न होता है तो क्या जो ऋद्धिप्राप्त—ऋद्धिवाले उक्तविशेषणविशिष्ट मनुष्यों को उत्पन्न होता है ? अथवा अनृद्धिप्राप्त ऋद्धिरहित पूर्वोक्त विशेषणवाले मनुष्यों को उत्पन्न होता है ? भगवान् ने कहा—हे गौतम ! यह मनःपर्ययज्ञान ऋद्धिप्राप्त पूर्वोक्त विशेषणवाले मनुष्यों को ही उत्पन्न होता है किन्तु अनृद्धिप्राप्त—ऋद्धिरहित को नहीं होता है ।

भावार्थ—प्रभुने गौतम को इस सूत्र द्वारा यह समझाया है कि जो अप्रमत्त संयत सम्यग्दृष्टि मनुष्य ऋद्धिप्राप्त—आमर्श—औषधि आदि लब्धिसंपन्न होते हैं उन्हीं को यह मनःपर्ययज्ञान उत्पन्न होता है । जिनके आमर्श—औषधि आदि लब्धियां प्राप्त नहीं हुई हैं उनके नहीं होता है ।

" जइ अप्रमत्तसंजय० " ઈત્યાદિ.

ગૌતમ મનઃપર્યય જ્ઞાનની પ્રાપ્તિના પૂર્વકથિત સર્વ નિમિત્ત સાંભળીને પ્રભુને ફરીથી પૂછે છે—" હે ભદન્ત ! જો આજ વાત છે કે મનઃપર્યયજ્ઞાન પર્યાપ્તક, સંખ્યેય વર્ષના આયુવાળાં, કર્મભૂમિજ, ગર્ભવ્યુત્ક્રાન્તિક અપ્રમત—સંયત સમ્યગ્દૃષ્ટિ મનુષ્યને જ ઉત્પન્ન થાય છે તો શું જે ઋદ્ધિવાળા, ઉપર કહેલ વિશેષણવાળા મનુષ્યોને ઉત્પન્ન થાય છે કે ઋદ્ધિરહિત પૂર્વોકતવિશેષણવાળા મનુષ્યોને ઉત્પન્ન થાય છે ? " ભગવાને કહ્યું—" હે ગૌતમ ! આ મનઃપર્યય જ્ઞાન ઋદ્ધિવાળા પૂર્વોકતવિશેષણવાળા મનુષ્યોને જ ઉત્પન્ન થાય છે પણ ઋદ્ધિરહિત મનુષ્યોને પ્રાપ્ત થતું નથી.

ભાવાર્થ—પ્રભુએ ગૌતમને આ સૂત્ર દ્વારા એ સમજાવ્યું કે જે અપ્રમત્ત સંયત સમ્યગ્દૃષ્ટિ મનુષ્યો ઋદ્ધિવાળા આમર્શ—ઔષધિ આદિ લબ્ધિવાળા હોય છે તેમને જ આ મનઃપર્યયજ્ઞાન ઉત્પન્ન થાય છે. જેમને આમર્શ—ઔષધિ આદિ લબ્ધિયો પ્રાપ્ત થઈ નથી તેમને થતું નથી. કેટલાક અપ્રમત—સંયત—સમ્યગ્

ननु—अस्यैव सूत्रस्य प्रारंभे 'मनःपर्ययज्ञानं मनुष्याणामुत्पद्यते' इत्युक्ते सामर्थ्याद् 'अमनुष्याणां नोत्पद्यते' इत्यर्थो ज्ञातुं शक्यते, ततः कथमुच्यते—'नो अमणुस्साणं उप्पज्जइ' इत्यादि ?।

उच्यते—इह शिष्यास्त्रिविधा भवन्ति, उद्‌घटितज्ञाः, मध्यमज्ञाः, प्रपञ्चितज्ञाश्च। तत्र ये उद्‌घटितज्ञास्ते गुरुणा यथोक्तसामर्थ्यम् तदवबुध्यन्ते, तथैव मध्य-

---

कितनेक अप्रमत्त संयत सम्यग्दृष्टि जीव विशिष्ट तथा उत्तरोत्तर अपूर्व २ अर्थ के प्रतिपादक आगमों के सम्यक् अभ्यास से उनके पूर्ण ज्ञाता बन जाते हैं। इससे उनके चित्त में तीव्र तीव्रतर शुभ भावनाए जाग्रत होती रहती हैं, अतः इन भावनाओं के बल पर वे आमर्श-औषधि आदि लब्धियाँ को प्राप्त कर लिया करते हैं। जिन अप्रमत्त संयतों के आमर्श-औषधि आदि लब्धियों में से कोइ एक लब्धि भी प्राप्त हो चुकी हैं, अथवा अवधिज्ञानलब्धि के वे धारक बन चुके हैं तो उनको मनःपर्ययज्ञान अवश्य होता है, परन्तु अप्रमत्त, संयम के धारक होने पर भी यदि वे ऋद्धिप्राप्त नहीं हैं तो ऐसी स्थिति में उनको मनःपर्ययज्ञान उत्पन्न नहीं होता है।

शंका—इसी सूत्र के प्रारंभ में मनःपर्ययज्ञान मनुष्यों के उत्पन्न होता है ऐसा कहने पर सामर्थ्य से ही यह बात स्पष्ट हो जाती है कि अमनुष्यों के मनःपर्ययज्ञान उत्पन्न नहीं होता है, तब फिर "अमनुष्याणां नोत्पद्यते" ऐसा क्यों कहा ?

દૃષ્ટિ જીવ વિશિષ્ટ તથા ઉત્તરોત્તર અપૂર્વ અપૂર્વ અર્થના પ્રતિપાદક આગમોના સમ્યગ્ અભ્યાસથી તેમના પૂર્ણ જાણકાર થઈ જાય છે, તેથી તેમનાં ચિત્તમાં તીવ્ર અને તીવ્રતર શુભ ભાવનાઓ જાગૃત થતી રહે છે, તેથી એ ભાવનાઓના પ્રભાવથી તેઓ આમર્શ-ઔષધિ આદિ લબ્ધિઓને પ્રાપ્ત કર્યા કરે છે. જે અપ્રમત્ત સંયતોને આમર્શ-ઔષધિ આદિ લબ્ધિઓમાંથી કોઇ એક લબ્ધિ પણ પ્રાપ્ત થઈ ગઈ હોય, અથવા અવધિજ્ઞાનલબ્ધિના તેઓ ધારનારા બની ગયા હોય તો તેમને મનઃપર્યયજ્ઞાન જરૂર ઉત્પન્ન થાય છે, પણ અપ્રમત્ત સંયમના ધારણ કરનારા હોવા છતાં પણ જો તેઓને ઋદ્ધિ પ્રાપ્ત થઈ ન હોય તો એવી સ્થિતિમાં તેમને મનઃપર્યયજ્ઞાન ઉત્પન્ન થતું નથી.

શંકા—આજ સૂત્રની શરૂઆતમાં 'મનઃપર્યય જ્ઞાન મનુષ્યોને ઉત્પન્ન થાય છે' એમ કહેવા માત્રથી જ એ વાત સ્પષ્ટ થઈ જાય છે કે અમનુષ્યોને મનઃપર્યય જ્ઞાન ઉત્પન્ન થતું નથી. છતાં પણ "अमनुष्याणां नोत्पद्यते" એવું શા માટે કહ્યું?

मज्ञा अपि। ये तु शिष्या अव्युत्पन्नत्वान्न यथोक्तसामर्थ्यावगमकुशलास्ते प्रपञ्चितमेवार्थं ज्ञातुं समर्था भवन्ति, ततस्तेषानुग्रहाय सामर्थ्यलब्धमप्यर्थं बोधयितुं गुरवः यतन्ते। महापुरुषाः खलु परमदयालुत्वादविशेषण सर्वेषामनुग्रहाय प्रवर्तन्ते, ततो न कश्चिद् दोषः॥ सू० १७॥

उत्तर—इसका कारण इस प्रकार है-शिष्य तीन प्रकार के होते हैं १ उद्घटितज्ञ, २ मध्यमज्ञ, ३ प्रपंचितज्ञ। इनमें जो प्रथम और द्वितीय नंबर के शिष्य हुआ करते हैं वे गुरु के द्वारा कथित अर्थके सामर्थ्य से लभ्य अर्थ को जान लिया करते हैं। परन्तु जो तीसरे नंबर के शिष्य होते हैं वे गुरु के द्वारा कथित अर्थ के सामर्थ्य से लभ्य अर्थ को जानने में अकुशलमति हुआ करते हैं। क्यों कि इनकी बुद्धि इतनी व्युत्पन्न नहीं होती है, अतः इनके समक्ष जबतक विस्तारपूर्वक बात नहीं कही जावे तबतक वे नहीं समझ सकते हैं, अतः इनके ऊपर अनुग्रह की भावना से प्रेरित बने हुए गुरु महाराज सामर्थ्य लभ्य भी अर्थ को उन्हें समझाने के लिये प्रवृत्तिशील होते हैं, और इसीलिये वे उसको फिर शब्दों द्वारा प्रकट कर दिया करते हैं। महापुरुष परम दयालु होते हैं, अतः सब जीवों के अनुग्रह की भावना से वे विना पक्षपात के सामान्यरूप से 'सब को बोध हो' इसी एक अभिलाषा के वशवर्ती बनकर अर्थ का प्रतिपादन किया करते हैं और इसीके अनुरूप उनकी प्रवृत्ति हुआ करती है॥ सू० १७॥

ઉત્તર—તેનું કારણ આ પ્રમાણે છે-શિષ્ય ત્રણ જાતના હોય છે (૧) ઉધ્ધટિતજ્ઞ, (૨) મધ્યમજ્ઞ, (૩) પ્રપંચિતજ્ઞ. તેઓમાં પહેલા અને બીજા નંબરના જે શિષ્યો હોય છે તેઓ ગુરુ વડે કહેવાયેલા અર્થના સામર્થ્યથી લભ્ય અર્થને જાણી લે છે, પણ જે ત્રીજા નંબરના શિષ્યો હોય છે તેઓ ગુરુના દ્વારા કહેવાયેલા અર્થના સામર્થ્યથી લભ્ય અર્થને જાણવામાં અકુશળ મતિવાળા હોય છે, કારણ કે તેમની બુદ્ધિ એટલી બધી કુશળ હોતી નથી, તેથી તેમની સામે જ્યાં સુધી વિસ્તારપૂર્વક વાત કહેવામાં ન આવે ત્યાં સુધી તેઓ સમજી શકતા નથી. તેથી જ તેના ઉપર કૃપા કરવાની ભાવનાથી પ્રેરાયેલા ગુરુ મહારાજ સામર્થ્ય લભ્ય અર્થ પણ તેમને સમજાવવાને માટે પ્રવૃત્તિશીલ રહે છે, અને તેથી તેઓ તેને ફરીથી શબ્દો દ્વારા પ્રગટ કરે છે, મહાપુરુષ ઘણા દયાળુ હોય છે. તેથી બધા જીવો પર કૃપા કરવાની ભાવનાથી પક્ષપાત વિના સામાન્યરૂપે બધાને બોધ થાય, એવી એક અભિલાષાને તાબે થઈને અર્થનું પ્રતિપાદન કર્યા કરે છે. અને તેને અનુરૂપ તેમની પ્રવૃત્તિ થયા કરે છે.॥ સૂ ૧૭॥

ऋद्धिप्राप्तानामप्रमत्तसंयतानामुत्पद्यमानं मनःपर्ययज्ञानं द्विधा भवति, तदाह–

मूलम्–तं च दुविहं उपज्जइ, तं जहा–उज्जुमई य, विउलमई य। तं समासओ चउव्विहं पन्नत्तं, तं जहा–दव्वओ, खित्तओ, कालओ, भावओ।

तत्थ दव्वओणं उज्जुमई अणंते, अणंतपएसिए खंधे जाणइ पासइ। ते चेव विउलमई अब्भहियतरगं विउलतरगं विसुद्धतरगं, वितिमिरतरगं जाणइ पासइ।

खित्तओ णं उज्जुमई य जहन्नेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं अहे जाव इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए उवरिम-हेट्ठिल्ले खुड्डगपयरे, उड्ढं जाव जोइसस्स उवरिमतले, तिरियं जाव अंतोमणुस्सखित्ते अड्ढाइज्जेसु दीवसमुद्देसु, पन्नरससु कम्मभूमिसु, तीसाए अकम्मभूमिसु, छप्पन्नाए अंतरदीवगेसु, सन्निपंचिंदियाणं पज्जत्तयाणं मणोगए भावे जाणइ पासइ। तं चेव विउलमई अड्ढाइज्जेहिमंगुलेहिं अब्भहियतरगं विउलतरगं विसुद्धतरगं वितिमिरतरगं खेत्तं जाणइ पासइ।

छाया—तच्च द्विविधमुत्पद्यते, तद्यथा–ऋजुमतिश्च विपुलमतिश्च। तत् समासतश्चतुर्विधं प्रज्ञप्तम्। तद्यथा–द्रव्यतः, क्षेत्रतः, कालतो भावतः।

तत्र द्रव्यतः खलु ऋजुमतिरनन्तान् अनन्तप्रदेशिकान् स्कन्धान् जानाति पश्यति। तान् चैव विपुलमतिरभ्यधिकतरान् विपुलतरकं विशुद्धतरकं वितिमिरतरकं जानाति पश्यति,

क्षेत्रतः खलु ऋजुमतिश्च जघन्येनाङ्गुलस्याऽसंख्येयभागम्। उत्कर्षेणाऽधो यावदस्या रत्नप्रभायाः पृथिव्या उपरितनानधस्तनान् क्षुल्लकप्रतरान्, ऊर्ध्वं यावज्ज्योतिष्कस्योपरितनतलम्, तिर्यग्यावदन्तोमनुष्यक्षेत्रे–अर्धतृतीयेषु द्वीपसमुद्रेषु, पञ्चदशसु कर्मभूमिषु, त्रिंशदकर्मभूमिषु, षट्पञ्चाशदन्तरद्वीपेषु संज्ञिपञ्चेन्द्रियाणां पर्याप्तकानां मनोगतान् भावान् जानाति पश्यति। तच्चैव विपुलमतिरर्धतृतीयैरङ्गुलैरभ्यधिकतरकं विपुलतरकं विशुद्धतरकं वितिमिरतरकं क्षेत्रं जानाति पश्यति।

कालओ णं उज्जुमई जहन्नेणं पलिओवमस्स असंखिज्जयभागं, उक्कोसेणावि पलिओवमस्स असंखिज्जयभागं अईयमणागयं वा कालं जाणइ पासइ। तं चेव विउलमई अब्भहियतरगं विउलतरगं विसुद्धतरगं वितिमिरतरगं कालं जाणइ पासइ।

भावओ णं उज्जुमई अणंते भावे जाणइ पासइ । सव्वभावाणं अणंतभागं जाणइ पासइ । तं चेव विउलमई अब्भहियतरगं विउलतरगं विसुद्धतरगं वितिमिरतरगं भावं जाणइ पासइ ॥

कालतः खलु ऋजुमतिर्जघन्येन पल्योपमस्यासंख्येयभागम्, उत्कर्षेणापि पल्योपमस्यासंख्येयभागमतीतमनागतं वा कालं जानाति पश्यति। तच्चैव विपुलमतिरभ्यधिकतरकं विपुलतरकं विसुद्धतरकं वितिमिरतरकं कालं जानाति पश्यति।

भावतः खलु ऋजुमतिरनन्तान् भावान् जानाति पश्यति, सर्वभावानामनन्तभागं जानाति पश्यति। तच्चैव विपुलमतिरभ्यधिकतरकं विपुलतरकं विशुद्धतरकं वितिमिरतरकं जानाति पश्यति ॥

टीका—'तं च दुविहं उप्पज्जइ' इत्यादि। तन्मनःपर्ययज्ञानं द्विविधमुत्पद्यते। तद् यथा—ऋजुमतिश्चविपुलमतिश्च। तत्र—मननं मतिः संवेदनमित्यर्थः, ऋज्वी= सामान्यग्राहिणी मतिः ऋजुमतिः, 'घटोऽनेन चिन्तितः' इत्यध्यवसायहेतुभूता

ऋद्धिप्राप्त अप्रमत्त संयतों के उत्पद्यमान मनःपर्ययज्ञान दो प्रकार का होता है सो सूत्रकार कहते हैं—'तं च दुविहं' इत्यादि।

वह मनःपर्ययज्ञान दो प्रकार से उत्पन्न होता है। ये दो प्रकार ये हैं—प्रथम ऋजुमति और दूसरा विपुलमति। मति-शब्द का अर्थ संवेदनज्ञान है। ऋजुमति-शब्द का अर्थ सामान्य है। इस प्रकार विषय को सामान्य रूप से ग्रहण करनेवाला ज्ञान ऋजुमति, और विषय को विशेषरूप से

ऋद्धिवाળા અપ્રમત્ત સંયતોને ઉત્પન્ન થતું મનઃપર્યયજ્ઞાન બે પ્રકારનું હોય છે, તે સૂત્રકાર કહે છે-"तं च दुविहं" ઈત્યાદિ—

તે મનઃપર્યયજ્ઞાન બે રીતે ઉત્પન્ન થાય છે. તે બે પ્રકાર આ છે-પહેલું રૂજુમતિ અને બીજું વિપુલમતિ. મતિ-શબ્દનો અર્થ સંવેદન-"જ્ઞાન" છે. 'ઋજુ' શબ્દનો અર્થ સામાન્ય છે. આ રીતે વિષયને સામાન્યરૂપથી ગ્રહણ કરનારૂં જ્ઞાન ઋજુમતિ અને વિષયને વિશેષરૂપથી ગ્રહણ કરનારૂં જ્ઞાન વિપુ-

कतिपयपर्यायविशिष्टमनोद्रव्यप्रतिपत्तिरित्यर्थः। विपुला=विशेषग्राहिणी मतिर्विपुलमतिः। 'घटोऽनेन चिन्तितः, स च सौवर्णः स्थूलो नूतनोऽपवरकस्थितः पयःपूर्णः' इत्यादिविशेषाध्यवसायहेतुभूता मनोद्रव्यप्रतिपत्तिरित्यर्थः। यद्वा-विपुलमतिः-विपुलं=बहु विशेषसंख्योपेतं वस्तु मन्यते=गृह्णातीति विपुलमतिः। बाहुलकात् कर्तरि क्ति-प्रत्ययः। यदि वा-विपुला=पर्यायशतोपेता चिन्तितघटादिवस्तुविशेषग्राहिणी मति-र्विपुलमतिः। तद् द्विविधमपि मनःपर्ययज्ञानं समासतः=संक्षेपेण, चतुर्विधं प्रज्ञप्तं=प्ररूपितम्। तद् यथा-द्रव्यतः=द्रव्यमाश्रित्य, क्षेत्रतः=क्षेत्रमाश्रित्य, कालतः=कालमाश्रित्य, भावतः=भावमाश्रित्य।

तत्र ऋजुमतिर्द्रव्यमाश्रित्यानन्तान् अनन्तप्रदेशिकान्=अनन्तपरमाणुकान्, स्कन्धान्=विशिष्टैकपरिणतान् परस्परसंयुक्तपुद्गलसमूहान् अर्धतृतीयद्वीपसमुद्रान्तर्वर्तिपर्याप्तसंज्ञिपञ्चेन्द्रियैर्मनस्त्वेन परिणमितान् जानाति=मनःपर्ययज्ञानावरणीयक्षयोपशमसामर्थ्यवशात् साक्षात्करोति पश्यति=तन्मनोग्राह्यं बाह्यमर्थमनुमानतो जानातीत्यर्थः।

ग्रहण करनेवाला ज्ञान विपुलमति है। जैसे-"इसने घटका चिन्तवन किया है" इस तरह की अध्यवसाय की हेतुभूत जो कतिपय पर्याय विशिष्ट मनोद्रव्य की प्रतिपत्ति है वह ऋजुमति-मनःपर्ययज्ञान है। तथा "इसने जो घटका चिन्तवन किया है, वह सोने के बने हुए घट का चिन्तवन किया है, तथा वह स्थूल है नवीन है, कोठे में रक्खा हुआ है।" इस तरह जो विशेष ज्ञान की हेतुभूत मनोद्रव्य की प्रतिपत्ति है वह विपुलमति-मनःपर्यय ज्ञान है। अथवा-जो ज्ञान विपुल-बहुत विशेषसंख्यासंपन्नवस्तु को ग्रहण करता है, अथवा-अनेक पर्याय से युक्त चिन्तित घटादिवस्तुविशेष को जानता है वह विपुलमति-मनःपर्ययज्ञान है यह दोनों प्रकार का मनःपर्यय ज्ञान संक्षेप से चार प्रकार का बत-

---

લમતિ છે. જેમકે-"તેણે ઘડાનો વિચાર કર્યો" આ પ્રકારની અધ્યવસાયની હેતુભૂત જે કેટલીક પર્યાયવિશિષ્ટ મનોદ્રવ્યની પ્રાપ્તિ છે તે ઋજુમતિ મનઃપર્યય જ્ઞાન છે. તથા "તેણે જે ઘડાનો વિચાર કર્યો છે તે સોનાના બનેલા ઘડાનો વિચાર કર્યો છે, તથા તે સ્થૂળ છે, નવીન છે, અને કોટડીમાં રાખેલો છે" આ રીતે જે વિશેષ જ્ઞાનની હેતુભૂત મનોદ્રવ્યની પ્રાપ્તિ છે તે વિપુલમતિ મનઃપર્યય જ્ઞાન છે. અથવા-જે જ્ઞાન વિપુલ-બહુ-વિશેષ-સંખ્યાસંપન્ન-વસ્તુને ગ્રહણ કરે છે, અથવા અનેક પર્યાયવાળી ધારેલી ઘટાદિ વસ્તુવિશેષને જાણે છે તે વિપુલમતિ મનઃપર્યય જ્ઞાન છે. એ બન્ને પ્રકારના મનઃપર્યય જ્ઞાનને સંક્ષેપમાં

मनस्त्वपरिणतस्कन्धैरालोचितं बाह्यं घटादिरूपमर्थं मनःपर्ययज्ञानी न प्रत्यक्षतया जानाति किन्तु मनोद्रव्यमेव। बाह्यं घटादिरूपं चिन्तितमर्थं त्वनुमानतोऽवगच्छति, तन्मनसस्तथाविधपरिणामान्यथानुपपत्त्या तदनुमानसंभवात्। यतो मनःपर्ययज्ञानं मूर्तद्रव्यालम्बनमेव भवति, अनुमानेन तु अमूर्तमपि धर्मास्तिकायादिकं द्रव्यं जानाति। न च तन्मनःपर्ययज्ञानिना साक्षात्कर्तुं शक्यते, अतस्तच्चिन्तितमर्थं घटादिकरूपमनुमानादेव जानातीति बोध्यम्। ततस्तं बाह्यमर्थमाश्रित्य पश्यतीत्युच्यते।

लाया गया है, वह इस प्रकार–द्रव्य की अपेक्षा, क्षेत्र की अपेक्षा, काल की अपेक्षा और भाव की अपेक्षा लेकर। इनमें द्रव्य की अपेक्षा लेकर मनःपर्ययज्ञान अनंत और अनंत प्रदेशवाले स्कंधो को जानता और देखता है। पुद्गलपरमाणुओं की विशिष्ट एक अवस्थारूप हुई परिणति का नाम स्कंध है। अढाई द्वीपवर्ती मनवाले संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त किसी भी वस्तु का चिन्तवन मन से करते हैं, चिन्तवन के समय चिन्तनीय वस्तु के भेद के अनुसार चिन्तनकार्यमें प्रवृत्त मन भिन्न २ आकृतियों को धारण करता है, ये आकृतियां ही मन की पर्यायें हैं। इन मानसिक आकृतियों को मनःपर्ययज्ञानी साक्षात् जानता है, और चिन्तनीय वस्तु को मनःपर्ययज्ञानी अनुमान से जानता है। जैसे कोई मानस शास्त्र का अभ्यासी किसी का चहेरा देखकर या चेष्टा प्रत्यक्ष देखकर उस के आधार से व्यक्ति के मनोगत भावों को अनुमान से जान लेता है उसी प्रकार मनःपर्ययज्ञान से किसी के मन की आकृतियों को प्रत्यक्ष

ચાર પ્રકારનું બતાવ્યું છે, તે આ પ્રમાણે છે–દ્રવ્યની અપેક્ષાએ, ક્ષેત્રના અપેક્ષાએ, કાળની અપેક્ષાએ અને ભાવની અપેક્ષાએ. તેમનામાં દ્રવ્યની અપેક્ષાએ લઈને મનઃપર્યયજ્ઞાન અનંતાનંત પ્રદેશવાળા સ્કંધોને જાણે અને દેખે છે. પુદ્‌ગલપરમાણુઓની એક વિશિષ્ટ અવસ્થારૂપ પરિણતિનું નામ સ્કંધ છે. અઢાઈ દ્વીપવર્તી મનવાળા સંજ્ઞી પંચેન્દ્રિય પર્યાપ્ત કોઈ પણ વસ્તુનુ ચિન્તવન મનથી કરે છે, ચિન્તવનના સમયે ચિન્તનીય વસ્તુના ભેદ પ્રમાણે ચિન્તન કાર્યમાં પ્રવૃત્ત મન ભિન્ન ભિન્ન આકૃતિયોને ધારણ કરતુ રહે છે, એ આકૃતિયો જ મનની પર્યાયો છે. એ માનસિક આકૃનિયોને મનઃપર્યયજ્ઞાની સાક્ષાત્ જાણે છે, અને ચિન્તનીય વસ્તુને મનઃપર્યયજ્ઞાની અનુમાનથી જાણે છે. જેમ કોઈ માનસશાસ્ત્રનો અભ્યાસી કોઈનો ચહેરો જોઇને અથવા ચેષ્ટા પ્રત્યક્ષ જોઈને તેના આધારે વ્યકિતના મનોગત ભાવોને અનુમાનથી જાણી લે છે, એજ રીતે મનઃપર્યયજ્ઞાની મનઃપર્યયજ્ઞાનથી કોઈના મનની આકૃતિયોને પ્રત્યક્ષ જોઈને

देखकर बादमें अभ्यासवश ऐसा अनुमान कर लेता है कि इस व्यक्तिने अमुक वस्तु का चिन्तवन किया है। इस तरह मनरूप से परिणत स्कंधों द्वारा आलोचित बाह्य घटादिकरूप अर्थ मनःपर्यय ज्ञानी प्रत्यक्षरूप से नहीं जानता है, उस को तो वह अनुमानद्वारा ही जानता है। प्रत्यक्ष-रूप से तो वह मनोद्रव्य को ही जानता है, क्यों कि वह ऐसा विचार करता है कि इसने अमुक वस्तु का चिन्तवन किया है, कारण कि इसका मन उस वस्तु के चिन्तन के समय अवश्य होने वाले अमुक प्रकार की परिणति–आकृति–से युक्त है, यदि ऐसा नहीं होता तो इस प्रकार की आकृति नहीं होती। इस तरह चिन्तनीय वस्तु का अन्यथानुपपत्ति द्वारा जानना ही अनुमान से जानना है। जैनदर्शनने अन्यथानुपपत्ति को अनु-मान से भिन्न नहीं माना है, उसका अन्तर्भाव अनुमानप्रमाणमें किया है इस तरह यद्यपि मनःपर्ययज्ञानी मूर्तद्रव्य को ही जानना है परन्तु अनुमानद्वारा वह धर्मास्तिकाय आदि अमूर्त्तद्रव्यों को भी जानता है। इन अमूर्तद्रव्यों का उस मनःपर्ययज्ञानधारीद्वारा साक्षात्कार नहीं किया जा सकता है। निष्कर्ष इसका यही है कि मनःपर्ययज्ञानी चिन्तवन किये गये घटादिरूप पदार्थको अनुमान से ही जानता है। यही बात प्रकट करनेके लिये सूत्रमें सूत्रकारने "पश्यति" इस क्रियाका प्रयोग किया है।

ત્યાર પછી અભ્યાસને કારણે એવું અનુમાન કરી લે છે કે આ વ્યકિતએ અમુક વસ્તુનું ચિન્તવન કર્યું છે. આ રીતે મનરૂપથી પરિણત સ્કંધો દ્વારા જોયેલ બાહ્ય ઘટાદિક રૂપ અર્થ મનઃપર્યયજ્ઞાની પ્રત્યક્ષરૂપે જાણતો નથી, તેને તો તે અનુમાનથી જ જાણે છે. પ્રત્યક્ષ રૂપે તો તે મનોદ્રવ્યને જ જાણે છે, કારણ કે તે એવો વિચાર કરે છે કે એણે અમુક વસ્તુનું ચિન્તવન કર્યું છે કારણ કે તેનું મન એ વસ્તુનાં ચિન્તવન સમયે જરૂર થનારી અમુક પ્રકારની પરિણતિ–આકૃ-તિવાળું છે. જો એમ ન હોત તો આ પ્રકારની આકૃતિ હોત નહીં" આ રીતે ચિન્તનીય વસ્તુને અન્યથાનુપપત્તિદ્વારા જાણવું એજ અનુમાનથી જાણ્યું ગણાય છે. જૈનદર્શને અન્યથાનુપપત્તિને અનુમાનથી ભિન્ન માનેલ નથી, તેનો અન્ત-ર્ભાવ અનુમાન પ્રમાણમાં કર્યો છે. આ રીતે જો કે મનઃપર્યયજ્ઞાની મૂર્ત દ્રવ્યને જ જાણે છે, પણ અનુમાનદ્વારા તે ધર્માસ્તિકાય આદિ અમૂર્ત દ્રવ્યોને પણ જાણે છે. એ અમૂર્ત દ્રવ્યોનો એ મનઃપર્યયજ્ઞાનીદ્વારા સાક્ષાત્કાર કરી શકાતો નથી. તેનું તાત્પર્ય એ છે કે મનઃપર્યયજ્ઞાની ચિન્તવન કરાયેલા ઘટાદિરૂપ પદાર્થને અનુમાનથી જ જાણે છે. આજ વાત પ્રગટ કરવાને માટે સૂત્રમાં સૂત્રકારે "પશ્યતિ" આ ક્રિયાનો પ્રયોગ કર્યો છે.

अथवा सामान्यत एकरूपेऽपि ज्ञाने क्षयोपशमस्य तत्तद्द्रव्याद्यपेक्षया वैचित्र्य-संभवादनेकविध उपयोगः संभवति। यथाऽत्रैव ऋजुमति-विपुलमतिरूपः। ततो विशिष्टतरमनोद्रव्याकारपरिच्छेदापेक्षया जानातीत्युच्यते। सामान्यमनोरूपद्रव्या-कार परिच्छेदापेक्षया तु पश्यतीति।

सामान्यत एकरूपेऽपि क्षयोपशमलम्भेऽपान्तराले द्रव्याद्यपेक्षया क्षयोपशमस्य विषमसंभवाद् विविधोपयोगसंभवो भवतीति, तदेवं विशिष्टतरमनोद्रव्याकारपरि-

---

अथवा—सामान्य से एकरूपज्ञानमें भी, उस द्रव्यादिक की अपेक्षा से क्षयोपशम की विचित्रता संभवित होने से अनेक प्रकारका उपयोग संभवित होता है। जैसे इसी मनःपर्ययज्ञानमें ऋजुमति एवं विपुलमति-रूप उपयोग का संभव होता है, इसीलिये विशिष्टतर मनोद्रव्य के आकारों के जानने के कारण सूत्रकार ने सूत्रमें "जानाति" यह क्रिया रखी है। तात्पर्य कहनेका यही है कि मनःपर्ययज्ञानी सामान्यरूप से मनोद्रव्य के आकारों का परिच्छेद जब करता है तब इस अपेक्षा वह "उन्हें देखता है" ऐसा कहा जाता है, और जब उन्हीं मनोद्रव्यों के आकारों का विशेषरूप से परिच्छेद करता है तब इस अपेक्षा वह "उन्हें जानता है" ऐसा कहा जाता है। इस तरह एक ही ज्ञानमें उसउस द्रव्यादिक की अपेक्षा क्षयोपशम की विचित्रता होने से उपयोग की विविधता का संभव है।

यद्यपि सामान्यरूप से उन२ कर्मोंका क्षयोपशम अपने २ ज्ञानादिक रूप कार्यों की प्रकटतामें विविधरूप न होकर एकरूप होता है फिर भी

અથવા—સામાન્ય રીતે એકરૂપજ્ઞાનમાં પણ દ્રવ્યાદિકની અપેક્ષાએ ક્ષયોપ-શમની વિચિત્રતા સંભવિત હોવાથી અનેક પ્રકારના ઉપયોગ સંભવિત હોય છે. જેમ કે તેજ મનઃપર્યયજ્ઞાનમાં ઋજુમતિ અને વિપુલમતિરૂપ ઉપયોગનો સંભવ હોય છે, તેથી વિશિષ્ટતર મનોદ્રવ્યોના આકારોને જાણવાને કારણે સૂત્રકારે સૂત્રમાં "जानाति" આ ક્રિયા રાખી છે. એમ કહેવાનું તાત્પર્ય એજ છે કે મનઃપર્યયજ્ઞાની સામાન્યરૂપથી મનોદ્રવ્યોના આકારોના પરિચ્છેદ જ્યારે કરે છે ત્યારે તે અપેક્ષાએ "તે તેમને જુવે છે" એમ કહેવાય છે, અને જ્યારે એજ મનોદ્રવ્યોના આકારોનું વિશેષરૂપથી પરિચ્છેદ કરે છે ત્યારે તે અપેક્ષા એ "તે તેમને જાણે છે" એવું કહેવાય છે. આ રીતે એક જ જ્ઞાનમાં દ્રવ્યાદિકની અપેક્ષાએ ક્ષયોપશમની વિવિધતા હોવાથી ઉપયોગની વિવિધતાનો સંભવ છે.

જો કે સામાન્યરૂપથી તે તે કર્મોનો ક્ષયોપશમ પોત-પોતાના જ્ઞાનાદિકરૂપ કાર્યોની પ્રગટતામાં વિવિધરૂપ ન હોતાં એકરૂપ હોય છે તો પણ વચ્ચે

च्छेदापेक्षया सामान्यरूपमनोद्रव्याकारपरिच्छेदो व्यवहारतो दर्शनरूप उक्तः। परमार्थतस्तु सोऽपि ज्ञानमेव, यतः सामान्यरूपमपि मनोद्रव्याकारं प्रतिनियतमेव पश्यति, प्रतिनियतविशेषग्रहणात्मकं च ज्ञानं, न तु दर्शनम्, अत एव सूत्रेऽपि दर्शनं चतुर्विधमेवोक्तं, न पञ्चविधमपि, मनःपर्ययदर्शनस्य परमार्थतोऽसंभवात्।

अन्तरालमें द्रव्यादिकों की अपेक्षा क्षयोपशममें विचित्रता आ जाती है, इस लिये विविध उपयोग की भी संभावना हो जाती है। इस तरह विशिष्टतर मनोद्रव्य के आकारों के परिच्छेद की अपेक्षा सामान्यरूप मनोद्रव्यों के आकारों के परिच्छेद को व्यवहार की अपेक्षा से "देखते हैं" एसा कह दिया गया है। परमार्थ की अपेक्षा तो वह सामान्याकार का परिच्छेदरूप ऋजुमति ज्ञान भी ज्ञान ही है। तात्पर्य इसका केवल यही है कि जब ऋजुमति सामान्यग्राही है तब तो वह दर्शनरूप ही हुआ, उस को ज्ञान क्यों कहा?-तो इस शंका का यह समाधान है कि ठीक वह-ऋजुमति सामान्यग्राही है परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है-केवल सामान्यग्राही ही है, इसका प्रयोजन केवल इतना ही है कि वह-ऋजुमति विशेषों को जानता अवश्य है परन्तु विपुलमति जितने विशेषों को जानता है उतने विशेषों को ऋजुमति नहीं जानता। यही बात टीकाकारने "यतः सामान्यरूपमपि मनोद्रव्याकारं प्रतिनियतमेव पश्यति" इस पंक्ति द्वारा स्पष्ट की है। जहां प्रतिनियत का ग्रहण है वही ज्ञान है,

દ્રવ્યાદિકોની અપેક્ષાએ ક્ષયોપશમમાં વિચિત્રતા આવી જાય છે, તેથી વિવિધ ઉપયોગની પણ સંભાવના રહે છે. આ રીતે વિશિષ્ટતર મનોદ્રવ્યના આકારોના પરિચ્છેદની અપેક્ષાએ સામાન્યરૂપ મનોદ્રવ્યોના આકારોના પરિચ્છેદને વ્યવહારની અપેક્ષાએ "જુવે છે" એમ કહેલ છે. પરમાર્થની અપેક્ષાએ તો તે સામાન્યાકારનું પરિચ્છેદરૂપ ઋજુમતિજ્ઞાન પણ જ્ઞાન જ છે. તેનું તાત્પર્ય ફક્ત એટલું જ છે કે જ્યારે ઋજુમતિ સામાન્યગ્રાહી છે તો પછી તે દર્શનરૂપ જ થયું, તેને જ્ઞાન કેમ કહ્યું ?. તો આ શંકાનું સમાધાન એ છે કે તે ઋજુમતિ સામાન્યગ્રાહી છે તે બરાબર છે પણ તેનું તાત્પર્ય એવું નથી કે તે વિશેષગ્રાહી નથી, ફક્ત સામાન્યગ્રાહી જ છે. એનો આશય ફક્ત એટલો જ છે કે તે ઋજુમતિ વિશેષોને અવશ્ય જાણે છે પણ વિપુલમતિ જેટલાં .વિશેષોને જાણે છે તેટલાં વિશેષોને ઋજુમતિ જાણતું નથી. એજ વાત ટીકાકારે "यतः सामान्यरूपमपि मनोद्रव्याकारं प्रतिनियतमेव पश्यति" આ પંક્તિ દ્વારા સ્પષ્ટ કરી છે. જ્યાં પ્રતિનિયતનું ગ્રહણ છે એજ જ્ઞાન છે, દર્શન નથી. તેથી સૂત્રમા પણ દર્શનો-

तथा तानेव मनस्त्वेन परिणमितान् स्कन्धान् विपुलमतिः अभ्यधिकतरकम्= अर्धतृतीयाङ्गुलप्रमाणभूमिक्षेत्रवर्तिनः स्कन्धानादायाऽधिकतरम्, सा चाधिकतरता देशतोऽपि भवति, ततः सर्वासु दिक्षु अधिकतरताप्रतिपादनार्थमाह–'विपुलतरकम्'=प्रभूततरकम्, तथा–विशुद्धतरकं= निर्मलतरकम्, ऋजुमत्यपेक्षयाऽतीव स्फुटतरप्रकाशमित्यर्थः। स्फुटप्रतिभासो विपर्ययरूपोऽपि भवति, यथा द्विचन्द्रप्रतिभासः, अतस्तद्वारणाय विशेषणान्तरमाह–'वितिमिरतरकम्' इति। विगतं तिमिरं –तिमिरसंपाद्यो भ्रमो यस्मिन् तत वितिमिरम्, प्रकृष्टं वितिमिरं वितिमिरतरम्,

---

दर्शन नहीं है। इसी लिये सूत्रमें भी दर्शनोपयोग चार प्रकार का ही बतलाया गया है, पांच प्रकार का नहीं, कारण कि मनःपर्यय दर्शन का परमार्थतः संभव नहीं है।

विपुलमति–उन्हीं मनरूप से परिणत किये हुए अढाई द्वीपक्षेत्रवर्ती स्कन्धों को कुछ अधिक अर्थात्–अढाई अंगुलप्रमाण भूमिरूप क्षेत्रमें रहे हुए स्कन्धों को लेकर अधिक देखता है। इस का अभिप्राय यह है कि–विपुलमति उस क्षेत्र की अपेक्षा अढाई अंगुल अधिक जानता है और देखता है। अधिकतरता देश की अपेक्षा भी हो सकती है, अतः देश की अपेक्षा से हुई इस अधिकतरता को दूर करने के लिये सूत्रकारने सूत्रमें विपुलतर पद रक्खा है। इसका तात्पर्य यह होता है कि विपुलमति मनःपर्ययज्ञानी चारों दिशाओं के रूपी पदार्थों को ऋजुमति मनःपर्ययज्ञानी की अपेक्षा विपुलतररूप से जानता और देखता है। उन पदार्थों का जानना और देखना ऋजुमति की अपेक्षा अतीवस्फुटतर होता है, यह बात विशुद्धतर शब्द से स्पष्ट होती है। स्फुट प्रतिभास

પયોગ ચાર પ્રકારનાજ બતાવ્યાં છે, પાંચ પ્રકારના નહીં. કારણ કે મનઃપર્યય દર્શનનો પરમાર્થતઃ સંભવ નથી.

વિપુલમતિ–એજ મનરૂપથી પરિણત કરેલ અઢી દ્વીપ ક્ષેત્રવતી સ્કંધોને કંઈક વધારે એટલે કે અઢી આંગળ માપના ભૂમિરૂપક્ષેત્રમાં રહેલ સ્કંધોને લઈને વધારે દેખે છે. તેનો ભાવાર્થ એ છે કે વિપુલમતિ તે ક્ષેત્રનાં કરતાં અઢી આંગળ વધારે જાણે છે અને દેખે છે. અધિકતરતા દેશની અપેક્ષાએ પણ હોઈ શકે છે, તેથી દેશની અપેક્ષાએ થયેલ એ અધિકતરતાને દૂર કરવાને માટે સૂત્રકારે સૂત્રમાં વિપુલતર પદ મુકયું છે તેનુ તાત્પર્ય એ છે કે વિપુલમતિ મનઃપર્યયજ્ઞાની ચારે દિશાઓના રૂપી પદાર્થોને ઋજુમતિ મનઃપર્યયજ્ઞાની કરતાં વિપુલતરરૂપે જાણે અને દેખે છે. તે પદાર્થોને જાણવા અને દેખવાનું ઋજુમતિનાં કરતાં અતિશય સ્ફુટતર હોય છે, એ વાત વિશુદ્ધતર શબ્દથી સ્પષ્ટ થાય

'द्वयोः प्रकृष्टे तरप्' इति तरप्-प्रत्ययः। त एव वितिमिरतरकाः, स्वार्थे क प्रत्ययः। एवं सर्वत्र व्युत्पत्तिर्द्रष्टव्या। तत् वितिमिरतरकम् = सर्वथाभ्रमरहितमित्यर्थः जानाति, पश्यति। अथवा-'अभ्यधिकतरकम्' विपुलतरकम्' इत्युभे पदे एकार्थके, तथा-'विशुद्धतरकम्' 'वितिमिरतरकम्' इत्यपि द्वे पदे एकार्थके। शिष्या हि नानादेशजा भवन्ति, यस्य देशे यत् प्रसिद्धं, तदेव तदनुग्रहार्थं प्रयुक्तमिति बोध्यम्।

तथा-क्षेत्रतः खलु ऋजुमतिश्च जघन्येनाऽङ्गुलस्यासंख्येभागं जानाति पश्यति। उत्कर्षेणाधस्तलेऽस्या रत्नप्रभायाः पृथिव्या उपरितनान् अधस्तनान् क्षुल्लकप्रतरान् यावत् जानाति पश्यति च।

विपर्ययरूप भी हो सकता है, जैसे एक चन्द्रमा में द्विचन्द्रज्ञान होता है। ऐसे भ्रान्त स्फुटप्रतिभास का निराकरण करने के लिये सूत्रकारने सूत्रमें "वितिमिरतरक" ऐसा पद रक्खा है। अथवा अभ्यधिकतरक एवं विपुलतरक ये दोनों शब्द एकार्थवाची भी हैं, इन दोनों का प्रयोग सूत्रकारने नानादेश के शिष्यों को समझाने की अपेक्षा यहां रक्खा है। जिन शिष्यों के देशमें जो शब्द प्रसिद्ध होगा उससे उन्हें दूसरे शब्द का अर्थबोध हो जावेगा।

क्षेत्र की अपेक्षा ऋजुमति मनःपर्ययज्ञानी जघन्यरूप से अंगुल के असंख्यातवें भागमें स्थित रूपी पदार्थों को जानता और देखता है। तथा उत्कृष्टरूप से इस पृथ्वी के नीचे रत्नप्रभापृथिवी के उपरितन एवं अधस्तन क्षुल्लकप्रतरोंतक को जानता और देखता है।

છે. સ્ફુટ પ્રતિભાસ વિપર્યયરૂપ પણ હોઇ શકે છે, જેમ એક ચન્દ્રમામાં બે ચન્દ્રોનો ભાસ થાય છે. એવા ભ્રાન્ત સ્ફુટ પ્રતિભાસનું નિવારણ કરવાને માટે સૂત્રકારે સૂત્રમાં "वितिमिरतरक" એવું પદ રાખ્યું છે. અથવા अभ्यधिकतरक અને विपुलतरक એ બન્ને શબ્દો એકાર્થવાચી પણ છે. એ બન્નેનો પ્રયોગ સૂત્રકારે વિવિધ દેશના શિષ્યોને સમજાવવાની અપેક્ષાએ અહીં રાખ્યો છે. જે શિષ્યોના દેશમાં જે શબ્દ પ્રસિદ્ધ હશે તેનાથી તેના બીજા શબ્દનો અર્થ સમજાઇ જાશે.

ક્ષેત્રની અપેક્ષાએ ઋજુમતિ મનઃપર્યયજ્ઞાની જઘન્યરૂપે અંગુલના અસંખ્યાતમાં ભાગમાં રહેલ રૂપી પદાર્થોને જાણે અને દેખે છે, તથા ઉત્કૃષ્ટ રૂપે આ પૃથ્વીની નીચે રત્નપ્રભા પૃથ્વીના ઉપરિતન અને અધસ્તન ક્ષુલ્લક પ્રતરોને પણ જાણે અને દેખે છે.

नन्नु कोऽयं क्षुल्लकप्रतर इति ?, उच्यते—इह लोकाकाशप्रदेशा उपरितनाधस्तनप्रदेशरहिततया विवक्षिता मण्डलाऽऽकारतया व्यवस्थिताः प्रतर इत्युच्यते। तत्र तिर्यग्लोकस्य ऊर्ध्वाधोऽपेक्षया अष्टादशयोजनशतप्रमाणस्य मध्यभागे द्वौ सर्वलघूक्षुल्लकप्रतरौ, तयोर्मध्यभागे जम्बूद्वीपे रत्नप्रभाया बहुसमे भूमिभागे मेरुमध्येऽष्टप्रादेशिको रुचकः। तत्र गोस्तनाकाराश्चत्वार उपरितनाः प्रदेशाश्चत्वारश्चाधस्तनाः। एष एव च रुचकः सर्वासां दिशां विदिशां वा प्रवर्तकः। एतदेव च सकलतिर्यग्लोकमध्यम्। तौ च द्वौ सर्वलघू प्रतरावंगुलाऽसंख्येयभागबाहल्यौ पुनरलोकाऽवधिगतौ रज्जुप्रमाणौ।

शंका—यह क्षुल्लकप्रतर क्या है ?

उत्तर—लोकाकाश के प्रदेश उपरितन और अधस्तन प्रदेशों से रहित बतलाये गये हैं। उनकी व्यवस्था मण्डलाकार से है। ये लोकाकाश के प्रदेश ही प्रतर हैं। उर्ध्व एवं अधोलोक की अपेक्षा अठारसौ (१८००) योजन प्रमाणवाले तिर्यग्लोक के मध्यभाग में दो सर्वलघुक्षुल्लक प्रतर हैं। इनके मध्यभाग में जंबूद्वीप में रत्नप्रभापृथिवी के बहुसमभूमिभाग में मेरु के बीच अष्टप्रादेशिक रुचक है। वहां गोस्तनाकार चार प्रदेश ऊपर और चार प्रदेश नीचे हैं। यही रुचक समस्त दिशाओं अथवा विदिशाओं का प्रवर्तक माना गया है, और यही समस्त तिर्यग्लोक का मध्यभाग है। वे दो सर्वलघुक्षुल्लकप्रतर अंगुल के असंख्यातवें भाग विस्तारवाले हैं। अलोकाकाशतक फैले हुए हैं और एक राजू इनका प्रमाण है।

શંકા—આ ક્ષુલ્લક પ્રતર શું છે ?

ઉત્તર—લોકાકાશના પ્રદેશ ઉપરિતન અને અધસ્તન પ્રદેશો વિનાના બતાવવામાં આવ્યા છે. તેમની વ્યવસ્થા મંડળાકારે છે. એ લોકાકાશના પ્રદેશ જ પ્રતરો છે. ઉર્ધ્વ અને અધોલોકની અપેક્ષાએ અઢારસો (૧૮૦૦) યોજન પ્રમાણવાળા તિર્યંગ્લોકના મધ્ય ભાગમાં બે સૌથી નાના ક્ષુલ્લક પ્રતર છે. તેમના મધ્યભાગમાં જંબૂદ્વીપમાં રત્નપ્રભા પૃથ્વીના બહુસમભૂમિ ભાગમાં મેરુની વચ્ચે અષ્ટપ્રાદેશિક રૂચક છે. ત્યાં ગાયના આંચળના આકારના ચાર પ્રદેશ ઉપર અને ચાર પ્રદેશ નીચે છે. એજ રૂચક સઘળી દિશાઓ અથવા વિદિશાઓનો પ્રવર્તક મનાયો છે, અને એજ સમસ્ત તિર્યંગ્લોકનો મધ્યભાગ છે. તે બે સૌથી નાના ક્ષુલ્લક પ્રતર અંગુલનાં અસંખ્યાતમાં ભાગના વિસ્તારવાળાં છે, અલોકાકાશ સુધી ફેલાયેલા છે અને તેમનું પ્રમાણ એક રાજૂ છે.

तत एतयोरुपरि अन्येऽन्ये प्रतराः तिर्यग् अंगुलासंख्येयभागवृद्धया वर्धमानास्तावद् द्रष्टव्याः, यावदूर्ध्वलोकमध्यम्। तत्र पञ्चरज्जुप्रमाणः प्रतरः। तत उपरि अन्येऽन्ये प्रतरास्तिर्यग् अंगुलासंख्येयभागहान्या हीयमानास्तावद् द्रष्टव्याः, यावल्लोकान्ते एकरज्जुप्रमाणः प्रतरः। इहोर्ध्वलोकमध्यवर्तिनं सर्वोत्कृष्टं पञ्चरज्जुप्रमाणं प्रतरमवधीकृत्य अन्ये उपरितना अधस्तनाश्च क्रमेण हीयमाना हीयमानाः सर्वेऽपि प्रतराः क्षुल्लकप्रतरा इति व्यवह्रियन्ते, यावल्लोकान्ते तिर्यग्लोके च रज्जुप्रमाणः प्रतर इति।

तथा—तिर्यग्लोकमध्यवर्तिसर्वलघुक्षुल्लकप्रतरस्य अधस्तिर्यगंगुलासंख्येयभागवृद्धया वर्धमानाः प्रतरास्तावद्वक्तव्याः, यावदधोलोकान्ते सर्वोत्कृष्टः सप्तरज्जुप्रमाणः प्रतरः। तं च सप्तरज्जुप्रमाणं प्रतरमपेक्ष्यान्ये उपरितनाः सर्वेऽपि क्रमेण हीयमानाः क्षुल्लकप्रतरा अभिधीयन्ते, यावत् तिर्यग्लोकमध्यवर्ती सर्वलघुः क्षुल्लकः प्रतरः। एषा क्षुल्लकप्रतरप्ररूपणा।

इसके बाद इन दोनों सर्वलघु क्षुल्लक प्रतरों के ऊपर और और प्रतर तिर्यक् अंगुल के असंख्यातवें भाग की वृद्धि से तबतक बढते हुए चले जाते हैं कि जबतक उर्ध्वलोक का मध्यभाग नहीं आ जाता है। यहां प्रतर का प्रमाण पांच राजू का होता है। इस प्रतर के ऊपर भी और और प्रतर तिर्यक् अंगुल के असंख्यातवें भाग की हानि से घटते हुए चले जाते हैं और इस तरह ये तबतक घटते जाते हैं कि जबतक लोक के अन्तमें एक राजू प्रमाण वाला प्रतर नहीं आ जाता है। इस तरह उर्ध्वलोक के मध्यवर्ती सर्वोत्कृष्ट पांच राजू प्रमाण वाले प्रतर से लगाकर अन्य उपरितन और अधस्तन प्रतर क्रम २ से घटते घटते बतलाये गये हैं। ये सब क्षुल्लक प्रतर हैं। ये क्षुल्लक प्रतर लोक के अन्तमें और तिर्यग्लोक में एक २ राजू प्रमाण वाले हैं।

ત્યાર બાદ તે બન્ને સર્વલઘુ ક્ષુલ્લક પ્રતરોની ઉપર જુદા જુદા પ્રતર તિર્યક્ અંગુલના અસંખ્યાતમાં ભાગની વૃદ્ધિથી ત્યાં સુધી વધતા જાય છે કે જ્યાં સુધી ઉર્ધ્વલોકનો મધ્ય ભાગ આવી જતો નથી. અહીં પ્રતરનું પ્રમાણ પાંચ રાજૂનું થઈ જાય છે. આ પ્રતરની ઉપર પણ જૂદા જૂદા પ્રતર તિર્યક્ અંગુલના અસંખ્યાતમાં ભાગની હાનિથી ઘટતા જાય છે. જ્યાં સુધી લોકના અંતે એક રાજૂ પ્રમાણવાળું પ્રતર આવતું નથી. આ રીતે ઉર્ધ્વલોકના મધ્યવર્તી સર્વોત્કૃષ્ટ પાંચ રાજૂ પ્રમાણવાળાં પ્રતરથી માંડીને બીજા ઉપરિતન અને અધસ્તન પ્રતર ક્રમે ક્રમે ઘટતાં જતાં બતાવ્યાં છે. એ બધાં ક્ષુલ્લક પ્રતર છે એ ક્ષુલ્લક પ્રતર લોકના અંતમાં અને તિર્યગ્લોકમાં એક એક રાજુ પ્રમાણવાળાં છે.

तत्र—तिर्यग्लोकमध्यवर्तिनः सर्वलघुरज्जुप्रमाणात् क्षुल्लकप्रतरादारभ्य यावदधो नवयोजनशतानि तावदस्यां रत्नप्रभायां पृथिव्यां ये प्रतराः, ते उपरितनक्षुल्लकप्रतरा उच्यन्ते। तेषामपि चाधस्ताद् ये प्रतराः यावदधोलौकिकग्रामेषु सर्वान्तिमाः प्रतराः, तेऽधस्तनक्षुल्लकप्रतरा उच्यन्ते।

तत्र—मनःपर्ययज्ञानी उपरितनात् क्षुल्लकप्रतरान् नवयोजनशतानि यावत्, अधस्तात् सहस्रयोजनानि यावत् अधस्तनक्षुल्लकप्रतरान् जानाति, पश्यति च।

तथा–तिर्यग्लोक के मध्यवर्ती जो सर्वलघु क्षुल्लक प्रतर है उसके नीचे और २ प्रत्तर तिर्यग् अंगुल के असंख्यातवें भाग की वृद्धि से तब-तक बढते हुए चले गये है कि जबतक अधोलोक के अन्तमें सर्वोत्कृष्ट सातराजू प्रमाणवाला प्रतर नहीं आ जाता है। इस सर्वोत्कृष्ट सातराजू प्रमाणवाले प्रतर से लेकर दूसरे जो ऊपर के क्रम से हीयमान प्रतर हैं वे सब क्षुल्लक प्रतर हैं। और इन सब क्षुल्लक प्रतरों की अपेक्षा तिर्यग्लोक के मध्यमें रहा हुआ जो प्रतर है वह सर्वलघु क्षुल्लक प्रतर है। इस प्रकार यह क्षुल्लक प्रतर की प्ररूपणा है।

तिर्यग्लोक के मध्यमें रहे हुए एक राजू प्रमाणवाले सर्वलघु क्षुल्लक प्रतर से लेकर नौ सौ योजन नीचे तक इस रत्नप्रभापृथिवी में जितने प्रतर हैं वे उपरितन क्षुल्लक प्रतर हैं। इनके भी नीचे जहांतक अधोलौकिक ग्रामोंमें सर्वान्तिम प्रतर है तबतक के जितने प्रतर हैं वे सब

તથા–તીર્યગ્લોકના મધ્યવર્તી જે સર્વલઘુ ક્ષુલ્લક પ્રતર છે તેની નીચે જૂદાં જૂદાં પ્રતર તિર્યગ્ અંગુલના અસંખ્યાતમાં ભાગની વૃધ્ધિથી ત્યાં સુધી વધતાં જાય છે કે જ્યાં સુધી અધોલોકને અંતે સર્વોત્કૃષ્ટ સાતરાજૂ પ્રમાણવાળાં પ્રતર આવતાં નથી. આ સર્વોત્કૃષ્ટ સાતરાજુ પ્રમાણવાળા પ્રતરથી માંડીને બીજાં જે ઉપરના ક્રમથી હીયમાન પ્રતર છે તે બધાં ક્ષુલ્લક પ્રતરો છે, અને તે સઘળા ક્ષુલ્લક પ્રતરો કરતાં તિર્યગ્લોકની મધ્યમાં રહેલ જે પ્રતર છે તે સર્વલઘુ ક્ષુલ્લક પ્રતર છે. આ પ્રમાણે આ ક્ષુલ્લક પ્રતરની પ્રરૂપણા છે.

તિર્યગ્લોકની મધ્યમાં રહેલ એક રાજૂ પ્રમાણવાળાં સર્વલઘુ પ્રતરથી લઈને નવસો યોજન નીચે સુધી આ રત્નપ્રભા પૃથ્વીમાં જેટલાં પ્રતર છે તે ઉપરિતન ક્ષુલ્લક પ્રતરો છે. તેમની પણ નીચે જ્યાં સુધી અધોલૌકિક ગ્રામોમાં સર્વાન્તિમ પ્રતર છે. ત્યાં સુધીનાં જેટલાં પ્રતરો છે તે બધાં અધસ્તન ક્ષુલ્લક પ્રતરો છે.

उक्तश्च—"इहाधोलौकिकग्रामान् तिर्यग्लोकविवर्तिनः।
मनोगतांस्त्वसौ भावान्, वेत्ति तद्वर्त्तिनामपि" ॥१॥

असौ=मनः पर्ययज्ञानी भावान्=पर्यायान् वेत्ति=जानाति। शेषं सुगमम्।

'उड्ढं जाव' इत्यादि। ऊर्ध्वं यावत् ज्योतिश्चक्रस्य उपरितनस्तलः तिर्यग् यावदन्तोमनुष्य क्षेत्रे=मनुष्यलोकान्त इत्यर्थः। अस्य व्याख्यामाह—

अर्धतृतीयेषु द्वीपसमुद्रेषु, पञ्चदशसु कर्मभूमिषु, त्रिंशति वा अकर्मभूमिषु, षट्पञ्चाशत्संख्येषु चान्तरद्वीपेषु संज्ञिनां, ते चापान्तरालगतावपि तदायुष्कसंवेदनादभिधीयन्ते एव, न च तैरिहाधिकारः, अतो विशेषणमाह—'पंचिंदियाणं' इत्यादि, पञ्चेन्द्रियाणामिति। पञ्चेन्द्रियाश्चोपपातक्षेत्रमागता इन्द्रियपर्याप्तिपरिसमाप्तौ मनःपर्याप्त्या अपर्याप्ता अपि भवन्ति। न च तैः प्रयोजनमिति विशेषणान्तरमाह—पर्याप्तानामिति।

अधस्तन क्षुल्लक प्रतर है। मनःपर्ययज्ञानी उपरितन क्षुल्लक प्रतरों को नौ सौ योजन तक, नीचे अधस्तन क्षुल्लक प्रतरों को एक हजार योजन तक जानता और देखता है। कहा भी है—

"इहाधोलौकिकग्रामान्, तिर्यग्लोकविवर्तिनः।
मनोगतांस्त्वसौ भावान्, वेत्ति तद्वर्त्तिनामपि" ॥ १ ॥

इस प्रकार प्रकट करके कि ऋजुमति मनःपर्ययज्ञानी जघन्य से अङ्गुल के असंख्यातवें भाग को, तथा उत्कृष्ट से नीचे इस रत्नप्रभापृथिवी के उपरितन और अधस्तन क्षुल्लक प्रतरों तक को जानता है और देखता है। अब सूत्रकार ऊर्ध्व में ऋजुमति मनःपर्ययज्ञानी कहांतक जानता और देखता है वह बतलाते हैं—'उड्ढं जाव' इत्यादि।

મનઃપર્યયજ્ઞાની ઉપરિતન ક્ષુલ્લક પ્રતરોને નવસો યોજન સુધી, નીચે અધસ્તન ક્ષુલ્લક પ્રતરોને એક હજાર યોજન સુધી જાણે છે અને દેખે છે-કહ્યું પણ છે-

"इहाधोलौकिकग्रामान्, तिर्यग्लोकविवर्तिनः।
मनोगतांस्त्वसौ भावान्, वेत्ति तद्वर्त्तिनामपि" ॥१॥

આ પ્રમાણે "ઋજુમતિ મનઃપર્યયજ્ઞાની જઘન્યથી અંગુલના અસંખ્યાતમાં ભાગને તથા ઉત્કૃષ્ટથી નીચે આ રત્નપ્રભા પૃથ્વીના ઉપરિતન અને અધસ્તન ક્ષુલ્લક પ્રતરોને પણ જાણે છે અને દેખે છે તે પ્રગટ કરીને હવે સૂત્રકાર ઋજુમતિ મનઃપર્યયજ્ઞાની ઉર્ધ્વમાં ક્યાં સુધી જાણે છે અને દેખે છે તે બતાવે છે—"उड्ढं जाव" ઇત્યાદિ.

यद्वा—संज्ञिनां पञ्चेन्द्रियाणां पर्याप्तकानामिति स्वरूपकथनम्। तेषां मनोगतान् भावान् ऋजुमतिर्जानाति पश्यति।

विपुलमतिस्तु तदेव, इह तच्छब्देन मनोलब्धिसमन्वितजीवाधारक्षेत्रं परामृश्यते, इह क्षेत्राधिकारस्यैव प्राधान्यात्। अर्धतृतीयैरंगुलैः—अर्धं तृतीयं येषु तानि अर्धतृतीयानि अंगुलानि, तानि च ज्ञानाधिकारादुच्छ्रयांगुलानि द्रष्टव्यानि। तैरर्धतृतीयैरंगुलैरभ्यधिकतरं जानाति पश्यतीत्यन्वयः। तच्चैकदेशमपि भवति, अत आह–विपुलतरमिति–विस्तीर्णतरमित्यर्थः।

ऋजुमति मनःपर्ययज्ञानी उर्ध्वमें जहांतक ज्योतिश्चक्र का उपरितन तल है वहां तक के–अर्थात् वहांतक के संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवों के मनोभावों को जानता और देखता है। तथा तिर्यगूरूप से ढाई द्वीपतक के संज्ञेन्द्रिय पर्याप्त के प्राणियों के मनोभावों को जानता और देखता है। ढाईद्वीप में पन्द्रह कर्मभूमियां, तीस अकर्मभूमियां तथा छप्पन अन्तरद्वीप हैं। जंबूद्वीप, धातकीखंड तथा पुष्करार्ध, ये ढाईद्वीप हैं। इनमें ये पूर्वोक्त कर्मभूमि एवं अकर्मभूमि तथा अन्तर द्वीप हैं। अंतरद्वीप लवणसमुद्र में आये हुए हैं। यही बात सूत्रकारने "अड्ढाइज्जेसु दीवसमुद्देसु" इत्यादि सूत्रपदों द्वारा प्रकट की है। विपुलमति मनःपर्ययज्ञानी पर्याप्तक संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों के आधारभूत क्षेत्र को–जिसको ऋजुमति देखता है उसी क्षेत्र को अढाई अंगुल प्रमाण अधिक जानता और देखता है। एवं विपुलतर विशुद्धतर और वितिमिरतर अत्यन्त स्पष्ट रूपमें जानता और देखता है। यहां अंगुल से ज्ञान का प्रकरण होने के कारण उच्छ्रयाङ्गुल समझना चाहिये।

ઋજુમતિ મનઃપર્યયજ્ઞાની ઉર્ધ્વમાં જ્યાં સુધી જ્યોતિશ્ચક્રનું ઉપરિતનતલ છે ત્યાં સુધીના–એટલે કે ત્યાં સુધીના સંજ્ઞી પંચેન્દ્રિય પર્યાપ્ત જીવોના મનોભાવોને જાણે છે અને દેખે છે. તથા તીર્યગ્રૂપથી અઢીદ્વીપ સુધીના સંજ્ઞી પંચેન્દ્રિય પર્યાપ્ત પ્રાણીઓના મનોભાવોને જાણે છે અને દેખે છે. અઢીદ્વીપમાં પંદર કર્મભૂમિયો, ત્રીસ અકર્મભૂમિયો તથા છપ્પન અન્તરદ્વીપ છે. જંબૂદ્વીપ, ધાતકી ખંડ તથા પુષ્કરાર્ધ, એ અઢીદ્વીપ છે, તેમાં એ પૂર્વોક્ત કર્મભૂમિ, અકર્મભૂમિ અને અન્તર્દ્વીપ છે. અન્તર દ્વીપ લવણ સમુદ્રમાં આવેલાં છે. એજ વાત સૂત્રકારે "अड्ढाइज्जेसु दीवसमुद्देसु" ઈત્યાદિ સૂત્રપદોદ્વારા પ્રગટ કરી છે. વિપુલમતિ મનઃપર્યયજ્ઞાની પર્યાપ્તક સંજ્ઞી પંચેન્દ્રિય જીવોના આધારભૂત ક્ષેત્રને–જેને ઋજુમતિ દેખે છે એજ ક્ષેત્રને અઢી અંગુલ પ્રમાણમાં વધારે જાણે અને દેખે છે. અને વિપુલતર, વિશુદ્ધતર તથા વિતિમિરતર–અત્યંત સ્પષ્ટ રૂપે જાણે અને દેખે છે. અહીં અંગુલથી જ્ઞાનનું પ્રકરણ હોવાથી ઉચ્છ્રયાંગુલ સમજવું જોઈએ.

अथवा—आयामविष्कम्भाभ्यामभ्यधिकतरं, बाहल्यमाश्रित्य विपुलतरम्-अधिकतरम्। अतिशुद्धतरं, वितिमिरतरम्, इति प्राग्व्याख्यातम्, जानाति, पश्यति 'तात्स्थ्यात् तद्व्यपदेशः' इति। तावत्क्षेत्रगतानि मनोद्रव्याणि जानाति पश्यतीत्यर्थः। 'कालतः खलु' इत्यादि सुगमम्।

अथवा—आयाम और विष्कंभ की अपेक्षा क्षेत्र में अधिकतरता एवं बाहल्य की अपेक्षा विपुलतरता जाननी चाहिये। "क्षेत्र को जानता है" इसका तात्पर्य यह है कि–विपुलमति इतने प्रमाण क्षेत्रमें रहे हुए संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक जीवों के मनोभावों को अधिकतर आदि रूप से जानता और देखता है।

'कालओ णं' इत्यादि। काल की अपेक्षा ऋजुमति जघन्य से पल्योपम के असंख्यातवें भागरूप, तथा उत्कर्ष से भी पल्योपम के असंख्यातवें भागरूप अतीत अनागत काल को जानता और देखता है। विपुलमति उसी काल को अधिकतर, विपुलतर, विशुद्धतर एवं वितिमिरतररूप से जानता और देखता है।

'भावओ णं' इत्यादि।

भाव से ऋजुमति अनन्त भावों को जानता औ देखता है, तथा सब भावों के अनन्त भाग को जानता और देखता है। और विपुलमति उन्हीं अनन्त भावों को तथा सब भावों के अनन्त भाग को अधिकतर, विपुलतर, विशुद्धतर और वितिमिरतररूप से जानता और देखता है॥

અથવા—આયામ અને વિષ્કંભની અપેક્ષાએ ક્ષેત્રમાં અધિકતરતા અને પુષ્કળતાની અપેક્ષાએ વિપુલતરતા જાણવી જોઈએ "ક્ષેત્રને જાણે છે" તેનું તાત્પર્ય એ છે કે વિપુલમતિ એટલા પ્રમાણમાં ક્ષેત્રમાં રહેલ સંજ્ઞી પંચેન્દ્રિય પર્યાપ્તક જીવોના મનોભાવોને અધિકતર આદિ રૂપે જાણે અને દેખે છે.

"कालओ" ઇત્યાદિ. કાળની અપેક્ષાએ ઋજુમતિ જઘન્યથી પલ્યોપમના અસંખ્યાતમાં ભાગરૂપ, તથા ઉત્કર્ષથી પણ પલ્યોપમના અસંખ્યાતમાં ભાગરૂપ ભૂત અને ભવિષ્ય કાળને જાણે અને દેખે છે. વિપુલમતિ એજ કાળને અધિકતર, વિપુલતર, વિશુદ્ધતર, અને વિતિમિરતર રૂપે જાણે અને દેખે છે.

"भावओणं" ઈત્યાદિ.

ભાવથી ઋજુમતિ અનંત ભાવોને જાણે અને દેખે છે. તથા બધા ભાવોના અંતભાગને જાણે અને દેખે છે અને વિપુલમતિ એજ અનંત ભાવોને તથા બધા ભાવોના અન્તભાગને અધિકતર વિપુલતર, વિશુદ્ધતર અને વિતિમિરતર રૂપે જાણે અને દેખે છે.

अथोपसंहरन् गाथामाह—

मूलम्—मणपज्जवनाणं पुण, जणमणपरिचिंतिअत्थपागडणं ।
माणुसखित्तनिबद्धं, गुणपच्चइयं चरित्तवओ ॥ १ ॥
से त्तं मणपज्जवनाणं ॥ सू० १८ ॥

छाया—मनः पर्ययज्ञानंपुन,-र्जनमनःपरिचिन्तितार्थप्रकटनम् ।
मानुषक्षेत्रनिबद्धं, गुणप्रत्ययिकं चारित्रवतः ॥ १ ॥
तदेतन्मनःपर्ययज्ञानम् ॥ सू० १८ ॥

टीका—'मणपज्जवनाणं' इत्यादि । मनःपर्ययज्ञानं पुनः—इह पुनः-शब्दोऽवधिज्ञानाद् भेदं सूचयति । इदं मनःपर्ययज्ञानमवधिज्ञानतो रूपिद्रव्यविषयकत्व-क्षायोपशमिकत्व-प्रत्यक्षत्वादिभिः साम्येऽपि स्वाम्यादिभेदाद् भिन्नमिति भावः । तद् यथा—अवधिज्ञानमविरतसम्यग्दृष्टेरपि भवति, मनःपर्ययज्ञानं तु संयतस्याप्रमत्तस्य ऋद्धिप्राप्तस्यैव भवतीति भेदः १ । अवधिज्ञानं द्रव्यतोऽशेषरूपि

अब सूत्रकार उपसंहार करते हुए गाथा कहते हैं—'मणपज्जवनाणं' इत्यादि । गाथा में जो "पुनः" शब्द आया है वह इस मनःपर्ययज्ञान की अवधिज्ञान से भिन्नता प्रदर्शित करता है । इसका तात्पर्य यह है कि-यद्यपि अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान में रूपी द्रव्य को विषय करने की, क्षायोपशमिक होने की तथा प्रत्यक्षत्व आदि की अपेक्षा समानता है तो भी इन दोनों में स्वामी आदि के भेद से भिन्नता है। वह इस प्रकार से—अवधिज्ञान का स्वामी अविरतसम्यग्दृष्टि भी होता है तब कि मनःपर्ययज्ञान का स्वामी अप्रमत्त संयत सम्यग्दृष्टि ही होता है। उसमें भी जिसको कोई न-कोई-ऋद्धि-लब्धि प्राप्त हो चुकी हो वही होता है ।१। द्रव्य की अपेक्षा-अवधिज्ञान समस्त रूपी द्रव्यों को विषय

હવે સૂત્રકાર ઉપસંહાર કરતા ગાથા કહે છે—"मणपज्जवनाणं" ઈત્યાદિ. ગાથામાં જે "पुनः" શબ્દ આવ્યો છે તે આ મનઃપર્યય જ્ઞાનની અવધિજ્ઞાનથી ભિન્નતા દર્શાવે છે. તેનું તાત્પર્ય એ છે કે-જો કે અવધિજ્ઞાન અને મનઃપર્યય-જ્ઞાનમાં રૂપી દ્રવ્યને વિષય કરવાની, ક્ષાયોપશમિક હોવાની તથા પ્રત્યક્ષત્વ આદિની અપેક્ષાએ સમાનતા છે તો પણ એ બંન્નેમાં સ્વામી આદિના તફાવતને કારણે ભિન્નતા છે. તે આ પ્રમાણે છે-(૧) અવધિજ્ઞાનનો સ્વામી અવિરત સમ્યગ્દૃષ્ટિ પણ હોય છે, ત્યારે મનઃપર્યય જ્ઞાનનો સ્વામી અપ્રમત્ત સંયત સમ્યગ્દૃષ્ટિ જ હોય છે તેમાં પણ જેને કોઇને કોઈ ઋદ્ધિ-લબ્ધિ પ્રાપ્ત થઈ ચૂકી હોય એજ હોય છે. (૨) દ્રવ્યની અપેક્ષાએ અવધિજ્ઞાન સમસ્ત રૂપી દ્રવ્યોને વિષય કરે છે,

द्रव्यविषयम्, मनःपर्ययज्ञानं तु द्रव्यतः संज्ञिमनोद्रव्यविषयकमिति भेदः २। अवधिज्ञानं क्षेत्रतः—लोकविषयं, कतिपयलोकप्रमाणक्षेत्रापेक्षया सामर्थ्यवशाद् अलोकविषयं च, अलोके यदि रूपिद्रव्यं स्यात् तदा तदपि द्रष्टुं शक्नोति, मनःपर्ययज्ञानं तु क्षेत्रतः तिर्यग्लोकापेक्षया मनुष्यक्षेत्र विषयकम् ३। अवधिज्ञानं कालतोऽतीतानागताऽसंख्येयोत्सर्पिण्यवसर्पिणीविषयकम्, मनःपर्ययज्ञानं तु कालतोऽतीतानागतपल्योपमाऽसंख्येयभागविषयकम् ४। अवधिज्ञानं भावतोऽशेषेषु रूपिद्रव्येषु प्रतिद्रव्यमसंख्यातपर्यायविषयम्, मनःपर्ययज्ञानं तु भावतो-मनो द्रव्यगतानन्तपर्यायविषयम् ५। अवधिज्ञानं—भवप्रत्ययं गुणप्रत्ययं च

करता है तब कि मनःपर्ययज्ञान सिर्फ उसके अनंतवें भाग को ही विषय करता है, अर्थात् मात्र मनोद्रव्य को ही जानता है।२। क्षेत्र की अपेक्षा—अविधिज्ञान का विषय अंगुल के असंख्यातवें भाग से लेकर सम्पूर्ण लोक है। तथा कतिपय लोकप्रमाण क्षेत्र की अपेक्षा से सामर्थ्यवश अलोक को भी जान सकता है, यदि अलोक में रूपी द्रव्य हो तो वह उसको भी ग्रहण करने की शक्ति रखता है। मनःपर्ययज्ञान का विषय क्षेत्र तिर्यग्लोक की अपेक्षा ढाइद्वीप पर्यंत ही है।३। काल की अपेक्षा अवधिज्ञान अनीत अनागत असंख्यात उत्सर्पिणी अवसर्पिणी काल को जानता है। मनःपर्ययज्ञान काल की अपेक्षा अतीत अनागत पल्योपम के असंख्यातवें भाग को विषय करता है।४। भाव की अपेक्षा अवधिज्ञान समस्त रूपी द्रव्यों में से प्रत्येक रूपी द्रव्यों की असंख्यात पर्यायों को विषय करता है, तथा मनःपर्ययज्ञान मनोद्रव्य की अनंतपर्यायों को विषय करता है।५। अवधिज्ञान भवप्रत्यय और गुणप्रत्यय दोनों रूप

ત્યારે મનઃપર્યયજ્ઞાન ફક્ત તેના અનંતમાં ભાગને જ વિષય કરે છે, એટલે કે માત્ર મનોદ્રવ્યને જ જાણે છે. (૩) ક્ષેત્રની અપેક્ષાએ અવધિજ્ઞાનનો વિષય અંગુલના અસંખ્યાતમાં ભાગથી લઈને સંપૂર્ણ લોક છે. તથા કેટલાક લોકપ્રમાણ ક્ષેત્રની અપેક્ષાએ સામર્થ્યવશ અલોકને પણ જાણી શકે છે. જો અલોકમાં રૂપી દ્રવ્ય હોય તો તે તેને પણ ગ્રહણ કરવાની શક્તિ ધરાવે છે. મનઃપર્યય જ્ઞાનનું વિષયક્ષેત્ર તિર્યગ્લોકની અપેક્ષાએ અઢી દ્વીપ સુધી જ છે. (૪) કાળની અપેક્ષાએ અવધિજ્ઞાન ભૂત, ભવિષ્ય અસંખ્યાત ઉત્સર્પિણી અવસર્પિણી કાળને જાણે છે. મનઃપર્યય જ્ઞાન કાળની અપેક્ષાએ ભૂત, ભવિષ્ય પલ્યોપમના અસંખ્યાતમાં ભાગને વિષય કરે છે. (૫) ભાવની અપેક્ષાએ સમસ્ત રૂપી દ્રવ્યોમાંથી પ્રત્યેક રૂપી દ્રવ્યની અસંખ્યાત પર્યાયોને વિષય કરે છે, તથા મનઃપર્યયજ્ઞાન મનોદ્રવ્યની અનંત પર્યાયોને વિષય કરે છે. (૬) અવધિજ્ઞાન ભવપ્રત્યય અને ગુણપ્રત્યય એ

भवति, मनःपर्ययज्ञानं तु गुणप्रत्ययमेवेति भेदः ६। तस्मादवधिज्ञानान्मनःपर्ययज्ञानं भिन्नम्। एतदेव संक्षेपेण सूत्रकारः प्राह–'जणमण०' इत्यादि। जनमनःपरिचिन्तितार्थप्रकटनं=जनानां मनांसि–जनमनांसि, तैः परिचिन्तितश्चासावर्थश्च जनमनःपरिचिन्तितार्थस्तं प्रकटयतिप्रकाशयतीति तथा भवति। तथा–मनुष्यक्षेत्रनिवद्धं भवति, न तु तद्बहिर्व्यवस्थितप्राणिमनोद्रव्यविषयकमित्यर्थः। तथा–चारित्रवतः=अर्थात्–अप्रमत्तसंयतस्य आमर्शौषध्यादिऋद्धिप्राप्तस्य च मनःपर्ययज्ञानं गुणप्रत्ययिकं भवति। तत्र गुणाःक्षान्त्यादयः, प्रत्ययःकारणं यस्य तद् गुणप्रत्ययं, तदेव गुणप्रत्ययिकम्। तदेतन्मनःपर्ययज्ञानं वर्णितम् ॥ सू० १८ ॥

मूलम्–से किं तं केवलनाणं?, केवलनाणं दुविहं पण्णत्तं। तं जहा–भवत्थकेवलनाणं च, सिद्धकेवलनाणं च ॥

होता है। मनःपर्ययज्ञान केवल गुणप्रत्यय ही होता है।६। इन्हीं निमित्तों से अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान में भिन्नता है। इसी को सूत्रकार इस गाथा में संक्षेपरूप से कहते हैं–"जणमण०" इत्यादि। मनुष्यों के मनद्वारा चिन्तित अर्थ को प्रकाशित करनेवाला, तथा मनुस्य क्षेत्र में ही रहे हुए संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक जीवों के मनोद्रव्यों को विषय करनेवाला–इसके बाहिर के प्राणियों के मनोद्रव्यों को विषय नहीं करनेवाला, ऐसा यह मनःपर्ययज्ञान आमर्शौषध्यादिलब्धिप्राप्त अप्रमत्तसंयमी सम्यग्दृष्टि जीव के होता है, और वह क्षान्त्यादिगुणकारण वाला है। इस तरह यहां तक यह मनःपर्ययज्ञान का कथन हुआ ॥ सू० १८ ॥

अब सूत्रकार केवलज्ञान का प्रकरण प्रारंभ करते हैं–'से किं तं केवलनाणं' इत्यादि।

બંને રૂપ હોય છે, પણ મનઃપર્યયજ્ઞાન ફક્ત ગુણપ્રત્યય રૂપ જ હોય છે. આ નિમિત્તોથી અવધિજ્ઞાન અને મનઃપર્યયજ્ઞાન વચ્ચે તફાવત છે. તેને સૂત્રકાર આ ગાથામાં સંક્ષિપ્ત રૂપે કહે છે–" जणमण० " ઇત્યાદિ.

મનુષ્યોનાં મનદ્વારા ચિંતિત અર્થને પ્રકાશિત કરનાર. તથા મનુષ્યક્ષેત્રમાં જ રહેલ સંજ્ઞી પંચેન્દ્રિય પર્યાપ્તક જીવોનાં મનોદ્રવ્યોને વિષય કરનાર–તેની બહારના પ્રાણીઓના મનોદ્રવ્યોને વિષય નહીં કરનારૂં એવું આ મનઃપર્યયજ્ઞાન આમર્શૌષધ્યાદિલબ્ધિપ્રાપ્ત અપ્રમત્ત સંયત સમ્યગ્દૃષ્ટિ જીવને થાય છે. અને તે ક્ષાન્ત્યાદિગુણકારણવાળું હોય છે. આ પ્રમાણે અહીં સુધી આ મનઃપર્યયજ્ઞાનનું વર્ણન થયું. ॥ સૂ ૧૮ ॥

હવે સૂત્રકાર કેવળજ્ઞાનનું પ્રકરણ શરૂ કરે છે–" से किं तं केवलनाणं " ઇત્યાદિ.

छाया—अथ किं तत् केवलज्ञानम् ?, केवलज्ञानं द्विविधं प्रज्ञप्तम् । तद् यथा भवस्थकेवलज्ञानं च, सिद्धकेवलज्ञानं च ॥

टीका—शिष्यः पृच्छति—'से किं तं केवलनाणं' इति । अथ किं तत् केवलज्ञानम् ? हे भदन्त ! पूर्वनिर्दिष्टस्य केवलज्ञानस्य किं स्वरूपमित्यर्थः । उत्तरमाह 'केवलनाणं दुविहं पण्णत्तं' इत्यादि । केवलज्ञानं, तत्र केवलं-१ परिपूर्णम् २ समग्रम् , ३ असाधारणम् , ४ निरपेक्षम् , ५ विशुद्धम् , ६ सर्वभावप्रज्ञापकम्, ७ संपूर्णलोकालोकविषयकम्, ८ अनन्तपर्यायं चेत्यर्थः, तथाविधं यद् ज्ञानं तत् केवलज्ञानम् । तत्र—

१-परिपूर्णम्—सकल द्रव्यभावपरिच्छेदकत्वात् ।

२-समग्रम्—एकस्य जीवपदार्थस्य यथा सर्वथा परिच्छेदकं, तथाऽपरस्यापीत्याशयात् ।

मनःपर्ययज्ञान के स्वरूप सुन चुकने बाद अब जब शिष्य केवलज्ञान के स्वरूप को पूछता है-हे भदन्त । पूर्वनिर्दिष्ट केवलज्ञान का क्या स्वरूप है ? उत्तर-केवलज्ञान दो प्रकार का प्ररूपित किया है, वे दो प्रकार ये हैं-एक भवस्थ-केवलज्ञान और दूसरा सिद्ध केवलज्ञान । केवल-अर्थात्-१ परिपूर्ण, २ समग्र, ३ असाधारण, ४ निरपेक्ष, ५ विशुद्ध, ६ सर्वभावप्रज्ञापक, ७ सम्पूर्णलोकालोकविषयक, ८ अनंतपर्याय, ये सब केवल के अर्थ हैं । ऐसा जो ज्ञान है वह केवलज्ञान है ।

१ परिपूर्ण—यह ज्ञान सकल द्रव्य और उनकी समस्त त्रिकालवर्ती पर्यायों को जानता है इसलिये इसको 'परिपूर्ण' कहा है ।

મનઃપર્યયજ્ઞાનનું સ્વરૂપ સાંભળી લીધા પછી હવે શિષ્ય કેવળજ્ઞાનનું સ્વરૂપ પૂછે છે-હે ભદન્ત ! પૂર્વનિર્દિષ્ટ કેવળજ્ઞાનનું કેવું સ્વરૂપ છે ?

ઉત્તર--કેવળજ્ઞાન બે પ્રકારનું પ્રરૂપિત કરેલ છે તે બે પ્રકાર આ પ્રમાણે છે-(૧) ભવસ્થ-કેવળજ્ઞાન અને (૨) સિદ્ધ-કેવળજ્ઞાન. કેવળ એટલે કે-(૧) પરિપૂર્ણ, (૨) સમગ્ર, (૩) અસાધારણ, (૪) નિરપેક્ષ, (૫) વિશુદ્ધ, (૬) સર્વભાવપ્રજ્ઞાપક, (૭) સંપૂર્ણલોકાલોકવિષયક, (૮) અનંતપર્યાય, આ બધાં "કેવળ" ના અર્થો છે. આવું જે જ્ઞાન હોય તે કેવળજ્ઞાન છે.

(૧) પરિપૂર્ણ—આ જ્ઞાન સમસ્ત દ્રવ્ય અને તેમની સમસ્ત ત્રિકાળવર્તી પર્યાયોને જાણે છે તેથી તેને પરિપૂર્ણ કહેલ છે.

३-असाधारणम्—मत्यादिज्ञानैरतुल्यत्वात् ।
४-निरपेक्षम्—इन्द्रियाद्यपेक्षाया अभावात् ।
५-विशुद्धम्—निरवशेषज्ञानदर्शनावरणायकर्ममलक्षयात् ।
६-सर्वभावप्रज्ञापकम्—सर्वजीवादिभावप्ररूपकत्वात् ।

ननु केवलज्ञानं मूकं, तत् कथं प्ररूपकमुच्यते ? शब्दो हि प्ररूपणां कर्तुं शक्नोतीति चेत् ?, उच्यते-उपचारात् प्ररूपकत्वं केवलज्ञानस्य सिध्यति । यतः केवलज्ञानदृष्टसर्वभावान् शब्दः प्ररूपयति, तस्मात् केवलज्ञानमेव प्ररूपकमिति मन्यते ।

---

२ समग्र—यह जिस प्रकार एक-जीव पदार्थ को सर्वथा रूपसे जानता है उसी प्रकार वह दूसरे पदार्थों को भी सर्वथा रूप से जानता है। किसी भी पदार्थ के जानने में इसमें न्यूनाधिकता नहीं है। इसलिये यह 'समग्र' है।

३ साधारण—मत्यादिक जो और ज्ञान हैं उनकी अपेक्षा यह विशिष्ट है, अद्वितीय है इसलिये यह 'असाधारण' है।

४ निरपेक्ष—इन्द्रियादिकों की सहायता से यह रहित है इसलिये 'निरपेक्ष' है।

५ विशुद्ध—समस्त ज्ञानावरण एवं दर्शनावरण कर्म के विगम (क्षय) से यह होता है अतः इसे 'विशुद्ध' कहा है।

६ सर्वभावज्ञापक—यह समस्त जीवादिक पदार्थों का प्ररूपक है इसलिये यह 'सर्वभावप्रज्ञापक' है।

शंका—केवलज्ञान को तो मूक बतलाया गया है, फिर यह जीवादिक पदार्थों का प्ररूपक कैसे हो सकता है ?

---

(२) समग्र—જેમ એક જીવ પદાર્થને સર્વથા રૂપથી જાણે છે એજ રીતે આ જ્ઞાન બીજા પદાર્થોને પણ સર્વથારૂપથી જાણે છે. કોઈપણ પદાર્થને જાણવામાં તેમાં ઓછા-વધુ પણું નથી, તેથી તે સમગ્ર છે.

(૩) असाधारण—મત્યાદિક જે બીજાં જ્ઞાન છે તેમના કરતાં આ જ્ઞાન વિશિષ્ટ છે, અદ્વિતીય છે, માટે તે અસાધારણ છે.

(૪) निरपेक्ष—ઈન્દ્રિયાદિકોની સહાયતા વિનાનું હોવાથી તે નિરપેક્ષ છે.

(૫) विशुद्ध—સમસ્ત જ્ઞાનાવરણ અને દર્શનાવરણ કર્મના વિગમ (ક્ષય) થી તે ઉત્પન્ન થાય છે, તેથી તેને વિશુદ્ધ કહેલ છે.

(૬) सर्वभावप्रज्ञापक—તે સમસ્ત જીવાદિક પદાર્થોનું પ્રરૂપક છે તેથી તે સર્વભાવપ્રજ્ઞાપક છે.

શંકા—કેવળજ્ઞાનને તો મૂક દર્શાવ્યું છે તો તે જીવાદિક પદાર્થોનુ પ્રરૂપક કેવી રીતે હોઈ શકે ?

७-सम्पूर्णलोकालोकविषयकम्—धर्मादीनां द्रव्याणां वृत्तिर्यत्र भवति तत् क्षेत्रं लोकः, तद्विपरीतमनन्ताकाशास्तिकायरूपं क्षेत्रमलोकः। यत् किंचित् ज्ञेयं लोकेऽलोके वाऽस्ति, तस्य सर्वस्य दर्शकत्वात्।

८-अनन्तपर्यायम्—स्वापेक्षया ज्ञेयापेक्षया वाऽनन्तपर्यायत्वात्।

उत्तर—यह बात उपचार से उसमें सिद्ध होती है, अतः उसे प्ररूपक कहा है, क्यों कि समस्त जीवादिक भावों का सर्वरूप से यथार्थ दर्शी केवलज्ञान है, और शब्द, केवलज्ञान द्वारा देखे हुए पदार्थों की ही प्ररूपणा करता है, इसलिये उपचार से ऐसा मान लिया जाता है कि केवलज्ञान ही उनका प्ररूपक है।

७ संपूर्णलोकालोकविषयक—धर्मादिक द्रव्यों की जहां वृत्ति है उसका नाम लोक है। इससे विपरीत अलोक हैं। इसमें आकाश के सिवाय और कोई द्रव्य नहीं है। यह अनंत और अस्तिकायरूप है। लोक और अलोक में जो कुछ ज्ञेय पदार्थ होता है उसका सर्वरूप से प्रकाशक होने से यह 'सम्पूर्णलोकालोकविषयक' कहा जाता है।

८ अनन्तपर्याय—मत्यादिकज्ञान जिस प्रकार सर्व द्रव्यों को उनकी कुछ पर्यायों को परोक्ष प्रत्यक्षरूप से जानते हैं इस प्रकार यह ज्ञान नहीं जानता है किन्तु यह तो समस्त द्रव्यों को और उनकी समस्त पर्यायों को युगपत् प्रत्यक्ष जानता है इसलिये यह अनन्तपर्याय कहा गया है।

ઉત્તર—આ વાત ઉપચારથી તેમાં સિદ્ધ થાય છે, તેથી તેને પ્રરૂપક કહેલ છે, કારણ કે સમસ્ત જીવાદિક ભાવોનું સર્વરૂપે યથાર્થદર્શી કેવળજ્ઞાન છે અને શબ્દ, કેવળજ્ઞાન દ્વારા જોયેલ પદાર્થોનીજ પ્રરૂપણા કરે છે તેથી ઔપચારિક રીતે એવું માની લેવાય છે કે કેવળજ્ઞાન જ તેનું પ્રરૂપક છે.

(૭) सम्पूर्णलोकालोकविषयक—ધર્માદિક દ્રવ્યોની જ્યાં વૃત્તિ છે એનું નામ લોક છે. તેનાથી ઉલટો અલોક છે. તેમાં આકાશના સિવાય બીજું કોઈ દ્રવ્ય નથી. તે અનંત અને અસ્તિકાયરૂપ છે. લોક અને અલોકમાં જે કોઈ જ્ઞેય પદાર્થ હોય છે, તેનું સર્વરૂપથી પ્રકાશક હોવાથી તે સંપૂર્ણલોકાલોક વિષયક કહેવાય છે.

(૮) અનંતપર્યાય—મત્યાદિક જ્ઞાન જેમ સર્વે દ્રવ્યોને અને તેમની કેટલીક પર્યાયોને પરોક્ષ-પ્રત્યક્ષરૂપથી જાણે છે, એજ પ્રમાણે આ જ્ઞાન જાણતું નથી પણ આ (જ્ઞાન) તો સમસ્ત દ્રવ્યોને અને તેમની સમસ્ત પર્યાયોને યુગપત્ પ્રત્યક્ષ જાણે છે, તેથી આ જ્ઞાનને અનંત પર્યાય કહેલ છે.

तत् केवलज्ञानं द्विविधं प्रज्ञप्तम्—तद्यथा—भवस्थ-केवलज्ञानं, सिद्ध-केवलज्ञानं च॥

मूलम्—से किं तं भवत्थ-केवलनाणं ?। भवत्थ-केवलनाणं दुविहंपण्णत्तं। तंजहा—सजोगि—भवत्थ--केवलनाणं च, अजोगि-भवत्थ-केवलनाणं च ॥

छाया—अथ किं तद् भवस्थ—केवलज्ञानम् ?। भवस्थ—केवलज्ञानं द्विविधं प्रज्ञप्तम्। तद् यथा—सयोगि—भवस्थ—केवलज्ञानं च अयोगि—भवस्थ—केवलज्ञानं च ॥

टीका—शिष्यः पृच्छति—'से किं तं भवत्थ—केवलनाणं' इति, पूर्वनिर्दिष्टस्य भवस्थकेवलज्ञानस्य किं स्वरूप ? मित्यर्थः। उत्तरमाह—'भवत्थ—केवलनाणं दुविहं पण्णत्तं' इत्यादि। भवस्थ—केवलज्ञानं—भवो=मनुष्यजन्म, तत्र तिष्ठतीति भवस्थः, तस्य केवलज्ञानमिति विग्रहः। तद् द्विविधं प्रज्ञप्तं=तीर्थंकरैः कथितम्। तद् यथा—सयोगि—भवस्थकेवलज्ञानम्, अयोगि—भवस्थ—केवलज्ञानमिति ॥

यह केवलज्ञान दो प्रकार का है—१ भवस्थ—केवलज्ञान और २ सिद्ध-केवलज्ञान ॥

'से किं तं भवत्थकेवलनाणं' इत्यादि।

शिष्य पूछता है—हे भदन्त! भवस्थ—केवलज्ञान का क्या स्वरूप है? उत्तर—भवस्थ—केवलज्ञान दो प्रकार का बतलाया गया है, वह इस प्रकार-एक सयोगि-भवस्थ—केवलज्ञान दूसरा अयोगि—भवस्थ-केवलज्ञान। मनुष्य जन्म का नाम यहां भव है। इस भव में रहनेवाले का जो केवलज्ञान है वह भवस्थ—केवलज्ञान है। वह भवस्थ—केवलज्ञान दो प्रकार का बतलाया गया है। सयोगि—भवस्थ—केवलज्ञान और दूसरा अयोगि—भवस्थ—केवलज्ञान।

આ કેવળજ્ઞાન બે પ્રકારનું છે—(૧) ભવસ્થ—કેવળજ્ઞાન અને (૨) સિદ્ધ-કેવળજ્ઞાન.

"से किं तं भवत्थकेवलनाणं" ઈત્યાદિ.

શિષ્ય પૂછે છે—હે ભદન્ત! ભવસ્થ—કેવળજ્ઞાનનું શું સ્વરૂપ છે?

ઉત્તર—ભવસ્થ—કેવળજ્ઞાન બે પ્રકારનું બતાવેલ છે. તે આ પ્રમાણે છે. (૧) સયોગિ—ભવસ્થ—કેવળજ્ઞાન અને (૨) અયોગિ—ભવસ્થ—કેવળજ્ઞાન. અહીં મનુષ્યજન્મનું નામ ભવ છે. આ ભવમાં રહેનારનું જે કેવળજ્ઞાન છે તે ભવસ્થ-કેવળજ્ઞાન કહેવાય છે. તે ભવસ્થ કેવળજ્ઞાન બે પ્રકારનું છે—સયોગિ—ભવસ્થ—કેવળજ્ઞાન અને બીજું અયોગિ—ભવસ્થ—કેવળજ્ઞાન.

मूलम्—से किं तं सजोगि-भवत्थ-केवलनाणं ?। सजोगि-भवत्थ-केवलनाणं दुविहं पण्णत्तं। तं जहा—पढमसमयसजोगि-भवत्थ-केवलनाणं च, अपढमसमयसजोगिभवत्थकेवलनाणं च। अहवा—चरमसमयसजोगिभवत्थकेवलनाणं च अचरमसमय-सजोगिभवत्थकेवलनाणं च। से त्तं सजोगिभवत्थकेवलनाणं ॥

छाया—अथ किं तत् सयोगिभवस्थकेवलज्ञानम् ?। सयोगिभवस्थकेवल-ज्ञानं द्विविधं प्रज्ञप्तम्। तद् यथा—प्रथमसमयसयोगिभवस्थकेवलज्ञानं च, अप्रथम-समयसयोगिभवस्थकेवलज्ञानं च। अथवा—चरमसमयसयोगिभवस्थकेवलज्ञानं च, अचरमसमयसयोगिभवस्थकेवलज्ञानं च। तदेतत् सयोगिभवस्थकेवलज्ञानम् ॥

टीका—शिष्यः पृच्छति—'से किं तं सजोगिभवत्थकेवलनाणं ?' इति। उत्तरमाह—'सजोगिभवत्थकेवलनाणं' इत्यादि। सयोगिभवस्थकेवलज्ञानम्-

---

'से किं तं सजोगि-भवत्थ-केवलनाणं' इत्यादि।

प्रश्न—सयोगि-भवस्थ-केवलज्ञान का क्या स्वरूप है? उत्तर—मन, वचन, और कायकी क्रिया का नाम योग है। यह योग जिसके होता है वह सयोगी कहलाता है। सयोगी होकर जो भवस्थ होता है वह सयोगि-भवस्थ है। उसका जो केवलज्ञान होता है उसका नाम सयोगिभवस्थ-केवलज्ञान है। वह दो प्रकार का बतलाया गया है—एक प्रथमसमय-सयोगि-भवस्थ केवलज्ञान और दूसरा अप्रथमसमय-सयोगि-भवस्थ-केववज्ञान। जिस सयोगी भवस्थ आत्मा को केवलज्ञान उत्पन्न होने में एक समय हुआ हो उसका केवलज्ञान प्रथमसमय सयोगि-भवस्थ-केवल-

---

"से किं तं सजोगि-भवत्थ-केवलनाणं" ઈત્યાદિ.

પ્રશ્ન—સયોગિ-ભવસ્થ-કેવળજ્ઞાનનું શું સ્વરૂપ છે?

ઉત્તર—મન, વચન અને કાયાની ક્રિયાનું નામ યોગ છે, આ યોગ જેને થાય છે તે સયોગી કહેવાય છે. સયોગી થઈને જે ભવસ્થ હોય છે તે સયોગિ-ભવસ્થ છે. તેનું જે કેવળજ્ઞાન હોય છે તેને સયોગિ ભવસ્થ કેવળજ્ઞાન કહે છે. તે બે પ્રકારનું બતાવ્યું છે—(૧) પ્રથમસમય-સયોગિ-ભવસ્થ-કેવળજ્ઞાન અને (૨) અપ્રથમસમય સયોગિ-ભવસ્થ-કેવળજ્ઞાન. જે સયોગી ભવસ્થ આત્માને કેવળજ્ઞાન ઉત્પન્ન થવામાં એક સમય લાગ્યો હોય તેનું કેવળજ્ઞાન

तत्र-योगाः-व्यापाराः। तैः सह वर्तन्ते ये, ते सयोगाः सव्यापारामनोवाक्कायाः, ते विद्यन्ते यस्य स सयोगी। स चासौ भवस्थश्च सयोगिभवस्थस्तस्य केवलज्ञान-मितिविग्रहः। तद् द्विविधं प्रज्ञप्तम्, तद् यथा-प्रथमसमयसयोगिभवस्थकेवलज्ञानं च। प्रथमः समयः सयोगित्वे यस्य स प्रथमसमयः, केवलज्ञानप्राप्तौ प्रथमः समयो यस्य स इत्यर्थः। स चासौ सयोगिभवस्थश्चेति प्रथसमयसयोगिभवस्थः, तस्य केवलज्ञानमित्यर्थः। एवमप्रथमः=द्वितीयादिः समयो यस्य सोऽप्रथमसमयः, शेषं प्राग्वत्। अथवेत्यादि। चरमः=अन्त्यः समयो यस्य सयोग्यवस्थायाः, स तथा, शेषं प्राग्वत्। एवमचरमः=चरमादन्यः समयो यस्य सोऽचरमसमयः, पश्चानुपूर्व्या चरमादारभ्य सर्वे एव आकेवलप्राप्तेरचरमा इति। शेषं प्राग्वत्॥

मूलम्—से किं तं अजोगिभवत्थकेवलनाणं?। अजोगिभवत्थकेवलनाणं दुविहं पण्णत्तं। तं जहा—पढमसमयअजोगिभवत्थकेवलनाणं च, अपढमसमयअजोगिभवत्थकेवलनाणं च।

ज्ञान है। तथा जिस केवलज्ञान के उत्पन्न होने में द्वितीयादि समय हो गये हों वह अप्रथमसमय-सयोगिभवस्थ-केवलज्ञान है। अथवा इस तरह से भी केवलज्ञान के दो भेद होते हैं-चरमसमय-सयोगि-भवस्थ-केवलज्ञान एवं अचरमसमय-सयोगि-भवस्थ-केवलज्ञान। सयोगी-अवस्था के अन्त्यसमय का जो केवलज्ञान है वह चरमसमय-सयोगि-भवस्थ-केवलज्ञान है। इससे विपरीत, अर्थात् पश्चानुपूर्वी की अपेक्षा सयोगी अवस्था के चरमसमय से लेकर जितने समय केवलज्ञान की प्राप्ति पर्यन्त हो गये हैं वे सब अचरमसमय हैं। उन समयों का केवल-ज्ञान अचरमसमय-सयोगि-भवस्थ-केवलज्ञान कहलाता है॥

પ્રથમસમય-સયોગિ-ભવસ્થ-કેવળજ્ઞાન છે. તથા જે કેવળજ્ઞાન ઉત્પન્ન થવામાં બે વગેરે સમય લાગ્યા હોય તે અપ્રથમસમય-સયોગિ-ભવસ્થ-કેવળજ્ઞાન છે. અથવા કેવળજ્ઞાનના આ પ્રમાણે પણ બે ભેદ પડે છે-ચરમસમય-સયોગિ-ભવસ્થ-કેવળજ્ઞાન અને અચરમસમય-સયોગિ-ભવસ્થ-કેવળજ્ઞાન. સયોગી અવસ્થાના અંત્ય સમયનું જે કેવળજ્ઞાન છે તે ચરમસમય-સયોગિ-ભવસ્થ-કેવળજ્ઞાન છે. તેથી ઉલટું એટલે કે પશ્ચાનુપૂર્વીની અપેક્ષાએ સયોગી અવસ્થાના ચરમ સમયથી લઈને કેવળજ્ઞાનની પ્રાપ્તિ સુધી જેટલા સમયો થઈ ગયા હોય તે બધા અચરમ સમયો છે. તે સમયોનું કેવળજ્ઞાન અચરમસમય-સયોગિ-ભવસ્થ-કેવળજ્ઞાન કહેવાય છે.

अहवा—चरमसमय-अजोगिभवत्थकेवलनाणं च, अचरमसमय-अजोगिभवत्थकेवलनाणं च। से तं अजोगिभवत्थकेवलनाणं, से त्तं भवत्थकेवलनाणं॥ सू० १९॥

छाया---अथ किं तद् अयोगिभवस्थकेवलज्ञानम्? । अयोगिभवस्थकेवलज्ञानं द्विविधं प्रज्ञप्तम्। तद् यथा-प्रथमसमयाऽयोगिभवस्थकेवलज्ञानं च, अप्रथमसमयाऽयोगिभवस्थकेवलज्ञानं च। अथवा-चरमसमयाऽयोगिभवस्थकेवलज्ञानं च, अचरमसमयाऽयोगिभवस्थकेवलज्ञानं च। तदेतदयोगिभवस्थकेवलज्ञानम्, तदेतद् भवस्थकेवलज्ञानम्॥ सू० १९॥

टीका-'से किं तं अजोगिभवत्थकेवलनाणं' इत्यादि। न योगी इत्ययोगी, शैलेश्यवस्थामुपगतः। स चासौ भवस्थश्च-अयोगिभवस्थः तस्य केवलज्ञानम्। अयोगिभवस्थकेवलज्ञानम्। शेषं सुगमम्॥ १९॥

इस प्रकार सयोगि-भवस्थ-केवलज्ञान का स्वरूप बतलाया, अब अयोगि-भवस्थ-केवलज्ञान का स्वरूप कहते हैं-'से किं तं अजोगिभवत्थ-केवलनाणं' इत्यादि।

शैलेशी अवस्था को जो प्राप्त हो चुके हैं वे अयोगी हैं, अयोगी होकर भी जो भवस्थ हैं वे अयोगीभवस्थ हैं। इनका जो केवलज्ञान है वह अयोगि-भवस्थ-केवलज्ञान है। वह दो प्रकार का है, जैसे-प्रथमसमय-अयोगि-भवस्थ-केवलज्ञान और अप्रथमसमय-अयोगिभवस्थ-केवलज्ञान। उनमें जिन भवस्थ आत्मा को शैलेशी अवस्था प्राप्त करने में एक समय हुवा हो, उनका केवलज्ञान प्रथमसमय-अयोगि-भवस्थ-केवलज्ञान कहलाता है, और जिनको शैलेशी अवस्था प्राप्त करने में द्वितीयादि समय

આ પ્રમાણે સયોગિ-ભવસ્થ-કેવળજ્ઞાનનું સ્વરૂપ બતાવ્યું, હવે અયોગિ-ભવસ્થ-કેવળજ્ઞાનનું સ્વરૂપ કહે છે-"से किं तं अजोगि भवत्थ केवलनाणं" ઇત્યાદિ.

શૈલેશી અવસ્થાને જે પામી ગયાં છે તે અયોગી છે. અયોગી હોવા છતાં પણ જે ભવસ્થ છે તેઓ અયોગિ ભવસ્થ છે. તેમનું જે કેવળજ્ઞાન છે તે અયોગિ-ભવસ્થ-કેવળજ્ઞાન છે. તે બે પ્રકારનું છે-(૧) પ્રથમસમય-અયોગિ-ભવસ્થ-કેવળજ્ઞાન અને (૨) અપ્રથમસમય-અયોગિ-ભવસ્થ-કેવળજ્ઞાન છે. તેમાં જે ભવસ્થ આત્માને શૈલેશી અવસ્થા પ્રાપ્ત કરવામાં એક સમય લાગ્યો હોય, તેમનું કેવળજ્ઞાન પ્રથમસમય-અયોગિ-ભવસ્થ-કેવળજ્ઞાન કહેવાય છે. અને જેમને શૈલેશી

मूलम्—से किं तं सिद्धकेवलनाणं ?। सिद्धकेवलनाणं दुविहं पण्णत्तं। तं जहा—अणंतरसिद्धकेवलनाणं च, परंपरासिद्ध-केवलनाणं च॥ सू० २०॥

छाया—अथ किं तत् सिद्धकेवलज्ञानम् ?। सिद्धकेवलज्ञानं द्विविधं प्रज्ञप्तम्। तद् यथा—अनन्तरसिद्धकेवलज्ञानं च, परम्परसिद्धकेवलज्ञानं च॥ सू० २०॥

टीका—शिष्यः पृच्छति—'से किं तं सिद्धकेवलनाणं' इति। अथ किं तत् सिद्धकेवलज्ञानमिति। उत्तरमाह—सिद्धकेवलज्ञानं—सिद्धस्य=शैलेश्यवस्थाचरमसमय-प्राप्तसिद्धत्वस्य केवलज्ञानं, द्विविधं प्रज्ञप्तम्। तद् यथा—अनन्तरसिद्धकेवलज्ञानं च, परंपरसिद्धकेवलज्ञानं च॥ सू० २०॥

हो गये हैं उनके केवलज्ञान को अप्रथमसमय-अयोगि-भवस्थ-केवलज्ञान कहते हैं। अथवा चरम अचरम के भेद से यह फिर दो प्रकार का है- १ मोक्ष पहोंचने के अन्तिम समय का जो केवलज्ञान है चरमसमय-अयोगि-भवस्थ-केवलज्ञान है, और २ जो मोक्ष पहुंचने के अन्तिम समय के पहले पश्चानुपूर्वी से शैलेशी अवस्था की प्राप्ति के समय तक का जो केवलज्ञान है वह अचरमसमय-अयोगि-भवस्थ-केवलज्ञान है इस प्रकार अयोगि-भवस्थ-केवलज्ञान की तथा भवस्थकेवलज्ञान की प्ररूपणा हुई॥ सू० १९॥

'से किं तं सिद्धकेवलनाणं' इत्यादि।

प्रश्न-सिद्ध-केवलज्ञान का क्या स्वरूप है ? उत्तर-सिद्ध-केवलज्ञान दो प्रकार का है। १ अनंतरसिद्ध-केवलज्ञान और २ परम्परसिद्ध-केवल-

---

અવસ્થા પ્રાપ્ત કરવામાં બે વગેરે સમયો લાગ્યા હોય તેમના કેવળજ્ઞાનને અપ્રથમ-સમય-અયોગિ-ભવસ્થ-કેવળજ્ઞાન કહે છે. અથવા ચરમ-અચરમના ભેદથી વળી તે પ્રકારનું છે—(૧) મોક્ષ પહોંચવાના અંતિમ સમયનું જે કેવળજ્ઞાન છે તે ચરમ-સમય-અયોગિ-ભવસ્થ-કેવળજ્ઞાન છે, અને (૨) જે મોક્ષ પહોંચવાના અંતિમ સમયના પહેલાં પશ્ચાનુપૂર્વીથી શૈલેશી અવસ્થાની પ્રાપ્તિના સમય સુધીનું જે કેવળ-છે તે અચરમસમય-અયોગિ-ભવસ્થ-કેવળજ્ઞાન છે. આ પ્રમાણે અયોગિ-ભવસ્થ-કેવળજ્ઞાનની તથા ભવસ્થ કેવળજ્ઞાની પ્રરૂપણા થઈ ॥ સૂ. ૧૯ ॥

"से किं तं सिद्धकेवलनाणं" ઇત્યાદિ.

પ્રશ્ન—સિદ્ધ-કેવળજ્ઞાનનું શું સ્વરૂપ છે? ઉત્તર—સિદ્ધ-કેવળજ્ઞાન બે પ્રકારનું છે. (૧) અનંતર-સિદ્ધ-કેવળજ્ઞાન અને (૨) પરમ્પર-સિદ્ધ-કેવળજ્ઞાન. સિદ્ધનું શૈલેશી અવસ્થાના ચરમ સમયમાં પ્રાપ્ત સિદ્ધત્વ અવસ્થાનું જે કેવળજ્ઞાન

मूलम्—से किं तं अणंतरसिद्धकेवलनाणं ?। अणंतरसिद्ध-केवलनाणं पन्नरसविहं पण्णत्तं । तं जहा—तित्थसिद्धा १, अतित्थसिद्धा २, तित्थयरसिद्धा ३, अतित्थयरसिद्धा ४, सयंबुद्धसिद्धा ५, पत्तेयबुद्धसिद्धा ६, बुद्धबोहियासिद्धा ७, इत्थिलिंगसिद्धा ८, पुरिसलिंगसिद्धा ९, नपुंसकलिंगसिद्धा १०, सलिंगसिद्धा ११, अन्नलिंगसिद्धा १२, गिहिलिंगसिद्धा १३, एगासिद्धा १४, अणेगासिद्धा १५, से तं अणंतरसिद्धकेवलनाणं ॥ सू० २१ ॥

छाया—अथ किं तदनन्तरसिद्धकेवलज्ञानम् ?, अनन्तरसिद्धकेवलज्ञानं पञ्चदशविधं प्रज्ञप्तं । तद् यथा—तीर्थसिद्धाः १, अतीर्थसिद्धाः २, तीर्थकरसिद्धाः ३, अतीर्थकरसिद्धाः ४, स्वयंबुद्धसिद्धाः ५, प्रत्येकबुद्धसिद्धाः ६, बुद्धबोधितसिद्धाः ७, स्त्रीलिङ्गसिद्धाः ८, पुरुषलिङ्गसिद्धाः ९, नपुंसकलिङ्गसिद्धाः १०, स्वलिङ्गसिद्धाः ११, अन्यलिङ्गसिद्धाः १२, गृहिलिङ्गसिद्धाः १३, एकसिद्धाः १४, अनेकसिद्धाः १५, तदेतदनन्तरसिद्धकेवलज्ञानम् ॥ सू० २१ ॥

टीका—शिष्यः पृच्छति—'से किं तं अणंतरसिद्धकेवलनाणं ?' इति । अथ किं तद् अनन्तरसिद्धकेवलज्ञानम् ? । पूर्वनिर्दिष्टस्य अनन्तरसिद्धकेवलज्ञानस्य किं स्वरूपमिति प्रश्नः । उत्तरमाह—'अणंतरसिद्धकेवलनाणं' इत्यादि । अनन्तरसिद्धकेवलज्ञानम् न विद्यतेऽन्तरं=व्यवधानम् अर्थात्—समयेन येषां तेऽनन्तराः ते च ते सिद्धाश्चानन्तर-सिद्धाः=सिद्धत्वप्राप्ताः प्रथमसमयेवर्तमानाः सिद्धाअनन्तरसिद्धा इत्यर्थः । तेषां केवलज्ञानं पञ्चदशविधं प्रज्ञप्तम्, अनन्तरसिद्धाः पञ्चदशविधा भवन्ति, अतस्तेषां

ज्ञान। सिद्ध का शैलेशी अवस्था के चरमसमय में प्राप्त सिद्धत्व अवस्था का जो केवलज्ञान है वह सिद्ध-केवलज्ञान है। यह अनन्तर और परम्पर के भेद से दो प्रकार का है ॥ सू० २० ॥

'से किं तं अणंतरसिद्ध-केवलनाणं'? इत्यादि ।

प्रश्न—अनन्तरसिद्ध—केवलज्ञान का क्या स्वरूप है? उत्तर—अनंतरसिद्ध केवलज्ञान पन्द्रह प्रकार का है। वे प्रकार ये हैं—१ तीर्थसिद्ध, २ अतीर्थ-

---

છે તે સિદ્ધ-કેવળજ્ઞાન છે. તે અનન્તર અને પરમ્પરના ભેદથી બે પ્રકારનું છે ॥ સૂ ૨૦ ॥

"से किं तं अणंतर-सिद्ध-केवलनाणं ?" ઇત્યાદિ.

પ્રશ્ન—અનન્તર-સિદ્ધ-કેવળજ્ઞાનનું શું સ્વરૂપ છે? ઉત્તર—અનન્તર-સિદ્ધ-કેવળજ્ઞાન પંદર પ્રકારનું છે. તે આ પ્રમાણે છે-(૧) તીર્થસિદ્ધ, (૨) અતીર્થ-

केवलज्ञानं पञ्चदशविधं भवतीति भावः। के ते पञ्चदश भेदाः? इत्याह–'तं जहा' इत्यादि। तद् यथा—'तीर्थसिद्धाः' इत्यादि। तत्र तीर्थसिद्धाः–यदाश्रित्य जीवा अनन्तसंसारसागरं तरन्ति तत् तीर्थम्, तच्च यथावस्थितसकलजीवाजीवादिपदार्थसार्थप्ररूपकं चतुस्त्रिंशदतिशयसमन्वितपरमगुरुतीर्थंकरप्रणीतं प्रवचनम्, एतच्च निराधारं न भवतीति गणधरा वा चतुर्विधसंघो वा तदाधारो वेदितव्यः। ततश्च तस्मिन् तीर्थे–तीर्थंकरशासने प्रवृत्ते सति ये सिद्धाः=निर्वृताः=निर्वाणं प्राप्तास्ते तीर्थसिद्धाः, यथा वृषभसेनगणधरादयः १।

सिद्ध, ३ तीर्थंकरसिद्ध, ४ अतीर्थंकरसिद्ध, ५ स्वयंबुद्धसिद्ध, ६ प्रत्येकबुद्धसिद्ध, ७ बुद्धबोधितसिद्ध, ८ स्त्रीलिङ्गसिद्ध, ९ पुरुषलिङ्गसिद्ध, १० नपुंसकलिङ्गसिद्ध, ११ स्वलिङ्गसिद्ध, १२ अन्यलिङ्गसिद्ध, १३ गृहिलिङ्गसिद्ध, १४ एकसिद्ध, १५ अनेकसिद्ध, यह अनन्तरसिद्ध केवलज्ञान है।

भावार्थ–सिद्धत्व को प्राप्त हुआ सिद्ध आत्मा प्रथम समय में जब तक वर्तमान है वह अनन्तरसिद्ध है। सिद्धत्व पद प्राप्त आत्मा एक समय के भीतर २ ही सिद्ध बन जाता है एक समय का भी यहां अन्तर-व्यवधान नहीं पड़ता है। इस अनन्तरसिद्ध आत्मा का जो केवलज्ञान है वह अनन्तरसिद्ध–केवलज्ञान है। यह पन्द्रह प्रकार का बतलाया गया है। वे पन्द्रह भेद ये हैं–जिसका आश्रय कर जीव अनन्त संसार को पार कर देते हैं वह तीर्थ है। यह तीर्थ यथावस्थित सकल जीवादिक पदार्थों के यथार्थ स्वरूप का प्ररूपक जो प्रवचन है तत्स्वरूप माना गया। इस प्रवचन के प्रणेता ३४ चोंतीस अतिशयों से विराजमान परमगुरु तीर्थ-

---

સિદ્ધ, (૩) તીર્થંકરસિદ્ધ, (૪) અતીર્થંકર-સિદ્ધ, (૫) સ્વયંબુદ્ધસિદ્ધ, (૬) પ્રત્યેકબુદ્ધસિદ્ધ, (૭) બુદ્ધબોધિતસિદ્ધ, (૮) સ્ત્રીલિંગસિદ્ધ, (૯) પુરુષલિંગસિદ્ધ, (૧૦) નપુંસકલિંગસિદ્ધ, (૧૧) સ્વલિંગસિદ્ધ, (૧૨) અન્યલિંગસિદ્ધ, (૧૩) ગૃહિલિંગસિદ્ધ, (૧૪) એકસિદ્ધ, (૧૫) અનેકસિદ્ધ. આ અનન્તર સિદ્ધ કેવળજ્ઞાનનું સ્વરૂપ છે.

ભાવાર્થઃ—સિદ્ધત્વ પામેલ સિદ્ધ આત્મા પ્રથમ સમયમાં જ્યાં સુધી વર્તમાન છે તે અનન્તરસિદ્ધ છે. સિદ્ધત્વ પદ પામેલ આત્મા એક સમયની અંદર જ સિદ્ધ બની જાય છે. એક સમયનું પણ ત્યાં અન્તર–વ્યવધાન પડતું નથી. આ અનન્તરસિદ્ધ આત્માનું જે કેવળજ્ઞાન છે તે અનન્તરસિદ્ધ–કેવળજ્ઞાન છે. એ પંદર પ્રકારનું બતાવ્યું છે. તે પંદર ભેદ આ પ્રમાણે છે–જેનો આશ્રય લઈને જીવ અનંત સંસારને પાર કરી નાખે છે તે તીર્થ છે. આ તીર્થ યથાવસ્થિત સઘળા જીવાદિક પદાર્થોના યથાર્થ સ્વરૂપનું પ્રરૂપક જે પ્રવચન છે તત્સ્વરૂપ માનેલ છે. આ પ્રવચનના પ્રણેતા ૩૪ ચોત્રીસ અતિશયોથી વિરાજમાન પરમગુરુ તીર્થ-

अतीर्थसिद्धाः=तीर्थस्याभावोऽतीर्थं, तीर्थस्याभावश्च-अनुत्पत्तिरूपः, अपान्तराले व्यवच्छेदो वा, तस्मिन् ये सिद्धास्तेऽतीर्थसिद्धाः। तत्र मरुदेव्यादयोऽतीर्थसिद्धा उच्यन्ते, तदा तीर्थानुत्पत्तेः। तथा तीर्थस्य व्यवच्छेदश्चन्द्रप्रभस्वामि-सुविधिस्वाम्यपान्तराले, तत्र ये जातिस्मरणादिना मोक्षमार्गं प्राप्य सिद्धास्तेतीर्थव्यवच्छेदसिद्धा अतीर्थसिद्धा उच्यन्ते २। तीर्थकरसिद्धाः-तीर्थकरा एव ३। अतीर्थकरसिद्धा अन्ये सामान्यकेवलिनः ४। स्वयंबुद्धसिद्धाः-ये स्वयम्=आत्मनैव बुद्धास्तत्त्वं ज्ञातवन्तः। परोपदेशं विना सम्यगवरबोधिप्राप्त्या मिथ्यात्वनिद्रापगमेन सम्यग्बोधं प्राप्तास्ते स्वयंबुद्धाः, तथाविधाः सन्तो ये सिद्धास्ते स्वयंबुद्ध-

---

कर होते हैं। यह प्रवचनरूप तीर्थ निराधार नहीं होता है। इसके आधार-या तो गणधर होते हैं या चतुर्विध संघ होता है। इसतीर्थ के प्रवृत्त होने पर, अर्थात् तीर्थंकर के शासनकाल के चालू रहने पर जो सिद्ध होते हैं-निर्वाणपद पाते हैं-वे तीर्थसिद्ध हैं। जैसे वृषभसेन गणधर आदि १।

तीर्थ का अभाव-अनुत्पत्ति अथवा अन्तरालकाल में तीर्थ का व्यवच्छेद अतीर्थ है। इस अतीर्थ में जो सिद्ध हुए हैं वे अतीर्थसिद्ध हैं, जैसे मरुदेवी आदि। इनके समय तीर्थ की उत्पत्ति नहीं थी। तथा तीर्थ का व्यवच्छेद चन्द्रप्रभस्वामी एवं सुविधि स्वामी के अन्तराल में हुआ था। ऐसे समय में जो जातिस्मरण आदि के द्वारा मोक्षमार्ग को प्राप्तकर सिद्ध हुए हैं वे तीर्थव्यवच्छेदसिद्ध अतीर्थसिद्ध कहे गये हैं २। तीर्थंकरसिद्ध तीर्थंकर ही हैं ३। सामान्यकेवली अतीर्थंकरसिद्ध हैं ४। जो स्वयं ही तत्त्वों के ज्ञाता बने हैं, अर्थात् पर के उपदेश विना ही

કરો હોય છે. આ પ્રવચનરૂપ તીર્થ નિરાધાર હોતું નથી. તેનો આધાર કાંતો ગણધરો હોય છે કે ચતુર્વિધ સંઘ હોય છે. આ તીર્થ પ્રવૃત્ત થતાં, એટલે કે તીર્થંકરનો શાસનકાળ ચાલુ રહેતાં જે સિદ્ધો થાય છે-નિર્વાણપદ પામે છે. તેઓ તીર્થસિદ્ધ છે-જેવાં કે વૃષભસેન ગણધર વગેરે (૧). તીર્થનો અભાવ-અનુત્પત્તિ અથવા વચગાળાના કાળમાં તીર્થનો વ્યવચ્છેદ અતીર્થ છે. આ અતીર્થમાં જે સિધ્ધ થયા તેઓ અતીર્થસિદ્ધ છે, જેવાં કે મરૂદેવી વગેરે. તેમના સમયમાં તીર્થની ઉત્પત્તિ થઈ ન હતી. તથા તીર્થનો વ્યવચ્છેદ ચંદ્રપ્રભસ્વામી અને સુવિધિ-સ્વામીના વચગાળાના સમયમાં થયો હતો. એવા સમયમાં જેઓ જાતિસ્મરણ વગેરે દ્વારા મોક્ષમાર્ગને પ્રાપ્ત કરીને સિદ્ધ થયાં છે, તેમને તીર્થવ્યવચ્છેદસિદ્ધ અતીર્થસિદ્ધ કહેવાય છે (૨). તીર્થંકરસિદ્ધ તીર્થંકર જ છે (૩). સામાન્ય કેવળી અતીર્થંકરસિદ્ધ છે (૪). જેઓ જાતે જ તત્ત્વોના જાણકાર બન્યાં છે, એટલે કે

सिद्धाः ५। प्रत्येकबुध्धसिद्धाः-ये तु एकं किंचिदनित्यत्वादिभावनाकारणं वृषभादिकं प्रतीत्य बुद्धाः-परमार्थं ज्ञातवन्तस्ते प्रत्येकबुद्धाः। ये प्रत्येकबुद्धाः सिद्धास्ते प्रत्येकबुध्धसिद्धाः ६।

ननु स्वयंबुद्ध-प्रत्येकबुद्धानां को भेदः?, उच्यते—बोध्युपाधिश्रुतलिङ्ग-कृतो भेदस्तत्रास्ति। तथाहि-स्वयंबुद्धानां बाह्यनिमित्तं विनैव निजजातिस्मरणा-दिना बोधिरुपजायते, प्रत्येकबुद्धानां तु बाह्यनिमित्तापेक्षया बोधिः, श्रूयते च-

जिन्हें सम्यक् वरबोधि की प्राप्ति हुई है, और इसीके प्रभाव से जिन्होंने मिथ्यात्वरूप निद्रा का अभाव किया है, और इसी कारण जिन्हें सम्यक् बोध प्राप्त हो चुका है वे स्वयंबुद्ध हैं। इस स्वयंबुद्ध अवस्था में जो सिद्ध हुए हैं वे स्वयंबुद्धसिद्ध है ५। जो किसी अनित्यत्वादि भावना के कारणभूत बाह्य किसी वस्तु-वृषभ आदि का निमित्त पाकर बुद्ध हो जाते हैं-परमार्थ के ज्ञाता बन जाता हैं वे प्रत्येकबुद्ध हैं। जो प्रत्येक बुद्ध होकर सिद्ध बन जाते हैं वे प्रत्येकबुद्धसिद्ध हैं ६।

शंका—स्वयंबुद्ध और प्रत्येकबुद्ध में क्या भेद है?

उत्तर—बोधि, उपधि, श्रुत एवं लिङ्ग की अपेक्षा भेद रहता है। जो स्वयंबुद्ध हुआ करते हैं उन्हें बाह्य निमित्त के विना ही बोधि प्राप्त हो जाती है। इसमें अन्तरंग निमित्त जातिस्मरण आदि पड़ते हैं। प्रत्येक बुद्धों में ऐसा नहीं होता है। उन्हें बोधि की प्राप्ति बाह्यनिमित्ताधीन

બીજાના ઉપદેશ વિના જ જેમને સમ્યગ્વરબોધિની પ્રાપ્તિ થઈ છે, અને તેનાજ પ્રભાવથી જેમણે મિથ્યાત્વરૂપ નિદ્રાનો નાશ કર્યો છે, અને એજ કારણે જેમને સમ્યક્ બોધ પ્રાપ્ત થઈ ગયો છે તેઓ સ્વયંબુદ્ધ છે. આ સ્વયંબુદ્ધ અવસ્થામાં જેઓ સિદ્ધ થયાં છે તેઓ સ્વયંબુદ્ધ સિદ્ધ છે (૫). જે કોઇ અનિત્યત્વાદિ ભાવનાના કારણભૂત કોઇ વસ્તુ-વૃષભ આદિનું નિમિત્ત મેળવીને બુદ્ધ થઇ જાય છે-પર-માર્થના જાણકાર બની જાય છે, તેઓ પ્રત્યેકબુદ્ધ છે. જેઓ પ્રત્યેકબુદ્ધ થઈને સિધ્ધથાય છે તેઓ પ્રત્યેકબુદ્ધ સિદ્ધ છે (૬).

શંકા—સ્વયંબુદ્ધ અને પ્રત્યેકબુદ્ધ વચ્ચે શો તફાવત છે?

ઉત્તર—બોધિ, ઉપધિ, શ્રુત અને લિંગની અપેક્ષાએ ભેદ રહે છે. જેઓ સ્વયંબુદ્ધ થાય છે તેમને બાહ્ય નિમિત્ત વિના જ બોધિ પ્રાપ્ત થઈ જાય છે. તેમાં અંતરંગ નિમિત્ત જાતિસ્મરણ આદિ હોય છે. "પ્રત્યેક બુદ્ધોમાં" એવું થતું નથી-તેમને બોધિની પ્રાપ્તિ બાહ્ય નિમિત્તાધીન હોય છે. કરકંડૂ

करकण्डूवादीनां प्रत्येकबुद्धानां बोधिर्वाह्यवृषभादिज्ञानसापेक्षा । प्रत्येकबुद्धाश्च बाह्यनिमित्तमपेक्ष्य बुद्धाः सन्तो नियमतः प्रत्येकमेव विहरन्ति, न तु गच्छवासिन इव संहताः। उपधिः स्वयंबुद्धानां द्वादशविध एव पात्रादिः। प्रत्येकबुद्धानां तु द्विधा-जघन्यतउत्कर्षतश्च, तत्र जघन्यतो द्विविधः, उत्कर्षतो नवविधः प्रावरणवर्जः ६।

तथा—स्वयंबुद्धानां पूर्वाधीतं श्रुतं भवति वा, न वा भवति। यदि भवति, ततो लिङ्गं देवता वा प्रयच्छति, गुरुसंनिधौ गत्वा वा प्रतिपद्यते। यदि चैकाकी विहर्तुं समर्थः, इच्छाऽपि तादृशी भवेत्, तदा एकाकी विहरति, अन्यथा गच्छावासेऽवतिष्ठते।

होती है। करकण्डू आदि प्रत्येकबुद्धों के जीवनचरित्र में इस बात का कथन मिलता है। प्रत्येकबुद्ध बाह्य निमित्त के प्रभाव से बुद्ध होकर नियमतः प्रत्येक-अकेले २ ही विहार करते हैं-गच्छवासी साधुओं की तरह समुदायरूप में नहीं। स्वयंबुद्धों की उपधि पात्र आदि बारह प्रकार की है। प्रत्येकबुद्धों की दो प्रकार की उपधि होती है-प्रथम जघन्य की अपेक्षा और दूसरी उत्कृष्ट की अपेक्षा। जघन्य की अपेक्षा इनके दो प्रकार की उपधि होती है, तथा उत्कर्ष की अपेक्षा नौ प्रकार की। इसमें प्रावरण छूट जाता है।

तथा स्वयंबुद्धों में जो श्रुत होता है वह पूर्व में अधीत किया हुआ भी होता है अथवा नहीं भी होता है। पूर्वाधीतश्रुत इनमें जब होता है तब इनके लिये वेष की प्राप्ति या तो देवता से होती है या वे स्वयं गुरु के निकट जाकर उनसे प्राप्त कर लिया करते हैं। इनमें यदि अकेले

આદિ પ્રત્યેકબુદ્ધોના જીવનચરિત્રમાં આ વાતનો ઉલ્લેખ મળે છે. પ્રત્યેકબુદ્ધ બાહ્યનિમિત્તના પ્રભાવથી બુદ્ધ થઈને નિયમતઃ પ્રત્યેકએકલા જ વિહાર કરે છે-ગચ્છવાસી સાધુઓની જેમ સમુદાયમાં નહીં. સ્વયંબુદ્ધોની ઉપધિ પાત્ર આદિ બાર પ્રકારની છે. પ્રત્યેક બુદ્ધોની ઉપધિ બે પ્રકારની હોય છે-પહેલી જઘન્યની અપેક્ષાએ અને બીજી ઉત્કૃષ્ટની અપેક્ષાએ. જઘન્યની અપેક્ષાએ તેમને બે પ્રકારની ઉપધિ હોય છે, તથા ઉત્કૃષ્ટની અપેક્ષાએ નવ પ્રકારની. તેમાં પ્રાવરણ છૂટી જાય છે.

તથા સ્વયંબુદ્ધોમાં જે શ્રુત હોય છે તે પૂર્વે અધીત કરેલ પણ હોય છે અથવા નથી પણ હોતું. તેમનામાં જ્યારે પૂર્વાધીત શ્રુત થાય છે ત્યારે તેમને માટે વેષની પ્રાપ્તિ કાંતો દેવ વડે થાય છે કે તે જાતે જ ગુરુની પાસે જઇને તેમની પાસેથી મેળવી લે છે. તેમનામાં એકલા વિહાર કરવાની જો શક્તિ હોય

यदि पूर्वाधीतं श्रुतं न भवति, तर्हि नियमाद् गुरुसंनिधौ गत्वा लिङ्गं प्रतिपद्यते, गच्छं वाऽवश्यं न मुञ्चति।

प्रत्येकबुद्धानां तु पूर्वाधीतं श्रुतं नियमतो भवति, तच्च जघन्यतः एकादशाङ्गानि, उत्कर्षतः किंचिन्न्यूनानि दश पूर्वाणि। तेभ्यो देवता लिङ्गं प्रयच्छति। लिङ्गवर्जिता वा कदाचिद् भवन्ति ६।

बुद्धबोधितसिद्धाः—बुद्धा=आचार्यदयस्तैर्बोधिताः सन्तो ये सिद्धास्ते तथा ७। स्त्रीलिङ्गसिद्धाः ८। पुंलिङ्गसिद्धाः ९। नपुंसकलिङ्गसिद्धाः १०। तथा

होकर विहार करने की शक्ति होती है, और इच्छा भी यदि इसी प्रकार की इनकी हो तो ये अकेले ही विहार करते हैं, नहीं तो गच्छावास में रहते हैं। इनका श्रुत जब पूर्वाधीत नहीं होता है तो ये नियमतः गुरु के निकट जाकर साधुवेष अंगीकार करते हैं, और गच्छ को नहीं छोड़ते हैं।

प्रत्येकबुद्धों का श्रुत नियम से पूर्वाधीत होता है। जघन्य से ये ग्यारह अंग पर्यन्त पढे हुए होते हैं, तथा उत्कृष्टरूप से कुछ कम दश पूर्वतक। इनके लिये साधुवेष देवता प्रदान करते हैं। अथवा ये कभी २ साधुवेष से वर्जित भी रहते हैं। ६।

बुद्धबोधितसिद्ध वे हैं कि जिन्हें आचार्य आदि बोध देते हैं। और उनसे प्रतिबोधित होकर ही जो सिद्ध अवस्था प्राप्त करते हैं ७। स्त्रीलिङ्ग से, पुल्लिङ्ग से तथा नपुंसकलिङ्ग से युक्त होकर जो सिद्ध होते हैं वे स्त्रीलिङ्ग पुंल्लिङ्ग और नपुंसकलिंग, सिद्ध ८-९-१० कहलाते हैं। स्वलिंग-

અને તેમની એવી ઇચ્છા પણ હોય તો તેઓ એકલા જ વિહાર કરે છે, નહીં તો ગચ્છવાસમાં રહે છે. જો તેમનું શ્રુત પૂર્વાધીત ન હોય તો તેઓ નિયમતઃ ગુરુની પાસે જઈને સાધુ-વેષ સ્વીકારે છે. અને ગચ્છને છોડતાં નથી.

પ્રત્યેકબુધ્ધોનું શ્રુત નિયમથી જ પૂર્વાધીત હોય છે. જઘન્યથી તેઓ અગિયાર અંગ સુધી ભણેલ હોય છે અને ઉત્કૃષ્ટરૂપથી દશ પૂર્વથી કંઇક ઓછું ભણેલ હોય છે. તેમને માટે દેવ સાધુવેષ આપે છે. અથવા તેઓ ક્યારેક ક્યારેક સાધુવેષથી વર્જિત પણ રહે છે ॥૬॥

જેમને આચાર્ય વગેરે બોધ આપે છે, અને તેમના દ્વારા પ્રતિબોધિત થઇને જેઓ સિધ્ધ અવસ્થા પ્રાપ્ત કરે છે, તેઓ બુધ્ધબોધિત સિધ્ધ છે ॥૭॥

નારીજાતિ, નરજાતિ અને નાન્યેતર જાતિથી યુક્ત થઈને જે સિધ્ધ થાય છે તેઓ સ્ત્રીલિંગ, પુલ્લિંગ અને નપુંસકલિંગ સિધ્ધ કહેવાય છે. ॥૮-૯-૧૦॥

स्वलिङ्गसिद्धाः=स्वलिङ्गं-जिनशासनवेषः सदोरकमुखवस्त्रिकारजोहरणादिरूपस्तत्र -तस्मिन् वेषे ये सिद्धास्ते स्वलिङ्गसिद्धाः ११। अन्यलिङ्गसिद्धाः-परिव्राजकादिलिङ्गे सिद्धाः १२। गृहिलिङ्गसिद्धाः १३। एकसिद्धाः-एकस्मिन् समये एके एव सिद्धाः। एवंभूता ये सिद्धास्ते एकसिद्धाः १४। अनेकसिद्धाः एकस्मिन् समये अनेके सिध्यन्ति स्म, ते अनेकसिद्धाः १५। उत्कर्षतोऽष्टोत्तरशतसंख्यका सिद्धा भवन्ति। उक्तञ्च—

बत्तीसा अडयाला, सट्ठी बावत्तरी य बोद्धव्वा।
चुलसीई छन्नउई, दुरहिय अट्ठुत्तर सयं च॥ १॥ १५॥

सिद्ध वे हैं कि जिनके पास जिनशासनकथित मुनिवेष होता है, जैसे-सदोरकमुखवस्त्रिका का होना, रजोहरण आदि का होना। इस वेष में रहकर जो सिद्धि प्राप्त करते हैं ११। परिव्राजक आदि के वेष में रहकर जो सिद्ध होते हैं वे अन्यलिंगसिद्ध कहलाते हैं १२। गृही के लिङ्ग में-गृहस्थ की पर्याय में-रहकर ही सिद्ध जो होते हैं वे गृहिलिंगसिद्ध हैं १३। तथा एक समय में जो एक ही जो सिद्ध होते हैं वे एकसिद्ध कहे गये हैं १४। एक समय में अनेक सिद्ध होते हैं वे अनेक सिद्ध हैं १५। अनेकसिध्ध उत्कृष्ट की अपेक्षा एक समय में एक सौ आठ (१०८) होते हैं, कहा भी है—

"बत्तीसा अडयाला, सट्ठी बावत्तरी य बोद्धव्वा।
चुलसीई छन्नउई, दुरहिय अट्ठुत्तर सयं च" ॥१॥

જેમની પાસે જિન શાસન કથિત મુનિવેષ હોય છે—જેમકે દોરા સાથેની મુહપત્તિ, રજોહરણ આદિનું હોવું-તેમને સ્વલિંગ સિધ્ધ કહે છે. આ વેષમાં રહીને જે સિધ્ધિ પ્રાપ્ત કરે છે તે સ્વલિંગ સિધ્ધ છે ॥૧૧॥ પરિવ્રાજક આદિના વેષમાં રહીને જે સિદ્ધ થાય છે તે અન્યલિંગ સિદ્ધ કહેવાય છે. ॥૧૨॥ ગૃહીનાં લિંગમાં-ગૃહસ્થની પર્યાયમાં-રહીને જ જે સિદ્ધ થાય છે તેઓ ગૃહીલિંગ સિદ્ધ છે ॥૧૩॥ તથા એક સમયમાં જે એકજસિદ્ધ થાય છે તેઓ એકસિદ્ધ કહેવાય છે ॥૧૪॥ એક સમયમાં અનેક સિદ્ધ થાય છે તેઓ અનેકસિદ્ધ છે ॥૧૫॥ અનેકસિદ્ધ ઉત્કૃષ્ટની અપેક્ષાએ એક સમયમાં એકસો આઠ (૧૦૮) થાય છે. કહેલ પણ છે—

"बत्तीसा अडयाला, सट्ठी बावत्तरी य बोद्धव्वा।
चुलसीई छन्नउई, दुरहिय अट्ठुत्तर सयं च" ॥१॥

छाया—द्वात्रिंशत् अष्टचत्वारिंशत्, षष्टिः द्वासप्ततिश्च बोद्धव्या।
चतुरशीतिः षण्णवतिः, द्व्यधिकं (द्व्यधिकशतं) अष्टोत्तरं शतं च॥१॥

व्याख्या—प्रथमसमये जघन्यत एको द्वौ वा, उत्कर्षतो द्वात्रिंशत् सिध्यन्तः प्राप्यन्ते। द्वितीयसमये जघन्यत एको द्वौ वा, उत्कर्षतो द्वात्रिंशत्। एवं तृतीयसमयेऽपि। एवं चतुर्थसमयेऽपि। एवं यावदष्टमेऽपि समये जघन्यत एको द्वौ वा उत्कर्षतो द्वात्रिंशत्। ततः परमवश्यमन्तरम्।

तथा—त्रयस्त्रिंशदादय उत्कर्षतोऽष्टचत्वारिंशत्पर्यन्ताः निरन्तरं सिध्यन्तः सप्त समयान् यावत् प्राप्यन्ते। तथाहि—प्रथमसमये जघन्यतस्त्रयस्त्रिंशच्चतुस्त्रिंशद् वा, उत्कर्षतोऽष्टचत्वारिंशत् सिध्यन्तः प्राप्यन्ते, इति रीत्या सप्तमसमयावधि भावना कार्या।

तथा—एकोनपञ्चाशदादय उत्कर्षतः षष्टिपर्यन्ता निरन्तरं सिध्यन्त षट्समयान् यावदवाप्यन्ते। परतोऽवश्यमन्तरम्। तथा–एकषष्ट्यादय उत्कर्षतो द्विसप्ततिपर्यन्ता निरन्तरं सिध्यन्तः–पञ्चसमयान् यावदवाप्यन्ते। ततः परमन्तरम्।

प्रथम समय में जघन्य से एक या दो जीव, तथा उत्कृष्ट से बत्तीस जीव सिद्ध होते हैं। द्वितीय समय में भी जघन्य से एक या दो जीव, तथा उत्कृष्ट से बत्तीस जीव सिद्ध होते हैं। इसी तरह तृतीय, चतुर्थ, पंचम, षष्ठ, सप्तम और अष्टम समय में भी जघन्य और उत्कृष्ट की अपेक्षा सिद्ध होनेवाले जीवों का प्रमाण जानना चाहिये। इसके बाद नियमतः अन्तर हो जाता है। तथा तेतीस से लेकर उत्कृष्ट अडतालीस पर्यन्त जीव निरन्तर सिद्ध होते रहते हैं, और ये सात समय तक सिद्ध होते हैं। जैसे–प्रथम समय में जघन्य से तेंतीस अथवा चौंतीस, उत्कर्ष से अडतालीस सिद्ध होते हैं, इस रीति से सात समय पर्यन्त भावना कर लेनी चाहिये। बादमें नियमतः अन्तर हो जाता है। तथा

પ્રથમ સમયમાં જઘન્યથી એક કે બે જીવ, તથા ઉત્કૃષ્ટથી બત્રીસ જીવ સિદ્ધ થાય છે. બીજા સમયમાં પણ જઘન્યથી એક કે બે જીવ અને ઉત્કૃષ્ટથી બત્રીસ જીવ સિદ્ધ થાય છે. એજ પ્રમાણે ત્રીજા, ચોથા, પાંચમાં, છઠ્ઠાં, સાતમાં, અને આઠમાં સમયમાં જઘન્ય અને ઉત્કૃષ્ટની અપેક્ષાએ સિદ્ધ થનાર જીવોનું પ્રમાણ જાણવું જોઈએ. ત્યાર પછી નિયમથી જ અંતર પડી જાય છે. તથા તેત્રીસથી લઈને ઉત્કૃષ્ટ અડતાલીસ સુધી જીવ નિરંતર સિદ્ધ થતાં રહે છે, અને એ સાત સમય સુધી સિદ્ધ હોય છે. જેમકે પ્રથમ સમયમાં જઘન્યથી તેત્રીસ અથવા ચોત્રીસ, ઉત્કૃષ્ટથી અડતાલીસ સિદ્ધ હોય છે, આ રીતે સાત સમય સુધી સમજી લેવું જોઈએ. પછી નિયમથી અંતર પડી જાય છે. તથા ઓગણ-

तथा—त्रिसप्तत्यादय उत्कर्षतश्चतुरशीतिपर्यन्ता निरन्तरं सिध्यन्तश्चतुरः समयान् यावत् प्राप्यन्ते। तत ऊर्ध्वमन्तरम्। तथा—पञ्चाशीत्यादय उत्कर्षतः षण्णवतिपर्यन्ता निरन्तरं सिध्यन्तस्त्रीन् समयान् यावदवाप्यन्ते। परतोऽवश्यमन्तरम्।

तथा—सप्तनवत्यादय उत्कर्षतो द्व्युत्तरशतपर्यन्ता निरन्तरं सिध्यन्तो द्वौ समयौ यावदवाप्यन्ते। परतो नियमादन्तरम्।

तथा—त्र्युत्तरशतादय उत्कर्षतोऽष्टोत्तरशतपर्यान्ताः सिध्यन्तो नियमादेकमेव समयं यावदवाप्यन्ते, न तु द्वित्रादिसमयानिति १५।

उनचास ४९ से लेकर उत्कृष्ट साठ जीवों तक निरन्तर सिद्ध होते हैं। ये छह समय तक सिद्ध होते हैं। इसके बाद अन्तर अवश्य हो जाता है। तथा इकसठ ६१ से लेकर उत्कृष्ट बहत्तर ७२ जीव निरन्तर सिद्ध होते हैं, ये पांच समय तक सिध्ध होते हैं, बाद में नियम से अन्तर पड़ जाता है। तथा तेहत्तर ७३ से लगाकर उत्कृष्ट चोरासी ८४ जीव निरन्तर सिद्ध होते हैं, ये पांच समयों तक पाये जाते हैं। इसके बाद नियमतः अन्तर हो जाता है। पचासी ८५ से लेकर उत्कृष्ट छयानवे तक जीव निरन्तर सिद्ध होते हैं। ये तीन समय तक पाये जाते हैं। इसके बाद अन्तर हो जाता है। सन्तानवे ९७ से लेकर उत्कृष्ट एकसौ दो १०२ तक निरन्तर सिद्ध होते है, ये दो समयों तक पाये जाते हैं। इसके बाद अन्तर पड़जाता है। एकसौ तीन १०३ से लेकर उत्कृष्ट एकसौ आठ १०८ तक सिद्ध होते हैं, ये एक ही समय तक पाये जाते हैं, दो तीन आदि समय तक नहीं। इस प्रकार इस गाथा का अर्थ है।

પચાસ (૪૯) થી લઈને ઉત્કૃષ્ટ સાઠ જીવો સુધી નિરંતર સિદ્ધ હોય છે એ છ સમય સુધી સિદ્ધ થાય છે, ત્યાર બાદ અંતર અવશ્ય પડી જાય છે. તથા એકસઠ (૬૧)થી લઈને ઉત્કૃષ્ટ બોંતેર (૭૨) જીવ નિરંતર સિદ્ધ થાય છે. તેઓ પાંચ સમય સુધી સિદ્ધ થાય છે, પછી નિયમથી અંતર પડી જાય છે. તથા તોંતેર (૭૩) થી લઈને ઉત્કૃષ્ટ ચોર્યાસી (૮૪) નિરતંર સિદ્ધ થાય છે. એ પાંચ સમયો સુધી પ્રાપ્ત થાય છે. ત્યાર બાદ નિયમથી અંતર પડી જાય છે. પંચાશી (૮૫) થી લઈને ઉત્કૃષ્ટ છન્નું (૯૬) સુધી જીવ નિરંતર સિદ્ધ થાય છે. તે ત્રણ સમય સુધી પ્રાપ્ત થાય છે. ત્યાર બાદ અંતર પડી જાય છે. સત્તાણુંથી (૯૭) લઈને ઉત્કૃષ્ટ એકસો બે (૧૦૨) સુધી નિરન્તર સિદ્ધ થાય છે. તે બે સમયો સુધી પ્રાપ્ત થાય છે. ત્યાર બાદ અંતર પડી જાય છે. એકસો ત્રણ (૧૦૩) થી લઈને ઉત્કૃષ્ટ એકસો આઠ (૧૦૮) સુધી સિદ્ધ થાય છે, એ એક જ સમય સુધી પ્રાપ્ત થાય છે, બે ત્રણ આદિ સમય સુધી નહીં. આ પ્રમાણે આ ગાથાનો અર્થ છે.

स्त्रीमोक्षसमर्थनम्—

इह स्त्रीलिङ्गसिद्धा इति यदुक्तं, तत् केचिन्न मन्यन्ते। एवं हि ते प्रलपन्ति—'स्त्रीणां न मोक्षः, पुरुषेभ्यो हीनत्वात्, नपुंसकादिवत्' इति।

अत्र ब्रूमः—सामान्येनात्र धर्मित्वेनोपात्ताः स्त्रियो विवादास्पदीभूता वा ?। आद्यपक्षे पक्षैकदेशसिद्धसाध्यता, असंख्यातवर्षायुष्कदुःषमादिकालोत्पन्न तिरश्ची—देव्य—भव्यादिस्त्रीणां भूयसीनामस्माभिरपि मोक्षाभावस्याभिधानात्, द्वितीये

स्त्रीमोक्षसमर्थन—

यहां पर "स्त्रीलिङ्गसिद्धाः" यह जो कहा है इस बात को कई एक नहीं मानते हैं, वे इस प्रकार कहते हैं—'स्त्रियों को मुक्ति नहीं होती है, कारण कि वे पुरुष की अपेक्षा हीन हैं, जैसे नपुंसक आदि'। इसपर यह पूछना है कि आप किन स्त्रियों में मोक्ष का अभाव सिद्ध करते हैं? क्या सामान्य स्त्रियों में, अथवा किन्हीं विशेष स्त्रियों में?। यदि सामान्य स्त्रियों में मुक्तिप्राप्ति का अभाव आप सिद्ध करते हो तो यह बात हम भी मानते हैं कि असंख्यात वर्षकी आयुवाली अकर्म-भूमिज स्त्रियों को, दुष्षमादिकालोत्पन्न तिर्यञ्चनियों को, एवं देवियों को, तथा अभव्य स्त्रियों को मुक्ति प्राप्त नहीं होती है, अतः पक्षैकदेश में यह हेतु सिद्धसाध्यवाला होने से यदि कहो कि कोई विशिष्ट स्त्रियां मुक्ति प्राप्ति के योग्य नहीं हैं तो यह बात पक्षभूत स्त्रीपद से ज्ञात नहीं

સ્ત્રીમોક્ષસમર્થન—

અહીં આગળ "स्त्रीलिङ्गसिद्धाः" આમ જે કહેલ છે એ વાતને કેટલાક માનતા નથી, તેઓ આ પ્રમાણે કહે છે—"સ્ત્રીઓને મુક્તિ મળતી નથી, કારણ કે તેઓ પુરુષો કરતાં હીન છે. જેમ નપુંસક આદિ" આ બાબતમાં એ પૂછવાનું છે કે આપ કઈ સ્ત્રીઓને મોક્ષ નથી મળતો એમ સિદ્ધ કરો છો? શું સામાન્ય સ્ત્રીઓને કે કોઈ વિશિષ્ટ સ્ત્રીઓને?. જો સામાન્ય સ્ત્રીઓને મુક્તિ પ્રાપ્ત થતી નથી એવું આપ સિદ્ધ કરતા હો તો એ વાત અમે પણ માનીયે છીએ કે અસંખ્યાત વર્ષના આયુવાળી અકર્મભૂમિજ સ્ત્રીઓને, દુષ્ષમાદિ કાલોત્પન્ન તિર્યંચનિયોને અને દેવીઓને તથા અભવ્ય સ્ત્રીઓને મુક્તિ પ્રાપ્ત થતી નથી. તેથી પક્ષૈકદેશમાં આ હેતુ સિદ્ધસાધ્યવાળો હોવાથી જો આપ કહો કે કોઈ વિશિષ્ટ સ્ત્રીઓ મુક્તિ પ્રાપ્ત કરવાને યોગ્ય નથી તો એ વાત પક્ષભૂત

तु न्यूनता पक्षस्य, विवादास्पदीभूतेति विशेषणं विना नियतस्त्रीलाभाभावात्। यदि तदुपादीयते, तदा तत्प्रतिबोधार्थं किंचिदुच्यते—स्त्रियो मुक्त्यर्हाः, मुक्तिकारणाऽवैकल्यात्, यथा पुमांसः, यत्र हि यस्य नास्ति संभवस्तत्र तत्कारणवैकल्यं, यथा सिद्धशिलायां शाल्यङ्कुरस्य। इमास्तु मुक्तिकारणवैकल्यरहिताः, तस्मान्मुक्त्यर्हा इति।

हो सकती है, अतः इस बात को स्पष्ट करने के लिये यदि ऐसा कहा जाय कि हम उन्हें ही मुक्ति की प्राप्ति निषिद्ध करते हैं जिन्हें आप मुक्ति प्राप्ति के योग्य गिनते हो, तो इस पर भी हमारा यही कहना है कि जिन्हें तुम मुक्तिप्राप्ति के योग्य नहीं कहते हो उन्हें ही हम इस प्रकार से मुक्तिप्राप्ति के योग्य सिद्ध करते हैं-"स्त्रियो मुक्त्यर्हाः, मुक्तिकारणावैकल्यात्, यथा पुमांसः" जैसे पुरुषों में मुक्ति के कारणों की अविकलता देखी जाती है उसी प्रकार से स्त्रियों में भी मुक्ति के कारणों की अविकलता होने से वे भी मुक्तिप्राप्ति के योग्य हैं। जहां पर जिसकी संभवता नहीं होती है वहीं पर उसके कारणों की विकलता रहती है, जैसे सिद्धशिला में शाल्यङ्कुर की संभवता नहीं है, अतः वहां पर उसके कारणों की भी विकलता है, परन्तु विवक्षित स्त्रियां ऐसी नहीं हैं, उनमें तो मुक्ति के सब कारणों का सद्भाव है, अतः वे मुक्ति के योग्य

સ્રીપદથી જાણી શકાતી નથી, તેથી આ વાતને સ્પષ્ટ કરવાને માટે જો એમ કહેવામાં આવે કે અમે તેમને જ મુક્તિની પ્રાપ્તિ નિષિદ્ધ કરીએ છીએ જેને તમે મુક્તિપ્રાપ્તિને યોગ્ય ગણો છો, તો એ બાબતમાં પણ અમારૂ એજ કહેવું છે કે જેમને તમે મુક્તિપ્રાપ્તિને યોગ્ય કહેતા નથી તેમને જ અમે આ રીતે મુક્તિ પ્રાપ્ત કરવાને લાયક સિદ્ધ કરીએ છીએ-"स्त्रियो मुक्त्यर्हाः, मुक्तिकारणवैकल्यात् यथा पुमांसः" જેમ પુરુષોમાં મુક્તિનાં કારણોની અવિકલતા જોવામાં આવે છે તેમ સ્રીઓમાં પણ મુક્તિનાં કારણોની અવિકલતા હોવાથી તેઓ પણ મુક્તિ પ્રાપ્ત કરવાને યોગ્ય છે. જયાં જેની સંભવતા હોતી નથી ત્યાંજ તેના કારણોની વિકલતા રહે છે, જેમ સિદ્ધશિલામાં શાલ્યંકુરની સંભવતા હોતી નથી તેથી ત્યાં આગળ તેનાં કારણોની પણ વિકલતા છે, પણ વિવક્ષિત સ્રીઓ એવી નથી, તેમનામા તો મુક્તિનાં બધા કારણોનો સદ્‌ભાવ છે તેથી તેઓ મુક્તિને યોગ્ય છે. જો આ વિષે ફરી પણ એવું જ કહેવાય કે

ननु स्त्रीषु मुक्तिकारणानामसद्भावात् तत्रायं हेतुर्नास्तीत्यसिद्धोऽयं हेतुरिति चेत्?।

उच्यते—उक्तहेतोरसिद्धत्वं वदसि, तत् किं स्त्रीणां पुरुषेभ्योऽपकृष्टत्वेन १, किमुत निर्वाणस्थानाद्यप्रसिध्धत्वेन २, किं वा मुक्तिसाधकप्रमाणाभावेन ३?,

तत्र यदि तावत् पुरुषेभ्योऽपकृष्टत्वेन स्त्रीषु मुक्तिकारणानामसद्भाव इति वदसि, तर्हि इदं ब्रूहि—त्वदङ्गीकृतं पुरुषेभ्योऽपकृष्टत्वं स्त्रीषु किं सम्यग्दर्शनादिरत्नत्रयाभावेन १, किं वा विशिष्टसामर्थ्याभावेन २, किं वा पुरुषानभिवन्द्यत्वेन ३, किं वा स्मरणाद्यकर्तृत्वेन ४, किं वा अमहर्द्धिकत्वेन ५, किमुत मायादिप्रकर्षवत्त्वेन ६, इति विकल्पाः ।

हैं। यदि इस पर फिर भी ऐसा ही कहा जावे कि स्त्रियों में मुक्ति के कारणों की असद्भावता है अतः उनमें इस हेतु के असद्भाव से हेतु में असिद्धता आती है, सो ऐसा कहना भी ठीक नहीं है, कारण कि हमारा इस पर ऐसा पूछना है कि आप जो स्त्रियों में इस हेतु की असिद्धता प्रकट कर रहे हो सो किस कारण से? क्या वे पुरुषों की अपेक्षा हीन हैं इसलिये, अथवा निर्वाणरूप स्थान की अप्रसिद्धि है इसलिये, या मुक्ति के साधक प्रमाण नहीं है इसलिये?। यदि ऐसा कहा जाय कि स्त्रियां पुरुषों की अपेक्षा हीन हैं इसलिये उनमें मुक्ति के कारणों का सद्भाव नहीं है सो पुनः इसपर हम यह पूछते हैं कि आप जिन स्त्रियों को पुरुषों की अपेक्षा हीन बतलाते है वह किस कारण से बतलाते हैं?, क्या उनमें सम्यग्दर्शनादिकरूप जो रत्नत्रय है उसका अभाव रहता है? १, या उनमें विशिष्ट सामर्थ्य का अभाव है? २, अथवा वे पुरुषों द्वारा

સ્ત્રીઓમાં મુક્તિનાં કારણોની અસદ્‌ભાવતા છે તેથી તેમનામાં તે હેતુના અસદ્‌ભાવથી હેતુમાં અસિદ્ધતા આવે છે તો એમ કહેવું તે પણ સાચું નથી, કારણ કે અમારે એ બાબતમાં એવું પૂછવાનું છે કે આપ સ્ત્રીઓમાં આ હેતુની જે અસિદ્ધતા પ્રગટ કરી રહ્યાં છો તે કયા કારણે? શું તેઓ પુરુષો કરતાં હીન છે તેથી, અથવા નિર્વાણરૂપ સ્થાનની અપ્રસિદ્ધિ છે તેથી, કે મુકિતના સાધક પ્રમાણ નથી તેથી?. જો એમ કહેવામાં આવે કે સ્ત્રીઓ પુરુષો કરતાં હીન છે તેથી તેમનામાં મુક્તિનાં કારણોનો સદ્‌ભાવ નથી તો ફરી તે વિષે અમારો એ પ્રશ્ન છે કે આપ જે સ્ત્રીઓને પુરુષો કરતાં હીન બતાવો છો તે શા કારણે બતાવો છો? (૧) શું તેમનામાં સમ્યગ્દર્શનાદિક રૂપ જે રત્નત્રય છે તેનો અભાવ રહેલ છે? કે (૨) શું તેમનામાં વિશિષ્ટ સમર્થ્યનો અભાવ છે? (૩) અથવા તેઓ પુરુષો દ્વારા અવંદ્ય છે? કે સ્મરણ આદિ જ્ઞાન તેમનામાં રહેતું નથી? (૫)

तत्र यदुच्यते स्त्रीषु रत्नत्रयाभाव इति तदयुक्तम्-सम्यग्दर्शनादीनि पुरुषाणामिव स्त्रीणामप्यविकलानि दृश्यन्ते। तथाहि-दृश्यन्ते स्त्रियोऽपि सकलमपि प्रवचनार्थं श्रद्दधानाः, जानते च षडावश्यककालिकोत्कालिकादिभेदभिन्नं श्रुतम्, परिपालयन्ति सप्तदशविधं संयमम्, धारयन्ति च देवासुराणामपि दुर्धरं ब्रह्मचर्यम्, तप्यन्ते च तपांसि मासक्षपणादीनि ततः कथमिव न तासां मोक्षसंभवः। किं च-स्त्रीषु रत्नत्रयाभाव इति यदुच्यते, तत् किं रत्नत्रयस्य अवशिष्टस्य तत्राऽभावो विवक्षितः, किं वा प्रकर्षपर्यन्तप्राप्तस्य रत्नत्रयस्य तत्राभावः?।

अवंद्य हैं? ३, या स्मरण आदि ज्ञान उनमें नहीं रहता है? ४, या उनमें कोई स्त्री महर्द्धिक नहीं है? ५, अथवा मायादिक की उनमें प्रकर्षता पाई जाती है? ६। यदि इन छह विकल्पों में से यह विकल्प माना जाय कि स्त्रियों में रत्नत्रय का अभाव है अतः उनमें पुरुषों की अपेक्षा हीनता है सो ऐसा कहना युक्तियुक्त नहीं माना जाता है, क्यों कि सम्यग्दर्शनादिक रत्नत्रय पुरुषों की तरह उनमें भी अविकल देखे जाते हैं। स्त्रियां भी सकल प्रवचन के अर्थ की श्रद्धा करनेवाली, षडावश्यक कालिक उत्कालिक आदि के भेद से भिन्न श्रुत को जानने वाली, तथा सत्रह प्रकार के संयम को पालने वाली देखी जाती है। देव और असुरों द्वारा भी दुर्धर ऐसा ब्रह्मचर्य व्रत वे पालती हैं। मासक्षपण आदि विविध प्रकार की तपस्या वे करती हैं, इसलिये उनमें मुक्ति का संभव कैसे नहीं हो सकता है?। तथा आप जो स्त्रियों में रत्नत्रय का अभाव कहते हो सो इनमें रत्नत्रय का अभाव कैसे विवक्षित है?, क्या सामा-

---

કે તેઓમાંથી કોઈ સ્ત્રી મહર્દ્ધિક નથી? (૬) અથવા માયાદિકની તેમનામાં અધિકતા હોય છે?. જો આ છ વિકલ્પોમાંથી આ વિકલ્પ માની લઈએ કે સ્ત્રીઓમાં રત્નત્રયનો અભાવ છે તેથી તેમનામાં પુરુષો કરતાં હીનતા છે, તો એમ કહેવું તે યુક્તિ યુક્ત માની શકાય નહીં કારણ કે સમ્યક્‌દર્શનાદિક રત્નત્રય પુરુષોની જેમ તેમનામાં પણ અવિકલ નજરે પડે છે. સ્ત્રીઓ પણ સકળ પ્રવચનના અર્થની શ્રદ્ધા કરનારી છ આવશ્યક કાલિક-ઉત્કાલિક આદિના ભેદથી શ્રુતને જાણનારી, તથા સત્તર પ્રકારના સંયમને પાળનારી જોવામાં આવે છે. દેવ અને અસુરો વડે પણ દુર્ધર એવું બ્રહ્મચર્યવ્રત તેઓ પાળે છે, માસક્ષપણ આદિ વિવિધ પ્રકારની તપસ્યા તેઓ કરે છે, તો પછી તેમનામાં મુક્તિનો સંભવ કેવી રીતે હોઈ શકે નહીં?, તથા આપ જો સ્ત્રીઓમાં રત્નત્રયનો અભાવ કહેતા હો તો તેમનામાં રત્નત્રયનો અભાવ કેવી રીતે વિવક્ષિત છે, શું સામાન્યરૂપ રત્ન-

तत्र यदि अवशिष्टस्य रत्नत्रयस्य स्त्रीषु अभाव इत्युच्यते भवता, तर्हि कथय, अयं रत्नत्रयाभावश्चारित्रासंभवात् किम् ? उत ज्ञानदर्शनयोर्द्वयोरभावात् ?, किं वा सम्यग्दर्शनादीनां त्रयाणामभावात् ? ।

अथ–चारित्रासंभवेन रत्नत्रयाभाव इति पक्षस्य निराकरणम्–तत्र–यदि चारित्रस्या संभवाद् रत्नत्रयाभावो विवक्षितस्तर्हि सोऽपि चारित्रासंभवः किं सचेलत्वेन? १, किं वा स्त्रीत्वस्यचारित्र विरोधित्वेन ? २, किं वा मन्दसत्त्वतया ? ३,

॥ चैलस्य चारित्राभावहेतुत्वनिराकरणम्—

तत्र यदि सचेलत्वेन चारित्रासंभव इत्युच्यते भवता, तर्हि तावत् कथय त्वदङ्गीकृतमिदं चेलस्यापि चारित्राभाव हेतुत्वं किंचेलस्य परिभोगमात्रेण भवति ? १, किं वा चेलस्य परिग्रहरूपत्वेन ? २, ।

न्यरूप रत्नत्रय का अथवा प्रकर्षपर्यन्तप्राप्त रत्नत्रय का ? । यदि प्रथम पक्ष स्वीकार किया जाय तो हम इस पर पुनः यह पूछते हैं कि सामान्यतया रत्नत्रय का अभाव चारित्र के अभाव से कहते हो ? अथवा ज्ञानदर्शन, दोनों के अभाव से कहते हो ? अथवा सम्यग्दर्शनादिक तीनों के अभाव से कहते हो ? ।

यदि कहो कि चारित्र के असंभव से रत्नत्रय का अभाव है, ऐसा हम कहते हैं सो इसपर पुनः यह विकल्प होता है कि उनमें चारित्र की असंभवता क्या सवस्त्र होने से आती है ? या स्त्रीपने के चारित्र विरोधी होने से आती है ? अथवा मन्दसामर्थ्य होने की वजह से आती है ? । यदि कहा जाय कि वे वस्त्रसहित रहती हैं इसलिये उनमें चारित्र की असंभवता है सो क्या वस्त्र के परिभोगमात्र से चारित्राभाव के प्रति

त्रयने। के प्रकर्षपर्यन्तप्राप्त रत्नत्रयने। ? जो पहेले। पक्ष स्वीकारवामां आवे तो अमे ते बाबतमां ओ प्रश्न पूछीओ छीओ के सामान्यरीते रत्नत्रयने। अभाव चरित्रना अभावथी कहे। छो अथवा ज्ञानदर्शन ओ बन्नेना अभावथी कहे। छो ? अथवा सम्यग्दर्शनादिक त्रणेना अभावथी कहे। छो ?

जो आप ओम कहेता हे। के चारित्रना असंभवथी रत्नत्रयने। अभाव छे ओवुं अमे कहीओ छीओ तो ते बाबतमां वळी ओ विकल्प होय छे के तेमनामां चारित्रनी असंभवता शुं सवस्त्र होवाथी आवे छे ? के स्त्रीपणुं चारित्रनुं विरोधी होवाथी आवे छे ? अथवा मंद सामर्थ्य होवाने कारणे आवे छे ?. जो ओम कहेवामां आवे के तेओ वस्त्रसहित रहे छे तेथी तेमनामां चारित्रनी असंभवता छे तो शुं वस्त्रना परिभोगमात्रथी चारित्राभाव तरफ हेतुता होय छे ?

तत्र यदि परिभोगमात्रेण चैलं चारित्राभावहेतुरिति मन्यसे तर्हि वद तावद्, अयं चैलपरिभोगः स्त्रीणां किं तत्परित्यागाशक्तत्वेन १, किं वा गुरूपदिष्टत्वेन २, चारित्राभावहेतुर्विवक्षितः ?।

तत्र यदि स्त्रीणां चैलपरित्यागाशक्तत्वेन चैलपरिभोगश्चारित्राभावहेतुरिति स्वीकरोषि, नैतद् युक्तम्, यतः-यद्यपि 'प्राणेभ्यो नापरं प्रियं प्राणिनाम्' तथापि-प्राणानपि त्यजन्त्यः काश्चित् स्त्रियः प्रदृश्यन्ते किं पुनश्चलं परित्यक्तुमशक्तास्ता इतिसंभावना

अथ गुरूपदिष्टत्वेन चैलपरिभोगः स्त्रीणाम्, इत्यङ्गीकरोषि, तर्हि कथय तावत् -किं चैलस्य चारित्रोपकारित्वेन गुरुभिस्तासां चैलपरिभोगोपदेशः कृतः किं वा अन्यथा ?।

हेतुता होती है ? अथवा परिग्रहरूप होने से होती है ?, यदि परिभोग मात्र से चैल (वस्त्र) चारित्राभाव का हेतु होता है, ऐसा माना जाय तो कहो यह चैल का परिभोग स्त्रियों के उसके परित्याग करने की अशक्ति होने से है ? अथवा गुरूपदिष्ट होने से है ?, यदि इसमें ऐसा कहा जाय कि स्त्रियों में वस्त्र का त्याग करने की अशक्ति होने से चैलपरिभोग होता है, और यह चैलपरिभोग उनमें चारित्राभाव का हेतुहोता है, सो ऐसा कहना उचित नहीं है, कारण कि प्राणियों को सब से अधिक प्यारे प्राण होते हैं, जब स्त्रियां प्राणों को भी छोड़ देती देखी जाती हैं तो फिर उनके लिये वस्त्रों को छोड़ने की बात कौन कठिन है ?, इसलिये यह बात तो मानी नहीं जा सकती है कि वे वस्त्र के छोड़ने में असमर्थ हैं। यदि यह कहा जाय कि गुरु से उपदिष्ट होकर वे वस्त्र का परिभोग करती हैं तो इसपर भी हम पूछते हैं कि

અથવા પરિગ્રહરૂપ હોવાથી હોય છે? જો પરિભોગમાત્રથી ચૈલ ચારિત્રાભાવનો હેતુ હોય છે, એવું માની લઈએ તો કહો શું આ ચૈલનો પરિભોગ સ્ત્રીઓની તેનો પરિત્યાગ કરવાની અશકિત હોવાને લીધે છે? અથવા ગુરૂપદિષ્ટ હોવાથી છે? જો તે વિષે એવું કહેવામાં આવે કે સ્ત્રીઓમાં વસ્ત્રનો ત્યાગ કરવાની અશકિત હોવાથી ચૈલ પરિભોગ થાય છે અને તે ચૈલપરિભોગ તેમનામાં ચારિત્રાભાવનો હેતુ હોય છે, તો એમ કહેવું ઉચિત નથી, કારણ કે પ્રાણીઓને સૌથી વધારે વહાલો પ્રાણ હોય છે, જો સ્ત્રીઓ પ્રાણનું પણ બલિદાન દેતી નજરે પડે છે તો પછી તેમને માટે વસ્ત્રો છોડવાની વાત શી રીતે કઠિન કહી શકાય? તેથી એ વાત તો માની શકાય તેમ નથી કે તેઓ વસ્ત્રનો ત્યાગ કરવાને અસમર્થ છે. જો એમ કહેવામાં આવે કે ગુરુવડે ઉપદિષ્ટ થઈને તેઓ વસ્ત્રનો પરિ-

यदि चारित्रोपकारित्वेन तदुपदेशस्तर्हि किं न पुरुषाणामपि तदुपदेशो गुरुभिः क्रियते। अथैता अबला एव, यतो बलादपि पुरुषैः परिभुज्यन्ते इति चैलं विना तासां चारित्रभङ्गसंभवः, न तु पुरुषाणामिति न तेषां तदुपदेशः।

एवं सति न चैलाच्चारित्राभावः, चैलस्य चारित्रोपकारित्वात्। तथाहि—यद् यस्योपकारि, न तत् तस्याभावहेतुः, यथा घटस्य मृत्पिण्डादि, उपकारि चोक्तरीत्या चारित्रस्य चैलम्, तस्माच्चैलं न चारित्राभाव हेतुरिति।

गुरुओंने उन्हें चारित्र में उपकारी जानकर वस्त्र के परिभोग का आदेश किया था और कोई रूप से जानकर वस्त्र के परिभोग करने का उपदेश दिया है?। यदि यह कहा जाय कि गुरुओं ने वस्त्र पहिरने का उपदेश उन्हें इसलिये दिया है कि वह चारित्र का उपकारी है तो फिर उन्होंने वह उपदेश पुरुषों को क्यों नहीं दिया। यदि कहा जाय कि ये अबला हैं, यदि नग्न रहें तो पुरुष उनपर बलात्कार कर सकते हैं इसलिये चैल के विना चारित्रभंग होने की उनमें संभावना रहती है अतः गुरुओंने उन्हें चारित्र का उपकारी जानकर चैलपरिभोग की आज्ञा दी है। पुरुषों को नहीं दी। तो फिर इस प्रकार की मान्यता से यह बात तुम्हारे ही मुख से सिद्ध हो जाती है कि वस्त्र का उपभोग चारित्र का उपकारी है, इसके सद्भाव से चारित्र का अभाव सिद्ध नहीं होता है। "यद् यस्योपकारि न तत् तस्याभावहेतुः, यथा घटस्य मृत्पिण्डादि, उपकारि च उक्तरीत्या चारित्रस्य चैलम् तस्मान्न तत् चारित्राभावहेतुः"

ભોગ કરે છે તો તે વિષે પણ અમે પૂછીએ છીએ કે ગુરુઓએ ચારિત્રમાં ઉપકારી ગણીને તેમને વસ્ત્રના પરિભોગનો આદેશ આપ્યો કે કોઈ બીજાં કારણે વસ્ત્રનો પરિભોગ કરવાનો ઉપદેશ આપ્યો છે? જો એમ કહેવામાં આવે કે ગુરુઓએ તેમને વસ્ત્ર પહેરવાનો ઉપદેશ એ કારણે આપ્યો છે કે તે ચારિત્ર માટે ઉપકારી છે, તો પછી તેમણે તે ઉપદેશ પુરૂષોને કેમ ન દીધો?. જો એમ કહેવામાં આવે કે તેઓ અબળા છે, તેથી જો નગ્ન રહે તો પુરૂષો તેમના ઉપર બળાત્કાર કરી શકે છે તેથી ચૈલ વિના તેમના ચારિત્રભંગ થવાની સંભાવના રહે છે તેથી ગુરુઓએ તેમને ચારિત્રનો ઉપકારી ગણીને ચૈલપરિભોગની આજ્ઞા આપી છે. પુરુષોને આપી નથી તો પછી આ પ્રકારની માન્યતાથી તમારે મુખે જ એ વાત સિદ્ધ થઇ જાય છે કે વસ્ત્રનો ઉપભોગ ચારિત્રને માટે ઉપકારી છે, તેના સદ્‌ભાવથી ચારિત્રનો અભાવ સિદ્ધ થતો નથી. "यद् यस्योपकारि न तत् तस्याभावहेतुः, यथा घटस्य मृत्पिण्डादि, उपकारि च उक्तरीत्या चारित्रस्य चैलम्, तस्मान्न तत् चारित्राभावहेतुः" જે જેનું ઉપકારી હોય છે તે તેના અભા-

अथ 'अन्यथा' इति पक्षस्तवसंमतः?, नायमपि युक्तिसहः, यतः 'अन्यथा' इत्यनेन पक्षद्वयमिहोपस्थितं भवति। किं-चारित्रं प्रति चैलमुदासीनं, बाधकं वा? इति। अयमर्थः-उदासीनं नाम नास्ति चारित्रस्य साधकं, नास्ति वा तस्य बाधकमिति। किं वा-चारित्रस्य बाधकमेवेति। चारित्रं प्रति औदासीन्यं वा बाधकत्वं वा उभयमपि नात्र वर्तते। पुरुषकृताभिभवरक्षकतया चैलं स्त्रीणां चारित्रोपकारकमस्तीत्यनन्तरमेवोक्तत्वादिति।

अतः जो जिसका उपकारी होता है वह उसके अभाव का हेतु नहीं होता है, जैसे मृत्पिंडादिक घटके अभाव का हेतु नहीं होता है। उक्त रीति से चैल भी चारित्र का उपकारी होता है अतः वह उसके अभाव का हेतु नहीं होता है। यदि "अन्यथा" यह पक्ष स्वीकार किया जाय तो यह भी ठीक नहीं है, क्यों कि "अन्यथा" इस पद से दो पक्ष उपस्थित होते हैं-क्या चारित्र के प्रति चैल उदासीन है? अथवा बाधक है? यदि उदासीन है तो उदासीन का तात्पर्य होता है कि वह न तो चारित्र का साधक होता है और न उसका बाधक ही होता है, अतः यह पक्ष मान्य नहीं है। यदि कहो कि वह चारित्र का बाधक है सो ऐसा कहना भी ठीक नहीं है, कारण कि जब वह चारित्र के प्रति उपकारी है तो फिर न उदासीन ही हो सकता है, न बाधक ही हो सकता है अतः पुरुषकृत पराभव से रक्षा करनेवाला होने के कारण चैल चारित्र का उपकारी है, ऐसा ही मानना चाहिये। अब जो कहा जाय कि चैल

वनुं કારણ હોતું નથી, જેમ મૃત્પિંડાદિક ઘડાના અભાવનું કારણ હોતાં નથી. કહેલ રીત પ્રમાણે ચૈલ પણ ચારિત્રનું ઉપકારી હોય છે તેથી તે તેના અભાવનું કારણ હોતું નથી. જો "अन्यथा" આ પક્ષ સ્વીકાર કરવામાં આવે તો તે પણ બરાબર નથી, કારણ કે "अन्यथा" પદથી બે પક્ષ રજુ થાય છે-શું ચારિત્ર પ્રત્યે ચૈલ ઉદાસીન છે? અથવા બાધક છે?, જો ઉદાસીન હોય તો ઉદાસીનનો ભાવાર્થ એ છે કે તે ચારિત્રનું સાધક પણ થતું નથી અને તેનુ બાધક પણ હોતું નથી તેથી એ પક્ષ સ્વીકારી શકાય નહીં.

જો એમ કહો કે તે ચારિત્રનું બાધક છે તો એમ કહેવું તે પણ બરાબર નથી. કારણ કે જો તે ચારિત્રને માટે ઉપકારી છે તે પછી ઉદાસીન પણ હોઇ શકતું નથી અને બાધક પણ હોઇ શકતું નથી. તેથી પુરુષકૃત પરાભવથી રક્ષા કરનાર હોવાને કારણે ચૈલ ચારિત્રને માટે ઉપકારી જ છે, એમ માનવું જોઇએ. હવે જો એમ કહેવામાં આવે કે ચૈલ પરિગ્રહરૂપ હોવાથી ચારિત્રના

नापि चैलस्य परिग्रहरूपत्वेन चारित्राभावहेतुत्वं संभवति, यतो 'मुच्छा परिग्गहो वुत्तो' इत्यादिवचनेन 'मूर्छैव परिग्रहः' इति दशवैकालिके षष्ठेऽध्ययने निर्णीतम्। मूर्छारहितो भरतश्चक्रवर्ती सान्तःपुरोऽप्यादर्शकगृहेऽवतिष्ठमानो निष्परिग्रहो गीयते। अन्यथा तस्य केवलोत्पत्तिर्नस्यात्। यदि च चैलस्य परिग्रहरूपत्वं स्यात्, तदा तथाविधरोगादिषु पुरुषाणामपि चैलसंभवे चारित्राभावेन मुक्त्यभावः स्यात्। उक्तश्च—

'अर्शोभगन्दरादिषु गृहीतचीरो यतिर्न मुच्येत'। इति।

किञ्च–यदि मूर्च्छाया अभावेऽपि वस्त्रसंसर्गमात्रं परिग्रहो भवेत् ततो जिनकल्पप्रतिपन्नस्य कस्यचित् साधोस्तुषारकणानुषक्ते प्रपतति शीते केनापि धर्मार्थिना

परिग्रहरूप होने से चारित्र के अभाव का हेतु है सो ऐसा कहना भी ठीक नहीं है, क्यों कि परिग्रह का लक्षण मूर्च्छाभाव कहा गया है। यह दशवैकालिक के छठवें अध्ययन में "मुच्छा परिग्गहो वुत्तो" इस वाक्य से भगवान् ने फरमाया है। आदर्शघर में अन्तःपुरसहित भी बैठे हुए भरतचक्रवर्ती मूर्च्छाभावरहित होने के कारण ही परिग्रहरहित माने गये हैं। यदि ऐसी बात नहीं होती तो उन्हें केवलज्ञान की उत्पत्ति नहीं हो सकती। यदि चैल को परिग्रहरूप माना जाय तो तथाविध रोगादिकों में पुरुषों के भी चैल के सद्भाव में चारित्राभाव होने की प्रसक्ति से मुक्ति के अभाव की प्रसक्ति माननी पडेगी। कहा भी है—

"अर्शोभगन्दरादिषु गृहीतचीरो यतिर्न मुच्येत" इति।

और भी–मूर्च्छा के अभाव में भी वस्त्र का मात्र संसर्ग यदि परिग्रह माना जाय तो ऐसी हालत में किसी जिनकल्पी साधु के ऊपर तुषारपात

અભાવનું કારણ છે તો એમ કહેવું તે પણ બરાબર નથી, કારણ કે પરિગ્રહનું લક્ષણ મૂર્ચ્છાભાવ કહેવાયું છે. આ દશવૈકાલિકના છઠ્ઠા અધ્યયનમાં "मुच्छा परिग्गहो वुत्तो" આ વાકયથી ભગવાને ફરમાવ્યું છે આદર્શઘરમાં અંતઃપુર સહિત બેઠેલ ભરત ચક્રવર્તી મૂર્ચ્છાભાવરહિત હોવાને કારણે જ પરિગ્રહરહિત મનાયાં છે. જો એમ ન હોત તો તેમને કેવળજ્ઞાન ઉત્પન્ન થઈ શકત નહીં. જો ચૈલને પરિગ્રહરૂપ માનવામાં આવે તો તથાવિધ રોગાદિકોમાં પુરુષોના ચૈલના સદ્ભાવમાં ચારિત્રાભાવ હોવાના પ્રસંગથી મુકિતના અભાવનો પ્રસંગ માનવો પડશે. કહ્યું પણ છે–

"अर्शोभगन्दरादिषु गृहीतचीरो यतिर्न मुच्यते" ઇતિ.

વળી મૂર્ચ્છાના અભાવમાં પણ વસ્ત્રનો માત્ર સંસર્ગ જો પરિગ્રહ મનાયતો એવી હાલતમાં કોઈ જિનકલ્પી સાધુના ઉપર તુષારપાત પડતાં કોઇ ધર્માત્માપુરુષ

शिरसि वस्त्रे प्रक्षिप्ते तस्य सपरिग्रहता भवेत्। न चैतदिष्टं, तस्मान्न वस्त्रसंसर्गमात्रं परिग्रहः, किंतु मूर्च्छा। सा च स्त्रीणां वस्त्रादिषु न विद्यते, धर्मोपकरणमात्रतया तस्योपादानात्। न खलु ता वस्त्रमंतरेणात्मानं रक्षयितुमीशते, ततो दीर्घतरसंयम-परिपालनाय यतनया वस्त्रं परिभुञ्जानास्ताः परिग्रहवत्यः कथ भवेयुः?।

किञ्च—चैलस्य परिग्रहरूपत्वे—"णो कप्पइ णिग्गंथीणं पक्के तालपलंबे -अभिन्ने परिग्गहित्तए" इत्येयंरूपो निर्ग्रन्थ्या व्यपदेशश्चागमे न श्रूयेत। अतो न सचैलत्वेन चारित्रासंभवः।

पड़ने पर धर्मात्मापुरुषद्वारा डाला गया वस्त्र भी परिग्रहरूप माना जाना चाहिये, परन्तु वह ऐसा नहीं माना जाता है। इसलिये वस्त्र का केवल संसर्ग परिग्रहरूप नहीं माना जा सकता है, किन्तु मूर्च्छा ही परिग्रह है। जब परिग्रह का यह सुनिश्चित लक्षण मान्य हो जाता है तो यह बात माननी पडेगी कि वह मूर्च्छा वस्त्रादिकों के विषय में साध्वी स्त्रियों को नहीं होती है। केवल वे तो उसे धर्म का उपकरण जानकर ही धारण करती हैं। वस्त्रके विना वे अपना रक्षण भी नहीं कर सकती हैं, इसलिये दीर्घतरसंयम पालने के लिये यतना से वस्त्र का परिभोग करती हुई वे परिग्रहवाली कैसे मानी जा सकती हैं?। तथा-चेल के परिग्रहरूप मानने पर "णो कप्पइ णिग्गंथीणं पक्के तालपलंबे अभिन्ने परिग्गहित्तए" इस प्रकार से जो निर्ग्रन्थियों का व्यपदेश आगम में सुनने में वा देखने में आता है वह नहीं आना चाहिये और आया है, अतः इस शास्त्रीयव्यपदेश से ऐसा ही ज्ञात होता है कि सचेल होने से चारित्र

દ્વારા નાખેલું વસ્ત્ર પણ પરિગ્રહરૂપ માનવું જોઈએ પણ એમ મનાતું નથી. તેથી વસ્ત્રનો ફક્ત સંસર્ગ જ પરિગ્રહરૂપ માની શકાતો નથી, પણ મૂર્છા જ પરિગ્રહ છે. જ્યારે પરિગ્રહનું આ ચોક્કસ લક્ષણ માન્ય થાય છે ત્યારે એ વાત સ્વીકારવી પડશે કે તે મૂર્છા વસ્ત્રાદિકોના વિષયમાં સાધ્વી સ્ત્રીઓને થતી નથી. તેઓ તો ફક્ત તેને ધર્મનું ઉપકરણ માનીને જ ધારણ કરે છે વસ્ત્ર વિના તેઓ પોતાનું રક્ષણ પણ કરી શકતી નથી, શીતકાળ આદિમાં સ્વાધ્યાય પણ કરી શકતી નથી, તેથી દીર્ઘતર સંયમ પાળવાને માટે યતનાપૂર્વક વસ્ત્રનો પરિભોગ કરતી એવી તેઓ પરિગ્રહવાળી કેવી રીતે માની શકાય?

તથા-ચેલને પરિગ્રહરૂપ માનવાથી "णो कप्पइ णिग्गंथीणं पक्के तालपलंबे अभिन्ने परिग्गहित्तए" આ પ્રકારનો નિર્ગ્રન્થિયોનો જે વ્યપદેશ આગમમા સાંભળવામાં અને જોવામાં આવે છે તે ન આવવો જોઈએ, અને આવ્યો છે, તેથી આ શાસ્ત્રીય વ્યપદેશથી એવું જ જાણવા મળે છે કે સચેલ હોવાથી

एवं च—" नास्ति स्त्रीणां मोक्षः, परिग्रहवत्त्वात्, गृहस्थवत्" इत्यनुमानं निराकृतं धर्मोपकरणवस्त्रस्यापरिग्रहत्वेन प्रसाधितत्वादिति।

॥ इति चैलस्य चारित्राभावहेतुत्वनिराकरणम् ॥ १ ॥

स्त्रीत्वमेव चारित्रविरोधीत्यङ्गीकृत्य स्त्रीषु चारित्रासंभव इत्यपि कथनं न युक्तम्। यतो-यदि स्त्रीत्वस्य चारित्रविरोधः स्यात्, तदा तासामविशेषेणैव प्रव्राजनं निषिध्येत् ' इत्थीओ पव्वावेउं न कप्पइ ' इत्येवं वदेत्, न तु विशेषेण, यथोच्यते-—" गब्भिणी बालवच्छा य पव्वावेउं न कप्पइ " इति।

॥ इति स्त्रीत्वमेव चारित्रविरोधीति पक्षस्य निराकरणम् ॥ २ ॥

का अभाव नहीं होता है, अतः जब वस्त्र में परिग्रहरूपता नहीं आती है तब ऐसा बोलना कि "स्त्रीणां न मोक्षः परिग्रहवत्त्वात् गृहस्थवत्" "गृहस्थ की तरह परिग्रहयुक्त होने से स्त्रियों को मोक्ष नहीं होता है" वहखण्डित हो जाता है, क्यों कि वस्त्र धर्म का उपकरण है अतः वह परिग्रहरूप नहीं है।

इसी तरह ऐसा कि " स्त्रीत्वमेव चारित्रविरोधि " अर्थात् " स्त्रीपना ही चारित्र का विरोधी है " सो ठीक नहीं है, कारण कि इस तरह यदि स्त्रीपने के साथ चारित्र का विरोध होता तो उन्हें विना किसो विशेषता के दोक्षा देना ही निषिद्ध होता, परन्तु ऐसा तो है नहीं। शास्त्र में तो केवल ऐसा ही लिखा मिलता है कि " गब्भिणी बालवच्छा य पव्वावेउं न कप्पइ "-गर्भिणी को बालवत्सा को अर्थात् छोटे बच्चे वाली को दीक्षा नहीं देनी चाहिये। यदि सामान्यतः स्त्रियों के लिये दीक्षा का निषेध करना होता तो " इत्थीओ पव्वावेउं न कप्पइ " ऐसा कहते।

ચારિત્રનો અભાવ થતો નથી, તેથી જો વસ્ત્રમા પરિગ્રહરૂપતા આવતી નથી તો એવું બોલવું કે " स्त्रीणां न मोक्षः परिग्रह वत्वात् गृहस्थवत्" "ગૃહસ્થોની જેમ પરિગ્રહયુકત હોવાથી સ્ત્રીઓને મોક્ષ મળતો નથી " એ યુક્તિનું ખંડન થઈ જાય છે, કારણ કે વસ્ત્ર ધર્મનુ ઉપકરણ છે, તેથી તે પરિગ્રહરૂપ નથી.

આ રીતે એમ કહેવુ કે " स्त्रीत्वमेव चारित्रविरोधि " એટલે કે સ્ત્રીપણું જ ચારિત્રનું વિરોધી છે" તે પણ બરાબર નથી, કારણ કે આ પ્રમાણે જો સ્ત્રીપણાની સાથે ચારિત્રનો વિરોધ હોત તો તેમને કોઈ પણ વિશેષતા વિના દીક્ષા આપવાનું જ નિષિદ્ધ હોત, પણ એવું તો છે નહીં. શાસ્ત્રમાં તો ફકત એવું જ લખેલુ મળે છે કે " गब्भिणी बालवच्छा य पव्वावेउं न कप्पइ " સગર્ભાને તથા બાલવત્સાને એટલે કે નાનાં બાળકવાળીને દીક્ષા ન આપવી જોઈએ. જો સામાન્યતઃ સ્ત્રીઓને દીક્ષાનો નિષેધ કરવો હોત તો " इत्थीओ पव्वावेउ न कप्पइ"

स्त्रियो मन्दसत्त्वा भवन्तीति मत्वा स्त्रीषु चारित्रासंभव इति वदसि चेत्? तदप्ययुक्तम्, इह सत्त्वं खलु व्रततपोधारणविषयकमेव वाच्यम्, अन्यविधस्य सत्त्वस्यानुपयोगित्वात्, तच्च दुर्धर्षशीलवतीषु स्त्रीषु अनल्पं संभवति। तथाचोक्तम्-

"ब्राह्मी सुन्दर्यार्या राजीमती चन्दना गणधराद्याः।
अपि देवमनुजमहिताः, विख्याता शीलसत्त्वाभ्याम्" ॥ १ ॥

॥ इति स्त्रियो मन्दसत्त्वा भवन्तीति पक्षस्य निराकरणम् ॥३॥

इत्येवं चारित्रा संभवेन रत्नत्रयाभाव इति तवपक्षो निराकृतो भवतीति ॥

परन्तु शास्त्रकारने ऐसा कहा नहीं; इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि स्त्रियों के लिये दीक्षा देनेका निषेध नहीं है। अतः स्त्रीत्व चारित्र का विरोधी नहीं है।

इसी प्रकार यदि ऐसा कहा जाय कि स्त्रियां मन्द शक्ति वाली होती हैं अतः स्त्रियों में चारित्र की असंभवता है, सो ऐसा कहना भी ठीक नहीं है, कारण कि यहां व्रत, तप धारण करने योग्य ही शक्ति का ग्रहण किया गया है, उसके सिवाय और शक्ति का नहीं, कारण कि अन्य शक्ति अनुपयोगी मानी गई है। जिसके द्वारा व्रत एवं तपों को धारण एवं उनका अनुष्ठान किया जाता है वह शक्ति दुर्धर्ष शील वाली स्त्रियों में खूब होती है। जैसे कहा भी है—

"ब्राह्मी सुन्दर्यार्या, राजीमती चन्दना गणधराद्याः।
अपि देवमनुजमहिता, विख्याताः शीलसत्त्वाभ्याम्" ॥१॥

એમ જ કહેત પણ શાસ્રકારે તેમજ કહ્યુ નથી જેથી એ સ્પષ્ટ થાય છે કે સ્રીઓને સામાન્યતઃ દીક્ષાનો નિષેધ નથી એટલે કે સ્રીત્વ એ ચારિત્રનું વિરોધી નથી.

એજ પ્રમાણે જો એમ કહેવામાં આવે કે સ્રીઓ મંદ શકિતવાળી હોય છે તેથી સ્રીઓમાં ચારિત્રની અસંભવતા છે, તો એમ કહેવું તે પણ બરાબર નથી, કારણ કે અહીં વ્રત, તપ કરવા લાયક શકિત એવો અર્થ ગ્રહણ કરાયેલ છે, તેના સિવાયની બીજી શકિતનો નહી, કારણ કે બીજી શકિત અનુપયોગી મનાયેલ છે. જેના દ્વારા વ્રત, અને તપ ધારણ કરાય છે અને તેમનું અનુષ્ઠાન કરાય છે તે શકિત દુર્ધર્ષ શીલવાળી સ્રીઓમાં ખૂબ હોય છે, જેમકે કહ્યુ પણ છે-

"ब्राह्मी सुन्दर्यार्या राजीमती चन्दना गणधराद्याः।
अपि देव-मनुज-महिताः, विख्याताः शीलसत्त्वाभ्याम्" ॥१॥

इत्थं च स्त्रीषु चारित्रस्य संभव इति निश्चिते सति ज्ञानदर्शनयोरपि संभवः सुतरां निश्चितो भवति, ज्ञानदर्शनपूर्वकत्वाच्चारित्रस्य। ज्ञानदर्शनाभ्यां विना चारित्रं न भवितुमर्हति। तथा चोक्तम्—

"पूर्वद्वयलाभः पुनरुत्तरलाभे भवति सिद्धः" इति।

इत्येवं 'स्त्रीषु ज्ञानदर्शनयोरभावः' इति पक्षोऽपि निराकृतो भवति। ततश्च सम्यग्दर्शनादीनां त्रयाणां सिद्धौ सत्यां 'रत्नत्रयाभावात् स्त्रियः पुरुषेभ्योपकृष्टाः' इति प्रलापमात्रम्। दृश्यन्ते हि संप्रत्यपि ताः सम्यग्दर्शनादित्रितयमभ्यस्यन्ति।

अर्थात् इस श्लोक में कही हुई ब्राह्मी, सुन्दरी, राजीमती, चन्दनबाला आदि साध्वियां देव मनुष्यों से पूजित होकर शील और सत्त्व से विख्यात हैं। इस तरह "स्त्रियां मन्द शक्ति वाली होने से रत्नत्रय का अभाव स्त्रियों में है" ऐसा तुम्हारा पक्ष निराकृत हो गया है॥

इस तरह जब स्त्रियों में चारित्र की संभवता निश्चित हो जाती है तब ज्ञानदर्शन की भी संभवता सुतरां निश्चित हो जाती है। क्यों कि चारित्र, ज्ञान एवं दर्शनपूर्वक होता है, इनके विना चारित्र नहीं होता है। "पूर्वद्वयलाभः पुनरुत्तरलाभे भवति सिद्धः" उत्तर के लाभ में चारित्र की प्राप्ति में-पूर्वद्वय का लाभ सिद्ध होता है, अर्थात् चारित्र के लाभ में सम्यग्ज्ञान सम्यक्दर्शन का लाभ सिद्ध होता है, अतः स्त्रियों में ज्ञानदर्शन का अभाव है, ऐसा कथन भी ठीक नहीं है, इसलिये ऐसा कहना कि सम्यग्दर्शनादिक रत्नत्रय का अभाव होने से स्त्रियां पुरुषों से

એટલે કે આ શ્લોકમાં કહેલ બ્રાહ્મી, સુન્દરી, રાજીમતિ, ચન્દનબાળા આદિ સાધ્વીઓ દેવ મનુષ્યો વડે પૂજાઇને શીલ અને સત્ત્વ વડે વિખ્યાત છે. આ પ્રમાણે "સ્ત્રીઓ મંદ શકિતવાળી હોવાથી સ્ત્રીઓમાં રત્નત્રયનો અભાવ છે" એવા તમારા પક્ષનું ખંડન થઈ જાય છે.

આ પ્રમાણે જો સ્ત્રીઓમાં ચારિત્રની સંભવતા નિશ્ચિત થઇ જાય છે તો જ્ઞાન દર્શનની પણ સંભવતા સારી રીતે નિશ્ચિત થઈ જાય છે. કારણ કે ચારિત્ર જ્ઞાન અને દર્શન સહિત હોય છે. તેમના વિના ચારિત્ર હોતું નથી "पूर्वव्दयलाभः पुनरुत्तरलाभे भवति सिद्धः" ઉત્તરના લાભમાં-ચારિત્રની પ્રાપ્તિમાં-પૂર્વદ્વયનો લાભ સિદ્ધ થાય છે, એટલે કે ચારિત્રના લાભ સાથે જ સમ્યક્‌દર્શનનો લાભ પ્રાપ્ત થાય છે. તેથી "સ્ત્રીઓમાં જ્ઞાનદર્શનનો અભાવ છે" એવું કથન પણ બરાબર નથી. તેથી એવું કહેવું કે "સમ્યગ્દર્શનાદિક રત્નત્રયનો અભાવ હોવાથી સ્ત્રીઓ પુરુષો કરતાં અપકૃષ્ટ-હીન છે" એ કથન પણ ફક્ત એક પ્રલાપ જ

तथाचोक्तम्—

"जानीते जिनवचनं, श्रद्धत्ते चरति चार्यिकाऽशबलम्" इति।

नन्वस्तु नाम स्त्रीणामपि सम्यग्दर्शनादिकं रत्नत्रयम्, परं तु न तत् संभवमात्रेण मुक्तिपदप्रापकं भवति, किं तु प्रकर्षप्राप्तम्, अन्यथा दीक्षानन्तरमेव सर्वेषामप्यविशेषेण मुक्तिपदप्राप्तिप्रसक्तिः, सम्यग्दर्शनादिरत्नत्रयप्रकर्षश्च स्त्रीणां न संभवति, तथा च-प्रकर्षपर्यन्तस्य रत्नत्रयस्याभाव इति मत्वा स्त्रियः पुरुषेभ्योऽपकृष्टा इति चेत्, तदयुक्तम्-स्त्रीषु हि रत्नत्रयासंभवग्राहकं प्रमाणं नास्ति, देश-

---

अपकृष्ट-हीन हैं, सो यह कथन केवल एक प्रलापमात्र है। इस समय भी स्त्रियां सम्यग्दर्शनादिक त्रय का अभ्यास करती हुई देखने में आती है, जैसे कहा भी है—"जानीते जिनवचनं श्रद्धत्ते चरति चार्यिकाऽशबलम्।"

प्रश्न—स्त्रियों में सम्यग्दर्शनादिकत्रिकके सद्भावमात्र से मुक्ति प्राप्ति संभवित नहीं होती है, अर्थात् सम्यग्दर्शनादिक का त्रिक केवल संभवमात्र से उन्हें मुक्तिपद का प्रापक नहीं बनता है किन्तु प्रकर्ष प्राप्त ही सम्यग्दर्शनादिक का त्रिक मुक्तिपद की प्राप्ति का हेतु होता है। यदि ऐसा न माना जाय तो दीक्षा लेने के बाद ही सब को मुक्ति की प्राप्ति हो जानी चाहिये, परन्तु ऐसा होता नहीं है। इससे यही मानना पडता है कि सम्यग्दर्शनादिकत्रिक जब प्रकर्षावस्था को प्राप्त हो जाता है तभी मुक्ति की प्राप्ति जीव को होती है, यह इनका प्रकर्ष स्त्रियों में नहीं है-पुरुषों में ही होता है, इससे सम्यग्दर्शनादिक के प्रकर्ष का अभाव होने से स्त्रियां पुरुषों की अपेक्षा अपकृष्ट मानी गई हैं?।

છે. આ સમયમાં પણ સ્ત્રીઓ સમ્યગ્દર્શનાદિક રત્નત્રયનો અભ્યાસ કરતી જોવામાં આવે છે. જેમ કે કહ્યું પણ છે-जानीते जिनवचनं श्रद्धत्ते चरति चार्यिकाऽशबलम्"

પ્રશ્નઃ—સ્ત્રીઓમાં સમ્યગ્દર્શનાદિક રત્નત્રયના સદ્ભાવથી મુક્તિની પ્રાપ્તિ સંભવિત હોતી નથી, એટલે કે સમ્યગ્દર્શનાદિક રત્નત્રયના સંભવમાત્રથી જ તેમને મુક્તિપદની પ્રાપ્તિ થતી નથી પણ પ્રકર્ષપ્રાપ્ત જ સમ્યગ્દર્શનાદિક રત્નત્રય જ મુકિતપદની પ્રાપ્તિનું કારણ હોય છે જો એમ ન માનવામાં આવે તો દીક્ષા લીધા પછી જ સર્વેને મુકિત પ્રાપ્ત થવી જોઇએ, પણ એવું થતું નથી. તેથી એમ માનવું પડે છે કે સમ્યગ્દર્શનાદિક રત્નત્રય જ્યારે પ્રકર્ષાવસ્થાને પામે છે ત્યારે જ જીવને મુકિત પ્રાપ્ત થાય છે. તેમનો આ પ્રકર્ષ સ્ત્રીઓમાં હોતો નથી-પુરુષોમાં જ હોય છે, તેથી સમ્યગ્દર્શનાદિકના પ્રકર્ષનો અભાવ હોવાથી સ્ત્રીઓ પુરુષો કરતાં અપકૃષ્ટ-હીન મનાય છે.

कालविप्रकृष्टेषु प्रत्यक्षस्याप्रवृत्तेः, तदप्रवृत्तौ च अनुमानस्याप्यसंभवात् । नापि तासु रत्नत्रयप्रकर्षासंभवप्रतिपादकः कोऽप्यागमो विद्यते, प्रत्युत संभवप्रतिपादक एव स्थाने स्थानेऽस्ति. यथा-'इत्थीपुरिससिद्धा य' इति प्रस्तुतैव गाथा, ततो न तासां रत्नत्रयप्रकर्षासंभवः । किंच-कथय तावत्-स्त्रीषु उक्तरूपस्य रत्नत्रयस्याभावः किं कारणाभावेन, किं स्वभावत एव किं वा स्त्रीत्वस्य रत्नत्रयप्रकर्षविरोधित्वेन, तव संमतोऽस्तीति । तत्र न तावत् कारणाभावेन प्रकर्षपर्यन्तप्राप्तरत्नत्रयाभावः, यतः

उत्तर—ऐसा भी कहना ठीक नहीं है क्यों कि ऐसा कोई प्रमाण नहीं है जो स्त्रियों में सम्यग्दर्शनादिक त्रिक के प्रकर्ष की असंभवता सिद्ध कर सके। देशविप्रकृष्ट एवं कालविप्रकृष्ट पदार्थों में प्रत्यक्षप्रमाण की अप्रवृत्ति होने से वह तो इस बात का समर्थक होता नहीं। इसी तरह प्रत्यक्ष की अप्रवृत्ति होनेके कारण अनुमान की भी वहां प्रवृत्ति नहीं होती है, अर्थात् अनुमान भी यह नहीं बतला सकता है कि स्त्रियों में सम्यग्दर्शनादिक के प्रकर्ष की असंभवता है। रहा आगम, सो वह भी तो यहीस्थान स्थान पर प्रकट करता है कि स्त्रियों में इनका प्रकर्ष हो सकता है "इत्थीपुरिससिद्धाय" यह गाथा ही इसके लिये प्रमाणभूत है। इसलिये रत्नत्रय के प्रकर्ष की असंभवता से जो स्त्रियों में पुरुषों की अपेक्षा हीनता बतलाई जाती है वह ठीक नहीं है।

और भी आप जो स्त्रियों में रत्नत्रय के प्रकर्ष का अभाव प्रतिपादन करते हो सो क्यों करते हो? कहो, क्या उनमें उनके प्रकर्ष होने के कारणों का अभाव है? अथवा स्त्रियों का स्वभाव ही ऐसा है जो उनके

ઉત્તર—એમ કહેવું પણ બરાબર નથી. એવું કોઈ પ્રમાણ નથી કે જે સ્ત્રીઓમાં સમ્યગ્દર્શનાદિક રત્નત્રયના પ્રકર્ષની અસંભવતા સિદ્ધ કરી શકે. દેશવિપ્રકૃષ્ટ અને કાળવિપ્રકૃષ્ટ પદાર્થોમાં પ્રત્યક્ષ પ્રમાણની અપ્રવૃત્તિ હોવાથી તે તો આ વાતના સમર્થક થતાં નથી. એજ પ્રમાણે પ્રત્યક્ષની અપ્રવૃત્તિ હોવાને કારણે ત્યાં અનુમાનની પણ પ્રવૃત્તિ હોતી નથી, એટલે કે અનુમાન પણ એ બતાવી શકતું નથી કે સ્ત્રીઓમાં સમ્યગ્દર્શનાદિકના પ્રકર્ષની અસંભવતા છે. બાકી રહ્યાં આગમ, તો તે સ્થળે સ્થળે એજ પ્રગટ કરે છે કે સ્ત્રીઓમાં તેમનો પ્રકર્ષ હોઈ શકે છે "इत्थी पुरिस सिद्धाय" આ ગાથા જ તે માટે પ્રમાણભૂત છે. તેથી રત્નત્રયના પ્રકર્ષની અસંભવતા વડે સ્ત્રીઓમાં પુરૂષો કરતાં જે હીનતા દર્શાવાય છે તે બરાબર નથી.

વળી—આપ સ્ત્રીઓમાં રત્નત્રયના પ્રકર્ષનો જે અભાવ સિદ્ધ કરો છો તે કેમ કરો છો? કહો કે શું તેમનામાં તેમનો પ્રકર્ષ હોવાનાં કારણોનો અભાવ છે?

-रत्नत्रयाभ्यास एव प्रकर्षपर्यन्तप्राप्तरत्नत्रयस्य प्राप्तिकारणमितिशास्त्रे प्ररूपितम्, रत्नत्रयाभ्यासः स्त्रीषु वर्तते इति समर्थितमेव। स्त्रीत्वं रत्नत्रयप्रकर्षस्य विरोधीत्यपि न वक्तुं युक्तम्, तथाहि-रत्नत्रयप्रकर्षः स उच्यते, यतोऽनन्तरं मुक्तिपदप्राप्तिः, स च रत्नत्रयप्रकर्षः खलु अयोगिनोऽवस्थायां भवति, स हि चरमसमयभावी। अयोगिनोऽस्था च छद्मस्थानामप्रत्यक्षा, तर्हि स्त्रीत्वं रत्नत्रयप्रकर्षस्य विरोधीति ज्ञानं कथं त्वया प्राप्तम्। न हि अदृष्टेन सह विरोधो ज्ञातुं शक्यते। अदृष्टविरोधकल्पने तु पुरुषेष्वपि रत्नत्रयप्रकर्षविरोधापत्तिस्तव मते प्रसज्येत। एवं च न रत्नत्रयाभावेन स्त्रीणां पुरुषेभ्योऽपकृष्टत्वम् ॥ १ ॥

प्रकर्ष को नहीं होने देता? या रत्नत्रय का विरोधी वहां स्त्रीपना है?

प्रथम पक्ष तो इसलिये उचित नहीं माना जा सकता कि जब वे अभ्यास करती रहती है तो यही अभ्यास उनके प्रकर्ष की प्राप्ति का कारण उन्हें बन जाता है, ऐसा शास्त्रों में कहा है। रत्नत्रय का अभ्यास स्त्रियों में वर्तता है इसमें तो विवाद ही नहीं है।

स्त्रीत्व रत्नत्रय के प्रकर्ष का विरोधी है, यह भी ठीक नहीं है, रत्नत्रय का प्रकर्ष वही है कि जिसके अनन्तर मुक्तिपद की प्राप्ति हो जावे। ऐसा वह प्रकर्ष अयोगी अवस्था में होता है, और यह चरम-समय भावी है। अयोगी की अवस्था छद्मस्थों के अप्रत्यक्ष होती है तब 'स्त्रीत्व रत्नत्रय के प्रकर्ष का विरोधी है' यह कैसे जाना जा सकता है? क्यों कि वह परमप्रकर्ष प्रत्यक्ष का विषय नहीं होता है। जो दृष्ट नहीं है उसके साथ विरोधी की कल्पना करना ठीक नहीं होता है। यदि

અથવા શું સ્ત્રીઓનો સ્વભાવ જ એવો છે કે જે તેમનો પ્રકર્ષ થવા દેતો નથી? કે રત્નત્રયનુ વિરોધી ત્યાં સ્ત્રીપણું છે? પહેલો પક્ષ તો એ કારણે જ ઉચિત માની ન શકાય કે જ્યારે તેઓ અભ્યાસ કરતી રહે છે તો એજ અભ્યાસ તેમના પ્રકર્ષની પ્રાપ્તિનું કારણ તેમને માટે બની જાય છે, એવું શાસ્ત્રોમાં કહેલ છે. રત્નત્રયનો અભ્યાસ સ્ત્રીઓમાં હોય છે તે બાબતમાં તો વિવાદ છે જ નહીં.

સ્ત્રીત્વ રત્નત્રયના પ્રકર્ષનું વિરોધી છે, એ પણ બરાબર નથી. રત્નત્રયનો પ્રકર્ષ એજ છે કે જેના પછી મુક્તિપદની પ્રાપ્તિ થઈ જાય. એવો તે પ્રકર્ષ અયોગી-ગુણસ્થાન અવસ્થામાં હોય છે, અને તે ચરમસમયભાવી છે. અયોગીગુણસ્થાન અવસ્થા છદ્મસ્થોને અપ્રત્યક્ષ હોય છે તો "સ્ત્રીત્વ રત્નત્રયના પ્રકર્ષનું વિરોધી છે" એ કેવી રીતે જાણી શકાય છે? કારણ કે તે પરમ પ્રકર્ષ પ્રત્યક્ષનો વિષય નથી જે દૃશ્યમાન નથી તેની સાથે વિરોધીની કલ્પના કરવી તે બરાબર નથી. જો

अथ विशिष्टसामर्थ्यासत्त्वेन स्त्रियः पुरुषेभ्योऽपकृष्टा इति चेत्-शृणु, स्त्रीणां कथमिदं विशिष्टसामर्थ्यासत्त्वं भवति ? किं तावत् असप्तमनरकपृथ्वीगमनत्वेन १, आहोस्विद् वादादिलब्धिरहितत्वेन २, किं वा अल्पश्रुतत्वेन ३, किं वा–अनुपस्थाप्यता–पाराञ्चिकता–शून्यत्वेन ४, इति ।

नन्वसप्तमनरकपृथिवीगमनत्वेन स्त्रीणां विशिष्टसामर्थ्याभावः, तथाहि–इह जगति सर्वोत्कृष्टपदप्राप्तिः सर्वोत्कृष्टेनाध्यवसायेन भवति नान्यथेति द्वयोरप्यावयो रागमप्रामाण्यबलात् सिद्धं सर्वोत्कृष्टदुःखस्थानं, सर्वोत्कृष्टसुखस्थानं च । तत्र

अदृष्ट प्रकर्ष के साथ विरोध मानते हो तो फिर पुरुषों के साथ भी इसका विरोध मान लेना चाहिये । इस तरह रत्नत्रय के अभाव से स्त्रियों में पुरुषों की अपेक्षा हीनता नहीं मानी जा सकती है ।

यदि कहो कि विशिष्ट सामर्थ्य का अभाव होने से स्त्रियां पुरुषों की अपेक्षा अपकृष्ट हैं ऐसा कहना भी ठीक नहीं है, सुनो–उनमें विशिष्ट सामर्थ्य का असत्त्व है, यह किस कारण से आप कहते हैं ? क्या वे सप्तम नरक में नहीं जाती हैं इसलिये ?, अथवा वादादि लब्धि से वे रहित हैं इसलिये ?, अथवा अल्पश्रुतज्ञान उन्हें होता है इसलिये ?, अथवा अनुपस्थाप्यता पाराश्चित से शून्य होती है इसलिये ? ।

यदि कहो कि वे सप्तम पृथिवी में नहीं जाती है इसलिये उनमें विशिष्ट सामर्थ्य का अभाव है, जगत में सर्वोत्कृष्ट-पद-प्राप्ति सर्वोत्कृष्ट अध्यवसाय से होती है, अन्य प्रकार से नहीं होती है । ऐसी मान्यता

અદૃશ્ય પ્રકર્ષની સાથે વિરોધ માનતા હો તો પછી પુરૂષોની સાથે પણ તેનો વિરોધ માની લેવો જોઈએ. આ પ્રમાણે રત્નત્રયના અભાવે સ્ત્રીઓમાં પુરુષો કરતાં હીનતા માની શકાય નહીં.

જો એમ કહો કે વિશિષ્ટ સામર્થ્યનો અભાવ હોવાથી સ્ત્રીઓ પણ પુરૂષો કરતાં હીન છે તો એમ કહેવું તે પણ બરાબર નથી. શા માટે ? સાંભળો તેમનામાં વિશિષ્ટ સામાર્થ્યનો અભાવ છે. એમ આપ કયા કારણે કહો છો ? શું તેઓ સાતમી નરકે નથી જતી માટે ?, અથવા વાદાદિલબ્ધિરહિત હોવાને કારણે ? અથવા તેમને અલ્પ શ્રુતજ્ઞાન થાય છે તે માટે ? અથવા અનુપસ્થ પ્યતા પારાંચિત રહિત હોય છે તે કારણે ?

જો કહો કે તેઓ સપ્તમ પૃથ્વીમાં જતી નથી તેથી તેમનામાં વિશિષ્ટ સામર્થ્યનો અભાવ છે. જગતમાં સર્વોત્કૃષ્ટપદપ્રાપ્તિ સર્વોત્કૃષ્ટ અધ્યવસાયથી થાય છે. બીજી રીતે થતી નથી. એવી આપની તથા અમારી માન્યતા છે. કારણ

सर्वोत्कृष्टदुःखस्थानं सप्तमनरकपृथ्वी, अतः परं परमदुःखस्थानस्याभावात्। सर्वोत्कृष्ट सुखस्थानं तु निःश्रेयसम्। तत्र स्त्रीणां सप्तमनरकपृथ्वीगमनं श्रुते निषिद्धम्। निषेधस्य च कारणं तद्गमनयोग्यतथाविधसर्वोत्कृष्टमनोवीर्यपरिणत्यभावः। ततः सप्तमनरकपृथिवीगमनवत्त्वाभावात् संमूर्छिमादिवत् स्त्रीणां सर्वोत्कृष्टमनोवीर्यपरिणत्यभावः, इतिचेत्,

तदयुक्तम्—यदि स्त्रीणां सप्तमनरकपृथिवीगमनं प्रति सर्वोत्कृष्टमनोवीर्यपरिणत्यभावस्तदैतत् कथमवसीयते निःश्रेयसं प्रत्यपि तासां सर्वोत्कृष्टमनोवीर्यपरिणत्यभावः?, न हि यो भूमिकर्षणादिकं कर्म कर्तुं न शक्नोति, स शास्त्राण्यप्यवगन्तुं न शक्नोतीति प्रत्येतुं शक्यं, प्रत्यक्षविरोधात्, नापि वा हस्ती सूचीमुत्थापयितुं न शक्नोतीति वृक्षशाखामपि त्रोटयितुं न शक्नोतीति मन्तव्यं भवति प्रत्यक्षविरोधात्।

आपकी और हमारी है, क्यों कि इस विषय को बतलाने वाला आगम प्रमाण अपन दोनों को मान्य है। सर्वोत्कृष्ट दुःख का स्थान सप्तमनरक है क्यों कि इससे आगे और कोई दुख का स्थान नहीं है। तथा सर्वोत्कृष्ट सुख का स्थान मोक्ष है। शास्त्र बतलाता है कि स्त्रियां सप्तमनरक में नहीं जाती हैं, कारण कि सप्तमनरक में जाने के योग्य तथाविध सर्वोत्कृष्ट मनोवीर्यरूप परिणति का उनमें अभाव है। इसलिये सप्तमनरक में जाने का अभाव होने से संमूर्च्छिम आदि की तरह स्त्रियों में सर्वोत्कृष्ट मनोवीर्यरूप परिणति का अभाव सिद्ध होता है।

ऐसा कहना भी ठीक नहीं है, कारण कि यदि उनमें सप्तमनरक में जाने के योग्य सर्वोत्कृष्ट मनोवीर्य परिणति का अभाव है तो यह कैसे आप जानते हैं कि उनमें निःश्रेयस के प्रति सर्वोत्कृष्ट मनोवीर्यरूप

કે એ વાત દર્શાવનાર આગમ પ્રમાણ આપણને બન્નેને માન્ય છે. સર્વોત્કૃષ્ટ દુઃખનું સ્થાન સાતમી નરક છે કારણ કે તેનાથી આગળ બીજું કોઈ દુઃખનું સ્થાન નથી. તથા સર્વોત્કૃષ્ટ સુખનું સ્થાન મોક્ષ છે. શાસ્ત્રો બતાવે છે કે સ્ત્રીઓ સાતમી નરકે જતી નથી, કારણ કે સાતમી નરકે જવાને યોગ્ય તથાવિધ સર્વોત્કૃષ્ટ મનોવીર્યરૂપ પરિણતિનો તેમનામાં અભાવ છે. આ રીતે સાતમી નરકમાં જવાનો અભાવ હોવાથી સંમૂર્ચ્છિમ આદિની જેમ સ્ત્રીઓમાં સર્વોત્કૃષ્ટ મનોવીર્યરૂપ પરિણતિનો અભાવ સિદ્ધ થાય છે.

એમ કહેવું તે પણ બરાબર નથી. કારણ કે જો તેમનામા સાતમી નરકમાં જવાને યોગ્ય સર્વોત્કૃષ્ટ પરિણતિનો અભાવ છે તો આપ એમ કેવી રીતે જાણો છો કે તેમનામાં નિઃશ્રેયસ પ્રત્યે સર્વોત્કૃષ્ટ મનોવીર્યરૂપ પરિણતિનો પણ

अथ संमूर्छिमादिषु सर्वोत्कृष्टदुःखस्थाने सर्वोत्कृष्टसुखस्थाने चेत्युभयत्रापि तद्गमनयोग्यतथाविधसर्वोत्कृष्टमनोवीर्यपरिणत्यभावो दृष्टस्ततोऽत्रापि तादृशमनोवीर्यपरिणत्यभावो निश्चेतव्य इति चेत्, संमूर्छिमादिषु प्रतिबन्धबलेन तादृशमनोवीर्यपरिणत्यभावः, न त्वत्र प्रतिबन्धो विद्यते, न खलु सप्तमपृथिवीगमनं निर्वाणगमनस्य कारणम्, नापि सप्तमपृथिवीगमनाविनाभावि निर्वाणगमनम्, चरमशरीरिणां सप्तमपृथिवीगमनमन्तरेणैव निर्वाणगमनदर्शनात्।

परिणति का भी अभाव है। यह तो कोई बात नहीं है कि जो पुरुष भूमिकर्षणादिक कार्य करने में असमर्थ हों वे शास्त्रों के भी पढ़ने में अथवा जानने में समर्थ नहीं हों?। क्यों कि इसमें प्रत्यक्ष से विरोध आता है। जो हाथी एक सूची को नहीं उठा सकता है क्या वह वृक्ष की शाखाओं के तोडने में असमर्थ होता है? नहीं होता है। यदि ऐसा माना जाय तो इसमें प्रत्यक्ष से विरोध आता है।

यदि कहा जाय कि संमूर्च्छिम आदिकोमें सर्वोत्कृष्ट दुःख के स्थान में तथा सर्वोत्कृष्ट सुख के स्थान में जाने योग्य तथाविध सर्वोत्कृष्ट मनोवीर्यरूप परिणति का अभाव देखा जाता है उसी तरह स्त्रियों में भी तादृशमनोवीर्यरूप परिणति का अभाव निश्चित होता है सो ऐसा कहना ठीक इसलिये नहीं बैठता है कि संमूर्च्छिम आदिकों में जो तादृश मनोवीर्यरूप परिणति का अभाव है इसका कारण वहां प्रतिबंध है, यहां ऐसा कोई प्रतिबंध नहीं है। तथा सप्तम पृथिवी में गमन कोई निर्वाण-

અભાવ છે. એવી તો કોઇ વાત નથી કે જે પુરુષો ભૂમિકર્ષણાદિક કાર્ય કરવાને અસમર્થ હોય તેઓ શાસ્ત્રો ભણુવાના અથવા જાણુવામાં પણ અસમર્થ હોય? કારણુ કે તેમાં પ્રત્યક્ષથી વિરોધ આવે છે. જે હાથી એક સોયને ઉઠાવી ન શકતો હોય તે શું વૃક્ષની શાખાઓને તોડવાને અસમર્થ હોય છે? હોતો નથી. જો એમ માનવામાં આવે તો એમાં પ્રત્યક્ષથી વિરોધ આવે છે.

જો એમ માની લઇએ કે સંમૂર્ચ્છિમ આદિકોમાં સર્વોત્કૃષ્ટ દુઃખના સ્થાનમાં તથા સર્વોત્કૃષ્ટ સુખના સ્થાનમાં જવાને યોગ્ય તથાવિધ સર્વોત્કૃષ્ટ મનોવીય રૂપ પરિણુતિનો અભાવ જોવામાં આવે છે એ જ પ્રમાણે સ્ત્રીઓમાં પણ તાદૃશમનોવીર્યરૂપ પરિણુતિનો અભાવ નિશ્ચિત થાય છે તો એમ કહેવું તે એ કારણે બરાબર લાગતું નથી કે સંમૂર્ચ્છિમ આદિમાં જે તાદૃશ મનોવીર્યરૂપ પરિણુતિનો અભાવ છે તેનું કારણુ ત્યાં પ્રતિબંધ છે, અહીં એવો કોઈ પ્રતિબંધ નથી. તથા સાતમી પૃથ્વીમાં ગમન થવું એ કોઈ નિર્વાણુ ગમનના પ્રતિ કારણુ તો છે

किञ्च—यदि असप्तमनरकपृथिवीगमनत्वेन स्त्रीषु विशिष्टसामर्थ्याभावः, अतस्ताः पुरुषेभ्योऽपकृष्टा इति वदसि, तर्हि ब्रूहि स सप्तमनरकगमनाभावः किं यत्रैव जन्मनि स्त्रियो मुक्तिगामिन्यस्तत्रैव विवक्षितः?, किं वा सामान्येन ?।

तत्राद्यपक्षाङ्गीकारे पुरुषाणामपि मुक्त्यभावप्रसङ्गः, तेषामपि हि यत्र जन्मनि मुक्तिगामिता, न तत्रैव सप्तमपृथिवीगमनमिति।

अथ सामान्येन सप्तमनरकपृथिवीगमनाभाव इति विवक्षितः, अत्रायमाशयः— "छट्ठिं च इत्थियाओ, मच्छा मणुया य सत्तमिं पुढविं" इत्यागमवचनात् पुरुषाणामेव सप्तमनरकपृथिवीगमनयोग्यकर्मोपार्जनसामर्थ्यं, न तु स्त्रीणाम्। एवं चाधोगतौ पुरुषतुल्यसामर्थ्याभावा दूर्ध्वगतावपि स्त्रीणां पुरुषतुल्यसामर्थ्याभाव इत्यनुमीयते।

गमन के प्रति कारण तो है नहीं, और न निर्वाणगमन सप्तमपृथिवी गमन-अविनाभावी है, क्यों कि चरमशरीरी जो व्यक्ति हुआ करते हैं वे सप्तमपृथिवी गमन के विना ही निर्वाण में जाते हुए देखे जाते हैं।

तथा यदि तुम्हारी यही बात मानली जावे कि स्त्रियां सप्तम नरक में नहीं जाती हैं इसलिये उनमें विशिष्ट सामर्थ्य का अभाव है और इसीलिये वे पुरुषों से हीन मानी गई हैं सो इस पर हमारा तुम से ऐसा पूछना है कि यह जो उनमें सप्तम नरक में गमन का अभाव है सो वह क्या जिस भव में उन्हें मुक्ति प्राप्त होती है उसी भव की अपेक्षा से विवक्षित है? या सामान्यरूप से विवक्षित है?, यदि इसमें प्रथम पक्ष अंगीकार किया जाय तो इस तरह पुरुषों को भी मुक्ति की प्राप्ति नहीं हो सकती है, क्यों कि जिस जन्म में उन्हें मुक्ति जाना होता है उस जन्म में वे सप्तमनरक में नहीं जाते हैं।

નહીં, અને ન નિર્વાણગમન સપ્તમપૃથ્વીગમનઅવિનાભાવી છે, કારણ કે ચરમ શરીરી જે વ્યકિતઓ હોય છે તેઓ સપ્તમપૃથ્વીગમન વિના જ મોક્ષે જતાં જોવામાં આવે છે.

તથા તમારી આ વાત જો માની લઈએ કે સ્ત્રીઓ સાતમી નરકમાં જતી નથી તેથી તેમનામાં વિશિષ્ટ સામર્થ્યનો અભાવ છે અને તેથી જ તેઓને પુરુષો કરતાં હીન માનવામાં આવી છે તો એ બાબતમાં અમારો આપને એ પ્રશ્ન છે કે આ જે તેમનામાં સાતમી નરકે ગમનનો અભાવ છે તે શું જે ભવમાં તેમને મુકિત પ્રાપ્ત થાય છે એજ ભવની અપેક્ષાએ વિવક્ષિત છે? કે સામાન્યરૂપે વિવક્ષિત છે?. જો તેમાંનો પહેલો પક્ષ સ્વીકાર્ય ગણાય તો એ રીતે પુરુષોને પણ મુકિત મળી શકતી નથી, કારણ કે જે જન્મમાં તેમને મોક્ષે જવાનું થાય છે તે જન્મમાં તેઓ સાતમી નરકમાં જતા નથી.

अतस्ताः पुरुषेभ्योऽपकृष्टा इति चेत् ? शृणु ।

अधोगतौ येषामतुल्यं सामर्थ्यं, तेषामूर्ध्वगतावपि सामर्थ्यमतुल्यमेव भवतीति नियमो नास्ति । तथा चोक्तम्—

संमुच्छिम–भुयग–खग,–चउप्पय–सप्पि–त्थि–जलचरेहिंतो ।
स नरेहिंतो सत्तसु, कमोववज्जंति नरएसु ॥ १ ॥

यदि कहो कि यह बात सामान्य से कही है कि स्त्रियों में सप्तम नरक में जाने का अभाव है, अर्थात् इसका आशय यह है कि–" छट्ठिं च इत्थियाओ मच्छा मणुया य सत्तमिं पुढविं " छठवीं नरक तक स्त्रियां जाती हैं तथा मच्छ एवं मनुष्य सप्तम नरक तक जाते हैं, अतः सप्तम नरक में जाने के योग्य कर्मोंके उपार्जन करने की शक्ति पुरुषों में ही है स्त्रियों में नहीं है, इस प्रकार जब स्त्रियों में अधोगमन के लिये पुरुष-तुल्य सामर्थ्य का अभाव है तो ऊर्ध्वगमन में भी पुरुषतुल्य सामर्थ्य का अभाव उनमें है, यह बात भी अनुमति होती है । इसीसे वे पुरुषों की अपेक्षा हीन मानी गई हैं ।

ऐसा कहना भी ठीक नहीं है । कारण कि ऐसा कोई नियम नहीं है कि जिनमें अधोगति में जाने का सामर्थ्य नहीं है उनमें ऊर्ध्वगति में भी जाने का सामर्थ्य नहीं है । फिर कहा भी है—

" समुच्छिम१भुयग२, खग३–चउपय४सप्पि५त्थि६जलचरेहिंतो ।
सनरेहिंतो७ सत्तसु, कमोववज्जंति नरएसु ॥ १ ॥ "

જો એમ કહો કે આ વાત સામાન્યરૂપે કહી છે કે સ્ત્રીઓમાં સાતમી નરકે જવાનો અભાવ છે એટલે કે તેનો આશય આ પ્રમાણે છે–" छठिं च इत्थियाओ मच्छा मणुया य सत्तमिं पुढविं " છઠ્ઠી નરક સુધી સ્ત્રીઓ જાય છે, તથા મચ્છ અને માણસ સાતમી નરક સુધી જાય છે, તેથી સાતમી નરકમાં જવાને યોગ્ય કર્મોનું ઉપાર્જન કરવાની શક્તિ પુરુષોમાં જ છે સ્ત્રીઓમાં નથી. આ પ્રમાણે જો સ્ત્રીઓમાં અધોગમનને માટે પુરુષ જેટલા સામર્થ્યનો અભાવ છે તો ઉર્ધ્વગમનમાં પણ પુરુષ જેટલા સામર્થ્યનો અભાવ તેમનામાં છે, એ વાતનું પણ અનુમાન કરી શકાય છે, તેથી તેમને પુરુષો કરતાં હીન ગણેલ છે.

એમ કહેવું તે પણ બરાબર નથી કારણ કે એવો કોઈ નિયમ નથી કે જેમનામાં અધોગતિમાં જવાનું સામર્થ્ય ન હોય તેમનામાં ઉર્ધ્વગતિમાં જવાનું પણ સામર્થ્ય ન હોય વળી કહ્યું પણ છે–

" संमुच्छिम १–भुयग २–खग ३–चउप्पय ४–सप्पि ५–त्थि ६–जलचरेहिंतो ।
सनरेहिं तो, सत्तसु, कमोववज्जंति नरएसु " ॥ १ ॥

छाया—संमूर्च्छिम—भुजग—खग—चतुष्पद—सर्प—स्त्री—जलचरेभ्यः।
सनरेभ्यः सप्तसु, क्रमश उपपद्यन्ते नरकेषु ॥ इति ॥

संमूर्छिम (१),—भुजग (२),—खग (३),—चतुष्पद (४),—सर्प (५),—स्त्री (६),—जलचर (७)—नराणामधोगतौ नास्ति तुल्यं सामर्थ्यम्, ऊर्ध्वगतौ तु तुल्यमेव सामर्थ्यम्। तदुक्तम्—

सन्नि—तिरिक्खेहिंतो, सहस्सारंतिएसु देवेसु।
उप्पज्जंति परेसुवि, सव्वेसु वि माणुसेहिंतो ॥ २ ॥

छाया—संज्ञि—तिर्यग्भ्यः, सहस्रारान्तिकेषु देवेषु।
उत्पद्यन्ते परेष्वपि, सर्वेष्वपि मनुष्येभ्यः ॥ २ ॥

तथा चोर्ध्वगतौ स्त्रीणां पुरुषतुल्यसामर्थ्यसद्भावान्न विशिष्टसामर्थ्यासत्त्वम्। ततश्च पुरुषवत् स्त्रीणामप्यूर्ध्वगतियोग्यताऽस्त्येवेति।

अर्थात् संमूर्छिम १, भुजग २, खग ३, चतुष्पद ४, सर्प ५, स्त्री ६, जलचर और मनुष्य ७। इनकी अधोगति प्राप्ति में एक सी शक्ति नहीं है, फिर भी उर्ध्वगति प्राप्ति में एक सी शक्ति है। कहा भी है—

"सन्नितिरिक्खेहिंतो, सहस्सारंतिएसु देवेसु।
उप्पज्जंति परेसु वि, सव्वेसु वि माणुसेहिंतो" ॥ २ ॥

अर्थात्—संज्ञितिर्यंच से निकल कर जीव सहस्रार नामके आठवें देवलोक तक जाता है। मनुष्यसे निकला हुआ जीव उससे आगे सब देवलोकों में जा सकता है। इसलिये ऊर्ध्वगतिमें स्त्रियों के पुरुषतुल्य सामर्थ्यका सद्भाव होनेसे उनमें विशिष्ट सामर्थ्यका असत्त्व नहीं है, अतः पुरुषकी तरह स्त्रियों में ऊर्ध्वगमनकी योग्यता है ही।

એટલે કે (૧) સંમૂર્ચ્છિમ, (૨) ભુજગ, (૩) ખગ, (૪) ચતુષ્પદ, (૫) સર્પ, (૬) સ્ત્રી, (૭) જળચર અને મનુષ્ય, એમનામાં અધોગતિ પ્રાપ્તિની એક સરખી શક્તિ નથી, તો પણ ઉર્ધ્વગતિની પ્રાપ્તિની એક સરખી શક્તિ છે. કહ્યું પણ છે-

"સન્નિતિરિક્ખેહિંતો, સહસ્સારંતિએસુ દેવેસુ।
ઉપ્પજ્જંતિ પરેસુ વિ, સવ્વેસુ વિ માણુસે હિંતો ॥૨॥

એટલે કે સંજ્ઞિ તિર્યંચમાંથી નીકળીને જીવ સહસ્રાર નામનાં આઠમાં દેવલોક સુધી જાય છે. મનુષ્યમાંથી નીકળેલ જીવ તેનાથી આગળ બધા દેવલોકમાં જઈ શકે છે, તેથી ઉર્ધ્વગતિમાં સ્ત્રીઓને પુરુષતુલ્ય સામર્થ્યનો સદ્ભાવ હોવાથી તેમનામાં વિશિષ્ટ સામર્થ્યનો અભાવ નથી, તેથી પુરુષની જેમ સ્ત્રીઓમાં ઉર્ધ્વગમનની યોગ્યતા છે જ.

अथ वादादिलब्धिरहितत्वेन विशिष्ट सामर्थ्यासत्त्वम् , स्त्रीणां हि वादलब्धौ विकुर्वणत्वादिलब्धौ पूर्वगतश्रुताधिगतौ च न सामर्थ्यगतिरस्तीत्य तस्तासां मोक्षगमनसामर्थ्यमपि न संभवति, इति चेन्न, वादादिलब्धिरहितस्यापि क्वचिद् विशिष्टसामर्थ्यं दृश्यते, वादविकुर्वणत्वादिलब्धिविरहेऽपि विशिष्टपूर्वगतश्रुताभावेऽपि मनुष्यादीनां निःश्रेयसपदप्राप्तिश्रवणात्। तथा–जिनकल्प–मनःपर्ययविरहेऽपि न सिद्धिविरहोऽस्ति। तथा च यत्र यत्र वादादिलब्धिमत्त्वं तत्रैव विशिष्टसामर्थ्यमिति नियमो नास्ति, कथं तर्हि वादादिलब्धिरहितत्वेन विशिष्टसामर्थ्याभाव इति वक्तुं प्रभवसीति। अपि च–वादादिलब्ध्यभाववद् यदि निःश्रेयसाभावोऽपि स्त्रीणामभविष्यत् ततस्तथैव शास्त्रे प्रत्यपादयिष्यत्, न च प्रतिपाद्यते, तस्मादुपपद्यते स्त्रीणां निर्वाणमिति।

यदि कहा जाय कि वादादिलब्धिरहित होनेसे उनमें विशिष्ट शक्ति का अभाव है। स्त्रियोंमें वादलब्धिका सामर्थ्य, वैक्रिय आदि लब्धिका सामर्थ्य, पूर्वगत श्रुतावधिगमका सामर्थ्य नहीं होता है, इस लिये मोक्षगमन सामर्थ्य भी उनमें संभवित नहीं होता है। सो ऐसा कहना भी ठीक नहीं है। कारण कि वादादिलब्धिरहितके भी विशिष्ट सामर्थ्य देखा जाता है। शास्त्रोंमें ऐसी कई कथाएँ आती हैं जो इस बातको बतलाती हैं कि वादलब्धि विकुर्वणत्व आदि लब्धिके अभावमें भी, विशिष्ट पूर्वगत श्रुतके अभावमें भी मनुष्य आदिकों को मोक्षपदकी प्राप्ति हुई है। तथा जिनकल्प एवं मनःपर्ययके अभावमें भी सिद्धिका अभाव नहीं होता है। इसलिये इस पूर्वोक्त कथनसे यह बात सिद्ध हो जाती है कि ऐसा नियम नहीं बन

જો એમ કહેવામાં આવે કે વાદાદિલબ્ધિરહિત હોવાથી તેમનામાં વિશિષ્ટ શકિતનો અભાવ છે, સ્ત્રીઓમાં વાદલબ્ધિનું સામર્થ્ય, વૈક્રિય આદિ લબ્ધિનું સામર્થ્ય, અને પૂર્વગતશ્રુતાધિગમનું સામર્થ્ય હોતું નથી તેથી મોક્ષ-ગમનનું સામર્થ્ય તેમનામાં સંભવિત હોતું નથી, તો એમ કહેવું તે પણ બરાબર નથી. કારણ કે વાદાદિલબ્ધિરહિતમાં પણ વિશિષ્ટ સામર્થ્ય જોવામાં આવે છે. શાસ્ત્રોમાં એવી કેટલીએ કથાઓ આવે છે જે એ વાત દર્શાવે છે કે વાદલબ્ધિ, વિકુર્વણત્વ આદિ લબ્ધિના અભાવમાં અને વિશિષ્ટ પૂર્વગતશ્રુતના અભાવમાં પણ મનુષ્ય આદિને મોક્ષની પ્રાપ્તિ થઈ છે. તથા જિનકલ્પ અને મનઃપર્યવના અભાવમાં પણ સિદ્ધિનો અભાવ હોતો નથી, તેથી આ પૂર્વોકત કથનથી એ વાત સાબીત થઈ જાય છે કે એવો નિયમ થઈ શકતો નથી કે જ્યાં

यत्र यत्राल्पश्रुतत्वं, तत्र तत्र विशिष्टसामर्थ्याभाव इति नियमो नास्ति। समितिपञ्चकमात्रस्य गुप्तित्रयमात्रस्य च ज्ञानसद्भावेऽपि चारित्रप्रकर्षबलात् केवलोत्पत्तिर्भवत्येवेति प्रवचने प्रसिद्धम्। तथा चाल्पश्रुतत्वेऽपि विशिष्टसामर्थ्यं संभवतीति तदभावो नोपपद्यते॥

सकता है कि जहां २ वादलब्धिमत्ता है वहीं २ विशिष्ट सामर्थ्य है, अतः जब ऐसा नियम नहीं बन सकता है तो फिर ऐसा कहना कि वादादिलब्धियोंसे रहित होनेके कारण स्त्रियोंमें विशिष्ट सामर्थ्यका अभाव है, यह कैसे उचित माना जा सकता है।

फिर भी वादादिलब्धिके अभावकी तरह यदि मोक्षका अभाव भी स्त्रियोंमें होता तो शास्त्रकार सिद्धान्तमें ऐसा ही कहते कि स्त्रियोंको मुक्तिकी प्राप्ति नहीं होती है। परन्तु ऐसा तो वे शास्त्रकार कहते नहीं हैं, अतः इससे यही जानना चाहिये कि स्त्रियोंको निर्वाणकी प्राप्ति होती है।

तथा-जहां २ अल्पश्रुत ज्ञान है वहां२ विशिष्ट सामर्थ्यका अभाव है, ऐसा भी कोई नियम नहीं है। समितिपञ्चक मात्र तथा गुप्तित्रय मात्रके ज्ञानके सद्भावमें भी चारित्रके प्रकर्षके बलसे केवलज्ञानकी उत्पत्ति हो जाती है, ऐसा प्रवचनमें सिद्ध है। इसलिये अल्पश्रुतज्ञान होने पर भी विशिष्ट सामर्थ्य स्त्रियोंमें संभवित हो सकता है, अतः उस विशिष्ट सामर्थ्यका अभाव उनमें नहीं बनता है।

વાદાદિલબ્ધિમત્તા છે ત્યાં ત્યાં વિશિષ્ટ સામર્થ્ય છે. તેથી જો આવો નિયમ થઈ શકતો નથી તો પછી એવું કહેવું કે વાદાદિલબ્ધિયોથી રહિત હોવાને કારણે સ્ત્રીઓમાં વિશિષ્ટ સામર્થ્યનો અભાવ છે, એ કેવી રીતે ઉચિત માની શકાય?

વળી વાદાદિલબ્ધિના અભાવની જેમ જો સ્ત્રીઓમાં મોક્ષનો અભાવ પણ હોત તો શાસ્ત્રકાર સિદ્ધાન્તમાં એવું જ કહેત કે 'સ્ત્રીઓને મોક્ષ મળતો નથી.' પણ એવું તો તે શાસ્ત્રકારો કહેતાં નથી, તેથી એમ જ માનવું જોઇએ કે સ્ત્રીઓને મોક્ષની પ્રાપ્તિ થાય છે.

તથા જ્યાં જ્યાં અલ્પશ્રુત જ્ઞાન છે ત્યાં ત્યાં વિશિષ્ટ સામર્થ્યનો અભાવ છે, એવો પણ કોઇ નિયમ નથી પાંચ સમિતિ માત્ર તથા ત્રણ ગુપ્તિ માત્રના જ્ઞાનના સદ્‌ભાવમાં પણ ચારિત્રના પ્રકર્ષના બળથી કેવળજ્ઞાન પેદા થાય છે, એવું પ્રવચનમાં સિદ્ધ થયેલ છે. તેથી અલ્પશ્રુત જ્ઞાન હોવા છતા પણ સ્ત્રીઓમાં વિશિષ્ટ સામર્થ્ય સંભવિત હોઇ શકે છે, તેથી તે વિશિષ્ટ સામર્થ્યનો અભાવ તેમનામાં હોઈ શકે નહીં.

अनुपस्थाप्यता-पाराञ्चिकता-शून्यत्वेन स्त्रीणां विशिष्टसामर्थ्यासत्त्वमितिचेत्-तदप्ययुक्तम्-यतस्तन्निषेधात् विशिष्टसामर्थ्याभावो न निश्चेतुं शक्यते । कथम् ?, अधिकारिणां योग्यताऽपेक्षया शास्त्रे नानाप्रकारकप्रायश्चित्तोपदेशः श्रूयते । तत्र पुरुषा पेक्षयाऽपि योग्यतानुसारेण गुरुलघुप्रायश्चित्तोपदेशः कृतः । तत्र लघुप्रायश्चित्तवतां पुरुषाणामपि चारित्रप्रकर्षे केवलोत्पत्तिर्भवत्येव, गुरुप्रायश्चित्तवतामपि चारित्रप्रकर्षाभावे केवलोत्पत्तिर्न भवति । किञ्च-नानाविध तपसोविधानं शास्त्रे श्रूयते तच्च पुरुषाणामिव स्त्रीणामप्युपकारकं, तत्रोभयेषामधिकारात् प्रायश्चित्त विधानं तु योग्यताऽपेक्षया कथितम् ।

यदि कहो कि स्त्रियोंमें अनुपस्थाप्यता एवं पाराञ्चित प्रायश्चितकी शून्यता है इससे उनमें विशिष्ट सामर्थ्यका अभाव है सो यह भी कहना ठीक नहीं है, कारण कि इनके निषेध होनेसे भी विशिष्ट सामर्थ्यका अभाव-निश्चित नहीं हो सकता है, क्यों कि अधिकारियों को योग्यता की अपेक्षा से शास्त्रों में नाना प्रकार के प्रायश्चित्तों का उपदेश सुना जाता है। पुरुषों की अपेक्षा भी योग्यता के अनुसार गुरु एवं लघु प्रायश्चित्तों का वहां उपदेश हुआ है। जिन्हें लघु प्रायश्चित्त देने की बात कही गई है ऐसे पुरुषों को भी चारित्र के प्रकर्ष में केवलज्ञान की उत्पत्ति होती है। तथा जिन्हें गुरु प्रायश्चित्त का अधिकारी बतलाया गया है उनके भी यदि चारित्र का प्रकर्ष नहीं है तो केवलज्ञान की उत्पत्ति नहीं होती है।

तथा-अनेक प्रकार के तपों का विधान शास्त्र में सुना जाता है।

જો એમ કહો કે સ્ત્રીઓમાં અનુપસ્થાપ્યતા અને પારાંચિત પ્રાયશ્ચિત નો અભાવ છે તેથી તેમનામાં સામર્થ્યનો અભાવ છે, તો એમ કહેવું તે પણ બરાબર નથી. કારણ કે તેમનો નિષેધ હોવાથી પણ વિશિષ્ટ સામર્થ્યનો અભાવ નિશ્ચિત થઇ શકતો નથી, કારણ કે અધિકારીઓની યોગ્યતાની અપેક્ષાએ શાસ્ત્રોમાં વિવિધ પ્રકારના પ્રાયશ્ચિતોનો ઉપદેશ સાંભળવામાં આવે છે. પુરુષોની અપેક્ષાએ પણ યોગ્યતા પ્રમાણે મોટાં અને નાનાં પ્રાયશ્ચિત્તોનો તેમાં ઉપદેશ અપાયો છે. જેમને નાના પ્રાયશ્ચિત દેવાની વાત કહેલ છે એવાં પુરુષોને પણ ચારિત્રના પ્રકર્ષમાં કેવળજ્ઞાનની ઉત્પત્તિ થાય છે. તથા જેમને મોટાં પ્રાયશ્ચિત્તના અધિકારી બતાવ્યા છે તેમને પણ જો ચારિત્રનો પ્રકર્ષ હોતો નથી તો કેવળજ્ઞાન ઉત્પન્ન થતું નથી.

તથા-શાસ્ત્રોમાં અનેક પ્રકારનાં તપોનું વિધાન સાંભળવામાં આવે છે. તે

तथा च स्त्रीणां विशिष्टसामर्थ्याभावः गुरुतरप्रायश्चित्तानधिकारित्वादिति कथनं न युक्तमिति ॥ २ ॥॥ इति स्त्रीणांविशिष्टसामर्थ्याभावनिराकरणम् ॥

अथ पुरुषानभिवन्द्यत्वेन स्त्रियः पुरुषेभ्योऽपकृष्टा इति चेत्, तदप्ययुक्तम्-यतः-तत् पुरुषानभिवन्द्यत्वं किं सामान्येन किं वा गुणाधिकपुरुषापेक्षया विवक्षितम्?, यदि सामान्येन तदा सामान्यतः सर्वासु स्त्रीषु पुरुषानभिवन्द्यत्वं नास्तीत्यतोऽसिद्धत्वदोषप्रसङ्गः। तीर्थंकरस्य जननीं शक्रादयोऽपि प्रणमन्ति, अन्ये प्रणमन्तीति किं पुनर्वाच्यम्।

वह जिस प्रकार पुरुषों का उपकारक होता है उसी तरह स्त्रियों का भी उपकारक होता है, क्यों कि दोनों का वहां अधिकार है। रहा प्रायश्चित्त का विधान सो वह योग्यता की अपेक्षा रखता है। इसी अपेक्षा को लेकर उसका विधान हुआ है। अतः गुरुतर प्रायश्चित्त की अधिकारिणी नहीं होने से स्त्रियों में विशिष्ट सामर्थ्य का अभाव है, यह कहना युक्ति युक्त नहीं है।

यदि कहो कि पुरुषों से ये अनभिवंद्य हैं इसलिये ये उनसे अपकृष्ट हैं, सो ऐसा भी कथन उचित प्रतीत नहीं होता है। कारण कि यह अनभिवंद्यता किस रूप से आप कहते हैं-क्या सामान्य पुरुषों की अपेक्षा से या गुणाधिक पुरुषों की अपेक्षासे यदि कहो कि यह अनभिवंद्यता सामान्य पुरुषों की अपेक्षा से उनमें है सो ऐसा कहना उचित नहीं है, क्यों कि सामान्य पुरुष उन्हें वन्दन करते हैं। तीर्थंकर की माता को तो शक्रादिक भी नमस्कार करते हैं, फिर दूसरे व्यक्ति की तो बात ही क्या कहना।

જે રીતે પુરુષોને ઉપકારક થાય છે, એજ રીતે સ્રીઓને પણ ઉપકારક થાય છે, કારણ કે બન્નેનો ત્યાં અધિકાર છે. હવે રહ્યું પ્રાયશ્ચિતનું વિધાન તો તે યોગ્યતાની અપેક્ષા રાખે છે. એ અપેક્ષાને લઈને જ તેનું વિધાન થયુ છે. તેથી ગુરૂતર પ્રાયશ્ચિતની અધિકારિણી ન હોવાથી સ્રીઓમાં વિશિષ્ટ સામર્થ્યનો અભાવ છે, એમ કહેવું તે યુકિતયુકત નથી. જો એમ કહો કે પુરૂષો વડે તેઓ અનભિવંદ્ય છે તેથી તેઓ તેમનાં કરતાં હીન છે, તો એવું કથન પણ ઉચિત લાગતું નથી, કારણ કે આપ કયા રૂપે તેને અનભિવંદ્યતા કહો છો? શું સામાન્ય પુરૂષોની અપેક્ષાએ કે ગુણાધિક પુરુષોની અપેક્ષાએ? જો એમ કહેતા હો કે તે સામાન્ય પુરુષોની અપેક્ષાએ તે અનભિવંદ્યતા તેમનામાં છે તો એમ કહેવું તે યોગ્ય નથી, કારણ કે સામાન્ય પુરુષો તેમને વંદન કરે છે. તીર્થંકરની માતાને તો શકાદિક પણ નમસ્કાર કરે છે, તો બીજી વ્યક્તિઓની

यदि गुणाधिकपुरुषापेक्षया तदित्युच्यते-तदा तीर्थंकरा अपि गणधरान् नाभिवन्दन्ते इति गणधरा अपि पुरुषानभिवन्द्यतया मुक्त्यनर्हा भवेयुरिति। एवं गणधरा अपि स्वशिष्यान्नाभिवन्दन्ते, ततश्च तेषामपि न मोक्षः स्यात्, इति।

अथ स्मारणाद्यकर्तृत्वेन स्त्रियः पुरुषेभ्योऽपकृष्टा इति चेत्, तन्न युक्तम्-तथाहि-एवं सति गुरुशिष्ययोः सम्यग्दर्शनादिरत्नत्रये समानेऽप्याचार्यस्यैव मुक्तिः स्यान्न तु शिष्यस्य, तस्य स्मारणाद्यकर्तृत्वेन पुरुषेभ्योऽपकृष्टत्वात्। न चागमे शिष्यस्य मोक्षश्रवणं नास्तीति वाच्यम्, चण्डरुद्राद्याचार्यशिष्याणामागमे मोक्ष श्रवणात्।

यदि कहो कि गुणों से जो अधिक होते हैं वे स्त्रियों को नमन नहीं करते हैं, उनकी अपेक्षा वहां अनभिवंद्यता होने से वे उनकी अपेक्षा हीन मानी जाती हैं, सो ऐसा कहना भी ठीक नहीं है। गणधरों में भी गुणाधिक पुरुषों को अपेक्षा अनभिवंद्यता आजाने से मुक्ति की प्राप्ति का अभाव मानना पडेगा। इसी तरह गणधर भी अपने शिष्यों को नहीं वंदते हैं अतः उन शिष्यों को भी मोक्ष प्राप्ति नहीं होना मानना पड़ेगा।

यदि कहो कि स्मारणा आदि की अकर्त्ता होने से स्त्रियां पुरुषों की अपेक्षा हीन मानी गई हैं सो यह भी कोई युक्ति युक्त नहीं है, क्यों कि यदि इस तरह उनमें हीनता मानी जायगी तो गुरु को ही मुक्ति होगी, ऐसा मानने का प्रसंग आवेगा, शिष्यों को नहीं, कारण कि उनके सम्यग्दर्शनादिरत्नत्रय समान होने पर भी आचार्य ही उन्हें स्मारणा

તો વાત જ શી કરવી ? જો એવી દલીલ કરો કે જેઓ અધિક ગુણોવાળાં હોય છે તેઓ સ્ત્રીઓને નમન કરતા નથી, તેમની અપેક્ષાએ ત્યાં અનભિવંદ્યતા હોવાથી તેમને તે પુરુષો કરતાં હીન માનવામાં આવે છે, તો એમ કહેવું તે પણ ઉચિત નથી. કારણ કે એ રીતે તો તીર્થંકરો પણ ગણધરોને નમન કરતાં નથી ગણધરોમા પણ ગુણાધિક પુરુષોની અપેક્ષાએ અનભિવંદ્યતા આવી જવાથી મોક્ષ પામવાનો અભાવ માનવો પડે. એજ પ્રમાણે ગણધરો પણ પોતાના શિષ્યોને વંદન કરતાં નથી તો તે શિષ્યોને પણ મોક્ષપ્રાપ્તિ થઈ શકે નહીં એમ માનવું પડે. વળી જો એવી દલીલ કરો કે સ્મારણા આદિની અકર્તા હોવાથી સ્ત્રીઓ પુરૂષો કરતાં હીન માનવામાં આંવી છે, તો એ પણ કોઇ રીતે ઉચિત નથી, કારણ કે જો એ રીતે એમનામા હીનતા માની લઇએ તો ગુરૂને જ મોક્ષ પ્રાપ્ત થાય છે, એવું માનવું પડશે. શિષ્યોને નહીં, કારણ કે તેમના સમ્યગ્દર્શનાદિરત્નત્રય સમાન હોવા છતાં પણ આચાર્ય જ તેમને સ્મારણા આદિ

अमहर्द्धिकत्वेनापि स्त्रीणां पुरुषेभ्योऽपकृष्टत्वं न युज्यते, यद्येवं स्यात् तर्हि कथय तावत्, आध्यात्मिकीमृद्धिमाश्रित्य तदमहर्द्धिकत्व मन्यसे, किं वा बाह्याम् ?, आद्यपक्षस्तत्र निराकृत एव स्त्रीणां रत्नत्रयरूपाया आध्यात्मिक्याः ऋद्धेः समर्थितत्वात्। नापि बाह्यामृद्धिमाश्रित्यामहर्द्धिकत्वेन स्त्रीणां पुरुषेभ्योऽपकृष्टत्वान्मुक्ति कारणवैकल्यमिति वाच्यम्, या महती तीर्थकरादीनामृद्धिः सा गणधरादीनां नास्ति, चक्रधरादीनामपि या ऋद्धिः सा तदितरेषां क्षत्रियादीनां नास्तीत्येवं तेषामप्यमहर्द्धिकत्वेनापकृष्टत्वान्मुक्तिकारणवैकल्यप्रसङ्गात्।

आदि को कराते हैं, शिष्य उन्हें नहीं कराते हैं, परन्तु आगम में ऐसी बात तो सुनी नहीं जाती है कि गुरुओं को ही मुक्ति होती है, शिष्यों को नहीं होती है। चण्डरुद्र आदि आचार्य के शिष्यों को मुक्ति हुई सुनी गई है।

इसी तरह अहमर्द्धिक होनेसे भी स्त्रियां पुरुषोंसे हीन हैं, ऐसा कहना भी ठीक नहीं जचता, कारण कि आप किस ऋद्धिका अभाव उनमें बतलाते हैं? आध्यात्मिक ऋद्धिका या बाह्य ऋद्धिका ?। आध्यात्मिक ऋद्धिका तो उनमें अभाव है नहीं, क्यों कि रत्नत्रयरूप जो आध्यात्मिक ऋद्धि है वह उनमें समर्थित की ही जा चुकी है। इसी तरह बाह्य ऋद्धिको आश्रित करके जो यह कहा जाय कि बाह्य ऋद्धि उनमें नहीं है अतः वे अमहर्द्धिक होनेसे पुरुषोंकी अपेक्षा हीन हैं, और इसी लिये उनमें मुक्तिके कारण की विकलता है, सो ऐसा कहना भी ठीक नहीं है, कारण कि देखो जो बाह्यऋद्धि तीर्थंकरों को होती हैं वह गणधरों को नहीं होती है, इसी तरह चक्रधरों की जो ऋद्धि होती है वह

કરાવે છે, શિષ્યો તેમને કરાવતા નથી પણ આગમમાં એવી બાત સાંભળવામાં આવતી નથી કે ગુરુઓને જ મોક્ષ મળે છે, શિષ્યોને મળતો નથી. ચંડરૂદ્ર આદિ આચાર્યના શિષ્યોને મોક્ષ મળ્યાનું સાંભળવામાં આવ્યું છે.

એજ પ્રમાણે અમહર્દ્ધિક હોવાથી સ્ત્રીઓ પુરૂષોથી હીન છે એમ કહેવું તે પણ ઉચિત લાગતું નથી, કારણ કે આપ તેમનામાં કઇ ઋદ્ધિનો અભાવ બતાવો છો ? આધ્યાત્મિક ઋદ્ધિનો કે બાહ્ય-ઋદ્ધિનો ? આધ્યાત્મિક ઋદ્ધિનો તો તેમનામાં અભાવ નથી, કારણ કે રત્નત્રયરૂપ જે આધ્યાત્મિક ઋદ્ધિ છે તે તેમનામાં હોવાનું સિદ્ધ કરાઇ ગયું છે. એજ પ્રમાણે બાહ્યઋદ્ધિનો અધાર લઇને જો એમ કહેવામાં આવે કે બાહ્યઋદ્ધિ તેમનામાં નથી તેથી તેઓ અમહર્દ્ધિક હોવાથી પુરુષો કરતાં હીન છે, અને તેથી જ તેમનામાં મોક્ષના કારણની વિકલતા છે, તો એમ કહેવું તે પણ યોગ્ય નથી, કારણ કે જે બાહ્યઋદ્ધિ તીર્થંકરોને હોય છે તે ગણધરોને હોતી નથી, એજ પ્રમાણે ચક્રવર્તિઓને જે ઋદ્ધિ

अथ याऽसौ पुरुषवर्गस्य महती समृद्धिस्तीर्थकरत्वलक्षणा सा स्त्रीषु नास्तीत्यमहर्द्धिकमासां विवक्ष्यते, तदानीमप्यसिद्धता, स्त्रीणामपि परमपुण्यपात्रभूतानां कासांचित् तीर्थकरत्वाविरोधात् तद्विरोधसाधकप्रमाणस्य कस्याप्यभावात् ।

यदपि मायादिप्रकर्षवत्त्वेन पुरुषेभ्योऽपकृष्टत्वमित्युच्यते, तदप्यसत्–स्त्रियः पुरुषा अपि तुल्यत्वेन मायादि प्रकर्षवन्त इति लोके लक्ष्यते, आगमेऽपि श्रूयते–चरमशरीरिणामपि नारदादीनां मायादिप्रकर्षवत्त्वम्, अतो न स्त्रीणां पुरुषेभ्योऽपकृष्टत्वेन मुक्तिकारणावैकल्यरूपस्य हेतोरसिद्धत्वमिति ।

उनसे भिन्न अन्य क्षत्रियादिकों में नहीं होती है। इस लिये इनमें भी एक की अपेक्षा अमहर्द्धिकपना आनेसे अपकृष्टता आ जावेगी। इस तरह इनके भी मुक्तिकारणोंकी विकलता होनेका प्रसंग प्राप्त होगा।

यदि कहो कि पुरुषवर्ग की जो बड़ी भारी तीर्थकरत्वरूप महाऋद्धि है वह उनमें नहीं है, इस अपेक्षा उनमें अमहर्द्धिकता पाई जाती है, सो ऐसा कहना भी ठीक नहीं है, कारण कि कितनीक परम पुण्य की भाजन स्त्रियों को तो तीर्थंकरविभूति की भी प्राप्ति हुई है। इसकी प्राप्ति होने में वहां कोई बिरोध नहीं आता है, कारण उसके विरोध के साधक कोई भी प्रमाण नहीं है।

तथा जो ऐसा तुम कहते हो कि स्त्रियों में मायादिक की प्रकर्षता है अतः इस प्रकर्षता वाली होने से वे पुरुषों की अपेक्षा हीन हैं, सो ऐसा कहना भी ठीक नहीं है, कारण कि इस लोक में स्त्री और पुरुष

હોય છે તે તેનાથી જુદા જ પ્રકારના બીજાં ક્ષત્રિયાદિકોમાં હોતી નથી, તેથી તેઓમાં પણ એકના કરતાં અમહર્દ્ધિકપણું આવવાથી અપકૃષ્ટતા આવી જાય. આ રીતે તેમને પણ મોક્ષપ્રાપ્તિના કારણોની વિકલતા હોવાનો પ્રસંગ મળશે.

જો એવી દલીલ કરો કે પુરૂષવર્ગની જે ઘણી જ ભારે તીર્થંકરત્વરૂપ મહાઋદ્ધિ છે તે તેઓમાં નથી, આ અપેક્ષાએ તેમનામાં અમહર્દ્ધિકતા ગણાય છે. તે એમ કહેવું તે પણ ઉચિત નથી, કારણ કે કેટલીક મહાપુણ્યશાળી સ્ત્રીઓને તો તીર્થંકરવિભૂતિની પણ પ્રાપ્તિ થઈ છે. તેની પ્રાપ્તિ થવામાં ત્યાં કોઈ વિરોધ નડતો નથી, કારણ કે તેના વિરોધને સિદ્ધ કરનાર કોઈ પણ પ્રમાણ નથી.

તથા તમે એવી જે દલીલ કરો છો કે સ્ત્રીઓમાં માયાદિકની પ્રકર્ષતા છે તેથી એ પ્રકર્ષતાવાળી હોવાને કારણે તેઓ પુરૂષો કરતાં હીન છે, તો એમ કહેવું તે પણ ઉચિત નથી, કારણ કે આ લોકમાં સ્ત્રી અને પુરૂષ બન્ને સમાન-

ननु स्त्रीणां मुक्तिस्थानादिप्रसिद्धिर्नास्ति, अतः स्त्रीणां मुक्तिर्नभवतीति। यदि स्त्रीणां मुक्तिकारणावैकल्यमभविष्यत् तदा मुक्तिरप्युदपत्स्यत, तथा च-मुक्ति स्थानादिप्रसिद्धिरपि स्यात्, इति यदुक्तं, तन्न, यत्र यत्र मुक्तिस्थानादिप्रसिद्धि-स्तत्रैव मुक्तिरितिचेत्तर्हि पुरुषाणामपि मुक्तिस्थानाद्यप्रसिद्धिः, 'इदं पुरुषाणामेव मोक्षस्थानम्', इति विशेष्य नोक्तं, किं तु 'भव्या मोक्षार्हा' इति प्रतिपादितम्, ततश्च त्वन्मते पुरुषाणामपि मोक्षो न स्यादिति।

दोनों ही समानरूप से मायादिक के प्रकर्षवाले देखे जाते हैं। आगम भी ऐसा ही कहता है कि चरमशरीरी नारदादिकों के भी मायादिक प्रकर्षता है। इसलिये पुरुषों से अपकृष्ट होने से स्त्रियों के मुक्ति के कारणों की विकलता नहीं सधती है, अर्थात् मुक्ति के कारणों का स्त्रियों में सद्भाव है।

यदि कहो कि स्त्रियों के मुक्तिस्थान आदि की प्रसिद्धि नहीं है इसलिये उसके अभाव से यही मालूम होता है कि उन्हें मोक्ष नहीं मिलता है। यदि स्त्रियों में मुक्ति के कारणों की अविकलता होती तो उन्हें मुक्ति भी होती, और इस कारण से उनके मुक्ति के स्थानों की भी प्रसिद्धि होती, अतः यह कुछ नहीं है, इससे साफ स्पष्ट मालूम होता है कि इन्हें मुक्ति प्राप्त नहीं होती है। सो ऐसा कहना भी ठीक नहीं है, कारण कि ऐसी कोई यह व्याप्ति तो है नहीं कि जिन२ के मुक्तिस्थानों की प्रसिद्धि है उन्हें ही मुक्ति प्राप्त हुई हो। ऐसा तो शास्त्रों में विशेष-रूप से कहा नहीं है कि यह पुरुषों का मोक्ष स्थान है, किन्तु ऐसा ही

રૂપે માયાના પ્રકર્ષવાળા દેખાય છે. આગમ પણ એવું જ કહે છે કે ચરમશરીર નારદાદિકોમાં પણ મયાદિકની પ્રકર્ષતા હોય છે. તેથી પુરૂષો કરતાં હીન હોવાથી સ્રીઓના મોક્ષના કારણોની વિકલતા સિદ્ધ થતી નથી. એટલે કે મોક્ષનાં કારણોનો સ્રીઓમાં સદ્ભાવ છે.

વળી તમે એવી દલીલ કરો કે મુક્તિસ્થાન આદિની પ્રસિદ્ધિ નહીં હોવાથી તેના અભાવે એજ જાણવા મળે છે કે તેમને મોક્ષ મળતો નથી. જો સ્રીઓમાં મોક્ષનાં કારણોની અવિકલતા હોત તો તેમને મોક્ષ પણ હોઈ શકત, અને એ કારણથી તેમનાં મુક્તિનાં સ્થાનોની પણ પ્રસિદ્ધિ થાત; એવું કંઈ પણ ન હોવાથી સ્પષ્ટ સમજાય છે કે તેમને મોક્ષ મળતો નથી. તો એમ કહેવું તે પણ ઉચિત નથી, કારણ કે એવી કોઈ આ વ્યાપ્તિ તો છે નહીં કે જેમના જેમના મુક્તિસ્થાનોની પ્રસિદ્ધિ છે તેમને જ મોક્ષ મળ્યો હોય છે? એવું તો શાસ્રોમાં વિશેષરૂપે કહેલ નથી કે આ પુરૂષોનું મોક્ષ સ્થાન છે પણ એવું જ

अथ स्त्रीविषये मुक्तिसाधकप्रमाणाभावेन मुक्तिकारणावैकल्यरूपस्य हेतोरसिद्धत्वमिति चेत्, तर्हि तावत् ब्रूहि–मुक्तिसाधकप्रमाणाभाव इत्यत्र कस्य प्रमाणस्याभावस्त्वया विवक्षितः ?, किं प्रत्यक्षस्य, किं वाऽनुमानस्य, किं वा–आगमस्येति ?।

तत्र यदि प्रत्यक्षस्याभाव इति मन्यसे, तर्हि वद, किं स्वसम्बन्धिनः, किं वा सर्वसम्बन्धिनः ? यदि स्वसम्बन्धिनस्तदा किं बाह्यं यथाविहितप्रतिलेखनादिरूपं कारणावैकल्यं तद्विषयस्य ?, किं वाऽऽन्तरं चारित्रादिपरिणामरूपं तद्विषयस्येति ?।

कहा है कि भव्य ही मोक्ष के योग्य होते हैं, अतः मुक्तिस्थान आदि की अप्रसिद्धि से जो स्त्रियों को मोक्ष न माना जावे तो तुम्हारे मत से पुरुषों को भी मोक्ष नहीं होना चाहिये।

अब यदि कहो कि स्त्री के विषय में मुक्तिसाधक प्रमाण का अभाव होने से मुक्तिकारणाऽवैकल्यरूप हेतु की असिद्धि है, सो हम तुमसे यही पूछते हैं कि कहो कौन से प्रमाण का अभाव आप को विवक्षित है ? क्या प्रत्यक्ष का किं वा अनुमान का अथवा आगम का ?।

यदि कहो कि प्रत्यक्ष का अभाव है सो इस पर पुनः यह पूछा जाता है कि स्वसंबंधी प्रत्यक्ष का अभाव है अथवा सर्वसंबंधी प्रत्यक्ष का अभाव है ?। यदि कहो कि स्वसंबंधी प्रत्यक्ष का अभाव है, तो इस पर भी यह प्रश्न होता है कि यथाविहित प्रतिलेखनादिरूप बाह्य कारणकी अविकलताको देखनेवाले प्रत्यक्षका अभाव है ? अथवा अंतरचरित्र आदि परिणामरूप कारणकी अविकलताको देखनेवाले प्रत्यक्ष का अभाव है ?।

કહેલ છે કે ભવ્ય જ મોક્ષને માટે યોગ્ય હોય છે. તેથી મુક્તિસ્થાન આદિની અપ્રસિદ્ધિથી જો સ્ત્રીઓને મોક્ષ માનવામાં ન આવે તો તમારા મત પ્રમાણે તો પુરૂષોને પણ મોક્ષ મળવો ન જોઈએ.

હવે જો તમે એમ કહેતા હો કે સ્ત્રીઓની બાબતમાં મુક્તિસાધક પ્રમાણનો અભાવ હોવાથી मुक्तिकारणाऽवैकल्यरूप હેતુની અસિદ્ધિ છે, તો અમારો આપને એ પ્રશ્ન છે કે કયાં પ્રમાણોનો અભાવ આપને વિવક્ષિત છે ? શું પ્રત્યક્ષનો કે અનુમાનનો કે આગમનો ?

જો તમે પ્રત્યક્ષનો અભાવ કહેતા હો તો એ બાબતમાં અમારે વળી એ પૂછવાનું છે કે સ્વસંબંધી પ્રત્યક્ષનો અભાવ છે અથવા સર્વસંબંધી પ્રત્યક્ષનો અભાવ છે, ? જો આપ એમ કહેતા હો કે સ્વસંબંધી પ્રત્યક્ષનો અભાવ છે, તો એ વિષે પણ અમારો એ પ્રશ્ન છે કે યથવિહિત પ્રતિલેખનાદિરૂપ બાહ્ય કારણની અવિકલતાને દેખનાર પ્રત્યક્ષનો અભાવ છે ? અથવા અંતર ચરિત્ર આદિ પરિણામરૂપ કારણની અવિકલતા દેખનાર પ્રત્યક્ષનો અભાવ છે ?

आद्यपक्षस्तव संमतश्चेत्, नासौ युक्तः, स्त्रीष्वपि यथोक्तप्रतिलेखनादेः सर्वथा दर्शनात्। यदि द्वितीयः पक्षस्तदा छद्मस्थाःपुरुषेष्वपिचारित्रादिपरिणामं प्रत्यक्षतया न पश्यन्तीति त्वन्मते पुरुषस्यापि मोक्षो न स्यात्।

अथ सर्वसम्बन्धिनः प्रत्यक्षस्याभाव इति त्वत्संमतश्चेत्, सोऽप्यसंगत एव। तथाहि—असर्वज्ञजनेन सकलजनसम्बन्धि प्रत्यक्षात्मकं ज्ञानं क्वचिदपि भवितुमशक्यम्, तथा सति पुरुषस्यापि मोक्षो न स्यादिति।

अथानुमानस्याभावात् प्रमाणाभाव इत्युच्यते, तर्हि अनुमानाभावस्य पुरुषेष्वपि तुल्यत्वेन मुक्तिकारणवैकल्यप्रसङ्गः स्यात्।

यदि इसमें प्रथमपक्ष स्वीकार किया जाय तो यह युक्त नहीं है, क्यों कि स्त्रियों में भी यथोक्त प्रतिलेखनादि सर्वथा देखे जाते हैं—वे भी प्रतिलेखनादिक करती हैं। यदि द्वितीय पक्ष माना जाय तो छद्मस्थ प्राणी पुरुषों में भी चारित्रादि परिणाम को प्रत्यक्षरूप से नहीं देख सकते हैं, अतः तुम्हारे मतमें पुरुषों को भी मुक्ति नहीं होनी चाहिये।

यदि कहो कि सर्वसंबंधी प्रत्यक्ष का अभाव है सो ऐसा कहना भी ठीक नहीं है, कारण कि असर्वज्ञ को ऐसा ज्ञान ही नहीं हो सकता है कि सर्वसंबंधी प्रत्यक्ष का अभाव है। ऐसा होने पर पुरुष को भी मोक्ष नहीं हो सकता है।

यदि कहो कि अनुमान का अभाव होने से प्रमाण का अभाव है सो अनुमान का अभाव पुरुषों में भी तुल्य है, इसलिये वहां भी मुक्ति कारणवैकल्य का प्रसंग प्राप्त होगा।

જો તેમાં પહેલો પક્ષ સ્વીકારવામાં આવે તો તે ઉચિત નથી, કારણ કે સ્ત્રીઓમાં પણ યથોક્ત પ્રતિલેખનાદિ સર્વથા જોવામાં આવે છે-તેઓ પણ પ્રતિલેખનાદિક કરે છે. જો બીજો પક્ષ માનવામાં આવે તો છદ્મસ્થપ્રાણી પુરુષોમાં પણ ચારિત્રાદિ પરિણામને પ્રત્યક્ષરૂપે જોઈ શકતા નથી, તેથી તમારા મત પ્રમાણે પુરુષોને પણ મુકિત ન મળવી જોઈએ

જો એમ કહો કે સર્વસંબંધી પ્રત્યક્ષનો અભાવ છે તો એમ કહેવું તે પણ યોગ્ય નથી, કારણ કે અસર્વજ્ઞને એવું જ્ઞાન જ હોઇ શકતું નથી કે સર્વસંબંધી પ્રત્યક્ષનો અભાવ છે. એવું હોય તો પુરુષોને પણ મોક્ષ મળી શકે નહીં.

જો એમ કહો કે અનુમાનનો અભાવ હોવાથી પ્રમાણનો અભાવ છે તો અનુમાનનો અભાવ પુરુષોમાં પણ તુલ્ય છે. તેથી ત્યાં પણ મુકિતકારણવૈકલ્યનો પ્રસંગ ઉત્પન્ન થશે.

अथ पुरुषेष्वेवानुमानप्रमाणमस्ति, तथाहि-यदुत्कर्षापकर्षाभ्यां यस्यापकर्षोत्कर्षौ, तस्यात्यन्तापकर्षे तदत्यन्तोत्कर्षवद् दृष्टम्, यथाऽभ्रपटलापगमे सूर्यप्रकाशः। एवं रागाद्युत्कर्षापकर्षाभ्यामपकर्षोत्कर्षवच्च चारित्रादिकं भवति । रागादेरत्यन्तापकर्षः स्त्रीषु न भवतीत्यतस्तत्र नास्ति चारित्रोत्कर्ष इति चेत्, तदसत्-पुरुषेष्वेव रागादेरत्यन्तापकर्षो भवति, न तु स्त्रीषु, इति नियमो नास्ति, प्रत्यक्षविरोधात्, दृश्यते हि स्त्रीष्वपि रागादेरत्यन्तापकर्षः।

नाप्यागमप्रमाणस्याभाव इति वाच्यं, तस्येह 'इत्थीपुरिससिद्धाय' इत्यादिना प्रस्तुतस्यापि साक्षात् स्त्रीमोक्षाभिधायकत्वेनार्थतस्तत्कारणाऽवैकल्यसाधकत्वात्।

यदि कहो कि पुरुषों में तो अनुमान प्रमाण है और वह इस प्रकार है-जिसके उत्कर्ष एवं अपकर्ष में जिसका अपकर्ष और उत्कर्ष देखा जाता है वह उसके अत्यंन अपकर्ष में अत्यन्त उत्कर्ष वाला होता है। जैसे-अभ्रपटल के अपगम होने पर सूर्य प्रकाश का उत्कर्ष होता देखा जाता है। इसी तरह रागादिकों के उत्कर्ष में चारित्रादिकों का अपकर्ष और उनके अपकर्ष में उनका उत्कर्ष होता है। अतः इस अनुमान से पुरुषों में ही रागादिकों के अपकर्षसे चारित्र आदि गुणोंका उत्कर्ष साबित होता है; स्त्रियोंमें नहीं, क्यों कि उनमें रागादिकोंका अत्यंत अपकर्ष संभवित नहीं होताहै, सो ऐसा कहना भी ठीकनहीं, कारण कि ऐसा कोई नियम नहीं है जो पुरुषों में ही रागादिकका अत्यन्त अपकर्ष हो, तथा स्त्रियोंमें न हो, क्यों कि ऐसा मानना प्रत्यक्षसे बाधित होता है। प्रत्यक्ष प्रमाण इस बातका समर्थक है कि रागादिकोंका अत्यन्त अपकर्ष स्त्रियोंमें भी होता है, इस

જો એમ કહો કે પુરુષોમાં તો અનુમાન પ્રમાણ છે અને તે આ પ્રકારે છે-જેના ઉત્કર્ષ અને અપકર્ષમા જેનો અપકર્ષ અને ઉત્કર્ષ જોવામાં આવે છે તે તેના અત્યંત અપકર્ષમાં અત્યંત ઉત્કર્ષવાળું હોય છે. જેમ-અભ્રપટલનો અપગમ થતાં સૂર્યપ્રકાશનો ઉત્કર્ષ થતો નજરે પડે છે. એજ પ્રમાણે રાગાદિકોના ઉત્કર્ષમાં ચારિત્રાદિકોનો અપકર્ષ અને તેમના અપકર્ષમાં તેમનો (ચારિત્રાદિનો) ઉત્કર્ષ થાય છે, તેથી આ અનુમાનથી પુરુષોમાં જ રાગાદિકોના અપકર્ષથી ચારિત્ર આદિ ગુણોના ઉત્કર્ષ સાબિત થાય છે, સ્ત્રીઓમાં નહી, કારણ કે તેઓમાં રાગાદિકોનો અત્યંત અપકર્ષ સંભવિત હોતો નથી, તો એમ કહેવું તે પણ ઉચિત નથી, કારણ કે એવો કોઈ નિયમ નથી કે પુરુષોમાં જ રાગાદિકનો અત્યંત અપકર્ષ હોય, તથા સ્ત્રીઓમાં ન હોય કારણ કે એમ માનવું તે પ્રત્યક્ષથી બાધિત થાય છે. પ્રત્યક્ષ પ્રમાણ એ વાતનુ સમર્થક છે કે રાગાદિકોનો અત્યંત અપકર્ષ સ્ત્રીઓમાં પણ હોય છે, એમાં આગમના પ્રમાણનો અભાવ પણ નથી,

न चेह स्त्रीशब्दस्यान्यार्थकत्वं परिकल्पनीयम्, तद्धि लोकरूढितः, आगमपरिभाषातो वा भवेत्। तत्र लोकरूढितस्तावदन्यार्थकत्वं न संभवति, लोके हि यस्मिन्नर्थे यः शब्दोऽन्वयव्यतिरेकाभ्यां वाचकत्वेन दृश्यते, स तस्यार्थः, यथा गवादिशब्दानां सास्नादिविशिष्टादयः, स्त्रीशब्दस्य लोकप्रसिद्धमर्थमन्तरेणान्यस्य न वाच्यत्वेन लोके शास्त्रे वा प्रतीतिरस्ति।

में आगम प्रमाणका भी अभाव नहीं है, देखो-"इत्थीपुरिससिद्धाय" यह वाक्य स्वयं आगम प्रमाण है। इससे साक्षात् स्त्रीके मोक्षकी सिद्धि होती है, क्यों कि यह वाक्य स्त्रियोंमें अर्थतः मोक्षके कारणोंकी अविकलताको सिद्ध करता है।

यदि कहो कि यहां "स्त्री" शब्द अन्यार्थक है सो ऐसा भी कथन ठीक नहीं है, कारण कि यह 'स्त्री शब्द अन्यार्थक है' यह बात आप क्या लोकरूढिसे या आगमकी परिभाषासे कहते हो? किससे कहते हो? सो कहो, यदि लोकरूढिसे कहते हो सो यह मान्यता आपकी ठीक नहीं है, कारण कि लोकमें तो यही माना जाता है कि जिस अर्थ में जो शब्द अन्वय-व्यतिरेक संबंधद्वारा संकेतित होता है वह शब्द उसी अर्थ को कहता है, भिन्न अर्थको नहीं। "स्त्री" यह शब्द अन्वय-व्यतिरेक द्वारा स्त्रीरूप साध्य अर्थमें ही प्रयुक्त किया गया मिलता है, अतः स्त्रीरूप पदार्थ ही इस स्त्री-शब्दका वाच्य है। जैसे गो आदि शब्दोंका वाच्य सास्ना (गलकंबल) आदिसे विशिष्ट पदार्थ होता है। इस स्त्री

જુઓ—"इत्थीपुरिससिद्धा य" આ વાકય પોતે જ આગમપ્રમાણ છે, તેથી સાક્ષાત્ સ્ત્રીના મોક્ષની સિદ્ધિ થાય છે કારણ કે આ વાકય સ્ત્રીઓમાં અર્થતઃ મોક્ષનાં કારણોની અવિકલતાને સિદ્ધ કરે છે.

જો આપ એમ કહેતા હો કે અહીં "स्त्री" શબ્દ અન્યાર્થક છે તો એવું કથન પણ બરાબર નથી કારણ કે આ "સ્ત્રી શબ્દ અન્યાર્થક છે" એ વાત આપ શું લોકરૂઢીથી કે આગમની પરિભાષાથી કહો છો? શાથી કહો છો તે બતાવો. જો લોકરૂઢીથી કહેતા હો તો આપની એ માન્યતા બરાબર નથી, કારણ કે લોકોમાં તો એજ મનાય છે કે જે અર્થમાં જે શબ્દ અન્વયવ્યતિરેક સંબંધદ્વારા સંકેતિત હોય છે, તે શબ્દ એજ અર્થ દર્શાવે છે, જુદો નહીં "स्त्री" આ શબ્દ અન્વયવ્યતિરેકદ્વારા સ્ત્રીરૂપ સાધ્ય અર્થમાં જ વપરાયેલ મળે છે, તેથી સ્ત્રીરૂપ પદાર્થ જ આ "સ્ત્રી" શબ્દનો વાચ્ય છે. જેમ "गो" આદિ શબ્દોનો વાચ્ય સાસ્ના (ગલકંબલ) આદિથી વિશિષ્ટ પદાર્થ છે. આ

नाप्यागामपरिभाषातोऽन्यार्थत्वं स्त्री-शब्दस्य संभवति, क्वचिदप्यागमे हि स्त्रीशब्दस्य परिभाषितोऽर्थो नास्तीति। यथा-व्याकरणे "वृद्धिरादैच्" । १, १, १।" इति वृद्धि-शब्दस्यादैचौ। दृश्यते चागमेऽपि लोकरूढ एवार्थे स्त्रीशब्दः प्रयुक्तः। 'इत्थीओ जंति छट्ठिं' इत्यादौ।

न च तत्राप्यर्थान्तरकल्पना कर्तुं शक्येति वाच्यम्, बाधकं विना तदनुपपत्तेः। उक्तञ्च—परिभाषितो न शास्त्रे, मनुजी-शब्दोऽथ लौकिकोऽधिगतः।
अस्ति च न तत्र बाधा, स्त्री-निर्वाणं ततो न कुतः॥ १॥

शब्दका लोक प्रसिद्ध अर्थके सिवाय अन्य अर्थ है, यह बात न तो लोक में प्रसिद्ध है और न आगममें प्रसिद्ध है।

इसी तरह आगमकी परिभाषासे 'स्त्री शब्द अन्य अर्थका वाचक है' ऐसा कहना ठीक नहीं है, कारण कि किसी भी आगममें कहीं पर भी स्त्री शब्दका अन्य अर्थ कथित नहीं हुआ है। जिस प्रकार व्याकरणमें वृद्धि शब्दका अर्थ 'आत् ऐच्' (आ ए औ) होता है। इसी प्रकार आगममें भी लोकरूढ ही अर्थ में स्त्री-शब्द प्रयुक्त हुआ हैं। जैसे— "इत्थीओ जंति छट्ठिं' इत्यादिकी तरह।

यदि कहो कि हम यहां भी अन्य अर्थकी कल्पना कर लेंगे, सो ऐसा कहना भी उचित नहीं है, कारण कि यह बात बाधकके विना नहीं बन सकती है। कहा भी है—

"परिभाषितो न शास्त्रे, मनुजी-शब्दोऽथ लौकिकोऽधिगतः।
अस्ति च तत्र न बाधा, स्त्री-निर्वाणं ततो न कुतः" ॥ १॥

"સ્ત્રી" શબ્દનો લોકપ્રસિદ્ધ અર્થના સિવાય બીજો અર્થ છે, એ વાત લોકમાં પ્રસિદ્ધ નથી, અને આગમમાં પણ પ્રસિદ્ધ નથી.

આ રીતે આગમની પરિભાષાથી "સ્ત્રી શબ્દ અન્ય અર્થ દર્શાવનાર છે" એમ કહેવું તે ઉચિત નથી; કારણ કે કોઈ પણ આગમમાં ક્યાંય પણ સ્ત્રી શબ્દનો બીજો અર્થ કહેલ નથી. જે પ્રકારે વ્યાકરણમા વૃદ્ધિ શબ્દનો અર્થ आत् ऐच् (आ ऐ औ) થાય છે, એજ પ્રકારે આગમમા પણ લોકરૂઢ અર્થમાં જ સ્ત્રી શબ્દ વપરાયો છે. જેમકે-"इत्थीओ जंति छट्ठिं" ઈત્યાદિની જેમ.

જો આપ એમ કહો કે અમે અહીં પણ અન્ય અર્થની કલ્પના કરી લેશું, તો એમ કહેવું તે પણ ઉચિત નથી, કારણ કે આ વાત કોઈ પણ મુશ્કેલી વિના નિશ્ચિત થઈ શકે છે કહ્યું પણ છે-

"परिभाषितो न शात्रे,-मनुजी-शब्दोऽथ लौकिकोऽधिगतः।
अस्ति च तत्र न बाधा, स्त्रीनिर्वाणं ततो न कुतः" ॥१॥

ननु पुरुषाभिलाषात्मनि वेदाख्ये भावे स्त्रीशब्द आगमे प्रयुक्तो दृश्यते, इति शास्त्रेऽर्थान्तरदर्शनादन्योऽर्थस्तत्र कल्पनीयः इति चेत्, शृणु, पुरुषाभिलापरूपो वेदः स्त्री-शब्दस्यार्थ इति त्वया कथं निश्चितम्? किं 'स्त्रीवेदः' इति शब्दश्रवणमात्रादेव सोऽर्थो निश्चितः? किं वा-स्त्रीत्वस्य पल्यशतपृथक्त्वावस्थानाभिधानात्?।

तात्पर्य यह कि-मनुजी-शब्द अर्थात् स्त्री-शब्द पारिभाषिक नहीं है, अतः व्याकरणमें वृद्धि शब्दके समान स्त्री-शब्दका कोई आगम-परिभाषित अर्थ नहीं हो सकता। रहा लोकरूढिपक्ष! उसमें भी स्त्री शब्दका लोकप्रसिद्ध 'स्त्री' अर्थसे भिन्न अर्थ नहीं हो सकता। क्यों कि ऐसा अर्थ उसी स्थलमें होता है जहां कि मुख्य अर्थ बाधित होता हो। जैसे-'गङ्गायां घोषः' यहां पर गङ्गाके मुख्य अर्थ प्रवाहमें घोषकी स्थिति असंभव है, इसी लिये वहां पर 'गङ्गा' शब्दका अर्थ लक्षणासे तीर होता है। उसी प्रकार यहां पर स्त्री-शब्दके मुख्यार्थ में कोई बाधा नही है, इस लिये मुख्यार्थको छोड़ कर गौण अर्थ नहीं लिया जा सकता, तब स्त्रियोंको मोक्ष प्राप्तिमें बाधा क्या? उन्हें मोक्ष क्यों नहीं मिलेगा? वस्तुतः वे भी मोक्षके अधिकारवाली हैं।

यदि कहो कि पुरुषाभिलाषात्मक भाववेदमें स्त्री शब्द आगममें प्रयुक्त हुआ है अतः स्त्री-शब्दका यह भाववेदरूप स्त्री-अर्थ हम मान लेंगे, सो ऐसा कहना भी ठीक नहीं है, कारण कि 'स्त्री-शब्दका पुरु-

તાત્પર્ય એ કે મનુજી શબ્દ એટલે કે સ્ત્રી-શબ્દ પારિભાષિક નથી તેથી વ્યાકરણમાં 'વૃદ્ધિ' શબ્દના જેવો 'સ્ત્રી' શબ્દનો કોઈ આગમપરિભાષિત અર્થ હોઈ શકે નહીં. હવે રહ્યો લોકરૂઢ પક્ષ! તેમાં પણ 'સ્ત્રી' શબ્દનો લોકપ્રસિદ્ધ "સ્ત્રી" અર્થથી ભિન્ન અર્થ હોઈ શકે નહીં. કારણ કે એવો અર્થ એજ સ્થળે થાય છે કે જ્યાં મુખ્ય અર્થ બાધિત થતો હોય. જેમકે-"गंगायां घोष" અહીં ગંગાનો મુખ્ય અર્થ પ્રવાહમાં ઘોષની સ્થિતિ અસંભવિત છે, તેથી તે સ્થાને "ગંગા" શબ્દનો અર્થ લક્ષણાથી 'તીર' થાય છે. એ પ્રકારે અહીં સ્ત્રી શબ્દના મુખ્યાર્થમાં કોઈ બાધા નથી; તેથી મુખ્યાર્થને જતો કરીને ગૌણ અર્થ લઈ શકાય નહીં. તો સ્ત્રીઓને મોક્ષ પ્રાપ્તિમાં મુશ્કેલી શી? તેમને શા માટે મોક્ષ ન મળે? ખરી રીતે તો તેઓ પણ મોક્ષની અધિકારી છે.

જો આપ એમ કહો કે પુરુષાભિલાષાત્મક ભાવવેદમાં સ્ત્રી-શબ્દ આગમમાં વપરાયો છે તેથી સ્ત્રી-શબ્દનો આ ભાવવેદરૂપ સ્ત્રી-અર્થ અમે માની લઈશું તો એમ કહેવું તે પણ યોગ્ય નથી, કારણ કે "સ્ત્રી-શબ્દનો પુરુષાભિલાપરૂપ

न तावत् 'स्त्रीवेदः' इति शब्दश्रवणमात्रात् सोऽर्थो निश्चेतुं शक्यते, यद्यत्र स्त्री चासौ वेदश्च स्त्रीवेद इति समानाधिकरणसमासो भवेत् तदा स्त्रीशब्दस्यार्थान्तरे वृत्तिर्भवेत्। स च समानाधिकरणसमासः किं बाधकाभावेन कल्पनीयः? किं वा समासान्तराऽसंभवेन?।

न तावद् बाधकाभावेन समानाधिकरणसमासः कल्पनीय इति वक्तुं युक्तम्, तत्र हि स्त्रीशब्दस्य पुरुषाभिलापात्मको भाव एवार्थो भवेत्, तत् किं स एव साक्षादर्थः?, किं वा तदुपलक्षितं शरीरम्?।

षाभिलाषरूप भाववेद' यह अर्थ है, यह बात आप कैसे निश्चित करते हैं? क्या 'स्त्रीवेद' इस शब्दके श्रवणमात्रसे ही, अथवा स्त्रीत्वके पल्यशतपृथक्त्वपर्यन्त अवस्थाके अभिधानसे?।

यदि प्रथमपक्ष अंगीकार करो सो ठीक नहीं है, कारण कि "स्त्रीवेद" इस शब्दके श्रवणमात्रसे भाववेदरूप स्त्री-अर्थ निश्चित नहीं होता है। हां यदि "स्त्री चासौ वेदः-स्त्रीवेदः" ऐसा समानाधिकरण समास होता तो स्त्री-शब्दकी अन्य अर्थमें वृत्ति हो सकती। यहां ऐसा समानाधिकरण समास बाधकाभावसे कल्पनीय हुआ है या अन्य समासके यहां अभावसे हुआ है। यदि कहो कि बाधकके अभावसे समानाधिकरण समास कल्पनीय हुआ है सो इस समासमें स्त्री शब्दका अर्थ पुरुषाभिलाषरूप भाववेद ही होगा सो यही अर्थ क्या इसका साक्षात् अर्थ होगा या इससे उपलक्षित 'शरीर' उसका अर्थ होगा। यदि कहो कि पुरुषा

ભાવવેદ" એ અર્થ છે, એ વાત આપ કેવી રીતે નક્કી કરો છો? શું "સ્રીવેદ" આ શબ્દના શ્રવણમાત્રથી જ અથવા સ્રીત્વના પલ્યશતપૃથક્ત્વપર્યન્ત અવસ્થાનના અભિધાનથી?

જો પહેલો પક્ષ સ્વીકારો તો તે ઉચિત નથી, કારણ કે "સ્રીવેદ" આ શબ્દના શ્રવણમાત્રથી ભાવવેદરૂપ 'સ્રી' અર્થ નક્કી થતો નથી. હા, જો "स्त्री चासौ वेदः-स्त्रीवेदः" એવો સમાનાધિકરણ સમાસ હોત તો સ્રી-શબ્દની બીજા અર્થમાં વૃત્તિ હોઇ શકત. અહીં એવો સમાનાધિકરણ સમાસ બાધકના અભાવથી કલ્પનીય થયો છે કે અન્ય સમાસના અહીં અભાવથી થયો છે? જો એમ કહો કે બાધકના અભાવથી સમાનાધિકરણ સમાસ કલ્પનીય થયો છે તો આ સમાસમાં સ્રી-શબ્દનો અર્થ પુરુષાભિલાષરૂપ ભાવ વેદ જ હશે, તો એજ અર્થ શું તેનો સાક્ષાત્ અર્થ થશે કે તેના વડે ઉપલક્ષિત શરીર તેનો અર્થ

यदि पुरुषाभिलापरूपो भाव एव साक्षादर्थ इति मन्यसे, तदा ब्रूहि-किं तदैव तद्भावस्तव संमतः, किं भूतपूर्वगत्या वा ?, तत्र यदि तदैव स पुरुषाभिलापात्मको भावः, स्त्रीशब्दार्थस्तदा भवदभिमत पुरुष निर्वाणावस्थायामपि वेदसंभवः स्यात्। न चैतदागमप्रसिद्धमिति तादृशार्थस्वीकारे आगमविरोधः।

यदि भूतपूर्वगत्या पुरुषाभिलापरूपो भावः स्त्रीशब्दार्थः, इति संमतस्तर्हि देवादीनामपि निर्वाणप्राप्तिसंभवःस्यात्। तथा च-"सुरणारएसु चत्तारि होंति" सुरनारकेषु चत्वारि भवन्ति 'गुणस्थानानि' इत्याद्यागमविरोधः, तेष्वपि भूतपूर्वगत्या चतुर्दशगुणस्थानसंभवात्।

भिलाषरूप भाव ही साक्षात् स्त्री शब्दका अर्थ होगा तो हम पूछते हैं कि क्या उसी समय यह भाव तुम्हें संमत है या भूतपूर्वगतिसे यह भाव तुम्हें संमत है। यदि कहो स्त्री-शब्दका अर्थ उसी समय-उस पर्यायमें ही पुरुषाभिलाषरूप भाववेद है, ऐसा हमें संमत है, सो ऐसी अवस्थामें आपके अभिमत पुरुषनिर्वाणमें भी वेदका संभव माना जायेगा। परन्तु निर्वाण अवस्थामें तो वेदकी संभवता होती ही नहीं है, यह बात आगममें प्रसिद्ध है, अतः स्त्री शब्दका अर्थ भाववेद स्त्री मानना यह ठीक नहीं है।

यदि कहो कि भूतपूर्व गतिसे पुरुषाभिलाषरूप भाव, स्त्री-शब्दका वाच्य है तो ऐसी स्थितिमें देवादिकोंके भी निर्वाणकी प्राप्ति होने का प्रसंग आता है, जो "सुरणारएसु चत्तारि होंति" अर्थात् देव और

થશે? જો એમ કહેતા હો કે પુરુષાભિલાષરૂપ ભાવ જ સાક્ષાત્ સ્ત્રી શબ્દનો અર્થ થશે તો અમે પૂછીએ છીએ કે શું એજ સમયે આ ભાવ તમને કબૂલ છે કે ભૂતપૂર્વગતિથી આ ભાવ તમને કબૂલ છે? જો આપ એમ કહેતા હો કે સ્ત્રી-શબ્દનો અર્થ એજ સમયે-એ પર્યાયમાં-જ પુરુષાભિલાષરૂપ ભાવ વેદ છે એવું અમને મંજૂર છે તો એવી અવસ્થામાં આપના અભિમત પુરુષનિર્વાણમાં પણ વેદનો સંભવ મનાશે. પણ નિર્વાણ-અવસ્થામા તો વેદની સંભવિતતા હોતી જ નથી, એ વાત આગમમાં પ્રસિદ્ધ છે, તેથી સ્ત્રી-શબ્દનો અર્થ ભાવવેદ સ્ત્રી માનવો ઉચિત નથી.

જો એમ કહેતા હો કે ભૂતપૂર્વ ગતિથી પુરુષાભિલાષરૂપ ભાવ, સ્ત્રી-શબ્દનો વાચ્ય છે તો એવી સ્થિતિમાં દેવાદિકોને પણ નિર્વાણની પ્રાપ્તિ થવાનો પ્રસંગ આવે છે, જેમ "સુરણારએસુ चत्तारि होंति" એટલે કે દેવ અને નારકીમાં ચાર

अथ तदुपलक्षितं पुरुषशरीरं स्त्रीशब्दार्थ इति चेत्, तदा कथय, पुरुषाभिलाषरूपो भावः पुरुषशरीरोपलक्षणतया यदि विवक्षितस्तत्रासौ किं नियतवृत्तिः ? किं वा अनियतवृत्ति ? रिति।

यदि नियतवृत्तिस्तदाऽऽगमविरोधः १, परिवर्तमानतयैव पुरुषशरीरे वेदोदयस्य तत्राभिधानात्, नियतवृत्तिताया अनुभवोऽपि न भवति।

अथानियतवृत्तिश्चेत्, तदेवं वद-कथमसौ तदुपलक्षणम्? अथैवंरूपमपि गृहादिषु काकाद्युपलक्षणं दृश्यते इत्यत्रापि तथोच्यते,

---

नारकी में चार गुणस्थान होते हैं, इस आगमवाक्यका विरोधक होता है, कारण कि भूतपूर्वगतिकी अपेक्षासे तो देव नारकों में भी चतुर्दश गुणस्थानों की संभावना होगी।

यदि 'स्त्री-शब्दका अर्थ भाववेदसे उपलक्षित पुरुषका शरीर है' ऐसा कहो तो कहो-पुरुषाभिलाषरूप भावपुरुष शरीरके उपलक्षणपनेसे यदि विवक्षित है तो यह क्या वहां नियत-वृत्तिवाला है कि अनियत वृत्तिवाला है ?।

यदि नियत-वृत्तिवाला माना जाय तो आगमसे विरोध आता है, क्यों कि परिवर्त्तनपनेसे ही पुरुषशरीरमें वेदका उदय आगममें कहा है। तथा नियतवृत्तिरूपसे तो अनुभव भी नहीं होता है।

यदि यह वहां "कौआवाला देवदत्त का घर है" इसके समान अनियत-वृत्तिवाला है, ऐसा कहते हो ता स्त्री-शरीरमें भी कभी२ पुरुषवेदका उदय-संभवित होता है, अतः तुम्हारे मतमें भी स्त्रियोंको निर्वाण

ગુણસ્થાન હોય છે, એ આગમવાકયનું વિરોધક થાય છે, કારણ કે ભૂતપૂર્વગતિની અપેક્ષાએ તો દેવ-નારકોમાં પણ ચૌદગુણસ્થાનોની સંભાવના હશે.

જો "સ્ત્રી શબ્દનો અર્થ ભાવવેદથી ઉપલક્ષિત પુરુષનું શરીર છે" એમ કહો તો પુરુષાભિલાષરૂપ ભાવપુરુષ-શરીરનાં ઉપલક્ષણપણાથી જો વિવક્ષિત છે તો તે શું ત્યાં નિયતવૃત્તિવાળો છે કે અનિયતવૃત્તિવાળો છે ?

જો નિયતવૃત્તિવાળો માનવામાં આવે તો આગમથી વિરૂદ્ધ ગણાય, કારણ કે પરિવર્તનપણાથી જ પુરુષશરીરમાં વેદનો ઉદય આગમમાં કહેલ છે. તથા નિયતવૃત્તિરૂપથી તો અનુભવ પણ થતો નથી

જો આ ત્યાં "કાગડાવાળું દેવદત્તનું ઘર છે" એના જેવો અનિયત-વૃત્તિવાળો છે, એમ કહેતા હો તો સ્ત્રી-શરીરમાં કયારેક કયારેક પુરુષવેદનો ઉદય સંભવિત હોય છે, તેથી તમારા મત પ્રમાણે પણ સ્ત્રીઓને નિર્વાણપ્રાપ્તિ

एवं सति स्त्रीशरीरेऽपि कदाचित् पुरुषवेदस्योदय संभवात् स्त्रीणामपि तवमते- निर्वाणापत्तिः, यथा हि पुरुषाणां भावतः स्त्रीत्वम्, एवं स्त्रीणामपि भावतः पुरुषत्वसंभवोऽस्ति, भाव एव च मुख्यं मुक्तिकारणम्। तथा च-यद्यपकृष्टेनापि स्त्रीत्वेन पुरुषाणां निर्वाणम्, एवमुत्कृष्टेन भावपुरुषत्वेन स्त्रीणामपि कुतो निर्वाणं न स्यात् इति।

न च समासान्तरासंभवेन 'स्त्रीवेदः' इत्यत्र समानाधिकरणसमासकल्पनं, स्त्रियावेदः स्त्रीवेद इति षष्ठी समासस्यापि संभवात् न चास्य स्त्रीशरीर-पुरुषाभिलाषात्मक वेदयोः सम्बन्धाभावेनायुक्तत्वमिति वाच्यम्, यतस्तयोः सम्बन्धाभावः किं भिन्नकर्मोदय रूपत्वेन किं वा पुरुषवत् स्त्रिया अपि स्त्रियां प्रवृत्तिदर्शनेन ?।

प्राप्ति होनेकी आपत्ति आती है। जैसे पुरुषोंके भावकी अपेक्षा स्त्रीत्व है इसी तरह स्त्रियोंके भी भावकी अपेक्षा पुंस्त्व संभव है। तथा मुक्ति का कारण मुख्यतासे भाव ही बतलाया गया है, अतः जब अपकृष्टभाव स्त्रीपनेसे युक्त पुरुषोंको निर्वाण होता है तब स्त्रियोंको भी उत्कृष्ट भाव पुरुषत्वकी अपेक्षासे निर्वाण प्राप्त क्यों नहीं हो सकेगा? अवश्य हो सकेगा?

तथा समासान्तर के असंभव होने से "स्त्रीवेद" यहां 'समानाधिकरण समास हुआ है' ऐसा नहीं मानना चाहिये, क्यों कि "स्त्रियो वेदः" इस तरह यहां षष्ठीतत्पुरुष समास भी बन सकता है।

यदि कहो कि स्त्री-शरीर और पुरुषाभिलाषात्मक वेद, इन दोनों का संबंध नहीं बन सकता है इसलिये यह समास अयुक्त है, सो इन

હોવાની આપત્તિ આવે છે જેમ પુરુષોને ભાવની અપેક્ષાએ સ્ત્રીત્વ હોય છે એજ પ્રમાણે સ્ત્રીઓને પણ ભાવની અપેક્ષાએ સ્ત્રીત્વ હોય છે એજ પ્રમાણે સ્ત્રીઓને પણ ભાવની અપેક્ષાએ પુરૂષત્વ સંભવિત છે, તથા મોક્ષનું કારણ મુખ્યત્વે ભાવ જ દર્શાવવામાં આવેલ છે, તેથી જો અપકૃષ્ટભાવ સ્ત્રીત્વથી યુક્ત પુરૂષોને નિર્વાણ મળે છે તો સ્ત્રીઓને પણ ઉત્કૃષ્ટ ભાવ પુરૂષત્વની અપેક્ષાએ નિર્વાણ પ્રાપ્ત કેમ ન થઇ શકે? અવશ્ય થઈ શકે.

તથા સમાસાન્તરની અસંભવિતતા હોવાથી "સ્ત્રીવેદ" અહીં "સમાનાધિકરણ સમાસ થયો છે" એવું માનવું જોઈએ નહીં, કારણ કે "स्त्रीयो वेदः" એ રીતે અહીં ષષ્ઠીતત્પુરૂષ સમાસ બની શકે છે.

જો એમ કહો કે સ્ત્રી અને પુરુષાભિલાષાત્મકવેદ, એ બન્નેનો સંબંધ બની શકતો નથી તેથી આ સમાસ અયોગ્ય છે તો એ વિષે અમારો એ પ્રશ્ન

न तावद् भिन्न कर्मोदयरूपत्वेन, भिन्नकर्मोदकरूपाणामपि पञ्चेन्द्रियजात्यादीनां च सदा सम्बन्धदर्शनात् ।

नापि पुरुषवत् स्त्रिया अपि स्त्रियां प्रवृत्तिदर्शनेन तयोः सम्बन्धाऽभाव इति वक्तुं युक्तम्, इयं हि पुरुषाप्राप्तौ स्ववेदोदयादपि संभवत्येव । उक्तञ्च—

"सा स्वकवेदात् तिर्यग्वदलाभे मत्तकामिन्याः" इति ।

अथ स्त्रीत्वस्य पल्यशतपृथक्त्वावस्थानाभिधानात् पुरुषाभिलापरूपे वेदाख्ये भावे स्त्रीशब्द आगमे प्रयुक्त इत्यपि न वक्तुं युक्तम्, द्विसंख्यामारभ्य पृथक्त्वमि-

पर हम यह पूछते हैं कि इनमें परस्पर में संबंध का अभाव क्यों है? क्या ये भिन्न२ कर्मोदयरूप हैं इसलिये? अथवा पुरुष की तरह स्त्रियों के भी स्त्रियों में प्रवृत्ति देखी जाती है इसलिये?। यदि प्रथम पक्ष अंगीकार किया जावे तो इससे भिन्नता सिद्ध नहीं होती है, क्यों कि भिन्न कर्मोदयरूप भी पंचेन्द्रिय जाति आदि का, तथा देवगति आदि का सदा संबंध देखा जाता है। द्वितीय पक्ष भी उचित नहीं, कारण कि स्त्रीकी स्त्रीमें प्रवृत्ति, पुरुष की प्राप्ति न होने पर वेदोदय के कारण ही होती है। कहा भी है–

"सा स्वकवेदात् तिर्यग्वदलाभे मत्तकामिन्याः" अर्थात् यह प्रवृत्ति स्त्रीवेद के उदय से पुरुष की प्राप्ति न होने पर तिर्यंचनी में तिर्यंचनी की तरह कामोन्मत्त स्त्रीकी स्त्रीमें होती है। "स्त्रीत्वका पल्यशतपृथकत्व-तक अवस्थान कहा गया है, इससे यह पता चलता है कि पुरुष की अभिलाषारूप भाववेद में स्त्री–शब्द का प्रयोग आगम में प्रयुक्त हुआ है" सो ऐसा कहना भी युक्तियुक्त नहीं है। द्वि–संख्या से लेकर नव-

છે કે તેમનામાં પરસ્પરના સબંધના અભાવ શા માટે છે? શું તેઓ ભિન્ન ભિન્ન કર્મોદયરૂપ છે તેથી? અથવા પુરુષની જેમ સ્ત્રીઓની પણ સ્ત્રીઓમાં પ્રવૃત્તિ જોવામા આવે છે તેથી? જો પહેલા પક્ષ સ્વીકારવામાં આવે તો તેથી ભિન્નતા સિદ્ધ થતી નથી, કારણ કે ભિન્નકર્મોદયરૂપ પણ પંચેન્દ્રિય જાતિ આદિનો, તથા દેવગતિ આદિનો સંબધ જોવામા આવે છે. બીજો પક્ષ પણ ઉચિત નથી, કારણ કે સ્ત્રીની સ્ત્રીમાં પ્રવૃત્તિ, પુરુષની પ્રાપ્તિ ન થતા વેદોદયને કારણે જ થાય છે. કહ્યું પણ છે—"सा स्वकवेदात् तिर्यग्वदलाभे मत्तकामिन्याः" એટલે કે આ પ્રવૃત્તિ સ્ત્રીવેદના ઉદયથી પુરુષની પ્રાપ્તિ ન થતાં તિર્યંચનીમાં તિર્યંચનીની જેમ કામોન્મત્ત સ્ત્રીની સ્ત્રીમાં થાય છે. "સ્ત્રીત્વનુ પલ્યશતપૃથક્ત્વ સુધિ અવસ્થાન કહેવાયુ છે, તેથી એ જાણવા મળે છે કે પુરુષની અભિલાષારૂપ ભાવવેદમાં સ્ત્રી–શબ્દનો પ્રયોગ આગમમા પ્રયુક્ત થયો છે" તો એમ કહેવું તે પણ ઉચિત નથી. દ્વિ–સંખ્યાથી લઈને નવ સંખ્યા સુધી પૃથક્ત્વ કહેવાય

त्यनेन नवसंख्यापर्यन्त मुच्यते। नवशतपल्योपमपर्यन्तं स्त्रीत्वजात्यवस्थानं स्त्री शरीरे जन्म भवतीत्यर्थः। स्त्रीशरीरप्राप्तौ पुरुषाभिलापात्मको वेदो न हेतुः, किंतु स्त्रीत्वप्राप्तिकारणभूतकर्मोदय एव कारणम्। पुरुपाभिलापरूपस्य वेदस्य स्त्रीत्वप्राप्तिहेतुत्वाभावात् स स्त्रीशब्दार्थो न भवितुमर्हति। तत्र पल्यशतपृथक्त्वावस्थाने स्त्रीत्वानुबन्ध एव हेतुत्वेन विवक्षितः, न तु वेदाख्यो भाव। संभवति हि मृत्युकाले स्त्र्याकारविच्छेदेऽपि तत्कारणकर्मोदयविच्छेदो न भवति, तदविच्छेदाच्च पुंस्त्वाद्यव्यवधानेन पुनः स्त्रीग्रहणमिति।

किञ्च—' मणुयगईए चउदस गुणठाणाणि होंति।'

संख्यातक पृथक्त्व कहलाता है। इसका तात्पर्य यह है कि नौ सौ पल्यतक स्त्रीत्व जाति में-स्त्री के शरीर में जन्म होता है। पुरुषाभिलापात्मक भाववेद स्त्रीशरीर की प्राप्ति में हेतु नहीं है, किन्तु स्त्रीत्व की प्राप्ति में कारणीभूत मायादिकर्म का उदय ही कारण है, पुरुपाभिलाषरूप वेद स्त्री की प्राप्ति में हेतु नहीं है इसलिये वह स्त्री-शब्द का अर्थ नहीं होता है। वहां पल्यशतपृथक्त्वतक स्त्रीशरीर में जन्म लेने में स्त्रीत्व का अनुबंध ही हेतुरूप से विवक्षित हुआ है, किन्तु वेद नामका भाव नहीं, अर्थात् भाववेद नहीं। मृत्यु के समय स्त्री-आकार का विच्छेद होनेपर भी स्त्रीत्व की प्राप्तिमें कारणीभूत कर्मका विच्छेद नहीं होता है। कर्मके विच्छेद नहीं होने के कारण पुंस्त्व आदि के अव्यवधान से पुनः स्त्री-शरीरका ही ग्रहण होता है। तथा-" मणुयगईए चउदसगुणठाणाणि होंति" मनुष्य गति में चौदह गुणस्थान होते हैं, तथा-" पंचे

છે. તેનુ તાત્પર્ય એ છે કે નવ સો પલ્ય સુધી સ્ત્રીત્વ જાતિમાં-સ્ત્રીના શરીરમા જન્મ થાય છે. પુરુષાભિલાષાત્મક ભાવવેદ સ્ત્રી-શરીરની પ્રાપ્તિમાં હેતુ નથી, પણ સ્ત્રીત્વની પ્રાપ્તિમાં માયાદિ કર્મનો ઉદય જ કારણરૂપ છે પુરુષાભિલાષરૂપ વેદ સ્ત્રીત્વની પ્રાપ્તિમાં કારણ નથી, તેથી તે સ્ત્રી-શબ્દનો અર્થ થતો નથી. ત્યા પલ્યશત પૃથક્ત્વ સુધી શરીરમાં જન્મ લેવામાં સ્ત્રીત્વનો અનુબંધ જ હેતુરૂપે વિવક્ષિત થયો છે, પણ વેદ નામનો ભાવ નહી, એટલે કે ભાવવેદ નહીં. મૃત્યુ સમયે સ્ત્રીના આકારનો વિચ્છેદ થવા છતા પણ સ્ત્રીત્વની પ્રાપ્તિને માટે કારણભૂત કર્મની વિચ્છેદ થતો નથી. કર્મનો વિચ્છેદ નહીં થવાને કારણે પુરુષત્વ આદિના અવ્યવધાનથી ફરીથી સ્ત્રી-શરીર જ ગ્રહણ થાય છે. તથા-" मणुयगईएचउदस गुणठाणाणि होंति" મનુષ્યગતિમાં ચૌદ ગુણસ્થાન હોય છે.

तथा—'पंचिंदिएसु गुणठाणाणि हुंति चउदस।'

तथा—'चउदस तसेसु गुणठाणाणि हुंति।'

तथा—'भवसिद्धिया य सव्वट्ठाणेसु होंति।'

इत्यादि प्रवचनं स्त्रीशब्दरहितमपि स्त्रीनिर्वाणप्रमाणमस्ति, स्त्रीणामपि पुंवन्मनुष्यगत्यादिधर्मयोगात्।

अथ सामान्यविषयकत्वादिदं प्रवचनं स्त्रीरूपे विषयविशेषे प्रमाणं न स्यादिति चेत्, शृणु।

यद्येतत् प्रवचनं स्त्रीविषयकं नास्तीति वदसि, तर्हि कथय तावत् पुरुषाणामपि किं मनुष्यगतिविशेषरूपत्वं, पञ्चेन्द्रियविशेषरूपत्वं वा त्रसविशेषरूपत्वं वा नास्ति, अस्ति वेति?

दिएसु गुणठाणाणि हुंति चउदस" पञ्चेन्द्रियोंमें चौदह गुणस्थान होते हैं, तथा "चउदस तसेसु गुणठाणाणि हुंति" त्रसोंमें चौदह गुणस्थान होते हैं, तथा–"भवसिद्धिया य सव्वट्ठाणेसु होंति" सभी स्थानोंमें भवसिद्धिक होते हैं। यह पूर्वोक्त समस्त सामान्य प्रवचन भी स्त्रीनिर्वाण का समर्थक है, क्यों कि स्त्रियों में भी पुरुष की तरह मनुष्यगति आदि धर्मका संबंध रहता है।

यदि इस पर यों कहा जाय कि यह प्रवचन तो सामान्यरूप से वस्तु का प्रतिपादक है अतः स्त्रीरूप विशेष का नहीं। सुनो—

यदि 'यह प्रवचन स्त्रीरूप विशेषविषयक नहीं है' ऐसा माना जाय तो हम पूछते हैं कि पुरुषों में मनुष्यगतिरूप विशेषता, पंचेन्द्रियरूप विशेषता अथवा त्रसरूप विशेषता है या नहीं? 'नहीं है' ऐसा तो

તથા–"पंचिदिएसु गुण ठाणाणि हुंति चउदस" પંચેન્દ્રિયોમા ચૌદ ગુણસ્થાન હોય છે, તથા "चउदस तसेसु गुणठाणाणि हुंति" ત્રસોમાં ચૌદ ગુણસ્થાન હોય છે, તથા–"भवसिद्धिया य सव्वट्ठाणेसु होंति" સઘળાં સ્થાનોમાં ભવસિદ્ધિક હોય છે. આ પૂર્વોક્ત સમસ્ત સામાન્ય પ્રવચન પણ સ્ત્રીનિર્વાણનું સમર્થક છે, કારણ કે સ્ત્રીઓમાં પણ પુરુષની જેમ મનુષ્યગતિ આદિ ધર્મનો સંબંધ રહે છે.

જો તે વિષે એમ કહેવામા આવે કે આ પ્રવચન તો સામાન્યરૂપે વસ્તુનું પ્રતિપાદક છે, તેથી સ્ત્રીરૂપ વિશેષનું નથી. સાભળો—

જો "આ પ્રવચન સ્ત્રીરૂપ વિશેષ વિષયક નથી" એમ માનવામાં આવે તો અમારો એ પ્રશ્ન છે કે પુરુષોમાં મનુષ્યગતિરૂપ વિશેષતા, પંચેન્દ્રિયરૂપ વિશેષતા અથવા ત્રસરૂપ વિશેષતા છે કે નથી? "નથી" એમ તો કહી શકાય

नास्तीति वक्तुं न युक्तम्, तेषां मनुष्यगतिविशेषरूपत्वात्। अथ पुरुषाणामपि विशेषरूपताऽस्तीति चेत्, तथा सति पुरुषेष्वपि कथमेतत् प्रवचनं प्रमाणम्? यथा च पुरुषेषु प्रमाणं तथा स्त्रीष्वपि प्रमाणं स्यादिति।

अथ पुरुषेष्वेव तच्चरितार्थमिति स्त्रीषु तस्याप्रवृत्तिः कल्पनीया स्यादिति चेन्न, एवं सति विपर्ययकल्पनाऽपि किं न स्यात्।

नन्वेवं तत्प्रवचनस्य सामान्यविषयकत्वे अपर्याप्तकमनुष्यादीनां देवनारकतिरश्चां च निर्वाणप्रसङ्गः, इति चेन्न, तेषामेतत् प्रवचनवाक्याविषयत्वात्, एतदविषयत्वं चापवादविषयत्वात्। उक्तं हि—

कहा नहीं जा सकता है, कारण कि उनमें मनुष्यगति आदिरूप विशेषता है ही। यदि कहो कि पुरुषों में मनुष्यगति आदिरूप विशेषता है, तो पुरुषों में भी यह प्रवचन कैसे प्रमाण होगा?, क्यों कि पुरुष भी विशेषरूप ही हैं। फिर भी यदि आप कहें कि यह प्रवचन पुरुषों में प्रमाण है, तो समान न्यायसे इसको स्त्रियों में भी प्रमाण मानना ही चाहिये।

यदि कहो कि पुरुषों में ही इस प्रवचन की चरितार्थता है अतः यह वहां ही प्रमाण माना जायगा, स्त्रियों में नहीं, ऐसे कहने में प्रमाण नहीं है सिर्फ कहना मात्र है। जिस प्रकार तुम ऐसा कहते सो हम भी ऐसा कह सकते हैं कि यह प्रवचन पुरुषों में चरितार्थ नहीं है स्त्रियों में ही चरितार्थ है। अतः इस प्रवचन को सामान्य विषयक मानना चाहिये।

शंका—यदि इस प्रवचन को सामान्यविषयक माना जावे तो

નહીં, કારણ કે તેમનામાં મનુષ્યગતિ આદિરૂપ વિશેષતા છે જ. જો આપ એમ કહેતા હો કે પુરુષોમા મનુષ્યગતિ આદિરૂપ વિશેષતા છે, તો પુરુષોમા પણ આ પ્રવચન કેવી રીતે પ્રમાણ ગણાશે? કારણ કે પુરુષ પણ વિશેષરૂપ જ છે. છતાં પણ આપ જો એમ કહો કે આ પ્રવચન પુરુષોમા પ્રમાણ છે, તો સમાન ન્યાયથી તેને સ્ત્રીઓમાં પણ પ્રમાણ માનવું જોઇએ.

જો એમ કહો કે પુરુષોમાં જ આ વચનની ચરિતાર્થતા છે તેથી તે ત્યાં જ પ્રમાણ માની શકાય, સ્ત્રીઓમાં નહીં. તો એવું કહેવામાં પ્રમાણ નથી પણ ફક્ત કથન જ છે. જે રીતે તમે એમ કહો છો એ રીતે અમે પણ એમ કહી શકીએ કે આ પ્રવચન પુરુષોમાં ચરિતાર્થ નથી, સ્ત્રીઓમાં જ ચરિતાર્થ છે તેથી આ પ્રવચનને સામાન્યવિષયક માનવું જોઇએ.

શંકા—જો આ પ્રવચનને સામાન્યવિષયક માનવામા આવે તો અપર્યાપ્તક

"अपवादं परिहृत्य, उत्सर्गश्च प्रवर्तते" इति ।

अपवादश्च—"मिच्छादिट्ठी अपज्जत्तगे" ।

तथा—"सुरनारएसु होंति चत्तारि तिरिएसु जाण पंचेव" इत्यादिरागमः।

तथा चोक्तम्—

"मनुजगतौ सन्ति गुणाश्चतुर्दशेत्याद्यपि प्रमाणं स्यात् ।
पुंवत् स्त्रीणां सिद्धौ, नापर्याप्तादिवद्बाधा" ॥ १ ॥ इति ।

अपर्याप्तक मनुष्यादिकों में तथा देवनारक एवं तिर्यंचों में भी निर्वाणपद प्राप्त होने का प्रसंग मानना पडेगा। सो इस प्रकार की शंका करना भी ठीक नहीं है। कारण कि अपर्याप्त मनुष्य आदि इस प्रवचन के विषय नहीं हैं। वे तो अपवाद के विषय हैं। और अपवाद को छोड़कर उत्सर्ग की प्रवृत्ति होती है, कहा भी है—"अपवादं परिहृत्य, उत्सर्गश्च प्रवर्तते" इति। यह अपवाद "मिच्छादिट्ठीअपज्जत्तगे" तथा—"सुर-नारएसु होंति चत्तारि तिरिएसु जाण पंचेव" इस प्रकार है। इन मिथ्या-दृष्टि, अपर्याप्तक, देव, नारक और तिर्यञ्चको छोड़कर उपरोक्त आगम-वाक्य चरितार्थ होता है। अर्थात्–इनको छोड़कर सब–मनुष्य मात्र मुक्ति के अधिकारी है। कहा भी हैं—

"मनुजगतौ सन्ति गुणाश्चतुर्दशेत्याद्यपि प्रमाण स्यात् ।
पुंवत् स्त्रीणां सिद्धौ, नापर्याप्तादिवद्बाधा ॥ १ ॥" इति ।

મનુષ્યાદિકોમા તથા દેવ નારક અને તિર્યંચોમાં પણ નિર્વાણપદ પ્રાપ્ત થવાનો પ્રસંગ માનવો પડશે. તો આ પ્રકારની શંકા કરવી તે પણ યોગ્ય નથી. કારણ કે અપર્યાપ્ત મનુષ્ય આદિ આ પ્રવચનનો વિષય નથી. તે તો અપવાદના વિષયો છે. અને અપવાદને જતો કરીને ઉત્સર્ગની પ્રવૃત્તિ થાય છે, કહ્યું પણ છે— "अपवादं परिहृत्य उत्सर्गश्च प्रवर्तते" ઈતિ. તે અપવાદ "मिच्छादिट्ठिअपज्जत्तगे" તથા "सुर नारएसु होंति चत्तारि तिरिएसु जाण पंचेव" આ પ્રકારે છે. એ મિથ્યાદષ્ટિ, અપર્યાપ્તક, દેવ, નારક અને તિર્યંચને છોડીને ઉપરોક્ત આગમ-વાક્ય ચરિતાર્થ થાય છે. એટલે કે એમને છોડીને બધા મનુષ્યો મુક્તિના અધિકારી છે. કહેલ પણ છે—

"मनुजगतौ सन्ति गुणाश्चतुर्दशेत्याद्यपि प्रमाणं स्यात् ।
पुंवत् स्त्रीणां सिद्धौ नापर्याप्तादिवद्बाधा" ॥ १ ॥ इति

तथाचायं निष्कर्षः—

मनुष्यस्त्री काचिन्निर्वाणं प्राप्नोति, अविकलतत्कारणवत्त्वात् पुरुषवत्। निर्वाणस्य हि कारणमविकलं सम्यग्दर्शनादित्रयं, तच्च तासु विद्यते एवेति पूर्वमेव प्रोक्तम्।

अपि च—मनुष्यस्त्री काचिद् मुक्त्यविकलकारणविशिष्टा मोक्षं प्राप्नोति, प्रव्रज्याधिकारित्वात् पुरुषवत्। न चैतदसिद्धं साधनम्, "गुव्विणी बालवच्छा य पव्वावेउं न कप्पइ" इति सिद्धान्तेन तासां तदधिकारित्वप्रतिपादनाद् विशेषस्य शेषाभ्यनुज्ञाननान्तरीयकत्वात्।

इस तरह इसका निष्कर्ष यह है-कोई २ मनुष्यस्त्री निर्वाण को पाती है कारण कि पुरुष की तरह वहां मुक्ति के कारणों की अविकलता रहती है। निर्वाण का कारण अविकल सम्यग्दर्शनादित्रय है यह अविकल सम्यग्दर्शनादिकों का त्रिक उनमें विद्यमान रहता ही है, यह बात हमने पहिले सिद्ध करदी है। इसलिये कोई २ मनुष्यस्त्री मुक्ति के कारणों की अविकलता से युक्त होने के कारण मुक्ति को प्राप्त करती है" यह हमारा कथन सर्वथा निर्दोष है।

तथा जिस प्रकार प्रव्रज्या ग्रहण करने के अधिकारी पुरुष हैं उसी तरह वे भी हैं, अतः इससे भी यही बात पुष्ट होती है। कोई २ मनुष्यस्त्री प्रव्रज्या की अधिकारिणी है यह हमारा कथन असिद्ध नहीं है, कारण कि—"गुव्विणी बालवच्छा य पव्वावेउं न कप्पइ" इस सिद्धान्त वाक्यसे गर्भिणी एवं बालवत्सा को दीक्षा देने का निषेध है, अतः जब

આ પ્રમાણે તેનું તાત્પર્ય એ છે કે કોઈ કોઈ મનુષ્ય સ્ત્રી નિર્વાણ પામે છે કારણ કે પુરુષની જેમ ત્યાં મોક્ષનાં કારણોની અવિકલતા રહે છે. નિર્વાણનું કારણ અવિકલ સમ્યગ્દર્શનાદિ રત્નત્રય છે. આ અવિકલ સમ્યગ્દર્શનાદિ રત્નત્રય તેમનામાં વિદ્યમાન રહે છે, એ વાત અમે પહેલાં સિદ્ધ કરી છે. તેથી કોઈ મનુષ્ય સ્ત્રી મોક્ષનાં કારણોની અવિકલતાથી યુક્ત હોવાને કારણે મોક્ષ પ્રાપ્ત કરે છે, અમારૂં એ કથન તદ્દન નિર્દોષ છે.

તથા જેમ પુરુષો પ્રવ્રજ્યા (દીક્ષા) ગ્રહણ કરવાના અધિકારી છે એજ પ્રમાણે તેઓ પણ છે, તેથી તે વડે પણ એજ વાતને પુષ્ટી મળે છે. કોઈ કોઈ મનુષ્ય સ્ત્રી પ્રવ્રજ્યાની અધિકારિણી છે આ અમારૂં કથન સિદ્ધ થયાં વિનાનું નથી, કારણ કે "गुव्विणी बालवच्छा य पव्वावेउं न कप्पइ" આ સિદ્ધાન્ત વાક્યથી ગર્ભિણી તથા બાલવત્સાને દીક્ષા દેવાનો નિષેધ છે, તેથી જો તેમને

किञ्च—स्त्रीणामपि तद्भव एव संसारक्षयो भवति। स्त्रियो हि उत्तमधर्मसाधिकाः, ततश्च केवलज्ञानप्राप्ति संभवस्तासाम्। सति च केवले नियमान्मोक्ष इति।

तथा चोक्तम्—

"णो खलु इत्थी अजीवो, ण यासु अभव्वा, ण यावि दंसणविरोहिणी, णो अमाणुसा, णो अणारि उप्पत्ती, णो असंखेज्जाउया, णो अइकूरमई, णो ण उवसंतमोहा, णो ण सुद्धाचारा, णो असुद्धबोंदी, णो ववसायवज्जिया, णो अपुव्वकरण विरोहिणी, णो णवगुणट्ठाणरहिया, कहं न उत्तमधम्मसाहि गत्ति"।

इन्हें दीक्षा देने का निषेध है तो इससे यह ज्ञात होता है कि इसके अतिरिक्त स्त्रियों को दीक्षित होने का अधिकार है, विशेष का निषेध अवशिष्ट में संमति का पोषक होता है।

तथा-स्त्रियों का भी तद्भव में ही संसार का क्षय हो जाता है, क्यों कि-वे भी उत्तमधर्म को साधन करने वाली होती हैं। इसलिये इससे उनमें केवलज्ञान की उत्पत्ति होती है। केवलज्ञान के होने पर नियम से मुक्ति का लाभ होता ही है। कहा भी है—

"णो खलु इत्थी अजीवो, ण यासु अभव्वा ण यावि दंसणविरोहिणी, णो अमाणुसा णो अणारिउप्पत्ती, णो असंखेज्जाउया, णो अइकूरमई, णो ण उवसंतमोहा, णो ण सुद्धाचारा, णो असुद्धबोंदी, णो ववसायवज्जिया, णो अपुव्वकरणविरोहिणी, णो णवगुणट्ठाणरहिया कहं न उत्तमधम्मसाहि गत्ति"

દીક્ષા દેવાનો નિષેધ છે તો તેથી એ જાણવા મળે છે કે તે સિવાયની સ્ત્રીઓની દીક્ષા દેવાનો અધિકાર છે; વિશિષ્ટનો નિષેધ અવિશિષ્ટમાં સંમતિનો પોષક હોય છે.

તથા સ્ત્રીઓનો પણ તે ભવમાં સંસારનો ક્ષય થઇ જાય છે, કારણ કે તેઓ પણ ઉત્તમ ધર્મને સાધનારી હોય છે. તેથી તે વડે તેમનામાં કેવળજ્ઞાન પેદા થાય છે. કેવળજ્ઞાન થતાં નિયમ પ્રમાણે મુક્તિનો લાભ મળે જ છે. કહ્યું પણ છે—

"णो खलु इत्थी अजीवो, ण यासु अभव्वा णयावि दंसणविरोहिणी, णो अमाणुसा, णो अणारिउप्पत्ती, णो असंखेज्जाउया, णो अइकूरमई, णो ण उवसंतमोहा, णो ण सुद्धाचारा, णो अशुद्धबोंदी, णो ववसायवज्जिया, णो अपुव्वकरणविरोहिणी, णो णवगुणट्ठाणरहिया, कहं न उत्तमधम्म साहि गत्ति"

छाया—न खलु स्त्री अजीवः, न चासु अभव्या, न चापि दर्शनविरोधिनी, नो अनार्योत्पत्तिः, नो असंख्येयायुः, नो अतिक्रूरमतिः, नो न उपशान्तमोहा, नो न शुद्धाचारा, नो न अशुद्धशरीरा, नो व्यवसायवर्जिता, नो अपूर्वकरणविरोधिनी, नो नवगुणस्थानरहिता, कथं न उत्तमधर्मसाधिकेति ॥

व्याख्या—स्त्री खलु न अजीवः किं तु जीव एव, जीवस्य चोत्तमधर्मसाधकत्वेन सह विरोधो नास्ति तथैव लोके दर्शनादिति भावः ।

ननु सर्वोऽपि जीव उत्तमधर्मसाधको न भवति, अभव्यजीवानामुत्तमधर्मसाधकत्वाभावादत आह—'ण यासु अभव्वा' इति, न चाऽऽसु अभव्येति । यद्यपि स्त्रीषु काचिद्भव्या, तथापि सर्वैवाभव्या न भवति, संसारनिर्वेद–निर्बाधधर्मोद्देपशुश्रूषादिदर्शनादिति भावः ।

छाया—न खलु स्त्री अजीवः, न चासु अभव्या न चापि दर्शनविरोधिनी, नो अमानुषी, न अनार्योत्पत्तिः, नो असंख्येयायुष्का, नो अतिक्रूरमतिः, नो न उपशान्तमोहा, नो न शुद्धाचारा, नो अशुद्धशरीरा, नो व्यवसायवर्जिता, नो अपूर्वकरणविरोधिनी, नो नवगुणस्थानरहिता कथं न उत्तमधर्मसाधिकेति ।

तात्पर्य इसका इस प्रकार है—"नो खलु स्त्री अजीवः" स्त्री अजाव नहीं है किन्तु जीव ही है । अतः उसका उत्तमधर्मसाधन करने के साथ कोई विरोध नहीं है लोक में भी इसी तरह से देखा जाता है ।

शंका—जीव-मात्र को यदि उत्तमधर्म साधक माना जाय तो फिर अभव्यों को भी जीव होने से उत्तमधर्म का साधक मानना पडेगा । परन्तु उनमें तो उत्तमधर्मसाधकता मानी नहीं जाती है । इस प्रकार की आशंका की निवृत्ति के लिये सूत्रकार कहते हैं कि—"न चासु

छाया–न खलु स्त्री अजीवः, न चासु अभव्या, न चापि दर्शनविरोधिनी, नो अमानुषी, नो अनार्योत्पत्तिः, नो असंख्येयायुष्का, नो अतिक्रूरमतिः, नो न उपशान्तमोहा, नो न शुद्धाचारा, नो अशुद्धशरीरा, नो व्यवसायवर्जिता, नो अपूर्वकरणविरोधिनी, नो नवगुणस्थानरहिता कथं न उत्तमधर्मसाधिकेति ।

તેનું તાત્પર્ય આ પ્રમાણે છે–"न खलु स्त्री अजीवः" સ્ત્રી અજીવ નથી પણ જીવ જ છે. તેથી તેનો ઉત્તમધર્મસાધન કરવા સાથે કોઈ વિરોધ નથી. લોકમાં પણ એ પ્રમાણે જ જોવા મળે છે શંકા—જો જીવ માત્રને ઉત્તમધર્મ સાધક માનવામાં આવે તો પછી અભવ્યોને પણ જીવ હોવાથી ઉત્તમધર્મ સાધક માનવા પડે, પણ તેમનામા તો ઉત્તમધર્મસાધકતા મનાતી નથી. આ પ્રકારની આશંકા નિવારવા માટે સૂત્રકાર કહે છે કે "न चासु अभव्या" અભવ્ય નથી.

भव्योऽपि कश्चिद् दर्शनविरोधी सिद्धो न भवति, इत्यत आह–'ण यावि दंसणविरोहिणी' इति, न चापि दर्शनविरोधिनी' इति। दर्शनमिह सम्यग्दर्शनं–तत्त्वार्थश्रद्धानरूपं परिगृह्यते, न खलु तद्विरोधिनी, आस्तिक्यादिदर्शनादिति भावः।

नन्वमानुष्यपि दर्शनाविरोधिनी, सा तु निर्वाणाय नो कल्पते, तस्मादाह–'णो अमाणुसा' इति। 'नो अमानुषी' इति, मनुष्यजातौ भवा मानुषी, तत्र विशिष्टकरचरणोरुग्रीवाद्यवयवसंनिवेशदर्शनादिति भावः।

ननु मानुष्यपि अनार्योत्पन्नाऽनिष्टा तदपनोदार्थमाह–"णो अणारिउप्पत्ती" इति 'नो अनार्योत्पत्तिः' अनार्येषु=अनार्यकुलेषु, उत्पत्तिर्यस्याः सा तथाविधा नास्तीति।

अभव्या" स्त्री अभव्य नहीं है। यद्यपि स्त्रियों में भी कितनीक स्त्रियां अभव्य होती हैं तथापि सर्व अभव्य ही हैं ऐसी बात नहीं है। संसार से निर्वेद, धर्म से अद्वेष तथा शुश्रूषा आदि गुण उनमें देखे जाते हैं, "न चापि दर्शनविरोधिनी" भव्य होते हुए ये सम्यग्दर्शन की विरोधिनी भी नहीं होती है। कितनेक प्राणी तो ऐसे होते हैं जो भव्य होनेपर भी सम्यग्दर्शन से विरोध रखते हैं, परन्तु ये ऐसी नहीं हैं, क्यों कि इनमें आस्तिक्य आदि गुण देखे जाते हैं। "न अम्मनुषी" मनुष्यजातिमें ये उत्पन्न होती हैं, क्यों कि इनमें मनुष्य जाति की रचना के अनुसार विशिष्ट–कर, चरण, उरु, एवं ग्रीवा आदि अवयवों की रचना देखी जाती है। इस लिये ये "अमानुषी" नहीं हैं अर्थात् मनुष्य हैं। "न अनार्योत्पत्तिः" कितनीक मानुषी भी होती हैं परन्तु यदि वे अनार्या हैं तो निर्वाण के योग्य नहीं मानी जाती हैं अतः ये अनार्य-

---

જો કે સ્ત્રીઓમાં પણ કેટલીક સ્ત્રીઓ અભવ્ય હોય છે તો પણ સર્વે અભવ્યજ છે એવી વાત નથી. સંસારથી નિર્વેદ, ધર્મથી અદ્વેષ, તથા સેવા આદિ ગુણ તેમનામાં નજરે પડે છે. "न चापि दर्शनविरोधिनी" ભવ્ય હોઇને તેઓ સમ્યગ્દર્શનની વિરોધિની હોતી નથી. કેટલાક પ્રાણીઓ એવાં હોય છે કે તેઓ ભવ્ય હોવા છતાં પણ સમ્યગ્દર્શનથી વિરોધ રાખે છે, પણ તેઓ એવી નથી કારણ કે તેમનામાં આસ્તિકતા આદિ ગુણ જોવા મળે છે. "न अमानुषी" મનુષ્યજાતિમાં તેઓ ઉત્પન્ન થાય છે કારણ કે તેમનામાં મનુષ્યજાતિની રચના પ્રમાણે વિશિષ્ટ–હાથ, પગ, છાતી, અને ગ્રીવા વગેરે અવયવોની રચના જોવામાં આવે છે. માટે તેઓ "अमानुषी" નથી "नो अनार्योत्पत्तिः" કેટલીક માનુષી પણ હોય છે પણ જો તેઓ અનાર્યા હોય તો નિર્વાણને યોગ્ય મનાતી નથી તેથી

नन्वार्यकुलोत्पन्नाऽप्यसंख्येयायुष्का न भवति निर्वाणयोग्येत्यत आह–'णो असंखेज्जाउया' इति, 'नो असंख्येयायुष्का' इति, या तु असंख्येयायुष्का युगलजन्मा न भवति, किं तु संख्येयायुष्का तथाविधा निर्वाणयोग्या भवत्येवेति भावः।

ननु संख्येयायुष्काऽपि क्रूरमतिर्नाधिकारिणी निर्वाणस्येति तन्निराकरणार्थमाह–'णो अइकूरमई' इति, 'नो अतिक्रूरमतिः' इति। अतिक्रूरमतिर्न भवति, सप्तमनरकायुर्निबन्धनरौद्रध्यानाभावात्। न तु तद्वत् प्रकृष्टशुभध्यानाभावोऽपि न स्यात्तस्या इति चेत्, न, तेन तस्य प्रतिबन्धाभावात्।

कुलों में उत्पन्न नहीं हुई हैं किन्तु आर्यकुलोद्भव हैं। इसी तरह "नो असंख्येयायुष्का" ये आर्यकुलोत्पन्न होकर फिर असंख्यात वर्ष की आयुवाली नहीं हैं, क्यों कि असंख्यात वर्ष की आयुवाले भोग भूमिया जीव होते हैं, वे मोक्ष के अधिकारी नहीं होते हैं। ये संख्यात वर्ष की आयुवाली हैं, अतः निर्वाणयोग्य हैं। संख्यात वर्ष की आयुवाली भी कितनीक अतिक्रूर मतिवाली स्त्रियां निर्वाण की अधिकारिणी नहीं होती हैं अतः इस दोषको दूर करनेके लिये ऐसा कहा है कि ये अति क्रूर मतिवाली नहीं हैं, इसलिये ये सप्तमनरक की आयु के बंध के कारणभूत रौद्रध्यान से रहित होती हैं। जिस तरह इनमें सप्तमनरक की आयु के बंध के कारणभूत रौद्रध्यान का अभाव है उसी तरह इनमें प्रकृष्ट शुभध्यान का भी अभाव मानना चाहिये सो यह बात नहीं है, कारण अशुभ रौद्रध्यान के साथ इसका कोई अविनाभाव-संबंधरूप

તેઓ અનાર્યકુળોમાં ઉત્પન્ન થયેલ નથી પણ આર્યકુલમાં ઉત્પન્ન થયેલ છે. એજ પ્રમાણે "नो असंख्येयायुष्का" તે આર્યકુલોત્પન્ન થઈને અસંખ્યાત વર્ષના આયુષ્યવાળી નથી, કારણ કે અસંખ્યાત વર્ષનાં આયુવાળાં ભોગભૂમિયા જીવ હોય છે તે મોક્ષના અધિકારી હોતા નથી. તેઓ તો સંખ્યાત વર્ષનાં આયુવાળી છે, તેથી નિર્વાણને યોગ્ય છે. સંખ્યાત વર્ષનાં આયુવાળી પણ કેટલીક અતિક્રૂરમતિવાળી સ્ત્રીઓ નિર્વાણની અધિકારિણી હોતી નથી તેથી એ દોષને દૂર કરવા માટે એવું કહેલ છે કે તેઓ "नो अतिक्रूरमति" અતિક્રૂરમતિવાળી નથી, તેથી તેઓ સાતમી નરકના આયુબંધને કારણભૂત રૌદ્રધ્યાનથી રહિત હોય છે. જેમ તેમનામાં સાતમી નરકના આયુબંધના કારણરૂપ રૌદ્રધ્યાનનો અભાવ છે એજ પ્રમાણે તેમનામાં પ્રકૃષ્ટ શુભધ્યાનનો પણ અભાવ માનવો જોઈએ એવી આ વાત નથી, કારણ કે અશુભ રૌદ્રધ્યાનની સાથે તેનો કોઈ અવિનાભાવ સંબંધરૂપ પ્રતિબંધ નથી. તે ધ્યાનના

अक्रूरमतिरपि या रतिलालसा सा न भवति निर्वाणयोग्येत्यत आह–'णो ण उवसंतमोहा' इति, 'नो न उपशान्तमोहा' इति। काचिदुपशान्तमोहाऽपि संभवति, तथादर्शनादिति भावः।

उपशान्तमोहाऽपि या खल्वशुद्धाचारा गर्हिता, सा न भवति निर्वाणयोग्येत्यत आह–"णो ण सुद्धाचारा" इति, 'नो न शुद्धाचारा' इति। काचित् शुद्धाचाराऽपि भवति, अतिचारवर्जनेन शुद्धाचारदर्शनादिति भावः।

शुद्धाचाराऽपि काचिदशुद्धबोन्दिर्न निर्वाणाधिकारिणीत्यत आह–"णो असुद्धबोंदी" इति, 'नो अशुद्धशरीरा' इति। या वज्रर्षभनाराचसंहननरहिता सा अशुद्धशरीरा, सा न भवति मोक्षयोग्या सर्वैव तथाविधा न भवतीत्यर्थः। काचित् शुद्धशरीराऽपि भवतीति भावः।

प्रतिबंध नहीं है। उस ध्यान के अभाव में भी प्रकृष्ट शुभ ध्यान हो सकता है। "नो न उपशान्तमोहा" कितनीक स्त्रियां अतिक्रूर मतिवाली नहीं भी होती हैं परन्तु उनमें रति की लालसा रहती है अतः ऐसी स्त्रियां निर्वाणयोग्य नहीं मानी गई हैं सो इस बाधाकी निवृत्ति के लिये सूत्रकार कहते हैं कि ये विवक्षित स्त्रियां अक्रूरमतिवाली होकर उपशांत मोहवाली हैं। इनकी रतिलालसारूप मोहपरिणति उपशान्त हो चुकी है। "नो न शुद्धाचारा" कितनीक स्त्रियां ऐसी भी होती हैं जो उपशांतमोहपरिणति विशिष्ट होने पर भी अशुद्ध आचारवाली होती है परन्तु जिन्हें मुक्ति प्राप्त करनी हैं वे शुद्ध आचार विशिष्ट नहीं होती हैं, यह बात नहीं है अपि तु शुद्धाचार विशिष्ट ही होती हैं, क्यों कि ये अपने आचार में दोषों को नहीं लगने देती हैं, तथा लगने पर उनकी शुद्धि करती हैं। "नो अशुद्धशरीरा" शुद्धाचार विशिष्ट होने

અભાવમાં પણ પ્રકૃષ્ટ શુભધ્યાન હોઈ શકે છે. "नो न उपशान्त मोहा" કેટલીક સ્ત્રીઓ અક્રૂરમતિવાળી હોતી પણ તેઓમાં રતિની લાલસા રહે છે, તેથી એવી સ્ત્રીઓ નિર્વાણને પાત્ર મનાયેલ નથી. તો એ બાધાના નિવારણ માટે સૂત્રકાર કહે છે કે તે વિવક્ષિત સ્ત્રીઓ અક્રૂરમતિવાળી થઈને ઉપશાંત મોહવાળી છે. તેમની રતિલાલસારૂપ મોહપરિણતિ ઉપશાંત થઈ ગયેલ છે. "नो न शुद्धाचारा" કેટલીક સ્ત્રીઓ એવી પણ હોય છે કે ઉપશાંતમોહપરિણતિ યુક્ત હોવા છતાં અશુદ્ધ આચારવાળી હોય છે, પણ જેને મોક્ષ પ્રાપ્ત કરવો છે તે શુદ્ધ અચારયુક્ત હોતી નથી એવી કોઈ વાત નથી, પણ શુદ્ધાચાર યુક્ત જ હોય છે, કારણ તેઓ પોતાના આચારમાં દોષો લાગવા દેતી નથી અને લાગે તેની શુદ્ધિ કરે છે. "नो अशुद्ध शरीरा" શુદ્ધ આચારયુક્ત કેટલીક

शुद्धशरीराऽपि व्यवसायवर्जिता निन्दितैवेत्यत आह–"णो ववसायवज्जिया" इति, 'नो व्यवसायवर्जिता'। शास्त्रोक्तार्थे श्रद्धालुतया काचित् परलोकव्यवसायिनी भवति, परलोकार्थं तत्प्रवृत्तिदर्शनादिति भावः।

ननु काचिद् व्यवसायसहिताऽपि अपूर्वकरणविरोधिन्येव दृश्यते, इत्यत आह "णो अपुव्वकरणविरोहिणी" इति, 'नो अपूर्वकरणविरोधिनी' इति स्त्रीजातावप्यपूर्वकरणसंभवस्य प्रतिपादितत्वात्।

पर भी कितनीक स्त्रियां शरीर से अशुद्ध रहा करती हैं अतः वे निर्वाण प्राप्ति की अधिकारिणी नहीं होती हैं सो इस शंका के समाधान निमित्त सूत्रकार कहते हैं कि यह एकान्त नियम नहीं है, कितनीक स्त्रियां ऐसी भी होती हैं कि जो शुद्ध आचारसंपन्न होने पर भी शरीर से अशुद्ध नहीं भी रहती हैं। जिनके वज्रर्षभनाराच संहनन नहीं होता है वे ही अशुद्ध शरीर होती हैं और मोक्ष प्राप्ति के योग्य नहीं होती हैं। समस्त स्त्रियां ऐसी ही होती हैं सो बात नहीं है, कितनीक शुद्ध शरीर वाली भी होती हैं। "नो व्यवसायवर्जिता" शुद्ध शरीर होने पर भी कितनीक नारियां व्यवसाय से वर्जित होती हैं अर्थात् निन्दित होती हैं सो यह भी नियम नहीं बन सकता, कारण कि शास्त्रोक्त अर्थ में श्रद्धालु होने के कारण कितनीक स्त्रियां परलोक सुधारने में व्यवसाय से विहीन नहीं भी होती हैं, इसीलिये उनकी प्रवृत्ति परलोक के निमित्त देखी जाती है। 'नो अपूर्वकरणविरोधिनी' व्यवसायसहित होने पर भी

સ્ત્રીઓ શરીરે અશુદ્ધ રહ્યાં કરે છે તેથી તેઓ નિર્વાણ પ્રાપ્ત કરવાની અધિકારિણી હોતી નથી, તો આ શંકાનું સમાધાન કરવાને માટે સૂત્રકાર કહે છે કે આ એકાન્ત નિયમ નથી. કેટલીક સ્ત્રીઓ એવી પણ હોય છે કે જે શુદ્ધાચારવાળી થઇને શરીરે અશુદ્ધ પણ રહેતી નથી. જેમને વજ્રર્ષભ નારાચ સંહનન હોતું નથી તેઓ જ અશુદ્ધ શરીરવાળી હોય છે અને મોક્ષ પામવાને પાત્ર હોતી નથી. સઘળી સ્ત્રીઓ એવી જ હોય છે એવી વાત નથી, કેટલીક શુદ્ધ શરીરવાળી પણ હોય છે.

"નો વ્યવસાયવર્જિતા" શુદ્ધ શરીર હોવાં છતાં પણ કેટલીક સ્ત્રીઓ વ્યવસાયથી વર્જિત હોય છે એટલે કે નિન્દિત હોય છે, તો એ પણ નિયમ બની શકતો નથી, કારણ કે શાસ્ત્રોક્ત અર્થમાં શ્રદ્ધાલુ હોવાને કારણે કેટલીક સ્ત્રીઓ પરલોક સુધારવામાં વ્યવસાયથી વિહીન હોતી નથી, તેથી તેમની પ્રવૃત્તિ પરલોકનું નિમિત્ત જોવામાં આવે છે. "નો અપૂર્વકરણવિરોધિની" કેટલીક સ્ત્રીઓ એવી પણ હોય છે કે જે વ્યવસાયયુક્ત હોવા છતાં પણ

नन्वपूर्वकरणवत्यपि नवगुणस्थानरहिता निर्वाणयोग्या न स्यादित्यत आह-"णो णवगुणट्ठाणरहिया" इति, 'नो नवगुणस्थानरहिता' इति। षष्ठगुणस्थानमादाय चतुर्दशगुणस्थानपर्यन्तानि नवसंख्यकानि गुणस्थानानि, तद्रहिताः सर्वाः स्त्रियो न भवन्ति, काचित् नवगुणस्थानयुक्तापि भवतीत्यर्थः।

कितनीक स्त्रियां ऐसी भी होती हैं जो अपूर्वकरण की विरोधिनी होती हैं सो यह बात भी एकान्ततः मान्य नहीं हो सकती, कारण कि कितनीक स्त्रियां ऐसी भी तो होती हैं जो अपूर्वकरण की विरोधिनी नहीं भी होती हैं, क्यों कि स्त्री-जाति में भी अपूर्वकरण का संभव प्रतिपादित हुआ है, अतः ये अपूर्वकरण की विरोधिनी नहीं होती हैं। "नो नवगुणस्थानरहिता" इसी तरह अपूर्वकरण-गुणस्थानवाली होकर भी कितनीक नौ गुणस्थानवाली नहीं भी होती हैं सो इस आशंका की निवृत्ति के लिये सूत्रकार कहते हैं कि यह बात भी एकान्ततः नियमित नहीं है। कारण कि छठवें गुणस्थान से लेकर नौ गुणस्थानतक अर्थात् चौदह गुणस्थानतक-सातवां, आठवां, नौ वां, दसवां, ग्यारवां, बारहवां, तेरहवां एवं चौदहवां, ये नौ गुणस्थान भी स्त्रियों में होते हैं-इन नौ गुणस्थानों से वे रहित नहीं होती है। अर्थात् कितनीक स्त्रियां नव गुणस्थान युक्त भी होती हैं। जब ये स्त्रियां इस तरह की होती हैं तो फिर ये उत्तम धर्मकी साधिका क्यों नहीं हो सकती हैं। सारांश इसका यह

અપૂર્વકરણની વિરોધિની હોય છે, તો આ વાત પણ એકાન્તતઃ માન્ય થઈ શકતી નથી કારણ કે કેટલીક સ્ત્રીઓ એવી પણ હોય છે જે અપૂર્વકરણની વિરોધિની હોતી નથી, કારણ કે સ્ત્રીજાતિમાં પણ અપૂર્વકરણનો સંભવ સાબિત થયેલ છે, તેથી તેઓ અપૂર્વકરણની વિરોધિની હોતી નથી. "नो नवगुणस्थानरहिता" આ રીતે અપૂર્વકરણ ગુણસ્થાનવાળી હોવા છતાં પણ કેટલીક નવ ગુણસ્થાનવાળી નથી પણ હોતી, તો આ શંકાનાં નિવારણ માટે સૂત્રકાર કહે છે કે આ વાત પણ એકાન્તતઃ નિયમિત નથી. કારણ કે છઠ્ઠાં ગુણસ્થાનથી લઈને નવગુણસ્થાન સુધી એટલે કે ચૌદ ગુણસ્થાન સુધી-સાતમાં, આઠમાં, નવમાં, દસમાં, અગીયારમાં, બારમાં, તેરમાં અને ચૌદમાં, એ નવ ગુણસ્થાન પણ સ્ત્રીઓમાં હોય છે. એ નવગુણસ્થાનોથી તેઓ રહિત હોતી નથી. એટલે કે કેટલીક સ્ત્રીઓ નવગુણસ્થાનયુકત પણ હોય છે. જો તે સ્ત્રીઓ આ પ્રકારની હોય છે તો પછી તેઓ ઉત્તમધર્મની સાધક કેમ ન હોઈ શકે? તેનો સારાંશ

यत एवंभूता सा, अतः 'कथं नोत्तमधर्मसाधिका' इति, उत्तमधर्मसाधिकैवेत्यर्थः। अयं भावः-तत्तत्कालापेक्षया पुरुषवद् एतावद्गुणसंयमसमन्वितैवोत्तमधर्मसाधिका, तथा चेयं केवलसाधिका भवति। सति च केवले नियमान् मोक्ष इति॥

॥ इति स्त्रीमोक्षसमर्थनम्॥

ननु सर्व एवैते भेदास्तीर्थसिद्धेष्वतीर्थसिद्धेषु चैवान्तर्भूताः सन्ति। तथाहि-ये तीर्थकरसिद्धास्ते तीर्थसिद्धा एव, ये तु तद्भिन्नास्ते सर्वेऽप्यतीर्थसिद्धा एवेति किमेतावद्भिर्भेदैरिति चेत्—

अत्रोच्यते=अन्तर्भावे सत्यपि तीर्थसिद्धा तीर्थसिद्धभेदद्वयादेव तदुत्तरोत्तरभेदानां ज्ञानं न स्यात्, तस्मादज्ञातभेदज्ञापनार्थं तत्तद्भेदस्य विशिष्य कथनमिति॥

तदेतदनन्तरसिद्धकेवलज्ञानं वर्णितम्॥

है-तत्तत्काल की अपेक्षा से पुरुष की तरह इतने गुण और संयम से समन्वित स्त्री भी उत्तमधर्म की साधिका होती है। जब यह उत्तमधर्म की साधिका होती है तो केवलज्ञान को प्राप्त करती है, और केवलज्ञान के होने पर नियम से मोक्ष इसको प्राप्त हो जाता है।

॥ इस तरह यहां तक स्त्रीमुक्ति का समर्थन किया गया है॥

शंका—ये समस्त भेद तीर्थसिद्ध और अतीर्थसिद्ध, इन दोनों में ही अन्तर्भूत हो जाते हैं, क्यों कि जो तीर्थंकरसिद्ध हैं वे तीर्थसिद्ध ही हैं तथा इनसे भिन्न जो सिद्ध हैं वे सब अतीर्थसिद्ध हैं फिर इतने भेदों से क्या मतलब?।

એ છે કે-તે તે કાળની અપેક્ષાએ પુરુષની જેમ આટલા ગુણ અને સંયમથી સમન્વિત સ્ત્રી પણ ઉત્તમધર્મની સાધિકા હોય છે. જો તે ઉત્તમ ધર્મની સાધિકા હોય છે તો કેવળજ્ઞાન પામે છે અને કેવળજ્ઞાન થતાં તેને નિયમ પ્રમાણે મોક્ષ મળે છે.

॥ આ પ્રમાણે અહીં સુધી સ્ત્રી મુક્તિનું સમર્થન કરાયું છે॥

શંકા—એ સઘળા ભેદનો તીર્થસિદ્ધ અને અતીર્થસિદ્ધ એ બન્નેમાં સમાવેશ થઈ જાય છે, કારણ કે જે તીર્થંકરો સિદ્ધ છે તેઓ તીર્થસિદ્ધ જ છે તથા એમનાથી ભિન્ન જે સિદ્ધો છે તે સર્વે અતીર્થસિદ્ધ છે તો પછી આટલા બધા ભેદોનો ઉદ્દેશ શો?

मूलम्—से किं तं परंपरसिद्धकेवलनाणं ?। परंपरसिद्धकेवलनाणं अणेगविहं पण्णत्तं । तं जहा—अपढमसमयसिद्धा, दुसमयसिद्धा, तिसमयसिद्धा, चउसमयसिद्धा, जाव दससमयसिद्धा । संखिज्जसमयसिद्धा, असंखिज्जसमयसिद्धा, अणंतसमयसिद्धा । से तं परंपरसिद्धकेवलनाणं। से तं सिद्धकेवलनाणं।२१।

छाया—अथ किं तत् परंपरसिद्धकेवलज्ञानम् ?। परंपरसिद्धकेवलज्ञानमनेकविधं प्रज्ञप्तम्। तद् यथा—अप्रथमसमयसिद्धाः, द्विसमयसिद्धाः, त्रिसमयसिद्धाः, चतुःसमयसिद्धाः, यावद्दशसमयसिद्धाः। संख्येयसमयसिद्धाः। असंख्येयसमयसिद्धाः। अनन्तसमयसिद्धाः। तदेतत् परंपरसिद्धकेवलज्ञानम्। तदेतत् सिद्धकेवलज्ञानम् ॥२१॥

टीका—शिष्यः पृच्छति—'से किं तं परंपरसिद्धकेवलनाणं' इति। अथ किं तत् परंपरसिद्धकेवलज्ञानम् ?, पूर्वनिर्दिष्टस्य परंपरसिद्धकेवलज्ञानस्य किं स्वरूपमिति प्रश्नः। उत्तरमाह—'परंपरसिद्ध केवलनाणं अणेगविहं पण्णत्तं' इत्यादि।

उत्तर—यद्यपि इस तरह से इन सब का अन्तर्भाव हो जाता है फिर भी जो इनका पृथक् २ निर्देश किया है वह उत्तरोत्तर भेदों के समझाने के लिये ही किया है। तीर्थसिद्ध अतीर्थसिद्ध कहने मात्र से ही इन भेदों का ज्ञान नहीं हो सकता है, इसलिये अज्ञातभेदों के समझाने के लिये विशेषरूप से इन सब भेदों को पृथक् पृथक् उपादान करके समझाया गया है। यह अनन्तरसिद्धकेवलज्ञान का वर्णन हुआ॥

अब परंपरसिद्धकेवलज्ञान का वर्णन किया जाता है—'से किं तं परंपरसिद्धकेवलनाणं०'? इत्यादि।

ઉત્તર—જો કે આ રીતે એ બધાનો સમાવેશ થઈ જાય છે છતાં પણ તેમનો જે અલગ અલગ નિર્દેશ કર્યો છે તે ઉત્તરોત્તર ભેદોને સમજાવવા માટે જ કર્યો છે. તીર્થસિદ્ધ કે અતીર્થસિદ્ધ કહેવા માત્રથી તે ભેદોનું જ્ઞાન થઈ શકતું નથી, તેથી અજ્ઞાત ભેદોને સમજાવવાને માટે વિશેષરૂપે એ બધા ભેદોને અલગ અલગ ઉપાદાન કરીને સમજાવ્યા છે. આ અનન્તર સિદ્ધ કેવળજ્ઞાનનું વર્ણન થયું.

હવે પરંપરસિદ્ધકેવળજ્ઞાનનું વર્ણન કરાય છે—"से किं तं परंपरसिद्ध केवलनाणं" ઈત્યાદિ.

परंपरसिद्धकेवलज्ञानमिति-परंपरे च ते सिद्धाश्च परंपरसिद्धाः। सिद्धत्वप्राप्ति समयाद् द्व्यादिसमयवर्तिनः, तेषां केवलज्ञानं परंपरसिद्धकेवलज्ञानम्, तदनेकविधं प्रज्ञप्तम्। तद् यथा-अप्रथमसमयसिद्धाः=प्रथमः समयो येषां ते प्रथमसमयाः, त एव सिद्धाः, प्रथमसमयसिद्धाः, न प्रथमसमयसिद्धाः अप्रथमसमयसिद्धाः। इत्येतत् सामान्यतोऽभिधाय विशेषतस्तदर्थमाह='दुसमयसिद्धा' इत्यादि। तथा-द्विसमयसिद्धाः, द्वौ समयौ येषां ते द्विसमयाः, ते सिद्धाः द्विसमयसिद्धाः, शेषं सुगमम्॥ सू०२१॥

प्रश्न—पूर्वकथित परंपरसिद्ध केवलज्ञान का क्या स्वरूप है?

उत्तर—परंपरसिद्ध केवलज्ञान अनेक प्रकार का कहा गया है। सिद्धत्वप्राप्ति के समय से दो आदि समयवर्ती सिद्ध परंपरसिद्ध कहलाते हैं। इनका जो केवल ज्ञान है वह परंपरसिद्ध केवलज्ञान है। प्रथम समय में जो सिद्ध नहीं हुए हैं वे अप्रथमसमयसिद्ध हैं। इस प्रकार सामान्यरूप से परंपरसिद्ध केवलज्ञान का स्वरूप बतलाकर सूत्रकार उसे विशेषरूप से समझाने के अभिप्राय से "दुसमयसिद्धा" इत्यादि पदों द्वारा स्पष्ट करते हैं-जिनके सिद्ध होने के दो समय हैं वे द्विसमयसिद्ध हैं, इसी तरह त्रिसमयसिद्ध, चतुःसमयसिद्ध से दशसमयसिद्धतक, एवं संख्यातसमयसिद्ध असंख्यातसमयसिद्ध और अनन्तसमयसिद्ध जानलेना चाहिये। यह परंपरसिद्ध केवलज्ञान का वर्णन हुआ। इसके वर्णन से सिद्धकेवलज्ञान का पूरा वर्णन हुआ॥ सू० २१॥

પ્રશ્ન—પૂર્વોકત પરંપરસિદ્ધકેવળજ્ઞાનનું શું સ્વરૂપ છે?

ઉત્તર—પરંપરસિદ્ધકેવળજ્ઞાન અનેક પ્રકારનું કહેલ છે. સિદ્ધત્વપ્રાપ્તિના સમયથી બે આદિ સમયવર્તી સિદ્ધપરંપરસિદ્ધ કહેવાય છે. તેમનું જે કેવળજ્ઞાન છે તે પરંપરસિદ્ધકેવળજ્ઞાન છે, પ્રથમ સમયમાં જે સિદ્ધ છે. આ પ્રમાણે સામાન્યરૂપે .પરંપરસિદ્ધકેવળજ્ઞાનનું સ્વરૂપ બતાવીને સૂત્રકાર તેને વિશેષ રૂપે સમજાવવાના હેતુથી "दुसमयसिद्धा" ઈત્યાદિ પદો દ્વારા સ્પષ્ટ કરે છે- જેમને સિદ્ધ થવાના બે સમય છે તેઓ દ્વિસમયસિદ્ધ છે. એજ પ્રમાણે ત્રિસમયસિદ્ધ, ચતુઃસમય સિદ્ધથી દસસમયસિદ્ધ સુધી, અને સંખ્યાતસમય સિદ્ધ અસંખ્યાતસમયસિદ્ધ અને અનન્તસમયસિદ્ધ સમજી લેવા જોઈએ.

આ પરંપરસિદ્ધકેવળજ્ઞાનનું વર્ણન થયું. તેના વર્ણનથી સિદ્ધ કેવળજ્ઞાનનું સંપૂર્ણ વર્ણન થયું. ॥ સૂ. ૨૧॥

एवं भवस्थकेवलज्ञानं सिद्धकेवलज्ञानं चेति भेदद्वयमभिधाय पुनः प्रकारान्तरेण केवलज्ञानस्य भेदमाह—

मूलम्—तं समासओ चउव्विहं पण्णत्तं । तं जहा—दव्वओ, खित्तओ, कालओ, भावओ । तत्थ दव्वओणं केवलनाणी सव्वदव्वाइं जाणइ पासइ । खित्तओ णं केवलनाणी सव्वं खित्तं जाणइ पासइ। कालओ णं केवलनाणी सव्वं कालं जाणइ पासइ । भावओ णं केवलनाणी सव्वे भावे जाणइ पासइ ।
गाहा—"अह सव्वदव्वपरिणाम भावविण्णत्तिकारणमणंतं ।
सासयमप्पडिवाइ, एगविहं केवलं नाणं"॥१॥सू०२२॥

छाया—तत् समासतश्चतुर्विधं प्रज्ञप्तम् । तद् यथा—द्रव्यतः, क्षेत्रतः, कालतो, भावतः । तत्र द्रव्यतः खलु केवलज्ञानी सर्वद्रव्याणि जानाति पश्यति । क्षेत्रतः खलु केवलज्ञानी सर्वं क्षेत्रं जानाति पश्यति । कालतः खलु केवलज्ञानी सर्वं कालं जानाति पश्यति । भावतः खलु केवलज्ञानी सर्वान् भावान् जानाति पश्यति ।
गाथा—अथ सर्वद्रव्यपरिणामभावविज्ञप्तिकारणमनन्तम् ।
शाश्वतमप्रतिपाति, एकविधं केवलज्ञानम् ॥ सू० २२ ॥

टीका—'तं समासओ' इत्यादि। सामान्यतः केवलज्ञानं, समासतः=संक्षेपेण चतुर्विधं प्रज्ञप्तम् । तद् यथा—द्रव्यतः क्षेत्रतः कालतो भावतश्च । तत्र द्रव्यतः खलु केवलज्ञानी सर्वद्रव्याणि धर्मास्तिकायादीनि साक्षाज्जानाति पश्यति । क्षेत्रतः केव-

---

इस प्रकार भवस्थसिद्ध केवलज्ञान और सिद्ध केवलज्ञान के भेद से केवलज्ञान के दो भेदों का निरूपण कर सूत्रकार अब प्रकारान्तर से केवलज्ञानके भेदोंका निरूपण करते हैं—'तं समासओ चउव्विहं०' इत्यादि।

वह केवलज्ञान संक्षेप से चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—द्रव्य की अपेक्षा, क्षेत्र की अपेक्षा, काल की अपेक्षा और भाव की अपेक्षा। द्रव्य की अपेक्षा केवलज्ञानी समस्त द्रव्यों को जानता और देखता है।

આ રીતે ભવસ્થસિદ્ધકેવળજ્ઞાન અને સિદ્ધકેવળજ્ઞાનના ભેદથી કેવળજ્ઞાનના બે ભેદોનું નિરૂપણ કરીને હવે સૂત્રકાર પ્રકારાન્તરથી કેવળજ્ઞાનના ભેદોનું નિરૂપણ કરે છે—" तं समासओ चउव्विहं० " ઇત્યાદિ.

તે કેવળજ્ઞાનને સંક્ષેપમાં ચાર પ્રકારનું કહ્યું છે. જેવાં કે દ્રવ્યની અપેક્ષાએ ક્ષેત્રની અપેક્ષાએ, કાળની અપેક્ષાએ અને ભાવની અપેક્ષાએ દ્રવ્યની અપેક્ષાએ કેવળજ્ઞાની સર્વ દ્રવ્યોને જાણે છે અને દેખે છે. ક્ષેત્રની અપેક્ષાએ કેવળજ્ઞાની

ज्ञानी सर्वं क्षेत्रं-संपूर्णं लोकमलोकं च साक्षाज्जानाति पश्यति। इह यद्यपि सर्व-द्रव्यग्रहणेन आकाशास्तिकायोऽपि गृह्यते, तथापि तस्य क्षेत्रत्वेन प्रसिद्धत्वाद् पृथक् कथनम्, एवमग्रेऽपि कालविषये बोध्यम्। कालतः केवलज्ञानी सर्वकालम्=अतीता-नागतवर्तमानभेदभिन्नं जानाति पश्यति। भावतः केवलज्ञानी सर्वान् जीवादिग-तान् भावान्=पर्यायान्-गतिकषायागुरुलघुप्रभृतीन् जानाति पश्यति।

'अह०' इत्यादि। अथ-मनःपर्यायज्ञानानन्तरं केवलज्ञानं तीर्थकरैर्वर्णितम्, इति शेषः। तत् कीदृशम्? इत्याह-'सव्वदव्व०' इत्यादि। सर्वद्रव्य-परि-

---

क्षेत्र की अपेक्षा केवलज्ञानी समस्त लोकाकाश और अलोकाकाशरूप क्षेत्र को साक्षात् जानता और देखता है। यद्यपि "द्रव्य की अपेक्षा केवलज्ञानी समस्त द्रव्यों को जानता और देखता है" ऐसा कहने से ही आकाशास्तिकाय आदि का जानना देखना सिद्ध हो जाता है फिर भी यहां जो क्षेत्र की अपेक्षा उसका जानना देखना कहा है वह क्षेत्ररूप से उसकी पृथक् प्रसिद्धि का होना है। अर्थात् 'लोक का क्षेत्र अलग है और अलोक का क्षेत्र अलग है, इस बात को समझाने के लिये ऐसा कहा है। इसी तरह काल-द्रव्य के विषयमें भी यही समझना चाहिये। काल की अपेक्षा केवलज्ञानी भूत, भविष्यत् और वर्तमान, इन तीनों कालों को जानता और देखता है। भाव की अपेक्षा केवलज्ञानी समस्त जीवा-दिक पदार्थगत गति, कषाय, अगुरुलघु आदि पर्यायों को जानता और देखता है। "अह सव्वदव्व०" इत्यादि गाथा का अर्थ—

इस गाथामें अथ-शब्द यह बात प्रदर्शित करने के लिये रखा गया है कि मनःपर्यय ज्ञान के बाद ही तीर्थंकरों ने इस केवलज्ञान का वर्णन

સમસ્ત લોકાકાશ અને અલોકાકાશ રૂપ ક્ષેત્રને સાક્ષાત્ જાણે છે અને દેખે છે.

જો કે "દ્રવ્યની અપેક્ષાએ કેવળજ્ઞાની સમસ્ત દ્રવ્યોને જાણે છે અને દેખે છે" એમ કહેવાથી જ આકાશાસ્તિકાય આદિનું જાણવા દેખવાનું સિદ્ધ થઈ જાય છે છતાં પણ અહીં જે ક્ષેત્રની અપેક્ષાએ તેનું જાણવા દેખવાનું કહ્યું છે તે ક્ષેત્રરૂપે તેની અલગ પ્રસિદ્ધિનું હોવું છે. એટલે કે "લોકનું ક્ષેત્ર અલગ છે અને અલોકનું ક્ષેત્ર અલગ છે" આ વાતને સમજાવવાને માટે એવું કહ્યું છે. એજ પ્રમાણે કાલ અને દ્રવ્યના વિષયમાં પણ એજ સમજવું જોઈએ. કાળની અપેક્ષાએ કેવળજ્ઞાની ભૂત, ભવિષ્ય અને વર્તમાન, એ ત્રણે કાળોને જાણે છે અને દેખે છે. ભાવની અપેક્ષાએ કેવળજ્ઞાની સમસ્તજીવાદિક પદાર્થગત ગતિ, કષાય, અગુરુ લઘુ આદિ પર્યાયોને જાણે અને દેખે છે, "અહ સવ્વદવ્વ" ઈત્યાદિ ગાથાનો અર્થ—આ ગાથામાં 'અથ' શબ્દ એ વાત દર્શાવવાને માટે મૂક્યો છે કે મનઃ-

णामभावविज्ञप्तिकारणम्=सर्वाणि च तानि द्रव्याणि सर्वद्रव्याणि जीवाजीवरूपाणि, तेषां परिणामाः-प्रयोगविस्रसारूपा उत्पादादयः पर्यायाः सर्वद्रव्यपरिणामाः, तेषां भावः-सत्ता, स्वलक्षणं स्वं स्वमसाधारणं स्वरूपं, तस्य विज्ञप्तिः-विशेषेण ज्ञानम्, तस्याः कारणं=हेतुः, तथा ज्ञेयानामनन्तत्वादनन्तं, तथा=शाश्वतं-नित्यम्, निरन्तरोपयोगयुक्तमित्यर्थः। तथा-अप्रतिपाति-न प्रतिपतन शीलं, सदाऽवस्थायीत्यर्थः।

ननु यत् खलु शाश्वतं, तदप्रतिपात्येव स्यात् किं पुनरेतेन विशेषणेने ?ति, उच्यते-शाश्वतं हि नाम अनवरतं भवदुच्यते, तच्च स्वल्पकालेऽपि नैरन्तर्येण भवनाद् भवति, अप्रतिपातिविशेषणोपादानं तु सर्वकाले केवलज्ञानमवतिष्ठते, इति बोधनार्थमिति। नैरन्तर्येण सर्वस्मिन् काले केवलज्ञानं भवतीति भावः। तथा-एक-

---

किया है। यह केवलज्ञान "सर्वद्रव्यपरिणामभावविज्ञप्तिकारणम्" अर्थात् समस्त जीव और अजीवरूप द्रव्योंमें जो उत्पादादिक परिणाम स्वनिमित्त एवं परनिमित्त से होते रहते हैं उनके अपने २ असाधारणरूप की विज्ञप्ति का कारण है। अनंत एवं शाश्वत है। अप्रतिपतनशील है-सदा अवस्थायी है। दूसरे ज्ञानों की तरह इसके भेद प्रभेद नहीं हैं।

शंका—जो शाश्वत होगा वह अप्रतिपाती ही होगा तो फिर गाथामें "अप्रतिपाति" यह विशेषण स्वतन्त्ररूप से क्यों रखा ?

उत्तर—शाश्वत-शब्द का अर्थ निरन्तर होते रहना है। जो पदार्थ स्वल्पकालावस्थायी होता है वह भी उतने समय तक यदि निरन्तर होता रहता है तो वह भी शाश्वत कहा जाता है। "अप्रतिपाति" विशेषण

પર્યયજ્ઞાનના પછી જ તીર્થંકરોએ આ કેવળજ્ઞાનનું વર્ણન કર્યું છે. આ કેવળજ્ઞાન "सर्वद्रव्यपरिणामभावविज्ञप्तिकारणम्" એટલે કે સમસ્ત જીવ અને અજીવ રૂપ દ્રવ્યોમાં જે ઉત્પાદાદિક પરિણામ સ્વનિમિત્ત અને પરનિમિત્તથી થતાં રહે છે તેમના પોત-પોતાના અસાધારણ રૂપની વિજ્ઞપ્તિનું કારણ છે અનંત અને શાશ્વત છે અપ્રિતિપતનશીલ છે-સદા અવસ્થાયી છે. બીજાં જ્ઞાનોની જેમ તેના ભેદ પ્રભેદ નથી.

શંકા—જે શાશ્વત હોય તે અપ્રતિપાતી જ હોય તો પછી ગાથામાં "अप्रतिपाति" એ વિશેષણ સ્વતંત્ર રૂપે શા માટે રાખ્યું છે ?

ઉત્તર—શાશ્વત શબ્દનો અર્થ "નિરંતર થતું રહેવું" એવો થાય છે. જે પદાર્થ સ્વલ્પકાલાવસ્થાયી હોય છે તે પણ એટલા સમય સુધી જો નિરંતર થતો રહે છે તો તે પણ શાશ્વત કહેવાય છે. "अप्रतिपाति" વિશેષણ આ શાશ્વતમાં

विधम्=एकप्रकारकं, क्षायिकत्वात्, तदावरणक्षयस्यैकरूपत्वात्। यद्यपि केवलज्ञानस्य स्वाम्यपेक्षया भवस्थसिद्धभेदमाश्रित्य भेदोऽस्ति, तथापि-ज्ञानापेक्षया नास्ति भेदः, मतिज्ञानादीनां चतुर्णां तु क्षायोपशमिकत्वात्, क्षयोपशमस्य च वैचित्र्यादनेकविधत्वमिति बोध्यम् ॥ सू० २२ ॥

ननु तीर्थंकरः केवलज्ञाने समुत्पन्ने सति तीर्थंकरनामकर्मोदयात् सर्वजीवानुग्रहार्थं देशनां करोति, तत्र केषांचिदेवमाशङ्का भवेत्-भगवतोऽपि तीर्थंकृतस्तावत् द्रव्यश्रुतमक्षरध्वनिरूपं वर्तते, द्रव्यश्रुतं च भावश्रुत पूर्वकं, तस्माद् भगवानपि श्रुतज्ञानीति चेत्, तत्राह—

इस शाश्वतमें इतनी विशेषता प्रदर्शित करता है कि केवलज्ञान ऐसा शाश्वत नहीं है किन्तु अप्रतिपाति शाश्वत है, अर्थात् किसी भी कालमें इसका पतन नहीं होता है। निरन्तररूप से सर्वकालमें केवलज्ञान रहता है। केवलज्ञान क्षायिक है, ज्ञानावरण कर्म के क्षय से होता है, और ज्ञानावरण कर्मका क्षय एकरूप होता है, अतः वह भी एकरूप ही है। यद्यपि स्वामी की अपेक्षा भवस्थसिद्ध का आश्रय करके इसके भी भेद बतलाये गये हैं फिर भी ज्ञान की अपेक्षा इसमें कोई भेद नहीं है। मतिज्ञान आदि चार ज्ञान क्षायोपशमिक हैं, इसलिये उनमें क्षयोपशमकी विचित्रता रहती है, और इसी कारण उनमें अनेकविधता बतलाई गई है ॥ सू०२२ ॥

तीर्थंकर भगवान् केवलज्ञान उत्पन्न होने पर तीर्थंकरनामकर्म के उदय होने से समस्त जीवों के अनुग्रह के लिये-कल्याण के लिये देशना

એટલી વિશેષતા દર્શાવે છે કે કેવળજ્ઞાન એવું શાશ્વત નથી પણ અપ્રતિપાતિ શાશ્વત છે, એટલે કે કોઈ પણ કાળે તેનું પતન થતું નથી. નિરંતર રૂપે સર્વકાળે કેવળજ્ઞાન રહે છે. કેવળજ્ઞાન ક્ષાયિક છે, જ્ઞાનાવરણ કર્મના ક્ષયથી થાય છે, અને જ્ઞાનાવરણ કર્મનો ક્ષય એકરૂપ હોય છે, તેથી તે પણ એકરૂપ જ છે. જો કે સ્વામીની અપેક્ષાએ ભવસિદ્ધનો આધાર લઈને તેના પણ ભેદ બતાવવામાં આવેલ છે તો પણ જ્ઞાનથી તેમાં કોઈ ભેદ નથી. મતિજ્ઞાન આદિ ચાર જ્ઞાન ક્ષાયોપશમિક છે, તેથી તેમનામાં ક્ષયોપશમની વિચિત્રતા રહે છે, અને એજ કારણે તેમનામાં અનેકવિધતા બતાવવામાં આવેલ છે. ॥ સૂ. ૨૨ ॥

તીર્થંકર ભગવાન કેવળજ્ઞાન ઉત્પન્ન થતાં તીર્થંકર નામકર્મનો ઉદય હોવાથી સમસ્ત જીવોના અનુગ્રહને માટે દેશના આપે છે, તે વિષે કોઈ એવી આશંકા

मूलम्—गाहा—केवलनाणेणऽत्थे, नाउं जे तत्थ पण्णवणजोग्गा।
ते भासइ तित्थयरो, वइजोगसुअं हवइ सेसं ॥१॥
से तं केवलनाणं, से तं नोइंदियपच्चक्खं। से तं पच्चक्खनाणं ॥ सू० २३ ॥

छाया—केवलज्ञानेनार्थान्, ज्ञात्वा ये तत्र प्रज्ञापनयोग्याः।
तान् भाषते तीर्थंकरो, वाग्योगश्रुतं भवति शेषम् ॥ १ ॥

तदेतत् केवलज्ञानं, तदेतन्नोइन्द्रियप्रत्यक्षं, तदेतत् प्रत्यक्षज्ञानम् ॥ सू० २३ ॥

टीका—'केवलनाणेणऽत्थे०' इत्यादि। तीर्थंकरः अर्थान्=धर्मास्तिकायादीन्, मूर्तामूर्तान् भावान् केवज्ञानेन ज्ञात्वा न तु श्रुतज्ञानेनेत्यर्थः, श्रुतज्ञानस्य क्षायोपशमिकत्वात्, केवलिनश्च ज्ञानावरणीयादेः सर्वथा क्षये सति देशतः क्षयाभावात्

देते हैं। इस पर कोई ऐसी आशंका कर सकता है कि भगवान् की वह देशना अक्षरध्वनिरूप द्रव्यश्रुत है, और द्रव्यश्रुत भावश्रुतपूर्वक होता है, इसलिये इस अक्षरध्वनिरूप देशना के सद्भाव से उनमें भी श्रुतज्ञानीपनेका प्रसंग प्राप्त होना है। इस पर सूत्रकार कहते हैं–'केवलनाणेणत्थे०' इत्यादि।

तीर्थंकर प्रभु धर्मास्तिकायादिक समस्त मूर्त अमूर्त पदार्थों को केवलज्ञान से जान करके उनमें जो प्ररूपणा करने योग्य होते हैं उन पदार्थों को कहते हैं। इस तरह केवली भगवान् का वह वाग्योग–अर्थाभिधायक शब्दसमूह–भावश्रुतस्वरूप नहीं है किन्तु द्रव्यश्रुत स्वरूप है।

भावार्थ—तीर्थंकर प्रभु केवलज्ञान के द्वारा ही समस्त रूपी और अरूपी पदार्थों को जानते हैं, श्रुतज्ञान के द्वारा नहीं, कारण कि श्रुतज्ञान

करी शके छे के भगवाननी ते देशना अक्षरध्वनिरूप द्रव्य श्रुत छे. अने द्रव्य-श्रुत, भावश्रुतपूर्वक होय छे, तेथी आ अक्षरध्वनिरूप देशनाना सद्‌भावथी तेमनामां पण श्रुतज्ञानीपणानो प्रसंग प्राप्त थाय छे, तो ते विषे सूत्रकार कहे छे–"केवलनाणेणत्थे०" इत्यादि.

तीर्थंकर भगवान धर्मास्तिकायादिक समस्त मूर्त अमूर्त पदार्थोने केवळज्ञा-नथी जाणीने तेओमां जे प्ररूपणा करवा लायक होय छे ते पदार्थोने कहे छे. आ रीते केवळी भगवाननो ते वाग्योगअर्थाभिधायक शब्दसमूह–भावश्रुतस्वरूप नथी पण द्रव्यश्रुतस्वरूप छे.

भावार्थ—तीर्थंकर प्रभु केवळज्ञान द्वारा ज समस्त रूपी अने अरूपी पदार्थोने जाणे छे, श्रुतज्ञान द्वारा नहीं, कारण के श्रुतज्ञान क्षायोपशमिक ज्ञान छे,

तीर्थंकरः केवलज्ञानेनैव तत्त्वं जानातीति भावः। तत्र-तेषामर्थानां मध्ये, ये प्रज्ञापनयोग्याः=प्ररूपणायोग्याः, तान् भाषते नेतरान्। प्रज्ञापनीयेष्वपि न सर्वान् प्रज्ञापनीयान् भाषते, तेषामनन्तत्वेन सर्वेषां भाषितुम शक्यत्वात्, आयुषस्तु परिमितत्वात्। किं तु कतिपयानेव अनन्तभागमात्रान् ग्रहीतृशक्त्यपेक्षया योग्यानेवार्थान् भाषते, यो ग्रहीता यावतामर्थानां ग्रहणे योग्य इति बुद्ध्वा देशनां करोतीति भावः। 'वइजोगसुयं हवइ सेसं' इति। 'वाग्योगः श्रुतं भवति शेषम्' इतिच्छाया, अत्र वाग्योगशब्देन भगवतो वाग्योगो गृह्यते।

क्षायोपशमिक ज्ञान है। इस केवलज्ञान की प्राप्ति जीव को तभी होती है कि जब समस्त ज्ञानावरण आदि चार घाति कर्मों का नाश हो चुकता है क्षायोपशमिक ज्ञान की प्राप्ति में तत्तत्कर्मों का देशतः विनाश होता है। इस तरह केवलज्ञान से समस्त पदार्थों को जान कर भी केवली उन समस्त पदार्थों की प्ररूपणा नहीं करते हैं, किन्तु इनमें जो प्रज्ञापनीय पदार्थ होते हैं उन्हीं की प्ररूपणा करते हैं, अप्रज्ञापनीय पदार्थों की नहीं। प्रज्ञापनीय पदार्थों में भी सब की नहीं, किन्तु कितनेक ही पदार्थों की प्ररूपणा करते हैं, कारण वे अनन्त होने से वचन द्वारा कहे नहीं जा सकते, और आयु परिमित है, परिमित आयुमें समस्त प्रज्ञापनीय पदार्थों की प्ररूपणा नहीं हो सकती है, इसलिये प्रज्ञापनीयोंमें से कितनेक अनंतभागमात्र की-जो ग्रहीता (ग्रहण करनेवाले) की शक्ति की अपेक्षा ग्रहण के योग्य होते हैं, अर्थात् ग्रहीता जितने अर्थों के ग्रहण करनेमें योग्य हो उतने अर्थों की वे देशना करते हैं। वाग्योग का

કેવળજ્ઞાન ક્ષાયિક જ્ઞાન છે. આ કેવળજ્ઞાનની પ્રાપ્તિ જીવને ત્યારે જ થાય છે કે જ્યારે સમસ્ત જ્ઞાનાવરણ આદિ ચાર ઘાતિ કર્મોનો નાશ થઇ જાય છે. ક્ષાયોપશમિક જ્ઞાનની પ્રાપ્તિમાં તે તે કર્મોનો દેશતઃ વિનાશ થાય છે. આ રીતે કેવળજ્ઞાનવડે સમસ્ત પદાર્થોને જાણીને પણ કેવળી સમસ્ત પદાર્થોની પ્રરૂપણા કરતાં નથી, પણ તેમનામાં જે પ્રજ્ઞાપનીય પદાર્થો હોય છે તેમની જ પ્રરૂપણા કરે છે, અપ્રજ્ઞાપનીય પદાર્થોની નહીં, પ્રજ્ઞાપનીય પદાર્થોમાં પણ બધાની નહીં, પણ કેટલાક પદાર્થોની જ પ્રરૂપણા કરે છે, કારણ કે તે અનંત હોવાથી વચન દ્વારા કહી શકાતાં નથી અને આયુપરિમિત આયુમાં સમસ્ત પ્રજ્ઞાપનીય પદાર્થોની પ્રરૂપણા થઈ શકતી નથી, તેથી પ્રજ્ઞાપનીયોમાંથી કેટલાક અનંતભાગ માત્રની, જે ગ્રહીતા (ગ્રહણ કરનાર) ની શક્તિની અપેક્ષાએ ગ્રહણને યોગ્ય હોય છે એટલે કે ગ્રહીતા જેટલા અર્થોને ગ્રહણ કરવાને યોગ્ય હોય એટલા અર્થોની તેઓ દેશના કરે છે. "वाग्योग" નું તાત્પર્ય અહીં કેવળજ્ઞાનથી પ્રાપ્ત અર્થોની

अयमर्थः-भगवतः केवलज्ञानोपलब्धार्थाभिधायकः शब्दराशिः प्रोच्यमानस्तस्य भगवतो वाग्योग एव भवति, न तु श्रुतम् , वाग्योगस्य भाषापर्याप्त्यादिनामकर्मोदयहेतुकत्वात् , श्रुतस्य तु क्षायोपशमिकत्वादिति । स च वाग्योगः । शेषं श्रुतं भवतीत्यन्वयः । शेषम्=अप्रधानं श्रुतं द्रव्यश्रुतमित्यर्थः । श्रोतॄणां भावश्रुतकारणत्वात् तदङ्गत्वादप्रधानतया द्रव्यश्रुतमिति व्यवह्रियते, इति भावः ॥

तदेतत् केवलज्ञानं वर्णितम् । तदेतत्-अवधिज्ञान-मनःपर्ययज्ञान-केवलज्ञानरूपं नोइन्द्रियप्रत्यक्षं वर्णितम् । तदेतत् प्रत्यक्षज्ञानं-प्रत्यक्षात्मकं ज्ञानं वर्णितमित्यर्थः ॥ सू० २३ ॥

अथ परोक्षज्ञानं वर्ण्यते—'से किं तं परोक्खनाणं० इत्यादि ।

तात्पर्य यहां केवलज्ञान से उपलब्ध अर्थों की अभिधायिका-कथन करनेवाली-भगवान् के द्वारा उच्चारित हुई उस शब्दराशि से है। वह शब्दसमूह भगवान् का वाग्योग होता है, श्रुतज्ञान नहीं। इस वाग्योग का कारण भाषापर्याप्ति आदि नामकर्म का उदय है। यह वाग्योग भावश्रुतरूप इसलिये नहीं माना जाता है कि भावश्रुत क्षायोपशमिक होता है। द्रव्यश्रुत का इसमें व्यवहार इसलिये किया जाता है कि यह श्रोताओं के भावश्रुत का कारण होता है, अतः भावश्रुत का कारण होने से इसमें द्रव्यश्रुतता है। यह केवलज्ञान का वर्णन हुवा। इस तरह यहां तक अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान रूप नोइन्द्रिय प्रत्वक्ष का वर्णन हुवा। ये तीनों ज्ञान ही प्रत्यक्षज्ञान हैं। इसलिये प्रत्यक्ष ज्ञान का वर्णन हो चुका है ॥ सू०२३ ॥

अव परोक्षज्ञान का वर्णन किया जाता है—'से किं तं परोक्खनाणं ?' इत्यादि ।

અભિધાયિકા-કથન કરનારી-ભગવાન દ્વારા ઉચ્ચારવામાં આવેલ તે શબ્દરાશિ છે. તે શબ્દરાશિ ભગવાનનો વાગ્યોગ હોય છે, શ્રુતજ્ઞાન નહીં. આ વાગ્યોગનું કારણ ભાષાપર્યાપ્તિ આદિ નામ-કર્મનો ઉદય છે. આ વાગ્યોગ તે કારણે ભાવશ્રુતરૂપ નથી મનાતો કે ભાવશ્રુત ક્ષાયોપશમિક હોય છે. દ્રવ્યશ્રુતનો તેમાં વહેવાર તે કારણે કરાય છે કે તે શ્રોતાઓના ભાવશ્રુતનું કારણ હોય છે, તેથી ભાવશ્રુતનું કારણ હોવાથી તેમાં દ્રવ્યશ્રુતતા છે. આ કેવળજ્ઞાનનું વર્ણન થયું. આ રીતે અહીં સુધી અવધિજ્ઞાન, મનઃપર્યયજ્ઞાન, અને કેવળજ્ઞાન નોઇન્દ્રિય પ્રત્યક્ષનું વર્ણન થયું. એ ત્રણેજ્ઞાન જ પ્રત્યક્ષજ્ઞાન છે. તેથી પ્રત્યક્ષ જ્ઞાનનું વર્ણન પૂરૂં થયું ॥ સૂ ૨૩ ॥

હવે પરોક્ષ જ્ઞાનનું વર્ણન કરવામાં આવે છે-"से किं तं परोक्खनाणं ? ઈત્યાદિ.

मूलम्--से किं तं परोक्खनाणं? । परोक्खनाणं दुविहं पण्णत्तं । तं जहा—आभिणिबोहियनाणपरोक्खं च, सुयनाणपरोक्खं च । जत्थ आभिणिबोहियनाणं, तत्थ सुयनाणं, जत्थ सुयनाणं तत्थ आभिणिबोहियनाणं, दोऽवि एयाइं अण्णमण्णमणुगयाइं, तहवि पुण इत्थ आयरिया नाणत्तं पण्णवयंति । अभिणिबुज्झइ त्ति आभिणिबोहियं, सुणेइ-त्ति सुयं, मइपुव्वं जेण सुयं न मई सुयपुव्विया ॥ सू० २४ ॥

छाया—अथ किं तत् परोक्षज्ञानम् ? परोक्षज्ञानं द्विविधं प्रज्ञप्तम् । तद् यथा-आभिनिबोधिकज्ञानपरोक्षं च, श्रुतज्ञानपरोक्षं च । यत्र आभिनिबोधिकज्ञानं तत्र श्रुतज्ञानं, यत्र श्रुतज्ञानं तत्राभिनिबोधिकज्ञानम्, द्वे अप्येते अन्योन्यमनुगते, तथापि पुनरत्राचार्या नानात्वं प्रज्ञापयन्ति—अभिनिबुध्यत इत्याभिनिबोधिकम् । शृणोति-इति श्रुतम् । मतिपूर्वं येन श्रुतं, न मतिः श्रुतपूर्विका ॥ सू० २४ ॥

'से किं तं परोक्खनाणं०' इत्यादि ।

टीका—शिष्यः पृच्छति—'से किं तं परोक्खनाणं' इति । अथ किं तत् परोक्षज्ञानमिति । पूर्वनिर्दिष्टस्य परोक्षज्ञानस्य किं स्वरूपमिति प्रश्नः । उत्तरमाह-'परोक्खनाणं दुविहं पण्णत्तं०' इत्यादि । परोक्षज्ञानं द्विविधं प्रज्ञप्तम् । तत्र परोक्ष-ज्ञानशब्दार्थ उच्यते—परेभ्योऽक्षस्य यज्जायते, तत् परोक्षम् । अपौद्गलिकत्वादरूपी जीवः, पौद्गलिकत्वात् तु रूपीणि द्रव्येन्द्रियमनांसि, ततश्च जीवापेक्षया पराणि=

शिष्य पूछता है—हे भदन्त ! पूर्वनिर्दिष्ट परोक्षज्ञान का क्या स्वरूप है ? उत्तर—परोक्षज्ञान दो प्रकार का बतलाया गया है ! वे दो प्रकार ये हैं—आभिनिबोधिक ज्ञान और श्रुतज्ञान । आत्मा से भिन्न द्रव्य इन्द्रिय और मन से जो जीव को ज्ञान होता है वह परोक्षज्ञान कहलाता है। जीव से इन्द्रियां और मन इसलिये पर—भिन्न मानी गई हैं कि जीव अरूपी हैं और द्रव्य-इन्द्रियां तथा मन, रूपी हैं। जीव अरूपी इसलिये

શિષ્ય પૂછે છે:-હે ભદન્ત! પૂર્વનિર્દિષ્ટ પરોક્ષ જ્ઞાનનું કેવું સ્વરૂપ છે ? ઉત્તર:-પરોક્ષજ્ઞાન બે પ્રકારનું બતાવ્યું છે, તે બે પ્રકાર આ પ્રમાણે છે-આભિનિબોધિક જ્ઞાન અને શ્રુતજ્ઞાન આત્માથી ભિન્ન દ્રવ્યઇન્દ્રિય અને મનથી જીવને જે જ્ઞાન થાય છે તે પરોક્ષજ્ઞાન કહેવાય છે. જીવથી ઇન્દ્રિયો અને મન તે કારણે ભિન્ન માનવામાં આવેલ છે કે જીવ અરૂપી છે, તથા દ્રવ્ય ઇન્દ્રિયો

अन्यानि द्रव्येन्द्रियमनांसि, तेभ्यः पौद्गलिकेभ्यः द्रव्येन्द्रियमनोभ्यः अक्षरस्य= जीवस्य यद् ज्ञानमुपजायते तत् परोक्षज्ञानम् । तद् द्विविधं प्रज्ञप्तं=तीर्थंकरैः प्ररूपितम् । तद् यथा—आभिनिबोधिकज्ञानपरोक्षं च, श्रुतज्ञानपरोक्षं च , इह चकारद्वयं स्वागतानेकभेदसूचकं परस्परसहयोग सूचकं च, अनयोरेवं क्रमेण निर्देशे कारणं 'नाणं पंचविहं पण्णत्तं' इति सूत्रस्य टीकायां प्रागेवोक्तम् । संप्रति स्वाम्यपेक्षया अभेदप्रतिबोधनार्थमाह—'जत्थ आभिणिबोहियनाणं०' इत्यादि । यद्वा-अनयोः परस्परसहयोगं दर्शयति-'जत्थ०' इत्यादि । यत्र पुरुषे आभिनिबोधिकज्ञानं, तत्रैव श्रुतज्ञानमपि, तथा-यत्र श्रुतज्ञानं तत्राभिनिबोधिकज्ञानम् ।

है कि वह अपौद्गलिक है, तथा द्रव्य-इन्द्रियां और मन पौद्गलिक है इसलिये वे रूपी हैं। इसलिये पर-जो द्रव्येन्द्रिय और मन, इनसे जीव को जो ज्ञान उत्पन्न होता है वह परोक्षज्ञान है। वह दो प्रकार का होता है १-आभिनिबोधिकज्ञान और २-श्रुतज्ञान। सूत्रमें दो चकार यह सूचित करते हैं कि इन दोनों ज्ञानों के और भी भेद हैं, तथा इनका परस्परमें सहयोग है। इनदोनों का इस क्रम से निर्देश करने का कारण "नाणं पंचविहं पण्णत्तं" इस सूत्र की टीकामें पहिले प्रदर्शित कर दिया है। अब इन दोनोंमें स्वामीकी अपेक्षा सूत्रकार अभेद प्रदर्शित करने के अभिप्राय से कहते हैं कि जिस आत्मामें आभिनिबोधिक ज्ञान होता है उस आत्मामें श्रुतज्ञान होता है, तथा जिस आत्मामें श्रुतज्ञान होता है उस आत्मामें आभिनिबोधिकज्ञान होता है। इस कथन से इन दोनोंमें सहयोग है यह बात भी जानी जाती है।

અને મન, રૂપી છે. જીવ એ કારણે અરૂપી છે કે તે અપૌદ્ગલિક છે, તથા દ્રવ્ય-ઈન્દ્રિયો અને મન પૌદ્ગલિક છે તે કારણે તે રૂપી છે. તેથી જે દ્રવ્યઈન્દ્રિય અને મન વડે જીવને જે જ્ઞાન ઉત્પન્ન થાય છે તે પરોક્ષ જ્ઞાન છે. તે બે પ્રકારનું હોય છે (૧) આભિનિબોધિક જ્ઞાન અને (૨) શ્રુતજ્ઞાન. સૂત્રમાં બે 'ચકાર' એ સૂચિત કરે છે કે આ બન્ને જ્ઞાનનાં બીજા પણ ભેદ છે, તથા તેમનો પરસ્પરમાં સહયોગ છે, એ બન્નેનો આ પ્રકારે નિર્દેશ કરવાનું કારણ "नाणं पंचविहं पण्णत्तं" આ સૂત્રની ટીકામાં પહેલાં પ્રદર્શિત કરાઈ ગયું છે. હવે એ બન્નેમાં સ્વામીની અપેક્ષાએ અભેદ પ્રદર્શિત કરવાના ઉદ્દેશથી સૂત્રકાર કહે છે-જે આત્મામાં આભિનિબોધિક જ્ઞાન હોય છે તે આત્મામાં શ્રુતજ્ઞાન હોય છે તથા જે આત્મામાં શ્રુતજ્ઞાન હોય છે તે આત્મામાં અભિનિબોધિક જ્ઞાન હોય છે આ કથનથી એ બન્નેમાં સહયોગ છે તે વાત પણ જાણવા મળે છે.

ननु 'यत्राभिनिबोधिकज्ञानं तत्र श्रुतज्ञानम्' इत्युक्ते सति 'यत्र श्रुतज्ञानं तत्राभिनिबोधिकज्ञान'-मिति ज्ञातं भवत्येव किं पुनस्तदुपादानेनेति चेत्, अत्रोच्यते-नियमतो न ज्ञायते तस्मान्नियमावधारणार्थं 'यत्र श्रुतज्ञानं तत्राभिनिबोधिकज्ञान'-मित्युच्यते। नियमावधारणमेव स्पष्टयति-'दोवि एयाइं०' इत्यादि। द्वे अप्येते आभिनिबोधिकश्रुते अन्योन्यमनुगते=परस्परं संबद्धे, अनयोर्नियमेन सहभावोऽस्तीति भावः।

ननु यद्यनयोः परस्परं नियमेन सहभावस्तर्हि अनयोरभेद एवास्तु, कथं भेदेन व्यवहारो भवतीत्यत आह-'तह वि०' इत्यादि। यद्यप्येते उभे ज्ञाने अन्योन्यानुगते

शंका—"जत्थ आभिणिबोहियनाणं तत्थ सुयनाणं" "जहां आभिनिबोधिकज्ञान होता है वहां श्रुतज्ञान होता है, और जहां श्रुतज्ञान होता है वहां आभिनिबोधिकज्ञान होता है तो फिर सूत्रकार को इस बातको प्रकट करने के लिये सूत्रमें "जत्थ सुयनाणं तत्थ आभिणिबोहियनाणं" फिर इन पदों के रखने की क्या आवश्यकता थी ?।

उत्तर—नियम से यह बात नहीं जानी जाती है इसलिये इस प्रकार के नियम के निर्णय के लिये "जत्थ सुयनाणं तत्थ आभिनिबोहियनाणं" ऐसा कहा है। इसी नियम का निर्णय वे 'दोऽवि एयाइं अण्णमण्णमणुगयाइं' इन पदों से करते हैं। इसमें बतलाया गया है कि ये दोनों ज्ञान परस्पर संबद्ध हैं, अर्थात् नियमतः इनका सहयोग है।

शंका—यदि इनका परस्पर में नियमतः सहभाव है तो फिर इनमें कोई भेद नहीं रहना चाहिये, और भेद से जो इनका व्यवहार होता है

શંકા—"जत्थ आभिणिबोहियनाणं तत्थ सुयनाणं" જ્યાં આભિનિબોધિક જ્ઞાન હોય છે ત્યાં શ્રુતજ્ઞાન હોય છે" આટલું કહેવાથી જ જ્યારે એ વાત જાણી શકાય છે કે જ્યાં શ્રુતજ્ઞાન હોય છે ત્યાં આભિનિબોધિકજ્ઞાન હોય છે તો પછી સૂત્રકારને આ વાત પ્રગટ કરવા માટે સૂત્રમાં "जत्थ सुयनाणं तत्थ आभिणिबोहियाणं" એ પદોને મૂકવાની જરૂર શી હતી ?

ઉત્તર—નિયમથી આ વાત જાણી શકાતી નથી તેથી આ પ્રમાણેના નિયમના નિર્ણય માટે "जत्थ सुयनाणं तत्थ आभिनिबोहियानाणं" એમ કહ્યું છે. એજ નિયમનો નિર્ણય તેઓ "दोऽवि एयाइं अण्णमण्णमणुगयाइं" એ પદોથી કરે છે. તેમાં બતાવ્યું છે કે એ બન્ને જ્ઞાન પરસ્પર સંબદ્ધ છે, એટલે કે નિયમતઃ તેમનો સહયોગ છે.

શંકા—જો તેમનો પરસ્પરમાં નિયમતઃ સહભાવ છે તો પછી તેમનામાં કોઈ ભેદ રહેવા જોઈએ નહીં, અને ભેદથી જે તેમનો વ્યવહાર થાય છે તે નષ્ટ

स्तः तथापि पुनरत्र=आभिनिबोधिकश्रुतयोः, आचार्याः-तीर्थंकरगणधराः, नानात्वं भेदं प्रज्ञापयन्ति=प्ररूपयन्ति। कथमिति चेत्, उच्यते-परस्परमनुगतयोरपि लक्षणभेदाद् भेदो दृश्यते। यथा-एकाकाशस्थयोर्धर्माधर्मास्तिकाययोः, तथाहि-धर्मास्तिकायाधर्मास्तिकायौ परस्परं लोलीभावेन एकस्मिन्नाकाशप्रदेशे स्थितौ, तथापि यो गतिपरिणामपरिणतयोर्जीवपुद्गलयोर्गत्युपष्टम्भहेतुर्जलमिव मत्स्यस्य, स खलु असं-

---

वह लुप्त हो जाना चाहिये, परन्तु ऐसा नहीं होता है, भेदव्यवहार तो इनमें होता ही है सो यह भेदव्यवहार कैसे होता है?

समाधान—इसका समाधान-"तह वि पुण इत्थ" इत्यादि सूत्रांश द्वारा सूत्रकार करते हैं, वे इसमें यह बतलाते हैं कि-यद्यपि ये दोनों ज्ञान अन्योन्यानुगत हैं-परस्पर संबद्ध हैं फिर आचार्य-तीर्थंकर गणधर इनमें भिन्नता की प्ररूपणा करते हैं। इस प्ररूपणा का कारण यह है कि परस्पर अनुगत होने पर भी इन दोनों में लक्षण की अपेक्षा भेद है, अतः लक्षणभेद से इनमें भेद आजाता है। जैसे एक आकाशरूप आधार में स्थित धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय में-परस्पर अनुगत होने पर भी लक्षणभेद से भेद माना जाता है। ये दोनों द्रव्य एक आकाशप्रदेश में परस्पर लोलीभाव से स्थित माने गये हैं फिर भी इनमें लक्षणभेद से भिन्नता मानी जाती है। जिस प्रकार स्वयं गमन करने की शक्तिसंपन्न मछली को चलने में जल सहायक होता है उसी प्रकार स्वयं गमन

થવો જોઇએ, પણ એમ થતું નથી. ભેદવ્યવહાર તો તેમનામાં થાય છે જ તો તે ભેદવ્યવહાર કેવી રીતે થાય છે ?

સમાધાનઃ—તેનું સમાધાન "तह वि पुण इत्थ" ઈત્યાદિ સૂત્રાંશ દ્વારા સૂત્રકાર કરે છે. તેઓ તેમાં એમ બતાવે છે કે-જો કે એ બન્ને જ્ઞાન અન્યોન્યાનુગત છે-પરસ્પર સંબદ્ધ છે તો પણ આચાર્ય-તીર્થંકર ગણધર તેમનામાં ભિન્નતાની પ્રરૂપણા કરે છે. આ પ્રરૂપણાનું કારણ એ છે કે પરસ્પર અનુગત હોવા છતાં પણ એ બન્નેમાં લક્ષણની અપેક્ષાએ ભેદ છે, તેથી લક્ષણભેદથી તેમનામાં ભેદ આવી જાય છે. જેમ એક આકાશરૂપ આધારમાં રહેલ ધર્માસ્તિકાય અને અધર્માસ્તિકાયમાં પરસ્પર અનુગત હોવા છતાં લક્ષણ-ભેદથી ભેદ મનાય છે તેમ તે બન્ને જ્ઞાન વિષે પણ ભેદ છે. એ બન્ને દ્રવ્ય એક આકાશપ્રદેશમાં પરસ્પર લોલીભાવથી રહેલ મનાય છે તો પણ તેમનામાં લક્ષણભેદથી ભિન્નતા માનવામાં આવે છે. જે પ્રકારે જાતે ચાલવાની શક્તિવાળી માછલીને ચાલવામાં જળ સહાયક થાય છે, એજ પ્રમાણે જાતે ગમન કરવાની શક્તિવાળા જીવ અને

ख्येयप्रदेशात्मको रूपरहितो धर्मास्तिकायः, तथा यः स्थितिपरिणामपरिणतयोर्जीव-पुद्गलयोरेवस्थित्युपष्टम्भहेतुः श्रान्तपथिकस्य छायेव, स खलु असंख्येयप्रदेशात्मको रूपरहित एवाधर्मास्तिकायः, इति लक्षणभेदाद् भेदो भवति। एवमाभिनिबोधिक श्रुतयोरपि लक्षणभेदाद् भेदो विज्ञेयः। लक्षणभेदमेव दर्शयति-'अभिणिबुज्झइ०' इत्यादि। अभि=अभिमुखयोग्यदेशावस्थितं नियतमर्थमिन्द्रियमनोद्वारेण बुध्यते= परिच्छिनत्ति, आत्मा येनपरिणाम विशेषेण स परिणामविशेषो ज्ञानापरपर्यायः-अभिनिबोधः, स एव=आभिनिबोधिकम्, तथा-शृणोति-वाच्यवाचकभावपुरःसरं श्रवण विषयेण शब्देन सह संस्पृष्टमर्थं परिच्छिनत्ति आत्मा येन परिणामविशेषेण, स परिणामविशेषः श्रुतम्।

करने की शक्तिसंपन्न जीव और पुद्गल को जो चलने में सहायक होता है वह धर्मास्तिकाय है। यह द्रव्य अरूपी एवं असंख्यातप्रदेशी माना गया है। स्थितिक्रिया करने में स्वयं उपादानभूत जीव पुद्गल को स्थित करने में जो पथिक को छाया की तरह सहायक होता है वह अधर्मास्तिकाय है। यह द्रव्य भी असंख्यातप्रदेशी और अरूपी माना गया है। इस प्रकार धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय द्रव्य का लक्षण शास्त्रकारोंने माना है। इस लक्षण की भिन्नता से ही उन दोनों द्रव्यों में भिन्नता मानी गई है। इसी प्रकार आभिनिबोधिक ज्ञान और श्रुतज्ञान न भी लक्षणभेद से भिन्नता मानी हुई है। अभिमुख एवं योग्यदेशमें स्थित नियत अर्थको इन्द्रिय और मन द्वारा आत्मा जिस परिणाम-विशेष से जानता है वह परिणाम विशेष ही आभिनिबोधिक ज्ञान है।

પુદ્ગલને ચાલવામાં જે સહાયક થાય છે તે ધર્માસ્તિકાય છે. આ દ્રવ્ય અરૂપી અને અસંખ્યાત પ્રદેશી મનાય છે. સ્થિતિક્રિયા કરવામાં સ્વયં ઉપાદાન ભૂતજીવ અને પુદ્ગલને સ્થિત કરવામાં જે મુસાફરને છાયાની જેમ સહાયક થાય છે તે અધર્માસ્તિકાય છે. આ દ્રવ્ય પણ અસંખ્યાત પ્રદેશી અને અરૂપી મનાય છે આ પ્રમાણે ધર્માસ્તિકાય અને અધર્માસ્તિકાયનાં લક્ષણો શાસ્ત્રકારોએ માન્યાં છે. આ લક્ષણની ભિન્નતાને કારણે જ તે બન્ને દ્રવ્યોમાં ભિન્નતા માનવામાં આવી છે. એજ પ્રમાણે આભિનિબોધિક જ્ઞાન અને શ્રુતજ્ઞાનમાં પણ લક્ષણભેદથી ભિન્નતા માનવામાં આવી છે. અભિમુખ અને યોગ્ય દેશમાં રહેલ નિયત અર્થને ઇન્દ્રિય અને મન દ્વારા આત્મા જે પરિણામવિશેષથી જાણે છે, તે પરિણામવિશેષ જ આભિનિબોધિક જ્ઞાન છે. શ્રવણ ઈન્દ્રિયના વિષયભૂત થયેલ શબ્દની સાથે સંસ્પૃષ્ટ

ननु यद्येवं श्रुतस्य लक्षणं स्यात् तर्हि य एव श्रोत्रेन्द्रियलब्धिमान् भाषालब्धिमान् वा, तस्यैव श्रुतमुत्पद्येत, न तु तदन्यस्यैकेन्द्रियस्य । तथाहि-यः श्रोत्रेन्द्रियलब्धिमान् भवति, स एव विवक्षितं शब्दं श्रुत्वा तेन शब्देन वाच्यार्थं ज्ञातुं शक्नोति, न तु तदन्यः, तादृशशक्त्यभावात् । योऽपि च भाषालब्धिमान् भवति, सोऽपि द्वीन्द्रियादिरपि प्रायः स्वचेतसि किमपि विकल्प्य (तदनुसारतः) तदभिधानानुमानतः शब्दमुच्चारयति, नान्यथा, ततस्तस्यापि श्रुतं संभाव्यते । यस्तु एकेन्द्रियः, स न श्रोत्रेन्द्रियलब्धिमान्, नापि भाषालब्धिमान्, ततः कथं तस्य श्रुतसंभवः ?। अथ प्रवचने तस्यापि श्रुतमित्युच्यते इति चेत्, तर्हि प्रागुक्तं श्रुतलक्षणं न संगच्छते ?।

श्रवण इन्द्रिय के विषयभूत हुए शब्द के साथ संस्पृष्ट अर्थ को आत्मा वाच्य वाचक संबंधपूर्वक जिस परिणामविशेष के द्वारा जानता है वह आत्मा का परिणामविशेष ही श्रुतज्ञान है।

शंका—श्रुत का जो आपने इस प्रकार लक्षण किया है वह लक्षण जो श्रोत्र-इन्द्रिय लब्धिवाला है अथवा भाषालब्धिवाला है उसीमें घटित होता है, एकेन्द्रियमें नहीं, कारण कि जो श्रोत्रेन्द्रियलब्धिवाला होता है, वही विवक्षित शब्द सुनकर उस शब्द से उसके वाच्य अर्थ को जान सकता है, दूसरा नहीं, क्यों कि उसमें ऐसी शक्ति का अभाव है ?। तथा जो भाषालब्धिसंपन्न द्वीन्द्रियादिक जीव हैं वे भी प्रायः करके अपने चित्तमें कुछ भी विकल्प करके उसी के अनुसार शब्दों का उच्चारण करते हैं, इससे उनमें भी श्रुत की संभावना होती है । जो एकेन्द्रिय जीव हैं वे न तो श्रोत्रेन्द्रिय लब्धिवाले हैं और न भाषालब्धिवाले ही, तो फिर कैसे

અર્થને આત્મા વાચ્ય-વાચકસંબંધપૂર્વક જે પરિણામવિશેષદ્વારા જાણે છે તે આત્માનો પરિણામવિશેષ જ શ્રુતજ્ઞાન છે.

શંકા—આપે શ્રુતનું જે આ પ્રમાણે લક્ષણ કહ્યું છે તે લક્ષણ જ શ્રોત્ર ઈન્દ્રિય લબ્ધિવાળો છે અથવા ભાષાલબ્ધિવાળો છે તેમાં જ ઘટાવી શકાય છે, એકેન્દ્રિયમાં નહીં, કારણ કે જે પ્રાણી શ્રોત્રેન્દ્રિય લબ્ધિવાળું હોય છે એજ વિવક્ષિત શબ્દ સાંભળીને તે શબ્દથી તેનાં વાચ્ય અર્થને જાણી શકે છે, બીજો નહીં, કારણ કે તેનામાં એવી શક્તિનો અભાવ છે ? તથા જે ભાષાલબ્ધિસંપન્ન દ્વીન્દ્રિયાદિક જીવ છે તેઓ પણ સામાન્ય રીતે પોતાનાં ચિત્તમાં કોઈ પણ વિકલ્પ કરીને તેના અનુસાર શબ્દોનું ઉચ્ચારણ કરે છે, તેથી તેમનામાં પણ શ્રુતની સંભાવના હોય છે. જે એકેન્દ્રિય જીવો છે તે શ્રોત્રેન્દ્રિય લબ્ધિવાળા પણ નથી અને ભાષાલબ્ધિવાળા પણ નથી, તો

अत्रोच्यते-इह हि तावदेकेन्द्रियाणामाहारादिसंज्ञा विद्यते, तथा सूत्रेऽनेकशोऽभिधानात्। संज्ञा चाभिलाप उच्यते। उक्तञ्च—

"आहारसंज्ञा आहाराभिलाषः क्षुद्वेदनीयप्रभवः खलु आत्मपरिणामविशेषः" इति, अभिलाषश्च 'ममैवंरूपं वस्तु पुष्टिकारि, तद् यदीदमवाप्यते, ततः समीचीनं भवती'-त्येवं शब्दार्थोल्लेखानुविद्धः स्वपुष्टिनिमित्तभूत-प्रतिनियतवस्तुप्राप्त्यध्यवसायः, स च श्रुतमेव, तस्य शब्दार्थपर्यालोचनात्मकत्वं च-'ममैवंरूपं वस्तु

इनमें श्रुतकी संभावना हो सकती? सो फिर इस प्रकार की मान्यतामें यह पूर्वकथित श्रुतका लक्षण नहीं बनता है।

उत्तर—ऐसा कहना ठीक नहीं है, कारण कि एकेन्द्रिय जीवों के आहार आदिचार संज्ञाएँ हैं, यह बात सूत्रमें अनेक वार बतलाई गई है। जो संज्ञा है वही अभिलाषा है। कहा भी है—

"आहारसंज्ञा आहाराभिलाषः क्षुद्वेदनीयप्रभवः खलु आत्मपरिणाम विशेषः"। आहारसंज्ञा का तात्पर्य है आहार की अभिलाषा, यह जीवों के क्षुधावेदनीय के उदय से होती है। यह आत्मा का एक परिणाम विशेष है। 'मेरे लिये इस प्रकार की वस्तु पुष्टिकारक है, वह वस्तु यदि मुझे मिल जाय तो अच्छा है' इस प्रकार अपनी पुष्टि को निमित्त कर के जो शब्द और उसके अर्थ के उल्लेख से अनुविद्ध प्रतिनियत वस्तु की प्राप्ति का अध्यवसाय होता है यही तो अभिलाषा है, और यह अभिलाषा ही श्रुत है। इस श्रुतमें शब्द और उसके अर्थ की पर्यालोच-

---

પછી તેમનામાં શ્રુતની સંભાવના કેવી રીતે હોઈ શકે? જો એમ કહો કે શાસ્ત્રમાં તો તેમના પણ શ્રુતનો સદ્ભાવ બતાવ્યો છે તેથી અમે એમ કહીએ છીએ તો પછી એ પ્રકારની માન્યતામાં આ પૂર્વકથિત શ્રુતનું લક્ષણ બનતું નથી.

ઉત્તર—એમ કહેવું તે બરાબર નથી. કારણ કે એકેન્દ્રિય જીવોને આહાર આદિ ચાર સંજ્ઞાઓ છે, એ વાત સૂત્રમાં અનેકવાર બતાવવામાં આવેલ છે. જે સંજ્ઞા છે એજ અભિલાષા છે. કહ્યું પણ છે-"आहारसंज्ञा आहाराभिलाषः क्षुद्वेदनीयप्रभवः खलु आत्मपरिणामविशेषः" આહાર સંજ્ઞાનું તાત્પર્ય છે આહારની અભિલાષા, તે જીવોને ક્ષુધાવેદનીયના ઉદયથી થાય છે. આ આત્માનું એક પરિણામવિશેષ છે, "મારે માટે આ પ્રકારની વસ્તુ પુષ્ટિકારક છે, તે વસ્તુ જો મને મળી જાય તો સારું." આ પ્રમાણે પોતાની પુષ્ટિને નિમિત્ત બનાવીને જે શબ્દ અને તેના અર્થના ઉલ્લેખથી અનુવિદ્ધ પ્રતિનિયત વસ્તુની પ્રાપ્તિનો જે

पुष्टिकारि, तद् यदीदमवाप्यते ' इत्येवमादीनां शब्दानामान्तरध्वनिरूपाणामपि विवक्षितार्थवाचकतया प्रवर्तमानत्वात्, श्रुतस्य चैवं लक्षणात्। उक्तञ्च—

इंदियमणोनिमित्तं, जं विन्नाणं सुयाणुसारेणं।
निययत्थो-त्ति समत्थं, तं भावसुयं मई सेसं ॥ १ ॥

छाया—इन्द्रियमनो निमित्तं, यद् विज्ञानं श्रुतानुसारेण।
नियतार्थ इति समस्तं, तद् भावश्रुतं मतिः शेषम् ॥ १ ॥

' सुयाणुसारेणं ' इति। श्रुतानुसारेण=शब्दार्थपर्यालोचनानुसारेण, शब्दार्थ पर्यालोचनं च नाम वाच्यवाचकभावपूर्वकं शब्दसंस्पृष्टस्यार्थस्य प्रतिपत्तिः, केवलमेकेन्द्रियाणामव्यक्तमेव।

नात्मकता यही है कि उसके चित्तमें जो यह आन्तरध्वनि उठ रही है कि-" मुझे यह वस्तु पुष्टिकारक होगी, और वह यदि मुझे मिल जाय तो अच्छा हो " वह शब्दस्वरूप है, एवं इस ध्वनि का जो विवक्षित अभिलषित अर्थ है वह उसका वाच्य है। यही श्रुत का लक्षण है। कहा भी है—

" इंदियमणोनिमित्तं, जं विन्नाणं सुयाणुसारेणं।
निय यत्थो त्ति समत्थं, तं भावसुयं मई सेसं " ॥१॥

श्रुत के अनुसार-शब्द और अर्थ की पर्यालोचना के अनुसार अर्थात् शब्द और अर्थ का वाच्य-वाचक संबंध है और ' इस शब्द का यह अर्थ है ' इस प्रकार वाच्य-वाचकभावपूर्वक शब्दसंस्पृष्ट अर्थ के ज्ञान के अनुसार जो कि केवल एकेन्द्रिय जीवोंमें अव्यक्त है इन्द्रिय और मन के द्वारा जो अपने अर्थ के कथन करनेमें समर्थ ज्ञान होता है वह भावश्रुत है। इससे शेष मतिज्ञान है ॥ १ ॥

પ્રયત્ન થાય છે એજ અભિલાષા છે, અને એ અભિલાષા જ શ્રુત છે. આ શ્રુતમાં શબ્દ અને તેના અર્થની પર્યાલોચનાત્મકતા એજ છે કે તેનાં ચિત્તમાં જે આંતરધ્વનિ નીકળી રહ્યો છે કે " મને આ વસ્તુ પુષ્ટિકારક થશે. અને તે જો મને મળી જાય તો સારું " તે શબ્દ સ્વરૂપ છે. અને આ ધ્વનિનો જે વિવક્ષિત અભિલષિત અર્થ છે તે તેનો વાચ્ય છે. એજ શ્રુતનું લક્ષણ છે. કહ્યું પણ છે—

" इंदिय-मणो-निमित्तं, जं विन्नाणं सुयाणसारे णं।
निययत्थो-त्ति समत्थं, तं भावसुयं मईसेसं ॥ १ ॥"

શ્રુતના પ્રમાણે-શબ્દ અને અર્થની પર્યાલોચના પ્રમાણે એટલે કે શબ્દ અને અર્થનો વાચ્ય, વાચક સબંધ છે. " આ શબ્દનો આ અર્થ છે " આ પ્રકારે વાચ્ય-વાચક-ભાવપૂર્વક શબ્દસંસ્પૃષ્ટ અર્થના જ્ઞાન પ્રમાણે જે કેવળ એકેન્દ્રિય જીવોમાં અવ્યક્ત છે, ઇન્દ્રિય અને મન દ્વારા જે પોતાના અર્થનું કથન કરવાને સમર્થ જ્ઞાન હોય છે તે ભાવશ્રુત છે. તે સિવાયનું મતિજ્ઞાન છે.

किञ्च—एकेन्द्रियाणां श्रुतज्ञानं नाप्यनिर्वचनीयं, तथारूपक्षयोपशमजन्यत्वात्, अन्यथा–आहारादिसंज्ञाऽनुपपत्तेः।

यदप्युच्यते—यद्येवं श्रुतस्य लक्षणं स्यात्, तर्हि य एव श्रोत्रेन्द्रियलब्धिमान् भाषालब्धिमान् वा, तस्यैव श्रुतमुत्पद्यते, न तु तदन्यस्यैकेन्द्रियस्येति, तदप्यसमीक्षितार्थकथनम्, सम्यक्प्रवचनार्थाऽपरिज्ञानार्थाऽपरिज्ञानात्, तथाहि–बकुलादीनां स्पर्शनेन्द्रियातिरिक्तद्रव्येन्द्रियलब्ध्यभावेऽपि तेषां किमपि सूक्ष्मं भावेन्द्रियपञ्चकविज्ञानमभ्युपगम्यते, तथा भाषाश्रोत्रेन्द्रिलब्धिविकलत्वेऽपि तेषां किमपि सूक्ष्मं श्रुतं भवति, अन्यथाऽऽहारादिसंज्ञानुपपत्तेः।

तथा—एकेन्द्रिय जीवो का श्रुतज्ञान अनिर्वचनीय भी नहीं है क्यों कि वह इसी प्रकार के क्षयोपशम से जन्य माना गया है। अन्यथा–यदि वहां श्रुतज्ञान का सद्भाव न माना जावे तो इनमें आहार आदि संज्ञाएँ उत्पन्न नहीं हो सकती।

जो ऐसा कहा है कि–'श्रुत का लक्षण ऐसा माना जावे तो जो श्रोत्रेन्द्रियलब्धिवाले एवं भाषालब्धिवाले प्राणी हैं उन्हीं के श्रुत की उत्पत्ति होगी, उनसे भिन्न एकेन्द्रिय जीव के नहीं' सो ऐसा कथन भी विना विचारे ही कहा गया है, क्यों कि इस कथन से यही मालूम होता है कि कहने वाले को प्रवचन के अर्थ का सम्यक् परिज्ञान नहीं है। बकुल आदि वृक्षों के स्पर्शन इन्द्रिय से अतिरिक्त अन्य द्रव्येन्द्रियलब्धि का यद्यपि अभाव है तो भी उनमें सूक्ष्म भावेन्द्रियपंचकरूप विज्ञान माना गया है। इससे भाषा और श्रोत्रेन्द्रिय लब्धि की विकलता होने पर भी

તથા–એકેન્દ્રિય જીવોનું શ્રુતજ્ઞાન અનિર્વચનીય પણ નથી, કારણ કે તે એ જ પ્રકારના ક્ષયોપશમથી ઉત્પન્ન થયેલ મનાયુ છે. અન્યથા–જો ત્યાં શ્રુતજ્ઞાનનો સદ્ભાવ મનાય નહીં તો તેમનામાં આહારાદિ સંજ્ઞાઓ ઉત્પન્ન થઈ શકે નહીં.

જો એમ કહેવામાં આવે કે–"શ્રુતલક્ષણ એવું માનવામાં આવે તો જે શ્રોત્રેન્દ્રિય લબ્ધિવાળા અને ભાષાલબ્ધિવાળા પ્રાણી છે તેમને શ્રુતની ઉત્પત્તિ થશે, તેમનાથી ભિન્ન એકેન્દ્રિય જીવને નહીં" તો એવું કથન પણ વિચાર્યા વિના કરાયું છે, કારણ કે આ કથનથી એમજ લાગે છે કે કહેનારને પ્રવચનના અર્થનું સમ્યક્ પરિજ્ઞાન નથી. બકુલ આદિ વૃક્ષોમાં સ્પર્શન ઇન્દ્રિય સિવાયની બીજી દ્રવ્યેન્દ્રિયલબ્ધિનો જો કે અભાવ છે તો પણ તેમનામાં સૂક્ષ્મ ભાવેન્દ્રિયપંચકરૂપ વિજ્ઞાન માનવામાં આવ્યું છે. તે કારણે ભાષા અને શ્રોત્રેન્દ્રિય લબ્ધિની

उक्तञ्च—जह सुहुमं भावेंदिय,-नाणं दव्वेंदियावरोहे वि।
तह दव्वसुयाभावे, भावसुयं पत्थिवाईणं ॥ १ ॥
छाया—यथा सूक्ष्मं भावेन्द्रिय-ज्ञानं द्रव्येन्द्रियापरोधेपि।
तथा द्रव्यश्रुताभावे भावश्रुतं पार्थिवादीनाम् ॥ १ ॥

तस्मात् पूर्वोक्तमेव श्रुतलक्षणं समीचीनं नान्यदिति।

तदेवं लक्षणभेदाद् भेदमभिधाय, संप्रति प्रकारान्तरेण भेदमाह-' मइपुव्वं० ' इत्यादि। ' मतिपूर्वं येन श्रुतं, न मतिः श्रुतपूर्विका ' इति। इह पूर्वशब्दार्थः कारणम्, ' पृ पालनपूरणयो '-रित्यस्मादौणादिको वक्प्रत्ययः, पूर्यते=माप्यते

उनमें सूक्ष्म श्रुत ज्ञान का सद्भाव सिद्ध होता है। जो ऐसा न हो तो उनमें आहार आदि संज्ञाएँ नहीं बन सकती। कहा भी है—

" जह सुहुमं भावेंदिय,-नाणं दव्वेंदियावरोहे वि।
तह दव्वसुयाभावे, भावसुयं पत्थिवाईणं " ॥१॥

इसलिये पूर्वोक्त ही श्रुत का लक्षण समीचीन है, इससे अन्य, श्रुत का लक्षण समीचीन नहीं है।

इस प्रकार सूत्रकार लक्षण के भेद से मतिज्ञान और श्रुतज्ञानमें भेद का प्रतिपादन करके अब प्रकारान्तर से इन दोनोंमें भेद का प्रतिपादन करते हैं-" मइपुव्वं जेण सुयं, न मई सुयपुव्विया " (मतिपूर्वं-येन श्रुतं, न मतिः श्रुतपूर्विका) यहां पूर्व शब्द का अर्थ कारणपरक है। " पृ पालनपूरणयोः " पृ धातु से औणादिक वक् प्रत्यय होने पर पूर्व

વિકલતા હોવા છતાં પણ તેમનામાં સૂક્ષ્મ શ્રુતજ્ઞાનનો સદ્ભાવ સિદ્ધ થાય છે. જો એમ ન હોય તો તેમનામાં આહાર આદિ સંજ્ઞાઓ સંભવેજ નહીં. કહ્યું પણ છે-

" जह सुहुमं भावेंदिय,-नाणं दव्वें दियावरोहे वि।
तह दव्वसुयाभावे, भावसुयं पत्थिवाईणं " ॥ १ ॥

અર્થાત્—જેમ દ્રવ્યેન્દ્રિયના સ્વભાવમાં સૂક્ષ્મ ભાવેન્દ્રિયજ્ઞાન હોય છે તેમજ પૃથ્વી આદિ જીવોમાં પણ દ્રવ્યશ્રુતના અભાવમાં ભાવશ્રુત હોય છે (૧).

તેથી પૂર્વોક્ત જ શ્રુતનુ લક્ષણ સમીચીન છે, તેથી જુદું શ્રતનું લક્ષણ સમીચીન નથી.

આ પ્રમાણે લક્ષણના ભેદથી મતિજ્ઞાન અને શ્રુતજ્ઞાનમાં ભેદને સિદ્ધ કરીને હવે સૂત્રકાર બીજા પ્રકારે એ બન્નેના ભેદનું પ્રતિપાદન કરે છે-" मइपुव्वं जेण सुयं, न मई सुयपुव्विया " (मतिपूर्वं येन श्रुतं, न मतिः श्रुतपूर्विका) અહીં પૂર્વ શબ્દનો અર્થ કારણપરક છે. " पृ पालन-पूरणयोः " 'पृ' ધાતુથી

कार्यं येन तत् पूर्वं=कारण-मित्यर्थः, मतिःपूर्वं यस्य तद् मतिपूर्वम्, श्रुतं-श्रुतज्ञानं, तथाहि-श्रुतज्ञानं मत्या पूर्यते=प्राप्यते पाल्यते वा। मतिज्ञानाभावे श्रुतज्ञानं विनश्यतीत्यर्थः। 'न मतिः श्रुतपूर्विका' इति। मतिः श्रुतपूर्विका नास्तीत्यर्थः, तस्मान्मतिश्रुतयोर्महान् भेदः॥ १॥

यच्च यदुत्कर्षापकर्षवशादुत्कर्षापकर्षभाक्, तत् तस्य कारणम्। यथा घटस्य मृत्पिण्डः। एवं मत्युत्कर्षापकर्षवशाच्च श्रुतस्योत्कर्षापकर्षौ, तस्मान्मतिज्ञानं श्रुतज्ञानस्य कारणम्। किञ्च-मत्या श्रुतं पाल्यतेऽवस्थितिं प्राप्यते, इति श्रुतस्य कारणं मतिः, यथा घटस्य मृत्तिका। तथाहि-श्रुतेष्वपि बहुषु शास्त्रेषु यद्विषयकं स्मरणम् ऊहापोहादिना अधिकतरं भवति, तत् शास्त्रं स्फुटतरं प्रतिभाति, न त्वन्यत्। एतच्च स्वानुभवसिद्धं सर्वेषां प्राणिनाम्। ततो यथा घटो मृत्तिकाया अभावे न भवति, मृत्तिकायां तिष्ठन्त्याभवतिष्ठते इति मृत्तिका घटस्य कारणम्, एवं श्रुतस्यापि मतिः कारणम्।

शब्द निष्पन्न हुआ है। मतिज्ञान है कारण जिसका ऐसा श्रुतज्ञान होता है, इस प्रकार "मतिपूर्वं श्रुतम्" इस पदका अर्थ होता है। श्रुतज्ञान मतिज्ञान के द्वारा पूरा किया जाता है, अर्थात् प्राप्त किया जाता है, अथवा पाला जाता है। तात्पर्य यह है कि मतिज्ञान के अभावमें श्रुतज्ञान नष्ट हो जाता है। मतिज्ञान के अभावमें श्रुतज्ञान की उत्पत्ति नहीं होती है। जिस प्रकार यह नियम है उस प्रकार यह नियम नहीं है कि श्रुतज्ञानपूर्वक मतिज्ञान होता है, इसलिये मतिज्ञान और श्रुतज्ञान में बड़ा भारी अन्तर है॥ १॥

श्रुतज्ञान को जो मतिज्ञानकारणवाला माना गया है उसका कारण यह है कि मतिज्ञान की उत्कर्षता से श्रुतज्ञानमें उत्कर्षता एवं अपकर्षता आती है। जैसे कारणभूत मृत्पिण्ड की उत्कर्षता एवं अपकर्षता से कार्यरूप घटमें उत्कर्षता एवं अपकर्षता आती है। इस कारण की अपेक्षा से

ઔણાદિક वक्त्र પ્રત્યય આવતા પૂર્વ શબ્દ બન્યો છે. જેનુ કારણ મતિજ્ઞાન છે, એવું શ્રુતજ્ઞાન, મતિજ્ઞાન દ્વારા પૂરૂં કરાય છે એટલે કે પ્રાપ્ત કરાય છે, અથવા પાલન કરાય છે. તેનું તાત્પર્ય એ છે કે મતિજ્ઞાનના અભાવે શ્રુતજ્ઞાન નાશ પામે છે. મતિજ્ઞાનના અભાવે શ્રુતજ્ઞાનની ઉત્પત્તિ થતી નથી. જે રીતે આ નિયમ છે તે રીતે એવો નિયમ નથી કે શ્રુતજ્ઞાનપૂર્વક મતિજ્ઞાન હોય છે. તેથી મતિજ્ઞાન અને શ્રુતજ્ઞાન વચ્ચે ઘણો મોટો તફાવત છે. ॥૧॥

શ્રુતજ્ઞાનને જે મતિજ્ઞાનકારણવાળું માનેલું છે તેનું કારણ એ છે કે મતિજ્ઞાનની ઉત્કર્ષતા અને અપકર્ષતાથી શ્રુતજ્ઞાનમાં ઉત્કર્ષતા અને અપકર્ષતા આવે છે. જેવી રીતે કારણભૂત માટીના પિંડની ઉત્કર્ષતા અને અપકર્ષતાથી કાર્યરૂપ ઘડામાં ઉત્કર્ષતા અને અપકર્ષતા આવે છે તેવી રીતે મતિજ્ઞાનની

ननु मतिश्रुतयोर्युगपदेव सम्यक्त्वप्राप्तौ समुत्पत्तिः, तदज्ञानयोर्विगमोऽपि युगपदेव भवति, कथं तर्हि मतिपूर्वं श्रुत? मिति किञ्च-श्रुतज्ञानस्य मतिपूर्वकत्व-स्वीकारे मतिज्ञाने समुत्पन्ने तत्समकालं श्रुतज्ञानेऽनभ्युपगम्यमाने श्रुताज्ञानं जीवस्य प्रसज्यते, श्रुतज्ञानानुत्पादेऽद्यापि तदनिवृत्तेः। न चैतदिष्टमिति।

श्रुतज्ञानमें मतिपूर्वकता बतलाई है। "मत्या पाल्यते" इस अपेक्षा श्रुतमें मतिपूर्वकता इस प्रकार है-जिस प्रकार घट मृत्तिका के अभावमें नहीं होता है, किन्तु मृत्तिका के सद्भावमें ही होता है, अतःमृत्तिका घट का कारण है। उसी तरह श्रुतज्ञान भी मति के होने पर ही होता है, उसके अभावमें नहीं। यह बात प्रत्येक प्राणीको स्वानुभव से सिद्ध है कि-अनेक शास्त्रों के सुनने पर भी जिस शास्त्र के विषय का स्मरण रहता है, अथवा जिसका अधिकतर ऊहापोह आदि होता रहता है वही शास्त्र स्फुटतर प्रतिभासित होता है, अन्य शास्त्र नहीं। इससे यह बात सिद्ध हो जाती है कि शास्त्र का-तद्गतविषय का-स्फुटतर प्रतिभासरूप श्रुतज्ञान स्मरणादिरूप मतिज्ञान के आधीन है, जैसे घट की स्थिति मृत्तिका के आधीन है, इससे श्रुतमें मतिपूर्वकता स्पष्ट है।

प्रश्न-जब जीव को सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है तब मतिज्ञान और श्रुतज्ञान की उत्पत्ति एकसाथ होती है, क्यों कि सम्यक्त्वोत्पत्ति से

ઉત્કર્ષતા અને અપકર્ષતાથી શ્રુતજ્ઞાનમાં ઉત્કર્ષતા અને અપકર્ષતા આવે છે. આ કારણની અપેક્ષાએ શ્રુતજ્ઞાનમાં મતિપૂર્વકતા દર્શાવી છે. "मत्या पाल्यते" એ અપેક્ષાએ શ્રુતમાં મતિપૂર્વકતા આ પ્રકારે છે-જેમ માટીને અભાવે ઘડો હોઇ શકતો નથી, પણ માટીના સદ્‌ભાવમાં જ થાય છે, તેથી માટી ઘડાનું કારણ છે. એજ પ્રમાણે શ્રુતજ્ઞાન પણ મતિજ્ઞાનના સદ્‌ભાવમાં જ થાય છે, તેના અભાવમાં નહીં. એ વાત પ્રત્યેક પ્રાણીને સ્વાનુભવથી સિદ્ધ છે કે અનેક શાસ્ત્રોને સાંભળવા છતાં જે શાસ્ત્રના વિષયનું સ્મરણ રહે છે, અથવા જેનો વધારે ઉહાપોહ આદિ થતો રહે છે, એજ શાસ્ત્ર અધિક સ્પષ્ટતાથી પ્રતિભાસિત થાય છે, અન્ય શાસ્ત્ર નહીં, તેથી એ વાત સિદ્ધ થાય છે કે શાસ્ત્રના-તેમાં રહેલ વિષયના સ્પષ્ટપ્રતિભાસરૂપ શ્રુતજ્ઞાન સ્મરણાદિરૂપ મતિજ્ઞાનને આધીન છે, જેમ ઘડાની સ્થિતિ માટીને આધીન છે તે પ્રમાણે શ્રુતજ્ઞાનની સ્થિતિ મતિને આધિન છે. આ કારણે શ્રુતમાં મતિપૂર્વતા સ્પષ્ટ છે.

પ્રશ્ન—જ્યારે જીવને સમ્યકત્વની પ્રાપ્તિ થાય છે ત્યારે મતિજ્ઞાન અને શ્રુતજ્ઞાનની ઉત્પત્તિ એક સાથે થાય છે, કારણ કે સમ્યકત્વની ઉત્પત્તિના પહેલાં

अत्रोच्यते—लब्धिं प्रति मतिश्रुते युगपद् भवतः, न तु तयोरुपयोगो युगपद् भवतीति मतिपूर्वं श्रुतम्। अयं भावः—श्रुतोपयोगो मत्या जन्यते, यदि मत्या न चिन्त्यते तदा श्रुतोपयोगो न जायते।

पहिले जो जीव के मतिअज्ञान एवं श्रुतअज्ञान थे वे उसकी उत्पत्ति होने से एक ही साथ नष्ट हो जाते हैं। जब ऐसी स्थितिमें श्रुतमें मतिपूर्वकता कैसे आसकती है? दूसरी बात एक यह भी है कि जब श्रुतज्ञान को मतिपूर्वक माना जाय तो मतिज्ञान के उत्पन्न होने पर उसके समकाल में श्रुतज्ञान उत्पन्न नहीं हुआ तो उस अवस्था में जीव को श्रुतअज्ञान का प्रसङ्ग आवेगा, क्यों कि जबतक श्रुतज्ञान उत्पन्न नहीं हुआ है तबतक श्रुत अज्ञान का विगम भी नहीं हुआ है तो उस हालत में जीवको ज्ञान और अज्ञान की एक साथ उपस्थिति रहेगी, और ऐसा होना इष्ट नहीं है, क्यों कि अन्धकार और प्रकाश की तरह ज्ञान और अज्ञान एक साथ नहीं रह सकते?।

उत्तर—लब्धि की अपेक्षा मति और श्रुत ये दोनों एक साथ होते हैं, उपयोग की अपेक्षा नहीं, उपयोग की अपेक्षा तो ये दोनों भिन्न२ समय में होते हैं, इसलिये श्रुतज्ञान मतिपूर्वक माना जाता है। तात्पर्य यह है कि यदि मतिज्ञान के द्वारा विचार न किया जावे तो श्रुतोपयोग उत्पन्न नहीं हो सकता है, अतः श्रुतोपयोग का जनक मतिज्ञान है।

જીવમાં જે મતિઅજ્ઞાન અને શ્રુતઅજ્ઞાન હતાં તે તેની ઉત્પત્તિ થવાથી એક સાથે નાશ પામે છે. તો એવી સ્થિતિમાં શ્રુતમાં મતિપૂર્વકતા કેવી રીતે આવી શકે છે? બીજી એક વાત એ પણ છે કે જો શ્રુતજ્ઞાનને મતિપૂર્વક માનવામાં આવે તો જ્યારે મતિજ્ઞાન ઉત્પન્ન થતાં તેના સમકાળે શ્રુતજ્ઞાન ઉત્પન્ન ન થાય તો તે અવસ્થામાં જીવને શ્રુતજ્ઞાનનો પ્રસંગ આવશે, કારણ કે જ્યાં સુધી શ્રુતજ્ઞાન ઉત્પન્ન થયું નથી ત્યાં સુધી શ્રુતઅજ્ઞાનનો વિગમ પણ થયો નથી, તો એ સ્થિતિમાં જીવને જ્ઞાન અને અજ્ઞાનની એક સાથ હાજરી રહેશે, પણ એમ થવું તે ઈષ્ટ નથી, કારણ કે અંધકાર અને પ્રકાશની જેમ જ્ઞાન અને અજ્ઞાન એક સાથે રહી શકતા નથી?

ઉત્તર—લબ્ધિની અપેક્ષાએ મતિ અને શ્રુત એ બન્ને એક સાથે થાય છે, ઉપયોગની અપેક્ષાએ નહીં. ઉપયોગની અપેક્ષાએ તો તે બન્ને ભિન્ન ભિન્ન સમયે થાય છે; તેથી શ્રુતજ્ઞાન મતિપૂર્વક મનાય છે. તાત્પર્ય એ છે કે—જો મતિજ્ઞાન દ્વારા વિચાર ન કરાય તો શ્રુતોપયોગ ઉત્પન્ન થઈ શકતો નથી, તેથી શ્રુતોપયોગનું જનક મતિજ્ઞાન છે.

नन्वेवं मतिरपि श्रुतपूर्वा भवत्येव। तथाहि-शब्दं श्रुत्वा या मतिरुत्पद्यते, सा श्रुतपूर्वेति प्रसिद्धम्। अतो नास्ति विशेषः, यथा मतिपूर्वं श्रुतं, तथा मतिरपि श्रुतपूर्वे ?-ति चेत्,

अत्रोच्यते—मतिः खलु शब्दात्मकेन द्रव्यश्रुतेन जन्यते, इह तु-'न मतिः श्रुतपूर्वा' इत्यस्यायमर्थः-उपयोगरूपाद् भावश्रुतात् मतिर्न भवतीति। यद्वा-मतिर्भावश्रुतकार्यतया निषिध्यते, न तु क्रमेण, क्रमेण तु श्रुतोपयोगाच्च्युतस्य मत्यवस्थानमिष्यते एवेति।

शंका—इस तरह तो मतिज्ञान भी श्रुतपूर्वक होता है, शब्द को सुन कर जो मतिज्ञान उत्पन्न होता है वह श्रुतपूर्वक मतिज्ञान है, यह बात प्रसिद्ध है, इसलिये जैसे मतिपूर्वक श्रुत होता है वैसे ही श्रुतज्ञानपूर्वक मतिज्ञान भी होता है फिर कार्य कारण आदि की अपेक्षा जो इनमें भेद का प्रदर्शन कर रहे हैं वह नहीं बनता है।

उत्तर—यहां मतिज्ञान से श्रुतज्ञान की उत्पत्ति होती है" ऐसा जो कहा जाता है वह भावश्रुत की अपेक्षा लेकर कहा जाता है। भावश्रुतज्ञान उपयोगरूप माना गया है। वह उपयोगरूप भावश्रुतज्ञान मतिज्ञानपूर्वक ही होता है, अब रही बात श्रुत से मति के उत्पन्न होने की, सो शब्दात्मक द्रव्यश्रुत से वह उत्पन्न होती ही है, परन्तु जहां ऐसा कहा जाता है कि "न मतिः श्रुतपूर्वा" उसका तात्पर्य यह है कि उपयोगरूप भावश्रुत से मतिज्ञान उत्पन्न नहीं होता है। अथवा "भावश्रुत का कार्य मति है" यह बात निषिद्ध की गई है। इन दोनों के क्रम

શંકા—આ રીતે તો મતિજ્ઞાન પણ શ્રુતપૂર્વક હોય છે, શબ્દને સાંભળીને જે મતિજ્ઞાન ઉત્પન્ન થાય છે તે શ્રુતપૂર્વક મતિજ્ઞાન છે, એ વાત પ્રસિદ્ધ છે. તેથી જેમ મતિપૂર્વક શ્રુત થાય છે એજ રીતે શ્રુતપૂર્વક મતિજ્ઞાન પણ થાય છે, તો પછી કાર્યકારણ આદિની અપેક્ષાએ તેમનામાં ભેદનું પ્રદર્શન કરો છો તે સંભવે નહીં

ઉત્તર—અહીં "મતિજ્ઞાનથી શ્રુતજ્ઞાનની ઉત્પત્તિ થાય છે" એમ જે કહેવાય છે તે ભાવશ્રુતની અપેક્ષાએ કહેવાય છે. ભાવશ્રુતજ્ઞાન ઉપયોગરૂપ મનાયું છે. તે ઉપયોગરૂપ ભાવશ્રુતજ્ઞાન મતિજ્ઞાનપૂર્વક જ હોય છે. હવે શ્રુતથી મતિ ઉત્પન્ન થવાની વાત બાકી રહી, તો શબ્દાત્મક દ્રવ્યશ્રુતથી તે ઉત્પન્ન થાય છે જ. પણ જ્યાં એમ કહેવામાં આવે છે કે "મતિઃ શ્રુતપૂર્વા" તેનું તાત્પર્ય એ છે કે ઉપયોગરૂપ ભાવશ્રુતથી મતિજ્ઞાન ઉત્પન્ન થતું નથી. અથવા "ભાવશ્રુતનું કાર્ય મતિ છે" એ વાત નિષિદ્ધ કરાયેલ છે. એ બન્નેના ક્રમનો નિષેધ કરાયો

इतश्चापि मतिश्रुतयोर्भेदः, भेदभेदात् । तथाहि–अवग्रहादिभेदादष्टाविंशतिविधं मतिज्ञानम्, अङ्गप्रविष्टाद्यनेकभेदभिन्नं च श्रुतज्ञानम् । २ ।

इन्द्रियोपलब्धिविभागादपि मतिश्रुतयोर्भेदः । तथा चोक्तम्–

" सोइंदियोवलद्धी, होइ सुयं सेसयं तु मइनाणं ।
मोत्तूणं दव्वसुयं, अक्खरलंभो य सेसेसु " ॥ १ ॥

छाया–श्रोत्रेन्द्रियोपलब्धिः, भवति श्रुतं शेषकं तु मतिज्ञानम् ।
मुक्त्वा द्रव्यश्रुतम्, अक्षरलाभश्च शेषेषु ॥ १ ॥

व्याख्या–श्रोत्रेन्द्रियेणोपलब्धिरेव श्रोत्रेन्द्रियोपलब्धिः श्रुतं भवति, सर्वं वाक्यं सावधारणमिति न्यायाश्रयणात् । इह श्रोत्रेन्द्रियोपलब्धिरपि या श्रुताऽनुसारिणी सैव श्रुतमुच्यते, या तु अवग्रहेहावायरूपा सा मतिः । यदि श्रोत्रेन्द्रियेणोपलब्धिः श्रुतमेवेत्युच्यते, तर्हि मतेरपि श्रुतत्वमापद्यते, तच्चानिष्टम्, अतः श्रोत्रेन्द्रियेणोपलब्धिरेव श्रुतमित्यवगन्तव्यम् ।

का निषेध नहीं किया गया है, क्यों कि श्रुतोपयोग से च्युत हुए जीव का क्रम से मति में अवस्थान माना ही जाता है ।

भेदों की भिन्नता की अपेक्षा को लेकर भी मतिज्ञान और श्रुतज्ञान में भिन्नता आती है, क्यों कि अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा आदिके भेद से मतिज्ञान अठाईस प्रकार का है, तथा अंगप्रविष्ट और अंगबाह्य आदिके भेद से श्रुतज्ञान अनेक प्रकार का माना गया हैं ॥ २ ॥

इन्द्रियों के द्वारा जो उपलब्धि होती है सो उस उपलब्धि के विभाग से भी मति और श्रुत में भेद है । कहा भी है–

" सोइंदियोवलद्धी, होइ सुयं सेसयं तु मइनाणं ।
मोत्तूणं दव्वसुयं, अक्खरलंभो य सेसेसु " ॥ १ ॥

નથી, કારણ કે શ્રુતોપયોગથી ચ્યુત થયેલ જીવના ક્રમથી મતિમાં અવસ્થાન મનાય છે જ.

ભેદોની ભિન્નતાની અપેક્ષાએ ગણતાં પણ મતિજ્ઞાન અને શ્રુતજ્ઞાનમાં ભિન્નતા આવે છે કારણ કે અવગ્રહ ઈહા, અવાય અને ધારણા આદિના ભેદથી મતિજ્ઞાન અઠ્ઠાવીસ પ્રકારનું, તથા અંગપ્રવિષ્ટ અને અંગબાહ્ય આદિના ભેદથી શ્રુતજ્ઞાન અનેક પ્રકારનું મનાય છે. ॥ ૨ ॥

ઇન્દ્રિયો દ્વારા જે ઉપલબ્ધિ થાય છે તે ઉપલબ્ધિના વિભાગથી પણ મતિ અને શ્રુતના ભેદ છે. કહ્યું પણ છે—

" सोइंदियोवलद्धी, होइ सुयं सेसयं तु मइनाणं ।
मोत्तूणं दव्वसुयं, अक्खरलंभो य सेसेसु " ॥१॥

तथा–शेषं यत् चक्षुरादीन्द्रियोपलब्धिरूपं ज्ञानं तन्मतिज्ञानं भवतीत्यन्वयः। तु–शब्दोऽनुक्तसमुच्चयार्थः। ततश्च—श्रोत्रेन्द्रियोपलब्धिरपि काचिद् अवग्रहेहावायरूपा मतिज्ञानम्, इतोऽन्यत् खलु चक्षुरादीन्द्रियोपलब्धिरूपं मतिज्ञानमस्त्येवेति भावः।

इस गाथा का तात्पर्य इस प्रकार है–जितने भी वाक्य होते हैं वे सब अवधारण सहित होते हैं, इस न्याय के अनुसार यहां जो उपलब्धि श्रोत्रेन्द्रियोपलब्धि, अवग्रह, ईहा और अवायरूप हो वह श्रुत नहीं है, वह तो मतिज्ञानरूप ही है, कारण कि अवग्रहादिरूप श्रोत्रेन्द्रियोपलब्धि श्रुतानुसारणी नहीं होती है। यदि ऐसा कहा जावे कि "श्रोत्रेन्द्रियोपलब्धिः श्रुतमेव" श्रोत्रेन्द्रियोपलब्धि श्रुत ही है तो इस प्रकार के कथन से मतिज्ञान में भी श्रुतज्ञानपने का प्रसंग प्राप्त हो सकता है, अतः ऐसा न कहकर जो ऐसा कहा है कि "श्रोत्रेन्द्रियोपलब्धिरेव श्रुतम्" श्रोत्र इन्द्रिय से उत्पन्न हुआ ज्ञान ही श्रुत है, यही निर्दोष है। इस कथन से यह बात भी सिद्ध हो जाती है कि जब श्रोत्रेन्द्रियोपलब्धि श्रुतानुसारिणी नहीं होती है तब तो वह मतिज्ञानरूप होती है, और जब वह श्रुतानुसारिणी होती है तब वह श्रुतज्ञानरूप होती है।

(शेषकं तु मतिज्ञानम्) जो उपलब्धि चक्षु आदि इन्द्रियों से उत्पन्न होती है वह उपलब्धिरूपज्ञान मतिज्ञान है, श्रुतज्ञान नहीं है। गाथा में

આ ગાથાનો ભાવાર્થ આ પ્રમાણે છે–જેટલા વાકયો હોય છે તે બધા અવધારણસહિત હોય છે. આ ન્યાયાનુસાર અહીં જે ઉપલબ્ધિ શ્રોત્રેન્દ્રિયથી ઉત્પન્ન થઈ છે. એજ ઉપલબ્ધિ શ્રુતજ્ઞાન માનવામાં આવેલ છે. શ્રોત્રેન્દ્રિયોપલબ્ધિ પણ અહીં એજ શ્રુતજ્ઞાનરૂપ સમજવી કે જે શ્રુતાનુસારિણી હોય. જે શ્રોત્રેન્દ્રિયોપલબ્ધિ અવગ્રહ, ઈહા, અને અવાયરૂપ હોય તે શ્રુત નથી, તે તો મતિજ્ઞાનરૂપ જ છે, કારણ કે અવગ્રહાદિરૂપ શ્રોત્રેન્દ્રિયોપલબ્ધિ શ્રુતાનુસારિણી હોતી નથી. જો એમ કહેવામાં આવે કે "श्रोत्रेन्द्रियोपलब्धिः श्रुतमेव" શ્રોત્રેન્દ્રિયોપલબ્ધિ શ્રુત જ છે તો આ પ્રકારના કથનથી મતિજ્ઞાનમાં પણ શ્રુતજ્ઞાનપણાનો પ્રસંગ પ્રાપ્ત થઇ શકે છે. તેથી એમ ન કહેતાં એમ જે કહેલ છે કે "श्रोत्रेन्द्रियोपलब्धिरेव श्रुतम्" શ્રોત્ર ઇન્દ્રિયથી ઉત્પન્ન થયેલ જ્ઞાન જ શ્રુત છે. એજ નિર્દોષ છે. આ કથનથી એ વાત પણ સિદ્ધ થઈ જાય છે કે જ્યારે શ્રોત્રેન્દ્રિયોપલબ્ધિ શ્રુતાનુસારિણી હોતી નથી ત્યારે તો તે મતિજ્ઞાનરૂપ હોય છે, અને જ્યારે તે શ્રુતાનુસારિણી હોય છે ત્યારે તે શ્રુતજ્ઞાનરૂપ હોય છે.

(शेषकं तु मतिज्ञानम्) જે ઉપલબ્ધિ ચક્ષુ આદિ ઈન્દ્રિયોથી ઉત્પન્ન થાય છે તે ઉપલબ્ધિરૂપ જ્ઞાન મતિજ્ઞાન છે, શ્રુતજ્ઞાન નથી. ગાથામાં આવેલ "तु"

तदेवं चक्षुरादीन्द्रियोपलब्धेः सामान्यतो मतिज्ञानरूपत्वं प्राप्तमित्यतस्तदपवादमाह—'मोत्तूणं दव्वसुयं' इति । मुक्त्वा द्रव्यश्रुतमिति । अयं भावः—द्रव्यश्रुतं मुक्त्वा=विहाय, यः शेषेषु—चक्षुरादीन्द्रियेषु अक्षरलाभः—शब्दार्थपर्यालोचनात्मकः सोऽपि श्रुतम्, न तु केवलोऽक्षरलाभः, ईहादिरूपायां मतावपि केवलस्याक्षरलाभस्य संभवात् ।

ननु यदि शेषेन्द्रियेषु अक्षरलाभः श्रुतं, तर्हि यदवधारणं पूर्वमुक्तं-'श्रोत्रेन्द्रियोपलब्धिरेव श्रुत'-मिति तद्विरुध्यते, शेषेन्द्रियोपलब्धेरपि संप्रति श्रुतत्वेन प्रतिपन्नत्वादितिचेत्, उच्यते—इह शेषेन्द्रियाक्षरलाभः स एव गृह्यते यः—खलु शब्दार्थपर्यालोचनानुसारी चाक्षरलाभः श्रोत्रेन्द्रियोपलब्धिकल्प इति न कश्चिद्दोषः ॥३॥

आया हुआ 'तु' शब्द यह बतलाता है कि श्रोत्र इन्द्रिय से जन्य भी कोई२ उपलब्धि जो अवग्रह, ईहा एवं अवायरूप होती है वह मतिज्ञान है । इस प्रकार चक्षुरादि इन्द्रियजन्य उपलब्धि में सामान्यरूप से मतिज्ञानरूपता प्राप्त होने पर सूत्रकार इसमें भी संशोधन उपस्थित करते हुए कहते हैं कि-"मोत्तूणं दव्वसुयं"-"मुक्त्वा द्रव्यश्रुतम्" द्रव्यश्रुत को छोड़कर शेष इन्द्रियों में जो अक्षरलाभ होता है-शब्द और उसके अर्थकी पर्यालोचना होती है-वह भी श्रुतज्ञान है, मतिज्ञान नहीं है । मात्र अक्षर का लाभ श्रुतज्ञान नहीं है किन्तु शब्द और उसके अर्थकी पर्यालोचनात्मकतारूप जो अक्षरलाभ है वही श्रुत है, कारण केवल अक्षरलाभ तो ईहादिरूप मतिज्ञान में भी संभवित होता है ।

शंका—यदि शेष इन्द्रियों में अक्षरलाभ श्रुत है तो पूर्व में जो ऐसा अवधारण किया है कि-"श्रोत्रेन्द्रियोपलब्धिरेव श्रुतम्" वह ठीक

શબ્દ એ બતાવે છે કે શ્રોત્ર ઇન્દ્રિયથી જન્ય પણ કોઈ કોઈ ઉપલબ્ધિ જે અવગ્રહ, ઈહા, અને અવાયરૂપ હોય છે તે મતિજ્ઞાન છે. આ પ્રમાણે ચક્ષુ વગેરે ઇન્દ્રિયજન્ય ઉપલબ્ધિમાં સામાન્યરૂપે મતિજ્ઞાનરૂપતા પ્રાપ્ત હોવાથી સૂત્રકાર તેમાં પણ સંશોધન રજુ કરતા કહે છે કે-"मोत्तूणं दव्वसुयं"-"मुक्त्वा, द्रव्यश्रुतम्" દ્રવ્યશ્રુતને છોડીને બાકીની ઈન્દ્રિયોમાં જે અક્ષરલાભ થાય છે-શબ્દ અને તેના અર્થની પર્યાલોચના થાય છે. તે પણ શ્રુતજ્ઞાન છે મતિજ્ઞાન નથી. માત્ર અક્ષરનો લાભ શ્રુતજ્ઞાન નથી પણ શબ્દ અને તેના અર્થની પર્યાલોચનાત્મકતારૂપ જે અક્ષરલાભ છે એજ શ્રુત છે, કારણ કે કેવળ અક્ષરલાભતો ઈહાદિરૂપ મતિજ્ઞાનમાં પણ સંભવિત હોય છે.

શંકા—જો બાકીની ઇન્દ્રિયોમાં અક્ષરલાભ શ્રુત છે તો પહેલા જે એવું અવધારણ કર્યું છે કે "श्रोत्रेन्द्रियोपलब्धिरेव श्रुतम्" તે યોગ્ય લાગતું નથી.

अयमपि मतिश्रुतयोर्भेदः–मतिज्ञानं वल्कलसमं कारणत्वात्। श्रुतज्ञानं तु सुंवसमं–(वल्कलनिष्पन्नरज्जुसमं) तत्कार्यत्वात्। ततश्च यथा–वल्कलसुंब-योर्भेदस्तथा मतिश्रुतयोरपि ॥ ४ ॥

पुनरप्यनयोरयं भेदः–मतिज्ञानम्–अनक्षरं साक्षरं च। श्रुतज्ञानं तु साक्षरमेव–अक्षरानुगतमेव। तथाहि–अवग्रहज्ञानमनक्षरं, तस्य सामान्यमात्रप्रतिभासकतया नि-र्विकल्पत्वात्। ईहादिज्ञानं तु साक्षरं, तस्य परमर्शादिरूपतयाऽवश्यं वर्णनिरूपित-त्वात्। श्रुतज्ञानं तु साक्षरमेव, अक्षरमन्तरेण शब्दार्थपर्यालोचनस्यानुपपत्तेः ॥५॥

नहीं बैठता है, कारण कि–आप तो शेषेन्द्रियोपलब्धि को भी श्रुतरूप से अब प्रतिपादित कर रहे हैं।

उत्तर—शेषेन्द्रियोपलब्धि को श्रुतज्ञानपने का प्रतिपादन नहीं किया गया है, किन्तु शब्दार्थपर्यालोचनरूप अक्षरलाभ ही श्रुतज्ञान कहा है। यह शब्दार्थपर्यालोचनरूप अक्षरलाभश्रोत्रेन्द्रियोपलब्धि जैसा ही होता है, अतः इसमें कोई दोष नहीं है ॥ ३ ॥

मतिज्ञान और श्रतज्ञान में एक यह भी भेद है कि मतिज्ञान वल्कल के समान है और श्रुतज्ञान सुंब के समान है। जिस प्रकार वल्कल से सुंब (वल्कल की बनी दोरी) की उत्पत्ति होती है उसी प्रकार मतिज्ञान से श्रुतज्ञान की उत्पत्ति होती है, अतः कार्य और कारण की अपेक्षा इनमें भेद बन जाता है ॥ ४ ॥

मतिज्ञान और श्रुतज्ञान में भेद होने का कारण एक यह भी है कि मतिज्ञान अक्षर और अनक्षर दोनों रूप होता है तब कि श्रुतज्ञान अक्षरा-त्मक ही होता है। मतिज्ञान के भेद जो अवग्रह आदि हैं इनमें अवग्रह-

---

કારણ કે આપ તો શેષેન્દ્રિયોપલબ્ધિ પણ શ્રુતરૂપે હવે પ્રતિપાદન કરી રહ્યા છો.

ઉત્તર—શેષેન્દ્રિયોપલબ્ધિ થી શ્રુતજ્ઞાનપણાનુ પ્રતિપાદન કરવામાં આવ્યું નથી, પણ શબ્દાર્થપર્યાલોચનરૂપ અક્ષરલાભ શ્રોત્રેન્દ્રિયોપલબ્ધિ જેવો જ હોય છે, તેથી તેમાં કોઈ દોષ નથી ॥ ૩ ॥

મતિજ્ઞાન અને શ્રુતજ્ઞાનમાં એક આ પણ ભેદ છે કે મતિજ્ઞાન વલ્કલનાં જેવું છે અને શ્રુતજ્ઞાન સુંબનાં જેવું છે. જે પ્રમાણે વલ્કલમાંથી સુંબ (વલ્કલની વણેલી દોરી)ની ઉત્પત્તિ થાય છે, એજ રીતે મતિજ્ઞાનથી શ્રુતજ્ઞાનની ઉત્પત્તિ થાય છે, તેથી કાર્ય અને કારણની અપેક્ષાએ તેમનામાં ભેદ પડી જાય છે ॥ ૪ ॥

મતિજ્ઞાન અને શ્રુતજ્ઞાનમાં ભેદ હોવાનું એક કારણ એ પણ છે કે મતિજ્ઞાન અક્ષર અને અનક્ષર બન્નેરૂપ હોય છે, ત્યારે શ્રુતજ્ઞાન અક્ષરાત્મક જ હોય છે, મતિજ્ઞાનના અવગ્રહ આદિ જે ભેદ છે તેમનામાં અવગ્રહજ્ઞાન તો

पुनरप्ययं मतिश्रुतयोर्भेदः—मूकवत् स्वप्रत्यायकं मतिज्ञानं, अमूकवत् स्वपरप्रत्यायकं श्रुतज्ञानम् ॥ ६ ॥

ज्ञान तो अनक्षरात्मक है, क्यों कि इसमें जो वस्तु का प्रतिभास होता है वह सामान्यरूप से ही होता है, इसलिये इस ज्ञान में किसी भी प्रकार का विकल्प उत्पन्न नहीं होता है। ईहा आदि ज्ञान अक्षरात्मक है, क्यों कि अवग्रह से गृहीत पदार्थका ही इसमें परामर्श आदि होता है। "श्रुतज्ञान साक्षर ही है" इसका तात्पर्य यह है कि जबतक शब्द का श्रवण नहीं होता है तबतक उस शब्द और उसके अर्थ के विषय में पर्यालोचन नहीं हो सकता है। शब्द और अर्थ के पर्यालोचनस्वरूप ही तो श्रुतज्ञान माना गया है, इसलिये 'श्रुतज्ञान साक्षर ही है' ऐसा जानना चाहिये ॥ ५ ॥

स्वप्रत्यायक एवं स्व-परप्रत्यायक की अपेक्षा भी मति एवं श्रुत में भेद है। मतिज्ञान मूक की तरह स्वप्रत्यायक ही है। जिस प्रकार वचन का अभाव होने से मूक परप्रत्ययक नहीं होता है उसी प्रकार मतिज्ञान भी द्रव्य श्रुतरूप वचनात्मक नहीं होने से परप्रत्यायक नहीं होता है। अपने प्रत्यय के हेतुभूत वचनों के सद्भाव होने से श्रुत में स्व और पर-प्रत्यायकता बोलनेवाले की तरह सिद्ध ही होती हैं। इस तरह से भी मति और श्रुतज्ञान में भेद है ॥ ६ ॥

અનક્ષરાત્મક છે, કારણ કે તેમાં જે વસ્તુનો પ્રતિભાસ થાય છે તે સામાન્યરૂપે થાય છે, તેથી તે જ્ઞાનમાં કોઈ પણ પ્રકારનો વિકલ્પ ઉત્પન્ન થતો નથી. ઈહા આદિ જ્ઞાન અક્ષરાત્મક છે, કારણ કે અવગ્રહથી ગ્રહણ થયેલ પદાર્થનો જ તેમાં પરામર્શ આદિ થાય છે, "શ્રુતજ્ઞાન સાક્ષર જ છે" તેનું તાત્પર્ય એ છે કે જ્યાં સુધી શબ્દ સંભળાતો નથી ત્યાં સુધી તે શબ્દ અને તેના અર્થના વિષયમાં પર્યાલોચના થઈ શકતી નથી. શબ્દ અને અર્થના પર્યાલોચનસ્વરૂપ શ્રુતજ્ઞાન મનાયું છે, તે કારણે "શ્રુતજ્ઞાન સાક્ષર જ છે" એમ સમજવું જોઈએ ॥ ૫ ॥

સ્વપ્રત્યાયક અને સ્વ-પર-પ્રત્યાયકની અપેક્ષાએ પણ મતિ અને શ્રુતમાં ભેદ છે. મતિજ્ઞાન મૂક (મૂંગા)ની જેમ સ્વપ્રત્યાયક જ છે. જે પ્રમાણે વચનનો અભાવ હોવાથી મૂક પરપ્રત્યાયક હોતો નથી એજ પ્રમાણે મતિજ્ઞાન પણ દ્રવ્યશ્રુતરૂપ વચનાત્મક નહીં હોવાથી પરપ્રત્યાયક હોતું નથી. પોતાના પ્રત્યયના હેતુભૂત વચનોનો સદ્ભાવ હોવાથી શ્રુતમાં સ્વ અને પર પ્રત્યાયકતા બોલનારની જેમ સિદ્ધ જ હોય છે. આ રીતે પણ મતિ અને શ્રુતમાં ભેદ છે ॥ ૬ ॥

किञ्च—आवरणभेदाद् मतिश्रुतयोर्भेदः ॥ ७ ॥ सू० २४ ॥

यथा मतिश्रुतयोः कार्यकारणभावात् परस्परं भेदः, तथा-सम्यग्दर्शन-मिथ्यादर्शन-परिग्रहभेदात् स्वरूपतोऽपि तयोर्भेद इति प्रदर्शयितुमाह—

मूलम्--**अविसेसिया मई मइनाणं च, मइ अन्नाणं च। विसेसिया सम्मदिट्ठिस्स मई मइनाणं, मिच्छादिट्ठिस्स मई मइ-अन्नाणं। अविसेसियं सुयं सुयनाणं च सुय-अन्नाणं च। विसेसियं सुयं सम्मद्दिट्ठिस्स सुयं सुयनाणं, मिच्छदिट्ठिस्स सुयं सुय अन्नाणं ॥ सू० २५ ॥**

छाया-अविशेषिता मतिर्मतिज्ञानं च, मत्यज्ञानं च। विशेषिता सम्यग्दृष्टेर्मतिर्मतिज्ञानं, मिथ्यादृष्टेर्मतिर्मत्यज्ञानम्। अविशेषितं श्रुतं-श्रुतज्ञानं च, श्रुताज्ञानं च। विशेषितं श्रुतं-सम्यग्दृष्टेः श्रुतं श्रुतज्ञानं, मिथ्यादृष्टेः श्रुतं-श्रुताऽज्ञानम्॥सू०२५॥

टीका—'अविसेसिया' इत्यादि। अविशेषिता=स्वामिविशेषपरिग्रहरहिता सामान्यरूपेण विवक्षितेत्यर्थः, मतिज्ञानम्, मत्यज्ञानं चेत्युभयमुच्यते। विशेषिता=स्वामिविशेषपरिगृहीता स्वामिना विशेष्यमाणा, विशेषरूपेण विवक्षिता मतिः स्वामिविशेषापेक्षया मतिः सम्यग्दृष्टेर्मतिज्ञानमुच्यते, सम्यग्दृष्टिमतेर्यथावस्थितार्थ-

---

मतिज्ञान का कारण मतिज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम, तथा श्रुतज्ञान का कारण श्रुतज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम है। इस आवरण के भेद से भी इन दोनों में भिन्नता आती है ॥ ७ ॥ सू० २४ ॥

जिस प्रकार मतिज्ञान और श्रुतज्ञान में कार्यकरणभाव को लेकर भेद प्रदर्शित किया गया है उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि के परिग्रह (स्वीकृति) के भेद से इन दोनों में स्वरूपतः भी भेद है, इस बात को सूत्रकार दिखलाते हैं—"अविसेसिया मई" इत्यादि।

મતિજ્ઞાનનું કારણ મતિજ્ઞાનાવરણીય કર્મનો ક્ષયોપશમ, તથા શ્રુતજ્ઞાનનું કારણ શ્રુતજ્ઞાનાવરણીય કર્મનો ક્ષયોપશમ છે. આ આવરણના તફાવતને લીધે પણ એ બન્નેમાં ભિન્નતા છે. ॥ ૭ ॥ સૂ. ૨૪ ॥

જે રીતે મતિજ્ઞાન અને શ્રુતજ્ઞાનમાં કાર્યકારણભાવને લીધે ભેદ દર્શાવાયો છે, એજ રીતે સમ્યગ્દૃષ્ટિ અને મિથ્યાદૃષ્ટિના પરિગ્રહ (સ્વીકૃતિ) ના ભેદથી એ બન્નેમાં સ્વરૂપતઃ પણ ભેદ છે, એ વાતને સૂત્રકાર બતાવે છે-

"अविसेसिया मई०" ઇત્યાદિ.

ग्राहकत्वात्, निश्चयनयदर्शनेन स्वकार्यप्रसाधकत्वाच्च। मिथ्यादृष्टेस्तु मतिर्मत्यज्ञानमुच्यते, मिथ्यादृष्टिमतेरेकान्तावलम्बितया यथावस्थितार्थग्रहणाभावात् तत्त्वतो मतिफलरहितत्वाच्च।

विशेष स्वामी के द्वारा ग्रहण करने की अपेक्षा से अविशेषित मति मतिज्ञान और मत्यज्ञान, इन दोनों रूप मानी जाती है। अर्थात् सम्यग्दृष्टि मिथ्यादृष्टि की विवक्षा न करके सामान्यरूप से विवक्षित मति दोनों प्रकार को बतलाती है, परन्तु जब मति में सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि के द्वारा परिगृहीत होने की अपेक्षा विशेषता आती है तब वही मति यदि सम्यग्दृष्टि के द्वारा परिगृहीत है तो वह मतिज्ञान कही जाती है, और जब वह यदि मिथ्यादृष्टिरूप स्वामी-विशेष से परगृहीत हुई है तो वही मति मतिअज्ञानरूप मानी जाती है। सम्यग्दृष्टि की मति मतिज्ञान इसलिये मानी जाती है कि वह यथावस्थित अर्थ की ग्राहक होती है, तथा निश्चयनय को साध्य बनाकर उसीके अनुसार अपने कार्यों की साधिका होती है, इस दृष्टि द्वारा व्यवहारधर्म का लोप नहीं किया जाता है, परन्तु लक्ष्य कोटि में निश्चयनय रहता है। मिथ्यादृष्टि की मति मतिअज्ञानरूप इसलिये मानी जाती है कि वह एकान्त का अवलम्बन करके वस्तु का प्रतिपादन करती है, इसलिये उससे यथावस्थित अर्थ के ग्रहण के अभाव में वह मति तत्त्वविचारणारूप फल से रहित होती है।

વિશેષ સ્વામી દ્વારા ગ્રહણ કરવાની અપેક્ષાએ અવિશેષિત મતિ મતિજ્ઞાન અને મત્યજ્ઞાન, એ બન્ને રૂપ માનવામાં આવી છે. એટલે કે સમ્યગ્દૃષ્ટિ મિથ્યા દૃષ્ટિની વિવક્ષા ન કરીને સામાન્યરૂપે વિવક્ષિત મતિ બન્ને પ્રકારને દર્શાવે છે, પણ જ્યારે મતિમાં સમ્યગ્દૃષ્ટિ અને મિથ્યાદૃષ્ટિ દ્વારા પરિગૃહીત થવાની અપેક્ષાએ વિશેષતા આવે છે ત્યારે એજ મતિ જો સમ્યગ્દૃષ્ટિ દ્વારા પરિગૃહીત હોય તો તે મતિજ્ઞાન કહેવાય છે, અને જો તે મિથ્યાદૃષ્ટિરૂપ સ્વામી વિશેષથી પરિગૃહીત હોય તો એજ મતિ મતિઅજ્ઞાનરૂપ મનાય છે સમ્યગ્દૃષ્ટિની મતિ મતિજ્ઞાન તે કારણે મનાય છે કે તે યથાવસ્થિત અર્થને ગ્રહણ કરનારી હોય છે તથા નિશ્ચયનયને સાધ્ય બનાવીને તેના અનુસાર પોતાના કાર્યોની સાધિકા થાય છે. આ દૃષ્ટિ દ્વારા વ્યવહાર ધર્મનો લોપ કરાતો નથી પણ લક્ષ્ય કોટિમાં નિશ્ચય નય રહે છે મિથ્યાદૃષ્ટિની મતિ મતિઅજ્ઞાનરૂપ તે કારણે માનવામાં આવી છે કે તે એકાન્તનું અવલંબન કરીને વસ્તુનું પ્રતિપાદન કરે છે, તેથી તેના વડે યથાવસ્થિત અર્થ ગ્રહણ થતો નથી. યથાવસ્થિત અર્થ ગ્રહણના અભાવે તે મતિ તત્ત્વવિચારણારૂપ ફળથી રહિત હોય છે.

यद्यविशेषितं-सामान्यरूपेण विवक्षितं तदा-श्रुतमित्यनेन-श्रुतज्ञानं श्रुताज्ञानं चेत्युभयमुच्यते। यदि तु श्रुतं विशेषितं-स्वामिविशेषरूपेण विवक्षितं, तर्हि सम्यग्दृष्टेः श्रुतं-श्रुतज्ञानमुच्यते, मिथ्यादृष्टेस्तु श्रुतं श्रुताज्ञानमुच्यते।

ननु मिथ्यादृष्टेर्मतिश्रुते कथमज्ञानरूपे उच्येते?, यतः-क्षयोपशमादिरूपे कारणे नास्ति भेदः, नापि च लौकिके घटादि ज्ञानरूपे कार्ये भेदो भवति। क्षयोपशमादेव मिथ्यादृष्टेरपि मतिश्रुते भवतः, इति चेत्,

---

इसी तरह श्रुत भी जब सामान्यरूप से विवक्षित होता है तब वह श्रुतज्ञान एवं श्रुतअज्ञान दोनों का बोधक होता है, परन्तु जब यह विशेषणविशिष्ट होता है तब यदि इसमें सम्यग्दृष्टिरूप विशेषण रहता है तो यह श्रुतज्ञान कहलाता है और जब इसमें 'मिथ्यादृष्टि' ऐसा विशेषण रहता है तब यही श्रुतअज्ञान कहलाता है।

शंका—मिथ्यादृष्टि के मतिज्ञान और श्रुतज्ञान अज्ञानरूप क्यों होते हैं? क्यों कि मिथ्यादृष्टि के भी ये दोनों अपने २ आवरण के क्षयोपशम से ही होते हैं, अतः इनकी उत्पत्ति का जो अपने २ आवरण का क्षयोपशम आदि कारण हैं उनमें मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि को लेकर भेद नहीं है। तथा सम्यग्दृष्टि जिस प्रकार मतिज्ञान और श्रुतज्ञान से घटपट आदि पदार्थों को जानता है उसी प्रकार मिथ्यादृष्टि भी उन्हें वैसा ही जानता है, अतः इन दोनों के जाननेरूप कार्य में भी कोई भेद नहीं है?।

એજ પ્રમાણે શ્રુત પણ જ્યારે સામાન્યરૂપે વિવક્ષિત થાય છે ત્યારે તે શ્રુતજ્ઞાન અને શ્રુતઅજ્ઞાન એ બન્નેનું બોધક થાય છે, પણ જ્યારે તે વિશેષણ-વિશિષ્ટ હોય છે ત્યારે જો તેમાં સમ્યગ્દૃષ્ટિરૂપ વિશેષણ રહે છે તો તે શ્રુતજ્ઞાન કહેવાય છે. અને જ્યારે 'મિથ્યાદૃષ્ટિ' એવું વિશેષણ રહે છે ત્યારે એજ શ્રુતઅજ્ઞાન કહેવાય છે.

શંકા—મિથ્યાદૃષ્ટિનુ મતિજ્ઞાન અને શ્રુતજ્ઞાન અજ્ઞાનરૂપ કેમ હોય છે? કારણ કે મિથ્યાદૃષ્ટિને પણ તે બન્ને પોત-પોતાનાં આવરણનાં ક્ષયોપશમથી જ થાય છે, તેથી તેમની ઉત્પત્તિનું પોત-પોતાનાં આવરણનો ક્ષયોપશમ આદિ જે કારણ છે તેમનામાં મિથ્યાદૃષ્ટિ અને સમ્યગ્દૃષ્ટિને લીધે ભેદ નથી. તથા સમ્યગ્દૃષ્ટિ જે પ્રમાણે મતિજ્ઞાન અને શ્રુતજ્ઞાનથી ઘટ પટ આદિ પદાર્થોને જાણે છે. એજ રીતે મિથ્યાદૃષ્ટિ પણ તેમને એવાં જ જાણે છે, તેથી એ બન્નેના જાણવારૂપી કાર્યમાં પણ ભેદ નથી?

तत्रोच्यते—मिथ्यादृष्टेः सदसद्विवेकपरिज्ञानाभावात् । तथाहि–मिथ्यादृष्टिः खलु सर्वमप्येकान्तवादपुरःसरं प्रतिपद्यते, न तु सर्वज्ञभगवदुक्तस्याद्वादमाश्रित्य, ततश्च मिथ्यादृष्टिर्यदा 'घट एवाय'–मिति वदति तदा तस्मिन् घटे घटत्वपर्यायव्यतिरेकेण शेषान् सत्त्व–ज्ञेयत्व–प्रमेयत्वादीन् सतोऽपि धर्मानपलपति, अन्यथा–'घट एवाय'–मित्येकान्तेनाऽवधारणानुपपत्तेः । 'घटः सन्नेव' इति यदा ब्रूते, तदा पररूपेण नास्तित्वस्यानभ्युपगमादसद्भूतं पररूपमपि तत्रास्तीति प्रतिपद्यते । ततश्च सन्तमसन्तं मन्यते, असन्तं च सन्तं मन्यते, इति सदसद्विशेषपरिज्ञानाभावान्मिथ्यादृष्टेर्मतिश्रुते अज्ञानरूपे भवतः ॥ १ ॥

उत्तर—मिथ्यादृष्टि को सत् और असत् का विवेकज्ञान नहीं है। समस्त वस्तुओं को वह एकान्तधर्मविशिष्ट ही जानता है, कारण कि एकान्तवाद का ही वह अवलम्बन करता है, भगवत्कथित स्याद्वाद का नहीं। जब वह "घट एवायम्" यह घट ही है, ऐसा कहता है तब उस घटमें वर्तमान सत्त्व, ज्ञेयत्व, प्रमेयत्व आदि धर्मोंका वह अपलाप करता है। यदि ऐसा वह नहीं करता है तो फिर "यह घट ही है" इस प्रकार का वह अवधारण क्यों करता है। तथा "घटः सन्नेव" घट सत्-स्वरूप ही है, ऐसा जब वह कहता है तो उसके इस कथन से पररूप की अपेक्षा भी घटमें अस्तित्व धर्म है, इस बात को भी उसे कबूल करना पड़ेगा, क्यों कि पररूप की अपेक्षा उसमें नास्ति–शब्द का प्रयोग नहीं किया है। इस तरह वह मिथ्यादृष्टि सत् को असत् और असत् को सत् मानता है, अतः सत् और असत् में इसकी दृष्टि में कोई न होने से उस मिथ्यादृष्टि का मतिज्ञान और श्रुतज्ञान अज्ञानरूप माना जाता है।

ઉત્તર—મિથ્યાદૃષ્ટિને સત્ અને અસત્‌નું વિવેકજ્ઞાન હોતું નથી. સમસ્ત વસ્તુઓને તે એકાન્તધર્મવિશિષ્ટ જ જાણે છે, કારણ કે એકાન્તવાદનું જ તે અવલંબન કરે છે, ભગવાને ભાખેલ સ્યાદ્વાદનું નહીં જ્યારે તે "घट एवायम्" "આ ઘડો જ છે" એવું કથન કરે છે ત્યારે તે ઘટમાં રહેલ સત્ત્વ, જ્ઞેયત્વ, પ્રમેયત્વ આદિ ધર્મોનો તે અપલાપ કરે છે. જો તે એવું કરતો ન હોય તો પછી "આ ઘડો જ છે" આ પ્રકારનું અવધારણ તે શા માટે કરે છે? તથા "घटः सन्नेव" "ઘડો સત્‌સ્વરૂપ જ છે" એવું જ્યારે તે કહે છે ત્યારે તેના આ કથનથી પરરૂપની અપેક્ષાએ પણ ઘડામાં અસ્તિત્વ ધર્મ છે એ વાત પણ તેને કબૂલ કરવી પડશે, કારણ કે પરરૂપની અપેક્ષાએ તેમાં नास्ति શબ્દનો પ્રયોગ કર્યો નથી. આ રીતે તે મિથ્યાદૃષ્ટિ સત્‌ને અસત્ અને અસત્‌ને સત્ માને છે, તેથી તેની દૃષ્ટિએ સત્ અને અસત્‌માં કોઈ ભેદ ન હોવાથી તે મિથ્યાદૃષ્ટિનું મતિજ્ઞાન અને શ્રુતજ્ઞાન અજ્ઞાનરૂપ માનવામાં આવ્યું છે.

किञ्च—इतश्च मिथ्यादृष्टेर्मतिश्रुते अज्ञाने, भवहेतुत्वात्, मिथ्यादर्शनवत्। तथाहि–मिथ्यादृष्टीनां मतिश्रुते पशुवधमैथुनादीनां धर्मसाधकत्वेन परिच्छेदके, ततो दीर्घतरसंसारपथप्रवर्तकत्वादज्ञानरूपत्वम् ॥ २ ॥

तथा—इतश्चापि मिथ्यादृष्टेर्मतिश्रुते अज्ञानरूपे भवतः?, यदृच्छोपलब्धेः, उन्मत्तकविकल्पवत्। यथा हि उन्मत्तकविकल्पमिथ्यादृष्टियो वस्तु अनपेक्ष्यैव यथा कथंचित् प्रवर्तन्ते। यद्यपि च ते क्वचिद् यथावस्थितवस्तुसंवादिनस्तथापि सम्यग् यथावस्थितवस्तुतत्त्वपर्यालोचनविरहेण प्रवर्त्तमानत्वात्, परमार्थतोऽपरमार्थिकाः।३।

कि च–मिथ्यादृष्टि जीव के मतिज्ञान और श्रुतज्ञान इसलिये भी अज्ञानस्वरूप होते हैं कि ये दोनों मिथ्यादर्शन की तरह भवभ्रमण के हेतु होते हैं। भव के हेतुभूत ये इसलिये माने जाते हैं कि पशुवध, मैथुन आदि जैसे कुकर्मों को "ये धर्म के साधनभूत हैं" ऐसा मानते हैं, इसलिये दीर्घतरसंसारमार्ग के प्रवर्त्तक होने के कारण ये दोनों मिथ्यादृष्टि के अज्ञानस्वरूप हैं।

जिस प्रकार उन्मत्त का ज्ञान स्वेच्छानुसार पदार्थों का ग्राहक होता है और इसी लिये वह अज्ञानरूप माना जाता है, उसी प्रकार मिथ्यादृष्टि का ज्ञान भी अज्ञानरूप ही माना गया है, यद्यपि उन्मत्तजन जो वस्तु जैसी है उसे वैसी जानता है, सोने को सोना और लोहे को लोहा जानकर यथार्थज्ञान लाभ कर लेता है, पर उन्माद के कारण वह सत्य असत्य का अन्तर जानने में असमर्थ होता है, इससे उसका सच्चा झूठा सभी ज्ञान परमार्थतः विचारशून्य या अज्ञान ही कहलाता है,

તથા–મિથ્યાદૃષ્ટિ જીવનું મતિજ્ઞાન અને શ્રુતજ્ઞાન તે કારણે પણ અજ્ઞાન સ્વરૂપ હોય છે કે એ બન્ને મિથ્યાદર્શનની જેમ ભવભ્રમણના કારણરૂપ હોય છે. ભવના કારણભૂત તેઓ એ કારણે મનાય છે કે પશુવધ, મૈથુન વગેરે જેવાં કર્મોને "એ ધર્મના સાધનભૂત છે" એવું માને છે, તેથી દીર્ઘતર સંસાર-માર્ગના પ્રવર્તક હોવાને કારણે એ બન્ને મિથ્યાદૃષ્ટિને માટે અજ્ઞાનસ્વરૂપ છે.

જે રીતે ઉન્મત્તનું જ્ઞાન સ્વેચ્છાનુસાર પદાર્થોનું ગ્રાહક થાય છે અને તે કારણે તે અજ્ઞાનરૂપ મનાય છે, એજ રીતે મિથ્યાદૃષ્ટિનું જ્ઞાન પણ અજ્ઞાનરૂપ મનાય છે. જો કે ઉન્મત્ત માણસ જે વસ્તુ જેવી છે એવી તેને જાણે છે. સોનાને સોનું અને લોઢાને લોઢું જાણીને યથાર્થજ્ઞાન લાભ કરી લે છે, પણ ઉન્માદને કારણે તે સત્ય અસત્યનો ભેદ જાણવાને અસમર્થ હોય છે, તેથી તેનું સાચું ખોટું સમસ્ત જ્ઞાન પરમાર્થતઃ વિચારશૂન્ય કે અજ્ઞાન જ કહેવાય છે. એજ પ્રમાણે

तथा—मिथ्यादृष्टीनां मतिश्रुते यथावस्थितं वस्तु अविचार्यैव प्रवर्तेते, ततो यद्यपि च तद्द्वयं क्वचिद् 'रसोऽयं' 'स्पर्शोऽयं' इत्यादौ अवधारणाध्यवसायाभावे संवादि, तथापि न तद्द्वयं स्याद्वादपरिभावनातस्तथा प्रवृत्तं किन्तु यथा कथंचित्। अतो मतिश्रुतरूपमेतद् द्वयम् अज्ञानम् ॥ ४ ॥

तथा-ज्ञानफलाभावात् मिथ्यादृष्टेर्मतिश्रुते अज्ञाने भवतः। ज्ञानस्य हि फलं हेयस्य हानिः, उपादेयस्य चोपादानम्। न च संसारात् परं किंचित् हेयमस्ति, न

उसी प्रकार मिथ्यादृष्टि आत्मा कितना ही अधिक ज्ञानवाला क्यों न हो पर आत्मा के विषय में अंधेरा होने के कारण उसका सारा लौकिक ज्ञान शास्त्रदृष्टि से अज्ञान ही है। यही बात "मिथ्यादृष्टीनां मतिश्रुते यथावस्थितं वस्तु अविचार्यैव प्रवर्तेते" इत्यादि पंक्तियों द्वारा स्पष्ट की गई है। इनमें बतलाया है कि मिथ्यादृष्टि जीव के मतिश्रुतज्ञान वस्तु के वास्तविक स्वरूप का विचार नहीं करके ही प्रवृत्त हुआ करते हैं। यद्यपि मिथ्यादृष्टि जीव का "यह रस है यह स्पर्श है" इस प्रकार का ज्ञान अवधारणरूप अध्यवसाय के विना प्रवृत्त होता है, और वह इस तरह अपने विषयभूत पदार्थ का संवादक भी हो जाता है तो भी इसके इस ज्ञान में स्याद्वाद-सिद्धान्त की थोड़ी सी भी पुट नहीं होती है। वह तो यथाकथंचित् ही प्रवृत्त होता है।

तथा-ज्ञान के फल का अभाव होने से मिथ्यादृष्टि के मतिज्ञान और श्रुतज्ञान अज्ञानस्वरूप होते हैं। ज्ञान का फल हेय-छोड़ने योग्य-पदार्थ का परित्याग करना और उपादेय-ग्रहण करने योग्य-पदार्थ का

મિથ્યાદૃષ્ટિ આત્મા કેટલોય અધિકજ્ઞાની ભલે હોય પણ આત્માના વિષયમાં અંધારૂં હોવાને કારણે તેનુ સમસ્ત લૌકિક જ્ઞાન શાસ્ત્રની દૃષ્ટિથી અજ્ઞાન જ છે. એજ વાત "मिथ्यादृष्टीनां मतिश्रुते यथावस्थित वस्तु अविचार्यैव प्रवर्तेते" ઈત્યાદિ પંક્તિઓ દ્વારા સ્પષ્ટ કરાઈ છે. તેમાં એ બતાવવામા આવ્યું છે કે મિથ્યાદૃષ્ટિ જીવનાં મતિશ્રુતજ્ઞાન વસ્તુનાં વાસ્તવિક સ્વરૂપને વિચાર ન કરીને જ પ્રવૃત્ત થયા કરે છે. જો કે મિથ્યાદૃષ્ટિ જીવનું "આ રસ છે, આ સ્પર્શ છે" આ પ્રકારનું જ્ઞાન અવધારણરૂપ અધ્યવસાય વિના પ્રવૃત્ત થાય છે, અને તે આ રીતે પોતાના વિષયભૂત પદાર્થનું સંવાદક પણ થઈ જાય છે તો પણ તેના તે જ્ઞાનમાં સ્યાદ્વાદ સિદ્ધાંતને સહેજ પણ પટ હોતો નથી. તે તો યથા કથંચિત્ પ્રવૃત્ત હોય છે.

તથા-જ્ઞાનનાં ફળને અભાવ હોવાથી મિથ્યાદૃષ્ટિનાં મતિજ્ઞાન અને શ્રુત-જ્ઞાનઅજ્ઞાન સ્વરૂપ હોય છે. જ્ઞાનનુ ફળ "હેય-ત્યાગવા લાયક પદાર્થને પરિત્યાગ કરવો અને ઉપાદેય-ગ્રહણ કરવા લાયક પદાર્થને ગ્રહણ કરવો," એ

च मोक्षात् परं किंचिदुपादेयं, ततो भवमोक्षावेकान्तेन हेयोपादेयौ। तयोर्हेयोपादेययोर्भवमोक्षयोश्च हान्युपादाने सर्वसंगविरतेर्भवतः, ततो विरतिरवश्यं कर्तव्या। सैव च परमार्थतो ज्ञानस्य फलम्। सा च मिथ्यादृष्टेर्नास्तीति ज्ञानफलाभावाद् मिथ्यादृष्टेर्मतिश्रुते अज्ञाने भवतः। उक्तश्च—

"सदसदविसेसणाओ, भवहेउजहिच्छिओवलंभाओ।
नाणफलाभावाओ, मिच्छद्दिट्ठिस्स अन्नाणं" ॥ १ ॥

छाया — सदसदविशेषणात्, भवहेतुयदृच्छितो(मनःकल्पितो)पलम्भात्।
ज्ञानफलाभावात्, मिथ्यादृष्टेरज्ञानम् ॥ १ ॥ ५ ॥ सू० २५ ॥

श्रुतं मतिपूर्वकं भवतीत्युक्तम्। संप्रति मतिज्ञानमेवाधिकृत्य शिष्यः पृच्छति—

उपादान करना है। संसार के सिवाय और कोई पदार्थ हेय नहीं है, तथा मोक्ष के सिवाय और कोई उपादेय नहीं है। संसार हेय है और मोक्ष एकान्ततः उपादेय है, ये दोनों बातें सर्वपरिग्रह की विरतिवाले सम्यग्दृष्टि जीवके ही होती हैं, इसलिये विरति अवश्य अंगीकार करने योग्य है। यही परमार्थतः ज्ञान का फल है। यह सर्वसंगविरतिरूप ज्ञान का फल मिथ्यादृष्टि को प्राप्त नहीं है, इसलिये मिथ्यादृष्टि के ज्ञान के फल का अभाव होने से उसके मतिश्रुतज्ञान अज्ञानस्वरूप होते हैं। कहा भी है—

"सदसदविसेसणाओ, भवहेउज हिच्छिओव लंभाओ।
नाणफलाभावाओ, मिच्छद्दिट्ठिस्स अन्नाणं" ॥ १ ॥ सू० २५ ॥

श्रुतज्ञान मतिज्ञानपूर्वक होता है यह बात यहांतक कह दी। अब शिष्य मतिज्ञान के विषय में पूछता है और सूत्रकार उसका उत्तर देते हैं—'से किं तं आभिणिबोहियनाणं' इत्यादि।

છે. સંસારના સિવાય બીજો કોઈ પદાર્થ હેય નથી તથા મોક્ષના સિવાય બીજું કોઈ ઉપાદેય નથી, સંસાર હેય છે અને મોક્ષ એકાન્તતઃ ઉપાદેય છે, એ બન્ને વાતો સર્વપરિગ્રહની વિરતિવાળા સમ્યગ્દૃષ્ટિ જીવને જ હોય છે. તે કારણે વિરતિ અવશ્ય અંગીકાર કરવા યોગ્ય છે. એજ પરમાર્થતઃ જ્ઞાનનું ફળ છે. આ સર્વસંગવિરતિરૂપ જ્ઞાનનું ફળ મિથ્યાદૃષ્ટિને પ્રાપ્ત નથી, તેથી મિથ્યાદૃષ્ટિને જ્ઞાનનાં ફળનો અભાવ હોવાથી તેનાં મતિશ્રુતજ્ઞાન અજ્ઞાનસ્વરૂપ હોય છે. કહ્યું પણ છે—

"सदसद-विसेसणाओ, भवहेउज हिच्छिओवलंभाओ।
नाणफलाभावाओ. मिच्छद्दिट्ठिस्स अन्नाणं" ॥ १ ॥ सू २५ ॥

શ્રુતજ્ઞાન મતિજ્ઞાન પૂર્વક હોય છે એ વાત અહીં સુધી કહી. હવે શિષ્ય મતિજ્ઞાન વિષે પૂછે છે અને સૂત્રકાર તેનો ઉત્તર આપે છે—"से किं तं आभिणिबोहियनाणं" ઇત્યાદિ.

मूलम्--से किं तं आभिणिबोहियनाणं ?। आभिणिबोहियनाणं दुविहं पण्णत्तं। तं जहा--सुयनिस्सियं च, असुयनिस्सियं च। से किं तं असुयनिस्सियं ?। असुयनिस्सियं चउव्विहं पण्णत्तं। तं जहा--

गाहा--उप्पत्तिया १, वेणइआ २, कम्मया ३, परिणामिया ४।
बुद्धी चउव्विहा वुत्ता, पंचमा नोवलब्भई ॥ १ ॥

छाया—अथ किं तदाभिनिबोधिकज्ञानम्? आभिनिबोधिकज्ञानं द्विविधं प्रज्ञप्तम्। तद् यथा—श्रुतनिश्रितं च अश्रुतनिश्रितं च।

अथ किं तद् अश्रुतनिश्रितम् ?। अश्रुत निश्रितं चतुर्विधं प्रज्ञप्तम्। तद् यथा—

गाथा—औत्पत्तिकी १, वैनयिकी २, कर्मजा ३, पारिणामिकी ४।
बुद्धिश्चतुर्विधा उक्ता, पञ्चमी नोपलभ्यते ॥ १ ॥

टीका—'से किं तं' इत्यादि। अथ किं तदाभिनिबोधिकज्ञानम् ? पूर्वनिर्दिष्टस्याभिनिबोधिकज्ञानस्य किं स्वरूपमित्यर्थः। उत्तरमाह—'आभिणिबोहिय नाणं दुविहं पण्णत्तं' इत्यादि। आभिनिबोधिकज्ञानं द्विविधं प्रज्ञप्तम्। तद् यथा—श्रुतनिश्रितं च, अश्रुतनिश्रितं च। इह श्रुत शब्देन—सामायिकमारभ्य लोकविन्दुसारपर्यन्तं

प्रश्न—पूर्वनिर्दिष्ट आभिनिबोधिकज्ञान का क्या स्वरूप है? उत्तर—आभिनिबोधिकज्ञान दो प्रकार का कहा गया है। वे दो प्रकार ये हैं-१ श्रुतनिश्रित और २ अश्रुतनिश्रित। श्रुतशब्द से सामायिक से लेकर लोकबिन्दुसारनामक चौदहवें पूर्वपर्यन्त द्रव्यश्रुत ग्रहण किया गया है। इस द्रव्यश्रुत के अभ्यास से जनित जो संस्कार, उस संस्कार से समन्वित जिसकी बुद्धि है ऐसे प्राणी को मति के उत्पत्ति के समय

પ્રશ્ન—પૂર્વનિર્દિષ્ટ આભિનિબોધિકજ્ઞાનનું શું સ્વરૂપ છે?

ઉત્તર—આભિનિબોધિકજ્ઞાન બે પ્રકારનું બતાવ્યું છે. એ બે પ્રકાર આ પ્રમાણે છે-(૧) શ્રુતનિશ્રિત અને (૨) અશ્રુતનિશ્રિત. શ્રુતશબ્દ વડે સામાયિકથી લઈને લોકબિન્દુસાર નામના ચૌદમાં પૂર્વ સુધીનું દ્રવ્યશ્રુત ગ્રહણ કરેલ છે. આ દ્રવ્યશ્રુતના અભ્યાસથી ઉત્પન્ન થયેલ જે સંસ્કાર, એ સંસ્કારથી સમન્વિત જેની બુદ્ધિ છે એવાં પ્રાણીને મતિની ઉત્પત્તિ સમયે શાસ્ત્ર અને તેના અર્થની

द्रव्यश्रुतं गृह्यते, तदनुसारेण श्रुताभ्यासजनितसंस्कारसमन्वितमतेरुत्पादकाले शास्त्रार्थपर्यालोचनमपेक्ष्यैव यदुपजायते मतिज्ञानं तत् श्रुतनिश्रितम्। यथा—अवग्रहादि। रूपरसादिभेदैरनिर्देश्यस्य सामान्यमात्ररूपार्थस्य ग्रहणरूपोऽवग्रहः। यत्तु सर्वथा शास्त्रसंस्पर्शरहितस्य तथाविधक्षयोपशमसद्भावादेवमेव यथावस्थितवस्तुसंस्पर्शि मतिज्ञानमुपजायते, तत् अश्रुतनिश्रितम्। यथा—औत्पत्तिक्यादिकम्।

ननु औत्पत्तिक्यादिकमप्यवग्रहादिरूपमेव, तत् कोऽनयोर्विशेषः?, इति चेत्, अत्रोच्यते—यद्यपि अवग्रहादिरूपमेव, परं तु शास्त्रमनपेक्ष्योत्पद्यते, इत्येतावता भेदेनौत्पत्त्यादिकं पृथगुपन्यस्तम्।

में शास्त्र और उसके अर्थ की पर्यालोचना की अपेक्षा करके जो मतिज्ञान होता है वह श्रुतनिश्रित मतिज्ञान है, जैसे अवग्रह आदि। रूप रस आदि भेदों से अनिर्देश्य-जिसका निर्देश न हो सके ऐसे पदार्थ का सामान्यरूप से जानने का नाम अवग्रह है १। सर्वथा शास्त्र के संस्पर्श से रहित प्राणी को तथाविध क्षयोपशम के सद्भाव से यथावस्थित वस्तु को जानने वाला जो मतिज्ञान होता है वह अश्रुतनिश्रित मतिज्ञान है, जैसे औत्पत्तिकी आदि बुद्धि २।

शंका—औत्पत्ति की आदि जो बुद्धियां हैं वे भी अवग्रह आदिरूप ही हैं तो फिर अवग्रह आदि में और औत्पत्तिकी आदि बुद्धियों में क्या भेद है।

उत्तर—यद्यपि ये बुद्धियां अवग्रह आदिरूप ही हैं, परन्तु फिर भी शास्त्र की अपेक्षा नहीं करके ही ये बुद्धियां उत्पन्न होती हैं, अतः इन्हें अवग्रह आदि से भिन्नरूप में माना है, और इसी अभिप्राय से सूत्रकारने इनका पृथक्रूप से प्रतिपादन किया है।

પર્યાલોચનાની અપેક્ષા કરીને જે મતિજ્ઞાન થાય છે તે શ્રુતનિશ્રિત મતિજ્ઞાન છે, જેમ કે અવગ્રહ આદિ ૧. રૂપ રસ આદિ ભેદોથી અનિર્દેશ્ય-જેનો નિર્દેશ ન થઈ શકે એવા પદાર્થને સામાન્યરૂપે જાણવાનું નામ અવગ્રહ છે. સર્વથા શાસ્ત્રના સંસર્ગથી રહિત પ્રાણીને તથાવિધ ક્ષયોપશમના સદ્ભાવથી યથાવસ્થિત વસ્તુને જાણનાર જે મતિજ્ઞાન થાય છે તે શ્રુતનિશ્રિત મતિજ્ઞાન છે, જેમકે ઔત્પત્તિ કી આદિ બુદ્ધિ ૨.

શંકા—ઔત્પત્તિકી આદિ જે બુદ્ધિઓ છે તે પણ અવગ્રહ આદિ રૂપ જ છે, તો પછી અવગ્રહ આદિમાં ઔત્પત્તિકી આદિ બુદ્ધિઓમાં શો ભેદ છે?

ઉત્તર—જો કે એ બુદ્ધિઓ અવગ્રહ આદિ રૂપ જ છે, તો પણ શાસ્ત્રની અપેક્ષા કર્યા વિના જ એ બુદ્ધિઓ ઉત્પન્ન થાય છે, તેથી તેને અવગ્રહ આદિથી ભિન્નરૂપે માની છે, અને એ કારણે જ સૂત્રકારે તેમનું અલગ રીતે પ્રતિપાદન કર્યું છે.

तत्राश्रुतनिश्रितस्य स्वल्पविषयकतया पूर्वं तदेव प्रस्तौति-'से किं तं' इत्यादि। अश्रुतनिश्रितस्याभिनिबोधिकस्य किं स्वरूपमिति प्रश्नः। उत्तरमाह—'अस्सुय-निस्सियं-चउव्विहं पण्णत्तं' इत्यादि। अश्रुतनिश्रितं चतुर्विधं प्रज्ञप्तम्। तद् यथा औत्पत्तिकी १, वैनयिकी २, कर्मजा ३, पारिणामिकी ४। इत्येवं चतुर्विधा बुद्धिः प्रोक्ता। औत्पत्तिकी-उत्पत्तिरेव न तु शास्त्राभ्यासकर्मपरिशीलनादिकं प्रयोजनं=कारणं यस्याः सा औत्पत्तिकी।

ननु सर्वस्याः बुद्धेः कारणं क्षयोपशमस्तत् कथमुच्यते 'उत्पत्तिरेव प्रयोजन-मस्याः? इति चेत्, उच्यते-क्षयोपशमः सर्वबुद्धिसाधारणस्ततो नासौ भेदेन प्रतिपत्तेः कारणं भवति। अथ च बुद्ध्यन्तराद् भेदेन प्रतिपत्त्यर्थं व्यपदेशान्तरं कर्तुमारब्धं, तत्र व्यपदेशान्तरनिमित्तं न किमपि विनयादिकं विद्यते, केवलमेवमेव तथोत्पत्ति-रिति सैव साक्षान्निर्दिष्टा। १।

अश्रुतनिश्रित के विषय का विवेचन अल्प है, इसलिये सूत्रकार पहिले श्रुतनिश्रित मतिज्ञान का विवेचन न करके पहिले अश्रुतनिश्रित मतिज्ञान का ही विवेचन करते हैं 'से किं तं अस्सुयनिस्सियं' इत्यादि। प्रश्न-अश्रुतनिश्रित मतिज्ञान का क्या स्वरूप है?। उत्तर-अश्रुतनिश्रित मतिज्ञान चार प्रकार का है वे उसके चार प्रकार ये हैं-औत्पत्तिकी १, वैनयिकी २, कर्मजा ३ एवं पारिणामिकी ४, ये चार बुद्धियां हैं। जो बुद्धि शास्त्राभ्यास आदि के करने से उत्पन्न नहीं होती है, किन्तु जीव को स्वतः ही उत्पन्न होती है-जिस को व्यवहार में "हाजिरजवाब" कहते हैं इसका नाम औत्पत्तिकी बुद्धि है।

शंका—समस्त बुद्धियों का कारण क्षयोपशम कहा गया है, तो फिर यह बात कैसे मानी जा सकती है कि इस बुद्धि का कारण अपनी उत्पत्ति ही है।

અશ્રુતનિશ્રિતના વિષયનું વિવેચન ટૂંકું છે. તેથી સૂત્રકાર પહેલાં શ્રુતનિ-શ્રિતનું વિવેચન ન કરતાં અશ્રુતનિશ્રિતનું જ વિવેચન કરે છે.

પ્રશ્ન—અશ્રુતનિશ્રિત મતિજ્ઞાનનું શું સ્વરૂપ છે?

ઉત્તર—અશ્રુતનિશ્રિત મતિજ્ઞાન ચાર પ્રકારનું છે-(૧) ઔત્પત્તિકી, (૨) વૈનયિકી, (૩) કર્મજા અને (૪) પારિણામિકી, એ ચાર મતિ છે. જે મતિ શાસ્ત્રાભ્યાસ આદિ કરવાથી ઉત્પન્ન થતી નથી પણ આપોઆપ ઉત્પન્ન થાય છે-જેને વહેવારમાં "હાજર જવાબ" કહે છે. એનું નામ ઔત્પત્તિકી મતિ છે.

શંકા—સમસ્ત મતિનું કારણ ક્ષયોપશમ દર્શાવેલ છે, તો આ વાત કેવી રીતે માની શકાય કે એ મતિ સ્વતઃ ઉત્પન્ન થાય છે?

वैनयिकी–विनयो–गुरुशुश्रूषालक्षणः, स प्रयोजनं=कारणं यस्याः, सा तथा, यद्वा–विनयप्रधाना बुद्धिर्वैनयिकी । २ ।

तथा–कर्मजा–अनाचार्यकं कर्म, साचार्यकं शिल्पम् । तत्र कर्मणो जाता कर्मजा । शिल्पं तु विनयोत्पन्नम्, तदुत्पन्ना बुद्धिर्वैनयिक्यामन्तर्भूता । ३ ।

उत्तर—यह तो ठीक है, परन्तु क्षयोपशम इन बुद्धियों में भेद की प्रत्तिपत्ति (समझने) का कारण नहीं हो सकता है, क्यों कि क्षयोपशम सर्व बुद्धियों की उत्पत्ति में सर्वसाधारण रूप से कारण होता ही है, इसलिये वह पृथग्रूप से प्रत्तिप्रत्ति का कारण नहीं हो सकता, और जहां औत्पत्तिकी बुद्धि का अन्य वैनयिकी आदि बुद्धियों से पृथक्रूप प्रतिप्रत्ति (समझने) के लिये व्यपदेशान्तर करना प्रारंभ किया वहां पर व्यपदेशान्तर का निमित्त विनयादिक कोई नहीं है, केवल उस प्रकार की उसकी उत्पत्ति ही निमित्त है इसलिये यहां वही साक्षात्रूप से निर्दिष्ट की गई है । १ ।

गुरु की शुश्रूषा करना इसका नाम विनय है । इस विनयरूप कारण से जो बुद्धि होती है वह वैनयिकी बुद्धि है । अथवा जिसमें विनय-प्रधान हो वह भी वैनयिकी बुद्धि है २ । आचार्य के विना स्वयं प्राप्त हुई कला को कर्म कहते हैं, और आचार्य से प्राप्त हुई कला को शिल्प कहते हैं । इनमें कर्म से जो बुद्धि उत्पन्न होती है वह कर्मजा बुद्धि है । शिल्प,

---

ઉત્તર—એ તો બરાબર છે, પણ ક્ષયોપશમ એ મતિઓમાં ભેદની પ્રતિપત્તિ (સમજવા) નું કારણ હોઈ શકતું નથી, કારણ કે ક્ષયોપશમ સર્વે મતિઓની ઉત્પત્તિમાં સર્વસધારણ રીતે કારણ હોય જ છે, તેથી તે અલગ રીતે પ્રનિપત્તિનું કારણ હોઈ શકતું પ્રથી, અને જ્યાં ઔત્પત્તિકી મતિનું અન્ય વૈનયિકી આદિ મતિઓથી અલગ રીતે પ્રતિપત્તિ (સમજવા) ને માટે વ્યપદેશાન્તર કરવાનો પ્રારંભ કર્યો ત્યાં વ્યપદેશાન્તરનું નિમિત્ત વિનયાદિક કોઈ નથી, ફક્ત એ પ્રકારની તેની ઉત્પત્તિ જ નિમિત્ત છે તેથી અહીં એજ સાક્ષાતરૂપે નિર્દિષ્ટ કરવામાં આવી છે ॥૧॥

ગુરુની શુશ્રૂષા કરવી તેનું નામ વિનય છે. આ વિનયરૂપ કારણથી જે મતિ ઉત્પન્ન થાય છે તે વૈનયિક મતિ છે. અથવા જેમાં વિનય પ્રધાન હોય તે પણ વૈનયિકી મતિ છે ૨. આચાર્ય વિના સ્વયં પ્રાપ્ત થયેલ કળાને કર્મ કહે છે, અને આચાર્યથી પ્રાપ્ત થયેલ કળાને શિલ્પ કહે છે. એમાં કર્મથી જે મતિ ઉત્પન્ન થઈ હોય તે કર્મજા મતિ છે. શિલ્પ, વિનયથી પ્રાપ્ત થાય છે, શિલ્પથી ઉત્પન્ન

तथा—पारिणामिकी-परि=समन्तात् नमनं परिणामः सुदीर्घकालपूर्वापरार्थ पर्यालोचनजन्यः स्वात्मनो धर्मविशेषः, स प्रयोजनमस्याः सा पारिणामिकी। सा च-अनुमानकारणमात्रदृष्टान्तैः साध्यसाधिका, वयोविपाके च पुष्टीभूता, अभ्युदयमोक्षफला चेति।४।

इत्येवं चतुर्विधा बुद्धिः-बुध्यते-ज्ञायतेऽनयेति बुद्धिः=मतिः, उक्ता=तीर्थंकरगणधरैः कथिता। कथं चतुर्विधैव कथिता? यस्मात् पञ्चमी बुद्धिर्नोपलभ्यते, सर्वस्यापि अश्रुतनिश्रितमतिविशेषस्य औत्पत्तिक्यादिबुद्धिचतुष्टयमात्रेऽन्तर्भावतः पञ्चम्या बुद्धेरभावात् केवलिनाऽपि पञ्चमी बुद्धिर्न दृष्टेति भावः ॥ गा. १ ॥

तत्र 'यथोद्देशं निर्देशः' इति न्यायमाश्रित्य पूर्वमौत्पत्तिकीलक्षणमाह—

मूलम्--गाहा--**पुव्वमदिट्ठस्सुय-मवेइय-तक्खण-विसुद्धगहियत्था।**
अव्वाहयफलजोगा, बुद्धी उप्पत्तिया नाम ॥२॥

छाया—पूर्वादृष्टाऽश्रुताऽविदित-तत्क्षणविशुद्धगृहीतार्था।
अव्याहतफलयोगा, बुद्धिरौत्पत्तिकी नाम ॥ २॥

विनय से प्राप्त होता है, शिल्प से उत्पन्न हुई बुद्धि का वैनयिकी में अन्तर्भाव है ३। सुदीर्घ कालतक पूर्वापर अर्थ के विचार से जन्य आत्मधर्मविशेष जिस बुद्धि की उत्पत्ति में कारणभूत होता है वह पारिणामिकी बुद्धि अनुमान, कारण-मात्र एवं दृष्टान्त से साध्य को सिद्ध करनेवाली होती है, तथा जैसी २ अवस्था बीतती जाती है उसीके अनुसार पुष्ट होती हुई यह स्वर्ग और मोक्ष फल को देनेवाली होती है ४। इस प्रकार की बुद्धिरूप मति तीर्थंकर गणधरोंने कही है। इनके सिवाय बुद्धि का और कोई पांचवां प्रकार नहीं है, कारण कि जितना भी अश्रुतनिश्रित मतिज्ञान है वह सब इन चार बुद्धियों में ही अन्तर्भूत हो जाता है ॥ गा० १ ॥

થયેલ મતિનો વૈનયિકીમાં સમાવેશ થઇ જાય છે ૩ ઘણા લાંબા કાળ સુધી પૂર્વાપર અર્થના વિચારથી જનિત આત્મધર્મવિશેષ જે મતિની ઉત્પત્તિમાં કારણભૂત હોય છે તે પારિણામિકી મતિ છે. આ પારિણામિકી મતિ અનુમાન, કારણમાત્ર અને દૃષ્ટાન્તથી સાધ્યને સિદ્ધ કરનારી હોય છે, અને જેમ જેમ અવસ્થા વીતતી જાય છે તેમ તેમ પુષ્ટ થતી તે સ્વર્ગ અને મોક્ષ ફળને દેનારી છે ૪. આ પ્રકારે આ ચાર પ્રકારની મતિ તીર્થંકર, ગણધરોએ કહેલ છે. કારણ કે જેટલુ અશ્રુત-નિશ્રિત મતિજ્ઞાન છે તે બધું આ ચાર મતિઓમાં જ સમાવેશ પામી જાય છે. ॥ ગા. ૧ ॥

टीका—'पुव्व' इत्यादि। पूर्वाऽदृष्टाश्रुताऽविदिततत्क्षणविशुद्धगृहीतार्था पूर्वं=बुद्धयुत्पत्तेः प्राक्, अदृष्टः=स्वयं चक्षुषा न दृष्टः, अश्रुतः=न चाप्यन्यतः श्रुतः, अविदितः=मनसाप्यविदितः-अपर्यालोचितः, तत्क्षणे=तस्मिन् क्षणे-बुद्धयुत्पत्तिकाले, विशुद्धः=यथावस्थितः, गृहीतः=अवधारितोऽर्थः यया सा तथा। 'पुव्वमदिट्ठमस्सुयमवेइय' इत्यत्र मकारत्रयम् आर्षत्वात्। तथा—अव्याहतफलयोगा—अव्याहतं =व्याघातरहितं च तत् फलं चाव्याहतफलम्, तेन योगो यस्या सा अव्याहतफलयोगा—अबाधितार्थविषयका बुद्धिः, औत्पत्तिकी नाम—नाम्ना औत्पत्तिकीत्यर्थः॥२॥

संप्रति शिष्यानुग्रहार्थमौत्पत्तिक्याः स्वरूपं प्रतिबोधयितुमुदाहरणान्याह—

मूलम्—गाहा--भरहसिल १, मिंढ २, कुक्कुड ३, तिल ४, वालुय ५, हत्थि ६, अगड ७, वणसंडे ८। पायस ९, अइया १०, पत्ते ११, खाडहिला १२, पंचपियरो १३, य ॥ ३ ॥

छाया—भरतशिला, १, मेण्ढ २, कुक्कुट ३, तिल ४, वालुका ५, हस्त्यगड ६-७, वनषण्डाः ८। पायसातिग ९-१०, पत्राणि ११, खाडहिला १२, पञ्चपितरश्च १३ ॥ ३ ॥

टीका-'भरहसिल' इत्यादि। अस्या अर्थः त्रयोदशकथानकेभ्योऽवगन्तव्यः। तानि च कथानकानि टीकासमाप्त्यनन्तरं द्रष्टव्यानि ॥ ३ ॥

अब औत्पत्तिकी बुद्धि का क्या लक्षण है इसे सूत्रकार नीचे की गाथा द्वारा बतलाते हैं—'पुव्वमदिट्ठ०' इत्यादि।

जो पदार्थ पहिले कभी देखा नहीं है, किसी दूसरे से सुना भी नहीं है, और न जिसकी मन से भी कल्पना की गई है, ऐसे पदार्थ का उसी समय यथावस्थितरूप से जिसके द्वारा निश्चय हो जावे उस बुद्धि का नाम औत्पत्तिकी बुद्धि है। तात्पर्य कहने का यही है कि इस बुद्धि का विषय अबाधित होता है। अर्थात्—यह बुद्धि सभी विषयों को निस्सन्देह रूप से स्पष्ट करती है ॥ २ ॥

હવે ઔત્પત્તિકી મતિનું શું લક્ષણ છે તે સૂત્રકાર નીચેની ગાથા દ્વારા બતાવે છે.—"पुव्वमदिट्ठ०" ઈત્યાદિ.

જે પદાર્થ પહેલાં કદી જોયો ન હોય, બીજા કોઈની પાસેથી સાંભળ્યો પણ ન હોય, અને મનથી જેની કલ્પના પણ કરી ન હોય, એવા પદાર્થનો એજ સમયે યથાવસ્થિત રૂપે જેના દ્વારા નિશ્ચય થઈ જાય એ મતિનું નામ ઔત્પત્તિકી મતિ છે તેનું તાત્પર્ય એ છે કે આ મતિનો વિષય અબાધિત હોય છે. એટલે કે બુદ્ધિ સમસ્ત વિષયોને નિઃસંદેહ રૂપે સ્પષ્ટ કરે છે. ॥ ગા. ૨ ॥

औत्पत्तिक्या बुद्धेर्वाचनान्तरेण पुनरुदाहरणानि गाथाद्वयेनाह—

मूलम्—भरहसिल १, पणिय २, रुक्खे ३, खुड्डग ४, पड ५, सरड ६, काय ७, उच्चारे ८। गय ९, घयण १०, गोल ११, खंभे १२, खुड्डग १३, मग्गित्थि १४-१५, पइ १६, पुत्ते १७ ॥ ४॥ महुसित्थ १८, मुद्दियं १९, ऽंके २०, नाणए २१, भिक्खु २२, चेडगनिहाणे २३। सिक्खा य २४, अत्थसत्थे २५, इच्छा य महं २६, सयसहस्से २७ ॥ ५॥

छाया—भरतशिला १, पणित २, वृक्षाः ३, क्षुल्लक ४, पट ५, सरट ६, काकोच्चाराः ७-८। गज ९, घयण (भाण्ड) १०, गोलक ११, स्तम्भाः १२, क्षुल्लक १३, मार्ग १४, स्त्री १५, पति १६, पुत्राः १७ ॥ ४॥ मधुसिक्थ १८, मुद्रिका १९, अङ्कः २०, ज्ञायक २१, भिक्षु २२, चेटकनिधानानि २३। शिक्षा २४, च अर्थशास्त्रम् २५, इच्छा च महती २६, शतसहस्रम् २७ ॥ ५॥

टीका—'भरहसिल' इत्यादि। अस्य गाथाद्वयस्यार्थः सप्तविंशतिकथानकेभ्योऽवगन्तव्यः। तानि च कथानकानि टीकासमाप्त्यनन्तरं द्रष्टव्यानि ॥ ४-५॥

वैनयिकालक्षणमाह—

मूलम्—गाहा—भरनित्थरण समत्था, तिवग्गसुत्तत्थगहियपेयाला।
उभओलोगफलवई, विणयसमुत्था हवइ बुद्धी ॥१॥

इसके उदाहरण निम्न प्रकार हैं-'भरहसिल १' इत्यादि।

इन बारह उदाहरणों का स्पष्टरूप से खुलासा टीका के अन्तमें है ॥३॥

वाचनान्तर से भी औत्पत्तिकी बुद्धि के सत्ताईस उदाहरण इस प्रकार हैं—'भरहसिल १, पणिय २' इत्यादि।

इन सत्ताईस उदाहरणों का भी खुलासा टीका के अन्त में है ॥४॥५॥

'अब वैनयिकी बुद्धि का लक्षण कहते हैं—'भरनित्थरणसमत्था' इत्यादि।

તેનાં ઉદાહરણો નીચે પ્રમાણે છે-"ભરહસિલ ૧" ઇત્યાદિ એ બાર ઉદાહરણોનો સ્પષ્ટ રીતે ખુલાસો ટીકાને અંતે છે. ॥ ગા. ૩ ॥

વાચનાન્તરથી પણ ઔત્પત્તિકી મતિના સત્તાવીસ ઉદાહરણ નીચે મુજબ છે-"ભરહસિલ૧પણિય ૨" ઇત્યાદિ.

એ સત્તાવીશ ઉદાહરણોનો ખુલાસો પણ ટીકાને અંતે છે ॥ ગા. ૪ ॥ ૫ ॥

હવે વૈનયિકી મતિનું લક્ષણ કહે છે—"ભરનિત્થરણસમત્થા" ઇત્યાદિ.

छाया—गाथा—भरनिस्तरणसमर्था, त्रिवर्गसूत्रार्थगृहीतपेयाला (प्रमाणा)।
उभयलोकफलवती, विनयसमुत्था भवति बुद्धिः ॥ १ ॥

टीका—'भरनित्थरणसमत्था' इत्यादि। भरनिस्तरणसमर्था=भर इव भरस्तस्य निस्तरणे समर्था, गुरुकार्यसंपादनं कातराणां दुष्करं भवतीति गुरुकार्यमेव भारसादृश्याद्भारस्तस्य वहने दक्षेत्यर्थः। तथा—त्रिवर्गसूत्रार्थगृहीतपेयाला=त्रयो वर्गास्त्रिवर्गाः, लोकरूढ्या धर्मार्थकामाः, तेषां सूत्रं—तदर्जनोपायप्रतिपादकं सूत्रम्, अर्थः—तदर्थश्च, तौ त्रिवर्गसूत्रार्थौ, तयोर्गृहीतं पेयालं—प्रमाणं सारो वा यया सा त्रिवर्गसूत्रार्थगृहीतपेयाला, नीतिशास्त्रनिपुणा—इत्यर्थः।

ननु वैनयिक्या मतेस्त्रिवर्गसूत्रार्थगृहीतसारत्वे सत्यश्रुतनिश्रितत्वं नोपपद्यते, न हि श्रुताभ्यासमन्तरेण त्रिवर्गसूत्रार्थगृहीतसारत्वं संभवतीति चेत्,

---

कठिन कार्य का संपादन करना कातरों के लिये दुष्कर होता है अतः वह भारकी सदृशता से भार कहा गया है, उसके सम्पादन करने में दक्ष, तथा धर्म, अर्थ एवं काम के उपार्जन के उपाय बतलाने वाले सूत्र और उनके अर्थ का जिसके द्वारा सार ग्रहण किया जासके ऐसी, अर्थात् नीतिशास्त्र में निपुण, तथा इस लोक एवं परलोक में सुन्दर फल देनेवाली विनय से उत्पन्न वैनयिकी बुद्धि कहलाती है।

शंका—जब आप वैनयिकी बुद्धि को त्रिवर्ग के उपाय को बतलाने वाले सूत्र अर्थ का सार ग्रहण करने वाली कहते हैं तो फिर यह अश्रुतनिश्रित कैसे मानी जा सकती है, क्यों कि श्रुत के अभ्यास के विना त्रिवर्ग के स्वरूप का समझना संभवित नहीं हो सकता है।

કઠિન કાર્યોનું સંપાદન કરવું એ કાયરોને માટે દુષ્કર હોય છે તેથી તે બોજા સમાન હોવાથી ભાર કહેલ છે. તેનું સંપાદન કરવામાં દક્ષ, તથા, ધર્મ, અર્થ અને કામના ઉપાર્જનનો ઉપાય દર્શાવનાર સૂત્રો અને તેમના અર્થનો જેના વડે સાર ગ્રહણ કરી શકાય એવી, એટલે કે નીતિશાસ્ત્રમાં નિપુણ, તથા આલોક અને પરલોકના સુંદર ફળ દેનારી વિનયથી ઉત્પન્ન થયેલી મતિને વૈનયિકી મતિ કહે છે.

શંકા—જો આપ વૈનયિકી મતિને ત્રિવર્ગના ઉપાયને બતાવનારી સૂત્ર અર્થનો સાર ગ્રહણ કરનારી કહો છો તો પછી તે અશ્રુતનિશ્રિત કેવી રીતે માની શકાય, કારણ કે શ્રુતના અભ્યાસ વિના ત્રિવર્ગનાં સ્વરૂપને સમજવાનું સંભવિત હોઇ શકતું નથી?

उच्यते—इह प्रायोवृत्तिमाश्रित्याश्रुतनिश्रुतत्वमुक्तम्, अतः स्वल्पश्रुतनिश्रितत्वसद्भावेऽपि न कोऽपि दोषः।

तथा-उभयलोकफलवती=उभयलोके-इहलोके परलोके च, फलवती-फलदायिनी, विनयसमुत्था=विनयोद्भवा वैनयिकी बुद्धिर्भवति ॥ १ ॥

संप्रति शिष्यानुग्रहार्थं वैनयिकीमतेः स्वरूपमुदाहरणैः प्रदर्शयति—

मूलम्—गाहा—निमित्ते १, अत्थसत्थे २, य, लेहे ३, गणिए ४, य कूव ५, अस्से ६ य। गद्दभ ७, लक्खण ८, गंठी ९, अगए १०, रहिए ११ य गणिया १२ य ॥ २ ॥

छाया—निमित्तम् १, अर्थशास्त्रं २ च, लेखो ३, गणितं च ४, कूपाश्वौ च ५-६। गर्दभ ७, लक्षण ८, ग्रन्थ्यगदाः ९-१०, रथिकश्च ११, गणिका १२ च॥२॥

तथा—

गाहा—**सीया साडी दीहं च तणं, अवसव्वयं च कुंचस्स १३।**
निव्वोदए १४ य गोणे, घोडगपडणं च रुक्खाओ १५॥३॥

छाया—शीता शाटी दीर्घं च तृणम् अपसव्यकं च क्रौञ्चस्य १३।
नीव्रोदकं १४ च गौः, घोटक-पतनं (मरणं) च वृक्षात् १५ ॥३॥

टीका—'निमित्ते' इत्यादिगाथाद्वयार्थः कथानकेभ्योऽवगन्तव्यः। तानि च कथानकानि टीकाऽन्ते द्रष्टव्यानि ॥ २-३ ॥

उत्तर—वैनयिकी बुद्धि में जो अश्रुतनिश्रितता बतलाई गई है वह प्रायोवृत्ति को आश्रित करके बतलाई गई है, अर्थात् इसमें प्रायः करके अश्रुतनिश्रितता है, इसलिये थोड़े रूपमें यदि श्रुतनिश्रितता रहती भी है तो भी इसमें कोई दोष नहीं है ॥ १ ॥

ઉત્તર—વૈનયિકી મતિમા જે અશ્રુતનિશ્રિતતા બતાવવામાં આવી છે તે પ્રાયોવૃત્તિને આધારે બતાવાઈ છે, એટલે કે તેમાં પ્રાયઃ અશ્રુતનિશ્રિતતા છે, તેથી જો તેમાં થોડા પ્રમાણમાં શ્રુતનિશ્રિતતા પણ હોય તો તેમાં કોઇ દોષ નથી. ॥ ગા. ૧ ॥

कर्मजाया बुद्धेर्लक्षणमाह—

मूलम्—गाहा—उवओगदिट्ठसारा, कम्मपसंगपरिघोलणविसाला।
साहुक्कारफलवई, कम्मसमुत्था हवइ बुद्धी॥१॥

गाथा—उपयोग दृष्टसारा, कर्मप्रसङ्गपरिघोलनविशाला।
साधुकार फलवती, कर्मसमुत्था भवति बुद्धिः ॥ १ ॥

टीका—'उवओगदिट्ठसारा' इत्यादि। उपयोगदृष्टसारा=उपयोगः विवक्षिते कर्मणि मनसोऽभिनिवेशः, तेन दृष्टः सारः=तस्यैव कर्मणः परमार्थो यया, सा उपयोगदृष्टसारा—अभिनिवेशोपलब्धकर्मपरमार्थेत्यर्थः। तथा—कर्मप्रसङ्गपरिघोलन-विशाला—कर्मणि प्रसङ्गः—कर्मप्रसङ्गः, प्रसङ्गोऽभ्यासः, परिघोलनं=विचारः, कर्म-प्रसङ्गपरिघोलनाभ्यां विशाला=विस्तारमुपगता। तथा—साधुकृतं=सुष्ठुकृतमिति वि-द्वद्भिः कृता=प्रशंसा साधुकारः, तेन फलवती=साधुकारपुरस्सरं ज्ञानादिलाभरूपं फलं यस्याः सेत्यर्थः। कर्मसमुत्था=कर्मजा बुद्धिर्भवति ॥ १ ॥

शिष्यानुग्रहार्थमुदाहरणैः कर्मजायाः स्वरूपं वर्णयति—

मूलम्—हेरण्णिए १, करिसए २, कोलियं ३, डोवे ४, य मुत्ति ५, घय ६, पवए ७। तुन्नाए ८, वड्ढई ९, य, पूइय १०, घड११, चित्तकारे १२ य ॥ २ ॥

छाया—हैरण्यकः १ कर्षकः २, डोवश्च (दर्वीकारश्च) ४ मौक्तिक-घृत-प्लवकाः ५-६-७। तुन्नागो ८, वर्द्धकिश्च ९, आपूपिकः १०, घट—चित्रकारौ च ११-१२ ॥ २ ॥

टीका—'हेरण्णिए' इत्यादि। अस्या अप्यर्थः द्वादशकथानकेभ्योऽवगन्तव्यः। तानि च कथानकानि टीकाऽन्ते द्रष्टव्यानि ॥ २ ॥

अब बारह उदाहरणों द्वारा सूत्रकार इसका स्वरूप प्रतिपादन करते हैं—'निमित्ते' इत्यादि। तथा—'सीया साडी' इत्यादि।

इन दोनों गाथाओंके सत्ताईस दृष्टान्तोंका स्पष्टीकरण टीका के अन्तमें है ॥ २-३ ॥

હવે બાર ઉદાહરણો દ્વારા સૂત્રકાર તેનાં સ્વરૂપનું પ્રતિપાદન કરે છે—"निमित्ते" ઇત્યાદિ. सीया साडी" ઇત્યાદિ.

આ બન્ને ગાથાઓનાં સત્તાવીશ દૃષ્ટાંતોનું સ્પષ્ટીકરણ ટીકાને અંતે આપ્યું છે. ॥ ગા. ૨ ॥ ૩ ॥

पारिणामिक्या लक्षणमाह—

मूलम्—गाहा--अणुमाणहेउदिट्ठंतसाहिया वयविवागपरिणामा ।
हियनिस्सेयस फलवई, बुद्धी परिणामिया नाम ॥१॥

छाया—अनुमानहेतुदृष्टान्त-साधिका, वयो विपाकपरिणामा ।
हितनिःश्रेयसफलवती, बुद्धिः पारिणामिकी नाम ॥ १ ॥

टीका—'अणुमाण०' इत्यादि । अनुमानहेतुदृष्टान्तसाधिका—अनुमानमिह स्वार्थम् । अनुमानप्रतिपादकं वचो हेतुः—पञ्चावयववाक्यरूपः, परार्थानुमानमित्यर्थः ।

अब सूत्रकार कर्मजा बुद्धिका स्वरूप बतलाते हैं—'उवओगदिट्ठसारा' इत्यादि । जिस बुद्धिके द्वारा कर्तव्य कर्म—कार्य—का मनकी लगन पूर्वक अच्छी तरहसे सार ग्रहण कर लिया जाता है, तथा जो बुद्धि, कार्य के अभ्यास और उसके विचारसे विस्तारको प्राप्त हुई हो, एवं जिस बुद्धिसे संसारमें प्रशंसा हो वह बुद्धि कर्मजा कहलाती है ॥१॥

कर्मजा बुद्धिके बारह उदाहरण कहते हैं—'हेरण्णिए' इत्यादि ।

इन बारह दृष्टान्तोंका खुलासा टीकाके अन्तमें है ॥ २ ॥

अब पारिणामिकी बुद्धिका स्वरूप कहते हैं—'अनुमाणहेउ दिट्ठंत' इत्यादि । अनुमान, हेतु एवं दृष्टान्तके द्वारा साध्य अर्थको सिद्ध करनेवाली, ऊमरके अनुसार पुष्ट होनेवाली, तथा अभ्युदय एवं निःश्रेयसरूप फलवाली बुद्धि पारिणामिकी बुद्धि है ॥ १ ॥

હવે સૂત્રકાર કર્મજા મતિનુ સ્વરૂપ બતાવે છે—"उवओगदिट्ठसारा" ઈત્યાદિ જે મતિ દ્વારા કર્તવ્ય કર્મ—કાર્યનો મનની લીનતા પૂર્વક સારી રીતે સાર ગ્રહણ કરાય છે, તથા જે મતિ કાર્યના અભ્યાસ અને વિચારથી વિસ્તાર પામી હોય; અને જે મતિને લીધે સંસારમાં પ્રશંસા થાય તે મતિને કર્મજા-મતિ કહે છે. ॥ ગા. ૧ ॥

કર્મજામતિનાં બાર ઉદાહરણો કહે છે—"हेरिण्णए" ઈત્યાદિ.

એ બાર દૃષ્ટાન્તોનું સ્પષ્ટીકરણ ટીકાને અંતે આપ્યું છે. ॥ ગા. ૨ ॥

હવે ચોથી પારિણામિકી મતિનું સ્વરૂપ કહે છે—"अणुमाणहेउदिट्ठ०" ઈત્યાદિ. અનુમાન, હેતુ અને દૃષ્ટાન્ત દ્વારા સાધ્ય અર્થને સિદ્ધ કરનારી, ઉમરના પ્રમાણે પુષ્ટ થનારી, તથા અભ્યુદય અને નિઃશ્રેયસરૂપ ફળવાળી મતિને પારિણામિકી મતિ કહે છે. ॥ ગા. ૧ ॥

इदमत्र बोध्यम्—अनुमानं द्विविधं–स्वार्थं परार्थं च। तत्र स्वयमेव निश्चितात् साधनात् साध्यज्ञानं स्वार्थानुमानम्। परोपदेशमनपेक्ष्य स्वयमेव निश्चितात् प्राक् तर्कानुभूतव्याप्तिस्मरणसहकृताद् धूमादेः साधनादुत्पन्नं पर्वतादौ धर्मिणि अग्न्यादेः साध्यस्य ज्ञानं स्वार्थानुमानमित्यर्थः। यथा–पर्वतोऽयं वह्निमान् धूमवत्त्वादिति। अयं हि स्वार्थानुमानस्य ज्ञानरूपस्यापि शब्देनोल्लेखः, यथा 'अयं घटः' इति शब्देन प्रत्यक्षस्योल्लेखो भवति।

अनुमान स्वार्थानुमान और परार्थानुमानके भेदसे दो प्रकारका बतलाया गया है। यहां प्रकृतमें स्वार्थानुमान गृहीत हुआ है। स्वार्थानुमानके प्रतिपादक जो पंचावयवरूप वचन है वह हेतु है। यह हेतु परार्थानुमान है। जहां परोपदेश की अपेक्षा विना ही मनुष्य को स्वयं निश्चित किये गये साधन से–जिस साधन का सहायक पूर्वकालीन तर्कानुभूत व्याप्ति का स्मरण होता है उससे–साध्य का ज्ञान होता है वह स्वार्थानुमान है। जैसे–रसोईघर आदि में बार २ धूम और वह्नि के देखने से अनुमाता पुरुष को यह दृढ धारणा बन जाती है कि जहां २ धूम होगा वहां २ अग्नि होगी, कारण कि जितना भी धूम होता है वह अग्नि के विना उत्पन्न नहीं होता। इस तरह धूम और वह्नि की तर्कसे व्याप्ति ग्रहण कर जब वह किसी पर्वतादिक धर्मी में धूमरूप साधन को देखता है तो उसे शीघ्र ही प्राक् तर्कानुभूत धूम और वह्नि की व्याप्ति का स्मरण हो आता है। इसके बल पर वह उस धूमरूप साधन से यह जान लेता

અનુમાન સ્વાર્થાનુમાન અને પરાર્થાનુમાનના ભેદથી બે પ્રકારનું દર્શાવ્યુ છે. અહીં પ્રકૃતિમાં સ્વાર્થાનુમાન ગ્રહણ કરાયું છે. સ્વાર્થાનુમાનનું પ્રતિપાદક જે પંચાવયવરૂપ વચન છે તે હેતુ છે. આ હેતુ પરાર્થાનુમાન છે. જ્યાં પરોપદેશની અપેક્ષા વિનાજ મનુષ્યને સ્વયં નિશ્ચિત કરેલ સાધનથી જે સાધનનું સહાયક પૂર્વકાલીન તર્કાનુભૂત વ્યાપ્તિનુ સ્મરણ થવું છે તે વડે સાધ્યનું જ્ઞાન થાય છે તે સ્વાર્થાનુમાન છે. જેમ કે–રસોડાં આદિમાં વારંવાર ધુમાડો તથા અગ્નિને જોવાથી અનુમાન કરનાર પુરુષને એ મજબૂત અનુમાન થાય છે કે જ્યાં જ્યાં ધુમાડો હોય ત્યાં ત્યાં અગ્નિ હોય જ, કારણ કે જેટલો ધુમાડો થાય છે તે અગ્નિ વિના ઉત્પન્ન થતો નથી. આ રીતે ધુમાડો અને અગ્નિની તર્કથી વ્યાપ્તિ ગ્રહણ કરીને જ્યારે તે કોઇ પર્વતાદિક ધર્મીમાં ધુમાડારૂપ સાધનને જોવે છે તો તેને તરતજ આગળ તર્કાનુભૂત ધુમાડા તથા અગ્નિની વ્યાપ્તિનું સ્મરણ થઈ આવે છે. તેના આધારે તે ધુમાડારૂપ સાધન વડે એ જાણી લે છે કે આ

परोपदेशमपेक्ष्य साध्यज्ञानं, तत् परार्थानुमानम्। यथा-पर्वतो वह्निमान्, (प्रतिज्ञा १), धूमात्, (हेतुः २), यथा महानसम् (दृष्टान्तः ३), तथा चायम्, (उपनयः ४), तस्मात् तथा (निगमनम् ५), इत्यादि पञ्चावयववाक्यं यत्र प्रयुज्यते, तत् परार्थानुमानम्।

है कि इस पर्वत में अग्नि है। यदि अग्नि नहीं होती तो यह अविच्छिन्न शाखावाला धूम जो दिख रहा है वह नहीं दिखता। स्वार्थानुमान यद्यपि ज्ञानरूप होता है परन्तु समझाने के लिये ही यहां वह "पर्वतोऽयं वह्निमान् धूमवत्त्वात्" इस रूप से शब्दों द्वारा उल्लिखित किया गया है, जैसे प्रत्यक्ष का "अयं घटः" इस शब्द द्वारा उल्लेख किया जाता है। जिस अनुमान में पर के उपदेश की अपेक्षा करके साधन से साध्य का ज्ञान होता है वह परार्थानुमान है। जैसे किसी से ऐसा जब कहा जाता है कि देखो भाई! इस पर्वत में अग्नि है, क्यों कि धूम उठ रहा है, जैसे-रसोईघर में धूम उठता रहता है तो वहां अग्नि रहती है, उसी प्रकार पर्वत में भी ऐसा ही हो रहा है, इसलिये यहां भी अग्नि है। यह पञ्चावयव वाक्य है, क्यों कि पर्वत में अग्नि का सद्भाव ख्यापित किया जा रहा है अतः वह पक्ष है, अग्नि साध्य है, पक्ष और हेतु का समुदायरूप कथन प्रतिज्ञा कहलाती है। इसलिये 'पर्वत अग्निवाला है' ऐसा कथन प्रतिज्ञा हुई १। 'धूमवत्त्वात्' यह पंचम्यन्त साधन हुआ २। महानस दृष्टान्त ३। पक्षमें हेतु का उपसंहार

પર્વતમાં અગ્નિ છે. જો અગ્નિ ન હોત તો આ અવિચ્છિન્ન શાખાવાળો જે ધુમાડો દેખાય છે તે દેખાત નહીં. આ સ્વાર્થાનુમાન જો જ્ઞાનરૂપ હોય છે પણ સમજાવવાને માટે જ અહીં તેનો "पर्वतोऽय वह्निमान् धूमवत्त्वात्" આ રીતે શબ્દ દ્વારા ઉલ્લેખ કરાયો. છે જેવી રીતે પ્રત્યક્ષનો "अयं घटः" આ શબ્દ દ્વારા ઉલ્લેખ કરવામાં આવે છે. જે અનુમાનમાં પરોપદેશની અપેક્ષા કરીને સાધનથી સાધ્યનું જ્ઞાન થાય છે તે પરાર્થાનુમાન છે. જેમકે જ્યારે કોઇ એવું કહે કે જુઓ ભાઈ! આ પર્વતમાં અગ્નિ છે, કારણ કે ધુમાડો નીકળી રહ્યો છે, જેમ-રસોડામાંથી ધુમાડો નીકળતો હોય તો ત્યાં અગ્નિ રહેલ હોય છે, એજ પ્રમાણે પર્વતમાં પણ એવું થઈ રહ્યું છે તેથી ત્યાં પણ અગ્નિ છે. આ પંચાવયવ વાકય છે, કારણ કે પર્વતમાં અગ્નિના સદ્ભાવ સ્થાપિત કરાઇ રહ્યો છે તેથી તે પક્ષ છે ૧. અગ્નિ સાધ્ય છે ૨. પક્ષ અને હેતુના સમુદાયરૂપ કથનને પ્રતિજ્ઞા કહેવાય છે ૧. धूमवत्त्वात् એ પંચમ્યન્ત સાધન થયું ૨.

अथवा-अनुमानं-ज्ञापकम्, हेतुः-कारकम्-उत्पादकम्, दृष्टान्तः-दृष्टोऽन्तो-निर्णयो वस्तुतत्त्वस्य यत्र स दृष्टान्तः-उदाहरणम्, तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः, अनुमानहेतुदृष्टान्तास्तैः साधिका, अनुमानहेतुदृष्टान्तैः साध्यमर्थं साधयति या सेत्यर्थः। तथा-वयोविपाकपरिणामा-वयः=कालकृता देहावस्था, तस्य विपाकेन=प्रकर्षेण, परिणामः=पुष्टता यस्या सा तथा। अपि च हितनिःश्रेयसफलवती-हितम्-अभ्युदयः, तत्कारणं वा, निःश्रेयसं-मोक्षः, तत्कारणं वा, हितनिःश्रेयसाभ्यां फलवती=सफला, अभ्युदयमोक्षसाधिका या बुद्धिः सा पारिणामिकी नाम-नाम्ना पारिणामिकीत्यर्थः ॥ १ ॥

शिष्यानुग्रहार्थमुदाहरणैः पारिणामिक्याः स्वरूपं दर्शयितुमाह—

मूलम्—अभए१, सिट्ठि२, कुमारे३, देवी४, उदिओदए हवइ राया५।
साहू य नंदिसेणे६, धणदत्ते७, सावग ८, अमच्चे ९ ॥ २ ॥

उपनय ४ और साध्य का उपसंहार निगमन हुआ ५। इस तरह श्रोता को पंचावयवरूप वाक्य द्वारा जो ज्ञान कराया जाता है वह परार्थानुमान कहलाता है।

अथवा-जो ज्ञापक होता है वह अनुमान १, एवं जो कारक होता है वह हेतु २। वस्तुतत्त्व का निर्णय जिसमें देखा जाता है वह दृष्टान्त है ३। गाथा में "अनुमान-हेतु-दृष्टान्त" यहां इतरेतर द्वन्द्व समास हुआ है। कालकृत देहावस्था का नाम वय है। इस तरह अनुमान, हेतु, दृष्टान्त द्वारा साध्य अर्थको सिद्ध करने वाली, वय के विपाक के अनुरूप परिणमनवाली, एवं हित और कल्याणरूप फलवाली बुद्धि का नाम पारिणामिकी बुद्धि है ४।

મહાનસ દૃષ્ટાંત ૩. પક્ષમાં હેતુનો ઉપસંહાર ૪. અને સાધ્યનો ઉપસંહાર નિગમન થયો ૫. આ રીતે શ્રોતાને પંચાવયવરૂપ વાકય દ્વારા જે જ્ઞાન કરાવાય છે તે પરાર્થાનુમાન કહેવાય છે. અથવા (૧) જે જ્ઞાપક હોય છે તે અનુમાન અને (૨) જે કારણ હોય છે તે હેતુ છે. (૩) વસ્તુતત્ત્વનો નિર્ણય જેમાં જોવામાં આવે છે તે દૃષ્ટાંત છે ગાથામાં "अनुमान-हेतु-दृष्टान्त" અહીં ઇતરેતર દ્વન્દ્વ સમાસ થયો છે. કાલકૃત દેહાવસ્થાનું નામ વય છે. આ રીતે અનુમાન, હેતુ, દૃષ્ટાંત દ્વારા સાધ્ય અર્થને સિદ્ધ કરનારી, વયના વિપાક પ્રમાણે પરિણામનવાળી, અને હિત અને કલ્યાણરૂપ ફળવાળી મતિનું નામ પરિણામિકી મતિ છે ॥૪॥

खमए१०, अमच्चपुत्ते ११, चाणक्के१२, चेव थूलभद्दे १३ य।
नासिक्कसुंदरिनंदे १४, वइरे १५, परिणामिया बुद्धी ॥३॥
चलणाऽऽहण १६, आमंडे १७, मणीय १८, सप्पे १९,
य खग्गि २० थूभिंदे २१।
परिणामियबुद्धीए, एवमाई उदाहरणा ॥ ४ ॥
से त्तं अस्सुयनिस्सियं ॥ सू० २६ ॥

छाया—अभयः १, श्रेष्ठिकुमारौ २-३, देवी ४, उदितोदयो भवति राजा५।
साधुश्च नन्दिषेणः ६, धनदत्तः ७, श्रावकोऽमात्यः ८-९ ॥ २ ॥
क्षपकोऽमात्यपुत्रः-१०-११, चाणक्यश्चैव १२, स्थूलभद्रश्च १३ ।
नासिक्यसुन्दरीनन्दः १४, वज्रः १५ पारिणामिकी बुद्धिः ॥ ३ ॥
चलनाहत१६, आमंडे-कृत्रिम आमलकः१७, मणिश्च १८, सर्पश्च१९, खड्गो२०
स्तूपेन्द्रः २१ । पारिणामिक्या बुद्ध्या एवमादीन्युदाहरणानि ॥ ४ ॥
तदेतदश्रुतनिश्रितम् ॥ सू० २६ ॥

टीका—'अभए' इत्यादि । आसां तिसृणां गाथानामर्थ एकविंशतिकथानकेभ्योऽवगन्तव्यः । तानि च कथानकानि टीकान्ते द्रष्टव्यानि ॥ २-३-४ ॥

तदेतदश्रुतनिश्रितं मतिज्ञानं वर्णितम् ॥

अथ श्रुतनिश्रितमतिज्ञानमाह—

मूलम्—से किं तं सुयनिस्सियं?। सुयनिस्सियं चउव्विहं पण्णत्तं। तं जहा-उग्गहे१, ईहा२, अवाओ३, धारणा ४॥सू०२७॥

इसके दृष्टान्त इस प्रकार हैं—'अभए' इत्यादि गाथात्रयम्। इन तीन गाथाओं के इक्कीस उदाहरणों का खुलासा टीकाके अन्तमें है ॥४॥

इस प्रकार यहां तक अश्रुतनिश्रित मतिज्ञानका वर्णन किया गया है ॥ सू० २६ ॥

अब सूत्रकार श्रुतनिश्रित मतिज्ञानका वर्णन करते हैं-'से किं तं सुयनिस्सियं?' इत्यादि ।

तेनां दृष्टांतो आ प्रमाणे छे-"अभए०" इत्यादि त्रण गाथा. ए त्रण गाथाओनां एकवीस उदाहरणोनुं स्पष्टीकरण टीकाने अंते छे ॥४॥ आ रीते अहीं सुधी अश्रुतनिश्रित मतिज्ञाननुं वर्णन कर्युं छे ॥ सू. २६ ॥

हवे सूत्रकार श्रुतनिश्रित मतिज्ञाननुं वर्णन करे छे-"से किं तं सुयनिस्सियं ?" इत्यादि.

छाया—अथ किं तत् श्रुतनिश्रितं ?। श्रुतनिश्रितं चतुर्विधं प्रज्ञप्तम् । तद् यथा–अवग्रहः १, ईहा २, अवायः ३, धारणा ४ ॥ सू० २६ ॥

टीका—'से किं तं' इत्यादि। शिष्यः पृच्छति—अथ किं तत् श्रुतनिश्रितमिति। पूर्वनिर्दिष्टस्य श्रुतनिश्रितस्य मतिज्ञानस्य किं स्वरूपमित्यर्थः। उत्तरमाह–'सुयनिस्सियं' इत्यादि। श्रुतनिश्रितं मतिज्ञानं चतुर्विधं प्रज्ञप्तम्। तद् यथा–अवग्रहः १, ईहा २, अवायः ३, धारणा ४। तत्रावग्रहणमवग्रहः=सामान्यार्थपरिच्छेदः । यद् विज्ञानं सामान्यस्य शब्दरूपरसादिभिरनिर्देश्यस्वरूपकल्पनारहितस्य नामजात्यादिकल्पनारहितस्य च वस्तुनः परिच्छेदकमेकसामायिकं, सोऽवग्रहः, अव्यक्तं ज्ञानमिति

शिष्य पूछता है–हे भदन्त ! श्रुतनिश्रित मतिज्ञानका क्या स्वरूप है ? उत्तर–श्रुतनिश्रित मतिज्ञान चार प्रकारका है, वे उसके चार प्रकार ये हैं–अवग्रह १, ईहा २, अवाय ३, और धारणा ४। वस्तुका सामान्य रूपसे ज्ञान होना इसका नाम अवग्रह है। अवग्रह ज्ञानसे ऐसी वस्तु गृहीत होती है कि जिसमें जब तक वह अवग्रहके विषय भूतवाली रहती है तब तक नाम जाति आदिकी कल्पना नहीं होती है। अवग्रह का काल एक समय मात्र है। तात्पर्य–नाम जाति आदिकी विशेष कल्पनासे रहित सामान्य मात्र का ज्ञान अवग्रह है। जैसे गाढ अंधकारमें कुछ छू जाने पर 'यह कुछ है' ऐसा ज्ञान। इस ज्ञानमें यह नहीं मालूम होता कि किस चीजका स्पर्श है ?, इस लिये इस अव्यक्त ज्ञानका नाम अवग्रह है। यही बात "सामान्यस्य शब्दरूपरसादिभिरनिर्देश्यस्य" इत्यादि पंक्तियों द्वारा स्पष्ट की गई है। अवग्रह ज्ञानमें

શિષ્ય પૂછે છે--હે ભદન્ત ! શ્રુત નિશ્રિત મતિજ્ઞાનનું શું સ્વરૂપ છે ?

ઉત્તર—શ્રુતનિશ્રિત મતિજ્ઞાન નીચે પ્રમાણે ચાર પ્રકારનું છે–(૧) અવગ્રહ (૨) ઇહા (૩) અવાય અને (૪) ધારણા. વસ્તુનું સામાન્યરૂપથી જ્ઞાન થવું તેનું નામ અવગ્રહ છે. અવગ્રહ જ્ઞાનથી એવી વસ્તુ ગ્રહણ થાય છે કે જેમાં જ્યાં સુધી તે અવગ્રહના વિષયભૂત વાળી રહે છે ત્યાં સુધી નામ જાતિ આદિની કલ્પના થતી નથી. અવગ્રહનો કાળ માત્ર એક સમય જ છે. તાત્પર્ય–નામ જાતિ આદિની વિશેષ કલ્પનાથી રહિત સામાન્ય માત્રનું જ્ઞાન અવગ્રહ છે. જેમ કે ગાઢા અંધારામાં કોઈ વસ્તુનો સ્પર્શ થઇ જતાં "આ કંઇક છે" એવું જ્ઞાન. આ જ્ઞાનમાં એ ખબર પડતી નથી કે કઇ ચીજનો સ્પર્શ છે ? તેથી આ અવ્યક્ત જ્ઞાનનું નામ અવગ્રહ છે. એજ વાત "सामान्यस्य शब्दरूपरसादिभिरनिर्देश्यस्य"

यावत्। ईहनम्-वस्तुनिर्णयार्थं चेष्टा ईहा। नामजात्यादि विशेपकल्पनारहित-सामान्यज्ञानोत्तरं विशेषनिश्चयार्थं विचारणा। यथा-स्पर्शनेन्द्रियेण स्पर्शसामान्ये ज्ञाते सति, तदनु कीदृशोऽयं स्पर्शः? कस्यायं स्पर्शः? किमयं कमलनालस्पर्शः, उताहो भुजङ्गमस्पर्शः? इति गाढान्धकारे चक्षुष्मतोऽपि विचारणा प्रवर्तते।

ननु संशयस्य ईहायाश्च कः प्रतिविशेषः? किमयं स्थाणुः आहोश्वित् पुरुषः? तथा किमयं कमलनालस्पर्शः, उत भुजङ्गमस्पर्शः, इत्यनिश्चयात्मकस्य संशयरूपत्वादिति चेत्,

---

वस्तु, रूप रस आदिके द्वारा अनिर्देश्य होती है, कारण कि यह ज्ञान अव्यक्त होता है १।

वस्तुके निर्णयके लिये जो चेष्टा होती है उसका नाम ईहा है। अवग्रहके द्वारा नाम जाति आदि विशेष कल्पनासे रहित जो सामान्य मात्र ग्रहण किया गया है उसके उत्तरकालमें उसी सामान्यको विशेष-रूपसे निश्चित करनेके लिये जो विचारणा होती है वह ईहा ज्ञान है। जैसे स्पर्शन इन्द्रियके द्वारा सामान्य रूपसे स्पर्श गृहीत होने पर ऐसी जो विचारणा होती है 'यह स्पर्श कैसा है? किसका है? क्या कमल-नालका है? अथवा सर्पका है' इस प्रकारकी विचारणा गाढ अंधकारमें जो सूझते भी मनुष्य होते हैं उन्हें भी हो जाया करती है।

शङ्का—संशयमें और ईहा ज्ञानमें क्या भेद है? 'यह स्थाणु है? या पुरुष है' इस प्रकारका जैसे संशय होता है उसी प्रकारका 'क्या यह कमलनालका स्पर्श है अथवा सर्पका स्पर्श है' ऐसा अनिश्चयात्मक

એ પંક્તિઓ દ્વારા સ્પષ્ટ કરેલ છે. અવગ્રહ જ્ઞાનમાં વસ્તુ, રૂપ, રસ આદિ દ્વારા અનિર્દેશ્ય હોય છે, કારણ કે આ જ્ઞાન અવ્યકત હોય છે. (૧)

વસ્તુના નિર્ણયને માટે જે ચેષ્ટા થાય છે તેનું નામ ઇહા છે. અવગ્રહ દ્વારા નામ, જાતિ આદિ વિશેષ કલ્પનાથી રહિત જે સામાન્ય માત્ર ગ્રહણ કરાયેલ છે તેના ઉત્તર કાળમાં એજ સામાન્યને વિશેષરૂપે નિશ્ચિત કરવાને માટે જે વિચારણા થાય છે તે ઇહાજ્ઞાન છે. જેમ સ્પર્શન ઇન્દ્રિય દ્વારા સામાન્યરૂપથી સ્પર્શ-ગૃહીત થતાં એવી જે વિચારણા થાય છે કે "આ સ્પર્શ કેવો છે? કોનો છે? શું કમળનાળનો છે? અથવા સર્પનો છે?" આ પ્રકારની વિચારણા ગાઢ અંધકારમાં જે સૂજતા મનુષ્યો હોય છે તેમને પણ થયા કરે છે.

શંકા—સંશય તથા ઇહા જ્ઞાનમાં શો ભેદ છે? "આ સ્થાણુ છે કે પુરુષ છે" આ પ્રકારનો જેમ સંશય થાય છે એજ પ્રમાણે "શું આ કમળનાળનો

उच्यते—वस्त्वप्रतिपत्तिरूपत्वादज्ञानात्मकः संशयः। ईहा तु मतिज्ञानभेदः। इदमत्र तत्त्वम्-अवग्रहादुत्तरकालमवायात् पूर्वं सद्भूतार्थविशेषोपादानाभिमुखोऽसद्भूतार्थविशेषपरित्यागाभिमुखश्च वस्तुधर्मविचारणारूपो मतिविशेष ईहा। यथा पूर्वं सामान्यतः शब्दे श्रुते सति, तदनु "प्रायोऽत्र शब्दे मधुरत्वादयः शङ्खादिशब्दधर्मा विद्यन्ते, न तु कर्कशनिष्ठुरतादयो धनुःशब्दधर्माः" इति विचारणारूपो मतिविशेषः। यथा वा-रूपविषये ईहा—कश्चिदस्तंगते सवितरि वने स्थाणुं

ईहा ज्ञान भी होता है तो फिर इस अनिश्चयात्मक ईहा ज्ञानमें संशयरूपता आनेसे ईहा ज्ञान संशयरूप ही हो गया।

उत्तर—ऐसा कहना ठीक नहीं है, कारण कि संशयज्ञानमें वस्तु की प्रतिपत्ति नहीं होती है इस लिये वह अज्ञानस्वरूप माना गया है, ईहा ऐसी नहीं है। कारण वह मतिज्ञानका भेद है। तात्पर्य इसका इस प्रकार है, अवग्रहज्ञान के बाद संशय होता है। उस संशयको दूर करने के लिये जो प्रयत्न होता है वह ईहा है। जब गाढ अंधकारमें किसी वस्तु का स्पर्श होता है तब ऐसा विचार होता है कि-'यह स्पर्श कमलनाल का है या सांपका है?' यह विचार ही संशय है। इस संशयको दूर करनेके लिये जो उत्तरकालमें ऐसा विचार आता है कि 'यह स्पर्श कमलनालका होना चाहिये, कारण कि यदि सांपका स्पर्श होता तो वह ऐसी स्थितिमें फुफकार' किये विना नहीं रहता। बस यही विचारणा ईहा

સ્પર્શ છે કે સર્પનો સ્પર્શ છે" એવું અનિશ્ચયાત્મક ઇહાજ્ઞાન પણ હોય છે તો પછી આ અનિશ્ચયાત્મક ઈહાજ્ઞાનમાં સંશયરૂપતા આવવાથી આ ઈહાજ્ઞાન સંશયરૂપ થઈ ગયું.

ઉત્તર—એમ કહેવું તે ઉચિત નથી, કારણ કે સંશયજ્ઞાનમાં વસ્તુની સમજણ પડતી નથી તેથી તે અજ્ઞાનસ્વરૂપ મનાયું છે, ઈહા એવી નથી. કારણ કે તે મતિજ્ઞાનનો ભેદ છે. તેનું તાત્પર્ય આ પ્રમાણે છે-અવગ્રહજ્ઞાન પછી સંશય થાય છે. એ સંશયને દૂર કરવાને માટે જે પ્રયત્ન થાય છે તે ઈહા છે. જ્યારે ગાઢ અંધકારમાં કોઈ વસ્તુનો સ્પર્શ થાય છે ત્યારે એવો વિચાર થાય છે કે- "આ સ્પર્શ કમળનાળનો છે કે સાપનો છે" આ વિચાર જ સંશય છે. આ સંશયને દૂર કરવાને ઉત્તરકાળમાં જે એવો વિચાર આવે છે કે "આ સ્પર્શ કમળનાળનો હોવો જોઈએ, કારણ કે જો સાપનો સ્પર્શ હોત તો તે એ પરિસ્થિતિમાં ફુંફાડો કર્યા વિના ન રહેત." બસ એજ વિચરણાને ઈહા કહે છે.

दृष्टवान्, ततस्तस्य विमर्शः समुत्पन्नः-'किमयं स्थाणुः पुरुषो वा' इति। अयं विमर्शः संशयरूपत्वादज्ञानम्। ततोऽसौ तत्र स्थाणौ वल्ल्यारोहणं पक्षिणां निलयनं च दृष्ट्वा विचारयति-'स्थाणुरयं संभवति, वल्ल्युत्सर्पणकाकादि निलयनोपलम्भात्।

हैं। इसी बातको टीकाकारने "अवग्रहादुत्तरकालम् अवायात् पूर्वम्" इत्यादि पंक्तियों द्वारा स्पष्ट किया है। इनके द्वारा वे बतला रहे है कि अवग्रह-ज्ञानसे उत्तरकालमें और अवायसे पहिले सद्भूत अर्थ के उपादानके सन्मुख झुका हुआ और असद्भूत अर्थ के परित्यागकी ओर रहा हुआ यह मतिज्ञानका विशेषरूप ईहा-ज्ञान होता है। जैसे-किसी व्यक्तिने पहिले सामान्यरूपसे शब्द सुना, सुनने पर ऐसा ख्याल होता है कि इस शब्दमें प्रायः मधुरता आदि शंखधर्म विद्यमान हैं, कर्कशता निष्ठुरता आदि धनुष-शब्दके धर्म विद्यमान नहीं हैं, इसलिये यह शंख का शब्द होना चाहिये। अथवा एक व्यक्तिको वनमें सूर्यके अस्त हो जाने पर जब स्थाणुके देखनेसे ऐसा ख्याल होता है कि 'क्या स्थाणु है या पुरुष है'। इस ख्यालके होने पर न स्थाणुका निश्चय होता है और न पुरुषका ही, बस यही संशय है, परन्तु जब उसके देखनेमें यह आता है कि यहां पर तो वल्लीका आरोहण एवं पक्षियोंके घोसले हैं तो फिर विचारने लगता है कि यह स्थाणु होना चाहिये, क्यों कि इस पर वल्लियों का

એજ વાતને ટીકાકારે "अवग्रहादुत्तरकालम् अवायात् पूर्वम्" ઇત્યાદિ પંક્તિઓ દ્વારા સ્પષ્ટ કરેલ છે. તેમના દ્વારા તે બતાવે છે કે અવગ્રહ જ્ઞાનના ઉત્તરકાળમાં અને 'અવાય'ના પહેલાં સદ્‌ભૂત અર્થના ઉપાદાનની તરફ ઝુકેલ, અને અસદ્-ભૂત અર્થના પરિત્યાગની તરફ રહેલ આ મતિજ્ઞાનનું વિશેષરૂપ ઇહાજ્ઞાન હોય છે. જેમ કે-કોઇ વ્યક્તિએ પહેલાં સામાન્યરૂપે શબ્દ સાંભળ્યો, સાંભળતા એવું લાગે છે કે આ શબ્દમાં સામાન્યરીતે મધુરતા આદિ શંખધર્મ વિદ્યમાન છે, કર્કશતા નિષ્ઠુરતા આદિ ધનુષ-શબ્દના ધર્મ વિદ્યમાન નથી, તેથી તે શંખનો અવાજ હોવો જોઈએ. અથવા એક વ્યક્તિને વનમાં સૂર્યાસ્ત થઈ જવાથી જ્યારે સ્થાણુને જોવાથી એવું લાગે છે કે "શું આ સ્થાણુ છે કે પુરુષ છે" આ વિચાર આવતા સ્થાણુનો પણ નિર્ણય થતો નથી અને પુરુષનો પણ નિર્ણય થતો નથી. બસ એજ સંશય છે, પણ જ્યારે તેના જોવામાં એ આવે છે કે અહીંયા તો લતાઓ ચડેલી છે અને પક્ષીઓના માળા પણ છે ત્યારે તે વિચારવા લાગે છે કે આ સ્થાણુ હોવું જોઇએ કારણ કે તેના ઉપર લતાઓ

तथा संभवस्य पर्यालोचनं करोति—अस्ताचलान्तरिते सवितरि ईषत्तमसि प्रसरति महारण्येऽस्मिन् स्थाणुरयंसंभाव्यते न तु पुरुषः, शिरःकण्डूयनग्रीवाचलनादेस्तद्व्यवस्थापकहेतोरभावाद्, ईदृशे च प्रदेशेऽस्यां वेलायां प्रायस्तस्या संभवात्। तस्मात् स्थाणुनाऽत्र सद्भूतेन भाव्यं न तु पुरुषेण। तदुक्तम्।

अरण्यमेतत् सविताऽस्तमागतो,
　　न चाधुना संभवतीह मानवः।
प्रायस्तदेतेन खगादिभाजा,
　　भाव्यं स्मरारातिसमाननाम्ना॥ १॥

व्याख्या—पूर्वार्धं स्पष्टम्। तत्=तस्मात्, एतेन=दृश्यमानवस्तुना, प्रायः स्मरारातिसमाननाम्ना—स्मरस्य=कामस्य, अरातिः=शत्रुः शिवस्तस्य समान नाम्ना, समानं नाम 'स्थाणु'-रिति तेन नाम्ना भाव्यम्। तत्र हेतुं प्रदर्शयन् विशेषणमाह—खगादिभाजेति। पक्ष्यादिनिवासयुक्तेनेत्यर्थः॥ १॥

चढ़ना और कौए आदि पक्षियों के घोसले स्पष्ट दीख रहे हैं। यहां जब सूर्य अस्त हो रहा है और थोड़ा २ अंधकार छा रहा है तो इस महारण्य में यह स्थाणु की ही संभावना है, पुरुष की नहीं, कारण कि पुरुष के सद्भावख्यापक जो शिरका खुजाना हाथ ग्रीवा आदि का चलाना आदि धर्म हैं वे नहीं हो रहे हैं, अतः ऐसे प्रदेश में इस समय प्रायः मनुष्य के सद्भावना की संभावना नहीं होती है, इसलिये यह स्थाणु ही होना चाहिये, पुरुष नहीं। कहा भी है—

"अरण्यमेतत् सविताऽस्तमागतो, न चाधुना संभवतीह मानवः।
प्रायस्तदेतेन खगादिभाजा, भाव्यं स्मरारातिसमाननाम्ना"॥ १॥

ચડેલી છે, અને કાગડા વગેરે પક્ષીઓના માળા સ્પષ્ટ દેખાય છે. અહીં જ્યારે સૂર્ય અસ્ત પામી રહ્યો છે અને આછો આછો અંધકાર છવાઇ રહ્યો છે ત્યારે આ મહારણ્યમાં આ સ્થાણુની જ સંભાવના છે, પુરુષની નહીં, કારણ કે પુરુષનું અસ્તિત્વ દર્શાવનાર માથું ખંજવાળવું, હાથ ડોક આદિનું હલનચલન આદિ ધર્મ છે તે જણાતાં નથી, તેથી આવા પ્રદેશમાં આ સમયે સામાન્ય રીતે મનુષ્યના અસ્તિત્વની સંભાવના નથી, તેથી એ સ્થાણુ જ હોવું જોઇએ, પુરુષ નહીં. કહ્યું પણ છે—

"अरण्यमेतत् सविताऽस्तमागतो, न चाधुना संभवतीह मानवः।
प्रायस्तदेतेन खगादिभाजा, भाव्यं स्मरारातिसमाननाम्ना"॥१॥

एतादृशं ज्ञानम् 'ईहा' इत्युच्यते, निश्चयाभिमुखत्वेन संशयादुत्तीर्णत्वात्, सर्वथा निश्चयेऽवायप्रसङ्गेन निश्चयादधोवर्तित्वाच्चेति संशयेहयोः प्रतिविशेषः।

यथा वा-'अयं मनुष्यः' इत्यवगृहीते सति, तत्र सद्भूतविशेषपार्थपर्यालोचनं भवति, यथा तत्र-'किमयं दाक्षिणात्यः? किं वाऽयमौदीच्यः?' इति संशयस्य निराकरणार्थं भवति। अयं दाक्षिणात्यो भवितुमर्हति, तद्देशीयवेषादिसमन्वितत्वात्, इति २।

अर्थात्-यह निर्जन अरण्य है, सूर्य भी अस्त हो गया है, इसलिये इस समय यहां मनुष्य की संभावना नहीं है, अतः घोसले और लताओं से युक्त यह स्थाणु ही होना चाहिये ॥ १ ॥

इस श्लोक में जो 'स्मरारातिसमाननाम्ना' यह पद है, उसका अर्थ है-स्मराराति=महादेव के नाम सदृश नामवाला अर्थात् स्थाणु।

इस प्रकार जो वस्तु के निर्णय करने की ओर झुकता हुआ ज्ञान है उसी का नाम ईहा है। संशय में और ईहा में इस तरह भेद हो जाता है-संशय में निर्णय की तरफ झुकाव नहीं है तब कि ईहा में है। ईहा में सर्वथा निश्चय नहीं है। ऐसा निश्चय तो अवायज्ञान में है, इसीलिये ईहा को अवायज्ञान से पहिले माना है। इसी तरह जब अवग्रह-ज्ञान का विषय 'यह मनुष्य है' ऐसा होता है तब वहां पर भी सद्भून विशेष अर्थ की पर्यालोचना होती है जैसे यह मनुष्य दणिक्ष का है अथवा उत्तर का है। जब इस प्रकार का अवग्रह के पश्चात् संशयज्ञान होता है तब उसके निराकरण के लिये जो ऐसा ज्ञान होता है कि-'यह

એટલે કે-આ નિર્જન વન છે, સૂર્ય પણ અસ્ત પામ્યો છે, તેથી આ સમયે અહીં મનુષ્યની સંભાવના નથી, તેથી માળાઓ અને લતાઓથી યુક્ત સ્થાણુ જ હોવું જોઇએ આ શ્લોકમાં જે "स्मराराति समाननाम्ना" એ પદ છે, તેનો અર્થ આ પ્રમાણે છે-स्मराराति=મહાદેવના નામ સમાન નામવાળું સ્થાણુ. આ રીતે વસ્તુના નિર્ણય કરવાની તરફ ઢળતું જે જ્ઞાન છે તેનું નામ ईहा છે. સંશયમાં અને ઇહામાં આ રીતે તફાવત પડે છે-સંશયમાં નિર્ણયની તરફ ઝુકવાપણું નથી ત્યારે ईहा માં છે. ઇહામાં તદ્દન નિશ્ચય નથી. એવો નિશ્ચય તો अवायज्ञान માં જ છે. તેથી ईहा ને अवायज्ञान ની આગળ માનેલ છે. એજ રીતે જ્યારે અવગ્રહ જ્ઞાનનો વિષય "આ મનુષ્ય છે" એવો હોય છે ત્યારે તેમાં પણ સદ્ભૂત વિશેષ અર્થની પર્યાલોચના થાય છે, જેમકે "આ મનુષ્ય દક્ષિણનો છે કે ઉત્તરનો છે" જ્યારે આ પ્રકારના અવગ્રહ પછી સંશયજ્ઞાન થાય છે ત્યારે તેના નિવારણને માટે જે એવું જ્ઞાન થાય છે કે-"એ દક્ષિણ દેશનો હોવો જોઇએ, કારણ કે દક્ષિણદેશમા

तथा—अवगृहीतार्थस्य निर्णयरूपोऽध्यवसायोऽवायः। अवायः, निर्णयः, निश्चयः, अवगमः, इति पर्यायाः। यथा–अयं शब्दः शंखस्यैव, इत्यादिनिश्चयात्मकोऽवबोधोऽवाय इत्युच्यते ३।

निर्णीतार्थविशेषस्य धारणं धारणा। सा च त्रिधा–अविच्युतिः १, वासना २, स्मृति ३ श्च। तत्र तदुपयोगादविच्यवनम्–अविच्युतिः। सा चान्तर्मुहूर्तप्रमाणा ॥१॥ ततस्तया आहितो यः संस्कारः सा वासना। सा च संख्येयमसंख्येयं वा कालं

दक्षिण देश का होना चाहिये, कारण दक्षिण देश में जिस प्रकार की वेषभूषा होती है उस प्रकार की वेषभूषा से यह सुसज्जित है।' तथा अवग्रह से गृहीत अर्थ का निर्णयरूप जो अध्यवसाय है वह अवाय है। जैसे 'यह शब्द शंख का ही है।' अथवा 'यह स्थाणु ही है' आदि। इस प्रकार निश्चयात्मक बोध का नाम अवाय है। निर्णय, निश्चय, अवगम, ये सब अवाय के ही पर्यायवाची शब्द हैं। अवाय–निश्चय–कुछ काल तक कायम रहता है फिर विषयान्तर में मन चला जाता है इससे वह निश्चय लुप्त हो जाता है, वह ऐसे संस्कार को डाल जाता है कि जिससे आगे कभी कोई योग्य निमित्त मिलने पर उस निश्चित विषय का स्मरण हो आता है। इस निश्चय की सतत धारा, तज्जन्यसंस्कार और संस्कारजन्य स्मरण, मति के ये सब व्यापार धारणा है। इसी बात का खुलासा करते हुए टीकाकार कहते हैं कि–निर्णीत अर्थविशेष का धारण ही धारणा है। इस धारणा के अविच्युति, वासना और स्मृति, इस तरह तीन भेद हैं। अवायद्वारा निश्चित अर्थ

જે જાતનો પહેરવેશ હોય છે તે પ્રકારનો પહેરવેશ તેણે ધારણ કરેલ છે" તથા અવગ્રહથી ગ્રહણ કરેલ અર્થના નિર્ણયરૂપ જે અધ્યવસાય (પ્રયત્ન) છે તે અવાય છે. જેમ કે "આ શબ્દ શંખનો જ છે" અથવા "આ સ્થાણુ જ છે" આદિ. આ રીતે નિશ્ચયાત્મક બોધનું નામ અવાય છે. નિર્ણય, અવગમ, એ બધા અવાય નાંજ પર્યાયવાચી શબ્દો છે અવાય–નિશ્ચય કેટલોક સમય સુધી કાયમ રહે છે પછી મન વિષયાન્તરમાં ચાલ્યું જાય છે, તેથી તે નિશ્ચયનો લોપ થાય છે, પણ તે એવા સંસ્કાર મૂકી જાય છે કે જેથી આગળ કોઈ યોગ્ય નિમિત્ત મળતાં તે નિશ્ચિત વિષયનું સ્મરણ થઈ આવે છે. "આ નિશ્ચયની સતત ધારા, તેનાથી જનિત સંસ્કાર અને સંસ્કારજનિત સ્મરણ" મતિના એ સઘળા વ્યાપાર ધારણા છે. એજ વાતનું સ્પષ્ટીકરણ કરતા ટીકાકાર કહે છે કે–નિર્ણીત અર્થવિશેષનું ગ્રહણ જ ધારણા છે. આ ધારણાનાં આ રીતે ત્રણ

यावद्भवति ॥ २ ॥ ततः कालान्तरे कुतश्चित् तादृशार्थदर्शनादिकारणात् संस्कारस्योद्बोधे यद् ज्ञानमुदयते, यथा 'तदेवेदं यन्मया प्रागुपलब्धम्' इत्यादिरूपं सा स्मृतिः ॥ ३ ॥ एताश्च-अविच्युति-वासना-स्मृतयो धारणालक्षणसामान्यान्वर्थयोगाद् धारणाशब्दवाच्याः। उक्तंच—

"तयणंतरं तयत्था-ऽविच्चवणं जो य वासणा जोगो।
कालंतरे य जं पुण, अणुसरणं धारणा सा उ" ॥१॥

छाया—तदनन्तरं तदर्थाविच्यवनं यश्च वासनायोगः।
कालान्तरे च यत् पुनरनुस्मरणं धारणा सा तु ॥ १ ॥

में अवाय के बाद जबतक उपयोग की धारा कायम रहती है, इसका नाम अविच्युति है। अविच्युति का काल अन्तर्मूहूर्त का है। इस अविच्युति से जो संस्कार आत्मा में स्थापित कर दिया जाता है उसका नाम वासना है। वासना संख्यात असंख्यात काल तक रहती है। इस वासना से यह बात होती है कि कालान्तर में किसी तादृश अर्थ के देखनेरूप कारण से संस्कार की उद्भूति हो जाती है। उससे ऐसा ज्ञान होता है कि यह वस्तु वही है कि जिसको मैंने पहिले देखा था। इस तरह का ज्ञान ही स्मृति है। अविच्युति, वासना और स्मृति, इन तीनों में धारणा का सामान्य लक्षण रहता है, इसलिये ये तीनों भेद धारणास्वरूप माने गये हैं। कहा भी है—

"तयणंतरं तयत्थाऽविच्चवणं जो य वासणा जोगो।
कालंतरे य जं पुण, अणुसरणं धारणा सा उ" ॥ १ ॥

ભેદ છે-(૧) अविच्युति (२) વાસના અને (૩) સ્મૃતિ. 'અવાય' દ્વારા નિશ્ચિત અર્થમાં અવાયની પછી જ્યાં સુધી ઉપયોગની ધારા કાયમ રહે છે, તેનું નામ અવિચ્યુતિ છે. અવિચ્યુતિનો કાળ અન્તર્મુહૂર્તનો છે. આ અવિચ્યુતિ વડે જે સંસ્કાર આત્મામાં સ્થાપિત કરાય છે તેનું નામ વાસના છે. સંખ્યાત અસંખ્યાત કાળ સુધી રહે છે. આ વાસનાથી એ વાત બને છે કે કાળાન્તરે કોઈ તાદૃશ અર્થને દેખવારૂપ કારણે સંસ્કારની ઉત્પત્તિ થઇ જાય છે. તેનાથી એવું જ્ઞાન થાય છે કે આ વસ્તુ એજ છે કે જેને મેં પહેલાં જોઈ હતી. આ પ્રકારનું જ્ઞાન જ સ્મૃતિ છે. અવિચ્યુતિ, વાસના અને સ્મૃતિ, એ ત્રણેમાં ધારણાનું સામાન્ય લક્ષણ રહે છે, તેથી તે ત્રણે ભેદ ધારણાસ્વરૂપ માનવામાં આવ્યા છે. કહ્યુ પણ છે-

"तयणतरं तयत्थाऽविच्चवणं जोय वासणा जोगो।
कालं तरे य जं पुण, अणुसरणं धारणा सा उ" ॥१॥

व्याख्या—तस्मादवायादनन्तरं–तदनन्तरं यत् तदर्थादविच्यवनम्–उपयोगमाश्रित्याभ्रंशः ॥१॥ तथा यश्च जीवेन सह वासनाया योगः–सम्बन्धः ॥२॥ तथा यच्च तस्यार्थस्य कालान्तरे पुनरिन्द्रियैरुपलब्धस्य, तथैव–इन्द्रियैरनुपलब्धस्य वा मनसाऽनुस्मरणं–स्मृतिर्भवति ॥३॥ सेयं त्रिविधाऽप्यर्थस्यावधारणरूपा धारणा विज्ञेया। अयं भावार्थः—अवायेन निश्चितेऽर्थे तदनन्तरं यावदद्यापि तदर्थोपयोगः सातत्येन वर्तते, न तु तस्मान्निवर्तते तावत् तदर्थोपयोगादविच्युतिर्नाम, सा धारणायाः प्रथमभेदो भवति १। ततस्तस्यार्थोपयोगस्य यदावरणं कर्म तस्य क्षयोपशमेन जीवो युज्यते, येन कालान्तरे इन्द्रियव्यापारादिसामग्रीवशात् पुनरपि तदर्थोपयोगः स्मृतिरूपेण प्रादुर्भवति, सा चेयं तदावरणक्षयोपशमरूपा वासना नाम द्वितीयस्तद्भेदो भवति २। कालान्तरे च वासनावशात् तदर्थस्येन्द्रियैरुपलब्धस्य, अथवा तैरनुपलब्धस्यापि मनसि या स्मृतिराविर्भवति, सा तृतीयस्तद्भेद ३ इति। एवं त्रिभेदा धारणा विज्ञेया। इह तु शब्दोऽवग्रहादिभ्यो विशेषद्योतनार्थः ॥१॥सू०२६॥

॥ इति श्रुतनिश्रितमतिज्ञानभेदाः ॥

इस गाथा का अर्थ इस प्रकार है–अवाय के बाद अवायगृहीत अर्थ में उपयोग की अपेक्षा को लेकर जो उपयोग की धारा का अविच्यवन होता है १। तथा जीव के साथ वासना का जो संबंध होता है २। पश्चात् कालान्तर में इन्द्रियों द्वारा उपलब्ध होने पर अथवा नहीं होने पर मन से जो उस अर्थ की स्मृति होती है २। इस तरह त्रिविधरूप से जो अर्थ का अवधारण होता है वही धारणा है।

भावार्थ इस का इस प्रकार है–अवाय के द्वारा निश्चित हुए पदार्थ में उसके बाद जबतक निरन्तर उस पदार्थ का जो उपयोग बना रहता है सो इस उपयोग का बना रहना ही अविच्युति है। यह धारणा का

આ ગાથાનો અર્થ આ પ્રમાણે છે—(૧) ‘અવાય’ પછી અવાયગૃહીત અર્થમાં ઉપયોગની અપેક્ષાને લઈને જે ઉપયોગની ધારાનું અવિચ્યવન થાય છે. તથા (૨) જીવની સાથે વાસનાનો જે સંબંધ થાય છે, (૩) પછી કાલાન્તરે ઇન્દ્રિયો દ્વારા ઉપલબ્ધ થતા અથવા ન થતા મન વડે તે અર્થની જે સ્મૃતિ થાય છે, આ રીતે ત્રિવિધરૂપે જે અર્થનું અવધારણ થાય છે એજ ધારણા છે.

તેનો ભાવાર્થ આ પ્રમાણે છે–અવાયદ્વારા નિશ્ચિત થયેલ પદાર્થમાં તેના પછી જ્યાં સુધી નિરંતર તે પદાર્થનો જે ઉપયોગ કાયમ રહે છે તે ઉપયોગનું કાયમ રહેવું તે અવિચ્યુતિ છે. આ ધારણાનો પહેલો ભેદ છે ૧. આ અર્થો-

॥ अथ अवग्रहभेदनिरूपणम् ॥

मूलम्—से किं तं उग्गहे?। उग्गहे दुविहे पण्णत्ते; तं जहा-अत्थुग्गहे य, वंजणुग्गहे य ॥० २७ ॥

छाया—अथ कः सोऽवग्रहः?। अवग्रहो द्विविधः प्रज्ञप्तः। तद् यथा अर्थावग्रहश्च, व्यञ्जनावग्रहश्च ॥ सू० २७ ॥

टीका—'से किं तं उग्गहे०' इत्यादि।

अथ कः सोऽवग्रहः—अवग्रहस्य किं स्वरूपमिति शिष्यप्रश्नः। उत्तरमाह—'उग्गहे दुविहे' इत्यादि। अवग्रहो द्विविधः प्रज्ञप्तः। तद् यथा—अर्थावग्रहः,

---

प्रथम भेद है १। इस अर्थोपयोग का जो आवरण करने वाला कर्म है उसका क्षयोपशम होना यह वासना है। वासना के बल पर ही कालान्तर में जीव उस अर्थ के उपयोग से वासित बना रहता है, और उस पदार्थ की स्मृति किया करता है यह वासना धारणा का द्वितीय भेद है २। कालान्तर में जब उस दृष्ट पदार्थ के साथ इन्द्रियों का संबंध होता है अथवा नहीं होता तब भी जीव मन में जो उस पदार्थ का स्मरण करता है यह स्मृति धारणा का तृतीय भेद है ३। इसका फलितार्थ केवल इतना ही है कि अवाय के बाद उस दृष्ट पदार्थ का आत्मा में जो उपयोग बना रहता है वह अविच्युति १, और इस अविच्युति से उसके आवारक कर्मका क्षयोपशम होना यह वासना २, और वासना के बल पर उस पदार्थ का स्मरण होना यह स्मृति है ३। इस प्रकार से धारणा के तीन भेद हैं। इस तरह ये श्रुतनिश्रित मतिज्ञान के भेद हैं॥ सू० २६॥

પયોગનું જે આવરણ કરનાર કર્મ છે તેનો ક્ષયોપશમ થવો તે વાસના છે. વાસનાના બળે જ કાળાન્તરે જીવ તે અર્થના ઉપયોગથી વાસિત બની રહે છે, અને એ પદાર્થની સ્મૃતિ કર્યા કરે છે. આ વાસના ધારણાનો બીજો ભેદ છે ૨. કાલાન્તરે જ્યારે તે જોયેલ પદાર્થની સાથે ઈન્દ્રિયોનો સંબંધ થાય છે કે થતો નથી ત્યારે પણ જીવ મનમાં એ પદાર્થનું જે સ્મરણ કરે છે એ સ્મૃતિ ધારણાનો ત્રીજો ભેદ છે ૩. તેનું તાત્પર્ય ફક્ત એટલું જ છે કે-(૧) અવાયની પછી તે જોયેલ પદાર્થનો આત્મામાં જે ઉપયોગ કાયમ રહે છે તે અવિચ્યુતિ, અને (૨) તે અવિચ્યુતિથી તેનું આવરણ કરનાર કર્મોનો ક્ષયોપશમ થવો તે વાસના, અને (૩) વાસનાને બળે તે પદાર્થનું સ્મરણ થવું તે સ્મૃતિ છે. આ રીતે ધારણાના ત્રણ ભેદ છે. આ રીતે એ શ્રુતનિશ્રિત મતિજ્ઞાનના ભેદ છે ।।સૂ.૨૬।।

व्यञ्जनावग्रहश्चेति। अर्थस्यवस्तुनोऽवग्रहः—अवग्राहणं सामान्यज्ञानम्, अर्थावग्रहः, रूपादिसकलविशेषनिरपेक्षाऽनिर्देश्यसामान्यमात्रार्थग्रहणमेकसामयिकमिति भावार्थः ॥१॥ तथा—अर्थो व्यज्यते=प्रकटीक्रियते ऽनेन, घटः प्रदीपेनेवेति व्यञ्जनम्। तच्चोपकरणेन्द्रियस्य श्रोत्रादेः शब्दादिपरिणतद्रव्याणां च परस्परं सम्बन्धः, यतः सम्बन्धे सति सोऽर्थः शब्दादिरूपः श्रोत्रादीन्द्रियेण व्यञ्जयितुं=ज्ञापयितुं शक्यते, नान्यथा, ततश्च सम्बन्धो व्यञ्जनम्। व्यञ्जनेन=

अब सूत्रकार अवग्रह के भेदों का निरूपण करते हैं—'से किं तं उग्गहे' इत्यादि।

शिष्य पूछता है-पूर्वनिर्दिष्ट अवग्रह का क्या स्वरूप है? उत्तर-अवग्रह दो प्रकार का बतलाया गया है। अर्थावग्रह और व्यञ्जनावग्रह। जिसमें वस्तु का सामान्यज्ञान होता है वह अर्थावग्रह है। इसमें रूपादिक सकल विशेषों से निरपेक्ष ऐसे अनिर्देश्य सामान्य मात्र अर्थ का ग्रहण होता है। इसका काल एक समय है १। जिस प्रकार प्रदीप से घट पटादिक अर्थों की अभिव्यक्ति होती है उसी प्रकार जिसके द्वारा अर्थकी व्यञ्जना-अभिव्यक्ति होती है वह व्यञ्जन है। यह व्यंजन उपकरणेन्द्रिय जो श्रोत्र आदिक हैं उनका और उनके विषयभूत शब्दादिकोंका परस्पर सम्बन्ध-स्वरूप माना गया है। अर्थात्—उपकरणेन्द्रियका विषयके साथ सम्बन्ध होना यह व्यञ्जन है। इन्द्रिय और पदार्थों का सम्बन्ध होने पर ही इन्द्रियोंका शब्दादिरूप विषय, श्रोत्रादिक इन्द्रियोंद्वारा ज्ञापित किया जा सकता है, अन्यथा नहीं, अतः सम्बन्धका नाम व्यञ्जन है। इन्द्रिय

હવે સૂત્રકાર અવગ્રહના ભેદોનું નિરૂપણ કરે છે-"से किं तं उग्गहे" ઈત્યાદિ.
શિષ્ય પૂછે છે-પૂર્વનિર્દિષ્ટ અવગ્રહનું શું સ્વરૂપ છે?

ઉત્તર—અવગ્રહ બે પ્રકારના દર્શાવ્યા છે-અર્થાવગ્રહ અને વ્યંજનાવગ્રહ જેમાં વસ્તુનું સામાન્ય જ્ઞાન થાય છે તે અર્થાવગ્રહ છે તેમાં રૂપાદિક સમસ્ત વિશેષોથી નિરપેક્ષ એવા અનિર્દેશ્ય સામાન્ય માત્ર અર્થનું ગ્રહણ થાય છે. તેનો કાળ એક સમય છે ૧. જે પ્રકારે દીવા વડે ઘટ, પટ આદિ અર્થોની અભિવ્યક્તિ થાય છે એજ રીતે જેના દ્વારા અર્થની વ્યંજના-અભિવ્યક્તિ થાય છે તે વ્યંજન છે, તે વ્યંજન શ્રોત્ર આદિ ઉપકરણેન્દ્રિયો અને તેમના વિષયભૂત શબ્દાદિનું પરસ્પર સંબંધસ્વરૂપ માનવામા આવેલ છે. એટલે કે ઉપકરણેન્દ્રિયનો વિષયની સાથે સંબંધ થવો તે વ્યંજન છે. ઈન્દ્રિય અને પદાર્થોનો સંબંધ થતા જ ઈન્દ્રિયોનો શબ્દાદિ રૂપ વિષય, શ્રોત્રાદિક ઇન્દ્રિયો-દ્વારા જાણી શકાય છે, બીજી રીતે નહીં, તેથી સંબંધનું નામ વ્યંજન છે.

सम्बन्धेन अवग्रहणं-सम्बध्यमानस्यशब्दादि रूपस्यार्थस्याव्यक्तरूपः परिच्छेदो व्यञ्जनावग्रहः, अथवा व्यज्यन्ते=ज्ञायन्ते इति व्यञ्जनानि, शब्दादिरूपा अर्थाः, तेषामुपकरणेन्द्रियसंप्राप्तानामवग्रहः=अव्यक्तरूपः परिच्छेदो व्यञ्जनावग्रहः। अथवा -अर्थो व्यज्यतेऽनेन, घटः प्रदीपेन इवेति व्यञ्जनम्-उपकरणेन्द्रियं, तेन स्वसम्बद्धस्यार्थस्य शब्दादेरवग्रहणम् अव्यक्तरूपः परिच्छेदो व्यञ्जनाऽवग्रहः। उपकरणे-

---

और पदार्थके संबंधरूप व्यञ्जन द्वारा जो शब्दादिकरूप अर्थका सर्वप्रथम अति-अल्प मात्रामें अवग्रह-परिच्छेद होता है वह व्यञ्जनावग्रह है। तात्पर्य यह है कि-प्रारम्भमें ज्ञानकी मात्रा इतनी अल्प होती है कि उससे "यह कुछ है" ऐसा सामान्य बोध भी नहीं होने पाता है, इसी का नाम अव्यक्त परिच्छेद है, और यही व्यञ्जनाग्रह है। अथवा-"व्यज्यन्ते-ज्ञायन्ते इति व्यञ्जनानि-शब्दादिरूपाः" अर्थात्-इस व्युत्पत्तिके अनुसार व्यञ्जनका अर्थ शब्दादिकरूप अर्थ है, क्यों कि वे ही अव्यक्तरूपसे व्यञ्जित किये जाते हैं। इस तरह इन व्यञ्जनोंका उपकरणेन्द्रियों के विषयभूत होने पर जो अव्यक्तरूपसे ग्रहण होता है वह व्यञ्जनाग्रह है। अथवा-"अर्थो व्यज्यते=प्रकटी क्रियतेऽनेन घटः प्रदीपेनेवेति व्यञ्जनम्" इस व्युत्पत्तिके अनुसार व्यञ्जन शब्द का अर्थ उपकरण-इन्द्रिय भी होता है, कारण कि उपकरण-इन्द्रियके द्वारा शब्दादिक विषयरूप अर्थ अव्यक्तरूपसे ग्रहण किये जाते हैं। यही व्यञ्जनावग्रह है। उपक-

---

ઇન્દ્રિય અને પદાર્થના સંબંધરૂપ વ્યંજન દ્વારા જે શબ્દાદિક રૂપ અર્થનો સર્વપ્રથમ અતિઅલ્પમાત્રામાં અવગ્રહ-પરિચ્છેદ થાય છે તે વ્યંજનાવગ્રહ છે. તાત્પર્ય એ કે-પ્રારંભમાં જ્ઞાનની માત્રા એટલી ઓછી હોય છે કે તેના વડે "આ કંઇક છે" એવો સામાન્ય બોધ પણ થવા પામતો નથી, એનું જ નામ અવ્યક્ત પરિચ્છેદ છે, અને એજ વ્યંજનાવગ્રહ છે. અથવા-" व्यज्यन्ते-ज्ञायन्ते इति व्यञ्जनानि-शब्दादि रूपाः" એટલે કે આ વ્યુત્પત્તિપ્રમાણે વ્યંજનનો અર્થ શબ્દાદિકરૂપ અર્થ છે, કારણ કે તેમનેજ અવ્યક્તરૂપે વ્યંજિત કરાય છે. આ રીતે એ વ્યંજનોનું ઉપકરણેન્દ્રિયોને વિષયભૂત થઈને જે અવ્યક્તરૂપે ગ્રહણ થાય છે તે વ્યંજનાવગ્રહ છે. અથવા-" अर्थो व्यज्यते=प्रकटी क्रियतेऽनेन घटः प्रदीपेनेवेति व्यञ्जनम्" આ વ્યુત્પત્તિ પ્રમાણે વ્યંજન શબ્દનો અર્થ ઉપકરણ ઇન્દ્રિય

न्द्रिय-शब्दाद्यर्थसम्बन्धे सति प्रथमसमयादारभ्य, अर्थावग्रहात् प्राक् या सुप्त-मत्तमूर्च्छितादिपुरुषाणामिव शब्दादिद्रव्यसम्बन्धमात्रविषया काचिदव्यक्ता ज्ञानमात्रा सा व्यञ्जनावग्रहः। स चान्तर्मुहूर्तप्रमाणः।

ननु—व्यञ्जनावग्रहकाले किमपि संवेदनं न संवेद्यते, तत् कथमसौ ज्ञानरूपः स्यात्?, उच्यते—अव्यक्तत्वान्न संवेद्यते, ततो न कश्चिद्दोषः। तथाहि-यदि प्रथम-समयेऽपि शब्दादिपरिणतद्रव्यैरुपकरणेन्द्रियस्य संबन्धे काचिदपि ज्ञानमात्रा न भवेत्, ततो द्वितीयेऽपि समये न भवेत् विशेषाभावात्। यावच्चरमसमयेऽपि। अथ यदि चरमसमये ज्ञानमर्थावग्रहरूपं जायमानमुपलभ्यते, तदा प्रागपि क्वापि कियती ज्ञानमात्रा भवतीति मन्तव्यम्।

रण-इन्द्रियका शब्दादिकरूप अपने विषयके साथ सम्बन्ध होनेपर प्रथम समयसे ले कर अर्थावग्रहके पहिले २ जो उनका बहुत ही कम अल्प मात्रामें ज्ञान होता है, जैसे-सुप्त, मत्त एवं मूर्च्छित व्यक्तियोंको पदार्थ का सम्बन्ध होने पर अल्प मात्रामें अव्यक्त बोध होता है उसका नाम व्यञ्जनावग्रह है। इसका काल अन्तर्मुहूर्तका है।

शङ्का—व्यञ्जनावग्रहके समयमें जब "यह कुछ है" ऐसा सामान्य बोध भी नहीं होने पाता है तो फिर उसको ज्ञानरूप क्यों कहा? अर्थात् जब व्यञ्जनावग्रहके कालमें ज्ञानका थोडासा भी संवेदन-अनुभवन नहीं होता है तो फिर वह ज्ञानरूप कैसे माना जा सकता है कि जिससे यह मतिज्ञानका एक भेदरूप माना जा सके?।

દ્વારા શબ્દાદિક વિષયરૂપ અર્થ અવ્યક્તરૂપે ગ્રહણ થાય છે. એજ વ્યંજનાવગ્રહ છે. ઉપકરણ ઈન્દ્રિયનો શબ્દાદિક રૂપ પોતાના વિષયની સાથેસંબંધ થતા પ્રથમ સમયથી લઈને અર્થાવગ્રહના પહેલાં જે તેમનું બહુજ થોડાં પ્રમાણમાં જ્ઞાન થાય છે, જેમકે સુપ્ત, મત્ત અને મૂર્ચ્છિત વ્યક્તિઓને પદાર્થનો સંબંધ થતા થોડાં પ્રમાણમાં અવ્યક્ત બોધ થાય છે તેનું નામ વ્યંજનાગ્રહ છે. તેનો કાળ અન્તર્મુહૂર્તનો છે.

શંકા—વ્યંજનાવગ્રહના સમયે જ્યારે "આ કંઈક છે" એવો સામાન્ય બોધ પણ થવા પામતો નથી. તો પછી તેને જ્ઞાનરૂપ કેમ કહ્યું? એટલે કે જો વ્યંજનાવગ્રહના સમયે જ્ઞાનનું થોડું પણ સંવેદન (અનુભવ) થતું નથી તો પછી એ જ્ઞાનરૂપ કેવી રીતે માની શકાય કે જેથી તે મતિજ્ઞાનના એક ભેદરૂપ માની શકાય?

उत्तर—व्यञ्जनावग्रहमें ज्ञानकी मात्रा अति अल्प है-अव्यक्त है, इस लिये उसका संवेदन नहीं होता है। संवेदन न होनेसे उसमें ज्ञानरूपता का अभाव नहीं आ सकता है। यदि उसमें ज्ञानांशरूपना न होवे अर्थात प्रथम समयमें भी शब्दादिरूपसे परिणत द्रव्योंके साथ उपकरण-इन्द्रिय का सम्बन्ध होने पर व्यञ्जनावग्रह अनिर्वचनीय थोड़ी सी भी ज्ञानमात्रा नहीं स्वीकृत की जावे-तो फिर द्वितीय समयमें भी ज्ञानमात्रा नहीं होनी चाहिये। इस तरह अन्तिम समयमें भी ज्ञान नहीं होगा, अतः अर्थावग्रह हो ही नहीं सकेगा। तात्पर्य इसका इस प्रकार है कि-प्रथम समयमें ज्ञानकी मात्रा अति अल्प होती है परन्तु ज्यों २ विषय और इन्द्रियोंका सम्बन्ध पुष्ट होता जाता है त्यों २ ज्ञानकी मात्रा भी पुष्ट होती चली जाती है। ज्ञानकी मात्राकी जब इतनी पुष्टि हो जाती है कि उससे यह मालूम होने लगे कि 'यह कुछ है' तब यही व्यञ्जनावग्रह अर्थावग्रहके रूपमें परिणत हो जाता है। यदि व्यञ्जनावग्रहमें ज्ञान की मात्रा जो कि उस समय अव्यक्ततम, अव्यक्ततर या अव्यक्त रूपमें रहती है वह नहीं मानी जावे तो फिर व्यञ्जनावग्रहकी आगे २ के समयों में पुष्टि होने पर जो अर्थावग्रहरूप में परिणति होती है वह कैसे हो सकती

ઉત્તર—વ્યંજનાવગ્રહમાં જ્ઞાનની માત્રા ઘણી થોડી છે. અવ્યક્ત છે. તેથી તેનું સંવેદન થતું નથી. સંવેદન ન થવાથી તેમાં જ્ઞાનરૂપતાનો અભાવ આવી શકતો નથી જો તેમાં જ્ઞાનાંશરૂપતા ન હોય એટલે કે પ્રથમ સમયે પણ શબ્દાદિ રૂપે પરિણત દ્રવ્યોની સાથે ઉપકરણ ઈન્દ્રિયોનો સબંધ થતા વ્યંજનાવગ્રહ અનિવર્ચનીય થોડી પણ જ્ઞાનમાત્રાનો સ્વીકાર કરવામાં ન આવે તો પછી દ્વિતીય સમયમાં પણ જ્ઞાન માત્રા ન હોવી જોઈએ. આ રીતે અંતીમ સમયે પણ જ્ઞાન નહીં હોય, તેથી અર્થાવગ્રહ થઈજ નહીં શકે. તેનું તાત્પર્ય આ પ્રમાણે છે-પ્રથમ સમયમાં જ્ઞાનમાત્રા અતિ અલ્પ હોય છે, પણ જેમ જેમ વિષય અને ઇન્દ્રિયોનો સંબંધ પુષ્ટ થતો જાય છે તેમ તેમ જ્ઞાનની માત્રા પુષ્ટ થતી જાય છે. જ્ઞાનની માત્રા જ્યારે એટલી પુષ્ટ થાય કે તેના વડે એમ ખબર પડવા માંડે કે "આ કંઈક છે" ત્યારે એજ વ્યંજનાવગ્રહ અર્થાવગ્રહના રૂપે પરિણમે છે. જો વ્યંજનાવગ્રહમા જ્ઞાનની માત્રા કે જે તે સમયે અવ્યક્તતર કે અવ્યક્ત રૂપે રહે છે એમ ન માનવામાં આવે તો પછી વ્યંજનાવગ્રહની પછીના પુષ્ટિ થતાં જે અવગ્રહરૂપે પરિણતિ થાય છે તે કેવી રીતે થઈ શકે વ્યંજનાવગ્રહીનો

अथ प्रथमसमयादिषु शब्दादिविपरिणतद्रव्यसम्बन्धेऽपि काचिदपि ज्ञानमात्रा माभूत् शब्दादिद्रव्याणां तेषु समयेषु स्तोकत्वेन ग्राह्यत्वात्, चरमसमये तु ज्ञानमात्रा स्यात् शब्दादिरूपपरिणतद्रव्यसमूहस्य तदानीं भूयस्त्वेन विषयत्वात्। इति चेत्, तदयुक्तम्-यदि हि प्रथमसमयादिषु शब्दादिद्रव्याणां स्तोकत्वात् संपृक्ता वष्यव्यक्ता काचिदपि ज्ञानमात्रा न समुल्लसेत्, तर्हि प्रभूतसमुदायसम्पर्केऽपि

है ?। परिपुष्ट व्यञ्जनावग्रह ही तो अर्थावग्रह होता है। अर्थावग्रहसे होनेवाला विषयका भान ज्ञाताके ध्यानमें आ जाता है, और व्यञ्जनावग्रहसे होनेवाला अर्थका बोध ज्ञाताके ध्यानमें नहीं आता है, यही तो इनमें भेद है। ज्ञानके अभावको ले कर इनमें भेद नहीं माना गया है। इस लिये यह स्वीकार करना चाहिये कि व्यञ्जनावग्रहमें थोड़ी सी ज्ञान की मात्रा हैं।

यहाँ शंकाकार कहता है यह कि प्रथमादि समयों में शब्दादिरूप से परिणत पुद्गल द्रव्यों का संबंध होने पर भी व्यञ्जनावग्रह में जो थोड़ी सी भी ज्ञानमात्रा नहीं होती है? उसका कारण यह है कि वे उन समयों में बहुत ही स्तोकरूप से-सूक्ष्मरूप से-ग्राह्य होते हैं, परन्तु अन्तिम समय में जो उनका ज्ञान होता है उसका कारण यह है कि उस समय शब्दादिरूप परिणत द्रव्यसमूह का भूयस्त्वरूप से ग्रहण होता है। तात्पर्य शंकाकार का यह है कि अभी सिद्धान्ती की ओर से जो व्यंजनावग्रह में ज्ञानरूपता प्रतिपादन करने के लिये ऐसा कहा गया है कि-'यदि व्यंजनावग्रह में ज्ञानरूपता न मानी जावेगी तो अर्थावग्रह में ज्ञानरूपता

એક પુષ્ટ અંશ જ અર્થાવગ્રહ થાય છે. અર્થાવગ્રહથી થનારઅર્થનો બોધ જાણનારના ધ્યાનમાં આવતો નથી, એજ તેમની વચ્ચેનો ભેદ છે, જ્ઞાનના અભાવે કરીને તેમાં ભેદ મનાયા નથી તેથી એ સ્વીકારવું જોઈએ કે વ્યાંજનાવગ્રહમાં કેટલીક જ્ઞાનની માત્રા છે જ.

જો શંકા કરનારની તરફથી એમ કહેવામાં આવે કે પ્રથમાદિ સમયોમાં શબ્દાદિ રૂપે પરિણત પુદ્ગલ દ્રવ્યોનો સબંધ થતા પણ જે થોડા પ્રમાણમાં પણ જ્ઞાનમાત્રા નથી હોવી તેનું કારણ એ છે કે તેઓ તે સમયોમાં બહુ જ સ્તોકરૂપે-સૂક્ષ્મરૂપે-ગ્રાહ્ય થાય છે, પણ અન્તિમ સમયે જે તેમનું જ્ઞાન થાય છે તેનું કારણ એ છે કે તે સમયે શબ્દાદિ રૂપ પરિણત દ્રવ્ય સમૂહનું ભૂય સ્વરૂપે ગ્રહણ થાય છે. શંકાકરનારના કહેવાનું તાત્પર્ય એ છે કે હમણાં જ સિદ્ધાંત દ્વારા વ્યંજનાવગ્રહમાં જ્ઞાનરૂપતાનું પ્રતિપાદન કરવાને માટે એવું જે કહ્યું છે કે-"જો વ્યંજનાવગ્રહમાં જ્ઞાનરૂપતા માનવામાં ન આવે તો અર્થાવગ્-

नहीं आ सकती है, अर्थात्-यदि प्रथम समय में भी शब्दादिपरिणत द्रव्यो के साथ उपकरणेन्द्रिय का संबंध होने पर थोड़ी भी ज्ञानमात्रा न होवे तो वह द्वितीय समय में भा नहीं होगी, इस तरह चलते २ वह अन्तिम समयरूप अर्थावग्रह में भी नहीं आ सकेगी सो इस पर यह कहना है कि चरम समय में जो ज्ञानरूपता का वेदन होता है उसका कारण यह है कि उस चरम समयमें शब्दादिरूप परिणत द्रव्यसमूहका भूयस्त्वरूपसे ग्रहण होता है। ऐसा ग्रहण द्वितीयादि समयों में नहीं होता है वहां तो स्तोकरूपसे ही उनका ग्रहण होता है। इसलिये व्यञ्जनावग्रह में ज्ञान मात्रा नहीं होती है।

इस पर सिद्धान्तीका ऐसा उत्तर है कि-यदि प्रथमादि समयोंमें शब्दादि द्रव्य स्तोक होते हैं इस ख्यालसे वहां थोड़ी सी भी ज्ञानमात्रा नहीं होती हैं, अर्थात्-उन द्रव्योंका जो ग्रहण होता है वह ज्ञाताके अनुभवमें नहीं आता है-वे बहुत ही सूक्ष्म होते हैं, इस लिये उस अवस्थामें उनका ज्ञान "ये कुछ हैं" इस रूपसे निर्देश्य नहीं होता है, कारण कि उस समयका इन्द्रिय और पदार्थका सम्बन्ध अपुष्ट रहता है, ऐसा कहकर उन समयों में थोडी भी ज्ञानमात्रा न मानी जावे

હમાં જ્ઞાનરૂપતા આવી શકતી નથી. એટલે કે જો પ્રથમ સમયમાં પણ શબ્દાદિ પરિણત દ્રવ્યોની સાથે ઉપકરણેન્દ્રિયનો સંબંધ થતા થોડી પણ જ્ઞાનામાત્રા ન હોય તો તે દ્વિતીય સમયમાં પણ નહીં હોય, આ રીતે આગળ વધતા વધતા તે અન્તિમ સમયરૂપ અર્થાવગ્રહમાં પણ આવી નહીં શકે" તો તે બાબતમાં તેનું આ પૂર્વોક્ત કથન છે-તે કહે છે કે ચરમ સમયમાં જે જ્ઞાનરૂપતાનુ સંવેદન થાય છે તેનું કારણ એ છે કે તે ચરમસમયમાં શબ્દાદિરૂપ પરિણત દ્રવ્ય સમૂહનું થતું નથી ત્યાં તો સૂક્ષ્મરૂપે જ તેમનું ગ્રહણ થાય છે?

તેનો સૂત્રકાર તરફથી એવો જવાબ મળે છે કે-જો પ્રથમાદિ સમયોમાં શબ્દાદિ દ્રવ્ય સૂક્ષ્મ હોય છે તે માન્યતાથી ત્યાં થોડી પણ જ્ઞાનમાત્રા હોતી નથી, એટલે કે એ દ્રવ્યોનું જે ગ્રહણ થાય છે તે જ્ઞાતાના અનુભવમાં આવતુ નથી-તેઓ બહૂજ સૂક્ષ્મ હોય છે, તે કારણે તે પરિસ્થિતિમાં તેમનું જ્ઞાન "એ કંઈક છે" એ રૂપે નિર્દેશ્ય થતું નથી, કારણ કે તે સમયનો ઈન્દ્રિય અને પદાર્થનો સંબંધ અપુષ્ટ હોય છે, એમ કહીને તે સમયોમા થોડી પણ જ્ઞાનમાત્રા માનવામાં ન આવે તો મોટા સમૂહાયનો સંપર્ક થતા પણ જ્ઞાનમાત્રા કેવી રીતે

न भवेत्, न हि खलु सिकताकणेषु प्रत्येकं तैलाभावे समुदायेऽपि तैलं समुद्भवदुपलभ्यते। अस्ति च चरमसमये प्रभूतशब्दादिद्रव्यसंपृक्तौ ज्ञानम्, ततः प्राक्तनेष्वपि समयेषु स्तोकस्तोकतरैरपि शब्दादि परिणत द्रव्यैः सम्बन्धे काचिदव्यक्ता ज्ञानमात्रामन्तव्या, अन्यथा चरमसमयेऽपि ज्ञानानुपपत्तेः। तथा च–'व्यञ्जनावग्रहो ज्ञानरूपः' इति सिद्धम्। तच्च ज्ञानमव्यक्तमेवेति बोध्यम्। सूत्रे चकारद्वयं स्वगतानेकभेदसूचकम्। ते च स्वगतानेकभेदाः स्वयमेव सूत्रकृताऽग्रे वक्ष्यते।

ननु प्रथमं व्यञ्जनावग्रहो भवति, ततोऽर्थावग्रहः तर्हि कथमिहार्थावग्रहः पूर्वमुक्तः? इति चेत्, उच्यते–स्पष्टतयोपलभ्यमानत्वादर्थावग्रहः पूर्वमुपन्यस्तः।

तो प्रभूत समुदायके सम्पर्क होने पर भी ज्ञानमात्रा कैसी मानी जा सकेगी ?। जब स्तोकरूपमें उनके ग्रहणकरने पर उनमें ज्ञानमात्रा नहीं है तो वह भूयस्त्वरूपसे उनके ग्रहण होने पर भी कहांसे आयगी ?। यह तो प्रत्यक्ष मालूम देता है कि बालुके एक २ कणमें तैल नहीं है, इसीलिये वह उसके समुदायमें भी नहीं है। चरम समयमें जब ज्ञान होना अनुभव में आता है तो मानना चाहिये कि पहिलेके समयों में भी ज्ञान है, भले वह स्तोकतम आदि रूपमें हो, पर है अवश्य। इस लिये व्यञ्जनावग्रह अज्ञानरूप न होकर ज्ञानरूप है, ऐसा माननेमें कोई बाधा नहीं आती है। व्यञ्जनावग्रहमें किसरूपमें ज्ञानरूपता है यह बात वहां अव्यक्त ही है।

सूत्रमें दो चकार स्वगत अनेक भेदों की सूचना देते हैं। इन भेदोंका कथन सूत्रकार आगे चल कर करेंगे।

शङ्का—जब व्यञ्जनावग्रह पहिले होता है बादमें अर्थावग्रह होता है तो सूत्रकारने पहिले अर्थावग्रह क्यों कहा ?

માની શકાશે ? જો સૂક્ષ્મરૂપે તેમને ગ્રહણ કરતા તેમનામાં જ્ઞાનમાત્રા ન હોય તો તે ભૂયસ્ત્વરૂપે તેમનું ગ્રહણ કરતાં ક્યાંથી આવશે ? આ તો પ્રત્યક્ષ અનુભવની વાત છે કે રેતીના પ્રત્યેક કણમાં તેલ નથી. તેથી તે તેમના સમુદાયમાં પણ નથી. ચરમ સમયે જો જ્ઞાન થવાનો અનુભવ થાય છે તો એ સ્વીકારવું જોઈએ કે પહેલાંના સમયોમાં પણ જ્ઞાન હતું જ, ભલે તે સૂક્ષ્મતમ આદિરૂપે હોય, પણ છે અવશ્ય. તે કારણે વ્યંજનાવગ્રહ અજ્ઞાનરૂપ નથી પણ જ્ઞાનરૂપ છે, એમ માનવામાં કોઈ મુશ્કેલી રહેતી નથી. વ્યંજનાવગ્રહમાં ક્યાં રૂપે જ્ઞાનરૂપતા છે એ વાત ત્યાં અવ્યક્ત જ છે. સૂત્રમાં બે ચકાર સ્વગત અનેક ભેદોનું સૂચન કરે છે. એ ભેદોનું વર્ણન સૂત્રકાર આગળ જતાં કરશે.

શંકા—જો વ્યંજનાવગ્રહ પહેલાં થાય છે અને ત્યાર બાદ અર્થાવગ્રહ થાય છે તો સૂત્રકારે પહેલાં અર્થાવગ્રહ કેમ કહ્યો ?

तथाहि-सर्वैरपि जीवैरर्थावग्रहः स्पष्टरूपतया संवेद्यते। शीघ्रतरगमनादौ सकृत् त्वरयोपलब्धे वस्तुनि "मया किंचिद् दृष्टं, परं न परिभावितं सम्य-" गिति व्यवहारदर्शनात्। अपि च अर्थावग्रहः सर्वेन्द्रियमनोभावी, व्यञ्जनावग्रहस्तु न तथा भवतीति प्राधान्यात् प्रथममर्थावग्रह उक्तः ॥ २७ ॥ सू० ॥

अथ व्यञ्जनावग्रहादनन्तरमर्थावग्रहो भवतीत्यत उत्पत्तिक्रममाश्रित्य प्रथमं व्य-ञ्जनावग्रहं वर्णयति—

मूलम्—से किं तं वंजणुग्गहे?। वंजणुग्गहे चउव्विहे पण्णत्ते। तं जहा—सोइंदियवंजणुग्गहे, घाणिंदियवंजणुग्गहे, जिब्भिंदिय-वंजणुग्गहे, फासिंदिय वंजणुग्गहे, से तं वंजणुग्गहे ॥ सू० २८ ॥

छाया—अथ कः स व्यञ्जनावग्रहः? व्यञ्जनावग्रहश्चतुर्विधः प्रज्ञप्तः, तद् यथा—श्रोत्रेन्द्रिय व्यञ्जनावग्रहः, घ्राणेन्द्रियव्यञ्जनाऽवग्रहः, जिह्वेन्द्रियव्यञ्जनावग्रहः, स्पर्शेन्द्रियव्यञ्जनावग्रहः, स एष व्यञ्जनावग्रहः ॥ सू० २८ ॥

टीका—शिष्यः पृच्छति—'से किं तं वंजणुग्गहे?' इति। अथ कः स व्यञ्ज-नावग्रहः?, इति। उत्तरमाह—'वंजणुग्गहे-चउव्विहे पण्णत्ते' इत्यादि व्यञ्जनावग्रह-श्चतुर्विधः प्रज्ञप्तः, तद् यथा-श्रोत्रेन्द्रियव्यञ्जनावग्रहः, घ्राणेन्द्रियव्यञ्जनावग्रहः, जिह्वेन्द्रियव्यञ्जनावग्रहः, स्पर्शेन्द्रियव्यञ्जनावग्रहः, स एष व्यञ्जनावग्रह इति।

उत्तर—अर्थावग्रह अनुभवमें आता है, व्यञ्जनावग्रह नहीं, इसलिये सूत्रकारने ऐसा किया है। देखो जब हम शीघ्रातिशीघ्ररूपसे चलते फिरते हैं तो उस समय उपलब्ध वस्तुमें ऐसा भान होता है कि 'यह कुछ है' पर क्या है इसका स्पष्ट बोध नहीं होता। दूसरे – बात एक यह है कि अर्थावग्रह पांच इन्द्रियोंसे एवं मनसे होता है। व्यञ्जनाव-ग्रह चक्षु और मनसे नहीं होता है। इस लिये व्यञ्जनावग्रहकी अपेक्षा अर्थावग्रहमें प्रधानता आती है, अतः प्रधान होनेसे सूत्रकारने अर्थावग्रह का पहिले उल्लेख किया है, और पीछे व्यञ्जनावग्रह का ॥ सू० २७ ॥

ઉત્તર—અર્થાવગ્રહ અનુભવમાં આવે છે વ્યંજનાવગ્રહ નહીં, તેથી સૂત્રકારે એમ કર્યું છે. જેમ કે આપણે ઝડપીમાં ઝડપી રીતે ચાલતા હોઈએ ત્યારે ઉપલબ્ધ વસ્તુમાં એવું ભાન થાય છે કે "આ કંઈક છે" પણ શું છે તેનુ સ્પષ્ટ ભાન થતું નથી. બીજી વાત એ છે કે અર્થાવગ્રહ પાંચ ઇન્દ્રિયો અને મનથી થાય છે. વ્યંજનાવગ્રહ આંખ અને મનથી થતો નથી. તે કારણે વ્યંજનાવગ્રહ કરતા અર્થાવગ્રહમાં પ્રધાનતા આવે છે. તેથી મુખ્ય હોવાથી સૂત્રકારે અર્થાવગ્રહનો પહેલાં ઉલ્લેખ કર્યો છે, અને પાછળ વ્યંજનાવગ્રહનો ॥ સૂ ૨૭ ॥

ननु पञ्चेन्द्रियाणि सन्ति षष्ठं मनश्चास्ति, कथं तर्हि व्यञ्जनावग्रहश्चतुर्विध एवोक्तः? इति चेत् उच्यते-इहोपकरणेन्द्रियस्य शब्दादिद्रव्याणां च परस्परं सम्बन्धो व्यञ्जनमुच्यते, स च सम्बन्धश्चतुर्णामेव श्रोत्रेन्द्रियादीनां भवति, न तु चक्षुर्मनसोः, तयोरप्राप्यकारित्वात्। चक्षुर्मनश्च हि रूपादिसम्बन्धेन विनैव ज्ञानमुत्पादयति।

अब सूत्रकार उत्पत्तिक्रमकी अपेक्षासे व्यञ्जनावग्रहका वर्णन करते हैं—'से किं तं वंजणुग्गहे' इत्यादि।

शिष्य प्रश्न करता है कि-हे भदन्त! पूर्वनिर्दिष्ट व्यञ्जनावग्रह का क्या स्वरूप है? उत्तर-व्यंजनावग्रह चार प्रकार का बतलाया गया है। जैसे-श्रोत्रेन्द्रिय-व्यंजनावग्रह १, घ्राणेन्द्रिय-व्यंजनावग्रह २, जिह्वेन्द्रिय व्यंजनावग्रह ३ और स्पर्शेन्द्रिय-व्यञ्जनावग्रह ४। इस तरह यह चार प्रकार का अवग्रह व्यंजनावग्रह है।

शंका—इन्द्रियां तो पांच बतलाई गई हैं तथा छठा मन भी बतलाया गया है फिर व्यंजनावग्रह चार प्रकार ही होता है ऐसा क्यों कहा? उसे छह प्रकारका कहना चाहिये था।

उत्तर—उपकरणेन्द्रिय का और शब्दादिक पौद्गलिक द्रव्यों का जो परस्पर में संबंध होता है वह व्यंजन है, यह बात पीछे बतलाई जा चुकी है।

यह जो इन्द्रिय और पदार्थों का संबंध है वह इन चार इन्द्रियों से ही होता है, चक्षु और मन में नहीं होता है, कारण ये दोनों अप्राप्य-

---

હવે સૂત્રકાર ઉત્પત્તિ ક્રમની અપેક્ષાએ વ્યંજનાવગ્રહનું વર્ણન કરે છે-"से किं तं वंजणुग्गहे" ઇત્યાદિ.

પ્રશ્ન-હે ભદન્ત! પૂર્વનિર્દિષ્ટ વ્યંજનાવગ્રહનું શું સ્વરૂપ છે?

ઉત્તર—વ્યંજનાવગ્રહ ચાર પ્રકારનો બતાવ્યો છે (૧) શ્રોત્રેન્દ્રિય-વ્યંજનાગ્રહ, (૨) ઘ્રાણેન્દ્રિય-વ્યંજનાવગ્રહ (૩) જિહ્વેન્દ્રિય વ્યંજનાવગ્રહ અને (૪) સ્પર્શેન્દ્રિય-વ્યંજનાવગ્રહ. આ રીતે આ ચાર પ્રકારનો અવગ્રહ-વ્યંજનાવગ્રહ છે.

શંકા—ઈન્દ્રિયો તો પાંચ દર્શાવી છે. તથા છઠ્ઠું મન પણ બતાવ્યું છે, તો પછી વ્યંજનાવગ્રહ ચાર પ્રકારનો જ હોય છે એમ શા માટે કહ્યું? તે છ પ્રકારનો કહેવો જોઇતો હતો.

ઉત્તર—ઉપકરણેન્દ્રિયનો અને શબ્દાદિક પૌદ્ગલિક દ્રવ્યોનો જે પરસ્પરમાં સંપર્ક થાય છે તે વ્યંજન છે. આ વાત પાછળ બતાવી દીધી છે. ઇન્દ્રિયો અને પદાર્થોનો આ જે સંપર્ક છે તે એ ચાર ઇન્દ્રિયો વડે જ થાય છે, ચક્ષુ

ननु कथमप्राप्यकारित्वं तयोरवसीयते? उच्यते-विषयकृतानुग्रहोपघाताभावात्। तथाहि-यदि प्राप्तमर्थं चक्षुर्मनो वा गृह्णीयात् तदा यथा स्पर्शनेन्द्रियं स्रक्चन्दनादिकस्य अङ्गारादिकस्य च प्राप्तस्यार्थस्य परिच्छेदं कुर्वत् तत्कृतानुग्रहोपघातभाग् भवति, तथा चक्षुर्मनश्चापि स्यात् विशेषाभावात्, न तु तथा भवति, तस्मादेतद्द्वयमप्राप्यकारीति सिद्धम्।

कारी हैं। अपने विषय के साथ संबंध किये विना ही ये दोनों इन्द्रियां उसका ज्ञान करा देती हैं। इस तरह व्यंजनावग्रह चार प्रकार का ही होता है, छह प्रकारका नहीं।

शंका—चक्षु और मन अप्राप्यकारी हैं-विषय के साथ संबंध किये विना ही अपने विषय का ज्ञान करा देते हैं, यह बात कैसे जानी जाती है।

उत्तर—'ये दोनों अप्राप्यकारी हैं' यह बात इस तरह जानी जाती है कि इनमें अपने विषय से कृत उपघात और अनुग्रह नहीं होता है। यदि प्राप्त अर्थ को चक्षु और मन ग्रहण करें तो जिस प्रकार प्राप्त अर्थ को ग्रहण करनेवाली स्पर्शेन्द्रिय में अपने विषयद्वारा स्रक्, चंदन-अंगार आदि द्वारा-अनुग्रह और उपघात देखा जाता है उसी तरह इन दो इन्द्रियों में यह बात देखी जानी चाहिये, परन्तु ऐसी बात इनमें नहीं देखी जाती है, इसलिये ये दो अप्राप्यकारी माने गये हैं।

અને મનમાં થતો નથી, કારણ કે એ બન્ને અપ્રાપ્યકારી છે. પોતાના વિષય સાથે સંપર્ક કર્યા વિના જ એ બન્ને ઈન્દ્રિયો તેનું જ્ઞાન કરાવી દે છે. આ રીતે વ્યંજનાવગ્રહ ચાર પ્રકારનો જ હોય છે, છ પ્રકારનો નહીં.

શંકા—ચક્ષુ અને મન અપ્રાપ્યકારી છે-વિષયની સાથે સંપર્ક કર્યા વિના જ પોતાના વિષયનું જ્ઞાન કરાવી દે છે, એ વાત કેવી રીતે જાણી શકાય ?

ઉત્તર—એ બન્ને અપ્રાપ્યકારી છે, એ વાત આ રીતે જાણી શકાય છે કે તેમનામાં પોતાના વિષય વડે કરાયેલ ઉપઘાત અને અનુગ્રહ હોતા નથી. જો પ્રાપ્ત અર્થને ચક્ષુ અને મન ગ્રહણ કરે તો જે રીતે પ્રાપ્ત અર્થને ગ્રહણ કરનારી સ્પર્શેન્દ્રિયમાં પોતાના વિષય દ્વારા સ્રક્, ચંદન-અંગાર આદિ દ્વારા-અનુગ્રહ અને ઉપઘાત જોવા મળે છે, એજ રીતે એ બન્ને ઈન્દ્રિયોમાં આ વાત દેખાવી જોઈએ, પણ એવી વાત તેમનામાં દેખાતી નથી. તેથી એ બન્ને અપ્રાપ્યકારી માનવામાં આવી છે.

नन्वेवं न दृश्यते, चक्षुषोऽपि हि विषयकृतावनुग्रहोपघातौ भवतः। तथाहि-मेघरहिते नभसि प्रचण्डमार्तण्डमण्डलं पश्यतो भवति चक्षुषो विघातः, तथा चन्द्रमण्डलं तरङ्गमालोपशोभितं जलं शाड्वलं हरिततरुमण्डलं च पश्यतश्चक्षुषोऽनुग्रहो भवतीति, तस्माच्चक्षुषः प्राप्यकारित्वमेव सिध्यतीतिचेत्,

अत्रोच्यते-विषयकृतानुग्रहोपघातौ चक्षुषः सर्वथा न भवतः, इति वयं न ब्रूमः किं तु एतावदेव ब्रूमः-यदा विषयं विषयतया चक्षुरवलम्बते, तदा

शंका—आप ऐसा कैसे कहते हैं कि चक्षु में विषयकृत उपघात और अनुग्रह नहीं देखा जाता है। विषयकृत उपघात और अनुग्रह चक्षु इन्द्रिय में देखा जाता है, अतः उसमें अन्य इन्द्रियों की तरह प्राप्यकारिता सिद्ध होती है। मेघरहित आकाश में जो व्यक्ति सूर्यमंडल का निरीक्षण करता है उसके चक्षु का विघात होता है, तथा चन्द्रमंडल का, तरङ्गमाला से उपशोभित जल का, हरितघास का एवं हरे २ वृक्षों का जो निरीक्षण करता है उसकी आंखों में शीतलता आती है, यह चक्षु का विषयकृत उपघात एवं अनुग्रह है।

उत्तर—इस कथनसे चक्षुमें प्राप्यकारिता सिद्ध नहीं होती है। इससे तो केवल यही बात जानी जाती है कि द्रव्यके संबंधसे चक्षुका उपघात और अनुग्रह होता है। हम इस बातका निषेध थोडे ही करते हैं कि विषय-पदार्थ-कृत उपघात और अनुग्रह चक्षुमें नहीं होता है? किन्तु हम तो यह बतलाते है कि चक्षु जब पदार्थको विषय करता है

શંકા—આપ એમ કેવી રીતે કહો છો કે ચક્ષુમાં વિષયકૃત ઉપઘાત અને અનુગ્રહ દેખાતા નથી. વિષયકૃત ઉપઘાત અને અનુગ્રહ ચક્ષુ ઇન્દ્રિયમાં જોવા મળે છે, તેથી તેમાં બીજી ઇન્દ્રિયોની જેમ પ્રાપ્યકારીતા સિદ્ધ થાય છે. મેઘ રહિત આકાશમાં જે વ્યક્તિ સૂર્યમંડળનું નિરીક્ષણ કરે છે તેનાં ચક્ષુનો વિઘાત થાય છે, તથા ચન્દ્રમંડળનું તરંગમાળાથી શોભતા જળનું, લીલાં ઘાસનું અને લીલાંછમ વૃક્ષોનું જે નિરીક્ષણ કરે છે તેની આંખોમાં શીતળતા આવે છે, આ ચક્ષુનો વિષયકૃત ઉપઘાત અને અનુગ્રહ છે.

ઉત્તર—આ કથનથી ચક્ષુમાં પ્રાપ્યકારિતા સાબીત થતી નથી. તેનાથી તો ફક્ત એજ વાત જાણવા મળે છે કે દ્રવ્યના સંપર્કથી ચક્ષુનો ઉપઘાત અને અનુગ્રહ થાય છે. અમે એ વાતનો નિષેધ થોડો કરીએ છીએ કે વિષય-પદાર્થકૃત ઉપઘાત અને અનુગ્રહ ચક્ષુમાં થતો નથી? પણ અમે તો એ બતાવીએ છીએ કે ચક્ષુ જ્યારે પદાર્થને વિષય કરે છે ત્યારે તે વિષયભૂત પદાર્થને વિષય કરે છે

तत्कृतावनुग्रहोपघातौ तस्य न भवत इति, तस्मात् तदप्राप्यकारि। यदा तु विषयं विषयतया नावलम्बते किं तु यदा-चक्षुषि स्वोपघातकावयवाणुप्रवेशो भवति, तदोपघातः, अनुग्राहकावायवाणुप्रवेशे सति चानुग्रहो भवति। यथा-प्रचण्ड-मार्तण्डरश्मयः सर्वत्रापि प्रसरन्तो यदा चक्षुषि संप्राप्ता भवन्ति, तदा ते स्पर्शनेन्द्रियमिव चक्षुरुपघ्नन्ति, तथा चन्द्ररश्मयःचक्षुषि संप्राप्ताः सन्तः स्पर्शनेन्द्रियमिव चक्षुरनुगृह्णन्ति, तथा-चक्षुषि जलकणसंस्पृष्टपवनसंस्पर्शादनुग्रहो भवति, तथा-शाड्वलतरुच्छायासंपर्कशीतीभूतसमीरसंस्पर्शादनुग्रहो भवति। विषयतयाऽवलम्बने तु न भवति चक्षुषि तत्परमाणुप्रवेशस्तस्माद् विषयतया जलाद्यवलोकने

तब उस विषयभूत पदार्थसे चक्षुका उपघात और अनुग्रह नहीं होता है, इसलिये वह अप्राप्यकारी है। चक्षु का पूर्वोक्तकथन से जो उपघात अनुग्रह बतलाये गये हैं वे उसमें अपने द्वारा उन्हें गृहीत करने से नहीं हुए हैं किन्तु जब अपने उपघातक अवयवाणु का प्रवेश उसमें हो जाता है उस समय उसके द्वारा उसका उपघात होता है, इसी तरह अनुग्रह होता है। जैसे प्रचण्ड मार्तण्ड की किरणें फैलते समय जब चक्षु के साथ संबंध करती हैं उस समय वे स्पर्शनेन्द्रिय की तरह चक्षु का उपघात करती हैं। तथा चन्द्र की किरणें जब चक्षु के साथ संबंध करनी हैं तो वे स्पर्शनेन्द्रिय की तरह उसका अनुग्रह करती हैं। इसी तरह जलकण-सिक्त वायु के संस्पर्श से उसका अनुग्रह होता है। परन्तु जब चक्षु इन्हें विषयरूप से अवलम्बन करता है तब चक्षु के भीतर इनके परमाणु का प्रवेश नहीं होता है। इस तरह विषयरूप से जलादिक के अवलो-

ત્યારે તે વિષયભૂત પદાર્થથી ચક્ષુનો ઉપઘાત અને અનુગ્રહ થતો નથી, તેથી તે અપ્રાપ્યકારી છે. પૂર્વોક્ત કથનથી ચક્ષુનો જે ઉપઘાત અનુગ્રહ બતાવવામાં આવ્યા છે. તે તેનામાં પોતાના દ્વારા તેમને ગૃહીત કરવાથી થયેલ નથી, પણ જ્યારે પોતાના ઉપઘાતક અવયવ અણુનો પ્રવેશ તેમાં થઈ જાય છે તે સમયે તેમના દ્વારા તેનો ઉપઘાત થાય છે. એજ રીતે અનુગ્રાહક અવયવ અણુનો જ્યારે ચક્ષુમાં પ્રવેશ થઇ જાય છે ત્યારે તેમના દ્વારા તેનો અનુગ્રહ થાય છે. જેમ પ્રચંડ સૂર્યનાં કિરણો ફેલાતી વખતે જ્યારે ચક્ષુની સાથે સંપર્ક કરે છે ત્યારે તેઓ સ્પર્શેન્દ્રિયની જેમ ચક્ષુનો ઉપઘાત કરે છે. તથા ચન્દ્રનાં કિરણો જ્યારે ચક્ષુની સાથે સંપર્ક કરે છે ત્યારે તેઓ સ્પર્શેન્દ્રિયની જેમ તેનો અનુ-ગ્રહ કરે છે. એ જ પ્રમાણે જળકણ યુક્ત વાયુના સંસ્પર્શથી તેનો અનુગ્રહ થાય છે. પણ જ્યારે ચક્ષુ વિષયરૂપે તેમનું અવલંબન કરે છે ત્યારે ચક્ષુની અંદર તેમનાં પરમાણુનો પ્રવેશ થતો નથી. એજ રીતે વિષયરૂપે જળાદિકનું

उपघाताभावादनुग्रहोपचारो मन्तव्यः। उपघाताभावेऽनुग्रहोपचारो लोके दृश्यते, यथाऽतिसूक्ष्माक्षरनिरीक्षणाद् विनिवृत्य नीलहरितवसनादिनिरीक्षणे यथासुखं लोकः प्रवर्तते तस्मादुपघाताभावेऽनुग्रहोपचारो भवतीति मन्तव्यम्। प्राप्यकारित्वे तु तुल्ये संपर्के सूर्यं पश्यतः सूर्येण यथोपघातो भवति, तथा अग्निजलशूलादिनि-

कन करने पर तत्कृत उपघात का अभाव होने से उसमें अनुग्रह का उपचार माना जाता है। उपघात के अभाव में अनुग्रह का उपचार लोक में देखा जाता है, जैसे अतिसूक्ष्म अक्षरों के देखने से मनुष्य जब निवृत्त होकर नील, हरित वस्त्र आदि को देखने में प्रवृत्त होता है तो उससे उसको आंखों में एक प्रकार का सुख का अनुभव होता है। यह सुखानुभव ही व्याघात का अभाव है, और इसीसे उसके द्वारा अनुग्रह का उपचार वहां होता है। तात्पर्य इसका यह है कि अतिसूक्ष्म अक्षरों के देखने में आंखों को जोर पड़ता है, वह जोर नील वस्त्रादिक के निरीक्षण करते समय नहीं होता है अतः लोग उससे दृष्टि का उपघात और नील वस्त्रादिक से उसका अनुग्रह मान लेते हैं, परन्तु जब इस पर विचार किया जाता है तो यह अनुग्रह उपघाताभाव होने से वहां उपचरित है, वास्तविक नहीं है। न तो विषयीकृत पदार्थ से चक्षु का उपघात होता है और न अनुग्रह ही होता है। यदि चक्षु को प्राप्यकारी माना जावे तो इस प्राप्यकारित्व की समानता में पदार्थ के साथ उसका संपर्क तुल्य रहता है। ऐसी स्थिति में जिस प्रकार सूर्य का निरीक्षण करते

અવલોકન કરતા તેના વડે કરાયેલ. ઉપઘાતનો અભાવ હોવાથી તેમાં અનુગ્રહનો ઉપચાર માનવામાં આવે છે. ઉપઘાતના અભાવમાં અનુગ્રહનો ઉપચાર લોકમાં જોવા મળે છે, જેમકે અતિસૂક્ષ્મ અક્ષરો જોયા પછી મનુષ્ય જ્યારે ભૂરાં, લીલાં વસ્ત્ર આદિને જોવાને પ્રવૃત્ત થાય છે ત્યારે તેથી તેને આંખોમાં એક પ્રકારનાં સુખનો અનુભવ થાય છે. આ સુખનો અનુભવ જ વ્યાઘાતનો અભાવ છે, અને તેથી તેના વડે અનુગ્રહનો ઉપચાર ત્યાં હોય છે. તેનું તાત્પર્ય એ છે કે અતિસૂક્ષ્મ અક્ષરોને જોવામાં આંખોને જોર પડે છે, તે જોર નીલ વસ્ત્રાદિકનું નિરીક્ષણ કરતી વખતે પડતું નથી તેથી લોકો તે વડે દૃષ્ટિનો ઉપઘાત અને નીલવસ્ત્રાદિકથી તેનો અનુગ્રહ માની લે છે, પણ જ્યારે એના પર વિચાર કરવામાં આવે છે ત્યારે આ અનુગ્રહ ઉપઘાતાભાવ હોવાથી ત્યા ઉપચરિત છે, વાસ્તવિક નથી. વિષયીકૃત પદાર્થથી ચક્ષુનો ઉપઘાત પણ થતો નથી અને અનુંગ્રહ પણ થતો નથી. જો ચક્ષુને પ્રાપ્યકારી માનવામાં આવે તો આ પ્રાપ્યકારિત્વની સમાનતામાં પદાર્થની સાથે તેનો સંપર્ક તુલ્ય રહે છે. એવી પરિસ્થિતિમાં જે પ્રકારે

रीक्षणे दाह-क्लेद-पाटनादयः कस्मान्न भवन्तीति। तस्माद्विषयदेशे चक्षुषो गमनं न भवति, नापि च चक्षुषि स्वविषयप्रवेशो भवति, ततश्च विषयतयाऽवलम्बने चक्षुषस्तत्कृतोपघातानुग्रहौ न भवत इति स्थितम्।

अपि च-यदि चक्षुः प्राप्यकारि, तर्हि स्वदेशगतरजोमलाञ्जनशलाकादिकं किं न पश्यति?, तस्माच्चक्षुरप्राप्यकार्येवास्तीति मन्तव्यम्।

समय उसका आपकी दृष्टि से उपघात होता है उसी प्रकार अग्नि, जल, शूल आदिके निरीक्षण करते समय इसका संपर्क रहेगा तो फिर उस समय इनके द्वारा चक्षुका दाह, क्लेदन, एवं पाटनादिक भी होना चाहिये, परन्तु ये बातें तो होती नहीं है, सो क्यों नहीं होती? इस परसे विचारना चाहिये कि चक्षुमें प्राप्यकारिता नहीं है। अर्थात् चक्षु इन्द्रिय न तो विषयके पास जा कर उसका प्रकाशन करती है और न विषय ही चक्षुमें आ कर प्रविष्ट होता है, इस लिये विषयभूत ज्ञेयसे चक्षुका उपघात अनुग्रह कुछ भी नहीं होता है। यह सिद्धान्त ही ठीक है। दूसरी बात एक यह भी है कि यदि चक्षु प्राप्यकारी माना जावे तो फिर उसको अपनेमें पडे हुए रजकण, मल एवं अंजनशलाका आदिका भी प्रकाशन करना चाहिये, परन्तु ऐसा नहीं होता है, अतः अप्राप्यकारी मंतव्य ही निर्दोष है।

સૂર્યનું નિરીક્ષણ કરતી વખતે તેનો આપણી દૃષ્ટિએ ઉપઘાત થાય છે. એજ પ્રકારે અગ્નિ, જળ શૂલ આદિનું નિરીક્ષણ કરતી વખતે તેનો સંપર્ક રહેશે તો પછી તે સમયે તેમના દ્વારા ચક્ષુને દાહ, ક્લેદન (પલળવું) અને પાટનાદિક પણ થવું જોઈએ પણ એ બાબતો બનતી નથી તેનું કારણ શું?

આ ઉપરથી વિચારવું જોઈએ ચક્ષુમાં પ્રાપ્યકારિતા નથી. એટલે કે ચક્ષુ ઈન્દ્રિય વસ્તુની પાસે જઈને તેનું પ્રકાશન કરતી નથી અને વસ્તુ જ ચક્ષુમાં આવીને પ્રવેશ પણ કરતી નથી, તેથી વિષયભૂત જ્ઞેયથી ચક્ષુનો ઉપઘાત અનુગ્રહ કંઇ પણ થતું નથી. આ સિદ્ધાંત જ બરાબર છે. બીજી એક વાત એ પણ છે કે જો ચક્ષુને પ્રાપ્યકારી માનવામાં આવે તો પછી તેણે પોતાની અંદર પડેલા રજકણ, મેલ અને અંજનશલાકા આદિનું પણ પ્રકાશન કરવું જોઇએ. પણ એમ થતું નથી તેથી અપ્રાપ્યકારી મંતવ્ય જ નિર્દોષ છે.

ननु यदि चक्षुरप्राप्यकारीति मन्यसे, तर्हि मनोवद् विशेषेण सर्वानपि दूर-व्यवहितादीनर्थान् कुतो न गृह्णाति ? । यदि हि प्राप्तमेव विषयं चक्षु गृह्णाति, तर्हि युक्तं, देवानामपिचक्षुरनावृतमेव अदूरदेशमेव अदूरस्थमेव वस्तु वा गृह्णाति, नावृतं दूरदेशं दूरस्थं वा, इति। तत्र चक्षुषो रश्मीनां गमनासंभवेन संपर्काऽसंभवात्, तस्माच्चक्षुः प्राप्यकार्येव मन्तव्यम् । तथा यदि हि—चक्षुरप्राप्यकारि भवेत् तदा तदावरणमुपघातकरणसमर्थं न स्यात्, ततश्चावरणसद्भावेऽनुपलब्धिरन्यथोपलब्धिरिति व्यवस्था न स्यात् । प्राप्यकारित्वे तु व्यवहिते तदावरण सद्भावाच्चक्षुःसंपर्कासंभवः, अतिदूरेऽपि चक्षुषो रश्मीनां गमनाभावान्न चक्षुःसंपर्कसंभव इति चक्षुः प्राप्यकार्येवेति मन्तव्यमिति चेत्,

---

शङ्का—यदि चक्षुको अप्राप्यकारी आप मानते हो तो वह मनकी तरह विना किसी विशेषताके दूर व्यवस्थित पदार्थों का प्रकाशन क्यों नहीं करता है ? । अर्थात् जब चक्षु अप्राप्त अर्थका प्रकाशक माना जाता है तो यह बात स्वाभाविक है कि उसके द्वरा समस्त दूरस्थित पदार्थोंका भी प्रकाशन होना चाहिये, मन जैसे दूरस्थित पदार्थोंका प्रकाशक माना गया है " जब चक्षु अर्थको प्राप्त हो कर उसका प्रकाश करता है तो ऐसी हालतमें उससे दूर व्यवस्थित अथवा आवृत पदार्थका प्रकाशन नहीं हो सकता, क्यों कि उनके साथ उसका संबंध नहीं है । देवोंकी आंखें भी अदूरदेशस्थ अनावृत पदार्थों का ही प्रकाशन करती है, दूर-देशस्थ, आवृत पदार्थका नहीं, क्यों कि वहां तक उनकी किरणें जा नहीं सकती हैं, अतः चक्षुकिरणोंके गमनके अभावमें उन पदार्थों के साथ असंपर्क होनेकी वजहसे उन दूरदेशस्थ आवृत पदार्थों का उनके

શંકા—જો આપ ચક્ષુને અપ્રાપ્યકારી માનતા હો તો તે મનની જેમ કોઈ વિશેષતા વિના દૂર રહેલ પદાર્થોનું પ્રદર્શન કેમ કરતી નથી ? એટલે કે જો ચક્ષુને અપ્રાપ્ત અર્થની પ્રકાશક માનવામાં આવે તો એ વાત સ્વાભાવિક છે, કે જેમ મન દૂર રહેલ પદાર્થોનું પ્રકાશક મનાય છે, તેમ તેના વડે પણ સમસ્ત દૂર પદાર્થોનું પ્રદર્શન થવું જોઈએ. જો ચક્ષુ અર્થને પામીને તેને બતાવે છે તો એવી સ્થિતિમાં તેનાથી દૂર રહેલ અથવા ઢંકાએલ પદાર્થનું પ્રકાશન થઈ શકતું નથી, કારણ કે તેની સાથે તેનો સંપર્ક નથી. દેવોની આંખો પણ દૂર નહીં એવા પ્રદેશમાં રહેલ અનાવૃત્ત પદાર્થોનું જ પ્રકાશન કરે છે, દૂર દેશસ્થ આવૃત્ત પદાર્થોનું નહીં, કારણ કે ત્યાં સુધી તેમનાં કિરણો જઈ શકતાં નથી, તેથી ચક્ષુ કિરણોના ગમનને અભાવે તે પદાર્થોની સાથે અસંપર્ક હોવાને કારણે

उच्यते—मनोवच्चक्षुरप्राप्यकार्येवास्ति । अप्राप्यकारित्वाङ्गीकारे दूरव्यवहितादीनर्थान् कुतो न गृह्णातीति यद् दूषणमुपन्यस्तं तस्य नास्त्यत्र प्रसङ्गः, यतः खलु मनोऽपि नाशेषान् विषयान् गृह्णाति, तस्यापि सूक्ष्मेष्वागमगम्यादिषु अर्थेषु मोहदर्शनात् । तस्माद् यथा मनोऽप्राप्यकार्यपि स्वावरणक्षयोपशमसापेक्षत्वान्नियतविषयं, तथा—चक्षुरपि स्वावरणक्षयोपशमसापेक्षत्वादप्राप्यकार्यपि नियतविषयम्, अर्थात्-योग्यदेशावस्थितमात्रारूप विषयकम् । ततश्च न व्यवहितानामुपलब्धिप्रसङ्गः, नापि दूरस्थितानामपि ।

द्वारा प्रकाशन नहीं हो सकता है, अतः चक्षुद्वारा गृहीत पदार्थका ही जब प्रकाशन होता है तो यह मानने में कोई बाधा नहीं है कि चक्षु प्राप्यकारी है ।

उत्तर—चक्षु मनकी तरह अप्राप्यकारी ही है । अप्राप्यकारी पक्षमें जो ये पूर्वोक्त बातें कही गई हैं कि वह मनकी तरह दूर, व्यवहित पदार्थोंका प्रकाशन क्यों नहीं करता है सो इन बातों के लिये यहां प्राप्त होने का अवसर ही नहीं है, कारण कि मन भी तो आगमगम्य आदि सूक्ष्म पदार्थोंका प्रकाशन नहीं करता है । इस लिये जैसे मन अप्राप्यकारी होने पर भी अपने आवरणके क्षयोपशमके अनुसार नियत विषयवाला माना गया है, अर्थात्-योग्य देशमें अवस्थित हुए पदार्थका ग्राहक माना गया है, अनियत पदार्थका नहीं, इसी तरह चक्षु भी अप्राप्यकारी होता हुआ अपने आवरण के क्षयोपशमानुसार नियत विषय का प्रकाशक होता है,

---

એ દૂર દેશસ્થ આવૃત પદાર્થોનું તેમના દ્વારા પ્રકાશન થઈ શકતું નથી, તેથી ચક્ષુ દ્વારા ગૃહીત પદાર્થનું જ જો પ્રકાશન થાય છે તો એ માનવામાં કોઇ વાંધો નથી કે ચક્ષુ પ્રાપ્યકારી છે.

ઉત્તર—ચક્ષુ મનની જેમ અપ્રાપ્યકારી જ છે. અપ્રાપ્યાકારીના પક્ષમાં એ પૂર્વોક્ત જે વાતો કહેવાઈ છે કે તે મનની જેમ દૂર રહેલ પદાર્થોનું પ્રકાશન કેમ કરતાં નથી તો એ વાતોને માટે અહીં પ્રાપ્ત થવાનો અવસર જ નથી, કારણુ કે મન પણુ આગમગમ્ય આદિ સૂક્ષ્મ પદાર્થોનું પ્રકાશન કરતું નથી. તેથી જેમ મન અપ્રાપ્યકારી હોવા છતાં પણુ પોતાના આવરણોના ક્ષયોપશમ પ્રમાણે નિયતવિષયવાળુ મનાયુ છે-એટલે કે યોગ્ય દેશમાં રહેલ પદાર્થનું ગ્રાહક મનાયું છે, અનિયત પદાર્થનું નહીં એજ રીતે ચક્ષુ પણુ અપ્રાપ્યાકારી હોવા છતાં પોતાનાં આવરણુના ક્ષયોપશમ પ્રમાણે નિયત વિષયના પ્રકાશક

अपि च-अप्राप्यकारित्वेऽपि योग्यदेशापेक्षा तथाविधस्वभावविशेषाद् दृश्यते, यथा-अयस्कान्तस्य ('चुंबक' इति प्रसिद्धस्य)। लोहस्याप्राप्यस्य कर्षणे प्रवर्तमानोऽयस्कान्तो न खलु सर्वस्यापि जगद्वर्तिनो लोहस्याकर्षको भवति, किं तु प्रतिनियतस्यैव।

अनियत विषय का नहीं, अर्थात्-योग्य देशमें रहे हुए रूपका प्रकाशन करता है, अविषयभूत स्थान में रहे हुए रूपका नहीं। इस तरह यह बात समझने में देरी नहीं लगती है कि चक्षु व्यवहित पदार्थों का तथा दूरस्थित पदार्थों का प्रकाशन नहीं करता है, अतः इस प्रकार का प्रसंग जो शंकाकार ने अप्राप्यकारित्व की मान्यता में दिया है वह उचित नहीं है।

तथा-तथाविधस्वभावविशेष से चक्षु में योग्य देश की अपेक्षा देखी जाती है। तात्पर्य इसका यह है कि चक्षु अप्राप्यकारी होने पर भी योग्य देशस्थित वस्तु का ही प्रकाशन करेगा, कारण उसका ऐसा ही स्वभाव है। अयोग्य देशस्थित वस्तु के प्रकाशन करने का उसका स्वभाव नहीं है। जिस प्रकार चुंबक पत्थर का स्वभाव अप्राप्त लोहे को आकर्षण करने का है तो इसका तात्पर्य यह थोड़े ही होता है कि वह संसारभर के लोहे का आकर्षण करे। वह तो योग्य देशस्थित लोहे का ही आकर्षण करेगा, कारण कि उसका ऐसा ही स्वभाव है। इसी तरह चक्षु का भी

હોય છે, અનિયત વિષયના નહીં, એટલે કે યોગ્ય દેશમાં રહેલ રૂપનું પ્રકાશન કરે છે, વિષયભૂત સ્થાનમાં રહેલ રૂપનું નહીં. આ રીતે એ વાત સમજવામાં વાર થતી નથી કે ચક્ષુ વ્યવહિત પદાર્થોનું તથા દૂર રહેલ પદાર્થનું પ્રકાશન કરતાં નથી, તેથી આ પ્રકારનો પ્રસંગ જે શંકા કરનારે અપ્રાપ્યકારીની માન્યતા માટે આપેલ છે તે યોગ્ય નથી.

તથા-તે પ્રકારના સ્વભાવ વિશેષથી ચક્ષુમાં યોગ્ય દેશની અપેક્ષા દેખાય છે. તેનું તાત્પર્ય એ છે કે ચક્ષુ અપ્રાપ્યકારી હોવા છતાં પણ યોગ્ય સ્થાનમાં રહેલ પદાર્થનું જ પ્રકાશન કરશે, કારણ કે તેનો એવો સ્વભાવ છે. અયોગ્ય સ્થાનમાં રહેલ વસ્તુનું પ્રકાશન કરવાનો તેનો સ્વભાવ જ નથી. જેમ લોહ-ચુંબકનો સ્વભાવ અપ્રાપ્ત લોઢાને આકર્ષવાનો છે તો તેનું તાત્પર્ય એ થોડું છે કે તે આખા સંસારના લોઢાને આકર્ષે! તે તો યોગ્ય સ્થાનમાં રહેલ લોઢાનું આકર્ષણ કરશે, કારણ કે તેનો એવો જ સ્વભાવ છે. એજ પ્રમાણે ચક્ષુનો

अत्र केचित्—वदन्ति अयस्कान्तोऽपि प्राप्यकारी भवति अयस्कान्तच्छायाऽणुभिः सह समाकृष्यमाणवस्तुनः सम्बन्धात्, केवलं ते छायाणवः सूक्ष्मत्वान्नोपलभ्यन्ते इति तदसत्, तद्ग्राहकप्रमाणाभावात्, नहि तत्र छायाणुसंभवग्राहकं प्रमाणमस्ति, प्रमाणरहितं न किमपि स्वीकर्तुं शक्नुमः।

नन्वत्र छायाणुसंभवे प्रमाणमनुमानमस्ति, इह हि-'यदाकर्षणं, तत् संसर्गपूर्वकं, यथाऽयोगोलोकस्याकर्षणं संदंशेन वा अयस्कान्तेन वा भवति, तत्रायस्कान्ते साक्षात्संसर्गः क्वचिदपि न दृष्ट इति साक्षात्ससर्गः प्रत्यक्षबाधितः, ततश्च तत्र तच्छायाणुभिः संसर्गो मन्तव्य इति चेन्न, हेतोरनैकान्तिकत्वात् मन्त्रेण व्यभिचारात्, मन्त्रः स्मर्यमाणोऽपि विवक्षितं वस्तु आकर्षति, न च तत्र कोऽपि संसर्ग इति।

ऐसा ही स्वभाव है कि वह अप्राप्यकारी होता हुआ भी योग्य देशस्थित पदार्थ का ही प्रकाशन करता है, देशभर के सब पदार्थों का नहीं।

कोई २ ऐसा कहते है कि अयस्कान्त (चुम्बक पत्थर) अप्राप्यकारित्व की सिद्धि में दृष्टान्तभूत नहीं बन सकता है, कारण कि वह स्वयं प्राप्यकारी है। अयस्कांत जो लोहे का आकर्षण करता है वह अप्राप्त होकर उसका आकर्षण नहीं करता है किन्तु आकृष्यमाण वस्तु के साथ में उसके छायाणुओं का सबंध होता है, इसी से वह उसका आकर्षण करता है। वे छायाणु अत्यन्त सूक्ष्म होनेसे देखे नहीं जाते है। ऐसा कथन भी ठीक नहीं है, कारण कि छायाणुका ग्राहक कोई प्रमाण नहीं है। जिसका ग्राहक प्रमाण नहीं होता है वह केवल कहने मात्रसे स्वीकार करने योग्य नहीं होता है।

પણ એવો સ્વભાવ છે કે તે અપ્રાપ્યકારી હોવા છતાં પણ યોગ્ય પ્રદેશમાં રહેલ પદાર્થનું જ પ્રકાશન કરે છે, સમસ્ત દેશના સમસ્ત પદાર્થોનું નહીં.

કોઇ કોઈ એવું કહે છે કે अयस्कान्त (ચુંબક પથ્થર) અપ્રાપ્યકારીત્વની સાબીતીમાં દૃષ્ટાંતરૂપ બની શકતો નથી, કારણ કે તે પોતે જ પ્રાપ્યકારી છે. ચુંબક પથ્થર જે લોઢાનું આકર્ષણ કરે છે તે અપ્રાપ્ત થઈને તેનું આકર્ષણ કરતો નથી પણ આકર્ષાતી વસ્તુની સાથે તેના છાયાણુઓનો સંબંધ હોય છે, તેથી તે તેનું આકર્ષણ કરે છે. એ છાયાણુ અત્યંત સૂક્ષ્મ હોવાથી દેખાતા નથી. એવું કથન પણ યોગ્ય નથી, કારણ કે છાયાણુનો ગ્રાહક કોઇ પ્રમાણ નથી જેનો ગ્રાહક (ગ્રહણ કરનાર) પ્રમાણ ન હોય તે ફક્ત કહેવા માત્રથી સ્વીકાર કરવામાં આવતું નથી.

शङ्का—'छायाणु हैं' इस बातका संवादक अनुमान प्रमाण है और वह इस तरहसे है "जो २ आकर्षण होता है वह २ संसर्गपूर्वक होता है, जैसे अयोगोलकका आकर्षण संडासीसे होता है, अथवा अयस्कांत से होना है। संडासी से जो अयोगोलक का आकर्षण होता है उसमें संडासी और अयोगोलकका संसर्ग साक्षात् दिखता है, परन्तु अयस्कांनके द्वारा जब अयोगोलकका आकर्षण होता है उस समय अयस्कांनमें यह संसर्ग साक्षात् नहीं दिखता है, क्यों कि अयस्कांतमें साक्षात् संसर्ग कहीं पर भी देखा नहीं गया है, इस लिये साक्षात्संसर्ग वहां प्रत्यक्षसे बाधित होता है, परन्तु जब ऐसी व्याप्ति है कि जो २ आकर्षण होता है वह २ संसर्गपूर्वक होता है तब यह मानना पड़ता है कि अयस्कांतके छायाणुओंके साथ लोहेका संसर्ग है।

उत्तर—इस प्रकारका कथन भी ठीक नहीं है, कारण यह व्याप्ति युक्तियुक्त नहीं है। निर्दोष व्याप्तिसे उत्पन्न अनुमान ही प्रमाणकोटि में आता है। युक्तियुक्त नहीं होनेके कारण यह है कि-देखो मंत्रादिकों के द्वारा भी तो आकर्षण होता है, परन्तु आकर्षणीय वस्तुके साथ उसका कोई संसर्ग नहीं होता है। इस तरह साध्याभावमें हेतुके रहने से आकर्षक हेतु व्यभिचरित हो जाता है। इसमें समझाने जैसी कोई

શંકા—"છાયાણું છે" આ વાતનું સંવાદક અનુમાન પ્રમાણ છે. અને તે આ પ્રમાણે છે-"જે જે આકર્ષણ થાય છે તે તે સંસર્ગપૂર્વ થાય છે જેમકે अयोगोलक નું આકર્ષણ સંડાસીથી થાય છે, અથવા ચુંબક પથ્થરથી થાય છે. સંડાસીથી અયોગોલકનું જે આકર્ષણ થાય છે, તેમાં સંડાસી અને અયોગોલકનો સંસર્ગ પ્રત્યક્ષ દેખાય છે, પણ ચુંબક પથ્થરના દ્વારા જ્યારે અયોગોલકનું આકર્ષણ થાય છે તે સમયે ચુંબક પથ્થરમાં આ સંસર્ગ પ્રત્યક્ષ દેખાતો નથી, કારણ કે લોહકાન્તમાં સાક્ષાત્ સંસર્ગ ક્યાંય પણ જોવામાં આવ્યો નથી, તેથી ત્યાં સાક્ષાત્ સંસર્ગ ત્યાં પ્રત્યક્ષથી બાધિત થાય છે, પણ જ્યારે એવી વ્યાપ્તિ છે કે જે જે આકર્ષણ થાય છે તે તે સંસર્ગપૂર્વક થાય છે. ત્યારે તો એ માનવું પડે છે કે લોહકાન્તના છાયાણુંઓની સાથે લોઢાનો સંસર્ગ છે.

ઉત્તર—એ પ્રકારનું કથન પણ બરાબર નથી, કારણ કે આ વ્યાપ્તિ યુક્તિયુક્ત નથી. નિર્દોષ વ્યાપ્તિથી ઉત્પન્ન અનુમાન જે પ્રમાણ કોટિનું છે. યુક્તિયુક્ત ન હોવાનું કારણ એ છે કે-મંત્રાદિ દ્વારા પણ આકર્ષણ થાય છે. પણ આકર્ષણીય વસ્તુની સાથે તેનો કોઈ સંસર્ગ થતો નથી, આ રીતે સાધ્યભાવમાં હેતુના રહેવાથી આકર્ષણ હેતુ વ્યભિચરિત થઈ જાય છે. તેમાં સમ-

अपि च—यथा छायाणवः प्राप्तमेव लोहं समाकर्षन्ति, तथा काष्ठादिकमपि प्राप्तं कस्मान्न समाकर्षन्ति । यदि प्रतिनियतशक्तिमत्त्वात् काष्ठादिकं नाकर्षन्तीत्युच्यते, तर्हि मनसोऽपि शक्तिः प्रतिनियतैवेति मनो यथा सूक्ष्मेष्वर्थेषु क्वचिन्न ज्ञानमुत्पादयति, शक्तिप्रतिनियमात् , तथा चक्षुरपि व्यवहितदूरदेशस्थितान् विषयान्न गृह्णातीति मन्तव्यम् , किमनेन छायाणुपरिकल्पनेनेति ।

बात नहीं है कि-मंत्रका जब मांत्रिक स्मरण करता है तब उसके द्वारा विवक्षित वस्तुका आकर्षण होता है ।

फिर भी उत्तर यह है कि-जिस तरह छायाणु, प्राप्त हुए लोहका आपके मन्तव्यानुसार आकर्षण करते हैं तो इसी तरह वे प्राप्त काष्ठादिक का आकर्षण क्यों नहीं करते हैं ? यदि इसके समाधानमें ऐसा कहा जाय कि उनकी शक्ति प्रति नियत है, प्रति नियत शक्तिविशिष्ट होनेसे ही वे प्राप्त काष्ठादिकका आकर्षण नहीं करते हैं तो फिर यही बात मनमें भी मान लेनी चाहिये, अर्थात् मनकी शक्ति भी प्रतिनियत ही है इसी लिये वह सूक्ष्मादिक अर्थों में ज्ञानका उत्पादक नहीं होता है, अतः जिस प्रकार प्रतिनियत शक्तिवाला होनेसे मन कहीं सूक्ष्मादिक पदार्थों में ज्ञानका उत्पादक नहीं होता, उसी प्रकार चक्षु भी व्यवहित एवं दूर देशस्थित विषयोंका प्रकाशक नहीं होता है फिर अपनी बातको सिद्ध करनेके लिये अप्रसिद्ध छायाणुओंकी कल्पना करनेसे क्या लाभ ? ।

જાવવા જેવી કોઈ વાત નથી કે-જ્યારે માંત્રિક મંત્રનું સ્મરણ કરે છે ત્યારે ત્યારે તેના દ્વારા વિવક્ષિત વસ્તુનું આકર્ષણ થાય છે.

વળી બીજો જવાબ એ છે કે જેમ છાયાણુ, પ્રાપ્ત થયેલ લોઢાનું આપના મત પ્રમાણે આકર્ષણ કરે છે તો એ જ પ્રમાણે તે પ્રાપ્ત કાષ્ઠાદિકનું આકર્ષણ કેમ કરતા નથી ? જો તેના સમાધાનરૂપે એમ કહેવામાં આવે કે તેની શકિત પ્રતિનિયત છે. પ્રતિનિયત શકિતવિશિષ્ટ હોવાથી તે પ્રાપ્ત કાષ્ઠાદિકનુ આકર્ષણ કરતા નથી તો પછી એજ વાત મનની બાબતમાં પણ માનવી જોઈએ, એટલે કે મનની શકિત પણ પ્રતિનિયત જ છે તેથી તે સૂક્ષ્માદિક અર્થોમાં જ્ઞાનનું ઉત્પાદક થતું નથી, તેથી જેમ પ્રતિનિયત શકિતવાળું હોવાને લીધે મન કોઈ સૂક્ષ્માદિક પદાર્થોમાં જ્ઞાનનું ઉત્પાદક થતું નથી એજ પ્રમાણે ચક્ષુ પણ વ્યવહિત અને દૂર સ્થાનમાં રહેલ વસ્તુંનું પ્રકાશક થતું નથી, તો પોતાની વાત સિદ્ધ કરવાને માટે અપ્રસિદ્ધ છાયાણુઓની કલ્પના કરવાથી શો લાભ ?

यत्तु-व्यवहितार्थानुपलब्धिदर्शनाच्चक्षुः प्राप्यकारीति मन्यते तदयुक्तम्-काचा-भ्रकपटल-स्फटिकैर्व्यवहितस्याप्युपलब्धिदर्शनेन हेतोरनैकान्तिकत्वात्।

अथ नयनरश्मयो निर्गत्य तमर्थं गृह्णन्ति, नयनरश्मयश्च तैजसत्वान्न तेजोद्रव्यैः प्रतिस्खलिता भवन्तीति चक्षुषः प्राप्यकारित्वस्वीकारे नास्ति कश्चिद्दोष इति चेत्, तदपि न समीचीनम्, महाज्वालादौ स्खलनोपलब्धेः, तस्माच्चक्षुरप्राप्यकारीति स्थितम् ॥

एवं मनसोऽप्यप्राप्यकारित्वं विज्ञेयम् । तत्रापि विषयकृतानुग्रहोपघाताभावात्।

'व्यवहित अर्थकी उपलब्धि नहीं होती' इससे जो तुम चक्षुमें प्राप्यकारिता मानते हो सो यह बात ठीक नहीं है, कारण कि काच, एवं भोडल एवं स्फटिकमणियोंसे ढके हुए व्यवहित पदार्थों की भी उपलब्धि होती देखी जाती है।

यदि इस पर यह कहा जावे कि चक्षुकी किरणें निकल कर उस काच अभ्रकपटल आदिसे व्यवहित पदार्थको ग्रहण करती हैं। ये रश्मियां तैजस हैं अतः तैजस द्रव्योंद्वारा इनकी प्रतिस्खलना-रुकावट नहीं होती है, इस लिये चक्षुको प्राप्यकारि माननेमें कोई दोष नहीं है, सो ऐसी धारणा भी युक्तियुक्त नहीं है, कारण कि महाज्वाला आदिमें इसकी स्खलना देखी जाती है। इस लिये यही मानना चाहिये की चक्षु अप्राप्यकारी है।

इसी तरह विषयकृत अनुग्रह और उपघातका मनके साथ संपर्क न होनेसे उसको भी अप्राप्यकारी जानना चाहिये।

"વ્યવહિત અર્થની પ્રાપ્તિ થતી નથી" તમે ચક્ષુમાં જે પ્રાપ્યકારિતા માનો છો તે વાત બરાબર નથી, કારણ કે કાચ, અબરખ અને સ્ફટિકમણીઓમાં ઢંકાયેલ વ્યવહિત પદાર્થોની ઉપલબ્ધિ થતી દેખાય છે.

જો એ બાબતમાં એમ કહેવામાં આવે કે-ચક્ષુનાં કિરણો નીકળીને તે કાચ, અબ્રકપટલ, આદિથી આચ્છાદિત પદાર્થને ગ્રહણ કરે છે. એ કિરણો તેજસ્વી છે તેથી તેજસ્વી દ્રવ્યો દ્વારા તેની રૂકાવટ થતી નથી, તેથી ચક્ષુને પ્રાપ્યકારી માનવામાં કોઈ દોષ નથી, તો એવી માન્યતા પણ યુકિતયુકત નથી, કારણ કે અગ્નિ મહાજવાળા આદિમાં તેની રૂકાવટ દેખાયછે. તે કારણે એમ જ માનવું જોઈએ કે ચક્ષુ અપ્રાપ્યકારી છે. એજ રીતે વિષયકૃત અનુગ્રહ અને ઉપઘાતનો મનની સાથે પણ સંપર્ક ન હોવાથી તેને પણ અપ્રાપ્યકારી માનવું જોઈએ.

ननु मनसोऽपि हर्षादिष्वनुग्रहः शरीरोपचयदर्शनात्, तथाहि—हर्षप्रकर्षवशान्मनसः पुष्टता भवति, तद्वशाच्च शरीरस्योपचयः। तथा-शोकादिभिः शरीरदौर्बल्योरःक्षतादिदर्शनात्, अतिशोककरणेन मनसो विघातः संभवति ततश्च शरीरदौर्बल्यम्, अतिचिन्ताकरणेन तु हृदयरोगो भवतीति चेत्?

उच्यते—मनसोऽप्राप्यकारित्वं वर्तते, विषयकृतानुग्रहोपघाताभावात्। विषयकृतोऽनुग्रहस्तथोपघातश्च मनसो न भवति, शरीरस्यानुग्रहोपघातौ मनः स्वयं पुद्गलमयत्वात् कर्तुं शक्नोति, यथा-इष्टरूप आहारः परिभुज्यमानः शरीरस्य पुष्टिं करोति, अनिष्टरूपस्तु हानिं करोति, तथा मनोऽपीष्टपुद्गलोपचितं हर्षादिकारणं सत् पुष्टिं जनयति, अनिष्टपुद्गलोपचितं च शोकादिचिन्ताकारणं सत् शरीरस्य हानिं जनयति। तस्माद् मनोऽपि विषयकृतानुग्रहोपघाताभावाद् अप्राप्यकारीति स्थितम्।

शंका—विषयकृत उपघात और अनुग्रहका संबंध मनमें देखा जाता है, जैसे जब हर्षपरिणति होती है तो मनमें पुष्टता आती है, और इस पुष्टतारूप प्रसन्नता की वजहसे शरीरका उपचय होता है। इसी तरह जब शोक आदिका संबंध होता है तो उस समय मनका विघात होता है, इससे शरीरमें दुर्बलता आती है। अति चिन्ता करने से मनुष्य हृदयरोगी होता हुआ देखा जाता है। इससे इसी बातकी पुष्टि होती है कि मनके ऊपर विषयकृत पदार्थो का अनुग्रह और उपघात होता है, फिर यह मन अप्राप्यकारी कैसे हो सकता है?।

उत्तर—मनमें प्राप्यकारिताका निषेध हम इस लिये करते हैं कि उसमें विषयकृत अनुग्रह और उपघात नहीं होते हैं, किन्तु मन पुद्गल-

---

શંકા—વિષયકૃત ઉપઘાત અને અનુગ્રહનો સંબંધ મનમાં દેખાય છે. જેમ કે જ્યારે હર્ષપરિણતિ થાય છે ત્યારે મનમાં પુષ્ટતા થાય છે, અને આ પુષ્ટતારૂપ પ્રસન્નતાને કારણે શરીરનો ઉપચય થાય છે. એજ રીતે જ્યારે શોક આદિનો સંબંધ થાય છે ત્યારે મનમાં વિઘાત થાય છે, તે કારણે શરીરમાં દુર્બળતા આવે છે, અતિચિન્તા કરવાથી, માણસ હૃદયરોગી થતો જોવા મળે છે, તેથી એ વાતને પુષ્ટિ મળે છે કે મન ઉપર વિષયકૃત પદાર્થોનો અનુગ્રહ અને ઉપઘાત થાય છે, તો પછી આ મન કેવી રીતે અપ્રાપ્યકારી હોઇ શકે?

ઉત્તર—એમ માનવામાં પ્રાપ્યકારિતાનો નિષેધ એ કારણે કરીએ છીએ કે તેમાં વિષયકૃત અનુગ્રહ અને ઉપઘાત થતાં નથી, પણ મન પુદ્ગલમય હોવાથી

इह सौगता आहुः–चक्षुः श्रोत्रं मनोऽप्राप्यकारीति, तन्न सम्यक्, तदेव हि अप्राप्यकारि भवितुमर्हति यस्य विषयकृतानुग्रहोपघाताभावौ भवतः, यथा–चक्षुर्मनसोः। श्रोत्रेन्द्रियस्य तु शब्दकृत उपघातो दृश्यते, यथा–सद्योजातशिशोः

मय होनेसे शरीरका अनुग्रह और उपघात स्वयं कर सकता है। जिस तरह इच्छित आहार शारीरिक पुष्टि करता है और अनिष्ट आहार हानि करता है उसी तरह मन भी इष्ट पुद्गलोंसे उपचित हो कर हर्षादिकका कारण होता हुआ शरीरकी पुष्टि करता है, तथा अनिष्ट पुद्गलों से उपचित हो कर शोकादि चिन्ताका कारण होता हुआ शरीरकी हानि करता है, इस लिये मन भी विषयकृत अनुग्रह उपघातका अभाववाले होनेसे अप्राप्यकारी है, यह बात सिद्ध हो जाती है।

बौद्धों का ऐसा कहना है कि 'चक्षु श्रोत्र और मन ये तीनों अप्राप्यकारी हैं' सो 'चक्षु और मन अप्राप्यकारी हैं' इस विषयमें तो हमें कोई विवाद नहीं हैं परन्तु श्रोत्रको अप्राप्यकारी मानना यह विषय इष्ट नहीं है, कारण अप्राप्यकारी वही हो सकता है, जिसमें विषयकृत अनुग्रह और उपघात नहीं होते हैं। विषयकृत उपघात और अनुग्रह चक्षु मनमें नहीं होते हैं, इस लिये वे ही अप्राप्यकारी हैं, श्रोत्र इन्द्रिय नहीं, कारण उसमें विषयकृत उपघात और अनुग्रह होते हैं। सद्योजात बालकके पास जब बडे जोरसे झल्लरीका

શરીરનો અનુગ્ર અને ઉપઘાત પોતે જ કરી શકે છે. જેમ ઇચ્છિત આહાર શારીરિક પુષ્ટિ કરે છે અને અનિષ્ટ આહાર હાનિ કરે છે એજ પ્રમાણે મન પણ ઈચ્છિત પુદ્ગલોથી ઉપચિત થઈને હર્ષાદિકનું કારણ થઇને શરીરની પુષ્ટિ કરે છે, તથા અનિષ્ટ ગુદ્ગલોથી ઉપચિત થઈને શોકાદિ ચિન્તાનું કારણ થઈને શરીરને હાનિ કરે છે, તે કારણે મન પણ વિષયકૃત અનુગ્રહ ઉપઘાતના અભાવવાળું હોવાથી અપ્રાપ્યકારી છે. એ વાત સિદ્ધ થાય છે.

બૌદ્ધોનું એવું કહેવું છે કે "ચક્ષુ, શ્રોત્ર, અને મન એ ત્રણે અપ્રાપ્યકારી છે" તો ચક્ષુ અને મન અપ્રાપ્યકારી છે, એ વિષયમાં તો અમારે કોઇ વિવાદ નથી પણ શ્રોત્રને અપ્રાપ્યકારી માનવી તે વાત ઈષ્ટ નથી, કારણ કે અપ્રાપ્યકારી એજ હોઇ શકે છે કે જેમાં વિષયકૃત અનુગ્રહ અને ઉપઘાત હોતા નથી. વિષયકૃત ઉપઘાત અને અનુગ્રહ ચક્ષુ અને મનમાં થતાં નથી તેથી એજ અપ્રાપ્યકારી છે શ્રોત્રેન્દ્રિય નહીં, કારણ કે તેમાં વિષયકૃત ઉપઘાત અને અનુગ્રહ થાય છે. તરતના જન્મેલા બાળકની પાસે જો ઘણા જોરથી ઝાલર વગાડવામા આવે, તો તેનાં

समीपेऽतिताडितझल्लरीनादश्रवणतः, तथा विद्युत्पातप्रत्यासन्नदेशावस्थितजनानां विद्युत्पातनिर्घोषश्रवणतो बधिरीभावः प्रजायते। शब्दपरमाणवो हि उत्पत्तिदेशादारभ्य सर्वतो जलतरङ्गन्यायेन प्रसरन्तः श्रोत्रेन्द्रियदेशमागच्छन्ति, ततः संभवत्युपघातः। अतः श्रोत्रेन्द्रियस्य अप्राप्यकारित्वं न सिध्यतीति।

ननु यदि श्रोत्रेन्द्रियं स्वदेशप्राप्तमेव शब्दं गृह्णाति नत्वप्राप्तं, तर्हि यथा घ्राणेन्द्रियेण गन्धे गृह्यमाणे तत्र दूरासन्नतया भेदप्रतीतिर्न भवति, तथा शब्देऽपि न स्यात्, प्राप्तस्यैव विषयस्य ग्रहणे सर्वोऽपि विषयः संनिहित एव स्यादिति दूरासन्नतया भेदप्रतीतिर्न संभवति, लोके तु प्रतीयते दूरासन्नतया शब्दः, यथा-'अयं दूरवर्ती शब्दः श्रूयते' इति वदन्ति लोके।

ताडन होता है, तब उसके कान बहिरे हो जाते हैं। इसी तरह विद्युत्पात के समय में जो व्यक्ति उसके पतन के स्थान से पास के स्थान में रहते हैं उनके कानों में उसके निर्घोष के श्रवण से बधिरता आजाती है। जिस प्रकार जल में उसकी तरङ्गे उत्पत्ति स्थान से लेकर तट तक फैलती हुई आती हैं इसी प्रकार शब्द के परमाणु भी उत्पत्ति स्थान से लेकर श्रोता के श्रोत्रेन्द्रिय प्रदेशतक फैलते हुए आते है, इससे श्रोत्रेन्द्रिय में उस शब्द के द्वारा उपघात होता है। इसलिये विषयकृत उपघात होने से श्रोत्रेन्द्रिय प्राप्यकारी सिद्ध होती है।

शंका—यदि श्रोत्रेन्द्रिय में प्राप्यकारिता मानी जावे तो जिस प्रकार प्राप्यकारी घ्राणेन्द्रिय द्वारा गन्ध के ग्रहण होने पर उस गंध में दूर आसन्न आदि का भेद व्यवहार नहीं होता है, उसी प्रकार शब्द में भी यह भेद व्यवहार नहीं होना चाहिये, कारण वह तो प्राप्त को ही ग्रहण

કાન બહેરા થઈ જાય છે. એજ પ્રમાણે વિજળી પડવાને સમયે, જે વ્યક્તિઓ તેના પતનના સ્થાનની નજીકની જગ્યાએ હોય છે, તેમના કાનમા તેનો કડાકો સાંભળવાથી બહેરાશ આવી જાય છે. જેમ પાણીમાં તેનાં મોજાંઓ ઉત્પત્તિ સ્થાનથી માંડીને કિનારા સુધી ફેલાતાં ફેલાતા આવે છે એજ પ્રમાણે શબ્દના પરમાણુઓ પણ ઉત્પત્તિ સ્થાનથી લઈને સાંભળનારના કાન સુધી ફેલાતાં ફેલાતાં આવે છે. તેથી શ્રોત્રેન્દ્રિયમાં એ શબ્દ દ્વારા ઉપઘાત થાય છે. તેથી વિષયકૃત ઉપઘાત હોવાથી શ્રોત્રેન્દ્રિય પ્રાપ્યકારી સિદ્ધ થાય છે.

શંકા—જો શ્રોત્રેન્દ્રિય દ્વારા ગંધ ગ્રહણ કરતા તે ગંધમાં દૂર રહેલ વગેરેનો ભેદ વ્યવહાર થતો નથી, એજ પ્રમાણે શબ્દમાં પણ એ ભેદ વ્યહાર હોવો ન જોઈએ. કારણ કે તે તો પ્રાપ્તને જ ગ્રહણ કરે છે, પ્રાપ્ત થયેલ પદાર્થ

अपि च–श्रोत्रेन्द्रियं प्राप्तमेव शब्दं गृह्णाति, तर्हि चाण्डालभाषितोऽपि शब्दः श्रोत्रेन्द्रियेण स एव गृह्यते, यः खलु श्रोत्रेन्द्रियसंस्पृष्टो भवति ततश्च श्रोत्रेन्द्रियस्य चाण्डालस्पर्शदोषप्रसङ्गः स्यादिति चेत्?,

अत्रोच्यते—श्रोत्रेन्द्रियस्य यदप्राप्यकारित्वं मन्यसे, तदेतन्महामोहविलसितम्, यद्यपि प्राप्त एव शब्दः श्रोत्रेन्द्रियेण गृह्यते, तथापि शब्दे शक्तिवैचित्र्यसंभवाद् दूरासन्नादिभेदप्रतीतिर्भवति, तथाहि–दूरादागतः शब्दः क्षीणशक्तिकतया क्षीणोऽस्पष्टरूपो वा उपलक्ष्यते। ततश्च लोको वदति–'दूरे शब्दः श्रूयते' इति, दूरादागतः शब्दः श्रूयते, इति तदर्थः।

करती है, प्राप्त हुआ पदार्थ समीप में ही होता है, फिर इस व्यवहार के होने का वहां विरोध क्यों नहीं आवेगा? परन्तु शब्द में दूर आसन्न आदि का भेद व्यवहार लोक में होता हुआ देखा ही जाता है। लोक कहते हैं–यह दूर का शब्द सुनने में आ रहा है, यह नजदीक का शब्द सुनने में आ रहा है।

फिर भी–श्रोत्रेन्द्रिय प्राप्त हुए ही शब्द को ग्रहण करती है ऐसा मानने पर एक यह और आपत्ति आती है कि शब्द जब चांडाल के मुख से निर्गत होकर हमारे कान को प्राप्त होगा तो श्रोत्रेन्द्रिय में अस्पृश्यता आ जावेगी, क्यों कि उसने चांडाल के अस्पृश्य शब्द को ग्रहण किया है, अतः वह चाण्डाल के स्पर्श करने के दोष से मुक्त कैसे माना जा सकेगा।

उत्तर—श्रोत्रेन्द्रिय में यह आप्राप्यकारिता की मान्यता महामोह का एक विलास है, क्यों कि यह जो कुछ कहा गया है वह विना विचारे

નજીકમાં જ હોય છે, તો પછી આ વ્યવહાર હોવામાં ત્યાં વિરોધ કેમ નહીં આવે? પણ શબ્દમાં દૂર રહેલ આદિનો ભેદ વ્યવહાર લોકમાં થતો જોવામાં આવે છે જ. લોકો કહે છે કે–આ દૂરનો શબ્દ સંભળાઈ રહ્યો છે, આ નજીકનો શબ્દ સંભળાઇ રહ્યો છે.

વળી–શ્રોત્રેન્દ્રિય પ્રાપ્ત થયેલ શબ્દને ગ્રહણ કરે છે એવું માનવામાં આ એક બીજી મુશ્કેલી પણ નડે છે કે શબ્દ જો ચાંડાળના મુખમાંથી નીકળીને અમારા કાને પડશે તો શ્રોત્રેન્દ્રિયમાં અસ્પૃશ્યતા આવી જશે, કારણ કે તેણે ચાંડાળના અસ્પૃશ્ય શબ્દને ગ્રહણ કર્યો છે, તેથી તે ચાંડાળના સ્પર્શ થવાના દોષથી મુક્ત કેવી રીતે માની શકાશે?

ઉત્તર—શ્રોત્રેન્દ્રિયમાં આપ્રાપ્યકારિતાની માન્યતા મહામોહનો એક વિલાસ છે, કારણ કે આ જે કંઈ કહેવાયુ છે તે વિચાર્યા વિનાજ કહેવાયું છે. પ્રાપ્ય-

ननु स्यादेतत्, एवमेतदपि वक्तुं शक्यते-'दूरे रूपमुपलभ्यते' इति। दूरादागतं रूपमुपलभ्यते, इति तदर्थः। ततश्च चक्षुरपि प्राप्यकारि स्यात्, न च तदिष्यते। ततश्च शब्दे शक्तिवैचित्र्यकल्पनं, श्रोत्रेन्द्रियस्य च प्राप्यकारित्वकल्पनं न युक्तमिति चेन्न।

ही कहा गया है। प्राप्यकारी होने पर भी श्रोत्रेन्द्रिय द्वारा गृहीत शब्द में जो दूर और समीप आदिका भेद व्यवहार होता है, वह शब्दशक्ति की विचित्रता से होता है। जब शब्द दूर देश से आता है तो उसकी शक्ति क्षीण हो जाती है, उस समय वह अस्पष्टरूप से या मन्दरूप से सुनने में आता है, इसलिये लोक कहते हैं कि यह शब्द दूर से आया हुआ सुनाई दे रहा है।

प्रश्न यदि इस पर यह आक्षेप किया जाय कि जिस प्रकार "दूर से आया हुआ शब्द सुनाई दे रहा है" ऐसा बोध होने से श्रोत्रेन्द्रिय में प्राप्यकारिताका आप समर्थन करते हैं तो फिर "दूरेरूपमुपलभ्यते" दूरसे आये हुए रूपको चक्षु इन्द्रिय जानती है, इस प्रकारके बोधसे चक्षु इन्द्रिय को भी प्राप्यकारी मान लेना चाहिये, परन्तु इस तरहसे चक्षु इन्द्रिय प्राप्यकारी तो आपने मानी नहीं है, अतः शब्दमें विचित्रशक्ति की मान्यता, तथा श्रोत्रेन्द्रियमें प्राप्यकारिताकी कल्पना युक्तियुक्त नहीं कही जा सकती ?

કારી હોવા છતાં પણ શ્રોત્રેન્દ્રિય દ્વારા ગ્રહણ થયેલ શબ્દમાં દૂર અને સમીપ આદિનો જે ભેદવ્યવહાર થાય છે તે શબ્દશક્તિની વિચિત્રતાને લીધે થાય છે. જ્યારે શબ્દ દૂરના સ્થાનેથી આવે છે. ત્યારે તેની શકિત ક્ષીણ થઇ જાય છે; તે સમયે તે અસ્પષ્ટ રૂપે મન્દ રીતે સંભળાય છે, તેથી લોકો કહે છે કે આ શબ્દ દૂરથી આવતો સંભળાય છે.

શંકા—જો તે બાબતમાં એવો આક્ષેપ મૂકવામાં આવે કે જે પ્રકારે "દૂરથી આવતો શબ્દ સંભળાય છે" એવો બોધ થવાથી શ્રોત્રેન્દ્રિયમાં પ્રાપ્યકારિતાનું આપ સમર્થન કરો છો, તો પછી "दूरे रूपमुपलभ्यते" "દૂરથી આવતા રૂપને ચક્ષુ ઈન્દ્રિય જાણે છે" આ પ્રકારના બોધથી ચક્ષુ ઈન્દ્રિયને પણ પ્રાપ્યકારી માનવી જોઇએ. પણ એ રીતે ચક્ષુ ઇન્દ્રિયને તો આપે પ્રાપ્યકારી માની નથી, તેથી શબ્દમાં વિચિત્ર શકિતની માન્યતા, તથા શ્રોત્રેન્દ્રિયમાં પ્રાપ્યકારિતાની કલ્પના યુકિતયુકત કહી શકાય નહીં?

इह हि चक्षुषो रूपकृतावनुग्रहोपघातौ न भवतः, श्रोत्रेन्द्रियस्य तु शब्दकृत उपघातोऽस्ति, एतच्च प्रागेव प्रदर्शितम्, तस्मादतिप्रसङ्गापादनं नात्र संभवति।

अपरं च-प्रत्यासन्नोऽपि जनः पवनस्य प्रतिकूलमवस्थितः शब्दं न शृणोति, पवनानुकूलावस्थाने तु दूरदेशावस्थितोऽपि शब्दं शृणोति, अतएव लोके जना वदन्ति-'वयं प्रत्यासन्ना अपि त्वदीयं वचो न शृणुमः' इति। यदि तु जना अप्राप्तमेव शब्दं रूपमिव गृह्णीयुस्तर्हि पवनप्रतिकूलावस्थानेऽपि जना रूपमिव शब्दं ग्रहीतुं शक्नुयुः, न च तथा शब्दं गृह्णन्ति, तस्मात् श्रोत्रेन्द्रियदेशे प्राप्ता एव शब्दपरमाणवः

उत्तर—यह बात अभी ही युक्तियों द्वारा सिद्ध की जा चुकी है, चक्षु में विषयकृत उपघात और अनुग्रह नहीं होते हैं तथा ये उपघात और अनुग्रह अपने विषय द्वारा श्रोत्रेन्द्रिय में होते हैं, इसलिये श्रोत्रेन्द्रिय के प्रसङ्ग को लेकर चक्षु में प्राप्यकारिता के प्रसंग का प्रतिपादन करना ठीक नहीं है, कारण कि उस प्रसंग का प्रतिपादन यहां संभवित ही नहीं होता है।

फिर भी-मनुष्य जब प्रतिकूल वायु के समक्ष स्थित रहता है तब वह अपने पास के व्यक्ति द्वारा उच्चरित शब्द को भी नहीं सुन सकता है, तथा जब अनुकूल वायु के समक्ष उपस्थित होता है तब वह दूर देशमें भी क्यों न रहा हो उस समय वह शब्द को सुन लेता है, इसी लिये लोग ऐसा कहा करते हैं कि-हम तुम्हारे शब्द को पास में रहने पर भी इस प्रतिकूल पवन में रहने की वजह से सुन नहीं पा रहे हैं। चक्षु जिस प्रकार अप्राप्तरूप को ग्रहण करता है उसी प्रकार श्रोत्रे-

ઉત્તર—આ વાત હમણા જ યુકિતઓ દ્વારા સિદ્ધ કરાઇ ગઈ છે કે ચક્ષુમાં વિષયકૃત ઉપઘાત અને અનુગ્રહ હોતા નથી, તથા એ ઉપઘાત અને અનુગ્રહ પોતાના વિષયદ્વારા શ્રોત્રેન્દ્રિયમાં થાય છે. તેથી શ્રોત્રેન્દ્રિયના પ્રસંગને લીધે ચક્ષુમાં પ્રાપ્યકારિતાના પ્રસંગનું પ્રતિપાદન કરવું તે યોગ્ય નથી, કારણ કે તે પ્રસંગનું પ્રતિપાદન અહીં સંભવિત જ થતું નથી.

વળી-માણસ જ્યારે પ્રતિકૂળ વાયુ સમક્ષ રહેલ હોય છે ત્યારે તે પોતાની પાસેની વ્યકિત દ્વારા ઉચ્ચારવામાં આવેલ શબ્દને પણ સાંભળી શકતો નથી, પણ જ્યારે તે અનુકુળ વાયુ સમક્ષ રહેલ હોય છે ત્યારે દૂર સ્થાને પણ રહેવાં છતાં તે શબ્દને સાંભળી શકે છે, તેથી લોકો એમ કહ્યાં કરે છે કે-અમે પાસે રહેવા છતાં પણ તમારા શબ્દને પ્રતિકૂળ પવનમાં રહેવાને કારણે સાંભળી શકતા નથી. જેમ ચક્ષુ અપ્રાપ્ત રૂપને ગ્રહણ કરે છે એજ પ્રમાણે શ્રોત્રેન્દ્રિય

श्रोत्रेन्द्रियेण गृह्यन्ते, इत्यवश्यमङ्गीकरणीयम्। तथा स्वीकारे पवनप्रतिकूलावस्थाने शब्दपरमाणवो बाहुल्येन श्रोत्रेन्द्रियं न प्राप्नुवन्ति, तेषां प्रतिकूलपवनादन्यथा नीयमानत्वात्, अत एव पवनप्रतिकूलमवस्थिता न शृण्वन्तीति नास्माकं मतेकाऽपि क्षतिः।

यच्च चाण्डालस्पर्शदोषप्रसङ्गः स्यादित्युक्तं तदपि न सम्यक्, स्पर्शास्पर्शव्यवस्थाया लोके काल्पनिकत्वात्। तथाहि न स्पर्शस्य व्यवस्था लोके पारमार्थिकी, यामेव भूमिमग्रे चाण्डालः स्पृशन् व्रजति, तामेव पृष्ठतः श्रोत्रियोऽपि स्पृशति,

---

न्द्रिय भी अप्राप्त शब्द को यदि ग्रहण करती तो विचारो कि-प्रतिकूल वायु में रहने पर भी रूप की तरह शब्द का भी ग्रहण श्रोत्रेन्द्रिय द्वारा होना चाहिये, परन्तु ऐसा नहीं होता है, अतः यही-सिद्धांत निर्दोष है, कि शब्द के परमाणु जब श्रोत्रेन्द्रिय के पास आकर प्राप्त होते हैं तभी वे उसके द्वारा ग्रहण करने में आते हैं, अन्यथा नहीं। इसीसे यह बात भी बन जाती है कि जब श्रोता प्रतिकूल पवन की ओर उपस्थित रहता है, तब वह जो मन्दरूप से या बिलकुल शब्द को नहीं सुनता है, उसका कारण प्रतिकूल वायु के द्वारा शब्द के परमाणुओं का प्रायःकरके उडा ले जाना होता है, इसलिये वे श्रोत्रेन्द्रिय तक कम या बिलकुल नहीं आ सकते हैं।

तथा श्रोत्रेन्द्रिय को प्राप्यकारी मानने पर, जो चाण्डाल के स्पर्श हो जानेका दोष दिया है, वह भी ठीक नहीं है. कारण कि-स्पर्श और अस्पर्श की व्यवस्था लोक में केवल काल्पनिक है। देखो-जिस भूमि को आगे २

પણ અપ્રાપ્ત શબ્દને જો ગ્રહણ કરતી હોત તો વિચારોના પ્રતિકૂળ વાયુમાં રહેવા છતાં પણ રૂપની જેમ શબ્દનું ગ્રહણ પણ શ્રોત્રેન્દ્રિય દ્વારા થવું જોઈએ, પણ એવું બનતું નથી; તેથી એજ સિદ્ધાંત નિર્દોષ છે કે શબ્દનાં પરમાણુ જ્યારે શ્રોત્રેન્દ્રિયની પાસે આવીને મળે છે. ત્યારે તેમનું તેના દ્વારા ગ્રહણ કરાય છે, બીજી કોઈ રીતે નહીં. તેથી આ વાત પણ નિશ્ચિત થાય છે કે જ્યારે શ્રોતા પ્રતિકૂળ પવનની તરફ રહેલ હોય છે ત્યારે તે જે મન્દરૂપે શબ્દને સાંભળે છે કે બિલકુલ સાંભળતો નથી તેનું કારણ પ્રતિકૂળ વાયુ દ્વારા શબ્દનાં પરમાણુઓનું સામાન્ય રીતે ખેંચી જવું તે છે; તેથી તેઓ શ્રોત્રેન્દ્રિય સુધી થોડાં પ્રમાણમાં જઇ શકે છે કે બિલકુલ જઇ શકતા નથી.

તથા શ્રોત્રેન્દ્રિયને પ્રાપ્યકારી માનવાથી જે ચાંડાળનો સ્પર્શ થઈ જવાનો દોષ દીધો છે તે પણ યોગ્ય નથી, કારણ કે સ્પર્શાસ્પર્શની વ્યવસ્થા લોકોમાં

तथा यामेव नावमारोहति स्म चाण्डालस्तामेवारोहति श्रोत्रियोऽपि। तथा स एव पवनश्चाण्डालमपि स्पृष्ट्वा श्रोत्रियमपि स्पृशति, न च तत्र लोके स्पर्शदोषव्यवस्था, तथा शब्दपुद्गलसंस्पर्शेऽपि लोके स्पर्शदोषव्यवस्था न भवतीति न कोऽपि दोष इति।

अपि च–यदा चाण्डालः केतकीपुष्पनिचयं पद्मादिपुष्पनिचयं वा शिरसि निधाय शरीरे कस्तूरीचन्दनाद्यनुलेपनं विधाय वीथ्यामागत्य तिष्ठति, तदा तद्गतकेतकी-पुष्पादिगन्धपुद्गलाः श्रोत्रियादिनासिकासु प्रविष्टा भवन्तीति तत्रापि चाण्डाल-स्पर्शदोषप्रसङ्गः स्यात्, तस्मात् नासिकेन्द्रियमप्यप्राप्यकारीति मन्तव्यं, न च तद् भवतोऽप्यागमे क्वचित् प्रतिपादितम्। अतश्चाण्डालस्पर्शदोषप्रसङ्गः स्यादिति कथनं बालिशजल्पितम्।

चाण्डाल स्पर्श करता हुआ चलता है उसी भूमि को पीछे से स्पर्श करता हुआ श्रोत्रिय–ब्राह्मण–भी चलता है। जिस नाव में बैठकर चांडाल नदी पार पहुंचता है उसी नाव में श्रोत्रिय ब्राह्मण भी सवार होकर नदी पार करता है। जो वायुमंडल चांडाल का स्पर्शकर बहता है वही पवन श्रोत्रियको भी स्पर्श करता है। इन बातों में लोकमें जैसे स्पर्श-दोषकी व्यवस्था नहीं मानी जाती है, इसी प्रकार शब्द पुद्गलके संस्पर्श होने पर भी लोकमें स्पर्शदोषकी व्यवस्था नहीं मानी गई है, अतः यह व्यवस्था काल्पनिक होनेसे पारमार्थिक नहीं है।

फिर भी–जिस समय चाण्डाल केतकीके पुष्पों को अथवा कमलादि पुष्पोंको मस्तक पर धारण करके अथवा शरीरमें कस्तूरी आदिका उव-टन करके रस्तेमें आकर खड़ा होता है उस समय वहां रहे हुए श्रोत्रिय आदि व्यक्तियोंकी नासिका में वे केतकी एवं कमलादि पुष्पोंके गंध

કેવળ કાલ્પનિક છે જુઓ–જે ભૂમિનો સ્પર્શ કરતો ચાંડાળ આગળને આગળ જાય છે એજ ભૂમિને પાછળથી સ્પર્શ કરતો શ્રોત્રિય–બ્રાહ્મણ ચાલે છે. જે હોડીમાં બેસીને ચાંડાલ નદી ઓળંગે છે એજ નાવમાં બેસીને શ્રોત્રિય બ્રાહ્મણ પણ નદીને ઓળંગે છે. જે વાયુ ચાંડાલનો સ્પર્શ કરતો વાય છે એજ વાયુ શ્રોત્રિયનો પણ સ્પર્શ કરે છે. એ બાબતોમાં જેમ લોકોમાં સ્પર્શદોષની વ્યવસ્થા માનવામાં આવતી નથી એજ પ્રકારે શબ્દપુદ્ગલનો સંસ્પર્શ થવાથી લોકોમાં સ્પર્શદોષની વ્યવસ્થા માનવામાં આવી નથી; તેથી એ વ્યવસ્થા કાલ્પનિક હોવાથી પારમાર્થિક નથી.

વળી–જે સમયે ચાંડાલ કેતકીના પુષ્પોને અથવા કમલાદિ પુષ્પોને માથે ઉપાડીને અથવા શરીર પર કસ્તૂરી આદિનો લેપ કરીને રસ્તામાં આવીને ઉભો રહે છે, તે સમયે ત્યાં રહેલ શ્રોત્રિય આદિ વ્યક્તિઓની નાસિકામાં કેતકી અને

केचित्तु श्रोत्रेन्द्रियस्याप्राप्यकारित्वं मन्यन्ते, शब्दस्य चाकाशगुणत्वम्, तदयुक्तम्-आकाशगुणत्वस्वीकारे शब्दस्यामूर्तत्वप्रसङ्गात्। यो हि यस्य गुणः, स तत्समानधर्मा भवति, यथा-ज्ञानमात्मनो गुणः, तत्रात्मा खल्वमूर्त्तस्ततस्तद्गुणो ज्ञानमप्यमूर्त्तमेव । तथा-शब्दोऽपि यद्याकाशगुणस्तर्हि आकाशस्यामूर्तत्वात् शब्दस्यापि तद्गुणत्वेनामूर्ततापत्तिः स्यात्। न चासौ युक्तिः समीचीना, तल्लक्षणायोगात्। मूर्तत्वविरहो हि अमूर्तताया लक्षणम्। न च शब्दानां मूर्तत्वविरहः, स्पर्शवत्त्वात्।

परमाणु घुसते हैं तो फिर यहां भी चाण्डालके स्पर्श होनेके दोषका प्रसंग प्राप्त होगा, इसलिये नासिका इन्द्रियको अप्राप्यकारी मानना चाहिये, परंतु ऐसी व्यवस्था आपके भी आगममें प्रतिपादित नहीं हुई है, इस लिये यह चाण्डालके स्पर्श होनेका दोष युक्तियुक्त नहीं है।

कितनेक व्यक्ति श्रोत्रेन्द्रियको अप्राप्यकारी इसलिये मानते हैं कि उसका विषय जो शब्द है, वह आकाशका गुण है, सो ऐसी मान्यता भी ठीक नहीं है, कारण कि-शब्दको यदि आकाशका गुण माना जावेगा तो उसमें मूर्तता न आकर अमूर्तता ही आवेगी, क्यों कि जो जिसका गुण होता है वह उसके ही समान धर्मवाला होता है, जैसे-आत्माका गुणज्ञान। आत्मा अमूर्त्त है तो उसका गुणज्ञान भी अमूर्त्त ही है। इसी तरह यदि आकाशका गुण शब्द है तो आकाशके अमूर्त होनेकी वजहसे उसका गुण शब्द भी अमूर्त ही होगा, परन्तु शब्दमें अमूर्तता है नहीं, क्यों कि अमूर्तताका लक्षण शब्दमें घटित नहीं होता है।

કમલાદિ પુષ્પોનાં ગંધપરમાણુ પ્રવેશે છે તો પછી ત્યાં પણ ચાંડાલનો સ્પર્શ થવાના દોષનો પ્રસંગ પ્રાપ્ત થશે, તે માટે નાસિકા ઇન્દ્રિયને અપ્રાપ્યકારી માનવી જોઈએ, પણ એવી વ્યવસ્થાનું આપના આગમોમાં પણ પ્રતિપાદન થયું નથી. તે કારણે ચાંડાલનો સ્પર્શ થવાનો એ દોષ યુક્તિયુક્ત નથી.

કેટલીક વ્યક્તિઓ શ્રોત્રેન્દ્રિયને અપ્રાપ્યકારી એ કારણે માને છે કે તેનો વિષય જે શબ્દ છે તે આકાશનો ગુણ માનવામાં આવે તો તેમાં મૂર્તતા ન આવતા અમૂર્તતા જ આવશે, કારણ કે જે જેનો ગુણ હોય છે તે તેના સમાન ધર્મવાળો હોય છે. જેમકે- આત્માનો ગુણ જ્ઞાન. આત્મા અમૂર્ત છે, તો તેનો ગુણ 'જ્ઞાન' પણ અમૂર્ત જ છે. એજ પ્રમાણે જો આકાશનો ગુણ શબ્દ હોય તો આકાશ અમૂર્ત હોવાને કારણે તેનો ગુણ 'શબ્દ' પણ અમૂર્ત જ હોય, પણ શબ્દમાં અમૂર્તતા નથી, કારણ કે અમૂર્તતાનું લક્ષણ શબ્દમાં ઘટાવી શકાતું

तथाहि—स्पर्शवन्तः शब्दाः, तत्संपर्कात् उपघातदर्शनात् लोष्टवत्। न चायमसिद्धो हेतुः, यतः सद्योजातशिशूनां कर्णान्तिकाऽऽनीतगाढास्फालितझल्लरीशब्दश्रवणतो बधिरता भवतीति दृश्यते। यत्र स्पर्शो नास्ति, तत्रोपघातोऽपि नास्ति, यथाऽऽकाशः। ततश्च विपक्षे उपघाताऽभावान्नानैकान्तिकोऽपि हेतुः।

अपि च—स्पर्शवन्तः शब्दाः, तैरभिघाते गिरिगह्वरादिषु शब्दोत्थानात्, लोष्टवत्। तीव्रप्रयत्नोच्चारितशब्दाभिघाते गिरिगह्वरादिषु प्रतिशब्दाः श्रूयन्ते प्रतिदिक्। ततश्च स्पर्शवत्त्वात् मूर्ता एव शब्दा इति स्थितम्, "रूपस्पर्शादिसंनिवेशो मूर्ति"-रिति वचनप्रामाण्यात्। अस्मादाकाशगुणत्वं शब्दानां नोपपन्नमिति।

मूर्तत्वका विरह अमूर्तताका लक्षण है, परन्तु शब्दमें मूर्तत्वका विरह-अभाव नहीं है, क्यों कि उसका स्पर्श होता है, अर्थात् शब्द स्पर्श गुणवाला है। यह स्पर्श गुणवाला इसलिये है कि उससे श्रोत्रेन्द्रियमें उपघात होता देखा जाता है। तुर्तके जन्मे हुए बालकके कानके पास लाकर जब झल्लरी बडे जोरसे बजानेमें आती है तो उसके शब्दके संपर्कसे उसके कानकी झिल्ली फट जाती है, और वह बहिरा हो जाता है। जिसमें स्पर्शगुण नहीं होता है उसमें उपघातके गुण भी नहीं होता है, जैसे आकाशमें। इसलिये विपक्ष आकाशमें उपघात करनेका अभाव होनेसे हमारा हेतु विपक्षमें नहीं रहता है। विपक्षमें वर्तमान हेतु स्व-साध्यका गमक नहीं होता है। यहां स्पर्शवत्त्वका विपक्ष आकाश है, उसमें यह हेतु नहीं रहता अतः वहां उपघात करना रूप साध्य भी नहीं रहता। यह तो अपने हेतुके साथ ही रहता है।

નથી. અમૂર્તતાનો અભાવ અમૂર્તતાનું લક્ષણ છે, પણ શબ્દમાં મૂર્તતાનો અભાવ નથી, કારણ કે તેનો સ્પર્શ થાય છે. એટલે કે શબ્દ સ્પર્શગુણવાળો છે. તે સ્પર્શ-ગુણવાળો તે કારણે છે કે તેનાથી શ્રોત્રેન્દ્રિયમાં ઉપઘાત થતો દેખાય છે. તરતના જન્મેલાં બાળકના કાન પાસે લઈ જઈને જ્યારે ઝાલરને ઘણા જોરથી વગાડવામાં આવે છે ત્યારે તેના શબ્દના સ્પર્શથી તેના કાનનો પડદો તૂટી જાય છે અને તે બહેરો થઈ જાય છે. જેમાં સ્પર્શગુણ ન હોય તેમાં ઉપઘાતક ગુણ પણ હોતો નથી. જેમકે આકાશમાં તથી વિપક્ષ આકાશમાં ઉપઘાત કરવાનો અભાવ હોવાથી આપણો હેતુ વિપક્ષમાં રહેતો નથી. વિપક્ષમાં વર્તમાન હેતુ સ્વસાધ્યનો ગમક થતો નથી. અહીં સ્પર્શત્વનો વિપક્ષ આકાશ છે, તેમાં તે હેતુ રહેતો નથી, તેથી ત્યાં ઉપઘાત કરવારૂપ સાધ્ય પણ રહેતું નથી એ તો પોતાના હેતુની સાથે જ રહે છે.

अपि च-आकाशं किमेकम्? अनेकं वा?, यद्येकं, तर्हि दूरतरादपि शब्दः श्रूयेत, आकाशस्यैकत्वेन शब्दस्य च तद्गुणतया दूरासन्नादिभेदाभावम्। यद्यनेकम्, तर्हि मुखदेश एव शब्दो विद्यते इति कथं भिन्नदेशवर्तिभिः श्रोतृभिः श्रूयते, मुखदेशाकाशगुणतया श्रोतृगतश्रोत्रेन्द्रिया काशसंबन्धाभावात्।

फिर भी-शब्द, स्पर्शगुणवाला है, यह बात इस कारण भी सिद्ध होती है कि-जब गिरिगुफामें शब्दका उच्चारण किया जाता है, तो वहां से प्रतिध्वनि होती है। इस तरह स्पर्शवत्तासे शब्दमें मूर्तता सिद्ध होती है, और मूर्तताकी सिद्धिसे आकाशगुणत्वाभाव सिद्ध होता है। रूप रस आदि गुणोंका जहां सद्भाव होता है उसका नाम मूर्त है। मूर्त होने से आकाशगुणता शब्दमें नहीं आती है।

और भी-आकाश एक है अथवा अनेक है? यदि 'आकाश एक है' ऐसा माना जाय तो अत्यन्त दूरसे भी शब्द सुननेमें आना चाहिये, क्यों कि सर्वत्र आकाश एक ही है। शब्दमें दूर आसन्न आदि ऐसा व्यवहार तो हो नहीं सकता है। तात्पर्य इसका यह है कि जब आकाश एक है और शब्द उसका गुण है तो आकाशके सर्वत्र एक होनेसे जब के गुणरूप शब्दमें-'यह दूरका शब्द है यह नजदीकका शब्द है' ऐसा व्यवहार ही नहीं हो सकता है। यदि आकाश अनेक है ऐसा माना जावे तो भिन्न देशवर्ती प्रत्ययों द्वारा शब्दका श्रवण कैसे हो सकेगा? कारण कि शब्द तो वक्ता के मुखरूपी आकाश में ही रहेगा। वह वक्ता

વળી-શબ્દ સ્પર્શગુણવાળો છે, આ વાત એ કારણે પણ સિદ્ધ થાય છે કે-જ્યારે પર્વતની ગુફામાં શબ્દ બોલવામાં આવે છે, ત્યારે ત્યાંથી પડઘો પડે છે. આ રીતે સ્પર્શવત્વથી શબ્દમાં મૂર્તતા સિદ્ધથાય છે, અને મૂર્તતાની સિદ્ધિથી આકાશગુણત્વાભાવ સિદ્ધથાય છે. રૂપ, રસ, આદિ ગુણોનો જ્યાં સદ્ભાવ હોય છે તેનું નામ મૂર્ત છે. મૂર્ત હોવાને લીધે શબ્દમાં આકાશગુણતા આવતી નથી.

વળી-આકાશ એક છે અથવા અનેક છે? જો આકાશ એક છે એમ માનવામાં આવે તો અત્યંત દૂરથી પણ શબ્દ સંભળાવો જોઈએ, કારણ કે સર્વત્ર આકાશ એક જ છે. તો શબ્દમાં દૂરથી આવતો આદિ વ્યવહાર હોઈ શકે નહીં. તેનું તાત્પર્ય એ છે કે જો આકાશ એક છે. અને શબ્દ તેનો ગુણ છે તો સર્વત્ર એક આકાશ હોવાથી તેના ગુણરૂપ શબ્દમાં-"આ દૂરનો શબ્દ છે, આ નજીકનો શબ્દ છે" એવો વ્યવહાર જ થઈ શકે નહીં. જો આકાશ અનેક છે એમ માનવામા આવે તો ભિન્ન સ્થાનમાં રહેલ પ્રાણીઓ દ્વારા શબ્દનું શ્રવણ કેવી રીતે થઇ શકે? કારણ કે શબ્દ તો વક્તાનાં મુખરૂપી આકાશમાં જ રહેશે. તે

अथ च श्रोत्रेन्द्रियविवरवर्त्त्याकाशसम्बन्धेन शब्दस्य श्रवणं भवतीति स्वीकारे शब्दस्याकाशगुणत्वाभ्युपगमो न युज्यते।

नन्वाकाशगुणत्वमन्तरेण शब्दस्यावस्थानमेव नोपपद्यते, स्थितिं विना पदार्थस्य सद्भाव एव न स्यात् तस्मादवश्यं पदार्थेन स्थितिमता भवितव्यम्, तत्र रूपरसस्पर्शगन्धानां पृथिव्यादिमहाभूतचतुष्टयमाश्रयः, शब्दस्य तु आकाशमिति चेत्,

---

के मुखरूपी आकाश का जब गुण है तो फिर वह भिन्नदेशवर्ती श्रोता के श्रोत्रेन्द्रियरूप आकाश के साथ संबंध कैसे कर सकता है कि जिससे वह सुनाई पड सके।

यदि कहा जावे कि 'शब्द का संबंध श्रोत्रेन्द्रिय के विवर में रहे हुए आकाश के साथ होता है इसलिये वह सुनने में आता है, तो फिर इस मान्यता में 'शब्द आकाश का गुण है' यह बात सिद्ध नहीं होती है।

यदि इस पर यह कहा जाय कि 'शब्द को आकाश का गुण न माना जावे तो उसकी स्थिति ही नहीं बनती है, स्थिति के विना पदार्थ का सद्भाव माना नहीं जाता है, अतः जब शब्द स्थितिवाला पदार्थ माना जाता है तो ऐसी हालत में कहीं न कहीं इसकी स्थिति भी माननी चाहिये। पृथिव्यादिक भूतों में तो इसकी स्थिति होती नहीं है, कारण कि वे तो रूप रसादिकों के ही आधारभूत हैं। अब रहा आकाश सो यह आकाश ही शब्द का आश्रय सिद्ध होता हैं।

વક્તાનાં મુખરૂપી આકાશનો જો ગુણ છે, તો પછી તે ભિન્ન સ્થાનમાં રહેલ શ્રોતાના શ્રોત્રેન્દ્રિયરૂપ આકાશની સાથે સંબંધ કેવી રીતે કરી શકે છે, કે જેથી તે સંભળાઈ શકે.

જો એમ કહેવામા આવે કે "શબ્દનો સંબંધ કાનનાં પોલાણમાં રહેલ આકાશ સાથે થાય છે તેથી તે સાંભળવામાં આવે છે," તો પછી એ માન્યતાથી "શબ્દ આકાશનો ગુણ છે" એ વાત સિદ્ધ થતી નથી.

જો તે વિષે એમ કહેવામાં આવે કે "શબ્દને આકાશનો ગુણ માનવામાં ન આવે તો તેથી સ્થિતિ જ સંભવતી નથી. સ્થિતિ વિના પદાર્થનો સદ્ભાવ (અસ્તિત્વ) મનાતો નથી; તેથી જ્યારે શબ્દ સ્થિતિવાળા પદાર્થ મનાય છે ત્યારે એવી હાલતમાં તેની કોઇને કોઇ સ્થિતિ પણ માનવી જોઈએ. પૃથિવ્યાદિક પદાર્થોમાં તો તેની સ્થિતિ હોતી નથી, કારણ કે એ તો રૂપરસાદિકોનાં જ આધાર ભૂત છે. હવે રહ્યું આકાશ

तदयुक्तम्, एवं सति पृथिव्यादीनामप्याकाशगुणत्वप्रसङ्गात्, तेषामप्याकाशाश्रितत्वात्, न खल्वाकाशमन्तरेण पृथिव्यादीनामप्यन्यः कश्चिदाश्रयः।

न च पृथिव्यादीनामगुणत्वादाकाशगुणत्वमनुपपन्नमिति वाच्यम्, आकाशाश्रितत्वे सति पृथिव्यादीनां भवन्मते बलादपि तद्गुणत्वप्रसङ्गात्।

नन्वाश्रयणमात्रं न तद्गुणत्वप्राप्तिकारणं, किं तु समवायः, स चास्ति शब्दस्याकाशे, न तु पृथिव्यादीनामिति चेत्,

---

ऐसा कहना भी ठीक नहीं है, कारण कि इस तरह की मान्यता से पृथिव्यादिक भूतचतुष्टय में भी आकाशाश्रित होने से गुणत्वापत्ति आती है। आकाश के सिवाय और कोई तो इन भूतों का आश्रय है नहीं। यदि कहा जाय कि 'पृथिव्यादिकभूत गुणरूप नहीं है कि जिसकी वजह से उनमें आकाशगुणता आसके' सो ऐसा कथन भी ठीक नहीं है, कारण कि–जब आप ऐसा कहते हैं कि 'शब्द आकाश के आश्रित रहता है अतः वह उसका गुण है' तो फिर इस कथन के अनुसार पृथिव्यादिकभूतों में तदाश्रयता होने से गुणत्वापत्ति का वारण कौन कैसे कर सकता है?। इस मान्यता में तो गुणत्वापत्ति उनमें बलात आ जाती है।

यदि फिर भी ऐसा कहा जाय कि–'सामान्यरूप से आश्रित होने में गुणत्वापत्ति नहीं आती है किन्तु समवायसंबंध से आश्रित रहने में गुणरूपता आती है, पृथिव्यादिकभूत आकाश में समवायसंबंध से आश्रित

એમ કહેવું તે પણ બરાબર નથી, કારણ કે એ પ્રકારની માન્યતાથી પૃથિવ્યાદિક ચાર પદાર્થોમાં પણ આકાશાશ્રિત હોવાથી ગુણત્વાપત્તિ આવે છે આકાશ સિવાય બીજું કોઈ એ ભૂતોનો (પદાર્થોનો) આશ્રય નથી. જો એમ કહેવામાં આવે કે "પૃથિવ્યાદિકભૂત ગુણરૂપ નથી કે જેને કારણે તેમનામાં આકાશગુણતા આવી શકે" તો એવું કથન પણ બરાબર નથી, કારણ કે જ્યારે આપ એમ કહો છો કે "શબ્દ આકાશને આશ્રિત રહે છે, તેથી તે ગુણ છે" તો પછી આ કથન પ્રમાણે પૃથિવ્યાદિક ભૂતોમાં તે આશ્રયતા હોવાથી ગુણત્વાપત્તિનું નિવારણ કોણ કેવી રીતે કરી શકે છે? આ માન્યતાથી તો તેમનામાં ગુણત્વાપત્તિ બળાત્કારે આવી જાય છે.

વળી જો એમ કહેવામાં આવે કે "સામાન્યરૂપે આશ્રિત થવામાં ગુણત્વાપત્તિ આવતી નથી પણ સમવાયસંબંધથી આશ્રિત રહેવામાં ગુણરૂપતા આવે છે. પૃથિવ્યાદિક ભૂત આકાશમાં સમવાય સંબંધથી આશ્રિત રહેતા નથી, તેઓ તો

अत्रोच्यते—कोऽयं भवदुक्तः समवायः ?, यद्येकत्रलोलीभावेनावस्थानं, यथा घटादेस्तद्गतरूपादेश्च यः सम्बन्धः स समवाय इत्युच्यते, तर्हि शब्दस्याकाशगुणत्वं न संभवति, आकाशेन सहैकत्र लोलीभावेन तस्यानवस्थानात्, न हि घटादौ रूपादिवत् सदा नभसि शब्दसद्भावोऽस्ति।

अथाकाशे उपलभ्यमानत्वात् तद्गुणत्वं शब्दस्यास्तीत्युच्यते, तर्हि उल्कादेरप्याकाश उपलभ्यमानत्वात् तद्गुणत्वप्रसङ्गः स्यात्।

यदि तु उल्कादेः परमार्थतः स्थानं पृथिव्यादिकम्, आकाशे तदुपलब्धिस्तु पवनेन संचार्यमाणत्वादित्युच्यते, तर्हि तथैव शब्दस्यापि परमार्थतः स्थानमाकाशं नास्ति, किं तु श्रोत्रादिकमिति ब्रूमः। यत्तु आकाशे तदवस्थानमुपलभ्यते, तत् पवनेन संचार्यमाणत्वादिति बोध्यम्, तथाहि यत्र यत्र पवनः संचरति, तत्र तत्र शब्दोऽपि गच्छति, पवनप्रतिकूलगमनं शब्दस्य नास्ति। उक्तञ्च—

नहीं रहते हैं, वे तो वहां संयोगसंबंध से आश्रित रहते है' ऐसा कहना इस प्रश्न को स्थान देने के लिये बाध्य करता है कि यह समवाय क्या वस्तु है? क्या एकत्र लोलीभाव से रहना यही समवाय है जैसा घटादिक और उसके रूपादिकों में हैं?। सो इस कथन से तो शब्द में आकाशगुणता नहीं आती है, कारण कि-शब्द और आकाश में इस प्रकार का लोलीभावरूप समवायसंबंध नहीं है। जिस प्रकार घटादिक में सदा रूपादिक का एकत्र लोलीभाव रहा करता है उस प्रकार से आकाश में शब्द का सदा लोलीभाव नहीं रहता है।

यदि कहा जावे कि 'आकाश में शब्द की उपलब्धि होती है अतः वह उसका गुण है' सो ऐसी बात तो उल्कादिक में भी होती है अतः उनमें भी आकाशगुणता माननी पड़ेगी।

त्यां संयोग संबंधे आश्रित रहे छे" एम कहेवुं ते आ प्रश्नने स्थान देवा माटे फरज पाडे छे के ए समवाय शी वस्तु छे? शुं एकत्र लोलीभावथी रहेवुं एज समवाय छे, जेवो घटादिक अने तेना रूपादिकोमां छे? तो आ कथनथी तो शब्दमां आकाशगुणता आवती नथी, कारण के शब्द अने आकाशमां आ प्रकारनो लोलीभावरूप समवाय संबंध नथी. जे प्रकारे घटादिकमां हंमेशां रूपादिकनो एक मात्र लोलीभाव रह्या करे छे, ते प्रकारे आकाशमां शब्दनो हंमेशां लोलीभाव रही शकतो नथी.

जो एम कहेवामां आवे के "आकाशमां शब्दनी प्राप्ति थाय छे तेथी ते तेनो गुण छे" तो एवी वात तो उल्कादिकमां पण थाय छे तेथी तेमनामां पण आकाश गुणता मानवी पडे.

यथा च पूर्यते तूल,-माकाशे मातरिश्वना ।
तथा शब्दोऽपि किं वायोः प्रतीपं कोऽपि शब्दवित् ॥ १ ॥

तस्मान्नाकाशगुणः शब्दः, किंतु पुद्गलमय इति स्थितम् । व्यञ्जनावग्रहस्य दृष्टान्तो मल्लक इति टीकान्ते द्रष्टव्यः ॥ सू० २८ ॥

॥ इति व्यञ्जनावग्रहप्रकरणम् ॥

यदि इस पर ऐसा कहा जावे कि 'उल्कादिकों का परमार्थतः स्थान तो पृथिवी आदिक ही हैं परन्तु वे जो आकाश में उपलब्ध होते हैं उसका कारण पवन द्वारा उनका वहां संचरण करवाना है' तो फिर इसी तरह से यह भी मान लेना चाहिये कि परमार्थतः शब्द का स्थान आकाश नहीं है किन्तु श्रोत्रादिक ही है, परन्तु आकाश में जो उसका अवस्थान मालूम पड़ता है वह पवन के द्वारा उसका वहां संचरण होना है। जहां जहां पवन का संचार होता है वहां वहां शब्द भी जाता है, शब्द का पवन के प्रतिकूल गमन नहीं होता है। कहा भी है—

"यथा च पूर्यते तूल,-माकाशे मातरिश्वना ।
तथा शब्दोऽपि किं वायोः, प्रतीपंकोऽपि शब्दवित्" ॥ १ ॥

अर्थ—जैसे पवन रूई को उडाकर आकाशमें भरदेता है, उसीतरह शब्द को भी आकाश में भरदेता है। क्या पवन की प्रतिकूलता में कोई भी मनुष्य किसीके शब्द को समझ पाता है? अर्थात् कोई भी नहीं समझ पाता है।

જો તે વિષે એમ કહેવામાં આવે કે "ઉલ્કાદિકોનું પરમાર્થતઃ સ્થાન તો પૃથ્વી આદિ જ છે, પણ આકાશમાં તેઓ જે પ્રાપ્ત થાય છે તેનું કારણ પવન દ્વારા તેમનું ત્યાં સંચરણ કરાવવાની ક્રિયા જ છે" તો પછી એજ રીતે એ પણ માની લેવું જોઈએ કે પરમાર્થતઃ શબ્દનું સ્થાન આકાશ નથી પણ શ્રોત્રાદિક જ છે. પણ આકાશમાં જે તેનું અવસ્થાન માલમ પડે છે તે પવનના દ્વારા તેનું ત્યાં સંચરણ થવાની ક્રિયા છે, જ્યાં જ્યાં પવનનો સંચાર થાય છે ત્યાં ત્યા શબ્દ પણ જાય છે. શબ્દનું ગમન પવનથી પ્રતિકૂળ હોતું નથી. કહ્યું પણ છે-

"यथा च पूर्यते तूल, माकाशे मातरिश्वना
तथा शब्दोऽपि किंवायोः, प्रतीप कोऽपि शब्दवित्" ॥१॥

અર્થ—જેમ પવન રૂપે ઉડાડીને આકાશમાં ભરીદે છે, તેવી જ રીતે શબ્દને પણ આકાશમાં ભરી દે છે. શું? પવનની પ્રતિકૂલતામાં કોઈ પણ માણસ કોઈના શબ્દને સમજી શકે છે? અર્થાત્ કોઈપણ સમજી શકતા નથી

अथार्थावग्रहः प्रोच्यते—

मूलम्—से किं तं अत्थुग्गहे ?। अत्थुग्गहे छव्विहे पण्णत्ते; तं जहा-सोइंदिय-अत्थुग्गहे १, चक्खिंदिय-अत्थुग्गहे २, घाणिंदिय-अत्थुग्गहे ३, जिब्भिंदिय-अत्थुग्गहे ४, फासिंदिय-अत्थुग्गहे ५, नोइंदिय-अत्थुग्गहे ॥ सू० २९ ॥

छाया—अथ कः सोऽर्थावग्रहः ?। अर्थावग्रहः षड्विधः प्रज्ञप्तः। तद् यथा-श्रोत्रेन्द्रियार्थावग्रहः१, चक्षुरिन्द्रियार्थावग्रहः २, घ्राणेन्द्रियार्थावग्रहः ३, जिह्वेन्द्रियार्थावग्रहः ४, स्पर्शेन्द्रियार्थावग्रहः ५, नोइन्द्रियार्थावग्रहः ६ ॥सू०२९॥

टीका—'से किं तं अत्थुग्गहे०' इत्यादि। कतिविधोऽसावर्थावग्रह इति शिष्यप्रश्नः। उत्तरमाह—'अत्थुग्गहे छव्विहे पण्णत्ते०' इत्यादि। अर्थस्यावग्रहणम्-अर्थावग्रहः। सकलरूपादिविशेषनिरपेक्षाऽनिर्देश्यसामान्यमात्राऽर्थग्रहणरूपः। प्रथमपरिच्छेदनमर्थावग्रह इति निर्विकल्पकं ज्ञानं दर्शनरूपमित्युच्यते। अयं च नैश्चयिक एकसामायिकः, यस्तु व्यावहारिकः 'शब्दोऽयम्' इत्याद्युल्लेखवान् स आन्तर्मौहूर्तिक इति। अर्थावग्रहश्च—मनःसहितेन्द्रियपञ्चकजन्यत्वात् षोढा

इसलिये शब्द आकाश का गुण नहीं है, किन्तु वह पुद्गल की एक पर्याय है, यह सिद्ध हो जाता है।

व्यञ्जनावग्रह का दृष्टान्त मल्लक-मृत्तिका का नवीन सकोरा-बतलाया गया है वह टीका के अन्त में दिया गया है अतः वहां से समझ लेना चाहिये ॥ सू० २८ ॥

॥ इस प्रकार यह व्यञ्जनावग्रह हुआ ॥

अब सूत्रकार अर्थावग्रहको कहते हैं-'से किं तं अत्थुग्गहे०' इत्यादि। प्रश्न-हे भदंत ! पूर्वनिर्दिष्ट अर्थावग्रहका क्या स्वरूप है ?

તેથી શબ્દ આકાશનો ગુણ નથી, પણ તે પુદ્‌ગલની એક પર્યાય છે. એ સિદ્ધ થઈ જાય છે.

વ્યંજનાવગ્રહનું દૃષ્ટાંત મલ્લક-માટીનું નવીન શકોરૂં-બતાવવામાં આવેલ છે તે ટીકાને અંતે આપેલ છે. તેથી ત્યાંથી સમજી લેવું ॥સૂ. ૨૮॥

॥ આ પ્રકારે આ વ્યંજનાવગ્રહનું વર્ણન થયું ॥

હવે સૂત્રકાર અર્થાવગ્રહનું વર્ણન કરે છે-"से किं तं अत्थुग्गहे०" ઈત્યાદિ

પ્રશ્ન—હે ભદન્ત! પૂર્વનિર્દિષ્ટ અર્થાવગ્રહનું શું સ્વરૂપ છે?

भवतीत्याह-' अत्थुग्गहे ' इति । अर्थावग्रहः षड्विधः प्रज्ञप्तः । श्रोत्रेन्द्रियार्थावग्रहः श्रोत्रेन्द्रियेण, एवं चक्षुरिन्द्रियार्थावग्रहादिषु विज्ञेयम् । इदमत्र बोध्यम्-चक्षुर्मनसोस्तु व्यञ्जनावग्रहो न भवति, ततस्तयोरर्थावग्रह एव भवति । तत्र षष्ठभेदमाह-'नो इंदिय-अत्थुग्गहे ' इति । नो इन्द्रियार्थावग्रहः-नो इन्द्रियेण=भावमनसाऽर्थावग्रहो द्रव्येन्द्रियव्यापारनिरपेक्षो घटाद्यर्थस्वरूपपरिभावनाऽभिमुखः प्रथममेकसामयिको रूपाद्यर्थाकारादिविशेषचिन्तारहितोऽनिर्देश्यसामान्यमात्रचिन्तात्मको बोधः - नो इन्द्रियार्थावग्रहः-नो इन्द्रियं हि मनः, तच्च द्विधा-द्रव्यरूपं भावरूपं च । तत्र मनःपर्याप्तिनामकर्मोदयाद् यन्मनःप्रायोग्यवर्गणादलिकानादाय मनस्त्वेन परिणमति तद् द्रव्यरूपं मनः । तथा द्रव्यमनोऽवष्टम्भेन जीवस्य यो मननपरिणामः स भावमनः । तत्रेह भावमनो गृह्यते । तद्ग्रहणे हि द्रव्यमनसोऽपि ग्रहणं भवत्येव, द्रव्यमनो विना भावमनसोऽसंभवात् , भावमनो विनाऽपि च द्रव्यमनो भवति ॥ सू० २९ ॥

उत्तर—अर्थावग्रह छह प्रकारका बतलाया गया है, वे इस प्रकार हैं-१ श्रोत्रेन्द्रिय अर्थावग्रह, २ चक्षुरिन्द्रिय अर्थावग्रह, ३ जिह्वेन्द्रिय अर्थावग्रह, ४ घ्राणेन्द्रिय अर्थावग्रह, ५ स्पर्शेन्द्रियार्थावग्रह और ६ नो इन्द्रिय अर्थावग्रह । अर्थ का अवग्रह होना इसका नाम अर्थावग्रह है । सकल रूपादिक विशेष से निरपेक्ष होने की वजह से अनिर्देश्य सामान्य मात्र अर्थ का जानना, जैसे ' यह कुछ है ' इसका नाम अर्थावग्रह है । नैश्चयिक और व्यावहारिक रूप से अर्थावग्रह दो प्रकार का होता है । नैश्चयिक अर्थावग्रह का काल एक समयमात्र है । यह निर्विकल्पकज्ञान-रूप होता है । निर्विकल्पकज्ञान, दर्शनरूप होता है । तथा जो व्यावहारिक अर्थावग्रह होता है, अर्थात्-'यह शब्द है' इत्यादि प्रकार के

ઉત્તર—અર્થાવગ્રહ છ પ્રકારના બતાવ્યા છે. તે આ પ્રમાણે છે-(૧) શ્રોત્રેન્દ્રિય અર્થાવગ્રહ (૨) ચક્ષુરિન્દ્રિય અર્થાવગ્રહ (૩) જિહ્વેન્દ્રિય અર્થાવગ્રહ (૪) ઘ્રાણેન્દ્રિય અર્થાવગ્રહ (૫) સ્પર્શેન્દ્રિયાઅર્થાવગ્રહ (૬) નો ઈન્દ્રિય અર્થાવગ્રહ અર્થનો અવગ્રહ થવો તેનું નામ અર્થાવગ્રહ છે. સકળ રૂપાદિક વિશેષથી નિરપેક્ષ હોવાને કારણે અનિર્દેશ્ય સામાન્યમાત્ર અર્થનું જાણવું, જેમકે "આ કંઈક છે" તેનું નામ અર્થાવગ્રહ છે. નૈશ્ચયિક અને વ્યાવહારિક રૂપે અર્થાવગ્રહ બે પ્રકારનો છે. નૈશ્ચયિક અર્થાવગ્રહનો કાળ એક સમયમાત્ર છે. એ નિર્વિકલ્પક-જ્ઞાનરૂપ હોય છે. નિર્વિકલ્પકજ્ઞાન દર્શનરૂપ હોય છે. તથા જે વ્યવહારિક અર્થાવગ્રહ થાય છે, એટલે કે "આ શબ્દ છે" ઇત્યાદિ પ્રકારના ઉલ્લેખવાળો હોય છે, તેનો

उल्लेख वाला होता है उसका काल अन्तर्मुहूर्त का है। यह अर्थावग्रह मन और पांच इन्द्रियों से उत्पन्न होने के कारण छह प्रकार का बतलाया गया है। यह बात पहिले व्यंजनावग्रह के प्रकरण में कही जा चुकी है कि चक्षु और मन अप्राप्यकारी होने के कारण इनसे व्यंजनावग्रह नहीं होता है. अर्थात् इनसे अर्थावग्रह ही होता है। सूत्र में "नो इन्द्रिय" शब्द से भावमन गृहीत हुआ है। मन दो प्रकार का बतलाया गया है। एक द्रव्य मन और दूसरा भावमन। भावमन के द्वारा जो अर्थ का ग्रहण होता है-जिसमें कि द्रव्येन्द्रिय के व्यापार की अपेक्षा नहीं होती है, तथा घटादिकरूप पदार्थ के स्वरूप की विचारणा के जो सन्मुख होता है, विशेष का जिसमें कोई विचार नहीं होता है किन्तु अनिर्देश्य सामान्यमात्र का ही जिसमें बोध रहा करता है-उसका नाम नो इन्द्रियार्थावग्रह है। मनःप्रर्याप्ति नाम कर्म के उदय से युक्त जीव मनः प्रायोग्य वर्गणादलिकों को ग्रहण करके जो उन्हें मनरूप से परिणमाता है इसका नाम द्रव्यमन है। तथा द्रव्यमन की सहायता से जीव का जो मननरूप परिणाम होता है वह भावमन है। तात्पर्य इसका इस प्रकार है-मनोवर्गणाओं का मनरूप से परिणमन हाना इसका नाम द्रव्यमन, तथा इस द्रव्यमन की सहायता से जीव के जो उन २ पदार्थों का विचार

કાળ અન્તર્મુહુર્તનો છે. આ અર્થાવગ્રહ મન અને પાંચ ઇન્દ્રિયોથી ઉત્પન્ન થવાને કારણે છ પ્રકારનો બતાવ્યો છે. એ વાત પહેલાં વ્યંજનાવગ્રહના પ્રકરણમાં કહેવાઇ ગઇ છે કે ચક્ષુ અને મન અપ્રાપ્યકારી હોવાથી તેમના વડે વ્યંજનાવગ્રહ થતો નથી, એટલે કે તેમનાથી અર્થાવગ્રહ જ થાય છે. સૂત્રમાં "नो इन्द्रिय" શબ્દથી ભાવ મન ગ્રહણ કરેલ છે. મન બે પ્રકારનું બતાવ્યું છે (૧) દ્રવ્ય મન, (૨) ભાવ મન.

"ભાવમનનાદ્વારા જે અર્થનું ગ્રહણ થાય છે, "જેમાં દ્રવ્યેન્દ્રિયના વ્યાપારની અપેક્ષા રહેતી નથી, તથા ઘટાદિકરૂપ પદાર્થના સ્વરૂપની વિચારણાની જે સમીપ હોય છે, વિશેષનો જેમાં કોઈ વિચાર થતો નથી, પણ અનિર્દેશ્ય સામાન્યમાત્રનો જ જેમા બોધ રહ્યા કરે છે" તેનું નામ નો ઇન્દ્રિયાર્થાવગ્રહ છે. મનઃપર્યાપ્તિ નામકર્મના ઉદયથી યુકત જીવ મનઃપ્રાયોગ્ય વર્ગણાદલિકોને ગ્રહણ કરીને તેમને જે મનરૂપે પરિણમાવે છે, તેનું નામ દ્રવ્યમન છે. તથા દ્રવ્યમનની સહાયતાથી જીવનું જે મનનરૂપ પરિણામ આવે છે, તે ભાવમન છે. તેનું તાત્પર્ય એ છે કે-મનોવર્ગણાઓનું મનરૂપે પરિણમન થવું તેનું નામ દ્રવ્યમન, તથા તે દ્રવ્યમનની સહાયતાથી જીવને તે તે પદાર્થોનો જે વિચાર

मूलम्—तस्स णं इमे एगट्ठिया नाणाघोसा नाणावंजणा पंच नामधिज्जा भवंति, तं जहा-ओगेण्हणया, उवधारणया, सवणया, अवलंबणया, मेहा। से तं उग्गहे ॥ सू० ३० ॥

छाया—तस्य खलु इमानि एकार्थिकानि नानाघोषाणि नानाव्यञ्जनानि, पञ्च-नामधेयानि भवन्ति, तद् यथा—अवग्रहणता, उपधारणता, श्रवणता, अवलम्बनता, मेधा। स एषोऽवग्रहः ॥सू० ३०॥

टीका—'तस्स णं०' इत्यादि। तस्य=अवग्रहस्य खलु इमानि=अनन्त-रवक्ष्यमाणानि, नानाघोषाणि = नाना – अनेकविधाः घोषा = उदात्तादयो यत्र तानि। तथा नानाव्यञ्जनानि – नाना = अनेकविधानि, व्यञ्जनानि= व्यञ्जनवर्णाः ककरादयो यत्र तानि, पञ्च=पञ्चसंख्यकानि, नामधेयानि=नामानि एकार्थकानि=अवग्रहसामान्यापेक्षया अभिन्नार्थकानि। अवग्रहविशेषापेक्षया तु

हुआ करता है वह भावमन है। यहां भावमन का ग्रहण हुआ है। इसीसे द्रव्य मन का भी ग्रहण हो जाता है, कारण कि–द्रव्यमन के विना भावमन नहीं होता। भावमन के विना द्रव्यमन तो हो जाता है। इसी तरह श्रोत्र इन्द्रिय से जो अर्थ का अवग्रह होता है वह श्रोत्रेन्द्रि-यार्थावग्रह, चक्षु इन्द्रिय से जो अर्थ का अवग्रह होता है वह चक्षु-इन्द्रिय अर्थावग्रह है, इत्यादि रूप से शेष इन्द्रियों में भी जान लेना चाहिये ॥ सू० २९ ॥

'तस्स णं०' इत्यादि।

अवग्रह के नाना उदात्त आदि घोष तथा अनेक विध व्यंजन-ककार आदि व्यंजन-वर्ण वाले एकार्थक पांच नाम हैं। अर्थात् ये पांच

थया करे छे ते भावमन छे. अहीं भावमन ग्रहण करेल छे. तेथी द्रव्यमननुं पण ग्रहण थई जाय छे, कारण के द्रव्यमन विना भावमन होतुं नथी भाव-मन विना द्रव्यमन होई शके छे. एज प्रमाणे श्रोत्रेन्द्रियथी जे अर्थनो अवग्रह थाय छे ते श्रोत्रेन्द्रियार्थावग्रह, चक्षुइन्द्रियथी जे अर्थनो अवग्रह थाय छे ते चक्षुरिन्द्रिय अर्थावग्रह छे, इत्यादि रीते बाकीनी इन्द्रियोमां पण समजी लेवुं ॥ सू. २९ ॥

"तस्स णं०" इत्यादि—

अवग्रहना अनेक उदात्त आदि घोष तथा अनेकविध व्यंजन-ककार आदि. व्यंजन-वर्णवाळा एकार्थक पांच नाम छे. एटले के ए पांच नाम अन-

कथंचिद् भिन्नार्थकानि। तथाहि-इह अवग्रहस्त्रिधा-व्यञ्जनावग्रहः, सामान्यार्थावग्रहः, विशेषसामान्यार्थावग्रहश्चेति। तत्र विशेषसामान्यार्थावग्रह औपचारिकः, स चानन्तरमेवाग्रे प्रदर्शयिष्यते। अवग्रहस्य पञ्चनामानि प्रदर्शयितुमाह—'तं जहा' इत्यादि। तद्यथा-तानि यथा-'अवग्रहणता' इति। अवगृह्यतेऽनेनेत्यवग्रहणम्-व्यञ्जनावग्रह-प्रथमसमयप्रविष्ट-शब्दादि-पुद्गलाऽऽदानपरिणामः इत्यर्थः। अवग्रहणमेव-अवग्रहणता। स्वार्थे तल् प्रत्यय आर्षत्वात्। एवमग्रेऽपि तल् प्रत्ययो बोध्यः॥१॥

नाम अवग्रह सामान्य की अपेक्षा से समान अर्थ वाले हैं। तथा अवग्रह विशेष की अपेक्षा ये पांचों ही नाम कथंचित् भिन्नार्थक भी हैं। अवग्रह तीन प्रकार का है-व्यञ्जनावग्रह, सामान्यार्थावग्रह तथा विशेष सामान्यार्थावग्रह। इनमें तीसरा भेद जो विशेष सामान्यार्थावग्रह है वह औपचारिक है। यह बात अभी आगे प्रदर्शित की जावेगी। अवग्रह के पांच नाम ये हैं-अवग्रहता १, उपधारणता २, श्रवणता ३, अवलम्बनता ४, मेधा ५। व्यञ्जनावग्रह कि जिसकी स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की है उसके प्रथम समय में प्रविष्ट शब्दादिक पुद्गलों के ग्रहण करने रूप परिणाम का नाम अवग्रहणता है १। व्यञ्जनावग्रह के द्वितीय आदि समय से लेकर व्यञ्जनावग्रह की समाप्ति पर्यन्त प्रतिसमय अपूर्व २ प्रविष्ट शब्दादिक पुद्गलों के ग्रहण पूर्वक प्राक्तन प्रतिसमयगृहीत शब्दादिक पुद्गलों का जो धारणापरिणाम है वह उपधारणा है २। तात्पर्य इसका यह है कि व्यंजनावग्रह का अन्त अर्थावग्रह के होने का प्रथम समय पर्यन्त

ग्रह सामान्यनी अपेक्षाए समान अर्थवाळा छे. तथा अवग्रहविशेषनी अपेक्षाए पांचे नाम कंईक भिन्नार्थक पण छे. अवग्रह त्रण प्रकारना छे-व्यंजनावग्रह, सामान्यार्थावग्रह, तथा विशेष सामान्यार्थावग्रह. आमां त्रीजो भेद-विशेष सामान्यार्थावग्रह औपचारिक छे. आ वात हवे आगळ बतावबामां आवशे. अवग्रहना आ पांच नाम छे-(१) अवग्रहणता, (२) उपधारणता (३) श्रवणता (४) अवलंबनता अने (५) मेधा.

(१) जे व्यंजनावग्रहनी स्थिति अन्तर्मुहुर्तनी छे, तेना प्रथमसमयमां प्रविष्ट शब्दादिक पुद्गलोने ग्रहण करवारूप परिणामनुं नाम अवग्रहणता छे.

(२) व्यंजनावग्रहना द्वितीय आदि समयथी लईने व्यंजनावग्रहनी समाप्ति सुधी, प्रति समय अपूर्व अपूर्व प्रविष्ट शब्दादिक पुद्गलोना ग्रहणपूर्वक प्राक्तन प्रतिसमयगृहीत शब्दादिक पुद्गलोनुं जे धारणा परिणाम छे, ते उपधारणा छे. तेनुं तात्पर्य ए छे के व्यंजनावग्रहनो अंत अर्थावग्रह थवाना

'उपधारणता' इति। धार्यतेऽनेनेति धारणम्। उप=सामीप्येन धारणम् उपधारणम्, व्यञ्जनावग्रह-द्वितीयादि-समयेष्ववसानपर्यन्तं प्रतिसमयमपूर्वापूर्व-प्रविष्टशब्दादिपुद्गलग्रहणपुरस्सरप्राक्तनप्रतिसमयगृहीतशब्दादिपुद्गलधारणपरिणाम इ-त्यर्थः। तदेवोपधारणता। अवग्रहणतोपधारणता चेति द्वयं व्यञ्जनावग्रहरूपम् ॥२॥

'श्रवणता' इति। श्रूयतेऽनेनेति श्रवणम्, एकसामायिकसामान्यार्थावग्रह-रूपो बोधपरिणाम इत्यर्थः। तदेव श्रवणता ॥ ३ ॥

'अवलम्बनता' इति। अवलम्ब्यत इत्यवलम्बनम्। विशेषसामान्यार्थावग्रह इत्यर्थः। तदेव अवलम्बनता ॥ ४ ॥

माना गया है। यह पहिले बतलाया जा चुका है कि-अर्थावग्रह का पूर्ववर्तीज्ञानव्यापार व्यंजन से उत्पन्न होता है और उस व्यंजन की पुष्टि के साथ पुष्ट होता चला जाता है, अतः व्यंजनावग्रह का प्रथम क्षणवर्ती जितना भी ज्ञानव्यापार है वह अवग्रहणता १ और द्वितीय आदि समय से लेकर अन्त समय तक जो अपूर्व २ ज्ञानव्यापार है वह सब उपधारणता है २। यह उपधारणता यह करती है कि व्यंजनावग्रह के इन द्वितीयादि समयों से लेकर जो अन्तसमय तक अपूर्व २ ज्ञान-व्यापार पुष्ट होता जाता है उस सब को अपने में जमा करती जाती है। तथा द्वितीयादि समय के ज्ञानव्यापार को आगे २ के समयों में हुए ज्ञानव्यापार के साथ जोडती रहती है। इस तरह उन समयों के ज्ञान-व्यापार की अन्ततक एक धारा चित्त में जमती चली जाती है। इसी का नाम उपधारणता है २। इस उपधारणता के अनन्तर समय में ही

પ્રથમ સમય સુધી માનવામા આવેલ છે. એ પહેલાં બતાવવામાં આવી ગયું છે કે-અર્થાવગ્રહનો પૂર્વવર્તી જ્ઞાનવ્યાપાર વ્યંજનથી ઉત્પન્ન થાય છે અને તે વ્યંજનની પુષ્ટિની સાથે જ પુષ્ટ થતો જાય છે, તેથી વ્યંજનાવગ્રહનો પ્રથમ ક્ષણ-વર્તી જેટલો જ્ઞાન વ્યાપાર છે તે અવગ્રહણતા અને દ્વિતીય આદિ સમયથી લઈને અન્ત સમય સુધી જે અપૂર્વ અપૂર્વ જ્ઞાનવ્યાપાર છે તે બધી ઉપધારણતા છે. આ ઉપધારણતા એ કામ કરે છે કે વ્યંજનાવગ્રહનાં એ દ્વિતીયાદિ સમયોથી લઈને અન્ત સમય સુધી જે અપૂર્વ અપૂર્વ જ્ઞાન વ્યાપાર પુષ્ટ થતો જાય છે તે બધાને પોતાની અંદર જમા કરતી જાય છે. તથા દ્વિતીયાદિ સમયના જ્ઞાન વ્યાપારને આગળ આગળના સમયોમાં થયેલ જ્ઞાનવ્યાપારની સાથે જોડતી રહે છે. આ રીતે તે સમયોના જ્ઞાનવ્યાપારની અંત સુધી એક ધારા ચિત્તમાં જામતી જાય છે. એનું જ નામ ઉપધારણતા છે ૨. આ ઉપધારણતા બાદના સમયે જ

ननु कथं विशेषसामान्यार्थावग्रहोऽवलम्बनमिति चेत्, उच्यते-इह 'शब्दोऽयम्' इत्यपि ज्ञानं विशेषावगमरूपत्वादवायज्ञानम्। तथाहि-शब्दोऽयं नाशब्दो रूपादिरिति शब्दस्वरूपावधारणं विशेषावगमः। अतो यत् पूर्वमनिर्देश्यसामान्यमात्रग्रहणमेकसामायिकं स पारमार्थिकोऽर्थावग्रहः। ततः ऊर्ध्वं तु यत् 'किमिद'-मिति विमर्शनं सा ईहा। तदनन्तरं शब्दस्वरूपावधारणं 'शब्दोऽयम्' इति भवति

"यह कुछ है" ऐसा अर्थावग्रह होता है। अवग्रहता और उपधारणता ये दोनों प्रकारशरूपज्ञान व्यापार व्यंजनावग्रह स्वरूप होते हैं। एक सामयिक जो सामान्यरूप अर्थ का अवग्रहरूप बोध परिणाम होता है वह श्रवणता है ३। तथा विशेष और सामान्यरूप अर्थ का जो अवग्रहरूप बोध परिणाम होता है, अर्थात् जो विशेष सामान्यार्थावग्रह होता है उसका नाम अवलम्बनता है ४।

शंका—विशेष सामान्यार्थावग्रह को आप अवलम्बन कैसे कहते हैं?

उत्तर—'शब्दोऽयम्'-यह शब्द है, इस प्रकार का ज्ञान विशेषावगमरूप होने से अवायज्ञान है, क्यों कि यह शब्द है, अशब्द रूपादि नहीं है, इस प्रकार शब्दस्वरूप के अवधारक होने से यह अवायज्ञान विशेषावगम है। अवायज्ञान विशेषावगमस्वरूप इस प्रकार होता है। सर्व प्रथम जो अनिर्देश्य एक समयपर्यन्त सामान्य मात्र का ग्रहण होता है वह पारमार्थिक अर्थाग्रवह है। इस प्रकार अर्थावग्रह होने के बाद जो 'शब्दोऽयम्'-इस प्रकार शब्दस्वरूप का अवधारण होता है

"આ કંઈક છે" એવો અવગ્રહ થાય છે. અવગ્રહણુતા અને ઉપધારણુતા એ બન્ને પ્રકાશરૂપ જ્ઞાનવ્યાપાર વ્યંજનાવગ્રહસ્વરૂપ હોય છે. જે સામાન્યરૂપ અર્થના અવગ્રહરૂપ બોધ પરિણામ એક સામયિક હોય છે તે શ્રવણુતા છે ૩, તથા વિશેષરૂપ અને સામાન્યરૂપ અર્થના જે અવગ્રહરૂપ બોધ પરિણામ હોય છે એટલે કે જે વિશેષસામાન્યાર્થાવગ્રહ થાય છે. તેનું નામ અવલંબનતા છે ૪.

શંકા—વિશેષ સામાન્યાર્થાવગ્રહને આપ અવલંબન કેવી રીતે કહો છો ?

ઉત્તર—"શબ્દોऽयम्" આ શબ્દ છે. આ પ્રકારનું જ્ઞાન વિશેષાવગમરૂપ હોવાથી અવાયજ્ઞાન છે, કારણ કે આ શબ્દ છે, અશબ્દ રૂપાદિ નથી, આ પ્રકારે શબ્દસ્વરૂપનું અવધારક હોવાથી તે અવાયજ્ઞાન વિશેષાવગમ છે. અવાયજ્ઞાન વિશેષાવગમસ્વરૂપ આ પ્રકારે હોયછે. સર્વપ્રથમ જેઅનિર્દેશ્ય એકસમય સુધી સામાન્ય માત્રનું ગ્રહણ થાય છે, તે પારમાર્થિકઅર્થાવગ્રહ છે, આ રીતે અર્થાવગ્રહ થયા પછી જે "શબ્દોऽयम्" આ પ્રકારે શબ્દસ્વરૂપનું અવધારણ થાય છે, તે

तदवायज्ञानम्। तत्रापि यदा उत्तरधर्मजिज्ञासा भवति-'किमयं शब्दः शाङ्खः ?, किं वा शार्ङ्गः'? इति, तदा 'शब्दः' इति ज्ञानमुत्तरकालभाविविशेषज्ञानापेक्षया सामान्यमात्राऽऽलम्बनमित्यवग्रह इत्युपचर्यते। स च परमार्थतः सामान्यविशेषरूपार्थालम्बन इति विशेषसामान्यार्थावग्रह इत्युपचर्यते। इदमेव हि 'शब्दः' इति ज्ञानमवलम्ब्य 'किमयं शब्दः शाङ्खः?, किं वा शार्ङ्गः' इतीहारूपं ज्ञानमुत्पद्यते। ततश्च विशेषसामान्यार्थावग्रहोऽवलम्बनमित्युक्तम्।

'किमयं शब्दः शाङ्खः ?, किं वा शार्ङ्गः?' इतीहानन्तरं यत्-शाङ्ख एव, शार्ङ्ग एव' इति ज्ञानमुत्पद्यते, तदवायज्ञानम्। तदपि च 'किमयं शाङ्खोऽपि शब्दो

वह अवायज्ञान है। यह अवायज्ञान शब्देतररूपादि की व्यावृत्ति करके शब्द का निश्चायक होता है, इसलिये यह विशेषावगम स्वरूप है। इस प्रकार 'यह शब्द है' इस अवायज्ञान के होने के बाद फिर उत्तरकालिक जिज्ञासा होती है-'यह शब्द शङ्ख का है? या शृङ्ग का है?'। इस जिज्ञासा के बाद जो विशेषज्ञान होता है उसकी अपेक्षा 'यह शब्द है' यह ज्ञान सामान्यमात्रावलम्बन है, इसलिये यह अवग्रह शब्द से उपचरित होता है। वह अवग्रह सामान्यविशेषरूप अर्थावलम्बन वाला है इसलिये वह 'विशेषसामान्यार्थावग्रह' इस शब्द से उपचरित होता है, क्यों कि 'यह शब्द है'-इस प्रकार के ज्ञान का अवलम्बन करके 'यह शब्द शंख का है या शृंग का है?' इस प्रकार की ईहा रूपज्ञान उत्पन्न होता है, इसीलिये 'विशेषसामान्यार्थावग्रह अवलम्बन है' यह कहा है। यह शंख का शब्द है अथवा शृंग का? इस प्रकार की ईहा के बाद जो 'यह-शंख का ही शब्द है अथवा शृंग का ही शब्द है' ऐसा जो

અવાયજ્ઞાન છે. આ અવાયજ્ઞાન શબ્દેતર રૂપાદિની વ્યાવૃત્તિ કરીને શબ્દનું નિશ્ચાયક હોયછે, તેથી તે વિશેષાવગમસ્વરૂપ છે. આ રીતે "આ શબ્દ છે" આ અવાયજ્ઞાન થયાં પછી વળી ઉત્તરકાલિકધર્મનીજિજ્ઞાસા થાય છે-" આ શબ્દ શંખનો છે કે ગંગાનો છે ?" આ જિજ્ઞાસા બાદ જે વિશેષજ્ઞાન થાય છે તેના કરતાં "આ શબ્દ છે" એ જ્ઞાન સામાન્યમાત્રાવલંબન છે તેથી તે અવગ્રહ શબ્દથી ઉપચરિત થાય છે. તે અવગ્રહ સામાન્યવિશેષરૂપ અર્થાવલંબનવાળો છે તેથી તે "વિશેષસામાન્યાર્થાવગ્રહ" એ શબ્દથી ઉપચરિત થાય છે, કારણ કે "આ શબ્દ છે" આ પ્રકારનાં જ્ઞાનનું અવલંબન લઇને "આ શબ્દ શંખનો છે કે શ્રૃંગનો છે ?" આ પ્રકારનું ઈહારૂપ જ્ઞાન ઉત્પન્ન થાય છે, તેથી "વિશેષ સામાન્યાર્થાવગ્રહ અવલંબન છે" એમકહ્યું છે. "આ શંખનો શબ્દ છે કે શ્રૃંગનો ?" આ પ્રકારની ઈહા પછી જે "આ શંખનો જ શબ્દ છે કે શ્રૃંગનો

मन्द्रः (गम्भीरः) किं वा तारः' इत्युत्तरविशेषजिज्ञासायां सामान्यावलम्बनमित्यवग्रह इत्युपचर्यते। किं मन्द्रः किं वा तारः' इतीहानन्तरं 'मन्द्र एवायं, तार एवायं वे'–ति ज्ञानं यदुत्पद्यते, तदवायरूपम्। एवमुत्तरोत्तरविशेषजिज्ञासायां पूर्वं पूर्वमवायज्ञानमुत्तरोत्तरविशेषावगमापेक्षया सामान्यार्थावलम्बनमित्यवग्रह इत्युपचर्यते। यदा तूत्तरधर्मजिज्ञासा न भवति, तदा तदन्त्यं विशेषज्ञानमवायज्ञानमेव, न तत्रोपचारः, उपचारकारणाभावात्, तदनन्तरं हि विशेषाकाङ्क्षाया अपगमात्। अतस्तदनन्तरमविच्युतिरूपा धारणा प्रवर्तते। वासनारूपा स्मृतिरूपा तु धारणा सर्वेष्वपि विशेषावगमेषु द्रष्टव्या।

होता है वह अवायज्ञान है। उसके बाद 'यह शंख का शब्द मन्द्र (गंभीर) है अथवा तार है' इस प्रकार विशेष जिज्ञासा होने पर 'यह शंख का शब्द है'–यह अवायज्ञान सामान्यावलम्बन होने के कारण अवग्रह शब्द से उपचरित होता है। फिर 'मन्द्र है अथवा तार है?' इस ईहा के बाद यह मन्द्र ही है अथवा तार ही है' इस प्रकार का जो निश्चयात्मक ज्ञान होता है वह अवायज्ञान है। इस प्रकार उत्तरोत्तर विशेष जिज्ञासा होने पर पूर्व पूर्व का अवायज्ञान उत्तरोत्तर विशेषावगम की अपेक्षा सामान्यार्थावलम्बन होने से अवग्रह शब्द से उपचरित होता है। जब उत्तर काल में जिज्ञासा नहीं होती तब वह अन्तिम विशेषज्ञान अवायज्ञान ही रहता है, क्यों कि वहां उपचार नहीं होता। उपचार तो तब होता है जब उपचार का कारण रहे, अन्तिम विशेषज्ञान होने पर उपचार के कारण विशेषाकाङ्क्षा का अपगम हो जाता है, अत एव वहां

જ શબ્દ છે" એવું જે જ્ઞાન થાય છે તે अवायज्ञान છે. ત્યાર બાદ "આ શંખનો શબ્દ મન્દ્ર (ગંભીર) છે કે મોટો છે" આ રીતે વિશેષ જિજ્ઞાસા થતાં "આ શંખનો શબ્દ છે" આ અવાયજ્ઞાન સામાન્યાવલંબન હોવાને કારણે અવગ્રહ શબ્દથી ઉપચરિત થાય છે. વળી "મંદ છે કે મોટો છે?" આ ઈહા પછી આ મંદ જ છે કે મોટો છે" એવા પ્રકારનું જે નિશ્ચયાત્મક જ્ઞાન થાય છે તે અવાય જ્ઞાન છે. આ રીતે ઉત્તરોત્તર વિશેષ જિજ્ઞાસા થતા આગળ આગળનું અવાય જ્ઞાન ઉત્તરોત્તર વિશેષાવગમની અપેક્ષાએ સામાન્યાર્થાવલંબન હોવાથી અવગ્રહ શબ્દથી ઉપચરિત થાય છે, જ્યારે ઉત્તર ધર્મમાં જિજ્ઞાસા થતી નથી ત્યારે તે અન્તિમ વિશેષજ્ઞાન અવાયજ્ઞાન જ રહે છે. કારણ કે ત્યાં ઉપચાર થતો નથી. ઉપચાર તો ત્યારે થાય છે કે જ્યારે ઉપચારનું કારણ રહે; અંતિમ વિશેષજ્ઞાન થતાં ઉપચારની કારણ વિશેષ આકાંક્ષાનો અપગમ થઈ જાય

इदमत्र तत्त्वं बोध्यम्-उत्तरोत्तरधर्मजिज्ञासायां सत्यां शब्दादिज्ञानमेवावलम्ब्येहादयः प्रवर्तन्ते-'किमयं शब्दः शाङ्खः किं वा शार्ङ्गः ?' इत्यादि। अतः शब्दादिज्ञानान्तरमेव ईहादेः प्रवृत्तिर्भवतीत्यतो विशेषसामान्यार्थावग्रहोऽवलम्बनमुच्यते । इति । ४ ।

इह शिष्याणां स्पष्टप्रतिपत्त्यर्थमुक्तमेवार्थं पुनर्विशदीकुर्मः-अर्थावग्रहो द्विविधः -नैश्चयिको व्यावहारिकश्च । तत्र प्रथमोऽर्थावग्रह एकसमयमात्रमानो निरुपचरितः पारमार्थिकः सामान्यवस्तुमात्रग्राहको भवति । सामयिकानि हि ज्ञानादिवस्तूनि परमयोगिन एव निश्चयवेदिनोऽवगच्छन्तीति नैश्चयिकोऽर्थावग्रह उच्यते । यस्तु

उपचार का कारण रहता ही नहीं। उपचार के कारण के अभावमें अन्तिम विशेषावगम अवायज्ञान स्वरूप ही रहता है। अन्तिम विशेषावगम के बाद अविच्युतिरूप धारणा प्रवृत्त होती है। वासनारूप स्मृतिरूप धारणा तो सभी विशेषावगमों में होती है।

इस पूर्वोक्त सन्दर्भका अभिप्राय है कि-उत्तरोत्तर धर्म की जिज्ञासा होने पर शब्दादि ज्ञान का अवलम्बन करके ईहादि प्रवृत्त होते हैं, जैसे क्या यह शब्द शंख का है अथवा शृङ्ग का है? । इसलिये शब्दादि ज्ञान के बाद ही ईहादि की प्रवृत्ति होती है, अतएव-विशेषसामान्यार्थावग्रह को अवलम्बन कहा है।

शिष्यों को स्पष्टरूपसे समझाने के लिये फिर भी इसको स्पष्ट करतेहैं-

नैश्चयिक और व्यावहारिक के भेद से अर्थावग्रह दो प्रकार का है। नैश्चयिक अर्थावग्रह एक समय का होता है। इसमें किसी भी प्रकार का उपचार नहीं होता है। अतः यह परमार्थिक है। इसका विषय केवल

છે, તેથી જ ત્યાં ઉપચારનુ કારણ રહેતુ જ નથી. ઉપચારના કારણના અભાવે અન્તિમ વિશેષાવગમ અવાય જ્ઞાન સ્વરૂપ જ રહે છે. અન્તિમ વિશેષાવગમની પછી અવિચ્યુતિરૂપ ધારણા પ્રવૃત્ત થાય છે, વાસનારૂપ અને સ્મૃતિરૂપ ધારણા તો સઘળા વિશેષાવગમોમાં હોય છે.

પૂર્વોક્ત કથનનું તાત્પર્ય એ છે કે-ઉત્તરોત્તર ધર્મની જિજ્ઞાસા થતા શબ્દાદિ જ્ઞાનનું અવલંબન લઈને ઈહાદિ પ્રવૃત્ત થાય છે, જેમ કે "શું આ શબ્દ શંખનો છે કે શૃંગનો છે?" તે કારણે શબ્દાદિ જ્ઞાનની પછી જ ઇહાદિની પ્રવૃત્તિ થાય છે, તેથી વિશેષ સામાન્યાર્થાવગ્રહને અવલંબન કહેલ છે.

શિષ્યોને સ્પષ્ટ રીતે સમજાવવાને માટે ફરીથી પણ તેને સ્પષ્ટ કરે છે. નૈશ્ચયિક અને વ્યાવહારિકના ભેદથી અર્થાવગ્રહ બે પ્રકારનો છે. નૈશ્ચયિક અર્થાવગ્રહ એક સમયનો હોય છે, તેમાં કોઈ પણ પ્રકારનો ઉપચાર હોતો નથી, તેથી

छद्मस्थव्यवहारिभिरपि व्यवह्रियते, स व्यावहारिक उपचरितोऽर्थावग्रह उच्यते। नैश्चयिकार्थावग्रहादनन्तरमीहितस्य वस्तुविशेषस्य योऽवायः स पुनर्भाविनीमीहाम् अवायं चापेक्ष्य उपचरितोऽर्थावग्रहः। भाविविशेषापेक्षया सामान्यमवायोऽपि सन् गृह्णाति। यश्च सामान्यं गृह्णाति, सोऽर्थावग्रहः, यथा प्रथमो नैश्चयिकार्थावग्रहः।

इदमत्र तात्पर्यम्। प्रथमं नैश्चयिकेऽर्थावग्रहे रूपादिभ्योऽव्यावृत्तमव्यक्तं शब्द-सामान्यं वस्तु गृहीतं भवति। ततस्तस्मिन्नीहिते सति 'शब्द एवायम्' इत्यादि-

---

सामान्य है समयमात्राभवी ज्ञानादिकों को निश्चयवेदी परमयोगी जन ही जानते हैं, इसीलिये इसका नाम नैश्चयिक अर्थावग्रह है। तात्पर्य नैश्चयिक अर्थावग्रह को छद्मस्थजन नहीं जानते हैं। छद्मस्थजनों को जो व्यवहारमें आता है वह व्यावहारिक अर्थावग्रह हैं और यह पारमार्थिक नहीं है उपचरित है, क्यों कि नैश्चयिक अर्थावग्रह के अनन्तर जो ईहित वस्तु विशेष का अवायज्ञान होता है वह पुनर्भाविनी ईहा और अवायकी अपेक्षा करके उपचरित अर्थावग्रहरूप से माना जाता है। उस अवायज्ञान का विषय भाविविशेष की अपेक्षा सामान्य हो जाता है; और इस तरह वह अवायज्ञान उस सामान्य को विषय रखता है, इसी लिये सामान्य को विषय करनेवाला होने से अवायज्ञान अर्थावग्रह उपचार से मान लिया जाता है, क्यों कि जो सामान्य को विषय करता है वह प्रथम नैश्चयिक अर्थावग्रह की तरह अर्थावग्रह है।

निष्कर्ष इसका यह है कि-प्रथम नैश्चयिक अर्थावग्रहमें रूपादिकों द्वारा अनिर्देश्य अव्यक्त ऐसी शब्दसामान्यरूप वस्तु गृहीत होती ,है

તે પરમાર્થિક છે. તેનો વિષય ફક્ત સામાન્ય છે. સમયમાત્રભાવી જ્ઞાનાદિકોને નિશ્ચયવેદી પરમયોગી જન જ જાણે છે, તેથી તેનું નામ નૈશ્ચયિકઅર્થાવગ્રહ છે. તાત્પર્ય- નૈશ્ચયિક અર્થાવગ્રહને છદ્મસ્થ જન જાણતા નથી. છદ્મસ્થજનોના વ્યવહારમાં જે આવે છે તે વ્યાવહારિક અર્થાવગ્રહ છે અને તે પારમાર્થિક નથી, ઉપચરિત છે, કારણ કે નૈશ્ચયિકઅર્થાવગ્રહની પછી જે ઈહિત વસ્તુ વિશેષનું અવાયજ્ઞાન થાય છે, તે પુનર્ભાવિની ઈહા અને અવાયની અપેક્ષાએ કરીને ઉપચરિતઅર્થાવગ્રહરૂપે મનાય છે. તે અવાયજ્ઞાનનોવિષય ભાવવિશેષની અપે-ક્ષાએ સામાન્યથઈ જાય છે, અને આ રીતે તે અવાયજ્ઞાન તે સામાન્યને વિષય કરે છે, તેથી સામાન્યને વિષયકરનાર હોવાથી અવાયજ્ઞાનઅર્થાવગ્રહ ઉપચા-રથી માની લેવાય છે, કારણ કે જે સામાન્યને વિષય કરે છે, તે પ્રથમ નૈશ્ચયિક અર્થાવગ્રહની જેમ અર્થાવગ્રહ છે.

તેનો સાર એ છે કે-પ્રથમ નૈશ્ચયિકઅર્થાવગ્રહમાં રૂપાદિકોદ્વારા અનિ-

निश्चयरूपोऽवायो भवति । अर्थावग्रहेण प्रमाता शब्दमात्रं रूपरसादिव्यावृत्त्याऽनवधारितत्वात् शब्दतया अनिश्चितं गृह्णातीति । एतावतांऽशेन शब्दोऽवग्रहज्ञानविषयो भवति, न तु शब्दबुद्ध्या 'शब्दोऽयम्' इत्यध्यवसायेन शब्दस्य ग्रहणं भवति, शब्दनिश्चयस्य आन्तर्मौहूर्तिकत्वात्, अर्थावग्रहस्य तु एकसामयिकत्वात्तदसंभवात् ।

अर्थात् नैश्चयिक अर्थावग्रह का विषय केवल अनिर्देश्य सामान्य है।

जब इस सामान्य को विशेषरूपमें जानने की अभिलाषा ज्ञाता के चित्त में जगती है तब वह यह निश्चय करता है कि "यह शब्द ही है" इसी का नाम अवाय है। अर्थावग्रह के द्वारा प्रमाता अनुभव करनेवाला शब्द सामान्य रूप वस्तुको जानता है, इसका तात्पर्य यह है कि वह शब्द सामान्य रूप वस्तु, रूप रसादिकों को व्यावृत्ति से उस समय अनवधारित होती है इसी लिये वह शब्द रूपसे निश्चित नहीं होती है, किन्तु "यह कुछ है" ऐसा ही ज्ञान वहां उसको होता है, अतः इनके ही अंश को लेकर वह शब्द अवग्रह ज्ञान का विषय माना जाता है। उस समय 'यह शब्द है' इस प्रकार के अध्यवसाय से युक्त होकर प्रमाता के द्वारा वह शब्द गृहीत नहीं होता है, कारण कि "यह शब्द है" इस प्रकार का निश्चय तो प्रमाता को अन्तर्मुहूर्त कालमें होता है । इतना काल अर्थावग्रह का माना नहीं गया है । अर्थावग्रह का काल तो केवल एक समय का है।

દેશ્ય, અવ્યક્ત એવી શબ્દસામાન્યરૂપ વસ્તુ ગ્રહણ થાય છે, એટલે કે નૈશ્ચયિક અર્થાગ્રવહનો વિષય કેવળ અનિર્દેશ્યસામાન્ય છે.

જ્યારે આ સામાન્યને વિશેષરૂપે જાણવાની અભિલાષા જ્ઞાતાના ચિત્તમાં જાગે છે ત્યારે તે એ નિશ્ચય કરે છે કે "આ શબ્દ જ છે" એનું જ નામ અવાય છે. અર્થાવગ્રહદ્વારા પ્રમાતા શબ્દસામાન્યરૂપવસ્તુને જાણે છે, તેનું તાત્પર્ય એ છે કે તે શબ્દસામાન્યરૂપવસ્તુ, રૂપ, રસાદિકોની વ્યાવૃત્તિથી તે સમયે અનવધારિત હોય છે, તેથી જ તે શબ્દરૂપે નિશ્ચિત હોતી નથી. પણ "આ કંઈક છે" એવું જ જ્ઞાન ત્યાં તેને થાય છે, તેથી એટલા જ અંશને લઈને તે શબ્દ અવગ્રહ જ્ઞાનનો વિષય મનાય છે તે સમયે "આ શબ્દ છે" આ પ્રકારના અધ્યવસાયથી યુક્ત થઈને પ્રમાતા દ્વારા તે શબ્દ ગૃહીત થતો નથી, કારણ કે "આ શબ્દ છે" એ પ્રકારનો નિશ્ચય તો પ્રમાતાને અન્તર્મુહૂર્તમાં થાય છે. એટલો કાળ અર્થાવગ્રહનો માનવામાંઆવ્યોનથી. અર્થાવગ્રહનો કાળતો ફક્ત એક સમયનો છે.

ननु प्रथमसमय एव रूपादिपरिहारेण 'शब्दोऽयम्' इति ज्ञानमर्थावग्रहत्वेन मन्यताम्, शब्दमात्रत्वेन सामान्यत्वात्, तदुत्तरकालं तु प्रायो माधुर्यादयः शङ्खशब्दधर्मा अत्र घटन्ते, न तु शार्ङ्गधर्माः खरकर्कशत्वादय इति विमर्शबुद्धिरीहा भविष्यति। ततश्च 'शाङ्ख एवायं शब्दः' इति शब्दविशेषावगमोऽवायोऽस्तु? इति चेत्, शृणु–

यदि शब्दबुद्धिमात्रे 'शब्दोऽयम्' इति निश्चयज्ञानमपि भवताऽर्थावग्रहो मन्यते, शब्दविशेषज्ञानमवाय इति भेदोऽङ्गीक्रियते, तर्हि अवग्रहाभावप्रसङ्गः स्यात्, अवग्रहस्थानेऽवायस्यैवाङ्गीकारात्।

शंका—रूपरसादिक के परिहार से प्रथम समय में ही 'यह शब्द है, अशब्द–रूपादिक नहीं है,' ऐसा ज्ञान अर्थावग्रहरूप से मान लेना चाहिये, क्यों कि अर्थावग्रह का विषय आप सामान्य कहते हैं और "यह शब्द है" ऐसा ज्ञान मात्र की अपेक्षा सामान्य पड़ जाता है। अब इसमें ईहा भी उत्तर काल में उत्पन्न हो जावेगी–जब ऐसा विमर्श होगा कि शार्ङ्ग शब्द के धर्म खर कर्कशता आदि इसमें घटित नहीं होते हैं, किन्तु प्रायः माधुर्य आदि शंख शब्द के धर्म यहां घटित हो रहे हैं। इसके बाद ऐसा शब्द विशेष का निर्णय होने पर कि "यह शंख का ही शब्द है" अवायज्ञान मान लिया जायगा।

उत्तर—ऐसा मन्तव्य भी ठीक नहीं माना जा सकता है क्यों कि "शब्दोऽयम्" यह शब्द है। ऐसी शब्दबुद्धि भी यदि अर्थावग्रहरूप से मानी जावेगी, और शब्द विशेष का निर्णय अवायरूप से माना जावेगा तो फिर अवग्रह ज्ञान क्या होगा–ऐसी कल्पना में तो अवग्रह का अभाव

શંકા—રૂપરસાદિકનાપરિહારથી પ્રથમસમયમાં "આ શબ્દ છે, અશબ્દ–રૂપાદિક નથી," એવું જ્ઞાન અર્થાવગ્રહ રૂપે માની લેવું જોઈએ. કારણ કે અર્થાવગ્રહનો વિષય આપ સામાન્ય કહો છો અને "આ શબ્દ છે" એવું જ્ઞાન શબ્દમાત્રની અપેક્ષાએ સામાન્ય જ લાગે છે. હવે તેમાં ઈહા પણ ઉત્તરકાલમાં ઉત્પન્ન થઈ જશે, જ્યારે એવો અનુભવ થશેકે શ્રુંગ શબ્દના ધર્મ તીખા અને કઠોર આદિ તેમાં ઘટાવીશકાતા નથી, પણ સામાન્ય રીતે માધુર્ય આદિ શંખ શબ્દનાધર્મો તેમાં ઘટાવીશકાય છે. ત્યાર બાદ શબ્દ વિશેષનો "આ શંખનો જ અવાજ છે" એવો નિર્ણય થતા તેને અવાયજ્ઞાન માનીલેવાશે.

ઉત્તર—એવી માન્યતા પણ સાચીમાનીશકાયતેમનથી કારણ કે "शब्दोऽयम्" આ શબ્દ છે. એવી શબ્દબુદ્ધિ પણ જો અર્થાવગ્રહરૂપે મનાય, અને શબ્દવિશેષનો નિર્ણય અવાયરૂપેમનાય તો પછી અવગ્રહજ્ઞાન શું હશે?–

ननु 'शब्दोऽय'-मिति ज्ञानस्य कथमवायत्वमिति चेद्, उच्यते-तस्यापि विशेषग्राहकत्वात्, विशेषज्ञानस्य चावायत्वात्।

ननु 'शाङ्ख एवायं शब्दः' इति तदुत्तरकालभावि ज्ञानं विशेषार्थग्राहकं, शब्दज्ञाने तु शब्दसामान्यस्यैव प्रतिभासनात् कथं विशेषप्रतिभासः, येनावायप्रसङ्गः स्यादिति चेत्, उच्यते—शब्दोऽयमित्यपि ज्ञानं विशेषग्राहकमेव, तथाहि-'शब्दोऽयं नाशब्दः' इति विशेषप्रतिभास एव। यस्मात् न रूपादिरयं, तेभ्यो व्यावृत्तत्वेन गृहीतत्वात्, अतो 'नाशब्दोऽय'-मिति निश्चीयते। यदि तु रूपादि-

---

ही प्रसक्त होगा, कारण कि अवग्रह का स्थान अवाय ले लेता है। यदि कहो कि-,'यह शब्द है" ऐसा सामान्य ज्ञान अवाय कैसे माना जावेगा? इसका उत्तर इस प्रकार है-यह ज्ञान सामान्य नहीं है किन्तु विशेष है। विशेषग्राहक ज्ञान अवाय माना गया है।

प्रश्न--यदि फिर भी ऐसा कहा जाय कि "शंख का ही यह शब्द है" इस प्रकार का उत्तर कालभावीज्ञान ही शब्दविशेष का ग्राहक होने से विशेषग्राहक ज्ञान माना जावेगा, "यह शब्द है" ऐसा ज्ञान नहीं, अर्थात्-यह तो शब्द सामान्य का ग्राहक होने से सामान्य ज्ञान ही माना जावेगा, क्यों कि इसमें शब्द सामान्य का ही प्रतिभास होता है, विशेष का नहीं। अतः "यह शब्द है" ऐसा सामान्य प्रतिभासवाले ज्ञान को अवाय प्राप्त होने का प्रसंग कैसे प्रतिपादित किया है।

એવી કલ્પનામાં તો અવગ્રહનો અભાવ જ પ્રસક્ત હશે, કારણ કે અવગ્રહનુ સ્થાન અવાયલઈલેછે.

જો આપ એમકહો કે "આ શબ્દ છે" એવા સામાન્યજ્ઞાનને અવાય કેમ મનાય? તેનો ઉત્તર આ પ્રમાણે છે-આ જ્ઞાન સામાન્ય નથી પણ વિશેષ છે. વિશેષ ગ્રાહક જ્ઞાનને અવાય માનવામાં અવેલ છે.

પ્રશ્ન—જો ફરીથી પણ એમ કહેવામાં આવેકે "શંખનો જ આ શબ્દ છે" આ પ્રકારનું ઉત્તર કાલભાવીજ્ઞાન જ શબ્દવિશેષનું ગ્રાહક હોવાથી વિશેષ ગ્રાહકજ્ઞાન માનીશકાશે, "આ શબ્દ છે" એવું જ્ઞાન નહીં, એટલે કે એ તો શબ્દ સામાન્યનું ગ્રાહક હોવાથી સામાન્યજ્ઞાન જ માનવામાં આવશે; કારણ કે તેમાં શબ્દ સામાન્યનો જ પ્રતિભાસ થાય છે, વિશેષનો નહીં. તેથી "આ શબ્દ છે" એવાં સામાન્ય પ્રતિભાસવાળાં જ્ઞાનને અવાય પ્રાપ્ત હોવાનો પ્રસંગ કેવી રીતે પ્રતિપાદિત કર્યો છે?

भ्योऽपि व्यावृत्तिर्गृहीता न स्यात्, तदा 'शब्दोऽय'-मिति निश्चयोऽपि न स्यात्। तस्मात् 'शब्दोऽयं नाशब्दः' इति विशेषज्ञानमेव। तथा च 'शब्दोऽय'-मिति ज्ञानस्य विशेषग्राहकत्वान्निश्चयरूपत्वाच्चावाय एव, न तु अवग्रह इति।

उत्तर--"यह शब्द है" ऐसा ज्ञान भी विशेषग्राहक ही माना जावेगा, कारण कि-"यह शब्द है-अशब्द नहीं है-अर्थात् यह रूपादिक नहीं है" ऐसा ज्ञान, विशेष का प्रतिभास स्वरूप होने से विशेषप्रतिभासात्मक ही है, कारण कि-इस ज्ञानमें शब्द को रूपादिक से व्यावृत्तिरूपमें-पृथक्रूप-ग्रहण किया गया है, नहीं तो "यह शब्द नहीं है" इस प्रकार का निश्चय शब्दमें कैसे किया जा सकता है। रूपादिकोंसे भिन्नता जब तक शब्दमें नहीं जानी जावेगी जब तक यह कैसे बोध हो सकेगा कि-"यह अशब्द नहीं है-शब्द है" इस प्रकार की भिन्नताका उसमें बोध हौने से शब्द का बोध होता है, तब यह ज्ञान सामान्यप्रतिभाम वाला न होकर विशेष प्रतिभास वाला ही माना गया है। सामान्यप्रतिभास वाले ज्ञानमें पर की व्यावृत्ति पूर्वक अपने विषयका निश्चय नहीं होता है, वहां तो सामान्यरूप से ही बोध रहा करता है, अतः अशब्द व्यावृत्ति पूर्वक हुआ यह शब्द का निश्चय अवायज्ञान है ऐसा मान लेना चाहिये-अवग्रहरूप नहीं मानना चाहिये।

ઉત્તર—"આ શબ્દ છે" એવું જ્ઞાન પણ વિશેષ ગ્રાહક માની શકાય. કારણ કે "આ શબ્દ છે-અશબ્દ નથી. એટલે કે રૂપાદિક નથી" એવું જ્ઞાન વિશેષના પ્રતિભાસ સ્વરૂપ હોવાથી વિશેષ પ્રતિભાસાત્મક જ છે, કારણ કે-આ જ્ઞાનમાં-શબ્દને રૂપાદિકથી વ્યાવૃતિરૂપેપૃથક્રૂપે-ગ્રહણ કરાયેલ છે, નહીં તો "આ અશબ્દ નથી" એ પ્રકારનો નિશ્ચય શબ્દમાં કેવી રીતે કરી શકાય છે. રૂપાદિકોથી જ્યાં સુધી શબ્દમાં ભિન્નતા નહીં જાણવામાં આવે ત્યાં સુધી એવો બોધ કેવી રીતે થશે કે "આ અશબ્દ નથી" એ પ્રકારનો નિશ્ચય શબ્દમાં કેવીરીતેકરીશકાયછે. રૂપાદિકોથી જ્યાં સુધી શબ્દમાં ભિન્નતા નહીં જાણવામાં આવે ત્યાં સુધી એવો બોધ કેવી રીતે થશે કે "આ અશબ્દ નથી, શબ્દ છે આ પ્રકારની ભિન્નતાનો તેમાં બોધ થવાથી શબ્દનો બોધ થાય છે, ત્યારે જ આ જ્ઞાન સામાન્ય પ્રતિભાસવાળું ન ગણુતા વિશેષ પ્રતિભાસવાળું જ ગણાયું છે સામાન્ય પ્રતિભાસવાળાં જ્ઞાનમાં પરની વ્યાવૃત્તિ પૂર્વક પોતાના વિષયનો નિશ્ચયથતોનથી, ત્યાં તો સામાન્યરૂપે જ બોધરહ્યાકરેછે તેથી અશબ્દ વ્યાવૃત્તિપૂર્વક થયેલ આ શબ્દનો નિશ્ચય અવાયજ્ઞાનરૂપ છે, એવું માની લેવું જોઈએ-અવગ્રહરૂપ ન માનવું જોઈએ.

ननु स्तोकविशेषग्राहकं ज्ञानमवग्रहोऽस्तु, बृहद्विशेषग्राहकं ज्ञानं तु अवायः इति, एवं सति शब्दमात्ररूपस्य विशेषस्य ग्राहकतया 'शब्दोऽय'-मिति ज्ञानमग्रहः, 'शाङ्खोऽयंशब्दः' इत्यादिविशेषणविशिष्टं यद् ज्ञानं तदवायः, बृहद्विशेषाववोधकत्वात् ? इति चेत्,

उच्यते-'यत् यत् स्तोकं तत्तन्नावायः' इति स्वीकारे भवन्मतेऽवायाभावप्रसङ्गः, उत्तरोत्तरार्थविशेषग्रहणापेक्षया पूर्वपूर्वार्थविशेषाववोधस्य स्तोकत्वात्।

प्रश्न—थोडे से विशेषको ग्रहण करनेवाला जो ज्ञान होगा वह अवग्रह मानलिया जावेगा, तथा अधिक विशेष को ग्रहण करने वाला जो ज्ञान होगा वह अवाय मान लिया जावेगा। इस तरह अवग्रह और अवाय का स्वरूप निर्धारण करलेने पर अब इस बात के समझनेमें देर नहीं लगेगी कि-"शब्दोऽयम्" यह ज्ञान अवग्रह और 'यह शंख का शब्द है' ऐसा ज्ञान अवाय होगा, कारण कि अवग्रहमें जो शब्द विषय हुआ है वह स्तोक विशेष को लेकर हुआ है। शब्द मात्र ही वहां अवग्रह का विषय है। जब 'यह शंख का शब्द है' ऐसा विशेषणविशिष्ट शब्द विषय होगा तो अधिक विशेष को विषय करनेवाला होने से यह ज्ञान अवाय मान लिया जावेगा।

उत्तर—'जो जो थोडे विशेष को ग्रहण करनें वाला होगा वह अवाय नहीं होगा' रस प्रकार के मन्तव्यमें अवाय का अभावप्रसक्त-होगा, कारण कि-उत्तरोत्तर अर्थविशेष ग्रहण होने की अपेक्षा पूर्व पूर्वका अर्थविशेषका बोध सब ही स्तोक होने से अवग्रह रूप ही कहा जावेगा।

પ્રશ્ન-થોડાસરખાવિશેષનેગ્રહણકરનારૂં જે જ્ઞાનહશે તે અવગ્રહમાની લેવાશે તથા અધિકવિશેષનેગ્રહણકરનાર જે જ્ઞાનહશે, તેને અવાય, માની લેવાશે. આ પ્રમાણે અવગ્રહ અને અવાયનું સ્વરૂપ નક્કી કર્યા પછી એ વાતને સમજવામાં વાર નહીં લાગે કે "शब्दोऽयम्" એ જ્ઞાન અવગ્રહ અને "આ શંખનો શબ્દ છે" એવું જ્ઞાન અવાય હશે, કારણ કે અવગ્રહમાં જે શબ્દ વિષય થયો છે તે સૂક્ષ્મ વિશેષને લીધે થયો છે. શબ્દ માત્ર જ ત્યાં અવગ્રહનો વિષય છે. જ્યારે "આ શંખનો શબ્દ છે" એવો વિશેષણવિશિષ્ટશબ્દ વિષય થશે તો અધિકવિષયને વિષયકરનારહોવાથી એ જ્ઞાન અવાય માની લેવાશે.

ઉત્તર—"જે જે થોડા વિષયને ગ્રહણ કરનાર હશે તે અવાય નહીં હોય" આ પ્રકારનાં મંતવ્યમાં અવાયનો અભાવ પ્રસક્ત હશે, કારણ કે ઉત્તરોત્તર અર્થવિશેષ ગ્રહણથવાની અપેક્ષાએ પૂર્વપૂર્વના અર્થવિશેષનો બોધ બધું જ સૂક્ષ્મ હોવાથી અવગ્રહરૂપ જ કહેવાશે.

तथाहि–शाङ्खशब्दस्य ये उत्तरोत्तरभेदाः मन्द्रमधुरत्वादयः, तरुणमध्यमवृद्धस्त्रीपुरुष-जन्यत्वादयश्च, तदपेक्षायां सत्यामिदमपि–'शाङ्खोऽयं–शब्दः' इत्यादि ज्ञानं स्तोक-विशेषग्राहकमेव–इति नावायः स्यात्। एवमुत्तरोत्तरविशेषग्राहिणामपि ज्ञानानां तदु-त्तरोत्तरभेदापेक्षया स्तोकत्वादवायाभाव एव स्यादिति। तस्मात् 'शब्दोऽय'–मिति निश्चयोऽवाय एव मन्तव्यः। तदनन्तरं तु 'शब्दोऽयं किं शाङ्खः, शार्ङ्गो वा' इत्यादि–शब्दविशेषविषया पुनरीहा प्रवर्तिष्यते। 'शाङ्ख एवायं शब्दः' इत्यादिशब्द-

जब ऐसा ज्ञान होगा कि–'यह शब्द शंख का है' तो यह अवाय इसलिये नहीं हो सकेगा कि इसमें उत्तरोत्तर मन्द्रता, मधुरता आदि की, तथा तरूण मध्यम, वृद्ध, स्त्री आदि के द्वारा बोले गये आदिकी, अपेक्षा रहेगी, अतः यह स्तोक विशेष का ग्राहक माना जावेगा, इस-लिये 'जो ज्ञान स्तोकविशेष का ग्राहक होगा वह अवग्रह एवं जो बृह-द्विशेषकाग्राहक होगा वह अवाय है' ऐसा नियम बनना किसी प्रकार से भी उचित नहीं माना जा सकता। इस तरह की एकान्तमान्यतामें उत्तरोत्तर विशेषाग्राही जितने भी ज्ञान होंगे वे सब उत्तरोत्तर भेदोंकी अपेक्षा स्तोकविषयवाले रहेंगे, इस तरह अवाय का सर्वथा अभाव ही होगा, अतः अवाय का लोप न हो इस तरह "यह शब्द है" इस ज्ञान को अवाय मानना ही उचित है। इसके बाद–'यह शब्द शंख का है या श्रृंग का है' इत्यादि आकांक्षा का जो कि शब्द विशेष को ईहित करती हैं ईहाज्ञानरूपसे प्रवृत्ति होगी। इस प्रवृत्तिमें जब ऐसा निर्णय हो जावेगा कि "यह शब्द शंख का ही है" तो यह शब्द विशेष को विषय

જ્યારે એવું જ્ઞાન થશે કે–"આ શબ્દશંખનો છે" ત્યારે તે અવાય તે કારણે નહીંહોઇશકે કે તેમાં ઉત્તરોત્તર ગંભિરતા, મધુરતા, આદિનિ, તથા તરુણ, મધ્યમ, વૃદ્ધ, સ્ત્રી, આદિ દ્વારા બોલાયા આદિની અપેક્ષા રહેશે, તેથી તે સ્તોકવિશેષનું ગ્રાહકમનાશે, તે કારણે "જે જ્ઞાન સ્તોકવિશેષનું ગ્રાહક થશે તે અવગ્રહ, અને જે બૃહદ્ વિશેષનું ગ્રાહક થશે તે અવાય છે." એવો નિયમ કરવો તે કોઈ પણ રીતે ઉચિતમાનીશકાયનહીં. આ પ્રકારની એકાન્ત માન્યતામાં ઉત્તરોત્તર વિશેષગ્રાહી જેટલાંપણજ્ઞાનથશે તે બધાં ઉત્તરોત્તર ભેદોની અપેક્ષાએ સૂક્ષ્મવિષયવાળાં રહેશે. આ રીતે અવાયનો સર્વથા અભાવ જ હશે; તેથી અવાયનો લોપ ન થાય એરીતે "આ શબ્દ છે" એ જ્ઞાનને અવાય માનવું એજ ઉચિત છે. ત્યારબાદ "આ શબ્દ શંખનોછે કે શ્રૃંગનો છે" ઈત્યાદિ આકાંક્ષાની કે જે શબ્દવિશેષને ઈહિતકરે છે. ઈહાજ્ઞાન રૂપે પ્રવૃત્તિ થશે. આ પ્રવૃત્તિમાં જ્યારે એવો નિર્ણય થઈ જશે કે "આ શબ્દ

विशेषविषयोऽवायश्च यो भविष्यति, तदपेक्षया 'शब्द एवायम्' इति निश्चयः प्रथमोऽवायोऽपि सन् उपचारादर्थावग्रह उच्यते। यदनन्तरमीहाऽवायौ प्रवर्तेते यश्च सामान्यं गृह्णाति, सोऽर्थावग्रहः। यथा—आद्यो नैश्चयिकः। 'शब्द एवाय' मित्याद्यवायानन्तरं पुनरीहाऽवायौ च प्रवर्तेते। 'शाङ्खोऽय'—मित्यादिभाविविशेषापेक्षया शब्दः सामान्यम्, तस्मादर्थावग्रहो भाविविशेषापेक्षया सामान्यं गृह्णातीत्युक्तम्।

ततश्च सामान्येन शब्दनिश्चयरूपात् प्रथमावायादनन्तरं 'किमयं शब्दः शाङ्खः, शार्ङ्गो वा' इत्यादिरूपा ईहा प्रवर्तते। ततः 'शाङ्ख एवायम्' इत्यादिरूपेण शब्दविशेषस्य निश्चयरूपोऽवायो भवति। अयमपि च पुनर्विशेषाकाङ्क्षावतः प्रमातुर्भाविनीमीहामवायं चापेक्ष्य भाविविशेषापेक्षया सामान्यालम्बनत्वाच्च अर्थावग्रह इत्युपचर्यते।

करने वाला ज्ञान अवाय हो जावेगा। अब इस अवाय ज्ञान की अपेक्षा से पहिले जो ऐसा अवाय ज्ञान हुआ है कि "यह शब्द ही है" वह उपचार से अर्थावग्रह कहा जावेगा। जिस के बाद ईहा और अवाय ज्ञान प्रवृत्त होते हैं, तथा जो सामान्य को ग्रहण करता है वह अर्थावग्रह है, जैसे आदि का नैश्चयिक अर्थावग्रह। "यह शब्द ही है" इत्यादि अवायज्ञान के अनन्तर पुनः ईहा और अवाय प्रवृत्त होते हैं इसलिये "यह शब्द ही है" यह अवायज्ञान होते हुए भी उपचारसे अवग्रहरूप माना जावेगा, कारण कि इसमें "यह शब्द शंखका है" इत्यादिरूपसे भावी विशेषों की आकांक्षा रहती है, अतः इस अपेक्षा से शब्द, सामान्य बन जाता है, इसलिये अर्थावग्रह भावीविशेष की अपेक्षा सामान्य को ग्रहण करता है, ऐसा कहा है।

શંખનો જ છે" ત્યારે એ શબ્દ વિશેષને વિષયકરનારૂં જ્ઞાન અવાય થઈ જશે. હવે અવાયજ્ઞાનની અપેક્ષાએ પહેલાં જે એવું અવાયજ્ઞાન થયું છે કે "આ શબ્દ જ છે" તે ઉપચારથી અર્થાવગ્રહ કહેવાશે, જેના પછી ઈહા અને અવાય જ્ઞાન પ્રવૃત્તથાયછે, તથા જે સામાન્યનેગ્રહણકરે છે તે અર્થાવગ્રહ છે, જેમકે આદિનો નૈશ્ચયિક અર્થાવગ્રહ. "આ શબ્દ જ છે" ઈત્યાદિ અવાયજ્ઞાન બાદ ફરીથી ઈહા અને અવાય પ્રવૃત્તથાય છે તેથી "આ શબ્દ જ છે" આ અવાયજ્ઞાન હોવાં છતાં પણ ઉપચારથી અવગ્રહરૂપ મનાશે કારણ કે તેમાં "આ શબ્દ શંખનો છે" ઈત્યાદિ રૂપે ભાવીવિશેષોની આકાંક્ષારહેછે- તેથી આ અપેક્ષાએ શબ્દ, સામાન્યબનીજાયછે, તે કારણે અર્થાવગ્રહ ભાવીવિશેષની અપેક્ષાએ સામાન્યનેગ્રહણકરેછે. એમ કહ્યું છે.

इयं च सामान्यविशेषापेक्षा तावत् कर्तव्या, यावदन्त्यो वस्तुनो विशेषः। यस्माच्च विशेषात् परतोऽन्ये विशेषा न संभवन्ति, सोऽन्त्यः। अथवा-संभवत्स्वपि

फिर-सामान्यतः शब्द का निश्चय करने वाले प्रथम अवायज्ञान के बाद "किमयं शब्दः शङ्खः शार्ङ्गोवा-क्या यह शब्द शंख का है अथवा शृङ्ग का है" इत्यादि रूप से ईहा ज्ञानकी प्रवृत्ति होती हैं। इसके बाद "शंख का ही यह शब्द है" इत्यादि रूप से शब्दविशेष का निश्चयरूप अवाय ज्ञान होता है। इस तरह का यह अवायज्ञान भी उपचार से अर्थावग्रह रूप तब माना जाता है जब कि प्रमाता को उसमें और भी विशेष जानने की आकांक्षा होती है। इस आकांक्षामें अवाय के विषयभूत बने हुए उस शंख के शब्दमें प्रमाता को ईहा और अवाय पुनः होते हैं। इस तरह "शंख का ही यह शब्द है" यह अवायज्ञान होने पर भी उसमें भावि विशेष को जानने की आकांक्षा की अपेक्षा लेकर होनेवाली ईहा और अवायज्ञान की अपेक्षा से प्रमाता का वह अवायज्ञान सामान्य को विषय करनेवाला मान लिया जाता है, अतः उह उपचार से अर्थावग्रह कह दिया जाता है।

यह सामान्यविशेष की अपेक्षा तबतक करनी चाहिये जबतक वस्तु का अन्त्य विशेष निर्णीत न हुआ हो। जिस विशेष को आगे फिर अन्यविशेष की संभावना नहीं होती हो वह विशेष अन्त्य है। अथवा-

તથા—સામાન્યરીતે શબ્દનો નિશ્ચયકરનારા પ્રથમ અવયજ્ઞાનના પછી "किमयं शब्दः शांखः शार्ङ्गोवा-શું આ શબ્દ શંખનોછે કે શ્રૃંગનો છે" ઇત્યાદિ રૂપે ઇહાજ્ઞાનની પ્રવૃત્તિથાયછે. ત્યારબાદ "શંખનો જ આશબ્દછે" ઇત્યાદિ રૂપે શબ્દવિશેષનાનિશ્ચયરૂપ અવાયજ્ઞાનથાયછે. આ પ્રકારનું આ આવાયજ્ઞાન-પણ ઉપચારથી અર્થાવગ્રહરૂપ ત્યારેમનાયછે કે જ્યારે પ્રમાતાને તેમાં હજી પણ વિશેષ જાણવાની આકાંક્ષા થાય છે. આ આકાંક્ષામાં અવાયના વિષયભૂત બનેલ તે શંખના શબ્દમાં પ્રમાતાને ઇહા અને અવાય ફરીથી થાય છે. આ રીતે "શંખનો.જ આ શબ્દ છે" આ અવાયજ્ઞાન થવાં છતાં પણ તેમાં ભાવિવિશેષને જાણવાની આકાંક્ષાની અપેક્ષાએ થનારી ઇહા અને અવાયજ્ઞાનની અપેક્ષાએ પ્રમાતાનું તે અવાયજ્ઞાન સામાન્યને વિષય કરનાર માનવામાં આવે છે, તેથી તે ઉપચારથી અર્થાવગ્રહ કહી દેવાય છે.

આ સામાન્યવિશેષની અપેક્ષા ત્યાં સુધી કરવીજોઈએકે, જ્યાંસુધી વસ્તુનું અન્ત્યવિશેષ નિશ્ચિત ન થયું હોય. જે વિશેષથી આગળ ફરીથી અન્ય-વિશેષની સંભાવના ન રહેતી હોય તે વિશેષ અન્ત્ય છે. અથવા અન્યવિશેષોના

अन्यविशेषेषु यतो विशेषात् परतः प्रमातुस्तज्जिज्ञासा निवर्तते सोऽन्त्यः । अन्त्यविशेषापेक्षया च व्यावहारिकार्थावग्रहेहाऽवायार्थं सामान्यविशेषाऽपेक्षा कर्तव्या । तस्मादुत्तरोत्तरविशेषाकाङ्क्षा यावत् प्रवर्तते, तावत् सर्वत्र यो योऽवायः स स उपचारतोऽर्थावग्रहः । यदा तु प्रमातुस्तज्जिज्ञासा निवर्तते, तदा तद्विशेषार्थनिश्चयरूपोऽवायो नावग्रह इति विभावनीयम् ॥ ४ ॥

'मेधा' इति । शब्दोऽयमित्याकारकं प्रथमं विशेषसामान्यार्थावग्रहं विहाय, उत्तरः सर्वोऽपि विशेषसामान्यार्थावग्रहो 'मेधा' इत्युच्यते । यथा-'शाङ्खोऽयं

अन्य विशेषों के रहने पर भी जिस विशेष से आगे प्रमाता को फिर विशेषविषयक जिज्ञासा नहीं होती हो वह अन्त्य है । अन्त्यविशेष अपेक्षा से ही व्यावहारिक अर्थावग्रह ईहा और अवाय के लिये सामान्य विशेष की अपेक्षा करनी पड़ती है इसलिये जबतक अपने विषय में उत्तरोत्तर विशेष की आकांक्षा चालू रहती है तबतक सर्वत्र जो जो अवायज्ञान होता है वह उपचार से अर्थावग्रह मान लिया जाता है । जैसे ही प्रमाता की अपने विषय में विशेष को जानने की आकांक्षा शांत हो जाती है कि वैसे ही वह अवाय अपने विषय को निश्चय करने वाला अवाय ही रहता है, अर्थावग्रह नहीं होता है ॥ ४ ॥

"यह शब्द है" इत्याकारक जो प्रथम सामान्यविशेषरूप अर्थावग्रह होता है उसको छोड़कर इसके बाद के जितने भी सामान्यविशेषरूप अर्थावग्रह हैं वे सब मेधा शब्द वाच्य माने गये हैं। अर्थात्-"यह

રહેવા છતાં પણ જે વિશેષની આગળ પ્રમાતાને વિશેષવિષયક જિજ્ઞાસા થતીનથી તે અન્ત્ય છે અન્ત્યવિશેષની અપેક્ષાએ જ વ્યાવહારિક અર્થાવગ્રહ ઈહા અને અવાયને માટે સામાન્ય વિશેષની અપેક્ષાકરવીપડેછે. તે કારણે જ્યાં સુધી પોતાનાવિષયમાં ઉત્તરોત્તરવિશેષની આકાંક્ષા ચાલુરહેછે ત્યાંસુધી સર્વત્ર જે જે અવાયજ્ઞાન થાય છે તે ઉપચારથી અર્થાવગ્રહ માનીલેવાયછે. જેવી પ્રમાતાની પોતાના વિષયમાં વિશેષ જાણવાની આકાક્ષા શાન્તપડીજાય છે, એવું જ તે અવાય પોતાનાવિષયનેનિશ્ચિતકરનારૂં અવાયજરહેછે. અર્થાવગ્રહ થતો નથી. ॥ ૪ ॥

"આ શબ્દ છે" ઈત્યાકારક જે પ્રથમ સામાન્યવિશેષરૂપઅર્થાવગ્રહ થાય છે, તેને છોડી દઈને ત્યારબાદ જેટલાં સામાન્ય વિશેષરૂપ અર્થાવગ્રહ છે. એ બધા

शब्दः' इत्यारभ्यान्त्यविशेषात् प्राक् यो यो विशेषसामान्यार्थावग्रहः स सर्वोऽपि 'मेधा' इति विशेषः। तथा च श्रवणताऽवलम्बनता मेधा चेत्येतत् त्रयमर्थावग्रहरूपं बोध्यम्। 'अवग्रहणता, उपधारणता चेत्येतद् द्वयं व्यञ्जनावग्रहरूपमिति प्रागुक्तम् ॥ ५ ॥ अवग्रहो वर्णित इत्याह–' से तं ' इति। स एषोऽवग्रह इति ॥सू० ३०॥

मूलम्–से किं तं ईहा?। ईहा छव्विहा पण्णत्ता, तं जहा-सोइंदिय-ईहा। चक्खिंदिय-ईहा। घाणिंदिय-ईहा। जिब्भिंदिय–ईहा। फासिंदिय-ईहा। नोइंदिय-ईहा। तीसे णं इमे एगट्ठिया नाणाघोसा नाणावंजणा पंचनामधिज्जा भवंति, तं जहा–आभोगणया, मग्गणया, गवेसणया, चिंता, वीमंसा। से तं ईहा ॥ सू० ३१ ॥

छाया–अथ का सा ईहा?, ईहा षड्विधा प्रज्ञप्ता, तद् यथा—श्रोत्रेन्द्रियेहा। चक्षुरिन्द्रियेहा। घ्राणेन्द्रियेहा, जिह्वेन्द्रियेहा, स्पर्शेन्द्रियेहा, नोइन्द्रियेहा। तस्या इमानि–एकार्थकानि नानाघोषाणि नानाव्यञ्जनानि पञ्च नामधेयानि भवन्ति। तद् यथा–आभोगनता१, मार्गणता२, गवेषणता३, चिन्ता४, विमर्शः (मीमांसा)। सा एषा ईहा ॥ सू० ३१ ॥

टीका—शिष्यः पृच्छति—'से किं तं ईहा ?' इत्यादि। अथ का सा ईहा? उत्तरमाह—'ईहा छव्विहा पण्णत्ता' इत्यादि। वस्तुनिर्णयार्थं विचारणा ईहा,

---

शंख का शब्द है" इस प्रकार के बोध से लगाकर अन्त्यविशेष के पहिले पहिले का जो सामान्यविशेषरूप अर्थावग्रह है वह सब मेधा है ॥ ५ ॥ इस तरह श्रवणता अवलम्बनता और मेधा ये तीन अर्थावग्रहरूप, तथा अवग्रहता, उपधारणता ये दो व्यंजनावग्रहरूप होते हैं ऐसा जानना चाहिये ॥ इस प्रकार यह अवग्रह का वर्णन है ॥ सू० ॥ ३० ॥

મેધા શબ્દવાચ્યમનાયાછે. એટલે કે "આ શંખનોશબ્દ છે" આ પ્રકારના બોધથી લઈને અન્ત્યવિશેષનીઆગળ આગળનો જે સામાન્યવિશેષરૂપ અર્થાવગ્રહ છે તે સૌ મેધા છે. ॥૫॥ આ પ્રકારે શ્રવણતા અવલંબનતા અને મેધા એત્રણ અર્થાવગ્રહરૂપ, તથા અવગ્રહણતા, ઉપધારણતા. એ બે વ્યંજનાવગ્રહરૂપ હોય છે એમ જાણવું જોઈએ. આ પ્રકારે આ અવગ્રહનું વર્ણન છે. ॥ સૂ.૩૦ ॥

सा षड्विधा प्रज्ञप्ता । तद् यथा—श्रोत्रेन्द्रियेहा—इत्यादि । श्रोत्रेन्द्रियेण ईहा—श्रोत्रेन्द्रियार्थावग्रहमधिकृत्य या प्रवृत्ता ईहा सा श्रोत्रेन्द्रियेहा, इत्यर्थः । एवं शेषाश्चक्षुरिन्द्रियेहादयोऽपि साधनीयाः । 'तीसे णं०' इत्यादि । तस्याः=ईहायाः । अन्यत् सुगमम् । नवरं सामान्यापेक्षया एकार्थकानि । विशेषचिन्तायां तु भिन्नार्थकानि।

'से किं तं ईहा ?' इत्यादि० ।

शिष्य पूछता है कि हे भदंत ! पूर्वनिर्दिष्ट ईहा का क्या स्वरूप है ? उत्तर—ईहा छह प्रकार की बतलाई गई है । वह इस प्रकार है—श्रोत्र इन्द्रिय ईहा १, चक्षु इन्द्रिय ईहा, घ्राण इन्द्रिय ईहा ३, जिह्वा इन्द्रिय ईहा ४, स्पर्शइन्द्रिय ईहा ५, नो इन्द्रिय ईहा ६ । उसके ये नाना घोषवाले तथा नाना व्यंजनावाले एकार्थक पांच नाम है । जैसे—आभोगनता, मार्गणता २, गवेषणता ३, चिन्ता ४, और विमर्श ५, इस प्रकार ये पांच ईहा के नाम हैं । वस्तु के निर्णय के लिये जो विचारणा होती है उसका नाम ईहा है । श्रोत्रेन्द्रिय से जन्य अर्थावग्रह के बाद जो विचारणा चलती है उसका नाम श्रोत्रेन्द्रिय ईहा है । इसी तरह अवशिष्ट इन्द्रियों की ईहा भी उन २ इन्द्रियों के अर्थावग्रह के बाद हुई विचारणा स्वरूप जाननी चाहिये । इस ईहा के जो पांच नाम एकार्थक बतलाये गये हैं वे सामान्य की अपेक्षा ही बतलाये गये जानना चाहिये, विशेष की अपेक्षा नहीं, कारण—विशेष की अपेक्षा ये सब भिन्न २ अर्थवाले हो

"से किं तं ईहा ?" ઈત્યાદિ—

શિષ્યપૂછેછે—હે ભદન્ત! પૂર્વનિર્દિષ્ટ "ईहा"નું શું સ્વરૂપછે ?

ઉત્તર—ईहा ના છ પ્રકારબતાવ્યાછે. તે આપ્રમાણે છે—(૧) શ્રોત્રેન્દ્રિય ઈહા, (૨) ચક્ષુઈન્દ્રિય ઈહા, (૩) ઘ્રાણેન્દ્રિય ઈહા, (૪) જીહ્વાઈન્દ્રિય ઇહા, (૫) સ્પર્શેન્દ્રિય ઈહા, અને (૬) નો ઈન્દ્રિય ઇહા. તેના વિવધઘોષવાળા તથા વિવિધવ્યંજનવાળા એકાર્થક પાંચનામછે. જેવાં કે (૧) આભોગનતા, (૨) માર્ગણુતા, (૩) ગવેષણુતા, (૪) ચિન્તા, અને (૫) વિમર્શ. આ પ્રકારે ઇહાના પાંચ નામ છે. વસ્તુનાનિર્ણયમાટે જે વિચારણાથાયછે તેનુ નામ ઈહાછે. શ્રોત્રેન્દ્રિયજનિતઅર્થાવગ્રહબાદ જે વિચારણાથાય છે તેનુંનામ શ્રોત્રેન્દ્રિય ઈહાછે. એજરીતે બાકીનીઈન્દ્રિયોની ઈહા પણ તે તે ઈન્દ્રિયોના અર્થાવગ્રહ બાદ થયેલવિચારણાસ્વરૂપસમજીલેવી. આ ઇહાના જે પાંચ એકાર્થક નામ બતાવ્યાછે, તે સામાન્યનીઅપેક્ષાએ જ બતાવેલમાનવાજોઈએ, વિશેષની અપેક્ષાએનહીં, કારણ કે વિશેષનીઅપેક્ષાએ એ બધાં ભિન્નભિન્न

तत्र–आभोगनता–आभोग्यते=आलोच्यतेऽनेनेति आभोगनम् – अर्थावग्रहसमय-समनन्तरमेव सद्भूतार्थविशेषाभिमुखमालोचनं, तदेवाभोगनता१। तथा–मृग्यते=अन्विष्यतेऽनेन परिणामकरणेनेति मार्गणं–सद्भूताऽर्थविशेषाभिमुखमेव तदूर्ध्वमन्व-यव्यतिरेकधर्मान्वेषणम्, तदेव मार्गता२ । तथा–गवेष्यते=अन्विष्यतेऽनेनेति गवेषणं- तत ऊर्ध्वं सद्भूतार्थविशेषाभिमुखमेव व्यतिरेकधर्मपरिहारेणान्वयधर्माऽ-ध्यासेन आलोचनम्, तदेव गवेषणता३ । तथा–ततो मुहुर्मुहुः क्षयोपशमविशेषतः स्वधर्मानुगतसद्भूतार्थविशेषचिन्तनं चिन्ता ४ । तत ऊर्ध्वं क्षयोपशमविशेषात् स्पष्टतरं सद्भूतार्थविशेषाऽभिमुखमेव व्यतिरेकधर्मपरित्यागेन अन्वयधर्मापरि-त्यागेन चान्वयधर्मविमर्शनं विमर्शः ५ । सा एषा ईहा वर्णिता ॥ सू० ३१ ॥

जाते हैं। अर्थावग्रह के समय के समनन्तर ही सद्भूत अर्थविशेष की तरफ झुकता हुआ जो विचार है उसका नाम आभोगनता है १ । इस आभोगनता के बाद जो उस सद्भूत अर्थविशेष को लेकर विचारणा चलती है कि जिसमें उस अर्थ के साथ अन्वय व्यतिरेक धर्मों का अन्वेषण होता है वह मार्गणता है २ । ईसके बाद उस अद्भूत अर्थ-विशेष की व्यतिरेक धर्म के परिहार से एवं उसमें अन्वयधर्म के अध्यास से जो गवेषणा की जाती है वह गवेषणता है ३ । इसके पश्चात् क्षयो-पशम विशेष से जो ऐसा विचार आता है कि यह सद्भूत अर्थ अपने धर्म के साथ अनुगत है, इसका नाम चिन्ता है ४ । फिर जो ऐसा विचार होता है कि इस सद्भूत अर्थ में यह व्यतिरेक धर्म नहीं है किन्तु यह अन्वयधर्म है अतः व्यतिरेक धर्म के परित्याग पूर्वक जो यह अन्वय धर्म का वहां विचार होता है इसका नाम विमर्श है ।

અર્થવાળાથઈજાય છે. (૧) અર્થાવગ્રહના સમયને સમનન્તર જ સદ્ભૂત અર્થ-વિશેષની તરફ ઢળતો જે વિચાર છે તેનુંનામ આભોગનતાછે. (૨) આ અભોગનતાબાદ તે સદ્ભૂતઅર્થવિશેષને લઈને જે વિચારણાચાલે છે કે જેમાં તે અર્થની સાથે અન્વય વ્યતિરેક ધર્મોનું અન્વેષણથાયછે તેનું નામ માર્ગ-ણતા છે. (૩) ત્યારબાદ તે સદ્ભૂતઅર્થવિશેષનાવ્યતિરેક ધર્મનાંપરિહારથી અને તેમાં અન્વયધર્મના અધ્યાસથી જે ગવેષણાકરાયછે તેનું નામ ગવેષ-ણતા છે (૪) ત્યારબાદ ક્ષયોપશમવિશેષથી જે એવોવિચારઆવેછે કે આ સદ્ભૂત અર્થ પોતાનાધર્મનીસાથે અનુગતછે, તેનુંનામ ચિન્તાછે. (૫) પછી જે એવોવિચારથાયછે કે આ સદ્ભૂતઅર્થમાં આ વ્યતિરેકધર્મનથી પણ આ અન્વયધર્મ છે; તેથી વ્યતિરેકધર્મના પરિત્યાગપૂર્વક જે આ અન્વ-યધર્મનો વિચારથાયછે તેનુંનામ વિમર્શ છે.

मूलम्—से किं तं अवाए ?। अवाए छव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—सोइंदिय- अवाए। चक्खिदिय—अवाए। घाणिंदिय—अवाए। जिब्भिंदिय—अवाए। फासिंदिय—अवाए। नोइंदिय—अवाए।। तस्स णं इमे एगट्ठिया नाणाघोसा नाणावंजणा पंच नामधिज्जा भवन्ति, तं जहा—आउट्टणया१, पच्चाउट्टणया२, अवाए३, बुद्धी४, विण्णाणे५। से तं अवाए॥ सू० ३२॥

दृष्टान्त द्वारा इस विषय को इस प्रकार समझना चाहिये—जब ऐसा ज्ञान होता है कि 'यह कुछ है' तब स्वभावतः यह जिज्ञासा होती है कि क्या यह बक पंक्ति है अथवा पताका है १। पताका होनी चाहिये इस विचार धारा का नाम ही आभोगनता है १। इसके बाद जो ऐसा चित्तमें विचार आता है कि वह हवा के आने पर ऊपर की ओर उड़ती है, नहीं आने पर बैठ जाती है, अतः ऊपर फडकना नीचे आना आदि जो इसके अन्वयरूप धर्म हैं वे इसमें पाये जाते है, बक पंक्तिमें यह बातें नहीं पाई जाती हैं, अतः यह पताका ही होनि चाहिये, क्यों कि इसमें पताका के धर्मों का ही संबंध बैठता है बकपंक्ति के धर्मों का नहीं। इस तरह मार्गणता, गवेषणता, चिन्ता एवं विमर्श ये ईहा के प्रकार सध जाते हैं॥ सू० ३१॥

દૃષ્ટાન્તદ્વારા આ વિષયને આરીતે સમજાવીશકાય. જ્યારે એવુંજ્ઞાન થાયછે કે "આ કંઈકછે" ત્યારે સ્વાભાવિક રીતે જ એ જિજ્ઞાસાથાયછે કે "શું આ બગલાનીહારછે અથવા પતાકા છે?" "પતાકાહોવીજોઈએ" આ વિચારધારાનુંનામજ આભોગનતાછે. ત્યારબાદ મનમાંએવો જે વિચાર-આવેછે કે તે પવનઆવતા ઉપરનીતરફઉડેછે, પવન ન આવતા નીચીજ રહેછે, તેથી ઉપર ફરકવું નીચે આવવું આદિ જે તેના અન્વયરૂપ ધર્મ છે તે એમાં મળીઆવેછે, બગલાંનીહારમાં આવાત બનતીનથી, તેથી તે પતાકા જ હોવી જોઈએ, કારણ કે તેમાં પતાકાના ધર્મોનો સંબંધ જ બંધબેસતો થાય છે, બગલાની હારનો નહીં. આ પ્રકારે માર્ગણતા, ગવેષણતા, ચિન્તા, અને વિમર્શ. એ ઈહાના પ્રકારોનો નિર્ણયથઈજાયછે. ॥ સૂ. ૩૧ ॥

छाया—अथ कः सोऽवायः ? । अवायः षड्विधः प्रज्ञप्तः । तद् यथा-श्रोत्रेन्द्रियावायः १ । चक्षुरिन्द्रियावायः २ । घ्राणेन्द्रियावायः ३ । जिह्वेन्द्रियावायः४। स्पर्शेन्द्रियावायः ५ । नोइन्द्रियावायः ६ । तस्य खलु इमानि एकार्थकानि नानाघोषाणि. नानाव्यञ्जनानि, पञ्च नामधेयानि भवन्ति; तद् यथा-आवर्तनता १, प्रत्यावर्तनता २, अवायः ३, बुद्धिः ४, विज्ञानम् ५ । स एषोऽवायः ।।सू० ३२।।

टीका—शिष्यः पृच्छति—'से किं तं०' इत्यादि । अथ कः सोऽवायः ? इति। उत्तरमाह—'अवाए छव्विहे पण्णत्ते०' इत्यादि । अवायो निश्चयात्मकाववोधः । स षड्विधः प्रज्ञप्तः; तद् यथा-श्रोत्रेन्द्रियावाय-इत्यादि । श्रोत्रेन्द्रियेणावायः-श्रोत्रेन्द्रियावायः । श्रोत्रेन्द्रियेहामधिकृत्य यः प्रवृत्तोऽवायो-निश्चयः, स श्रोत्रेन्द्रियावाय इत्यर्थः । एवं चक्षुरिन्द्रियावायादयः साधनीयाः । तस्य=अवायस्य खलु इमानि एकार्थकानि नानाघोषाणि नानाव्यञ्जनानि पञ्च नामधेयानि भवन्ति । एतेषां व्याख्या प्राग्वत् । नवरं अवायसामान्यविवक्षया एकार्थकानि । तद्विशेषचिन्तायां तु नानार्थकानि । तत्र-आवर्तते-आ=मर्यादया वर्तते-ईहातो निवृत्त्या अवायभावं प्रति अभिमुखो वर्तते येन बोधपरिणामेन स आवर्तनः, स एवावर्तनता ॥ १ ॥

तथा-प्रत्यावर्तनता-आवर्तनं प्रति गतो योऽर्थविशेषेषु उत्तरोत्तरेषु विवक्षितावायप्रत्यासन्नतरो बोधविशेषः स प्रत्यावर्तनः, स एव प्रत्यावर्तनता ॥ २ ॥

'से किं तं अवाए०' इत्यादि ।

शिष्य पूछता है-पूर्वनिर्दिष्ट अवाय ज्ञान का क्या स्वरूप है ?

उत्तर—अवायज्ञान छह प्रकार का कहा गया है। वे प्रकार ये हैं-श्रोत्रइन्द्रिय से उत्पन्न हुआ अवाय, २ चक्षु इन्द्रिय से उत्पन्न हुआ अवाय २ घ्राणेन्द्रिय से उत्पन्न हुआ अवाय, ३ जिह्वा इद्रिय से उत्पन्न हुआ अवाय ४, स्पर्श इन्द्रिय से उत्पन्न हुआ अवाय ५ तथा नो इन्द्रिय से उत्पन्न हुआ अवाय ६ । उस अवाय के ये नाना घोषवाले तथा नाना व्यंजनवाले एकार्थक पांच नाम हैं।

"से किं तं अवाए०" ઇત્યાદિ—

શિષ્યપૂછેછે-"પૂર્વનિર્દિષ્ટ અવાયજ્ઞાનનું શું સ્વરૂપછે ?

ઉત્તર—અવાયજ્ઞાન નીચેપ્રમાણે છ પ્રકારનું કહેલછે-(૧) શ્રોત્રેન્દ્રિયથી પેદાથયેલ અવાય (૨), ચક્ષુઇન્દ્રિયથી પેદાથયેલ અવાય, ઘ્રાણેન્દ્રિયથી પેદા થયેલ અવાય (૪), જિહ્વાઇન્દ્રિયથી પેદા થયેલ અવાય (૫), સ્પર્શેન્દ્રિયથી પેદા થયેલ અવાય, તથા (૬) ના ઇન્દ્રિયથી પેદાથયેલ અવાય. તે અવાયના એ વિવિધ ઘોષવાળા તથા વ્યંજનવાળા એકાર્થક પાંચનામછે, જેવાંકે (૧)

तथा-अवायः=निश्चयः, सर्वथा ईहातो विनिवृत्तस्यावधारणावधारितमर्थमवगच्छतो जीवस्य यो बोधविशेषः सोऽवायः ॥ ३ ॥ तथा-बुद्धिः-ततस्तमेवावधारितमर्थं क्षयोपशमविशेषात् स्थिरतया पुनः पुनः स्पष्टतरमवबुध्यमानस्य या बोधपरिणतिः सा बुद्धिः ॥ ४ ॥ तथा-विज्ञानं=विशिष्टं ज्ञानं विज्ञानं, क्षयोपशमविशेषादेव अवधारितार्थविषयक एव तीव्रतरधारणाहेतुर्बोधविशेष इत्यर्थः ॥५॥ स एषोऽवायो वर्णितः ॥ सू० ३२ ॥

जैसे-आवर्तनता १, प्रत्यावर्तनता २, अवाय ३, बुद्धि ४, और विज्ञान ५। इस तरह पूर्वोक्त अवाय ज्ञान का यह स्वरूप है। श्रोत्रन्द्रिय से उत्पन्न ईहाज्ञान के बाद जो ऐसा ज्ञान होता है कि 'यह शब्द अमुक का ही है' इसका नाम श्रोत्रइन्द्रियजन्य अवाय है। जैसे यह शंख का ही शब्द है। इसी तरह शेष इन्द्रियों के विषयोंमें उत्पन्न ईहा के बाद जो उस उस विषय के निश्चयका ज्ञान होता है, वह तत्तत् इन्द्रियजन्य अवाय जानना चाहिये। आवर्तनता आदि पांच नामोंमें जो एकार्थकता बतलाई गई है, वह सामान्य अवाय की विवक्षा से बतलाई गई जाननी चाहिये। जिस बोध परिणाम द्वारा ईहा से निवृत्त होकर जीव अवायभाव की तरफ झुकाया जाता है उसका नाम आवर्तनता १। इस आवर्तन के प्रति जो बोध विशेष होता है कि जिस बोध से जीव उत्तरोत्तर अर्थविशेषोंमें विवक्षित अवाय के बिलकुल समीप आ जाता है उसका नाम प्रत्यावर्तनता है २। ईहा से हटकर जीव के लिये जो उस ईहित

આવર્તનતા, (૨) પ્રત્યાવર્તનતા, (૩) અવાય, (૪) બુદ્ધિ, અને (૫) વિજ્ઞાન. આ રીતે પૂર્વોક્ત અવાયજ્ઞાનનુ આ સ્વરૂપ છે. શ્રોત્રેન્દ્રિયથીઉત્પન્નથયેલ ઈહાજ્ઞાન બાદ જે એવું જ્ઞાનથાયછે કે "આ શબ્દ અમુકનોછે" તેનુંનામ શ્રોત્રેન્દ્રિયજન્યઅવાય છે. જેમ કે આ શંખનોજ શબ્દછે. એજપ્રકારે બાકીની ઇન્દ્રિયોનાવિષયમાં ઉત્પન્નથયેલ ઈહાની પછી જે તે તે વિષયનાં નિશ્ચયનું જ્ઞાનથાયછે, તે જ્ઞાનને તે તે ઇન્દ્રિયજન્ય અવાયજ્ઞાન માનવું. આવર્તનતા આદિ પાચનામોમાં જે એકાર્થતા બતાવેલછે તે સામાન્ય અવાયની વિવક્ષાથી બતાવાઈછે એમ સમજવું (૧) જે બોધ પરિણામદ્વારા ઈહાથી નિવૃત્તથઈને જીવ અવાયભાવ તરફ ઝુકાવાતો જાય છે તેનુંનામ આવર્તનતા છે. (૨) આ આવર્તનના પ્રતિ જે બોધ વિશેષ થાય છે, અને જે બોધથી જીવ ઉત્તરોત્તર અર્થવિશેષોમાં વિવક્ષિત અવાયની બિલકુલ સમીપ આવેછે તેનુંનામ પ્રત્યાવર્તનતાછે. (૩) ઈહાથી ફરજઈને જીવનેમાટે ને

अथ धारणास्वरूपमाह—

मूलम्—से किं तं धारणा ?। धारणा छव्विहा पण्णत्ता; तं जहा—सोइंदियधारणा। चक्खिंदियधारणा। घाणिंदियधारणा। जिब्भिंदियधारणा। फासिंदियधारणा। नोइंदियधारणा। तीसे णं इमे एगट्ठिया नाणाघोसा नाणावंजणा पंच नामधिज्जा भवंति, तं जहा—धरणा१, धारणा२, ठवणा३, पइट्ठा४, कोट्ठे५। से तं धारणा ॥ सू० ३३ ॥

छाया—अथ का सा धारणा ?। धारणा षड्विधा प्रज्ञप्ता; तद् यथा—श्रोत्रेन्द्रियधारणा १। चक्षुरिन्द्रियधारणा २। घ्राणेन्द्रियधारणा ३। जिह्वेन्द्रियधारणा ४। स्पर्शेन्द्रियधारणा ५। नोइन्द्रियधारणा ६। तस्या इमानि एकार्थकानि नानाघोषाणि नानाव्यञ्जनानि पञ्च नामधेयानि भवन्ति; तद् यथा—धरणा १, धारणा २, स्थापना ३, प्रतिष्ठा ४, कोष्ठः ५। सा एषा धारणा ॥ सू० ३३ ॥

टीका—'से किं तं धारणा' इत्यादि। शिष्यः पृच्छति—अथ का सा धारणा इति। उत्तरमाह—'धारणा छव्विहा पण्णत्ता' इत्यादि। धारणा—निर्णीतार्थविशे-

पदार्थ का बिलकुल निश्चितज्ञान होता है वह अवाय है ३। इस अवाय के द्वारा निश्चित किये गये पदार्थ का जो स्थिररूप से पुनः पुनः स्पष्टतर बोध होता है उसका नाम बुद्धि है ४। इस बुद्धि के बाद जो ऐसा जीव को बोध होता है कि जिसके बल पर जीव धारणा के निकट पहुंच जाता है—जो धारणा की उत्पत्तिमें हेतुभूत होता है—उस विशिष्ट ज्ञान का नाम विज्ञान है ५। यह अवाय का स्वरूप हुआ ॥ सू० ३२ ॥

अब धारणाका स्वरूप कहा जाता है—'से किं तं धारणा०' इत्यादि

ઇહિત પદાર્થનું જે તદ્દન નિશ્ચિત જ્ઞાન થાયછે તે અવાયછે. (૪) આ અવાય દ્વારા નિશ્ચિતકરાયેલ પદાર્થનો જે સ્થિરરૂપે ફરીને સ્પષ્ટતર બોધથાયછે તેનું નામ બુદ્ધિછે. (૫) એ બુદ્ધિની પછી જે એવા જીવને બોધ થાય છે કે જેના આધારે જીવ ધારણાની સમીપ પહોંચીજાયછે—જે ધારણાની ઉત્પત્તિમાં હેતુભૂત થાયછે—એ વિશિષ્ટજ્ઞાનનું નામવિજ્ઞાનછે. આ અવાયનાં સ્વરૂપનું વર્ણન થયુ ॥ સૂ. ૩૨ ॥

હવે ધારણાનું સ્વરૂપ બતાવવામા આવે છે—" से किं त धारणा० " ઇત્યાદિ.

पस्य धारणम्=अविस्मरणम्। सा षड्विधा प्रज्ञप्ता, तद् यथा-'श्रोत्रेन्द्रिय धारणा' इत्यादि। श्रोत्रेन्द्रियेण या धारणा सा श्रोत्रेन्द्रियधारणा। एवं चक्षुरिन्द्रियधारणादयः साधनीयाः। तस्याः=धारणायाः। अन्यत् सुगमम्। अत्रापि सामान्यविवक्षया एकार्थकानि। विशेषार्थचिन्तायां तु भिन्नार्थानि। तत्रावायानन्तरमवगतस्यार्थस्याविच्युत्या अन्तर्मुहूर्तकालं यावत् धरणं धरणा ॥१॥ ततस्तस्यैवार्थस्योपयोगाच्च्युतस्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्तमुत्कर्षतः संख्येयाऽसंख्येयकालपर्यन्तं यत् स्मरणं सा धारणा ॥२॥ तथा-स्थापनं-स्थापना। अवायावधारितस्यार्थस्य हृदि स्थापनं, जलपूर्ण-

---

प्रश्न—पूर्वनिर्दिष्ट धारणा का क्या स्वरूप है? उत्तर—धारणा छह प्रकार की कही गई है। उसके छह प्रकार ये हैं-श्रोत्रइन्द्रिय से होने वाली धारणा १, चक्षु इन्द्रिय से होने वाली धारणा २, घ्राणेन्द्रिय से होनेवाली धारणा ३, जिह्वा इन्द्रिय से होनेवाली धारणा ४, स्पर्श इन्द्रिय से होनेवाली धारणा ५, तथा नो इन्द्रिय से होनेवाली धारणा ६। उस धारणा में ये पांच नानाघोष एवं नाना व्यंजनवाले एकार्थक नाम हैं। जैसे-धरणा १, धारणा २, स्थापना ३, प्रतिष्ठा ४, तथा कोष्ठ ५।

निर्णीत अर्थ का नहीं भूलना इसका नाम धारणा है। यह छह प्रकार की है। श्रोत्र इन्द्रिय के विषयभूत शब्दरूप पदार्थमें जो अवाय ज्ञान के बाद उस विषय की धारणा होती है कि जिससें जीव उस विषय को कालान्तरमें भी नहीं भूलता है उसका नाम श्रोत्रेन्द्रिय धारणा है१। इसी तरह उस २ इन्द्रिय के विषयभूत पदार्थों में अवाय ज्ञान के बाद जो उस २ विषय की धारणा जीव को होती है वह चक्षु आदि इन्द्रियों

પ્રશ્ન–પૂર્વ નિર્દિષ્ટ ધારણાનું શું સ્વરૂપ છે? ઉત્તર–ધારણા નીચેપ્રમાણે છ પ્રકારની બતાવેલછે-(૧) શ્રોત્રેન્દ્રિયથી થનારી ધારણા, (૨) ચક્ષુ ઇન્દ્રિયથી થનારી ધારણા, (૩) ઘ્રાણેન્દ્રિયથી થનારી ધારણા, (૪) જિહ્વા ઇન્દ્રિયથી થનારી ધરણા,। (૫) સ્પર્શેન્દ્રિયથી થનારી ધારણા, અને (૬) નો ઇન્દ્રિયથી થનારી ધારણા. તે ધારણાના આ પાંચ વિવિધ ઘોષવાળાં અને વિવિધ વ્યંજનવાળાં એકાર્થક નામ છે–(૧) ધરણા, (૨) ધારણા, (૪) સ્થાપના, (૪) પ્રતિષ્ઠા, તથા (૫) કોષ્ઠ.

નિર્ણીત અર્થને ન ભૂલવો તેનુંનામ ધારણાછે. તે છ પ્રકારનીછે શ્રોત્રેન્દ્રિયના વિષયભૂત શબ્દરૂપ પદાર્થમાં જે અવાયજ્ઞાનની પછી તે વિષયની ધારણા થાયછે કે જેથી જીવ તે વિષયને કાલાન્તરે પણ ભૂલતો નથી તેનું નામ શ્રોત્રેન્દ્રિયધારણા છે. એજપ્રમાણે તે તે ઇન્દ્રિયોના વિષયભૂત પદાર્થોમા અવાયજ્ઞાનની પછી તે તે વિષયની ધારણા જીવનેથાયછે તે ચક્ષુ આદિ

घटस्थापनवत्, वासनेत्यर्थः ॥३॥ तथा–प्रतिष्ठानं–प्रतिष्ठा–अवायावधारितस्यैवार्थस्य हृदि प्रभेदेन प्रतिष्ठापनमित्यर्थः, यथा–जले उपलप्रक्षेपप्रतिष्ठा भवति ॥४॥ 'कोष्ठः' इति, कोष्ठ इव कोष्ठः। अविनष्टसूत्रार्थबीज धारणात् कोष्ठवद् या धारणा, सा कोष्ठ इत्युच्यते ॥ ५ ॥ सू० ३३ ॥

के विषयमें भी समझ लेना चाहिये। धारणा के पांच नामोमें जो एकार्थकता बतलाई गई है वह धारणा सामान्य की अपेक्षा से कही गई है। वैसे तो विशेष–अर्थ की अपेक्षा से इनमें भिन्नार्थता भी है। अवाय के द्वारा निर्णीत पदार्थ के हो जाने पर उस पदार्थ की जो अविच्युति द्वारा अन्तर्मुहूर्त काल तक धारणा बनी रहती है उसका नाम धारणा है १। अवायज्ञान द्वारा निर्णीत पदार्थ की तरफ से जीव का उपयोग हट जाने पर भी कम से कम अन्तर्मुहूर्ततक और ज्यादा संख्यात और असंख्यात कालतक उस पदार्थ की जो स्मृति बनी रहती है उसका नाम धारणा है २। अवाय द्वारा निश्चित किये गये अर्थ का हृदयमें जो जलपूर्णकुंभ की तरह स्थापन हो जाना है वह स्थापना है, इसका दूसरा नाम वासना भी है ३। अवाय के द्वारा अवधारित अर्थ का जो हृदयमें भेदप्रभेद से स्थापन होता है उसका नाम प्रतिष्ठा है ४। अविनष्ट सूत्रार्थरूप बीज के धारण से जो धारणा कोष्ठ की तरह होती है वह कोष्ठ है ५। यह धारणा का स्वरूप हुआ ॥ सू० ३३ ॥

ઇન્દ્રિયોનાવિષયમાંપણ સમજીલેવીજોઇએ. ધારણાનાં પાંચનામોમાં જે એકાર્થતા બતાવવામાં આવેલ છે તે ધારણા સામાન્યની અપેક્ષાએ બતાવવામાં આવી છે. એમ તો વિશેષઅર્થનીઅપેક્ષાએ તેમનામાં ભિન્નતાપણુછે. (૧) અવાય દ્વારા પદાર્થ નિર્ણીતથઈજતા તે પદાર્થની જે અવિચ્યુતિ દ્વારા અન્તર્મુહૂર્તકાળ સુધી ધારણા બની રહેછે તેનુનામ ધારણાછે. (૨) અવાયજ્ઞાન દ્વારા નિર્ણીત પદાર્થની તરફથી જીવનો ઉપયોગ દૂર થતાં પણ ઓછામાં ઓછી અન્તર્મુહૂર્ત સુધી અને વધારેમાંવધારે સંખ્યાત અને અસંખ્યાતકાળસુધી તે પદાર્થની જે સ્મૃતિ બનીરહેછે તેનુંનામ ધારણા છે. (૩) અવાયદ્વારા નિશ્ચિત કરાયેલ અર્થનુ હૃદયમાં જલપૂર્ણકુંભની જેમ સ્થાપન થવુ તે સ્થાપના કહેવાય છે, તેનું બીજુંનામ વાસનાપણુછે. (૪) અવાયદ્વારા અવધારિત અર્થનું હૃદયમાં જે ભેદપ્રભેદથી સ્થાપના થાય છે તેનુ નામ પ્રતિષ્ઠા છે. (૫) અવિનષ્ટ સૂત્રાર્થરૂપ બીજનાં ધારણથી જે ધારણા કોષ્ઠની જેમ થાય છે તેનું નામ કોષ્ઠ છે. આ ધારણાનું સ્વરૂપ થયુ ॥ સૂ. ૩૩ ॥

अवग्रहादीनां कालमानमाह—

मूलम्—उग्गहे इक्कसमइए, अंतोमुहुत्तिया ईहा, अंतोमुहुत्तिए अवाए, धारणा संखेज्जं वा कालं असंखेज्जं वा कालं ॥सू० ३४॥

छाया—अवग्रह एकसामायिकः। आन्तर्मौहूर्तिकी ईहा। आन्तर्मौहूर्तिकोऽवायः। धारणा—संख्येयं वा कालम्, असंख्येयं वा कालम् ॥ सू० ३४ ॥

टीका—'उग्गहे' इत्यादि। अवग्रहः=नैश्चयिकोऽर्थावग्रहः, स एक सामयिको भवति। ईहा आन्तर्मौहूर्तिकी भवति। अवाय आन्तर्मौहूर्तिको भवति। धारणा त्रिविधा—अविच्युति—वासना — स्मृतिभेदात्। तत्र—वासनारूपा धारणा, संख्येयं वा कालं भवति, असंख्येयं वा कालं भवति। तत्र संख्येयवर्षायुष्काणां संख्येयकालम्, असंख्येयवर्षायुष्काणामसंख्येयं कालं युगलाद्यपेक्षया भवति। अविच्युतिरूपा, स्मृतिरूपा च धारणा प्रत्येकमन्तर्मुहूर्तं भवति ॥ सू० ३४ ॥

अब इन अवग्रह आदि ज्ञानों का कालमान कितना है यह सूत्रकार स्पष्ट करते हैं—'उग्गहे०' इत्यादि।

नैश्चयिक अर्थाग्रवह का काल एक समय का है। ईहाज्ञान का काल अन्तर्मुहूर्त का है। अवायज्ञान का भी काल इतना ही है। अविच्युति, वासना और स्मृति के भेद से धारणा तीन प्रकार की है। इनमें वासना-रूप धारणा का काल संख्यात अथवा असंख्यात काल है। जिनकी संख्यात वर्ष की आयु होती है उनकी अपेक्षा संख्यातकाल, तथा जिन जीवों की असंख्यातवर्ष की आयु होती है उनकी अपेक्षा असंख्यात काल जानना चाहिये। अविच्युति तथा स्मृतिरूप धारणा का काल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है। ॥सू० ३४ ॥

હવે એ અવગ્રહ આદિ જ્ઞાનોનું કાલમાન કેટલું છે તે સૂત્રકાર સ્પષ્ટ કરે છે—" उग्गहे० " ઇત્યાદિ,

નૈશ્ચયિક અર્થાવગ્રહનો કાળ એક સમયનો છે. ઇહાજ્ઞાનનો કાળ અન્તર્મુહૂર્તનો છે. અવાયજ્ઞાનનો કાળ પણ એટલો જ છે અવિચ્યુતિ, વાસના અને સ્મૃતિ એ ત્રણ ભેદથી ધારણા ત્રણ પ્રકારની છે. તેમનામાં વાસનારૂપ ધારણાનો કાળ સંખ્યાત અથવા અસંખ્યાત સમય છે જેમની સંખ્યાત વર્ષની આયુ હોય છે તેમની અપેક્ષાએ સંખ્યાતકાળ, તથા જે જીવોની અસંખ્યાતવર્ષની આયુ હોય છે તેમની અપેક્ષાએ અસંખ્યાતકાળ સમજી લેવો જોઈએ. અવિચ્યુતિ તથા સ્મૃતિરૂપ ધારણાનો કાળ અન્તર્મુહૂર્તપ્રમાણ છે ॥ સૂ. ૩૪ ॥

" एवं अट्ठावीसइ विहस्स " ઇત્યાદિ.

मूलम्—एवं अट्ठावीसइविहस्स आभिणिबोहियनाणस्स (परूवणं करिस्सामि, तत्थ णं पढमं) वंजणुग्गहस्स परूवणं करिस्सामि पडिबोहगदिट्ठंतेणं, मल्लगदिट्ठंतेण य।

से किं तं पडिबोहगदिट्ठंतेणं ?। पडिबोहगदिट्ठंतेणं-से जहानामए केइ पुरिसे कंचि पुरिसं सुत्तं पडिबोहिज्जा—अमुगा अमुगत्ति। तत्थ चोयगे पन्नवगं एवं वयासी—किं एगसमयपविट्ठा पुग्गला गहणमागच्छंति ?, दुसमयपविट्ठा पुग्गला गहणमागच्छंति ? जाव दससमयपविट्ठा पुग्गला गहणमागच्छंति ? संखिज्जसमयपविट्ठा पुग्गला गहणमागच्छंति ? असंखिज्जसमयपविट्ठा पुग्गला गहणमागच्छंति ?। एवं वयंतं चोयगं पण्णवए एवं वयासी—नो एगसमयपविट्ठा पुग्गला गहणमागच्छंति, नो दुसमयपविट्ठा पुग्गला गहणमागच्छंति, जाव नो दससमयपविट्ठा पुग्गला गहणमागच्छंति, नो संखिज्जसमयपविट्ठा पुग्गला गहणमागच्छंति, असंखिज्जसमयपविट्ठा पुग्गला गहणमागच्छंति। से तं पडिबोहगदिट्ठंतेणं॥

छाया—एवमष्टाविंशतिविधस्य आभिनिबोधिकज्ञानस्य [प्ररूपणं करिष्यामि तत्र खलु प्रथमं] व्यञ्जनावग्रहस्य प्ररूपणं करिष्यामि प्रतिबोधकदृष्टान्तेन, मल्लकदृष्टान्तेन च।

अथ किं तत् प्रतिबोधकदृष्टान्तेन ?। प्रतिबोधकदृष्टान्तेन—स यथानामकः कश्चित् पुरुषः कंचित् पुरुषं सुप्तं प्रतिबोधयेत्—अमुक-अमुक ! इति। तत्र नोदकः प्रज्ञापकमेवमवादीत्-किमेकसमयप्रविष्टाः पुद्गला ग्रहणमागच्छन्ति ?, द्विसमयप्रविष्टाः पुद्गलाः ग्रहणमागच्छन्ति ? यावद्दशसमयप्रविष्टाः पुद्गला ग्रहणमागच्छन्ति ?, संख्येयसमयप्रविष्टाः पुद्गला ग्रहणमागच्छन्ति ?, असंख्येयसमयप्रविष्टाः पुद्गला ग्रहणमाग-

च्छन्ति ? एवं वदन्तं नोदकं प्रज्ञापक एवमवादीत्-नो एकसमयप्रविष्टाः पुद्गला ग्रहणमागच्छन्ति, नो द्विसमयप्रविष्टाः पुद्गला ग्रहणमागच्छन्ति, यावन्नो दशसमयप्रविष्टाः पुद्गला ग्रहणमागच्छन्ति, नो संख्येयसमयप्रविष्टाः पुद्गला ग्रहणमागच्छन्ति, असंख्येयसमयप्रविष्टाः पुद्गला ग्रहणमागच्छन्ति । तदेतत् (प्ररूपणं) प्रतिबोधकदृष्टान्तेन ॥

टीका—'एवं अट्ठावीसइविहस्स' इत्यादि । एवम्=पूर्वोक्तेन प्रकारेण, अष्टाविंशतिविधस्य=चतुर्द्धा व्यञ्जनावग्रहः, षड्विधोऽर्थावग्रहः षड्विधा ईहा, षड्विधोऽवायः, षड्विधा धारणा, इत्यष्टाविंशतिप्रकारकस्य, आभिनिबोधिकज्ञानस्य प्ररूपणं करिष्यामि । तत्र खलु प्रथमं=पूर्वं व्यञ्जनावग्रहस्य प्ररूपणं=वर्णनं

सूत्रकार कहते हैं-इस तरह आभिनिबोधिकज्ञान के अट्ठाईस भेद हो जाते हैं, उसकी मैं प्ररूपणा करूँगा। मतिज्ञान अट्ठाईस प्रकार का इस तरह होता है-व्यञ्जनावग्रह चार प्रकार का होता है। चक्षु एवं मन से यह अवग्रह होता नहीं है, शेष चार इन्द्रियों से ही होता है। तथा व्यंजन के ईहा, अवाय, एवं धारणा ये प्रकार होते नहीं है इसलिये व्यंजन का अवग्रह ही होता है, और यह अवग्रह चार इन्द्रियों से होता है, अतः व्यंजनावग्रह चार प्रकारका होता है ४। अर्थ का अवग्रह पांच इन्द्रिय और मन से होता है इसलिये वह छह प्रकार का होता है ६। इसी तरह ईहा भी छह प्रकार की होती है १२। अवाय भी छह प्रकार का १८, तथा धारणा भी छह प्रकार की २४, इस तरह ये सब चोवीस भेद होते हैं। इस प्रकार मतिज्ञान अट्ठाईस प्रकार का होता है । सूत्रकार कहते हैं

एवं अट्ठावीसइ विहस्स ઈત્યાદિ.

સૂત્રકાર કહે છે-આ રીતે આભિનિબોધિક જ્ઞાનનાં જે અઠ્ઠાવીસ ભેદ પડે છે, તેની હું પ્રરૂપણા કરૂં છું. મતિજ્ઞાન આ રીતે અઠ્ઠાવીસ પ્રકારનું થાય છે-વ્યંજનાવગ્રહ ચાર પ્રકારનો થાય છે. ચક્ષુ અને મનથી તે અવગ્રહ થતો નથી, બાકીની ચાર ઈન્દ્રિયોથીજ થાય છે. તથા વ્યંજનના ઇહા, અવાય અને ધારણા એ પ્રકાર પડતાં નથી; તે કારણે વ્યંજનનો અવગ્રહ જ થાય છે, અને તે અવગ્રહ ચાર ઈન્દ્રિયો વડે થાય છે, તેથી વ્યંજનાવગ્રહ ચાર પ્રકારનો હોય છે ૪. અર્થનો અવગ્રહ પાંચ ઇન્દ્રિયો અને મનથી થાય છે તે કારણે તે એ છ પ્રકારનો હોય છે. ૬. આજ પ્રકારે ઈહા પણ છ પ્રકારની હોય છે ૧૨. અવાય પણ છ પ્રકારનો ૧૮, તથા ધારણા પણ છ પ્રકારની ૨૪. આ રીતે એ બધા મળીને ચોવીસ ભેદ થાય છે. આ પ્રકારે મતિજ્ઞાન અઠ્ઠાવીસ પ્રકારનું હોય છે.

करिष्यामि। स्पष्टतरस्वरूपप्रतिबोधनार्थमिति भावः। कथं तत् प्ररूपणं करिष्यतीत्याकाङ्क्षायामाह—'पडिबोहगदिट्ठतेणं०' इत्यादि। प्रतिबोधकदृष्टान्तेन, मल्लकदृष्टान्तेन च। तत्र—प्रतिबोधयतीति प्रतिबोधकः=सुप्तस्योत्थापकः, स एव दृष्टान्तः—प्रतिबोधकदृष्टान्तस्तेन। तथा मल्लकं=शरावं, तदेव दृष्टान्तो मल्लकदृष्टान्तस्तेन च। 'से किं तं०' इत्यादि। अथ किं तत् प्रतिबोधकदृष्टान्तेन व्यञ्जनावग्रहस्य प्ररूपणमिति प्रश्नः। उत्तरमाह—प्रतिबोधकदृष्टान्तेन व्यञ्जनावग्रहप्ररूपणमेवं भवति-स यथानामकः—यत्किंचिन्नामधारकः—अनिर्दिष्टनामक इत्यर्थः, कश्चित् पुरुषः, यद्वा—'से' इति सः=दृष्टान्तरूपोऽर्थः, यथा=येन प्रकारेण, 'नाम' संभाव्यते, तं वर्णयामीत्यर्थः। 'ए' इति वाक्यालंकारे। कश्चित् पुरुषः कंचित्=अनिर्दिष्टनामानं यथासंभवनामकं—देवदत्तादिकं पुरुषं सुप्तं सन्तं प्रतिबोधयेत्। कथं प्रतिबोधयेदित्याह—'अमुक ! अमुक ! ' इति। तत्रैवमुक्ते सति ज्ञानावरणीयकर्मोदयात् कथितमपि सूत्रार्थमनवबुध्यमानो नोदकः = प्रश्नकर्ता शिष्यः प्रज्ञापकं — यथाऽवस्थितसूत्रार्थं प्रज्ञापयतीति प्रज्ञापकस्तं—गुरुम्, एवम्=वक्ष्यमाणप्रकारेण, अवादीत्=अपृच्छत्। इह भूतकाल—

कि इस अट्ठाईस प्रकार के मतिज्ञान की प्ररूपणामें हम पहिले स्पष्टतर स्वरूप समझाने के लिये व्यंजनावग्रह की प्ररूपणा करेंगे। यह प्ररूपणा प्रतिबोधक तथा नवीनमल्लक (शरावा) के दृष्टान्त से की जावेगी। प्रतिबोधक का दृष्टान्त इस प्रकार से है—

कोई एक पुरुष गाढ़निद्रामें सोये हुए किसी पुरुष को पुकार पुकार कर जगाता है, परन्तु वह शब्द उसके कानमें नहीं पहुँचा हो जैसा हो जाता है। तब इस पर ज्ञानावरणीय कर्म के उदय से कथित सूत्रार्थ को भी नहीं जानने वाला शिष्य सूत्रार्थ की यथावस्थित प्ररूपणा करनेवाले गुरु महाराज से प्रश्न करता है कि हे भदन्त! यह जगाने पर भी क्यों

સૂત્રકાર કહે છે કે આ અઠ્ઠાવીસ પ્રકારનાં મતિજ્ઞાનની પ્રરૂપણામાં અમે પહેલાં વધારે સ્પષ્ટસ્વરૂપે સમજાવવાને માટે વ્યંજનાવગ્રહની પ્રરૂપણા કરશું.

આ પ્રરૂપણા પ્રતિબોધક તથા નવીનમલ્લક (શરાવા) નાં દૃષ્ટાંતથી કરાશે. પ્રતિબોધકનું દૃષ્ટાંત આ પ્રમાણે છે—

કોઈ એક પુરુષ ગાઢનિદ્રામાં પડેલ કોઈ પુરુષને અવાજ કરીકરીને જગાડે છે, પણ તે શબ્દ તેના કાને પહોંચતો જ ન હોય એવું થાયછે. ત્યારે જ્ઞાનાવરણીયકર્મના ઉદયથી કહેલ સૂત્રાર્થને પણ ન જાણનાર શિષ્ય સૂત્રાર્થની યથાવસ્થિત પ્રરૂપણા કરનાર ગુરુમહારાજને પ્રશ્ન પૂછે છે કે—હે ભદન્ત! તે જગાડવા છતાં પણ કેમ જાગતો નથી? શું તેના કાનમાં એક-

निर्देशस्तु 'आगमोऽयमनादि'-रिति प्रतिबोधनार्थः। शिष्यः किमवादो ? दित्याह -'किं एगसमयप्पविट्ठा०' इत्यादि। भदन्त ! किम् एकसमयप्रविष्टाः पुद्गलाः, ग्रहणमागच्छन्ति=ग्राह्या भवन्ति ?, यावत् असंख्येयसमयप्रविष्टाः पुद्गला ग्रहणमागच्छन्ति=ग्राह्या भवन्तीति प्रश्नः। एवं वदन्तं नोदकं प्रज्ञापक एवमवादीत्- 'नो एगसमयपविट्ठा०' इत्यादि। एकसमयप्रविष्टाः पुद्गला यावत् संख्येयसमयप्रविष्टा पुद्गला न ग्राह्या भवन्तीत्यर्थः। अयं प्रतिषेधः स्फुटप्रतिभासरूपार्थावग्रहलक्षणविज्ञानग्राह्यतामधिकृत्य विज्ञेयः। यावता पुनः प्रथमसमयादारभ्य किंचिद् व्यक्तं ग्रहणमागच्छन्त्येवेति प्रतिपत्तव्यम्। 'असंखेज्ज०' इत्यादि। आदित आरभ्य प्रतिसमयप्रवेशनेन असंख्येयान् समयान् यावत् ये प्रविष्टास्ते असंख्येयसमयप्रविष्टाः न तु विंशत्याऽहोभिः पथिकगृहप्रवेशवदपान्तरालागमनसमयापेक्षयाऽसंख्येयसमयप्रविष्टा इति। पुद्गलाः=शब्दद्रव्यविशेषाः, ग्रहणमागच्छन्ति=अर्थावग्रहज्ञानहेतवो भवन्तीति भावः। पुद्गलेषु असंख्येयसमयप्रविष्टेषु चरमसमयेऽर्थावग्रहज्ञान-

---

नहीं जगता है ? क्या उसके कानमें एकसमयप्रविष्ट पुद्गलों से लगाकर असंख्यात समय प्रविष्ट पुद्गल भरते नहीं हैं ? यदि भरते हैं तो उसको जग जाना चाहिये, फिर क्यों नहीं जगता ? आचार्य इसका उत्तर देते हैं कि एक समय से लेकर असंख्यात समय तक प्रविष्ट हुए पुद्गल उसके कानमें पड़ते हैं, पर वे लुप्त हो जाते हैं, यही कारण है कि वह दो तीन बार जगाने पर भी नहीं जागता है, परन्तु ज्यों ही वे मन्द २ रीति से चार-पांच बार जगाने पर उसके कानमें भर जाते हैं और लुप्त नहीं होते हैं तो वह व्यक्ति शीघ्र जग उठता है। इसका तात्पर्य यही है कि वे अधिक बोले गये शब्द जब उसके कानमें भर जाते हैं-उसके ग्रहण में आने लगते हैं-तो वह जग जाता है, अर्थात्-वे शब्द-

---

સમય-પ્રવિષ્ટ પુદ્‌ગલોથી માંડીને અસંખ્યાત સમય-પ્રવિષ્ટ-પુદ્‌ગલ ભરાતા નથી ? જો ભરાતા હોય તો તેણે જાગી જવું જોઈએ. છતાં પણ કેમ જાગતો નથી ? આચાર્ય તેનો જવાબ આપે છે કે એક સમયથી માંડીને અસંખ્યાત સમય સુધી પ્રવિષ્ટ થયેલ પુદ્‌ગલ તેના કાનમાં પડે છે, પણ તે લુપ્ત થઈ જાય છે, એજ કારણે તે બે ત્રણવાર જગાડવા છતાં પણ જાગતો નથી, પણ જેવા તે મંદ મંદ રીતે ચાર પાંચ વાર જગાડતા તેના કાનમાં ભરાઈ જાયછે, અને લુપ્ત થતાં નથી તેવો જ તે માણસ જાગી ઉઠે છે. એનું તાત્પર્ય એ છેકે તે અધિક બોલાયેલ શબ્દો જ્યારે તેના કાનમાં ભરાઈ જાય છે. તેનાથી ગ્રહણ થવા માંડે છે, ત્યારે તે જાગી જાય છે. એટલે કે તે શબ્દ પુદ્‌ગલ અર્થાવગ્રહનું કારણ

मुपजायते इत्यर्थः। अर्थावग्रहविज्ञानाच्च प्राक् सर्वोऽपि व्यञ्जनावग्रहः। चरमसमये जायमानोऽर्थावग्रह एकसमयमानः परमयोगिनां स्फुटगम्यः। व्यञ्जनावग्रहस्य च कालो जघन्यत आवलिकाऽसंख्येयभागः, उत्कर्षतः संख्येया आवलिकाः। ता अपि संख्येया आवलिकाः प्राणापान (उच्छ्वासनिःश्वास)—पृथक्त्वकालमाना वेदितव्याः। तदेतत् प्रतिबोधकदृष्टान्तेन व्यञ्जनावग्रहस्य प्ररूपणम्॥

पुद्गल अर्थावग्रह के कारण हो जाते हैं। एक समय से लेकर असंख्यात समयतक के शब्द पुद्गल ऐसे हैं जो उसके अर्थावग्रहरूप ज्ञान के हेतु नहीं होते हैं, किन्तु अन्तिम समय में ही यह अर्थावग्रहरूप ज्ञान का हेतु होता है, अतः एक समय के उन शब्द पुद्गलों से लेकर असंख्यात समय तक के ये जितने शब्दपुद्गल हैं वे स्पष्ट प्रतिभासजनक न हो सकने के कारण व्यंजनावग्रहरूप ही हैं।

जिस अन्तिम शब्द पुद्गल के ग्रहण में स्पष्टज्ञान हुआ है वह अन्तिम पुद्गल ही अर्थावग्रह का जनक हुआ है। इसका काल एक समय प्रमाण है, यह परमयोगियों के ज्ञान का विषय है। व्यंजनावग्रह का जघन्य समय आवलिका के असंख्यातवें भाग प्रमाण है, तथा उत्कृष्टरूप से संख्यात आवलिका प्रमाण है। वे संख्यात आवलिकाएं प्राणापानपृथक्त्व अर्थात्—दो से नव तक उच्छ्वास-निःश्वास-परिमित कालप्रमाण वाली समझना चाहिये। यह व्यंजनावग्रह का खुलासा प्रतिबोधक के दृष्टान्त से हुआ॥

થઈ જાય છે, એક સમયથી માંડીને અસંખ્યાત સમય સુધીના શબ્દપુદ્ગલ એવાં છે જે તેના અર્થાવગ્રહ રૂપ જ્ઞાનનુ કારણ થતાં નથી. પણ અંતિમ સમયમાં જ તે અર્થાવગ્રહરૂપ જ્ઞાનનું કારણ બને છે; તેથી એક સમયનાં તે શબ્દપુદ્ગલોથી માંડીને અસંખ્યાત સમય સુધીના એ જેટલાં શબ્દપુદ્ગલ છે તે સ્પષ્ટ પ્રતિભાસજનક હોઈ ન શકવાને કારણે વ્યંજનાવગ્રહરૂપ જ છે. જે અન્તિમ શબ્દપુદ્ગલના ગ્રહણથી સ્પષ્ટ જ્ઞાન થયું છે તે અન્તિમપુદ્ગલ જ અર્થાવગ્રહનું જનક થયું છે. તેનો કાળ એકસમયનો છે. તે પરમયોગીઓના જ્ઞાનનો વિષય છે. વ્યંજનાવગ્રહનો જઘન્ય સમય આવલિકાના અસંખ્યાતમાં ભાગનો છે; તથા ઉત્કૃષ્ટ રૂપથી સંખ્યાતઆવલિકાપ્રમાણ છે. તે સંખ્યાત-આવલિકાઓ પ્રાણાપાનપૃથકત્વ એટલે કે બેથી નવ સુધી ઉચ્છ્વાસ-નિઃશ્વાસ-પરિમિતકાલ-પ્રમાણવાળી સમજવી જોઈએ. વ્યંજનાવગ્રહનો આ ખુલાસો પ્રતિબોધકના દૃષ્ટાંતથી થયો.

मूलम्—से किं तं मल्लगदिट्ठंतेणं?। मल्लगदिट्ठंतेण—से जहानामए केइ पुरिसे आवागसीसाओ मल्लगं गहाय तत्थेगं उदगबिंदुं पक्खेविज्जा से नट्ठे, अण्णेऽवि पक्खित्ते सेऽवि नट्ठे, एवं पक्खिप्पमाणेसु पक्खिप्पमाणेसु होही से उदगबिंदू, जे णं तं मल्लगं रावेहिइत्ति, होही से उदगबिंदू जे णं तंसि मल्लगंसि ठाहिति, होही से उदगबिंदू जे णं तं मल्लगं भरिहिति, होही से उदगबिंदू जे णं मल्लगं पवाहेहिति। एवामेव पक्खिप्पमाणेहिं पक्खिप्पमाणेहिं अणंतेहिं पुग्गलेहिं जाहे तं वंजणं पूरियं होइ ताहे 'हुं' ति करेइ, नो चेव णं जाणइ के एस सद्दाइ ?। तओ ईहं पविसइ तओ जाणइ अमुगे एस सद्दाइ । तओ अवायं पविसइ तओ से उवगयं हवइ। तओ धारणं पविसइ । तओ णं धारेइ संखिज्जं वा कालं, असंखिज्जं वा कालं ॥

छाया—अथ किं तत् मल्लकदृष्टान्तेन ?। मल्लकदृष्टान्तेन—स यथानामकः कश्चित् पुरुषः आपाकशीर्षतो मल्लकं गृहीत्वा तत्रैकमुदकबिन्दुं प्रक्षिपेत् स नष्टः, अन्योऽपि प्रक्षिप्तः सोऽपि नष्टः। एवं प्रक्षिप्यमाणेषु २ भविष्यति स उदकबिन्दुर्यो नु तं मल्लकम् आर्द्रयिष्यति, भविष्यति स उदकबिन्दुर्यो नु तस्मिन् मल्लके स्थास्यति, भविष्यति स उदकबिन्दुर्यो नु तं मल्लकं भरिष्यति, भविष्यति स उदकबिन्दुर्यो नु तं मल्लकं प्रवाहयिष्यतीति, एवमेव प्रक्षिप्यमाणैः २ अनन्तैः पुद्गलैर्यदा तद् व्यञ्जनं पूरितं भवति, तदा 'हु'–मिति करोति, नो चैव खलु जानाति क एष शब्द ? इति। तत ईहां प्रविशति, ततो जानाति अमुक एष शब्द इति। ततोऽवायं प्रविशति, ततः स उपगतो भवति। ततो धारणां प्रविशति, ततः खलु धारयति संख्येयं वा कालमसंख्येयं वा कालम् ॥

टीका—शिष्यः पृच्छति—'से किं तं मल्लगदिट्ठंतेणं॰' इत्यादि। अथ किं तत्=प्ररूपणं मल्लकदृष्टान्तेन ? इति। उत्तरमाह—मल्लकदृष्टान्तेन व्यञ्जनावग्रह-

प्ररूपणमेवं भवति–स यथानामकः=यत्किञ्चिन्नामकः कश्चित् पुरुषः, आपाकशीर्षतः –आपाकेः=कुम्भकारस्य भाण्डपाकस्थाने स्थापितो भाण्डराशिः, तस्य शीर्षतः–शीर्षमिव शीर्षम्–उपरितनो भागस्तस्मात्, मल्लकं=शरावं गृहीत्वा, तत्रैकमुदकविन्दुं प्रक्षिपेत्=प्रक्षिप्तं कुर्यात्, स उदकविन्दुर्नष्टः–सर्वथा नूतनशरावस्य रूक्षत्वात् तत्रैव तद्भावपरिणतिमापन्न इत्यर्थः। तदनन्तरम् अन्योऽपि जलविन्दुः प्रक्षिप्तः, सोऽपि नष्टः, एवं प्रक्षिप्यमाणेषु प्रक्षिप्यमाणेषु भविष्यति स उदकविन्दुर्यः खलु तं मल्लकं =शरावं (रावेहिति) आर्द्रयिष्यति–आर्द्रं करिष्यतीति। 'रावेहिति' इति 'राव' इति देशीयधातोर्भविष्यति रूपम्। भविष्यति स उदकविन्दुर्यः खलु तस्मिन् मल्लके स्थास्यति। भविष्यति स उदक विन्दुर्यः खलु तं मल्लकं भरिष्यति। भविष्यति स

अब मल्लक के दृष्टान्त से इसका खुलासा करते हैं—'से किं तं मल्लगदिट्ठंतेणं०?' इत्यादि।

शिष्य पूछता है—हे भदन्त! मल्लकदृष्टान्त का क्या स्वरूप है? उत्तर–मल्लक दृष्टान्त इस प्रकार है–जैसे कोई पुरुष कुंभार के आवा में से एक नवीन मल्लक–शरावे को लावे, और उसमें एक पानी की बूंद डाले परन्तु वह पानी की एक बूंद उस पर डालते ही नष्ट हो जाती है, क्यों कि वह सर्वथा रूक्ष होता है। इसी तरह दूसरी पानी की बूंद भी उसमें डाली जाने पर नष्ट हो जाती है। इस तरह वार २ डाली जाने पर उन जल की बिन्दुओं में कोई एक बूंद ऐसी होती है जो उस शरावे को गीला कर देती है। तथा कोई बूंद ऐसी होती है जो उसमें ठहरती है। कोई बूंद ऐसी होती है जो उसको भर देती है। कोई बूंद

હવે મલ્લકનાં દૃષ્ટાંતથી તેનું સ્પષ્ટીકરણ કરે છે—

"से किं तं मल्लगदिट्ठंतेणं०?" ઇત્યાદિ–

શિષ્ય પૂછે છે હે ભદન્ત! મલ્લકદૃષ્ટાંતનું શું સ્વરૂપ છે?

ઉત્તર–મલ્લકદૃષ્ટાંત આ પ્રમાણે છે–જેમકે કોઈ પુરુષ કુંભારના નિભાડા-માંથી એક નવું શકોરૂં લાવે અને તેમા પાણીનું એક ટીપું નાખે; પણ તે પાણીનું એક ટીપું તેના પર નાખતા જ નાશ પામે છે, કારણકે તે તદ્દન સૂકું હોય છે. એજ પ્રમાણે તેમાં પાણીનું બીજું ટીપું પણ નખાતા તેનો પણ નાશ થાય છે. આ રીતે વારંવાર નખાતા તે પાણીના ટીપાઓમાંથી કોઈ એક ટીપું એવું હોય છે કે જે તે શકોરાને ભીનું કરે છે. તથા કોઈ ટીપાં એવાં હોય છે કે જે તેમાં ટકે છે. કોઈ ટીપાં એવાં હોય છે કે જે તેને ભરી દે

उदकबिन्दुर्यः खलु तं मल्लकं प्रवाहयिष्यति=शरावाद् बहिर्निर्गतो भविष्यतीत्यर्थः। एवमेव=उदकबिन्दुभिरिव, निरन्तरं प्रक्षिप्यमाणैः प्रक्षिप्यमाणैरनन्तैः पुद्गलैः=शब्दरूपतया परिणतैर्यदा तद् व्यञ्जनं=श्रोत्ररूपमुपकरणेन्द्रियं पूरितं भवति, तदा-'हुं' इति करोति-अर्थावग्रहरूपेण ज्ञानेन तमर्थं गृह्णाति-नामजात्यादिकल्पनारहितमेव जानाति; नत्वेवं जानाति 'क एष शब्दः'? इति-'कथंभूतोऽयं शब्दः, कस्य वाऽयं शब्द'-इत्यादि न जानाति। स्वरूपद्रव्यगुणक्रियाविशेषकल्पनारहितमनिर्देश्यं सामान्यमात्रमसंख्येयसमयेषु चरमसमये जानाति। अर्थावग्रहस्य एकसामायिकत्वात् सामान्यमात्रग्रहणकारणत्वाच्च। अस्मात् प्राक् सर्वोऽपि व्यञ्जनावग्रह एव। तदेतत् मल्लकदृष्टान्तेन व्यञ्जनावग्रहस्य प्ररूपणं कृतम्। इह हुंकारकरणं चार्थावग्रहजनितम्। ततः=तदनन्तरम्, ईहां प्रविशति='किमिदं किमिद'-मिति विमर्शकरणे प्रवृत्तो भवति। ततः=ईहानन्तरम्, जानाति-'अमुक एष शब्दः' इति, तदा क्षायोपशमविशेषोत्पत्तेरिति भावः। ततः=तदा-ईदृशे ज्ञानपरिणामे जाते सति स पुरुषोऽवायं प्रविशति। ततः=तदा-अवायकालेऽन्तर्मुहूर्तकालं यावत् स शब्द उप-

---

ऐसी होती है जो उस शरावे को बहा देती है, अर्थात्-शरावे से जल बाहर निकलने लगता है। इसी तरह प्रक्षिप्यमाण-भरे जाने वाले अनंत पुद्गलों से जब वह श्रोत्रेन्द्रियरूप उपकरणेन्द्रिय भर जाती है तब वह सोया हुआ पुरुष 'हुं' इस प्रकार के शब्द को करता है, अर्थात् अर्थावग्रहरूप ज्ञान से नामजात्यादि की कल्पना से रहित ही उस अर्थ को जानता है, पर वह यह नहीं जानता है कि यह शब्द क्या है? इसके बाद जब वह ईहा ज्ञान में प्रविष्ट होता है तब जान जाता है कि 'यह अमुक शब्द है' बाद में विशेष निश्चय करने के लिये वह अवाय में प्रविष्ट होता है तब वह उससे परिचित हो जाता है। बाद में वह जब

છે. કોઈ ટીપાં એવાં હોય છે કે જે તે શકોરાને છલકાવી નાખે છે. એજ પ્રમાણે પ્રક્ષિપ્યમાણ-ભરાઈજનારાં અનંતપુદ્ગલોથી જ્યારે તે શ્રોત્રેન્દ્રિયરૂપ ઉપકરણેન્દ્રિય ભરાઈ જાય છે ત્યારે તે સૂતેલો માણસ "હું" એવો શબ્દ બોલીને, એટલે કે અર્થાવગ્રહરૂપ જ્ઞાનવડે નામ, જાતિઆદિની કલ્પનાથી રહિત જ તે અર્થને જાણે છે, પણ તે એ નથી જાણતો કે આ શબ્દ શો છે? ત્યારબાદ જ્યારે તે ઈહાજ્ઞાનમાં પ્રવિષ્ટ થાય છે ત્યારે જાણી જાય છે કે "આ અમુક શબ્દ જ છે". ત્યારબાદ વિશેષ નિર્ણય કરવાને માટે તે અવાયમાં પ્રવિષ્ટ થાય છે ત્યારે તે તેનાથી પરિચિત થઈ જાય છે. ત્યારબાદ તે જ્યારે ધારણાનો

गतो भवति=निश्चयेन ज्ञातो भवति—निर्णयात्मकज्ञानविषयो भवतीत्यर्थः। ततो धारणां प्रविशति। सा च धारणा वासनारूपा द्रष्टव्या। ततः=धारणायां प्रवेशात् संख्येयं वा असंख्येयं वा कालं हृदि धारयति। तत्र संख्येयवर्षायुष्कः संख्येयकालम्, असंख्येयवर्षायुष्कस्तु असंख्येयं कालमित्यर्थः॥

सुप्तं पुरुषमङ्गीकृत्य पूर्वोक्तः सर्वोऽपि प्रकारः संघटते, जाग्रतस्तु कथमवग्रहादीनां क्रमः संघटेत, जाग्रदवस्थायां शब्दश्रवणसमनन्तरमेवावग्रहेहाव्यतिरेकेणावायज्ञानमुपजायते, तथैव प्रतिप्राणि संवेदनादित्याशङ्काया निवारणार्थं मल्लकदृष्टान्तेनैव षड्विधानर्थावग्रहादीन् वर्णयति—

धारणा का विषय होता है तब निश्चय से वह उसको इस तरह के हृदय में धारण कर लेता है कि जिससे वह संख्यातकाल अथवा असंख्यात कालतक विस्मृत नहीं होता है। इस सूत्र का तात्पर्य इस प्रकार है—

जिस प्रकार कुंभार के आवा में पका हुआ उसी समय का नया सकोरा एक व्यक्ति अपने घर पर लावे और उसमें एक बूंद पानी की डाले तो सकोरा उसी वख्त उसको सोख लेगा, यहां तक कि उसका वहां नामोनिशां तक नहीं रहेगा। इसी तरह आगे भी एक २ कर डाले गये अनेक जलबिन्दुओं को वह सकोरा सोखलेगा, पर अन्तमें ऐसा समय आवेगा कि जब वह जलबिन्दुओं को सोखनेमें असमर्थ बन जायगा। फिर वह उन्हें न सोखकर उनसे गीला होने लगेगा। तथा उसमें डाले गये जलकण इकट्ठे होकर दिखलाई देने लगेंगे। अब यहां पर विचार करने की बात है कि शरावे की आर्द्रता जब पहिले-पहिल

વિષય થાય છે ત્યારે નિશ્ચયથી તે તેને એ પ્રકારે હૃદયમાં ધારણ કરી લે છે કે જેથી તે સંખ્યાત કાળ અથવા અસંખ્યાત કાળ સુધી ભૂલાતો નથી. આ સૂત્રનું તાત્પર્ય આ પ્રમાણે છે.

જે પ્રકારે કુંભારના નિભાડામાં પકાવેલ એજ સમયનું નવું શકોરૂં એક માણસ પોતાને ઘેર લાવે અને તેમાં પાણીનું ટીપું નાખે તો શકોરૂં ત્યારે જ તેને શોષી લે છે, એટલે સુધી કે ત્યાં તેનું નામનિશાન પણ રહેશે નહીં. એજરીતે પછીપણ એકે એકે નાખવામાં આવેલ પાણીનાં ટીપાંઓને તે શકોરૂ શોષી લેશે, પણ છેવટે એવો સમય આવશે કે જ્યારે તે શકોરૂં પાણીનાં ટીપાંઓને શોષવાને અસમર્થ થશે. ત્યારે તે તેને શોષતાં ભીનું ન થવાં લાગશે. અને તેમા નાખેલાં ટીપાંઓ એકત્ર થઈને દેખાવાં લાગશે. હવે આ જગ્યાએ વિચારવાની વાત એ છે કે શકોરાની આર્દ્રતા જ્યારે પહેલ વહેલી

ज्ञात होने लगती है तो क्या यह आर्द्रता पहिले-पहिल ही उसमें आई है इसके पूर्वमें वह उसमें जलबिन्दुओं के डालने पर नहीं आई थी? परन्तु ऐसा नहीं है, जब से उसमें जलबिन्दुओं का डालना प्रारंभ किया गया तब ही से उसमें आर्द्रता का आना प्रारंभ हो गया, परन्तु वह उसमें ज्ञात जो नहीं होती थी उसका कारण उसमें उसका तिरोभाव हो जाना था। जैसे २ जल की मात्रा बढी और सरावेमें पानी को सोखने की शक्ति कम होने लगी, तब कहीं उसमें आर्द्रता स्पष्ट ज्ञात होने लगी। इसी प्रकार जब किसी सुप्त व्यक्ति को पुकारा जाता है तब वह शब्द उसके कानमें लुप्त सा हो जाता है। दो चार बार पुकारने से उसके कानमें जब पौद्गलिक शब्दों की मात्रा काफी रूपमें भर जाती है तब जल-कणों से पहिले-पहिल आर्द्र होने वाले शरावे की तरह उस सुप्त व्यक्ति के कान भी शब्दों से परिपूरित होकर उनको सामान्यरूप से जाननेमें समर्थ हो जाते हैं।

"यह क्या है?"-यही सामान्यज्ञान है जो शब्द को पहिले-पहिल स्फुटतया जानता है। इस के बाद विशेषज्ञान का क्रम प्रारंभ होता है। इसमें ईहा, अवाय और धारणा का संबंध रहा हुआ है। धारणा से यहां पर उसका भेद रूप वासना का ग्रहण किया गया है। यदि

દેખાવા લાગે છે, ત્યારે જ શું પહેલ વહેલી જ તે તેમાં આવી છે, તેના પહેલાં પાણીના ટીપાં નાખતાં શું તે આવી ન હતી? પણ એવું નથી, જ્યારથી તેમાં પાણીનાં ટીપાં નાખવાનું શરૂ કર્યું ત્યારથી જ તેમાં આર્દ્રતાનું આવવું શરૂ થયું, પણ તે તેમાં જણાતી ન હતી, તેનું કારણ તેમાં તેનો તિરોભાવ થઈ જતો તે હતું. જેમ જેમ પાણીનું પ્રમાણ વધ્યુ, અને શકોરાની પાણી શોષવાની શક્તિ ઘટી, ત્યારે જ તેમાં ભીનાશ સ્પષ્ટરૂપે જણાવા લાગી. એજ રીતે જ્યારે કોઈ ઉંઘતી વ્યક્તિને બોલાવવામાં આવે છે ત્યારે તે શબ્દ તેના કાનમાં જાણે લુપ્ત થઈ જાય છે. બે ચાર વાર બોલાવવાથી જ્યારે તેના કાનમાં પૌદ્‌ગલિક શબ્દોની માત્રા પુરતાં પ્રમાણમાં ભરાઈ જાય છે ત્યારે જલકણોથી પહેલ વહેલા ભીનાં થતાં શકોરાની જેમ તે ઊંઘતી વ્યક્તિના કાન પણ શબ્દોથી પરિપૂરિત થઈને તેમને સામાન્યરૂપે જાણવાને સમર્થ થઈ જાય છે.

"આ શું છે" એજ સામાન્યજ્ઞાન છે, જે શબ્દને પહેલ વહેલા સ્પષ્ટ રીતે જાણે છે. ત્યાર બાદ વિશેષજ્ઞાનનો ક્રમ શરૂ થાય છે, તેમાં ઈહા, અવાય અને ધારણાનો સંબંધ રહેલ છે. ધારણાથી અહીં તેના ભેદરૂપ વાસનાનું

मूलम्—से जहानामए केइ पुरिसे अव्वत्तं सद्दं सुणिज्जा, तेणंसद्दोत्ति उग्गहिए, नो चेव णं जाणइ के वेस सद्दाइ। तओ ईहं पविसइ। तओ जाणइ अमुगे एस सद्दे। तओ अवायं पविसइ। तओ से उवगयं हवइ। तओ धारणं पविसइ। तओ णं धारेइ—संखेज्जं वा कालं, असंखेज्जं वा कालं।

से जहानामए केइ पुरिसे अव्वत्तं रूवं पासिज्जा, तेणं रूवेत्ति उग्गहिए, नो चेव णं जाणइ, के वेस रूवत्ति। तओ

यह वासनारूप धारणा संख्यात वर्षकी आयुवाले के हृदयमें जम गई है तो उसकी अपेक्षा यह संख्यातकालकी जाननी चाहिये, और यदि यह असंख्यातकालवाले भोगभूमिया आदि जीवों के हृदयमें जमी है तो इस अपेक्षा यह असंख्यातकाल की जाननी चाहिये।

यह पूर्वोक्त अवग्रहादिक का समस्त प्रकार का क्रम सुप्त पुरुष की अपेक्षा लेकर तो ठीक बैठ जाता है, परन्तु जाग्रत व्यक्तियों में वह अवग्रहादिक का क्रम किस प्रकार घटित हो सकता है? कारण—वहां तो शब्दश्रवण के अनन्तर ही अवग्रह ईहा को छोडकर अवायज्ञान हो जाता है। यह बात हरएक प्राणी जानता है। इस आशंका की निवृत्ति के लिये सूत्रकार मल्लक के दृष्टान्त से ही छह प्रकार के अवग्रह आदि का प्रदर्शन करते हैं—'से जहानामए०' इत्यादि।

ગ્રહણ કરાયુ છે. જો આ વાસનારૂપ ધારણા સંખ્યાત વર્ષની આયુવાળાનાં હૃદયમાં જામી ગઈ હોય તો તેની અપેક્ષાએ તે સંખ્યાતકાળની જાણવી જોઇએ, અને જો તે અસંખ્યાતકાળવાળા ભોગભૂમિયા આદિ જીવોનાં હૃદયમાં જામી હોય તો તે અપેક્ષાએ તે અસંખ્યાતકાળની જાણવી જોઈએ.

આ પૂર્વોકત અવગ્રહાદિકના સમસ્ત પ્રકારનો ક્રમ સુપ્ત પુરુષની અપેક્ષાએ તો બરાબર બંધ બેસતો આવે છે પણ જાગ્રત પુરુષોમાં આ અવગ્રહાદિકનો ક્રમ કેવી રીતે ઘટાવી શકાય? કારણ કે ત્યાં તો શબ્દશ્રવણ પછી જ અવગ્રહ ઈહાને છોડીને અવાયજ્ઞાન થઇ જાય છે. આ વાત દરેક પ્રાણી જાણે છે. આ અશંકાનાં નિવારણ માટે સૂત્રકાર શકોરાનાં દૃષ્ટાંતથી જ છ પ્રકારના અવગ્રહ આદિનું પ્રદર્શન કરે છે.—"से जहानामए०" ઈત્યાદિ.

ईहं पविसइ । तओ जाणइ—अमुगे एस रूवे । तओ अवायं पविसइ । तओ से उवगयं हवइ । तओ धारणं पविसइ । तओ णं धारेइ—संखेज्जं वा कालं, असंखेज्जं वा कालं ।

से जहानामए केइ पुरिसे अव्वत्तं गंधं अग्घाइज्जा, तेणं गंधंति उग्गहिए, नो चेव णं जाणइ—के वेस गंधेत्ति ?। तओ ईहं पविसइ । तओ जाणइ-अमुगे एस गंधे । तओ अवायं पविसइ । तओ से उवगयं हवइ । तओ धारणं पविसइ । तओ णं धारेइ-संखेज्जं वा कालं, असंखेज्जं वा कालं ।

से जहानामए केइ पुरिसे अव्वत्तं रसं आसाइज्जा, तेणं रसोत्ति उग्गहिए, नो चेव णं जाणइ के वेस रसेत्ति ?। तओ ईहं पविसइ । तओ जाणइ—अमुगे एस रसे । तओ अवायं पविसइ । तओ से उवगयं हवइ । तओ धारणं पविसइ । तओ णं धारेइ—संखेज्जं वा कालं असंखेज्जं वा कालं ।

से जहानामए केइ पुरिसे अव्वत्तं फासं पडिसंवेइज्जा, तेणं फासेत्ति उग्गहिए, नो चेव णं जाणइ—के वेस फासओत्ति ?। तओ ईहं पविसइ । तओ जाणइ—अमुगे एस फासे । तओ अवायं पविसइ। तओ से उवगयं हवइ। तओ धारणं पविसइ। तओ णं धारेइ—संखेज्जं वा कालं असंखेज्जं वा कालं ।

से जहानामए केइ पुरिसे अव्वत्तं सुमिणं पासिज्जा, तेणं सुमिणोत्ति उग्गहिए, नो चेव णं जाणइ—के वेस सुमिणेत्ति ?।

तओ ईहं पविसइ । तओ जाणइ—अमुगे एस सुमिणे । तओ अवायं पविसइ । तओ से उवगयं हवइ । तओ धारणं पविसइ । तओ णं धारेइ—संखेज्जं वा कालं असंखेज्जं वा कालं । से त्तं मल्लगदिट्ठंतेणं ॥ सू० ३५ ॥

छाया—स यथानामकः कश्चित् पुरुषोऽव्यक्तं शब्दं शृणुयात्, तेन शब्द इत्यवगृहीतम्, नो चैव खलु जानाति—को वैष शब्द इति? । तत ईहां प्रविशति । ततो जानाति—अमुक एष शब्दः । ततोऽवायं प्रविशति । ततः स उपगतो भवति । ततो धारणां प्रविशति । ततः खलु धारयति—संख्येयं वा कालम्, असंख्येयं वा कालम् ।

स यथानामकः कश्चित् पुरुषोऽव्यक्तं रूपं पश्येत्, तेन रूपमित्यवगृहीतम्, नो खलु चैव जानाति—किं वा एतद् रूपमति । तत ईहां प्रविशति । ततो जानाति—अमुकमेतद् रूपम् । ततोऽवायं प्रविशति । ततस्तदुपगतं भवति । ततो धारणां प्रविशति । ततः खलु धारयति—संख्येयं वा कालमसंख्येयं वा कालम् ।

स यथानामकः कश्चित् पुरुषोऽव्यक्तं गन्धमाजिघ्रेत्, तेन गन्ध इत्यवगृहीतम्, नो चैव खलु जानाति—को वैष गन्ध इति? । तत ईहां प्रविशति । ततो जानाति—अमुक एष गन्ध इति । ततोऽवायं प्रविशति, ततः स उपगतो भवति । ततो धारणां प्रविशति । ततः खलु धारयति—संख्येयं वा कालम् असंख्येयं वा कालम् ।

स यथानामकः कश्चित् पुरुषोऽव्यक्तं रसमास्वादयेत्, तेन रस इत्यवगृहीतम्, नो चैव खलु जानाति—को वैष रस इति । तत ईहां प्रविशति । ततो जानाति—अमुक एष रसः । ततोऽवायं प्रविशति । ततः स उपगतो भवति । ततो धारणां प्रविशति । ततः खलु धारयति—संख्येयं वा कालम्, असंख्येयं वा कालम् ।

स यथानामकः कश्चित् पुरुषोऽव्यक्तं स्पर्शं प्रतिसंवेदयेत्, तेन स्पर्श इत्यवगृहीतम्, नो चैव खलु जानाति को वैष स्पर्श इति ? । तत ईहां प्रविशति । ततो जानाति—अमुक एष स्पर्शः । ततोऽवायं प्रविशति । ततः स उपगतो भवति । ततो धारणां प्रविशति । ततः खलु धारयति—संख्येयं वा कालम्, असंख्येयं वा कालम् ।

स यथानामकः कश्चित् पुरुषोऽव्यक्तं स्वप्नं पश्येत्, तेन स्वप्न इत्यवगृहीतम्, नो चैव खलु जानाति—को वैष स्वप्न इति ? । तत ईहां प्रविशति । ततो जानाति—अमुक एष स्वप्नः । ततोऽवायं प्रविशति । ततः खलु धारयति—संख्येयं वा कालम् असंख्येयं वा कालम् । तदेतत् मल्लकदृष्टान्तेन ॥ सू० ३५ ॥

टीका—'से जहानामए०' इत्यादि । स यथानामकः कश्चित् पुरुषोऽव्यक्तं शब्दं शृणुयात्, अव्यक्तमित्यनेन नामजात्यादिकल्पनारहितमनिर्देश्यमिति गम्यते, तथा-चार्थावग्रहज्ञानमुक्तम् । अर्थावग्रहश्च श्रोत्रेन्द्रियसम्बन्धी व्यञ्जनावग्रहं विना न भवतीति पूर्वं व्यञ्जनावग्रहो भवतीत्यपि सूचितम् ।

नन्वेवं क्रमो नोपलभ्यते, किंतु प्रथमत एव शब्दस्यावायज्ञानं जायते, इह

जैसे कोई पुरुष जब नाम, जाति आदि की कल्पना से रहित शब्द को सुनता है तब उसे ऐसा सामान्य बोध होता है कि यह शब्द है। इसी बोध का नाम अर्थावग्रह है। इस बोध में उसको ऐसा ज्ञान नहीं होता है कि यह शब्द किस स्वरूप वाला, अथवा किसका है। कारण अर्थावग्रह में सामान्य बोध रहता है, विशेष नहीं। यहां जो शब्द का सामान्य बोध उस सुनने वाले को हुआ है वह श्रोत्रइन्द्रिय-संबंधी अर्थावग्रह है। यह नियम है कि अर्थावग्रह के पहिले व्यञ्जनावग्रह होता ही है, अतः अब श्रोत्रेन्द्रिय-संबंधी अर्थावग्रह हुआ है तो स्वतः सिद्ध हो जाता है कि उसको पहिले व्यंजनावग्रह हो चुका है। जब वह आगे जानने की आकांक्षा में प्रविष्ट होता है तो वह शब्दविषयक ईहा-ज्ञान में अपने को पाता है। तब वह यह जानने की तरफ झुकता है कि यह शब्द यह स्वरूपवाला होना चाहिये।

शंका—जाग्रत अवस्था में पुरुष को ऐसा क्रम तो मालूम पड़ता नहीं है, किन्तु पहिले से ही उसको शब्द का अवायरूप ज्ञान हो जाता है।

જેમ કોઈ પુરુષ જ્યારે નામ, જાતિ આદિની કલ્પનાથી રહિત શબ્દને સાંભળે છે, ત્યારે એવો સામાન્ય બોધ થાય છે કે આ શબ્દ છે. એજ બોધનું નામ અર્થાવગ્રહ છે. તે બોધમાં તેને એવું જ્ઞાન નથી થતું કે આ શબ્દ કયાં સ્વરૂપ-વાળો અથવા કોનો છે? કારણ કે અર્થાવગ્રહમાં સામાન્ય બોધ રહે છે. વિશેષ નહીં, ને સાંભળનારને જે શબ્દનો સામાન્ય બોધ થયો છે તે શ્રોત્રેન્દ્રિય સંબંધી અર્થાવગ્રહ છે. એ નિયમ છે કે અર્થાવગ્રહનાં પહેલાં વ્યંજનાવગ્રહ થાય જ છે; તેથી જ્યારે શ્રોત્રેન્દ્રિયસંબંધી અર્થાવગ્રહ થયો છે, ત્યારે એ આપોઆપ સિદ્ધ થાય છે કે તેને પહેલા વ્યંજનાવગ્રહ થઈ ગયો છે. જ્યારે તે આગળ જાણવાની ઈચ્છામાં પ્રવેશ કરે છે ત્યારે તે શબ્દવિષયક ઈહાજ્ઞાનમાં પોતાને પામે છે. ત્યારે તે એ જાણવા તરફ ઝુકે છે કે આ શબ્દ આ સ્વરૂપવાળો હોવો જોઈએ.

શંકા—જાગૃત અવસ્થામાં પુરુષને એવો ક્રમ તો જણાતો નથી; પણ પહે-લેથી જ તેને શબ્દનું અવાયરૂપ જ્ઞાન થઈ જાય છે. સૂત્રમાં શબ્દનુ "અવ્યક્ત"

सूत्रेऽपि अव्यक्तमिति विशेषणं शब्दस्य कृतम्, तस्मादयमर्थो व्याख्येयः— अव्यक्तम्=अनवधारितशाङ्खशाङ्गार्दिविशेषं, पुरुषादिशब्दसंशयाक्रान्तं वा शब्दं शृणुयादिति। इदं च व्याख्यानमुत्तरवाक्यानुकूलम्, तथाहि-'तेणं सद्देत्ति उग्गहिए' तेन=श्रोत्रा 'शब्द' इत्यवगृहीतं=ज्ञातम् इत्यनन्तरमेवोच्यते। किंतु 'नो चेव णं जाणइ के वेस सद्दाइ' नो चैव खलु जानाति को वा एष शब्द इति-एष शब्दः शाङ्खः

सूत्र में जो शब्द का 'अव्यक्त' ऐसा विशेषण किया है, उससे ऐसा अर्थ लभ्य होता है कि शब्द सुनने पर शब्द का तो अवायज्ञान ही होता है, किन्तु 'यह शब्द शंख का है अथवा सींगे का है या किसी पुरुष आदि का है' इस रूप से निश्चय नहीं हो सकने के कारण वह अव्यक्त है। ऐसा अर्थ करने पर ही नीचे के सूत्रांश के साथ अर्थसंगति बैठ सकती है। वह इस प्रकार से-जब श्रोता शब्द को सुनता है तो उसको यह निश्चय हो जाता है कि यह शब्द है, परन्तु वह यह नहीं जानता है कि यह शब्द किसका है? शंख का है या सींग का है? अथवा पुरुष वगैरह का है? जब इस प्रकार से विशेष जानने की आकांक्षा होती है तो वह ईहाज्ञानमें प्रवेश करता है। तो फिर वह यह जान लेता है कि वह शब्द अमुक का है।-इत्यादिरूप से व्याख्यान करने पर ही अर्थ की सुसंगति बैठती है?। शंकाकार की इस शंका का तात्पर्य इस प्रकार है- शंकाकार जाग्रत अवस्थामें शब्द का श्रवण होने पर केवल उसका

એવું જે વિશેષણ લગાડેલ છે, તેનાથી એવો અર્થ પ્રાપ્ત થાય છે, કે શબ્દ સાંભળતાં શબ્દનું તો અવાયજ્ઞાન જ થાય છે. પણ "આ શબ્દ શંખનો છે અથવા શિંગડાનો છે કે કોઈ પુરુષ આદિનો છે" તે રૂપે નિશ્ચય નહીં થઈ શકવાને કારણે તે અવ્યક્ત છે. એવો અર્થ કરતા જ નીચેના સૂત્રાંશની સાથે સુસંગતતા આવી શકશે. તે આ પ્રકારે-જ્યારે શ્રોતા શબ્દ સાંભળે છે ત્યારે તેને એ નિશ્ચય થઈ જાય છે કે આ શબ્દ છે, પણ તે એ નથી જાણતો કે આ શબ્દ કોનો છે? શંખનો છે કે શિંગડાનો છે? અથવા પુરુષ વગેરેનો છે? જ્યારે આ પ્રકારે વિશેષ જાણવાની આકાંક્ષા થાય છે, ત્યારે તે ઈહાજ્ઞાનમાં પ્રવેશ કરે છે. ત્યારપછી તે એ જાણી લે છે કે આ શબ્દ અમુકનો છે. આ પ્રકારે સમજાવવાથી જ અર્થની સુસંગતતા ઘટાવી શકાય છે. શંકા કરનારની આ શંકાનું તાત્પર્ય આ પ્રમાણે છે-શંકા કરનાર જાગૃત અવસ્થામાં શબ્દનું શ્રવણ થતાં કેવળ તેનું અવાયજ્ઞાન જ માને છે, અવગ્રહરૂપ જ્ઞાન નહીં, તે કારણે

शार्ङ्गो वा, पुरुषादिसमुत्थो वा इति। तथा-'तत ईहां प्रविशति' इत्याद्यपि सर्वं समन्वितं भवतीति चेत्,

तदयुक्तम्-इह हि यत् किमपि वस्तु निश्चीयते, तत्सर्वमीहापूर्वकम्, ईहा-वर्जितस्य सम्यग्निश्चितत्वायोगात्। चक्षुषि धूमसंनिपाते सति धूमादर्शने प्रथमतो यावत्-'किमयं धूमः, किं वा मशकविशेषः?' इति विमृश्य, धूमगतकण्ठक्षरण-कालीकरण-सोष्मतादिधर्मदर्शनात् सम्यग् धूमं धूमत्वेन न विनिश्चिनोति, तावत् स धूमो निश्चितो न भवति, संशयानिवृत्त्या तस्य सम्यग्निश्चितत्वायोगात्। तस्मा-

---

अवायज्ञान ही मानता है, अवग्रहज्ञान नहीं; इसीलिये शंकाकारने इस-सूत्र के अर्थ को शब्द का अवायज्ञान होने पर बादमें 'यह शब्द किस का है' इस विषय की जिज्ञासामें ईहा आदि के संबंध में बैठाया है।

उत्तर—'शंकाकार का ऐसा कहना' उचित नहीं है, कारण जब भी जिस किसी भी वस्तु का निश्चय होता है तो वह निश्चय ईहाज्ञान-पूर्वक ही होता है, ऐसा नियम है। विना ईहाज्ञान हुए वस्तु का यथार्थ निश्चय नहीं हो सकता। देखो आँखें जब धुँआ से रूँध जाती हैं तब उस समय धुँआ दिखलाई नहीं पड़ता है, तब धुँआ से रूँधी हुई आँखोंवाला वह व्यक्ति इस सोच-विचारमें पड़ जाता है कि क्या यह धुँआ है अथवा कोई मच्छर विशेष है? इस प्रकार संदेहशील विचार के बाद जब तक वह धुँए से होने वाले कण्ठक्षरण, कालीकरण तथा सोष्मता आदि धर्मों का अनुभव नहीं कर लेता है तबतक वह धूम का धूमरूप से निश्चय नहीं करता है, कारण अभीतक उसका उस विषयमें

શંકા કરનારે આ સૂત્રના અર્થને શબ્દનું અવાયજ્ઞાન થયાં પછી "આ શબ્દ કોનો છે" તે વિષેની જિજ્ઞાસામાં ઈહા આદિના સંબંધમાં ઘટાવ્યો છે.

ઉત્તર—શંકાકરનારનું એમ કહેવું તે ઉચિત નથી, કારણ કે જ્યારે પણ જે કોઈ પણ વસ્તુનો નિશ્ચય થાય છે, ત્યારે તે ઈહાજ્ઞાનપૂર્વક જ થાય છે, એવો નિયમ છે. ઈહાજ્ઞાન થયાં વિના વસ્તુનો યથાર્થ નિશ્ચય થઈ શકતો નથી. જુવો આંખો જ્યારે ધુમાડાથી રૂંધાઈ જાય છે ત્યારે ધુમાડાથી રૂંધાયેલ આંખોવાળી તે વ્યક્તિ એવા વિચારમાં પડી જાય છે કે શું આ ધુમાડો છે કે કોઈ મચ્છરવિશેષ છે? આ રીતે સંદેહશીલ વિચાર પછી જ્યાં સુધી તે ધુમાડા વડે થતા કંઠક્ષરણ, કાલીકરણ, તથા સોષ્મતા આદિ ધર્મોનો અનુભવ કરતો નથી, ત્યાં સુધી તે ધુમાડાનો ધુમાડારૂપે નિર્ણય કરી શકતો નથી. કારણ

दवश्यं यो वस्तुविशेषनिश्चयः स ईहापूर्वकः। शब्दोऽयमिति च निश्चयो रूपादि व्यवच्छेदात्। ततोऽवश्यमितः पूर्वमीहया भवितव्यम्। ईहा च प्रथमतः सामान्य-रूपेणावगृहीते सति भवति, न त्वनवगृहीते। न खलु सर्वथा निरालम्बनमीहनं भवदुपलभ्यते। न चानुपलभ्यमानं प्रतिपत्तुं शक्नुमः, तस्मात् ईहायाः प्राग् अव-ग्रहोऽपि नियमेन भवतीति मन्तव्यम्। अवग्रहश्च 'शब्दोऽय'-मिति ज्ञानात् पूर्वं प्रवर्तमानोऽनिर्देश्यसामान्यमात्रग्रहणरूप एवोपपद्यते नान्यः। अत एवोक्तं भगवता -'अव्वत्तं सद्दं सुणिज्जा' इति। स हि परमार्थतः शब्द एव, किंतु अव्यक्तमिति-

---

संशय बना हुआ है। धूमविषयक संशय की निवृत्ति होते ही 'यह धूम है' ऐसा उसको निश्चय हो जाता है, अतः यह मानना पड़ता है कि वस्तु का जो निर्णयज्ञान है वह ईहाज्ञानपूर्वक ही होता है। जब श्रोता "यह शब्द है" ऐसा निश्चयज्ञान कर लेता है तो इसका तात्पर्य यह है कि उसको यह निश्चय हो चुका है कि 'यह शब्द ही है, रूपादिक नहीं है'। इस प्रकार रूपादिक के व्यवच्छेद से जब वह शब्द का निश्चय कर लेता है तो यह ज्ञान उसको ईहापूर्वक हुआ ही माना जावेगा, और यह ईहाज्ञान विना अवग्रह के होता नहीं है, अतः ईहा के सद्-भाव से शब्द का अवग्रहरूपज्ञान उसको हुआ है, यह बात भी स्वीकार करनी पड़ेगी, क्यों कि ईहाज्ञान का आधार अवग्रहज्ञान होता है। अव-ग्रह का विषय सामान्य है, इसलिये "यह शब्द है," ऐसा जो अवग्रह-ज्ञान का विषय शब्द हुआ है वह विशेषज्ञान रूप नहीं है, किन्तु अव्यक्त

કે હજી સુધી તેનો તે વિષે સંશય રહેલોજ છે. ધુમાડા વિષેના સંશયનું નિરા-કરણ થતાં જ "આ ધુમાડો છે" એવો તેનો નિર્ણય થઈ જાય છે, તેથી એ માનવું પડે છે કે વસ્તુનું જે નિર્ણયજ્ઞાન છે તે ઈહાજ્ઞાનપૂર્વક જ થાય છે. જો શ્રોતા "આ શબ્દ છે" એવું નિશ્ચયજ્ઞાન કરી લે છે, તો તેનું તાત્પર્ય એ છે કે તેને એ નિશ્ચય થઈ ચુકયો છે કે "આ શબ્દ જ છે, રૂપાદિક નથી." આ પ્રકારે રૂપાદિકના વ્યવચ્છેદથી જ્યારે તે શબ્દનો નિશ્ચય કરી લે છે, ત્યારે તેનું એ જ્ઞાન ઇહાપૂર્વક જ માની શકાશે, અને એ ઇહાજ્ઞાન અવગ્રહ વિના થતું નથી, તેથી ઈહાના સદ્‌ભાવથી તેને શબ્દનું અવગ્રહરૂપ જ્ઞાન થયું છે, એ વાત પણ સ્વીકારવી પડશે. કારણ કે ઈહાજ્ઞાનનો આધાર અવગ્રહજ્ઞાન હોય છે. અવગ્રહનો વિષય સામાન્ય છે, તે કારણે "આ શબ્દ છે" એવાં જે અવગ્રહ-જ્ઞાનનો વિષય શબ્દ થયો છે તે વિશેષજ્ઞાનરૂપ નથી; પણ અવ્યક્ત નામજાત્યા-

व्यक्तं न शृणोति, किंतु सामान्यमात्रमनिर्देश्यं गृह्णातीत्यर्थः। यदपि चोक्तम्-तेन श्रोत्रा शब्द इत्यवगृहीतमिति, तदिदमवग्रहप्रतिपादनार्थमुक्तम्, न तु तेन श्रोत्रा 'शब्दः' इति निश्चयेन ज्ञातम्, अत एव तस्य विवरणं कुर्वन् भगवानाह—'नो चेव णं' इत्यादि। नो चैव जानाति-क एष शब्दः? इति-शब्दतया तमर्थं न जानातीत्यर्थः, अर्थावग्रहस्य अनिर्देश्यसामान्यमात्रप्रतिभासकत्वात्। अर्थावग्रहश्च श्रोत्रेन्द्रियघ्राणेन्द्रियादीनां व्यञ्जनावग्रहपूर्वक इति पूर्वं व्यञ्जनावग्रहोऽपि द्रष्टव्यः। तदेवं

नामजात्यादिक से अनिर्देश्य मात्र सामान्यरूप ही है। यही बात सूत्रकारने "अव्वत्तं सद्दं सुणिज्जा" इस सूत्रांश से प्रकट की है। श्रोता के कानमें पडते ही वह यह जान लेता है कि 'यह परमार्थतः शब्द ही है किन्तु अव्यक्त है' व्यक्तरूप-विशेषरूप-से वह उसे ग्रहण नहीं करता है-मात्र सामान्यरूप से ही वह उसे जानता है। सूत्रकारने जो ऐसा कहा है कि उस श्रोता ने 'यह शब्द है' ऐसा जो जाना है सो उसका तात्पर्य यही है कि उसने उसको अवग्रहज्ञान के द्वारा ही जाना है। इस तरह सूत्रकार का यह कथन अवग्रह के प्रतिपादन निमित्त जानना चाहिये। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि उस श्रोता ने शब्द का निश्चय कर लिया है। इसी बात का विवरण करते हुए सूत्रकार आगे कह रहे हैं-कि "नो चेव णं" इत्यादि। 'यह शब्द किसका है' अथवा 'किस स्वरूप वाला है' यह बात उस समय श्रोता नहीं जानता है। अवग्रह दो प्रकार का है-(१) व्यंजनावग्रह (२) अर्थावग्रह। व्यंजनावग्रह की ही

દિકથી અનિર્દેશ્ય માત્ર સામાન્યરૂપ જ છે. એજ વાત સૂત્રકારે "अव्वत्तं सद्दं सुणिज्जा" આ સૂત્રાંશથી પ્રગટ કરેલ છે. શ્રોતાનાકાને પડતા જ તે એ જાણી લે છે કે "આ પરમાર્થતઃ શબ્દ જ છે પણ અવ્યક્ત છે" વ્યક્તરૂપ વિશેષરૂપે તે તેને ગ્રહણ કરતો નથી. માત્ર સામાન્યરૂપે જ તે તેને જાણે છે. સૂત્રકારે જે એમ કહ્યું કે શ્રોતાએ "આ શબ્દ છે" એવું જે જાણ્યું છે, તેનું તાત્પર્ય એજ છે કે તેણે તેને અવગ્રહજ્ઞાન દ્વારા જ જાણ્યો છે આ રીતે સૂત્રકારનુ આ કથન અવગ્રહના પ્રતિપાદન નિમિત્ત જાણવું જોઈએ. તેનું તાત્પર્ય એ નથી કે શ્રોતાએ શબ્દનો નિશ્ચય કરી લીધો છે. એજ વાતનું વિવરણ કરતાં સૂત્રકાર આગળ કહે છે કે-"नो चेव णं" ઈત્યાદિ. "આ શબ્દ કોનો છે" અથવા "કયા સ્વરૂપવાળો છે" આ વાત તે સમયે શ્રોતા જાણતો નથી. અવગ્રહ બે પ્રકારનો છે-(૧) વ્યંજનાવગ્રહ, (૨) અર્થાવગ્રહ વ્યંજનાવગ્રહની જ પુષ્ટપર્યાય અર્થાવગ્રહ છે, આ વાત હમણાં જ બતાવાઈ ગઈ છે. અર્થાવગ્રહનો

सर्वत्रापि अवग्रहेहापूर्वमवायज्ञानमुत्पद्यते, केवलमभ्यासदशामापन्नस्य शीघ्रतरमवग्रहादयः प्रवर्तन्ते इति कालसौक्ष्म्यात् ते स्पष्टं न संवेद्यन्ते। यथा उत्पलपत्रशतभेदने कालभेदो दुर्लक्ष्यस्तथाऽवग्रहेहाकालस्य दुर्लक्ष्यतया सुस्पष्टबोधो न भवति।

पुष्टपर्याय अर्थावग्रह है, यह बात अभी बतलाई ही जा चुकी है। अर्थावग्रह का विषय मात्र सामान्य है और यह श्रोत्रेन्द्रिय जन्य अर्थावग्रह अथवा घ्राणेन्द्रिय आदि जन्य अर्थावग्रह व्यंजनावग्रहपूर्वक ही होता है। इसलिये यह बात सर्वत्र पदार्थ का ज्ञान होते समय स्वीकार करनी चाहिये कि अवायज्ञान अवग्रह तथा ईहापूर्वक ही होता है, विना इनके नहीं। हां ! जो अभ्यासदशासंपन्न व्यक्ति हैं उनमें ये अवग्रहादिक शीघ्रतर प्रवर्तित होते रहते हैं, अतः काल की सूक्ष्मता से स्पष्टरूप से अनुभवमें नहीं आते, और ऐसा ज्ञान होता है कि अवग्रह ईहा के विना भी अवायज्ञान हो गया है। कमल के सौ पत्तों को एक पर एक रखकर जब कोई व्यक्ति उन्हें सुई से छेदता है तो उसे ऐसा ही मालूम होता है कि ये सब पत्ते एक ही साथ छिद गये हैं, परन्तु ये सब पत्ते एक साथ नहीं छिदे हैं, क्रमशः ही छिदे हैं, परन्तु काल की सूक्ष्मता एक साथ छिदे ही ज्ञात होते हैं। इसी तरह अभ्यासदशामें अवग्रह आदि का काल अतिसूक्ष्म होने से दुर्लक्ष्य होता है, अतः वहां इनका समयभेद अनुभवमें नहीं आता है।

વિષય માત્ર સામાન્ય છે, અને આ શ્રોત્રેન્દ્રિયજન્ય અર્થાવગ્રહ, અથવા ઘ્રાણેન્દ્રિય આદિ જન્ય અર્થાવગ્રહ, વ્યંજનાવગ્રહપૂર્વક જ થાયછે. તે કારણે આ વાત સર્વત્ર પદાર્થનું જ્ઞાન થતી વખતે સ્વીકારવી જોઈએ કે અવાયજ્ઞાન, અવગ્રહ તથા ઈહાપૂર્વક જ થાય છે, તેમના વિના નહીં. હા, જે અભ્યાસદશાસંપન્ન વ્યક્તિઓ છે તેમનામાં અવગ્રહાદિક વધારેઝડપથી પ્રવર્તિત થતાં રહે છે. તેથી કાળની સૂક્ષ્મતાથી તેઓ સ્પષ્ટરૂપે અનુભવવામાં આવતા નથી, અને એવું લાગે છે કે અવગ્રહ ઈહા વિના પણ અવાયજ્ઞાન થઈ ગયું છે. કમળનાં સો પાનને એક ઉપર એક ગોઠવીને જ્યારે કોઈ વ્યકિત તેમને સોય વડે છેદે છે, તો તેને એમ જ લાગે છે કે એ સઘળાં પાન એકજ સાથે છેદાઈ ગયાં છે. પણ તે બધાં પાન એકસાથે છેદાયાં નથી, વારા ફરતી છેદાયાં છે, તોપણ કાળની સૂક્ષ્મતાને લીધે તેઓ એકસાથે છેદાયાં હોય એવું લાગે છે. એજ રીતે અભ્યાસદશામાં અવગ્રહઆદિનો કાળ અતિસૂક્ષ્મ હોવાથી દુર્લક્ષ્ય થાય છે, તેથી ત્યાં તેમનો સમયભેદ અનુભવવામાં આવતો નથી.

ननु ईहाऽपि 'किमयं शाङ्खः, किं वा शार्ङ्गः?' इत्येवंरूपतया प्रवर्तते, संशयोऽपि चैवमेव, ततः कोऽनयोः प्रतिविशेषः ?,

उच्यते—इह यद् ज्ञानं शाङ्खशार्ङ्गादिविशेषान् अनेकान् आलम्बते, न चासद्भूतं विशेषमपहातुं शक्नोति, किं तु सर्वात्मना शयानमिव वर्तते-कुण्ठीभूतं तिष्ठतीत्यर्थः, तदसद्भूतविशेषापर्युदासपरिकुण्ठितं संशयज्ञानमुच्यते। यत्तु ज्ञानं सद्भूतार्थविशेषविषये हेतूपपत्तिव्यापारतया सद्भूतार्थविशेषोपादानाभिमुखमसद्भूतविशेषत्यागाभिमुखं च तदीहा। इह यदि वस्तु सुबोधं भवति, विशिष्टश्च मतिज्ञा-

शंका—"क्या यह शंख का शब्द है अथवा सींग का शब्द है" इसरूप से प्रवर्तित होने वाले ज्ञान को आप ईहा कह रहे हैं तो फिर संशयमें और ईहामें क्या भेद रहेगा, कारण संशयज्ञान भी इसी तरह से प्रवर्तित होता है ?।

उत्तर—जो ज्ञान शंख और शार्ङ्ग आदि परस्पर विरुद्ध अनेक विशेषों को विषय करता है-उनका परित्याग नहीं करता है; किन्तु उन परस्पर विरुद्ध अनेक कोटियोंमें सोया हुआ जैसा रहता है-किसी भी विशेष का निश्चय नहीं कर सकता है, ऐसे ज्ञान का नाम संशय है। ऐसा ज्ञान ईहा नहीं है, क्यों कि इस ज्ञानमें सद्भूतार्थविशेषविषयता रहती है, कारण यह ज्ञान हेतु आदि के व्यापार से सद्भूतार्थविशेष को उपादान करने की तर्फ झुका रहता है, तथा असद्भूतविशेष का इसमें परित्याग रहता है। तात्पर्य इसका यह है-संशयज्ञानमें ऐसा बोध रहता है कि 'यह शंख का शब्द है अथवा सींगे का शब्द है'।

શંકા—"શું "આ શંખનો શબ્દ છે અથવા શિંગડાનો શબ્દ છે" એ રૂપે પ્રવર્તિત થનારાં જ્ઞાનને આપ ઈહા કહો છો, તો પછી સંશયમાં અને ઈહામાં શો ભેદ હશે, કારણ કે સંશયજ્ઞાન પણ એજ રીતે પ્રવર્તિત થાય છે?

ઉત્તર—જે જ્ઞાન શંખ અને શિંગડા આદિ પરસ્પરવિરુદ્ધ અનેક વિશેષોને વિષય કરે છે. તેમનો પરિત્યાગ કરતું નથી, પણ એ પરસ્પરવિરુદ્ધ અનેક કોટીઓમાં સુપ્ત હોય એમ રહે છે-કોઈપણ વિશેષનો નિર્ણય કરી શકતું નથી, એવાં જ્ઞાનનુ નામ સંશય છે. એવું જ્ઞાન ઈહા નથી, કારણ કે આ જ્ઞાનમાં સદ્ભૂતાર્થવિશેષવિષયતા રહે છે, કારણ કે આ જ્ઞાન હેતુ આદિના વ્યાપારથી સદ્ભૂતાર્થવિશેષને ઉપાદાન કરવાની તરફ ઝુકેલ રહેછે, તથા અસદ્ભૂતવિશેષનો તેમાં પરિત્યાગ રહ્યા કરે છે. તેનું તાત્પર્ય એ છે કે-સંશય જ્ઞાનમાં એવો બોધ રહે છે કે "આ શંખનો શબ્દ છે કે શિંગડાનો શબ્દ છે."

नावरणक्षयोपशमो वर्तते, ततोऽन्तर्मुहूर्तकालेन नियमात् तद्वस्तु निश्चिनोति। यदि तु वस्तु दुर्बोधं भवति, न च तथाविधो विशिष्टो मतिज्ञानावरणक्षयोपशमस्ततः ईहोपयोगादच्युतः पुनरप्यन्तर्मुहूर्तकालमीहते। एवमीहोपयोगाविच्छेदेन प्रभूतान्यन्तर्मुहूर्तानि

इस तरह परस्पर विरुद्ध अनेक कोटियों को अवलंबन करनेवाला संशय ज्ञान होता है तब कि ईहामें 'यह शंख का शब्द होना चाहिये अथवा सींग का शब्द होना चाहिये' ऐसा ही एक तर्फ निर्णयाभिमुख बोध रहता है। 'यह शंख का शब्द होना चाहिये; क्यों कि इसके ही माधुर्य आदि अमुक २ विशेष धर्म पाये जाते हैं, सींग का यह शब्द नहीं होना चाहिये, क्यों कि उसके कर्कशता, कठोरता आदि अमुक २ विशेष धर्म यहां उपलब्ध नहीं हो रहे हैं।' इस तरह ईहाज्ञानमें विशेषार्थ के निर्णय के सन्मुख हुए तथा असद्भूतविशेष अर्थ के परित्याग की तरफ झुके हुए बोध का उदय रहता है। संशयमें ऐसा नहीं होता। इसलिये ईहाज्ञानमें और संशयज्ञानमें बडा अन्तर है। ईहित वस्तु यदि सुबोध होती है, तथा मतिज्ञानावरण कर्म का विशिष्ट क्षयोपशम उस जीव के होता है तो वह वस्तु अन्तर्मुहूर्त्तकालमें नियमसे निश्चित हो जाती है। यदि वह ईहित वस्तु दुर्ज्ञेय है, तथा ज्ञाता के मतिज्ञानावरणीयकर्म का विशिष्ट क्षयोपशम नहीं है तो वह ज्ञाता ईहारूप उपयोग से अच्युत बना हुआ ही

આ પ્રકારે પરસ્પરવિરુદ્ધ અનેક કોટીઓનું અવલંબન કરનાર સંશયજ્ઞાન હોય છે, ત્યારે ઇહામાં " આ શંખનો શબ્દ હોવો જોઈએ. અથવા શિંગડાનો શબ્દ હોવો જોઇએ " એવો એક તરફના નિર્ણય તરફ ઝુકતો બોધ રહ્યા કરે છે." આ શંખનોશબ્દ હોવોજોઇએ; કારણ કે તેમાં તેના જ માધુર્ય આદિ અમુક અમુક વિશેષગુણો મળે છે, શિંગડાનો આ શબ્દ ન હોવો જોઇએ, કારણ કે તેના કર્કશતા, કઠોરતા આદિ અમુક અમુક વિશેષગુણ અહીં પ્રાપ્ત થતા નથી." આ રીતે ઇહાજ્ઞાનમા વિશેષાર્થના નિર્ણયનીતરફ અને અસદ્ભૂતવિશેષ અર્થના પરિત્યાગ તરફ ઝુકેલ બોધનો ઉદય રહે છે. સંશયમાં એવું થતું નથી. તે કારણે ઈહાજ્ઞાન અને સંશયજ્ઞાન વચ્ચે મોટો ભેદ છે. ઈહિત વસ્તું જો સુબોધ હોય છે. તથા તે જીવને મતિજ્ઞાનાવરણ કર્મનો વિશિષ્ટ ક્ષયોપશમ થાયછે, તો તે વસ્તુ અન્તર્મુહૂર્તકાળમાં નિયમથી નિશ્ચિત થઈ જાય છે. જો તે ઇહિત વસ્તુ દુર્જ્ઞેય હોય તથા જ્ઞાતાના મતિજ્ઞાનાવરણીયકર્મનો વિશિષ્ટક્ષયોપશમ ન થયો હોય, તો તે જ્ઞાતા ઇહારૂપ ઉપયોગથી અચ્યુત બનીને જ ફરિથી અન્તમુ-

यावदीहते। तत ईहानन्तरं जानाति–'अमुक एषोऽर्थः शब्दः' इति–अयमर्थः शब्द एव न तु रूपादिरिति । इदं च ज्ञानमवायरूपम् । ततः=तदा सः=शब्दरूपोऽर्थः उपगतः=ज्ञातो भवति–तदवायज्ञानमात्मनि परिणतं भवतीति भावः । ततो धारणां प्रविशति, इह धारणा कालान्तरेऽप्यविस्मरणरूपा । ततः खलु धारयति–संख्येयं वा कालम् , असंख्येयं वा कालम् ।

चक्षुरिन्द्रियेण यथाऽवग्रहादयो भवन्ति, तथा वर्णयति–' से जहानामए केइ पुरिसे अव्वत्तं रूवं पासिज्जा० ' इत्यादि । स यथानामकः कश्चित् पुरुषोऽव्यक्तं

पुनः अन्तर्मुहूर्तकालतक उस वस्तु का ईहाज्ञान का विषयभूत बनता है। इस तरह ईहारूप उपयोग के अविच्छेद से उसके अनेक अन्तर्मुहूर्त ईहाज्ञानमें निकल जाते हैं तब यह जानता है कि " अमुक एषोऽर्थः शब्दः" यह शब्द ही है, रूपादिक नहीं हैं। इसके बाद वह अवायज्ञानमें प्रविष्ट होता है, तब उसको वह शब्दरूप अर्थ उपगत–ज्ञात होता है। अवायज्ञान जिस समय आत्मामें परिणत हो जाता है तो वह ज्ञाता उस शब्दरूप अर्थ को हृदयमें धारण करने के लिये धारणारूप ज्ञानमें प्रवेश करता है । धारणा आत्मामें ऐसा संस्कार उत्पन्न कर देती है कि जिससे आत्मा उस वस्तु को कालान्तरमें भी नहीं भूलता है । संख्यातकाल तक अथवा असंख्यात काल तक वह वस्तु अवधारित बनी रहती है ॥

अब चक्षु इन्द्रिय से अवग्रहादिक जिस तरह से होते हैं सूत्रकार यह वर्णन करते हैं—' से जहानामए० ' इत्यादि।

હૂર્તકાળસુધી, એ વસ્તુને ઇહાજ્ઞાનના વિષયભૂત બનાવે છે. આરીતે ઈહારૂપ ઉપયોગના અવિચ્છેદથી તેનાં અનેક અન્તર્મુહૂર્ત ઈહાજ્ઞાનમાં વીતી જાય છે, ત્યારે તે જાણે છે કે " अमुक एषोऽर्थः शब्दः " આ શબ્દજ છે રૂપાદિક નથી. ત્યારબાદ તે અવાયજ્ઞાનમાં પ્રવેશ કરે છે. તેને તે શબ્દરૂપ અર્થ ઉપગત–જ્ઞાત થાય છે. અવાયજ્ઞાન જે સમયે આત્મામાં પરિણત થઈ જાય છે, ત્યારે તે જ્ઞાતાવ્યકિત તે શબ્દરૂપ અર્થને હૃદયમાં ધારણકરવાને માટે ધારણારૂપ જ્ઞાનમાં પ્રવેશ કરે છે. ધારણા આત્મામાં એવા સંસ્કાર ઉત્પન્ન કરી નાખે છે કે જેથી આત્મા તે વસ્તુને કાળાન્તરે પણ ભૂલતો નથી. સંખ્યાતકાળ સુધી અથવા અસંખ્યાત કાળ સુધી તે વસ્તુ અવધારિત બની રહે છે.

હવે ચક્ષુ ઇન્દ્રિયથી અવગ્રહાદિક કેવી રીતે થાય છે તેનું સૂત્રકાર વર્ણન કરે છે.–" से जहानामए० " ઈત્યાદિ.

रूपं पश्येत् । अस्य व्याख्या प्राग्वत् । नवरम्-इह व्यञ्जनावग्रहो न व्याख्येयः, चक्षुषोऽप्राप्यकारित्वात् । घ्राणेन्द्रियादिषु तु व्याख्येयः ।

घ्राणेन्द्रियजनितानवग्रहादीन् वर्णयति-'से जहानामए०' इत्यादि । व्याख्या प्राग्वत् ।

रसनेन्द्रियजनितानवग्रहादीन् वर्णयति-'से जहानामए०' इत्यादि । सुगमम् ।
स्पर्शेन्द्रियजनितानवग्रहादीन् वर्णयति-'से जहानामए०' इत्यादि । सुगमम् ।

इसका अर्थ श्रोत्रइन्द्रियके विषयमें किये गये अर्थके समान ही है। परन्तु यहां विशेषता यह है कि श्रोत्रेन्द्रियके विषयभूत पदार्थमें श्रोत्रेन्द्रियजन्य अर्थावग्रहके पहिले जैसा व्यञ्जनावग्रहका होना कहा गया है यहां वह व्यञ्जनावग्रह नहीं होता है, इसका कारण यह है कि ये दोनों इन्द्रियां अप्राप्यकारी हैं। शेष इन्द्रियोंके विषयभूत पदार्थ में ही यह व्यञ्जनावग्रहके पहिले होता है, कारण ये चार इन्द्रियां अप्राप्यकारी हैं, शेष पदों का व्याख्यान श्रोत्रेन्द्रियसम्बन्धी सूत्रमें रहे हुए पदों के अनुसार जानना चाहिये ।

अब सूत्रकार घ्राणेन्द्रियजनित अवग्रहादिकों का वर्णन करते हैं- 'से जहा नामए०' इत्यादि । इन पदोंकी व्याख्या भी पूर्ववत् जाननी चाहिये । इसी तरह रसनेन्द्रियजनित अवग्रहादिकोंका, स्पर्शेन्द्रियजनित अवग्रहादिकोंका, नोइन्द्रियजनित अवग्रहादिकों का वर्णन भी जानना

આનોઅર્થ શ્રોત્રેન્દ્રિયના વિષયમા કરાયેલ અર્થ સમાનજ છે, પણ અહીં, એ વિશેષતા છે કે શ્રોત્રેન્દ્રિયના વિષયભૂતપદાર્થમાં શ્રોત્રેન્દ્રિયજન્ય અર્થાવગ્રહના પહેલાં જેવો વ્યંજનાવગ્રહ થવાનું કહ્યું છે, એવો વ્યંજનાવગ્રહ અહીંથતો નથી. તેનું કારણ એ છે કે એ બન્ને ઈન્દ્રિયો અપ્રાપ્યકારી છે. શેષ ઈન્દ્રિયોના વિષયભૂત પદાર્થમાં જ આ વ્યંજનાવગ્રહ અર્થાવગ્રહના પહેલાં થાય છે, કારણ કે ચાર ઈંન્દ્રિયો પ્રાપ્યકારી છે. બાકીનાં પદોનુ વ્યાખ્યાન શ્રોત્રેન્દ્રિ વિષેનાં સૂત્રમાં રહેલ પદોપ્રમાણેજ સમજવાનુ છે

હવે સૂત્રકાર ઘ્રાણેન્દ્રિય જનિત અવગ્રહાદિકોનુ વર્ણન કરે છે-" से जहा-नामए० " ઈત્યાદિ. આપદોની વ્યાખ્યા પણ પહેલાની જેમજ સમજવાની છે. એજ પ્રમાણે રસનેન્દ્રિય જનિત અવગ્રહાદિકોનું, સ્પર્શેન્દ્રિયજનિત અવગ્રહાદિકોનું અને નો ઈન્દ્રિયજનિત અવગ્રહાદિકોનુ વર્ણન પણ સમજી લેવું જોઈએ. નો

नोइन्द्रियजनितावग्रहादीन् वर्णयति-'से जहानामए०' इत्यादि। स यथा-नामकः कश्चित् पुरुषोऽव्यक्तं स्वप्नं पश्येत्। अव्यक्तं=सकलविशेषरहितम्, अनिर्देश्यमित्यर्थः। तेन स्वप्न इत्यवगृहीतम्, स्वप्नः परमार्थतया यद्यपि दृष्टः परन्तु विशेषरहितोऽनभिव्यक्तः सामान्यरूप एव ज्ञात इत्यर्थः। तमेवार्थमाह-'नो चेव जाणइ०' इत्यादि। नो चैव जानाति-'को वा एष स्वप्नः' इति, स्वप्नोऽयमित्यपि न निश्चिनोतीत्यर्थः। अत एव प्राह—'तओ ईहं पविसइ' इत्यादि। तत ईहां प्रविशतीत्यादि। एवं स्वप्नमधिकृत्य जाग्रदवस्थायां नोइन्द्रियस्यार्थावग्रहादयो-बोध्याः। इहापि व्यञ्जनावग्रहो न व्याख्येयः, मनसोऽप्राप्यकारित्वात्।

संप्रति मल्लकदृष्टान्तमुपसंहरन् प्राह-'से तं मल्लकदिट्ठंतेणं' इति। तदेतत् मल्लकदृष्टान्तेनाष्टाविंशतिविधस्याऽऽभिनिबोधकज्ञानस्य प्ररूपणं कृतमित्यर्थः।

चाहिये। नोइन्द्रियजनित अर्थावग्रहके पहिले व्यञ्जनावग्रह नहीं होता है। यह बात बतलाई जा चुकी है, क्यों कि मन अप्राप्यकारी हैं।

अब सूत्रकार मल्लकके दृष्टान्तका उपसंहार करते हुए कहते हैं कि मल्लकके दृष्टान्तसे अठाईस प्रकारके आभिनिबोधिक ज्ञानकी यह प्ररूपणा की है। तात्पर्य इसका यह है कि यह आभिनिबोधिक ज्ञान पांच इन्द्रिय और छट्ठे मनसे होता है। प्रत्येक इन्द्रियसे ज्ञात पदार्थ में अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा, ये सब होते हैं। इस तरह अर्थावग्रहकी अपेक्षा चोईस भेद होते हैं। तथा व्यञ्जनावग्रहकी अपेक्षा चार भेद और होते हैं। इस तरह आभिनिबोधिक ज्ञान अठाईस प्रकारका यह मल्लकके दृष्टान्तसे लेकर वर्णित हो चुका है।

ઈન્દ્રિયજનિત અર્થાવગ્રહની પહેલાં વ્યંજનાવગ્રહ થતો નથી. આ વાત સમજાવી દેવામાં આવી છે, કારણ કે મન અપ્રાપ્યકારી છે.

હવે સૂત્રકાર મલ્લક (શકોરા)નાં દૃષ્ટાંતનો ઉપસંહાર કરતા કહે છે કે મલ્લકનાં દૃષ્ટાંતથી અઠ્ઠાવીસ પ્રકારના આભિનિબોધિક જ્ઞાનની આ પ્રરૂપણા કરી છે. તેનું તાત્પર્ય એ છે કે આ આભિનિબોધિકજ્ઞાન પાંચઈન્દ્રિય અને મનથી થાયછે. પ્રત્યેક ઈન્દ્રિયથી જ્ઞાત પદાર્થમાં અવગ્રહ, ઈહા, અવાય, અને ધારણા એ બધું થાયછે. આરીતે અર્થાવગ્રહની અપેક્ષાએ ચોવીસ ભેદપડેછે. તથા વ્યંજનાવગ્રહની અપેક્ષાએ બીજા ચારભેદપડેછે આરીતે અઠ્ઠાવીસપ્રકારના આભિનિબોધિકજ્ઞાનની પ્રરૂપણા મલ્લકનું દૃષ્ટાંત લઈને પૂર્ણ થઈ.

एते चावग्रहादयोऽष्टाविंशतिभेदाः प्रत्येकं बह्वादिभिस्तद्भिन्नैश्च द्वादशसंख्यकैर्भेदैर्भिद्यमानाः षट्त्रिंशदधिकशतत्रय (३३६) संख्यका भवन्ति। तथाहि—अवग्रहादयः खलु बहु—बहुविध—क्षिप्रा—ऽनिश्रिता—ऽसंदिग्ध—ध्रुव—भेदेन षड्विधानां तद्भिन्नानां च षड्विधानां शब्दाद्यर्थानां ग्राहका भवन्ति। बह्वर्थभिन्नः स्तोकार्थः। बहुविध इत्यस्माद् भिन्नोऽर्थ एकविधः, क्षिप्रमित्यस्माद्भिन्नं चिरमिति। एवं चावग्रहो बह्ववगृह्णाति १, अल्पमवगृह्णाति २, बहुविधमवगृह्णाति ३, एकविधमवगृह्णाति ४, क्षिप्रमवगृह्णाति ५, चिरेणावगृह्णाति ६, अनिश्रितम्—(अनुमानागम्यम्) अवगृह्णाति ७, निश्रितम् (अनुमानगम्यम्) अवगृह्णाति ८। असंदिग्धं (संदेहरहितम्) अवगृह्णाति ९, संदिग्धम्—(संदेहयुक्तम्) अवगृह्णाति १०, ध्रुवमवगृह्णाति ११, अध्रुवमवगृह्णाति १२, तस्मात्—बह्ववग्रहः १, अल्पावग्रहः २, बहुवि-

---

अब सूत्रकार आभिनिबोधिक ज्ञानके—मतिज्ञानके—तीनसौछत्तीस (३३६) भेद किस प्रकारसे होते हैं यह बात प्रकट करते हैं—बहु १, बहुविध २, क्षिप्र ३, अनिश्रित ४, असंदिग्ध ५ और ध्रुव ६, इन भेदों से, तथा इनके उल्टे एक १, एकविध २, अक्षिप्र ३, निश्रित ४, संदिग्ध ५ और अध्रुव ६, इन भेदोंसे शब्दादिक पदार्थ बारह बारह प्रकार के होते हैं।

ये बारह बारह प्रकारके शब्दादि पदार्थ श्रोत्रेन्द्रियादि छ से यथायोग्य गृहीत होते हैं। इस लिये बारहको छ से गुणा करने पर बहत्तर भेद होते हैं। इन बहत्तरमें भी प्रत्येक अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणाके भेदसे चार चार प्रकारका होता हैं। इस प्रकार सबको जोडनेसे २८८ भेद होते हैं। तथा व्यञ्जनावग्रह चक्षु और मनके विषयोंमें नहीं

હવે સૂત્રકાર આભિનિબોધિકજ્ઞાનના—મતિજ્ઞાનના—ત્રણસો છત્રીસ (૩૩૬) ભેદ કઇ રીતે થાય છે એ વાત પ્રગટ કરે છે. (૧) બહુ, (૨) બહુવિધ, (૩) ક્ષિપ્ર, (૪) અનિશ્રિત, (૫) અસંદિગ્ધ, અને (૬) ધ્રુવ. આ ભેદોથી તથા તેના ઉલટા (૧) એક, (૨) એકવિધ, (૩) અક્ષિપ્ર. (૪) નિશ્રિત, (૫) સંદિગ્ધ, (૬) અધ્રુવ. એ ભેદોથી શબ્દાદિક પદાર્થ બાર બાર પ્રકારના હોય છે.

એ બાર બાર પ્રકારના શબ્દાદિપદાર્થ શ્રોત્રેન્દ્રિયાદિ છ વડે યથાયોગ્ય ગૃહીત થાય છે. તેથી બારને છ વડે ગુણતા બોંતેર ભેદ થાય છે. એ બોંતેરમાં પણ પ્રત્યેક અવગ્રહ, ઇહા, અવાય, અને ધારણાના ભેદથી ચાર ચાર પ્રકારના હોય છે. આ પ્રકારે બધા મળીને બસો અઠ્ઠાસી (૨૮૮) ભેદ થાય છે. તથા

धाग्रहः ३, एकविधाऽवग्रहः ४, क्षिप्रावग्रह ५, चिरावग्रहः ६, अनिश्रितावग्रहः ७, निश्रितावग्रहः८, असंदिग्धावग्रहः ९, संदिग्धावग्रहः १०, ध्रुवावग्रहः ११, अध्रुवावग्रहश्च १२, इत्येवं श्रोत्रावग्रहस्य द्वादशभेदाः, एवं चक्षुरिन्द्रियावग्रहादेरपि द्वादश-द्वादशभेदा बोध्याः। उक्तभेदा मतिज्ञानावरणक्षयोपशमस्योत्कर्षादपकर्षाच्च भवन्तीति बोध्यम्।

नन्ववग्रहः शास्त्रे एकसामायिकः प्रोक्तः, बह्ववग्रहादेरेकस्मिन् समये नास्ति संभवस्तस्य विशेषग्राहकत्वादिति चेत्,

---

होता है, केवल चार इन्द्रियों के विषयों में ही होता है। इस लिये वह चार प्रकारका है। उन चार प्रकारों में प्रत्येक क्षिप्रादि भेदसे बारह बारह प्रकारके होते हैं। अतः सब भेदों के जोडनेसे वह ४८ प्रकारका होता है। पूर्वोक्त २८८ अर्थावग्रहके भेदों में व्यञ्जनावग्रहके ४८ भेदोंको जोडनेसे ३३६ भेद होते हैं। इस प्रकार आभिनिबोधिक ज्ञान तीनसौछत्तीस (३३६) भेदवाला होना है। ये भेद मतिज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशमकी उत्कर्षता और अपकर्षताको ले कर होते हैं।

शङ्का—अवग्रहका काल शास्त्रमें एक समय कहा है। बहु, अवग्रह, बहुविध अवग्रह आदिरूप अवग्रह जो बारह प्रकारका अभी बतलाया गया है वह एक समय प्रमाणवाला कैसे हो सकता है, क्यों कि यह अवग्रह विशेषका ग्राहक होता है।

વ્યંજનાવગ્રહ ચક્ષુ અને મનનાવિષયમાં થતો નથી. ફકત ચાર ઇન્દ્રિયોના વિષયમાં જ થાય છે. તેથી તે ચાર પ્રકારનો છે. તે ચારપ્રકારમાંના દરેક ક્ષિપ્રાદિભેદથી બાર બાર પ્રકારના હોય છે. તેથી બધા ભેદ મળીને તે અડતાળીસ (૪૮) પ્રકારનો થાય છે. પૂર્વોકત ૨૮૮ અર્થાવગ્રહનાભેદોમા વ્યંજનાવગ્રહના ૪૮ ભેદો ઉમેરતા કુલ ૩૩૬ ભેદ થાય છે. આ રીતે આભિનિબોધિક જ્ઞાન ત્રણસો છત્રીસ (૩૩૬) ભેદવાળું હોય છે. એ ભેદ મતિજ્ઞાનવરણ કર્મના ક્ષયોપશમની ઉત્કર્ષતા અને અપકર્ષતાને લીધે થાય છે.

શંકા—અવગ્રહનો કાળ શાસ્ત્રમાં એકસમય કહ્યો છે. બહુ અવગ્રહ, બહુવિધ અવગ્રહ, આદિરૂપ જે બાર પ્રકારના અવગ્રહ હમણા બતાવવામાં આવ્યા છે, તે એકસમયપ્રમાણવાળા કેવી રીતે હોઇ શકે છે, કારણ કે આ અવગ્રહવિશેષનો ગ્રાહક થાય છે?

उच्यते—सत्यमेवैतत्, किन्तु अवग्रहो द्विधा-नैश्चयिको व्यावहारिकश्च। तत्र नैश्चयिको नाम सामान्यपरिच्छेदः, स चैकसामायिकः परमयोगिनां स्फुटगम्य इति। ततो नैश्चयिकादनन्तरमीहा प्रवर्तते। तदनन्तरमवायो भवति। अयं चावायः —अवग्रह इत्युपचर्यते। 'शब्दोऽयम्' इत्यवायानन्तरं पुनरीहा प्रवर्तते—'शाङ्खोऽयं शब्दः, किमुत शार्ङ्गः?' इति। तदनन्तरं 'शाङ्ख एवायं शब्दः' इति शब्दविशेष-विषयकोऽवायो भवति। तदपेक्षया शब्दोऽयमित्यस्य सामान्यविषयत्वात्। अयमपि

उत्तर—शङ्का—ठीक है, किन्तु विचार करनेसे समाधान मिल जाता है। वह इस प्रकार है—अवग्रह दो प्रकार का कहा गया है (१) नैश्चयिक, (२) व्यावहारिक। नैश्चयिक अवग्रहका ही काल एक समयका है, इसका विषय सामान्य है, और यह परम योगिज्ञान गम्य है। इस नैश्चयिक अवग्रहके बाद ईहा, और ईहाके बाद अवाय प्रवर्तित होता है। यह जो अवायज्ञान है वह उपचारसे अवग्रहरूप मान लिया जाता है, क्यों कि इसके बाद अन्यान्य विशेषों की जिज्ञासा होती हैं। जब "यह शब्द है" इस प्रकार का अवायज्ञान हो जाता है तब यह जिज्ञासा होती है कि—"यह शब्द किस का है—क्या शंख का है अथवा सींगे का है? शंख का होना चाहिये" इस प्रकार निर्णयाभिमुख जो बोध होता है वह ईहा है। इस ईहा के बाद अवाय होता है कि "यह शब्द शंख का ही है।" इस प्रकार जब यह अवायज्ञान शब्द विशेष को विषय

ઉત્તર—શંકા બરાબર છે, પણ વિચારકરવાથી તેનું સમાધાન મળી જાય છે. તે આ પ્રકારે છે—અવગ્રહ બેપ્રકારના બતાવ્યા છે (૧) નૈશ્ચયિક, (૨) વ્યાવ-હારિક. નૈશ્ચયિક અવગ્રહનો જ કાળ એકસમયનો છે, તેનો વિષય સામાન્ય છે, અને તે પરમયોગિજ્ઞાનગમ્ય છે. આ નૈશ્ચયિક અવગ્રહની પછી ઈહા, અને ઈહા પછી અવાય પ્રવર્તિત થાય છે. આ જે અવાયજ્ઞાન છે તે ઔપચારિક રીતે અવગ્રહરૂપ માની લેવાય છે, કારણ કે તેના પછી અન્યાન્ય વિશેષોની જિજ્ઞાસા થાય છે.

જ્યારે "આ શબ્દ છે" આ પ્રકારનું અવાયજ્ઞાન થાય છે ત્યારે એ જિજ્ઞાસા થાય છે કે "આ શબ્દ કોનો છે? શું શંખનો છે અથવા શ્રૃંગનો છે?" શંખનો હોવો જોઈએ" આ પ્રમાણે નિર્ણય તરફ ઢળતો જે બોધ થાય છે તે ઈહા છે. આ ઇહા પછી અવાય થાય છે કે "આ શબ્દ શંખનો જ છે" આ પ્રકારે જો આ અવાયજ્ઞાન શબ્દવિશેષને વિષય કરનારું હોય છે

चावायः पुनरवग्रह इत्युपचर्यते। उत्तरोत्तरवर्तिनीमीहामवायं चाश्रित्य पूर्वपूर्वोऽवायः सामान्यग्राहको भवतीत्यतस्तत्र तत्रावग्रहत्वोपचारः। यदा तु-अपरं विशेषं नाकाङ्क्षति, तदाऽवाय एव भवति, न तत्रोपचारः, तस्यावायस्य सामान्यरूपत्वाभावात्। तस्माद् बह्ववग्रहादि रौपचारिको विशेषसामान्यावग्रहरूपोऽवग्रहः, न त्वेकसमयवर्ती नैश्चयिकोऽवग्रह इति स्थितम्।

करने वाला होता है तो इस अपेक्षा "शब्दोऽयम्" यह बोध सामान्यविषयक माना जाता है। सामान्य विषय करनेवाला अवग्रह होता है, अतः इस अवाय को उपचार से अवग्रह मान लिया है। तात्पर्य इसका यह है जो पहिले पहिल सामान्यमात्र को विषय करता है वह नैश्चयिक अवग्रह है। तथा जिस विशेषग्राही अवायज्ञान के बाद अन्यान्य विशेषों की जिज्ञासा और अवाय होते रहते हैं वे सामान्यविशेषग्राही अवायज्ञान व्यावहारिक अर्थावग्रह हैं। जिसके बाद अन्यविशेषों की जिज्ञासा न हो वह अवायज्ञान व्यवहारिक, अर्थावग्रह नहीं माना गया है। अन्य सभी अवायज्ञान जो अपने बाद नये नये विशेषों की जिज्ञासा उत्पन्न करते हैं वे व्यावहारिक अर्थावग्रह हैं। यही बात टीकाकार ने "उत्तरोत्तरवर्तिनीमीहामवायं चाश्रित्यपूर्वपूर्वोऽवायः सामान्य ग्राहको भवतीत्यतस्तत्र तत्रावग्रहत्वोपचारः। यदा तु अपरं विशेषंनाकाङ्क्षतितदाअवाय एव भवति न तत्रोपचारः, तस्य अवायस्य सामान्यरूपत्वाभावात्। तस्मात् बह्ववग्रहादि रौपचरिको विशेषसामान्यावग्रहरूपोऽवग्रहः, नत्वेक समय-

તો એ અપેક્ષાએ "शब्दोऽयम्" એ બોધ સામાન્યવિષયક મનાય છે. સામાન્યને વિષય કરનાર અવગ્રહ હોય છે. તેથી આ અવાયને ઔપચારિક રીતે અવગ્રહ માની લીધો છે. તેનું તાત્પર્ય એ છે કે જે પહેલવહેલું સામાન્ય માત્રને વિષય કરે છે, તે નૈશ્ચયિક અવગ્રહ છે. તથા જે વિશેષગ્રાહી અવાયજ્ઞાનની પછી અન્યાન્ય વિશેષોની જિજ્ઞાસા અને અવાય થતાં રહે છે, તે સામાન્ય વિશેષગ્રાહી અવાયજ્ઞાન વ્યાવહારિક અર્થાવગ્રહ છે. જેનાં પછી અન્ય વિશેષોની જિજ્ઞાસા ન થાય, તે અવાયજ્ઞાનને વ્યાવહારિક અર્થાવગ્રહ માનેલ નથી. બીજાં બધાં અવાયજ્ઞાન જે પોતાના પછી નવા નવા વિશેષોની જિજ્ઞાસા ઉત્પન્ન કરે છે, તે વ્યાવહારિક અર્થાવગ્રહ છે. એજ વાત ટીકાકારે "उत्तरोत्तर वर्तिनीमीहामवायं चाश्रित्य पूर्व पूर्वोऽवायः सामान्य ग्राहको भवतीत्यतस्तत्रतत्रावग्रहत्वोपचारः। यदा तु अपरं विशेष नाकाङ्क्षति तदा अवाय एव भवति न तत्रोपचारः, तस्य अवायस्य सामान्यरूपत्वाभावात्। तस्माद् बह्ववग्रहादि रौपचारिको विशेष सामान्या-

तत्र बह्ववग्रहादिः शब्दमधिकृत्य कथ्यते—शङ्खपटहादिनानाशब्दसमूहं पृथगेकैकं यदाऽवगृह्णाति, तदा बह्ववग्रहः१। यदा तु एकमेव कंचित् शब्दमवगृह्णाति, तदा अल्पावग्रहः २। यदा शङ्खपटहादिनानाशब्दसमूहमध्ये एकैकं शब्दमनेकैः पर्यायैः स्निग्धगाम्भीर्यादिभिर्विशिष्टं यथावस्थितमवगृह्णाति, तदा स बहुविधावग्रहः३। यदा

र्तीनैश्चयिकोऽवग्रह इति स्थितम्" इन पंक्तियों द्वारा स्पष्ट की है। वे कहते हैं कि उत्तरोत्तरवर्ती ईहा, और अवाय, की अपेक्षा करके पूर्व पूर्व का अवायज्ञान सामान्याग्राहक हो जाता है। इसलिये सामान्यग्राहक होने की वजह से उस अवायज्ञान में अवग्रहरूपता का उपचार कर लिया जाता है। जब वह अवायज्ञान उत्तर काल में अपर विशेष की आकांक्षा नहीं करता है तो वह अवाय ही रहता है, उपचार से उसमें अवग्रहरूपता कल्पित नहीं की जाती है, कारण उसमें सामान्यरूपता उस समय नहीं आती है। इसलिये बहु आदि बारह प्रकार के पदार्थों अवग्रहरूप ज्ञान एक समयवर्ती नैश्चयिक अर्थावग्रहरूप नहीं माना गया है किन्तु व्यावहारिक अर्थावग्रहरूप ही माना गया है क्यों कि इसमें सामान्यविशेष का ज्ञान होता है, अतः यह अवायरूप होकर उपचार से अवग्रहरूप मान लिया गया है।

अब यह स्पष्ट किया जाता है कि बहु आदिक पदार्थविषयक अवग्रह शब्द में किस प्रकार होते है?—

वग्रह रूपोऽवग्रहः, नत्वेक समयवर्ती नैश्चयिकोऽवग्रह इति स्थितम्" આ પંકિતઓ દ્વારા સ્પષ્ટ કરેલ છે. તેઓ કહે છે કે ઉત્તરોત્તરવર્તી ઈહા અને અવાયની અપેક્ષાએ કરીને પૂર્વ પૂર્વનુ અવાયજ્ઞાન સામાન્ય ગ્રાહક થઇ જાય છે. તેથી સામાન્ય ગ્રાહક હોવાને કારણે તે અવાય જ્ઞાનમાં અવગ્રહ રૂપતાનો ઉપચાર કરી લેવામાં આવે છે જ્યારે તે અવાયજ્ઞાન ઉત્તરકાળમા અપર વિશેષની આકાંક્ષા કરતું નથી ત્યારે તે અવાય જ રહે છે, ઉપચારથી તેમાં અવગ્રહરૂપતા કલ્પવામા આવતી નથી, કારણ કે તેમા સામાન્યરૂપતા તે સમયે આવતી નથી. તે કારણે બહુ આદિ બાર પ્રકારના પદાર્થોનુ અવગ્રહરૂપ જ્ઞાન એક સમયવર્તી નૈશ્ચયિક અર્થાવગ્રહરૂપ માનવામા આવ્યુ નથી, પણ વ્યાવહારિક અર્થાવગ્રહરૂપ જ માન્યુ છે કારણ કે તેમા સામાન્ય વિશેષનુ જ્ઞાન થાય છે, તેથી તે અવાયરૂપ હોવાથી ઉપચારથી અવગ્રહરૂપ માની લેવામાં આવેલ છે.

હવે એ સ્પષ્ટ કરવામાં આવે છે કે બહુ આદિક પદાર્થ વિષયક અવગ્રહ શબ્દમા કેવી રીતે થાય છે?

तु एकमनेकं वा शब्दमेकपर्यायविशिष्टम्, अर्थात्-गाम्भीर्यमाधुर्यादिकमेक पर्यायविशिष्टमेव जानाति, तदा स एकविधावग्रहः ४। यदा तमेव शब्दं क्षिप्रं-शीघ्रं जानाति, तदा क्षिप्रावग्रहः ५। यदा तु बहुना कालेन जानाति, तदा चिरावग्रहः६।

यहां बहु का तात्पर्य अनेक से है। जब श्रोता शंख, पटह, आदि नाना शब्द समूह में से पृथक् २ एक एक के शब्द को अवग्रह ज्ञानका विषयभूत करता है इसका नाम बहुका अवग्रह। क्रमशः दो या इससे अधिक शब्दोंका ज्ञान इस बहुके अवग्रहमें विवक्षित हुआ है १। जब श्रोता एक ही किसी शब्दको सुनता है तो वह इस से विपरीत अल्पका अवग्रह ज्ञान माना जाता है २। जिस समय शंख पटह आदि के अनेक शब्दसमूहमें से एक एक शब्दको स्निग्ध, गांभीर्य आदि अनेक पर्यायों से विशिष्ट जब श्रोता जानता है तब इस प्रकारका ज्ञान बहुविध का अवग्रह कहलाता है ३। और जब श्रोता एक या अनेक शब्दोंको एक ही पर्यायसे विशिष्ट जानता है तब वह ज्ञान एकविधका अवग्रह कहलाता है ४। बहुविध में अपनी पर्यायों में विविधता रखनेवाले अनेक पदार्थों का ज्ञान विवक्षित हुआ है। तब कि अपनी पर्यायों में एक प्रकारता रखनेवाले पदार्थों का ज्ञान एकविधमें विवक्षित हुआ है। शब्दको शीघ्र जानना यह क्षिप्रका अवग्रह है ५। बहुलकालमें शब्दका ज्ञान होना इसका नाम चिरका अवग्रह है ६। यह देखा जाता है कि इन्द्रिय

અહીં બહુનું તાત્પર્ય અનેક છે. જ્યારે શ્રોતા શંખ, પટહ, આદિ વિવિધ શબ્દ સમૂહમાંથી એક એકના શબ્દને અવગ્રહજ્ઞાનના વિષયભૂત કરે છે, ત્યારે તેનું નામ 'बहु'નો અવગ્રહ છે ક્રમશઃ બે કે તેથી વધુ શબ્દોનું જ્ઞાન આ બહુના અવગ્રહમાં વિવક્ષિત થયું છે ૧. જ્યારે શ્રોતા એક જ કોઈ શબ્દને સાંભળે છે ત્યારે તે તેનાથી 'અલ્પ'નું અવગ્રહજ્ઞાન મનાય છે ૨. જે સમયે શ્રોતા શંખ પટહ આદિના અનેક શબ્દસમૂહમાંથી એક એક શબ્દને સ્નિગ્ધ, ગાંભીર્ય આદિ અનેક પર્યાયોથી વિશિષ્ટ જાણે છે, ત્યારે તે પ્રકારનું જ્ઞાન બહુવિધનો અવગ્રહ કહેવાય છે ૩. અને જ્યારે શ્રોતા એક કે અનેક શબ્દોને એક જ પર્યાયથી વિશિષ્ટ જાણે છે ત્યારે તે જ્ઞાન એકવિધનો અવગ્રહ કહેવાય છે બહુવિધમાં પોતાની પર્યાયોમાં વિવિધતા રાખનાર અનેક પદાર્થોનું જ્ઞાન વિવક્ષિત થયું છે, ત્યારે પોતાની પર્યાયોમાં એક પ્રકારતા રાખનાર પદાર્થોનું જ્ઞાન એકવિધમાં વિવક્ષિત થયું છે ૪. શબ્દને જલ્દી જાણવો તે ક્ષિપ્રનો અવગ્રહ છે ૫. લાંબે કાળે શબ્દનું જ્ઞાન થવું તેનું નામ ચિરનો અવગ્રહ છે ૬.

तमेव शब्दं यदा स्वरूपेण जानाति, न त्वनुमानेन, तदा अनिश्रितावग्रहः ७। यदा तु अनुमानेन जानाति, तदा निश्रितावग्रहः ८। यदा—असंदिग्धं—निःसंदेहं गृह्णाति, तदा—असंदिग्धावग्रहः ९। यदा तु संदिग्धमवगृह्णाति, तदा संदिग्धावग्रहः १०। सर्वदैव बह्वादिरूपेणावगृह्णतो ध्रुवावग्रहः ११। कदाचिदेव तु बह्वादिरूपेणावगृह्णतोऽध्रुवावग्रह १२ इति ॥ सू० ३५ ॥

विषय आदि सब बाह्य सामग्री बराबर होने पर भी केवल क्षयोपशम की पटुताके कारण एक मनुष्य उस विषयका ज्ञान जल्दी कर लेता है। और क्षयोपशमकी मन्दताके कारण दूसरा मनुष्य देरसे करता है ५-६। शब्द स्वरूपसे शब्दको जानना, अनुमानसे नहीं, इसका नाम अनिश्रितावग्रह है ७। अनुमानसे शब्दको जानना इसका नाम निश्रितावग्रह है ८। संदेहरहित हो कर शब्दको जानना असंदिग्धावग्रह है ९। संदेहयुक्त शब्दका ज्ञान होना इसका नाम संदिग्धावग्रह है १०। सदा बहु आदि रूपसे शब्दका जानना ध्रुवाग्रह ११, और कभी २ जानना अध्रुवावग्रह है १२। असंदिग्धावग्रहका तात्पर्य इस प्रकार है—जैसे 'यह शब्द मनुष्यका ही अन्यका नहीं'। संदिग्धावग्रहमें इस प्रकार ज्ञान होगा कि 'यह शब्द मनुष्यका है अथवा और किसीका है'। ध्रुवका तात्पर्य अवश्यंभावी और अध्रुवका तात्पर्य कदाचित् भावी है ॥ सू० ३५ ॥

એવું જોવામાં આવે છે કે ઇન્દ્રિય વિષય આદિ સઘળી બાહ્ય સામગ્રી બરાબર હોવા છતાં પણ ફક્ત ક્ષયોપશમની પટુતાને કારણે એક માણસ તે વિષયનું જ્ઞાન જલ્દી પ્રાપ્ત કરી લે છે, અને ક્ષયોપશમની મન્દતાને કારણે બીજો માણસ મોડું પ્રાપ્ત કરે છે (૫-૬). શબ્દસ્વરૂપથી શબ્દને જાણવો, અનુમાનથી નહીં, તેનું નામ અનિશ્રિતાવગ્રહ છે ૭. અનુમાનથી શબ્દને જાણવો તેનું નામ નિશ્રિતાવગ્રહ છે ૮. સંદેહરહિત થઈને શબ્દને જાણવો તેનું નામ અસંદિગ્ધાવગ્રહ છે ૯. સંદેહયુક્ત શબ્દનું જ્ઞાન થવું તેનું નામ સંદિગ્ધાવગ્રહ છે ૧૦. સદા બહુ આદિ રૂપથી શબ્દને જાણવો તેનું નામ ધ્રુવાવગ્રહ છે ૧૧. અને કોઈ કોઇ વાર જાણવો તેનું નામ અધ્રુવાવગ્રહ છે ૧૨. અસંદિગ્ધ અવગ્રહનું તાત્પર્ય આ પ્રમાણે છે. જેમકે "આ શબ્દ મનુષ્યનો જ છે બીજાનો નહીં. સંદિગ્ધાવગ્રહમાં આ પ્રકારનું જ્ઞાન થશે કે "આ શબ્દ મનુષ્યનો છે અથવા બીજા કોઇનો છે" ધ્રુવનું તાત્પર્ય અવશ્ય બનનાર, અને અધ્રુવનું તાત્પર્ય કદાચ બનનાર છે. ॥ સૂ. ૩૫ ॥

संप्रति मतिज्ञानस्य द्रव्यादिभेदचतुःप्रकारतामाह—

मूलम्—तं समासओ चउव्विहं पण्णत्तं, तं जहा—दव्वओ, खेत्तओ, कालओ, भावओ। तत्थ दव्वओ णं आभिणिबोहियनाणी आएसेणं सव्वाइं दव्वाइं जाणइ, न पासइ। खेत्तओ णं आभिणिबोहियनाणी आएसणं सव्वं खेत्तं जाणइ न पासइ। कालओ णं आभिणिबोहियनाणी आएसेणं सव्वं कालं जाणइ, न पासइ। भावओ णं आभिणिबोहियनाणी आएसेणं सव्वे भावे जाणइ, न पासइ॥

छाया—तत्समासतश्चतुर्विधं प्रज्ञप्तम्। तद् यथा—द्रव्यतः क्षेत्रतः कालतो भावतः। तत्र द्रव्यतः खलु आभिनिवोधिकज्ञानी आदेशेन सर्वाणि द्रव्याणि जानाति, न पश्यति। क्षेत्रतः खलु आभिनिवोधिकज्ञानी आदेशेन सर्वं क्षेत्रं जानाति, न पश्यति। कालतः खलु आभिनिवोधिकज्ञानी आदेशेन सर्वं कालं जानाति, न पश्यति। भावतः खलु आभिनिबोधिकज्ञानी आदेशेन सर्वान् भावान्, न पश्यति॥

टीका—'तं समासओ०' इत्यादि। तत्=मतिज्ञानं, समासतः=संक्षेपेण, चतुर्विधं प्रज्ञप्तम्=प्ररूपितं तीर्थंकरादिभिरित्यर्थः। तद् यथा—द्रव्यतः क्षेत्रतः कालतो भावतश्च। तत्र द्रव्यतः खलु आभिनिवोधिकज्ञानी=मतिज्ञानी, आदेशेन=आदेशः—

अब सूत्रकार मतिज्ञानके द्रव्य, क्षेत्र आदिकी अपेक्षा चार भेद बतलाते हैं—'तं समासओ चउव्विहं०' इत्यादि।

द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावकी अपेक्षा मतिज्ञान संक्षेपसे चार प्रकारका कहा गया है। इन द्रव्यकी अपेक्षा आभिनिबोधिक ज्ञानी—मतिज्ञानी आत्मा—आदेशसे द्रव्य जातिरूप सामान्य प्रकारसे धर्मास्तिकाया-

---

હવે સૂત્રકાર મતિજ્ઞાનના દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર, આદિની અપેક્ષાએ ચાર ભેદ બતાવે છે— "तं समासओ चउव्विहं०" ઇત્યાદિ.

દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર, કાળ અને ભાવની અપેક્ષાએ મતિજ્ઞાન સંક્ષિપ્તમાં ચાર પ્રકારનું કહેલ છે. એ દ્રવ્યની અપેક્ષાએ આભિનિબોધિકજ્ઞાની—મતિજ્ઞાની આત્મા—આદેશથી દ્રવ્ય જાતિરૂપ સામાન્ય પ્રકારે ધર્માસ્તિકાય આદિક સમસ્ત દ્રવ્યોને

प्रकारः, स च द्विधा-सामान्यरूपो विशेषरूपश्च, तत्रेह प्रायः सामान्यरूपो ग्राह्यः, ततश्च-आदेशेन-द्रव्यजातिरूपसामान्यप्रकारेण, सर्वद्रव्याणि=धर्मास्तिकायादीनि जानाति। किंचिद् विशेषतोऽपि जानाति। यथा-धर्मास्तिकायं, धर्मास्तिकायस्य प्रदेशम्, तथा-धर्मास्तिकायो गत्युपष्टम्भहेतुरमूर्तो लोकाकाश प्रमाण इत्यादि। न पश्यति=सर्वात्मना, धर्मास्तिकायादीन् न पश्यति, घटादींस्तु योग्यदेशावस्थितान् पश्यत्यपि। अथवा-आदेश इति सूत्रादेशः, तेन सूत्रादेशेन=सूत्राज्ञया सर्वद्रव्याणि -धर्मास्तिकायदीनि जानाति, न तु साक्षात् पश्यति।

दिक समस्त द्रव्योंको जानता है। यहां आदेशका तात्पर्य प्रकारसे है। सामान्य और विशेषकी अपेक्षा यह प्रकार दो तरहका कहा गया है। यहां सामान्यरूप प्रकार विवक्षित हुआ है। यद्यपि मतिज्ञानी आत्मा समस्त धर्मादिक द्रव्योंको सामान्यरूपसे ही जानता है, फिर भी वह उनके विषयमें कुछ २ विशेषरूपसे भी जानता है। जैसे-धर्मास्तिकाय का कार्य जीव पुद्गलों को गमनमें सहायता प्रदान करना है। यह द्रव्य अमूर्तिक एवं लोकाकाशव्यापी है। इसके असंख्यात प्रदेश हैं। इसे यह मतिज्ञानी आत्मा धर्मादिक द्रव्योंको सामान्यरूपसे जानता हुआ भी उन्हें कुछ २ विशेषरूपसे भी जानता है। जानता है, परन्तु उन्हें साक्षात् रूपसे सर्वात्मता देखता नहीं है। हां, जो घटादिक द्रव्य योग्य देशावस्थित होते हैं उन्हें यह देखता भी है। अथवा आदेश शब्दका अर्थ सूत्राज्ञा है। सूत्र-आगम-की आज्ञा के अनुसार मतिज्ञानी आत्मा धर्मादिक द्रव्यों को केवल जानतामात्र है, उन्हें साक्षात् देखता नहीं है।

જાણે છે અહીં આદેશનો ભાવાર્થ પ્રકાર છે. સામાન્ય અને વિશેષની અપેક્ષાએ આ પ્રકાર બે જાતનો બતાવ્યો છે. અહીં સામાન્યરૂપ પ્રકાર વિવક્ષિત થયો છે, જો કે મતિજ્ઞાની આત્મા સમસ્ત ધર્માદિક દ્રવ્યોને સામાન્યરૂપ જ જાણે છે, તો પણ તે તેમના વિષે કંઈક કંઈક વિશેષરૂપે પણ જાણે છે. જેમકે— ધર્માસ્તિકાયનું કાર્ય જીવ અને પુદ્ગલોને ગમનમાં સહાયતા આપવાનું છે. આ દ્રવ્ય અમૂર્તિક અને લોકાકાશવ્યાપી છે. તેનામાં અસંખ્યાત પ્રદેશ છે. આ રીતે તે મતિજ્ઞાની આત્મા ધર્માદિક દ્રવ્યોને સામાન્ય રૂપે જાણવા છતાં પણ તેમને થોડા થોડા વિશેષરૂપે પણ જાણે છે, જાણે છે, પણ તેમને પ્રત્યક્ષરૂપે સર્વાત્મના દેખતો નથી. હા, જે ઘડો આદિ દ્રવ્ય યોગ્ય સ્થાનમાં રહેલ હોય તેમને તે દેખે પણ છે. અથવા 'આદેશ' શબ્દનો અર્થ સૂત્રાજ્ઞા છે. સૂત્ર- આગમનની આજ્ઞા પ્રમાણે મતિજ્ઞાની આત્મા ધર્માદિક દ્રવ્યોને કેવળ જાણે જ છે, તેમને પ્રત્યક્ષ દેખતો નથી.

ननु सूत्रादेशतो यद् ज्ञानमुपजायते, तत् खलु श्रुतज्ञानं भवति, तस्य शब्दार्थ-परिज्ञान रूपत्वात्, अत्र तु मतिज्ञानमुच्यते, तत् कथमिह सूत्रादेशो व्याख्यायते? इति चेत्, तदयुक्तम्, सम्यग्वस्तुतत्त्वापरिज्ञानात्। इह हि श्रुतभावितमतेः श्रुतोपलब्धेष्वपि अर्थेषु सूत्रानुसारमात्रेण येऽवग्रहेहावायादयो ज्ञानविशेषाः प्रादुर्भवन्ति, ते मतिज्ञानमेव, न तु श्रुतज्ञानं, सूत्रानुसारनिरपेक्षत्वात् १।

एवं क्षेत्रादिष्वपि वाच्यम्। क्षेत्रं लोकालोकात्मकम् २। कालः सर्वाद्धारूपः, अतीतानागतवर्तमानरूपो वा ३। भावाश्च पञ्चसंख्यकाः-औदयिकादयः ४॥

शंका—जब आदेश शब्द का अर्थ सूत्राज्ञा है, और यह कहा जाता है कि मतिज्ञानी आत्मा आगम की आज्ञा के अनुसार धर्मादिक द्रव्यों को जानता है, तो सूत्र से जो ज्ञान होता है वह तो श्रुतज्ञान कहलाता है यहां प्रकरण चल रहा है मतिज्ञान का, फिर वह ज्ञान मतिज्ञान कैसे कहलावेगा?।

उत्तर—यह प्रश्न तत्त्व को नहीं समझकर ही किया गया है, क्यों कि जिसकी मति, श्रुतज्ञान से परिभावित हो रही है ऐसे पुरुष को श्रुतोपलब्ध पदार्थों में भी सूत्रानुसारी जो अवग्रह ईहा, अवायज्ञान होते हैं वे मतिज्ञान ही हैं. श्रुतज्ञान नहीं, क्यों कि उस समय वे सूत्र के अनुसरण की अपेक्षा से निरपेक्ष होते हैं। इसी तरह का संबंध क्षेत्र आदिकों में लगा लेना चाहिये। क्षेत्र की अपेक्षा जब विचार किया जाता है तो मतिज्ञानी आत्मा सामान्यरूप से अथवा सूत्र की आज्ञा के अनुसार लोकालोकात्मक समस्त क्षेत्र को जानता मात्र है, उसको साक्षात् देखता

શંકા—જો 'આદેશ' શબ્દનો અર્થ સૂત્રાજ્ઞા હોય, અને એમ કહેવામાં આવે છે કે મતિજ્ઞાની આત્મા આગમની આજ્ઞા પ્રમાણે ધર્માદિક દ્રવ્યોને જાણે છે, તો સૂત્રથી જે જ્ઞાન થાય છે તે તો શ્રુતજ્ઞાન કહેવાય છે. અહીં મતિજ્ઞાનનું પ્રકરણ ચાલી રહ્યું છે, તો તે જ્ઞાન મતિજ્ઞાન કેવી રીતે કહેવાય?

ઉત્તર—આ પ્રશ્ન તત્ત્વને સમજ્યા વિના કરાયો છે, કારણ કે જેમની મતિ શ્રુતજ્ઞાનથી પરિભાવિત થઈ રહી છે, એવા પુરુષોને શ્રુતોપલબ્ધ પદાર્થોમાં પણ સૂત્રાનુસારી જે અવગ્રહ, ઈહા, અવાયજ્ઞાન થાય છે, એ મતિજ્ઞાન જ છે, શ્રુત-જ્ઞાન નહીં. કારણ કે તે સમયે તેઓ સૂત્રને અનુસરવાની અપેક્ષાએ નિરપેક્ષ હોય છે. એજ પ્રકારનો સંબંધ ક્ષેત્ર આદિકોમાં સમજી લેવો જોઈએ, ક્ષેત્રની અપેક્ષાએ જ્યારે વિચાર કરાય છે ત્યારે મતિજ્ઞાની આત્મા સામાન્યરૂપે અથવા સૂત્રની આજ્ઞા અનુસાર લોકાલોકાત્મક સમસ્ત ક્ષેત્રને ફક્ત જાણે જ છે, તેને

संप्रति मतिज्ञानविषये संग्रहगाथा आह—

मूलम्—

गाहा—उग्गह ईहाऽवाओ, य धारणा एव हुंति चत्तारि ।
आभिणिबोहियनाण,—स्स भेयवत्थू समासेण ॥१॥
अत्थाणं उग्गहणं,—मि उग्गहो तह वियालणे ईहा ।
ववसायंमि अवायो, धरणं पुणं धारणं बिंति ॥२॥
उग्गह इक्के समयं, ईहावाया मुहुत्तमद्धं तु ।
कालमसंखं संखं, च धारणा होइ नायव्वा ॥३॥
पुट्ठं सुणेइ सद्दं, रूवं पुण पासइ अपुट्ठं तु ।
गंधं रसं च फासं, च बद्धपुट्ठं वियागरे ॥४॥
भासा समसेढीओ, सद्दं जं सुणइ मीसियं सुणइ ।
वीसेढी पुण सद्दं सुणेइ, नियमा पराघाए ॥५॥
ईहा—अपोह—वीमंसा, मग्गणा य गवेसणा ।
सन्ना सई मई पन्ना, सव्वं आभिणिबोहियं ॥६॥

नहीं है। काल की अपेक्षा मतिज्ञानी सामान्यरूप से अथवा आगम की आज्ञा के अनुसार सर्वाद्धारूप निश्चयकाल को या भूत, भविष्यत, वर्तमानरूप व्यवहार काल को जानता मात्र है, उसे साक्षात् देखता नहीं है। इसी तरह भाव की अपेक्षा मतिज्ञानी सामान्यरूप से अथवा आगम की आज्ञा के अनुसार समस्त भावों को—पर्यायो को—जानतामात्र है, उन्हें देखता नहीं है ॥

પ્રત્યક્ષ દેખતો નથી. કાળની અપેક્ષાએ મતિજ્ઞાની સામાન્યરૂપે અથવા આગમની આજ્ઞા અનુસાર સર્વાદ્ધારૂપ નિશ્ચય કાળને ભૂત, ભવિષ્ય વર્તમાનરૂપ વ્યવહાર કાળને માત્ર જાણે જ છે, તેને પ્રત્યક્ષ દેખતો નથી. એજ પ્રમાણે ભાવની અપેક્ષાએ મતિજ્ઞાની સામાન્યરૂપે અથવા આગમની આજ્ઞાનુસાર સમસ્ત ભાવોને પર્યાયોને માત્ર જાણે જ છે, તેમને દેખતો નથી.

छाया—अवग्रह ईहाऽवायश्च, धारणा एवं भवन्ति चत्वारि ।
आभिनिबोधिकज्ञानस्य, भेदवस्तूनि समासेन ॥ १ ॥
अर्थानामवग्रहणे, अवग्रहस्तथा विचारणे ईहा ।
व्यवसायेऽवायः, धरणं पुनर्धारणां ब्रुवते ॥ २ ॥
अवग्रह एकं समयम् ईहाऽवायौ मुहूर्तमर्धं तु ।
कालमसंख्यं संख्यं, च धारणा भवति ज्ञातव्या ॥ ३ ॥
स्पृष्टं शृणोति शब्दं, रूपं पुनः पश्यत्यस्पृष्टं तु ।
गन्धं रसं च स्पर्शं च, बद्धस्पृष्टं व्यागृणीयात् ॥ ४ ॥
भाषासमश्रेणीतः, शब्दं यं शृणोति मिश्रितं शृणोति ।
विश्रेणिं पुनः शब्दं, शृणोति नियमात् पाराघाते ॥५॥
ईहाऽपोहविमर्शाः, मार्गणा च गवेषणा ।
संज्ञा स्मृतिर्मतिः प्रज्ञा, सर्वमाभिनिबोधिकम् ॥ ६ ॥

से तं आभिणिबोहियनाणपरोक्खं । से तं मइनाणं ॥सू०३६॥

तदेतत् आभिनिबोधिकज्ञानपरोक्षम् । तदेतन्मतिज्ञानम् ॥ सू० ३६ ॥

टीका—'उग्गह०' इत्यादि । आभिनिबोधिकज्ञानस्य=मतिज्ञानस्य, समासेन=संक्षेपेण, भेदवस्तूनि=भेदाः प्रकारास्त एव वस्तूनि—पदार्थाः, एवम्, अनेनैव क्रमेण चत्वारि=भवन्ति, तद्यथा—अवग्रहः १, ईहा २, अवायः ३, धारणा ४ च। चकारः समुच्चयार्थकः । नन्वेवं क्रमः कथमवग्रहादीना? मिति चेत्—उच्यते—यतोऽनवगृहीतस्येहा न भवति, अनीहितस्य चावायो न भवति, अनवगतस्य च

मतिज्ञान के विषय में संग्रह गाथाएं इस प्रकार हैं—'उग्गह ईहा०' इत्यादि । गाथाओं का अर्थ—मतिज्ञान के संक्षेप से चार भेद हैं । वे इस प्रकार हैं—अवग्रह १, ईहा २, अवाय ३ और धारणा ४ । इस प्रकार इनके क्रम का कारण है कि—जबतक पदार्थ का अवग्रह ज्ञान नहीं होता है तबतक उसकी ईहा नहीं होती है । ईहा के नहीं होने पर अवाय नहीं होता है

મતિજ્ઞાનના વિષયમાં આ પ્રમાણે સંગ્રહ ગાથાઓ છે—"ઉગ્ગહ ઈહા૦" ઇત્યાદિ ગાથાઓનો અર્થ—મતિજ્ઞાનના સંક્ષેપથી ચાર ભેદ છે. એ આ પ્રકારે છે અવગ્રહ ૧, ઈહા ૨, અવાય ૩, અને ધારણા ૪. તેમના આ પ્રકારના ક્રમનું કારણ એ છે કે—જ્યાં સુધી પદાર્થનું અવગ્રહજ્ઞાન થતું નથી ત્યાંસુધી તેની ઈહા થતી નથી. ઈહા ન થાય તો અવાય થતું નથી તથા અવાયજ્ઞાનના અભાવે ધારણા

धारणा न भवतीति ॥ १ ॥ अवग्रहादीनां स्वरूपमाह-'अत्थाणं०' इत्यादि। अर्थानां=शब्दादीनाम्; अवग्रहणे सति=प्रथमदर्शनान्तरम्-व्यञ्जनावग्रहानन्तर-मित्यर्थः, अवग्रहो भवति। ननु वस्तुनः सामान्यविशेषात्मकतया विशिष्टत्वात् कथं प्रथमं दर्शनं ततो ज्ञान? मिति चेत्, उच्यते-ज्ञानस्य प्रबलावरणवत्त्वात्, दर्शनस्य चाल्पावरणवत्त्वादिति। अर्थानामित्यस्याग्रेऽपि सम्बन्धः। तथा अर्थानां विचारणे=पर्यालोचने ईहा भवति। तथा-अर्थानां व्यवसाये निश्चये अवायो

तथा, अवायज्ञान के अभाव में धारणा नहीं होती है। अवग्रह आदि ज्ञानों का स्वरूप इस प्रकार है-शब्दादिक पदार्थों का जो प्रथम दर्शनरूप व्यंजनावग्रह के बाद सामान्य बोध होता है उसका नाम अवग्रह है १।

शंका—जब वस्तु सामान्य विशेष धर्मात्मक है तो क्या कारण है जो उसका सर्व प्रथम दर्शन ही होता है ज्ञान नहीं होता? और क्यों दर्शन के बाद ज्ञान होता है?।

उत्तर—ज्ञान का जो आवरण है वह दर्शन का आवरण अल्प है, इसलिये प्रबल आवरणवाला होने से दर्शन के बाद ही ज्ञान होता है। दर्शन का आवरण जल्दी हट जाता है और ज्ञान का आवरण देर से हटता है, इसलिये ज्ञानकी अपेक्षा दर्शन पहिले होता है, बाद में ज्ञान।

अर्थों की जो विचारणा होती है उसका नाम ईहा २। और उनका

થતી નથી, અવગ્રહ આદિ જ્ઞાનોનું સ્વરૂપ આ પ્રમાણે છે-શબ્દાદિક પદાર્થોના પ્રથમદર્શનરૂપ વ્યંજનાવગ્રહની પછી જે સામાન્યબોધ થાય છે, તેનું નામ અવગ્રહ છે. (૧)

શંકા—જો વસ્તુ સામાન્ય વિશેષ ધર્માત્મક હોય છે, તો કયાં કારણે તેનું સર્વપ્રથમ દર્શન જ થાય છે, પણ જ્ઞાન થતું નથી? અને શા કારણે દર્શન પછી જ્ઞાન થાય છે?

ઉત્તર—જ્ઞાનનું જે આવરણ છે તે દર્શનનાં આવરણ કરતાં પ્રબળ છે. અને દર્શનનું આવરણ અલ્પ છે, તેથી પ્રબળ આવરણવાળું હોવાથી દર્શન પછી જ જ્ઞાન થાય છે. દર્શનનું આવરણ જલ્દી ખસી જાય છે, અને જ્ઞાનના આવરણને ખસતા વાર લાગે છે. તે કારણે જ્ઞાન કરતાં દર્શન પહેલું થાય છે, અને પછી જ્ઞાન થાય છે.

અર્થોની જે વિચારણા થાય છે તેનું નામ ઈહા. ૨. અને તેમનો જે

भवति। तथा-धरणम्=वासनादिरूपेण यद्धारणं, तत्, धारणां ब्रुवते=वदन्ति तीर्थंकरादय इत्यर्थः ॥ २ ॥

अवग्रहादीनां स्थितिमानमाह-'उग्गह इक्के०' इत्यादि। अवग्रहः-एकं समयं भवति। इहावग्रहशब्देन नैश्चयिकोऽर्थावग्रहो गृह्यते। सर्वजघन्यः कालविशेषः समयः। स च प्रवचनोक्तादुत्पलपत्रशतव्यतिभेदोदाहरणात्, जरत्पटशाटिकापाटनदृष्टान्ताच्च विज्ञेयः। तमेकं समयमवग्रहो वर्तते, न तु ततः परमित्यर्थः। व्यञ्जनावग्रह-व्यावहारिकार्थावग्रहौ च प्रत्येकमन्तर्मुहूर्त्तं भवत इति द्रष्टव्यम्। ईहावायौ तु अर्धं मुहूर्त्तं भवतः। मुहूर्तो घटिकाद्वयप्रमाणः कालविशेषः। अर्धं मुहुर्तमिति व्यवहारापेक्षया कथितम्। परमार्थतस्तु इह 'मुहुत्तमद्धं' इत्यनेनान्तर्मुहुर्तमेव मन्तव्यम्। तु शब्दः समुच्चये।

जो निश्चय होता है उसका नाम अवाय ३। तथा उन शब्दादिक पदार्थो का जो वासना आदि रूप से हृदय में धारण होता है उसका नाम धारणा है ४। ऐसा तीर्थंकर गणधरों ने कहा है। इनका कालमान इस प्रकार हैं-

अवग्रह नैश्चयिक अर्थावग्रह-का काल एक समय मात्र है। कालका सबसे जघन्य भेद समय कहा है। उत्पलके शतपत्रोंको एक साथ छेदने में तथा जीर्ण वस्त्रादिकके फाडनेमें असंख्यात समय हो जाते हैं, इससे जाना जाता है कि समय, कालका सबसे सूक्ष्म भेद है। नैश्चयिक अर्थावग्रह एक समय तक ही रहता है, इसके बाद नहीं। व्यंजनावग्रह तथा व्यावहारिक अर्थावग्रह, इनका काल प्रत्येकका अन्तर्मुहूर्त है। ईहा तथा अवाय, इनका काल आधा मुहूर्तका है। दो घडीका एक मुहूर्त होता है। यहां जो आधा मुहूर्तकाल बतलाया गया है वह व्यवहारकी अपेक्षा कहा

નિશ્ચય થાય છે તેનું નામ અવાય ૩. તથા એ શબ્દાદિક પદાર્થોનું જે વાસના આદિ રૂપે હૃદયમા ધારણા થાય છે તેનુ નામ ધારણા છે ૪. એવું તીર્થંકર ગણધરોએ કહ્યું છે. તેમનુ કાળમાન આ પ્રમાણે છે-

અવગ્રહ-નૈશ્ચયિક અર્થાવગ્રહ-નો કાળ માત્ર એક સમયનો છે. કાળનો સૌથી જઘન્ય ભેદ સમય કહેવાય છે. ઉત્પલના સો પાનને એક સાથે છેદવામા તથા જીર્ણ વસ્ત્રાદિકને ફાડવામાં અસંખ્યાત સમય લાગે છે; તેથી જાણી શકાય છે કે સમય, કાળનો સૌથી સૂક્ષ્મ ભેદ છે. નૈશ્ચયિક અર્થાવગ્રહ એક સમય સુધી જ રહે છે, ત્યારબાદ રહેતો નથી. વ્યંજનાવગ્રહ તથા વ્યાવહારિક અર્થાવગ્રહ એ પ્રત્યેકનો કાળ અન્તર્મુહુર્ત છે, ઇહા તથા અવાયનો કાળ અર્ધો મુહૂર્તનો છે. બે ઘડીનું એક મુહુર્ત થાય છે, અહીં જે અર્ધો મુહુર્તકાળ બતાવ્યો

धारणा–असंख्यं संख्यं च कालं ज्ञातव्या भवति। असंख्यं–न विद्यते संख्या–पक्षः–मास–ऋतु–अयन–संवत्सरादिको यस्यासावसंख्यः–पल्योपमादिलक्षणस्तं कालमसंख्यम्, तथा–संख्यायते, इति संख्यः–पक्षमासर्त्वयनादिप्रमित इत्यर्थः। तं संख्यं, च शब्दादन्तर्मुहूर्तं च कालं धारणा भवतीत्यर्थः। इदमुक्तं भवति–अविच्युति–वासनास्मृतिभेदाद् धारणा त्रिविधा। तत्राविच्युतिरूपा स्मृतिरूपा च प्रत्येकमन्तर्मुहूर्त्तं भवति। या तु तदर्थज्ञानावरणक्षयोपशमरूपा स्मृतिबीजरूपा वासनाख्या धारणा सा संख्येयवर्षायुषां प्राणिनां संख्येयकालम्, असंख्येयवर्षायुषां तु पल्योपमादिजीविनामसंख्येयं कालं भवतीति॥ ३॥

गया जानना चाहिये। वैसे तो वास्तविक रूपमें इनका काल "मुहुत्तमद्धं" इस कथनसे अन्तर्मुहूर्तका ही मानना चाहिये। धारणा का समय संख्यात असंख्यात–कालरूप कहा गया है। पक्ष, मास, ऋतु, अयन, संवत्सर आदिरूप संख्या जिसमें नहीं होती है ऐसा जो पल्योपम आदि रूप काल है उसका नाम असंख्यात काल है, तथा जिसमें पक्ष मास ऋतु आदिका व्यवहार होता है वह संख्यातकाल है। तथा "च" शब्द से यह बात भी जानी जाती है कि इसका काल अन्तर्मुहूर्त भी है। इस का तात्पर्य यह है कि शास्त्रों में धारणा के (१) अविच्युति, (२) वासना तथा (३) स्मृति, इस तरह तीन भेद बतलाये हैं। इनमें अविच्युति तथा स्मृतिरूप धारण का काल प्रत्येक का अन्तर्मूहूर्त का है। तथा वासनारूप जो धारणा है, कि जिससे स्मृति होती है एवं जो तत्तत् अर्थ के ज्ञानावरण के क्षयोपशमरूप होती है, वह संख्यात वर्ष की आयुवाले प्राणियों

છે, તે વ્યવહારની અપેક્ષાએ કહેલ છે એમ સમજવાનું છે. આમ તો વાસ્તવિક રૂપે તેનો કાળ "मुहुत्तमद्धं" આ કથનથી અન્તર્મુહુર્ત જ માનવો જોઈએ. ધારણાનો કાળ અસંખ્યાત અને સંખ્યાતકાળરૂપ કહેવાય છે. પક્ષ, માસ, ઋતુ, અયન, સંવત્સર આદિરૂપ સંખ્યા જેમાં હોતી નથી એવો જે પલ્યોપમ આદિ રૂપ કાળ છે તેનુ નામ અસંખ્યાત કાળ છે, તથા જેમાં પક્ષ, માસ, ઋતુ આદિનો વ્યવહાર થાય છે તે સંખ્યાત કાળ છે. તથા "च" શબ્દથી આ વાત પણ જાણવા મળે છે કે તેનો કાળ અન્તર્મુહુર્ત પણ છે. તેનું તાત્પર્ય એ છે કે શાસ્ત્રોમાં ધારણાના, (૧) અવિચ્યુતિ, (૨) વાસના, તથા (૩) સ્મૃતિ એ રીતે ત્રણ ભેદ બતાવ્યા છે. તેઓમાં અવિચ્યુતિ તથા સ્મૃતિરૂપ ધારણા એ પ્રત્યેકનો કાળ અન્તર્મુહુર્તનો છે. અને વાસનારૂપ જે ધારણા છે કે જેથી સ્મૃતિ થાય છે, અને જે તે તે અર્થનાં જ્ઞાનાવરણના ક્ષયોપશમરૂપ હોય છે, તે સંખ્યાત

तदेवमवग्रहादीनां स्वरूपं कालप्रमाणं चाभिधाय श्रोत्रेन्द्रियादीनां प्राप्ताप्राप्त-विषयतामाह-' पुट्ठं सुणेइ०' इत्यादि। स्पृष्ट=श्रोत्रेन्द्रियेण स्पृष्टमात्रं शब्दं शृणोति। अयमर्थः-यथा शरीरोपरि धूलिकणसंपातस्तथा श्रोत्रेन्द्रियेण सह शब्दस्पर्शमात्रे सति शब्दं जानातीति।

ननु कथं स्पृष्टमात्रं शब्दं शृणोती? ति चेत्, उच्यते-इह शेषेन्द्रियगणापेक्षया श्रोत्रेन्द्रियं प्रायः पटुतरम्, तथा गन्धादिद्रव्यापेक्षया शब्दद्रव्याणि सूक्ष्माणि

की अपेक्षा संख्यातवर्ष प्रमित कालवाली मानी जाती है, और जो पल्योपम आदि असंख्यातवर्ष की आयुवाले जीव होते हैं उनकी अपेक्षा असंख्यातवर्ष प्रमित काल वाली मानी जाती है। इस अपेक्षा इसका काल संख्यात तथा असंख्यात वर्ष का बतलाया है॥ ३॥

इस प्रकार अवग्रह आदि का स्वरूप एवं काल प्रमाण बतलाकर अब श्रोत्र इन्द्रिय आदिकों में प्राप्यकारिता तथा अप्राप्यकारिता प्रकट करते हैं-" पुट्ठं सुणेइ सद्दं० " इत्यादि। जो श्रोत्र इन्द्रिय है वह स्पृष्टमात्र शब्द को सुनती है, इसलिये वह प्राप्यकारी है। जिस प्रकार शरीर के ऊपर धूलिकणों का संपात होता है उसी तरह श्रोत्र इन्द्रिय के साथ शब्द का स्पर्शमात्र होते ही वह उसे जान लेती है।

शंका—स्पृष्टमात्र होने पर श्रोत्रेन्द्रिय शब्द को कैसे सुन लेती है?

उत्तर—शेष इन्द्रियों की अपेक्षा श्रोत्र इन्द्रिय प्रायः पटुतर होती है, तथा गंध आदि द्रव्य की अपेक्षा शब्द, द्रव्य, सूक्ष्म, प्रभूत, और भावुक

વર્ષના આયુષ્યવાળા પ્રાણીઓની અપેક્ષાએ સંખ્યાત વર્ષ પ્રમિત કાળવાળી મનાય છે, અને જે પલ્યોપમ આદિ અસંખ્યાત વર્ષના આયુષ્યવાળા જીવ હોય છે. તેમની અપેક્ષાએ અસંખ્યાત વર્ષ પ્રમિત કાળવાળી મનાય છે. તે અપેક્ષાએ તેનો કાળ અસંખ્યાત તથા સંખ્યાત વર્ષનો બતાવ્યો છે. ॥ ૩॥

આ રીતે અવગ્રહ આદિનું સ્વરૂપ અને કાળપ્રમાણ બતાવીને હવે શ્રોત્રેન્દ્રિય આદિમાં પ્રાપ્યકારિતા તથા અપ્રાપ્યકારિતા પ્રગટ કરે છે—" पुट्ठं सुणेइ सद्दं० " ઈત્યાદિ જે શ્રોત્ર ઇન્દ્રિય છે, તે માત્ર સ્પૃષ્ટ શબ્દને જ સાંભળે છે. તે કારણે તે પ્રાપ્યકારી છે. જેમ શરીર ઉપર ધૂલિકણોનો સંપાત થાય છે એજ પ્રમાણે શ્રોત્રેન્દ્રિયની સાથે શબ્દનો સ્પર્શ માત્ર થતાં જ તે તેને જાણી લે છે.

શંકા—સ્પર્શમાત્ર થતાં જ શ્રોત્રેન્દ્રિય શબ્દને કેવી રીતે સાંભળે છે?

ઉત્તર—બાકીની ઇન્દ્રિયો કરતાં શ્રોત્ર ઇન્દ્રિય સામાન્ય રીતે વધારે ચપળ હોય છે, તથા ગંધ આદિ દ્રવ્યની અપેક્ષાએ શબ્દદ્રવ્ય, સૂક્ષ્મ, પ્રભૂત અને

प्रभूतानि भावुकानि च, अर्थात्-श्रोत्रेन्द्रियसंसर्गेण तथाविधपरिणमनशीलानि, शब्दपुद्गला एव सर्वतस्तदिन्द्रियं व्याप्नुवन्ति। ततः स्पृष्टमात्राण्यपि शब्दद्रव्याणि श्रोत्रेन्द्रियेण ग्रहीतुं शक्यन्ते।

रूपं पुनरस्पृष्टमेव=असंबद्धमेव पश्यति=गृह्णाति। पुनः शब्दादस्पृष्टमपि योग्यदेशावस्थितमेव गृह्णाति, नत्वयोग्यदेशावस्थितमधोलोकादिस्थितम्, चक्षुषोऽप्राप्यकारित्वात्, परिमितदेशस्थविषयग्राहित्वाच्च। 'तु' शब्द एवकारार्थे वर्तते। तथा

होते हैं, अर्थात्-श्रोत्र इन्द्रिय के साथ शब्द द्रव्य का संसर्ग होते ही उसमें तथाविध परिणमन् शीलता आ जाती है। शब्द पुद्गल ही सर्व तरफ से उस इन्द्रिय को व्यास कर लेते हैं, इसलिये स्पृष्टमात्र शब्द द्रव्य श्रोत्र इन्द्रिय द्वारा ग्रहण किये जाते हैं, अतः वह प्राप्यकारी बतलाई गई है। यही बात गाथाकारने "पुट्ठं सुणेइसद्दं" 'स्पृष्टं शृणोति शब्दम्' इस गाथांश द्वारा स्पष्ट की है। चक्षु इन्द्रिय अस्पृष्टरूप को देखती है, अतः वह अप्राप्यकारी कही गई है। गाथा में पुनः शब्द इस बात की सूचना के निमित्त है कि यद्यपि चक्षु इन्द्रिय अस्पृष्टरूप को ही जानती है तो भी वह योग्य देश में अवस्थित हुए ही उस रूप को ग्रहण करती है, अधोलोक आदि अयोग्य देश में स्थितरूप को नहीं, क्यों कि यह अप्राप्यकारी मानी गई है। तथा इस इन्द्रिय का स्वभाव ही कुछ ऐसा है कि जिसकी वजह से यह परिमित देश में रहे हुए विषय को ग्रहण करती है। गाथा में 'तु' शब्द 'एव' के अर्थ में आया है। घ्राण-

---

ભાવુક હોય છે, એટલે કે-શ્રોત્ર ઇન્દ્રિયની સાથે શબ્દદ્રવ્યનો સંસર્ગ થતા જ તેમાં તે પ્રકારની પરિણમન શીલતા આવી જાય છે. શબ્દ પુદ્ગલ જ બધી તરફથી તે ઇન્દ્રિયને આવરી લે છે, તે કારણે શબ્દદ્રવ્યનો સ્પર્શમાત્ર શ્રોત્રેન્દ્રિય વડે ગ્રહણ થાય છે, તેથી તેને પ્રાપ્યકારી દર્શાવી છે. એજ વાત સૂત્રકારે "पुट्ठं सुणेइ सद्दं"–स्पृष्टं शृणोति शब्दम्" એ ગાથાંશ દ્વારા સ્પષ્ટ કરેલ છે. ચક્ષુ ઇન્દ્રિય અસ્પર્શ્ય રૂપને દેખે છે, તેથી તેને અપ્રાપ્યકારી કહેલ છે. ગાથામા પુનઃ શબ્દ એ બાબતની સૂચનાને માટે છે. કે ચક્ષુ ઇન્દ્રિય અસ્પર્શ્ય રૂપને જ જાણે તો પણ તે યોગ્ય સ્થાનમાં રહેલ તે રૂપને જ ગ્રહણ કરે છે, અધોલોક આદિ અયોગ્ય સ્થાનમાં રહેલ રૂપને નહીં, કારણ કે તે અપ્રાપ્યકારી ગણેલ છે. તથા આ ઇન્દ્રિયનો સ્વભાવ જ કંઈક એવો છે કે જેને કારણ તે મર્યાદિત સ્થાનમાં રહેલ વિષયને ગ્રહણ કરે છે. ગાથામાં "तु" શબ્દ "एव"ના

गन्धं रसं च स्पर्शं च बद्धस्पृष्टं—बद्धम्=आश्लिष्टम् आत्मप्रदेशैरात्मीकृतं—दुग्धे जलमिवेत्यर्थः, स्पृष्टं=स्पृष्टमात्रम्, शरीरे रजःकणवत्। आर्षत्वात्—'बद्धपुट्ठं' इति। अर्थस्तु स्पृष्टं बद्धं च स्पृष्टबद्धमिति बोध्यम्, पूर्वं स्पृष्टं पश्चाद् बद्धं स्पृष्टबद्धम्, स्पर्शमात्राऽनन्तरमात्मप्रदेशैरागृहीतमित्यर्थः। घ्राणादिभिरिन्द्रियैर्जानातीति व्यागृणाति=तीर्थंकरः कथयति।

इह शब्दमुत्कर्षतो द्वादशयोजनेभ्य आगतं जीवः शृणोति। गन्धरसस्पर्शद्रव्याणि तु प्रत्येकमुत्कर्षतो नवभ्यो योजनेभ्य आगतानि घ्राणरसनस्पर्शनेन्द्रियैर्जीवो गृह्णाति। जघन्यतस्तुरूपं विहाय शब्दादिद्रव्याणि अङ्गुलासंख्येयभागादागतानि गृह्णाति। चक्षुषा तु जघन्यतो योग्यदेशस्थंयोग्यविषयमङ्गुलसंख्येयभागवर्ति द्रव्यं गृह्णाति। उत्कर्षतस्तु आत्माङ्गुलेन सातिरेकयोजनलक्षणवर्ति

इन्द्रिय, रसनाइन्द्रिय तथा स्पर्शइन्द्रिय, ये अश्लिष्ट एवं स्पृष्ट हुए अपने विषय को-गंध रस एवं स्पर्श को जानती हैं। "बद्ध पुट्ठं" यह आर्षवाक्य है अतः यहां 'पुट्ठं बद्ध' ऐसा समझना चाहिये, अर्थात् इन इन्द्रियों का विषय पहिले इन इन्द्रियोंके साथ स्पृष्ट होता है बादमें बद्ध होता है। ऐसा तीर्थंकर गणधरोंने कहा है।

बारह योजनसे आये हुए शब्दको कर्ण इन्द्रियके द्वारा जीव उत्कृष्ट की अपेक्षा विषय कर लिया करता है। इसी तरह उत्कृष्टकी अपेक्षा नौ २ योजन तक के गंध, रस, और स्पर्श द्रव्योंको घ्राण आदि इन्द्रियों के द्वारा जीव विषय कर लिया करता है। जघन्यकी अपेक्षा रूपको छोड कर अंगुलके असंख्यातवें भागसे आये हुए शब्दादिक द्रव्योंको

અર્થમાં આવ્યો છે. ઘ્રાણેન્દ્રિય, રસનાઇન્દ્રિય તથા સ્પર્શઇન્દ્રિય, એ આશ્લિષ્ટ અને સ્પૃષ્ટ થયેલ પોતાના વિષયને-ગંધ, રસ અને સ્પર્શને જાણે છે. "બદ્ધ પુટ્ઠં" એ આર્ષવાકય છે તેથી અહીં "પુટ્ઠં બદ્ધં" એમ સમજવાનું છે. એટલે કે એ ઇન્દ્રિયોનો વિષય પહેલાં એ ઇન્દ્રિયોની સાથે સ્પૃષ્ટ થાય છે, પછી બદ્ધ થાય છે. એવું તીર્થંકર ગણધરોએ કહ્યું છે.

બાર યોજનથી આવેલ શબ્દને જીવ કર્ણઇન્દ્રિય દ્વારા ઉત્કૃષ્ટની અપેક્ષાએ વિષય કરી લે છે. એજ પ્રમાણે ઉત્કૃષ્ટની અપેક્ષાએ નવ, નવ, યોજન સુધીના ગંધ, રસ અને સ્પર્શ દ્રવ્યોને ઘ્રાણેન્દ્રિય આદિ ઇન્દ્રિયો દ્વારા જીવ વિષય કરી લે છે. જઘન્યની અપેક્ષાએ રૂપને છોડીને અંગુલના અસંખ્યાતમાં ભાગથી

द्रव्यम्। एतदपि भास्वरद्रव्यमधिकृत्योच्यते। भास्वरद्रव्यमेकविंशतियोजनलक्षेभ्योऽपि परतः पश्यन्ति। यथा पुष्करवरद्वीपार्धे मानुषोत्तरपर्वतप्रत्यासन्नवर्तिनो मनुष्याः कर्कसंक्रान्तौ सूर्यबिम्बं पश्यन्तीति विज्ञेयम्। तथाचोक्तम्—

लक्खेहि एगवीसा,—ए साइरेगेहि पुक्खरद्धम्मि।
उदए पेच्छंति नरा, सूरं उक्कोसए दिवसे॥ १॥

छाया—लक्षैरेकविंशत्या, सातिरेकैः पुष्करार्धे।
उदये प्रेक्षन्ते नराः, सूर्यम् उत्कर्षके दिवसे॥१॥ इति॥४॥

ननु 'स्पृष्टं शृणोति शब्द'—मित्युक्तम्, तत्र किं शब्दप्रयोगनिःसृतान्येव केवलानि शब्द द्रव्याणि शृणोति, उतान्यान्येव तद्भावितानि, आहोस्वित् मिश्राणीति?।

जीव जान लेता है। जघन्यकी अपेक्षा चक्षुके द्वारा जीव अंगुलके संख्यातवें भागवर्ति, योग्य देशस्थित ऐसे योग्य विषयरूप द्रव्यको जान लेता है। तथा उत्कृष्टकी अपेक्षा आत्माङ्गुलके मापसे कुछ अधिक एक लाख योजनवर्ती द्रव्यको जान लेता है। यह कथन भास्वर—चमकता हुआ द्रव्यकी अपेक्षा कहा गया जानना चाहिये। जीव चक्षु इन्द्रियके द्वारा इक्कीस लाख योजनसे भी दूर रहे हुए भास्वर द्रव्यको देख लेता हैं, जैसे—कर्क संक्रान्तिमें पुष्कर द्वीपार्धमें रहे हुए मानुषोत्तर पर्वतके प्रत्यासन्नवर्ती—जीव सूर्य के बिम्बको देख लिया करते हैं। कहा भी है—

" लक्खेहि एगवीसाए, साइरेगेहि पुक्खरवरद्धंमि।
उदये पेच्छंति नरा, सूरं उक्कोसए दिवसे "॥ १॥

આવેલ શબ્દાદિક દ્રવ્યોને જીવ જાણી લે છે. જઘન્યની અપેક્ષાએ ચક્ષુ દ્વારા જીવ અંગુલના અસંખ્યાતમાં ભાગવર્તિ, યોગ્ય સ્થાનમા રહેલ એવાં યોગ્ય વિષયરૂપ દ્રવ્યોને જાણી લે છે. તથા ઉત્કૃષ્ટની અપેક્ષાએ આત્માઙ્ગુલના માપથી કંઈન વધારે એક લાખ યોજનવર્તી દ્રવ્યને જાણી લે છે. આ કથન ભાસ્વર દ્રવ્યની અપેક્ષાએ કહેલ છે, એમ સમજવાનું છે. જીવ ચક્ષુઇન્દ્રિય દ્વારા એકવીસ લાખ યોજનથી પણ દૂર રહેલ ભાસ્વર દ્રવ્ય જોવે છે. જેમકે કર્ક સક્રાંતિમા પુષ્પકવર દ્વીપાર્ધમાં રહેલ માનુષોત્તર પર્વતના પ્રત્યાસન્નવર્તી જીવ સૂર્યના બિંબને જોવે છે. કહ્યું પણ છે–

" लक्खे हि एगवीसाए साइ रेगे हि पुक्खर वरद्धंमि।
उदये पेच्छंति नरा, सूरं उक्कोसए दिवसे "॥१॥

उच्यते—न केवलानि शब्दप्रयोगनिःसृतानि शब्दद्रव्याणि शृणोति। यतः केवलानि वासकानि, तथा—शब्दयोग्यानि च द्रव्याणि सकललोकव्याप्तानि, अतस्तद्भावितानि विना केवलानामसत्त्वात् केवलानि न श्रोतुं शक्यन्ते। किंतु तद्भावितानि मिश्राणि वा शृणोति। अमुमर्थं प्रतिबोधयितुमाह—'भासा' इति। भाष्यते इति भाषा=वाक्। शब्दरूपतया निसृता पुद्गलद्रव्यसंहतिरित्यर्थः। सा च द्विविधा—वर्णात्मिका

शंका—मनुष्य कर्ण इन्द्रिय द्वारा स्पृष्ट शब्दको सुनता है ऐसा जो कहना है उस विषयमें यह प्रश्न है कि मनुष्य कर्ण इन्द्रियद्वारा शब्द प्रयोग करते समय निकले हुए एक मात्र शब्द द्रव्योंको सुनता है? अथवा इनसे जुदे तद्भावित शब्दों को? अथवा मिश्र शब्दोंको सुनता है?

उत्तर—मनुष्य कर्ण इन्द्रिय द्वारा केवल शब्द प्रयोग निसृत शब्द द्रव्यों को नहीं सुनता है, क्यों कि वे उस समय वासक (संस्कारक) होते हैं। तथा शब्द योग्य द्रव्य सकल लोकमें व्याप्त रहते हैं, इस लिये तद्भावित शब्दों के विना केवल शब्द द्रव्योंका कर्ण इन्द्रियद्वारा सुनना असंभव है, अतः तद्भावित शब्दोंका अथवा मिश्र शब्दोंका ही सुनना संभव है, इस लिये श्रोता ऐसे शब्दों को ही सुनता है, केवल शब्द द्रव्यों को नहीं ॥ ४ ॥ यही बात सूत्रकार अगली गाथासे स्पष्ट करते हैं–'भासा समसेढीओ०' इत्यादि। शब्द रूपसे परिणत हो कर निकले हुए पुद्गल द्रव्य समूहको भाषा कहते हैं। यह भाषा वर्णस्वरूप

શંકા—મનુષ્ય કર્ણેન્દ્રિય દ્વારા સ્પૃષ્ટ શબ્દને સાંભળે છે એમ જે કહેલું છે, તે વિષયમાં આ પ્રશ્ન છે કે–મનુષ્ય કર્ણેન્દ્રિય દ્વારા શબ્દ પ્રયોગ કરતી વખતે નિકળેલ એક માત્ર શબ્દ દ્રવ્યોને સાંભળે છે? અથવા તેમનાથી જુદા તદ્‌ભાવિત શબ્દોને? અથવા મિશ્ર શબ્દોને સાંભળે છે?

ઉત્તર—મનુષ્ય કર્ણેન્દ્રિય દ્વારા ફક્ત શબ્દ પ્રયોગ નિસૃત શબ્દ દ્રવ્યોને સાંભળતો નથી, કારણ કે તેઓ તે સમયે વાસક (સંસ્કારક) હોય છે. તથા શબ્દયોગ્ય દ્રવ્ય સકળ લોકમાં વ્યાપ્ત રહ્યા કરે છે, તેથી તદ્‌ભાવિત શબ્દો વિના ફક્ત શબ્દ દ્રવ્યોનું કર્ણેન્દ્રિય દ્વારા સંભળાવું તે અસંભવિત છે, તેથી તદ્‌ભાવિત શબ્દોનું અથવા મિશ્ર શબ્દોનું જ સંભળાવું સંભવિત છે, તે કારણે શ્રોતા એવાં શબ્દોને જ સાંભળે છે, ફક્ત શબ્દ દ્રવ્યોને જ નહીં ॥૪॥ એ જ વાત સૂત્રકાર હવે પછીની ગાથામાં સ્પષ્ટ કરે છે–

"भासा समसेढीओ०" ઇત્યાદિ.

શબ્દરૂપે પરિણત થઈને નિકળેલ પુદ્‌ગલ દ્રવ્યસમૂહને ભાષા કહે છે.

अवर्णात्मिका च। तत्र वर्णात्मिका लोकव्यवहाररूपा, अवर्णात्मिका च भेरीभाङ्कारादिरूपा । तस्याः समाः श्रेणयः—भाषासमश्रेणयः । इह श्रेणयः क्षेत्रप्रदेशे पङ्क्तय उच्यन्ते । ताश्च सर्वस्यैव भाषमाणस्य षट्सु दिक्षु विद्यन्ते । यासु श्रेणिषु निःसृता सती भाषा प्रथमसमय एव लोकान्तमनुधावति, ता इतः=गतः—प्राप्तः—भाषासमश्रेणीतः=भाषासमश्रेणिव्यवस्थित इत्यर्थः, यं शब्दं=पुरुषादिसम्बन्धिनं भेर्यादिसम्बन्धिनं वा शृणोति=जानाति, यत्तच्छब्दयोर्नित्यसम्बन्धात् तं मिश्रितं शृणोति-निःसृतशब्द द्रव्यभाविताऽपान्तरालस्थशब्दद्रव्यमित्यर्थः । विश्रेणिं पुनः इत इति योज्यम् । विश्रेणिम् इतः=गतः—प्राप्तः—विश्रेणिव्यवस्थित इत्यर्थः । अथवा—विश्रेणिस्थितो विश्रेणिरित्युच्यते, पदेऽपि पदावयवप्रयोगदर्शनात्, यथा—'भीमसेनः सेनः, सत्यभामा भामा' इति । स तु नियमात् पराघाते सति शब्दं शृणोति । अयं भावः यानि वासितानि शब्दद्रव्याणि तान्येव निःसृतशब्दद्रव्याभिघाते सति शृणोति, न तु निःसृतानि केवलानि, तेषामनुश्रेणिगमनात् प्रतिघाताभावाच्चेति ॥५॥

और अवर्ण स्वरूपसे दो प्रकारकी होती है । जिस भाषामें लोकव्यवहार चलता है वह वर्णात्मक भाषा है, तथा भेरी आदिकी ध्वनिरूप भाषा अवर्णस्वरूप है । भाषाकी समश्रेणी का तात्पर्य है—भाषाके क्षेत्रप्रदेशमें समान पंक्तिका होना । ये श्रेणियां बोलनेवाले व्यक्तिकी छहों दिशाओं में हुआ करती हैं । इन्हीं में से हो कर भाषा प्रथम समयमें ही लोकके अन्त तक पहुंच जाती है, अतः भाषाकी समश्रेणिमें व्यवस्थित हुआ जब किसी शब्दको चाहे वह पुरुष आदि संबंधी हो या भेरी आदि संबंधी हो सुनता है तो वह उसे मिश्रित ही सुनता है । तथा जो व्यक्ति भाषाकी समश्रेणी में स्थित नहीं है किन्तु विश्रेणिमें स्थित है वह नियमतः पराघात होने पर वासित शब्द द्रव्योंको ही सुनता है, केवल

એ ભાષા વર્ણસ્વરૂપ અને અવર્ણસ્વરૂપ એ બે પ્રકારની હોય છે. જે ભાષામાં લોકવ્યવહાર ચાલે છે તે વર્ણાત્મક ભાષા છે, તથા ભેરી આદિના ધ્વનિરૂપ ભાષા અવર્ણસ્વરૂપ છે. ભાષાની સમશ્રેણીનું તાત્પર્ય આ છે—

ભાષાના ક્ષેત્રપ્રદેશમાં સમાન પંક્તિનું હોવું. એ શ્રેણિઓ બોલનાર વ્યક્તિની છએ દિશાઓમાં થાય છે. તેમની અંદરથી ભાષા પ્રથમ સમયમાં જ લોકના અન્ત સુધી પહોંચી જાય છે, તેથી ભાષાની સમશ્રેણિમાં રહેલ શ્રોતા જ્યારે કોઈ શબ્દને—ભલે તે પુરુષ આદિ સંબંધી હોય કે ભેરી આદિ સંબંધી હોય—સાંભળે છે ત્યારે તે તેને મિશ્રિત જ સાંભળે છે. તથા જે વ્યક્તિ ભાષાની સમશ્રેણિમા રહેલ નથી પણ વિશ્રેણિમાં રહેલ છે, તે નિયમતઃ પરાઘાત થતા વાસિત શબ્દદ્રવ્યોને જ સાંભળે છે. ફક્ત નિસૃત શબ્દોને નહીં, કારણ કે તે

संप्रति मतिज्ञानपर्यायशब्दानाह—'ईहा०' इत्यादि। ईहनम् ईहा=सदर्थपर्यालोचनम्। अपोहः=निश्चयः। विमर्शः=विमर्शनम्—अवायात् पूर्व ईहायाश्चोत्तरः प्रायः 'शिरःकण्डूयनादयः पुरुषधर्मा इह न घटन्ते'—इति संप्रत्ययः, ईहाऽवायमध्यवर्ती प्रत्यय इत्यर्थः। तथा—मार्गणा—अन्वयधर्मान्वेषणरूपा। च शब्दः समुच्चयार्थः। गवेषणा=व्यतिरेकधर्माऽऽलोचनम्। तथा-संज्ञा—संज्ञानं, व्यञ्जनावग्रहोत्तरकालभावी मतिविशेष इत्यर्थः। स्मृतिः=स्मरणं—पूर्वानुभूतार्थालम्बनः प्रत्यय-

---

निसृत शब्दों को नहीं, कारण के वे श्रेणिके अनुसार गमन कर जाते हैं और उनमें प्रतिघातका उस समय अभाव रहता है ॥ ५ ॥

अब मतिज्ञानके पर्यायवाची शब्दों को सूत्रकार बतलाते हैं—'ईहा०' इत्यादि।

मतिज्ञानके पर्यायवाची नौ नाम इस प्रकार हैं-ईहा १, अपोह २, विमर्श ३, मार्गणा ४, गवेषणा ५, संज्ञा ६, स्मृति ७, मति ८, प्रज्ञा ९। सदर्थका विचार करना इसका नाम ईहा १, उस वस्तुका निश्चय हो जाना अपोह २, अवाय के पहिले एवं ईहाके बाद होनेवाले विचारके नाम विमर्श ३, एवं अन्वय धर्मों का अन्वेषण करना मार्गणा है ४। व्यतिरेक धर्मों की आलोचना करना इसका नाम गवेषणा है ५। व्यञ्जनावग्रहके उत्तरकालमें जो मतिविशेष होता है वह संज्ञा है ६। पूर्व में अनुभूत अर्थका स्मरण करना इसका नाम स्मृति है ७। अर्थका परिच्छेद हो जाने पर भी उस अर्थ के सूक्ष्म धर्मों का आलोचन करना

શ્રેણિ પ્રમાણે ગમન કરે છે. અને તેમનામાં તે સમયે પ્રતિઘાતનો અભાવ રહે છે ॥ ૫ ॥

હવે મતિજ્ઞાનના પર્યાયવાચી શબ્દો સૂત્રકાર બતાવે છે–"ઈહા" ઈત્યાદિ

મતિજ્ઞાનના પર્યાયવાચી નવ નામ આ પ્રમાણે છે–(૧) ઈહા, (૨) અપોહ, (૩) વિમર્શ, (૪) માર્ગણા, (૫)ગવેષણા, (૬) સંજ્ઞા, (૭) સ્મૃતિ, (૮) મતિ અને (૯) પ્રજ્ઞા. (૧) સદર્થનો વિચાર કરવો તેનું નામ 'ईहा' (૨) તે વસ્તુનો નિશ્ચય થઇ જવો તેનું નામ "अपोह" (૩) અવાયની પહેલાં અને ઈહાની પછી થનાર વિચારનું નામ "विमर्श" (૪) અને અન્વયધર્મોનું અન્વેષણ કરવું તે "मार्गणा" છે. (૫) વ્યતિરેક ધર્મોની આલોચના કરવી તેનું નામ "गवेषणा" છે. (૬) વ્યંજનાવગ્રહના ઉત્તર કાળમાં જે મતિવિશેષ થાય છે તેનું નામ "संज्ञा" છે. (૭) પૂર્વે અનુભવેલ અર્થનું સ્મરણ કરવું તેનું નામ "स्मृति" છે. (૮) અર્થનો પરિચ્છેદ થઈ ગયા પછી પણ તે અર્થના સૂક્ષ્મધર્મોનું આલોચન કરવું

विशेषः। मतिः=मननं-कथंचिदर्थपरिच्छेदेऽपि सूक्ष्मधर्मालोचनरूपा बुद्धिः। तथा -प्रज्ञा=विशिष्टक्षयोपशमजन्या प्रभूतवस्तुगतयथावस्थितधर्मालोचनरूपा संवित्। सर्वमिदमाभिनिवोधिकं मतिज्ञानमित्यर्थः। कथंचित् किंचिद् भेददर्शनेऽपि तत्त्वतः सर्वं मतिज्ञानमेवेदमिति भावः॥ ६॥

तदेतत् आभिनिवोधिकज्ञानपरोक्षम्। तदेतन्मतिज्ञानं वर्णितमिति शेषः॥सू० ३६॥

संप्रति सकलचरणकरणक्रियाधारश्रुतज्ञानस्वरूपं वर्णयति—

मूलम्—से किं तं सुयनाणपरोक्खं? सुयनाणपरोक्खं चोद्दसविहं पण्णत्तं, तं जहा—अक्खरसुयं १, अणक्खरसुयं २, सण्णिसुयं ३, असण्णिसुयं ४, सम्मसुयं ५, मिच्छासुयं ६, साइयं ७, अणाइयं ८, सपज्जवसियं ९, अपज्जवसियं १०, गमियं ११, अगमियं १२, अंगपविट्ठं १३, अणंगपविट्ठं १४ ॥ सू० ३७ ॥

छाया—अथ किं तच्छ्रुतज्ञानपरोक्षम्?। श्रुतज्ञानपरोक्षं चतुर्दशविधं प्रज्ञप्तम्। तद् यथा—अक्षरश्रुतम् १, अनक्षरश्रुतम् २, संज्ञिश्रुतम् ३, असंज्ञिश्रुतम् ४, सम्यक्श्रुतम् ५, मिथ्याश्रुतम् ६, सादिकम् ७, अनादिकम् ८, सपर्यवसितम् ९, अपर्यवसितम् १०, गमिकम् ११, अगमिकम् १२, अङ्गप्रविष्टम् १३, अनङ्गप्रविष्टम् १४ ॥ सू० ३७ ॥

मति ८। तथा उस पदार्थ के यथार्थ प्रभूत धर्मों का विचार करना प्रज्ञा है९। ये सब मतिज्ञानके ही पर्यायवाची शब्द हैं। यद्यपि इनमें शाब्दिक भेद है तो भी मतिज्ञानरूपता की समानता होनेसे ये सब मतिज्ञान स्वरूप ही हैं। यह आभिनिबोधिक ज्ञान परोक्षज्ञान है। इस तरह मतिज्ञानका वर्णन किया॥ सू० ३६॥

अब सकल चरण करणक्रियाके आधारभूत श्रुतज्ञानका वर्णन करते हैं—'से किं तं सुयनाण परोक्खं० ?' इत्यादि।

તે "मति" છે. (૯) તથા તે પદાર્થનો યથાર્થ પ્રભૂત ધર્મોનો વિચાર કરવો તે "प्रज्ञा" છે. એ બધા મતિજ્ઞાનના જ પર્યાયવાચી શબ્દો છે. જો કે તેમનામાં શાબ્દિક ભેદ છે તો પણ મતિજ્ઞાન રૂપતાની સમાનતા હોવાથી એ બધાં મતિ-જ્ઞાન સ્વરૂપ જ છે. આ આભિનિબોધિક જ્ઞાન પરોક્ષ જ્ઞાન છે. આ પ્રમાણે મતિ-જ્ઞાનનું વર્ણન કરાયું ॥ સૂ. ૩૬ ॥

હવે સકળ ચરણ કરણ ક્રિયાના આધારભૂત શ્રુતજ્ઞાનનું વર્ણન કરે છે—"से किं तं सुयनाण परोक्खं० ?" ઇત્યાદિ.

टीका—'से किं तं सुयनाणपरोक्खं' इति। अथ किं तत् श्रुतज्ञानपरोक्ष-मिति शिष्यप्रश्नः। उत्तरमाह—श्रुतज्ञानपरोक्षं=श्रुतज्ञानरूपं परोक्षज्ञानं चतुर्दशविध प्रज्ञप्तं=तीर्थंकरैः प्ररूपितम्। तद् यथा—अक्षरश्रुतम् १, अनक्षरश्रुतम् २ इत्यादि। एतेषां भेदानां स्वरूपमग्रे वक्ष्यते। अक्षरश्रुतानक्षरश्रुतभेदद्वये संज्ञिश्रुादीनां शेषभे-दानामन्तर्भावेऽपि पृथगुपन्यासो मन्दमतीनां शिष्याणामनुग्रहायकृत इति ॥सू० ३७॥

अथ सूत्रकारः श्रुतज्ञानस्य चतुर्दश भेदान् वर्णयति—

मूलम्—से किं तं अक्खरसुयं?। अक्खरसुयं तिविहं पण्णत्तं। तं जहा—सन्नक्खरं १, वंजणक्खरं २, लद्धिअक्खरं ३। से किं तं सन्नक्खरं? सन्नक्खरं—अक्खरस्स संठाणागिई, से तं सन्न-क्खरं। से किं तं वंजणक्खरं?। वंजणक्खरं—अक्खरस्स वंज-णाभिलावो। से तं वंजणक्खरं। से किं तं लद्धिअक्खरं?। लद्धिअक्खरं—अक्खरलद्धियस्स लद्धि अक्खरं समुप्पज्जइ। तं छव्विहं पण्णत्तं तं जहा—सोइंदियलद्धि—अक्खरं, चक्खिंदिय-लद्धि अक्खरं, घाणिंदियलद्धि अक्खरं, रसणिंदियलद्धि—अक्खरं, फासिंदियलद्धि अक्खरं, नोइंदियलद्धि—अक्खरं। से तं लद्धि—अक्खरं, से तं अक्खरसुयं।

पूर्ववर्णित श्रुतज्ञान कि जिसका परोक्षरूपसे वर्णन किया गया है उसका क्या स्वरूप है? उत्तर—श्रुतज्ञान कि जिसको परोक्ष कहा गया है वह चौदह प्रकारका कहा गया है। वे चौदह प्रकार ये हैं—अक्षरश्रुत १, अनक्षरश्रुत २, संज्ञीश्रुत ३, असंज्ञीश्रुत ४, इत्यादि॥ सू० ३७॥

પૂર્વ વર્ણિત શ્રુતજ્ઞાન કે જેનું પરોક્ષરૂપે વર્ણન કરાયું છે, તેનું શું સ્વરૂપ છે?

ઉત્તર—શ્રુતજ્ઞાન કે જેને પરોક્ષ કહેવાયું છે. તે ચૌદ પ્રકારનું છે તે ચૌદ પ્રકાર આ પ્રમાણે છે-(૧) અક્ષર શ્રુત, (૨) અનક્ષર શ્રુત, (૩) સંજ્ઞીશ્રુત, (૪) અસંજ્ઞીશ્રુત. ઇત્યાદિ ॥સૂ. ૩૭॥

से किं तं अणक्खरसुयं ?। अणक्खरसुयं अणेगविहं पण्णत्तं। तं जहा—

गाहा—ऊससियं नीससियं, निच्छूढं खासियं च छीयं च।
निस्सिंघियमणुसारं, अणक्खरं छेलियाईयं ॥ १ ॥

से त्तंअणक्खरसुयं ॥ सू० ३८ ॥

छाया—अथ किं तदक्षरश्रुतम्?। अक्षरश्रुतं त्रिविधं प्रज्ञप्तम्। तद् यथा—संज्ञाक्षरं १, व्यञ्जनाक्षरं २, लब्ध्यक्षरं ३। अथ किं तत् संज्ञाक्षरम्?। संज्ञाक्षरम्—अक्षरस्य संस्थानाऽऽकृतिः। तदेतत् संज्ञाक्षरम्। अथ किं तद् व्यञ्जनाक्षरम्?। व्यञ्जनाक्षरम्—अक्षरस्य व्यञ्जनाभिलापः। तदेतत् व्यञ्जनाक्षरम्। अथ किं तल्लब्ध्यक्षरम्?। लब्ध्यक्षरम्—अक्षरलब्धिकस्य लब्ध्यक्षरं समुत्पद्यते। तत् षड्विधं प्रज्ञप्तं, तद् यथा—श्रोत्रेन्द्रियलब्ध्यक्षरम् १, चक्षुरिन्द्रियलब्ध्यक्षरम् २, घ्राणेन्द्रियलब्ध्यक्षरम् ३, रसनेन्द्रियलब्ध्यक्षरम् ४, स्पर्शेन्द्रियलब्ध्यक्षरम् ५, नोइन्द्रियलब्ध्यक्षरम् ६। तदेतल्लब्ध्यक्षरम्। तदेतदक्षरश्रुतम्।

अथ किं तदनक्षरश्रुतम्? अनक्षरश्रुतमनेकविधं प्रज्ञप्तम्। तद् यथा—

गाथा—उच्छ्वसितं निःश्वसितं, निष्ठ्यूतं कासितं च क्षुतं च।
निस्सिङ्घितमनुसारः, अनक्षरं खेलितादिकम् ॥ १ ॥

तदेतदनक्षरश्रुतम् ॥ सू० ३८ ॥

टीका—'से किं तं अक्खरसुयं' इति। अथ किं तद् अक्षरश्रुतमिति। पूर्वनिर्दिष्टस्याक्षरश्रुतस्य किं स्वरूपमित्यर्थः। उत्तरमाह—'अक्खरसुयं तिविहं पण्णत्तं' इत्यादि। अक्षरश्रुतं त्रिविधं प्रज्ञप्तम्। तद् यथा—संज्ञाक्षरं, व्यञ्जनाक्षरं,

---

अब सूत्रकार श्रुतज्ञानके चौदह भेदोंका वर्णन करते हैं—'से किं तं अक्खर सुयं०?' इत्यादि।

प्रश्न—पूर्वनिर्दिष्ट अक्षरश्रुतका क्या स्वरूप है? उत्तर—पूर्वनिर्दिष्ट अक्षरश्रुत तीन प्रकारका बतलाया गया है। उसके तीन प्रकार ये हैं।

હવે સૂત્રકાર શ્રુતજ્ઞાના ચૌદ ભેદનું વર્ણન કરે છે—"से किं त अक्खर सुयं ?" ઈત્યાદિ.

પ્રશ્ન—પૂર્વનિર્દિષ્ટ અક્ષરશ્રુતનું શું સ્વરૂપ છે?

ઉત્તર—પૂર્વનિર્દિષ્ટ અક્ષરશ્રુત ત્રણ પ્રકારનું બતાવ્યું છે. તે ત્રણ પ્રકારો

लब्ध्यक्षरं च । ननु अक्षरश्रुतमित्यस्य कः शब्दार्थः ?, उच्यते—न क्षरति-न चलत्यनुपयोगेऽपि न विनश्यति-इत्यक्षरं-सामान्यज्ञानम् । तद्धि जीवस्वभावतयाऽनुपयोगेऽपि तत्त्वतो न प्रच्यवते । यद्यपि मत्यादिकं सर्वं ज्ञानमविशेषेणाक्षरं भवति, तथापीह श्रुतज्ञानस्य प्रस्तावादक्षरं श्रुतज्ञानमेव द्रष्टव्यम् । अस्य श्रुतज्ञानरूपस्य भावाक्षरस्य कारणं चाकारादिवर्णवृन्दम्, ततोऽकारादिवर्णोऽप्युपचारादक्षरमुच्यते । तस्मात्-अक्षरं-ज्ञानरूपं च तच्छ्रुतम् अक्षरश्रुतं-भावश्रुतमित्यर्थः । तथा-अक्षरम्= अकारादिवर्णरूपं श्रुतम्-अक्षरश्रुतं, द्रव्यश्रुतमित्यर्थः । अक्षरश्रुतमित्यनेन द्रव्यश्रुतं, भावश्रुतमितिद्वयं बोध्यम् । तत्र द्रव्यश्रुतस्य द्वौ भेदौ । संज्ञाक्षरं, व्यञ्जनाक्षरं च । भावश्रुतं च लब्ध्यक्षररूपमिति बोध्यम् ।

संज्ञाक्षरश्रुत १, व्यञ्जनाक्षरश्रुत २, एवं लब्ध्यक्षरश्रुत ३ । अक्षर शब्दका क्या अर्थ है ? अक्षर शब्दका अर्थ है-सामान्य ज्ञान । अनुपयोग अवस्था में भी जो नष्ट नहीं होता है वह अक्षर है, ऐसी अक्षरकी व्युत्पत्ति है। ज्ञान सामान्य जीवका लक्षण है, अतः अक्षर शब्दका वाच्यार्थ सामान्य ज्ञान होता है । यद्यपि मतिज्ञान आदि समस्त विशेष ज्ञान सामान्यरूप से अक्षर रूप हैं तौ भी यहां श्रुतज्ञानका संबंध चल रहा है अतः "अक्षर" से श्रुतज्ञान ही यहां गृहीत हुआ है अन्य ज्ञान नहीं । इस श्रुतज्ञानरूप भावाक्षरका कारण अकार आदि वर्णसमूह है, अतः अकार आदि वर्ण भी उपचारसे अक्षररूप मान लिये गये हैं, इस लिये ज्ञानरूप जो श्रुत है वह अक्षरश्रुत-भावश्रुत है । और इस भावश्रुतका कारण होनेसे अकारादि अक्षर द्रव्यश्रुत हैं । अक्षरश्रुतपदसे द्रव्यश्रुत और भावश्रुत इन

નીચે પ્રમાણે છે—(૧) સંજ્ઞાક્ષર શ્રુત, (૨) વ્યંજનાક્ષર શ્રુત, અને (૩) લબ્ધ્યક્ષર શ્રુત અક્ષર શબ્દનો શો અર્થ છે ? અક્ષર શબ્દનો અર્થ "સામાન્ય જ્ઞાન" છે. અનુપયોગ અવસ્થામાં પણ જે નાશ પામતું નથી તે અક્ષર છે, એવી અક્ષરની વ્યુત્પત્તિ છે. જ્ઞાનસામાન્ય જીવનું લક્ષણ છે, તેથી અક્ષર શબ્દનો વાચ્યાર્થ સામાન્યજ્ઞાન થાય છે. જો કે મતિજ્ઞાન આદિ સમસ્ત વિશેષજ્ઞાન સામાન્યરૂપે અક્ષરરૂપ છે, તો પણ અહીં શ્રુતજ્ઞાનનો વિષય ચાલી રહ્યો છે, તેથી "અક્ષર" વડે અહીં શ્રુતજ્ઞાન જ ગ્રહણ કરાયું છે, બીજું જ્ઞાન નહીં. આ શ્રુતજ્ઞાનરૂપ ભાવાક્ષરનું કારણ અકાર આદિ વર્ણસમૂહ છે, તેથી આકાર આદિ વર્ણ પણ ઔપચારિક રીતે અક્ષરરૂપ માની લેવામાં આવ્યા છે, તે કારણે જ્ઞાનરૂપ જે શ્રુત છે તે અક્ષરશ્રુત-ભાવશ્રુત છે. અને આ ભાવશ્રુતનું કારણ હોવાથી અકારાદિ અક્ષર દ્રવ્યશ્રુત છે. અક્ષરશ્રુત પદથી દ્રવ્યશ્રુત અને ભાવશ્રુત એ બન્ને ગ્રહણ કરાયા

अथ किं तत् संज्ञाक्षरम्? इति शिष्यप्रश्नः ?। उत्तरमाह—'सन्नक्खरं०' इत्यादि। संज्ञाक्षरम् – अक्षरस्य = अकारादेर्वर्णस्य संस्थानाऽऽकृतिः—अयमर्थः—संज्ञानम्—अवबोधः—संज्ञा, अथवा—संज्ञायतेऽनयेति संज्ञा, तत्कारणम्—अक्षरं संज्ञाक्षरम्। संज्ञायाश्च – कारणमाकृतिविशेषः, आकृतिविशेष एव नाम्नः कारणाद् व्यवहरणाच्च। ततोऽक्षरस्य पट्टिकादौ लिखितस्य संस्थानाकृतिः संज्ञाऽक्षरमुच्यते। तच्च ब्राह्मयादिलिपिभेदतोऽनेकप्रकारम्। तच्च समवायाङ्गसूत्रेऽष्टादशे समवाये द्रष्टव्यम्। तदेतत् संज्ञाक्षरं वर्णितम्।

दोनों का ग्रहण हुआ है, इनमें द्रव्यश्रुतके संज्ञाक्षर एवं व्यञ्जनाक्षर, ये दो भेद हैं। तथा भावश्रुतका लब्ध्याक्षररूप एक भेद है, कारण—भावश्रत लब्ध्यक्षररूप होता है।

फिर शिष्य पूछता है—पूर्वनिर्दिष्ट संज्ञाक्षरका क्या स्वरूप है? उत्तर—अकार आदि वर्णका जो संस्थाना कृति—रचना विशेष है वह संज्ञाक्षर है। संज्ञा शब्दका अर्थ—अवबोध—ज्ञान है, अथवा जिसके द्वारा पदार्थका भान होता है वह संज्ञा है, इसका जो कारण है वह संज्ञाक्षर है। संज्ञाका कारण आकृति विशेष होता है। आकृति विशेषमें ही तो नाम किया जाता है, और व्यवहारमें भी उसे ही काममें लिया जाता है, इसलिये पट्टिका आदिमें लिखित अक्षर की जो संस्थानाकृति है वह संज्ञाक्षर है, ऐसा इसका फलितार्थ होता है। यह संज्ञाक्षर ब्राह्मी आदि लिपि के भेदसे अठारह प्रकारका बतलाया गया है। यह बात समवायाङ्ग सूत्रमें अठारहवें समवायमें कही गई है, अतः जिज्ञासुओं को वहां देख लेना

છે, તેમનામાં દ્રવ્યશ્રુતના સંજ્ઞાક્ષર અને વ્યંજનાક્ષર એ બે ભેદ છે, તથા ભાવશ્રુતનો લબ્ધ્યક્ષર રૂપ એક ભેદ છે. કારણ કે ભાવશ્રુત લબ્ધ્યક્ષર રૂપ હોય છે.

વળી શિષ્ય પૂછે છે—પૂર્વનિર્દિષ્ટ સંજ્ઞાક્ષરનું શું સ્વરૂપ છે?

ઉત્તર—અકાર આદિ વર્ણની જે સંસ્થાકૃતિ—રચના વિશેષ છે તે સંજ્ઞાક્ષર છે. સંજ્ઞા શબ્દનો અર્થ—અવબોધ—જ્ઞાન છે અથવા જેના દ્વારા પદાર્થનું ભાન થાય છે તે સંજ્ઞા છે. તેનું જે કારણ છે તે સંજ્ઞાક્ષર છે. સંજ્ઞાનું કારણ આકૃતિ વિશેષ હોય છે. આકૃતિવિશેષમાં જ તો નામ કરાય છે, અને વ્યવહારમાં પણ તેને જ કામમાં લેવાય છે. તે કારણે પાટી આદિમાં લખેલ અક્ષરની જે સંસ્થાનાકૃતિ છે તે સંજ્ઞાક્ષર છે. એવો તેનો ફલિતાર્થ થાય છે. આ સંજ્ઞાક્ષર બ્રાહ્મી આદિ લિપિના ભેદથી અનેક પ્રકારનો બતાવ્યો છે. આ વાત સમવાયાંગ સૂત્રના અઢારમા અધ્યયનમાં કહી છે, તેથી જિજ્ઞાસુઓએ ત્યાં જોઈ લેવી.

अथ किं तत् व्यञ्जनाक्षरम्? इति शिष्य प्रश्नः। उत्तरमाह 'वंजणक्खरं०' इत्यादि। व्यञ्जनाक्षरम्-अक्षरस्य व्यञ्जनाभिलाप इति। व्यज्यते-प्रकाश्यतेऽनेनार्थः प्रदीपेनेव घट इति व्यञ्जनम्-उच्चार्यमाणमकारादिकं वर्णजातम्, तस्य विवक्षितार्थाऽभिव्यञ्जकत्वात्। व्यञ्जनं च तदक्षरं चेति व्यञ्जनाक्षरम्। अमुमर्थमाश्रित्याह 'वंजणक्खरं अक्खरस्स वंजणाभिलावो' इति। व्यञ्जनाक्षरमक्षरस्य व्यञ्जनाभिलापः। अक्षरस्य=अकारादेर्वर्णसमूहस्य, व्यञ्जनाभिलापः-व्यञ्जनेन=व्यञ्जकत्वेन, अभिलापः=उच्चारणम्। अर्थव्यञ्जकत्वेनोच्चार्यमाणमकारादिवर्णजातमित्यर्थः।

इह प्रसङ्गवशाद् व्यञ्जनाक्षरस्य भेदाः प्रदर्श्यन्ते —

अर्थाभिव्यञ्जकं तद् व्यञ्जनाक्षरं द्विविधम्-यथार्थनियतम्, अयथार्थनियतं च। तत्र-यथार्थनियतम्-अन्वर्थयुक्तम्। यथा-क्षपयतीति क्षपणः=मुनिः, तपसा कर्म-

---

चाहिये। इस प्रकार यह संज्ञाक्षर है १।

प्रश्न—व्यञ्जनाक्षर क्या है? उत्तर—दीपकके द्वारा जिस तरहसे घट प्रकाशित किया जाता है, उसी प्रकार जिसके द्वारा अर्थका प्रकाशन होता है वह व्यञ्जनाक्षर है। इस तरह उच्चार्यमाण अकार आदि समूह का नाम व्यञ्जनाक्षर कहा गया है, क्यों कि इसीके द्वारा ही विवक्षित अर्थका बोध हुआ करता है। व्यञ्जनाक्षर श्रुत यथार्थनियत १ और अयथार्थनियत २ के भेदसे दो प्रकारका है। सार्थक नामसंपन्न जो अक्षर-होता है उसका नाम यथार्थनियत है जैसे क्षपण शब्द। यह शब्द "क्षपयतीति क्षपणः" जो कर्मों को नष्ट करे वह क्षपण-मुनि कहलाता है, इस सार्थक नाम वाला है, इसलिये इस शब्द को अपने अर्थ के साथ नियत माना गया है। इसी तरह तपन-सूर्य आदि शब्द भी इसी तरह के

આ પ્રકારનું આ સંજ્ઞાક્ષર છે (૧).

પ્રશ્ન—વ્યંજનાક્ષર શું છે? ઉત્તર—જે રીતે દીવા વડે ઘડાને પ્રકાશિત કરાય છે એજ રીતે જેના દ્વારા અર્થ પ્રકાશિત થાય છે, તે વ્યંજનાક્ષર છે. આ રીતે ઉચ્ચાર્યમાણ અકાર આદિ સમૂહનુ નામ વ્યંજનાક્ષર કહેલ છે, કારણ કે તેના દ્વારા જ વિવક્ષત અર્થનો બોધ થાય છે. વ્યંજનાક્ષરશ્રુતના બે ભેદ છે-(૧) યથાર્થ નિયત, અને (૨) અયથાર્થ-નિયત. સાર્થક નામ સંપન્ન જે અક્ષર હોય છે, તેનું નામ યથાર્થ નિયત છે. જેમકે ક્ષપણ શબ્દ. આ શબ્દ "ક્ષપયતીતિ ક્ષપણઃ" જે કર્મોનો ક્ષય કરે તે ક્ષપણ-મુનિ કહેવાય છે એ સાર્થક નામવાળો છે, તે કારણે એ શબ્દને પોતાના અર્થની સાથે નિયત માનેલ છે. એજ રીતે તપન આદિ શબ્દને પણ એજ પ્રકારના જાણવા. અયથાર્થનિયત તે છે કે જે સાર્થક

क्षपकत्वात्। तपतीति तपनः=सूर्यः-इत्यादि। अयथार्थनियतं यथा-इन्द्रं न गोपायति=न पालयति, तथापीन्द्र-गोपकः कीटविशेषः। न पलमश्नाति=न मांसं भक्षति तथापि पलाशः इत्यादि।

अथवा-तद् व्यञ्जनाक्षरं द्विविधम्-एकपर्यायम्, अनेकपर्यायं च। एकः पर्यायोऽभिधेयो यस्य तदेकपर्यायम्। यथा - अलोकः, स्थण्डिलम्-इत्यादि। अलोकशब्देन हि अलोकाकाशलक्षण एक एव पर्यायोऽभिधीयते। स्थण्डिलशब्देन च स्थण्डिलरूप एक एव पर्यायः। अनेके पर्याया अभिधेया यस्य तदनेकपर्यायम्। यथा-लोक इति। जगत्, भुवनम्, संसारः, इत्यनेके पर्याया लोकशब्दस्य सन्ति।

जानना चाहिये। अयथार्थनियत वह है जो सार्थक नामवाला नहीं है-जैसे-इन्द्रगोपक शब्द। इन्द्रगोपक कीटविशेष का नाम है। यह शब्द अपने अर्थ से संपन्न नहीं है, कारण वह इन्द्र की रक्षा थोडे ही करता है। केवल इसका नाम ही नाम है। ऐसे अर्थशून्य शब्द अयथार्थनियत माने गये हैं। इसी तरह पलाश आदि शब्द भी इसी श्रेणी के जानना चाहिये, कारण पल-मांस को जो खाता है उसका नाम पलाश होता है, परन्तु पलाश-ढांक मांस को खाने के कारण पलाश नहीं कहा गया है किन्तु वह तो उसका नाम ही नाम है।

अथवा-दूसरी तरह से भी व्यंजनाक्षर दो प्रकार का बतलाका गया है-एक पर्याय जिसका अभिधेय-नाम होता है वह एक पर्याय वाला व्यंजनाक्षर है और अनेक पर्याय जिसका अभिधेय नाम होते हैं वह अनेक पर्यायवाला व्यंजनाक्षर है। एक पर्यायवाला व्यंजनाक्षर अलोक स्थण्डिल आदि शब्द हैं, क्यों कि अलोक शब्द का अभिधेय-वाच्य-

---

નામવાળું નથી. જેમકે ઈન્દ્રગોપક શબ્દ. ઈન્દ્રગોપક ખાસ પ્રકારનું જંતુ છે. તે શબ્દ પોતાના અર્થથી સંપન્ન નથી, કારણ તે ઈન્દ્રની રક્ષા થોડી જ કરે છે! ફક્ત તેનું નામ જ એ પ્રકારનું છે. આવા અર્થશૂન્ય શબ્દ અયથાર્થનિયત મનાય છે. એજ રીતે પલાશ આદિ શબ્દ પણ એજ પ્રકારના જાણવા, કારણ કે પલ માંસને જે ખાય છે તેનું નામ પલાશ છે, પણ પલાશ-ખાખરાને માંસ ખાવાને કારણે પલાશ કહેતા નથી, પણ એ તો ફક્ત તેનું નામ જ છે. અથવા બીજી રીતે પણ વ્યંજનાક્ષર બે પ્રકારના બતાવ્યા છે-જેનું અભિધેય-નામ એક પર્યાય હોય છે તે એક પર્યાયવાળું વ્યંજનાક્ષર છે અને જેનું અભિધેય-નામ અનેક પર્યાય હોય છે તે અનેક પર્યાયવાળું વ્યંજનાક્ષર છે. એક પર્યાયવાળું વ્યંજનાક્ષર અલોક સ્થંડિલ આદિ શબ્દ છે. કારણ કે અલોક શબ્દનું અભિધેય-વાચ્ય

एवमेव एकाक्षरानेकाक्षभेदेन व्यञ्जनाक्षरं द्विविधम् । तत्रैकाक्षरं-धीः श्रीरित्यादि । अनेकाक्षरं-वीणा, लता, माला, इत्यादि । अथवा-संस्कृतप्राकृतभाषाभेदेन द्विविधम्। यथा-वृक्षः, रुक्खो-इति । तथा-नानादेशानाश्रित्य तद् व्यञ्जनाक्षरमनेकविधम् । यथा-मागधानाम्-ओदनः, 'चावल' इति भाषा प्रसिद्धः, लाटानां 'कूरः', द्राविडानां 'चौरः', आन्ध्राणाम्-'इडाकु'-रिति नाम प्रसिद्धम् ।

केवल एक अलोकाकाशरूप पर्याय ही है । इसी तरह स्थण्डिल शब्द का अभिधेय एक स्थण्डिलरूप पर्याय ही है ।

"लोक" यह व्यंजनाक्षर अनेक पर्यायवाला है, क्यों कि इसके जगत, भुवन, संसार आदि अनेक अभिधेय-नाम होते हैं ।

एकाक्षर, अनेकाक्षर, इस तरह से भी व्यंजनाक्षर दो प्रकार का बतलाया गया है । जिसमें केवल एक ही अक्षर होता है वह एकाक्षर व्यंजनाक्षर है-जैसे-धी, (बुद्धि) श्री आदि अक्षर । अनेक अक्षर जिसमें होते हैं वह अनेकाक्षर व्यंजनाक्षर है, जैसे-वीणा, लता, माला आदि शब्द ।

अथवा संस्कृत एवं प्राकृत आदि के भेद से भी यह व्यंजनाक्षर दो प्रकार का माना गया है-'वृक्ष' शब्द संस्कृत और 'रुक्ख' शब्द प्राकृत है । अथवा नाना देशों की अपेक्षा व्यंजनाक्षर अनेक प्रकार का भी बतलाया गया है-जैसे-मगधदेश में चावलों को 'ओदन' कहते हैं, लाटदेश में 'कूर' कहते हैं, द्राविडदेश में 'चौर' कहते हैं और आंध्रदेश में 'इडाकु' कहते हैं ।

કેવળ એક અલોકાકાશ રૂપ પર્યાય જ છે. એજ રીતે સ્થંડિલ શબ્દનું અભિધેય એક સ્થંડિલરૂપ પર્યાય જ છે.

"લોક" આ વ્યંજનાક્ષર અનેક પર્યાયવાળો છે. કારણ કે તેના જગત, ભુવન, સંસાર આદિ અનેક અભિધેય થાય છે.

એકાક્ષર, અનેકાક્ષર, આ રીતે પણ વ્યંજનાક્ષર બે પ્રકારનું બતાવ્યું છે. જેમાં ફક્ત એક જ અક્ષર હોય છે તે એકાક્ષર વ્યંજનાક્ષર છે જેમકે-ધી, શ્રી આદિ અક્ષર. જેમાં અનેક અક્ષર હોય છે તે અનેકાક્ષર વ્યંજનાક્ષર છે; જેમકે વિણા, લતા, માલા, આદિ શબ્દ.

અથવા સંસ્કૃત અને પ્રાકૃત આદિના ભેદથી પણ એ વ્યંજનાક્ષર બે પ્રકારનું મનાય છે. "वृक्ष" શબ્દ સંસ્કૃત અને "रुक्ख" શબ્દ પ્રાકૃત છે, અથવા વિવિધ દેશોની અપેક્ષાએ વ્યંજનાક્ષર અનેક પ્રકારનુ પણ બતાવ્યું છે જેમકે મગધ દેશમાં ચોખાને 'ओदन' કહે છે, લાટમાં "कूर" કહે છે. દ્રાવિડ દેશમાં "चौर" કહે છે અને આંધ્ર દેશમાં "इडाकु" કહે છે.

तथा-व्यञ्जनाक्षरं स्वाभिधेयाद् भिन्नमभिन्नं च। तत्र तादात्म्याभावाद् भिन्नम्। तथाहि-क्षुरशब्दोच्चारणे, अग्निशब्दोच्चारणे मोदकशब्दोच्चारणे च यथाक्रमं वदतो मुखस्य, शृण्वतः श्रवणस्य न छेदो, नापि दाहो, नापि पूरणं भवति, अतो ज्ञायतेस्वाभिधेयाद्भिन्नः शब्दः। अन्यथा-तादात्म्यसद्भावे क्षुरादयोऽपि तत्र सन्तीति मुखस्य श्रवणस्य च छेदादिप्रसङ्गः।

अभिन्नत्वं=सम्बद्धत्वम्। यः खलु सम्बद्धः स लोकेऽप्यभिन्न इत्युच्यते। यथा-यस्य येन सहाशनपानं सम्बद्धं, स तदभिन्न इत्युच्यते 'अयमस्माकमभिन्नः'

व्यंजनाक्षर अपने अभिधेय से कथंचित् भिन्न भी है और कथंचित् अभिन्न भी है। भिन्न इसलिये है कि शब्द और उसके अर्थ का तादात्म्य संबंध नहीं है। यदि तादात्म्य संबंध होता तो क्षुर शब्द के उच्चारण करने पर मुख कट जाना चाहिये, और सुनने वाले के कान भी कट जाना चाहिये। इसी तरह अग्नि शब्द के उच्चारण करने पर उच्चारण कर्त्ता के मुख में दाह, और सुनने वाले के कानों में जलन पैदा हो जानी चाहिये. मोदक शब्द के बोलने पर मुख का भरना और सुनने वाले के कानों का भरना हो जाना चाहिये, परन्तु ऐसा होता नहीं है, अतः मालूम होता है कि शब्दका और उसके अर्थका तादात्म्य संबंध नहीं है, किन्तु शब्द और उसके अर्थ में परस्पर भिन्नता है।

अभिन्न का तात्पर्य है अपने अर्थ को बतलाना-बोध कराना। अपने अर्थ के साथ शब्द का सम्बद्ध होना। लोक में भी जिसका जिसके

વ્યંજનાક્ષર પોતાના વાચ્યથી કંઈક ભિન્ન પણ છે અને કંઈક અભિન્ન પણ છે. ભિન્ન એટલા માટે છે કે શબ્દ અને તેના અર્થનો તાદ્દશ્ય સંબંધ નથી. જો તાદશ્ય સંબંધ હોત તો ક્ષુર શબ્દનું ઉચ્ચારણ કરતાં જ મોઢું કપાઈ જવું જોઈએ અને સાંભળનારના કાન પણ ફાટી જવા જોઈએ. એજ રીતે અગ્નિ શબ્દ બોલતા જ બોલનારનાં મુખમાં. બળતરા અને શ્રોતાના કાનમાં પણ દાહ પેદા થવા જોઈએ. 'લાડુ' શબ્દ બોલતા જ બોલનારનું મોઢું ભરાઈ જવું જોઈએ, અને શ્રોતાના કાન ભરાઈ જવા જોઈએ, પણ એવું થતું નથી, તેથી એમ લાગે છે કે શબ્દનો અને તેના અર્થનો તાદશ્ય સંબંધ નથી, પણ શબ્દ અને તેના અર્થમાં અન્યોન્ય ભિન્નતા છે.

અભિન્નનુ તાત્પર્ય છે પોતાના અર્થને દર્શાવવો-બોધ કરાવવો-પોતાના અર્થની સાથે શબ્દનો સંબંધ હોવો. લોકમાં પણ જેનો જેની સાથે ખાવા

मोदकशब्दे उच्चारिते मोदकविषय एव प्रत्ययो भवति। मोदकरूपार्थाद्भिन्नत्वे ऽसम्बद्धत्वे च सति, तत्र नियमेन मोदकरूपार्थस्य प्रत्ययो न स्यात्। सम्बन्धाभावतो नियामकाभावेनान्यत्रापि मोदकार्थ प्रत्ययस्य प्रसङ्ग आपद्येत। तस्माद् ज्ञायते -अर्थादभिन्नः शब्द इति। अर्थेन सह वाच्यवाचकभावसम्बन्धः शब्दस्येति।

साथ खाना पीना सम्बद्ध रहता है वह उससे अभिन्न माना जाता है। जब उच्चारण कर्त्ता मोदक आदि शब्दों का उच्चारण करता है तो सुनने वाले को संकेत के वशसे मोदकरूप अर्थ का ही बोध होता है अन्य अर्थ का नहीं। यदि मोदकरूप अर्थ से मोदक (लड्डू)शब्द सर्वथा भिन्न तथा असंबद्ध माना जावे तो मोदक शब्द सें मोदकरूप अर्थ की नियमतः प्रतीति नहीं हो सकती है। जब मोदकरूप अर्थ के साथ मोदक शब्द सम्बद्ध ही नहीं होगा तो फिर संबंध के अभाव से मोदक शब्द द्वारा अन्य पदार्थ का भी बोध होने लगेगा। इस तरह नियामक के अभाव में शब्द स्वाभिधेय का प्रत्यायक-बोधक नहीं हो सकने के कारण हरएक पदार्थ का प्रत्यायक-बोधक हो जावेगा तब विवक्षित अर्थ की प्रतीति उससे कैसे हो सकेगी। परन्तु व्यवहार में ऐसा नहीं होता है। विवक्षित शब्द से विवक्षित अर्थ की प्रतीति होती है, अतः यह मानना चाहिये कि शब्द से अर्थ कथंचित् अभिन्न भी है। इस अभिन्नता सें ही शब्द और अर्थ का वाच्य वाचक संबंध सिद्ध होता है। शब्द और अर्थ का यह सम्बन्ध ही इन दोनों की अभिन्नता का कथंचित् प्रत्यायक-बोधक माना गया है।

પીવાનો સબંધ હોય છે, તે તેનાથી અભિન્ન મનાય છે. જ્યારે બોલનાર મોદક આદિ શબ્દનું ઉચ્ચારણ કરે છે ત્યારે સાંભળનારને સંકેતને કારણે મોદકરૂપ અર્થનો જ બોધ થાય છે, બીજા અર્થનો નહીં. જો મોદકરૂપ અર્થથી મોદક શબ્દ તદ્દન ભિન્ન તથા અસંબદ્ધ માનવામાં આવે તો મોદક શબ્દથી મોદકરૂપ અર્થની નિયમતા પ્રતીતિ થઇ શકતી નથી જો મોદકરૂપ અર્થ સાથે મોદક શબ્દ સંબદ્ધ જ ન હોય તો પછી સંબંધને અભાવે મોદક શબ્દ દ્વારા બીજા પદાર્થનો પણ બોધ થવા લાગશે. આ રીતે નિયામકને અભાવે શબ્દ સ્વાભિધેયનું પ્રત્યાયક-બોધક નહીં થઈ શકવાને કારણે દરેક પદાર્થનું બોધક થઈ જશે ત્યારે તેનાથી વિવક્ષિત અર્થની પ્રતીતિ કેવી રીતે થઈ શકશે? પણ વ્યવહારમાં એવું થતું નથી. વિવક્ષિત શબ્દથી વિવક્ષિત અર્થની પ્રતીતિ થાય છે, તેથી એ માનવું જોઇએ કે શબ્દથી અર્થ ક્યારેક અભિન્ન પણ હોય છે આ અભિન્નતામાં જ શબ્દ અને અર્થનો વાચ્યવાચક સંબંધ સિદ્ધ થાય છે. શબ્દ અને અર્થનો આ સંબંધ જ એ બન્નેની અભિન્નતાનો ક્યારેક બોધક મનાય છે.

तथा-व्यञ्जनाक्षरस्यैकैकस्य द्विविधाः पर्याया भवन्ति । यथा-स्वपर्यायाः, परपर्यायाश्च। तत्रेत्थं स्वपर्याया अवर्णस्य भवन्ति, अवर्णस्त्रिधा-ह्रस्वो दीर्घः प्लुतश्च। पुनरेकैकस्त्रिधा-उदात्तोऽनुदात्तः स्वरितश्च। पुनरेकैको द्विधा-अनुनासिको निरनुनासिकश्च । एवमष्टादशप्रकारोऽवर्णः । तथा ये एकैकाक्षरसंयोगतोऽक्षरसंयोगत एवं यावन्तः संयोगा घटन्ते, तावत्संयोगवशतो येऽवस्थाविशेषाः, ये च तत्तदर्थाभिधायकत्वस्वभावास्तेऽपि तस्य स्वपर्यायाः । ये तु तत्रासन्तस्ते परपर्यायाः । एवमिवर्णादीनामपि स्वपर्यायाः परपर्यायाःवक्तव्याः । येऽपि परपर्यायास्तेऽपि तस्येति व्यपदिश्यन्ते, व्यवच्छेद्यतया तेषां तद्विशेषकत्वाद् । यथाऽयं मे शत्रुरिति ।

तथा-एक एक व्यञ्जनाक्षरकी दो २ प्रकारकी पर्यायें होती हैं। इनका नाम स्वपर्याय और परपर्याय है। अर्थात् स्वपर्याय और परपर्याय के भेदसे ये पर्यायें दो प्रकारकी होती हैं।जैसे-अकार यह अक्षर ह्रस्व दीर्घ और प्लुत के भेद से तीन प्रकार का कहा गया है, तथा ह्रस्व दीर्घ और प्लुत ये भी प्रत्येक उदात्त, अनुदात्त और स्वरित के भेद से तीन तीन प्रकारके बतलाये गये हैं, ऐसे ये नौ भेद हुए। ये भी सानुनासिक और निरनुनासिकके भेद से दो दो प्रकारके होनेसे अवर्ण अठारह (१८) प्रकारका हो जाता है। ये स्वपर्याय हैं। इसी तरह एक एक अक्षरके संयोग से जितने संयोग अक्षरोंके निष्पन्न होते हैं तथा इन संयोगों के वश से जो अक्षरोंकी अवस्थाएँ होती हैं, तथा इन अवस्थाओं में वे वे शब्द जो अपने २ तत्तदर्थके अभिधायक स्वभाववाले होते हैं ये सब भी व्यञ्जनाक्षरकी स्वपर्यायें हैं। जो पर्यायें इनमें नहीं हैं वे सब पर पर्यायें हैं। इसी प्रकार इवर्ण आदि व्यञ्जनाक्षरों में भी स्वपर्याय और परपर्याय

તથા—એક એક વ્યંજનાક્ષરની બે બે પ્રકારની પર્યાયો થાય છે. તેમનું નામ સ્વપર્યાય અને પરપર્યાય છે. એટલે કે સ્વપર્યાય અને પરપર્યાયના ભેદથી એ પર્યાયો બે પ્રકારની હોય છે. જેમકે-અકાર આ અક્ષર હ્રસ્વ, દીર્ઘ અને પ્લુતના ભેદથી ત્રણ પ્રકારનો કહેલ છે, તથા હ્રસ્વ, દીર્ઘ, અને પ્લુત, એ પણ પ્રત્યેક ઉદાત્ત, અનુદાત્ત અને સ્વરિતના ભેદથી ત્રણ ત્રણ પ્રકારના બતાવ્યા છે. એમ આ નવ ભેદ થયા. એ પણ સાનુનાસિક, અને નિરનુનાસિકના ભેદથી બે બે પ્રકારના હોવાથી અવર્ણ અઢાર પ્રકારનો થાય છે. એજ રીતે એક એક અક્ષરના સંયોગથી અક્ષરોના જેટલા સંયોગ પ્રાપ્ત થાય છે, તથા એ સંયોગોને કારણે અક્ષરોની જે અવસ્થાઓ થાય છે, તથા તે અવસ્થાઓમાં તે તે શબ્દો જે પોતપોતાના તે તે અર્થના અભિધાયક સ્વભાવવાળા હોય છે, એ સઘળી પણ વ્યંજનાક્ષરની સ્વપર્યાયો છે. જે પર્યાયો તેમનામાં નથી તે

ते स्वपर्यायाः परपर्यायाश्च एकैके द्विधा भवन्ति। तद् यथा—सम्बद्धाः असंबद्धाश्च। ये अकारस्य स्वपर्यायास्ते तत्रास्तित्वेन सम्बद्धा भवन्ति। नास्तित्वेन पुनस्त एव सर्वेऽप्यसम्बद्धाः। तत्र तेषां नास्तित्वाभावात्। एवमेवासन्तः परपर्याया अपि नास्तित्वेन सम्बद्धा भवन्ति। ते च परपर्याया अस्तित्वेनासम्बद्धाः, तेषामस्तित्वस्य तत्राभावात्। यथा—घटशब्दे घकारटकाराकारा ये पर्यायास्त एते तत्रास्तित्वेन सम्बद्धा

जान लेना चाहिये। ये जो परपर्यायें हैं वे उस व्यञ्जनाक्षरकी ही स्वपर्यायकी तरह पर्यायें हैं। अर्थात्—जिस प्रकार स्वपर्यायें व्यञ्जनाक्षरकी निज पर्यायें कही गई हैं, उसी प्रकार परपर्यायें भी उस व्यञ्जनाक्षर की मानी जाती हैं, क्यों कि वे वहां व्यवच्छेद्य हैं और इसी लिये उस विवक्षित अकारादि अक्षरकी वे विशेषक होती हैं, जैसे—कहा जाता है कि—'यह मेरा शत्रु है।'

स्वपर्याय और परपर्याय ये दोनों दो २ प्रकारकी बतलाई गई है एक संबद्ध और दूसरी असंबद्ध। विवक्षित शब्दकी जो स्वपर्यायें हुआ करती हैं वे वहां अस्तित्व धर्मसे संबंधित रहा करती हैं, और जो परपर्यायें हुआ करती हैं वे वहां नास्तित्व धर्मसे संबंधित रहा करती हैं। स्वपर्यायें नास्तित्व धर्म से संबंधित नहीं होती हैं, क्यों कि वस्तु की स्वपर्यायें वस्तु में अस्तित्व धर्म से संबंधित और नास्तित्व धर्म से असंबंधित मानी गई हैं। इसी तरह पर पर्यायें वस्तु में नास्तित्व धर्म

બધી પરપર્યાયો છે. એ જ પ્રકારે ઇવર્ણ આદિ વ્યંજનાક્ષરોમાં પણ સ્વપર્યાય અને પરપર્યાય સમજી લેવી જોઈએ. એ જે પરપર્યાયો છે તે તે વ્યંજનાક્ષરની જ સ્વપર્યાયના જેવી પર્યાયો છે. એટલે કે જેમ સ્વપર્યાયો વ્યંજનાક્ષરની પોતાની પર્યાયો કહેવામાં આવી છે તેમ પર પર્યાયો પણ તે વ્યંજનાક્ષરની માનવામાં આવે છે, કારણ કે તેઓ ત્યાં વ્યવચ્છેદ્ય છે અને તેથી તે વિવક્ષિત અકારાદિ અક્ષરની તેઓ વિશેષક હોય છે, જેમકે "આ મારો શત્રુ છે" એમ કહેવામાં આવે છે.

સ્વપર્યાય અને પરપર્યાય એ બન્ને બે બે પ્રકારની બતાવી છે. એક સંબદ્ધ અને બીજી અસંબદ્ધ. વિવક્ષિત શબ્દની જે પર્યાયો થયા કરે છે તેઓ ત્યાં અસ્તિત્વધર્મથી સંબંધિત રહ્યા કરે છે, અને જે પરપર્યાયો હોય છે તેઓ ત્યાં નાસ્તિત્વધર્મથી સંબંધિત રહ્યા કરે છે. સ્વપર્યાયો નાસ્તિત્વધર્મથી સંબંધિત હોતી નથી, કારણ કે વસ્તુની સ્વપર્યાયો વસ્તુમાં અસ્તિત્વધર્મથી સંબંધિત અને નાસ્તિત્વધર્મથી અસંબંધિત માનવામાં આવી છે. એજ પ્રમાણે પરપર્યાયો વસ્તુમાં નાસ્તિત્વધર્મથી સંબંધિત અને અસ્તિત્વધર્મથી અસંબંધિત બતાવવામાં

भवन्ति, तेषां तत्र विद्यमानत्वात्। त एव घकारटकाराकारपर्याया रथशब्दादिषु अस्तित्वेनाऽसम्बद्धा भवन्ति, तेषां तत्राभावात्। तदेवं स्वपर्याया अस्तित्वेन तत्र सम्बद्धा अन्यत्र चाऽसम्बद्धा भवन्ति। त एव स्वपर्याया नास्तित्वेन तत्रासम्बद्धाः, अन्यत्र तु सम्बद्धा भवन्ति।

तथा—ये रथशब्दस्य स्वपर्यायास्ते तत्रास्तित्वेन सम्बद्धाः, तेषां तत्र विद्यमानत्वात्। घटशब्दे त्वसम्बद्धाः, तेषां तत्रासत्त्वात्। त एव च रथशब्दे नास्तित्वेनासम्बद्धाः, घटशब्दे तु सम्बद्धा इति तदेतद् व्यञ्जनाक्षरं वर्णितमिति शेषः।

से संबंधित और अस्तित्व धर्म से असंबंधित कही गई हैं। जैसे—घट शब्द में "घ, ट, अ" रूप अर्थात्—घकार, टकार, अकाररूप जो पर्यायें हैं, ये वहां (घट में) अस्तित्व धर्म से संबंध रखने वाली हैं, क्यों कि इनकी यहां विद्यमानता है। तथा रथ आदि शब्दों में इनकी विद्यमानता नहीं होने के कारण ये वहां रथ आदि में अस्तित्व धर्म से असंबंधित हैं। इस तरह स्वपर्याय वहां (घट शब्द में) अस्तित्व से संबद्ध है और अन्यत्र रथ आदि में अस्तित्व से वह संबद्ध नहीं है, तथा यही स्वपर्याय नास्तित्व से वहां असंबद्ध है, और अस्तित्व से संबद्ध है। इसी तरह रथ आदि शब्दों की जो स्वपर्यायें हैं वे वहां अस्तित्व धर्म से सुसंबंधित हैं, कारण उनकी ही वहां विद्यमानता है, घट शब्द में इनकी विद्यमानता नहीं होने से ये वहां असंबंधित हैं। रथ शब्द में ये नास्तित्व धर्म से असंबद्ध इस लिये मानी गई हैं कि वहां उनकी (र, थ, अ) की विद्यमानता है और घट शब्द में नास्तित्व धर्मसे संबंधित इसलिये

આવેલ છે. જેમકે 'ઘટ' શબ્દમાં "घ, ट, अ," રૂપ એટલે કે ઘકાર, ટકાર, અકાર રૂપ જે પર્યાયો છે તેઓ ત્યાં (ઘટમાં) અસ્તિત્વધર્મથી સંબંધ રાખનારી છે, કારણ કે તેમની ત્યાં હાજરી છે તથા 'રથ' આદિમાં તેમની વિદ્યમાનતા (હાજરી) ન હોવાને કારણે તેઓ ત્યાં (રથ આદિમાં) અસ્તિત્વધર્મથી અસંબધિત છે. આ રીતે સ્વપર્યાય ત્યાં (ઘટ શબ્દમાં) અસ્તિત્વથી સંબદ્ધ છે અને અન્યત્ર (રથ આદિમાં) અસ્તિત્વથી તે સંબદ્ધ નથી, તથા એજ સ્વપર્યાય નાસ્તિત્વથી ત્યાં અસંબદ્ધ છે અને અસ્તિત્વથી સંબદ્ધ છે. એજ પ્રમાણે રથ આદિ શબ્દોની જે સ્વપર્યાયો છે તેઓ ત્યાં અસ્તિત્વધર્મથી સુસંબધિત છે, કારણ કે તેમની જ ત્યાં વિદ્યમાનતા છે, 'ઘટ' શબ્દમાં તેમની વિદ્યમાનતા ન હોવાથી તેઓ ત્યાં અસબંધિત છે. 'રથ' શબ્દમાં તેઓ નાસ્તિત્વધર્મથી અસબદ્ધ તે કારણે માની છે કે ત્યાં તેમની (र, थ, अ) વિદ્યમાનતા છે અને ઘટ શબ્દમાં નાસ્તિત્વધર્મથી સંબંધિત તે કારણે માનેલી

शिष्यः पृच्छति—'से किं तं०' इत्यादि। अथ किं तद् लब्ध्यक्षरमिति। उत्तरमाह—'लद्धिअक्खरं०' इत्यादि। लब्ध्यक्षरम्-लब्धिः=उपयोगरूपा, सा चेह प्रस्तुतत्वात् शब्दार्थपर्यालोचनानुसारिणी गृह्यते। लब्धिरूपमक्षरं लब्ध्यक्षरं भावश्रुतमित्यर्थः, अक्षरलब्धिकस्य-अक्षरे=अक्षरोच्चारणे अक्षरावबोधे वा लब्धिः=उपयोगो यस्य सोऽक्षरलब्धिकस्तस्य-अकाराद्यक्षरानुगतश्रुतलब्धिसमन्वितस्येत्यर्थः, लब्ध्यक्षरं=भावश्रुतं समुत्पद्यते-शब्दादिग्रहणसमनन्तरमिन्द्रियमनोनिमित्तं शब्दार्थपर्यालोचनानुसारि 'शाङ्खोऽयम्' इत्याद्यक्षरानुगतं विज्ञानमुपजायते इत्यर्थः।

मानी गई है कि वहां उनकी (र, थ, अ, की) अविद्यमानता है। इस तरह स्वपर्याय और परपर्याय, ये दोनों प्रकारकी पर्यायें अपने व्यंजनाक्षरोंमें संबद्ध और असंबद्ध भेदवाली सिद्ध हो जाती हैं। इस प्रकार यहां तक व्यंजनाक्षरका वर्णन हुआ॥

शिष्य लब्ध्यक्षरके विषयमें पूछता है-'से किं तं लद्धि-अक्खरं०' इत्यादि।

लब्ध्यक्षरका क्या स्वरूप है? उत्तर—लब्धि नाम है उपयोगका, यह उपयोग, शब्द और अर्थका जो पर्यालोचनरूप व्यापार होता है उसका स्वरूप यहां ग्रहण किया गया है। इस तरह लब्धिरूप जो अक्षर है वह लब्ध्यक्षर है, और यह भावश्रुतरूप है। अक्षरलब्धिक-अर्थात् अक्षरके उच्चारण करनेमें अथवा अक्षरके अवबोध करनेमें उपयोगयुक्त-व्यक्तिको यह भावश्रुत उत्पन्न होता है। आकारादि अक्षरानुगतश्रुत-लब्धि समन्वित प्राणीको शब्दादि ग्रहणके बाद इन्द्रिय और मन निमि-

---

છે કે ત્યાં તેમની (ર, થ, અની) અવિદ્યમાનતા છે. આ રીતે સ્વપર્યાય અને પરપર્યાય, એ બન્ને પ્રકારની પર્યાયો પોતપોતાના વ્યંજનાક્ષરોમાં સંબદ્ધ અને અસંબદ્ધ ભેદવાળી સિદ્ધ થાય છે. આ પ્રકારે અહીં સુધી વ્યંજનાક્ષરનું વર્ણન થયું.

શિષ્ય લબ્ધ્યક્ષરના વિષયમાં પૂછે છે-"से किं तं लद्धिअक्खरं०" ઇત્યાદિ

લબ્ધ્યક્ષરનું શું સ્વરૂપ છે? ઉત્તર—લબ્ધિ ઉપયોગનું નામ છે, આ ઉપયોગ શબ્દ અને અર્થનો જે પર્યાલોચનરૂપ વ્યાપાર હોય છે તેનું સ્વરૂપ અહીં ગ્રહણ કરેલ છે. આ રીતે લબ્ધિરૂપ જે અક્ષર છે તે લબ્ધ્યક્ષર છે, અને તે ભાવશ્રુતરૂપ છે. અક્ષરલબ્ધિક-એટલે કે અક્ષરનું ઉચ્ચારણ કરવામાં અથવા અક્ષરનો અવબોધ કરવામાં ઉપયોગ-યુક્ત વ્યક્તિને એ ભાવશ્રુત ઉત્પન્ન થાય છે. અકારાદિ અક્ષરાનુગત-શ્રુતલબ્ધિ સમન્વિત પ્રાણીને શબ્દાદિ ગ્રહણ કર્યા

नन्विदं लब्ध्यक्षरं संज्ञिनामेव पुरुषादीनां सम्भवति, नत्वसंज्ञिनामेकेन्द्रियादीनाम्, तेषामकारादिवर्णानामवगमे उच्चारणे वा लब्ध्यसम्भवात्। नहि तेषां परोपदेशश्रवणं सम्भवति, येनाऽकारादिवर्णानामवगमादिर्भवेत्। अथ च-एकेन्द्रियादीनामपि भावश्रुतरूपं लब्ध्यक्षरमिष्यते। तथाहि-पृथिव्यादीनामपि भावश्रुतं वर्णितम्—

तथा चोक्तम्—'दव्वसुयाभावंमि वि, भावसुयं पत्थिवाईणं' इति।

छाया—'द्रव्यश्रुताभावेऽपि भावश्रुतं पार्थिवादीनाम्' इति।

तक जो शब्द और अर्थकी पर्यालोचनाके अनुसार ज्ञान उत्पन्न होता है यही भावश्रुत है। जैसे शंखका शब्द जब कानमें पड़ता है तब श्रोता को ऐसा जो विचार होता है कि 'यह अन्यका शब्द नहीं है यह तो शंखका शब्द है' इसीका नाम भावश्रुत है।

शंका—लब्ध्यक्षररूप भावश्रुतका जो ऐसा आप स्वरूप प्रकट कर रहे हैं वह तो संज्ञी पंचेन्द्रिय प्राणीके ही घटित हो सकता है, असंज्ञी एकेन्द्रियादिकों के नहीं, क्यों कि उनमें ऐसी लब्धि नहीं है, कि जिससे वे अकार आदि अक्षरोंका अवगम, अथवा उच्चारण कर सकें। अकार आदि अक्षरोंका जो अवगम आदि होता है, वह परके उपदेश श्रवणपूर्वक होता है। उनमें कर्ण इन्द्रिय और मनका अभाव होनेसे परोपदेश श्रवणता आती नहीं है, परन्तु लब्ध्यक्षररूप यह भावश्रुत तो एकेन्द्रिय आदि प्राणियों में भी शास्त्रकारोंने बतलाया है। जैसे कहा है—

પછી, ઇન્દ્રિય અને મન નિમિત્તક જે શબ્દ અને અર્થની પર્યાલોચના અનુસાર જ્ઞાન ઉત્પન્ન થાય છે એજ ભાવશ્રુત છે. જેમકે શંખનો શબ્દ જ્યારે કાને પડે છે, ત્યારે શ્રોતાને એવો જે વિચાર થાય છે કે "આ બીજાનો શબ્દ નથી, આ તો શંખનો શબ્દ છે" એનું નામ ભાવશ્રુત છે.

શંકા—લબ્ધ્યક્ષરરૂપ ભાવશ્રુતનું આપ જે સ્વરૂપ પ્રગટ કરો છો, તે તો સંજ્ઞીપંચેન્દ્રિય પ્રાણીમાં જ ઘટાવી શકાય છે, અસંજ્ઞી એકેન્દ્રિયાદિકોમાં નહીં, કારણ કે તેમનામાં એવી લબ્ધિ નથી કે જેથી તેઓ અકાર આદિ અક્ષરોનો અવગમ અથવા ઉચ્ચારણ કરી શકે. અકાર આદિ અક્ષરોનું જે અવગમ આદી થાય છે તે પરના ઉપદેશ શ્રવણ પૂર્વક થાય છે. તેમનામાં કર્ણેન્દ્રિય અને મનનો અભાવ હોવાથી પરોપદેશ શ્રવણતા આવતી નથી. પણ લબ્ધ્યક્ષરરૂપ આ ભાવશ્રુત તો એકેન્દ્રિય આદિ પ્રાણિઓમાં પણ શાસ્ત્રકારોએ બતાવ્યું છે. જેમકે કહ્યું છે કે—

भावश्रुतं च शब्दार्थ पर्यालोचनानुसारि विज्ञानम् । शब्दार्थपर्यालोचनं चाक्षरं विना न सम्भवतीति चेत् ?,

सत्यमेतत्—किंतु यद्यपि तेषामेकेन्द्रियादीनां परोपदेशश्रवणाऽसम्भवस्तथापि तेषां तथाविधक्षयोपशमभावतः काचिदव्यक्ताऽक्षरलब्धिर्भवति, यद्वशादक्षरानुषक्तं श्रुतज्ञानमुपजायते । इत्थं चैतदङ्गीकर्तव्यम् , तथाहि-तेषामप्याहाराद्यभिलाष उपजायते, अभिलाषश्च प्रार्थना, सा च 'यदीदमहं प्राप्नोमि, ततो भव्यं भवती'-त्याद्यक्षरानुगतैव ।

"दव्वसुयाभावंमि वि, भावसुयं पत्थिवाईणं" इति द्रव्यश्रुतके अभावमें भी पृथिव्यादि एकेन्द्रियादिक जीवोंमें भावश्रुत होता है, परन्तु जब भावश्रुतका अर्थ "शब्द और अर्थका पर्यालोचन करना भावश्रुत है" ऐसा किया जाता है, तब उनमें भावश्रुतका सद्भाव कैसे सिद्ध हो सकता है, ? क्यों कि शब्द और अर्थका पर्यालोचनरूप भावश्रुत अक्षरके विना संभवित नहीं होता है ।

उत्तर—शङ्का ठीक है । परन्तु जब इसका विचार किया जाता है तो यह बात समझमें आ ही जाती है । हां यह उचित है कि उन एकेन्द्रियादिक जीवों में परोपदेश श्रवण की संभवता नहीं है, परन्तु फिर भी उनमें इस प्रकार का क्षयोपशम अवश्य है कि जिससे उनमें अव्यक्त अक्षरलब्धि होती है, और इसीसे अक्षरानुसंबद्ध श्रुतज्ञान उनके होता है । यह बात इस तरह से उनमें जानी जाती हैं कि आहार, भय, मैथुन और

"दव्वसुयाभावंमि वि, भावसुय पत्थिवाइणं" ઇતિ. દ્રવ્યશ્રુતના અભાવમાં પણ પૃથિવ્યાદિ-એકેન્દ્રિયાદિક જીવોમા ભાવશ્રુત થાય છે, પણ જો ભાવશ્રુતનો અર્થ "શબ્દ અને અર્થનું પર્યાલોચન કરવું તે ભાવશ્રુત છે" એ પ્રમાણે કરાય તો તેમનામાં ભાવશ્રુતનો સદ્‌ભાવ કેવી રીતે સિદ્ધ થઈ શકે છે, કારણ કે શબ્દ અને અર્થના પર્યાલોચનરૂપ ભાવશ્રુત અક્ષરના વિના સંભવિત હોતું નથી.

ઉત્તર--શંકા બરાબર છે, પણ જો તેના પર વિચાર કરવામા આવે તો એ વાત સમજવામાં આવી જ જાય છે. હા, એ ઉચિત છે કે એ એકેન્દ્રિયાદિક જીવોમાં પરોપદેશ શ્રવણની સંભવિતતા નથી, છતા પણ તેમનામા એ પ્રકારનો ક્ષયોપશમ અવશ્ય છે, કે જેથી તેમનામાં અવ્યક્ત અક્ષરલબ્ધિ હોય છે, અને તેથી જ અક્ષરાનુષકત શ્રુતજ્ઞાન તેમને થાય છે. એ વાત આ રીતે તેમનામા જાણી શકાય છે કે આહાર, ભય, મૈથુન અને પરિગ્રહ, એ ચાર પ્રકારની જે

ततस्तेषामपि काचिदव्यक्ताऽक्षरलब्धिरवश्यमङ्गीकर्तव्या। ततस्तेषामपि लब्ध्यक्षरं भवतीति न कश्चिद्दोषः।

तच्च लब्ध्यक्षरं षड्विधं प्रज्ञप्तम्। तद् यथा–श्रोत्रेन्द्रियलब्ध्यक्षरमित्यादि। इह यत् श्रोत्रेन्द्रियेण शब्दश्रवणे सति 'शाङ्खोऽयम्' इत्याद्यक्षरानुगतं शब्दार्थपर्यालोचनानुसारि विज्ञानं, तत् श्रोत्रेन्द्रियलब्ध्यक्षरम्, तस्य श्रोत्रेन्द्रियनिमित्तत्वात्।

परिग्रह, ये चार प्रकार की जो संज्ञाएँ शास्त्रकारों ने बतलाई हैं वे इन एकेन्द्रियादि जीवों में भी होती हैं। ये आहार आदि संज्ञाएँ अभिलाषा स्वरूप मानी गई हैं। अभिलाषा का तात्पर्य यहां इस प्रकार का है कि–"यदि मैं इसे प्राप्त कर लेता हूं तो यह बहुत अच्छी बात होती है"। जब इस प्रकार की अभिलाषा उनमें है तो यह मानना ही पड़ता है कि उनमें अक्षरानुषक्त श्रुतज्ञान भी है, क्यों कि यह प्रार्थना रूप अभिलाषा अक्षरानुसंबद्ध ही है, इसलिये उनमें भी थोड़ी बहुत अव्यक्त अक्षरलब्धि अवश्य अंगीकार करनी चाहिये। जब यह बात मान ली जाती है तो उनके भी लब्ध्यक्षररूप भावश्रुत है, यह सिद्धान्त संगत बैठ जाता है।

यह लब्ध्यक्षर छह प्रकार का बतलाया गया है–श्रोत्रेन्द्रिय लब्ध्यक्षर, चक्षु इन्द्रिय लब्ध्यक्षर इत्यादि। श्रोत्र इन्द्रिय से शब्दसुनने पर जब ऐसा भान होता है कि "यह शब्द शंख का है" तब यह ज्ञान अक्षरानुगत शब्द और अर्थ की पर्यालोचना के अनुसार उद्भूत होने के कारण

સંજ્ઞાઓ શાસ્ત્રકારોએ બતાવી છે, તે એ એકેન્દ્રિયાદિ જીવોમાં પણ હોય છે. એ આહાર આદિ સંજ્ઞાઓ અભિલાષા સ્વરૂપ માનવામાં આવી છે અભિલાષાનું તાત્પર્ય અહીં એ પ્રકારની પ્રાર્થના છે કે "જો હું તેને પ્રાપ્ત કરૂં તો એ ઘણી સરસ વાત છે" જ્યારે આ પ્રકારની અભિલાષા તેઓમાં છે, ત્યારે એ માનવું જ પડે છે કે તેમનામાં અક્ષરાનુષક્ત શ્રુતજ્ઞાન પણ છે. કારણ કે એ પ્રાર્થના રૂપ અભિલાષા અક્ષરાનુગત જ છે, તે કારણે તેઓમાં પણ થોડી ઘણી અવ્યકત અક્ષરલબ્ધિ અવશ્ય અંગીકાર કરવી જોઈએ. જો એ વાત સ્વીકારીએ તો તેમનામાં પણ લબ્ધ્યક્ષરરૂપ ભાવશ્રુત છે. આ સિદ્ધાંત સુસંગત થઈ જાય છે.

આ લબ્ધ્યક્ષર છ પ્રકારનું બતાવ્યુ છે–શ્રોત્રેન્દ્રિય લબ્ધ્યક્ષર, ચક્ષુ ઇન્દ્રિય લબ્ધ્યક્ષર ઇત્યાદિ. શ્રોત્રેન્દ્રિયથી શબ્દ સાંભળતા જ્યારે એવું ભાન થાય છે કે" "આ શબ્દ શંખનો છે" ત્યારે તે જ્ઞાન અક્ષરાનુગત શબ્દ અને અર્થની પર્યાલોચના અનુસાર ઉત્પન્ન થવાને કારણે શ્રોત્રેન્દ્રિય લબ્ધ્યક્ષર છે, કારણ કે

यत्तु चक्षुषा आम्रफलादिकमुपलभ्य 'आम्रफलम्' इत्याद्यक्षरानुगतं शब्दार्थपर्यालोचनात्मकं विज्ञानं, तच्चक्षुरिन्द्रियलब्ध्यक्षरम्। एवं शेषेन्द्रियलब्ध्यक्षरमपि वोध्यम्।

शिष्यः पृच्छति—'से किं तं' इति। अथ किं तदनक्षरश्रुतमिति। उत्तरमाह—'अणक्खरसुयं०' इत्यादि। अनक्षरात्मकम्-अक्षररहित श्रुतम्-अनक्षरश्रुतम्, तत् अनेकविधं मज्ञप्तम्; तद् यथा-उच्छ्वसितमित्यादि। उच्छ्वसितम्=उच्छ्वसनम्। निःश्वसितं=निःश्वसनम्। निष्ठ्यूतं निष्ठीवनम्। कासितम्=कासनम्। च शब्दः समुच्चयार्थः। क्षुतं=क्षवणम्-'छीक' इति भाषाप्रसिद्धम्। निःसिङ्घितम्=निःसिङ्घनम्-नासिकाजन्यः शब्दः, अनुसारः=अनुसरणम्-अधोवायोर्निस्सरणं, तज्जनितः

श्रोत्रेन्द्रिय लब्ध्यक्षर है, कारण यह श्रोत्रेन्द्रिय के निमित्त से उत्पन्न हुआ हैं। आंख से आम्रफल आदि को देखकर जो ऐसा विचार होता है कि "यह आम्र का फल हैं" यह चक्षुइन्द्रिय लब्ध्यक्षर है, क्यों कि "यह आम्र का फल है" इस प्रकार के अक्षर से यह ज्ञान मिला हुआ है और इसमें शब्द एवं उसके अर्थ की पर्यालोचना हो रही है। इसी तरह से शेषइन्द्रिय लब्ध्यक्षर भी जान लेना चाहिये।

फिर शिष्य पूछता है-'से किं तं अणक्खर सुयं०' इत्यादि।

अनक्षररूप श्रुतज्ञान का क्या स्वरूप है? उत्तर-अनक्षररूप श्रुतज्ञान अनेक प्रकार का बतलाया गया है-(१) उच्छ्वसित, (२) निःश्वसित (३) निष्ठयूत, (४) कासित, (५) क्षुत, (छींक) (६) निःसिङ्घित, (७) अनुसार, (८) खेलित, आदि (श्लेष्मित, चीत्कार आदि)। नासिकाजन्य शब्द

તે શ્રોત્રેન્દ્રિયના નિમિત્તથી ઉત્પન્ન થયું છે આંખથી આમ્રફળ આદિને જોઈ ને જે એવો વિચાર આવે છે કે "આ આમ્રફળ છે" એ ચક્ષુઈન્દ્રિયલબ્ધ્યક્ષર છે, કારણ કે "આ આમ્રફળ છે" આ પ્રકારના અક્ષરથી આ જ્ઞાન મળેલુ છે, અને તેમાં શબ્દ અને તેના અર્થની પર્યાલોચના થઈ રહી છે. એજ પ્રકારે બાકીની ઈન્દ્રિયોનું લબ્ધ્યક્ષર પણ સમજી લેવું.

વળી શિષ્ય પૂછે છે-"से किं तं अणक्खर सुयं०" ઇત્યાદિ.

અનક્ષરરૂપ શ્રુતજ્ઞાનનું શું સ્વરૂપ છે।

ઉત્તર—અનક્ષરરૂપ શ્રુતજ્ઞાન અનેક પ્રકારનું બતાવ્યું છે-(૧) ઉચ્છ્વસિત (૨) નિશ્વસિત, (૩) નિષ્ઠયૂત, (૪) કાસિત, (૫) ક્ષુત (છીંક), (૬) નિસિંઘિત, (૭) અનુસાર (૮) ખેલિત આદિ (શ્લેષ્મિત, ચીત્કાર, આદિ) નાસિકા-

इत्यर्थः। खेलितादिकम्-खेलितमादिर्यस्य तत् खेलितादिकम्, खेलितम्=श्लेष्मितं-श्लेष्मशब्दः, आदिशब्देन चीत्कारादिकम्, एतत्सर्वम् अनक्षरम्=अनक्षरश्रुतं बोध्यम्।

इहोच्छ्वसितादिकं द्रव्यश्रुतं द्रष्टव्यम्, ध्वनिमात्रत्वात् भावश्रुतजनकत्वात् भावश्रुतकार्यत्वाच्च। तथा हि-यदाऽन्यं कंचित् पुरुषं प्रति कमप्यर्थं बोधयितुमभिसन्धिपूर्वकं सविशेषतरमुच्छ्वसितादिकं क्रियते, तदा तदुच्छ्वसितादिकं प्रयोक्तुर्भावश्रुतस्य फलम्, श्रोतुश्च भावश्रुतस्य कारणं भवति। तस्माद् द्रव्यश्रुतमित्युच्यते।

नन्वेवं तर्हि करादिचेष्टाया अपि द्रव्यश्रुतत्वप्रसङ्गः, साऽपि हि बुद्धिपूर्विका क्रियते, सा च कर्तुर्भावश्रुतस्य फलं, द्रष्टुश्च भावश्रुतस्य कारणम्? इति चेन्न,

---

का नाम निःसिङ्घित है। तथा अधोवायु के निःसरण होते समय जो शब्द होता है उसका नाम अनुसार-अनुसरण है। ये सब अनक्षरात्मक श्रुत हैं। ये उच्छ्वसित आदि सब ध्वनिमात्र होने से भावश्रुत के जनक होनेसे एवं भावश्रुतके कार्य होनेसे द्रव्यश्रुत माने गये हैं। तात्पर्य इसका यह है कि-जब कोई प्रयोक्ता किसी विशेष बातको समझानेके लिये इच्छापूर्वक किसीके प्रति इन उच्छ्वसित आदिका प्रयोग करता है, तब ये उच्छ्वसित आदि उस प्रयोक्ता के भावश्रुत का फलरूप होते हैं, और श्रोता के ये ज्ञान के-भावश्रुत के-जनक होते हैं, इसलिये इन्हें द्रव्यश्रुतरूप बतलाया गया है।

शंका—इस तरह यदि उच्छ्वसित आदि को आप द्रव्यश्रुतरूप मानते हैं, तो फिर हस्तादि की चेष्टा को भी द्रव्यश्रुतरूप मानना चाहिये. कारण यह भी प्रयोक्ता के द्वारा बुद्धिपूर्वक ही की जाती है, तथा चेष्टा

જન્ય શબ્દનું નામ નિઃસિંઘિત છે. તથા અધોવાયુનું નિઃસરણ થતી વખતે જે શબ્દ થાય છે તેનું નામ અનુસાર-અનુસરણ છે એ બધા અનક્ષરાત્મક શ્રુત છે એ ઉચ્છ્વસિત આદિ બધા ધ્વનિમાત્ર હોવાથી ભાવશ્રુતના જનક હોવાથી અને ભાવશ્રુતના કાર્ય હોવાથી દ્રવ્યશ્રુતરૂપ માનવામાં આવ્યાં છે તેનું તાત્પર્ય એ છે કે-જ્યારે કોઈ પ્રયોકતા કોઈ વિશેષ વાતને સમજાવવાને માટે ઈચ્છાપૂર્વક કોઈના તરફ એ ઉચ્છ્વસિત આદિનો પ્રયોગ કરે છે, ત્યારે એ ઉચ્છ્વસિત આદિ તે પ્રયોકતાના ભાવશ્રુતના ફળરૂપ હોય છે, અને શ્રોતાના એ જ્ઞાનનું-ભાવશ્રુતનું જનક હોય છે, તે કારણે તેમને દ્રવ્યશ્રુતરૂપ બતાવ્યું છે.

શંકા—આ રીતે જો આપ ઉચ્છ્વસિત આદિને દ્રવ્યશ્રુતરૂપ માનો છો તો પછી હસ્તાદિની ચેષ્ટાને પણ દ્રવ્યશ્રુતરૂપ માનવી જોઈએ, કારણ કે એ પણ પ્રયોકતા દ્વારા બુદ્ધિપૂર્વક જ કરાય છે, તથા એ ચેષ્ટાથી પ્રયોકતાના હાર્દિક

श्रुतमित्यत्र श्रुतशब्दार्थाश्रयणात्। तथाहि-श्रूयते यत् तच्छ्रुतमित्युच्यते। करादिचेष्टा तु न श्रूयते, ततो न तत्र द्रव्यश्रुतत्वप्रसङ्गः। उच्छ्वसितादिकं तु श्रूयते, अनक्षरात्मकं च। अतस्तदनक्षरश्रुतमित्युक्तम्। तदेतदनक्षरश्रुतं वर्णितम् ॥सू०३८॥

अथ सञ्ज्ञिश्रुतं वर्णयति।

मूलम्—से किं तं सण्णिसुयं?। सण्णिसुयं तिविहं पण्णत्तं; तं जहा-कालिओवएसेणं, हेऊवएसेणं, दिट्ठिवाओवएसेणं। से किं तं कालिओवएसेणं?। कालिओवसेणं-जस्स णं अत्थि ईहा, अवोहो, मग्गणा, गवेसणा, चिंता, वीमंसा, से णं सण्णीति लब्भइ। जस्स णं नत्थि ईहा, अवोहो, मग्गणा, गवेसणा, चिंता, वीमंसा, से णं असण्णीति लब्भइ। से त्तं कालिओवएसेणं।

से प्रयोक्ता के हार्दिक भावोंका पता लग जाता है, एवं प्रयोक्ता इसे जान-बूझकर कहता है अतः उच्छ्वसित आदि की तरह यह भी भावश्रुत का कार्य एवं भावश्रुत का जनक है।

उत्तर—इस प्रकार की शंका ठीक नहीं है, कारण-"श्रुत" यहां श्रुतशब्द के अर्थ का आश्रय लिया गया है, और इसका तात्पर्य यह है कि-"श्रूयते यत्तदिति श्रुतमित्युच्यते" अर्थात् जो सुना जावे वह श्रुत है। हस्तादि की चेष्टा सुनी नहीं जाती है वह तो देखी जाती है इसलिये वह द्रव्यश्रुतरूप नहीं मानी गई है। ये उच्छ्वसित आदि सुने जाते हैं और स्वयं अक्षर से रहित हैं इसलिये ये अनक्षरश्रुतरूप माने गये हैं। इस तरह अनक्षरश्रुत का वर्णन हुआ ॥ सू० ३८ ॥

ભાવની ખબર પડી જાય છે. અને પ્રયોકતા એને જાણી જોઈને કરે છે, તેથી ઉચ્છ્વસિત આદિની જેમ, એ પણ ભાવશ્રુતનું કાર્ય અને ભાવશ્રુતનું જનક છે.

ઉત્તર—આ પ્રકારની શંકા યોગ્ય નથી, કારણ કે "શ્રુત" અહીં શ્રુત શબ્દના અર્થનો આધાર લેવાયો છે. અને તેનું તાત્પર્ય એ છે કે "श्रूयते यत्तदितिश्रुतमित्युच्यते" એટલે કે જે સંભળાય છે તે શ્રુત છે. હસ્તાદિની ચેષ્ટા સંભળાતી નથી, તે તો જોવાય છે, તે કારણે તે દ્રવ્યશ્રુતરૂપ મનાઈ નથી. એ ઉચ્છ્વસિત આદિ સંભળાય છે અને સ્વયં અક્ષર રહિત છે તેથી, તેને અનક્ષર-શ્રુતરૂપ માન્યા છે. આ રીતે આ અનક્ષરશ્રુતનું વર્ણન થયુ છે. ॥ સૂ. ૩૮ ॥

से किं तं हेऊवएसेणं ?। हेऊवएसेणं–जस्स णं अत्थि अभिसंधारणपुव्विया करणसत्ती से णं सण्णीति लब्भइ। जस्स णं नत्थि अभिसंधारणपुव्विया करणसत्ती से णं असण्णीति लब्भइ। से तं हेऊवएसेणं। से किं तं दिट्ठिवाओवएसेणं ? दिट्ठिवाओवएसेणं–सण्णिसुयस्स खओवसमेणं सण्णी लब्भइ, असण्णिसुयस्स खओवसमेणं असण्णी लब्भइ। से त्तं दिट्ठिवाओवएसेणं। से त्तं सण्णिसुयं। से त्तं असण्णिसुयं॥ सू० ३९॥

छाया—अथ किं तत् संज्ञिश्रुतम् ?। संज्ञिश्रुतं त्रिविधं प्रज्ञप्तम्; तद् यथा—कालिक्युपदेशेन, हेतूपदेशेन, दृष्टिवादोपदेशेन। अथ कोऽसौ कालिक्युपदेशेन (संज्ञी)? कालिक्युपदेशेन–यस्य खलु अस्ति ईहा, अपोहः, मार्गणा, गवेषणा, चिन्ता, विमर्शः, स संज्ञीति लभ्यते। यस्य खलु नास्ति ईहा, अपोहः, मार्गणा, गवेषणा, चिन्ता, विमर्शः, सोऽसंज्ञीति लभ्यते। स एष कलिक्युपदेशेन (सज्ञी)। अथ कोऽसौ हेतूपदेशेन (संज्ञी)?। हेतूपदेशेन–यस्य खलु अस्ति अभिसंधारणपूर्विका करणशक्तिः, स संज्ञीति लभ्यते, यस्य खलु नास्ति अभिसंधारणपूर्विका करणशक्तिः सोऽसंज्ञीति लभ्यते। स एष हेतूपदेशेन (संज्ञी)।

अथ कोऽसौ दृष्टिवादोपदेशेन (संज्ञी)?। दृष्टिवादोपदेशेन–संज्ञिश्रुतस्य क्षयोपशमेन संज्ञी लभ्यते, असंज्ञिश्रुतस्य क्षयोपशमेन असंज्ञी लभ्यते। स एष दृष्टिवादोपदेशेन (संज्ञी)। तदेतत् संज्ञिश्रुतम्। तदेतदसंज्ञिश्रुतम्॥ सू० ३९॥

टीका—शिष्यः पृच्छति—'से किं तं सण्णिसुयं' इति। अथ किं तत् संज्ञिश्रुतम्? इति। उत्तरमाह—'सण्णिसुयं०' इत्यादि। संज्ञिश्रुतं त्रिविधं प्रज्ञप्तं, तद् यथा–कालिक्युपदेशेन, हेतूपदेशेन, दृष्टिवादोपदेशेन।

अब संज्ञिश्रुत का वर्णन करते हैं–'से किं तं सण्णिसुयं०' इत्यादि।

शिष्य पूछता है–हे भदन्त! पूर्ववर्णित संज्ञिश्रुत का क्या स्वरूप है। उत्तर–संज्ञिश्रुत तीन प्रकार का कहा है। वे इस प्रकार–कालिकी उपदेश से १, हेतु उपदेश से २, तथा दृष्टिवाद के उपदेश से ३।

હવે સંજ્ઞીશ્રુતનું વર્ણન કરે છે-સે किं तं सण्णिसुयं० '' ઇત્યાદિ—

શિષ્ય પૂછે છે-હે ભદન્ત! પૂર્વવર્ણિત સંજ્ઞિશ્રુતનું શું સ્વરૂપ છે?

ઉત્તર-સંજ્ઞિશ્રુત ત્રણ પ્રકારનું કહ્યું છે. તે આ પ્રકારે છે-(૧) કાલિકી ઉપદેશથી, (૨) હેતુ ઉપદેશથી, અને (૩) દૃષ્ટિવાદના ઉપદેશથી.

ननु यदि संज्ञायाः सम्बन्धात् संज्ञी भवतीत्युच्यते, तर्हि संज्ञासम्बन्धेन सर्वेऽप्येकेन्द्रियादयो जीवाः संज्ञिनः स्युः, न तु केऽप्यसंज्ञिनः, तथा हि सर्वजीवानामेकेन्द्रियादीनामपि प्रज्ञापनादौ दशविधा संज्ञा प्ररूपिता; तद् यथा—

"एगिंदियाणं भंते! कइविहा सण्णा पण्णत्ता?। गोयमा! दसविहा पण्णत्ता; तं जहा–आहारसण्णा १, भयसण्णा २, मेहुणसण्णा ३, परिग्गहसण्णा ४, कोहसण्णा ५, माणसण्णा ६, मायासण्णा ७, लोहसण्णा ८, ओहसण्णा ९, लोगसण्णा १०।"

छाया—एकेन्द्रियाणां भदन्त! कतिविधा संज्ञा प्रज्ञप्ता? गौतम! दशविधा प्रज्ञप्ता; तद् यथा–आहारसंज्ञा १, भयसंज्ञा २, मैथुनसंज्ञा ३, परिग्रहसंज्ञा ४, क्रोधसंज्ञा ५, मानसंज्ञा ७, लोभसंज्ञा ८, ओघसंज्ञा ९, लोकसंज्ञा १०।

शंका—यदि संज्ञा के संबंध से जीव संज्ञी माना जाय तो फिर इस प्रकार से कोई भी प्राणी असंज्ञी नहीं माना जासकता है, कारण प्रज्ञापनादि सूत्रो में समस्त एकेन्द्रियादि जीवों के भी दशप्रकार की संज्ञाएँ प्ररूपित की गई हैं, अतः वे भी संज्ञा के संबंध से संज्ञी सिद्ध हो जाते हैं। जैसे—

"एगिंदियाणं भंते! कइविहा सण्णा पण्णत्ता? गोयमा! दसविहा पण्णत्ता" इत्यादि इस पाठ से कि जिसमें यहीं बतलाया हुआ है कि एकेन्द्रिय जीवों के आहारसंज्ञा १, भयसंज्ञा २, मैथुनसंज्ञा ३, परिग्रहसंज्ञा ४, क्रोधसंज्ञा ५, मानसंज्ञा ६, मायासंज्ञा ७, लोभसंज्ञा ८, ओघसंज्ञा ९, और लोकसंज्ञा १०, ये दश प्रकार की संज्ञाएँ है। इसी प्रकार द्वीन्द्रिय आदि जीवों में भी ये ही दस प्रकार की संज्ञाएँ जाननी चाहिये, अतः जब यह बात है :तब 'संज्ञा के संबंध से जीव संज्ञी है'

શંકા—જો સંજ્ઞાના સંબંધથી જીવ સંજ્ઞી ગણાય તો પછી એ પ્રકારે તો કોઇ પણ પ્રાણી અસંજ્ઞી માની શકાય નહીં, કારણ કે પ્રજ્ઞાપન આદિમાં સમસ્ત એકેન્દ્રિયાદિ જીવોને પણ દસ પ્રકારની સંજ્ઞાઓ પ્રરૂપીત કરેલ છે, તેથી તેઓ પણ સંજ્ઞાના સંબંધથી સંજ્ઞી સિદ્ધ થઇ જાય છે. જેમકે—

"एगिंदियाणं भंते! कइविहा सण्णा पण्णत्ता? गोयमा! दसविहा पण्णत्ता" ઇત્યાદિ. આ પાઠથી કે જેમાં એજ બતાવ્યુ છે કે એકેન્દ્રિય જીવોને (૧) આહાર સંજ્ઞા, (૨) ભય સંજ્ઞા, (૩) મૈથુન સંજ્ઞા, (૪) પરિગ્રહ સંજ્ઞા, (૫) ક્રોધ સંજ્ઞા, (૬) માન સંજ્ઞા, (૭) માયા સંજ્ઞા, (૮) લોભ સંજ્ઞા, (૯) ઓઘ સંજ્ઞા, અને (૧૦) લોક સંજ્ઞા. એ દસ પ્રકારની સંજ્ઞાઓ હોય છે. એજ પ્રમાણે દ્વીન્દ્રિય આદિ જીવોમાં પણ એજ દસ પ્રકારની સંજ્ઞાઓ જાણવી જોઇએ, તેથી જ્યારે આમ વાત છે ત્યારે "સંજ્ઞાના સંબંધથી જીવ સંજ્ઞી છે"

एवं द्वीन्द्रियादीनां वाच्यम्। तत् कथं जीवा असंज्ञिनः प्रोक्ताः? इति चेत्।

उच्यते–अत्र सा दशविधा संज्ञा नाधिक्रियते। यतस्तत्र काचित् स्वल्पा भवति, यथा–ओघसंज्ञेति। तया संज्ञया संज्ञीति व्यपदेशो न युज्यते। नहि कार्षापणमात्रसद्भावे धनवानित्युच्यते लोके। आहार–भय–परिग्रह–मैथुनादिसंज्ञा अप्याश्रित्य संज्ञीति निर्देशः कर्तुमशक्यः, तासां मोहादिजन्यत्वेन सामान्यरूपत्वादशोभनत्वाच्च। लोकेऽप्यविशिष्टेन रूपमात्रेण रूपवानिति न व्यवह्रियते। तस्मात्

इस कथन में कोई भी जीव असंज्ञी नहीं सिद्ध होता है फिर "असंज्ञी जीव है" यह बात केवल असंबद्ध ही मानी जानी चाहिये, क्यों कि इस तरह कोई भी असंज्ञी जीव नहीं होता है?।

उत्तर—कथन को नहीं समझने के कारण इस प्रकार की शंका उपस्थित की गई है। संज्ञी शब्द के अर्थ का जहां विचार किया गया है वहां इन दश प्रकार की संज्ञा का संबंध विवक्षित नहीं है, कारण कि कोई २ संज्ञाएँ वहां अल्प भी होती हैं, जैसे–ओघसंज्ञा। यदि इन संज्ञाओं को लेकर संज्ञी जीव माने जाते तो ओघ संज्ञा की अल्पता में संज्ञीपना वहां नहीं आ सकता। कोड़ी मात्र धन के होने पर कोई जीव संसार में धनी नहीं माना जाता है। आहार, भय, परिग्रह, मैथुन आदि संज्ञाओं के संबंध को लेकर भी जीव में "संज्ञी" इस प्रकार का निर्देश नहीं किया गया है, क्यों कि ये संज्ञाएँ मोहादिजन्य होने से सामान्यरूप हैं, तथा अशोभन हैं। जैसे–लोक में सामान्यरूप को लेकर कोई प्राणी रूपवान् नहीं कहा जाता है उसी प्रकार सामान्यरूप वाली–समानरूप

આ કથનથી કોઈ પણ જીવ અસંજ્ઞી સિદ્ધ થતો નથી તો "અસંજ્ઞી જીવ છે" એ વાત કેવળ અસંબદ્ધ જ માનવી જોઈએ, કારણ કે આ રીતે કોઈ પણ અસંજ્ઞી જીવ હોતા નથી?

ઉત્તર—કથનને નહીં સમજવાને કારણે આ પ્રકારની શંકા ઉઠાવવામાં આવી છે. સંજ્ઞી શબ્દના અર્થનો જ્યાં વિચાર કરાયો છે, ત્યાં આ દશ પ્રકારની સંજ્ઞાનો સંબંધ વિવક્ષિત નથી. કારણ કે કોઈ કોઈ સંજ્ઞાઓ ત્યાં અલ્પ પણ હોય છે, જેમકે ઓઘ સંજ્ઞા. જો આ સંજ્ઞાઓને લીધે સંજ્ઞી જીવ માનવામાં આવે તો ઓઘસંજ્ઞાની અલ્પતામાં ત્યાં સંજ્ઞીપણું આવી શકે નહીં. માત્ર એક કોડી ધન હોય તો એવો કોઈ જીવ સંસારમાં ધનિક મનાય નહીં. આહાર, ભય, પરિગ્રહ, મૈથુન આદિ સંજ્ઞાઓના સંબંધને લીધે પણ જીવમાં "સંજ્ઞી" એવા પ્રકારનો નિર્દેશ કરાયો નથી, કારણ કે એ સંજ્ઞાઓ મોહાદિજન્ય હોવાથી સામાન્યરૂપ છે, તથા અશોભન છે. જેમ લોકમાં સામાન્યરૂપને લીધે કોઈ પ્રાણી

यथा लोके बहुद्रव्य एव धनवानित्युच्यते, प्रशस्तरूप एव रूपवानिति व्यपदिश्यते, तथाऽत्रापि महत्या शोभनया च संज्ञया ज्ञानावरणीकर्मक्षयोपशमजन्यमनोज्ञानरूपया संज्ञी व्यपदिश्यते। संज्ञानं-संज्ञा, मनोज्ञानमिति तदर्थः। मनोज्ञानरूपा संज्ञा महती शोभना चास्तीति सैव गृह्यते, न त्वन्या। ततश्च मनोज्ञानरूपा संज्ञा येषामस्ति त एव संज्ञिन इति बोध्यम्।

अथ कोऽसौ कालिक्युपदेशेन संज्ञी ?-ति शिष्य प्रश्नः। दीर्घकालिकी संज्ञा कालिकीत्युच्यते, तस्या उपदेशः=कथनं तेन संज्ञी कीदृशो भवती ?ति भावः।

से सब जीवों में पाई जानेवाली इन आहार आदि संज्ञाओं के संबंध से कोई भी जीव संज्ञी नहीं बतलाया गया है, अतः जिस प्रकार बहुत द्रव्य के सद्भाव में प्राणी धनशाली माना जाता है, तथा प्रशस्तरूप के होने पर रूपसंपन्न गिना जाता है उसी प्रकार यहां भी महती-विशिष्ट एवं शोभन-सुन्दरसंज्ञा से अर्थात् ज्ञानवरणीय कर्मके क्षयोपशमजन्य जो मनोज्ञानरूप संज्ञा है उससे जो जीव युक्त होता है वह संज्ञी कहा गया है। यह मनोज्ञानरूप संज्ञा महती एवं शोभनीय है, इसलिये यह संज्ञा जिन जीवों के पाई जाती है वे ही शास्त्रकारों की दृष्टि में संज्ञीरूप से व्यपदिष्ट हुए हैं, अन्य संज्ञाओं के संबंध से नहीं।

शिष्य संज्ञिश्रुत के भेद पूछता है-हे भदन्त! कालिक्युपदेश के संबंध से संज्ञी जीव का क्या स्वरूप है ? शिष्य के इस प्रश्न का तात्पर्य यह है कि दीर्घकालिकी संज्ञा का नाम कालिकी है, इस कालिकी के कथन से जो संज्ञी जीव कहें गये हैं उनका क्या स्वरूप है-वे कैसे होते हैं ?।

રૂપાળું કહેવાતું નથી, એજ પ્રકારે સામાન્યરૂપવાળી-સમાનરૂપે સઘળા જીવોમાં દેખાતી એ આહાર આદિ સંજ્ઞાઓના સંબંધથી કોઈ પણ જીવને સંજ્ઞી બતાવ્યો નથી, તેથી જેમ વધારે દ્રવ્યના સદ્ભાવથી પ્રાણી ધનવાન મનાય છે, તથા પ્રશસ્તરૂપ હોવાથી રૂપાળો ગણાય છે એજ પ્રકારે અહીં પણ મહતી-વિશિષ્ટ અને શોભન-સુંદર સંજ્ઞાથી એટલે કે જ્ઞાનાવરણીય કર્મના ક્ષયોપશમ જન્ય જે મનોજ્ઞાનરૂપ સંજ્ઞા છે તેના વડે જે જીવ યુક્ત હોય છે તેને સંજ્ઞી કહેલ છે. આ મનોજ્ઞાનરૂપ સંજ્ઞા મહતી અને શોભનીય છે, તેથી તે સંજ્ઞા જે જીવોમાં જોવા મળે છે તે જીવો જ શાસ્ત્રકારની દૃષ્ટિએ સંજ્ઞી રૂપે પ્રરૂપીત થયાં છે, બીજી સંજ્ઞાઓના સંબંધથી નહીં.

શિષ્ય સંજ્ઞિશ્રુતના ભેદ પૂછે છે-હે ભદન્ત! કાલિકી ઉપદેશના સંબંધથી સંજ્ઞી જીવનું શું સ્વરૂપ છે ? શિષ્યના આ પ્રશ્નનું તાત્પર્ય એ છે કે-દીર્ઘકાલિની સંજ્ઞાનું નામ કાલિકી છે, એ કાલિકીના કથનથી જે સંજ્ઞી જીવ કહેવાયા છે તેમનું શું સ્વરૂપ છે-તેઓ કેવાં હોય છે ?

उत्तरमाह—'कालिओवदेसेणं जस्स णं०' इत्यादि। कालिक्युपदेशेन संज्ञी स उच्यते, यस्य प्राणिनः खलु ईहा=सदर्थ पर्यालोचनरूपा, अस्ति-विद्यते। तथा-अपोहः=निश्चयः, मार्गणा=अन्वयधर्मान्वेपणम्, गवेपणा = व्यतिरेकधर्मस्वरूप पर्यालोचनम्, तथा-चिन्ता='इदं केन प्रकारेण जातं, इदं संप्रति केन प्रकारेण वर्तते, केन प्रकारेण चैतद् भविष्यती'-ति पर्यालोचनम्, तथा-विमर्शः=विमर्शनम्-'इदमित्थमेव घटते, इत्थं वा तद् भूतम्, इत्थमेव वा तद् भविष्यती'-ति यथाऽवस्थितवस्तुस्वरूपनिर्णयः, अस्ति=विद्यते स प्राणी संज्ञीति लभ्यते। स च गर्भव्युत्क्रान्तिको मनुष्यादिः औपपातिकश्च देवादिर्मनःपर्याप्तियुक्तो विज्ञेयः। तस्यैव त्रिकालविपयचिन्ताविमर्शादिसम्भवात्।

उत्तर-कालिकी के उपदेश के संबंध से संज्ञी जीव वह है कि जिसके ईहा आदि ज्ञान होते हैं। सदर्थ की पर्यालोचना का नाम ईहा है १। अपोह वस्तु का निश्चय होना २। 'मार्गणा'-शब्द का अर्थ है वस्तु में अन्वय धर्म की गवेषणा करना, जैसे-'यह अमुक वस्तु ही है, क्यों कि इसमें इनके साथ संबंध रखने वाले अमुक २ धर्म पाये जाते हैं' ३। गवेषणा शब्द का अर्थ है व्यतिरेक धर्मों के स्वरूप की वस्तु में पर्यालोचना करना ४। "यह किस तरह से हुआ है, इस समय यह किस तरह है, आगे किस तरह से होगा" इस प्रकार की विचार धारा का नाम चिन्ता है ५। "यह इसी तरह से घटित होता है, पहिले भी यह इसी तरह से घटित हुआ था, आगे भी यह इसी रूप से घटित होगा" इस तरह वस्तु का जो स्वरूप है उसका निर्णय होना सो विमर्श है ६। ये सब बाते जिन में पाई जाती है वे संज्ञी जीव गर्भजन्मवाले

ઉત્તર—કાલિકીના ઉપદેશના સંબંધથી સંજ્ઞી જીવ તે છે કે જેમને ઈહા આદિ જ્ઞાન હોય છે. (૧) સદર્થની પર્યાલોચનાનું નામ ઇહા છે. (૨) વસ્તુનો નિર્ણય થવો તે અપોહ છે (૩) "માર્ગણા" શબ્દનો અર્થ છે-વસ્તુમાં અન્વય-ધર્મની ગવેષણા કરવી જેમકે-"આ અમુક વસ્તુ જ છે, કારણ કે તેમાં તેની સાથે સબંધ રાખનાર અમુક અમુક ધર્મ મળે છે. (૪) "ગવેષણા" શબ્દનો અર્થ છે-વ્યતિરેક ધર્મોનાં સ્વરૂપની વસ્તુમાં પર્યાલોચના કરવી. "આ કેવી રીતે થયું છે, આ સમયે આ કયા પ્રકારનું છે, આગળ કેવી રીતે હશે. આ પ્રકારની વિચાર ધારાનું નામ ચિંતા છે. (૫) આ રીતે ઘટાવી શકાય છે, પહેલાં પણ આ રીતે જ ઘટિત થયું હતું, આગળ પણ તે આ રીતે જ ઘટાવી શકાશે" આ રીતે વસ્તુનું જે સ્વરૂપ છે તેનો નિર્ણય થવો તે "વિમર્શ" છે (૬) એ બધી વાત જેમનામાં જોવા મળે છે તેઓ સંજ્ઞીજીવ છે. એ સંજ્ઞીજીવ

एष च प्रायः सर्वमप्यर्थं स्फुटरूपमुपलभते। तथाहि—यथा चक्षुष्मान् प्रदीपादिप्रकाशेन स्फुटमर्थमुपलभते, तद्वदयं मनोलब्धिसम्पन्नो मनोद्रव्याऽऽलम्बन समुत्पन्नविमर्शवशात् पूर्वापरानुसंधानेन यथावस्थितं स्फुटमर्थमुपलभते।

अयं भावः—यः कश्चिन्मनोज्ञानावार कर्मक्षयोपशमाद् मनोलब्धिसंपन्नो मनोयोग्याननन्तान् स्कन्धान् मनोवर्गणाभ्यो गृहीत्वा मनस्त्वेन परिणमय्य चिन्तनीयं वस्तुजानाति, स कालिक्युपदेशेन संज्ञी विज्ञेयः। स च गर्भजस्तिर्यग् मनुष्यो वा देवो नारकश्चेति।

पुरुष तथा तिर्यञ्च एवं औपपातिक जन्मवाले देव और नारकी होते हैं। इन सब के मनःपर्याप्ति होती है और इसीसे ये भूत, भविष्यत् और वर्तमान काल संबंधी वस्तु का विचार आदि कर सकते हैं।

यह संज्ञी जीव प्रायः समस्त पदार्थों को स्फुटरूप से जान लेता है। जैसे अच्छी दृष्टि वाला व्यक्ति दीपादि के प्रकाश की सहायता से पदार्थों को जैसे का तैसा जान लेता है उसी प्रकार मनोलब्धि संपन्न प्राणी मनोद्रव्य के अवलम्बन से उत्पन्न विमर्श के वश से पूर्वापरानुसंधानपूर्वक यथावस्थित पदार्थ को स्फुटरूप से जान लिया करता है।

तात्पर्य इसका यह है कि जो प्राणी मनोज्ञान को आवरण करने वाले कर्मके क्षयोपशम के वशसे मनोलब्धियुक्त होता हुआ मनोयोग्य अनंत स्कन्धों को मनोवर्गणाओं से ग्रहण करके उन्हें मनरूप से परिणमाकर चिन्तनीय जानने योग्य वस्तु को जानता है वह कालिकी–उपदेश के संबंध से संज्ञीजीव कहा गया है। ऐसे जीव गर्भजन्म वाले मनुष्य एवं तिर्यञ्च तथा देव एवं नारकी हैं।

ગર્ભજન્મવાળા પુરુષ તથા તિર્યંચ અને ઔપપાતિક જન્મવાળા દેવ અને નારકી હોય છે. એ બધાને મનઃપર્યાપ્તિ હોય છે, અને તે વડે તેઓ ભૂત, ભવિષ્ય અને વર્તમાનકાળ સંબંધી વસ્તુનો વિચાર આદિ કરી શકે છે.

એ સંજ્ઞીજીવ સામાન્ય રીતે સમસ્ત પદાર્થોને સ્ફુટરૂપે જાણી લે છે. જેમ સારી નજરવાળી વ્યક્તિ પ્રદીપાદિના પ્રકાશની મદદથી પદાર્થોને તાદૃશ્ય સ્વરૂપે જાણી લે છે એજ પ્રકારે લબ્ધિસંપન્ન પ્રાણી મનોદ્રવ્યને આધારે ઉત્પન્ન વિમર્શને કારણે પૂર્વાપરાનુસંધાનપૂર્વક યથાવસ્થિત પદાર્થને સ્ફુટરૂપે જાણે છે તેનું તાત્પર્ય એ છે કે જે પ્રાણી મનોજ્ઞાનનું આવરણ કરનાર કર્મના ક્ષયોપશમને કારણે મનોલબ્ધિયુક્ત થઈને મનોયોગ્ય અનંત સ્કંધોને મનોવર્ગણાઓથી ગ્રહણ કરીને તેમને મનરૂપથી પરિણમાવીને ચિન્તનીય જાણવાયોગ્ય–વસ્તુને જાણે છે તે કાલિકી–ઉપદેશના સંબંધથી સંજ્ઞીજીવ કહેલ છે. એવા જીવ ગર્ભજન્મવાળા મનુષ્ય અને તિર્યંચ તથા દેવ અને નારકી છે.

यस्य तु ईहाऽपोहो मार्गणा गवेषणा चिन्ता विमर्शश्च नास्ति स खलु असंज्ञीति लभ्यते । स चाल्पमनोलब्धित्वात् संमूर्च्छिमपञ्चेन्द्रियोऽस्फुटमर्थं जानाति । ततोऽप्यस्फुटं चतुरिन्द्रियो जानाति । ततोऽप्यस्फुटतरं त्रीन्द्रियः । ततोऽप्यस्फुटतमं द्वीन्द्रियः । ततोऽप्यस्फुटतममेकेन्द्रियो जानाति, तस्य हि द्रव्यमनो नास्ति, किं तु अल्पतरमव्यक्तं भावमनो विद्यते, यद्वशादाहारादिसंज्ञा अव्यक्तरूपाः प्रादुर्भवन्ति। स एष कालिक्युपदेशेन संज्ञी वर्णितः । असंज्ञ्यपि वर्णितः ॥

जिस जीव के ईहा, अपोह, मार्गणा, गवेषणा चिन्ता तथा विमर्श, ये नहीं होते हैं वे असंगी हैं, ऐसा जानना चाहिये । ऐसा जीव अल्पमनोलब्धिवाला होता है, और वह संमूर्च्छिम पंचेन्द्रिय यहां ग्रहण किया गया है । यह पदार्थ को स्फुटरूप से नहीं जानता है, किन्तु अस्फुटरूप से जानता है । इसकी अपेक्षा चतुरिन्द्रियवाला जीव पदार्थ को अस्फुटरूप से जानता है, तथा चतुरिन्द्रियवाले जीव की अपेक्षा तान इन्द्रिय वाला जीव पदार्थ को और अधिक अस्फुटरूप से, तथा तीन इन्द्रियवाले जीव की अपेक्षा दो इन्द्रिय वाला जीव पदार्थ को और अधिक अस्फुटरूप से, एवं दो इन्द्रिय वाले जीव की अपेक्षा एकेन्द्रिय जीव पदार्थ को और अधिक अस्फुटरूप से जानता है । इस असंज्ञी जीव के द्रव्य मन नहीं होता है, किन्तु अत्यल्प अव्यक्त भाव मन होता है, इसीसे आहार आदि संज्ञाएँ अव्यक्तरूप में इसके हुआ करती हैं । इस तरह यह कालिकी-उपदेश के संबंध से संज्ञी का और तद्विपरीत असंज्ञी का यहां तक कथन-वर्णन हुआ ।

જે જીવને ઈહા, અપોહ, માર્ગણા, ગવેષણા, ચિન્તા તથા વિમર્શ હોતાં નથી તે અસંજ્ઞી છે, એમ સમજવું. એવો જીવ અલ્પમનોલબ્ધિવાળો હોય છે, અને તે સંમૂર્ચ્છિમ પચેન્દ્રિય અહીં ગ્રહણ કરવામાં આવેલ છે. એ પદાર્થને સ્ફુટરૂપે જાણતા નથી પણ અસ્ફુટરરૂપે જાણે છે, તેનાં કરતાં ચતુરિન્દ્રિય જીવ પદાર્થને અસ્ફુટરૂપે જાણે છે તથા ચતુરિન્દ્રયવાળા જીવ કરતાં ત્રણ ઈન્દ્રિયવાળો જીવ પદાર્થને તેનાથી પણ વધારે અસ્ફુટરૂપે તથા ત્રણ ઈન્દ્રિયવાળા કરતાં બે ઇન્દ્રિયવાળો જીવ પદાર્થને વધારે અસ્ફુટરૂપે અને બે ઈન્દ્રિયવાળા જીવ કરતા એકેન્દ્રિયજીવ પદાર્થને તેના કરતાં પણ વધારે અસ્ફુટરૂપે જાણે છે, આ અસંજ્ઞી જીવને દ્રવ્યમન હોતું નથી, પણ અલ્પ અલ્પ અવ્યક્ત ભાવમન હોય છે, તેથી તેમને આહાર આદિ સંજ્ઞાઓ અવ્યક્તરૂપે થયા કરે છે. આ રીતે આ કાલિકી-ઉપદેશના સંબંધથી સંજ્ઞીનું અને તેનાથી વિપરીત અસંજ્ઞીનું વર્ણન અહીં સુધી થયું.

अथ कोऽसौ हेतूपदेशेन संज्ञीति शिष्यप्रश्नः। उत्तरमाह-'हेउवएसेणं०' इत्यादि। हेतूपदेशेन-हेतुः=कारणं, तस्योपदेशः=कथनं, हेतूपदेशस्तेन-कारणोपदेशेनेत्यर्थः। कालिक्युपदेशेनाऽसंज्ञ्यपि यः संज्ञित्वकारणमुपलभ्य संज्ञीति व्यपदिश्यते, स एवं भवति-यस्य प्राणिनः खलु अभिसंधारणपूर्विका=अभिसन्धारणम्=अव्यक्तेन व्यक्तेन वा विज्ञानेन आलोचनं, तत्पूर्विका=तत्कारणिका, करणशक्तिः-करणं=क्रिया, तस्यां शक्तिः=प्रवृत्तिः, अस्ति=विद्यते, स प्राणी खलु हेतूपदेशेन संज्ञीति लभ्यते। अयं च द्वीन्द्रियादिः संमूर्च्छिमपञ्चेन्द्रियपर्यन्तो विज्ञेयः।

फिर शिष्य पूछता है-हे भदन्त! हेतूपदेश से संबंध से संज्ञी का क्या स्वरूप है? उत्तर-जिस जीव में अभिसंधारणपूर्विका कारण शक्ति होती है वह जीव हेतूपदेश के संबंध से संज्ञी माना गया है। तात्पर्य इसका यह है-यद्यपि ऐसा जीव कालिकी उपदेश की अपेक्षा संज्ञी नहीं माना जाता है, परन्तु संज्ञिपने के कारणों से उसे संज्ञी कहदिया जाता है। अभिसंधारणपूर्विका करणशक्ति का तात्पर्य इस प्रकार है-व्यक्त तथा अव्यक्त विज्ञान से जो आलोचना होती है-विचार धारा चलती है-उसका नाम अभिसंधारण है, क्रियामें जो प्रवृत्ति होती है वह करणशक्ति है। अभिसंधारणपूर्वक जो क्रियामें प्रवृत्ति होती है वह अभिसंधारण पूर्विका करण शक्ति है। यह अभिसंधारण पूर्विकाकरण-शक्ति ही यह हेतूपदेश है। यहां हेतूपदेश की अपेक्षा संज्ञीपना असंज्ञी संमूर्च्छिम पंचेन्द्रिय जीव से लेकर द्वीन्द्रिय जीवों तक माना गया है।

तात्पर्य इसका यह है, जो जीव अपने शरीर के पालन के लिये

વળી શિષ્ય પૂછે છે-હે ભદન્ત! હેતૂપદેશના સંબંધથી સંજ્ઞીનું શું સ્વરૂપે છે?

ઉત્તર—જે જીવમાં અભિસંધારણ પૂર્વિકા કારણ શક્તિ હોય છે તે જીવ હેતૂપદેશના સંબંધથી સંજ્ઞી માનવામાં આવ્યો છે. તેનું તાત્પર્ય એ છે કે એવો જીવ કાલકી ઉપદેશની અપેક્ષાએ સંજ્ઞી માનવામાં આવતો નથી, પણ સંજ્ઞીપણાના કારણોથી તેને સંજ્ઞી કહી દેવાય છે. અભિસંધારણ પૂર્વિકા કરણ શક્તિનું તાત્પર્ય આ પ્રમાણે છે-વ્યક્ત તથા અવ્યકત વિજ્ઞાનથી જે આલોચના થાય છે-વિચારધારા ચાલે છે તેનું નામ અભિસંધારણ છે, ક્રિયામાં જે પ્રવૃત્તિ થાય છે તે કરણશકિત છે. અભિસંધારણ પૂર્વક જે ક્રિયામા પ્રવૃત્તિ થાય છે તે અભિસંધારણ પૂર્વિકા કારણશક્તિ છે. આ અભિસંધારણપૂર્વિકા કરણશકિત જ અહીં હેતૂપદેશ છે. આ હેતૂપદેશની અપેક્ષાએ સંજ્ઞીપણું અસંજ્ઞી સંમૂર્ચ્છિમ પંચેન્દ્રિય જીવથી લઇને દ્વીન્દ્રિયજીવો સુધી માનવામાં આવેલ છે.

अयं भावः-यो बुद्धिपूर्वकं स्वदेहपरिपालनार्थमिष्टेष्वाहारेषु वस्तुषु प्रवर्तते, अनिष्टेभ्यश्च निवर्तते, स हेतूपदेशेन संज्ञी। स च द्वीन्द्रियादिरपि वेदितव्यः। तथाहि-इष्टानिष्टविषयप्रवृत्तिनिवृत्तिचिन्तनं, न मनोव्यापारमन्तरेण सम्भवति। मनसा च पर्यालोचनं संज्ञा। सा च द्वीन्द्रियादेरपि विद्यते, तस्यापि प्रतिनियतेष्टा-निष्टविषयप्रवृत्तिनिवृत्तिदर्शनात्। ततो द्वीन्द्रियादिरपि हेतूपदेशेन संज्ञी लभ्यते। नवरम्-अस्य संचिन्तनं प्रायो वर्तमानकालविषयं भवति, न तु भूतभविष्यद्वि-षयम्, अस्य भावमनस्कत्वादिति न कालिक्युपदेशेन संज्ञी लभ्यते।

बुद्धिपूर्वक इष्ट आहारमें प्रवर्तित होता है तथा अनिष्ट आहार से निवर्तित होता हैं वह हेतूदेपश की अपेक्षा संज्ञी कहा गया है। ऐसा प्राणी द्वीन्द्रियादिक जीव भी है, क्यों कि इसके जो इष्ट एवं अनिष्ट पदार्थोंमें प्रवृत्ति तथा निवृत्ति या चिन्तन होंता है वह मानसिक व्यापार के विना नहीं होता है। मानसिक व्यारका नाम ही संज्ञा है। जब इस प्रकार की संज्ञा यहां है तो फिर ये भी संज्ञी ही हैं, अर्थात् इस तरह हेतूपदेश की अपेक्षा असंज्ञी जीव भी संज्ञी मान लिये जाते हैं, क्यों कि इन जीवोंमें भी प्रतिनियत विषयों के प्रति प्रवृत्ति और निवृत्ति लक्षित होती है। द्वीन्द्रियादिक जीवोंमें जो इष्टानिष्ट विषयों के प्रति चिन्तन होता है वह वर्तमान कालिक ही होता है-भूत भविष्यत कालीन विष-योंको लेकर नहीं होता। इस हेतूपदेश की अपेक्षा संज्ञीपने के विचारमें भावमन की अपेक्षा रखी गई है, और कालिकी उपदेश की अपेक्षा से

તેનું તાત્પર્ય એ છે કે જે જીવ પોતાનાં શરીરના પાલનને માટે બુદ્ધિપૂર્વક ઇષ્ટ આહારમાં પ્રવર્તિત થાય છે તથા અનિષ્ટ આહારથી નિવર્તિત થાય છે તે હેતૂપ-દેશની અપેક્ષાએ સંજ્ઞી કહેલ છે. એવું પ્રાણી દ્વીન્દ્રિયાદિક જીવ પણ છે, કારણ કે તેની જે ઇષ્ટ અને અનિષ્ટ પદાર્થોમાં પ્રવૃત્તિ તથા નિવૃત્તિ કે ચિંતન થાય છે તે માનસિક વ્યાપાર વિના થતું નથી. માનસિક વ્યાપારનું નામ જ સંજ્ઞા છે. જો આ પ્રકારની સંજ્ઞા અહીં છે તો તેઓ પણ સંજ્ઞી જ છે, એટલે કે આ રીતે હેતૂપદેશની અપેક્ષાએ અસંજ્ઞીજીવ પણ સંજ્ઞી માની લેવાય છે, કારણ કે એ જીવોમાં પણ પ્રતિનિયત વિષયોની તરફ પ્રવૃત્તિ અને નિવૃત્તિ લક્ષિત હોય છે. દ્વીન્દ્રિયાદિક જીવોમાં જે ઇષ્ટાનિષ્ટ વિષયોનું ચિન્તન થાય છે તે વર્તમાન કાલિક જ હોય છે-ભૂત ભવિષ્ય વિષયોને લઈને થતું નથી. આ હેતૂપદેશની અપેક્ષાએ સંજ્ઞીપણાના વિચારમાં ભાવમનની અપેક્ષા રાખેલ છે, અને કાલિકી ઉપદેશની અપેક્ષાએ સંજ્ઞીપણાના વિચારમાં દ્રવ્યમનની એ રીતે

यस्य तु खलु नास्त्यभिसंधारणपूर्विका करणशक्तिः स प्राणी खलु हेतूपदेशेनाप्यसंज्ञीति लभ्यते। स च पृथिव्यादिरेकेन्द्रियो विज्ञेयः। तस्याभिसन्धिपूर्वकमिष्टानिष्टप्रवृत्तिनिवृत्त्यसंभवात्। याश्चाहारादिसंज्ञाः पृथिव्यादीनां वर्तन्ते, ता-अप्यत्यन्तमव्यक्तरूपा इति तदपेक्षयाऽपि न तेषां संज्ञित्वव्यपदेशः।

स एष हेतूपदेशेन संज्ञी वर्णितः, असंज्ञ्यपि वर्णितः।

अथ कोऽसौ दृष्टिवादेन संज्ञी? इति शिष्य प्रश्नः। उत्तरमाह—'दिट्ठिवाओवएसेणं०' इत्यादि। दृष्टिवादोपदेशेन—दृष्टिर्दर्शनं सम्यक्त्वादिः, दृष्टीनां वादो दृष्टिवादः, तदुपदेशेन=तदपेक्षया संज्ञी स भवति यः संज्ञिश्रुतस्य क्षयोपशमेन

संज्ञीपने के विचारमें द्रव्यमन की। इस तरह भावमन की अपेक्षा से जो कि आत्मस्वरूप होता है द्वीन्द्रियादिक असंज्ञी जीव संज्ञी कह दिये जाते हैं। जिन जीवोंमें अभिसंधारणपूर्वक कारणशक्ति नहीं है वे हेतूपदेश की अवेक्षा से भी संज्ञी नहीं हैं किन्तु असंज्ञी ही हैं। ऐसे जीव पृथिव्यादिक एकेन्द्रिय माने गये हैं, क्यों कि इन जवों को जो इष्टानिष्ट पदार्थोंमें प्रवृत्ति निवृत्ति होती है वह अभिसंधारण पूर्वक नहीं होती हैं। तथा जो आहार आदि संज्ञाएँ इन पृथिव्यादिकोंमें हैं वे भी अत्यन्त अव्यक्तरूपमें हैं, अतः इस अपेक्षा से भी उनमें संज्ञीपने का व्यपदेश नहीं बन सकता है। इस तरह यहां तक हेतूपदेश की अपेक्षा संज्ञी जीव का वर्णन हुआ। तथा इसके संबंध से असंज्ञी जीव का भी वर्णन हुआ।

फिर शिष्य पूछता है—हे भदन्त! दृष्टिवाद की अपेक्षा से संज्ञी जीव का क्या स्वरूप है?

उत्तर—दृष्टिवाद की अपेक्षा से संज्ञी जीव का स्वरूप यह है—जो

ભાવમનની અપેક્ષાએ જો કે આત્મસ્વરૂપ હોય છે દ્વીન્દ્રિયાદિક અસંજ્ઞી જીવ સંજ્ઞી કહેવાય છે. જે જીવોમાં અભિસંધારણપૂર્વક કરણશકિત હોતી નથી તેઓ હેતૂપદેશની અપેક્ષાએ પણ સંજ્ઞી નથી પણ અસંજ્ઞી જ છે. એવા જીવ પૃથિવ્યાદિક એકેન્દ્રિય માનવામાં આવ્યાં છે, કારણ કે તે જીવોની જે ઇષ્ટાનિષ્ટ પદાર્થોમાં પ્રવૃત્તિ નિવૃત્તિ થાય છે તે અભિસંધારણપૂર્વક થતી નથી. તથા જે આહારાદિ સંજ્ઞા તે પૃથિવ્યાદિકોમાં છે તે પણ અત્યંત અવ્યક્તરૂપમાં છે, તેથી એ અપેક્ષાએ પણ તેમનામાં સંજ્ઞીપણાનું આરોપણ શકય નથી. આ રીતે અહીં સુધી હેતૂપદેશની અપેક્ષાએ સંજ્ઞી જીવનું વર્ણન થયું. તથા તેના સંબંધથી અસંજ્ઞીજીવનું પણ વર્ણન થયું.

શિષ્ય પૂછે છે—હે ભદન્ત! દૃષ્ટિવાદની અપેક્ષાએ સંજ્ઞીજીવનું શું સ્વરૂપ છે?

ઉત્તર—દૃષ્ટિવાદની અપેક્ષાએ સંજ્ઞીજીવનું સ્વરૂપ આ પ્રમાણે છે—

संज्ञीति लभ्यते । अयमर्थः-संज्ञा=सम्यग्ज्ञानं, साऽस्यास्तीति संज्ञी=सम्यग्दृष्टिः, तस्य श्रुतं संज्ञिश्रुतं-सम्यक्श्रुतमित्यर्थः । तस्य=तदावरकरस्य कर्मणः, क्षयोपशमभावेन संज्ञीति लभ्यते । अयं भावः-यः सम्यग्दृष्टिः क्षायोपशमिकज्ञानयुक्तः, स दृष्टिवादोपदेशेन संज्ञीति व्यपदिश्यते । स च यथाशक्ति रागादिनिग्रहपरो महापुरुषो विज्ञेयः, स हि सम्यग्दृष्टिः यः सम्यग्ज्ञानीव रागादीन् निगृह्णाति, अन्यथा हिताहितेषु प्रवृत्तिनिवृत्त्यभावात् सम्यग्दृष्टित्वायोगात् । उक्तञ्च—

संज्ञी श्रुत के आवारक कर्म के क्षयोपशम से जीव 'संज्ञी' इस तरह के व्यपदेश से युक्त है। सम्यक्ज्ञान का नाम संज्ञा है। यह संज्ञा जिस जीव में प्राप्त है वह संज्ञी माना गया है। इस अपेक्षा सम्यग्दृष्टि जीव ही यहां संज्ञीपद से व्यवहृत हुआ है। सम्यग्दृष्टि जीव का जो श्रुत है वह, संज्ञीश्रुत सम्यक्श्रुत है। इस संज्ञिश्रुत के आवारक कर्म-श्रुतज्ञानावरणीय कर्म-के क्षयोपशम से जिस जीवमें "संज्ञी" इस तरह का व्यपदेश हुआ है वह दृष्टिवाद की अपेक्षा से संज्ञी माना गया है। क्षायोपशमिक ज्ञान शाली सम्यक् दृष्टि जीव ही दृष्टिवाद की दृष्टि से संज्ञीपद का वाच्यार्थ कहा गया है। यह जीव अपनी शक्ति के अनुसार रागादिक दोषों को दूर करनेमें तत्पर रहता है, और इसकी आत्मा अन्य साधारण जीवों की अपेक्षा विशेष महत्वशाली हुआ करती है। सम्यग्ज्ञानी जीव जिस तरह अनंतसंसार के कारणभूत रागादिकों को सर्वथा विलीन करनेमें उद्योग शाली रहता है उसी तरह यह सम्यग्दृष्टि जीव भी यही विचार किया करता है कि मैं भी रागादिकों के निग्रह करनेमें जब तत्पर रहूंगा तब

સંજ્ઞીશ્રુતના આવારક કર્મના ક્ષયોપશમથી જીવ "સંજ્ઞી" એ પ્રકારના વ્યપદેશથી યુક્ત છે. સમ્યક્જ્ઞાનનું નામ સંજ્ઞા છે. આ સંજ્ઞા જે જીવને પ્રાપ્ત છે તે સંજ્ઞી મનાય છે. એ અપેક્ષાએ સમ્યગ્દૃષ્ટિ જીવ જ અહીં સંજ્ઞી પદથી વ્યવહૃત થયેલ છે. સમ્યગ્દૃષ્ટિ જીવનું જે શ્રુત છે તે સંજ્ઞીશ્રુત સમ્યક્શ્રુત છે. આ સંજ્ઞીશ્રુતના આવારક કર્મ-શ્રુતજ્ઞાનાવરણીય કર્મના ક્ષયોપશમથી જે જીવમાં "સંજ્ઞી" આ પ્રકારનો વ્યપદેશ થયો છે તે દૃષ્ટિવાદની અપેક્ષાએ સંજ્ઞી મનાયો છે. ક્ષાયોપશમિક જ્ઞાનવાળો સમ્યક્દૃષ્ટિ જીવ જ દૃષ્ટિવાદની દૃષ્ટિએ સંજ્ઞીપદનો વાચ્યાર્થ કહેલ છે. એ જીવ પોતાની શક્તિ પ્રમાણે રાગાદિક દોષોને દૂર કરવાને તત્પર રહે છે, અને તેનો આત્મા બીજા સાધારણ જીવો કરતાં વિશેષ મહત્વવાળો હોય છે. સમ્યગ્જ્ઞાની જીવ જે રીતે અનંત સંસારના કારણભૂત રાગાદિકોનો સર્વથા નાશ કરવામાં ઉદ્યોગી રહે છે, એજ રીતે આ સમ્યગ્દૃષ્ટિ જીવ પણ એજ વિચાર કર્યા કરે છે કે હું પણ રાગાદિકોનો નિગ્રહ કરવાને

तज्ज्ञानमेव न भवति, यस्मिन्नुदिते विभाति रागगणः ।
तमसः कुतोऽस्ति शक्ति,-र्दिनकरकिरणाग्रतः स्थातुम् ॥ १ ॥

अन्यस्तु मिथ्यादृष्टिरसंज्ञी विज्ञेय इत्याह-'असण्णिसुयस्स०' इत्यादि । असंज्ञिश्रुतस्य=मिथ्याश्रुतस्य, क्षयोपशमेनाऽसंज्ञीति लभ्यते । स एष दृष्टिवादोपदेशेन संज्ञी वर्णितः, असंज्ञी च वर्णितः ।

ननु प्रथमं हेतूपदेशेन संज्ञी वक्तुं युज्यते, हेतूपदेशेन अल्पमनोलब्धिसंपन्नस्यापि द्वीन्द्रियादेः संज्ञित्वेन स्वीकारात्, तस्य चाविशुद्धतरत्वात्, हेतूपदेशेन यः संज्ञी जीवस्तदपेक्षया कालिक्युपदेशेन संज्ञिनो मनःपर्याप्तियुक्ततया विशुद्धत्वात्, तत् किमर्थमुत्क्रमेणोपन्यासः कृत? इति चेत्,

---

ही मेरे सम्यग्दृष्टित्व की शोभा है, अन्यथा-हितमें प्रवृत्ति और अहितमें निवृत्ति का अभाव होंने से मुझमें यथार्थतः सम्यग्दृष्टित्व का अयोग ही माना जायगा ।

कहा भी है-"तज्ज्ञानमेव न भवति, यस्मिन्नुदिते विभाति रागगणः ।
"तमसः कुतोऽस्ति शक्ति,-र्दिनकर किरणाग्रतः स्थातुम्" ॥१॥

उस ज्ञान से जीव को लाभ ही क्या हो सकता है कि जिसके होने पर भी रागादिकों का सद्भाव आत्मामें बना रहता है। सूर्य के सद्भावमें अन्धकार का सद्भाव कैसे हो सकता है ॥ १ ॥

असंज्ञी-श्रुत के क्षयोपशम से-मिथ्याश्रुत के सद्भाव से-जीव असंज्ञी माना गया है। तात्पर्य यह है कि दृष्टिवाद की अपेक्षा से सम्यग्दृष्टि जीव संज्ञी तथा मिथ्या दृष्टि जीव असंज्ञी कहा गया है।

જો તત્પર રહું તોજ મારાં સમ્યગ્દૃષ્ટિત્વની શોભા છે. અન્યથા હિતમાં પ્રવૃત્તિ અને અહિતમાં નિવૃત્તિનો અભાવ હોવાથી મારામાં વાસ્તવિક રીતે સમ્યગ્-દૃષ્ટિત્વનો અયોગ જ માનવામાં આવશે. કહ્યું પણ છે—

"तज्ज्ञानमेव न भवति, यस्मिन्नुदिते विभाति रागगणः ।
तमः कुतोऽस्ति शक्ति,-र्दिनकर किरणाग्रतः स्थातुम्" ॥१॥

તે જ્ઞાનથી જીવને લાભ જ શો હોઈ શકે કે જે હોવા છતાં પણ તે આત્મામા રાગાદિકોનો સદ્ભાવ ટકી રહે. સૂર્યના સદ્ભાવમાં અંધકારનો સદ્ભાવ કેવી રીતે હોઈ શકે ? ॥ ૧ ॥

અસંજ્ઞી-શ્રુતના ક્ષયોપશમથી-મિથ્યાશ્રુતના સદ્ભાવથી-જીવ અસંજ્ઞી મનાયો છે. તેનું તાત્પર્ય એ છે કે દૃષ્ટિવાદની અપેક્ષાએ સમ્યગ્દૃષ્ટિ જીવ સંજ્ઞી તથા મિથ્યાદૃષ્ટિ જીવ અસંજ્ઞી કહેવાયો છે.

उच्यते—इह सर्वत्र सूत्रे यत्र क्वचित् संज्ञी असंज्ञी वा परिगृह्यते, तत्र सर्वत्रापि प्रायः कालिक्युपदेशेन गृह्यते, न हेतूपदेशेन, नापि दृष्टिवादोपदेशेन। तस्मा-

---

शंका—सूत्रकारको सूत्रमें सर्वप्रथम हेतूपदेशसे संज्ञी जीवका कथन करना चाहिये था, कारण कि इस कथन की दृष्टि से अल्पमनोलब्धि संपन्न द्वीन्द्रियादिक जीव भी संज्ञीरूप से सिद्ध हो जाते हैं। यह बात सूत्रकार ने भी मानी है। हेतूपदेश की अपेक्षा जो जीव संज्ञी स्वीकार किया गया है उसको अविशुद्धतर माना गया है, कारण कि वह मनः-पर्याप्तियुक्त नहीं होता है। इसकी अपेक्षा कालिकी उपदेश से जो जीव संज्ञी कहा गया है वह विशुद्धतर माना गया है, कारण यह मनःपर्याप्ति युक्त बतलाया गया है, अतःसूत्रकार ने ऐसा क्रम न रखकर जो कालिकी उपदेश से संज्ञी जीव का प्रथम कथन किया है वह उत्क्रम है। ऐसा क्यों किया ?

उत्तर—शंका ठीक है परन्तु यहां सूत्रमें जो सूत्रकार ने ऐसा कथन किया है, उसका अभिप्राय यह है कि संज्ञी और असंज्ञी का कथन जहां भी हुआ है वहां इसी कालिकी उपदेश की अपेक्षा से हुआ है। हेतूपदेश तथा दृष्टिवाद के उपदेश से संज्ञी तथा असंज्ञी पनेका विचार नहीं हुआ है।

શંકા—સૂત્રકાર સૂત્રમાં સૌથી પહેલાં હેતૂપદેશથી સંજ્ઞી જીવનું કથન કરવું જોઈતું હતું, કારણ કે આ કથનની દૃષ્ટિએ અલ્પમનોલબ્ધિયુક્ત દ્વીન્દ્રિયાદિક જીવ પણ સંજ્ઞી રૂપે સિદ્ધ થઈ જાય છે. આ વાત સૂત્રકારે પણ માન્ય કરી છે. હેતૂપદેશની અપેક્ષાએ જે જીવ સંજ્ઞી તરીકે સ્વીકાર્યા છે તેમને અવિશુદ્ધતર માન્યા છે, કારણ કે તે મનઃપર્યાપ્તિયુક્ત હોતા નથી. તેના કરતાં કાલિકી ઉપદેશથી જે જીવ સંજ્ઞી કહેવાયા છે તે વિશુદ્ધતર માન્યુ છે, કારણ કે તે મનઃપર્યાપ્તિયુક્ત બતાવેલ છે, તેથી સૂત્રકારે આવો ક્રમ ન રાખતા જે કાલિકી ઉપદેશથી સંજ્ઞી જીવનું પ્રથમ કથન કર્યું તે ઉત્ક્રમ છે. એવું કેમ કર્યું ?

ઉત્તર—શંકા ઠીક છે, પણ અહીં સૂત્રમાં સૂત્રકારે જે એવું કથન કર્યું છે, તેનો ભાવાર્થ એ છે કે સંજ્ઞી અને અસંજ્ઞીનો ઉલ્લેખ જ્યાં થયો હોય ત્યાં એજ કાલિકી ઉપદેશની અપેક્ષાએ થયેલ છે. હેતૂપદેશ તથા દૃષ્ટિવાદના સંજ્ઞી તથા અસંજ્ઞીપણાનો વિચાર કરાયો નથી.

देतत्प्रतिबोधनार्थं प्रथमं कालिक्युपदेशेन संज्ञिनो ग्रहणम्। तदनन्तरमप्रधानत्वाद्धेतूपदेशेन संज्ञिनो ग्रहणं, ततः सर्वप्रधानत्वादन्ते दृष्टिवादोपदेशेन संज्ञिनो ग्रहणमिति।

तदेतत् संज्ञिश्रुतं वर्णितम्। असंज्ञिश्रुतमपि वर्णितमित्याशयेनाह-'से तं असण्णिसुयं०' इति। तदेतत् असंज्ञिश्रुतं वर्णितमित्यर्थः॥ सू० ३९॥

संप्रति सूत्रकारः सम्यक्श्रुतं वर्णयति—

मूलम्—से किं तं सम्मसुयं? सम्मसुयं जं इमं अरिहंतेहिं भगवंतेहिं उप्पण्णनाणदंसणधरेहिं तेलुक्कनिरिक्खियमहियपूइएहिं तीयपडुप्पण्णमणागयजाणएहिं सव्वण्णूहिं सव्वदरिसीहिं पणीयं दुवालसंगं गणिपिडगं; तं जहा—आयारो १, सूयगडे २, ठाणं ३, समवाओ ४, विवाहपण्णत्ती ५, नायाधम्मकहाओ ६, उवासगदसाओ ७, अंतगडदसाओ ८, अणुत्तरोववाइयदसाओ ९, पण्हावागरणाइं १०, विवागसुयं ११, दिट्ठिवाओ १२, इच्चेयं दुवालसंगं गणिपिडगं चोद्दसपुव्विस्स सम्मसुयं, अभिण्णदसपुव्विस सम्मसुयं, तेण परं भिण्णेसु भयणा। से त्तं सम्मसुयं॥सू०४०॥

अर्थात्—जहां पर भी जीव को संज्ञी तथा असंज्ञी माना गया है वह कालि की उपदेश से ही माना गया जानना चाहिये, हेतूपदेश तथा दृष्टिवाद की अपेक्षा से नहीं। इसी बात को समझाने के लिये सूत्रकार ने सूत्रमें सर्वप्रथम कालिकी उपदेश की अपेक्षा संज्ञी जीव का कथन किया है। पश्चात् अप्रधान होने से हेतूपदेश की अपेक्षा से और सर्वप्रधान होने से अन्तमें दृष्टिवाद की अपेक्षा से संज्ञी जीव का कथन किया है। इस प्रकार यहांतक संज्ञिश्रुत और उसके संबंध से असंज्ञिश्रुतका वर्णन हुआ॥ सू० ३९॥

એટલે કે જે કોઈ જગ્યાએ જીવને સંજ્ઞી તથા અસંજ્ઞી માનવામાં આવ્યો છે, તે કાલિકી ઉપદેશથી જ માનવામાં આવ્યો છે તેમ સમજવું. હેતૂપદેશ તથા દૃષ્ટિવાદની અપેક્ષાએ નહીં. એજ વાતને સમજાવવાને માટે સૂત્રકારે સૂત્રમાં સૌથી પહેલાં કાલિકી ઉપદેશની અપેક્ષાએ સંજ્ઞી જીવનું વર્ણન કર્યું છે. ત્યાર બાદ અપ્રધાન હોવાથી હેતૂપદેશની અપેક્ષાએ અને સર્વપ્રધાન હોવાથી અન્તે દૃષ્ટિવાદની અપેક્ષાએ સંજ્ઞી જીવનું કથન કર્યું છે. આ રીતે અહીં સુધી સંજ્ઞીશ્રુત અને તેના સંબંધથી અસંજ્ઞિશ્રુતનું વર્ણન થયું. ॥ સૂ ૩૯ ॥

छाया—अथ किं तत् सम्यक्श्रुतम्? सम्यक्श्रुतं-यदिदम् अर्हद्भिर्भगवद्भि-रुत्पन्नज्ञानदर्शनधरैस्त्रैलोक्यनिरीक्षितमहितपूजितैः, अतीतप्रत्युत्पन्नानागतज्ञायकैः सर्वज्ञैः सर्वदर्शिभिः प्रणीतं द्वादशाङ्गं गणिपिटकः, तद्यथा-आचारः१, सूत्रकृतम्२, स्थानम् ३, समवायः ४, विवाहप्रज्ञप्तिः ५, ज्ञाताधर्मकथाः ६, उपासकदशाः ७, अन्तकृद्दशाः ८, अनुत्तरोपपातिकदशाः ९, प्रश्नव्याकरणानि१०, विपाकश्रुतम्११, दृष्टिवादः १२, इत्येष द्वादशाङ्गगणिटकश्चतुर्दशपूर्विणः सम्यक्श्रुतम्। अभिन्नदश-पूर्विणः सम्यक्श्रुतम्। ततः परं भिन्नेषु भजना। तदेतत् सम्यक्श्रुतम्॥ सू०४०॥

टीका—शिष्यः पृच्छति—'से किं तं सम्मसुयं' इति। अथ किं तत् सम्यक्श्रुतमिति। सम्यक्श्रुतस्य किं स्वरूप? मिति प्रश्नः। उत्तरमाह—'सम्मसुयं०' इत्यादि। सम्यक्श्रुतं तदुच्यते, यदिदम् अर्हद्भिः=तीर्थंकरैः, भगवद्भिः-भगः=समग्रैश्वर्यादिः, उक्तश्च—

"ऐश्वर्यस्य समग्रस्य, रूपस्य यशसः श्रियः।
धर्मस्याथ प्रयत्नस्य, षण्णां भग इतीङ्गना"॥ १॥ इति।

भगो विद्यते येषां ते भगवन्तस्तैः=समग्रैश्वर्यसमग्ररूपादियुक्तैः, तथा उत्पन्न-ज्ञानदर्शनधरैः=उत्पन्ने ज्ञानदर्शने=केवलज्ञानकेवलदर्शने, उत्पन्नज्ञानदर्शने तयोर्धराः, उत्पन्नज्ञानदर्शनधरास्तैः, तथा त्रैलोक्यनिरीक्षितमहितपूजितैः-निरीक्षिताश्च महितश्च

अब सूत्रकार सम्यक्श्रुत का वर्णन करते हैं—'से किं तं सम्म-सुयं?' इत्यादि-

शिष्य पूछता है-हे भदन्त! पूर्ववर्णित सम्यक्श्रुत का क्या स्वरूप है?

उत्तर—पूर्ववर्णित सम्यक्श्रुत वह है जो भगवान्-समग्रऐश्वर्य १, रूप २, यश ३, लक्ष्मी ज्ञानादिलक्ष्मी ४, धर्म ५, और प्रयत्न ६, इन छहों अर्थों से संपन्न तथा अनंतज्ञान अनंतदर्शन शाली, तथा त्रैलोक्यद्वारा-भवनपति, व्यन्तर, नर, विद्याधर, ज्योतिष्क एवं वैमानिक देवों द्वारा-निरीक्षित-अर्थात्-मनोरथों से परिपूर्ण होने के निश्चय से समुत्पन्न

હવે સૂત્રકાર સમ્યક્શ્રુતનું વર્ણન કરે છે-से किं तं सम्मसुयं? ઇત્યાદિ

શિષ્ય પૂછે છે-હે ભદન્ત! પૂર્વવર્ણિત સમ્યક્શ્રુતનું શું સ્વરૂપ છે?

ઉત્તર—પૂર્વવર્ણિત સમ્યક્શ્રુત એ છે જે ભગવાન-(૧) સમગ્ર ઐશ્વર્ય, (૨) રૂપ (૩) યશ (૪) લક્ષ્મી (જ્ઞાનાદિ લબ્ધિ) (૫) ધર્મ અને (૬) પ્રયત્ન એ છ અર્થોથી યુક્ત તથા અનંત જ્ઞાન અનંત દર્શનશાલી, તથા ત્રૈલોક્ય દ્વારા-ભવનપતિ, વ્યન્તર, નર, વિદ્યાધર, જ્યોતિષ્ક અને વૈમાનિક દેવો દ્વારા-નિરીક્ષિત એટલે કે મનોરથોના પરિપૂર્ણ થવાના નિશ્ચયથી પ્રાપ્ત આનંદ-વિકસિત લોચ-

पूजिताश्चेति समासः। त्रलोक्येन निरीक्षितमहितपूजिताः-त्रैलोक्यनिरीक्षितमहित-पूजितास्तैरिति विग्रहः। त्रैलोक्यशब्देन भवनपति १-व्यन्तर-नर-विद्याधर-ज्योतिष्क २-वैमानिकानां ३ ग्रहणम्। तत्र निरीक्षिताः=मनोरथपरंपरासंपत्तिसंभवविनिश्चयसमुत्थसंमदविकाशिलोचनैर्भक्तिनम्रैरालोकिताः, महिताः=अनन्यसाधारणगुणोत्कीर्तनेन प्रशंसिताः, पूजिताः=प्रशस्तभावेन कायेन नमस्कृताः वीतरागाणां पुष्पादिभिः सावद्यपूजाया निषिद्धत्वात्। तथा-अतीतप्रत्युत्पन्नानागतज्ञायकैः-अतीतं=भूतकालिकं, प्रत्युत्पन्नं=वर्तमानकालिकम्, अनागतं-भविष्यत्कालिकं तेषां ज्ञायकाः=ज्ञातारस्तैः, तथा सर्वज्ञैः-सर्वं=समस्तं द्रव्यप्रदेशपर्यायरूपं वस्तु जानन्तीति सर्वज्ञास्तैः, तथा सर्वदर्शिभिः=सर्वप्राणिगणमात्मवत् पश्यन्तीति सर्वदर्शिनस्तैः, प्रणीतम्=अर्थकथनद्वारेण प्ररूपितम्, द्वादशाङ्गं=द्वादश अङ्गानि आचारादीनि यस्मिंस्तत् द्वादशाङ्गम्। गणिपिटकः=गणो गच्छः, गुणगणो वाऽस्यास्तीति गणी आचार्यस्तस्य पिटकः=मञ्जूषा, पिटक इव पिटकः-सर्वस्वमित्यर्थः। सर्वज्ञैः सर्वदर्शिभिस्तीर्थकरैर्यद् गणिपिटकरूपं द्वादशाङ्गं प्रणीतं तत् सम्यक्श्रुतमिति निष्कर्षः।

आनन्द-विकसित लोचनों के आलोकित, महित=अनन्य साधारण गुणोत्कीर्त्तन पूर्वक प्रशंसित पूजित=वितरागों की पुष्पादि सामग्री से की गयी सावद्यपूजा निषिद्ध होने के कारण प्रशस्त भाव युक्त शरीर से नमस्कृत, ऐसे अरिहंत प्रभु द्वारा अर्थकथन-पूर्वक प्ररूपित हुआ है। ये अर्हंत प्रभु अतीत-भूत, प्रत्युत्पन्न-वर्तमान, तथा अनागत-भविष्यत्काल संबंधी समस्त पदार्थों के ज्ञाता, तथा सर्वज्ञ-समस्त-द्रव्यों के तथा उनकी समस्त पर्यायों के वेत्ता, एवं सर्वदर्शी-त्रिलोक-वर्ती समस्त जीव राशि को अपने तुल्य देखनेवाले होते हैं। सर्वज्ञ एवं सर्वदर्शी तीर्थंकर प्रभुने जिसका अर्थतः प्ररूपण किया है वह द्वादशाङ्गगणिपिटक है।

નોથી આલોકિત, મહિત=અનન્ય સાધારણ ગુણોત્કીર્તન પૂર્વક પ્રશંસિત, પૂજિત=વીતરાગોની પુષ્પાદી સામગ્રીથી કરાતી સાવદ્ય પૂજા નિષિદ્ધ હોવાને કારણે પ્રશસ્ત ભાવયુકત શરીરથી નમસ્કૃત, એવા અરિહંત પ્રભુ દ્વારા અર્થ-કથન પ્રરૂપિત થયુ છે. તે અર્હંત પ્રભુ ભૂત, વર્તમાન તથા ભવિષ્યકાળ સંબંધી સઘળા પદાર્થોના જ્ઞાતા, તથા સર્વજ્ઞ-સમસ્ત દ્રવ્યોના પ્રદેશોના તથા તેમની પર્યાયોના જાણનારા, અને સર્વદર્શી-ત્રિલોકવર્તી સમસ્ત જીવરાશિને પોતાની જેમ દેખનારા હોય છે. સર્વજ્ઞ અને સર્વદર્શી તીર્થંકર પ્રભુએ જેનું અર્થપૂર્વક પ્રરૂપણ કર્યું છે તે દ્વાદશાંગગણિ પિટક છે. તેને ગણિપિટક તે કારણે કહ્યુ છે

कानि तानि द्वादशाङ्गानीति जिज्ञासायामाह—'तं जहा०' इत्यादि। तद् यथा—तानि द्वादशाङ्गानि यथा सन्ति तथा वर्णयामीत्यर्थः। आचारः=आचाराङ्गम् १। सूत्रकृतं=सूत्रकृताङ्गम् २। स्थानं=स्थानाङ्गम् ३। समवायः=समवायाङ्गम् ४। विवाहप्रज्ञप्तिः=भगवतीसूत्रम् ५। ज्ञातधर्मकथाः=ज्ञाताधर्मकथाऽङ्गम् ६। उपासकदशाः=उपासकदशाङ्गम् ७। अन्तकृद्दशाः=अन्तकृद्दशाङ्गम् ८। अनुत्तरोपपातिकदशाः=अनुत्तरोपपातिकदशाङ्गम् ९। प्रश्नव्याकरणानि=प्रश्नव्याकरणसूत्रम् १०। विपाकश्रुतं=विपाकश्रुतसूत्रम् ११। दृष्टिवादः १२। इत्येतद् द्वादशाङ्गं गणिपिटकरूपं चतुर्दशपूर्विणः सम्यक्श्रुतम्। यश्चतुर्दशपूर्वी, तस्य सकलमपि सामायिकादि-विन्दुसारपर्यन्तं श्रुतं नियमात् सम्यक्श्रुतम्। ततोऽधोमुखपरिहान्या नियमतः सर्वं सम्यक्श्रुतं तावद् वक्तव्यं यावदभिन्नदशपूर्विणः=संपूर्णदशपूर्वधरस्यापि सम्यक्श्रुतम्। संपूर्णदशपूर्वध-

---

गणिपिटक इसे इस लिये कहा गया है कि यह गणी—आचार्यका पिटक मंजूषाके समान माना गया है। वह इस प्रकार है—१ आचारांग, २ सूत्रकृताङ्ग, ३ स्थानाङ्ग, ४ समवायाङ्ग, ५ विवाहप्रज्ञप्ति—भगवतीसूत्र, ६ ज्ञाताधर्मकथाङ्ग, ७ उपासकदशाङ्ग, ८ अन्तकृतदशाङ्ग, ९ अनुत्तरोपपातिकदशाङ्ग, १० प्रश्नव्याकरणसूत्र, ११ विपाकश्रुत, १२ दृष्टिवाद। यह चतुर्दशपूर्वधारीका गणिपिटकरूप द्वादशांग सम्यक्श्रुत है। तात्पर्य यह है कि चौदह पूर्वपाठीका जितना भी सामायिक आदिसे ले कर बिन्दुसार पर्यन्त श्रुत है, वह समस्त सम्यक्श्रुत है। इस प्रकार पश्चानुपूर्वीसे कम से कम अभिन्नदशपूर्वधारीका—समस्त दशपूर्वपाठीकाश्रुत है वह भी सम्यक्श्रुत है, कारण ये सम्पूर्ण दशपूर्व नियमतः सम्यग्दृष्टि जीवके होते हैं—मिथ्यादृष्टिके नहीं। तात्पर्य कहनेका यह है कि पूरे दश

કે તે ગણી—આચાર્યનું પિટક—પેટીના સમાન ગણાય છે. તે આ પ્રમાણે છે—

(૧) આચારાંગ, (૨) સૂત્રકૃતાંગ (૩) સ્થાનાંગ (૪) સમવાયાંગ (૫) વિવાહપ્રજ્ઞપ્તિ ભગવતી સૂત્ર, (૬) જ્ઞાતા ધર્મકથાંગ (૭) ઉપાસક દશાંગ (૮) અન્તકૃત દશાંગ (૯) અનુત્તરોપપાતિક દશાંગ (૧૦) પ્રશ્ન વ્યાકરણ સૂત્ર (૧૧) વિપાકશ્રુત સૂત્ર (૧૨) દૃષ્ટિવાદ. આ ચૌદ પૂર્વધારિકા ગણિપિટક રૂપ દ્વાદશાંગ સમ્યક્શ્રુત છે. તેનું તાત્પર્ય એ છે કે ચૌદ પૂર્વપાઠીના સામાયિક આદિથી લઇને બિન્દુસાર સુધી જેટલાં શ્રુત છે તે સમ્યક્શ્રુત છે. આ પ્રકારે પશ્ચાનુપૂર્વીથી ઓછામાં ઓછા અભિન્ન દશ પૂર્વધારીના—સમસ્ત દશ પૂર્વપાઠીનું શ્રુત છે તે પણ સમ્યક્શ્રુત છે, કારણ કે એ સંપૂર્ણ દશપૂર્વ નિયમથી સમ્યગ્દૃષ્ટિ જીવને હોય છે—મિથ્યાદૃષ્ટિને નહીં. તેનું તાત્પર્ય એ છે કે પૂરા દશ પૂર્વશ્રુતને જેણે

रत्वादिकं हि नियमतः सम्यग्दृष्टेरेव, न तु मिथ्यादृष्टेः, तथा स्वाभाव्यात्। तथा हि—यथा अभव्यो ग्रन्थिदेशमुपागतोऽपि तथास्वभावत्वान्न ग्रन्थिभेदमाधातुं समर्थः, एवं मिथ्यादृष्टिरपि श्रुतमवगाहमानः प्रकर्षतोऽपि तावदवगाहते, यावत् किंचिन्न्यूनानि दशपूर्वाणि भवन्ति, परिपूर्णानि तु तानि नावगाहितुं शक्नोति, तथा-स्वभावत्वादिति ।

ततः परं=संपूर्णदशपूर्वधरत्वात् पश्चानुपूर्व्याः परं भिन्नेषु=न्यूनेषु दशसु पूर्वेषु, भजना=विकल्पना । कदाचित् सम्यक्श्रुतं, कदाचित् मिथ्याश्रुतमित्यर्थः ।

पूर्वश्रुतको जिसने पढ़ लिया है ऐसा जीव नियमसे सम्यग्दृष्टि ही होता है, मिथ्यादृष्टि नहीं, क्यों कि मिथ्यादृष्टि जीव सम्पूर्ण दश पूर्वों का अध्येता नहीं हो सकता है, यह नियत है । जिस प्रकार अभव्य जीव रागद्वेषरूपी ग्रन्थिदेशतक आकर भी उसे भेद नहीं सकता,-कारण उसका स्वभाव ही कुछ ऐसा होता है कि, जिस कारणसे उससे उस ग्रन्थिका भेद करना नहीं बन सकता है । रागद्वेषरूपी इस ग्रन्थिका भेद-विनाश तो जो सम्यग्दृष्टि जीव हुआ करते हैं। इसी तरह मिथ्यादृष्टि जीव भी श्रुतका अध्ययन करता हुआ भी उसे यहां तक पढ लेता है कि जिससे वह कुछ कम दशपूर्वका पाठी बन जाता है, परन्तु फिर भी उसका मिथ्यात्व नहीं जाता, अतः उस कारणसे वह सम्पूर्ण दश-पूर्वका पाठी नहीं बन सकता है । जो सम्पूर्ण दश पूर्वके पाठी नहीं होते हैं उनमें सम्यक्श्रुतकी भजना है अर्थात् उनमें कभी सम्यक्श्रुत और कभी मिथ्याश्रुत होता है । इसका तात्पर्य यह है कि जिन सम्यग्दृष्टि

વાંચી લીધા છે એવો જીવ નિયમથી સમ્યગ્દૃષ્ટિ જ હોય છે, મિથ્યાદૃષ્ટિ નહીં. કારણ કે મિથ્યાદૃષ્ટિ જીવ સંપૂર્ણ દશપૂર્વનો અભ્યાસી થઈ શકતો નથી, એ નિયત છે. જે પ્રકારે અભવ્યજીવ રાગદ્વેષરૂપી ગ્રન્થિદેશ સુધી આવીને પણ તેને ભેદી શકતો નથી, કારણ કે તેનો સ્વભાવજ કંઈક એવો હોય છે કે જે કારણે તેનાથી તે ગ્રન્થિને ભેદવાનું બની શકતું નથી. રાગદ્વેષરૂપી આ ગ્રંથિનો નાશ તો જે જીવ સમ્યગ્દૃષ્ટિ હોય છે તેઓજ કરે છે. આ રીતે મિથ્યાદૃષ્ટિ જીવ પણ શ્રુતનું અધ્યયન કરવા છતાં પણ તેનો ત્યાં સુધી અભ્યાસ કરી લે છે કે જેથી તે દશપૂર્વના પાઠી કરતાં કંઈક ન્યૂન થઈ શકે છે, પણ તે છતાં તેનું મિથ્યાત્વ જતું નથી, તેથી તે કારણે તે સંપૂર્ણ દશપૂર્વનો પાઠી બની શકતો નથી. જે સંપૂર્ણ દશપૂર્વના પાઠી હોતા નથી, તેમનામાં સમ્યક્શ્રુતની ભજના છે. એટલે કે તેમનામાં કયારેક સમ્યક્શ્રુત અને કયારેક મિથ્યાશ્રુત હોય છે.

अयं भावः—सम्यग्दृष्टेः प्रशमादिगुणगणोपेतस्य सम्यक्श्रुतं भवति, यथावस्थितार्थतया तस्य सम्यक् परिणमनात् । मिथ्यादृष्टेस्तु मिथ्याश्रुतं भवति, विपरीतार्थतया तस्य परिणमनात् । तदेतत् सम्यक्श्रुतम् ।

अथ 'भगवंतेहिं०' इत्यादि विशेषणानां सार्थक्यमुच्यते—अर्हद्भिरित्युक्त्यैव भगवद्रूपार्थस्य बोधः संभवति, पुनः 'भगवद्भि'रिति विशेषणोपादानं किमर्थमिति

जीवों में प्रशम आदि गुण मौजूद हों वे यद्यपि सम्पूर्ण दशपूर्वके पाठी न भी हों तो भी उनका जितना भी श्रुत है वह सम्यक् श्रुत है तथा जिन जीवों में मिथ्यात्व भरा हुआ है ऐसे जो मिथ्यादृष्टि जीव हैं उनका जितना भी श्रुत है वह सब मिथ्याश्रुत है। सम्यक्दृष्टि जीव के श्रुत को सम्यक् श्रुत कहने का कारण यह है कि वह पदार्थ के स्वरूप को यथार्थरूप से जानता है। तथा मिथ्यादृष्टि जीव पदार्थ के स्वरूप को मिथ्यात्व के प्रभाव से यथार्थरूप से नहीं जानता, अतः किञ्चित् न्यून दशपूर्व के पाठी दो जीवों में एक का श्रुत सम्यक्श्रुत, तथा दूसरे का श्रुत मिथ्याश्रुत कहा गया है। इसीलिये किञ्चित् न्यून दशपूर्वपाठी जीवों में सम्यक्श्रुत की भजना बतलाई गई है। इस तरह यहां तक सम्यक्श्रुत का वर्णन हुआ ॥

अब टीकाकार सूत्र में रहे हुए "भगवंतेहिं०" आदि विशेषणपदों की सार्थकता प्रकट करते हैं—

તેનું તાત્પર્ય એ છે કે જે સમ્યગ્દૃષ્ટિ જીવોમાં પ્રશમ આદિ ગુણ મોજૂદ હોય તેઓ કદાચ સંપૂર્ણ દશપૂર્વના પાઠી ન હોય તો પણ તેમનું જેટલુ પણ શ્રુત છે તે બધું સમ્યક્શ્રુત છે. તથા જે જીવોમાં મિથ્યાત્વ ભરેલ છે એવા જે મિથ્યાદૃષ્ટિ જીવ છે તેમનું જેટલુ પણ શ્રુત છે તે બધું મિથ્યાશ્રુત છે. સમ્યક્દૃષ્ટિ જીવના શ્રુતને સમ્યક્શ્રુત કહેવાનું કારણ એ છે કે તે પદાર્થનાં સ્વરૂપને યથાર્થ રૂપે જાણે છે. તથા મિથ્યાદૃષ્ટિ જીવ પદાર્થનાં સ્વરૂપને મિથ્યાત્વના પ્રભાવે યથાર્થરૂપે જાણતો નથી, તેથી દશપૂર્વ કરતાં થોડા ન્યૂનનાં પાઠી બે જીવોમાં એકનું શ્રુત સમ્યક્શ્રુત, તથા બીજાનું શ્રુત મિથ્યાશ્રુત કહ્યું છે. તેથી દશપૂર્વ કરતાં કંઈક ન્યૂનના પાઠી જીવોમાં સમ્યક્શ્રુતની ભજના દર્શાવવામાં આવી છે. આ રીતે અહીં સુધી સમ્યક્શ્રુતનું વર્ણન થયું. હવે સૂત્રકાર સૂત્રમાં આવેલ "ભગવંતેહિં" આદિ વિશેષણપદોની સાર્થકતા પ્રગટ કરે છે—

चेत्, उच्यते-शुद्धद्रव्यास्तिकनयमतानुसारिभिः कैश्चिदनादिसिद्धा मुक्ता अर्हत्त्वेन स्वीक्रियन्ते। उक्तश्च तैः—

"ज्ञानमप्रतिघं यस्य, वैराग्यं च जगत्पतेः।
ऐश्वर्यं चैव धर्मश्च, सहसिद्धं चतुष्टयम्" ॥ १ ॥

इत्यादि। तेषामिह ग्रहणं नास्तीति बोधयितुं भगवद्भिरिति विशेषणम्।

शंका—सूत्र में जब "अर्हद्भिः" ऐसा पद सूत्रकार ने रखा है तब इस एक पद से ही भगवद्रूप अर्थ का बोध हो जाता है तो फिर "भगवद्भिः" इस विशेषण का स्वतन्त्ररूप से सूत्र में ग्रहण क्यों किया गया है?।

उत्तर—कितनेक ऐसे भी प्राणी हैं जो शुद्धद्रव्यास्तिकनय की मान्यता को लेकर ऐसा कहते हैं कि मुक्त जीव अनादि काल से सिद्ध हैं और वे अर्हंत पद वाच्य माने गये हैं। जैसे—

"ज्ञानमप्रतिघं यस्य, वैराग्यं च जगत्पतेः।
ऐश्वर्यंचैव धर्मश्च, सह सिद्धं चतुष्टयम्" ॥ १ ॥

अप्रतिघ-अनंत-ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य एवं धर्म ये चार बातें जगत्पति प्रभु में स्वाभाविकरूप से सिद्ध हैं सो ऐसे अनादिसिद्ध परमात्मा का यहां "भगवंतेहिं" पद से ग्रहण नहीं हुआ है, इस बात को प्रकट करने के लिये सूत्रकार ने सूत्र में "भगवंतेहिं" यह पद रखा है।

શંકા—સૂત્રમાં જો "अर्हद्भिः" એવું પદ સૂત્રકારે મૂક્યું છે, તો એ એક પદથી જ ભાગવદ્રૂપ અર્થનો બોધ થઇ જાય છે. તો પછી "भगवद्भिः" આ વિશેષણને સ્વતંત્રરૂપે સૂત્રમાં કેમ ગ્રહણ કર્યું છે?

ઉત્તર—કેટલાક એવાં પ્રાણીઓ છે જે શુદ્ધ દ્રવ્યાસ્તિક નયની માન્યતાને લીધે એવું કહે છે કે મુક્તજીવ આનાદિ કાળથી સિદ્ધ છે અને તેમને અર્હંત પદવાચ્ય માન્ય છે. જેમ કે—

"ज्ञानमप्रतिघं, यस्य, वैराग्यं च जगत्पतेः॥
ऐश्वर्यं चैव, धर्मश्च सह सिद्धं चतुष्टयम्" ॥ १ ॥

અપ્રતિઘ-અનંત-જ્ઞાન, વૈરાગ્ય, ઐશ્વર્ય અને ધર્મ એ ચાર વાત જગત્પતિ પ્રભુમાં સ્વાભાવિક રીતે સિદ્ધ છે, તો એવા અનાદિ સિદ્ધ પરમાત્માનું અહીં "भगवंतेहिं" પદથી ગ્રહણ થયું નથી, એ વાતને પ્રગટ કરવા માટે સૂત્રકારે સૂત્રમાં "भगवंतेहिं" એ પદ મૂક્યું છે. "भगवंत" પદથી એવા પર-

अनादिसिद्धा अर्हन्तो हि रूपाभावादेव समग्ररूपवन्तो न भवन्ति, अशरीरित्वात्, शरीरस्य च रागादिकार्यत्वात्, तेषां च रागाद्यभावादिति तेषां भगवत्त्वं नोपपद्यते।

ननु परसम्मता अपि सिद्धाः स्वेच्छया शरीरं निर्मातुं शक्नुवन्तीति तेऽपि भगवन्तःस्युरतो विशेषणान्तरमाह—'उप्पण्णनाणदंसणधरेहिं'–उत्पन्नज्ञान-दर्शनधरै 'रिति। तेऽनादिसिद्धा ज्ञानवैराग्यादिचतुष्टयस्य नित्यसिद्धत्वाद् उत्पन्नज्ञानदर्शनधरा न भवन्तीति नेह तेषां ग्रहणम्।

"भगवंत" पद से ऐसे परमात्मा का पार्थक्य इसलिये हो जाता है कि अनादिसिद्ध अर्हंत में शरीर के अभाव से समग्ररूपशालिता नहीं आती है, कारण जो अनादिसिद्ध अर्हंत होंगे उनमें रागादिक का कार्यरूप शरीर का सद्भाव कैसे बन सकता है। यदि शरीर उनमें माना जाय तो उनमें रागादिक का अभाव एवं अनादिसिद्धता नहीं मानी जा सकती, परन्तु ऐसी मान्यता तो है नहीं, वहां तो रागादिक का अभाव माना ही गया है, अतः यह निश्चय है कि अनादिसिद्ध अर्हंत, भगवन्त नहीं बन सकते हैं, किन्तु जो सादि सिद्ध अर्हंत होंगे वे ही भगवंत बन सकेंगे, इस बात को प्रकट करने के लिये सूत्रकार ने सूत्र में "भगवंतेहिं" यह पद स्वतंत्ररूप से निवेशित किया। १।

शंका—जो अनादिसिद्ध अर्हंत परमात्मा दूसरों ने माने हैं वे भगवंत भी बन सकते हैं, कारण उनमें जब शरीर निर्माण करने की इच्छा होती हैं तब वे शरीर का भी निर्माण कर लिया करते हैं, फिर उनमें भग-

માત્માનું પાર્થક્ય એ કારણે થઈ જાય છે કે અનાદિ સિદ્ધ અર્હંતમાં શરીરને અભાવે સમગ્ર રૂપશાલીતા આવતી નથી, કારણ કે જે અનાદિ સિદ્ધ અર્હંત હશે તેમનામાં રાગાદિકનાં કાર્યરૂપ શરીર કેવી રીતે હોઈ શકે! જો તેઓને શરીર હોય છે એમ માનવામાં આવે તો તેઓમાં રાગાદિકનો અભાવ અને અનાદિ સિદ્ધતા માની શકાય નહીં, પણ એવી માન્યતા તો નથી, ત્યાં તો રાગાદિકનો અભાવ માનવામાં આવ્યો જ છે, તેથી તે નક્કી થાય છે કે અનાદિ સિદ્ધ અર્હંત ભગવન્ત બની શકતા નથી, પણ જે સાદિ સિદ્ધ અર્હંત હશે તેઓ જ ભગવંત બની શકશે, એ વાતને પ્રગટ કરવાને માટે સૂત્રકારે સૂત્રમાં "भगवंतेहिं" આ પદ સ્વતંત્ર રીતે મૂક્યું છે ।।૧।।

શંકા—જે અનાદિસિદ્ધ અર્હંત પરમાત્મા બીજા લોકોએ માન્યા છે તેઓ ભગવંત પણ બની શકે છે, કારણ કે તેમને જ્યારે શરીર નિર્માણ કરવાની ઈચ્છા થાય છે; ત્યારે તેઓ શરીરનું નિર્માણ કરી લે છે, છતાં આપ તેમનામાં ભગવ-

ननु तर्हि 'उत्पन्नज्ञानदर्शनधरैः' इत्येतावन्मात्रं विशेषणमस्तु अलं 'भगवद्भिः'

वत्ता का अभाव आप कैसे कह सकते हैं। इस प्रकार की दूसरी शंका की निवृत्ति के लिये सूत्रकारने सूत्र में "उप्पणनाण दंसणधरे हिं" यह पद रखा है। इस पद द्वारा सूत्रकार यह प्रमाणित करते हैं कि जो अनादिसिद्ध माने गये हैं वे उत्पन्न हुए ज्ञान एवं दर्शन को धारण करने वाले नहीं होते हैं, किन्तु वे तो नित्यसिद्ध ज्ञान वैराग्य आदि के अधिपति होते हैं, अतः यहां ऐसे ही अर्हंतप्रभु का ग्रहण किया गया है,जो भगवंत हों तथा उत्पन्न हुए ज्ञान दर्शन को धारण करनेवाल हों। तात्पर्य इसका इस प्रकार है कि पर संमत अनादिसिद्ध परमात्मा भले ही अपने शरीर का स्वेच्छा से निर्माण करलें एतावता उनमें भगवत्ता भले ही आजावे परन्तु इतने मात्र से उनमें अर्हंतता नहीं आसकती है, किन्तु अर्हंतता आनेके लिये सूत्रकार की दृष्टि में उत्पन्न हुए ज्ञान और दर्शन को धारणकरनापना भी आवश्यकीय है। अनादिसिद्धों में यह बात बनती नहीं है, अतः उनमें अर्हंतता घटित नहीं होती। २।

शंका—जब ऐसी बात है तो फिर "अर्हंतता" प्रकट करने के लिये "उत्पन्न ज्ञानदर्शनधरैः" यही एक पद काफी है। व्यर्थ में "भगवद्भिः" इस पद का न्यास क्यों किया गया है?"

त्तानो અભાવ કેવી રીતે કહી શકો છો? આ પ્રકારની બીજી શંકાની નિવૃત્તિને માટે સૂત્રકારે સૂત્રમાં "उप्पणनाणदंसणंधरे हिं" આ પદ મૂક્યું છે. આ પદ દ્વારા સૂત્રકાર એ સાબિત કરે છે કે જે અનાદિ સિદ્ધ માનાય છે. તેઓ ઉત્પન્ન થયેલ જ્ઞાન અને દર્શનને ધારણ કરનાર હોતા નથી, પણ તેઓ તો નિત્યસિદ્ધ જ્ઞાન વૈરાગ્ય આદિના અધિપતિ હોય છે, તેથી અહીં એવા જ અહંત પ્રભુ ગ્રહણ કરવામાં આવ્યા છે કે જે ભગવંત હોય અને ઉત્પન્ન થયેલ જ્ઞાનદર્શનને ધારણ કરનાર હોય તેનું તાત્પર્ય એવું છે કે પર સંમત અનાદિ સિદ્ધ પરમાત્મા ભલે પોતાનાં શરીરનું સ્વેચ્છાથી નિર્માણ કરી લે, એટલા પ્રમાણમાં તેમનામાં ભલે ભગવત્તા આવી જાય પણ માત્ર એટલાથી જ તેમનામાં અહંતતા આવી શકતી નથી, પણ અહંતતા આવવાને માટે સૂત્રકારની દૃષ્ટિએ ઉત્પન્ન થયેલ જ્ઞાન અને દર્શનને ધારણ કરવું તે પણ આવશ્યક છે. અનાદિ સિદ્ધોમાં આ વાત બનતી નથી, એટલા માટે એમનામાં અહંતતા ઘટતી નથી ॥૨॥

શંકા—જો એવી વાત છે તો પછી "अर्हंतता" પ્રગટ કરવાને માટે "उत्पन्न ज्ञान दर्शनधरैः" એજ એક પદ પુરતું છે. "भगवद्भि" એ પદનો ઉપયોગ શા માટે કર્યો છે?

इति विशेषणोपन्यासेन ? इति चेत्, उच्यते—सामान्यकेवलिनोऽपि हि—उत्पन्नज्ञान-दर्शनधरा भवन्ति किन्तु तेषां समग्रैश्वर्यरूपाद्यभावात्ते तीर्थंकरवद् भगवन्तो न भवन्ति, तस्मात् समग्रैश्वर्यादिगुणप्रतिबोधनार्थं 'भगवद्भिः' इति विशेषणोपादानमावश्यकमिति।

उक्तविशेषणैः शुद्धद्रव्यास्तिकनयमतानुसारिपरिकल्पितानामनादिसिद्धानां व्यवच्छेदः कृतः। संप्रति पर्यायास्तिकनयमतानुसारिपरिकल्पिताः ये मुक्तास्तेऽप्युत्पन्नज्ञानदर्शनधरा भवन्तीत्यतस्तद्व्यावृत्त्यर्थमाह—'तेलुक्कनिरिक्खियमहिय-

उत्तर—अर्हतता आने के लिये उत्पन्न हुए ज्ञान और दर्शन को धारण करना मात्र कारण नहीं माना गया है, किन्तु साथ में भगवत्ता भी कारण है। यही बात प्रकट करने के लिये सूत्रकार ने सूत्र में दोनों पद स्थापित किये हैं। उत्पन्नज्ञानदर्शनधरत्व सामान्यकेवलियों में भी होता है, परन्तु वहां समग्ररूपादिमत्ता नहीं होती, इसलिये वे तीर्थंकर प्रभु की तरह भगवान् नहीं होते हैं, अतः अर्हंत बनने में समग्र ऐश्वर्यादिगुण चाहिये यह बात "भगवद्भिः" इस पद से सूत्रकार ने ख्यापित की है। ३।

इस तरह इन विशेषणों द्वारा शुद्ध द्रव्यार्थिकनय की मान्यता को लेकर जो अनादिसिद्ध मुक्त मानने वाले हैं, उनका व्यवच्छेद हो जाता है। अब पर्यायार्थिक नयकी मान्यता को लेकर के जिन व्यक्तियों ने सादि सिद्ध मुक्त माने हैं वे यद्यपि उत्पन्न दर्शन ज्ञानधारी होते हैं परन्तु उनमें अर्हतता नहीं आती है, कारण अर्हतता आनेमें "तेल्लुक्क निरिक्खिय-महिय पूइएहिं" कारण माना गया है। तात्पर्य इसका इस प्रकार–जो

ઉત્તર—અર્હંતતા આવવાને માટે ફક્ત ઉત્પન્નજ્ઞાન, અને દર્શનને ધારણ કરવું એજ કારણ મનાયું નથી, પણ સાથે ભગવત્તા પણ કારણ છે. એજ વાત પ્રગટ કરવાને માટે સૂત્રકારે સૂત્રમાં બન્ને પદ મૂકયાં છે. ઉત્પન્ન જ્ઞાન દર્શન ધારકતા સામાન્ય કેવળીઓમાં પણ હોય છે. પણ ત્યાં સમગ્ર રૂપાદિમત્તા હોતી નથી તેથી તેઓ તીર્થંકર પ્રભુની જેમ ભગવાન થતા નથી, તેથી અર્હંત બનવામાં સમગ્ર ઐશ્વર્યાદિ ગુણ જોઈએ એ વાત "भगवद्भिः" આ પદથી સૂત્રકારે સ્થાપિત કરી છે. (૩).

આ રીતે એ વિશેષણો દ્વારા શુદ્ધ દ્રવ્યાર્થિક નયની માન્યતાને લીધે જે અનાદિ સિદ્ધ મુકત માનનારા છે, તેમનું ખંડન થઈ જાય છે. હવે પર્યાયાર્થિક નયની માન્મતાને લીધે જે વ્યક્તિઓએ સાદિ સિદ્ધ મુકત માન્યા છે તેઓ જો કે ઉત્પન્ન દર્શન જ્ઞાનધારી હોય છે પણ તેમનામાં અર્હંતતા આવતી નથી, કારણ કે અર્હંતતા આવવામાં "तेलुक्क निरिक्खिय महियपुइएहिं" કારણ મનાયું

पूइएहिं ' इति। त्रैलोक्यनिरीक्षितमहितपूजितैरिति। न च ते तथा भवन्तीति।

ननु सौगतमतेऽपि पर्यायास्तिकनयमतानुसारिभिः सुगतास्त्रैलोक्यनिरीक्षितमहितपूजिता एव स्वीक्रियन्ते, ततश्च तत्तुल्यतापत्तिः स्यादत आह—'तीयपडुप्पण्णमणागयजाणएहिं ' इति। अतीतप्रत्युत्पन्नानागतज्ञायकैरिति। सुगताः खलुअतीतप्रत्युत्पन्ना नागतज्ञा न संभवन्ति, तेषामेकान्तक्षणिकत्वाभ्युपगमेन सर्वथाऽतीतानागतयोरसत्त्वात्, असतां च ग्रहणाऽसम्भवात्। ननु व्यवहारनयमतानुसारिभिस्तु

जीव सादिसिद्ध होते हैं उनमें अनंतज्ञान और अनन्तदर्शन उत्पन्न हो जाता है परन्तु ऐसे सब जीव अर्हंत नहीं होते हैं। अर्हंत प्रभु ही त्रैलोक्य द्वारा निरीक्षित, महित एवं पूजित हुआ करते हैं, कारण इनके तीर्थंकर प्रकृति का उदय रहता है, अन्य के नहीं। ४।

शंका—यदि अर्हंत बननेमें त्रैलोक्य निरीक्षित, महित एवं पूजितपना कारण हो तो बौद्धसिद्धान्त द्वारा कि जो पर्यायास्तिक नय मतानुसारी है कल्पित बुद्ध भी अर्हंत माने जावेंगे कारण वे भी त्रैलोक्य द्वारा निरीक्षित, महित एवं पूजित माने गये हैं, इस तरह उभयत्रतुल्यता की आपत्ति आती है।

उत्तर—इस तरह तुल्यता की आपत्ति नहीं आसकती है, कारण अर्हंत बननेमें जिस तरह त्रैलोक्य निरीक्षित महित पूजितता कारण है उसी प्रकार "तीय पडुप्पण्ण मणागय जाणएहिं" अतीत प्रत्युत्पन्न एवं अनागत विषयोंका ज्ञापकपना भी कारण है। बुद्ध भले ही उनकेमानने वालों द्वारा

છે. તેનું તાત્પર્ય આ પ્રમાણે છે-જે જીવ સાદિસિદ્ધ હોય છે, તેમનામાં અનંત જ્ઞાન અને અનંત દર્શન ઉત્પન્ન થઈ જાય છે, પણ એવા બધા જીવ અર્હંત થતા નથી. અર્હંત પ્રભુ જ ત્રૈલોકય દ્વારા નિરીક્ષિત, મહિત અને પૂજિત થાય છે, કારણ કે તેમની તીર્થંકર પ્રકૃતિનો ઉદય રહે છે. અન્યનો નહીં. (૪).

શંકા—જો અર્હંત બનવામાં ત્રૈલોકય નિરીક્ષિત, મહિત અને પૂજિતપણું કારણ હોય તો બૌદ્ધ સિદ્ધાંત દ્વારા કે જે પર્યાયાસ્તિક નય મતાનુસારી છે, કલ્પિત બુદ્ધ પણ અર્હંત મનાશે કારણ કે તેઓ પણ ત્રલોકય દ્વારા નિરીક્ષિત, મહિત અને પૂજિત મનાયા છે, આ રીતે ઉભયત્ર તુલ્યતાની મુશ્કેલી આવે છે.

ઉત્તર—આ રીતે તુલ્યતાની મુશ્કેલી આવી શકતી નથી, કારણ કે અર્હંત બનવામાં જે રીતે ત્રૈલોકય નિરીક્ષિત, મહિત પૂજિતતા કારણરૂપ છે એજ પ્રકારે "तीय पडुप्पण्ण मणागय जाणएहिं" ભૂત, વર્તમાન અને ભવિષ્યના વિષયોની જાણકારી પણ કારણરૂપ છે. બુદ્ધને ભલે તેમને માનનારાઓએ ત્રૈલોકય નિરી-

कैश्चिदिष्यन्तेऽतीतानागतवर्तमानार्थज्ञायका ऋषयः। उक्तश्च—

" ऋषयः संयतात्मानः फलमूलाऽनिलाशनाः।
तपसैव प्रपश्यन्ति, त्रैलोक्यं सचराचरम्॥ १॥
अतीताऽनागतान् भावान्, वर्तमानांश्च भारत!।
ज्ञानालोकेन पश्यन्ति, त्यक्तसंगा जितेन्द्रियाः"॥ २॥ इत्यादि।

त्रैलोक्य निरीक्षित महित एवं पूजित स्वीकृत किये गये हों, परन्तु उनमें अतीत, प्रत्युत्पन्न एवं अनागत विषयों की ज्ञापकता नहीं है, कारण उनके सिद्धान्तानुसार अतीत और अनागतता सिद्ध ही नहीं होती। यह सिद्धान्त एकान्ततः क्षणिक वादी है, अतः इसमें एकान्त वर्तमान क्षण का ही अस्तित्व स्वीकार किया गया है। इस तरह अतीत और अनागत क्षणों का असत्त्व होने से उनका ग्रहण उनके द्वारा नहीं हो सकता है। इस प्रकार तुल्यता की आपत्ति हट जाती है। ५।

शंका—व्यवहारनय की मान्यता को माननेवाले कितनेक व्यक्ति इस बात को स्वीकार करते हैं कि ऋषिजन अतीत, अनागत एवं प्रत्युत्पन्न विषयों के ज्ञाता होते हैं। कहा भी है—

" ऋषयः संयतात्मानः, फल मूला निलाशनाः।
तपसैव प्रपश्यन्ति, त्रैलोक्यं सचराचरम्॥ १॥
अतीतानागतान् भावा, वर्त्तमानांश्च भारत!।
ज्ञानालोकेन पश्यन्ति, त्यक्तसंङ्गा जितेन्द्रियाः"॥ २॥

क्षित महित અને પૂજિત તરીકે સ્વીકાર્યા હોય, પણ તેમનામાં ભૂત, વર્તમાન અને ભવિષ્યના વિષયોની જાણકારી નથી. કારણ કે તેમના સિદ્ધાંત પ્રમાણે ભૂત અને ભવિષ્યતા સિદ્ધજ નથી થતી. એ સિદ્ધાંત એકાન્તતઃ ક્ષણિકવાદી છે, તેથી તેમાં એકાન્ત વર્તમાન ક્ષણનું જ અસ્તિત્વ સ્વીકાર્યું છે. આ રીતે અતીત (ભૂત) અને અનાગત (ભવિષ્ય) ક્ષણોનું અસત્ત્વ હોવાથી તેમનું ગ્રહણ તેમના દ્વારા થઇ શકતું નથી. આ રીતે તુલ્યતાની મુશ્કેલી દૂર થાય છે. (૫).

શંકા—વ્યવહાર નયની માન્યતાને માનનારી કેટલીક વ્યક્તિ એ વાતનો સ્વીકાર કરે છે કે ઋષિજન ભૂત, ભવિષ્ય અને વર્તમાન વિષયોના જાણકાર હોય છે. કહ્યું પણ છે—

" ऋषयः संयतात्मानः फलमूला निलाशनाः।
तपसैव प्रपश्यन्ति, त्रैलोक्यं सचराचरम्॥ १॥
" अतीता नागतान् भावान्, वर्तमानांश्च भारत?
ज्ञानालोकेन पश्यन्ति, त्यक्तसङ्गा जितेन्द्रियाः"॥ २॥

अतस्तत्तुल्यतापत्तिः स्यादत आह-'सव्वण्णूहिं सव्वदरिसीहिं'-सर्वज्ञैः सर्वदर्शिभिरिति। ते तु ऋषयो न भवन्ति सर्वज्ञाः-सर्वद्रव्यप्रदेशपर्यायज्ञानाभावात्, तथा ते सर्वदर्शिनोऽपि न भवन्ति, फलमूलानिलाद्याहारकरणेन सर्वप्राणिष्वात्मतुल्यदृष्ट्यभावात्।

तदेवं द्रव्यास्तिकपर्यायास्तिकनयमतानुसारिपरिकल्पितमुक्तेभ्यो भिन्नास्तीर्थकरा इत्युक्तम् ॥ सू० ४० ॥

यदि अतीत, अनागत एवं प्रत्युत्पन्नविषयों का जानना अर्हंत होने में कारण माना जाय तो व्यवहारनय की मान्यता के अनुसार चलने वाले कितनेक व्यक्तियों द्वारा कल्पित ऋषियों में भी अर्हंतता आ जावेगी। इस तरह इनके साथ तुल्यता की आपत्ति खड़ी ही रहती?।

उत्तर—इस तरह से भी तुल्यता की आपत्ति नहीं आती है, कारण सूत्र में इस बात की निवृत्ति के लिये "सव्वण्णूहिं सव्वदरिसीहिं" ये पद रक्खे गये हैं। ये पद यह स्पष्ट करते हैं कि तीर्थंकर अर्हंत ही सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हैं, ये ऋषिजन नहीं। इनमें सर्वज्ञता इसलिये नहीं आती है कि ये समस्त जीवादिक द्रव्यों के प्रदेश और उनकी पर्यायों के ज्ञाता नहीं होते हैं। तथा सर्वदर्शित्व इसलिये नहीं आता है कि ये फलमूल आदि का आहार करते हैं। फलमूल आदि के आहार करने वालों में समस्त प्राणियों के साथ आत्मतुल्यता की दृष्टि नहीं रहती हैं। इस तरह द्रव्यार्थिक एवं पर्यायार्थिकनय की मान्यता के अनुसार परिकल्पित

જો ભૂત, ભવિષ્ય અને વર્તમાન વિષયોને જાણવા તે અર્હંત થવામાં કારણરૂપ મનાય તો વ્યવહાર નયની માન્યતા પ્રમાણે ચાલનાર કેટલીક વ્યક્તિઓ દ્વારા કલ્પિત ઋષિઓમાં પણ અર્હંતતા આવી જશે. આ રીતે તેમની સાથે તુલ્યતાની મુશ્કેલી આવી જ પડે છે?

ઉત્તર—આ રીતે પણ તુલ્યતાની મુશ્કેલી આવતી નથી કારણ કે સૂત્રમાં તે વાતના નિરાકરણ માટે "सव्व ण्णूहिं सव्व दरिसीहिं" એવા પદો મૂકયાં છે. એ પદો એ સ્પષ્ટ કરે છે કે તીર્થંકર અર્હંત જ સર્વજ્ઞ અને સર્વદર્શી છે, એ ઋષિજન નથી. તેમનામાં સર્વજ્ઞતા એ કારણે આવતી નથી કે તેઓ સમસ્ત જીવાદિક દ્રવ્યોના પ્રદેશ અને તેમની પર્યાયોના જાણકાર હોતા નથી. તથા સર્વદર્શિત્વ તે કારણે આવતુ નથી કે તેઓ ફળમૂળ આદિનો આહાર કરે છે. ફલમૂળ આદિનો આહાર કરનારમાં સમસ્ત પ્રાણીઓની સાથે આત્મતુલ્યતાની દૃષ્ટિ રહેતી નથી. આ રીતે દ્રવ્યાર્થિક અને પર્યાયાર્થિક નયની માન્યતા પ્રમાણે

अथ मिथ्याश्रुतं वर्णयति—

मूलम्—से किं तं मिच्छासुयं ?। मिच्छासुयं जं इमं अण्णाणिएहिं मिच्छादिट्ठिएहिं सच्छंदबुद्धिमइविगप्पियं, तं जहा—भारहं १, रामायणं २, भीमासुरुक्कं ३, कोडिल्लयं ४, सगडभद्दियाओ ५ खोड—(घोडग) मुहं ६, कप्पासियं ७, नागसुहुमं ८, कणगसत्तरी ९, वइसेसियं १०, बुद्धवयणं ११, तेरासियं १२, काविलियं १३, लोगाययं १४, सट्ठितंतं १५, माढरं १६, पुराणं १७, वागरणं १८, भागवयं १९, पायंजली २०, पुस्सदेवयं २१, लेहं २२, गणियं २३, सउणरुयं २४, नाडयाइं २५, अहवा बावत्तरिकलाओ, चत्तारि य वेया संगोवंगा। एयाइं मिच्छादिट्ठिस्स मिच्छत्तपरिग्गहियाइं मिच्छासुयं। एयाइं चेव सम्मदिट्ठिस्स सम्मत्तपरिग्गहियाइं सम्मसुयं। अहवा—मिच्छदिट्ठिस्स वि एयाइं चेव सम्मसुयं, कम्हा? सम्मत्तहेउत्तणओ, जम्हा ते मिच्छदिट्ठिया तेहिं चेव समएहिं चोइया समाणा केइ सपक्खदिट्ठिओ चयंति। से तं मिच्छासुयं ॥ सू० ४१ ॥

छाया—अथ किं तन्मिथ्याश्रुतम् ?। मिथ्याश्रुतं यदिदमज्ञानिकैर्मिथ्यादृष्टिकैः स्वच्छन्दबुद्धिमतिविकल्पितम्, तद् यथा—भारतम् १, रामायणम् २, भीमासुरोक्तम् ३, कौटिल्यकम् ४, शकटभद्रिकाः ५, खोडा (घोटक) मुखम् ६, कार्पासिकम् ७, नागसूक्ष्मम् ८, कनकसप्ततिः ९, वैशेषिकम् १०, बुद्धवचनम् ११, त्रैराशिकम् १२,

---

मुक्त जीवों से भिन्न तीर्थंकर अर्हंत प्रभु हैं, यह बात इन विशेषणों द्वारा प्रतिपादित की गई है ६ ॥ सू० ४० ॥

પરિકલ્પિત મુક્ત જીવોથી ભિન્ન તીર્થંકર અર્હંત પ્રભુ છે, એ વાત એ વિશેષણો દ્વારા સિદ્ધ કરવામાં આવી છે. (૬) ॥ સૂ. ૪૦ ॥

कापिलिकम् १३, लौकायतिकम् १४, षष्टितन्त्रम् १५, माठरम् १६, पुराणम् १७, व्याकरणम् १८, भागवतम् १९, पातञ्जलम् २०, पुष्यदैवतम् २१, लेखम् २२, गणितम् २३, शकुनरुतम् २४, नाटकानि २५, अथवा-द्वासप्ततिः कलाः, चत्वारश्च वेदाः साङ्गोपाङ्गाः, एतानि मिथ्यादृष्टेर्मिथ्यात्वपरिगृहीतानि मिथ्याश्रुतम्। एतानि चैव सम्यग्दृष्टेः सम्यक्त्वपरिगृहीतानि सम्यक्श्रुतम्। अथवा मिथ्यादृष्टेरप्येतानि चैव सम्यक्श्रुतम्, कस्मात्? सम्यक्त्वहेतुत्वात्, यस्मात्ते मिथ्यादृष्टयस्तैश्चैव समयैर्नोदिताः सन्तः केचित् स्वपक्षदृष्टीस्त्यजन्ति। तदेतन्मिथ्याश्रुतम्॥

टीका—शिष्यः पृच्छति—'से किं तं मिच्छासुयं०' इति। अथ किं तन्मिथ्याश्रुतम् इति। उत्तरमाह—मिच्छासुयं०' इत्यादि। तत् खलु मिथ्याश्रुतं भवति, यदिदम् अज्ञानिकैः=अल्पमतिभिः मिथ्यादृष्टिभिः=मिथ्यात्विभिः, स्वच्छन्दबुद्धिमतिविकल्पितम्, तत्र बुद्धिः=अवग्रहेहारूपा, मतिः=अवायधारणारूपा, स्वच्छन्देन=स्वाभिप्रायेण, न तु सर्वज्ञप्रणीतार्थानुसारेण, बुद्धिमतिभ्यां विकल्पितम्, स्वबुद्धि

अब सूत्रकार मिथ्याश्रुत का वर्णन करते हैं-'से किं तं मिच्छासुयं०' इत्यादि। शिष्य पूछता है-हे भदन्त! मिथ्याश्रुत का क्या स्वरूप है! उत्तर-मिथ्याश्रुत वह है कि जिसे अज्ञानी-अल्पमतियुक्त-मिथ्यादृष्टि जीवों ने अपनी स्वच्छंद मति एवं बुद्धि द्वारा परिकल्पित किया है। यहां जो "स्वच्छंद मति बुद्धि" ऐसा कहा है उसका अभिप्राय यह है कि जो मिथ्यादृष्टि जीव हुआ करते हैं वे सर्वज्ञ प्रणीत अर्थके अनुसार पदार्थों की प्ररूपणा नहीं करते, किन्तु अपने अभिप्राय के अनुसार जो अपनी बुद्धि और मतिमें आता है उसे ही सत्य कल्पित कर लिया करते हैं। यहां अवग्रह एवं ईहारूप मान्यता का नाम बुद्धि है, तथा अवाय एवं धारणारूप मान्यता का नाम मति है। इस तरह बुद्धि और मतिमें भेद

હવે સૂત્રકાર મિથ્યાશ્રુતનુ વર્ણન કરે છે-"से कि त मिच्छासुयं०" ઇત્યાદિ શિષ્ય પૂછે છે-હે ભદન્ત! મિથ્યાશ્રુતનું શું સ્વરૂપ છે?

ઉત્તર—મિથ્યાશ્રુત તે છે કે જેને અજ્ઞાની-અલ્પમતિવાળા-મિથ્યાદૃષ્ટિ જીવોએ પોતાની સ્વચ્છંદ મતિ અને બુદ્ધિ દ્વારા પરિકલ્પિત કર્યું છે. અહીં જે "સ્વચ્છંદ મતિ બુદ્ધિ" એમ કહ્યું છે તેનું તાત્પર્ય એ છે કે જે મિથ્યાદૃષ્ટિ જીવ હોય છે તેઓ સર્વજ્ઞ પ્રણીત અર્થ પ્રમાણે પદાર્થોની પ્રરૂપણા કરતા નથી, પણ પોતાના અભિપ્રાય પ્રમાણે જે પોતાની બુદ્ધિ અને મતિમાં આવે છે એને જ સત્ય કલ્પી લે છે. અહીં અવગ્રહ અને ઈહારૂપ માન્યતાનું નામ બુદ્ધિ છે,

परिकल्पितमित्यर्थः; तद् यथा–तत्=मिथ्याश्रुतं, यथा=येन प्रकारेण भगवता कथितं तथा कथयामीत्यर्थः। भारतं १, रामायणम् २, भीमासुरोक्तं=भीमासुरेण रचितं शास्त्रम् ३, कौटिल्यकं–कौटिल्येन=चाणक्येन निर्मितम् अर्थशास्त्रम् ४, शकटभद्रिकाः ५, घोटकमुखं=घोटकमुखनामकं शास्त्रं ६, कार्पासिकं ७, नागसूक्ष्मम् ८, कनकसप्ततिः ९, वैशेषिकं=कणाददर्शनम् १०, बुद्धवचनं=त्रिपिटकरूपं ११ त्रैराशिकं–त्रैराशिकसम्प्रदायसम्बन्धी ग्रन्थविशेषः १२, कापिलकं=सांख्यशास्त्रम् १३, लौकायतिकं=चार्वाकदर्शनम् १४, षष्टितन्त्रं=सांख्यशास्त्रग्रन्थविशेषः १५, माठरं–माठरनिर्मितं शास्त्रं षोडशतन्त्रस्थापको न्यायशास्त्रविशेषः १६, पुराणं १७, व्याकरणं १८, भागवतं १९, पातञ्जलं २०, पुष्यदैवतं २१, लेखः २२, गणितं २३, शकुनरुतम् २४, नाटकानि २५ इति। अथवा–अथ चेत्यर्थः। द्वासप्ततिः कलाः, चत्वारो वेदाः साङ्गोपाङ्गाः। एतानि भारतादीनि शास्त्राणि, यदा मिथ्यादृष्टेर्मिथ्यात्वेन परिगृहीतानि भवन्ति, तदा विपरीताभिनिवेशवृद्धिहेतुत्वान्मिथ्याश्रुतं

जानना चाहिये। वे मिथ्याश्रुत ये हैं–भारत १, रामायण २, भीमासुर के द्वारा रचित शास्त्र, चाणक्य के द्वारा बनाया हुआ अर्थशास्त्र ४, शकटभद्रिका ५, घोटकमुख नामका शास्त्र ६, कार्पासिक ७, नागसूक्ष्म ८, कनकसप्तति ९, वैशेषिकदर्शन १०, पिटकत्रय ११, त्रैराशिकसंप्रदाय संबंधी ग्रन्थविशेष १२, सांख्यशास्त्र १३, चार्वाक दर्शन १४, षष्ठितंत्र सांख्यों का ग्रन्थ विशेष १५, माठर–सोलह तत्वों की स्थापना करनेवाला न्यायशास्त्र का ग्रन्थविशेष १६, पुराण १७, व्याकरण १८, भागवत १९, पातञ्जल २०, पुष्पदैवत २१, लेख २२, गणित २३, शकुनरुत २४, एवं नाटक २५,। तथा बहत्तर कलाएँ सांगोपाङ्ग चारोंवेद। ये भारतादिकश्रुत जब मिथ्यादृष्टि जीवों द्वारा मिथ्यात्वपूर्वक परिगृहीत

તથા અવાય અને ધારણારૂપ માન્યતાનું નામ મતિ છે. આ રીતે મતિ અને બુદ્ધિ વચ્ચે ભેદ સમજવાનો છે. એ મિથ્યાશ્રુત આ પ્રમાણે છે–(૧) ભારત, (૨) રામાયણ (૩) ભીમસુર દ્વારા રચિત શાસ્ત્ર (૪) ચાણક્યે બનાવેલું અર્થશાસ્ત્ર, (૫) શકટ ભદ્રિકા. (૬) ઘોટકમુખ નામનું શાસ્ત્ર, (૭) કાર્પાસિક, (૮) નાગસૂક્ષ્મ. (૯) કનક સપ્તક, (૧૦) વૈશેષિક દર્શન, (૧૧) પિટકત્રય, (૧૨) ત્રૈરાશિક સંપ્રદાય સંબંધી ગ્રન્થવિશેષ, (૧૩) સાંખ્યશાસ્ત્ર, (૧૪) ચાર્વાકદર્શન, (૧૫) ષષ્ઠિતંત્ર–સાંખ્યોનો ગ્રન્થવિશેષ, (૧૬) માઠર–સોળ તત્ત્વોની સ્થાપના કરનાર ન્યાયશાસ્ત્રનો ગ્રન્થવિશેષ, (૧૭) પુરાણ, (૧૮) વ્યાકરણ, (૧૯) ભાગવત, (૨૦) પાતંજલ, (૨૧) પુષ્પદૈવત, (૨૨) લેખ, (૨૩) ગણિત, (૨૪) શકુનરુત અને (૨૫) નાટક તથા બોંતેર કળાઓ સાંગોપાંગ ચારે વેદ. એ ભારતાદિક શ્રુત જ્યારે મિથ્યાદૃષ્ટિ જીવો દ્વારા મિથ્યાત્વપૂર્વક પરિગૃહીત કરાય છે,

भवन्ति । एतान्येव च भारतादीनि शास्त्राणि, सम्यग्दृष्टेः सम्यक्त्वपरिगृहीतानि-सम्यक्त्वेन=यथावस्थिताऽसारतापरिभावेन रूपेण परिगृहीतानि भवन्ति, तस्य सम्यक्श्रुतम्, तद्गताऽसारतादर्शनेन स्थिरतरसम्यक्त्वपरिणामजनकत्वात् ।

अथवेत्यादि । अथवा-मिथ्यादृष्टेरपि कस्यचित्, एतानि-भारतादीनि शास्त्राणि सम्यक्श्रुतं भवति । शिष्यः पृच्छति—'कम्हा ?' इति । कस्मात् ? सम्यक्त्व-हेतुत्वात् । सम्यक्त्वहेतुत्वमेव दर्शयति—'जम्हा०' इत्यादि ।

यस्मात् ते मिथ्यादृष्टयस्तैश्चैव समयैः=भारताद्युक्तैरेव स्वसिद्धान्तैः, पूर्वापर-विरोधेन, यद्वा रागादिपरीतः पुरुषस्तावन्नातीन्द्रियमर्थमवबुध्यते, रागादिपरीत-

---

किये जाते हैं उस समय ये विपरीत अभिनिवेश को बढाने के कारण होने से मिथ्याश्रुत माने जाते हैं । तथा जिस समय ये सम्यग्दृष्टि जीवों द्वारा सम्यत्क्वपूर्वक गृहीत किये जाते हैं उस समय ये उसे अपने भीतर रही हुई असारता के प्रदर्शक होते हैं इससे उसकी आत्मामें सम्यक्त्व परिणाम स्थिरतर हो जाता है अतः उस सम्यग्दृष्टि की अपेक्षा ये सम्यक्‌..त रूपसे भी माने जाते हैं। अथवा-किसी मिथ्यादृष्टि जीव के लिये भी ये भारतादिकश्रुत सम्यक्श्रुतरूप से परिणमित हो जाते हैं, कारण कि ये उस आत्मामें सम्यक्त्व के कारण बन जाते हैं। सम्यक्त्व के कारण ये उसको किस तरह से बनते हैं? यही बात यहां स्पष्ट की जाती है-मिथ्यादृष्टि जीव जब भारतादि शास्त्रोंमें प्रतिपादित सिद्धान्तों का अवलोकन करता है, तो जब उसे वहां पूर्वापरविरोध दृष्टिगत होता है. अथवा वह ऐसा भी विचार करता है कि इन वेदादिक शास्त्रोंमें प्रायः

તે વખતે તે વિપરીત અભિનિવેશને વધારવાનું કારણ હોવાથી મિથ્યાશ્રુત મનાય છે. તથા જે સમયે એ સમ્યગ્દૃષ્ટિ જીવો દ્વારા સમ્યક્ત્વપૂર્વક ગ્રહણ કરાય છે, ત્યારે તેઓ તેને પોતાની અંદર રહેલ અસારતાના પ્રદર્શક થાય છે. તેથી તેના આત્મામાં સમ્યક્ત્વ પરિણામ વધારે સ્થિર થાય છે. તેથી તે સમ્યગ્દૃષ્ટિની અપેક્ષાએ તેમને સમ્યક્શ્રુતરૂપે પણ મનાય છે. અથવા કોઈ કોઈ મિથ્યાદૃષ્ટિ જીવને માટે પણ એ ભારતાદિક શ્રુત સમ્યક્શ્રુતરૂપે પરિણુ-ણમિત થાય છે, કારણ કે તેઓ તે આત્મામાં સમ્યકત્વનું કારણ બને છે. તેઓ તેને માટે સમ્યકત્વનું કારણ કેવી રીતે બને છે? એજ વાત અહીં સ્પષ્ટ કર વામાં આવે છે-મિથ્યાદૃષ્ટિ જીવ જ્યારે ભારતાદિ શાસ્ત્રોમાં પ્રતિપાદિત સિદ્ધાંતોનું અવલોકન કરે છે ત્યારે જો તેને પૂર્વાપર વિરોધ નજરે પડે છે અથવા તે એવો

त्वादस्मादृशवत् । वेदेषु चातीन्द्रिया अर्थाः प्रायो वर्णिताः । परन्त्वतीन्द्रियार्थदर्शी च वीतरागः सर्वज्ञः, स च तद्वक्ता नास्ति तत्र परस्परविरुद्धार्थदर्शनात्, तत् कथं वेदार्थप्रतीतिरित्येवं नोदिताः सन्तः केचिद् विवेकेनः सत्यक्यादय इव स्वपक्षदृष्टीः=स्वदर्शनानि त्यजन्ति अर्हतो भगवतः सर्वज्ञस्य शासनं स्वीकुर्वन्ति। तदेवं सम्यक्त्व हेतुत्वाद् वेदादीन्यपि शास्त्राणि कस्यचिन्मिथ्यादृष्टेरपि सम्यक्श्रुतं भवति। तदेतन्मिथ्याश्रुतं वर्णितम् ॥ सू० ४१ ॥

अतीन्द्रियार्थों का प्रतिपादन किया गया है, परन्तु इनके प्रतिपादन करने वाले वीतराग सर्वज्ञ नहीं हैं, जिन्होंने उन्हें प्रतिपादन किया है वेतो हमारे जैसे रागादिक दोषों से ही दूषित व्यक्ति हैं, अतः इनके द्वारा अतीन्द्रिय अर्थों का प्रतिपादन समीचीन रूप से नहीं हो सकता है कारण ये उस विषय को पूर्णरूपसे समझ ही नहीं सके हैं, इसी लिये इन शास्त्रोंमें परस्पर विरुद्धार्थ प्ररूपणता देखी जाती है, अतः जब ऐसी बात है तो फिर वेदादिकों द्वारा वास्तविक अर्थ की प्रतीति भी कैसे हो सकती है? इस तरह पूर्वापर विरोध के विचार से प्रेरित हुए कितनेक-विवेकी मिथ्यादृष्टि जीव अपने २ दर्शनों का परित्याग कर देते हैं और अर्हंत भगवान सर्वज्ञ के शासन को अंगीकार कर लेते हैं। इस तरह किसी २ मिथ्यादृष्टि जीव में सम्यग्दृष्टि जगाने में कारण होनेसे वेदादिक शास्त्र उसकी अपेक्षा सम्यक्श्रुत भी मान लिये जाते हैं। इस प्रकार यहां तक मिथ्याश्रुत का वर्णन हुआ ॥ सू० ४१ ॥

પણ વિચાર કરે છે કે આ વેદાદિક શાસ્ત્રોમાં મોટે ભાગે અતીન્દ્રિયાર્થોનું સમર્થન કર્યું છે પણ તેનું સમર્થન કરનારા વિતરાગ સર્વજ્ઞ નથી, જેમણે તેમનું સમર્થન કર્યું છે તેઓ તો અમારા જેવી રાગાદિક દોષોથી દૂષિત વ્યકિત છે, તેથી તેમના દ્વારા અતીન્દ્રિય અર્થોનું પ્રતિપાદન સમીચીન રીતે થઇ શકે નહીં કારણ કે તેઓ એ વિષયને પૂર્ણ રીતે સમજી જ શકયા નથી, તે કારણે એ શાસ્ત્રોમાં પરસ્પર વિરૂદ્ધાર્થ પ્રરૂપણુતા નજરે પડે છે, તેથી જો વાત એ પ્રમાણે છે તો પછી એ વેદાદિકો દ્વારા વાસ્તવિક અર્થની પ્રતીતિ કેવી રીતે થઈ શકે ? આ પ્રમાણે પૂર્વાપર વિરોધના વિચારથી પ્રેરાતા કેટલાક વિવેકી મિથ્યદૃષ્ટિ જીવ પોત પોતાનાં દર્શનોનો પરિત્યાગ કરે છે અને અર્હંત ભગવાન સર્વજ્ઞના શાસનને અંગીકાર કરે છે. આ રીતે કોઈ કોઇ મિથ્યાદષ્ટિ જીવમાં સમ્યગ્દૃષ્ટિ પેદા કરવાને કારણરૂપ હોવાથી વેદાદિક શાસ્ત્ર તેની અપેક્ષાએ સમ્યગ્શ્રુત પણ માની

सम्प्रति सम्यक्त्वतस्य सादिसपर्यवसिततामनाद्यपर्यवसिततां च वर्णयति—

मूलम्—**से किं तं साइयं सपज्जवसियं ? । अणाइयं अपज्जवसियं च ? इच्चेइयं दुवालसंगं गणिपिडगं वुच्छित्तिनयट्ठयाए साइयं सपज्जवसियं, अव्वुच्छित्तिनयट्ठयाए अणाइयं अपज्जवसियं, तं समासओ चउव्विहं पण्णत्तं; तं जहा—दव्वओ, खित्तओ, कालओ, भावओ ।**

तत्थ दव्वओ णं सम्मसुयं एगं पुरिसं पडुच्च साइयं सपज्जवसियं, बहवे पुरिसे य पडुच्च अणाइयं अपज्जवसियं । खेत्तओ णं पंच भरहाइं पंचेरवयाइं पडुच्च साइयं सपज्जवसियं, पंचमहाविदेहाइं पडुच्च अणाइयं अपज्जवसियं। कालओ णं उस्सप्पिणिं ओसप्पिणिं च पडुच्च साइयं सपज्जवसियं, नो उस्सप्पिणिं नो ओसप्पिणिं च पडुच्च अणाइयं अपज्जवसियं । भावओ णं जे जया जिणपन्नत्ता भावा आघविज्जंति, पण्णविज्जंति, परूविज्जंति, दंसिज्जंति, निदंसिज्जंति, उवदंसिज्जंति तया ते भावे पडुच्च साइयं सपज्जवसियं, खाओवसमियं पुण भावं पडुच्च अणाइयं अपज्जवसियं, अहवा भवसिद्धियस्स सुयं साइयं सपज्जवसियं च अभवसिद्धियस्स सुयं अणाइयं अपज्जवसियं । सव्वागासपएसग्गं सव्वागासपएसेहिं अणंतगुणियं पज्जवग्गक्खरं-निप्फज्जइ । सव्वजीवाणं पि इ णं अक्खरस्स अणंतभागो निच्चुग्घाडिओ चिट्ठइ । जइ पुण सोऽवि आवरिज्जा ते णं जीवो अजीवत्तं पाविज्जा—

"सुट्ठु वि मेहसमुदये, होइ पभाचंदसूराणं ।"

से तं साइयं सपज्जवसियं, से तं अणाइयं अपज्जवसियं ॥सू० ४२॥

छाया—अथ किं तत् सादिकं सपर्यवसितम् ? । अनादिकमपर्यवसितं च ? इत्येतद् द्वादशाङ्गं गणिपिटकं व्यवच्छित्तिनयार्थतया सादिकं सपर्यवसितम्। अव्यवच्छित्तिनयार्थतयाऽनादिकमपर्यवसितम्, तत् समासतश्चतुर्विधं प्रज्ञप्तम्। तद् यथा—द्रव्यतः, क्षेत्रतः, कालतो, भावतः।

तत्र द्रव्यतः खलु सम्यक्श्रुतम्–एकं पुरुषं प्रतीत्य सादिकं सपर्यवसितम्, बहून् पुरुषांश्च प्रतीत्य अनादिकमपर्यवसितम्। क्षेत्रतः खलु पञ्च भरतानि पञ्चैरवतानि प्रतीत्य सादिकं सपर्यवसितम्, पञ्चमहाविदेहान् प्रतीत्यानादिकमपर्यवसितम्। कालत उत्सर्पिणीमवसर्पिणीं च प्रतीत्य सादिकं सपर्यवसितम्, नो उत्सर्पिणीं नो अवसर्पिणीं च प्रतीत्यानादिकमपर्यवसितम्। भावतः खलु ये यदा जिनप्रज्ञप्ता भावा आख्यायन्ते, प्रज्ञाप्यन्ते, प्ररूप्यन्ते, दर्श्यन्ते, निदर्श्यन्ते, उपदर्श्यन्ते, तदा तान् भावान् प्रतीत्य सादिकं सपर्यवसितम्, क्षायोपशमिकं पुनर्भावं प्रतीत्यानादिकमपर्यवसितम्। अथवा भवसिद्धिकस्य श्रुतं सादिकं सपर्यवसितं च । अभवसिद्धिकस्य श्रुतमनादिकमपर्यवसितं च । सर्वाकाशप्रदेशाग्रं सर्वाकाशप्रदेशैरनन्तगुणितं पर्यवाग्राक्षरं निष्पद्यते, सर्वजीवानामपि च अक्षरस्यानन्तभागो नित्यमुद्घाटितः तिष्ठति, यदि पुनः सोऽपिआव्रियेत, तेन जीवोऽजीवत्वं प्राप्नुयात्।

'सुष्ठ्वपि मेघसमुदये भवति प्रभाचन्द्रसूर्यणाम्।'

तदेतत् सादिकं सपर्यवसितम्, तदेतदनादिकमपर्यवसितम् ॥ सू० ४२ ॥

टीका—शिष्यः पृच्छति—'से किं तं०' इत्यादि। हे भदन्त ! अथ किं तत् सादिकम्—आदिसहितं, सपर्यवसितम्—अन्तसहितं सम्यक्श्रुतम्, तथा अनादिकम्=आदिरहितम्, अपर्यवसितम्—अन्तरहितं सम्यक्श्रुतं किमितिप्रश्नः।

अब सम्यक्श्रुत का सादिपर्यवसित और अनादि अपर्यवसित रूप से वर्णन करते हैं—'से किं तं साइयं सपज्जवसियं० ?' इत्यादि।

शिष्य पूछता है–हे भदन्त ! आदि एवं अन्त सहित सम्यक्श्रुत का क्या स्वरूप है ? तथा अनादि एवं अन्तरहित सम्यक्श्रुत का क्या स्वरूप है ?

હવે સમ્યક્શ્રુતનું સાદિપર્યવસિત અને અનાદિ અપર્યવસિત રૂપે વર્ણન કરે છે–"से किं तं साइयं सपज्जवसियं० ?" ઇત્યાદિ

શિષ્ય પૂછે છે–હે ભદન્ત આદિ અને અંત સહિત સમ્યક્શ્રુતનું શું સ્વરૂપ છે ? તથા અનાદિ અને અન્તરહિત સમ્યક્શ્રુતનું શું સ્વરૂપ છે ?

उत्तरमाह—'इच्चे इयं दुवालसंगं०' इत्यादि। इत्येतत्-पूर्वोक्तमेतत् द्वादशाङ्गं गणिपिटकः=आचाराङ्गादिरूपः यद् गणिनः सर्वस्वं, तदेव व्यवच्छित्तिनयार्थतया=व्यवच्छित्ति बोधको नयः-व्यवच्छित्तिनयः पर्यायार्थिक इत्यर्थः, तस्यार्थः-व्यवच्छित्तिनयार्थः, तद्भावः-व्यवच्छित्ति नयार्थता, तया, पर्यायार्थिकनया पेक्षयेत्यर्थः, सादिकं-सपर्यवसितम्=आदिसहितम्, अन्तसहितं च सम्यक्श्रुतम्। तथा-अव्यवच्छित्तिनयार्थतया=अव्यवच्छित्तिप्रतिपादनपरोनयः-अव्यवच्छित्तिनयः, द्रव्यार्थिक इत्यर्थः, तस्यार्थः-अव्यवच्छित्तिनयार्थः, तद्भावः-अव्यवच्छितिनयार्थता, तया द्रव्यार्थिकनयापेक्षयेत्यर्थः। अनादिकमपर्यवसितम्=अनाद्यनन्तं च सम्यक्श्रुतम्।

उत्तर—यह पूर्वोक्त गणिपिटकस्वरूप द्वादशांगश्रुत पर्यायार्थिकनय की अपेक्षा से आदि अन्त सहित है। व्यवच्छित्ति शब्द का अर्थ है पर्याय। इस पर्याय का बोधक जो नय है उसका नाम व्यवच्छित्तिनय है। तथा द्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा से यह अनादि अनंतरूप है। यहां अव्यवच्छित्ति शब्द का अर्थ द्रव्य है। इस द्रव्य को जो नय, प्रधानतया विषय करता है वह द्रव्यार्थिनय अव्यवच्छित्तिनय है। तात्पर्य कहने का यह है कि जब सम्यक्श्रुत का पर्यायार्थिकनय की अपेक्षा विचार किया जाता है तो यह गणिपिटकरूप सम्यक्श्रुत सादि और सांत होता है, कारण-पर्यायार्थिकनय द्रव्य को प्रधानपने विषय नहीं करता-पर्याय को ही प्रधानतया विषय करता है। पर्याय कोई भी नित्य नहीं होती है। सब ही पर्यायें सादि और सांत होती हैं। इस तरह जब गणिपिटकरूप यह द्वादशांग सम्यक्श्रुत पर्यायरूप माना जायगा तो इसमें

ઉત્તર—આ પૂર્વોક્ત ગણિપિટક રૂપ દ્વાદશાંગશ્રુત પર્યાયાર્થિકનયની અપેક્ષાએ આદિ અન્ત સહિત છે. વ્યવચ્છિત્તિ શબ્દનો અર્થ છે "પર્યાય". આ પર્યાયનો બોધક જે નય છે તેનું નામ વ્યવચ્છિત્તિનય છે. તથા દ્રવ્યાર્થિક નયની અપેક્ષાએ તે અનાદિ અનંતરૂપ છે. અહીં અવ્યવચ્છિત્તિ શબ્દનો અર્થ દ્રવ્ય છે. એ દ્રવ્યને જે નય મુખ્યત્વે વિષય કરે છે તે દ્રવ્યાર્થિનય અવ્યવચ્છિત્તિનય છે. કહેવાનુ તાત્પર્ય એ છે કે જ્યારે સમ્યક્શ્રુતનો પર્યાયાર્થિકનયની અપેક્ષાએ વિચાર કરવામાં આવે છે ત્યારે એ ગણિપિટકરૂપ સમ્યક્શ્રુત સાદિ અને અંતસહિત હોય છે, કારણ કે પર્યાયાર્થિકનય દ્રવ્યને મુખ્યત્વે વિષય કરતો નથી. પર્યાયને જ મુખ્યત્વે વિષય કરે છે. કોઈ પણ પર્યાય નિત્ય હોતી નથી. સઘળી પર્યાયો સાદિ (આદિ સહિત) અને સાંત (અંત સહિત) હોય છે. આ રીતે જો ગણિપિટકરૂપ એ દ્વાદશાંગ સમ્યક્શ્રુત પર્યાયરૂપ માનવામાં

तत्-सम्यक्श्रुतं समासतः-संक्षेपतः, चतुर्विधं प्रज्ञप्तम्, तद् यथा-द्रव्यतः क्षेत्रतः कालतो भावतश्च।

तत्र द्रव्यतः खलु सम्यक्श्रुतम् एकं पुरुषं प्रतीत्य, सादि सपर्यवसितम्। तथा हि-सम्यक्त्व प्राप्तौ, तत्प्रथमपाठतो वा सादि, पुनर्मिथ्यात्वप्राप्तौ, सम्यक्त्वे वा सति प्रमादवशात् ग्लानत्वाद्वा परलोकगमनसंभवाद् वा विस्मृतिमुपागते सति, तथा -केवलज्ञानोत्पत्त्या सर्वथा विनष्टे च सति सपर्यवसितं=सपर्यवसानं सान्तं भवति।

सादि और सांतता आती है। तथा जब इसका द्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा विचार किया जाता है तो द्रव्य अनादि अनंत होता है। द्रव्यार्थिकनय प्रधाननया द्रव्य को ही विषय करता है। इस अपेक्षा सम्यक्श्रुत अनादि और अपर्यवसित-अन्तरहित माना जाता है। द्रव्य का मौलिक स्वरूप ही अनंत अनंतरूप है।

यह सम्यक्श्रुत संक्षेप से चार प्रकार का वर्णित किया गया है? उसके चार प्रकार ये हैं-एक प्रकार द्रव्य की अपेक्षा, दूसरा प्रकार क्षेत्र की अपेक्षा, तीसरा प्रकार काल की अपेक्षा, एवं चौथा प्रकार भाव की अपेक्षा।

द्रव्य की अपेक्षा जो प्रथम प्रकार है उसका तात्पर्य यह है, कि जब एक पुरुष की अपेक्षा सम्यक्श्रुत का विचार किया जाता है, तो उसमें उसकी अपेक्षा सादि सांतता ही आती है. कारण जब यह सम्यक्त्व प्राप्त पुरुष को होगा, तब ही उसके द्वारा गृहीत उस श्रुत में सम्यक्पना आजावेगा,

---

આવે તો તેમાં સાદિ અને સાંતતા આવે છે. તથા જો તેનો દ્રવ્યાર્થિકનયની અપેક્ષાએ વિચાર કરવામાં આવે તો દ્રવ્ય અનાદિ અનંત હોય છે. દ્રવ્યાર્થિક નય મુખ્યત્વે દ્રવ્યને જ વિષય કરે છે. આ અપેક્ષાએ સમ્યક્શ્રુત અનાદિ અને અપર્યવસિત-અન્તરહિત મનાય છે. દ્રવ્યનું મૌલિક સ્વરૂપ જ અનંત અનંતરૂપ છે.

આ સમ્યક્શ્રુત સંક્ષિપ્તમાં ચાર પ્રકારનું વર્ણવેલું છે. તે ચાર પ્રકાર આ પ્રમાણે છે-એક પ્રકાર દ્રવ્યની અપેક્ષાએ, બીજો પ્રકાર ક્ષેત્રની અપેક્ષાએ, ત્રીજો પ્રકાર કાળની અપેક્ષાએ, અને ચોથો પ્રકાર ભાવની અપેક્ષાએ.

દ્રવ્યની અપેક્ષાએ જે પહેલો પ્રકાર છે તેનું તાત્પર્ય એ છે કે જ્યારે એક પુરુષની અપેક્ષાએ સમ્યક્શ્રુતનો વિચાર કરાય છે ત્યારે તેમાં તેની અપેક્ષાએ સાદિ સાંતતા જ આવે છે, કારણ કે જ્યારે તે સમ્યક્ત્વ પુરુષને પ્રાપ્ત થશે ત્યારે જ તેના દ્વારા ગૃહિત તે શ્રુતમાં સમ્યક્પણું આવશે, અથવા તે સમ્યક્-

बहून् पुरुषान्–कालत्रयवर्ति नः पुनः प्रतीत्य अनाद्यपर्यवसितम् प्रवाहरूपेण प्रवृत्त-त्वात् कालवदिति भावः।

अथवा वह सम्यक् दृष्टि जीव जब उसका सर्व प्रथम पाठ करेगा तब वह सम्यक्श्रुत कहलावेगा। इस तरह सम्यक्दृष्टि एक जीव की अपेक्षा उसमें सादिता आती है। जब जीव को समकित होकर छूट जाता है और वह मिथ्यात्वदशा संपन्न बन जाता है तब अथवा सम्यक्त्व की प्राप्ति होने पर भी यदि प्रमाद से या ग्लान अवस्थामें पतित हो जाने के कारण, या मृत्यु की संभावनामें आजाने के कारण से वह जीव जब इसे भूल जाता है या केवलज्ञान की उत्पत्ति होने से जब यह नष्ट हो जाता है, तब यह सम्यक्श्रुत अंत सहित भी माना गया है। इस अवस्थामें उस जीव की अपेक्षा सम्यक्श्रुत का अस्तित्व नहीं रहता है। इस प्रकार एक सम्यग्दृष्टि जीव की अपेक्षा उस श्रुत की उसे प्राप्ति होने के कारण, और उसके द्वारा मिथ्यात्व आदि अवस्थामें परित्यक्त होने के कारण सम्यक्श्रुतमें सादि सान्तता होती है। अब सूत्रकार सम्यक्श्रुतमें नाना जीवों की अपेक्षा अनादि अनंतता प्रकट करते हुए कहते हैं–जब सम्यक् श्रुतका विचार नाना पुरुषों की अपेक्षा किया जाता है, तो इसमें अनादि अनंतता ही आती है। वह

દૃષ્ટિ જીવ જ્યારે તેનો સર્વ પ્રથમ પાઠ કરશે ત્યારે તે સમ્યક્શ્રુત કહેવાશે. આ રીતે સમ્યક્દૃષ્ટિ એક જીવની અપેક્ષાએ તેમાં સાદિતા આવે છે. જ્યારે જીવને સમકિત થઈને છૂટી જાય છે, અને તે મિથ્યાત્વ દશાવાળો બની જાય છે ત્યારે, અથવા સમ્યક્ત્વની પ્રાપ્તિ થવા છતાં પણ જો પ્રમાદથી કે ગ્લાન અવસ્થામાં પતિત થઈ જવાને કારણે, કે મૃત્યુની સંભાવનામાં આવી જવાને કારણે તે જીવ જ્યારે તેને ભૂલી જાય છે, કે કેવળજ્ઞાન પેદા .થવાથી જ્યારે તે નષ્ટ થઈ જાય છે, ત્યારે તે સમ્યક્શ્રુત અંત સહિત પણ માનવામાં આવ્યુ છે. તે અવસ્થામાં તે જીવની અપેક્ષાએ સમ્યક્શ્રુતનું અસ્તિત્વ રહેતું નથી. આ પ્રકારે એક સમ્યક્દૃષ્ટી જીવની અપેક્ષાએ તે શ્રુતની પ્રાપ્તિ થવાને કારણે અને તેના દ્વારા મિથ્યાત્વ આદિ અવસ્થામાં પરિત્યક્ત થવાને કારણે સમ્યક્-શ્રુતમાં સાદિ સાંતતા હોય છે. હવે સૂત્રકાર સમ્યક્શ્રુતમાં વિવિધ જીવોની અપેક્ષાએ અનાદિ અનંતતા પ્રગટ કરતા કહે છે–જ્યારે સમ્યક્શ્રુતનો વિચાર વિવિધ પુરુષોની અપેક્ષાએ કરવામાં આવે છે ત્યારે તેમા અનાદિ અનંતતા જ

तथा—क्षेत्रतः खलु पञ्च भरतानि, पञ्च ऐरवतानि प्रतीत्य, सादि सपर्यवसितम्। तथाहि–तेषु क्षेत्रेषु अवसर्पिण्यां सुषमदुःषमापर्यवसाने, उत्सर्पिण्यां तु दुःषमसुषमाप्रारम्भे तीर्थकरधर्मसंघानां तत्प्रथमतयोत्पत्तेः सादि भवति, एकान्तदुःषमादौकाले च तदभावात् सपर्यवसितं–अन्तसहितं भवति। तथा–महाविदेहान् प्रतीत्य अनाद्यपर्यवसितं, तत्र प्रवाहरूपेण तीर्थकरादीनां व्यवच्छेदाभावादिति भावः 'महाविदेहाइं' इत्यत्र सौत्रत्वान्नपुंसत्वम्।

इस प्रकार से–भूत, भविष्यत् एवं वर्तमानकालमें कोइ न कोइ पुरुष इस सम्यक्श्रुत का धारक बना ही रहता है, अतः प्रवाहरूप से वर्तमान रहने के कारण काल की तरह यह अनादि अनंत रूप माना जाता है। इस तरह द्रव्य की अपेक्षा सम्यक्श्रुतमें कथंचित् सादि सांतता और कथंचित् अनादि अनंतता सूत्रकारने प्रकट की है १।

अब क्षेत्र की अपेक्षा वे इसे स्पष्ट करते हैं–पांच भरतक्षेत्र, एवं पांच ऐरवत क्षेत्रमें अवसर्पिणीकाल के सुषमदुष्षमा आरा के अन्तमें, तथा उत्सर्पिणी के दुष्षम सुषमा आरा के प्रारंभमें तीर्थंकर, धर्म एवं संघ की सर्वप्रथम उत्पत्ति होती है, इस अपेक्षा यह सम्यक्श्रुत सादि है और एकान्ततः दुःखस्वरूप दुष्षमादि कालमें तीर्थंकर आदिका सर्वथा अभाव हो जाता है इस कारण यह सम्यक्श्रुत–पर्यवसित–अन्त सहित भी है। तथा पांच महाविदेह क्षेत्रोंमें सदाचतुर्थकाल वर्तमान रहता है। इस अपेक्षा वहां तीर्थंकर आदिका सदा सद्भाव माना गया है, इसलिये

આવે છે. તે આ પ્રકારે–ભૂત, ભવિષ્ય અને વર્તમાનકાળમાં કોઇને કોઇ પુરુષ આ સમ્યક્શ્રુતનો ધારક બની રહે છે જ, તેથી પ્રવાહરૂપે વર્તમાન રહેવાને કારણે કાળની જેમ તે અનાદિ અનંતરૂપ મનાય છે. આ રીતે દ્રવ્યની અપેક્ષાએ સમ્યક્શ્રુતમાં કંઈક સાદિ સાંતતા અને કંઈક અનાદિ અનંતતા સૂત્રકારે પ્રગટ કરી છે. (૧)

હવે ક્ષેત્રની અપેક્ષાએ તેને સ્પષ્ટ કરે છે–પાંચ ભરતક્ષેત્ર અને પાંચ ઐરવત ક્ષેત્રમાં અવસર્પિણીકાળના સુષમદુષ્ષમા આરાના અંતે, તથા ઉત્સર્પિણીના દુષ્ષમ સુષમા આરાના પ્રારંભમાં તીર્થંકર, ધર્મ અને સંઘની સર્વ પ્રથમ ઉત્પત્તિ થાય છે, તે અપેક્ષાએ આ સમ્યક્શ્રુત સાદિ છે. અને એકાન્તતઃ દુઃખ સ્વરૂપ દુષ્ષમાદિ કાળમાં તીર્થંકર આદિનો સર્વથા અભાવ થઈ જાય છે. તે કારણે આ સમ્યક્શ્રુત–પર્યવસિત–અંત સહિત પણ છે, તથા પાંચ મહાવિદેહ ક્ષેત્રોમાં સદા ચતુર્થકાળ વર્તમાન રહે છે. એ અપેક્ષાએ ત્યાં તીર્થંકર આદિનો સદા

कालतः खलु उत्सर्पिणीमवसर्पिणीं च प्रतीत्य सादिकम्-आदिसहितम्-सपर्यवसितम्-अन्तसहितं भवति। तथाहि-उत्सर्पिण्यां द्वयोः समयोः-दुःषमसुषमा-सुषमदुःषमा रूपयोर्भवति, न परतः। अवसर्पिण्यां तु तिसृष्वेव समासु सुषमदुःषमा-दुषमसुषमा दुषमारूपासु भवति तस्मात् सादि सपर्यवसितम्। नो उत्सर्पिणीं नो अवसर्पिणीं च प्रतीत्यानादिकमपर्यवसितम्। महाविदेहेषु हि उत्सर्पिणीरूपस्तथाऽवसर्पिणी रूपश्चकालो नास्ति, तत्र च सदैवावस्थितं सम्यक्श्रुतम्, तस्मादनाद्यपर्यवसितम्।

प्रवाहरूप से वहां तीर्थंकर आदि का अस्तित्व होने के कारण सम्यक्श्रुतमें उस अपेक्षा अनादि अनंतता घटित होती है २।

काल की अपेक्षा जब सम्यक्श्रुतमें सादि सांतता एवं अनादि-अनंतता का विचार किया जाता है, तो फलितार्थ यह निकलता है कि उत्सर्पिणी कालके दुष्षम सुषमा तथा सुषमदुषमा, इन दो आरों में होता है, बाकी में नहीं। इसी तरह अवसर्पिणी के सुषमदुष्षमा, दुष्षमसुषमा, तथा दुष्षमा, इन तीन आरों में होता है, अवशिष्ट आरों में नहीं। इस तरह इन दोनों उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल की अपेक्षा इसमें सादि सांतता आती है। जहां पर उत्सर्पिणी एवं अवसर्पिणी-रूप काल नहीं है ऐसे महाविदेह क्षेत्र की अपेक्षा इसमें सदा अवस्थित होने के कारण इसकी अनादि अनंतता मानी जाती हैं। यही बात सूत्रकार "नो उस्सप्पिणिं नो ओ सप्पिणिं च पडुच्चा अणाइयं अपज्जवसियं"

સદ્ભાવ માનવામાં આવ્યો છે, તે કારણે પ્રવાહરૂપે ત્યાં તીર્થંકર આદિનું અસ્તિત્વ હોવાને કારણે સમ્યક્શ્રુતમાં તે અપેક્ષાએ અનાદિ અનંતતા ઘટાવી શકાય છે. (૨)

કાળની અપેક્ષાએ જ્યારે સમ્યક્શ્રુતમાં સાદિ સાંતતા અને અનાદિ અનંતતાનો વિચાર કરવામાં આવે છે ત્યારે ફલિતાર્થ એ નિકળે છે કે ઉત્સર્પિણી કાળના દુષ્ષમસુષમા તથા સુષમદુષમા, એ બે આરામાં થાય છે, બાકીનામાં નહીં. એ જ રીતે અવસર્પિણીના સુષમદુષ્ષમા, દુષ્ષમસુષમા, તથા દુષમા એ ત્રણે આરામાં થાય છે, બાકીના આરામાં નહીં. આ રીતે એ બન્ને ઉત્સર્પિણી અને અવસર્પિણીકાળની અપેક્ષાએ તેમાં સાદિ સાંતતા આવે છે. જ્યાં ઉત્સર્પિણી અને અવસર્પિણી રૂપકાળ કાળ નથી એવાં મહાવિદેહ ક્ષેત્રની અપેક્ષાએ તેમાં સદા અવસ્થિત હોવાને કારણે તેની અનાદિ અનંતતા મનાય છે. એજ વાત સૂત્રકાર "नो उस्सप्पिणिं नो ओ सप्पिणिं च पडुच्च अणाइयं

भावतः खलु ये केचित्-पूर्वाह्णादौ जिनप्रज्ञप्ता भावाः=जीवादयः पदार्थाः, आख्यायन्ते-सामान्यरूपतया, विशेषरूपतया वा देशनारूपेण कथ्यन्ते इत्यर्थः। प्रज्ञाप्यन्ते-भेदकथनेनाख्यायन्ते, प्ररूप्यन्ते-भेदानां स्वरूपकथनेन प्रख्यायन्ते। तथा-दर्श्यन्ते-उपमानमात्रप्रदर्शनेनप्रकटीक्रियन्ते, यथा 'गौरिव गवयः' इत्यादि। निदर्श्यन्ते-हेतुदृष्टान्तोपदर्शनेन स्पष्टतरी क्रियन्ते। उपदर्श्यन्ते-उपनय-निगमनाभ्यां निःशङ्कं शिष्यबुद्धौ स्थाप्यन्ते। तान् भावान् तदा-तस्मिन्काले, प्रतीत्य सादि सपर्यवसितम्, प्रज्ञापकोपयोगस्वरप्रयत्नासनभेदात् प्रतिसमयमन्यथा चान्यथा च भवनादिति भावः। क्षायोपशमिकं भावं पुनः प्रतीत्य अनाद्यपर्यवसि-

"नो उत्सर्पिणीं नो अवसर्पिणीं च प्रतीत्य अनादिकम् अपर्यवसितम्" इन पदों द्वारा प्रकट की है।

भाव की अपेक्षा सादि सांतता तथा अनादि अनंतता यहां इस प्रकार आती है कि जो परंपरारूप से जिन देवों द्वारा प्रज्ञप्त जीवादिक पदार्थ विवक्षित किसी तीर्थंकर आदि द्वारा पूर्वाह्ण आदि जिस समय में सामान्य विशेषरूप से कथित किये जाते हैं, भेदकथनपूर्वक समझाये जाते हैं, भेदों का स्वरूप स्पष्ट करते हुए बतलाये जाते हैं, तथा उपमान उपमेय भावपुरस्सर स्पष्टरूप से झलका दिये जाते हैं, और हेतु, दृष्टान्त द्वारा समर्थित किये जाते हैं, तथा उपनय एवं निगमन द्वारा शिष्य की बुद्धि में दृढतररूप से स्थापित कर दिये जाते हैं उस समय उन पदार्थो की प्ररूपणा करनेमें प्रज्ञापक के उपयोग, स्वर, प्रयत्न, एवं आसन आदि भावोमें भेद आजाने के कारण तथा प्रतिसमयमें उन प-

अपज्जवसियं (नो उत्सर्पिणी नो अवसर्पिणीं च प्रतीत्य अनादिकम् अपर्यवसितम्") આ પદો દ્વારા પ્રગટ કરી છે.

ભાવની અપેક્ષાએ સાદિ સાંતતા તથા અનાદિ અનંતતા અહીં આ રીતે આવે છે કે જે પરંપરારૂપે જિનદેવો દ્વારા પ્રજ્ઞપ્ત જીવાદિક પદાર્થ વિવક્ષિત કોઈ તીર્થંકર આદિ દ્વારા પૂર્વાહ્ણ આદિ જે સમયમાં સામાન્ય વિશેષરૂપે કહેવાય છે, ભેદકથન સહિત સમજાવાય છે, ભેદોનું સ્પષ્ટ કરીને બતાવાય છે, તથા ઉપમાન ઉપમેય ભાવપૂર્વક સ્પષ્ટરૂપે પ્રકાશિત કરાય છે, અને હેતુ, દૃષ્ટાંત દ્વારા સમર્થિત કરાય છે, તથા ઉપનય અને નિગમન દ્વારા શિષ્યની બુદ્ધિમાં દૃઢતર રીત ઠસાવવામાં આવે છે ત્યારે તે પદાર્થોની પ્રરૂપણા કરવામાં પ્રજ્ઞાપકના ઉપયોગ, સ્વર, પ્રયત્ન અને આસન આદિ ભાવોમાં ભેદ આવી જવાને કારણે તથા પ્રતિસમય એ પદાર્થોમાં પણ પરિવર્તન થતું રહેતું હોવાથી

तम् , प्रवाहरूपेण क्षायोपशमिकभावस्य अनाद्यपर्यवसितत्वात् । यद्वा-अत्र चतुर्भङ्गिका -सादिसपर्यवसितं १, साद्यपर्यवसितं २, अनादिसपर्यवसितम् ३, अनाद्यपर्यवसितम् ४ । तत्र प्रथमभङ्गप्रदर्शनायाह—' अहवा० ' इत्यादि । अथवा-भवसिद्धिकस्य=भवसिद्धिको भव्यस्तस्य श्रुतं=सम्यक्श्रुतं सादिकं सपर्यवसितं च, सम्यक्त्वलाभे तदुत्पत्तेः, पुनर्मिथ्यात्वप्राप्तौ केवलोत्पत्तौ वा तद्विनाशात् । द्वितीयस्तु भङ्गः शून्यः,

दार्थोमें भी परिवर्तन होता रहने के कारण सम्यक्श्रुतमें सादि सांतता होती है, और प्रवाहरूप से अनादि और अपर्यवसितरूप क्षायोपशमिक भाव को लेकर सम्यकश्रुतमें अनादि अनंतता होती है। अथवा यहां चतुर्भङ्गी भी बनती है, जो इस प्रकार से है-१ सादिसांत, २ सादि अनंत, ३ आनादि सांत तथा ४ अनादि अनंत। प्रथम भंग किस प्रकार घटित होता है यह सूत्रकार कहते हैं-'अहवा०' इत्यादि। जो जीव भवसिद्धिक (एक भवसे अथवा अनेक भवों से सिद्धिको प्राप्त करनेवाला) है उसमें सम्यक्श्रुत की उत्पति सम्यक्त्व के लाभ होने पर होती है, इस अपेक्षा सम्यक्श्रुत की प्रारंभता वहां आती है, तथा जब वह मिथ्यात्व-दशामें आ जाता है, अथवा केवलज्ञान की उत्पत्ति से विशिष्ट बन जाता है तो इस अवस्थामें सम्यक्श्रुत वहां नहीं रहता-उसका उसमें अभाव हो जाता है, इसलिये इस रूपसे सम्यक्श्रुत का वहां अंत मान लिया जाता है। यह प्रथम भंग है १। द्वीतीयभंग शून्य है, कारण चाहे मिथ्या-

સમ્યક્શ્રુતમાં સાદિ સાંતતા હોય છે, અને પ્રવાહરૂપે અનાદિ અને અપર્યવસિત રૂપ ક્ષાયોપશમિક ભાવને લીધે સમ્યક્શ્રુતમાં અનાદિ અનંતતા હોય છે. અથવા અહીં ચતુર્ભંગી પણ બને છે જે આ પ્રમાણે છે—(૧) સાદિ સાંત (૨) સાદિ અનંત (૩) અનાદિ સાંત તથા (૪) અનાદિ અનંત. પ્રથમ ભંગ કેવી રીતે ઘટિત થાય છે તે સૂત્રકાર કહે છે-" अहवा० " ઈત્યાદિ

જે જીવ ભવસિદ્ધિક (એક ભવે અથવા અનેક ભવે સિદ્ધિને પ્રાપ્ત કરનાર) છે તેનામાં સમ્યક્શ્રુતની ઉત્પત્તિ સમ્યક્ત્વનો લાભ થતા થાય છે, એ અપેક્ષાએ સમ્યક્શ્રુતની પ્રારંભતા ત્યાં આવે છે, તથા જ્યારે તે મિથ્યાત્વ દશામાં આવી જાય છે, અથવા કેવળજ્ઞાનની ઉત્પત્તિથી વિશિષ્ટ બની જાય છે ત્યારે એ અવસ્થામાં ત્યાં સમ્યક્શ્રુત રહેતું નથી, તેનો તેનામાં અભાવ થઈ જાય છે, તે કારણે તે રૂપે સમ્યક્શ્રુતનો ત્યાં અંત માની લેવાય છે. આ પહેલો ભંગ છે. (૧)

नहि सम्यक्श्रुतं मिथ्याश्रुतं वा सादि भूत्वा अपर्यवसितं संभवति, मिथ्यात्वप्राप्तौ केवलोत्पत्तौ वा नियमेन सम्यक्श्रुतस्य विनाशात्। मिथ्याश्रुतस्यापि च सादेरवश्यं कालान्तरे सम्यक्त्व प्राप्तौ तस्य पर्यवसितत्वात्। तृतीयभङ्गस्तु मिथ्याश्रुतापेक्षया-बोध्यः-भव्यस्यानादिमिथ्यादृष्टेर्मिथ्याश्रुतमनादि भवति, सम्यक्त्व प्राप्तौ च तदपयातीति सपर्यवसितं भवति। अथ चतुर्थभङ्गमुदर्शयति-'अभवसिद्धियस्स०' इत्यादि। अभवसिद्धिकस्य=अभवसिद्धिकोऽभव्यस्तस्य श्रुतं-मिथ्याश्रुतम्, अना-

---

श्रुत हो या सम्यक्श्रुत हो, ऐसा कोई भी श्रुत नहीं है जो सादि होकर अपर्यवसित हो जाय। सम्यक्श्रुत मिथ्यात्व की प्राप्ति होने पर, अथवा केवलज्ञान की उत्पत्ति होने पर नियम से नष्ट हो जाता है। मिथ्याश्रुत भी जीव को जब सम्यक्श्रुत प्राप्त हो जाता है तब चला जाता है २। तृतीयभंग मिथ्याश्रुत की अपेक्षा जानना चाहिये, जैसे कोई अनादि मिथ्यादृष्टि भव्यजीव को जबतक सम्यक्त्व का लाभ नहीं हुआ है तब-तक उसके साथ लगा हुआ मिथ्याश्रुत अनादि ही माना गया है, परन्तु ज्यों ही इस आत्मा के समकित हो जाता है तो वह मिथ्याश्रुत नष्ट हो जाता है। इस अपेक्षा अनादि सांत यह तृतीय भंग बन जाता है ३। अब चतुर्थभंग कहते हैं-'अभवसिद्धियस्स०' इत्यादि। जो अभव्य जीव हुआ करते हैं उनका मिथ्याश्रुत अनादि अनंत हुआ करता है, कारण-इन अभव्य जीवोंमें किसी भी समयमें सम्यक्त्व आदि गुणों का लाभ नहीं होता है अतःइस अपेक्षा मिथ्याश्रुत की इनमें अनादिताके साथ २

બીજો ભંગ શૂન્ય છે, કારણ કે ભલે મિથ્યાશ્રુત હોય કે સમ્યક્શ્રુત હોય, પણ એવું કોઈ શ્રુત નથી જે સાદિ હોવા છતાં અપર્યવસિત થઇ જાય. સમ્યક્શ્રુત મિથ્યાત્વની પ્રાપ્તિ થતાં, અથવા કેવળજ્ઞાન પેદા થતાં નિયમથી જ નાશ પામે છે. જ્યારે જીવને સમ્યક્શ્રુત પ્રાપ્ત થાય છે ત્યારે મિથ્યાશ્રુત પણ ચાલ્યુ જાય છે. (૨) ત્રીજો ભંગ મિથ્યાશ્રુતની અપેક્ષાએ સમજવો, જેમકે કોઈ અનાદિ મિથ્યાદૃષ્ટિ ભવ્ય જીવને જ્યાં સુધી સમ્યક્ત્વનો લાભ થયો નથી ત્યાં સુધી તેને લાગેલુ મિથ્યાશ્રુત અનાદિ જ માનવામાં આવ્યું છે, પણ જેવું તે આત્માને સમકિત પ્રાપ્ત થાય છે કે તરત જ તે મિથ્યાશ્રુત નાશ પામે છે. તે અપેક્ષાએ એ ત્રીજો ભંગ અનાદિ સાંત બની જાય છે. (૩) હવે ચોથો ભંગ કહે છે-"અભવસિદ્ધિયસ્સ૦" ઈત્યાદિ. જે અભવ્યજીવ હોય છે તેમનું મિથ્યા-શ્રુત અનાદિ અનંત હોય છે; કારણ કે તે અભવ્ય જીવોમાં કોઇ પણ સમયે સમ્યકત્વ આદિ ગુણોનો લાભ થતો નથી. તેથી તે અપેક્ષાએ તેમનામાં મિથ્યાશ્રુતની

द्यपर्यवसितं तस्य सदैव सम्यक्त्वादिगुणहीनत्वात्। एषा चतुर्भङ्गिका यथा श्रुतस्योक्ता, तथा मतेरपि द्रष्टव्या, मतिश्रुतयोरन्यान्यानुगतत्वात्, परंत्विह श्रुतमेव प्रक्रान्तं, ततस्तस्यैव चतुर्भङ्गी प्रदर्शिता।

ननु तृतीयभङ्गे चतुर्थभङ्गे वा श्रुतस्यानादिभाव उक्तः स च किं जघन्यः, उत मध्यमः, आहोस्वित् उत्कृष्टः ? इति।

उच्यते—जघन्यो मध्यमो वा नतूत्कृष्टः, यतस्तस्येदं मानमित्याह—सव्वागासपएसग्गं सव्वागासपएसेहिं अणंतगुणिय पज्जवग्गक्खरं निप्फज्जइ" इति सर्वाकाशप्रदेशाग्रं=सर्वं च तत् आकाशं च सर्वाकाशं—लोकालोकाकाशमित्यर्थः तस्य

अनंतता भी सुघटित हो जाती है ४। यह चतुर्भंगी जिस प्रकार सामान्यरूप से श्रुतमें घटितकर बतलाई गई है उसी प्रकार से मतिज्ञानमें भी घटित कर लेना चाहिये, कारण मति और श्रुत ये दोनों साथ २ ही जीवोंमें रहते हैं परन्तु फिर भी यहां पर श्रुतज्ञान का प्रकरण चल रहा है अतः उसीमें यह चतुर्भंगी प्रदर्शित करनेमें आई हैं।

यहां कोई शंका करता है–तृतीयभंगमें अथवा चतुर्थभंगमें श्रुतमें जो अनादिता प्रकट करनेमें आई है वह जघन्यरूप से है या मध्यमरूप से है अथवा उत्कृष्ट रूप से है ?

उत्तर—श्रुतकी अनादिता उत्कृष्टरूप से नहीं है किन्तु वह जघन्य एवं मध्यमरूप से है, क्यों कि इसका मान इस प्रकार है–

"सव्वागासपएसग्गं सव्वागासपएसेहिं अणंतगुणियंपज्जवग्गक्खरं निप्फज्जइ" तात्पर्य यह है कि सर्वाकाश से लोकाकाश और अलोका-

અનાદિતાની સાથે સાથે અનંતતા પણ સુઘટિત થઈ જાય છે. (૪) આ ચતુર્ભંગી જે પ્રકારે સામાન્યરૂપે શ્રુતમાં ઘટિત કરી બતાવાઇ છે એજ પ્રકારે મતિજ્ઞાનમાં પણ ઘટિત કરી લેવી, કારણ કે જીવોમાં મતિ અને શ્રુત સાથે જ રહે છે, છતાં પણ અહીં શ્રુતજ્ઞાનનું પ્રકરણ ચાલે છે તેથી તેમાં જ આ ચતુર્ભંગી દર્શાવવામાં આવી છે.

અહીં કોઇ શંકા કરે છે કે–તૃતીયભંગમાં અને ચતુર્થભંગમાં શ્રુતમાં જે અનાદિતા પ્રગટ કરવામાં આવી છે, તે જઘન્યરૂપે છે કે મધ્યમરૂપે છે કે ઉત્કૃષ્ટરૂપે છે ?

ઉત્તર—શ્રુતની અનાદિતા ઉત્કૃષ્ટરૂપે નથી પણ તે જઘન્ય અને મધ્યમ રૂપે છે, કારણ કે તેનું માન (પ્રમાણ) આ પ્રમાણે છે–

"सव्वागासपएसग्गं सव्वागासपएसेहिं अणंतगुणिय पज्जवग्गक्खरं निप्फज्जइ" તાત્પર્ય એ છે કે સર્વાકાશથી લોકાકાશ અને અલલોકાકાશ, એ બન્નેને

प्रदेशाः=निर्विभागा भागाः, सर्वाकाशप्रदेशास्तेषामग्रं—परिमाणं, सर्वाकाशप्रदेशैः, अनन्तगुणितम्—अनन्तशोगुणितम् , एकैकस्मिन्नाकाशप्रदेशेऽनन्तागुरुलघुपर्यायमावात्, पर्यायाग्राक्षरं=पर्यायपरिमाणाम्—अक्षरं—निष्पद्यते सर्वद्रव्यपर्यायपरिमाणं भवतीत्यर्थः। इदमत्र बोध्यम्—सर्वाकाशप्रदेशपरिमाणं सर्वाकाशप्रदेशैरनन्तशो गुणितं यावत् परिमाणं भवति, तावत् परिमाणं सर्वाकाशप्रदेशपर्यायाणामग्रं—परिमाणं भवति। एकैकस्मिन् आकाशप्रदेशे यावन्तोऽगुरुलघुपर्यायास्ते सर्वेऽपि एकत्र पिण्डिता यावन्तो भवेयुः, एतावत्प्रमाणं चाक्षरं भवति। इह स्तोकत्वाद् धर्मास्तिकायादयः साक्षात् सूत्रे नोक्ताः। अर्थतस्तु तेऽपि गृहीता एव। अयमर्थः—सर्वद्रव्यप-

काश, इन दोनों का ग्रहण हुआ है। इस सर्वाकाश के जो निर्विभाग भाग हैं उनका नाम प्रदेश है। इन प्रदेशों के परिमाण का नाम अग्र है। इस तरह 'सर्वाकाश प्रदेशाग्रम्' इस पदका "समस्त आकाशके प्रदेशों का परिमाण" ऐसा वाच्यार्थ होता है। यह समस्त आकाश के प्रदेशोंका परिमाण समस्त आकाश के प्रदेशों से अनंतगुणित करने पर पर्यायाग्राक्षर—पर्यायपरिमाण अक्षर निष्पन्न होता है, कारण एक २ आकाश के प्रदेश पर अनंत २ अगुरुलघु पर्यायों का सद्भाव माना गया है। इस तरह समस्त आकाश के प्रदेशों की पर्यायों का यह परिमाण निकल आता है। और इतना ही प्रमाण अक्षर का बतलाया गया है। तात्पर्य इसका यह है कि एक २ आकाश के प्रदेश ऊपर जितनी भी अगुरुलघु पर्यायें हैं वे सब एकत्र जोड़ली जाने पर जितना उनका प्रमाण आवे उतना ही प्रमाण अक्षर का है। यद्यपि सूत्रमें सूत्रकारने आकाश

ગ્રહણ કરેલ છે. આ સર્વાકાશના જે નિર્વિભાગ ભાગ છે તેમનું નામ પ્રદેશ છે. એ પ્રદેશોના પરિમાણનું નામ अग्र છે. આ રીતે "सर्वाकाश प्रदेशाग्रम्" આ પદનો "સમસ્ત આકાશના પ્રદેશોનો પરિમાણ" એવો વાચ્યાર્થ થાય છે. આ સમસ્ત આકાશના પ્રદેશોનો પરિમાણ સમસ્ત આકાશના પ્રદેશોથી અનંત ગણો કરતા પર્યાયાગ્રાક્ષર—પર્યાયપરિમાણ અક્ષર નિષ્પન્ન થાય છે, કારણ કે એક એક આકાશના પ્રદેશપર અનંત અનંત અગુરુલઘુ પર્યાયોનો સદ્ભાવ માનવામાં આવ્યો છે. આ રીતે સમસ્ત આકાશના પ્રદેશોની પર્યાયોનું આ પરિમાણ નીકળે છે. અને એટલું જ પ્રમાણ અક્ષરનું બતાવવામાં આવ્યું છે. તેનું તાત્પર્ય એ છે કે એક એક આકાશના પ્રદેશ ઉપર જેટલી અગુરુલઘુ પર્યાયો છે તે બધી એકઠી કરતાં જેટલું તેમનું પ્રમાણ આવે એટલું જ પ્રમાણ અક્ષરનું છે.

देशाग्रं सर्वद्रव्यप्रदेशैरनन्तशोगुणितं यावत् परिमाणं भवति तावत् परिमाणं सर्वद्रव्य-पर्याय परिमाणं, एतावत् परिमाणं चाक्षरं भवति। तदपि चाक्षरं द्विधा—ज्ञानम् , अकारादि वर्णजातं च। उभयत्राप्यर्थेप्यक्षरशब्दप्रवृत्तेरूढत्वात्, द्विविधमपि चेह गृह्यते विरोधाभावात्, इति।

ननु सर्वद्रव्यपर्यायपरिमाणमक्षरं भवतीत्युक्तं, तत्राक्षरशब्देन ज्ञानमकारादि वर्णजातं चेत्युभयं गृह्यते इति यदुक्तं तन्नोपपद्यते, तथाहि—यद्यपि ज्ञानं सर्वद्रव्यपर्याय

पदका ही साक्षात् उपादान किया है-धर्मास्तिकाय आदिका नहीं. सो इसका कारण यह है कि ये आकाश की अपेक्षा स्तोक हैं, परन्तु अर्थतः सूत्रकारने धर्मास्तिकाय आदि का भी ग्रहण किया ही है। इस अपेक्षा अर्थ की संगति इस प्रकार होती है—समस्त द्रव्यों के प्रदेशों का परिमाण उनके समस्त प्रदेशों से अनंतगुणित है, और इतना ही परिमाण उन समस्त द्रव्योंको पर्यायों का आता है। इस तरह समस्त द्रव्योंकी जितनी पर्यायें हैं उतना प्रमाण एक अक्षर का बतलाया गया हैं। यद्यपि समस्त द्रव्यों का पर्याय प्रमाण एक अक्षर का प्रमाण कहा गया है, फिर भी ज्ञान और अकार आदि वर्ण समूह के भेद से अक्षर दो प्रकार का भी कहा है। अक्षर के ये दोनों ही प्रकार यहां गृहीत हुए हैं। इसमें कोई विरोध नहीं आता है।

शंका—ज्ञान और अकार आदिवर्ण के भेद से जो आपने अक्षर

જો કે સૂત્રકારે સૂત્રમાં આકાશપદનું જ પ્રત્યક્ષ ઉપાદાન કર્યું છે, ધર્માસ્તિકાય આદિનું નહીં તો તેનું કારણ એ છે કે તેઓ આકાશની અપેક્ષાએ સૂક્ષ્મ છે, પણ અર્થતઃ સૂત્રકારે ધર્માસ્તિકાય આદિને પણ ગ્રહણ કરેલ છે. એ અપેક્ષાએ અર્થની સંગતતા આ પ્રમાણે થાય છે-સમસ્ત દ્રવ્યોના પ્રદેશોનું પરિમાણ તેમના સમસ્ત પ્રદેશોથી અનંતગણું છે, અને એટલું જ પરિમાણ તે સમસ્ત દ્રવ્યોની પ્રર્યાયોનું આવે છે. આ રીતે સમસ્ત દ્રવ્યોની જેટલી પર્યાયો છે એટલું પ્રમાણ એક અક્ષરનું બતાવવામાં આવ્યું છે. જો કે સમસ્ત દ્રવ્યોનું પર્યાય પ્રમાણ એક અક્ષરનું પ્રમાણ કહેવામાં આવ્યું છે તો પણ જ્ઞાન અને અકાર આદિ વર્ણસમૂહના ભેદથી અક્ષર બે પ્રકારના કહ્યા છે. અક્ષરના એ બન્ને પ્રકાર અહીં ગ્રહણ કરવામાં આવ્યા છે. તેમાં કોઈ વિરોધ આવતો નથી.

શંકા—જ્ઞાન અને અકાર આદિ વર્ણના ભેદથી આપે જે અક્ષર શબ્દ

परिमाणं संभवति, यतो ज्ञानमिहाविशेषोक्त्या सर्वद्रव्यपर्यायपरिमाणतुल्यताभिधानात् प्रक्रमाद् वा केवलज्ञानं ग्रहीष्यते, तच्च सर्वद्रव्यपर्यायपरिमाणं घटते एव। तथाहि=यावन्तो जगति रूपि द्रव्याणामरूपि द्रव्याणां वा ये गुरुलघुपर्यायास्तान् सर्वानपि भगवान् साक्षात् करतलकलितमुक्ताफलमिव केवलालोकेन प्रतिक्षणमवलोकते। येन स्वभावे नैकं पर्यायं जानाति, ते नैव स्वभावेन पर्यायान्तरं न जानाति तयोः पर्याययोरेकत्वप्रसक्तेः तथाहि–घटपर्यायपरिच्छेदन स्वभावं यद् ज्ञानं, तद्

शब्द द्वारा द्विविध अक्षर का सूत्रमें ग्रहण हुआ बतलाया है सो यह बात समझमें नहीं आती, कारण अकारादि अक्षरमें सर्वद्रव्य पर्यायप्रमाणता का विरोध आता है। ज्ञानमें यह बात घट सकती हैं, कारण ज्ञान से अन्य मति आदि ज्ञानों का ग्रहण न होकर प्रकरणवश केवलज्ञान का ही जब ग्रहण होगा तो उस अपेक्षा उसमें यह सर्व द्रव्यपर्याय प्रमाणता घटित होनेमें कोई बाधा नहीं आती हैं, कारण–जगतमें रूपिद्रव्यों की तथा अरूपीद्रव्यों की जितनी भी गुरुलघुपर्यायें एवं अगुरुलघुपर्यायें हैं उन सब को केवलज्ञानी भगवान् साक्षात् करतल में रखे हुए मोती के समान केवलज्ञानरूप आलोक से प्रतिक्षण जानते और देखते हैं। अब इस केवलज्ञानरूप आलोक में सर्वद्रव्य पर्याय प्रमाणता इस प्रकार घट जाती है कि प्रभु जब जिस स्वभाव से एक पर्याय को–जानते हैं उसी स्वभाव से दूसरी पर्याय को नहीं जानते हैं, किन्तु उस समय

દ્વારા દ્વિવિધ અક્ષરનું સૂત્રમાં ગ્રહણ થયેલ દર્શાવ્યું છે. એ વાત સમજવામાં આવતી નથી, કારણ કે અકાર આદિ અક્ષરમાં સર્વદ્રવ્ય પ્રર્યાય પ્રમાણતાનો વિરોધ નડે છે. જ્ઞાનમાં એ વાત બંધબેસતી થતી નથી કારણ કે જ્ઞાનથી અન્ય મતિ આદિ જ્ઞાનોનું ગ્રહણ ન થતા પ્રકરણવશ કેવળજ્ઞાનનું જ જો ગ્રહણ થશે તો તે અપેક્ષાએ આ સર્વદ્રવ્ય પર્યાય પ્રમાણતા ઘટાવવામાં કોઈ મુશ્કેલી નડતી નથી, કારણ કે જગતમાં રૂપીદ્રવ્યોની તથા અરૂપીદ્રવ્યોની જેટલી ગુરુ લઘુ પર્યાયો અને અગુરુલઘુ પર્યાયો છે તે બધીને કેવળજ્ઞાની ભગવાન પ્રત્યક્ષ હથેળીમાં રાખેલ મોતી સમાન કેવળજ્ઞાનરૂપ આલોકથી પ્રતિક્ષણ જાણે અને દેખે છે. હવે તે કેવળજ્ઞાનરૂપ આલોકથી પ્રતિક્ષણ જાણે અને દેખે છે. હવે તે કેવળજ્ઞાનરૂપ આલોકમાં સર્વદ્રવ્ય પર્યાય પ્રમાણતા આ પ્રકારે ઘટિત થાય છે કે પ્રભુ જ્યારે જે સ્વભાવથી એક પર્યાયને જાણે છે એજ સ્વભાવથી બીજી પર્યાયને જાણતા નથી, પણ ત્યારે તેને જાણવામાં ભિન્ન

यदा पटपर्यायपरिच्छेदनं कुर्यात्, तदा पटपर्यायस्यापि घटपर्यायरूपतापत्तिः स्यात् अन्यथा-तस्य तत्परिच्छेदकत्वानुपपत्तेः, तथारूपस्वभावात्। ततो यावन्तः परिच्छेद्याः पर्यायास्तावन्तः परिच्छेदकाज्ञानपर्यायास्तस्य केवलज्ञानस्य स्वभावा विज्ञेयाः। स्वभावाश्च पर्यायाः। तस्मात् पर्यायानधिकृत्य सर्वद्रव्यपर्यायपरिमाणं ज्ञानमुपपद्यते, परं तु यदकारादिकं वर्णजातं तत् कथं सर्वद्रव्यपर्यायपरिमाणं भवितुमर्हति, वर्णपर्यायराशेः सर्वद्रव्यपर्यायाणामनन्ततमे भागे वर्तमानत्वादिति चेत् ?,

उसको जानने में भिन्न स्वभावता आजाती है। यदि ऐसा नहीं माना जाता है तो फिर एक स्वभावाधिगत होने से उन दोनों में एकत्वापत्ति का प्रसंग होगा। घट प्रर्याय को जानने के स्वभाववाला वह ज्ञान उसी स्वभाव द्वारा यदि पटपर्याय को जानेगा तो पटपर्याय में घटपर्यायरूपता के आने में बाधक ही कौन हो सकता है। यदि ऐसा नहीं होगा तो फिर उसके द्वारा पटपर्याय का अधिगम हो ही नहीं सकेगा, इसलिये यह अवश्य मानना पड़ता है कि जगत में जितने परिच्छेद्य-पदार्थ हैं-पर्यायें हैं-उतनी ही उन्हें जानने वाली उस ज्ञान की पर्यायें हैं। ये समस्तपर्यायें उस केवलज्ञान की स्वभावभूत पर्यायें हैं। इसलिये पर्यायों की अपेक्षा समस्तद्रव्यों की पर्यायों के प्रमाणानुसार ज्ञानमें सर्वद्रव्य पर्याय प्रमाणता आजाती है। परन्तु जो अकार आदि वर्ण समूह है उसमें सर्वद्रव्य पर्याय प्रमाणता कैसे आ सकती है, कारण जो वर्ण पर्यायराशि है वह सर्वद्रव्यपर्यायों के अनंततमभागमें वर्तमान कही गई है।

સ્વભાવતા આવી જાય છે. જો એમ માનવામાં ન આવે તો એક સ્વાભાવાધિગત હોવાથી તે બન્નેમાં એકત્વ આપત્તિનો પ્રસંગ આવશે. ઘટ પર્યાયને જાણવાના સ્વભાવવાળો તે જ્ઞાની એજ સ્વભાવ દ્વારા જો પટ પર્યાયને જાણશે પટ પર્યાયમાં ઘટ પર્યાયરૂપતા આવવામાં બાધક જ કોણ થઈ શકે છે. જો એમ ન થાય તો પછી તેના દ્વારા પટપર્યાયની સમજણ પડી જ ન શકે, તે કારણે એ અવશ્ય માનવું પડે છે કે જગતમાં જેટલા પરિચ્છેદ્ય-પદાર્થ છે-પર્યાયો છે. એટલી જ તેને જાણનારી તે જ્ઞાનની પર્યાયો છે. એ સમસ્ત પર્યાયો તે કેવળજ્ઞાનની સ્વભાવભૂત પર્યાયો છે. તેથી પર્યાયોની અપેક્ષાએ સમસ્ત દ્રવ્યોની પર્યાયોના પ્રમાણાનુસાર જ્ઞાનમાં સર્વદ્રવ્ય પર્યાય પ્રમાણતા આવી જાય છે પણ જે અકાર આદિ વર્ણસમૂહ છે તેમાં સર્વદ્રવ્ય પર્યાય પ્રમાણતા કેવી રીતે આવી શકે છે, કારણ કે જે વર્ણપર્યાય રાશિ છે તે સર્વદ્રવ્ય પર્યાયોના અનંતતમ ભાગમાં વર્તમાન કહેવામાં આવી છે.

उच्यते—अकारादेरपिवर्णस्य स्वपरपर्यायभेदभिन्नतया सर्वद्रव्यपर्यायपरिमाण तुल्यत्वादकारादिवर्णजातमपि सर्वद्रव्यपर्यायपरिमाणं भवतीति।

नन्वकारादेर्वर्णस्य स्वपरपर्यायापेक्षया सर्वद्रव्यपर्यायराशितुल्यता केन प्रकारेण भवती? ति चेत्,

उच्यते—इह 'अ, अ, अ,' इत्यकार उदात्तोऽनुदात्तः स्वरितः। स पुनरेकैको द्विधा-सानुनासिको निरनुनासिकश्चेत्यकारस्य षड्भेदाः। एवं ह्रस्वो दीर्घप्लुतश्च। तदेवमष्टादशप्रभेदान् केवलोऽकारो लभते। तथा-अन्यवर्णसहितोऽप्यकारोऽनेकान् भेदान् लभते। तथाहि-ककारेण संयुक्तोऽकारोऽष्टादशभेदान् लभते। एवं खकारेण।

उत्तर—ठीक है, परन्तु अकार आदि जो वर्ण हैं उनके भी स्वपर्याय और परपर्याय की अपेक्षा अनेक भेद हो जाते हैं, इसलिये उनमें भी सर्वद्रव्यपर्यायप्रमाणता सुघटित होनेमें कोई बाधा नहीं आती है।

शंका—अकार आदि वर्णोंमें स्व और परपर्याय की अपेक्षा सर्वद्रव्यपर्याय राशितुल्यता कैसे घटती है?

उत्तर—सुनो-अकार-उदात्त, अनुदात्त और स्वरित के भेद से तीन प्रकार का कहा हुआ है। उदात्त अकार के, अनुदात्त अकार के, और स्वरित अकार के सानुनासिक और निरनुनासिक, इस तरह और भी दो दो भेद किये गये हैं। इन छह भेदों के भी ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत ऐसे और भी तीन तीन भेद होते हैं। इस तरह अकेला अकार अठारह प्रकार का हो जाता है। इसी तरह अन्यवर्णों से समन्वित हुआ अकार भी अनेक भेदों वाला बन जाता है। जैसे-"क" में मिला हुआ "अ"

ઉત્તર—શંકા બરાબર છે પણ અકાર આદિ જે વર્ણ છે તેમના પણ સ્વપર્યાય અને પરપર્યાયની અપેક્ષાએ અનેક ભેદ થઈ જાય છે, તે કારણે તેમનામાં પણ સર્વદ્રવ્ય પર્યાય પ્રમાણુતા સુઘટિત થવામાં કોઈ મુશ્કેલી નડતી નથી.

શંકા—અકાર આદિ વર્ણોમાં સ્વ અને પર પર્યાયની અપેક્ષાએ સર્વદ્રવ્ય પર્યાય રાશિતુલ્યતા કેવી રીતે ઘટાવી શકાય છે?

ઉત્તર—ઉદાત્ત, અનુદાત્ત અને સ્વરિતના ભેદથી અકાર ત્રણ પ્રકારના કહેલ છે. ઉદાત્ત અકારના, અનુદાત્ત અકારના અને સ્વરિત અકારના સાનુનાસિક અને નિરનુનાસિક, આ રીતે બીજાં પણ બે બે ભેદ પડે છે. એ છ ભેદોના પણ હ્રસ્વ, દીર્ઘ, પ્લુત એવાં બીજાં પણ ત્રણ ત્રણ ભેદ થાય છે. આ પ્રકારે એકલો અકાર અઢાર પ્રકારનો થાય છે. એજ રીતે અન્યવર્ણો સાથે જોડાયેલ અકાર પણ અનેક ભેદોવાળો થઈ જાય છે. જેમકે-"क"માં મળેલો 'अ'

एवं यावत् हकारेण। एवमेकैक केवल व्यञ्जन सयोगे इव सजातीय विजातीय व्यञ्जन-द्विक संयोगेऽपि। तथा स्वरान्तर संयुक्त तत्तद्व्यञ्जनसहितोऽप्यनेकान् भेदान् लभते। अपि चैकैकोऽप्युदात्तादिको भेदो वक्तुः स्वर विशेषादनेक भेदो भवति। वाच्य भेदादपि च समानवर्णश्रेणीकस्यापि शब्दस्य भेदो जायते। तथाहि-करशब्दो हस्तरूपमर्थं येन स्वभावेन बोधयति, नहि तेनैव स्वभावेन किरणरूपमर्थम्, किंतु स्वभावभेदेन। तथा-अकारोऽपि तेन तेन ककारादिना संयुज्यमानस्तं तमर्थं

अठारह प्रकार का बन जाता है, इसी प्रकार "ख" में मिला हुआ तथा "ग" से लेकर "ह" तक मिला हुआ "अ" भी अठारह प्रकार का बन जाता है। जिस तरह यह "अ" केवल एक २ व्यंजनों के साथ मिलने पर अनेक प्रकार का प्रकट किया गया है उसी प्रकार जब यह सजातीय एवं बिजातीय दो दो व्यञ्जनो के साथ तथा स्वरान्तरसंयुक्त उन २ व्यंजनों के साथ मिलता है तब अनेक भेद वाला हो जाता है, यह जानना चाहिये-अधिक और क्या कहा जाय एक २ भी उदात्तादिक भेद वक्ता के स्वरों के भेद से अनेक भेदवाला बन जाया करता है। वाच्यभेद से भी समानवर्ण श्रेणी वाले शब्दमें भी भेद आ जाता है, जैसे 'कर' शब्द जिस स्वभाव से हस्तरूप अर्थ का बोधन करता है उसी स्वभाव से वह किरणरूप अर्थ का बोधन नहीं करता है, किन्तु स्वभाव भेद से ही करता है। तात्पर्य कहने का यह है कि-करशब्द का अर्थ हाथ है, किरण है, परन्तु जिस स्वभाव से 'कर' शब्द अपने हाथ रूप वाच्यार्थ का प्रतिपादन

અઢાર પ્રકારનો બની જાય છે, એજ પ્રમાણે "ख"માં મળેલ તથા "ग"થી લઈને "ह" સુધી મળેલો 'अ' પણ અઢાર પ્રકારનો થઈ જાય છે. જે રીતે આ 'अ' ફક્ત એક એક વ્યંજનની સાથે મળતા અનેક પ્રકારનો પ્રગટ કર્યો છે એજ પ્રકારે જ્યારે તે સજાતીય અને વિજાતીય બબ્બે વ્યંજનોની સાથે તથા સ્વરાન્ત સંયુક્ત તે તે વ્યંજનોની સાથે મળે છે ત્યારે અનેક ભેદવાળો થઈ જાય છે, એમ સમજવું. વધારે શું કહેવું! એક એક પણ ઉદાત્તાદિક ભેદ બોલનારના સ્વરોના ભેદથી અનેક ભેદવાળો બની જાય છે. વાચ્યભેદથી પણ સમાનવર્ણ શ્રેણીવાળા શબ્દમાં પણ ભેદ આવી જાય છે, જેમકે "કર" શબ્દ જે સ્વભાવથી હસ્તરૂપ અર્થનો બોધ કરે છે એજ સ્વભાવથી તે કિરણ રૂપ અર્થનો બોધ કરતો નથી, પણ સ્વભાવ ભેદથી જ કરે છે. કહેવાનું તાત્પર્ય એ છે કે-"કર" શબ્દનો અર્થ હાથ છે, કિરણ છે, પણ જે સ્વભાવથી "કર" શબ્દ પોતાના હાથરૂપ વાચ્યાર્થનું પ્રતિપાદન કરે છે એજ

बोधयन् भिन्नस्वभावो वेदितव्यः। ते च स्वभावा अनन्ता भवन्ति, उच्चार्यमाण-शब्दस्य परमाणुद्व्यणुकादिभेदेनाऽनन्तत्वात्। ध्वनेश्च तथा तथाऽभिधायकत्वपरिणामे सत्येव तत्तदर्थप्रतिपादकत्वात्। एते च सर्वेऽप्यकारस्य स्वपर्यायाः शेषास्तु-सर्वेऽपि घटादिपर्यायाः परपर्यायाः। ते च स्वपर्यायेभ्योऽनन्तगुणाः। परपर्याया अप्यकारस्य सम्बन्धितया विज्ञेयाः

करता है उसी स्वभाव से वह किरणरूप अर्थका नहीं, कारण अपने २ वाच्यार्थ के प्रतिपादन करनेमें शब्दोंमें भिन्न २ स्वभावता मानी गई है। इसी तरह अकार भी भिन्न २ ककार आदि शब्दों के साथ संगत होकर भिन्न २ स्वभाव से भिन्न २ अर्थों का प्रत्यायक होता है। इस तरह एक ही अकेले अकारमें अनंत स्वभाव समाविष्ट हुए माने गये हैं। जो शब्द उच्चरित होता है उसमें परमाणु तथा द्व्यणुक आदि के भेद से अनंतता आती है। तात्पर्य इसका यह है कि शब्द पौद्गलिक है, अतः पुद्गल-जन्य इस शब्दमें परमाणुक द्व्यणुक आदि की भिन्नता से भिन्नता आती है. और यह भिन्नता अनंतरूपमें परिणत हो जाती है। इसी तरह पदार्थ अनंत है और उन पदार्थों को प्रतिपादन करने का परिणाम ध्वनी-शब्द-में रहा हुआ है तभी जाकर वह उन २ पदार्थों का प्रतिपादन किया करता है। इस तरह से समस्त अकार की निज पर्यायें हैं तथा इनसे भिन्न जो घटादि पर्याय हैं वे इस की पर पर्याय हैं। ये पर पर्यायें अपनी

સ્વભાવથી તે કિરણરૂપ અર્થનું પ્રતિપાદન કરતો નથી, કારણ કે પોતપોતાના વાચ્યાર્થનું પ્રતિપાદન કરવામાં શબ્દોમાં ભિન્ન ભિન્ન સ્વભાવતા માનવામાં આવી છે. એજ રીતે ‘અકાર’ પણ ભિન્ન ભિન્ન કકાર આદિ શબ્દોની સાથે સંગત થઈને ભિન્ન ભિન્ન સ્વભાવથી ભિન્ન ભિન્ન અર્થોનો પ્રત્યાયક થાય છે. આ રીતે એકલા અકારમાં જ અનંત સ્વભાવનો સમાવેશ થયેલ મનાયો છે. જે શબ્દ બોલાય છે તેમાં પરમાણુ તથા દ્વયણુક આદિના ભેદથી અનંતતા આવે છે. તેનું તાત્પર્ય એ છે કે શબ્દ પૌદ્ગલિક છે તેથી પુદ્ગલજન્ય તે શબ્દમાં પરમાણુ, દ્વયણુક આદિની ભિન્નતાથી ભિન્નતા આવે છે, અને તે ભિન્નતા અનંતરૂપે પરિણમે છે. આ રીતે પદાર્થ અનંત છે અને તે પદાર્થોનું પ્રતિપાદન કરવાનો પરિણામ ધ્વનિ-શબ્દમાં રહેલ છે ત્યારે જ જઈને તે, તે તે પદાર્થોનું પ્રતિપાદન કર્યા કરે છે. આ રીતે સમસ્ત અકારની પોતાની પર્યાયો છે તથા તેમનાથી ભિન્ન જે ઘટાદિ પર્યાય છે એ તેની પરપર્યાય છે. એ પર-

ननु ये स्वपर्यायास्ते तस्य सम्बन्धिनो भवन्तु, ये तु परपर्यायास्ते भिन्नवस्त्वाश्रयत्वात् कथं तस्य सम्बन्धिनः स्युरिति चेत् ?,

उच्यते—इह द्विधा सम्बन्धो भवति, अस्तित्वेन नास्तित्वेन च। तत्रास्तित्वेन सम्बन्धः स्वपर्यायैः सह भवति, यथा-घटस्य रूपादिभिः नास्तित्वेन संवन्धः परपर्यायैः सह भवति तेषां तत्रासंभवात्। यथा-घटावस्थायां मृत्पिण्डाकारेण

पर्यायों से अनंतगुणी हैं। स्वपर्यायें जिस प्रकार अकार की संबंधी मान जाती है उसी प्रकार पर पर्यायें भी इसकी संबंधी मानी गई हैं।

शंका—यह तो ठीक है कि अकार की जितनी भी निज पर्यायें हैं वे सब इसकी संबंधी मानी जावें-पर जो परपर्यायें हैं वे इसकी संबंधी कैसे मानी जा सकती हैं ?। कारण-ये परपर्यायें भिन्न वस्तु के साथ रही हुई होती हैं। अतः उसीकी संबंधी मानी जावेगी ?-

उत्तर—संबंध दो प्रकार से हुआ करता है-एक अस्तित्व मुख से, और दूसरा नास्तिवत्वमुख से। अस्तित्वमुख से जो संबंध होता है, वह अपनी पर्यायों के साथ पर्यायी का होता है। जैसे रूपादिकों के साथ घट का होता है। नास्तित्वमुख से जो संबंध हुआ करता है वह परपर्यायों का पर्यायी के साथ हुआ करता है। कारण ये परपर्यायें उसमें रहती नहीं हैं। जैसे मिट्टी से जब घट बन कर तैयार हो जाता है, तब उसमें पिण्डाकार

પર્યાયો પોતાની પર્યાયોથી અનેકગણી છે. સ્વપર્યાયો જેમ અકારની સંબંધી માનવામાં આવે છે એજ પ્રકારે પરપર્યાયો પણ તેની સંબંધી માનવામાં આવી છે.

શંકા—એ તો બરાબર છે કે અકારની જેટલી સ્વપર્યાયો છે તે બધી તેની સંબંધી મનાય, પણ જે પરપર્યાયો છે તે તેની સંબંધી કેવી રીતે માની શકાય ? કારણ કે એ પરપર્યાયો ભિન્ન વસ્તુની સાથે રહેલ હોય છે. તેથી તેની જ સંબંધી માની શકાશે.

ઉત્તર—સંબંધ બે રીતે થયા કરે છે-એક અસ્તિત્વમુખથી અને બીજો નાસ્તિત્વમુખથી. અસ્તિત્વમુખથી જે સંબંધ થાય છે તે સ્વપર્યાયોની સાથે પર્યાયીનો હોય છે. જેમ રૂપાદિકોની સાથે ઘડાનો હોય છે. નાસ્તિત્વમુખથી જે સંબંધ થયા કરે છે તે પરપર્યાયોનો પર્યાયીની સાથે થયા કરે છે. કારણ કે તે પર્યાયો તેમાં રહેતી નથી. જેમકે માટીમાંથી જ્યારે ઘડો તૈયાર થાય

पर्यायेण सह सम्बन्धो नास्तित्व सम्बन्धेन। यतोऽसौ पिण्डाकारः पर्यायस्तस्यतदानीं नास्तीति नास्तित्व सम्बन्धेन सम्बन्धः। अत एव च स परपर्याय इति व्यपदिश्यते। अन्यथा तस्यापि तत्रास्तित्व स्वीकारे सोऽपि स्वपर्याय एव स्यात्।

ननु ये यत्र न विद्यन्ते ते कथं 'तस्ये'–ति व्यपदिश्यन्ते। धनं दरिद्रस्य नास्तीति 'धनं तस्य सम्बन्धी'–ति व्यपदेष्टुं न शक्यम्, अन्यथा परपर्यायस्यापि सम्बन्धित्वे लोकव्यवहारातिक्रम प्रसङ्गः? इति चेन्न,

यदि नाम ते–परपर्याया नास्तित्व सम्बन्धमधिकृत्य 'तस्ये'–ति न व्यप-

पर्याय नहीं रहती है। अतः उस घट के साथ पिण्डाकार पर्याय का संबंध नास्तित्वमुख से माना जायगा। इसीलिये वह पिण्डाकार पर्याय परपर्याय होने से निज पर्याय नहीं है। अन्यथा घटमें उसका अस्तित्व होने से वह उसकी निजपर्याय मानी जावेगी। अतः यह अवश्य स्वीकार करना चाहिये कि पर्यायोंका संबंध पदार्थमें नास्तित्वमुख से ही रहा करता है।

शंका—दरिद्र के पास धन जिस प्रकार नहीं होने से वह उसका संबंधी नहीं कहा जाता है, उसी प्रकार जो जहां नहीं है वह उसका संबंधी कैसे कहा जा सकेगा? परपर्याय पर पदार्थमें होती है वह विवक्षित पदार्थ की संबंधी कैसे मानी जा सकती है यदि इस प्रकार का व्यवहार होने लगे तो फिर लोक व्यवहार का ही अतिक्रम करना कहलायेगा।

उत्तर—परपर्यायें विवक्षित पदार्थ की संबंधी हैं इसका तात्पर्य यह

છે ત્યારે તેમાં પિંડાકાર પર્યાય રહેતી નથી. તેથી તે ઘડાની સાથે પિંડાકાર પર્યાયનો સંબંધ નાસ્તિત્વમુખથી માનવામાં આવશે. તે કારણે તે પિંડાકાર પર્યાય પરપર્યાય હોવાથી સ્વપર્યાય નથી. નહીં તો ઘડામાં તેનું અસ્તિત્વ હોવાથી તે તેની સ્વપર્યાય માનવામાં આવે તેથી એ અવશ્ય સ્વીકારવું જોઈએ કે પરપર્યાયોનો સંબંધ પદાર્થમાં નાસ્તિત્વમુખથી રહ્યા કરે છે.

શંકા—જેમ દરિદ્રની પાસે ધન ન હોવાથી તે તેનો સંબંધી કહેવાતો નથી એજ પ્રકારે જે જ્યાં નથી તે તેનું સંબંધી કેવી રીતે કહી શકાય? પરપર્યાય પર પદાર્થમાં હોય છે તે વિવક્ષિત પદાર્થની સંબંધી કેવી રીતે માની શકાય. જો આ પ્રકારનો વ્યવહાર થવા લાગે તો પછી લોક વ્યવહારનો જ અતિક્રમ કર્યો કહેવાય.

ઉત્તર—પરપર્યાયો વિવક્ષિત પદાર્થની સંબંધી છે તેનું તાત્પર્ય એવું

दिश्यन्ते, तर्हि सामान्यतो न सन्तीति प्राप्तम्। तथा च ते स्वरूपेणाऽपि न भवेयुः, न चैतद् दृष्टं श्रुतं वा तस्मादवश्यं ते नास्तित्व सम्बन्धमङ्गीकृत्य 'तस्ये'-ति व्यपदेश्याः। धनमपि च नास्तित्व सम्बन्धमधिकृत्य 'दरिद्रस्ये'-ति व्यपदिश्यते एव। तथा-'धनमस्य दरिद्रस्य न विद्यते' इति लोकवादः।

यदपि चोक्तं 'तत् तस्ये'-ति व्यपदेष्टुं न शक्यमिति, तत्रापि तदस्तित्वेन तस्येति व्यपदेष्टुं न शक्यं, न तु नास्तित्वेनापि। ततो न कश्चित् लौकिक व्यवहारातिक्रमः।

नहीं है कि वे उसमें अस्तित्व मुख से संबंधित हैं। यह शंका तो उचित उस समय मानी जाती कि जब उसे विवक्षित पदार्थमें अस्तित्वमुख से संबंधित की जाती। यहां तो ऐसा कहा जाता है कि-पदार्थमें एक दूसरे पदार्थ की पर्यायों का जो इतरेतराभाव-अन्योन्याभाव रूप से संबंध है वह वहां नास्तित्वमुख से है। यदि नास्तित्वमुख से वे परपर्यायें विवक्षित पदार्थ की संबंधी हैं तो इसमें क्या आपत्ति हो सकती है। यदि नास्तित्व के संबंधसे वे पर पर्यायें विवक्षित पदार्थ की संबंधी न मानी जावें तो इसका तात्पर्य यह होता है कि ये सामान्यरूप से भी अस्तित्व विशिष्ट नहीं हैं। इस तरह स्वरूपतः भी इनका कोई अस्तित्व नहीं बन सकेगा। नास्तित्व संबध से धन भी दरिद्र का संबंधी मानने में कोई बाधा नहीं है। ऐसा व्यपदेश होता ही है। नास्तित्व संबंध से धन दरिद्रव्यक्ति का है इसका तात्पर्य यही है कि दरिद्र के पास धन नहीं है।

નથી કે તેઓ તેમાં અસ્તિત્વમુખથી સંબંધિત છે. આ શંકા તો ત્યારે યોગ્ય મનાય કે જ્યારે તેને વિવક્ષિત પદાર્થમાં અસ્તિત્વમુખથી સંબંધીત કરવામાં આવે. અહીં તો એવું કહેવામાં આવે છે કે-પદાર્થમાં એક બીજા પદાર્થની પર્યાયોનો જે ઇતરેતરા ભાવ રૂપે સંબંધ છે તે ત્યાં નાસ્તિત્વમુખથી છે. જો નાસ્તિત્વમુખથી તે પર્યાયો વિવક્ષિત પદાર્થની સંબંધી હોય તો તેમાં શી મુશ્કેલી હોઈ શકે છે? જો નાસ્તિત્વના સંબંધથી તે પર પર્યાયો વિવક્ષિત પદાર્થની સંબંધી મનાય નહીં તો તેનું તાત્પર્ય એ થાય છે કે તેઓ સામાન્ય રૂપ પણ અસ્તિત્વ વિશિષ્ટ નથી. આ રીતે સ્વરૂપથી પણ તેમનું કોઈ અસ્તિત્વ બની શકશે નહીં. નાસ્તિત્વ સંબંધથી ધનને પણ દરિદ્રનું સંબંધી માનવામાં કોઈ વાંધો નથી. એવો વ્યપદેશ હોય છે જ. નાસ્તિત્વ સંબંધથી ધન દરિદ્ર વ્યક્તિનું છે તેનું તાત્પર્ય એ છે કે દરિદ્રની પાસે ધન નથી. આ રીતે પર-

ननु नास्तित्वमभावरूपम् , अभावश्च स्वरूपशून्यस्तेन सह कथं सम्बन्धः, शून्यस्य सकलशक्ति विकलतया सम्बन्धशक्तेरभावात् ।

अन्यच्च—यदि परपर्यायाणां तत्र नास्तित्वं, तर्हि नास्तित्वेन सह सम्बन्धो भवतु, परपर्यायैस्तु कथं सम्बन्धः ? । घटः पटाभावेन संबद्धः इति न पटेनापि सह सम्बद्धो भवितुमर्हति, तथा प्रतीतेरभावात् ? ।

इसी तरह परपर्यायें नास्तित्वसंबंध से विवक्षित पदार्थ की संबंधी हैं इसका भी तात्पर्यार्थ यही है कि ये उसमें नहीं हैं। "परपर्यायें विवक्षित पदार्थ की हैं" इस रूपसे उनका व्यापदेश नहीं हो सकता है, ऐसा जो कहना है सो इसमें कोई आपत्ति नहीं है। शास्त्र भी तो यही कहते हैं कि अस्तित्व मुख से परपर्यायें विवक्षित पदार्थ की हैं ऐसा व्यापदेश नहीं हो सकता है। परन्तु नास्तित्वमुख से वहां उनका व्यपदेश होनेमें कोई लौकिक व्यवहार का अतिक्रम नहीं होता है।

शंका—नास्त्वि अभावरूप होता है। अभाव का तात्पर्य होता है स्वरूपशून्यता। तो फिर पदार्थ का इस स्वरूपशून्यरूप नास्तित्व के साथ संबंध कैसे बन सकता है। क्यों कि शून्यमें सकल शक्ति की विकलता होने से संबंध स्थापित करने की शक्ति का सद्भाव माना ही कैसे जा सकता है। दूसरी बात एक यह भी है कि "विवक्षित पदार्थमें परपर्यायोंका नास्तित्व है" इस प्रकार के कथनमें यही फलितार्थ निकलता है कि पदार्थ का उन पर्यायों के साथ संबंध नहीं है किन्तु नास्तित्व के साथ

પર્યાયો નાસ્તિત્વ સંબંધથી વિવક્ષિત પદાર્થની સંબંધી છે તેનું તાત્પર્ય પણ એજ છે કે એ તેમાં નથી. "પરપર્યાયો વિવક્ષિત પદાર્થની છે" આ રૂપે તેમનો વ્યપદેશ થઇ શકતો નથી, એમ જે કહેવું છે તેમાં કોઈ આપત્તિ નથી. શાસ્ત્રો પણ એજ કહે છે કે અસ્તિત્વમુખથી પરપર્યાયો વિવક્ષિત પદાર્થની છે એવો વ્યાપદેશ થઇ શકતો નથી. પણ નાસ્તિત્વમુખથી ત્યાં તેવો વ્યપદેશ થવામાં કોઇ લૌકિક વ્યવહારનો અતિક્રમ થતો નથી.

શંકા—નાસ્તિત્વ અભાવરૂપ હોય છે. અભાવનું તાત્પર્ય છે. સ્વરૂપશૂન્યતા તો પછી પદાર્થનો આ સ્વરૂપ શૂન્યરૂપ નાસ્તિત્વની સાથે સંબંધ કેવી રીતે બની શકે? કારણ કે શૂન્યમાં સકળ શક્તિની વિકલતા હોવાથી સંબંધ સ્થાપિત કરવાની શક્તિનો સદ્ભાવ માની જ કેવી રીતે શકાય? બીજી એક વાત એ પણ છે કે વિવક્ષિત પદાર્થમાં પરપર્યાયોનું નાસ્તિત્વ છે આ પ્રકારના કથનમાં એજ ફલિતાર્થ નીકળે છે કે પદાર્થનો એ પર્યાયો સાથે સંબંધ નથી પણ નાસ્તિત્વની સાથે છે. જેમકે "ઘટ પરાભવથી સંબદ્ધ

उच्यते—अयुक्तमेतत्, सम्यग् वस्तुतत्त्वापरिज्ञानात्। तथाहि—नास्तित्वं नाम तेन तेन रूपेणाऽभवनमिष्यते, तच्च तेन तेन रूपेणाऽभवनं वस्तुधर्मस्ततो नैकान्तेन तच्छून्यरूपमिति न सह सम्बन्धाभावः। तदपि च तेन रूपेणाऽभवन तं तं पर्यायमपेक्ष्य भवति, नान्यथा। तथाहि—यो यो घटादिगतः पर्यायस्तेन तेन रूपेण

है। जैसे—" घट पराभाव से संबद्ध है " इस प्रकार के वाच्यार्थ में यह तात्पर्य थोडे ही निकल सकता है कि घट पट के साथ संबंधित हैं। किन्तु घट पटाभाव से ही युक्त है, पट से नहीं, यही बोध होता है। इसी प्रकार परपर्यायों का अभाव विवक्षित पदार्थ में है इसका भी यही तात्पर्य निकलता है कि परपर्यायों का अभाव ही विवक्षित पदार्थ के साथ संबंध है—परपर्यायें नहीं।

उत्तर—वस्तुतत्त्व का समीचीन परिज्ञान नहीं होने से यह शंका की गई है। जब नास्तित्व का " उस उस रूप से नहीं होना " ऐसा तात्पर्य है तो फिर यह वस्तु का ही निजधर्म है। निजधर्म जो होता है वह एकान्ततः शून्यरूप नहीं होता है। इस तरह नास्तित्व के साथ संबंध होने में कोई विरोध नहीं है। तात्पर्य इसका यह है कि शंकाकार ने " नास्तित्व " का तात्पर्य " स्वरूपशून्य " मानकर जो उसका पदार्थ के साथ संबंधाभाव स्थापित किया था उसका यहां यह उत्तर दिया गया है। नास्तित्व का भाव स्वरूपशून्यता नहीं है किन्तु उस उस रूप

છે" આ પ્રકારના વાચ્યાર્થમાં એ તાત્પર્ય થોડું જ નીકળે છે કે ઘટ (ઘડો) પટની સાથે સંબંધિત છે, પણ ઘટ પટાભાવથી જ યુક્ત છે, પટથી નહીં,. એજ બોધ થાય છે. એજ પ્રકારે પરપર્યાયોનો અભાવ વિવક્ષિત પદાર્થમાં છે એનું પણ એજ તાત્પર્ય નીકળે છે કે પરપર્યાયોનો અભાવ જ વિવક્ષિત પદાર્થની સાથે સંબંધ છે—પરપર્યાયો નહીં.

ઉત્તર—વસ્તુતત્વનું સંપૂર્ણ પરિજ્ઞાન ન હોવાથી આ શંકા ઉઠાવવામાં આવી છે. જો નાસ્તિત્વનું" તે તે રૂપે ન હોવું " એવું તાત્પર્ય છે તો એ વસ્તુનો જ પોતાનો ધર્મ છે. જે પોતાનો ધર્મ હોય છે તે એકાન્તતઃ શૂન્યરૂપ હોતો નથી. આ રીતે નાસ્તિત્વની સાથે સબંધ હોવામાં કોઇ વિરોધ નથી. તેનું તાત્પર્ય એ છે કે શંકાકારે "નાસ્તિત્વ"નું તાત્પર્ય " સ્વરૂપશૂન્ય " માનીને તેનો પદાર્થની સાથે જે સંબંધાભાવ સ્થાપિત કર્યો હતો તેનો અહીં આ ઉત્તર આપવામાં આવ્યો છે. નાસ્તિત્વનો અર્થ સ્વરૂપશૂન્યતા નથી પણ " તે તે

पटादौं न भवितव्यमिति सामर्थ्यात् तं तं पर्यायमपेक्षते, इति सुप्रतीतमेतत्। ततस्तेन तेन पर्यायेणाऽभवनस्य तं तं पर्यायमपेक्ष्य संभवात्। तेऽपि परपर्यायास्तस्योपयोगिन इति 'तस्ये'-ति व्यपदिश्यन्ते। एवं रूपायां च विवाक्षायां पटोऽपि घटस्य परपर्याय सम्बन्धेन सम्बन्धी भवत्येव, पटमपेक्ष्य घटे पटरूपेण अभवनस्य सद्भावात्। तथा च-लौकिका अपि घटपटादीन् परस्परमन्योन्याभावमधिकृत्य सम्बन्धिनो व्यवहरन्तीति सुप्रसिद्धमेतत्। १।

से नहीं होना है। अब यह उस २ रूप से नहीं होना रूप जो नास्तित्व है वह पदार्थ में प्रतीत ही है। अतः यह वस्तु का ही धर्म है। जो वस्तु का धर्म होता है वह एकान्ततः अभावरूप-तुच्छाभावरूप नहीं माना जाता है। विवक्षित पदार्थ "उस उस रूपवाला नहीं है" ऐसा जो कहा जाता है वह भिन्न २ परपर्याय की अपेक्षा लेकर ही कहा जाता है। अर्थात्-घट में पटरूपता नहीं है ऐसा जो कहा जाता है उसका तात्पर्य यह है कि पटादिगत जो पर्याय है वह घट में नहीं है इसलिये वह पर्याय अपेक्षित होकर घट में अभावरूप से प्रतिपादित की जाती है। यही परपर्याय का वहां नास्तित्वरूप संबंध है। यह नास्तित्वरूप अभवन उस उस पर्याय की अपेक्षा विना बनता नहीं है इसलिये उस उस पर्याय की अपेक्षा पड़ती है। इस तरह ये परपर्यायें उस विवक्षित पदार्थ की स्थिति में उपयोगी होती हैं इसलिये "ये उसकी हैं" ऐसा व्यपदेश होता है। इस तरह की मान्यता में-विवक्षा में-पट भी घटका

રૂપે ન હોવું" છે. હવે તે તે રૂપે નહીં હોવા રૂપ એ જ નાસ્તિત્વ છે તે પદાર્થમાં પ્રતીત જ છે. તેથી તે વસ્તુનો જ ધર્મ છે. જે વસ્તુનો ધર્મ હોય છે તે એકાન્તતઃ અભાવરૂપ-તુચ્છભાવરૂપ માની શકાતો નથી. વિવક્ષિત પદાર્થ" તે તે રૂપવાળો નથી" એવું જે કહેવામાં આવે છે તે ભિન્ન ભિન્ન પરપર્યાયની અપેક્ષાએ જ કહેવાય છે. એટલે કે ઘડામાં પટરૂપતા નથી એવું જે કહેવાય છે તેનુ તાત્પર્ય એ છે કે પટાદિગત જે પર્યાય છે તે ઘડામાં નથી. તે કારણે તે પર્યાય અપેક્ષિત થઈને ઘડામાં અભાવરૂપે પ્રતિપાદિત કરાય છે. એ જ પરપર્યાયનો ત્યાં નાસ્તિત્વરૂપ સંબંધ છે એ નાસ્તિત્વરૂપ અભવન તે તે પર્યાયની અપેક્ષા વિના બનતું નથી, તે કારણે તે તે પર્યાયની આવશ્યકતા રહે છે. આ રીતે એ પર્યાયો તે વિવક્ષિત પદાર્થની સ્થિતિમાં ઉપયોગી થાય છે તે કારણે "તે તેની છે" એવો વ્યપદેશ થાય છે. આ પ્રકારની માન્યતામા-વિવક્ષામાં પટ

किञ्च—अस्मादपि कारणात् ते परपर्यायाः 'तस्ये'-ति व्यपदिश्यन्ते, स्वपर्याय विशेषणत्वेन तेषामुपयोगात्। इह ये यस्य स्वपर्याय-विशेषणत्वेन उपयुज्यन्ते, ते तस्य पर्यायाः [यथा घटस्य रूपादयः पर्यायाः परस्पर विशेषकतया घटादि पर्यायाः,] तानन्तरेण तेषां स्वपर्यायव्यपदेशासंभवात्। तथाहि-यदि ते

परपर्याय के संबंध से संबंधी हो जाता है। क्यों कि पटकी अपेक्षा घट में पटरूपता के अभाव का सद्भाव पाया जाता है। लोक में भी घटपट आदि पदार्थों को परस्पर में अन्योन्याभाव को लेकर संबंधीरूप से कहते ही है। १।

और भी ये परपर्यायें विवक्षित पदार्थ की संबंधी इसलिये भी मानी जाती है कि ये स्वपर्याय की विशेषण होती हैं। "जो पर्यायें जिस पदार्थ की स्वपर्यायों की विशेषणरूप से होती हैं वे उस पदार्थ की संबंधी हैं" ऐसा माना जाता है जैसे रूपादिक घटकी पर्यायें मानी जाती हैं। तात्पर्य कहने का यह है कि ये परपर्यायें स्वपर्यायों की स्थिति होने में विशेषणरूप से व्यवहृत हुआ करती हैं, इसलिये उन्हें विवक्षित पदार्थों की संबंधिनी मान ली जाती हैं। जैसे रूपादिक पर्यायें घटकी स्थिति में विशेषणरूप से होती है और वे उसकी संबंधी मानी जाती हैं। विशेषणरूप से होने का तात्पर्य यह है कि स्वपर्यायों में जो यह स्वशब्द है वह "पर" इस शब्द की अपेक्षा वाला है। स्व की कीमत "पर" इस पर रही हुई हैं। "पर" है तभी जाकर "स्व" की शोभा है।

પણ ઘટનો પરપર્યાયના સંબંધથી સંબંધી થઇ જાય છે. કારણ કે પટની અપેક્ષાએ ઘટમાં પટરૂપતાના અભાવનો સદ્ભાવ જોવા મળે છે. લોકમાં પણ ઘટપટ આદિ પદાર્થોને પરસ્પરમાં અન્યોન્યાભાવને લીધે સંબંધી રૂપે કહે જ છે. (૧)

અને એ પરપર્યાયો વિવક્ષિત પદાર્થની સંબંધી તે કારણે પણ મનાય છે કે તેઓ સ્વપર્યાયની વિશેષણ હોય છે. "જે પર્યાયો જે પદાર્થની સ્વપર્યાયોના વિશેષણરૂપે હોય છે તેઓ તે પદાર્થની સંબંધી છે" એમ મનાય છે. જેમ રૂપાદિક ઘડાની પર્યાયો મનાય છે. કહેવાનું તાત્પર્ય એ છે કે એ પરપર્યાયો સ્વપર્યાયોની સ્થિતિ થવામાં વિશેષણરૂપે વ્યવહૃત થયા કરે છે, તે કારણે તેમને વિવક્ષિત પદાર્થોની સંબંધિની માની લેવામાં આવે છે. જેમ રૂપાદિક પર્યાયો ઘટની સ્થિતિમાં વિશેષણરૂપે હોય છે અને તે તેની સંબધી મનાય છે. વિશેષણરૂપે હોવાનું તાત્પર્ય એ છે કે-સ્વપર્યાયોમાં જે આ સ્વશબ્દ છે તે "પર" એ શબ્દની અપેક્ષાવાળો છે સ્વની કીમત "પર" એના ઉપર રહી છે. "પર"

परपर्याया न भवेयुस्तर्हि 'अकारस्य स्वपर्यायाः' इति न व्यपदिश्येरन्, परापेक्षया स्वव्यपदेशस्य संभवात्। ततः स्वपर्यायव्यपदेशकारणतया तेपि परपर्यायास्तस्योपयोगिन इति 'तस्ये' ति व्यपदिश्यन्ते । २ ।

अपि च—सर्वं वस्तु प्रतिनियतस्वभावं, प्रतिनियतस्वभावता च प्रतियोग्यभावात्मकतानिबन्धना । ततो यावन्न प्रतियोगिविज्ञानं भवति, तावन्नाधिकृतं वस्तु तदभावात्मकं तत्त्वतो ज्ञातुं शक्यते । तथा च सति घटादि पर्यायाणामपि अभाव प्रतियोगित्वात् तदविज्ञानं यावद् भवति. तावन्नाधिकृतं वस्तु तदभावात्मकं परिज्ञातमिति नाकारो यथात्मनाऽवगन्तुं शक्यते, इति घटादिपर्याया अप्यकारस्य पर्यायाः

यदि वे परपर्यायें न हों तो ये अकार की स्वपर्यायें हैं ऐसा व्यपदेश ही नहीं हो सकेगा। कारण स्व व्यपदेश परापेक्ष है। इसलिये पर्यायों में स्व व्यपदेश का कारण होने से वे परपर्यायें भी उस विवक्षित पदार्थ की उपयोगी हैं अतः उनमें "तस्य" ऐसा व्यपदेश होता है ॥ २ ॥

फिर भी-संसार की जितनी भी वस्तुएँ हैं वे सब प्रतिनियत स्वभाव वाली हैं। और यह प्रतिनियत स्वभावता उनमें प्रतियोगी पदार्थ के अभाव को लेकर ही आई हुई है। इसलिये यह ध्रुव सत्य है कि वस्तु अपने स्वभाव में प्रतिनियत है यह बात स्पष्टरूप से जानने के लिये प्रतियोगी पदार्थ का ज्ञान होना चाहिये। तभी जाकर विवक्षित वस्तु में "प्रतियोगी पदार्थ का अभाव रहा हुआ है" ऐसा कहा जा सकता है।

और भी "अकार की ये निज पर्यायें हैं" ऐसा बोध अकार पर्यायों

છે ત્યારે જ "સ્વ" ની શોભા છે. જો એ પરપર્યાયો ન હોત તો એ આકારની સ્વપર્યાયો છે. એવો વ્યપદેશ જ થઈ શકત નહીં. કારણ કે સ્વ વ્યપદેશ પરાપેક્ષ છે. તે કારણે પર્યાયોમાં સ્વ વ્યપદેશનું કારણ હોવાથી એ પરપર્યાયો પણ તે વિવક્ષિત પદાર્થને ઉપયોગી થાય છે, તેથી તેમનામાં "तस्य" એવો વ્યપદેશ થાય છે. ॥ ૨ ॥

વળી સંસારની જેટલી વસ્તુઓ છે તે બધી પ્રતિનિયત સ્વભાવવાળી છે. અને એ પ્રતિનિયત સ્વભાવતા તેમનામાં પ્રતિયોગી પદાર્થના અભાવને લીધે જ આવેલી છે. તે કારણે એ ધ્રુવ સત્ય છે કે વસ્તુ પોતાના સ્વભાવમાં પ્રતિનિયત છે એ વાત સ્પષ્ટરૂપે સમજવાને માટે પ્રતિયોગી પદાર્થનું જ્ઞાન હોવું જોઈએ. ત્યારે જ વિવક્ષિત વસ્તુમાં "પ્રતિયોગી પદાર્થનો અભાવ રહેલ છે" એમ કહી શકાય છે.

વળી—"અકારની એ સ્વપર્યાયો છે" એવો બોધ અકાર પર્યાયોમાં ત્યારે

तथा चात्र प्रयोगः–यदनुपलब्धौ यस्यानुपलब्धिः स तस्य सम्बन्धी । यथा घटस्य रूपादयः । घटादि पर्यायानुपलब्धौ चाकारस्य न यथावस्थित स्वरूपेणोपलब्धिरिति ते तस्य सम्बन्धिनः ।

न चायमसिद्धो हेतुः, घटादि पर्यायरूपप्रतियोग्यपरिज्ञानात् तदभावात्मकस्याकारस्य तत्त्वतो ज्ञातत्वायोगात् ।

में तभी हो सकता है कि जब उसमें पर के–घटादि पर्यायों के–अभाव का बोध हो । जब तक इनका उनमें अभाव का बोध नहीं होगा तब तक अकार का वास्तविकरूप से परिज्ञान नहीं हो सकेगा । इस तरह अकार का यथार्थबोध होने के लिये घटादि पर्यायों का बोध होना आवश्यक है। इस दृष्टि से घटादि पर्याय भी अकार के संबंधी हैं ऐसा कहा जाता है ।

यहां प्रयोग इस प्रकार है–जिसकी अनुपलब्धि होने पर जिसकी अनुपलब्धि होती है, वह उसका संबंधी होता है–जैसे रूपादिक की अनुपलब्धि होने पर घट की अनुपलब्धि होती है । इसी प्रकार से घटादिपर्यायों की अनुपलब्धि में अकार की यथावस्थितरूप से उपलब्धि नहीं होती है इसलिये वे उसकी संबंधिनी हैं ऐसा माना जाता है। इस अनुमान प्रयोग में हेतु असिद्ध नहीं है कारण घटादिपर्यायरूप जो प्रतियोगी पदार्थ है वह जबतक परिज्ञात नहीं हो जाता है जबतक उसके अभावरूप अकार का तत्त्वतः ज्ञान नहीं हो सकता है । इसलिये यह

જ થઈ શકે છે કે જ્યારે તેમાં પરના–ઘટાદિ પર્યાયોના–અભાવનો બોધ થાય. જ્યાં સુધી તેમનામાં તેમના અભાવનો બોધ નહીં થાય ત્યાં સુધી આકારનું વાસ્તવિકરૂપે પરિજ્ઞાન થઈ શકશે નહીં. આ રીતે આકારનો યથાર્થ બોધ થવાને માટે ઘટાદિ પર્યાયોનો બોધ થવો તે આવશ્યક છે. આ દષ્ટિએ ઘટાદિ પર્યાય પણ અકારની સંબંધી છે એમ કહેવામાં આવે છે.

અહીં પ્રયોગ આ પ્રકારે છે–જેની અનુપલબ્ધિ થતા જેની અનુપલબ્ધિ થાય છે તે તેનું સંબંધી હોય છે જેમકે રૂપાદિકની અનુપલબ્ધિ (અભાવ) થતા ઘડાની અનુપલબ્ધિ હોય છે; એજ પ્રમાણે ઘટાદિ પર્યાયોની અનુપલબ્ધિમાં અકારની યથાવસ્થિત રૂપે ઉપલબ્ધિ થતી નથી તે કારણે તેઓ તેની સંબંધિની છે એમ માનવામાં આવે છે આ અનુમાન પ્રયોગમાં હેતુ અસિદ્ધ નથી કારણ કે ઘટાદિ પર્યાયરૂપ જે પ્રતિયોગી પદાર્થ છે. તે જ્યાં સુધી પરિજ્ઞાત થઈ જતો નથી ત્યાં સુધી તેના અભાવરૂપ અકારનુ તત્ત્વતઃ જ્ઞાન થઈ શકતું નથી. તે

तस्माद् घटादिपर्याया अप्यकारस्य सम्बन्धिन इति स्वपर्यायापेक्षयाऽकारः सर्वद्रव्य पर्याय परिमाणः।

एवमाकारादयोऽपि वर्णाः सर्वे प्रत्येकं सर्व द्रव्यपर्याय परिमाणा वेदितव्याः। एवं घटादिकमपि प्रत्येकं सर्वं वस्तु जातं परिभावनीयं, न्यायस्य समानत्वात्। न चैतदनार्षं, यत उक्तमाचाराङ्गे—

"जे एगं जाणइ, से सव्वं जाणइ। जे सव्वं जाणइ, से एगं जाणइ।"

अयमर्थः—य एकं वस्तु सर्वपर्यायैः सह जानाति, स नियमेन सर्वं वस्तु जानाति। सर्वोपलब्धिमन्तरेण विवक्षितस्यैकस्य स्वपर्यायभेदभिन्नतया सर्वात्मनाऽवगन्तुमशक्यत्वात् यश्च सर्वं सर्वात्मनासाक्षाद् जानाति, स एकं स्वपर्यायभेदभिन्नं जानाति।

मानना चाहिये कि घटादि परपर्यायें भी अकार की संबंधी हैं। इस तरह अकार सर्वद्रव्य पर्याय भी परिमाणवाला सिद्ध हो जाता है। इस तरह और भी आकार आदि जो वर्ण हैं वे भी प्रत्येक सर्वद्रव्य-पर्यायप्रमाणानुरूप हैं यह सिद्ध हो जाता हैं। घटादिक जो वस्तुएँ हैं उनमें भी इस न्याय के समान होने से सर्वपर्यायप्रमाणता घटित हो जाती है। हमारा इस प्रकार का यह कथन आगम से प्रतिकूल नहीं पड़ता है, कारण आचाराङ्ग में ऐसा ही कहा है-"जे एगं जाणइ से सव्वं जाणइ, जे सव्वं जाणइ से एगं जाणइ" इति। इसका भाव यह है कि जो एक जीवादिक वस्तु को अपनी २ समस्त पर्यायों सहित जानता है वह नियम से समस्त वस्तुओं को जानता है। विवक्षित एक वस्तु का "यह अपनी समस्त पर्यायों से सहित है तथा परपर्यायों का इसमें

કારણ એમ માનવું જોઇએ કે ઘટાદિ પરપર્યાયો પણ અકારની સંબંધી છે. આ રીતે અકાર સર્વદ્રવ્યપર્યાય પરિણામવાળો સિદ્ધ થઇ જાય છે. એજ રીતે બીજાં પણ અકાર આદિ જે વર્ણન છે તેઓ પણ પ્રત્યેક સર્વદ્રવ્યપર્યાય પ્રમાણાનુરૂપ છે તે સિદ્ધ થઈ જાય છે. ઘટાદિક જે વસ્તુઓ છે તેમનામાં પણ આ ન્યાયથી સમાનતા હોવાથી સર્વપર્યાય પ્રમાણતા ઘટિત થઈ જાય છે. અમારૂં એ પ્રકારનું આ કથન આગમથી વિરૂદ્ધ જતું નથી. કારણ કે આચારાંગમાં એવું જ કહ્યું છે-"जे एगं जाणइ से सव्वं जाणइ, जे सव्वं जाणइ से एगं जाणइ" તેનું તાત્પર્ય એ છે કે જે એક જીવાદિક વસ્તુને પોત પોતાની સમસ્ત પર્યાયો સહિત જાણે છે તે નિયમથી સમસ્ત વસ્તુઓને જાણે છે. વિવક્ષિત એક વસ્તુનો "આ પોતાની સમસ્ત પર્યાયોયુક્ત છે તથા પરપર્યાયોનો તેમાં અભાવ છે"

अन्यत्राप्युक्तम्—

"एको भावः सर्वथा येन दृष्टः,
सर्वे भावाः सर्वथा तेन दृष्टाः ।
सर्वे भावाः सर्वथा येन दृष्टाः,
एको भावः सर्वथा तेन दृष्टः"॥ १ ॥

तदेवमकारादिकमपि वर्णजातं केवलज्ञानवत् सर्वद्रव्यपर्याय परिमाणमिति न कश्चिद्विरोधः ।

अपि च-केवलज्ञानपि स्वपरपर्यायभेदभिन्नं भवति । तच्चात्मस्वभावरूपं न

अभाव है" ऐसा बोध जबतक नहीं होगा तबतक वह वस्तु सर्वात्मना जानी हुई नहीं कहला सकेगी। अतः जब वह इस रूप से जान ली जाती है तो इसका तात्पर्य ही यह है कि उस जानने वाले को सर्व पदार्थ की उपलब्धि हो चुकी है तभी वह विवक्षित वस्तु को सर्व पर्यायों सहित जान सका है। इसी तरह जो सर्व वस्तु को सर्वात्मना साक्षात् जानता है वह एक वस्तु को स्वपरपर्याय के भेदरूप से जानता है। अन्यत्र भी इसी बात की पुष्टि इस प्रकार से की है—

"एको भावः सर्वथा येन दृष्टः, सर्वे भावाः सर्वथा तेन दृष्टाः ।
सर्वे भावाः सर्वथा येन दृष्टाः एको भावः सर्वथा तेन दृष्टः ॥१॥" इति।

इस तरह अकार आदि समस्त वर्ण समूह केवलज्ञान की तरह सर्वद्रव्यपर्यायों के प्रमाणानुरूप है इस कथन में कोई विरोध नहीं आता है।

એવો બોધ જ્યાં સુધી નહીં થાય ત્યાં સુધી તે વસ્તુ સર્વાત્મના જાણેલી કહી શકાશે નહીં. તેથી જો તે એ રૂપે જાણી લેવાય છે તો તેનું તાત્પર્ય જ એ છે કે તે જાણનારને સર્વ પદાર્થની ઉપલબ્ધિ થઈ ગઈ છે ત્યારે જ તે વિવક્ષિત વસ્તુને સર્વપર્યાયો સહિત જાણી શકે છે. આ રીતે જે સર્વવસ્તુને સર્વાત્મના પ્રત્યક્ષ પણે છે તે એક વસ્તુને સ્વરૂપ પર્યાયના ભેદરૂપથી જાણે છે. અન્યત્ર પણ એજ વાતની પુષ્ટિ આ રીતે કરી છે—

"एको भावः सर्वथा येन दृष्टः, सर्वे भावाः सर्वथा तेन दृष्टाः ।
सर्वे भावाः सर्वथा येन दृष्टाः, एको भावः सर्वथा तेन दृष्टः ॥१॥"

આ રીતે અકાર આદિ સમસ્ત વર્ણસમૂહ કેવળજ્ઞાનની જેમ સર્વદ્રવ્ય પર્યાયોના પ્રમાણાનુરૂપ છે આ કથનમાં કોઈ વિરોધ નડતો નથી.

तु घटादिवस्तुस्वभावात्मकम्। तस्माद् ये घटादिवस्तुनः स्वभावास्ते केवलज्ञानस्य परपर्यायाः, ये तु परिच्छेदकत्व स्वभावास्ते स्वपर्यायाः। परपर्याया अपि पूर्वोक्तयुक्तेस्तस्य सम्बन्धिन इति स्वपरपर्यायभेदभिन्नं भवति।

ततः स्वपर्यायपरिमाणचिन्तायां परमार्थतो न कश्चिदकारादि संयुक्तश्रुत-केवलज्ञानयोर्विशेषः। एतावानेव विशेषः-केवलज्ञानं स्वपर्यायैरेव सर्वद्रव्यपर्याय-परिमाणतुल्यम्। अकारादिकं तु स्वपर्यायैः। तथाहि-अकारस्य स्वपर्यायाः—

फिर भी-केवलज्ञान में भी स्वपर्याय की भिन्नता से भेद सिद्ध होता है। आत्मस्वभावरूपता यह केवलज्ञानको निज पर्याय है। तथा घटादि-रूप जो वस्तुएँ हैं तदात्मकता उसमें नहीं है यह केवलज्ञान की परपर्याय है। केवलज्ञान में आत्मस्वभावरूपता जो निजपर्याय हैं उसका तात्पर्य पदार्थ परिच्छेदक स्वभाव से है। जिस प्रकार निजपर्याय केवलज्ञान की संबंधी मानी गई है उसी प्रकार पूर्वोक्तयुक्ति के अनुसार परपर्याय भी उसकी संबंधी होती हैं। इस तरह केवलज्ञान में इन दोनों पर्यायों की भिन्नता से भेद आ जाता है।

जब इस प्रकार से स्वपर्यायपरिमाण का विचार किया जाता है तब परमार्थतः अकारादि संयुक्त श्रुतज्ञान में और केवलज्ञान में यद्यपि कोई भेद नहीं प्रतीत होता है। परन्तु फिर भी केवलज्ञान में जो सर्वद्रव्य-पर्याय परिमाण तुल्यता कही गई है वह स्वपर्यायों से ही जाननी चाहिये। परपर्यायों द्वारा नहीं। और अकारादिकों में यह सर्वद्रव्यपर्यायपरिमाणता

તથા-કેવળજ્ઞાનમાં પણ સ્વપર્યાય અને પરપર્યાયની ભિન્નતાથી ભેદ સિદ્ધ થાય છે. આત્મસ્વભાવરૂપતા એ કેવળજ્ઞાનની સ્વપર્યાય છે. તથા ઘટાદિરૂપ જે વસ્તુઓ છે તેમાં તદાત્મકતા નથી, તે કેવળજ્ઞાનની પરપર્યાય છે. કેવળજ્ઞાનમાં આત્મસ્વભાવરૂપતા જે સ્વપર્યાય છે તેનુ તાત્પર્ય પદાર્થ પરિચ્છેદક સ્વભાવ છે. જેમ સ્વપર્યાય કેવળજ્ઞાનની સંબંધી માનવામાં આવી છે એમ પૂર્વોકત યુક્તિ પ્રમાણે પરપર્યાય પણ તેની સંબંધી હોય છે. આ રીતે એ બન્ને પર્યાયોની ભિન્નતાથી કેવળજ્ઞાનમાં ભેદ આવી જાય છે.

જ્યારે આ રીતે સ્વપર્યાય પરિમાણનો વિચાર કરવામાં આવે છે ત્યારે પરમાર્થતઃ અકારાદિ સંયુકત શ્રુતજ્ઞાનમાં અને કેવળજ્ઞાનમાં જો કે કોઈ ભેદ લાગતો નથી, છતાં પણ કેવળજ્ઞાનમાં જે સર્વદ્રવ્યપર્યાય પરિમાણ તુલ્યતા કહેલ છે તે સ્વપર્યાયોથી જ જાણવી જોઈએ, પરપર્યાયો દ્વારા નહીં. અને અકારાદિકોમાં આ સર્વદ્રવ્યપર્યાય પરિમાણતા સ્વ અને પરપર્યાયો દ્વારા જાણવી જોઈએ અકાર

सर्वद्रव्यपर्यायाणामनन्तभागकल्पाः, परपर्यायास्तु स्वपर्यायरूपानन्ततमभागोनाः सर्वद्रव्यपर्यायाः। तस्मादकारादिकं स्वपरपर्यायैरेव सर्वद्रव्यपर्यायपरिमाणं भवति।

यथा चाऽकारादिकं सर्वद्रव्यपर्यायपरिमाणं तथा मत्यादीन्यपि ज्ञानानि द्रष्टव्यानि, न्यायस्य समानत्वात्।

इह यद्यपि सर्वं ज्ञानमविशेषेणाक्षर मुच्यते, सर्वद्रव्यपर्यायपरिमाणं च भवति, तथापि श्रुताधिकारादिहाक्षरं श्रुतज्ञानं ग्राह्यम्। श्रुतज्ञानं च मतिज्ञानाविनाभूतं, ततो मति ज्ञानमपि। तदेवं श्रुतज्ञानमकारादिकं चोत्कर्षतः सर्वद्रव्यपर्यायपरिमाणं,

---

स्व और परपर्यायों द्वारा जाननी चाहिये। अकार आदि वर्णों में जो स्वपर्यायें हैं वे तो सर्व द्रव्यपर्यायों के अनन्तवें भाग प्रमाण हैं, तथा जो परपर्यायें हैं वे वहां स्वपर्यायरूप अनन्तवें भागहीन सर्वद्रव्यपर्याय-प्रमाण हैं। इसलिये अकारादि में स्व एवं परपर्यायों द्वारा ही सर्वद्रव्य-पर्यायप्रमाणता सिद्ध होती है।

जिस प्रकार अकारादि सर्व द्रव्यपर्याय परिमाणवाले प्रकट किये गये हैं उसी प्रकार मति आदि ज्ञानों में भी यह सर्व द्रव्यपर्यायप्रमाणता जान लेनी चाहिये। क्यों कि न्याय सर्वत्र समान होता है।

यहां पर यद्यपि सामान्यरूपसे समस्त ज्ञान अक्षररूपसे कहा गया है और वह सर्वद्रव्यपर्याय परिमाणरूप बतलाया गया है, तो भी श्रुत का अधिकार होनेसे यहां अक्षर शब्दसे श्रुतज्ञानका ग्रहण करना चाहिये। श्रुतज्ञान मतिज्ञानका अविनाभावी होता है इस अपेक्षासे उसमें भी सर्व द्रव्यपर्याय प्रमाणता सिद्ध हो जाती है। इस तरह श्रुतज्ञान

આદિ વર્ણોમાં જે સ્વપર્યાયો છે તે તો સર્વદ્રવ્યપર્યાયોના અનંતમાંભાગ પ્રમાણ છે, તથા જે પરપર્યાયો છે તે ત્યાં સ્વપર્યાયરૂપ અનંતમાં ભાગહીન સર્વદ્રવ્ય-પર્યાયપ્રમાણ છે. તે કારણે અકારાદિમાં સ્વ અને પરપર્યાયો દ્વારા જ સર્વદ્રવ્ય-પર્યાય પ્રમાણતા સિદ્ધ થાય છે.

જે રીતે અકારાદિ સર્વદ્રવ્યપર્યાયવાળા પ્રગટ કરેલ છે એજ રીતે મતિ આદિ જ્ઞાનોમાં પણ એ સર્વદ્રવ્યપર્યાયપ્રમાણતા સમજી લેવી કારણ કે સર્વત્ર ન્યાય સમાન જ હોય છે.

અહીં જો કે સામાન્યરૂપે સમસ્તજ્ઞાન અક્ષરરૂપે કહેવામાં આવ્યું છે અને તે સર્વદ્રવ્યપર્યાયપરિમાણરૂપ બતાવવામાં આવ્યું છે, તો પણ શ્રુતનો અધિકાર હોવાથી અહીં અક્ષર શબ્દથી શ્રુતજ્ઞાનને ગ્રહણ કરવું જોઈએ. શ્રુતજ્ઞાન મતિ-જ્ઞાનનું અવિનાભાવી હોય છે તે અપેક્ષાએ તેમાં પણ સર્વદ્રવ્યપર્યાયપ્રમાણતા

तच्च सर्वोत्कृष्ट श्रुतकेवलिनो द्वादशाङ्गविदः संभवति. न तु शेषस्य। तस्मात् अनादिभावः श्रुतस्य जन्तूनां जघन्यो मध्यमो वा द्रष्टव्यो न तूत्कृष्ट इति स्थितम्।

ननु श्रुतस्यानादिभाव एवकथमुपसपद्यते—यदा हि सर्वोत्कृष्ट श्रुतज्ञानावरण—स्त्यानर्द्धिनिद्रारूपदर्शनावरणोदयः—संभवति, तदा साकल्येन श्रुतस्यावरणं संभाव्यते, यथाऽवध्यादि ज्ञानस्य। तस्मादवध्यादिज्ञानमिव श्रुतमपि—आदिमदितिकथं तृतीय चतुर्थभङ्गसंभवस्तत आह—'सव्व जीवाणपि०' इत्यादि। सर्वजीवानामपि च

और अकार आदि अक्षरोंमें जो यह उत्कृष्टरूपसे सर्वद्रव्य पर्यायप्रमाणता प्रकट की गई है वह द्वादशांगके पाठी सर्वोत्कृष्ट श्रुतकेवली की अपेक्षासे ही जाननी चाहिये। क्यों कि वहीं पर यह उत्कृष्टता संभवित होती है अन्य जीवों के श्रुतज्ञान आदिमें नहीं। कारण कि वहां पर श्रुतका अनादिभाव जघन्य या मध्यमरूपसे बतलाया गया है। उत्कृष्ट रूपसे नहीं।

शंका—श्रुतमें जो अनादिता प्रकट की गई है वह समझमें नहीं आती है। कारण जब जीव के सर्वोत्कृष्ट श्रुत ज्ञानावरणका स्त्यानर्द्धिका एवं निद्रारूप दर्शनावरण कर्मका उदय होता है तब उस स्थितिमें संपूर्ण रूपसे श्रुतका आवरण हो जाता है। जिस प्रकार कि अवधिज्ञानावरणी के उदयमें अवधि ज्ञानका आवरण हो जाता है। अतः यह कैसे माना जा सकता है कि श्रुतज्ञान अनादि है। अवधिज्ञान आदि की तरह वह भी सादि ही है और इस तरह उसमें ये तृतीय और चतुर्थ भंग संभवित नहीं होते हैं।

સિદ્ધ થઈ જાય છે. આ રીતે શ્રુતજ્ઞાન અને અકારાદિ અક્ષરોમાં જે આ ઉત્કૃષ્ટ રૂપે સર્વદ્રવ્યપર્યાયપ્રમાણતા પ્રગટ કરવામાં આવી છે તે દ્વાદશાંગના પાઠી સર્વોત્કૃષ્ટ શ્રુતકેવળીની અપેક્ષાએ જ જાણવી જોઈએ. કારણ કે ત્યાં જ તે ઉત્કૃષ્ટતા સંભવિત હોય છે અન્ય જીવોનાં શ્રુતજ્ઞાન આદિમાં નહીં. કારણ કે ત્યાં શ્રુતનો અનાદિ ભાવ જઘન્ય કે મધ્યમરૂપે બતાવવામાં આવ્યો છે, ઉત્કૃષ્ટ રૂપે નહીં.

શંકા—શ્રુતમાં જે અનાદિતા પ્રગટ કરવામાં આવી છે તે સમજાતી નથી. કારણ કે જ્યારે જીવના સર્વોત્કૃષ્ટ શ્રુત જ્ઞાનાવરણના સ્ત્યાનર્દ્ધિકા અને નિદ્રારૂપ દર્શનાવરણ કર્મનો ઉદય થાય છે ત્યારે તે સ્થિતમાં સંપૂર્ણરૂપેશ્રુતનું આવરણ થઈ જાય છે, જેમ અવધિજ્ઞાનવરણીના ઉદયમાં અવધિજ્ઞાનનું આવરણ થઈ જાય છે. તેમ શ્રુતમાં પણ થાય છે. તેથી શ્રુતજ્ઞાન અનાદિ છે એમ કેવી રીતે માની શકાય! અવધિજ્ઞાન આદિની જેમ તે પણ સાદી જ છે અને આ રીતે તેમાં એ ત્રીજો અને ચોથો ભંગ સંભવિત હોતો નથી.

अक्षरस्य श्रुतज्ञानस्य, श्रुतज्ञानं च मतिज्ञनाविनाभावि, अतो मतिज्ञानस्यापीत्यर्थः, अनन्तभागः-अनन्तमो भागः, नित्योद्घाटितः-सदाऽनावृतस्तिष्ठतीत्यर्थः। स पुनरनन्ततमभागोऽप्यनेकविधः। तत्र सर्वजघन्योभागश्चैतन्यमात्रम्। तत्पुनः सर्वोत्कृष्ट श्रुतावरण-स्त्यानर्द्धिनिद्रोदयभावेऽपि ना व्रियते, तथा जीवस्वभावत्वात्, तदेवाह -'जइपुण०' इत्यादि। यदि पुनः सोऽपि आव्रियेत, तेन-आवरणेन, जीवः-चैतन्यलक्षणः, अजीत्वं प्राप्नुयात्-स्वलक्षणपरित्यागादिति भावः। न चैतद् दृष्ट मिष्टं

उत्तर—समस्त जीवोंका जो श्रुतज्ञान है तथा मतिज्ञान है वह सदा अपने अनन्तवें भाग में अनावृत ही रहा करता है अतः उसका आवरण नहीं होता है। तात्पर्य इसका यह है कि जो शंकाकारने श्रुतज्ञानमें अनादिता का आवरण दशामें असद्भाव प्रकट किया है उसका उत्तर देते हुए सूत्रकार कहते हैं कि ठीक है आवरण दशामें यद्यपि अवधि आदि ज्ञान बिलकुल आवृत्त हो जाते हैं परन्तु मतिज्ञान एवं श्रुतज्ञानमें ऐसा नहीं है। वे तो अपनी आवृत्तदशामें भी अनन्तवें भाग में सदा अनावृत्त रहा करते हैं। मतिज्ञान श्रुतज्ञानका जो अनन्तवां भाग है वह अनेक प्रकारका बतलाया गया है। उसमें सर्व जघन्य जो भाग है वह मात्र चैतन्यरूप पड़ता है। यह चैतन्यरूप सर्व जघन्य भाग सर्वोत्कृष्ट श्रुतावरण, स्त्यानर्द्धि एवं निद्रावरण कर्मके उदयमें भी आवृत्त नहीं होता है कारण जीवका स्वभाव ही ऐसा है। यदि यह स्वभाव भी आवृत्त माना जावे तो इस दशामें चैतन्य लक्षण जीवमें अपने लक्षणके परित्यागके

ઉત્તર—સમસ્ત જીવોનું જે શ્રુતજ્ઞાન તથા મતિજ્ઞાન છે, તે સદા પોતાના અનંતમાં ભાગમાં અનાવૃત જ રહ્યા કરે છે તેથી તેનું આવરણ હોતું નથી. તેનું તાત્પર્ય એ છે કે શંકાકરનારે જે શ્રુતજ્ઞાનમાં અનાદિતાનો આવરણ દશામાં અસદ્‌ભાવ પ્રગટ કર્યો છે તેનો જવાબ આપતા સૂત્રકાર કહે છે કે આવરણ દશામાં જો કે અવધિ આદિ જ્ઞાન બિલકુલ આવૃત થઈ જાય છે પણ મતિજ્ઞાન અને શ્રુતજ્ઞાનમાં એવું થતું નથી. તે તો પોતાની આવૃત્ત દશામાં પણ અનંતમાં ભાગમાં સદા અનુવૃત્ત રહ્યા કરે છે. મતિજ્ઞાન શ્રુતજ્ઞાનનો જે અનેકમો ભાગ છે તે અનેક પ્રકારનો બતાવ્યો છે. તેમાં સર્વજઘન્ય જે ભાગ છે તે માત્ર ચૈતન્યરૂપ પડે છે. આ ચૈતન્યરૂપ સર્વજઘન્ય ભાગ સર્વોત્કૃષ્ટ શ્રુતાવરણ, સ્ત્યાનર્દ્ધિ અને નિદ્રાવરણ કર્મના ઉદયમાં પણ આવૃત્ત થતો નથી, કારણ કે જીવનો સ્વભાવ જ એવો છે. જો તે સ્વભાવ પણ આવૃત્ત માનવામાં આવે તો એ દશામાં ચૈતન્યલક્ષણ જીવમાં પોતાના લક્ષણના પરિત્યાગને કારણે અજીવત્વની પ્રસક્તિ

वा सर्वस्य जीवादिपदार्थस्य सर्वथा स्वभावपरिहारासंभवात्। अत्र दृष्टान्तमाह–' सुट्ठु वि० ' इत्यादि । सुष्ठु अपि मेघसमुदये–चन्द्रसूर्यप्रभा पटलाच्छादके सति चन्द्रसूर्ययोः प्रभा=प्रकाशः, भवति=तिष्ठति । अयं भावः–यथा निविडतरमेघपटलैराच्छादितयोरपि चन्द्रसूर्ययोर्नैकान्तेन तत्प्रभानाशो भवति, सर्वस्य सर्वथास्वभावापनयनस्य कर्तुमशक्यत्वात्। एवमनन्तानन्तैरपि ज्ञानदर्शनावरणकर्मपरमाणुभिरेकैकस्यात्मप्रदेशस्य समाच्छादितस्यापि नैकान्तेन चैतन्यमात्रस्याऽभावो भवति। यतः सर्वजघन्यं तन्मतिश्रुतात्मकम्, अतोऽक्षरस्यानन्ततमोभागो नित्योद्घाटित इति सिद्धम् । तथा च सति मतिज्ञानस्य श्रुतज्ञानस्य वाऽनादि भावो न विरुध्यते, इति स्थितम् ।

कारण अजीवत्वकी प्रसक्ति आवेगी परंतु ऐसी स्थिति जीव पदार्थ की न कभी देखी गई है और न किसी को यह इष्ट ही है. क्यों कि समस्त जीवादि पदार्थों के अपने २ स्वभाव का सर्वथा परिहार होना असंभव है। अब सूत्रकार इसी विषय को दृष्टान्त द्वारा स्पष्ट करते हैं–जिस प्रकार निविडतर मेघपटलों द्वारा चंद्र और सूर्य आवृत्त हो जाते हैं, परन्तु इनकी प्रभा एकान्ततः आवृत्त नहीं होती है–नष्ट नहीं होती है, कारण उन मेघपटलों में ऐसी शक्ति नहीं है, जो वे चंद्र सूर्य के प्रभास्वरूप स्वभाव का सर्वथा अपनयन कर सकें। इसी प्रकार भले ही अनंतानंत भी ज्ञान दर्शनावरण कर्मपरमाणुओं द्वारा एक एक आत्मा का प्रदेश ढक दिया जावे तो भी एकान्ततः चैतन्य मात्र का उस अवस्था में अभाव नहीं हो सकता है। यह जो सर्व जघन्य चैतन्यमात्र अवस्था है यही मतिश्रुतज्ञान का अनंतवां भाग है। इसलिये अक्षर का अनंतवां

આવશે પણ જીવપદાર્થની એવી સ્થિતિ કદી જોવામાં આવી નથી અને કોઈને તે ઈષ્ટ પણ નથી. કારણ કે સમસ્ત જીવાદિ પદાર્થોના પોતપોતાના સ્વભાવનો ત્યાગ થવો અસંભવિત છે. હવે સૂત્રકાર એજ વિષયને દૃષ્ટાંત દ્વારા સ્પષ્ટ કરે છે–જે રીતે ઘાડ વાદળો દ્વારા ચંદ્ર અને સૂર્ય ઢંકાઈ જાય છે પણ તેમનું તેજ એકાન્તતઃ ઢંકાતું નથી. નાશ પામતું નથી કારણ કે તે મેઘપટલોમાં એવી શક્તિ હોતી નથી કે તેઓ ચંદ્ર સૂર્યના પ્રભાસ્વરૂપ સ્વભાવનો સર્વથા નાશ કરી શકે, એજ રીતે ભલે અનંતાનંત જ્ઞાન દર્શનાવરણ કર્મપરમાણુઓ દ્વારા એક આત્માનો પ્રદેશ ઢાંકી દેવાય તો પણ એકાન્તતઃ ચૈતન્ય ભાવનો તે અવસ્થામાં અભાવ હોઈ શકતો નથી. આ જે સર્વજઘન્ય ચૈતન્ય માત્ર અવસ્થા છે એજ મતિશ્રુત જ્ઞાનનો અનંતમો ભાગ છે. તે કારણે અક્ષરનો અનંતમો

'से तं०' इत्यादि। तदेतत् सादिकं सपर्यवसितं श्रुतं वर्णितम्। तथा-तदेतदनादिकमपर्यवसितं च श्रुतं वर्णितम्॥सू०४२॥

मूलम्-से किं तं गमियं?। गमियं दिट्ठिवाओ। से किं तं अगमियं?। अगमियं कालियं सुयं। से तं गमियं। से तं अगमियं॥

छाया—अथ किं तद् गमिकम्?। गमिकं दृष्टिवादः। अथ किं तदगमिकम्? अगमिकं कालिकं श्रुतम्। तदेतद् गमिकम्। तदेतद् अगमिकम्॥

टीका—शिष्यः पृच्छति—'से किं तं गमियं०' इति। अथ किं तद् गमिकम्? इति शिष्य प्रश्न?। उत्तरमाह—'गमियं०' इत्यादि। गमिकं दृष्टिवाद इति। गमो नाम आदि मध्यावसानेषु किंचिद् विशेषतो भूयोभूयस्तस्यैव पाठस्योच्चारणम्। यथासूत्रादौ-सूयं मे आ उसंतेणं भगवया एव मक्खायं इह खलु इत्यादि। एवं मध्येऽवसाने वा यथा संभवं द्रष्टव्यम्। गमोऽस्य विद्यते, इति गमकम्। तच्च

भाग नित्य उद्घाटित सिद्ध होता है। इस तरह मतिज्ञान एवं श्रुतज्ञान में अनादिता का कथन विरुद्ध नहीं पड़ता है। इस तरह यहां तक सादिसांत और अनादि अनंत श्रुतज्ञान का यह वर्णन हुआ॥सू० ४२॥

'से किं तं गमियं?०' इत्यादि।

शिष्य पूछता है—भदन्त! गमिक श्रुतका क्या लक्षण है? उत्तर-बारहवें दृष्टिवादका नाम गमिक है। आदि मध्य और अन्तमें कुछ २ विशेषतासे जो उसी पाठका पुनः २ उच्चारण किया जाता है उसका नाम गम है। जैसे सूत्रकी आदिमें "सुयं मे आ उसंतेणं भगवया एव मक्खायं इह खलु०" इत्यादि, ऐसा पाठ कह दिया जाता है।

ભાગ સદા ઉદ્ઘાટિત સિદ્ધ થાય છે. એ રીતે મતિજ્ઞાન અને શ્રુતજ્ઞાનમાં અનાદિતાનું કથન વિરુદ્ધ પડતુ નથી. આ રીતે અહીં સુધી સાદિસાંત અને અનાદિ અનંત શ્રુતજ્ઞાનનું આ વર્ણન થયુ ॥સૂ. ૪૨॥

"से किं तं गमियं०" ઈત્યાદિ

શિષ્ય પૂછે છે-હે ભદન્ત! ગમિક શ્રુતનું શું લક્ષણ છે?

ઉત્તર—બારમાં દૃષ્ટિવાદનું નામ ગમિક છે. આદિ મધ્ય અને અન્તમાં કોઈક કોઈક વિશેષતાથી જે એજ પાઠનુ ફરી ફરીને ઉચ્ચારણ કરાય છે તેનું નામ ગમ છે. જેમ કે સૂત્રના પ્રારંભે "सुयं मे आउसंतेणं भगवया एवमक्खायं इह खलु" ઈત્યાદિ, એવો પાઠ કહેવામાં આવે છે. એ રીતે મધ્ય અને અન્તમા

प्रायो दृष्टिवाद इति। अथ पुनः शिष्यः पृच्छति—'से किं तं०' इत्यादि। अथ किं तद् अगमिक? मिति। उत्तरमाह—'अगमियं०' इत्यादि। अगमिकं कालिकं श्रुतम्। अगमिकं-गमिकाद् भिन्नम्। तच्च कालिकं-प्रायः आचारादिश्रुतम्, आदौ यथा पाठोऽस्ति-'सुयं मे आउसंतेणं' इति, तथा मध्येऽवसाने च पुनः पाठोनास्तीति गमिकत्वाभावात्। तदेतद् गमिकंश्रुतम् अगमिकं च श्रुतं वर्णितम्॥

मूलम्—अहवा तं समासओ दुविहं पण्णत्तं। तं जहा-अंगपविट्ठं, अंगबाहिरं च। से किं तं अंगबाहिरं?। अंगबाहिरं दुविहं पण्णत्तं। तं जहा—आवस्सयं च आवस्सय—वइरित्तं च। से किं तं आवस्सयं?। आवस्सयं छव्विहं पण्णत्तं। तं जहा—सामाइयं १, चउवीसत्थओ २, वंदणयं ३, पडिक्कमणं ४, काउस्सग्गो ५, पच्चक्खाणं ६। से त्तं आवस्सयं॥

इसी तरहसे मध्य एवं अवसानमें भी इसी प्रकारके पाठका उच्चारण यथासंभव जान लेना चाहिये। इस प्रकारका गम जिस श्रुतमें होता है उसका नाम गमिकश्रुत है। यह गमिकश्रुत-प्रायः बारहवां दृष्टिवाद अंग है। शिष्य पुनः पूछता है। हे भदन्त! आगमिक श्रुत क्या है? उत्तर—कालिक श्रुतका नाम आगमिक श्रुत है, क्यों कि यह गमिक श्रुतसे भिन्न पडता है। यह प्रायः आचारादि श्रुतरूप होता है। गमिक श्रुतमें सूत्र की आदिमें "सुयं मे आ उसंतेणं" यह पाठ उच्चरित होता है उसी तरह से मध्य और आदिमें पुनः इस पाठका उच्चारण अगमिक श्रुतमें नहीं किया है, अतः अगमिक श्रुतमें गमिक श्रुतसे भिन्नता आ जाती है। यह गमिकश्रुत और अगमिक श्रुतका वर्णन हुआ॥

પણ એજ પ્રકારના પાઠનું ઉચ્ચારણ યથાસંભવ સમજી લેવું જોઈએ એ પ્રકારનો ગમ જે જે શ્રુતમાં થાય છે તેનું નામ ગમિકશ્રુત છે. આ ગમિકશ્રુત-પ્રાયઃ બારમાં દૃષ્ટિવાદ અંગ છે. શિષ્ય ફરીથી પૂછે છે-હે ભદન્ત! અગમિક શ્રુત શું છે? ઉત્તર—કાલિક શ્રુતનું નામ અગમિક શ્રુત છે, કારણ કે તેમાં ગમિક શ્રુતથી ભિન્નતા રહેલ છે. તે સામાન્ય રીતે આચારાદિ શ્રુતરૂપ હોય છે. ગમિક શ્રુતમાં સૂત્રને પ્રારંભે "सुय मे आ ऊसंतेणं" આ પાઠ ઉચ્ચારાય છે એજ પ્રમાણે મધ્ય અને આદિમાં ફરીથી આ પાઠનું ઉચ્ચારણ અગમિક શ્રુતમાં કરાતું નથી, તેથી અગમિક શ્રુતમાં ગમિક શ્રુત કરતાં ભિન્નતા આવે છે. આગમિક શ્રુત અને અગમિક શ્રુતનું વર્ણન થયું.

छाया—अथवा तत् समासतो द्विविधं प्रज्ञप्तम्। तद् यथा—अङ्गप्रविष्टम्, अङ्गबाह्यं च। अथ किं तद् अङ्गबाह्यम्?। अङ्गबाह्यं द्विविधं प्रज्ञप्तम्। तद् यथा—आवश्यकं च, आवश्यकव्यतिरिक्तं च। अथ किं तदावश्यकम्। आवश्यकं षड्विधं प्रज्ञप्तम्—तद् यथा सामायिकं १, चतुर्विंशतिस्तवः २, वन्दनकं ३, प्रतिक्रमणं ४, कायोत्सर्गः ५, प्रत्याख्यानम् ६। तदेतद् आवश्यकम्॥

टीका—'अहवा०' इत्यादि। अथवा तत् श्रुतम् अर्हदुपदेशानुसारि श्रुतमित्यर्थः समासतः—संक्षेपेण द्विविधं प्रज्ञप्तम्। तत् यथा—अङ्गप्रविष्टम्, अङ्गबाह्यं च।

ननु पूर्वमेव चतुर्दशभेदकथनाधिकारे त्रयोदशचतुर्दशभेदरूपेण अङ्गप्रविष्टमनङ्गप्रविष्टमित्युपन्यस्तम्, तत् किमर्थमिह—"अहवा तं समासओ दुविहं पण्णत्तं" इत्याद्युपन्यासेन तदेव पुनरुच्यते? इति चेत्?

उच्यते—इह सर्वे श्रुतभेदा अङ्गप्रविष्टानङ्गप्रविष्टरूपभेदद्वय एवान्तर्भवन्ति।

"अहवा तं समासओ०" इत्यादि।

अथवा—अर्हन्त भगवानके उपदेशका अनुसरण करनेवाला वह श्रुत संक्षेपसे दो प्रकारका भी कहा गया है, वे दो प्रकार ये हैं—१ अंगप्रविष्ट—२ अंगबाह्य।

शंका—पहिले ही चौदह भेदों के कथनके अधिकारमें तेरह और चौदह भेदोंके रूपसे अंगप्रविष्ठ तथा अनंगप्राविष्ट ऐसा कह दिया गया है फिर यहां दुबारा "अहवा तं समासओ दुविहं पण्णत्तं" इस प्रकार के कथन की क्या आवश्यकता थी?।

उत्तर—इस तरह जो यहां पर पुनः प्रगट करनेमें आया है उसका कारण यह है कि सूत्रकार यह कहना चाहते हैं कि जितने भी समस्त श्रुतके भेद हैं वे सब इन्हीं दो भेदोंमें अन्तर्भूत हो जाते हैं। तथा

"अहवा तं समास ओ०" ઈત્યાદિ.

અથવા—અર્હંત ભગવાનના ઉપદેશને અનુસારના તે શ્રુત સંક્ષિપ્તમાં આ પ્રમાણે બે પ્રકારનું કહેલ છે-(૧)અંગ પ્રવિષ્ટ, (૨) અંગ બાહ્ય.

શંકા—પહેલાં જ ચૌદ ભેદોનાં કથનનાં અધિકારમાં તેર અને ચૌદ ભેદોના રૂપે અંગપ્રવિષ્ટ તથા અનંગપ્રવિષ્ટ એમ કહેવાઇ ગયું છે તો પછી અહીં બીજી વાર "अहवा तं समासओ दुविहं पण्णतं" આ પ્રકારનાં કથનની શી આવશ્યકતા હતી?

ઉત્તર—આ રીતે જે અહીં ફરીથી પ્રગટ કરવામાં આવેલ છે તેનું કારણ એ છે કે સૂત્રકાર એ કહેવા માગે છે કે જેટલા સમસ્ત શ્રુતના ભેદ છે તે બધાનો

एतमर्थं बोधयितुं पुनरुपन्यासः। अथवा सर्वेषु श्रुतभेदेष्वङ्गप्रविष्टानङ्गप्रविष्टभेदयो-र्र्हदुपदेशानुसारित्वात् प्राधान्यमस्तीति बोधयितुं पुनस्तदुपादानमिति न दोषः।

अङ्गप्रविष्टमिति। इह यथा पुरुषस्य द्वादशाङ्गानि भवन्ति, "द्वौ चरणौ, द्वे जङ्घे, द्वे ऊरुणी, द्वे गात्रार्धे, द्वौ बाहू, ग्रीवा, शिरश्च।

तथा चोक्तम्—

पाददुगं जंघोरू, गातदुगद्धं तु दो य बाहूओ।
गीवा सिरं च पुरिसो, बारस अंगो सुयविसिट्ठो ॥ १ ॥

छाया—पादद्विकं जङ्घोरू गात्र द्विकार्धं तु द्वौ च बाहू।
ग्रीवा शिरश्च पुरुषो द्वादशाङ्गः श्रुतविशिष्टः ॥ १ ॥

तथा श्रुतरूपस्यापि परमपुरुषस्य द्वादशाङ्गानि आचारादीनि सन्तीति वेदितव्यम्। श्रुतपुरुषस्याङ्गेषु प्रविष्टम् अङ्गभावेन व्यवस्थितमित्यर्थः। अङ्गबाह्यमिति। यत्तु तस्यैव द्वादशाङ्गात्मकस्य श्रुतपुरुषस्यार्थावगमे परमोपकारकत्वेन स्थितं श्रुतं तदङ्गबाह्यम् तदेवानङ्गप्रविष्टमिति।

तत्राल्पवक्तव्यतया प्रथममङ्गबाह्यमधिकृत्य पृच्छति–'से किं तं०' इत्यादि। अथ किं तद् अङ्गबाह्य ? मिति शिष्य प्रश्नः। उत्तरमाह—'अंगबाहिरं०' इत्यादि।

समस्त श्रुतके भेदों में इन्हीं दो भेदोंकी प्रधानता है, कारण इनमें ही अर्हन्त प्रभुके उपदेश की अनुसारिता रहती है। जिस प्रकार पुरुषके ये दो पैर २, दो जांघे ४, दो उरू ६, दो पार्श्वभाग ८, दो बाहु १०, ग्रीवा ११ और शिर १२, ये बारह अंग होते हैं उसी प्रकारसे श्रुतरूप परम पुरुषके भी ये आचारांग आदि बारह अंग होते हैं। इन बारह अंगोंमें जो श्रुतनिबद्ध हुआ है वह अंगप्रविष्ट श्रुत है। तथा जो श्रुत द्वादशांगात्मकश्रुत पुरुषके अर्थावगममें परम सहायक होता है वह अंगबाह्य-श्रुत है। अंगबाह्यश्रुतका दुसरा नाम अनङ्गप्रविष्ट भी है।

આ બે ભેદોમાં સમાવેશ થઈ જાય છે. તથા શ્રુતના સમસ્ત ભેદોમાં એ બે ભેદોની પ્રધાનતા છે, કારણ કે તેમનામાં જ અહંત ભગવનાનના ઉપદેશની અનુસારિતા રહે છે. જે પ્રકારે પુરુષના બે પગ ૨, બે જંઘા ૪, બે ઉરૂ ૬, બે પાર્શ્વભાગ ૮, બે ભૂજા ૧૦, ગ્રીવા ૧૧, અને શિર ૧૨, એ બાર અંગ હોય છે. એ બાર અંગોમાં જે શ્રુત નિબદ્ધ થયુ છે તે અંગપ્રવિષ્ટ શ્રુત છે. તથા જે શ્રુત દ્વાદશાંગાત્મકશ્રુત પુરુષના અર્થાવગમમાં પરમ સહાયક થાય છે તે અંગબાહ્યશ્રુત છે. અંગબાહ્ય શ્રુતનું બીજું નામ અનંગપ્રવિષ્ટ પણ છે.

अङ्गबाह्यं श्रुतं द्विविधं प्रज्ञप्तम् । तद् यथा—आवश्यकं च आवश्यकव्यतिरिक्तं च। पुनः पृच्छति—'से किं तं०' इत्यादि। अथ किं तदावश्यक? मिति। प्रश्नः। उत्तरमाह—'आवस्सयं०' इत्यादि। आवश्यकमिति। अवश्यं कर्तव्यम् आवश्यकम्, श्रमणादिभिरवश्यमुभयकालं यत् क्रियते तदित्यर्थः। यद्वा-आ-समन्ताद्, वश्या इन्द्रियकषायादि भावशत्रवो यस्मात तदावश्यकम्। यद्वा—ज्ञानादिगुणकदम्बकं मोक्षो वा आ—समन्ताद्, वश्यः क्रियतेऽनेनेत्यावश्यकम्। आवश्यकप्रतिपादकं यत् श्रुतं तदप्यावश्यकम्। आवश्यकं षड्विधं प्रज्ञप्तम्। तद् यथा—सामायिकम् १, चतुर्विंशतिस्तवः २, वन्दनक ३, प्रतिक्रमण ४, कायोत्सर्गः ५, प्रत्याख्यानम् ६, सामा-

अङ्गप्रविष्ट और अङ्गबाह्य इन दोनों भेदोंमें से अल्पवक्तव्यता होनेके कारण शिष्य प्रथम अङ्गबाह्यके विषयमें पूछता है—हे भदन्त! अंगबाह्यश्रुतका क्या स्वरूप है? उत्तर—अंगबाह्यश्रुतज्ञान दो प्रकारका कहा गया है, वे दो प्रकार ये हैं—आवश्यकश्रुत १, आवश्यक व्यतिरेकश्रुत २। साधु श्रावक आदि जो कृत्य उभयकालमें अवश्य करते हैं वह आवश्यक है, अथवा जिससे इन्द्रिय, कषाय आदि भावश्रुत अच्छी तरहसे वशमें किये जाते हैं वह आवश्यक है, अथवा जिसके द्वारा ज्ञानादि गुणोंका समूह व मोक्ष भले प्रकारसे स्वाधीन किया जा सकता है वह आवश्यक है। इस आवश्यक वाच्यार्थ का प्रतिपादकक जो श्रुत है वह आवश्यक श्रुत है। यह आवश्यक छह प्रकारका बतलाया है, वे छह प्रकार ये है-सामायिक १, चतुर्विंशनिस्तव २, वन्दनक ३, प्रतिक्रमण ४, कायोत्सर्ग ५ और प्रत्याख्यान ६। इन छह आवश्यकों की

અંગપ્રવિષ્ટ અને અંગબાહ્ય એ બન્ને ભેદોમાંથી અલ્પવક્તવ્યતા હોવાને કારણે શિષ્ય પ્રથમ અંગબાહ્યને વિષે પૂછે છે-હે ભદન્ત! અંગબાહ્ય શ્રુતનું શું સ્વરૂપ છે?

ઉત્તર—અંગબાહ્ય શ્રુતજ્ઞાન નીચે પ્રમાણે બે પ્રકારનું છે. (૧) આવશ્યક શ્રુત, (૨) આવશ્યક વ્યતિરિક્ત શ્રુત. સાધુ, શ્રાવક આદિ જે ક્રિયા બન્ને કાળે અવશ્ય કરે છે તે આવશ્યક છે. અથવા જે વડે ઇન્દ્રિય, કષાય આદિ ભાવશ્રુત સારી રીતે કાબુમાં લેવાય છે તે આવશ્યક છે. અથવા જેના દ્વારા જ્ઞાનાદિ ગુણોનો સમૂહ અથવા મોક્ષ સારી રીતે પ્રાપ્ત કરી શકાય છે તે આવશ્યક છે. આ આવશ્યક વાચ્યાર્થનું પ્રતિપાદક જે શ્રુત છે તે આવશ્યક શ્રુત છે. એ આવશ્યક છ પ્રકારના બતાવ્યા છે-તે છ પ્રકાર આ પ્રમાણે છે-(૧) સામાયિક, (૨) ચોવીસ સ્તવ, (૩) વંદણા, (૪) પ્રતિક્રમણ, (૫) કાયોત્સંગ, અને (૬) પ્રત્યાખ્યાન. એ છ આવશ્યકોની વ્યાખ્યા અમે ઉત્તરાધ્યાન સૂત્રની પ્રિય-

यिकादीनां व्याख्याऽस्माभिरुत्तराध्ययन सूत्रस्य प्रियदर्शनी टीकायामेकोनत्रिंशत्तमाध्ययने कृतेति तत्र द्रष्टव्या जिज्ञासुभिः । तदेतदावश्यकं वर्णितम् ॥

मूलम्—से किं तं आवस्सयवइरित्तं ? । आवस्सयवइरित्तं दुविहं पण्णत्तं । तं जहा—कालियं च, उक्कालियं च । से किं तं उक्कालियं ? । उक्कालियं अणेगविहं पण्णत्तं । तं जहा—दसवेयालियं १, कप्पियाकप्पियं २, चुल्लकप्पसुयं ३, महाकप्पसुयं ४, उववाइयं ५, रायपसेणियं ६, जीवाभिगमो ७, पण्णवणा ८, महापण्णवणा ९, पमायप्पमायं १०, नंदी ११, अणुओगदाराइं १२, देविंदत्थओ १३, तंदुलवेयालियं १४, चंदाविज्जयं १५, सूरपण्णत्ती १६, पोरिसिमंडलं १७, मंडलपवेसो १८, विज्जाचरणविणिच्छओ १९, गणिविज्जा २०, झाणविभत्ती २१, मरणविभत्ती २२, आयविसोही २३, वीयरागसुयं २४, संलेहणासुयं २५, विहारकप्पो २६, चरणविही २७, आउरपच्चक्खाणं २८, महापच्चक्खाणं २९, एवमाइ । से तं उक्कालियं ॥

छाया—अथ किं तदावश्यकव्यतिरिक्तम् ? आवश्यकव्यतिरिक्तं द्विविधं प्रज्ञप्तम् । तद् यथा—कालिकं च, उत्कालिकं च । अथ किं तदुत्कालिकम् ? । उत्कालिकमनेकविधं प्रज्ञप्तम् । तद् यथा—दशवैकालिकम् १, कल्पिकाकल्पिकम्, (कल्पाकल्पम्) २, चुल्ल-(क्षुल्ल) कल्पश्रुतम् ३, महाकल्पश्रुतम् ४, औपपातिकं ५, राजप्रश्नीयम् ६, जीवाभिगमः ७, प्रज्ञापना ८, महाप्रज्ञापना ९, प्रमादाप्रमादं १०, नन्दिः ११, अनुयोगद्वाराणि १२, देवेन्द्रस्तवः १३, तन्दुलवैचारिकं १४,

व्याख्या हमने उत्तराध्ययन सूत्रकी प्रियदर्शनी टीकामें उनतीसवें अध्ययनमें की है अतः जिज्ञासुजन इस विषयको वहांसे जान सकते हैं । इस प्रकार आवश्यकका यह छह भेद रूप कथन है ॥

दर्शनी टीकामां ओगणत्रीसमां अध्ययनमां करी छे तो जिज्ञासुओ ए विषयने तेमांथी समजी शके छे. आ रीते आवश्यकनुं आ छ भेदरूप कथन छे.

चन्द्रकवेध्यं १५, सूर्यप्रज्ञप्तिः १६, पौरुषीमण्डलम् १७, मण्डलप्रवेशः १८, विद्याचरण विनिश्चयः १९, गणिविद्या २०, ध्यानविभक्तिः २१, मरणविभक्तिः २२, आत्मविशोधिः २३, वीतरागश्रुतम् २४, संलेखनाश्रुतम् २५, विहारकल्पः २६, चरणविधिः २७, आतुरप्रत्याख्यानम् २८, महाप्रत्याख्यानम् २९, एवमादि। तदेतदुत्कालिकम् ॥

टीका—शिष्यः पृच्छति—'से किं तं०' इत्यादि। अथ किं तदावश्यकव्यतिरिक्तम् ?, इति शिष्य प्रश्नः। उत्तरमाह—'आवस्सयवइरित्तं०' इत्यादि। आवश्यकव्यतिरिक्तं द्विविधं प्रज्ञप्तम्। तद् यथा-कालिकम्, उत्कालिकं च। तत्र यद् दिवसे रात्रौ च प्रथम चरमपौरुषी द्वये एव पठ्यते, तत् कालिकम्, कालेन निर्वृत्तं कालिक मिति व्युत्पत्तेः। यत्तु कालवेलावर्जं पठ्यते, तदुत्कालिकम्। तत्राल्पवक्तव्यतया प्रथममुत्कालिकमधिकृत्य शिष्यः पृच्छति-'से किं तं०' इत्यादि। अथ किं तदुत्कालिकं श्रुत ?-मिति शिष्यप्रश्नः। उत्तरमाह-'उक्कालियं०' इत्यादि।

'से किं तं आवस्सयवइरित्तं०' इत्यादि।

शिष्य पूछता हैं—हे भदन्त! आवश्यक व्यतिरिक्तश्रुत का क्या स्वरूप है? उत्तर-आवश्यक व्यतिरिक्तश्रुत दो प्रकार का बतलाया गया है, वे उसके दो प्रकार ये हैं-१ कालिक २ उत्कालिक। दिन तथा रात्रि में जो प्रथम चरमपौरुषीद्वय में ही पठित होता है वह कालिक, एवं जो अस्वाध्यायरूप काल को छोड़कर पठित होता है वह उत्कालिक है।

शिष्य पूछता है—हे भदन्त! उत्कालिकश्रुत का क्या स्वरूप है? यहां पर भी शिष्य ने जो यह प्रश्न व्यतिक्रम से किया है उसका तात्पर्य यही है कि सूत्रकार को उत्कालिक के विषय में अल्परूप से कहना है अतःकालिक के विषय में शिष्य के प्रश्न का उद्भावन करके उत्कालिक के विषय में ही सर्वप्रथम सूत्रकार ने प्रश्न का उद्भावन किया है।

"से किं तं आवस्सयवइरित्तं०" ઈત્યાદિ.

શિષ્ય પૂછે છે-હે ભદન્ત! આવશ્યક વ્યતિરિકત શ્રુતનું શું સ્વરૂપ છે? ઉત્તર--આવશ્યક વ્યતિરિકત શ્રુત બે પ્રકારનું બતાવ્યું છે તે આ પ્રમાણે છે-(૧) કાલિક, (૨) ઉત્કાલિક, દિવસ તથા રાત્રે જેનો પ્રથમ ચરમ પૌરુષીદ્વયમાં જ પાઠ થાય છે તે કાલિક, અને જેનો કાળને છોડીને પાઠ કરાય છે તે ઉત્કાલિક છે.

શિષ્ય પૂછે છે-હે ભદન્ત! ઉત્કાલિક શ્રુતનું શું સ્વરૂપ છે? અહીં પણ શિષ્યે જે આ પ્રશ્નવ્યતિક્રમથી કર્યો છે તેનું તાત્પર્ય એ છે કે સૂત્રકારને ઉત્કાલિકને વિષે થોડાં પ્રમાણમાં જ કહેવાનું છે તેથી કાલિકના વિષે શિષ્યનો પ્રશ્ન ઉભો ન કરતાં ઉત્કાલિકના વિષયમાં જ સૌથી પહેલા સૂત્રકારે પ્રશ્ન ઉભો કર્યો છે?

उत्कालिकं श्रुतमनेकविधं प्रज्ञप्तम् । तद् यथा–'दशवैकालिकम्०' इत्यादि । तत्र दशवैकालिकं सुप्रसिद्धम् १ । तथा–कल्पिकाकल्पिकम्–कल्पाकल्पप्रतिपादकं सूत्रमित्यर्थः २ । तथा–चुल्लकल्पश्रुतं ३, महाकल्पश्रुतमिति । कल्पः–स्थविरादिकल्पः । तत्प्रतिपादकं श्रुतं–कल्पश्रुतम् । तच्च द्विविधं–चुल्लकल्पश्रुतं महाकल्पश्रुतमिति ।

उत्तर—उत्कालिकश्रुत अनेक प्रकार का कहा गया है, जैसे-दशवैकालिक १, कल्पिकाकल्पिक–कल्पाकल्पप्रतिपादकसूत्र २, चुल्लकल्पश्रुत ३, महाकल्पश्रुत ४, औपपातिक ५, राजप्रश्नीय ६, जीवाभिगम ७, प्रज्ञापना ८, महाप्रज्ञापना ९, प्रमादाप्रमाद १०, नंदि ११, अनुयोगद्वार १२, देवेन्द्रस्तव १३, तन्दुल वैचारिक १४, चन्द्रकवेध्य १५, सूर्यप्रज्ञप्ति १६, पौरुषीमण्डल १७, मण्डलप्रवेश १८, विद्याचरणविनिश्चय १९, गणिविद्या २०, ध्यानविभक्तिः २१, मरणविभक्ति २२, आत्मविशोधि २३, वीतरागश्रुत २४, संखेलनाश्रुत २५, विहारकल्प २६, चरणविधि २७, आतुरप्रत्याख्यान २८, महाप्रत्याख्यान २९, इत्यादि, ये समस्त श्रुत उत्कालिक हैं ।

इनमें दशवैकालिक प्रसिद्ध है १ । कल्पाकल्प का प्रतिपादकश्रुत कल्पिकाकल्पिक है २ । स्थविर आदि के कल्प का प्रतिपादक जो श्रुत है वह कल्पसूत्र है । यह चुल्लकल्पश्रुत तथा महाकल्पश्रुत के भेद से दो प्रकार का वतलाया गया है । जो श्रुत, ग्रंथ एवं अर्थ की अपेक्षा अल्प

ઉત્તર—ઉત્કાલિકશ્રુત અનેક પ્રકારનાં કહેલ છે, જેવાં કે (૧) દશવૈકાલિક, (૨) કલ્પિકા કલ્પિક-કલ્પાકલ્પ પ્રતિપાદક સૂત્ર, (૩) ચુલ્લકલ્પશ્રુત, (૪) મહાકલ્પ શ્રુત, (૫) ઔપપાતિક, (૬) રાજપ્રશ્નીય, (૭) જીવાભિગમ, (૮) પ્રજ્ઞાપના, (૯) મહાપ્રજ્ઞાપના, (૧૦) પ્રમાદપ્રમાદ, (૧૧) નંદી, (૧૨) અનુયોગદ્વાર, (૧૩) દેવેન્દ્રસ્તવ, (૧૪) તન્દુલ વૈચારિક, (૧૫) ચન્દ્રક વેધ્ય, (૧૬) સૂર્ય પ્રજ્ઞપ્તિ, (૧૭) પૌરુષી મંડલ, (૧૮) મંડલ પ્રવેશ, (૧૯) વિદ્યાચરણ વિનિશ્ચય, (૨૦) ગણિવિદ્યા, (૨૧) ધ્યાનવિભક્તિ, (૨૨) મરણ વિભક્તિ, (૨૩) આત્મવિશોધિ, (૨૪) વીતરાગ શ્રુત, (૨૫) સંલેખના શ્રુત, (૨૬) વિહાર કલ્પ, (૨૭) ચરણવિધિ, (૨૮) આતુર પ્રત્યાખ્યાન. મહાપ્રત્યાખ્યાન ઇત્યાદિ આ સઘળા ઉત્કાલિક શ્રુત છે.

તેઓમાં દશવૈકાલિક પ્રસિદ્ધ છે. ૧ કલ્પાકલ્પનું પ્રતિપાદક શ્રુત કલ્પિકાકલ્પિક છે. ૨ સ્થવિર આદિના કલ્પનું પ્રતિપાદક જે શ્રુત છે તે કલ્પસૂત્ર છે. તે ચુલ્લકલ્પશ્રુત તથા મહાકલ્પશ્રુત એ ભેદથી બે પ્રકારનું દર્શાવ્યું છે. જે શ્રુત

तत्र यदल्पग्रन्थमल्पार्थं च तत् चुल्लकल्पश्रुतम् ३, यत्तुमहाग्रन्थं-महार्थं च तन्महाकल्पश्रुतमिति ४, कल्पिकाकल्पिकादिकं त्रयं विच्छिन्नम् । औपपातिकं ५, राजप्रश्नीयं ६, जीवाभिगमः ७, एतत्त्रयं प्रसिद्धम्, 'प्रज्ञापना, महाप्रज्ञापना' इति । जीवादीनां पदार्थानां प्रज्ञापनं प्रज्ञापना, तच्च सूत्रं प्रज्ञापनासूत्रम्। एतदुपलभ्यते८, सैवबृहत्तरा महाप्रज्ञापना, तच्च सूत्रं महाप्रज्ञापनासूत्रं तद्विच्छिन्नम् ९। तथा- प्रमादाप्रमादम्=प्रमादाप्रमादस्वरूप भेदफल प्रतिपादकं सूत्रमित्यर्थः। तत्र प्रमाद स्वरूपं चैवमुक्तम्-प्रचुरकर्मेन्धन प्रभव-निरन्तराऽविध्मातशारीरमानसानेकदुःखहुतवहज्वालाकलापपरीतमशेषमेवसंसारवासगृहं पश्यंस्तन्मध्यवर्त्यपि, सति च तन्निर्ग-

है वह चुल्लकल्पश्रुत है ३, एवं जो श्रुत, ग्रन्थ और अर्थ की अपेक्षा महान् है वह महाकल्प श्रुत है ४। ये कल्पिका कल्पिक आदि तीन विच्छिन्न हो गये हैं। औपपातिक सूत्र ५, राजप्रश्नीय सूत्र ६ और जीवाभिगम सूत्र ७, ये तीन प्रसिद्ध हैं। जीवादिक पदार्थों के स्वरूपका प्रतिपादक जो सूत्र है वह प्रज्ञापना सूत्र है। यह सूत्र अभी उपलब्ध होता है ८। महा प्रज्ञापना सूत्र विच्छिन्न हो गया है ९। जिस सूत्रमें प्रमाद तथा अप्रमादके स्वरूपका उनके भेदोंका तथा फलका प्रतिपादन हुआ है वह प्रमादाप्रमाद सूत्र है, इस सूत्रमें प्रमादका स्वरूप इस प्रकारसे कहा है-"यह संसारी जीव अच्छी तरह से देख रहा है कि मैं जिस संसाररूपी निवासगृहके भीतर रहता हूं वह प्रचुर कर्मरूपी इन्धनसे उत्पन्न हुई अनेक प्रकारके शारीरिक तथा मानसिक दुःखरूपी अग्निज्वालासे कि जो कभी बुझनेवाली नहीं है बहुत बुरी तरह चारों ओर से घिरा हुआ है, तथा

ગ્રંથ અને અર્થની અપેક્ષાએ અલ્પ છે તે ચુલ્લકલ્પશ્રુત છે. (૩) તેમજ જે શ્રુત, ગ્રન્થ અને અર્થની અપેક્ષાએ મહાન છે તે મહાન કલ્પશ્રુત છે. (૪) એ કલ્પિકાકલ્પિક આદિ ત્રણ વિચ્છિન થઇ ગયાં છે. ઔપપાતિક સૂત્ર, (૫) રાજપ્રશ્નીય સૂત્ર (૬) અને જીવાભિગમ સૂત્ર (૭) એ ત્રણ પ્રસિદ્ધ છે. જીવાદિક પદાર્થોના સ્વરૂપનું પ્રતિપાદક જે સૂત્ર છે તે પ્રજ્ઞાપનાસૂત્ર છે. આ સૂત્ર અત્યારે ઉપલબ્ધ છે. ૮ મહાપ્રજ્ઞાપના સૂત્ર વિચ્છિન થઈ ગયુ છે. ૯ જે સૂત્રમા પ્રમાદ તથા અપ્રમાદનાં સ્વરૂપનું, તેમના ભેદોનુ તથા ફળનું પ્રતિપાદન થયું છે તે પ્રમાદા પ્રમાદ સૂત્ર છે, તે સૂત્રમાં પ્રમાદનું સ્વરૂપ આ પ્રમાણે કહેલ છે-" આ સંસારી જીવ સારી રીતે જોઈ રહ્યો છે કે હું જે સંસારરૂપી નિવાસગૃહની અંદર રહું છુ તે અપાર કર્મરૂપી ઇન્ધિનથી ઉત્પન્ન થયેલ અનેક પ્રકારના શારીરિક તથા માનસિક દુઃખરૂપી અગ્નિજવાળાથી, કે જે કદી બુઝાતી નથી, ઘણી "ખરાબ રીતે ચારે બાજુથી ઘેરાયેલ છે, તથા તેમાંથી નીકળવાનો ઉપાય જો કે વીતરાગ પ્રણીત

मनोपाये वीतरागप्रणीतचिन्तामणौ यतो विचित्रकर्मोदयसाहाय्यजनितात् परिणाम-विशेषादपश्यन्निव तद्भयमविगणय्य विशिष्ट परलोकक्रियाविमुखएवाऽऽस्ते जीवः, स खलु प्रमादः। तस्य च प्रमादस्य ये हेतवो मद्यादयस्तेऽपि प्रमादाः, तत्कारणत्वात्। उक्तश्च—

"मज्जं विसय कसाया, निद्दा विगहा य पंचमा भणिया।
एए पंच पमाया, जीवं पाडेंति संसारे॥ १॥"

एतस्य च पञ्चविधस्यापि प्रमादस्य फलं चतुर्गतिक संसारपतनम्।

किञ्च—

इससे निकलनेका उपाय यद्यपि वीतरागप्रणीत धर्मरूपी चिन्तामणि है सो वह मेरी दृष्टिमें नहीं आ रहा है, कारण मेरे भीतर कुछ ऐसा विचित्र कर्मोदयकी सहायतासे परिणाम विशेष आ गया है कि जिसका वजह से मेरी द्रष्टि उस ओर जाती ही नहीं है, और न इस संसार निवा-सगृहमें रहते हुए मुझे कोई भय ही प्रतीत होता है, इसी लिये मैं विशिष्ट परलोककी क्रियाओं से पराङ्मुख हो रहा हूं" इस तरहकी परिस्थितिको बनानेवाला एक प्रमाद है। तात्पर्य यह कि जानबूझ कर भी जीव प्रमादके कारण ही आत्मकल्याणके मार्गसे पराङ्मुख बना रहता है। इस प्रमादके जो कारण मद्यादिक बतलाये गये हैं वे भी प्रमाद में ही परिगणित होते हैं। कहा भी है—

"मज्जं विसयकसाया, निद्दा विगहा य पंचमा भणिया।
एए पंच पमाया, जीवं पाडेंति संसारे"॥ १॥

ધર્મરૂપી ચિન્તામણી છે તે મારી નજરે પડતું નથી કારણ કે મારી અંદર કોઈ એવા વિચિત્ર કર્મોદયની સહાયતાથી પરિણામ વિશેષ આવી ગયુ છે કે જેને કારણે મારી નજર તેની તરફ થતી જ નથી, અને આ સંસારરૂપી નિવા-સગૃહમાં રહેતા એવા મને કોઈ ભય પણ લાગતો નથી; તે કારણે હું વિશિષ્ટ પરલોકની ક્રિયાઓથી વિમુખ રહ્યો છું" આ પ્રકારની પરિસ્થિતિને ઉત્પન્ન કરનાર પ્રમાદ છે. તાત્પર્ય એ કે જાણવા છતાં જીવ પ્રમાદને કારણે જ આત્મ-કલ્યાણના માર્ગથી વિમુખ રહે છે. આ પ્રમાદના મદ્યાદિક જે કારણો બતાવ્યા છે. તે પણ પ્રમાદમાં જ પરિગણિત થયા છે. કહ્યું પણ છે—

"मज्जं विसय कसाया, निद्दा विगहा य पंचमा भणिया।
ए ए पंच पमाया, जीवं पाडेंति संसारे"॥ १॥

"श्रेयो विषमुपभोक्तुं, क्षमं भवेत् क्रीडितुं हुताशेन।
जीवैरिह संसारे, न तु प्रमादः क्षमः कर्तुम् ॥ १ ॥
अस्यामेव हि जातौ, नरमुपहन्याद् विषं हुताशो वा।
आसेवितः प्रमादो, हन्याज्जन्मान्तरशतानि ॥ २ ॥
यन्न प्रयान्ति पुरुषाः, स्वर्गं यच्च प्रयान्ति विनिपातम्।
तत्र निमित्तमनार्यः, प्रमाद इति निश्चितमिदं मे ॥ ३ ॥

मद्य १, विषय २, कषाय ३, निद्रा ४ तथा विकथा ५, ये पांच प्रमाद हैं, और ये जीवको संसारमें गिराते है यही इनके सेवनका फल है। इस प्रमादका स्वरूप इस प्रकार कहा है—

"श्रेयो विषमुपभोक्तुं, क्षमं भवेत् क्रीडितुं हुताशेन।
जीवैरिह संसारे, न तु प्रमादः क्षमः कर्तुम्" ॥ १ ॥

विष खा लेना अच्छा है, अग्निके साथ क्रीडा करना ठीक है परन्तु मनुष्योंको इस संसारमें एक क्षणका भी प्रमाद करना उचित नहीं है। १।

"अस्यामेव हि जातौ, नरमुपहन्याद् विषं हुताशो वा।
आसेवितः प्रमादो, हन्याज्जन्मान्तर शतानि" ॥ २ ॥

कारण खाया हुआ विष अथवा सेवित हुई अग्नि प्राणीको इसी पर्यायमें जीवितसे विमुक्त कर देती है, परन्तु सेवित किया गया प्रमाद जन्म, जन्मान्तर तकमें भी इस जीवको मारता रहता है ॥ २ ॥

---

(१) મદ્ય, (૨) વિષય, (૩) કષાય, નિદ્રા (૪) તથા (૫) વિકથા એ પાંચ પ્રમાદ છે, અને તે જીવને સંસારમાં પાડે છે એજ એમનાં સેવનનું ફળ છે. તે પ્રમાદનું સ્વરૂપ આ પ્રમાણે કહ્યું છે—

"श्रेयो विषमुपभोक्तुं, क्षमं भवेत् क्रीडितुं हुताशेन।
जीवैरिह संसारे, न तु प्रमादः क्षमः कर्तुम्" ॥ १ ॥

ઝેર ખાવું સારૂં છે, અગ્નિની સાથે ખેલવું પણ સારૂં છે પરન્તુ મનુષ્યે આ સંસારમાં એક ક્ષણનો પણ પ્રમાદ કરવો તે યોગ્ય નથી. ॥૧॥

"अस्यामेव हि जातौ, नरमुपहन्याद् विषं हुताशोवा।
आसेवितः प्रमादो, हन्याज्जन्मान्तर शतानि" ॥ २ ॥

કારણ કે ખાવામાં આવેલ ઝેર અથવા સેવવામાં આવેલ અગ્નિ પ્રાણીએ એજ પર્યાયમાં જીવનથી વિમુક્ત કરી નાખે છે પણ સેવવામાં આવેલ પ્રમાદ જન્મ, જન્માન્તર સુધીમાં પણ આ જીવને મારતો રહે છે. ॥૨॥

संसार बन्धनगतो, जाति जराव्याधि मरण दुःखार्तः ।
यन्नो द्विजते सत्त्वः, सोऽप्यपराधः प्रमादस्य ॥ ४ ॥
अज्ञाप्यते यदवश, स्तुल्योदर पाणिपादवदनेन ।
कर्मं च करोति बहुविध, मेतदपि फलं प्रमादस्य ॥ ५ ॥

" यन्न प्रयान्ति पुरुषाः, स्वर्गं यच्च प्रयान्ति विनिपातम् ।
तत्र निमित्तमनार्यः, प्रमाद इति निश्चितमिदं मे " ॥३॥

पुरुष-आत्मा जो स्वर्ग को प्राप्त नहीं करते हैं तथा केवल अधोगति के ही पात्र बनते हैं इसमें प्रधानकारण एक यह अनार्य प्रमाद ही है यह निश्चित बात है ॥ ३ ॥

" संसारबन्धनगतो, जाति जरा व्याधि मरण दुःखार्तः ।
यन्नोद्विजते सत्त्वः, सोऽप्यपराधः प्रमादस्य " ॥ ४ ॥

इस संसाररूपी कारागारमें पड़ा हुआ यह प्राणी जो जन्म, जरा एवं मरणके दुःखों से संत्रस्त हो रहा है, तथा ऐसी परिस्थितिको भोगता हुआ भी जो यहां से उद्विग्न चित्त नहीं होता है इसमें यदि कोई अपराधी है तो वह एक प्रमाद ही है ॥ ४ ॥

" आज्ञाप्यते यदवश,-स्तुल्योदर पाणिपादवदनेन ।
कर्म च करोति बहुविध,-मेतदपि फलं प्रमादस्य " ॥५॥

" यन्न प्रयान्ति पुरुषाः, स्वर्गं यच्च प्रयान्ति विनिपातम् ।
तत्र निमित्तमनार्यः प्रमाद इति निश्चितमिदं मे " ॥ ३ ॥

પુરુષ-આત્મા, જે સ્વર્ગ પ્રાપ્ત કરતા નથી તથા ફક્ત અધોગતિને જ પાત્ર થાય છે તેમાં એક મુખ્ય કારણ આ અનાર્ય પ્રમાદ જ છે એ વાત નિશ્ચિત છે. ॥૩॥

" संसार बन्धनगतो, जाति जराव्याधि मरण दुखार्तः ।
यन्नो द्विजते सत्त्वः, सोऽप्यपराधः प्रमादस्य " ॥ ४ ॥

આ સંસારરૂપી કારાગારામાં પડેલ આ પ્રાણી જે જન્મ, જરા, અને મરણના દુઃખોથી ત્રાસી ગયેલ છે, તથા એવી પરિસ્થિતિને ભોગવતા ભોગવતા પણ જે અહીંથીં ઉદ્વિગ્ન ચિત્ત નથી થતા તેમાં જો કોઈ અપરાધી હોય તો એક પ્રમાદ જ છે ॥૪॥

" आज्ञाप्यते यदवश-स्तुल्योदर पाणि पाद वदनेन ।
कर्मंच करोति वहु विध,-मेतदपि फलं प्रमादस्य " ॥ ५ ॥

इह हि प्रमत्तमनसः, सोन्मादवदनिभृतेन्द्रियाश्चपलाः ।
यत् कृत्यं तदकृत्वा, सततमकार्येष्वभिपतन्ति ॥ ६ ॥
तेषामभिपतिताना-मुद्भ्रान्तानां प्रमत्तहृदयानाम् ।
वर्धन्त एव दोषाः, वनतरवश्चाम्बुसेकेन ॥ ७ ॥

मानव पर्यायकी दृष्टिसे हाथ पैर आदि अवयवों की समानता होने पर भी जो प्राणी एक दूसरेकी पराधीनता भोग रहा है-नाना प्रकार की दासवृत्ति कर रहा है-यह सब प्रमादका ही फल है ॥ ५ ॥

" इह हि प्रमत्तमनसः, सोन्मादवदनिभृतेन्द्रियाश्चपलाः ।
यत् कृत्यं तदकृत्वा, सततमकार्येष्वभिपतन्ति " ॥ ६ ॥

यह कितने दुःखकी बात है कि यह प्राणी प्रमत्त चित्त हो कर उन्मादी पुरुषकी तरह इन्द्रियोंका दास बन कर जो कर्तव्य कार्य है उसे तो करता नहीं है तथा जो नहीं करने योग्य है उसे ही रात दिन करता रहता है ॥६॥

" तेषामभिपतिताना,-मुद्भ्रान्तानां प्रमत्तहृदयानाम् ।
वर्धन्त एव दोषाः, वनतरवश्चाम्बुसेकेन " ॥ ७ ॥

जिस प्रकार जलके सिंचन से जंगलके वृक्ष बढ जाते हैं उसी प्रकार प्रमत्त हृदयवाले व्यक्तियों में भी उद्भ्रान्त चित्तता एवं विषयकषायोंमें पतनशीलता आदि अनेक प्रकारके दुर्गुण बढ जाते हैं ॥ ७ ॥

માનવ પર્યાયની દૃષ્ટિએ હાથ, પગ આદિ અવયવોની સમાનતા હોવા છતાં પણ જે પ્રાણી એક બીજાની પરાધિનતા ભોગવી રહ્યાં છે. વિવિધ પ્રકારની ગુલામી કરી રહ્યા છે. આ બધું પ્રમાદનું જ ફળ છે ॥ ૫ ॥

" इह हि प्रमत्तमनसः, सोन्मादवदनिभृतेन्द्रियाश्चपलाः ।
यत् कृत्यं तदकृत्वा, सततमकार्येष्वभिपतन्ति " ॥ ६ ॥

એ કેટલા દુઃખની વાત છે કે આ પ્રાણી પ્રમત્ત ચિત્ત થઈને ઉન્માદી પુરુષની જેમ ઇન્દ્રિયોનું ગુલામ બનીને જે કર્તવ્ય બજાવવાનું છે તે તો બજાવતુ નથી પણ જે કરવા યોગ્ય નથી એજ રાતદિન કરતું રહે છે. ॥ ૬ ॥

" तेषामभिपतितानामुद्भ्रान्तानां प्रमत्तहृदयानाम् ।
वर्धन्त एव दोषाः वनतरवश्चाम्बुसेकेन " ॥ ७ ॥

જેમ જળના સિંચનથી જંગલનાં વૃક્ષો વધી જાય છે એજ પ્રકારે પ્રમત્ત હૃદયવાળી વ્યક્તિઓમાં પણ ઉદ્ભ્રાન્ત ચિત્તતા અને વિષય કષાયોમા પતનશીલતા આદિ અનેક પ્રકારના દુર્ગુણ વધી જાય છે ॥ ૭ ॥

दृष्ट्वाऽऽप्यालोकं नैव विश्रम्भितव्यं, तीरं नीता भ्राम्यते वायुना नौः ।
लब्ध्वा वैराग्यं भ्रष्टयोगः प्रमादात्, भूयोभूयः संसृतौ बम्भ्रमीति ॥ ८ ॥

एवं प्रमादप्रतिपक्षस्याऽप्रमादस्य स्वरूपादयो वाच्याः १० । नन्दिः ११, अनुयोगद्वाराणि एतत् सूत्रद्वयमुपलभ्यते १२ । देवेन्द्रस्तवः १३, तन्दुलवैचारिकं १४, चन्द्रकवेध्यम् १५, एतत् त्रयं नोपलभ्यते । यत्तु तन्दुलवैचारिकिनाम्नाक्वचिदिदानीमुपलभ्यते, तदन्यदेवेति विज्ञेयम् । सूर्यप्रज्ञप्तिः-सूर्यचरित प्रज्ञापनं

" दृष्ट्वाऽऽप्यालोकं नैव विश्रम्भितव्यं, तीरं नीता भ्राम्यते वायुना नौः ।
लब्ध्वा वैराग्यं भ्रष्टयोगः प्रमादात, भूयो भूयः संसृतौ बम्भ्रमीति ॥८॥

जिस तरह तीर पर आई हुई भी नौका वायुके झोकोंसे कंपित हो उठती है उसी प्रकार प्रमादी जीव आलोक पाकर भी-गुर्वादिकका उपदेश प्राप्त कर भी संसारकी वासनाओं से ही कंपित होता रहता है। वैराग्यका समय पा कर भी वह उस योगसे प्रमादके कारण वंचित हो जाता है। इस तरह यह अभागा बार २ संसारमें ही चक्कर काटा करता है ॥८॥

इससे विपरीत अप्रमादका स्वरूप समझ लेना चाहिये ॥ १० ॥ नंदि ११ तथा अनुयोगद्वार १२ ये दोनों सूत्र अब भी उपलब्ध होते हैं। देवेन्द्रस्तव १३, तन्दुल वैचारिक १४ एवं चन्द्रकवेध्य १५, ये तीन सूत्र नहीं मिलते हैं। अब भी जो तन्दुल वैचारिक नामसे कहीं २ सूत्र उपलब्ध होता है यह वह तन्दुल वैचारिक सूत्र नहीं है-यह तो उससे जुदा ही है। जिस आगमपद्धतिमें सूर्य सम्बन्धी चरित की प्रज्ञा-

---

" दृष्ट्वाऽऽप्यालोकं नैव विश्रम्भितव्यं, तीरं नीता भ्राम्यते वायुना नौः ।
लब्ध्वा वैराग्यं भ्रष्टयोगः प्रमादात्, भूयो भूयः संसृतौ बम्भ्रमीति ॥ ८ ॥

જે રીતે કાંઠે આવેલી હોડી પણ વાયુની લહેરથી ડોલી ઉઠે છે એજ પ્રકારે પ્રમાદી જીવ આલોક પામીને પણ-ગુરુ આદિનો ઉપદેશ પ્રાપ્ત કરીને પણ સંસારની વાસનાઓથી ડોલાયમાન થયા કરે છે. વૈરાગ્યનો સમય પામવા છતાં પણ તે પ્રમાદને કારણે તે તકથી વંચિત થાય છે. આ રીતે તે અભાગીયો વારંવાર સંસારમાં અટવાયા કરે છે ॥ ૮ ॥

એનાથી વિપરીત જુદા અપ્રમાદનું સ્વરૂપ સમજી લેવું જોઈએ. ૧૦ નંદિ ૧૧ તથા અનુયોગ દ્વારા ૧૨ એ બન્ને સૂત્રો હજી પણ ઉપલબ્ધ છે. દેવેન્દ્રસ્તવ ૧૩, તન્દુલવૈચારિક ૧૪ અને ચન્દ્રક વેધ્ય ૧૫ એ ત્રણ સૂત્રો મળતાં નથી. હાલમાં પણ તન્દુલ વૈચારિક નામનું સૂત્ર કોઈ કોઈ સ્થાને મળી આવે છે, તે અસલ તન્દુલવૈચારિકસૂત્ર નથી તે તો તેના કરતાં જુદું જ છે. જે આગમ-

यस्यामागमपद्धतौ सा सूर्यप्रज्ञप्तिः १६। तथा-पौरुषीमण्डलम्-पुरुषः-शङ्कुः शरीरं वा, तस्मान्निष्पन्ना पौरुषी। अयं भावः-यदा सर्वस्य वस्तुनः स्वप्रमाणा छाया जायते तदा पौरुषी भवति, इत्येतच्च पौरुषीमानमुत्तरायणान्ते दक्षिणायनादौ-वैकदिनं भवति, तत ऊर्ध्वमङ्गुलस्याष्टावेकषष्टिभागा दक्षिणायने वर्धन्ते उत्तरायणे च ह्रसन्तीति। एवं पौरुषी, मण्डले २ अन्या२ प्रतिपाद्यते यत्र तदध्ययनमिति १७। इतः प्रभृति महाप्रत्याख्यान पर्यन्तानि सर्वाणि सूत्राणि विच्छिन्नानि, तथापि तानि नामतः प्रदर्श्यन्ते—

मण्डलप्रवेशः-यत्र चन्द्रसूर्ययोर्दक्षिणोत्तरेषु मण्डलेषु प्रवेशो वर्ण्यते तदध्ययनमिति। १८। विद्याचरणविनिश्चय इति-विद्या-ज्ञानं, तच्च सम्यग्दर्शनसहितं

पना बतलाई गई है वह सूर्य प्रज्ञप्ति सूत्र है। १६। पौरुषी मण्डल, यह एकाध्ययनात्मक एक शास्त्रका नाम है। पुरुष नाम शङ्कु अथवा शरीर का है, उससे जो निष्पन्न हो उसका नाम पौरुषी है। इसका अभिप्राय यह है-जिस कालमें सभी पदार्थों की अपने प्रमाण परिमित छाया होती है। यह पौरुषीमान उत्तरायणके अन्तमें और दक्षिणायनके आदिमें एक दिनका होता है। उसके बाद दक्षिणायनमें अङ्गुलका एकसठिया आठ भाग बढता है और उत्तरायण में उतना ही कम होता है। इस प्रकार मण्डल मण्डलमें भिन्न भिन्न पौरुषीका प्रतिपादन जहां किया गया है वह अध्ययन पौरुषी मण्डल कहलाता है १७। यहांसे लेकर महाप्रत्याख्यान तकके समस्त सूत्र विच्छिन्न हो चुके हैं तो भी वे नामसे दिखलाये जाते हैं-मण्डल प्रवेश, जहां चन्द्र और सूर्य के दक्षिण और उत्तर

પદ્ધતિમાં સૂર્ય વિષેના ચરિતની પ્રજ્ઞાપના બતાવી છે તે સૂર્યપ્રજ્ઞપ્તિ સૂત્ર છે. ૧૬ પૌરુષી મંડલ, એ એકાધ્યયનાત્મક એક શાસ્ત્રનું નામ છે. પુરુષ શંકુ અથવા શરીરનું નામ છે, તેનાથી જે પ્રતિપાદિત થાય તેનું નામ પૌરુષી છે તેનું તાત્પર્ય આ છે-જે કાળે સમસ્ત પદાર્થોની પોતાના પ્રમાણ જેટલી છાયા હોય છે ત્યારે પૌરુષી થાય છે. આ પૌરુષી પ્રમાણ ઉત્તરાયણને અન્તે અને દક્ષિણાયણને પ્રારંભે એક દિનનું થાય છે. ત્યાર બાદ દક્ષિણાયણમાં અંગુલના એકસઠમાં આઠ ભાગ જેટલું વધે છે અને ઉત્તરાયણમાં એટલું જ ઘટે છે. આ પ્રકારે મંડળે મંડળે ભિન્ન ભિન્ન પૌરુષીનું પ્રતિપાદન જ્યાં કરવામાં આવ્યું છે તે અધ્યયનને પૌરુષી મંડલ કહે છે. ૧૭ અહીંથી લઇને મહાપ્રત્યાખ્યાન સુધીના સઘળા સૂત્ર વિચ્છિન થઇ ગયાં છે તો પણ તેમને નામથી બતાવવામાં આવે છે—

गृह्यते, अन्यथा ज्ञानत्वायोगात्, चरणं–चारित्रम्, एतेषां फलविनिश्चयप्रतिपादक आगमः–विद्याचरणविनिश्चयः १९। तथा–गणिविद्या–बालवृद्धसहितो गच्छो गणः, सोऽस्यास्तीति गणी–आचार्यः, तस्य विद्या–ज्ञानं गणिविद्या। सा चेह ज्योतिष्क निमित्तादि परिज्ञानरूपा वेदितव्या। ज्योतिष्कनिमित्तादिकं हि सम्यक् परिज्ञाय प्रव्राजन–सामायिकारोपणो – पस्थापन–श्रुतोद्देशानुज्ञा–गणारोपण – दिशानुज्ञा–विहारक्रमादिषु प्रयोजनेषूपस्थितेषु प्रशस्ते तिथिकरणमुहूर्तनक्षत्रयोगे यद् यत्र कर्तव्यं भवति, तत् तत्र गणिना कर्तव्यम्। तथा चेन्न करोति, तर्हि महान् दोषः।

उक्तञ्च—

"जोइस निमित्त नाणं, गणिणा पव्वायणा इ कज्जेसु।
उवजुज्जइ तिहिकरणा, इ जाणणट्ठऽन्नहा दोसो" ॥ १ ॥

मण्डलों में प्रवेश का वर्णन किया जाता है वह अध्ययन मण्डल प्रवेश है। १८।

विद्याचरण विनिश्चय सूत्रमें सम्यग्दर्शन सहित सम्यक्ज्ञानका तथा चारित्रका क्या फल होता है? इस बातका निश्चय किया हुआ है।१९।

गणिविद्या सूत्रमें यह बतलाया गया है कि आचार्य को चाहिये कि वह ज्योतिष अथवा निमित्त आदि विद्याओं में पटु हो कर उनके द्वारा प्रव्राजन, सामायिकारोपण, उपस्थापन, श्रुतोद्देशानुज्ञा, गणारोपण, दिशानुज्ञा तथा विहारक्रम आदि प्रयोजनों के उपस्थित होने पर प्रशस्त, तिथि, नक्षत्र एवं करण आदि का योग देखे और जिस समय जो कर्तव्य हो वह करे। यदि वह ऐसा नहीं करता है तो दोष का पात्र उसे होना पड़ता है। कहा भी है—

મંડલ પ્રવેશ, જ્યાં ચન્દ્ર અને સૂર્યના દક્ષિણ અને ઉત્તર મંડલોમાં પ્રવેશનું વર્ણન કરાય છે તે અધ્યયન મંડલ પ્રવેશ છે. ૧૮

વિદ્યાચરણ વિનિશ્ચય સૂત્રમાં સમ્યગ્ દર્શન સહિત સમ્યક્જ્ઞાનનું તથા ચારિત્રનું શું ફળ હોય છે તે વાતનો નિશ્ચય કરેલ છે. ૧૯ ગણિવિદ્યાસુત્રમાં એ બતાવ્યું છે કે આચાર્યે જ્યોતિષ અથવા નિમિત્ત આદિ વિદ્યાઓમાં પ્રવીણ થઈને તેમના દ્વારા પ્રવ્રાજન, સામાયિકારોપણ, ઉપસ્થાપન, શ્રુતોદ્દેશાનુજ્ઞા, ગણારોપણ, દિશાનુજ્ઞા, તથા વિહારક્રમ આદિ પ્રયોજન ઉપસ્થિત થતાં પ્રશસ્ત તિથિ, નક્ષત્ર અને કરણ આદિનો યોગ જોવે અને જે સમયે જે કરવા યોગ્ય હોય તે કરે. જો તે એમ કરતા નથી તો તેમને દોષપાત્ર થવું પડે છે. કહ્યું પણ છે—

छाया—ज्योतिष निमित्त ज्ञानं, गणिना प्रव्राजनादि कार्येषु ।
उपयुज्यते तिथिकरणा,-दि ज्ञानार्थ मन्यथा दोषः ॥ १ ॥ २० ॥

ध्यानविभक्तिरिति, ध्यानानि—आर्तध्यानादीनि, तेषां विभक्तिः—विभागो यस्यामागमपद्धतौ सा ध्यानविभक्तिः २१। तथा—मरणविभक्तिरिति, मरणानि-प्राणत्यागलक्षणानि, तानि द्विविधानि भवन्ति—प्रशस्तानि, अप्रशस्तानि। तेषां विभक्तिः विभागः, पार्थक्येन स्वरूपप्रकटनं यस्यामागमपद्धतौ सा मरणविभक्तिः २२ । आत्मविशोधिरिति, आत्मनोविशोधिः—आलोचनाप्रायश्चित्तप्रतिपत्त्यादि प्रकारेण कर्ममलापगमलक्षणा यत्र प्रतिपाद्यते सा आत्मविशोधिः २३ । तथा वीतरागश्रुतमिति; सरागप्रतिषेधेन वीतरागस्वरूपं प्रतिपाद्यते यत्र श्रुते तद् वीतरागश्रुतम् २४। तथा—संलेखनाश्रुतमिति, द्रव्यभाव संलेखना यत्र श्रुते प्रतिपाद्यते तत् संलेखनाश्रुतम्

"जोइस निमित्तनाणं, गणिणा पव्वायणा इ कज्जेसु ।
उवजुज्जइ तिहिकरणा,-इ जाणणट्ठऽन्नहा दोसो" ॥१॥ इति।२०।

ध्यानविभक्तिनामक सूत्र में आर्तध्यान, रौद्रध्यान आदि चार प्रकार के ध्यानों का विभाग बतलाया गया है ।२१। मरणविभक्तिनामक सूत्र में प्रशस्तमरण एवं अप्रशस्तमरण का पृथक् २ रूप से स्वरूप प्रकट किया गया है २२ । आत्मविशोधिसूत्र में—"आलोचना प्रतिक्रमण आदि प्रायश्चित्तों के द्वारा यह आत्मा अपने साथ लगे हुए कर्ममल का अभाव कैसे कर सकता है" यह विषय प्रतिपादित हुआ है २३ । वीतरागश्रुत में—यह विषन समझाया गया है कि सरागता का त्याग कर वीतरागता को धारण करना चाहिये । तथा वीतराग का स्वरूप अमुक २ प्रकार से है २४ । संलेखनाश्रुत में—द्रव्य एवं भाव की अपेक्षा द्विविध संलेखना

"जोइस निमित्तनाणं, गणिणा पव्वायणा इ कज्जेसु ।
उवजुज्जइ तिहि करणा,-इ जाणणट्ठऽन्नहा दोसो" ॥ १ ॥ इति ।२०।

ધ્યાન નિમિત્ત નામનાં સૂત્રમાં આર્તધ્યાન, રૌદ્રધ્યાન, આદિ ચાર પ્રકારનાં ધ્યાનોનો વિભાગ બતાવ્યો છે (૨૧). મરણ વિભક્તિ નામનાં સૂત્રમાં પ્રશસ્ત મરણ અને અપ્રશસ્ત મરણનું અલગ અલગ રીતે સ્વરૂપ પ્રગટ કર્યું છે (૨૨). આત્મવિશોધિ સૂત્રમાં "આલોચના પ્રતિક્રમણ આદિ પ્રાયશ્ચિત્તો દ્વારા આ આત્મા પોતાને લાગેલા કર્મમળનો અભાવ કેવી રીતે કરી શકે છે" એ વિષયનું પ્રતિપાદન થયું છે (૨૩). વીતરાગશ્રુતમાં એ વિષય સમજાવ્યો છે કે સરાગતાનો ત્યાગ કરીને વીતરાગને ધારણ કરવો જોઈએ. તથા વીતરાગનું સ્વરૂપ અમુક અમુક પ્રકારે છે (૨૪). સંલેખના શ્રુતમાં દ્રવ્ય અને ભાવની અપેક્ષાએ

२५। तथा–विहारकल्प इति, विहारस्यकल्पो व्यवस्था–स्थविरकल्पादिरूपा यत्रागमेवर्ण्यते स विहारकल्पः २६। तथा–चरणविधिः=चरणं–चारित्रं तस्य विधिर्यत्र वर्ण्यते स चरणविधिः २७। तथा–आतुर प्रत्याख्यानमिति, आतुरः–व्याधितः तस्य या चिकित्सा तस्याः प्रत्याख्यानं यत्र विधिपूर्वक मुपवर्ण्यते तदातुरप्रत्याख्यानम्, तत्रायं विवेकः–जिनकल्पिकस्य सर्वथा चिकित्सा प्रत्याख्यानम् । स्थविरकल्पिकस्य तु सावद्य चिकित्सा प्रत्याख्यानमिति २८। तथा–महाप्रत्याख्यानमिति, महच्च तत् प्रत्याख्यानं चेति समासः। चरम प्रत्याख्यानमित्यर्थः। अयं भावः–स्थविरकल्पेन जिनकल्पेन वा विहृत्यान्ते स्थविरकल्पिका द्वादशवर्षाणि संलेखनां कृत्वा, जिनकल्पिकाः पुनर्विहारेणैव संलेखनायुक्ताः, तथापि यथा युक्तं

का कथन किया गया है २५। स्थविरकल्पादिरूप विहार की व्यवस्था जिस आगम में वर्णित हुई है वह विहारकल्प है २६। तथा चारित्र की विधि का जहां पर वर्णन हुआ है वह चरणविधि है २७। व्याधि से युक्त हुए संयमी की चिकित्सा के प्रत्याख्यान का सविधि कथन जिस आगम में आया है वह आतुर प्रत्याख्यान सूत्र है। जिनकल्पि साधुओं के लिये तो चिकित्सा करवाने का सर्वथा निषेध ही है, स्थविरकल्पियों के लिये ऐसा नहीं है पर वे सावद्य चिकित्सा नहीं करवा सकते हैं निरवद्य चिकित्सा ही करवा सकते हैं। इस प्रकार का विधान आतुर प्रत्याख्यान सूत्र में बतलाया गया है २८। महाप्रत्याख्यान–महाप्रत्याख्यान का अर्थ है–चरम प्रत्याख्यान। मुनि दो प्रकार के होते हैं स्थविरकल्पिक और जिनकल्पिक। उनमें स्थविरकल्पिक मुनि बारह वर्ष तक संलेखना करके अन्तमें सचेष्ट अर्थात् सावधान ही व्याघात-

દ્વિવિધ સંલેખનાનુ વર્ણન કરેલ છે (૨૫). સ્થવિર કલ્પાદિ રૂપ વિહારની વ્યવસ્થાનું જે આગમમાં વર્ણન થયુ છે તે વિહારકલ્પ છે (૨૬), તથા ચારિત્રની જ્યાં વર્ણન થયું છે તે ચરણવિધિ સૂત્ર છે (૨૭) વ્યાધિથી યુક્ત થયેલ સંયમીની ચિકિત્સાના પ્રત્યાખ્યાનનું વિધિપૂર્વકનું વર્ણન જે આગમમાં આવે છે તે આતુર પ્રત્યાખ્યાન સૂત્ર છે. જિન કલ્પિક સાધુઓને માટે તો ચિકિત્સા કરાવવાનો તદ્દન નિષેધ છે; સ્થવિર કલ્પીઓને માટે એવું નથી, પણ તેઓ સાવદ્ય ચિકિત્સા કરાવી શકતા નથી નિરવદ્ય ચિકિત્સા જ કરાવી શકે છે. આ પ્રકારનું વિધાન આતુર પ્રત્યાખ્યાન સૂત્રમાં બતાવવામાં આવ્યું છે (૨૮). મહાપ્રત્યાખ્યાન–મહાપ્રત્યાખ્યાનનો અર્થ છે ચરમ પ્રત્યાખ્યાન. મુનિ બે બે પ્રકારના હોય છે. સ્થવિર કલ્પિક અને જિન કલ્પિક. તેઓમાં સ્થવિર કલ્પિક મુનિ બાર વર્ષ

संलेखनां कृत्वा निर्व्याघातं सचेष्टा एव भव चरमं प्रत्याख्यान्ति, एतत् सविस्तरं यत्राध्ययने वर्ण्यते तदध्ययनं महाप्रत्याख्यानमिति। २९। एवमादि। एवमन्यदपि उत्कालिकं श्रुतं बोध्यम्, उपलक्षणमेतदिति भावः। इह पौरुषी मण्डल सूत्रादारभ्य महाप्रत्याख्यान पर्यन्तं सूत्रत्रयोदशकमपि नोपलभ्यते। उक्तमर्थं निगमयति-'से तं०' इत्यादि। तदेतदुत्कालिक श्रुतं वर्णितमिति ॥ सू० ४२ ॥

अथ कालिक श्रुतमाह—

मूलम्—से किं तं कालियं ?। कालियं अणेगविहं पण्णत्तं। तं जहा—उत्तरज्झयणं १, दसाओ २, कप्पो, ३, ववहारो ४, निसीहं ५, महानिसीहं ६, इसिभासियं ७, जंबूदीवपन्नत्ती ८, दीवसागरपन्नत्ती ९, चंदपन्नत्ती १०, खुड्डियाविमाणपविभत्ती ११, महल्लियाविमाणपविभत्ती १२, अंगचूलिया १३, वग्गचूलिया १४, विवाहचूलिया १५, अरुणोववाए १६, वरुणोववाए १७, गरुलोववाए १८, धरणोववाए १९, वेसमणोववाह २०, वेलंधरोववाए २१, देविंदोववाए २२, उट्ठाणसुयं २३, समुट्ठाणसुयं २४, नागपरि-

---

वर्जित चरम भवका प्रत्याख्यान करते हैं। जिनकल्पिक मुनि तो यद्यपि विहारसे ही संलेखना युक्त होते हैं तथापि वे यथायुक्त संलेखना करके अन्तमें सचेष्ट अर्थात् सावधान ही व्याघातवर्जित चरम भवका प्रत्याख्यान करते हैं। इस विषयका जिस अध्ययनमें वर्णन किया गया है वह अध्ययन महाप्रत्याख्यान है २९। इस तरह से और भी अनेक उत्कालिक सूत्र हैं। यह उत्कालिक सूत्रका वर्णन हुआ ॥सू०४२॥

सुधी संलेखना करीने अन्ते सचेष्ट એટલે કે સાવધાન જ વ્યાઘાત વર્જિત ચરમ ભવનું પ્રત્યાખ્યાન કરે છે. જિન કલ્પિક મુનિતો જો કે વિહારથી જ સંલેખના યુક્ત થાય છે છતાં પણ તેઓ યથાયોગ્ય સંલેખના કરીને અંતે સચેષ્ટ એટલે કે સાવધાન જ વ્યાઘાત વર્જિત ચરમ ભવનું પ્રત્યાખ્યાન કરે છે. આ વિષયનું જે અધ્યયનમાં વર્ણન કરાયું છે તે અધ્યયનનું નામ મહાપ્રત્યાખ્યાન છે (૨૯). આ રીતે બીજાં પણ અનેક ઉત્કાલિક સૂત્ર છે. આ ઉત્કાલિક સૂત્રનું વર્ણન થયુ ॥ સૂ. ૪૨ ॥

यावणियाओ २५, निरयावलियाओ-कप्पियाओ २६, कप्पवडंसियाओ २७, पुप्फियाओ २८, पुप्फचूलियाओ २९, वण्हिदसाओ ३०, आसीविसभावणं १, दिट्ठिविसभावणं २, सुमिणभावणं ३, महासुमिणभावणं ४, तेयग्गिनिसग्गं ५, एवमाइयाइं चउरासीइं पइन्नगसहस्साइं भगवओ अरहओ उसहसामिस्स आइतित्थयरस्स। तहा संखिज्जाइं पइन्नगसहस्साइं मज्झिमगणं जिणवराणं। चोद्दसपइन्नगसहस्साइं भगवओ वद्धमाणसामिस्स। अहवा जस्स जत्तिया सीसा उप्पत्तियाए वेणइयाए कम्मयाए परिणामियाए चउव्विहाए बुद्धीए उववेया, तस्स तत्तियाइं पइन्नगसहस्साइं, पत्तेयबुद्धा वि तत्तिया चेव। से तं कालियं। से तं आवस्सयवइरित्तं। से तं अणंगपविट्ठं ॥सू०४३॥

छाया—अथ किं तत् कालिकम्?। कालिकमनेकविधं प्रज्ञप्तम्। तद् यथा—उत्तराध्ययनम् १, दशाः २, कल्पः ३, व्यवहारः ४, निशीथम् ५, महानिशीथम् ६, ऋषिभाषितम् ७, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिः ८, द्वीपसागरप्रज्ञप्तिः ९, चन्द्रप्रज्ञप्तिः १०, क्षुल्लिकाविमानप्रविभक्तिः ११, महल्लिका (महा) विमानप्रविभक्तिः १२, अङ्गचूलिका १३, वर्गचूलिका १४, विवाहचूलिका १५, अरुणोपपातः १६, वरुणोपपातः १७, गरुडोपपातः १८, धरणोपपातः १९, वै श्रमणोपपातः २०, वेलंधरोपपातः २१, देवेन्द्रोपपातः २२, उत्थानश्रुतं २३, समुत्थानश्रुतं २४, नागपरिज्ञापनिकाः २५, निरयावलिकाः—कल्पिकाः २६, कल्पावतंसिकाः २७, पुष्पिताः २८, पुष्पचूलिकाः २९, वृष्णिदशाः ३०। आशीविषभावनम् १, दृष्टिविषभावनम् २, स्वप्नभावनम् ३, महास्वप्नभावनम् ४, तेजोऽग्निनिसर्गम् ५, एवमादिकानि चतुरशीति प्रकीर्णक सहस्राणि भगवतोऽर्हत ऋषभस्वामिन आदि तीर्थंकरस्य। तथा—संख्येयानि प्रकीर्णकसहस्राणि मध्यमकानां जिनवराणाम्। चतुर्दश प्रकीर्णक सहस्राणि भगवतो वर्धमानस्वामिनः। अथवा—यस्य यावन्तः शिष्या औत्पत्तिक्या वैनयिक्या कर्मजया पारिणामिक्या चतुर्विधया बुद्ध्योपपेताः तस्य तावन्ति प्रकीर्णकसहस्राणि प्रत्येकबुद्धा अपि तावन्तश्चैव। तदेतत् कालिकम्। तदेतदावश्यकव्यतिरिक्तम्। तदेतदनङ्गप्रविष्टम् ॥ सू० ४३ ॥

टीका-शिष्यः पृच्छति—'से किं तं०' इत्यादि। अथ किं तत् कालिकमिति शिष्य प्रश्नः। उत्तरमाह-'कालियं०' इत्यादि। कालिकं श्रुतमनेकविधं प्रज्ञप्तम्। तद्यथा-उत्तराध्ययनम्=उत्तराध्ययनसूत्रम् १, दशाः=दशाश्रुतस्कन्धसूत्रम् २, कल्पः-बृहत्कल्पसूत्रम् ३, व्यवहारः=व्यवहारसूत्रम् ४, निशीथं=निशीथसूत्रम् ५। महानिशीथं=महानिशीथसूत्रं संप्रति नोपलभ्यते, यत्तु महानिशीथसूत्रं क्वचिदुपलभ्यमानं तदन्यदेतद् बोध्यम् ६। ऋषिभाषितम्=ऋषिभाषितसूत्रम् ७। एतदपि नोपलभ्यते। तथा-जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिः-जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिसूत्रम् ८। द्वीपसागरप्रज्ञप्तिः-द्वीपसागरप्रज्ञप्तिसूत्रं विच्छिन्नम् ९। चन्द्रप्रज्ञप्तिः १०, क्षुद्रिकाविमानप्रविभक्तिः ११, महाविमानप्रविभक्तिः १२, अङ्गचूलिका १३, वर्गचूलिका १४, विवाहचूलिका १५, अरुणोपपातः १६, वरुणोपपातः १७, गरुडोपपातः १८, धरणोपपातः १९,

---

अब कालिक सूत्रका वर्णन करते हैं-'से किं तं कालियं०' इत्यादि।

शिष्य पूछता है—हे भदन्त! कालिकश्रुतका क्या स्वरूप है? उत्तर-कालिकश्रुत अनेक प्रकारका कहा गया है जैसे—उत्तराध्ययनसूत्र १, दशाश्रुतस्कंधसूत्र २, बृहत्कल्पसूत्र ३, व्यवहारसूत्र ४, निशीथसूत्र ५, ये पांच सूत्र उपलब्ध हैं। महानिशीथसूत्र, यह सूत्र उपलब्ध नहीं है। यद्यपि कहीं २ इस नामका सूत्र अब भी मिलता है परन्तु यह वह नहीं है ६। ऋषिभाषितसूत्र यह उपलब्ध नहीं है ७। जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति सूत्र, यह उपलब्ध है ८, द्वीपसागर-प्रज्ञप्तिसूत्र-यह उपलब्ध नहीं ९, चंद्रप्रज्ञप्ति यह उपलब्ध होता है १०। क्षुद्रिकाविमानप्रविभक्ति ११, महाविमानप्रविभक्ति, १२, अंगचूलिका १३, वर्गचूलिका १४, विवाहचूलिका १५, अरुणोपपात १६, वरुणोपपात १७, गरुडोपपात १८, धरणोपपात,

---

હવે કાલિક સૂત્રનું વર્ણન કરે છે-"से किं त कालियं०" ઈત્યાદિ.

શિષ્ય પૂછે છે-હે ભદન્ત! કાલિકશ્રુતનું શું સ્વરૂપ છે?

ઉત્તર—કાલિકશ્રુત અનેક પ્રકારનું કહેલ છે, જેવાં કે (૧) ઉત્તરાધ્યાયન સૂત્ર, (૨) દશાશ્રુત સ્કંધ સૂત્ર, (૩) બૃહત્કલ્પસૂત્ર, (૪) વ્યવહાર સૂત્ર, (૫) નિશીથ સૂત્ર, આ પાંચ સૂત્ર ઉપલબ્ધ છે. (૬) મહાનિશીથ સૂત્ર, આ ઉપલબ્ધ નથી. છતાં પણ કોઈ કોઇ સ્થળે એ નામનું સૂત્ર હાલમાં પણ મળે છે પણ તે અસલ નથી. (૭) ઋષિભાષિત સૂત્ર-તે ઉપલબ્ધ નથી. (૮) જંબૂદ્વીપ પ્રજ્ઞપ્તિ સૂત્ર, તે ઉપલબ્ધ છે, (૯) દ્વીપસાગર પ્રજ્ઞપ્તિ સૂત્ર-તે ઉપલબ્ધ નથી. (૧૦) ચંદ્ર પ્રજ્ઞપ્તિ-તે ઉપલબ્ધ છે. (૧૧) ક્ષુદ્રિકા વિમાન પ્રવિભક્તિ, (૧૨) મહાવિમાનપ્રવિભક્તિ, (૧૩) અંગચૂલિકા, (૧૪) વર્ગચૂલિકા, (૧૫) વિવાહ ચૂલિકા, (૧૬) અરુણોપપાત, (૧૭) વરુણોપપાત, (૧૮) ગરુડોપપાત, (૧૯) ધરણોપપાત, (૨૦)

वैश्रवणोपपातः २०, वेलन्धरोपपातः २१, देवेन्द्रोपपातः २२, उत्थानश्रुतं २३, क्षुद्रिकाविमानप्रविभक्तिसूत्रादारभ्योत्थानश्रुतपर्यन्तं नोपलभ्यते। समुत्थानश्रुतम् २४, इदमिदानीमुपलभ्यते। 'नागपरिज्ञापनिकाः' इति, नागाः—नागकुमारास्तेषां परिज्ञापनं यस्यामागमपद्धतौ सा नागपरिज्ञापनिका, इदं सूत्रं नोपलभ्यते २५। निरयावलिकाः=आवलिकाप्रविष्टाः श्रेणिरूपेण व्यवस्थिताः, नरकावासाः प्रसङ्गतस्तद्गामिनोनरास्तिर्यञ्चश्च वर्ण्यन्ते यत्र ता निरयावलिकाः। एकस्मिन्नागमे वाच्ये वहुवचनप्रयोगः शक्तिस्वाभाव्यात्, यथा 'पञ्चालाः' इत्यादौ। 'कल्पिकाः' इति, निरयावलिका सूत्रस्य नामान्तरम्। नरकावासमधिकृत्य 'निरयावलिकाः' इत्युच्यते। चेटकमधिकृत्य 'कल्पिकाः' इत्युच्यते। चेटको हि कल्पसमुत्पन्न इति तत्र वर्ण्यते। सूत्रमिदम् अन्तकृद्दशाङ्गस्योपाङ्गम् २६। तथा—कल्पावतंसिका इति। यत्र कल्पावतंसकादेवविमानानां वर्णनं विद्यते ताः कल्पावतंसिकाः। अनुत्त-

---

१९, वैश्रमणोपपात २०, वेलंधरोपपात २१, देवेन्द्रोपपात २२, उत्थान श्रुत२३, क्षुद्रिकाविमानप्रविभक्तिसूत्र से लेकर इस उत्थानश्रुत तकके तेरह सूत्र उपलब्ध नहीं हैं २३, समुत्थानश्रुत यह इस समय उपलब्ध है २४, नागपरिज्ञापनिका इस सूत्रमें नागकुमार जातिके देवोंका वर्णन किया गया है, यह इस समय उपलब्ध नहीं है २५, निरयावलिका इसमें श्रेणि रूपसे व्यवस्थित नरकों का, प्रसङ्गतः उनमें जानेवाले मनुष्य एवं तिर्यञ्चों का वर्णन किया गया है। कल्पिका यह निरयावलिका सूत्रका ही दूसरा नाम है। नरकावासकी अपेक्षा इसका नाम निरयावलिका तथा कल्पसमुत्पन्न चेटकका इसमें वर्णन होनेसे 'कल्पिका' ऐसा नाम प्रथित हुआ है। यह सूत्र अन्तकृत दशांगका उपांग है २६। जिस सूत्र

વૈશ્રમણોપપાત, (૨૧) વેલંધરોપપાત, (૨૨) દેવેન્દ્રોપપાત, (૨૩) ઉત્થાનશ્રુત.
ક્ષુદ્રિકાવિમાન પ્રવિભક્તિ સૂત્રથી લઈને ઉત્થાનશ્રુત સુધીના તેર સૂત્ર ઉપલબ્ધ નથી (૨૪) સમુત્થાનશ્રુત. એ અત્યારે ઉપલબ્ધ છે. (૨૫) નાગપરિજ્ઞાપનિકા—આ સૂત્રમાં નાગકુમાર જાતિના દેવોનું વર્ણન કરેલ છે. તે હાલમાં ઉપલબ્ધ નથી. (૨૬) નિરયાવલિકા—તેમાં શ્રેણીરૂપે વ્યવસ્થિત નરકોનું, પ્રસંગતઃ તેમાં જનાર મનુષ્ય અને તિર્યંચોનું વર્ણન કરેલ છે. આ નિરયાવલિકા સૂત્રનું બીજું નામ કલ્પિકા છે. નરકાવાસની અપેક્ષાએ તેનું નામ નિરયાવલિકા તથા કલ્પસમુત્પન્ન ચેટકનું તેમાં વર્ણન હોવાથી "કાલિકા" એવું નામ પ્રચલિત થયું છે. આ સૂત્ર અન્તકૃત દશાંગનું ઉપાંગ છે.

रोपपातिकदशाङ्गस्योपाङ्गम् २७। तथा-'पुष्पिताः' इति। यत्रागमपद्धतौ गृहवासमुकुलनपरित्यागेन प्राणिनः संयमभावपुष्पिताः सुखिताः, पुनः संयमभावपरित्यागतो दुःखप्राप्तिमुकुलिताः, पुनस्तत्परित्यागादेव पुष्पिताः प्रतिपाद्यन्ते, ताः पुष्पिता उच्यन्ते। पुष्पिता सूत्रं प्रश्न व्याकरणसूत्रस्योपाङ्गम् २८। तथा-'पुष्पचूलिकाः' इति, अधिकृताऽर्थ विशेषप्रतिपादिकाः पुष्पचूलिकाः। पुष्पचूलिकासूत्रं विपाकसूत्रस्योपाङ्गम् २९। तथा-'वृष्णिदशाः' इति, अन्धकवृष्णि नराधिपकुलेये जातास्तेऽपि अन्धकवृष्णयः, इह वृष्णि शब्देन तएव गृह्यन्ते। तेषां दशा-अवस्थाश्चरितगति सिद्धिगमनलक्षणा यासु वर्ण्यन्ते ता वृष्णि दशाः। अथवा-अन्धकवृष्णि चरितप्रतिपादिका दशाः-अध्ययनानि वृष्णिदशाः। वृष्णिदशासूत्रं दृष्टिवाद सूत्रस्योपाङ्गम् ३०। आशीविषभावनम् १, दृष्टिविषभावनम् २, स्वप्नभावनम् ३, महास्व-

में कल्पावतंसक देवविमानों का वर्णन किया गया है वह कल्पावतंसिका सूत्र है। यह सूत्र अनुत्तरोपपातिक दशांगका उपाङ्ग है २७। जिस आगम में गृहवास का परित्याग कर प्राणी संयमभावको ग्रहण कर सुखी हुए वर्णित किये गये है, तथा 'संयमभावका परित्याग कर दुःख प्राप्त करने वाले बने हैं, तथा यदि सुखी हुए है तो वे संयमभाव से ही हुए हैं' ऐसा वर्णन किया गया है वह पुष्पिता सूत्र है। यह सूत्र प्रश्न व्याकरण सूत्रका उपाङ्ग है। २८। पुष्पिता सूत्र कथित विषय को जो विशेषरूपसे प्रतिपादन करता है वह पुष्प चूलिका सूत्र है। यह सूत्र विपाक सूत्र का उपाङ्ग है २९। अन्धकवृष्णि राजा के कुल में जो उत्पन्न हुए हैं वे भी अन्धकवृष्णि माने गये हैं। यहां वृष्णि शब्द से अन्धकवृष्णि राजा के

(૨૭) જે સૂત્રમાં કલ્પાવતંસક દેવવિમાનોનું વર્ણન કરેલ છે તે કલ્પાવતંસિકા સૂત્ર છે. આ સૂત્ર અનુત્તરોપપાતિક દશાંગનુ ઉપાંગ છે.

(૨૮) જે આગમમાં "ગૃહવાસનો પરિત્યાગ કરીને પ્રાણી સંયમ ભાવને ગ્રહણ કરવાથી સુખી થતાં વર્ણવ્યુ છે, તથા સંયમ ભાવનો પરિત્યાગ કરીને દુઃખ પ્રાપ્ત કરનાર બને છે, અને જો સુખી થયાં છે તો તેઓ સંયમ ભાવથી જ થયાં છે" એવું વર્ણન કરવામાં આવ્યું છે તે પુષ્પિતાસૂત્ર છે. આ સૂત્ર પ્રશ્ન વ્યાકરણ સૂત્રનું ઉપાંગ છે. (૨૯) પુષ્પિતાસૂત્રમાં કથિત વિષયનું જે વિશેષરૂપે પ્રતિપાદન કરે છે, તે પુષ્પચૂલિકા સૂત્ર છે આ સૂત્ર વિપાક સૂત્રનું ઉપાંગ છે.

(૩૦) અન્ધકવૃષ્ણિ રાજાના કુળમાં જેઓ ઉત્પન્ન થયા છે તેઓ પણ અન્ધક વૃષ્ણિ મનાયા છે. અહીં વૃષ્ણિ શબ્દથી અંધક વૃષ્ણિ રાજાના કુળમાં જન્મેલાનું જ ગ્રહણ થયું છે. તેમની આવસ્થાઓનું-ચરિતગતિનું. ચરિત

प्नभावनम् ४, तेजोऽग्निनिसर्गम् ५, एवमादिकानि-एतत्प्रभृतीनि-' चउरासीइपइ-ण्णगसहस्साइं ' इति । चतुरशीति प्रकीर्णक सहस्राणि भगवतोऽर्हत-ऋषभस्वामिन आदि तीर्थङ्करस्येति । अयमर्थः-प्रथमतीर्थङ्करस्य भगवतः श्री ऋषभदेवस्वामिनः प्रकीर्णकानि चतुरशीति सहस्र संख्यकानि बभूवुः । तथा-मध्यमकानां-द्वितीय तीर्थङ्करादारभ्य त्रयोविंशतितमतीर्थङ्करपर्यन्तानां, जिनवराणां प्रकीर्णकानि संख्यात सहस्र संख्यकानि बभूवुः । तथा-भगवतः श्री वर्धमानस्वामिनः प्रकीर्णकानि चतुर्दशसहस्रसंख्यकानि आसन् । ' अहवा० ' इत्यादि सुगमम् । तदेतत् कालिकश्रुतं वर्णितम् । तथा-आवश्यकव्यतिरिक्त वर्णितम् । तथा-अनङ्गप्रविष्टश्रुतं वर्णितम् ॥४३॥

कुल में जन्म लेने वालों का ही ग्रहण किया गया है । इनकी अवस्थाओं का-चरितगतिका-चारित्र प्राप्ति का मुक्ति प्राप्ति का-जिस सूत्र में वर्णन हुआ है वह वृष्णिदशा सूत्र है । अथवा जिस सूत्र में अंधकवृष्णि की अवस्थाओं का वर्णन करने वाले अध्ययन हों वह भी वृष्णिदशासूत्र है । यह दृष्टिवाद सूत्र का उपाङ्ग है ३० । ये तथा इनसे अतिरिक्त और भी जो श्रुत हैं वे सब कालिक श्रुत हैं । जैसे-आशीविषभावन १, दृष्टि विषभावन २, स्वप्नभावन ३, महास्वप्नभावन ४, तेजोऽग्निनिसर्ग ५ इत्यादि । प्रथमतीर्थंकर श्रीऋषभदेव स्वामी के चोरासी हजार प्रकीर्णक श्रुत थे । तथा द्वितीयतीर्थंकर श्री अजितनाथ से लेकर तेईसवेंतीर्थंकर श्रीपार्श्वनाथस्वामी पर्यन्त बाईस तीर्थंकरों के प्रकीर्णक श्रुतसंख्यात हजार थे । तथा श्रीवर्धमानस्वामी के प्रकीर्णक चौदह हजार थे । अथवा औत्पत्तिकी, वैनयिकी, कर्मजा एवं पारिणामिकी, इन चार प्रकार की

પ્રાપ્તિનું મોક્ષ પ્રાપ્તિનું જેમાં વર્ણન થયું છે તે વૃષ્ણિ દશાસૂત્ર છે. અથવા જે સૂત્રમાં અંધક વૃષ્ણિની અવસ્થાઓનું વર્ણન કરનારા અધ્યયન હોય તે પણ વૃષ્ણિ દશાસૂત્ર છે. તે દૃષ્ટિવાદ સૂત્રનું ઉપાંગ છે. એ તથા તેમના સિવાયનાં બીજાં પણ જે શ્રુત છે તે બધાં કાલિકશ્રુત છે. જેવાં કે (૧) આશીવિષ ભાવન, (૨) દૃષ્ટિ વિષભાવન, (૩) સ્વપ્ન ભાવન, મહાસ્વપ્ન ભાવન, તેજો અગ્નિનિસર્ગ વગેરે. પહેલાં તીર્થંકર શ્રી ઋષભદેવ સ્વામીના ચોર્યાસી હજાર પ્રકીર્ણક શ્રુત હતાં. તથા બીજા તીર્થંકર અજિતનાથથી માંડીને ત્રેવીસમાં તીર્થંકર શ્રી. પાર્શ્વનાથ સ્વામી સુધીના બાવીસ તીર્થંકરોના પ્રકીર્ણક સંખ્યાત હજાર શ્રુત હતાં તથા શ્રી. વર્ધમાન સ્વામીનાં પ્રકીર્ણક ચૌદ હજાર શ્રુત હતાં, અથવા ઔત્પત્તિકી, વૈનયિકી, કર્મજા અને પરિમાથિકી, એ ચાર પ્રકારની મતિથી

साम्प्रतमङ्गप्रविष्टश्रुतमाह—

मूलम्—से किं तं अंगपविट्ठं ?। अंगपविट्ठं दुवालसविहं पण्णत्तं । तं जहा—आयारो १ सूयगडो २ ठाणं ३ समवायो ४, विवाहपन्नत्ती ५, नायाधम्मकहाओ ६ उवासगदसाओ ७, अंतगडदसाओ ८, अणुत्तरोववाइयदसाओ ९, पण्हावागरणं १०, विवागसुयं ११, दिट्ठिवाओ १२ ॥ सू० ४४ ॥

छाया—अथ किं तद् अङ्गप्रविष्टम् ? अङ्गप्रविष्टं द्वादशविधं प्रज्ञप्तम् । तद् यथा आचारः १, सूत्रकृतम् २, स्थानम् ३, समवायः ४, विवाहप्रज्ञप्तिः ५, ज्ञाताधर्मकथाः ६, उपासकदशाः ७, अन्तकृद्दशाः ८, अनुत्तरोपपातिकदशाः ९, प्रश्नव्याकरणम् १०, विपाकश्रुतम् ११, दृष्टिवादः १२ ॥ सू० ४४ ॥

टीका—सुगमम् ॥ सू० ४४ ॥

बुद्धियों से समन्वित जितने शिष्यजन जिन २ तीर्थंकरों के थे उन के वारे में उतने ही हजार प्रकीर्णक थे। तथा प्रत्येक बुद्ध भी उतने ही थे। यह आवश्यक व्यतिरिक्त के भेदरूप कालिक श्रुतका वर्णन हुवा। यहां तक अनंगप्रविष्ट का कथन हुवा ॥ सू० ४३ ॥

अब अङ्गप्रविष्ट श्रुत कहते हैं—'से किं तं अंगपविट्ठं०' इत्यादि।

शिष्य पूछता है-हे भदन्त ! अंगप्रविष्ट श्रुत का क्या स्वरूप है।

उत्तर—अंगप्रविष्ट श्रुत बारह प्रकार का कहा गया है, जैसे-आचारांग १, सूत्रकृतांग २, स्थानांग ३, समवायांग ४, विवाहप्रज्ञप्ति ५,

---

युક્ત જેટલા શિષ્યજન, જે જે તીર્થંકરોના હતાં તેમના પણ એટલા જ હજાર પ્રકીર્ણક શ્રુત હતાં. તથા પ્રત્યેક બુદ્ધ પણ એટલાં જ હતા. આ આવશ્યક વ્યતિરિક્તના ભેદરૂપ કાલિક શ્રુતનું વર્ણન થયું. અહીં સુધી અનંગપ્રવિષ્ટનું વર્ણન થયું. ॥ સૂ. ૪૩॥

હવે અંગ પ્રવિષ્ટ સૂત્રનું વર્ણન કરે છે-" से कि तं अंगपविट्ठं० " ઈત્યાદિ.

શિષ્ય પૂછે છે-હે ભદન્ત ! અંગપ્રવિષ્ટ સૂત્રનું શું સ્વરૂપ છે ?

ઉત્તર—અંગપ્રવિષ્ટ શ્રુત બાર પ્રકારનું કહેલ છે-(૧) આચારાંગ, (૨) સુત્રકૃતાંગ, (૩) સ્થાનાંગ, (૪) સમવાયાંગ, (૫) વિવાહ પ્રજ્ઞપ્તિ, (૬) જ્ઞાતા

अथैषां पृथक् पृथक् स्वरूपं वर्णयितुकामः प्रथममाचाराङ्गस्वरूपं दर्शयति—

मूलम्—से किं तं आयारे? आयारे णं समणाणं निग्गंथाणं आयार—गोयर—विणय—वेणइय—सिक्खा—भासा-ऽभासा—चरण—करण—जाया—माया—वित्तीओ आघविज्जंति।

से समासओ पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा—नाणायारे, दंसणायारे, चरित्तायारे, तवायारे, वीरियायारे। आयारे णं परित्ता वायणा, संखेज्जा अणुओगदारा, संखिज्जावेढा, संखेज्जा सिलोगा, संखिज्जाओ निज्जुत्तीओ, संखिज्जाओ पडिवत्तीओ। से णं अंगट्ठयाए पढमे अंगे, दो सुयक्खंधा, पणवीसं अज्झयणा, पंचासीई उद्देसणकाला, पंचासीइ समुद्देसणकाला, अट्ठारस—पय—सहस्साइं पयग्गेणं, संखिज्जा अक्खरा, अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता थावरा, सासय—कड—निबद्ध निकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति, पन्नविज्जंति, परूविज्जंति, दंसिज्जंति, निदंसिज्जंति, उवदंसिज्जंति। से एवं आया, एवं नाया, एवं विण्णाया, एवं चरण करण परूवणा आघविज्जइ, पण्णविज्जइ, प्ररूविज्जइ, दंसिज्जइ, निदंसिज्जइ, उवदंसिज्जइ। से तं आयारे॥सू० ४५॥

छाया—अथ कः स आचारः ?। आचारे खलु श्रमणानां निर्ग्रन्थानामाचार-गोचर विनयवैनयिक शिक्षा भाषाऽभाषाचरणकरणयात्रामात्रावृत्तय आख्यायन्ते।

स समासतः पञ्चविधः प्रज्ञप्तः। तद् यथा—ज्ञानाचारः १, दर्शनाचारः २,

---

ज्ञाताधर्मकथांग ६, उपासकदशांग ७, अन्तकृतदशांग ८, अनुत्तरोपपातिकदशांग ९, प्रश्नव्याकरण १०, विपाकश्रुत तथा ११ दृष्टिवाद १२, ॥ सू० ४४॥

ધર્મકથાંગ, (૭) ઉપાસકદશાંગ, (૮) અન્તકૃતદશાંગ, (૯) અનુત્તરોપપાતિકદશાંગ, (૧૦) પ્રશ્ન વ્યાકરણ, (૧૧) વિપાકશ્રુત, તથા દૃષ્ટિવાદ. ॥ સૂ. ૪૪ ॥

चारित्राचारः ३, तप आचारः ४, वीर्याचारः ५। आचारे खलु परीता (परिमिता) वाचना, संख्येयानि–अनुयोगद्वाराणि, संख्येया वेष्टकाः, संख्येयाः श्लोकाः, संख्येया निर्युक्तयः, संख्येयाः प्रतिपत्तयः। स खलु अङ्गार्थतया प्रथममङ्गम्, द्वौ श्रुतस्कन्धौ, पञ्चविंशतिरध्ययनानि, पञ्चाशीतिरुद्देशनकालाः, पञ्चाशीतिः समुद्देशनकालाः, अष्टादश पदसहस्राणि पदाग्रेण, संख्येयान्यक्षराणि, अनन्तागमाः, अनन्ताः पर्यवाः, परीतास्त्रसाः अनन्ताः स्थावराः, शाश्वतकृतनिबद्ध निकाचिता जिनप्रज्ञप्ता भावा आख्यायन्ते, प्रज्ञाप्यन्ते, प्ररूप्यन्ते, दर्श्यन्ते निदर्श्यन्ते, उपदर्श्यन्ते। स एवमात्माज्ञाता, एवं विज्ञाता, एवं चरणकरणप्ररूपणा आख्यायते, प्रज्ञाप्यते, प्ररूप्यते, दर्श्यते, निदर्श्यते, उपदर्श्यते, स एष आचारः ॥ सू० ४५ ॥

टीका—शिष्यः पृच्छति—'से किं तं आयारे०' इति।

अथ कः स आचार इति। हे भदन्त! यो भवता द्वादशाङ्गश्रुतपुरुषस्य प्रथमाङ्गतयाऽऽचारोऽनुपदमेवोक्तः स आचारः कीदृक् स्वरूपः? इति प्रश्नः। उत्तरमाह—'आयारे णं०' इत्यादि। हे शिष्य! आचारे=आचाराङ्गसूत्रे खलु श्रमणानां=साधूनाम्, कीदृशानामित्याह—'निग्गंथाणं' इति। निर्ग्रन्थानां=बाह्याभ्यन्तरग्रन्थरहितानाम्, इदं विशेषणं शाक्यादिश्रमणनिवृत्त्यर्थम्। श्रमणा हि पञ्चविधा भवन्ति। उक्तञ्च—

अब इन सबका स्वरूप सूत्रकार भिन्न २ सूत्रों द्वारा स्पष्ट करते हैं–
'से किं तं आयारे०' इत्यादि—

शिष्य पूछता है– हे भदन्त! आपने अभी जो द्वादशांग श्रुत पुरुष का प्रथम अंग आचारांगसूत्र बतलाया है उसका क्या स्वरूप है?

उत्तर—आचारांगसूत्रमें निर्ग्रन्थ श्रमणों के आचार, गोचर, विनय, वैनयिक, भाषा, अभाषा, चरण, करण, यात्रा, मात्रा, एवं वृत्ति का कथन किया गया है। ग्रन्थ नाम परिग्रह का है। वह बाह्य और आभ्य-

---

હવે એ બધાંનું સ્વરૂપ સૂત્રકાર અલગ અલગ સૂત્રો દ્વારા સ્પષ્ટ કરે છે-
"से किं तं आयारे०" ઇત્યાદિ.

શિષ્ય પૂછે છે-હે ભદન્ત! આપે હમણાં જ જે દ્વાદશાંગશ્રુત પુરુષનું પહેલું અંગ આચારાંગસૂત્ર બતાવ્યું છે તેનું શું સ્વરૂપ છે?

ઉત્તર—આચારાંસૂત્રમાં નિગ્રન્થ શ્રમણોના આચાર, ગોચર, વિનય, વૈનયિક, ભાષા, અભાષા, ચરણ, કરણ, યાત્રા માત્રા અને વૃત્તિનું વર્ણન કરાયું છે. પરિગ્રહનું નામ ગ્રન્થ છે. તે બાહ્ય અને આભ્યન્તરના ભેદથી બે પ્રકારનો

"निग्गंथसक्कतावसगेरुय आजीव पंचहा समणा"।

छाया—निर्ग्रन्थ–शाक्य–तापस–गैरिका जीवाः पञ्चधा श्रमणः। इति ॥

आचारगोचर विनयवैनयिक शिक्षाभाषाऽभाषाचरणकरणयात्रामात्रावृत्तय आख्यायन्ते। तत्राचारः–ज्ञानाचाराद्यनेकभेदभिन्नः, गोचरः=भिक्षाग्रहणविधिः–यथा गौः परिचितापरिचितोभयक्षेत्रे ग्रासाय प्रवर्तते तथा साधुरपि परिचिता परिचितोभयकुले भिक्षार्थं चरतीति भावः। विनयः–विनीयते अपनीयते कर्मानेनेति विनयः ज्ञानादि रूपः, वैनयिकम्–विनयजन्यं कर्मक्षयादिरूपं फलम्, शिक्षा–ग्रहणशिक्षा

न्तर के भेद से दो प्रकार का बतलाया गया है। श्रमणों का जो यह निर्ग्रन्थपद विशेषणरूप से सूत्रमें रखा गया है। उसका तात्पर्य यह है कि जैन मुनि इस दोनों प्रकार के ग्रन्थ से रहित हुआ करते हैं। शाक्यादि श्रमण ऐसे नहीं होते। पांच प्रकार के श्रमण बतलाये गये हैं–निर्ग्रन्थ १, शाक्य २, तापस ३, गैरिक ४, आजीवक ५, इनमें निर्ग्रन्थ जैन श्रमण ही होते हैं। मुनिजन जिसे अपने दैनिक आचरणमें लाते है वह आचार है, यह ज्ञानाचार आदि के भेद से अनेक प्रकार का होता है। भिक्षा ग्रहण करने की जो विधि है वह गोचर है। जैसे गाय परिचित एवं अपरिचित उभयप्रकार के खेतमें चरती है उसी प्रकार निर्ग्रन्थमुनिजन भी परिचित एवं अपरिचित उभयप्रकार के घरोंमें भिक्षा के लिये जाते हैं। इस प्रकार जी भिक्षा की विधि है वह गोचर है। कर्मरूप मैल जिसके द्वारा दूर किया जाता है वह विनय है। ज्ञानादिरूप से विनय भी अनेकप्रकार का बतलाया गया

બતાવેલ છે. શ્રમણોનું જે આ નિર્ગ્રન્થપદ વિશેષણરૂપે સૂત્રમાં મૂકવામાં આવ્યું છે તેનું તાત્પર્ય એ છે કે જૈન મુનિ એ બન્ને પ્રકારના ગ્રન્થથી રહિત હોય છે. શાકયાદિ શ્રમણ એવાં હોતાં નથી. પાંચ પ્રકારના શ્રમણ બતાવવામાં આવ્યા છે-(૧) નિર્ગ્રન્થ, (૨) શાકય, (૩) તાપસ, (૪) ગૈરિક, અને (૫) આજીવક. એમનામાં જૈનશ્રમણ જ નિર્ગ્રન્થ હોય છે. મુનિઓ જેનો પોતાના દૈનિક આચરણમાં ઉપયોગ કરે છે તે આચાર છે, તે જ્ઞાનાચાર આદિના ભેદથી અનેક પ્રકારનો હોય છે. ભિક્ષાગ્રહણ કરવાની જે વિધિ છે તે ગોચર કહેવાય છે. જેમ ગાય પરિચિત અને અપરિચિત બન્ને પ્રકારનાં ખેતરોમાં ચરે છે એજ પ્રકારે નિર્ગ્રન્થ મુનિ પણ પરિચિત અને અપરિચિત બન્ને પ્રકારનાં ઘરે ભિક્ષાને માટે જાય છે. આ રીતે ભિક્ષાની જે વિધિ છે તેને ગોચર કહે છે. જેના દ્વાર કર્મરૂપ મેલ દૂર કરાય છે તે વિનય છે. જ્ઞાનાદિરૂપે વિનય પણ અનેક પ્રકારનો બતાવ્યો છે.

आसेवनशिक्षा च, यद्वा-शिष्यशिक्षा, भाषा-सत्या असत्या मृषा च, अभाषा-असत्या सत्यमृषा च, चरणं-व्रतादिकं, करणं-पिण्ड-विशुद्ध्यादिकम् । उक्तञ्च—

(५) (१०) (१७) (१०) (९)
वय समणधम्म संजम, वेयावच्चं च बंभगुत्तीओ।
(३) (१२) (४) (७०)
णाणाइतियं तव कोहनिग्गहाई चरणमेयं ॥७०॥
(४) (५) (१२) (१३) (५)
पिंडविसोही समिई, भावण पडिमा य इंदियनिरोहो ।
(२५) (३) (४) (७०)
पडिलेहण गुत्तीओ, अभिग्गहा चेव करणं तु ॥

है। विनय जन्य कर्मक्षयादि रूप फल का नाम वैनयिक है। ग्रहणशिक्षा तथा आसेवनशिक्षा के भेद से शिक्षा दो प्रकार की बतलाई गई है। अथवा मुनिजन जो अपने शिष्यवर्ग को शिक्षा देते हैं वह शिक्षा भी शिक्षा शब्द से यहां गृहीत हुई है। भाषा-सत्य, असत्यामृषारूप, अभाषा-असत्य, सत्यमृषारूप है। व्रतादिकका आचरण यह चरण है। पिण्डविशुद्धि आदि करण है। कहा भी है—

(५) (१०) (१७) (१०) (९)
"वय समणधम्म संजम, वेयावच्चं च बंभगुत्तीओ।
(३) (१२) (४)
णाणाइतियं तव कोह निग्गहाई चरणमेयं (७०) ॥१॥

વિનયજન્ય કર્મક્ષયાદિરૂપ ફળનું નામ વૈનયિક છે. શિક્ષા બે પ્રકારની બતાવી છે-(૧) ગ્રહણ શિક્ષા, તથા (૨) આસેવન શિક્ષા. અથવા મુનિજન પોતાના શિષ્યોને જે શિક્ષા આપે છે તે પણ શિક્ષા શબ્દથી અહીં ગ્રહણ કરવામાં આવેલ છે. ભાષા-સત્ય, અસત્યામૃષારૂપ, અભાષા-અસત્ય, સત્યમૃષારૂપ છે. વ્રતાદિકનું આચરણ તે ચરણ કહેવાય છે. પિંડવિશુદ્ધિ આદિ કરણ છે. કહ્યું પણ છે-

५ १० १७ १० ९
"वय समणधम्म संजम, वेयावच्चं च वंभगुत्तीओ।
३ १२ ४
णाणइतियं तव कोह निग्गहाई चरणमेदं (७०) ॥१॥

छाया—व्रत-श्रवणधर्म संयम-वैयावृत्त्यं च ब्रह्मगुप्तयः ।
ज्ञानादित्रिकं तपः क्रोधनिग्रहादि चरणमेतत् ॥
पिण्डविशुद्धिः समितिः भावना प्रतिमा च इन्द्रियनिरोधः ।
प्रतिलेखना गुप्तयः अभिग्रहाश्चैव करणं तु ॥ इति ॥

तथा-यात्रा-संयमयात्रा-रत्नत्रयाराधनलक्षणा, मात्रा-तन्निर्वाहार्थमेव परिमिताहारग्रहणलक्षणा, वृत्तिः-विविधैरभिग्रहविशेषैर्वर्त्तनम्, आचारादिवृत्तिपर्यन्तानां

(४) (५) (१२) (१३) (५)
पिंडविसोही समिई, भावण पडिमा य इंदियनिरोहो ।
(२५) (३) (४)
पडिलेहण गुत्तीओ, अभिग्गहा चेव करणं (७०) तु" ॥२॥

पांच प्रकार का महाव्रत दस प्रकार का श्रमण धर्म, सत्रह प्रकार का संयम, दस प्रकार का वैयावृत्य, नौ प्रकार की ब्रह्मचर्यगुप्ति, ज्ञानादि तीन, बारह प्रकार का तप, चार प्रकार के क्रोधादिकों का निग्रह ७०, इस तरह यह चरण सत्तरी है। इस चरण सत्तरी का ही यहां चरण शब्द से ग्रहण हुआ है। चार प्रकार की पिण्डविशुद्धि, पांच प्रकार की समिति, बारह की भावना, बारह प्रकार की प्रतिमा, पांच प्रकार का इन्द्रियनिरोध, पचीस प्रकार की प्रतिलेखना, तीन गुप्ति तथा चार प्रकार का अभिग्रह ७०, ये सब करण सत्तरी है। इसका ग्रहण यहां करण शब्द से हुआ है। रत्नत्रयरूप संयम का निर्वाह करना यह संय-

४ ५ १२ १३ ५
पिंड विसोही समिई भावण पडिमा य इंदिय निरोहो ।
२५ ३ ४
पडिलेहण गुत्तीओ, अभिग्गहा चेव करणं (७०) तु ॥२॥

પાંચ પ્રકારનાં મહાવ્રત, દસ પ્રકારનાં શ્રમણ ધર્મ, સત્તર પ્રકારના સંયમ દસ પ્રકારનું વૈયાવૃત્ય, નવ પ્રકારની બ્રહ્મચર્ય ગુપ્તિ, જ્ઞાનાદિ ત્રણ, બાર પ્રકારનાં તપ, ચાર પ્રકારના ક્રોધાદિનો નિગ્રહ, (૭૦) આ રીતે આ ચરણસત્તરી છે. આ ચરણ સત્તરીનું જ અહીં ચરણ શબ્દથી ગ્રહણ થયેલ છે. ચાર પ્રકારની પિંડ વિશુદ્ધિ, પાંચ પ્રકારની સમિતિ, બાર પ્રકારની ભાવના, બાર પ્રકારની પ્રતિમા, પાંચ પ્રકારનો ઇન્દ્રિયનિરોધ, પચીશ પ્રકારની પ્રતિલેખના, ત્રણ ગુપ્તિ તથા ચાર પ્રકારનો અભિગ્રહ (૭૦) આ બધાં કરણ સત્તરી છે. અહીં કરણ શબ્દથી તેનું ગ્રહણ કરવામાં આવ્યું છે. રત્નત્રયરૂપ સંયમનો નિર્વાહ કરવો તે

शब्दानां द्वन्द्वः। आचारादि वृत्त्यन्ताः अत्राचाराङ्गसूत्रे कथ्यन्ते इति भावः। स पूर्वोक्त आचारः समासतः—संक्षेपतः पञ्चविधः प्रज्ञप्तः, पञ्चविधत्वमेवाह—'तं जहा०' इत्यादिना। तत्र प्रथमे आचारो ज्ञानाचारः–स हि श्रुतज्ञानविषयः काल-विनयबहुमानोपधानानिह्नव व्यञ्जनार्थं तदुभयरूपोऽष्टविधः, व्यञ्जनशब्दोऽत्र पद-वाचकः, तच्च सूत्रस्थपदानां सम्यगुच्चारणम्। उक्तञ्च ज्ञानाचारस्वरूपम्—

"काले विणये बहुमाणे उवहाणे तहा अनिण्हवणे।
वंजण तत्थ तदुभये अट्ठविहो णाणमायारो" ॥ १ ॥

छाया—कालो विनयो बहुमान उपधानं तथा अनिह्नवनम्।
व्यञ्जनमर्थस्तदुभयम् अष्टविधो ज्ञानाचारः ॥ इति।

मयात्रा है। तथा इस रत्नत्रयरूप संयम के निर्वाह निमित्त जो परिमि-तमात्रामें आहार ग्रहण किया जाता है वह मात्रा है। तथा अनेक प्रकार के अभिग्रहों का धारण करना यह वृत्तिशब्द का अर्थ है। तात्पर्य इसका यह है कि इन साधु के आचार आदि समस्त कर्तव्यों का आचा-रांगसूत्रमें वर्णन किया गया है।

वह आचार संक्षेप से पांच प्रकार का कहा गया है, जैसे-ज्ञाना-चार १, दर्शनाचार २, चारित्राचार ३, तप आचार ४, और वीर्याचार ५। इनमें ज्ञानाचार श्रुतज्ञान के विषयमें होता है। यह-काल १, विनय २, बहुमान ३, उपधान (उपवासादितप) ४, अनिह्नव ५, व्यंजन ६, अर्थ ७, एवं तदुभय ८, इस रूप से आठ प्रकार का बतलाया गया है। सुत्रस्थित पदों का अच्छी तरह से उच्चारण करना इसका नाम व्यंजन है १।

संयमयात्रा छे. तथा ते रत्नत्रयरूप संयमना निर्वाह माटे जे परिमितमात्रामां आहार ग्रहण कराय छे तेनुं नाम मात्रा छे. तथा अनेक प्रकारना अभिग्रहोने धारण करवो एवो वृत्ति शब्दनो अर्थ छे. तेनुं तात्पर्य ए छे के ए साधु-ओना आचार आदि समस्त कर्तव्योनुं आचारांग सूत्रमां वर्णन करवामां आवेल छे.

ए आचार संक्षिप्तमां पांच प्रकारना कहेल छे-(१) ज्ञानाचार, (२) दर्श-नाचार, (३) चारित्राचार, (४) तप आचार, अने (५) वीर्याचार. तेओमां ज्ञानाचार. श्रुतज्ञानना विषयमां थाय छे. ए (१) काळ, (२) विनय, (३) बहुमान. (४) उपधान, (५) अनिह्नव, (६) व्यंजन, (७) अर्थ अने (८) तदुभय, एम आठ प्रकारनो बताव्यो छे. सूत्रमां रहेल पदार्थनुं सारी रीते उच्चारण करवुं तेनुं नाम व्यंजन छे (१) दर्शनाचार. सम्यक्त्वियोनो आचार. ते आठ

दर्शनाचारः—सम्यक्त्ववतां निःशङ्कित १, निष्काङ्क्षित २, निर्विचिकित्सा ३ ऽमूढ दृष्ट्यु ४ पबृंहा ५, स्थिरीकरण ६–वात्सल्य ७–प्रभावना ८ रूपः उपबृंहा साधर्मिणां वृद्धिकरणं पोषणं च।

उक्तञ्च दर्शनाचार स्वरूपम्—

णिस्संकिय णिक्कंखिय णिव्वितिगिच्छा अमूढदिट्ठी य।
उववूह थिरीकरणे, वच्छल्लपभावणे अट्ठ॥

छाया—निःशङ्कितं १ निष्काङ्क्षितं २ निर्विचिकित्सा ३ अमूढदृष्टिश्च ४।
उपबृंहा ५ स्थिरीकरणं ६ वात्सल्यं ७ प्रभावना ८ अष्ट॥ इति॥

चारित्राचारः-चारित्रवतां समितिगुप्त्यादि पालनरूपो व्यवहारः। उक्तञ्च—

"पणिहाण जोगजुत्तो, पंचहिं समितिहिं तिहिं य गुत्तीहिं।
एस चरित्ता यारो, अट्ठविहो होइ णायव्वो॥

छाया—प्रणिधानयोगयुक्तः पञ्चभिः समितिभिस्तिसृभिश्च गुप्तिभिः।
एष चारित्राचारः, अष्टविधो भवति ज्ञातव्यः॥ इति॥

तप आचारः-अनशनादि द्वादशविधतपः-समाचरणलक्षणः। उक्तञ्च—

"बारसविहम्मि वि तवे, सब्भितर बाहिरे जिणुवदिट्ठे।
अगिलाए आणाजीवी, णायव्वो सो तवायारो"॥

छाया—द्वादशविधेऽपि तपसि साभ्यन्तर बाह्ये जिनोपदिष्टे।
अग्लानः अनाजीवी, ज्ञातव्यः स तप आचारः॥ इति।

दर्शनाचार-सम्यक्त्वियों का आचार, यह आठ प्रकार का कहा गया है जैसे-निःशंकित १, निष्कांक्षित २, निर्विचिकित्सा ३, अमूढदृष्टि ४, उपब्रंहा ५, स्थिरीकरण ६, वात्सल्य ७, और प्रभावना ८। साधर्मीजनों की वृद्धि करना तथा उनका पोषण करना यह उपब्रंहा है। ये सम्यक्त्व के आठ अंग हैं। इन्हे सम्यग्दृष्टि जीव पालन करता है २। चारित्र शाली जीवों का गुप्ति, समिति आदि का पालन करने रूप जो व्यवहार है उसका नाम चारित्राचार है।३। अनशन आदि बारह प्रकार के तपों का पालन करना यह तप आचार है। तप बाह्य और अभ्यन्तर के

પ્રકારનો કહેલ છે, જેવાં કે-(૧) નિઃશંકિત, (૨) નિષ્કાંક્ષિત, (૩) નિર્વિચિકિત્સા, (૪) અમૂઢ દૃષ્ટિ, (૫) ઉપબ્રંહા, (૬) સ્થિરીકરણ, (૭) વાત્સલ્ય અને પ્રભાવના સાધર્મી જનોનો વધારો કરવો તથા તેમનું પોષણ કરવું તે ઉપબૃંહા છે. એ સમ્યકત્વનાં આઠ અંગ છે. સમ્યગૃદૃષ્ટિજીવ તેમને પાળે છે (૨) ચારિત્રશાળી જીવોનો ગુપ્તિ, સમિતિ આદિનું પાલન કરવારૂપ જે વ્યવહાર છે તેનું નામ ચારિત્રાચાર છે (૩). અનશન આદિ બાર પ્રકારનાં તપનું પાલન કરવું તે તપ

वीर्याचारः-ज्ञानदर्शनाद्याराधने बाह्याभ्यन्तर वीर्यस्यागोपनम् । उक्तञ्च—

अणिगूहियबलविरिओ, परक्कमइ जो जहुत्तमाउओ ।
जुंजइ य जहा थामं, णायव्वो वीरियारो ॥

छाया-अनिगूहितबलवीर्यः पराक्रमति यो यथोक्तमायुक्तः ।
युनक्ति च यथास्थाम, ज्ञातव्यो वीर्याचारः ॥ इति ॥

एवं पञ्चविध आचारः प्ररूपितः । तथा—आचारे=आचाराङ्गे खलु वाचनाः=सूत्रार्थाध्यापनलक्षणाः परीताः संख्याताः सन्ति । आचाराङ्गस्य आद्यन्तोपलब्ध्या वाचनाः संख्येया विज्ञेयाः । इदमवसर्पिणी कालमाश्रित्योक्तम् । अवसर्पिण्युत्सर्पिणीकालोभयमाश्रित्य तु कालत्रयापेक्षया अनन्ता अपि वाचना भवेयुः । तथा—अनुयोगद्वाराणि सूत्रार्थस्य कथनविधिरनुयोगः, द्वाराणीव द्वाराणि, अनुयोगस्य द्वाराणि—अनुयोग द्वाराणि=उपक्रमनिक्षेपाधिगम नय रूपाणि संख्येयानि=संख्या-

भेद से बारह प्रकार का बतलाया गया है। इस को मुनिजन आचरणमें लाते हैं । ४ । ज्ञान एवं दर्शन के आराधनमें बाह्य और अभ्यन्तर वीर्यका गोपन नहीं करना, अर्थात् शक्ति के अनुसार ज्ञान दर्शन आदि की आराधनामें लगना यह वीर्याचार है। इस तरह पांच प्रकार का आचार कहा है। इस आचारांगमें निश्चय से सूत्र और अर्थ के अध्यापनरूप वाचनाएँ संख्यात हैं। यह कथन अवसर्पिणी काल की अपेक्षा से कहा गया जानना चाहिये। उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी इन दोनों कालो को लेकर तो कालत्रय की अपेक्षा से इसकी अनन्त वाचनाएँ हो सकती हैं। सूत्र और अर्थ के कहने की विधि का नाम अनुयोग है। द्वार सदृश होने से द्वार है अनुयोग के जो द्वार हैं उन्हें अनुयोग द्वार कहते हैं। ये द्वार उपक्रम, निक्षेप, अधिगम एवं नय रूप होते हैं। ये उपक्रम आदि

આચાર છે. બાહ્ય અને આભ્યન્તરના ભેદથી તપ બાર પ્રકારનું બતાવ્યું છે. તેને મુનિજન આચરણમાં મૂકે છે (૪) જ્ઞાન અને દર્શનનાં આરાધનમાં બાહ્ય અને આભ્યાન્તર વીર્યનું ગોપન ન કરવું એટલે કે શક્તિ અનુસાર જ્ઞાન દર્શન આદિની આરાધનામાં લાગવું તે વીર્યાચાર છે. આ રીતે પાંચ પ્રકારના આચાર છે. આ આચારાંગમાં નિશ્ચયથી સૂત્ર અને અર્થના અધ્યાપનરૂપ વાચનાઓ સંખ્યાત છે. આ કથન અવસર્પિણી કાળની અપેક્ષાએ કહેલ માનવું જોઇએ. ઉત્સર્પિણી અને અવસર્પિણી એ બન્ને કાળોને લઈ ને તે કાળાત્રયની અપેક્ષાએ તેની અનન્ત વાચનાઓ થઈ શકે છે. સૂત્ર અને અર્થને કહેવાની વિધિનું નામ અનુયોગ છે. દ્વાર સમાન હોવાથી, અનુયોગના જે દ્વાર છે તેમને અનુયોગ દ્વાર કહે છે. એ દ્વારા ઉપક્રમ, નિક્ષેપ, અધિગમ અને નયરૂપ હોય છે. એ

तानि-परिमितानि सन्ति। तथा-वेष्टकाः=ज्ञानाद्यन्यतमविषय प्रतिपादकवचन सन्दर्भरूपाः, आर्योपगीत्यादिच्छन्दो विशेषा वा संख्येयाः सन्ति। तथा-श्लोकाः -अनुष्टुबादयः संख्येयाः सन्ति। तथा-निर्युक्तयः-निर्युक्तनां सूत्राभिमतार्थानां युक्तयः=संयोजनानि निर्युक्तयः, अत्र आर्षत्वाद् युक्त शब्दलोपो द्रष्टव्यः, यद्वा-निश्चयेन अर्थ प्रतिपादिका युक्तयः-निर्युक्तयः संख्येयाः सन्ति। तथा-प्रतिपत्तयः -परमतपदार्थ प्रदर्शनरूपा भिक्षुप्रतिमाद्यभिग्रहविशेषा वा संख्येयाः सन्ति। स आचारः खलु अङ्गार्थतया=श्रुतपुरुषस्याङ्गरूपतया प्रथममङ्गम्। अङ्गानां रचनानन्तरं यस्तेषां क्रमस्तमपेक्ष्येदमाचाराङ्गं प्रथममङ्गमुक्तम्। रचनापेक्षया तु द्वादशं दृष्टि-

अनुयोग द्वार आचारांगमें संख्यात हैं। ज्ञान आदिरूप किसी एक विषयको प्रतिपादन करने वाले जो वाक्य हैं उनका नाम वेष्टक है। अथवा-आर्या, उपगीति आदि छंद विशेषों का नाम भी वेष्टक है। ये भी उसमें संख्यात हैं। तथा अनुष्टुप् आदि श्लोक भी संख्यात हैं। निर्युक्तियां भी संख्यात ही है। सूत्र अभिमत अर्थ का संयोजन करना इसका नाम निर्युक्ति है। अथवा-निश्चयसे अर्थप्रतिपादन करने वाली जो युक्ति है वह निर्युक्ति है। इस प्रकारकी निर्युक्तियां आचारांगसूत्रमें संख्यात ही हैं। तथा प्रतिपत्तियां भी संख्यात हैं। अन्यवादि संमत पदार्थों का प्रदर्शन करना अथवा भिक्षु प्रतिमा आदिके अभिग्रहों का कथन करना ये सब प्रतिपत्ति शब्द के वाच्यार्थ हैं। इस आचारांग को जो प्रथम अंग कहा गया है उसका कारण यह है कि यह श्रुतपुरुष का सर्वप्रथम अंग है। जब अंगों की रचना हुई तब उनके क्रम को लेकर इसको प्रथम अंगरूप से प्रकट

ઉપક્રમ આદિ અનુયોગ દ્વાર આચારાંગમાં સંખ્યાત છે. જ્ઞાન આદિ રૂપ કોઇ એક વિષયનું પ્રતિપાદન કરનાર જે વાક્યો હોય છે તેમનું નામ વેષ્ટક છે. એ પણ તેમાં સંખ્યાત છે તથા અનુષ્ટુપ્ આદિ શ્લોક પણ સંખ્યાત છે. નિર્યુક્તિઓ પણ સંખ્યાત છે. સૂત્ર અભિમત અર્થનું સંયોજના કરવું. તેનું નામ નિર્યુક્તિ છે. અથવા-નિશ્ચયથી અર્થનું પ્રતિપાદન કરનારી જે યુક્તિ છે તે નિર્યુક્તિ છે. આચારાંગ સૂત્રમાં એ પ્રકારની સંખ્યાત નિર્યુક્તિઓ છે. તથા પ્રતિપત્તિયો પણ સંખ્યાત છે. અન્યવાદિ સંમત પદાર્થોનું સમર્થન કરવું, અથવા ભિક્ષુ પ્રતિમાં આદિના અભિગ્રહોનું કથન કરવું એ બધા પ્રતિપત્તિ શબ્દના વાચ્યાર્થ છે. આ આચારાંગને જે પહેલું અંગ કહેવામાં આવેલ છે તેનું કારણ એ છે કે તે શ્રુતપુરુષનું સૌથી પહેલું અંગ છે. જ્યારે અંગોની રચના થઈ ત્યારે તેમના ક્રમને

वादाङ्गं प्रथमम् , तस्य सर्वप्रवचनापेक्षया पूर्वमुक्तत्वात् । अस्य द्वौ श्रुतस्कन्धौ= अध्ययनसमूहौ, पञ्चविंशतिरध्ययनानिप्रथमे श्रुतस्कन्धे नव, द्वितीये षोडश, इति पञ्चविंशतिः । एषां नामानि एवं विज्ञेयानि–शस्त्रपरिज्ञा १, लोकविजयः २, शीतोष्णीयम् ३, सम्यक्त्वम् ४, आवन्ती ५, धुतं ६, विमोहः ७, महापरिज्ञा ८, उपधानश्रुतम् ९, इति प्रथम श्रुतस्कन्धे नवाध्ययनानि । पिण्डैषणा १, शय्यैषणा २, ईर्यैषणा ३, भाषैषणा ४, वस्त्रैषणा ५, पात्रैषणा ६, अवग्रहप्रतिमा ७, सप्तसप्तैकिका–अस्यां स्थानसप्तैकक १–नैषेधिकी सप्तैकक २–स्थण्डिल सप्तैकक ३–शब्द-सप्तैकक ४–रूपसप्तैकक ५–परक्रिया सप्तैकका ६–न्योन्यक्रियासप्तैकके ७–ति सप्ता-

किया गया है। वैसे रचना की अपेक्षा तो बारहवां जो दृष्टिवाद अंग है वही प्रथम अंगमाना गया हैं, क्यों कि सर्वप्रवचन की अपेक्षा उसको पहिले कहा गया है । इस आचारांगसूत्र के दो श्रुतस्कंध–अध्ययन समूह हैं । प्रथम श्रुतस्कन्धमें नव अध्ययन तथा द्वितीय श्रुतस्कंधमें सोलह अध्ययन, इस प्रकार दोनों श्रुतस्कंधोंमें पचीस अध्ययन हैं । प्रथम श्रुतस्कंधमें कहे गये नौ अध्ययनों के नाम ये हैं—शस्त्रपरिज्ञा १, लोकविजय २, शीतोष्णीय ३, सम्यक्त्व ४, आवन्ती ५, धुत ६, विमोह ७, महापरिज्ञा ८, तथा उपधानश्रुत ९। दूसरे श्रुतस्कंधमें कहे गये सोलह अध्ययनों के ये नाम हैं—पिण्डैषणा १, शय्यैषणा २, ईर्यैषणा ३, भाषैषणा ४, वस्त्रैषणा ५, पात्रैषणा ६, अवग्रह प्रतिमा ७, तथा सप्तसप्तैकिका १४, यथा स्थानसप्तैकक ८, नैषेधिकी–सप्तैकक ९, स्थण्डिल सप्तैकक १०, शब्द सप्तैकक ११, रूपसप्तैकक १२, परक्रिया सप्तैकक १३, अन्योन्यक्रिया

લઈને આને પ્રથમ અંગ રૂપે પ્રગટ કરવામાં આવેલ છે. આમ તો રચનાની અપેક્ષાએ તો બારમું જે દૃષ્ટિવાદ અંગ છે એને જ પ્રથમ અંગ માનેલ છે, કારણ કે સર્વ પ્રવચનની અપેક્ષાએ તેને પહેલું કહ્યું છે. આ આચારાંગ સૂત્રના બે શ્રુત સ્કંધ–અધ્યયન સમૂહ છે. પહેલા શ્રુત સ્કંધમાં નવ અધ્યયન અને બીજા શ્રુતસ્કંધમાં સોળ અધ્યય, આ રીતે બન્ને શ્રુતસ્કંધોમાં મળીને પચીસ અધ્યયન છે. પહેલા શ્રુતસ્કંધમાં આ નવ અધ્યયનો છે–(૧) શાસ્રપરિજ્ઞા (૨) લોક વિજય, (૩) શીતોષ્ણીય, (૪) સમ્યક્ત્વ, (૫) આવન્તી, (૬) ધુત. (૭) વિમોહ, (૮) મહાપરિજ્ઞા તથા, (૯) ઉપધાન શ્રુત. બીજા શ્રુતસ્કંધમાં આવતા સોળ અધ્યયનોનાં નામ આ પ્રમાણે છે–(૧) પિંડૈષણા, (૨) શય્યૈષણા, (૩) ઈર્યૈષણા, (૪) ભાષૈષણા, (૫) વસ્રૈષણા, (૬) પાત્રૈષણા, (૭) અવગ્રહ પ્રતિમા, (૮) યથા–સ્થાનસપ્તૈકક, (૯) નૈષધિકી, સપ્તૈકક, (૧૦) સ્થંડિલ સપ્તૈકક, (૧૧) શબ્દ સપ્તૈકક, (૧૨) રૂપસપ્તૈકક, (૧૩) પરક્રિયા સપ્તૈકક, (૧૪) અન્યો-

ध्ययनानि सन्ति १४, तथा-भावना १५, विमुक्तिः १६, इति षोडशाध्ययनानि द्वितीय श्रुतस्कन्धे। एवमेतानि निशीथाध्ययनवर्जितानि पञ्चविंशतिरध्ययनानि। पञ्चाशीतिरुद्देशनकालाः=सूत्राध्यापनकालाः। उद्देशनकालस्य पञ्चाशीतिसंख्यकत्वमेवं विज्ञेयम्-शस्त्रपरिज्ञाद्यारभ्य अवग्रहमतिमापर्यन्तेषु षोडशाध्ययनेषु क्रमेण-सप्त १, षट् २, चत्वारः ३, चत्वारः ४, षट् ५, पञ्च ६, अष्ट ७, सप्त ८, चत्वारः ९, एका-

सप्तैकक १४, भावना १५ तथा विमुक्ति १६ ये निशीथाध्ययनवर्जित सोलह अध्यन दूसरे श्रुतस्कंधमें हैं। इस तरह ये सब मिलकर पचीस अध्ययन आचारांग सूत्र के दोनों श्रुतस्कंधों के हैं। सूत्राध्यापनरूप जो उद्देशन काल हैं वे पचासी ८५ हैं, गणना उनकी इस प्रकार से है-पहले श्रुतस्कन्धमें नौ अध्ययन हैं, उनमें प्रथम शस्त्रपरिज्ञा अध्ययन के सात ७ उद्देशनकाल हैं, दूसरे लोकविजय के छह ६, तीसरे शीतोष्णीय अध्ययन के चार ४, चौथे सम्यक्त्व अध्ययन के चार ४, पांचवे लोकसार अध्ययन के छह ६ छठे धुत अध्ययन के पांच ५, सातवें विमोह अध्ययन के आठ ८, आठवें महापरिज्ञा अध्ययन के सात ७, और नौवें उपधान श्रुत अध्ययन के चार ४ उद्देशन काल हैं। इस प्रकार प्रथमश्रुतस्कन्ध के नौ अध्ययनोंमें सब एकावन (५१) उद्देशनकाल होते हैं।

दूसरे श्रुतस्कन्ध के सोलह (१६) अध्ययनों के उद्देशनकाल इस प्रकार हैं-प्रथम पिण्डैषणा अध्ययन के ग्यारह ११ उद्देशन काल हैं,

ન્યક્રિયા સપ્તૈકક, (૧૫) ભાવના, તથા (૧૬) વિમુક્તિ એ નિશીથાધ્યયન વર્જિત સોળ અધ્યયન બીજા સ્કંધશ્રુતમાં છે. આ રીતે આચારાંગ સૂત્રના બન્ને સ્કંધોના મળીને પચ્ચીશ અધ્યયન છે. સૂત્રાધ્યાયનરૂપ જે ઉદ્દેશનકાલ છે તે પંચાશી (૮૫) છે. તેમની ગણત્રી આ પ્રમાણે છે. પહેલા શ્રુતસ્કંધમાં નવ અધ્યયન છે તેમાં પ્રથમ શસ્ત્રપરિજ્ઞા અધ્યયનના સાત (૭) ઉદ્દેશનકાલ છે, બીજા લોકવિજયના છે. ત્રીજા શીતોષ્ણીય અધ્યયનના ચાર, ચોથા સમ્યક્ત્વ અધ્યયનના ચાર, પાંચમાં લોકસાગર અધ્યયનના છ, છઠ્ઠા ધુત અધ્યયનના પાંચ, સાતમાં વિમોહ અધ્યયનના આઠ, આઠમાં મહા પરિજ્ઞા અધ્યયનના સાત, અને નવમાં ઉપધાનશ્રુત અધ્યયનના ચાર ઉદ્દેશનકાળ છે. આ પ્રકારે પહેલા શ્રુતસ્કંધના નવ અધ્યયનોના કુલ એકાવન (૫૧) ઉદ્દેશનકાળ છે.

બીજા શ્રુતસ્કંધના સોળ (૧૬) અધ્યયનોના ઉદ્દેશનકાળ આ પ્રમાણે છે-પહેલા પિંડૈષણા અધ્યયનના અગીયાર (૧૧) ઉપદેશન કાળ છે, બીજા શય્યૈષણા

दश १०, त्रयः ११, त्रयः १२, द्वौ १३, द्वौ १४, द्वौ १५, द्वौ १६, इति पट् सप्तति रुद्देशनकालाजाताः। अवशिष्टेषु सप्तसप्तैकिका-भावना-विमुक्तिनामकेषु नवस्वध्ययनेषु प्रत्येकस्मिन् अध्ययने एकैकोद्देशनकालस्य सद्भावान्नवोद्देशनकाला जाता इति सर्वसंकलनयापञ्चाशीतिरुद्देशनकाला भवन्ति। एवं पञ्चाशीतिः समुद्देशनकालाः सूत्रार्थाध्यापनकाला अवगन्तव्याः। अष्टादशपदसहस्राणि = अष्टादशसहस्राणि पदानि पदाग्रेण=पदपरिमाणेन सन्ति। इह पदमर्थवद् विज्ञेयम्।

दूसरे शय्यैषणा अध्ययन के तीन ३, तीसरे ईर्यैषणा अध्ययन के तीन ३, चौथे भाषैषणा अध्ययन के दो २ पांचवें वस्त्रैषणा अध्ययन के दो २, छठे पात्रैषणा अध्ययन के दो २, सातवे अवग्रह प्रतिमा अध्ययन के दो २, आठवे स्थान सप्तैकक अध्ययन का एक १, नौवे नैषेधिकी सप्तैकक अध्ययन का एक १, दशवे स्थण्डिल सप्तैकक अध्ययन का एक १, ग्यारहवे शब्द सप्तैकक अध्ययन का एक १, बारहवे रूप सप्तैकक अध्ययन का एक १, तेरहवे परक्रिया सप्तैकक अध्ययन का एक १, चौदहवें अन्योन्यक्रिया सप्तैकक अध्ययन का एक १; पन्द्रहवे भावना अध्ययन का एक २ और सोलहवें विमुक्ति अध्ययन का एक १। इस प्रकार दूसरे श्रुतस्कन्ध के सोलह (१६) अध्ययनों के चोतीस ३४ उद्देशनकाल होते हैं। इस तरह आचारांग सूत्रके दोनों श्रुतस्कन्धों के पचीस अध्ययनोंमें सभी उद्देशनकाल पचासी (८५) होते हैं। तथा सूत्र और अर्थ को पढाने रूप जो समुद्देशन काल हैं वे भी पचासी ८५ है और उनकी गणना भी

અધ્યયનના ત્રણ ૩, ત્રીજા ઇર્યૈષણા અધ્યયનના ત્રણ ૩, ચોથા ભાષૈષણા અધ્યયનના બે ૨, પાંચમાં વસ્ત્રૈષણા અધ્યયનના બે ૨, છટ્ઠા પાત્રૈષણા અધ્યયનના બે ૨, સાતમા અવગ્રહ પ્રતિમા અધ્યયનના બે ૨, આઠમાં સપ્તૈકક અધ્યયનનો એક ૧, નવમાં નૈષેધિકી સપ્તૈકક અધ્યયનનો એક, દસમાં સ્થંડિલ સપ્તૈકક અધ્યયનનો એક, અગીયારમાં શબ્દ સપ્તૈકક અધ્યયનનો એક, બારમાં રૂપસપ્તૈકક અધ્યયનનો એક, તેરમાં પરક્રિયા સપ્તૈકક અધ્યયનનો એક, ચૌદમાં અન્યોન્ય ક્રિયા સપ્તૈકક અધ્યયનનો એક, પંદરમાં ભાવના અધ્યયનનો એક અને સોળમાં વિમુકિત અધ્યયનનો એક. આ પ્રમાણે બીજા શ્રુતસ્કંધના સોળ (૧૬) અધ્યયનોના કુલ ચોત્રીસ (૩૪) ઉદ્દેશન કાળ થાય છે. આ રીતે આચારાંગ સૂત્રના બન્ને શ્રુતસ્કંધોના પચીશ અધ્યયનોમાં બધા મળીને પંચાશી (૮૫) ઉદ્દેશનકાળ થાય છે. તથા સૂત્ર અને અર્થને ભણાવવા રૂપ જે સમુદ્દેશનકાળ છે તે પણ પંચાશી (૮૫) છે.

ननु अष्टादश सहस्रात्मकं पद परिमाणमुक्तम्, तत्परिमाणं यदि पञ्चविंशत्यध्ययनात्मकस्य श्रुतस्कन्धद्वयस्य, तदा 'नववंभचेरमइओ अट्ठारसपय सह स्सिओ-वेओ' इति यदुक्तं तद्विरुध्यते ? इतिचेदुच्यते—

'दो सुयक्खंधा, पणवीसं अज्झयणा, पंचासीइं उद्देसणकाला पंचासीइं समुद्देसणकाला' इति यदुक्तं तदाचाराङ्गस्य प्रमाणमुक्तम्, यत्पुनरुक्तम् 'अट्ठारस पयसहस्साइं पयग्गेणं' इति, तद् नवब्रह्मचर्याध्ययनात्मकस्य प्रथमश्रुतस्कन्धस्य प्रमाणं विज्ञेयम्।

उक्त प्रकार से ही होती है। आचारांग सूत्रमें पदों की संख्या अठारह १८ हजार है। अर्थात्-आचारांग सूत्रमें अठारह १८ हजार पद हैं। सार्थक शब्दों का नाम पद है।

शंका—आचारांगसुत्रमें अठारह १८ हजार पद जो कहे जाते हैं वे यदि संपूर्ण पचीस अध्ययनवाले आचारां सूत्र के पद हैं तो "नव बंभचेर मइ ओ अट्ठारस पय सहस्सिओ वे ओ" इस कथन से उसका विरोध आता है ?।

उत्तर—यह बात नहीं है। कारण जो ऐसा कहा गया है कि आचारांगमें दो श्रुतस्कंध, पच्चीस अध्ययन, पचासी ८५ उद्देशनकाल, पचासी ८५ समुद्देशनकाल हैं वह तो समस्त आचारांग सूत्र का प्रमाण कहा है। तथा ऐसा जो कहा है कि आचारांगमें अठारह १८ हजार पद हैं यह कथन ब्रह्मचर्यात्मक प्रथम श्रुतस्कन्ध का है ऐसा जानना चाहिये। अतः इस कथनमें कोई विरोध नहीं आता है।

અને તેમની ગણત્રી પણ ઉપર કહ્યા પ્રમાણે થાય છે. આચારાંગ સૂત્રમાં પદોની સંખ્યા અઢાર (૧૮) હજાર છે. એટલે કે આચારાંગ સૂત્રમાં અઢાર હજાર પદ છે. સાર્થક શબ્દોનું નામ પદ છે.

શંકા—આચારાંગ સૂત્રમાં અઢાર હજાર પદ જે કહેવામાં આવે છે તે જો સંપૂર્ણ પચીશ અધ્યયનવાળા આચારાંગ સૂત્રના પદ હોય તો "नव बंभचेर मइओ अट्ठारस पयसहस्सि ओ वे ओ" આ કથનથી તે વિરૂદ્ધ જાય છે?

ઉત્તર—એમ વાત નથી. કારણ કે જે એમ કહેવામાં આવ્યું છે કે આચારાંગમાં બે શ્રુતસ્કંધ, પચીશ અધ્યયન, પંચાશી અધ્યયનકાળ, પંચાશી સમુદ્દેશનકાળ છે તે તો સમસ્ત આચારાંગ સૂત્રનું પ્રમાણ કહ્યું છે તથા એવું જે કહ્યું છે કે આચારાંગમાં અઢાર હજાર પદ છે તે કથન બ્રહ્મચર્યાત્મક પ્રથમ શ્રુતસ્કંધનું છે એમ સમજવું જોઈએ. તેથી તે કથનમાં કોઈ વિરોધ લાગતો નથી.

तथा—संख्येयानि अक्षराणि—वेष्टकादीनां संख्येयत्वात् संख्येयान्यक्षराणि। अनन्ता गमाः, गमाः—अर्थगमाः—अर्थपरिच्छेदा इत्यर्थः, ते च अनन्ताः—अन्तरहिताः आनन्त्यं चैषाम्—'एगे आया०' इत्यादि रूपात् एकस्मादेवसूत्रात्तत्तद्धर्मविशिष्टानन्तधर्मात्मक वस्तुप्रतिपत्तेः। यद्वा—अभिधानाभिधेयवशाद् गमा भवन्ति। ते चानन्ता भवन्ति। आनन्त्यं चैषामभिधेयवशादेवं विज्ञेयम्—

"संखेज्जा अक्खरा' आचारांगमें अक्षरों का प्रमाण संख्यात है, कारण वेष्टक आदिक स्वयं संख्यात हैं। तथा गमा—पदार्थों का निर्णय अनंत हैं—अन्त रहित हैं। इनका जो आनन्त्य कहा गया है उसका कारण यह है कि—"एगे आया०" इत्यादिरूप एक ही सूत्र से तत्तदनंत धर्मात्मक वस्तु का बोध श्रोता को होता है। तात्पर्य कहने का यह है जिवादिक समस्त वस्तुएँ अनंत धर्मात्मक हैं—कोई भी वस्तु एकान्तरूप से एक धर्म विशिष्ट नहीं है ऐसी मान्यता जैनधर्म की है, अतः जब सिद्धान्तानुसार किसी भी सूत्रद्वारा जीवादिक वस्तुओं का प्रतिपादन होगा तो वह उसी रूपमें होगा जैसे—"एगे आया" आत्मा एक है" यह सूत्र आत्मामें एकता को प्रदर्शित करता हुवा यह निरुपण करता है—कि आत्मा त्रिकालवर्ती अनंत पर्यायो से युक्त है, तथा वह अनंतशक्तिरूप अनंतधर्मवाला है। 'अनंता गमा' इस तरह से अर्थपरिच्छेद—जीवादिक पदार्थोंका ज्ञान इस सूत्र द्वारा होता है, अतःयह मानना पड़ता है कि इस सूत्रमें इस प्रकार से अर्थबोधकता रही हुई है।

"संखेज्जा अक्खरा" આચારાંગમાં અક્ષરોનું પ્રમાણ સંખ્યાત છે, કારણ કે વેષ્ટકાદિક પોતે જ સંખ્યાત છે. તથા ગમા—પદાર્થોનો નિર્ણય અનંત છે. તેમની જે અનંતતા કહેવામાં આવી છે તેનું કારણ એ છે કે "एगेआया०" ઈત્યાદિ રૂપ એક જ સૂત્રથી તે તે અનંત ધર્માત્મક વસ્તુનો બોધ શ્રોતાને થાય છે. કહેવાનું તાત્પર્ય એ છે કે જીવાદિક સમસ્ત વસ્તુઓ અનંત ધર્માત્મક છે—કોઈ પણ વસ્તુ એકાન્ત રૂપથી એક ધર્મ વિશિષ્ટ નથી, એવી જૈન ધર્મની માન્યતા છે, તેથી સઘળા સિદ્ધાંત ગ્રન્થોના કોઈ પણ સૂત્ર દ્વારા જીવાદિક વસ્તુઓનું પ્રતિપાદન થશે તો તે એજ રૂપે થશે, જેમ કે "एगे आया" આ સૂત્ર આત્મામાં એકતા બતાવતા એ બતાવે છે—કે આત્મા ત્રિકાળવર્તી અનેક પર્યાયોથી યુક્ત છે તથા તે અનંત શક્તિરૂપ અનંત ધર્મવાળો છે. "अनंतागमा" આ રીતે અર્થપરિચ્છેદ જીવાદિક પદાર્થોનું જ્ઞાન આ સૂત્ર દ્વારા થાય છે, તેથી એમ માનવું પડે છે કે આ સૂત્રમાં આ પ્રકારે અર્થબોધકતા રહેલી છે. એજ

सुधर्मास्वामी जम्बूस्वामिनं प्रत्याह—" सुयं मे आउसं तेणं भगवया एवमक्खायं " इति। तत्रायमर्थः-श्रुतं मया हे आयुष्मन्! तेन भगवता वर्धमानस्वामिना एवमाख्यातम् (१)। अथवा श्रुतं मया आयुष्मदन्ते-आयुष्मतो भगवतो वर्धमानस्वामिनोऽन्ते-समीपे, 'णं' इति वाक्यालङ्कारे, तथाच-भगवता एवमाख्या-

---

यही गम है और ऐसे गम इस आचारांग श्रुतमें अनंत हैं। अथवा-इसका तात्पर्य यह भी होता है कि अभिधान तथा अभिधेय के अनुसार ही गम अर्थ बोध होता है और वह अनंत रूपमें होता है-एक रूपमें नहीं। जैसे-सुधर्मास्वामी ने जंबूस्वामी से कहा-"सुयंमे आउसं तेणं भगवया एवमक्खायं" "श्रुतंमया आयुष्मन्! तेन भगवता एवम् आख्यातम्" हे आयुष्मन्! जम्बू मैंने सुना है कि उन भगवान वर्धमान स्वामीने ऐसा कहा है एक तो इन पदों का यह तात्पर्य होता है १। दूसरा अर्थ इस प्रकार होता है कि "सुयं मे आउसंतेणं भगवया एवमक्खायं" "श्रुतं मया आयुष्मदन्ते भगवता एवम आख्यातम्" मैंने आयुष्मान् भगवान् महावीर स्वामी के पास सुना है कि उन्होंने ऐसा कहा है। इस प्रकार के वाच्यार्थमें "णं" यह शब्द वाक्यालंकार रूप से प्रयुक्त मान लिया जावेगा २। पहिले अर्थमें "आउसं" यह पद जंबूस्वामी का "आयुष्मन्" रूप से विशेषणरूपमें प्रयुक्त हुआ था, अब इस द्वितीय अर्थमें "आयुष्मदन्ते" यह पद भगवान वर्धमान स्वामीका

"ગમ" છે અને એવાં 'ગમ' આ આચારાંગસૂત્રમાં અનેક છે. અથવા તેનું તાત્પર્ય એ પણ થાય છે કે અભિધાન તથા અભિધેયના અનુસાર જ ગમ-અર્થબોધ થાય છે, અને તે અનંતરૂપે થાય છે, એક રૂપે નહીં જેમ કે સુધર્મા સ્વામીએ જંબૂસ્વામીને કહ્યું—" सुयं मे आउसं तेणं भगवया एवमक्खायं " "श्रुतं मया आयुष्यमान्! तेन भगवता एवम् आख्यातम्" "હે આયુષ્મન! મેં સાંભળ્યું છે કે તે ભગવાન વર્ધમાન સ્વામીએ એવું કહ્યું છે" એક તો એ પદોનું આ તાત્પર્ય થાય છે. (૧) બીજો અર્થ આ પ્રકારે થાય છે "सुयं मे आउसंतेणं भगवया एवमक्खायं" "श्रुतं मया आयुष्मदन्ते भगवता एवं आख्यातम्" મેં આયુષ્માન્ ભગવાન મહાવીર સ્વામી પાસે સાંભળ્યુ છે કે તેમણે આમ કહ્યું છે. આ પ્રકારના વાચ્યાર્થમાં "णं" આ શબ્દ વાક્યાલંકારરૂપે વપરાયેલ માની લેવાશે (૨) પહેલા અર્થમાં "आउसं" એ પદ જમ્બૂસ્વામીના "आयुष्मन्" રૂપથી વિશેષણરૂપે વપરાયું હતું, હવે આ બીજા અર્થમાં "आयुष्मदन्ते" આ

तम् २, अथवा श्रुतं मया आयुष्मता ३, अथवा श्रुतं मया भगवत्पादारविन्दयुगलमामृशता ४, अथवा श्रुतं मया गुरुकुलमावसता ५, अथवा श्रुतं मया हे आयुष्मन्! 'तेणं' तत्, प्रथमार्थे तृतीया, भगवता एवमाख्यातम् ६, अथवा-श्रुतं मया हे आयुष्मन्! 'तेणं' तदा भगवता एवमाख्यातम् ७, अथवा-श्रुतं मया

बोधक हो जाता है २। तीसरा अर्थबोध इस प्रकार से है "श्रुतं मया आयुष्मता" मुझ आयुष्मान् द्वारा सुना गया है" इस कथनमें यह "आयुष्मता" विशेषण सुधर्मास्वामी के साथ प्रयुक्त होता हुआ प्रतीत होता है ३। "श्रुतं मया आमृशता" यहां "आउसंतेणं" की छाया "आमृशता" हुई है, इसलिये चतुर्थ अर्थ ऐसा होता है कि "भगवान् के पादारविन्दयुगल को स्पर्श करने वाले मैंने सुना है" ४। अथवा-"आउसंतेणं" की छाया 'आवसता' भी होती है जिसका अर्थ होता है कि "गुरुकुलमें निवास करते हुए मैंने सुना है" ५। "तेणं" यह पद जब प्रथमा के अर्थमें तृतीयारूप से प्रयुक्त हुआ माना जावेगा तब "तेणं" की छाया "तत्" होगी, तब ऐसा अर्थ बोध होगा कि-"श्रुतं मया आयुष्मन्। तत् भगवता एवमाख्यातम्" हे आयुष्मन्! मैं ने सुना है जिन जीवादिवस्तुओं को भगवान् ने इस प्रकार से प्रतिपादित किया है ६। अथवा-"तेणं" यह पद "तदा" के रूपमें प्रयुक्त हुआ जब माना जावेगा तब "श्रुतं मया आयुष्मन् तदा भगवता एवमाख्यातम्" ऐसा अर्थ बोध होगा" अर्थात्-हे आयुष्मन्! जंबू! मैं ने तब सुना था जब भगवान्ने ऐसा

પદ ભગવાન મહાવીર સ્વામીનું બોધક બની જાય છે (૨) ત્રીજો અર્થબોધ આ પ્રમાણે છે-"श्रुतं मया आयुषमता" "આયુષ્માન એવા મારા દ્વારા સંભળાયું છે" આ કથનમાં આ "आयुष्मता" વિશેષણ સુધર્માસ્વામીની સાથે વપરાયુ હોય તેમ લાગે છે (૩) श्रुतं मया आमृशता" અહીં "आउसंतेणं" ની છાયા "आमृशता" થઈ છે, તેથી ચોથો અર્થ એવો થાય છે કે "ભગવાનના પાદારવિંદયુગલનો સ્પર્શ કરનાર મેં સાંભળ્યું છે." (૪) અથવા "आउसंतेणं" ની છાયા "आवसता" પણ થાય છે જેનો એવો અર્થ થાય છે કે "ગુરુકુલમાં નિવાસ કરતા એવા મેં સાંભળ્યું છે" (૫). "तेणं" આ પદ જો પ્રથમાના અર્થમાં તૃતીયારૂપે વપરાયેલ માનવામા આવે તો "तेणं"ની છાયા "तत्" થશે, ત્યારે આ પ્રમાણે અર્થનો બોધ થશે કે-"श्रुतं मया आयुष्मन्! तत् भगवता एवमाख्यातम्" હે આયુષ્માન! જે જીવાદિ વસ્તુઓને ભગવાને આ પ્રકારે પ્રતિપાદિત કરેલ છે તે મેં સાંભળ્યુ હતું. (૬) અથવા "तेणं" આ પદ तदा ના રૂપે વપરાયેલું જો માની લેવાય તો "श्रुतं मया आयुष्मन् तदा भगवता एवमा-

हे आयुष्मन्! 'तेणं' तत्र=षड्जीवनिकाय विषये ८, तत्र वा समवसरणे स्थितेन भगवता एवमाख्यातम् ९, अथवा-श्रुतं मम हे आयुष्मन्! वर्तते, यतस्तेन भगवता एवमाख्यातम् १०, एवमादयस्तं तमर्थमधिकृत्य गमा भवन्ति।

अभिधानवशात्पुनरेवं गमा भवन्ति-'सुयं मे आउसंतेणं' 'आउसं सुयं मे' 'मे सुयं आउसं०' इत्यादि। अर्थभेदेन पदानां तथा तथा संयोजने अभिधानगमा

कहा ७। अथवा-"तेणं" की छाया 'तत्र' के रूपमें जब की जावेगी तब ऐसा अर्थ बोध होगा कि-"श्रुतं मया आयुष्मन् तत्र-षड्जीवनिकायविषये", हे आयुष्यमन् जम्बू। मैंने सुना है जो भगवान् ने षड्जीवनिकाय के विषय में ऐसा कहा है ८. अथवा-"तत्र-समवसरणे भगवता एवमाख्यातम्" मैंने सुना है जो समवसरण में स्थित हुए भगवान् ने ऐसा कहा है ९। अथवा "मे" की छाया तृतीया विभक्ति "मया" के रूप में न करके जब "मे" की छाया "मम" के रूप में की जावेगी तब ऐसा अर्थबोध होगा-"श्रुतं मम आयुष्मन्! वर्तते यतस्तेन भगवता एवमाख्यातम्" उन भगवान्ने जो ऐसा कहा है वह मैंने सुन ही रक्खा है" १०।

इस तरह भिन्न २ अर्थ को लेकर इन पदों से जो बोध होगा वह अभिधेय के वश से हुए गम जानने चाहिये।

अभिधान अर्थात् नाम के वश से जो गम होते हैं वे इस प्रकार हैं—

ख्यातम्" એવો અર્થબોધ થશે એટલે કે-"હે આયુષ્મન! જંબૂ! જ્યારે ભગવાને આમ કહ્યું ત્યારે મેં સાંભળ્યું હતું (૭). અથવા "तेणं" ની છાયા "तत्र" ના રૂપે જ્યારે વપરાય ત્યારે એવો અર્થ બોધ થશે કે "श्रुतं मया आयुष्मन् तत्र-षड् जीव निकाय विषये" હે આયુષ્માન્ જમ્બૂ! મેં સાંભળ્યું છે કે ભગવાને છ જીવ નિકાયના વિષયમા આ પ્રમાણે કહ્યું છે (૮). અથવા "समवसरणे भगवता एवमाख्यातम्" મેં સાભળ્યું છે કે સમવસરણમા રહેલ ભગવાને આમ કહ્યું છે" (૯). અથવા "मे" ની છાયા તૃતીય વિભક્તિ "मया" ના રૂપે ન કરતાં જો "मे" ની છાયા "मम" ના રૂપે કરાય તો આ પ્રમાણે અર્થબોધ થશે "श्रुतं मम आयुष्मन्! वर्तते यतस्तेन भगवता एवमाख्यातम्" એ ભગવાને જે એવું કહ્યું છે તે મેં સાંભળી જ રાખ્યું છે (૧૦).

આ રીતે ભિન્ન ભિન્ન અર્થને લીધે એ પદોથી જે બોધ થશે તે અભિધેયના વશથી થયેલ ગમ જાણવા જોઈએ.

અભિધાનને કારણે જે ગમ થાય છે તે આ પ્રમાણે છે-

भवन्ति। एवं भूता गमा अनन्ता भवन्ति। तथा-पर्यवाः=पर्यायाः=पदार्थधर्माः अनन्ता भवन्ति, ते च स्वपरभेदभिन्ना अक्षरार्थगोचरा वेदितव्याः। तथा-त्रसाः त्रस्यन्ति उष्णाद्यभिसंतप्ताः स्वाधिष्ठितोष्णादि स्थानात् उद्विजन्ते गच्छन्ति च छायाद्यासेवनार्थं स्थानान्तरमिति त्रसाः-द्वीन्द्रियादयः परीताः=असंख्याताः सन्ति

'सुयं मे आउसंतेणं' 'आउसं सुयं मे' 'मे सुयं आउसं' इत्यादि। इस तरह अर्थ के भेद से पदों का उस उस रूप से संयोजन हो जायगा ये अभिधान के अनुसार गम कहे जायेंगे। इस तरह के गम अनंत होते हैं।

'अनंता पज्जवा'-आचारांगसूत्र में पर्यव-पर्यायें-पदार्थधर्म-अनंत होते हैं यह दिखलाया गया है। स्वपर्याय एवं परपर्याय, इस तरह से पर्यायों के ये दो भेद कहे गये हैं, और ये पदार्थ के ही धर्मरूप से प्रतिपादित हुए हैं। यह अभी कहा जाचुका है कि निजपर्यायों का संबंध पदार्थ के साथ अस्तित्व धर्म द्वारा होता है, तथा परपर्यायों का संबंध वहां नास्तित्वधर्म के द्वारा होता है। हरएक पदार्थ स्वपर्यायों से युक्त है एवं परपर्यायों से विहीन है। 'परित्ता तसा' त्रस नामकर्म के उदय से युक्त जो जीव उष्ण आदि से संतप्त होकर दुःखी होते हैं एवं उष्णादि समन्वित स्वस्थान का परित्याग कर छाया से समन्वित हुए दूसरे स्थान में छाया के सेवन के लिये चले जाते हैं वे त्रस जीव हैं। द्वीन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय एवं पञ्चेन्द्रिय, इस तरह इनके अनेक भेद हैं।

"सुयं मे आउसंतेणं" "आउसं सुयं मे" "मे सुयं आउसं" ઇત્યાદિ. આ રીતે અર્થના ભેદથી પદોનું તે તે રૂપે સંયોજન થઈ જશે. તે અભિધાન અનુસાર ગમ કહેવાશે. આ પ્રકારના ગમ અનંત હોય છે.

"अनंता पज्जवा" આચારાંગ સૂત્રમાં પર્યવ-પર્યાયો-પદાર્થ-ધર્મ-અનંત હોય છે તે બતાવવામાં આવ્યું છે. સ્વપર્યાય અને પરપર્યાય, આ રીતે પર્યાયોના બે ભેદ બતાવ્યા છે, અને એ પદાર્થના જ ધર્મરૂપે પ્રતિપાદિત થયાં છે. એ હમણા જ બતાવવામાં આવ્યું છે કે નિજપર્યાયોનો સંબંધ પદાર્થની સાથે અસ્તિત્વ ધર્મ દ્વારા થાય છે, તથા પરપર્યાયોનો સંબધ ત્યાં નાસ્તિત્વ ધર્મ દ્વારા થાય છે. દરેક પદાર્થ સ્વપર્યાયો વાળો છે અને પરપર્યાયો વિનાનો છે. "परित्ता तसा" ત્રસ નામકર્મના ઉદયથી યુક્ત જે જીવ ઉષ્ણ આદિથી ત્રાસીને દુઃખી થાય છે અને ઉષ્ણાદિ સમન્વિત પોતાના સ્થાનનો પરિત્યાગ કરીને છાયાથી સમન્વિત એવા બીજાં સ્થાને છાયાના સેવનને માટે ચાલ્યાં જાય છે તે ત્રસ જીવ છે. દ્વીન્દ્રિય, ત્રીન્દ્રિય, ચતુરિન્દ્રિય અને પંચેન્દ્રિય, આ રીતે તેમના અનેક ભેદ પડે છે.

नत्वनन्ताः। तथा-स्थावराः-तिष्ठन्त्येवं-शीलाः स्थावराः-शीतातपाद्यभिभूता अपि स्थानान्तरं गन्तुमसमर्थाः पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतिकायलक्षणा अनन्ताः सन्ति। वनस्पतेरानन्त्यात्स्थावराणामानन्त्यं बोध्यम्। उपरि निर्दिष्टा एते सर्वे-शाश्वतकृत-निबद्धनिकाचिताः, तत्र-शाश्वताः-द्रव्यार्थिकनयापेक्षया नित्याः, कृताः=पर्यायार्थतया प्रतिसमयमन्यथात्वावाप्त्याकृताः-अनित्या इत्यर्थः, निबद्धाः=सूत्र एव ग्रथिता न तु इतस्ततो विकीर्णाः, निकाचिताः-निर्युक्तिहेतूदाहरणादिभिः प्रतिष्ठिताः शाश्वतादीनां चतुर्णां पदानामितरेतरयोगद्वन्द्वः, जिनप्रज्ञप्ताः=तीर्थंकर प्ररूपिता

ये त्रस जीव परीत-असंख्यात हैं, अनंत नहीं। तथा-'अणंता थावरा' स्थावर जीव अनंत हैं। स्थावर नामकर्म का जिनके उदय है वे एकेन्द्रिय जीव स्थावर जीव कहे गये हैं। वे शीत तथा आतप से पीडित होकर भी एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने के लिये असमर्थ होते हैं। पृथिवीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय तथा वनस्पतिकाय, इस प्रकार इनके ये पांच भेद हैं। स्थावर काय जीव अनंत हैं इसका कारण यह है कि वनस्पति कायिक जीव अनंत हैं इसलिये स्थावर जीवोंमें अनंतता प्रकट की गई है। और पृथ्वी, अप्, तेजो वायु प्रत्येक में असंख्यात असंख्यात जीव है ये सब जीव-त्रसजीव एवं स्थावर जीव 'शाश्वत' द्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा से नित्य हैं, 'कृत' पर्यायार्थिक नयकी अपेक्षा से अनित्य हैं, 'निबद्ध'-सूत्रमें ही ग्रथित होने से ये निबद्ध हैं तथा 'निकाचित'-निर्युक्ति, हेतु, उदाहरण आदि के द्वारा ये अच्छी तरह से प्रतिष्ठित हैं इसलिये ये निकाचित हैं। 'जिनप्रज्ञप्ता भावा आख्यायन्ते'

એ ત્રસ જીવ પરીત-અસંખ્યાત છે, અનત નથી. તથા-"अणंत थावरा" સ્થાવર જીવ અનંત છે. સ્થાવર નામ કર્મનો જેમને ઉદય છે એ એકેન્દ્રિય જીવોને સ્થાવર જીવ કહેલ છે. તેઓ શીત તથા આતપથી ત્રાસીને એક સ્થાનેથી બીજે સ્થાને જવાને માટે અસમર્થ હોય છે. પૃથિવીકાય, અપ્કાય, તેજસ્કાય, વાયુકાય તથા વનસ્પતિકાય, આ રીતે તેમના પાંચ ભેદ છે. સ્થાવર કાય જીવ અનંત છે, તેનું કારણ એ છે કે વનસ્પતિકાયિક જીવ અનત છે તે કારણે સ્થાવર જીવોમાં અનંતતા પ્રગટ કરવામાં આવેલ છે. એ બધાં જીવ-ત્રસજીવ અને સ્થાવર જીવ "શાશ્વત" દ્રવ્યાર્થિક નયની અપેક્ષાએ નિત્ય છે, "कृत" પર્યાયાર્થિક નયની અપેક્ષાએ અનિત્ય છે, "निबद्ध" સૂત્રમા જ ગ્રથિત હોવાથી નિબદ્ધ છે તથા "निकाचित" નિર્યુક્તિ; હેતુ, ઉદાહરણ આદિ દ્વારા તે સારી રીતે પ્રતિષ્ઠિત છે તેથી તેઓ નિકાચિત છે. "जिन प्रज्ञप्ता भावा आख्यायन्ते" એ સમસ્ત જીવા

भावाः=जीवादयः पदार्थाः अत्राचाराङ्गसूत्रे आख्यायन्ते=सामान्यतया विशेषतया वा कथ्यन्ते, प्रज्ञाप्यन्ते=वचन पर्यायादिभेदेन नामादिभेदेन वा कथ्यन्ते, प्ररूप्यन्ते=स्वरूपतः कथ्यन्ते, दर्श्यन्ते=उपमानोपमेयभावादिभिः कथ्यन्ते, निदर्श्यन्ते=परानुकम्पया भव्यकल्याणापेक्षया वा निश्चयेन पुनः पुनर्दश्यन्ते, उपदर्श्यन्ते=उपनय निगमनाभ्यां सकलनयाभिप्रायतो वा निश्शङ्कं शिष्यबुद्धौ व्यवस्थाप्यन्ते।

सम्प्रत्याचाराङ्गाध्ययनफलमाह—'से०' इत्यादि । सः=आचाराङ्गस्याध्येता

ये समस्त जीवादिक पदार्थ जिसरूपमें तीर्थंकर प्रभुने प्ररूपित किये हैं उसी रूपसे इस आचारांगसूत्रमें सामान्यरूप से अथवा विशेषरूप से कहे गये हैं। 'प्रज्ञाप्यन्ते' बचनपर्याय अदि के भेद से अथवा नाम आदि के भेद से प्रज्ञापित हुए हैं। 'प्ररूप्यन्ते' प्ररूपित हुए हैं-स्वरूप कथन-पूर्वक प्रतिपादित हुए हैं। 'दर्श्यन्ते' उपमान उपमेय भाव प्रदर्शन पुरस्सर दिखलाये गये हैं। 'निदर्श्यन्ते' निदर्शित किये गये हैं-दूसरे जीवों की दया से अथवा भव्य जीवों के कल्याण की भावना से पुनः पुनः कहे गये हैं, 'उपदर्श्यन्ते' उपनय तथा निगमन द्वारा अथवा समस्तनयों द्वारा शिष्यजनों की बुद्धिमें निश्चित रूपसे व्यवस्थापित किये गये हैं।

अब सूत्रकार इस आचारांग श्रुत के अध्ययन के फल को प्रकट करने के अभिप्राय से कहते हैं-'से एवं आया०' इत्यादि। जो प्राणी इस

દિક પદાર્થ જે રૂપે તીર્થંકર પ્રભુએ પ્રરૂપિત કર્યા છે એજ રૂપે આ આચારાંગ સૂત્રમાં સામાન્ય રીતે અથવા વિશેષરૂપે કહેલ છે. "प्रज्ञाप्यन्ते" વચન, વચન પર્યાય આદિના ભેદથી અથવા નામ આદિના ભેદથી પ્રજ્ઞાપિત થયાં છે. "प्ररूप्यन्ते" પ્રરૂપિત થયાં છે-સ્વરૂપ કથનપૂર્વક પ્રતિપાદિત થયાં છે. "दृश्यन्ते" ઉપમાન ઉપમેય ભાવ પ્રદર્શન સહિત દર્શાવવામાં આવ્યાં છે. "निदर्श्यन्ते" નિદર્શિત કરાયા છે-બીજાં જીવોની દયાથી અથવા ભવ્ય જીવોનાં કલ્યાણની ઇચ્છાથી ફરી ફરીને કહેવાયા છે. "उपदर्श्यन्ते" ઉપનય તથા નિગમ દ્વારા અથવા સમસ્ત નયોદ્વારા શિષ્યજનોની બુદ્ધિમાં નિશ્ચતરૂપે કસાવવામાં આવેલ છે.

હવે સૂત્રકાર આ આચારાંગ સૂત્રના અધ્યયનના ફળને પ્રગટ કરવાના હેતુથી કહે છે કે-"से अेवं आया०" ઇત્યાદિ. જે પ્રાણી આ આચારાંગ સુત્રનો

एवमात्मा=अस्मिन् भावतः सम्यगधीते सति एवमात्मा भवति, तदुक्तक्रियापरिणामपरिणमनादात्मस्वरूपो भवतीत्यर्थः। एव क्रियासारमेवज्ञान श्रेयस्करमितिख्यापयितुं क्रिया परिणाममभिधाय साम्प्रतं ज्ञानमधिकृत्याह—'एवं ज्ञाता' इति। स एवं ज्ञाता भवति—इदमधीत्य सर्वपदार्थसार्थज्ञायको भवतीति भावः। तथा—एवं विज्ञाता

आचारांगसूत्रका भावपूर्वक अध्येता होता है वह सच्चा आत्मा बन जाता है। तात्पर्य कहने का यह है कि शास्त्र के अध्ययन का फल होता है—उसके द्वारा प्रतिपादित आचरण को—उपदेश को अपने जीवनमें उतारना। यही भावपूर्वक उसका पठन कहलाता है। भावश्रुत इसी का नाम है, अतः जब आत्मा इस आचारांग सूत्रका अध्येता सम्यक्रीति से बन जाता है तो वह नियमतः उसके द्वारा प्रतिपादित शुद्ध क्रियाओं का अपने मनुष्यजीवनमें आचरण करने वाला बन जाता है। इन क्रियाओं को अपने जीवनमें उतारना इसका अर्थ यही है कि आत्मा सच्चे अर्थमें आत्मा बन गया है—समीचीन आचरण करना यही ज्ञान का फल है और ऐसा ज्ञान ही श्रेयस्कर होता है, क्रिया हीन ज्ञान की कोई कीमत नहीं, ऐसा जानकर वह आत्मा—प्राणी आत्मा की परभाव परिणतिरूप असदाचरण का परित्याग कर आत्मा का निज स्वभावरूप जो सदाचरण है उसका आचरित करने वाला बन जाता है, यही आत्मा का आत्मा बनना है। 'एवं णाया' जब आत्मा सच्चे अर्थमें आत्मा

ભાવપૂર્વક અભ્યાસ કરે છે તે સાચો આત્મા બને છે. કહેવાનું તાત્પર્ય એ છે કે શાસ્ત્રના અધ્યયનનું ફળ હોય છે—તેના દ્વારા પ્રતિપાદિત આચરણને—ઉપદેશને પોતાના જીવનમાં ઉતારવો. એજ ભાવપૂર્વકનું તેનું પઠન કહેવાય છે. ભાવશ્રુત તેનું જ નામ છે તેથી જો આત્મા આ આચારાંગ સૂત્રનો અભ્યાસક સમ્યક્ રીતે બની જાય છે તો તે નિયમપૂર્વક તેના દ્વારા પ્રતિપાદિત શુદ્ધ ક્રિયાઓને પોતાના જીવનમાં આચરનાર બની જાય છે. એ ક્રિયાઓને પોતાના જીવનમાં ઉતારવી તેનો અર્થ એજ છે કે આત્મા સાચા અર્થમાં આત્મા બની ગયો છે. સમીચીન આચરણ કરવું એજ જ્ઞાનનું ફળ છે અને એવું જ્ઞાન જ કલ્યાણકારી હોય છે, ક્રિયાશૂન્ય જ્ઞાનની કંઈ જ કીમત નથી, એમ સમજીને તે આત્મા—પ્રાણી આત્માની પરભાવ પરિણતિરૂપ અસદાચરણનો પરિત્યાગ કરીને આત્માના નિજ સ્વભાવરૂપ જે સદાચરણ છે તેને આચારનારો બની જાય છે, એજ આત્માનું આત્મા બનવું છે. "એવં णाया" જ્યારે આત્મા સાચા અર્થમાં આત્મા

भवति-एवं विध विविध ज्ञानवान् भवति। अयं भावः यथा आचाराङ्गे परसमयनिराकरणपुरस्सरं स्वसमयः स्थापितो वर्त्तते तथैव अस्याचाराङ्गस्याध्ययनशीलः स्वसमयज्ञः परसमयज्ञश्च भूत्वा परसमयं निराकृत्य स्वसमयस्थापनेन विशिष्टतरो भवति। वक्तव्यमुपसंहरन्नाह—'एवं०' इत्यादि। एवम्-अनेन प्रकारेण अर्थाद्-आचारगोचरविनयादि कथनेन अस्मिन्नाचाराङ्गे चरण-करण प्ररूपणा, चरणं=व्रतश्रमणधर्मसंयमादिकं सप्तति संख्यकम्, करणं=पिण्ड-विशुद्धि समित्यादि सप्तति संख्यकम्, तयोः प्ररूपणा आख्यायते प्रज्ञाप्यते प्ररूप्यते दर्श्यते, निदर्श्यते उपदर्श्यते। एषा-

---

बन जाता है तब वह ज्ञाता हो जाता है-इस शास्त्र का अध्ययन कर वह समस्त जीवादिक पदार्थों का तथा उनके सच्चे स्वरूप का जाननेवाला होता है। 'एवं विण्णाया' विज्ञाता हो जाता है-विविध ज्ञानवाला बन जाता है, तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार आचारांगसूत्रमें परसमय निराकरण पुरस्सर स्वसमय स्थापित किया गया है, अब जो मोक्षाभिलाषी इसका अध्येता बन जायगा वह उस तरह स्वसमय एवं परसमयका ज्ञाता अवश्य बन जायगा। इस तरह वह प्राणी परसमय का निराकरण करके जब स्वसमयकी स्थापना करता है तो इससे वह विशिष्टतर ही कहा जाता है। अब वक्तव्यका उपसंहार करते हुए सूत्रकार कहते हैं कि-इस तरह आचार, गोचर, विनय आदिके कथनसे इस आचारांगसूत्रमें चरणसत्तरी एवं करणसत्तरी की प्ररूपणा की गई है, प्रज्ञापित हुई है, दिखलाई गई है, निदर्शित की गई है, तथा उपद-

---

બની જાય છે ત્યારે તે જ્ઞાતા બની જાય છે-આ શાસ્ત્રનું અધ્યયન કરીને તે સમસ્ત જીવાદિક પદાર્થોને તથા તેમના સાચા સ્વરૂપને જાણનાર થઈ જાય છે. "એવં विण्णाया" વિજ્ઞાતા થઇ જાય છે-વિવિધ જ્ઞાનવાળો બની જાય છે, તાત્પર્ય એ છે કે જે પ્રકારે આચારાંગ સૂત્રમાં પર સમય નિરાકરણપૂર્વક સ્વમમય સ્થપિત કરાયેલ છે, હવે જે મુમુક્ષુ તેનો પાઠી બને તે એ રીતે સ્વસમય અને પરસમયનો જ્ઞાતા અવશ્ય બનશે. આ રીતે તે પ્રાણી પરસમયનું નિરાકરણ કરીને જ્યારે સ્વસમયની સ્થાપના કરે છે, ત્યારે તે વડે તે વિશિષ્ટતર જ કહેવાય છે. હવે વક્તવ્યનો ઉપસંહાર કરતા સૂત્રકાર કહે છે કે-આ રીતે આચાર, ગોચર, વિનય આદિના કથનથી આ આચારાંગ સૂત્રમાં ચરણસત્તરી અને કરણસત્તરીની પ્રરૂપણા કરવામાં આવી છે-પ્રજ્ઞાપિત થઈ છે, દેખાડવામાં આવી છે, નિદર્શિત કરાઈ છે,

मर्थ पूर्ववद् बोध्यः। आचाराङ्गस्वरूपमुक्त्वाऽऽचार्यः शिष्यमाह-'से तं आयारे' इति। स एष आचारः-हे जम्बूः! यस्त्वयाऽऽचाराङ्गभावः पृष्टः स ज्ञानाचारादि-लक्षण आचारोऽयमनन्तरोक्तो विज्ञेयः ॥ सू० ४५ ॥

आचाराङ्गस्वरूपमभिधाय साम्प्रतं द्वितीयसूत्रकृताङ्गसूत्रस्य स्वरूपमाह-'से किं तं सूयगडे०' इत्यादि।

मूलम्-से किं तं सूयगडे? सूयगडे णं लोए सूइज्जइ, अलोए सूइज्जइ, लोयालोए सूइज्जइ, जीवा सूइज्जंति, अजीवा सूइज्जंति, जीवाजीवा सूइज्जंति, ससमए सूइज्जइ, परसमए सूइज्जइ, ससमयपरसमए सूइज्जइ, सूयगडे णं असीयस्स किरिवाइ सयस्स, चउरासीए अकिरियावाईणं, सत्तट्ठीए, अण्णा-णियवाईणं वत्तीसाए, वेणइयवाईणं, तिण्हं तेसट्ठाणं पासण्डिय-सयाणं बूहं किच्चा ससमए ठाविज्जइ। सूयगडे णं परित्ता वायणा, संखिज्जा अणुओगदारा, संखेज्जा वेढा, संखेज्जा सिलोगा, संखिज्जाओ निज्जुत्तीओ, (संखिज्जाओ संगहणीओ)

र्शित हुई है। (इन सबका अर्थ पहिले की तरह ही है)। इस तरह आचारांगके स्वरूपको कह कर अब सुधर्मास्वामी-जंबूस्वामीसे कहते हैं कि हे जम्बू! जो तुमने आचारके स्वरूपके विषयमें प्रश्न किया था वह आचार ज्ञानाचार आदिके भेदसे इस प्रकारका है कि जिसके विषय में यहां तक कथन किया गया है ॥ सू० ४५ ॥

તથા ઉપદર્શિત થઈ છે. (આ બધાનો અર્થ આગળ આપ્યા પ્રમાણે છે) આ રીતે આચારાંગનાં સ્વરૂપને કહીને હવે સુધર્માસ્વામી જમ્બૂસ્વામીને કહે છે કે હે જમ્બૂ! તમે આચારનાં સ્વરૂપના વિષયમાં જે પ્રશ્ન કર્યો હતો, તે આચાર જ્ઞાનાચાર આદિના ભેદથી કેવા પ્રકારનો છે તેના વિષે અહીં સુધી વર્ણન કર-વામાં આવ્યું છે. ॥ સૂ. ૪૫ ॥

संखिज्जाओ पडिवत्तीओ। से णं अंगट्ठयाए बिईए अंगे, दो-सुयक्खंधा, तेवीसं अज्झयणा, तित्तीसं उद्देसणकाला तित्तीसं समुद्देसणकाला, छत्तीसं पयसहस्साइं पयग्गेणं, संखिज्जा अक्खरा, अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता थावरा, सासय-कड-निबद्ध-निकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति पण्णविज्जंति परूविज्जंति दंसिज्जंति निदंसिज्जंति उवदंसिज्जंति। से एवं आया, एवं णाया एवं विण्णाया। एवं चरण करणपरूवणा आघविज्जइ, पण्णविज्जइ, दंसिज्जइ, निदंसिज्जइ, उवदंसिज्जइ। से तं सूयगडे ॥ सू० ४६ ॥

छाया—अथ किं तत् सूत्रकृतम्? सूत्रकृते खलु लोकः सूच्यते, अलोकः सूच्यते, लोकालोकं सूच्यते, जीवाः सूच्यन्ते, अजीवाः सूच्यन्ते, जीवाजीवाः सूच्यन्ते, स्वसमयः सूच्यते, परसमयः सूच्यते, स्वसमय-परसमयं सूच्यते। सूत्रकृते खलु अशीत्यधिकस्य क्रियावादिकशतस्य, चतुरशीतेरक्रियावादिनां, सप्तषष्ट्या अज्ञानिक वादिनाम्, द्वात्रिंशतो वैनयिकवादिनां, त्रयाणां त्रिषष्ट्यधिकानां पाषण्डिक शतानां व्यूहं कृत्वा स्वसमयः स्थाप्यते। सूत्रकृते खलु परीता वाचनाः, संख्येयानि अनुयोगद्वाराणि, संख्येयाः वेष्टकाः, संख्येयाः श्लोकाः, संख्येया निर्युक्तयः, (संख्येयाः संग्रहण्यः) संख्येयाः प्रतिपत्तयः तत्खलु अङ्गार्थतया द्वितीयमङ्गम्, द्वौ श्रुतस्कन्धौ, त्रयोविंशतिरध्ययनानि त्रयस्त्रिंशदुद्देशनकालाः, त्रयस्त्रिंशत्समुद्देशनकालाः, षट्त्रिंशत् पदसहस्राणि पदाग्रेण, संख्येयानि अक्षराणि, अनन्ता गमाः, अनन्ताः पर्यवाः, परीतास्त्रसाः, अनन्ताः स्थावराः, शाश्वत-कृत-निबद्ध-निकाचिता-जिनप्रज्ञप्ता भावा आख्यायन्ते, प्रज्ञाप्यन्ते, प्ररूप्यन्ते, दर्श्यन्ते, निदर्श्यन्ते, उपदर्श्यन्ते। स एवमात्मा, एवं ज्ञाता, एवं विज्ञाता। एवं चरण करणप्ररूपणा आख्यायते प्रज्ञाप्यते प्ररूप्यते दर्श्यते निदर्श्यते उपदर्श्यते। तदेतत् सूत्रकृतम् ॥ सू० ४६ ॥

टीका—'से किं तं०' इत्यादि—

अथ किं तत् सूत्रकृतम्=सूत्रकृताङ्गम्? सूचनात्=जीवा-जीवादिपदार्थानां प्रतिबोधनात् सूत्रम्, यद्वा-सर्वद्रव्यपर्यायनयाद्यर्थं सूचनात् सूत्रम्, अथवा-सुप्तमिव सूत्रम्, यथा-सुप्तः पुरुषः प्रतिबोधितः सन्नभीष्टं कार्यं साधयति, तथैवेदमर्थेन प्रतिबोधितं सन्निःश्रेयसं साधयति। तथा सूत्रं=तन्तुः, तदिव सूत्रम्, यथा तन्तुना द्वे त्रीणि तदधिकानि वा वस्तूनि एकत्र संयोज्यते, तथैव एकेन सूत्रेण बहवोऽर्था निबध्यन्ते इति सूत्रम्। अथवेदमपि सूत्रलक्षणम्—

सूत्रकार आचारांगका स्वरूप कह कर अब दूसरे अङ्ग सूत्रकृताङ्ग का स्वरूप कहते हैं—'से किं तं सूयगडे०' इत्यादि।

शिष्य प्रश्न—हे भदन्त! द्वितीय अङ्ग सूत्रकृताङ्गका क्या स्वरूप है?

उत्तर—जो सूत्ररूपसे रचा गया है वह "सूत्रकृत" है। यद्यपि सूत्ररूपसे ही समस्त अंगोंकी रचना हुई है, फिर भी इसे "जो सूत्र रूपसे रचा गया वह सूत्रकृत है" ऐसा जो कहा गया है वह रूढिकी अपेक्षा से जानना चाहिये। "सूचनात् सूत्रम्" समस्त जीवादिक पदार्थों का जो प्रतिबोधक होता है वह सूत्र है अथवा-द्रव्यार्थिक एवं पर्यायार्थिकनयके विषयभूत समस्त जीवादिक पदार्थोंका जो प्ररूपक होता है वह सूत्र है अथवा "सुप्तमिव सूत्रम्" जैसे सोया हुआ कोई पुरुष जब जगा दिया जाता है तो वह अपने अभीष्ट कार्यको करने में लग जाता है उसी प्रकार अर्थ से प्रतिबोधित हुआ सूत्र निःश्रेयस आत्म-

---

સૂત્રકાર આચારાંગનું સ્વરૂપ કહીને બીજા અંગ-સૂત્રકૃતાંગનું સ્વરૂપ કહે છે—"से किं तं सूयगडे०" ઇત્યાદિ—

શિષ્ય પૂછે છે-હે ભદન્ત! દ્વીતીય અંગ સૂત્રકૃતાંગનુ શું સ્વરૂપ છે?

ઉત્તર—જે સૂત્રરૂપે રચવામાં આવેલ છે તે "सूत्रकृत" છે. જો કે સમસ્ત અંગોની રચના સૂત્રરૂપે જ થઈ છે તો પણ તેને "જે સૂત્રરૂપે રચવામાં આવેલ છે તે સૂત્રકૃત છે" એવું જે કહેલ છે તે રૂઢીની અપેક્ષાએ જાણવું જોઈએ. "सूचनात् सूत्रम्" સમસ્ત જીવાદિક પદાર્થોનું જે પ્રતિબોધક હોય છે તે સૂત્ર છે. અથવા દ્રવ્યાર્થિક અને પર્યાયાર્થિક નયના વિષયભૂત સમસ્ત જીવાદિક પદાર્થોનું જે પ્રરૂપક હોય છે તે સૂત્ર છે. અથવા "सुप्तमिव सूत्रम्" જેમ સુતેલા કોઇ પુરુષને જ્યારે જગાડવામાં આવે છે ત્યારે તે પોતાના અભીષ્ટ કાર્ય કરવાને મંડી જાય છે એજ પ્રકારે અર્થથી પ્રતિબોધિત થયેલ સૂત્ર

"अल्पाक्षरमसन्दिग्धं, सार वद् विश्वतो मुखम् ।
अस्तोभमनवद्यं च, सूत्रं सूत्रविदो विदुः" ॥ इति ।

कल्याणकी सिद्धि कर लेता है । "सूत्रमिव सूत्रम्" जिस प्रकार तन्तु के द्वारा दो, तीन अथवा अधिक भी वस्तुएँ एक जगह बांध दी जाती हैं उसी प्रकार एक ही सूत्रद्वारा बहुतसे अर्थ भी बांधे जाते हैं इस लिये सूत्रकी तरह यह सूत्र कहा गया है । अथवा सूत्रका यह भी-लक्षण कहा गया है—

"अल्पाक्षर मसंदिग्धं, सारवत् विश्वतोमुखम् ।
अस्तोभमनवद्यं च, सूत्रं सूत्रविदो विदुः" ॥१॥

अल्पाक्षर-जिसमें अक्षर अल्प हों, तथा-असन्दिग्ध-सन्देहरहित, अर्थात् जो सन्देह को उत्पन्न करने वाले अनेकार्थक शब्दोंसे रहित हो, सारवत्-सारयुक्त, अर्थात् अनेक पर्यायों से युक्त हो अथवा बहुत अर्थको कहने वाला हो, विश्वतोमुख-अर्थात् चारों अनुयोगो से युक्त हो अस्तोभ-अर्थात्-'वा, वै, हि' आदि स्तोभों-निरर्थक निपातों से रहित हों, अनवद्य-गर्हा रहित अर्थात् हिंसा का प्रतिपादक न हो, इस प्रकार के लक्षणों से युक्त को ही सूत्र के जानने वालों ने सूत्र कहा है ॥१॥

નિઃશ્રેયસ-આત્મકલ્યાણુની સિદ્ધિ કરી લે છે. "सूत्रमिव सूत्रम्" જેમ સૂત્ર (દોરી) દ્વારા બે, ત્રણ અથવા વધારે વસ્તુઓ પણ એક જગ્યાએ બાંધી દેવાય છે તેમ એક જ સૂત્ર દ્વારા બહુ જ અર્થો પણ બાંધી શકાય છે, તે કારણે આ સૂત્રને સૂત્ર (દોરા) જેવું કહેલ છે. અથવા સૂત્રનું આ પણ લક્ષણ કહેલ છે-

"अल्पाक्षर मसंदिग्धं, सारवत् विश्वतोमुखम् ।
अस्तोभ मनवद्यंच, सूत्रं सूत्रविदो विदुः" ॥१॥

अल्पाक्षर-જેમાં થોડા અક્ષર હોય, તથા असंदिग्ध-સંદેહ રહિત એટલે કે જે સંદેહ ઉત્પન્ન કરનારા અનેકાર્થક શબ્દોથી રહિત હોય, सारवत्-સારયુકત એટલે કે અનેક પર્યાયોથી યુકત અથવા ઘણા અર્થને કહેનાર હોય, विश्वतोमुख-એટલે કે ચારે અનુયોગોવાળું હોય, अस्तोभ-એટલે કે 'वा, वै, हि આદિ સ્તોભો-નકામા નિપાતો વિનાનું હોય, अनवंद्य-ગર્હારહિત એટલે કે હિંસાનું પ્રતિપાદક ન હોય, આ પ્રકારનાં લક્ષણોવાળાને જ સૂત્રના જાણકારોએ સૂત્ર કહેલ છે. ॥ ૧ ॥

सूत्रेण=सूत्ररूपतया कृतं=रचितम्, सूत्रकृतम्। यद्यपि सर्वाण्यङ्गानि सूत्ररूपतयैव विहितानि, तथापि रूढिवशादिदमेवाङ्गं सूत्रकृताङ्गशब्देन प्रोच्यते। इति। उत्तरयति–सूत्रकृते खलु लोकः–लोक्यते=केवलालोकेन दृश्यते इति लोकः-पञ्चास्तिकायात्मकः स सूच्यते। तथा–अलोकः=लोकभिन्नः स सूच्यते। लोकालोक लक्षणं चेदम्–

"धर्मादीनां वृत्ति, र्द्रव्याणां भवति यत्र तत् क्षेत्रम्।
तैर्द्रव्यैः सहलोक,–स्तद्विपरीतं ह्यलोकाख्यम्" ॥इति।

तथा–लोकालोकं=लोकश्च अलोकश्च–लोकालोकं तत् सूच्यते। तथा–जीवाः=चेतनालक्षणाः सूच्यन्ते, अजीवाः=जीवविपरीतस्वरूपाः धर्माधर्माकाशपुद्गलास्तिकायाद्धासमयाः

इस तरह जो सूत्ररूप से रचा गया है वह सूत्रकृत अंग है और यह द्वितीय अंग है। इसी विषय को जानने के लिये यह प्रश्न उपस्थित हुआ है। उत्तररूपमें अब सूत्रकार कहते हैं–'सूयगडेणं०' इत्यादि।

सूत्रकृताङ्ग में पञ्चास्तिकायात्मक इस लोक की प्ररूपणा की गयी है। 'लोक्यते इति लोकः' इस व्युत्पत्ति के अनुसार जो केवलज्ञानरूपी आलोकप्रकाश से देखा जावे वह लोक है। यह पॉच अस्तिकायों से युक्त है। इस प्रकार के लोक की प्ररूपणा हुई है। लोक से भिन्न अलोक है, इस अलोकाकाश की भी वहॉ प्ररूपणा हुई है। लोकाकाश और अलोकाकाश का स्वरूप इस प्रकार बतलाया है–'जितने क्षेत्र में धर्मादिक द्रव्यों का अस्तित्व पाया जाता है उतना क्षेत्र लोकाकाश, एवं जहॉ केवल आकाश ही आकाश है वह अलोकाकाश है।' इसी तरह इसमें जीव, अजीव और जीवाजीव वर्णित हुए हैं। चेतना जिसका एक मात्र लक्षण है वह

આ પ્રકારે જે સૂત્રરૂપે રચાયું છે તે સૂત્રકૃત અંગ છે, અને તે બીજું અંગ છે. એજ વિષયને જાણવાને માટે આ પ્રશ્ન ઉદ્દભવ્યો છે. ઉત્તરરૂપે હવે સૂત્રકાર કહે છે–"સૂયગડે णं०"ઈત્યાદિ.

સૂત્રકૃતાંગમાં પંચાસ્તિકાયરૂપ આ લોકની પ્રરૂપણા કરી છે, 'लोक्यते इति लोकः' આ વ્યુત્પત્તિ અનુસાર, જે કેવલજ્ઞાનરુપી આલોકપ્રકાશથી જોવાય તે લોક છે. એ પાંચ અસ્તિકાયોથી યુક્ત છે. આ પ્રકારના લોકની પ્રરૂપણા આ સૂત્રમાં કરાઈ છે. લોકથી જુદો અલોક છે આ અલોકાકાશની પણ ત્યા પ્રરૂપણા થઈ છે. લોકાકાશ, અને અલોકાકાશનું સ્વરૂપ આ પ્રકારે બતાવ્યું છે. જેટલાં ક્ષેત્રમાં ધર્માદિક દ્રવ્યોનુ અસ્તિત્વ હોય છે. એટલું ક્ષેત્ર લોકાકાશ તેમજ જ્યાં કેવળ આકાશ જ આકાશ છે, તે અલોકાકાશ છે. એજ રીતે એમાં જીવ અજીવ અને જીવાજીવનું વર્ણન થયું છે. ચેતના જેનું એકમાત્ર લક્ષણ છે. તે જીવ છે.

ते सूच्यन्ते, जीवा जीवाः=जीवाजीवादि द्रव्याणि सूच्यन्ते । तथा-स्वसमयः=अर्हन्मतानुसारिसिद्धान्तः सूच्यते, परसमयः=इतर दर्शनसिद्धान्तः सूच्यते, स्वसमय परसमयं=स्वस्य परस्य च सिद्धान्तः सूच्यते । तथा-सूत्रकृते खलु 'असीअस्स' अशीत्यधिकस्य क्रियावादिक शतस्य-क्रियांवदितुं शीलं येषां ते क्रियावादिनस्त एव क्रियावादिकास्तेषां शतं तस्य, अशीत्यधिकशतसंख्यकानां क्रियावादिनां व्यूहं कृत्वा स्वसमयः स्थाप्यते-इत्यग्रेण संबन्धः । एवं सर्वत्र । क्रियावाद्यादीनां विस्तर स्वरूपं समवायाङ्गसूत्रस्य भावबोधिनी टीकातोऽवसेयम् । एवं त्रयाणां त्रिषष्ट्यधिकानां पाषण्डिकशतानाम्=उपरि निर्दिष्टानां सर्वेषां मीलने त्रिषष्ट्यधिकत्रिशतानि पाषण्डिकमतानि तेषां व्यूहम्=प्रतिक्षेपं कृत्वा=सर्वाणि मतानि दूषयित्वा स्वसमयः

जीव है । इस लक्षण से विपरीत अजीव हैं । धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय तथा काल, ये सब अजीव है । तथा इस सूत्रकृताङ्ग में स्वसमय सूचित हुए हैं । वीतराग, सर्वज्ञ, हितोपदेशी अर्हन्त प्रभु द्वारा जिन सिद्धान्तों की प्ररूपणा की गयी है, वे स्वसमय हैं । अन्य दर्शनों के जो सिद्धान्त हैं वे परसमय हैं । इनकी सूचना भी सूत्रकृताङ्ग में है । तथा स्वपर सिद्धान्त की सूचना भी इस सूत्रकृताङ्ग में की गयी है ।

तथा-सूत्रकृताङ्गमें एकसौ अस्सी १८० भेद क्रियावादियों के चोरासी, ८४ भेद अक्रियावादियो के, सडसठ ६७ भेद अज्ञानवादियों के, तथा बत्तीस ३२ भेद विनय वादियों के इस प्रकार तीनसौ तेसठ ३६३ पाखंडियों के मत का निरसन करके स्वसमय-स्वसिद्धान्त की स्थापना की गई है।

એ લક્ષણુથી ભિન્ન અજીવ છે. ધર્માસ્તિકાય, અધર્માસ્તિકાય, આકાશાસ્તિકાય, પુદ્ગલાસ્તિકાય તથા કાલ, એ બધા અજીવ છે તથા આ સૂત્રકૃતાંગમાં સ્વસમય સૂચિત થયેલ છે. વિતરાગ, સર્વજ્ઞ, હિતોપદેશી અર્હંત પ્રભુ દ્વારા જીન સિદ્ધાંતોની પ્રરૂપણા કરાઈ છે. તે સ્વ સમય છે. અન્ય દર્શનોનો જે સિદ્ધાંત છે, તે પર સમય છે. તેની સૂચના પણ "સૂત્રકૃતાંગ"માં છે. તથા સ્વ, પર સિદ્ધાંતની સૂચના પણ એ "સૂત્રકૃતાંગ"માં કરવામાં આવી છે.

સૂત્રકૃતાંગમાં એકસોએંસી ૧૮૦ ભેદો ક્રિયાવાદીઓના, ચોરાશી (૮૪) ભેદો અક્રિયાવાદીઓના, સડસઠ (૬૭) ભેદો અજ્ઞાનવાદીઓના તથા બત્રીસ (૩૨) ભેદો વિનયવાદીઓના, આ પ્રકારે ત્રણસોતેસઠ (૩૬૩) પાખંડીઓના મતનું નિરસન કરીને સ્વસમય-સ્વસિદ્ધાંતની સ્થાપના કરવામાં આવી છે.

जैनसिद्धान्तः स्थाप्यते। तथा–सूत्रकृते खलु परीताः=संख्याताः वाचनाः, संख्येयानि अनुयोगद्वाराणि, संख्येयाः वेष्टकाः, संख्येयाः श्लोकाः, संख्येयाः निर्युक्तयः, (संख्येयाः संग्रहण्यः), संख्येयाः प्रतिपत्तयः। एतानि पदानि अत्रैव आचाराङ्ग निरूपणावसरे व्याख्यातानि। 'से णं' तत्खलु अङ्गार्थतया=अङ्गस्वरूप वस्तुतया द्वितीयमङ्गमस्ति, तत्र द्वौ श्रुतस्कन्धौ, त्रयोविंशतिरध्ययनानि, प्रथम श्रुतस्कन्धे षोडषाध्ययनानि, द्वितीये सप्ताध्ययनानि, इति सर्वसंकलनया त्रयोविंशति रध्ययनानि, त्रयस्त्रिंशदुद्देशनकालाः।

तदुक्तम्—

"चउ–तिय चउरो दो दो, एक्कारस चेव हुंति एक्कसरा।
सत्तेव महज्झयणा, एगसरा बीयसुय खंधे" ॥ १ ॥

छाया—चत्वारस्त्रयश्चत्वारो द्वौ द्वौ एकादश चैव भवन्ति एकसरकाः।
सप्तैव महाध्ययनानि एकसराणि द्वितीय श्रुतस्कन्धे ॥ इति।

अयं भावः—प्रथम श्रुतस्कन्धस्य प्रथमेऽध्ययने चत्वार उद्देशनकालाः द्वितीये

तथा–इस सूत्रकृतांग सूत्रके सूत्र और अर्थ यह हैं। तथा इस द्वितीय अंगमें संख्याती वाचनाएं हैं, संख्याते अनुयोग द्वार हैं, संख्याती प्रतिपत्तियां हैं, संख्याते वेष्टक हैं, संख्याते श्लोक हैं, तथा संख्याती निर्युक्तिया हैं। वाचना आदि शब्दों का अर्थ आचारांगसूत्र के ४५ पेंतालिस सूत्र में व्याख्यानमें लिखा जा चुका है। अंगार्थपने से यह दूसरा अंग है। इसमें दो श्रुतस्कन्ध हैं। ते ईस अध्ययन हैं–प्रथम श्रुतस्कधमें सोलह तथा द्वितीय श्रुतस्कन्ध में सात। तेतीस उद्देशनकाल हैं, वे इस तरह से हैं—

"चउतिय चउरो दो दो, एक्कारस चेव हुँति एक्कसरा।
सत्तेव महज्झयणा, एगसरा बीय सुयखंधे" ॥१॥ इति।

प्रथमश्रुतस्कंध के पहिले अध्ययनमें चार उद्देशनकाल हैं, द्वितीय

આ સૂત્રકૃતાંગ સૂત્રનાં સૂત્ર અને અર્થ છે. તથા આ દ્વિતીય અંગમાં સંખ્યાત વાચનાઓ છે, સંખ્યાત અનુયોગ દ્વાર છે, સંખ્યાત પ્રતિપત્તિયો છે, સંખ્યાત વેષ્ટક છે, સંખ્યાત શ્લોક છે, તથા સંખ્યાત નિર્યુક્તિઓ છે. વાચના આદિ શબ્દોનો અર્થ આચારાંગના ૪૫ પિસ્તાલીસ સૂત્રનાં વ્યાખ્યાનમાં લખાઈ ગયો છે, અંગાર્થપણાથી આ બીજું અંગ છે. તેમાં બે શ્રુતસ્કંધ છે. તેવીસ અધ્યયન છે–પ્રથમ શ્રુતસ્કંધમાં સોળ તથા દ્વિતીય શ્રુતસ્કંધમાં સાત. તેત્રીસ ઉદ્દેશકાળ છે તે આ પ્રમાણે છે–

"चउतिय चउरो दो दो, एक्कारस चेव हुंति एक्कसरा।
सत्तेव महज्झयणा, एगंसरा बीयसुयखंधे" ॥१॥

પ્રથમ શ્રુત સંકધના પહેલા અધ્યયનમાં ચાર ઉદ્દેશનકાળ છે, બીજા અધ્ય-

त्रयः, तृतीये चत्वारः, चतुर्थे द्वौ, पञ्चमे द्वौ, अवशिष्टेषु एकादशस्वध्ययनेषु प्रत्येकत्र एकैक उद्देशनकालः इति एकादश उद्देशनकालाः, तथा-द्वितीय श्रुतस्कन्धस्य सप्तस्वध्ययनेषु प्रत्येकत्र एकैक उद्देशनकाल, इति सप्तोद्देशनकालाः, एवं सर्व संकलनया त्रयस्त्रिंश दुद्देशनकालाः, त्रयस्त्रिंशत्समुद्देशनकालाः, तथा-षट्त्रिंशत्पदसहस्राणि ३६००० पदाग्रेण=पदपरिमाणेन प्रज्ञप्तानि । 'प्रज्ञप्तानि' इत्यस्य लिङ्गवचन विपरिणामेन सर्वत्रान्वयः कार्यः । तथा-अत्र-संख्येयानि अक्षराणि, अनन्तागमाः, अनन्ताः पर्यायाः, परीताः=असंख्यातास्त्रसाः, अनन्ताः स्थावराः सन्ति । उपरि निर्दिष्टाः सर्वे जिन प्रज्ञप्ता भावाः सन्ति । कीदृशा एते ? इत्याह-'सासया' शाश्वताः, कृताः, निबद्धाः पुनः निकाचिताः । त एते भावा अत्र-आख्यायन्ते, प्रज्ञाप्यन्ते, प्ररूप्यन्ते, दर्श्यन्ते,

---

अध्ययनमें तीन, तीसरे अध्ययनमें चार, चौथे अध्ययन में दो, पांचवे अध्ययनमें दो, इस तरह पांच अध्ययनोंमें पन्द्रह उद्देशनकाल हुए। तथा अवशिष्ट ग्यारह अध्ययनों में प्रत्येक में एक उद्देशनकाल होने से ग्यारह उद्देशन काल हुए, इस प्रकार प्रथम श्रुतस्कंधके ये छाईस उद्देशनकाल हुए। द्वितीय श्रुतस्कंधके जो सात अध्ययन हैं उनमें प्रत्येक में एक-एक उद्देशनकाल होनेसे सात उद्देशनकाल हुए, इस प्रकार दोनों श्रुतस्कंधों के उद्देशनकाल तेंतीस ३३ हो जाते हैं। इसी प्रकार समुद्देशनकाल भी तेंतीस हैं। और छत्तीस हजार पद हैं। संख्यात अक्षर हैं, अनंतगमे हैं, अनंतपर्यायें हैं, परीता-असंख्याते त्रस हैं, अनंत स्थावर हैं। ये जीव शाश्वत हैं-द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षासे, कृत-अशाश्वत हैं-पर्यायार्थिक नयकी अपेक्षा से, निबद्ध हैं-सूत्रमें ग्रथित होनेसे, निकाचित हैं-निर्युक्ति हेतु उदाहरण आदिके द्वारा ये अच्छी तरहसे

યનમાં ત્રણ, ત્રીજા અધ્યયનમાં ચાર, ચોથા અધ્યયનમાં બે, પાંચમાં અધ્યયનમાં બે, આ રીતે પાંચ અધ્યયનોમાં પંદર ઉદ્દેશનકાળ થયાં. તથા બાકીના અગીયારમાંના પ્રત્યેકમાં એક એક ઉદ્દેશનકાળ હોવાથી, તેમનાં આગીયાર ઉદ્દેશનકાળ થયાં, આ રીતે પ્રથમશ્રુત સ્કંધના કુલ છવીશ ઉદ્દેશનકાળ થયાં. દ્વિતીયશ્રુત સ્કંધના જે સાત અધ્યયન છે તે પ્રત્યેકમાં એક એક ઉદ્દેશનકાળ હોવાથી તેના સાત ઉદ્દેશનકાળ થયાં. આ રીતે બન્ને શ્રુત સ્કંધોના મળીને કુલ તેત્રીસ (૩૩) ઉદ્દેશનકાળ થાય છે. એજ પ્રમાણે સમુદ્દેશનકાળ પણ તેત્રીસ છે, અને છત્રીસ હજાર પદ છે. સંખ્યાત અક્ષર છે, અનંત ગમ છે, અનંત પર્યાયો છે, અસંખ્યાત ત્રસ છે. અનંત સ્થાવર છે. એ જીવ શાશ્વત છે, દ્રવ્યાર્થિકનયની અપેક્ષ એ નિબદ્ધ છે-સૂત્રમાં ગ્રથિત હોવાથી, નિકાચિત છે-નિર્યુક્તિ હેતુ ઉદાહરણ આદિ દ્વારા સારી રીતે પ્રતિષ્ઠિત હોવાથી. એ જીવાદિક પદાર્થ જે રૂપે તીર્થ-

निदर्श्यन्ते, उपदर्श्यन्ते । 'से' सः=य एतदङ्गमधीते स जनः एवमात्मा-अत्रोक्त गुण विशिष्टः सन् आत्मस्वरूपो भवति । एवं ज्ञाता भवति, एवं विज्ञाता भवति । अनेन प्रकारेणाऽत्र सूत्रकृताङ्गे चरणकरण प्ररूपणा आख्यायते, प्रज्ञाप्यते, प्ररूप्यते, दर्श्यते, निदर्श्यते, उपदर्श्यते । अत्राऽव्याख्यातपदानां व्याख्या आचाराङ्ग निरूपणावसरे गता । आचार्यः सूत्रकृतस्वरूपमुक्त्वा शिष्यमाह—'से त्तं सूयगडे'-तदेतत् सूत्रकृतम्=सूत्रकृतस्वरूपमेवं विज्ञेयमिति ॥ सू० ४६ ॥

प्रतिष्ठित होनेसे । ये जीवादिक पदार्थ जिस रूपसे तीर्थङ्कर प्रभुने प्रतिपादित किये हैं उसी रूपसे यहां सूत्रकृतांग सूत्रमें प्रतिपादित किये गये हैं, प्रज्ञापित किये गये हैं, प्ररूपित किये गये हैं, दिखलाये गये हैं, निदर्शित किये गये हैं, उपदर्शित किये गये हैं । जो प्राणी इस द्वितीय अंगका अध्ययन करता है वह पूर्वोक्त गुण विशिष्ट हो कर आत्मस्वरूप बन जाता है, ज्ञाता हो जाता है तथा विज्ञाता हो जाता है । इस प्रकार से इस सूत्रकृतांगमें चरण और करणकी प्ररूपणा की गई है, प्रज्ञापित की गई है, प्ररूपित की गई है, दिखलाई गई है, निदर्शित की गई है तथा उपदर्शित की गई है । यहां जिनपदोंकी व्याख्या नहीं की गई है उन पदोकी व्याख्या आचारांगसूत्रके निरूपणमें की गई है अतः वहांसे जान लेनी चाहिये । श्रीसुधर्मास्वामी जम्बूस्वामीसे कहते हैं-हे आयुष्मन् ! इस प्रकारसे यह सूत्रकृतांगका स्वरूप है ॥ सू० ४६ ॥

કર પ્રભુએ પ્રતિપાદિત કર્યા છે, એજ રૂપે અહીં સૂત્રકૃતાંગ સૂત્રમાં પ્રતિપાદિત કરેલ છે, પ્રજ્ઞાપિત કરેલ છે, પ્રરૂપિત કરેલ છે, બતાવવામાં આવેલ છે, નિદર્શિત કરેલ છે, ઉપદર્શિત કરાયેલ છે. જે પ્રાણી આ દ્વિતીય અંગનું અધ્યયન કરે છે તે પૂર્વોકત ગુણયુકત થઈને આત્મસ્વરૂપ બની જાય છે, જ્ઞાતા થઈ જાય છે અને વિજ્ઞાતા થઈ જાય છે. આ રીતે આ સૂત્રકૃતાંગમાં ચરણ અને કરણની પ્રરૂપણા કરવામાં આવી છે, પ્રજ્ઞાપિત કરાઈ છે, પ્રરૂપીત કરાઈ છે, દર્શાવવામાં આવી છે, નિદર્શિત થઇ છે તથા ઉપદર્શિત કરવામાં આવી છે. અહીં જે સૂત્રોની વ્યાખ્યા આપી નથી તે પદોની વ્યાખ્યા આચારાંગ સૂત્રના નિરૂપણમાં આપવામાં આવી છે તેથી ત્યાંથી જાણી લેવી. શ્રી. સુધર્મા સ્વામી જમ્બૂ સ્વામીને કહે છે—"હે આયુષ્મન્! આ પ્રકારનું આ સૂત્રકૃતાંગનું સ્વરૂપ છે" ॥ સૂ. ૪૬ ॥

मूलम्–से किं तं ठाणे? ठाणे णं जीवा ठाविज्जंति, अजीवा ठाविज्जंति, जीवाजीवा ठाविज्जंति, ससमए ठाविज्जइ, परसमए ठाविज्जइ, ससमयपरसमए ठाविज्जइ, लोए ठाविज्जइ, अलोए ठाविज्जइ, लोयालोए ठाविज्जइ। ठाणेणं टंका, कूडा, सेला, सिहरिणो, पब्भारा, कुंण्डाइं, गुहाओ, आगरा, दहा, नईओ आघविज्जंति। ठाणे णं एगाइयाए एगुत्तरियाए वुड्ढीए दसट्ठाणगविवड्ढियाणं भावाणं परूवणा आघविज्जइ। ठाणे णं परित्ता वायणा, संखेज्जा अणुओगदारा, संखेज्जा वेढा, संखेज्जा सिलोगा, संखेज्जाओ निज्जुत्तीओ, संखेज्जाओ संगहणीओ संखेज्जाओ पडिवत्तीओ। से णं अंगट्ठयाए तईए अंगे, एगे सुयक्खंधे, दस अज्झयणा, एगवीसं उद्देसणकाला, एगवीसं समुद्देसणकाला बावत्तरिपयसहस्सा पयग्गेणं, संखेज्जा अक्खरा, अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता थावरा, सासयकड णिबद्ध णिकाइया जिणपन्नत्ता भावा आघविज्जंति, परूविज्जति, दंसिज्जंति निदंसिज्जंति, उवदंसिज्जंति। से एवं आया एवं णाया, एवं विण्णाया। एवं चरण करण परूवणा आघविज्जइ ६। से त्तं ठाणे ॥ सू० ४७ ॥

छाया—अथ किं तत् स्थानम्? स्थाने खलु जीवाः स्थाप्यन्ते, अजीवाः स्थाप्यन्ते, जीवाजीवाः स्थाप्यन्ते, स्वसमयः स्थाप्यते, परसमयः स्थाप्यते, स्वसमय परसमयं स्थाप्यते, लोकः स्थाप्यते, अलोकः स्थाप्यते, लोकालोकं स्थाप्यते। स्थाने खलु टङ्काः कूटाः शैलाः शिखरिणः प्राग्भाराः कुण्डानि गुहाः आकराः ह्रदाः नद्यः आख्यायन्ते। स्थाने खलु एकादिकया एकोत्तरिकया वृद्धया दशस्था-

नकविवर्द्धितानां भावानां प्ररूपणा आख्यायते। स्थाने खलु परीता वाचनाः, संख्येयानि अनुयोगद्वाराणि, संख्येया वेष्टकाः संख्येयाः श्लोकाः, संख्येयाः निर्युक्तयः, संख्येयाः संग्रहण्यः, संख्येयाः प्रतिपत्तयः। तत् खलु अङ्गार्थतया तृतीयमङ्गम्, एकः श्रुतस्कन्धः दश अध्ययनानि, एकविंशतिरुद्देशनकालाः, एकविंशतिः समुद्देशन कालाः, द्विसप्ततिः पद सहस्राणि पदाग्रेण, संख्येयान्यक्षराणि, अनन्ताः गमाः, अनन्ताः पर्यायाः, परीतास्त्रसाः, अनन्ताः स्थावराः, शाश्वतकृत निबद्ध निकाचिताः जिनप्रज्ञप्ताः भावाः आख्यायन्ते, प्रज्ञाप्यन्ते, प्ररूप्यन्ते, दर्श्यन्ते, निदर्श्यन्ते, उपदर्श्यन्ते। स एवमात्मा, एवं ज्ञाता, एवं विज्ञाता, एवं चरणकरण प्ररूपणा आख्यायते ६। तत् एतत् स्थानम् ॥ सू० ४७॥

टीका—'से किं तं ठाणे०' इत्यादि—

अथ किं तत्स्थानम्?=तिष्ठन्ति-विद्यन्ते प्रतिपाद्यतया जीवादिपदार्था यस्मिंस्तत्स्थानं, तत्किम्? इति प्रश्नः? उत्तरयति-स्थाने=स्थानाङ्गे खलु अथवा 'ठाणेणं' इति तृतीयामाश्रित्य स्थानेन=स्थानाङ्गेन जीवाः स्थाप्यन्ते। अजीवाः स्थाप्यन्ते,

---

अब तीसरे अंग स्थानाङ्गसूत्रकी प्ररूपणा करते हैं—

'से किं तं ठाणे?' इत्यादि—

शिष्य पूछता है-हे भदन्त! स्थान नाम का जो तीसरा अंग है उसका क्या भाव है?

उत्तर—जिसमें जीवादिक पदार्थों के स्वरूप का कथन किया गया है वह स्थान है, इस व्युत्पत्ति के अनुसार इस तृतीय अंग स्थानांगमें प्रतिपाद्य होने की वजह से जीव आदि पदार्थों के स्वरूप की व्यवस्था कही गई है। इसी विषय को सूत्रकार स्पष्ट करने के लिये कहते हैं-इस तृतीय अंग स्थानांगमें जीव की स्थपना की गई है, अथवा इस तृतीय

હવે ત્રીજા અંગ સ્થાનાંગ સૂત્રની પ્રરૂપણા કરે છે. "से किं तं ठाणे?" ઇત્યાદિ.

શિષ્ય પૂછે છે-હે ભદન્ત! સ્થાન નામનું જે ત્રીજું અંગ છે તેનું શું તાત્પર્ય છે?

ઉત્તર—જેમાં જીવાદિક પદાર્થોનાં સ્વરૂપનું કથન કરવામાં આવ્યું છે તે "સ્થાન" છે, આ વ્યુત્પત્તિ પ્રમાણે આ ત્રીજું અંગ સ્થાનાંગમાં પ્રતિપાદ્ય હોવાને કારણે જીવ આદિ પદાર્થનો સ્વરૂપની વ્યવસ્થા કહેવાનાં આવી છે. આજ વિષયને સ્પષ્ટ કરવાને માટે સૂત્રકાર કહે છે-આ ત્રીજા અંગ-સ્થાનાંગમાં જીવની સ્થાપના કરવામાં આવી છે, અથવા આ ત્રીજા અંગ-સ્થાનાંગ દ્વારા જીવની

जीवा जीवाः स्थाप्यन्ते । स्वसमयः स्थाप्यते=परमत निराकरणपूर्वकं स्वसिद्धान्त-स्थापनाक्रियते, परसमयः स्थाप्यते, स्वसमय परसमयं स्थाप्यते । तथा-लोकः स्थाप्यते, अलोकः स्थाप्यते, लोकालोकं स्थाप्यते । पुनश्च-स्थाने=स्थानाङ्गे खलु टङ्काः=पर्वतविच्छिन्नतटाः, कूटाः=शिखराणि, शैलाः=हिमवदादिपर्वताः, शिखरिणः=शिखरयुक्ताः पर्वताः, प्राग्भाराः=इषदवनताः कूटाः, अथवा-पर्वतोपरि भागे विनिर्गता हस्तिकुम्भाकृतिका पर्वतविभागाः, अथवा प्राग्भाराः=सिद्धशिला, कुण्डानि=गङ्गाप्रपात-कुण्डप्रभृतीनि, गुहाः कन्दराः, आकराः=लोहादिधातूत्पत्तिस्थानानि, ह्रदाः=जलाशयाः, नद्यः=गङ्गाद्यानद्यश्च आख्यायन्ते । तथा-स्थाने=स्थानाङ्गे खलु एकादिकया-

अंग स्थानांग के द्वारा जीव की स्थापना की गई है। अजीव की स्थापना की गई है तथा जीव अजीव की स्थापना की गई है। इसी तरह परमत निराकरणपूर्वक स्वमत की स्थापना की गई है, परमत की स्थापना की गई है एवं परमत और स्वमत इन दोनों की स्थापना की गई है। तथा लोक की स्थापना की गई है, अलोक की स्थापना की गई है; और लोक एवं अलोक की स्थपना की गई है।

इसी तरह इस सूत्रमें टङ्कका-अर्थात् पर्वत के विच्छिन्न तटका कूटका अर्थात् शिखर का, शैलों का हिमवान्, महाहिमवान्, निषध, नील, रुक्मी और शिखरी इन छह पर्वतों का, शिखरियों का-शिखरयुक्त पर्वतों का, प्राग्भार का-कुछ २ झुके हुए शिखरों का, अथवा पर्वत के ऊपरी भागमें निकले हुए हाथी के मस्तकों के आकार सदृश पर्वत विभागों का, कुण्डों का-गङ्गा प्रपात आदि कुण्डों का, गुहाओं का, लोह

સ્થાપના કરવામાં આવી છે, અજીવની સ્થાપના કરાઇ છે. તથા જીવ અને અજીવની સ્થાપના કરેલ છે. આ રીતે પરમતના નિરાકરણ પૂર્વક સ્વમતની સ્થાપના કરેલ છે, પરમતની સ્થાપના કરેલ છે, સ્વમત અને પરમતની સ્થાપના કરેલ છે. તથા લોકની સ્થાપના કરેલ છે, અને અલોકની સ્થાપના કરેલ છે લોક અને અલોકની સ્થાપના કરેલ છે.

એજ રીતે આ સૂત્રમાં ટંકનું-પર્વતનાં વિચ્છિન્નતટનુ, કૂટનું-શિખરનું, શૈલોનું-હિમવાન્, મહાહિમવાન્, નિષધ, નીલ, રુકમી અને શિખરી આ છ પર્વતોનું, શિખરિયોનું-શિખરયુક્ત પર્વતોનું, પ્રાગ્ભારનું-ક્યાંક ક્યાંક ઝુકેલા શિખરોનું અથવા-પર્વતના ઉપરી ભાગમાં નિકળેલા હાથીના મસ્તક જેવા પર્વત વિભાગોનું, કુંડોનું-ગંગાપ્રપાત આદિ કુંડોનું, ગુફાઓનુ, લોહ આદિ ધાતુઓના

एक आदौ=प्रारम्भे यस्यां सा एकादिका तया, एकोत्तरिकया=क्रमेणैकैकसंख्यारूपया वृद्धया दशस्थानकविवर्द्धितानां=दशस्थानक पर्यन्तं वृद्धिमुपगतानां भावानां पदार्थानां प्ररूपणा आख्यायते=कथ्यते। अयं भावः-स्थानाङ्गसूत्रे-एक स्थानकत्वेनारभ्य क्रमेणैकैकस्थानवृद्धया वृद्धिमुपगतानां दशस्थानक पर्यन्तानां भावानां प्ररूपणा क्रियते-इति। तथा-स्थाने=स्थानाङ्गे खलु परीताः=संख्याता वाचनाः, संख्येयानि अनुयोगद्वाराणि, संख्येयाः वेष्टकाः, संख्येयाः श्लोकाः, संख्येया निर्युक्तयः, संख्येयाः संग्रहण्यः, संख्येयाः प्रतिपत्तयः। तत्खलु अङ्गार्थतया=अङ्गापेक्षया तृतीयमङ्गम्। अत्र-एकः श्रुतस्कन्धः, दश अध्ययनानि, एकविंशतिरुद्देशनकालाः-द्वितीय तृतीय चतुर्थेषु स्थानेषु चत्वारश्चत्वार उद्देशकाः पञ्चमे त्रयः तथा-प्रथम षष्ठ सप्तमाष्टमनवमदशमेषु स्थानेषु प्रत्येकत्रेकैकोद्देशसत्वात् षट् इत्येवमेकविंशति रुद्देशनकालाः, एकविंशतिः समुद्देशनकालाः, तथा-पदाग्रेण=पदपरिणामेन द्विसप्ततिः पदसहस्राणि=द्वि सप्तति-

---

आदि धातुओं के उत्पत्ति स्थान, आकरों-खानोका हृदों का-जलाशयों का, और गङ्गा आदि महानदियों का, कथन किया गया है।

तथा एकविधवक्तव्यता का द्विविधवक्तव्यताका यावत् दशविधवक्तव्यता तक का भी यहां कथन किया गया है। तथा जीवादिको की, पुद्गलोंकी एवं धर्मास्तिकाय आदिकों की यहां प्ररूपणा की गई है। इस स्थानांगसूत्र की संख्याती वाचनाएँ हैं, संख्याते अनुयोग द्वार हैं, संख्याते वेष्टक है संख्याते श्लोक हैं संख्याती नियुक्तियां हैं प्रतिपत्तियां हैं, तथा संख्याती संग्रहणि गाथाएं हैं। यह स्थानांगसूत्र अंगों की अपेक्षा तीसरा अंग है। इस तीसरे अंगमें एक श्रुतष्कन्ध है। दश अध्ययनस्थान हैं। इक्कीस उद्देशनकाल तथा इक्कीस ही समुद्देशनकाल

ઉત્પત્તિ સ્થાન આકરો (ખાણો)નું હૃદોનું-જલાશયોનું અને ગંગા આદિ મહાનદિયોનું કથન કરવામાં આવ્યુ છે.

તથા એકવિધ વક્તવ્યતાનું, દ્વિવિધ વક્તવ્યતાનું તે પ્રમાણે દશવિધવક્તવ્યતા સુધીનું પણ તેમાં વર્ણન કર્યું છે. તથા જીવાદિકોની, પુદ્ગલોની, અને ધર્માસ્તિકાય આદિકોની તેમાં પ્રરૂપણા કરવામાં આવી છે. આ સ્થાનાંગસૂત્રની સંખ્યાત વાચનાઓ છે, સંખ્યાત અનુયોગ દ્વાર છે, સંખ્યાત વેષ્ટક છે, સંખ્યાત શ્લોક છે, સંખ્યાત નિર્યુક્તિઓ છે, સંખ્યાત પ્રતિપત્તિઓ છે, તથા સંખ્યાત સંગ્રહણિ ગાથાઓ છે. અંગોની અપેક્ષાએ આ સ્થાનાંગસૂત્ર ત્રીજું અંગ છે. આ ત્રીજા અંગમા એક શ્રુતસ્કંધ છે. દસ અધ્યયનસ્થાન છે. એકવીશ ઉદ્દેશનકાળ અને એકવીસ જ સમુદ્દેશનકાળ છે.

सहस्राणि ७२००० पदानि, सख्येयान्यक्षराणि, अनन्तागमाः, अनन्ताःपर्यायाः, परीताः=एकत आरभ्य असंख्यातात्त्रसाः, अनन्ताः स्थावराः सन्ति। उपरि निर्दिष्टा एते शाश्वतकृतनिबद्धनिकाचिताः जिनप्रज्ञप्ता भावा आख्यायन्ते, प्रज्ञाप्यन्ते, प्ररूप्यन्ते, दर्श्यन्ते, निदर्श्यन्ते, उपदर्श्यन्ते। 'से' सः=एतदङ्गाध्ययन शीलोजनः, एवमात्मा=अत्रोक्तगुणविशिष्टः सन् आत्म स्वरूपो भवति। एवं ज्ञाता भवति, एव विज्ञाता भवति, एवम्=अनेन प्रकारेणाऽत्र स्थानाङ्गेचरणकरण प्ररूपणा आख्यायते ६। 'आख्यायते' इत्यारभ्य 'उपदर्श्यते' इत्यन्तं पदषट्कमाचाराङ्गप्रकरणवदत्रापि विज्ञेयम्। अक्षरगमादीनामर्थोऽत्रैव पञ्चचत्वारिंशत्तमसूत्रे व्याख्यातो विज्ञेयः ॥सू०४७॥

मूलम्—से किं तं समवाए णं जीवा समासिज्जंति, अजीवा समासिज्जंति, जीवाजीवा समासिज्जंति, ससमए समासिज्जइ, परसमए समासिज्जइ, ससमयपरसमए समासिज्जइ, लोए समासिज्जइ, अलोए समासिज्जइ, लोयालोए समा सिज्जइ। समवाए णं एगाइयाणं एगुत्तरियाणं ठाण सय विवड्ढियाणं भावाणं परूवणा आघाविज्जइ, दुवालस विहस्स य गणिपिडगस्स पल्लवग्गो समासिज्जइ। समवायस्स णं परित्ता वायणा, संखिज्जा

हैं। इक्कीस उद्देशन काल इस प्रकार हैं—दूसरे तीसरे और चौथे स्थनोंमें चार चार तथा पांचवेंमें तीन एवं अवशिष्ट छह अध्ययनोंमें प्रत्येक में एक एक। इसमें बहत्तर हजार (७२०००) पद हैं। 'संखेज्जा अक्खरा' इत्यादि पदोंकी व्याख्या यहीं सूत्र ४५ पेंतालीसमें की जा चुकी है—सो उसी के अनुसार जानना चाहिये। यह स्थानांग का कथन हुआ ॥सू०४७॥

એકવીસ ઉદ્દેશનકાળ આ પ્રમાણે છે-બીજાં, ત્રીજાં અને ચોથા સ્થાનોમાં ચાર ચાર, તથા પાંચમાંમાં ત્રણ અને બાકીના છ અધ્યયનોમાં પ્રત્યેકમાં એક એક ઉદ્દેશનકાળ છે. તેમાં બોંતેરહજાર (૭૨૦૦૦) પદ છે. "संखेज्जा अक्खरा" ઇત્યાદિ પદોની વ્યાખ્યા અહીં પીસ્તાલીસમાં (૪૫) સૂત્રમાં કરાઈ ગઈ છે તે તે પ્રમાણે સમજી લેવી. આ સ્થાનાંગનું વર્ણન થયુ ॥ સૂ૦ ૪૭ ॥

अणुओगदारा, संखिज्जा वेढा, संखिज्जा सिलोगा, संखिज्जाओ निज्जुत्तीओ, संखिज्जाओ संगहणीओ, संखिज्जाओ पडिवत्तीओ। से णं अंगट्ठयाए चउत्थे अंगे, एगे सुयक्खंधे, एगे अज्झयणे, एगे उद्देसणकाले, एगे समुद्देसणकाले, एगे चोयाले सयसहस्से-पयग्गेणं, संखेज्जा अक्खरा, अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता थावरा, सासयकडनिबद्धनिकाइयाजिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति, पण्णविज्जंति, परूविज्जंति, दंसिज्जंति, निदंसिज्जंति उवदंसिज्जंति। से एवं आया, एवं नाया, एवं विण्णाया, एवं चरणकरणपरूवणा आघविज्जइ ६। से त्तं समवाए सू० ४८॥

छाया—अथ कोऽसौ समवायः? समवाये खलु जीवाः समाश्रीयन्ते, अजीवाः समाश्रीयन्ते, जीवाजीवाः समाश्रीयन्ते। स्वसमयः समाश्रीयते, परसमयः समाश्रीयते, स्वसमयपरसमयं समाश्रीयते, लोकः समाश्रीयते, अलोकः समाश्रीयते, लोकालोकं समाश्रीयते। समवाये खलु एकादिकानाम् एकोत्तरिकाणाम् स्थानशतविवर्द्धितानां भावानां प्ररूपणा आख्यायते, द्वादशविधस्य च गणिपिटकस्य पर्यवाग्रः समाश्रीयते। समवायस्य खलु परीता वाचनाः, संख्येयानि अनुयोगद्वाराणि, संख्येया वेष्टकाः, संख्येयाः श्लोकाः, संख्येया निर्युक्तयः, संख्येयाः संग्रहण्यः, संख्येयाः प्रतिपत्तयः स खलु अङ्गार्थतया चतुर्थम् अङ्गम्, एकः श्रुतस्कन्धः, एकम् अध्ययनम्, एक उ᳚शनकाल᳚, एकः समुद्देशनकालः, एकं चतुश्चत्वारिंशदधिकं शतसहस्रं पदाग्रेण, संख्येयान्यक्षराणि, अनन्ता गमाः, अनन्ताः पर्यवाः, परीतास्त्रसाः, अनन्ताः स्थावराः, शाश्वतकृतनिबद्धनिकाचिता जिनप्रज्ञप्ता भावा आख्यायन्ते, प्रज्ञाप्यन्ते, प्ररूप्यन्ते, दर्श्यन्ते, निदर्श्यन्ते उपदर्श्यन्ते। स एवमात्मा, एवंज्ञाता एवं विज्ञाता, एवं चरणकरणप्ररूपणाआख्यायते ६। स एष समवायः ॥ सू० ४८॥

टीका—'से किं तं०' इत्यादि।

अथ कोऽसौ समवायः? समवायनम्-जीवाजीवादिभावानाम् एकादिविभागेन समावेशनं-समवायः, यद्वा-समवयन्ति=समवतरन्ति-संमिलन्ति नानाविधा आत्मादयो भावा अभिधेयतया यस्मिन्नसौ समवायः, तत्कारणमागमोऽपि कारणे कार्योपचारात् समवाय उच्यते, स कः? इति प्रश्नः। उत्तरयति—समवाये=समवायाङ्गसूत्रे खलु जीवाः समाश्रीयन्ते=यथाऽवस्थितरूपेण निरूप्यन्ते, अजीवाः समाश्रीयन्ते, जीवाजीवाः समाश्रीयन्ते, स्वसमयः समाश्रीयते, परसमयः समाश्रीयते, स्वसमयपरसमयं समाश्रीयते, लोकः समाश्रीयते, अलोकः समाश्रीयते, लोकालोकं समाश्रीयते। तथा-समवाये खलु एकादिकानाम्-

---

अब चौथे अंग समवायांग सूत्रकी प्ररूपणा करते हैं—

'से किं तं समवाए?' इत्यादि।

शिष्य पूछता है-हे भदन्त! समवाय का क्या स्वरूप है?

उत्तर—जीव अजीव आदि पदार्थों का एक आदि विभागरूप से जहां समावेश किया गया है, अथवा प्रतिपाद्य रूप से जहां नानाविध आत्मा आदि पदार्थों का वर्णन हुआ है वह समवाय है। इस व्युत्पत्ति के अनुसार समवाय नाम के इस चतुर्थ अंगमें जीव का समावेश किया गया है, अजीव का समावेश किया गया है, अर्थात् यह समझाया गया है कि जीव क्या है? तथा अजीव क्या है?। इस तरह इस चतुर्थ अंगमें जीव और अजीव इन दोनों का भी प्रतिपाद्यरूप से समावेश किया गया है। स्वसमय, परसमय, एवं स्वसमय-परसमय, लोक, अलोक, तथा लोकालोक, इन सब का भी यहां पर प्रतिपाद्य के रूपमें समावेश हुआ

હવે ચોથા અંગ સમવાયાંગ સૂત્રની પ્રરૂપણા કરે છે.

"से किं तं समवाए?" ઈત્યાદિ—

શિષ્ય પૂછે છે-હે ભદન્ત સમવાયનું શું સ્વરૂપ છે?

ઉત્તર—જીવ અજીવ આદિ પદાર્થોનો એક આદિ વિભાગરૂપે જ્યાં સમાવેશ કરાયો છે. અથવા પ્રતિપાદ્યરૂપે જ્યાં વિવિધ આત્મા આદિ પદાર્થોનું વર્ણન થયું છે તે "समवाय" છે. આ વ્યુત્પત્તિ પ્રમાણે સમવાય નામના આ ચોથા અંગમાં જીવનો સમાવેશ કરાયો છે, અજીવનો સમાવેશ કરાયો છે એટલે કે એ સમજાવ્યું છે કે જીવ શું છે? તથા અજીવ શું છે? આ રીતે આ ચોથા અંગમાં જીવ અને અજીવ એ બન્નેનો પણ પ્રતિપાદ્યરૂપે સમાવેશ કરવામાં આવ્યો છે. સ્વસમય, પરસમય, અને સ્વપરસમય, લોક, અલોક તથા લોકાલોક, એ બધાનો પણ તેમા પ્રતિપાદ્યરૂપે સમાવેશ

एक आदि र्येषां तेषाम्, तथा–एकोत्तरिकाणाम्=क्रमेणैकैकसंख्यावृद्धया वृद्धिमुपगतानाम्, कियत्पर्यन्तं वृद्धिमुपगतानाम्? इत्याह—स्थानशतवर्द्धितानाम्=स्थानशतवृद्धया वृद्धिमुपगतानां भावानां=पदार्थानाम् प्ररूपणा आख्यायते=क्रियते, उपलक्षणादनेकोत्तरिका वृद्धिरपि विज्ञेया। तत्र शतपर्यन्तमेकोत्तरिका वृद्धिस्ततः ऊर्ध्वमनेकोत्तरिका वृद्धिः। तथा–द्वादशविधस्य=द्वादशप्रकारस्य गणिपिटकस्य पर्यवाग्रः=पर्यायपरिमाणम्–अभिधेयादितद्धर्मसंख्यानम्, 'पल्लवाग्रः' इतिच्छायापक्षे तु पल्लवा इव पल्लवा अवयवास्तेषां परिमाणम् समाश्रीयते=यथाऽवस्थितरूपेण निरू-

है। तथा यहां एकादिक–एकार्थक कितनेक जीवादिक पदार्थों की तथा गणिपिटकरूप द्वादशांग की एकोत्तरिक वृद्धि द्वारा पर्यायों के परिमाण का निरूपण किया गया है। तात्पर्य कहने का यह है कि यहां एक, दो, तीन, चार आदि से लेकर सौ तक तथा कोटी कोटी तक के कितनेक जीवादिक पदार्थों की एक, दो, तीन, चार, पांच आदि पर्यायों का क्रमशः एक एक पर्यायकी वृद्धिपूर्वक, तथा अनेक पर्यायोंकी वृद्धिपूर्वक विचार किया गया है। एक, दो, तीन आदि से लेकर सौ अंक तक के पदार्थों की पर्यायों का तो यहां क्रमशः एक २ पर्याय की वृद्धि करते हुए विचार किया गया है। तथा उनमें इससे आगे की पर्यायों का जो विचार किया गया है वह अनेक पर्यायों की वृद्धि करते हुए किया गया है। इसी तरह से गणिपिटक रूप द्वादशांग की पर्यायों के परिमाण के विषयमें भी जानना चाहिये। यह अर्थ "पल्लवग्गे" की छाया–पर्यवाग्र

થયો છે. તથા અહીં એકાદિક–એકાર્થક કેટલાક જીવાદિક પદાર્થોની તથા ગણિપિટકરૂપ દ્વાદશાંગની એકોત્તરિક તથા અનેકોત્તરિક વૃદ્ધિ દ્વારા પર્યાયોના પરિમાણનું નિરૂપણ કરવામાં આવ્યું છે. કહેવાનું તાત્પર્ય એ છે કે અહીં એક, બે, ત્રણ, ચાર આદિથી માંડીને સો સુધી તથા કોટી કોટી સુધીના કેટલાક જીવાદિક પદાર્થોની એક, બે, ત્રણ, ચાર, પાંચ આદિ પર્યાયોનો ક્રમશઃ એક એક પર્યાયોની વૃદ્ધિપૂર્વક, તથા અનેક પર્યાયોની વૃદ્ધિપૂર્વક વિચાર કરવામાં આવ્યો છે. એક, બે, ત્રણ આદિથી લઈને સો અંક સુધીના પદાર્થોની પર્યાયોનો તો અહીં ક્રમશઃ એક એક પર્યાયની વૃદ્ધિ કરતા કરતા વિચાર કરેલ છે. તથા તેમનામાં તેથી આગળની પર્યાયોનો જે વિચાર કરાયો છે તે અનેક પર્યાયોની વૃદ્ધિ કરતા કરતા કરાયો છે. આ પ્રકારે ગણિપિટકરૂપ દ્વાદશાંગની પર્યાયોના પરિમાણના વિષયમાં પણ જાણવું જોઈએ. આ અર્થ "પલ્લવગ્ગે"

प्यते। समवायस्य खलु परीता वाचनाः, 'परीता वाचनाः' इत्यारभ्य 'संख्येयाः प्रतिपत्तयः' इत्यन्तं पूर्ववद् व्याख्येयम्। तथा स समवायः खलु अङ्गार्थतया चतुर्थम् अङ्गम्। तथा-अत्र एकः श्रुतस्कन्धः, एकम् अध्ययनम्, एक उद्देशनकालः, एकः समुद्देशनकालः। तथा-एकं चतुश्चत्वारिंशं शतसहस्रम्=चतुश्चत्वारिंशत्सहस्राधिकम् एकं लक्षं पदानि पदाग्रेण=पदपरिमाणेनात्र सूत्रे विज्ञेयानि। तथा-अत्र संख्येयानि अक्षराणि सन्ति। 'संख्येयानि अक्षराणि' इत्यारभ्य 'एवं चरणकरण-प्ररूपणा आख्यायते' इत्यन्तं सर्वं पूर्ववद् व्याख्येयम्। प्रकृतमुपसंहरन्नाह-'से त्तं समवाए' स एष समवाय इति ॥ सू० ४८॥

मानकर किया है। परन्तु जब इसकी छाया "पल्लवाग्र" होगी तब वहां अर्थ होगा अवयवों का परिमाण।

इस समवायांग सूत्र की संख्याती वाचनाएँ हैं। यावत् शब्द से संख्यात अनुयोगद्वार हैं संख्यात वेष्टक हैं, संख्यात श्लोक हैं, संख्यात निर्युक्तियां हैं, संख्यात प्रतिपत्तियां हैं, इन वाक्यों का यहां ग्रहण हुआ है। इन सब का अर्थ पहले आचारांग के वर्णनमें सूत्र ४५ पैंतालीसमें हो चुका है। इस तरह यह अंगों की अपेक्षा चतुर्थ अंग है। इसमें एक अध्ययन है, एक श्रुतस्कंध है, एक उद्देशनकाल है, और एक ही समुद्देशनकाल है। इसमें पदों की संख्या एक लाख चवालीस ४४ हजार है। इसमें संख्यात अक्षर हैं। तथा अनंत गम हैं, अनंत पर्यायें हैं, असंख्यात त्रस हैं, अनंत स्थावर हैं। ये सब द्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा से शाश्वत हैं, पर्यायार्थिकनय की अपेक्षा से कृत-अशाश्वत हैं, सूत्र में

ની છાયા-"पर्यवाग्र" માનીને કરી છે. પણ જો તેની છાયા "पल्लवाग्र" થાય તો ત્યાં અવયવોનું પરિમાણ એવો અર્થ થશે."

આ સમવાયાંગ સૂત્રની સંખ્યાત વાચનાઓ છે, યાવત્ શબ્દથી સંખ્યાત અનુયોગદ્વાર છે સંખ્યાત વેષ્ટક છે, સંખ્યાત શ્લોક છે, સંખ્યાત નિર્યુક્તિઓ છે, સંખ્યાત પ્રતિપત્તિયો છે, જે વાકયોને અહી વાપર્યા છે તે બધાનો અર્થ આગળ આચારાંગના વર્ણનમાં આપી દેવામાં આવ્યો છે. આ રીતે તે અંગોની અપેક્ષાએ ચોથું અંગ છે. તેમાં એક અધ્યયન છે, એક શ્રુતસ્કંધ છે, એક ઉદ્દેશનકાલ છે, અને એક જ સમુદ્દેશનકાળ છે. તેમાં પદોની સંખ્યા એક લાખ ચુમાળીસ હજાર (૧૪૪૦૦૦) છે. તેમાં સંખ્યાત અક્ષર છે. તથા અનંત ગમ છે અનંત પર્યાયો છે, અસંખ્યાત ત્રસ છે, અનંત સ્થાવર છે. એ બધા દ્રવ્યાર્થિક નયની અપેક્ષાએ શાશ્વત છે, પર્યાયાર્થિક નયની અપેક્ષાએ

अथ पञ्चमाङ्गस्वरूपमाह—

मूलम्—से किं तं विवाहे? विवाहे णं जीवा वियाहिज्जंति, अजीवा वियाहिज्जंति, जीवाजीवा वियाहिज्जंति, ससमए वियाहिज्जइ, परसमए वियाहिज्जइ, ससमयपरसमए वियाहिज्जइ, लोए वियाहिज्जइ, अलोए वियाहिज्जइ, लोयालोए वियाहिज्जइ। विवाहस्स णं परित्ता वायणा, संखिज्जा अणुओगदारा, संखिज्जा वेढा, संखिज्जा सिलोगा, संखिज्जाओ निज्जुत्तीओ, संखिज्जाओ संगहणीओ, संखिज्जाओ पडिवत्तीओ। से णं अंगट्ठयाए पंचमे अंगे, एगे सुयक्खंधे, एगे साइरेगे अज्झयणसए, दस उद्देसगसहस्साइं दस समुद्देसगसहस्साइं, छत्तीसं वागरणसहस्साइं, दो लक्खा अट्ठासीइं पयसहस्साइं पयग्गेणं, संखिज्जा अक्खरा, अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता थावरा, सासयकडनिबद्धणिकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति पण्णविज्जंति परूविज्जंति दंसिज्जंति निदंसिज्जंति उवदंसिज्जंति। से एवं आया, एवं णाया, एवं विण्णाया। एवं चरणकरणपरूवणा आघविज्जइ ६। से त्तं विवाहे॥ सू० ४९॥

ग्रथित होने से निबद्ध हैं, निर्युक्ति हेतु उदाहरण आदि से प्रतिष्ठित होने से निकाचित हैं, ये सब यहाँ सामान्यरूप से कहे गये हैं। इन समस्त पदों का अर्थ आचारांग के वर्णन में वर्णित हो चुका है। इस तरह इस सूत्र में चरण करण की प्ररूपणा हुई है। यह समवायाङ्ग का वर्णन हुआ॥ सू० ४८॥

अब पांचवें अंग व्याख्याप्रज्ञप्ति का वर्णन किया जाता है—

कृत–અશાશ્વત છે, સૂત્રમાં ગ્રથિત હોવાથી નિબદ્ધ છે, નિર્યુક્તિ હેતુ ઉદાહરણ આદિથી પ્રતિષ્ઠિત હોવાથી નિકાચિત છે, આ બધા અહીં સામાન્યરૂપે કહેવાયેલ છે. એ બધાં પદોનો અર્થ આચારાંગના વર્ણનમાં વર્ણિત થઇ ગયો છે. આ રીતે આ સૂત્રમાં ચરણકરણની પ્રરૂપણા થઇ છે. આ સમવાયાંગ સૂત્રનુ વર્ણન થયું ॥સૂ. ૪૮॥

હવે પાંચમાં અંગ વ્યાખ્યાપ્રજ્ઞપ્તિ નું વર્ણન કરવામાં આવે છે–

छाया—अथ का सा व्याख्या ? व्याख्यायां खलु जीवा व्याख्यायन्ते, अजीवा व्याख्यायन्ते, जीवाजीवा व्याख्यायन्ते, स्वसमयो व्याख्यायते, परसमयो व्याख्यायते, स्वसमयपरसमयं व्याख्यायते, लोको व्याख्यायते, अलोको व्याख्यायते, लोकालोकं व्याख्यायते । व्याख्यायाः खलु परीता वाचनाः, संख्येयानि अनुयोगद्वाराणि, संख्येया वेष्टकाः, संख्येया श्लोकाः, संख्येयाः निर्युक्तयः, संख्येयाः संग्रहण्यः, संख्येयाः प्रतिपत्तयः, सा खलु अङ्गार्थतया पञ्चममङ्गम् , एकः श्रुतस्कन्धः, एकं सातिरेकमध्ययनशतं, दश उद्देशकसहस्राणि, दश समुद्देशकसहस्राणि, षट्त्रिंशत् व्याकरणसहस्राणि, द्वे लक्षे अष्टाशीतिः पदसहस्राणि पदाग्रेण, संख्येयानि अक्षराणि, अनन्ता गमाः, अनन्ताः पर्यवाः, परीतास्त्रसाः, अनन्ताः स्थावराः, शाश्वतकृतनिबद्धनिकाचिताः जिनप्रज्ञप्ता भावा आख्यायन्ते, प्रज्ञाप्यन्ते, प्ररूप्यन्ते, दर्श्यन्ते निदर्श्यन्ते, उपदर्श्यन्ते । स एवमात्मा, एवं ज्ञाता, एवं विज्ञाता, एवं चरणकरणप्ररूपणा आख्यायते । सैषा व्याख्या ॥सू०४९॥

टीका—'से किं तं०' इत्यादि ।

अथ का सा व्याख्या इति प्रश्नः । 'वियाहे' इति पुंलिङ्गनिर्देशः प्राकृतत्वात् । व्याख्या=व्याख्याप्रज्ञप्तिः, नामैकदेशेन नामग्रहणात् । उत्तरयति–व्याख्यायां–व्याख्यायन्तेऽर्था यस्यां सा व्याख्या तस्यां व्याख्याप्रज्ञप्त्यां=भगवत्यामिति यावत्, खलु=निश्चयेन जीवा व्याख्यायन्ते=सविस्तारं प्रतिपाद्यन्ते । अजीवा व्याख्यायन्ते । जीवाजीवा व्याख्यायन्ते । स्वसमयो व्याख्यायते । परसमयो व्याख्यायते । स्वसमयपरसमयं व्याख्यायते । लोको व्याख्यायते । अलोको व्याख्यायते । लोकालोकं

'से किं तं वियाहे०' इत्यादि ।

शिष्य प्रश्न–हे भदन्त ! व्याख्या प्रज्ञप्ति का क्या स्वरूप है ? उत्तर–इस व्याख्याप्रज्ञप्ति में जीव का व्याख्यान किया गया है, अजीव का व्याख्यान किया गया है, एवं जीव और अजीव, इन दोनों का व्याख्यान किया गया है । तथा स्वसमय, परसमय और स्वपरसमय का, तथा लोक अलोक और लोकालोक का भी व्याख्यान किया गया है ।

"से किं तं वियाहे०" ઇત્યાદિ–

શિષ્યનો પ્રશ્ન–હે ભદન્ત ! 'व्याख्या प्रज्ञप्ति' નું શું સ્વરૂપ છે ?

ઉત્તર—આ વ્યાખ્યા પ્રજ્ઞપ્તિમાં જીવનું વ્યાખ્યાન કરાયું છે, અજીવનું વ્યાખ્યાન કરાયું છે. અને જીવ તથા અજીવ બન્નેનું વ્યાખ્યાન કરાયું છે. તથા સ્વસમય, પરસમય અને સ્વપરસમયનું, તથા લોક, અલોક અને લોકાલોકનું પણ વ્યાખ્યાન કરાયું છે.

व्याख्यायते । व्याख्यायाः खलु परीताः=संख्याता वाचनाः, संख्येयानि अनुयोगद्वाराणि, संख्येया वेष्टकाः, संख्येयाः श्लोकाः, संख्येया निर्युक्तयः, संख्येयाः संग्रहण्यः, संख्येयाः प्रतिपत्तयः। सा खलु अङ्गार्थतया पञ्चममङ्गम्। अत्र एकः श्रुतस्कन्धः, एकं सातिरेकमध्ययनशतम्–किंचिदधिकानि एकशतमध्ययनानि, दश उद्देशकसहस्राणि, दश समुद्देशकसहस्राणि, षट्त्रिंशद् व्याकरणसहस्राणि=षट्त्रिंशत्सहस्राणि व्याकरणानि, द्वे लक्षे अष्टाशीतिः पदसहस्राणि=अष्टाशीतिसहस्राधिकद्विलक्षपरिमितानि पदानि पदाग्रेण=पदपरिमाणेन कथितानि। तथाऽत्र–संख्येयानि अक्षराणि, अनन्ता गमाः, अनन्ताः पर्यवाः=पर्यायाः, परीताः=असंख्याताः त्रसाः अनन्ताः स्थावराश्च सन्ति । एते उपरिनिर्दिष्टाः शाश्वत–कृत–निबद्ध–निकाचिता जिनप्रज्ञप्ता भावा अत्र आख्यायन्ते, प्रज्ञाप्यन्ते, प्ररूप्यन्ते, दर्श्यन्ते, निदर्श्यन्ते, उपदर्श्यन्ते । य एतां व्याख्यां यथावदधीते, स एवम् आत्मस्वरूपो

इस पंचम अंगरूप व्याख्याप्रज्ञप्ति की वाचनाएँ संख्यात हैं। संख्यात अनुयोग द्वार हैं, संख्यात वेष्टक हैं। संख्यात श्लोक हैं। संख्यात निर्युक्तियां हैं। संख्यात संग्रहणियां हैं। संख्यात प्रतिपत्तियां हैं। यह व्याख्याप्रज्ञप्ति अंगों की अपेक्षा पांचमा अंग है। इसमें एक श्रुतस्कंध है। इसमें कुछ अधिक एक सौ अध्ययन हैं। दशहजार उद्देशक हैं। छत्तीस हजार प्रश्नोत्तर हैं। दो लाख अठासी हजार पद हैं। संख्यात अक्षर हैं। अनंत गम हैं। अनंत पर्यायें हैं। असंख्यात त्रस हैं। अनंत स्थावर हैं। ये त्रसादि पदार्थ जो ऊपर बतलाये गये हैं वे शाश्वत, कृत, निबद्ध एवं निकाचित हैं इसमें जिनप्रज्ञप्त समस्त भावों का आख्यान हुआ है, प्रज्ञापन हुआ है, प्ररूपण हुआ है, दर्शन हुआ है, निदर्शन हुआ है

આ પાંચમાં અંગરૂપ વ્યાખ્યા પ્રજ્ઞપ્તિની વાચનાઓ સંખ્યાત છે સંખ્યાત અનુયોગ દ્વાર છે, સંખ્યાત વેષ્ટક છે, સંખ્યાત શ્લોક છે. સંખ્યાત નિર્યુક્તિઓ છે, સંખ્યાત સંગ્રહણીઓ છે, સંખ્યાત પ્રતિપત્તિયો છે.

આ વ્યાખ્યા પ્રજ્ઞપ્તિ અંગોની અપેક્ષાએ પાંચમું અંગ છે. તેમાં એક શ્રુતસ્કંધ છે. તેમાં એકસોથી થોડાં વધારે અધ્યયન છે. દશ હજાર ઉદ્દેશક છે. છત્રીસ હજાર પ્રશ્નોત્તર છે. બે લાખ અઠયાસી હજાર પદ છે, સંખ્યાત અક્ષર છે. અનંત ગમ છે. અનંત પર્યાયો છે. અસંખ્યાત ત્રસ છે. અનંત સ્થાવર છે. તે ત્રસાદિ પદાર્થો જે ઉપર બતાવવામાં આવ્યા છે તેઓ શાશ્વત, કૃત, નિબદ્ધ અને નિકાચિત છે. તેમાં જિનપ્રજ્ઞપ્ત સમસ્ત ભાવોનુ આખ્યાન થયું છે, પ્રજ્ઞાપન થયું છે, પ્રરૂપણ થયું છે, દર્શન કરાયું છે, નિદર્શન કરાયું છે, તથા ઉપદર્શન

भवति, एव ज्ञाता भवति, एव विज्ञाता भवति। एवम्=उपर्युक्तप्रकारेण चरण-करणप्ररूपणाऽत्र आख्यायते ६। 'परीता वाचनाः' इत्यारभ्य 'चरण करणप्ररूपणा आख्यायते' इत्यन्तानां पदानां व्याख्या आचाराङ्गस्वरूपनिरूपणावसरे कृता, ततोऽवसेया। प्रकृतमुपसंहरन्नाह—'से त्तं विवाहे' सैषा व्याख्या इति॥ सू०४९॥

अथ षष्ठाङ्गज्ञाताधर्मकथास्वरूपमाह—

मूलम्—**से किं तं नायाधम्मकहाओ? नायाधम्मकहासु णं नायाणं नगराइं १, उज्जाणाइं २, चेइयाइं ३, वणसंडा ४, समोसरणाइं ५, रायाणो ६, अम्मापियरो ७, धम्मायरिया ८, धम्मकहाओ ९, इहलोइयपरलोइया इड्ढिविसेसा १०, भोगपरिच्चाया ११, पव्वज्जाओ १२, परिआया १३, सुयपरिग्गहा १४, तवोवहाणाइं १५, संलेहणाओ १६, भत्त पच्चक्खाणाइं १७, पाओवगम-**

तथा उपदर्शन हुआ है। जो व्यक्ति इस अंग का अच्छी तरह से अध्ययन करता है वह प्राणी आत्मस्वरूप हो जाता है, ज्ञाता हो जाता है, एवं विज्ञाता हो जाता है। इस तरह से इस अंगमें उपर्युक्त प्रकार से चरण और करण की प्ररूपणा आख्यात हुई है, प्रज्ञापित हुई है, प्ररूपित हुई है, दर्शित हुइ है निदर्शित हुई है, उपदर्शित हुई है। इस प्रकार यह व्याख्याप्रज्ञप्ति अंग का स्वरूप है।—"परीता वाचनाः" इन पदों से लेकर "चरण करण प्ररूपणा आख्यायते" यहां तक के ये जितने भी पद हैं उन सब की व्याख्या आचारांग के स्वरूप निरूपण करते समय सूत्र ४५ में की जा चुकी है अतः वहां से जान लेना चाहिये॥ सू० ४९॥

થયું છે. જે વ્યક્તિ આ અંગનું સારી રીતે અધ્યયન કરે છે તે વ્યક્તિ આત્મ-સ્વરૂપ થઈ જાય છે, જ્ઞાતા થાય છે અને વિજ્ઞાતા થાય છે. આ રીતે આ અંગમાં ઉપર પ્રમાણે ચરણ અને કરણની પ્રરૂપણા થઈ છે, પ્રજ્ઞાપિત થઈ છે, પ્રરૂપિત થઈ છે, દર્શિત કરાઈ છે, નિદર્શિત થઈ છે. ઉપદર્શિત થઈ છે આ પ્રમાણે આ વ્યાખ્યા પ્રજ્ઞપ્તિ અંગનું સ્વરૂપ છે. "परितावाचनाः" એ પદોથી લઈ ને "चरण करण प्ररूपणा आख्यायते" સુધીના જેટલાં પદ છે તે બધાની વ્યાખ્યા આચારાંગનું સ્વરૂપ નિરૂપણ કરતી વખતે ૪૫માં સૂત્રમાં કરી નાખેલ છે, તો ત્યાંથી સમજીલેવી. ॥ સૂ૦ ૪૯ ॥

णाइं १८, देवलोगगमणाइं १९, सुकुलपच्चायाईओ २०, पुणबोहिलाभा २१, अंतकिरियाओ २२, य आघविज्जंति । दस धम्मकहाणं वग्गा, तत्थ णं एगमेगाए धम्मकहाए पंच पंच अक्खाइयासयाइं, एगमेगाए अक्खाइयाए पंच पंच उवक्खाइयासयाइं, एगमेगाए उवक्खाइयाए पंच पंच अक्खाइय-उवक्खाइया सयाइं, एवमेव सपुव्वावरेणं अद्धुट्ठाओ कहाणगकोडीओ हवंतीति स मक्खायं । नायाधम्मकहाणं परित्ता वायणा, संखिज्जा अणुओगदारा, संखिज्जा वेढा, संखिज्जा सिलोगा, संखिज्जाओ निज्जुत्तीओ, संखिज्जाओ संगहणीओ, संखिज्जाओ पडिवत्तीओ । से णं अंगट्ठयाए छट्ठे अंगे, दो सुयक्खंधा, एगूणवीसं अज्झयणा, एगूणवीसं उद्देसणकाला; एगूणवीसं समुद्देसणकाला, संखेज्जाइं पयसहस्साइं पयग्गेणं, संखेज्जा अक्खरा, अणंता गमा, अणंता, पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता थावरा, सासयकडनिबद्धनिकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति, पण्णाविज्जंति, परूविज्जंति, दंसिज्जंति, णिदंसिज्जंति उवदंसिज्जंति, से एवं आया, एवं णाया, एवं विण्णाया, एवं चरणकरणपरूवणा आघविज्जइ ६ । से त्तं नायाधम्मकहाओ ॥ सू० ५० ॥

छाया—अथ कास्ता ज्ञाताधर्मकथाः? ज्ञाताधर्मकथासु खलु ज्ञातानां नगराणि १, उद्यानानि २, चैत्यानि ३, वनषण्डाः ४, समवसरणानि ५, राजानः ६, मातापितरौ ७, धर्माचार्याः ८, धर्मकथाः ९, ऐहलौकिकपारलौकिका ऋद्धिविशेषाः १०, भोगपरित्यागाः ११, प्रव्रज्याः १२, पर्यायाः १३, श्रुतपरिग्रहाः १४, तपउपधाननि १५, संलेखनाः १६, भक्तप्रत्याख्यानानि १७, पादपोपगम-

नानि १८, देवलोकगमनानि १९, सुकुलप्रत्यायातयः २०, पुनर्बोधिलाभाः २१, अन्तक्रियाश्च २२, आख्यायन्ते। दश धर्मकथानां वर्गाः तत्र खलु एकैकस्यां धर्मकथायां पञ्च पञ्च आख्यायिकाशतानि, एकैकस्याम् आख्यायिकायां पञ्च पञ्च उपाख्यायिकाशतानि, एकैकस्यामुपाख्यायिकायां पञ्च पञ्च आख्यायिकोपाख्यायिकाशतानि, एवमेव सपूर्वापरेण अर्धचतुर्था आख्यायिकाकोट्यो भवन्तीतिसमाख्यातम्। ज्ञाताधर्मकथानां खलु परीता वाचनाः, संख्येयानि अनुयोगद्वाराणि संख्येयाः वेष्टकाः संख्येयाः श्लोकाः संख्येया निर्युक्तयः संख्येयाः संग्रहण्यः, संख्येयाः प्रतिपत्तयः। ताः खलु अङ्गार्थतया षष्ठमङ्गम्, द्वौ श्रुतस्कन्धौ, एकोनविंशतिरध्ययनानि, एकोनविंशतिरुद्देशनकालाः, एकोनविंशतिः समुद्देशनकालाः, संख्येयानि पदसहस्राणि पदाग्रेण, संख्येयानि अक्षराणि, अनन्ता गमाः, अनन्ताः पर्यवाः, परीतास्त्रसाः, अनन्ताः स्थावराः, शाश्वतकृतनिबद्धनिकाचिता जिनप्रज्ञप्ता भावा आख्यायन्ते, प्रज्ञाप्यन्ते, प्ररूप्यन्ते, दर्श्यन्ते, निदर्श्यन्ते, उपदर्श्यन्ते। स एवम् आत्मा, एवं ज्ञाता, एवं विज्ञाता, एवं चरणकरणप्ररूपणा आख्यायते ६। ता एता ज्ञाताधर्मकथाः॥ सू० ५०॥

टीका—'से किं तं०' इत्यादि।

अथ कास्ता ज्ञाताधर्मकथाः—प्रवचनस्य षष्ठमङ्गं ज्ञाताधर्मकथाङ्गसूत्रं किंविधम्? इति प्रश्नः। उत्तरयति—ज्ञाताधर्मकथासु ज्ञातानि=उदाहरणानि, तत्प्रधाना धर्मकथाः, अथवा—प्रथमश्रुतस्कन्धो ज्ञाताभिधायकत्वात् ज्ञातानि, द्वितीयस्तु धर्मकथाः, ज्ञातानि

'से किं तं णाया धम्मकहाओ?' इत्यादि।

शिष्य प्रश्न—हे भदन्त! ज्ञाता धर्मकथा नामक छठवें अंग का क्या स्वरूप हैं? उत्तर—ज्ञाता धर्मकथा नाम के छठवें अंग का स्वरूप इस प्रकार है—ज्ञात नाम उदाहरणों का है। जिसमें उदाहरण प्रधान धर्मकथाएँ हैं वह ज्ञाताधर्म कथा है। अथवा—इसके दो श्रुतस्कंध है। इनमें प्रथम श्रुतस्कंध का नाम ज्ञाता है और दूसरे का नाम धर्मकथा है। इस

"से किं तं णाया धम्मकहाओ? ઈત્યાદિ—

શિષ્યનો પ્રશ્ન—હે ભદન્ત! જ્ઞાતા ધર્મકથા નામના છઠ્ઠાં અંગનું શું સ્વરૂપ છે?

ઉત્તર—જ્ઞાતાધર્મકથા નામના છઠ્ઠાં અંગનું સ્વરૂપ આ પ્રમાણે છે—જ્ઞાતા નામ ઉદાહરણોનું છે. જેમાં ઉદાહરણ પ્રધાન ધર્મકથાઓ છે તે જ્ઞાતાધર્મકથા છે. અથવા તેના બે શ્રુતસ્કંધ છે તેમના પહેલા શ્રુતસ્કંધનું નામ જ્ઞાતા છે, અને બીજાનું નામ ધર્મકથા છે. આ રીતે એ બન્ને મળવાથી

च धर्मकथाश्च ज्ञाताधर्मकथाः, 'ज्ञाता' इत्यत्राकारागम आर्षत्वात्, तासु खलु ज्ञातानाम्=उदाहरणत्वेनोपन्यस्तानां मेघकुमारादीनां नगराणि १, उद्यानानि=परिधृतवस्त्राभरणाः गृहीतासनाहारा जना यत्र क्रीडार्थमुद्यान्ति=गच्छन्ति तानि उद्यानानि २, चैत्यानि=षड्ऋतुपुष्पफलसमृद्धानि वनानि ३, वनषण्डाः=एकजातीयवृक्षयुक्तानि उद्यानानि, नानाजातीयवृक्षसम्पन्नानि वा ४, समवसरणानि ५, राजानः ६, मातापितरौ ७, धर्माचार्याः ८, धर्मकथाः ९, ऐहलौकिकपारलौकिका ऋद्धिविशेषाः=ऐहलौकिकपारलौकिकसंपदः १०, भोगपरित्यागाः ११, प्रव्रज्याः १२, पर्यायाः=नवीनप्रव्रज्याप्रदानलक्षणाः पूर्वावस्थात्यागेनावस्थान्तरगमनलक्षणा वा १३, श्रुतपरिग्रहाः=श्रुताध्ययनानि १४, तप उपधानानि=उत्कृष्ट तपः करणानि १५,

---

तरह इन दोनों के मिलने से इसका "ज्ञाता धर्मकथा' यह नाम पड़ गया है। इस ज्ञाता धर्मकथा नामके छठवे अंग में उदाहरणरूप से उपन्यस्त हुए मेघकुमार आदि के नगरों का १, उद्यानों का-वस्त्र एवं आभरण आदि से सुसज्जित होकर तथा भोजन आदि सामग्री लेकर लोग जिसमें क्रीडा करने के लिये जाते हैं उस स्थान का नाम उद्यान है, २, वनोंका-अर्थात् छहों ऋतुओ में पुष्प एवं फल से समृद्ध हुए वनों का ३, वनषंडों का-एक जातीय वृक्षों से युक्त, अथवा नाना जातीय वृक्षों के युक्त हुए बगीचों का ४, राजाओं का ५, मातापिता का ६, समवसरण का ७ धर्माचार्यों का ८, धर्मकथाओं का ९, ऐहलौकिक तथा पारलौकिक ऋद्धि विशेषों का १०, भोगों के परित्याग का ११, प्रव्रज्या का १२, श्रुतपरिग्रह-श्रुताध्ययन का १३, उत्कृष्ट तप के विधानों का १४,

---

તેનું નામ "જ્ઞાતાધર્મકથા" પડયું છે. આ જ્ઞાતાધર્મકથા નામના છઠ્ઠા અંગમાં ઉદાહરણરૂપે ઉપન્યસ્ત થયેલ મેઘકુમાર આદિના નગરોનું (૧), ઉદ્યાનોનું-વસ્ત્ર અને આભૂષણ આદિથી સુસજ્જિત થઈને તથા ભોજન આદિ સામગ્રી લઈને લોકો જ્યાં ક્રીડા કરવાને માટે જાય છે તે સ્થાનનું નામ ઉદ્યાન છે (૨). ચૈત્યોનું. એટલે કે છએ ઋતુઓનાં પુષ્પ અને ફળથી સમૃદ્ધ વનોનું (૩), વનષંડોનું એક જ જાતનાં વૃક્ષોવાળાં, અથવા વિવિધ જાતનાં વૃક્ષોવાળાં બગીચાઓનું (૪); રાજાઓનું (૫), માતાપિતાનું (૬); સમવસરણનું (૭); ધર્માચાર્યોનું (૮) ધર્મકથાઓનું (૯); આ લોક તથા પરલોકની ઋદ્ધિ વિશેષોનું (૧૦); ભોગોનાં પરિત્યાગનું (૧૧); પ્રવ્રજ્યાનું (૧૨) શ્રુતરિગ્રહ-શ્રુતાધ્યયનનું (૧૩) ઉત્કૃષ્ટ તપના વિધાનોનું (૧૪); નવીન દીક્ષા પર્યાયનું અથવા પૂર્વ અવસ્થાના ત્યાગપૂર્વક ઉત્તર અવસ્થાને ગ્રહણ કરવારૂપ, પર્યાયનું (૧૫); સંલેખનાનું કાય

संलेखनाः=शरीरकषायादिशोषणलक्षणाः १६, भक्तप्रत्याख्यानानि=मरणविशेषाः १७, पादपोपगमनानि-पादपस्येव=तरोरिव उपगमनानि निश्चलतयाऽवस्थानानि -यथापतितच्छिन्नतरुशाखावन्निश्चलानां चतुर्विधाहारपरित्यागपूर्वकमरणानीत्यर्थः १८, देवलोकगमनानि १९, सुकुलप्रत्यायातयः=उत्तमकुलजन्मानि २०, पुनर्बोधिलाभाः=जिनप्रणीतधर्मप्राप्तिरूपाः २१, अन्तक्रियाः=सकलकर्मक्षयलक्षणा-२२ श्चेति आख्यायन्ते। तथा-'दस धम्मकहाणं वग्गा' इति, धर्मकथानां=धर्मकथाख्ये द्वितीये श्रुतस्कन्धे-अहिंसादिरूपधर्मकथानां दश=दशसंख्यकाः वर्गाः=समूहाः सन्ति। अत्र हि-अर्थाधिकारसमूहात्मकानि अध्ययनान्येव वर्गा विज्ञेयाः, तत्र खलु एकैकस्यां धर्मकथायां पञ्च पञ्च आख्यायिकाशतानि=कथाशतानि सन्ति। तथा एकैक-

---

नवीन दीक्षापर्याय का अथवा पूर्व अवस्था के त्यागपूर्वक उत्तर अवस्था के ग्रहण करने रूप पर्याय का १५, संलेखना का-काय और कषायों को कृश करने रूप संलेखना का १६, भक्त प्रत्याख्यान का १७, पादपोपगमन संथारे का-जिसमें गिरे हुए वृक्ष की तरह प्राणी निश्चल रहता है और चारों प्रकार के आहार का परित्याग कर देता है ऐसे मरण का १८, देवलोक में उत्पन्न होने का १९, उत्तमकुल में जन्म लेने का २०, जिनप्रणीत धर्म की प्राप्तिरूप बोधिलाभ का २१, तथा सकलकर्मक्षयरूप अन्तक्रिया २२ का वर्णन किया गया है।

यहां जो अन्त में धर्मकथा नामक द्वितीय श्रुतस्कन्ध में अहिंसादि रूप धर्मकथाओं के दस वर्ग, अर्थात् दस समूह हैं। अर्थाधिकार समूहरूप अध्ययन ही वर्ग कहे जाते हैं। इन धर्मकथाओं के एक २ धर्मकथा में पाँचसौ पाँचसौ आख्यायिकायें-कथायें हैं एक २ आख्यायिका में पाँचसौ पाँचसौ उपाख्यायिकायें-अवान्तर कथायें हैं। एक एक उपाख्यायिका

અને કષાયોનો ક્ષય કરવારૂપ સંલેખનાનું (૧૬); ભક્ત પ્રત્યાખ્યાનનું (૧૭); પાદપોપગમન સંથારાનું-જેમાં પડેલાં વૃક્ષની જેમ પ્રાણી નિશ્ચલ રહે છે અને ચારે પ્રકારના આહારનો પરિત્યાગ કરી દે છે એવાં મરણનું (૧૮); દેવલોકમાં ઉત્પન્ન થવાનું (૧૯); ઉત્તમ કુળમાં જન્મ લેવાનું (૨૦); જિન પ્રણીત ધર્મની પ્રાપ્તિરૂપ બોધિલાભનું (૨૧); તથા સર્વકર્મક્ષયરૂપ અન્તક્રિયાનું (૨૨), "आख्यायन्ते" વર્ણન કરાયું છે.

ધર્મકથાનામક બીજા શ્રુતસ્કંધમાં અહિંસાદિ રૂપ ધર્મકથાઓના દશ વર્ગો એટલે દશ સમૂહો છે. અર્થાધિકાર સમૂહરૂપ અધ્યયનને જ વર્ગ કહેવામાં આવે છે. આ ધર્મકથાઓની એક એક ધર્મકથામાં પાંચસો પાંચસો આખ્યાયિ-

स्यामाख्यायिकायां पञ्च पञ्च उपाख्यायिका शतानि=अवान्तरकथाशतानि । एकैकस्यामुपाख्यायिकायां पञ्च पञ्च आख्यायिकोपाख्यायिकाशतानि सन्ति । एवमेव=अनेनप्रकारेण सपूर्वापरेण=पूर्वापरसंयोजनया अर्धचतुर्थो कथानककोट्यः=आख्यायिकानां सार्धत्रिकोटचो (३५००००००) भवन्तीति समाख्यातं भगवता महावीरेण ।

ननु धर्मकथासु आख्यायिकानाम् उपाख्यायिका नाम् आख्यायिकोपाख्यायिकानां च तिसृणां संख्या सपादशतकोटिपरिमिता (१२५०००००००) भवति, तर्हि कथमत्र आख्यायिकादीनां सार्द्धत्रिकोटिसंख्याऽभिहिता ? इति चेत्, आह, नवानां ज्ञातानां पञ्चाशल्लक्षाधिकैकविंशतिकोव्यधिकैकशतकोटिसंख्यका (१२१५००००००) या आख्यायिकादय उक्तास्तादृश्य एव आख्यायिकादयो दशसु धर्मकथास्वप्युक्ताः, अतो दशधर्मकथोक्ताऽऽख्यायिकादि-(१२५०००००००)

पाँचसौ पाँचसौ आख्यायिका-उपाख्यायिकायें हैं। इन सभी आख्यायिकायों को जोड़ने से इनकी संख्या साढे तीन करोड़ (३५००००००) होती है ऐसा भगवान् महावीर स्वामीने कहा है ।

यहां यह शंका होती है कि-'धर्मकथा में आई हुई आख्यायिका-उपाख्यायिका और आख्यायिकोपाख्यायिकाओं की सम्मिलित संख्या एकसौ पच्चीस करोड़ (१२५०००००००) होती है, तो फिर यहाँ पर उनकी संख्या सादेतीन करोड़ (३५००००००) कैसे कही गई है?' इसका समाधान इस प्रकार है-नव ज्ञातों में जो आख्यायिकादिकों की एक सौ साढे इक्कीस करोड़ (१२१५००००००) संख्या टीका में उपर

કાઓ-કથાઓ છે. એક એક આખ્યાયિકામાં પાંચ સો પાંચસો ઉપાખ્યાયિકાઓ-અવાન્તરકથાઓ છે. એક એક ઉપાખ્યાયિકામાં પાંચસો પાંચસો આખ્યાયિકા-ઉપાખ્યાયિકાઓ છે. આ બધી આખ્યાયિકાઓને મેળવવાથી સાડા ત્રણ કરોડ (૩૫૦૦૦૦૦૦) થાય છે. એમ ભગવાન મહાવીર સ્વામીએ કહ્યું છે.

અહીં એ શંકા થાય છે કે "ધર્મકથાઓમાં આવેલ આખ્યાયિકાઓ, ઉપાખ્યાયિકાઓ અને આખ્યાયિકોપાખ્યાયિકાઓની કુલ સંખ્યા એક સો પચીસ કરોડ (૧૨૫૦૦૦૦૦૦૦) થાય છે તો પછી અહીં તેમની સંખ્યા સાડા ત્રણ કરોડ (૩૫૦૦૦૦૦૦૦) કેવી રીતે કહેવામાં આવી છે?" તેનું સમાધાન આ પ્રમાણે કરી શકાય-નવા જ્ઞાતોમાં આખ્યાયિકા આદિની એકસો સાડી એકવીસ કરોડ (૧૨૧૫૦૦૦૦૦૦) ની સંખ્યા ટીકામાં ઉપર કહેવામાં આવી છે, એજ

संख्यामध्यात् नवज्ञातोक्ताऽऽख्यायिकादिसंख्याम् (१२१५००००००) अपकृष्य पुनरुक्तिवर्जिता या आख्यायिकादयोऽवशिष्यन्ते तासां संख्या सार्द्धत्रिकोटिपरिमितैव (३५००००००) भवति। पुनरुक्तिवर्जिताऽऽख्यायिकादिसंख्या हृदिकृत्यैव भगवता-एवमेव सपुव्वावरेणं अद्धुट्ठाओ-कहाणगकोडीओ भवंतीति समक्खायं' इत्युक्तम्। अतो नात्र कश्चिद्दोष इति। अत्र विषये गाथाद्वयमप्युक्तम्।

"पणवीसं कोडिसयं, एत्थ य समलक्खणाइया जम्हा।
नवनाययसम्बद्धा, अक्खाइयमाइया तेणं ॥ १ ॥
ते सोहिज्जंति फुडं, इमाउ रासीउ वेग्गलाणं तु।
पुनरुत्तवज्जियाणं, पमाणमेयं विणिदिट्ठं" ॥ २ ॥

छाया—पञ्चविंशं कोटि शतम्, अत्र च समलक्षणादिका यस्मात्।
नव ज्ञातक सम्बद्धा, आख्यायिकादिकास्तेन ॥ १ ॥
ताः शोध्यन्ते स्फुटम्, अस्माद् राशेर्विविक्तानां तु।
पुनरुक्तवर्जितानां, प्रमाणमेतद् विनिर्दिष्टम् ॥ २ ॥ इति।

स्थापना चात्रेत्थम्—

कही गई है, उसी तरह की आख्यायिकादिक दस धर्मकथाओं में भी कही गई हैं, इसलिये नवज्ञातों में कहे जाने के कारण दस धर्मकथाओं में ये एक सौ साढे इक्कीस करोड़ आख्यायिकादिक पुनरक्त होती हैं। इन पुनरुक्त आख्यायिकादिकों को छोड़कर अवशिष्ट आख्यायिकादिकों की संख्या साढ़े तीन करोड़ (३५००००००) ही बचती है। इन अपुनरुक्त आख्यायिकादिकों को मनमें रखकर ही भगवान ने 'एवमेव सपुव्वावरेणं अद्धुट्ठाओ कहाणगकोडीओ भवंतीतिमक्खाओ'-ऐसा कहा है। इसलिये यहां पर कोई दोष नहीं है।

પ્રકારની સંખ્યા આખ્યાયાકાદિક દસ ધર્મકથાઓમાં પણ કહેવામાં આવેલ છે, આ કારણે નવજ્ઞાતોમાં કહેવાયાને કારણે દસ ધર્મકથાઓમાં એ એકસો સાડી એકવીસ કરોડ આખ્યાયિકા આદિક પુનરુકત થાય છે. એ પુનરુકત આખ્યાયિકા આદિકોને છોડીને બાકી રહેતી આખ્યાયિકાઓની સંખ્યા સાડા ત્રણ કરોડ (૩૫૦૦૦૦૦૦) રહે છે. એ પુનરુક્ત આખ્યાયિકાદિકોને મનમા રાખીને જ ભગવાને "एवमेव सपुव्वावरेणं अद्धुट्ठाओ कहाणगकोडीओ भवंतीति मक्खाओ" એમ કહેલ છે. તેથી અહીં કોઇ દોષ નથી.

धर्मकथास्थिताऽऽख्यायिकादि संख्या १२५००००००
शोध्यानां ज्ञातास्थिताऽऽख्यायिकादीनां संख्या १२१५००००००

इस विषय में दो गाथायें हैं—

"पणवीसंकोडिसयं, एत्थयसमलक्खणाइया जम्हा ।
नवनायय संबद्धा, अक्खा इयमा इया तेणं ॥ १ ॥
ते सोहिज्जंति फुडं, इमा उरासी उ वेग्गलाणं (विविक्तानां) तु ।
पुणरुत्त वज्जियाणं, पमाणमेयं विणिद्दिट्ठं" ॥ २ ॥ इति ।

इसका भाव यह है–धर्मकथा में आई हुई आख्यायिकादिकों की संख्या एक सौ पच्चीस करोड़ है। इनमें से नौ ज्ञातों में कही हुई समानलक्षणवाली–समानस्वरूपवाली एक सौ साढे एक्कीस करोड़ आख्यायिकादिकाएँ निकाल ली जाती हैं तब पूर्वोक्त राशि से बची हुई पुनरुक्तिवर्जित आख्यायिकादिकों की संख्या साढे तीन करोड़ होती है। यही साढे तीन करोड़ प्रमाणमूल में आख्यायिकादिकों का कहा है।

यहां पर स्थापना इस प्रकार है—

धर्मकथा में आई हुई आख्यायिकादिकों की संख्या— १२५००००००
शोधनीय ज्ञातास्थित आख्यायिकादिकों की संख्या— १२१५००००००

આ વિષયમાં બે ગાથાઓ છે—

"पणवीसं कोडिसयं, एत्थय समलक्खणाइया जम्हा ।
नवनाययसंबद्धा, अक्खाइयमाइया तेणं ॥ १ ॥
ते सोहिज्जंति फुडं, इमाउ रासीउवेग्गलाणं (विविक्तानां) तु ।
पुणरुत्त वज्जियाणं, पमाणमेयं विणिद्दिट्ठं" ॥ २ ॥ इति ।

તેનો ભાવાર્થ આ પ્રમાણે છે–ધર્મકથામાં આવેલ આખ્યાયિકાદિકોની સંખ્યા એકસો પચીશ કરોડ છે. તેઓમાંથી નવજ્ઞાતોમાં કહેલ સમાન લક્ષણોવાળી–સમાન સ્વરૂપવાળી એકસો સાડી એકવીસ કરોડ આખ્યાયિકાદિકોને બાદ કરવામાં આવે તો પૂર્વોક્ત રાશિથી બચેલ પુનરુકિત રહિત આખ્યાયિકાદિકોની સંખ્યા સાડા ત્રણ કરોડ થાય છે. મૂળમાં એજ સાડાત્રણ કરોડ આખ્યાયિકાદિકોનું પ્રમાણ કહેલ છે.

અહીં આ પ્રમાણે સ્થાપના છે—

ધર્મકથામાં આવેલ આખ્યાયિકાદિકોની સંખ્યા १२५००००००
શોધનીય જ્ઞાતાસ્થિત આખ્યાયિકાદિકોની સંખ્યા १२१५००००००

उपलब्धाऽऽख्यायिकादीनां संख्या ३५०००००

इत्थं ज्ञातानां धर्मकथानां च संकलिता आख्यायिकादि संख्या पञ्चाशल्लक्षाधिक षट्चत्वारिंशत्कोट्यधिकद्विशतकोटिप्रमाणा (२४६५०००००) भवति। ततः पञ्चाशल्लक्षाधिकैकविंशति कोट्यधिकैकशतकोटि (१२१५००००००) प्रमाणपुनरुक्ताऽऽख्यायिकादि शोधनेन अपुनरुक्ताऽऽख्यायिकादि प्रमाणं पञ्चविंशति कोट्यधिकैक शतकोटिपरिमितं (१२५००००००००) ज्ञाताधर्मकथासु भवतीति। ज्ञाताधर्मकथानां खलु परीताः=संख्याता वाचनाः, संख्येयानि अनुयोगद्वाराणि, संख्येया वेष्टकाः, संख्येयाः श्लोकाः, संख्येया निर्युक्तयः, संख्येयाः संग्रहण्यः, संख्येयाः प्रतिपत्तयः, ताः खलु अङ्गार्थतया षष्ठमङ्गम्। अत्र–द्वौ श्रुतस्कन्धौ, एकोनविंशतिरध्ययनानि–प्रथमश्रुतस्कन्धे।

बाकी रही हुई आख्यायिकादिकों की संख्या— ३५०००००

इस प्रकार ज्ञाता और धर्मकथा की संकलित आख्यायिकादि संख्या दो अरब छयालीस करोड़ पचास लाख (२४६५००००००) होती है। से एक अरब साढे इक्कीस करोड़ (१२१५००००००) पुनरुक्त आख्यायिकादिकों को घटाने पर ज्ञाताधर्मकथांग में अपुनरुक्त आख्यायिकादिकों का प्रमाण एक अरब पच्चीस करोड़ (१२५००००००००) होता है।

इस ज्ञाता धर्मकथा नामके अंगमें संख्यात वाचनाएँ हैं, संख्यात अनुयोग द्वार हैं, संख्यातवेष्टक हैं, संख्यात श्लोक हैं, संख्यात निर्युक्तियां है, संख्यात संग्रहणियां हैं एवं संख्यात प्रतिपत्तियां हैं। यह अंगोमें छठवां अंग है। इस छठवें अंगमें दो श्रुत स्कंध हैं। प्रथम श्रुतस्कन्धमें उन्नीस अध्ययन १९ उद्देशनकाल और उन्नीस १९ ही समुद्देशन काल हैं।

બાકી રહેલ આખ્યિકાદિકોની સંખ્યા ૩૫૦૦૦૦૦૦

આ રીતે જ્ઞાતા અને ધર્મકથાની સંકલિત આખ્યાયિકાદિની સંખ્યા બે અબજ, છેંતાળીશ કરોડ પચાશ લાખ (૨૪૬૫૦૦૦૦૦૦) થાય છે. તેમાંથી એક અબજ સાડી એકવીસ કરોડ (૧૨૧૫૦૦૦૦૦૦) પુનરુક્ત આખ્યાયિકાદિકોને બાદ કરતાં જ્ઞાતાધર્મકથાંગમાં અપુનરુક્ત આખ્યાયિકાદિકોનું પ્રમાણ એક અબજ પચીશ કરોડ (૧૨૫૦૦૦૦૦૦૦) થાય છે.

આ જ્ઞાતાધર્મકથા નામના અંગમાં સંખ્યાત વાચનાઓ છે, સંખ્યાત અનુયોગ દ્વાર છે, શબ્દથી સંખ્યાત વેષ્ટક છે. સંખ્યાત શ્લોક છે, સંખ્યાત નિર્યુક્તિયો છે. સંખ્યાત સંગ્રહણિયો છે, અને સંખ્યાત પ્રતિપત્તિયો છે. આ બધાં અંગોમાંનું છઠ્ઠું અંગ છે. આ છઠ્ઠાં અંગમાં બે શ્રુતસ્કંધ છે. પહેલા શ્રુતસ્કંધમાં ઓગણીસ અધ્યયન છે. ઓગણીસ (૧૯) ઉદ્દેશનકાળ છે. અને ઓગણીસ (૧૯) સમુદ્દેશનકાળ છે.

अत्र–एकोनविंशतिरुद्देशनकलाः, एकोनविंशतिः समुद्देशनकालाः । संख्येयानि पदसहस्राणि=षट्सप्तति सहस्राधिकपञ्चलक्षपदानि (५७६०००) पदाग्रेण=पदपरिमाणेन प्रज्ञप्तानि । तथाऽत्र–संख्येयानि अक्षराणि सन्ति । अनन्ता गमाः, अनन्ताः पर्यवाः, परीतास्त्रसाः, अनन्ताः स्थावराः, शाश्वत–कृत–निबद्ध–निकाचिता जिनप्रज्ञप्ता भावा आख्यायन्ते, प्रज्ञाप्यन्ते, प्ररूप्यन्ते, दर्श्यन्ते, निदर्श्यते, उपदर्श्यन्ते । स एवमात्मा भवति, एवं ज्ञाता, एवं विज्ञता भवति । इत्येवं प्रकारेण अत्र चरणकरणप्ररूपणा आख्यायते ६ । ता एता ज्ञाता धर्मकथाः ॥ सू० ५० ॥

अथ सप्तमाङ्गस्य उपासकदशाङ्गस्य स्वरूपमाह—

मूलम्–से किं तं उवासगदसाओ? । उवासगदसासु णं समणोवासयाणं नगराइं १, उज्जाणाइं २, चेइयाइं ३, वणसंडाइं ४, समोसरणाइं ५, रायाणो ६, अम्मापियरो ७, धम्मापियरो ८, धम्मकहाओ ९, इहलोइयपरलोइयाइड्ढिविसेसा १०, भोगपरिच्चाया ११, पव्वज्जाओ १२, परियाया १३, सुयपरिग्गहा १४, तवोवहाणाइं १५, सीलव्वयवेरमणगुणपच्चक्खाणपोसहोववासपडिवज्जणया १६, पडिमाओ १७, उवसग्गा १८, संलेहणाओ १९, भत्तपच्चक्खाणाइं २०, पाओवगमणाइं २१, देवलोगगमणाइं २२,

---

इसमें पाँच लाख छिहत्तर हजार ५७६००० पद हैं । इसमें संख्यात अक्षर हैं अनन्त गम हैं, अनंत पर्यायें हैं, असंख्यात त्रस हैं, अनंत स्थावर हैं–इत्यादि पदों की व्याख्या आचारांग सूत्रका स्वरूप निरूपण करते समय सूत्र ४५में कीया जा चुकी है। इस प्रकार यह ज्ञाताधर्मकथा अंग का स्वरूप है ॥ सू० ५० ॥

આ અંગમાં પાંચ લાખ છોંતેર હજાર (૫૭૬૦૦૦) પદો છે. એમાં સંખ્યાત અક્ષર છે. અનન્ત ગમ છે, અનંત પર્યાયો છે, અસંખ્યાત ત્રસ છે. અનંત સ્થાવર છે, વગેરે પદોની વ્યાખ્યા આચારાંગ સૂત્રનું સ્વરૂપ–નિરૂપણ કરતી વખતે સૂત્ર ૪૫માં કરવામાં આવી છે. આ પ્રમાણે આ “જ્ઞાતાધર્મકથા” અંગનું સ્વરૂપ છે. ॥ સૂ૦ ૫૦ ॥

सुकुलपच्चायाईओ २३, पुणो बोहिलाभा २४, अंतकिरियाओय, आघविज्जंति । उवासयदसा णं परित्ता वायणा, संखेज्जा अणुओगदारा संखेज्जावेढा, संखेज्जा सिलोगा, संखेज्जाओ निज्जुत्तीओ संखेज्जाओ संगहणीओ संखेज्जाओ पडिवत्तीओ । से णं अंगट्ठयाए सत्तमे अंगे, एगे सुयक्खंधे, दस अज्झयणा, दस उद्देसणकाला, दस समुद्देसणकाला, संखेज्जाइं पयसहस्साइं पयग्गेणं, संक्खेज्जा अक्खरा अणंतागमा, अणंता पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता थावरा, सासय-कड-निबद्ध-निकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति, पण्णविज्जंति, परूविज्जंति, दंसिज्जंति, निदंसिज्जंति, उवदंसिज्जंति । से एवं आया, एवं नाया, एवं विण्णाया, एवं चरणकरणपरूवणा आघविज्जइ ६ । से त्तं उवासगदसाओ ॥ सू० ५१ ॥

छाया—अथ कास्ता उपासकदशाः ? उपासकदशासु खलु श्रमणोपासकानां नगराणि १, उद्यानानि २, चैत्यानि ३, वनषण्डाः ४, समवसरणानि ५, राजानः ६, अम्बापितरौ ७, धर्माचार्याः ८, धर्मकथाः ९, ऐहलौकिक पारलौकिका ऋद्धिविशेषाः १०, भोगपरित्यागाः ११, प्रव्रज्याः १२, पर्यायाः, १३, श्रुतपरिग्रहाः १४, तपउपधानानि १५, शीलव्रत विरमणगुणप्रत्याख्यानपोषधोपवासप्रतिपादनताः १६, प्रतिमाः १७, उपसर्गाः १८, संलेखना १९, भक्तप्रत्याख्यानानि २०, पादपोपगमनानि २१, देवलोकगमनानि २२, सुकुलप्रत्यायातयः २३, पुनर्बोधिलाभाः २४, अन्तक्रियाश्चआख्यायन्ते २५, उपासकदशानां परीतावाचनाः संख्येयानि अनुयोगद्वाराणि, संख्येया वेष्टकाः, संख्येयाः श्लोकाः, संख्येया निर्युक्तयः संख्येयाः संग्रहण्यः, संख्येयाः प्रतिपत्तयः । ताः खलु अङ्गार्थतया सप्तममङ्गम्, एकः श्रुतस्क-

न्धः, दश अध्ययनानि, दश उद्देशनकालाः, दशसमुद्देशनकालाः, संख्येयानि पद-सहस्राणि पदाग्रेण, संख्येयानि अक्षराणि, अनन्ता गमाः, अनन्ताः पर्यवाः, परीतास्त्रसाः, अनन्ताः स्थावराः, शाश्वत-कृत-निबद्ध-निकाचिता जिनप्रज्ञप्ता भावा आख्यायन्ते प्रज्ञाप्यन्ते, प्ररूप्यन्ते, दर्श्यन्ते, निदर्श्यन्ते उपदर्श्यन्ते । स एवात्मा, एवं ज्ञाता, एवं विज्ञाता, एवं चरणकरणप्ररूपणा आख्यायते ६ । ता एता उपासकदशाः ॥ सू० ५१ ॥

अथ सप्तमाङ्गस्वरूपं कथयति—

टीका—' से किं तं० ' इत्यादि ।

अथ कास्ता उपासकदशाः ? उत्तरयत्ति-उपासकदशासु=उपासकाः=श्रावकाः तेषामुपासकत्व बोधिका दशाध्ययन प्रतिबद्धादशाः=अवस्थाः-उपासकदशास्तासु खलु उपासकानां=श्रावकाणां नगराणि १, उद्यानानि २, चैत्यानि ३, वनषण्डाः ४, समवसरणानि ५, राजानः ६, अम्बापितरौ ७, धर्माचार्याः ८, धर्मकथाः ९,

---

अब सप्तम अंग उपासक दशांग का स्वरूप कहते हैं-' से किं तं 'उवासगदसाओ० ' इत्यादि ।

शिष्य प्रश्न-सातवां अंग जो उपासकदशा है उसका क्या स्वरूप है ?

उत्तर—उपासकों- श्रावकों की उपासकत्व बोधक जो अवस्थाएँ हैं, वे उवासक दशायें हैं दश अध्ययनों द्वारा इन दशाओं काप्रतिबोधक जो अंग हैं वह उपासकदशांग है। इस उपासकदशांगमें श्रावकोंके नगरों का कथन किया गया है, तथा उद्यानों का, चैत्यों-व्यन्तरा यतनों का, वन-षंडोंका, उन श्रावकों के समय के समवसरणोंका, उनके राजाओंका, उनके मातापिताओं का, उनके धर्माचार्यों का, धर्मकथाओं का, उनकी ऐहलौकिक

હવે સાતમાં અંગ-ઉપાસક દશાંગનું સ્વરૂપ કહે છે-"से किं तं उवासग दसाओ ?" ઈત્યાદિ-

શિષ્યનો પ્રશ્ન—સાતમું અંગ જે ઉપાસક દશા છે તેનું શું સ્વરૂપ છે?

ઉત્તર—ઉપાસકો-શ્રાવકોની ઉપાસકત્વ બોધક જે અવસ્થાઓ છે તે ઉપાસક દશાઓ છે. દશ અધ્યયનો દ્વારા એ દશાઓનું પ્રતિબોધક જે અંગ તે "ઉપાસક દશાંગ" છે. આ ઉપાસક દશાંગમાં શ્રાવકોનાં નગરોનું વર્ણન કરાયું છે. તથા ઉદ્યાનોનું ચૈત્યો-વ્યન્તરાયતનોનું, વનષંડોનું, તે શ્રાવકોના સમયના સમવસરણોનું, રાજાઓનું, તેમના માતાપિતાઓનું, તેમના ધર્માચાર્યોનું, ધર્મકથાઓનું, તેમની આલોક અને પરલોકની ઋદ્ધિવિશેષોનું ભોગ

ऐहलौकिकपारलौकिकऋद्धिविशेषाः १०, भोगपरित्यागाः ११, प्रव्रज्याः १२, पर्यायाः १३, श्रुतपरिग्रहाः=श्रुताध्ययनानि १४, तपउपधानानि=उग्रतपश्चरणानि १५, शीलव्रतविरमणगुणप्रत्याख्यानपोषधोपवासप्रतिपादनताः १६-तत्र-शीलव्रतानि=अणुव्रतानि, विरमणानि=रागादिविरतयः, गुणाः=गुणव्रतानि, प्रत्याख्यानानि =नमस्कार सहितादीनि, पोषधोपवासः पोषं=पुष्टिं धत्ते यदाहारपरित्यागादिकं कुशलानुष्ठानं तत्पोषधं, तेन सह उपवासः=अवस्थानम् अहोरात्रं यावदिति पोषधोपवासः, एतेषां द्वन्द्वः, तेषां प्रतिपादनताः=प्रतिपत्तयः-स्वीकरणानि, प्रतिमाः= एकादश उपासकप्रतिमाः १७, उपसर्गाः=देवादिकृतोपद्रवाः १८, संलेखनाः=शरीर-

---

तथा पारलौकिक ऋद्धिविशेषों का भोगपरित्याग का, प्रव्रज्या का, पर्याय का, श्रुतपरिग्रह का-श्रुताध्ययन का, तपउपधान का-तपश्चरण का भी कथन किया गया है। साथमें यह भी बतलाया गया कि शीलव्रत-अणुव्रत क्या है-इनका क्या स्वरूप है, और ये किस तरह धारण किये जाते हैं विरमण-रागादिक भावोंसे विरक्ति क्या है और यह किस तरह धारण की जाती हैं तथा इसका स्वरूप क्या है-गुण-गुण-व्रत क्या तथा कितने है, और ये किस तरह धारण किये जाते हैं?

पंच नमस्कार सहित प्रत्याख्यान क्या-कैसे होते हैं और ये कब कैसे धारण किये जाते हैं? पोषधोपवास-पोष-पुष्टिको जो धारण करे-वह आहार-परित्याग आदि पोषध कहलाता है, उसके साथ जो अहोरात्र रहना वह पोषधोपवास है। तथा श्रावकों के ग्यारह ११ प्रकार की प्रतिमा, तथा देवादिकृत-उपद्रव रूप उपसर्ग, संलेखना-शरीर तथा कषाय आदि

પરિત્યાગનું પ્રવ્રજ્યાનું, પર્યાયનું, શ્રુતપરિગ્રહનું-શ્રુતાધ્યયનનું, તપઉપધાનનું-તપશ્ચરણનું પણ વર્ણન કરાયું છે. વળી એ પણ બતાવ્યું છે કે શીલવ્રત-અણુવ્રત શું છે? તેમનું શું સ્વરૂપ છે? અને તે કેવી રીતે ધારણ કરાય છે? વિરમણ-રાગાદિક ભાવોથી વિરક્તિ શું છે? અને તે કેવી રીતે ધારણ કરાય છે? તથા તેનું શું સ્વરૂપ છે, ગુણ-ગુણવ્રત શું છે અને કેટલાં છે, અને તે કેવી રીતે ધારણ કરાય છે? પંચ નમસ્કાર સહિત પ્રત્યાખ્યાન કેવાં હોય છે અને તેમને કયારે અને કેવી રીતે ધારણ કરાય છે? પોષધોપવાસ પોષ-પુષ્ટિને જે ધારણ કરે-આપે તે આહાર પરિત્યાગ આદિને પોષધ કહેવાય છે, તેની સાથે જે રાતદિવસ રહેવું તે પોષધોપવાસ કહેવાય છે. તથા શ્રાવકોનાં અગીયાર પ્રકારની પ્રતિમા, તથા દેવાદિકૃત ઉપદ્રવરૂપ ઉપસર્ગ, સંલેખના-શરીર તથા કષાય

कषायादिशोषणलक्षणाः १९, भक्तप्रत्याख्यानानि २०, पादपोपगमनानि २१, देवलोकगमनानि २२, देवलोकात् पुनः सुकुलप्रत्यायातयः सुकुलजन्मानि २३, पुनर्बोधिलाभाः २४, अन्तक्रियाश्च आख्यायन्ते २५।

उपासकदशानां परीताः=संख्याता वाचनाः संख्येयानि अनुयोगद्वाराणि, संख्येया वेष्टकाः, संख्येयाः श्लोकाः, संख्येया निर्युक्तयः, संख्येयाः संग्रहण्यः, संख्येयाः प्रतिपत्तयश्च सन्ति। एकः श्रुतस्कन्धः दश अध्ययनानि, ता खलु अङ्गार्थतया सप्तममङ्गम् दश उद्देशनकालाः, दश समुद्देशनकालाः, संख्येयानि— पद सहस्राणि=एकादशलक्षाणि द्विपञ्चाशत्सहस्राणि (११५२०००) च पदानि पदाग्रेण=पदपरिमाणेन प्रज्ञप्तानि। तथाऽत्र संख्येयानि अक्षराणि, अनन्ताः गमाः, अनन्ताः पर्यवाः त्रसाः, अनन्ताः स्थावराः, शाश्वतकृत निबद्ध निकाचिता जिन-

का शोषण करना, भक्तप्रत्याख्यान, पादपोपगमन, देवलोक गमन वहां से च्यव कर उनका सुकुलमें जन्मलाभ पुनःबोधि की प्राप्ति तथा अन्तक्रिया, इन सबका भी इसमें अख्यान हुआ है।

इस अंगमें संख्यात वाचनाएँ हैं, संख्यात अनुयोग द्वार हैं, संख्यात वेष्टक हैं, संख्यात श्लोक हैं, संख्यात निर्युक्तियां हैं, संख्यात संग्रहणियां हैं तथा संख्यात प्रतिपत्तियां इन सबका अर्थ आचारांग के स्वरूप निरूपण करते समय सूत्र ४५में लिखा जा चुका है। यह अंग सातवां अंग है। इसमें एक श्रुतस्कन्ध और दश अध्ययन हैं। तथा दश उद्देशन काल और दश ही समुद्देशनकाल हैं। इसके पदों का प्रमाण ग्यारह लाख बावन हजार(११५२०००)है। इसमें संख्यात अक्षर हैं, 'अनन्ता गमाः' यहां से लेकर "एवं विज्ञाता" तक के पदों का अर्थ आचारांग के स्वरूप

આદિનું શોષણ કરવું, ભક્તપ્રત્યાખ્યાન, પાદપોપગમન, દેવલોકગમન, ત્યાંથી આવીને તેમનો સારાં કુળમાં જન્મલાભ, પુનઃબોધિની પ્રાપ્તિ તથા અન્તક્રિયા, એ બધાનું પણ તેમાં વર્ણન થયું છે.

આ અંગમાં સંખ્યાત વાચનાઓ છે, સંખ્યાત અનુયોગ દ્વાર છે, સંખ્યાત વેષ્ટક છે, સંખ્યાત શ્લોક છે, સંખ્યાત નિર્યુક્તિયો છે, તથા સંખ્યાત સંગ્રહણીઓ છે, સંખ્યાત પ્રતિપત્તિયો છે. એ બધાંનો અર્થ આચારાંગનું સ્વરૂપનિરૂપણ કરતી વખતે સૂત્ર ૪૫માં લખાઇ ગયો છે. આ અંગ સાતમું અંગ છે. તેમાં એક શ્રુતસ્કંધ અને દસ અધ્યયન છે, તથા દસ ઉદ્દેશનકાળ અને દસ જ સમુદ્દેશનકાળ છે. તેમાં અગીયાર લાખ બાવન હજાર (૧૧૫૨૦૦૦) પદ છે. તેમાં સંખ્યાત અક્ષર છે. "अनन्ता गमाः" થી માંડીને "एवं विज्ञाता"

प्रज्ञप्ता भावा आख्यायन्ते प्रज्ञाप्यन्ते प्ररूप्यन्ते दर्श्यन्ते निदर्श्यन्ते उपदर्श्यन्ते । स एवमात्मा, एवं ज्ञाता, एवं विज्ञाता, एवं चरणकरणप्ररूपणा आख्यायते । 'संख्येयानि अक्षराणि' इत्यादीनामर्थाः पूर्ववद्बोध्याः । उपसंहरन्नाह—ता एता उपासकदशा इति ॥ सू० ५१ ॥

अष्टमाङ्गस्य स्वरूपमाह—

मूलम्—से किं तं अंतगडदसाओ ?, अंतगडदसासु णं अंतगडाणं नगराइं उज्जाणाइं चेइयाइं वणसंडाइं समोसरणाइं रायाणो अम्मापियरो धम्मायरिया धम्मकहा इहलोइयपरलोइयइड्ढिविसेसा भोगपरिच्चाया पव्वज्जाओ परियाया सुयपरिग्गहा तवोवहाणाइं संलेहणाओ भत्तपच्चक्खाणाइं पाओवगमणाइं, अंतकिरियाओ आघविज्जंति । अंतगडदसासु णं परित्ता वायणा, संखिज्जा अणुओगदारा संखेज्जा वेढा संखेज्जा सिलोगा संखेज्जाओ निज्जुत्तीओ संखेज्जाओ संगहणीओ संखेज्जाओ पडिवत्तीओ, से णं अंगट्टयाए अट्ठमे अंगे । एगे सुयक्खंधे, अट्ठवग्गा, अट्ठ उद्देसणकाला, अट्ठ समुद्देसणकाला, संखेज्जाइं

निरूपण करते समय सूत्र ४५में लिखा जा चुका है। इस प्रकार यहां यह चरण करण का आख्यान प्रज्ञापन आदि किया गया है। यहां "प्रज्ञाप्यन्ते" आदि पांच पदों का संग्रह समझ लेना चाहिये। इनका अर्थ पहले कहा जा चुका है। यह उपासकदशांग के स्वरूप का वर्णन हुआ ॥ सू० ५१ ॥

સુધીનાં પદોનો અર્થ આચારાંગનું સ્વરૂપનિરૂપણ કરતી વખતે લખાઇ ગયો છે. આ રીતે તેમાં ચરણ કરણનું આખ્યાન, પ્રજ્ઞાપન આદિ કરાયું છે. અહીં "प्रज्ञाप्यन्ते" આદિ પાંચ પદોનો સંગ્રહ સમજી લેવો જોઇએ. તેમનો અર્થ પહેલાં કહેવાઈ ગયો છે. આ ઉપાસક દશાંગનાં સ્વરૂપનું વર્ણન થયું ॥ સૂ. ૫૧ ॥

पयसहस्साइं पयग्गेणं, संखिज्जा अक्खरा । अणंता गमा; अणंता, पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता थावरा, सासयकडनिबद्धनिका-इया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति; पन्नविज्जंति परूविज्जंति दंसिज्जंति निदंसिज्जंति उवदंसिज्जंति । से एवं आया, एवं नाया, एवं विण्णाया, एवं चरणकरणपरूवणा आघविज्जइ ६ । से त्तं अंतगडदसाओ ॥ सू० ५२ ॥

छाया–अथ कास्ता अन्तकृतदशाः ? अन्तकृतदशासु खलु अन्तकृतानां नगराणि उद्यानानि चैत्यानि वनषण्डाः समवसरणानि राजानः अम्बापितरौ धर्माचार्याः धर्म-कथाः ऐहलौकिक पारलौकिक ऋद्धिविशेषाः भोगपरित्यागाः प्रव्रज्याः पर्यायाः श्रुतपरिग्रहाः तप उपधानानि संलेखनाः भक्तप्रत्याख्यानानि पादपोपगमनानि अन्त-क्रिया आख्यायन्ते । अन्तकृतदशासु खलु परीताः वाचनाः संख्येयानि अनुयोग-द्वाराणि यावत् संख्येया वेष्टकाः, संख्येयाः श्लोकाः, संख्येया निर्युक्तयः, संख्येयाः संग्रहण्यः, संख्येयाः प्रतिपत्तयः । ताः खलु अङ्गार्थतया अष्टममङ्गम् , एकः श्रुत-स्कन्धः, अष्ट वर्गाः, अष्ट उद्देशनकालाः, अष्ट समुद्देशनकालाः, संख्येयानि पदसह-स्राणि पदाग्रेण, संख्येयानि अक्षराणि, अनन्ता गमाः, अनन्ताः पर्यवाः, परीताः त्रसाः, अनन्ताः स्थावराः शाश्वतकृतनिबद्धनिकाचिता जिनप्रज्ञप्ता भावा आख्या-यन्ते, प्रज्ञाप्यन्ते, प्ररूप्यन्ते, दर्श्यन्ते, निदर्श्यन्ते, उपदर्श्यन्ते । स एवम् आत्मा, एवं ज्ञाता, एवं विज्ञाता, एवं चरणकरणप्ररूपणा आख्यायते ६ । ता एता अन्तकृतदशाः ॥ सू० ५२ ॥

टीका—'से किं तं०' इत्यादि ।

अथ कास्ता अन्तकृतदशाः ? इति प्रश्नः । उत्तरयति–अन्तकृतदशासु–अन्तः= कर्मणस्तत्फलस्य संसारस्य वाऽन्तसमये विनाशः कृतो यैस्ते–अन्तकृतास्तेषां दशाः

अब अष्टम अंग अन्तकृतदशांगका स्वरूप कहा जाता है–"से किं तं अंतगडदसाओ ?' इत्यादि ।

હવે આઠમાં અંગ અંતકૃતદશાંગનું સ્વરૂપ કહેવામાં આવે છે—
"से किं तं अंतगडदसाओ ?" ઇત્યાદિ.

=अवस्थाः-तत्प्रतिपादका वर्गा यासु ताः, यद्वा-अन्तकृतवक्तव्यताप्रतिबद्धा दशाः=दशाध्ययनरूपा ग्रन्थपद्धतयोऽन्तकृतदशाः । इयं व्युत्पत्तिः प्रथमवर्गे दशाध्ययनानि सन्ति-इत्युपलक्ष्य क्रियते, तासु=अन्तकृतदशासु अन्तकृतानां मुनीनां नगराणि, उद्यानानि, चैत्यानि, वनषण्डाः, समवसरणानि, राजानः, अम्बापितरौ, धर्माचार्याः, धर्मकथाः, ऐहलौकिकपारलौकिक ऋद्धिविशेषाः, भोगपरित्यागाः, प्रव्रज्याः, पर्यायाः, श्रुतपरिग्रहाः=श्रुताध्ययनानि, तपउपधानानि, संलेखनाः, भक्तप्रत्याख्यानानि, पादपोपगमनानि, उपधानानि, अन्तक्रिया आख्यायन्ते । अन्तकृतदशासु

प्रश्न—हे भदन्त! आठवें अंग अतकृतदशांग का क्या स्वरूप है?

उत्तर—इसका स्वरूप इस प्रकार हैं-जिन्होंने कर्म का अथवा कर्म के फलभूत संसार का अंतसमयमें विनाश अभाव कर दिया है वे हैं अन्तकृत। इन अन्तकृतों की अवस्थाओं का प्रतिपादन करनेवाले वर्ग-अध्ययन जिसमें हैं वह अन्तकृतदशांग है। तात्पर्य यह है कि-इस अंतकृतदशांगमें दश अध्ययन हैं, इनमें अन्तकृतों की अवस्थाओं का वर्णन किया गया है इसलिये, अथवा-अन्तकृतों की वक्तव्यता से प्रतिबद्ध इसमें दश अध्ययन रूप ग्रन्थपद्धतियां हैं इसलिये इसका नाम अन्तकृतदशांग हुआ है। यह व्युत्पत्ति प्रथमवर्गमें कथित दश अध्ययनों की अपेक्षा को लेकर की गई है। इस अंगमें-अन्तकृत, मुनियों के नगरों का; उद्यानों का, चैत्यों-व्यन्तरायतनों का; वनषण्डों का; समवसरणों का; राजाओं का, मातापिता का; धर्माचार्यों का, धर्मकथाओं का ऐहलौकिक तथा परलौकिक ऋद्धिविशेषों का, भोगों के परित्याग का

પ્રશ્ન—હે ભદન્ત! આઠમાં અંગ અંતકૃતદશાંગનું શું સ્વરૂપ છે?

ઉત્તર—તેનું સ્વરૂપ આ પ્રમાણે છે-જેમણે કર્મનો અથવા કર્મ ફળરૂપ સંસારનો અંત સમયે વિનાશ-અભાવ કરી નાખ્યો છે તેઓ અન્તકૃત કહેવાય છે. એ અન્તકૃતોની અવસ્થાઓનું પ્રતિપાદન કરનાર અધ્યયનો જેમાં છે તે અંતકૃત દશાંગ છે. તાત્પર્ય એ છે કે-આ અંતકૃત દશાંગમાં દસ અધ્યયન છે, તેમાં અંતકૃતોની અવસ્થાઓનું વર્ણન કરવામાં આવેલ છે તેથી, અથવા અન્તકૃતોની વક્તવ્યતા વડે પ્રતિબદ્ધ દસ અધ્યયનરૂપ ગ્રન્થપદ્ધતિયો તેમાં છે તે કારણે તેનું નામ અંતકૃત દશાંગ પડ્યું છે. આ અંગમાં, અંતકૃત મુનિઓનાં નગરોનું, ઉદ્યાનોનું, ચૈત્યો-વ્યન્તરાયતનોનું, વનષંડોનું, સમવસરણોનું, રાજાઓનું, માતા-પિતાનું, ધર્માચાર્યોનું, ધર્મકથાઓનું, આલોક તથા પરલોકની ઋદ્ધિ

खलु परीताः=संख्याता वाचनाः, संख्येयानि अनुयोगद्वाराणि, संख्येया वेष्टकाः, संख्येया श्लोकाः, संख्येयाः निर्युक्तयः, तथा-संख्येयाः संग्रहण्यः, संख्येयाः प्रतिपत्तयः। ताः खलु अङ्गार्थतया अष्टममङ्गम्। अत्र-एकः श्रुतस्कन्धः, अष्टवर्गाः, अष्ट उद्देशनकालाः, अष्ट समुद्देशनकालाः। संख्येयानि पदसहस्राणि=त्रयोविंशति लक्षाणि चतुः सहस्राणि च पदानि पदाग्रेण=पदपरिमाणेन प्रज्ञप्तानि। संख्येयानि अक्षराणि अनन्ता गमाः, अनन्ता पर्यवाः, परीताः=असंख्याताः त्रसाः, अनन्ताः स्थावराः, एते उपरिनिर्दिष्टाः शाश्वत कृत निबद्ध निकाचिता जिनप्रज्ञप्ता भावा अत्र आख्यायन्ते, प्रज्ञाप्यन्ते, प्ररूप्यन्ते, दर्श्यन्ते, निदर्श्यन्ते, उपदर्श्यन्ते। स एवमात्मा भवति, स एव ज्ञाता, स एवं विज्ञाता च भवति। एवम्=उपरिनिर्दिष्ट प्रकारेणात्र अन्तकृतानां मुनीनां चरणकरण प्ररूपणा आख्यायते। उपसंहरति-'से तं०' इत्यादि। ता एता अन्तकृतदशाः – अन्तकृतदशाङ्गस्वरूपमेवंविज्ञेयमिति भावः ॥ सू० ५२ ॥

प्रव्रज्या का पर्यायों का, श्रुतों के अध्ययन का, तप उपधानों का, संलेखना का, भक्तप्रत्याख्यानों का पादपोपगमन का और अन्तक्रिया का वर्णन किया गया है।

इस अंगमें संख्यात वाचनायें हैं, संख्यात अनुयोग द्वार हैं, संख्यात वेष्टक हैं, संख्यात श्लोक हैं, संख्यात निर्युक्तियाँ, संख्यात संग्रहणियाँ हैं एवं संख्यात प्रतिपत्तियां है। यह अंगों की अपेक्षा आठमां अंग है। इसमें एक श्रुतस्कंध है। आठ वर्ग हैं। आठ उद्देशनकाल और आठ समुद्देशन काल हैं।

तेईस लाख चार हजार (२३४०००) इसमें पद हैं। संख्यात अक्षर हैं। इससे आगे "अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परीता तसा, अणंता

વિશેષોનું, ભોગોનાં પરિત્યાગનું પ્રવ્રજ્યાનું પર્યાયોનું, શ્રુતોનાં અધ્યયનનું, તપ ઉપધાનોનું, સંલેખનાનું, ભક્ત પ્રત્યાખ્યાનોનું, પાદપોપગમનનું અને અંતક્રિયાનું વર્ણન કરવામાં આવ્યું છે,

આ અંગમાં સંખ્યાત વાચનાઓ છે, સંખ્યાત અનુયોગ દ્વાર છે. સંખ્યાત વેષ્ટક છે, સંખ્યાત શ્લોક છે, સંખ્યાત નિર્યુક્તિયો, સંખ્યાત સંગ્રહણિયો અને સંખ્યાત પ્રતિપત્તિયો છે. અંગોની અપેક્ષાએ આ આઠમું અંગ છે. તેમાં એક શ્રુતસ્કંધ છે. આઠ વર્ગ છે. આઠ ઉદ્દેશનકાળ અને આઠ સમુદ્દેશન કાળ છે. તેમાં તેવીસ લાખ ચાર હજાર (૨૩૪૦૦૦) પદ છે, સંખ્યાત અક્ષર છે. અહીંથી લઈને "अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परीता तसा अणंता थावरा सासय–कड–निबद्ध–

नवमाङ्गस्वरूपमाह—

मूलम्—से किं तं अणुत्तरोववाइयदसाओ ? अणुत्तरोववाइ-दयासु णं अणुत्तरोववाइयाणं नगराइं उज्जाणाइं चेइयाइं वण-संडाइं समोसरणाइं रायाणो अम्मापियरो धम्मायरिया धम्मक-हाओ इहलोगपरलोइया इड्ढिविसेसा भोगपरिच्चाया पव्वज्जाओ परियागा सुयपरिग्गहा तवोवहाणाइं पडिमाओ उवसग्गा संले-हणाओ भत्तपच्चक्खाणाइं, पाओवगमणाइं, अणुत्तरोववाइयत्ते उववत्ती, सुकुलपच्चायाईओ, पुण बोहिलाभा, अंतकिरियाओ आघविज्जंति। अणुत्तरोववाइयदसासु णं परित्ता वायणा, संखेज्जा अणुओगदारा, संखेज्जा वेढा, संखेज्जा सिलोगा, संखेज्जाओ निज्जुत्तीओ, संखेज्जाओ संगहणीओ, संखेज्जाओ पडिवत्तीओ। से णं अंगट्ठयाए नवमे अंगे, एगे सुयक्खंधे, तिन्नि वग्गा,

---

थावरा, सासयकडनिबद्ध निकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघतज्जंति पण्णविज्जंति, परूविज्जंति, दसिज्जंति, निदंसिज्जंति, उवदंसिज्जंति से एवंआया, एवंणाया, एवं विण्णाया" इन समस्त पदो का अर्थ आचारांग के स्वरूप का निरूपण करते समय कर दिया गया है। इस प्रकार इस अंगमें उपर्युक्त प्रकार से अन्तकृत मुनियों की चरणसत्तरी तथा करण सत्तरी का आख्यान प्रज्ञापन आदि करनेमें आया है। इस तरह से अन्त-कृतदशाङ्ग का यह स्वरूप जानना चाहिये॥ सू० ५२ ॥

निकाइया, जिणपण्णता भावा, आघविज्जति पण्णविज्जंति परूविज्जिति दंसि-ज्जंति, निदंसिज्जंति, उवदंसिज्जंति से एवं आया एवं णाया एवं विण्णाया"
એ બધાં પદોનો અર્થ આચારાંગ સૂત્રનું સ્વરૂપનિરૂપણ કરતી વખતે આપી દીધો છે. આ રીતે આ અંગમાં ઉપર કહ્યા પ્રમાણે અંતકૃત મુનિઓની ચરણ સત્તરી તથા કરણ સત્તરીનું આખ્યાન, પ્રજ્ઞાપના આદિ કરવામાં આવ્યું છે. આ રીતે અંતકૃતદશાંગનું આ સ્વરૂપ સમજવું ॥ સૂ. ૫૨ ॥

तिन्नि उद्देसणकाला, तिन्नि समुद्देसणकाला, संखेज्जाइं पयसहस्साइं पयग्गेणं, संखेज्जा अक्खरा, अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता थावरा सासयकडनिबद्धनिकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति, पण्णविज्जंति, परूविज्जंति, दंसिज्जंति, निदंसिज्जंति उवदंसिज्जंति, से एवं आया, एवं नाया, एवं विण्णाया, एवं चरणकरणपरूवणा आघविज्जइ ६। से त्तं अणुत्तरोववाइयदसाओ ॥ सू० ५३ ॥

छाया—अथ कास्ता अनुत्तरोपपातिकदशाः ? अनुत्तरोपपातिकदशासु खलु अनुत्तरोपपातिकानां नगराणि उद्यानानि चैत्यानि वनषण्डाः राजानः अम्बापितरौ समवसरणानि धर्माचार्याः धर्मकथाः ऐहलौकिक पारलौकिक ऋद्धिविशेषाः भोगपरित्यागाः प्रव्रज्याः पर्यायाः श्रुतपरिग्रहाः तप उपधानानि प्रतिमा उपसर्गाः संलेखनाः भक्तप्रत्याख्यानानि पादपोपगमनानि अनुत्तरोपपातिकत्वे उपपातः, सुकुलप्रत्यायातयः पुनर्बोधिलाभाः अन्तक्रिया आख्यायन्ते अनुत्तरोपपातिकदशासु खलु परीता वाचनाः, संख्येयानि अनुयोगद्वाराणि, संख्येया वेष्टकाः, संख्येयाः श्लोकाः, संख्येया निर्युक्तयः, संख्येयाः संग्रहण्यः, संख्येयाः प्रतिपत्तयः। ताः खलु अङ्गार्थतया नवममङ्गम्, एकः श्रुतस्कन्धः त्रयो वर्गाः, त्रय उद्देशनकालाः, त्रयः समुद्देशनकालाः, संख्येयानि पद सहस्राणि पदाग्रेण, संख्यातानि अक्षराणि, अनन्ता गमाः, परीतास्त्रसाः, अनन्ता स्थावराः, शाश्वतकृतनिबद्धनिकाचिता जिनप्रज्ञप्ता भावा आख्यायन्ते, प्रज्ञाप्यन्ते, प्ररूप्यन्ते, दर्श्यन्ते, निदर्श्यन्ते, उपदर्श्यन्ते, स एवमात्मा, एवं ज्ञाता, एवं विज्ञाता, एवं चरणकरणप्ररूपणा आख्यायते, ता एता अनुत्तरोपपातिकदशाः ॥ सू० ५३ ॥

टीका—'से किं तं०' इत्यादि।

अथ कास्ता अनुत्तरोपपातिकदशा ? इति प्रश्नः। उत्तरयति—अनुत्तरोपपातिकदशासु—न विद्यते उत्तरः श्रेष्ठोऽस्मादित्यनुत्तरः उपपत्तनम्—उपपातः=जन्म, अनुत्तर उपपातो येषां तेऽनुत्तरोपपातास्त एव—अनुत्तरोपपातिकास्तेषां दशास्तासु तथोक्तासु खलु अनुत्तरोपपातिकानां मुनीनां नगराणि, उद्यानानि, चैत्यानि, वन-

षण्डाः, राजानः, अम्बापितरः, समवसरणानि, धर्माचार्याः धर्मकथाः, इहलोक परलोक ऋद्धिविशेषाः, भोगपरित्यागाः=भोगपरिहाराः, प्रव्रज्याः, पर्यायाः, श्रुत-परिग्रहाः, तप उपधानानि, प्रतिमाः उपसर्गाः, संलेखनाः, भक्तप्रत्याख्यानानि, पाद-पोपगमनानि, अनुत्तरोपपातिकत्वे=अनुत्तरोपपातिकविमानेषु=उपपत्तिः=उपपातः, सुकुलप्रत्यायातयः=अनुत्तरविमानादायुः क्षयेण च्युतानां तेषां शोभनेषु कुलेषु जन्मानि,

---

अब नौवें अंगका स्वरूप कहते हैं—'से किं तं अणुत्तरोववाइय-दसाओ०' इत्यादि ।

शिष्य प्रश्न-हे भदन्त ! अनुत्तरोपपातिकदशांग का क्या स्वरूप है ? उत्तर-जिसकी अपेक्षा और कोई दूसरा जन्म श्रेष्ठ न हो उसका नाम अनुत्तरोपपात है । यह अनुत्तरोपपात जिनका होता है वे अनुत्तरोप-पातिक हैं । इनकी अवस्थाओं का जिसमें वर्णन है वह अनुत्तरोपपातिक-दशांग है । इस अनुत्तरोपपातिकदशांग में अनुत्तरोपपातिक मुनियों के नगरों का, उद्यानों का, चैत्योंव्यन्तरायतनों का, वनषंडों का, राजाओं का, मातापिता का, समवसरणों का, धर्माचार्यों का, धर्मकथाओं का, इस लोक संबंधी तथा परलोक संबंधी ऋद्धिविशेषों का, भोगों के परित्याग का, दीक्षा का पर्यायों का, श्रुत के अध्ययन का दुष्करतपों का, विविध अवस्थाओं का, बारह भिक्षु प्रतिमाओं का, उपसर्गों का, भक्तप्रत्याख्यान नामके संथारे का, पादपोपगमन नामके संथारे का, अनुत्तरोपपात का-अनुत्तर विमानों में उत्पत्ति होने का, फिर वहां से आयु के अन्त में

હવે નવમાં અંગનું સ્વરૂપ વર્ણવે છે—"से किं तं अणुत्तरोववाइयदसाओ०" ઇત્યાદિ—

શિષ્ય પ્રશ્ન-હે ભદન્ત ! અનુત્તરોપપાતિક દશાંગનું શું સ્વરૂપ છે ? ઉત્તર-જેના કરતાં બીજો કોઈ પણ જન્મ શ્રેષ્ઠ ન હોય તેનું નામ અનુત્તરોપપાત છે. જેને આ અનુત્તરોપપાત થાય છે તેઓ અનુત્તરોપપાતિક કહેવાય છે. આ અનુત્તરોપપાતિક દશાંગમાં અનુત્તરોપપાતિક મુનિઓનાં નગરોનું ઉદ્યાનોનું, ચૈત્યો-વ્યન્તરાયતનોનું, વનષંડોનુ, રાજાઓનું, માતાપિતાનું, સમવસરણોનું, ધર્માચાર્યોનું, ધર્મકથાઓનું, આલોક તથા પરલોકની ખાસ ઋદ્ધિઓનું, ભોગોના પરિત્યાગનું, દીક્ષાનું, પર્યાયોનુ, શ્રુતનાં અધ્યયનનું, દુષ્કર તપોનું, વિવિધ અવસ્થા-ઓનું, બાર ભિક્ષુ પ્રતિમાઓનું, ઉપસર્ગોનુ, સંલેખના મરણનું, ભક્ત પ્રત્યાખ્યાન નામના સંથારાનુ, પાદપોપગમન નામના સંથારાનું, અનુત્તરોપપાતનું-અનુત્તર વિ-માનોમાં ઉત્પત્તિ થવાનુ, વળી ત્યાંથી આયુષ્ય પૂર્ણ થતાં ચ્યવીને ઉત્તમ કુળોમાં

पुनर्बोधिलाभाः, अन्तक्रियाश्च=मोक्षप्राप्तिलक्षणाश्च आख्यायन्ते । अनुत्तरोपपातिकदशासु खलु परीताः=संख्याता वाचनाः, संख्येयानि अनुयोगद्वाराणि, संख्येया वेष्टकाः, संख्येयाः श्लोकाः, संख्येया निर्युक्तयः, संख्येयाः संग्रहण्यः, संख्येयाः प्रतिपत्तयः । ताः खलु अङ्गार्थतया नवममङ्गम् । अत्र—एकः श्रुतस्कन्धः त्रयोवर्गाः, त्रय उद्देशनकालाः, त्रयः समुद्देशनकालाः, संख्येयानि पदसहस्राणि=षट्चत्वारिंशल्लक्षाणि अष्टौ च सहस्राणि (४६०८०००) पदानि पदाग्रेण=पदपरिमाणेन, संख्येयानि अक्षराणि, अनन्ता गमाः, अनन्ताः पर्यवा, परीतास्त्रसाः, अनन्ताः स्थावराः, शाश्वतकृतनिबद्धनिकाचिता जिनप्रज्ञप्ता भावा आख्यायन्ते, प्रज्ञाप्यन्ते, प्ररूप्यन्ते, दर्श्यन्ते, निदर्श्यन्ते, उपदर्श्यन्ते, स एवमात्मा, एवं ज्ञाता, एवं विज्ञाता एवं चरणकरणप्ररूपणा आख्यायते ६ । ता एता अनुत्तरोपपातिकदशाः । व्याख्या पूर्ववत् बोध्या ॥ सू० ५३ ॥

च्यव कर उत्तम कुलों में उनके जन्म लेने का पुनः बोधिप्राप्ति का तथा अन्त में मोक्ष प्राप्त करने का कथन किया हुआ है। इस अंग में संख्यात वाचनाएँ हैं संख्यात अनुयोग द्वार हैं संख्यात वेष्टक हैं, संख्यात श्लोक हैं, संख्यात निर्युक्तियाँ हैं, संख्यात संग्रहणियाँ हैं और संख्यात प्रतिपत्तियाँ हैं। यह अंग, अंग की अपेक्षा नवमा अंग है। इसमें एक श्रुतस्कंध है, तीन वर्ग हैं, तीन उद्देशनकाल हैं, तीन समुद्देशनकाल हैं। इसमें पदों का परिमाण छयालीस लाख आठ हजार (४६०८०००) हैं। संख्यात अक्षर हैं। यहां भी "अनन्तागमाः" इत्यादि पाठ का अर्थ पहले की भांति समझ लेना चाहिये। इस तरह इस अंग में साधुओं के चरण और करण की प्ररूपणा हुई है। यह अनुत्तरोपपातिकदशा का स्वरूप है॥ सू० ५३ ॥

તેમનો જન્મ થવાનું, પુનઃ બોધિ પ્રાપ્તિનું તથા છેવટે મોક્ષ પ્રાપ્તિનુ વર્ણન કરવામાં આવ્યું છે. આ અંગમાં સંખ્યાત વાચનાઓ છે, સંખ્યાત અનુયોગ દ્વાર છે, સંખ્યાત વેષ્ટક છે. સંખ્યાત શ્લોક છે, સંખ્યાત નિર્યુક્તિયો છે, સંખ્યાત સંગ્રહણિયો છે, અને સંખ્યાત પ્રતિપત્તિયો છે. અંગોની અપેક્ષાએ આ નવમું અંગ છે. તેમાં એક શ્રુતસ્કંધ છે, ત્રણ વર્ગો છે, ત્રણ ઉદ્દેશનકાળ તથા ત્રણ સમુદ્દેશનકાળ છે. તેમાં છેતાળીશ લાખ આઠ હજાર (૪૬૦૮૦૦૦) પદ છે. સંખ્યાત અક્ષર છે. અહીં પણ "अणंता गमा" ઇત્યાદિ પાઠનો અર્થ આગળની જેમ સમજી લેવો જોઇએ. આ રીતે આ અંગમાં સાધુઓના ચરણ અને કરણની પ્રરૂપણા થઈ છે. અનુત્તરોપપાતિક દશાનુ આ સ્વરૂપ છે. ॥ સૂ. ૫૩ ॥

सम्प्रति प्रश्नव्याकरणनामकं दशममङ्गमाह—

मूलम्—से किं तं पण्हावागरणाइं? पण्हावागरणेसु णं अट्ठुत्तरं पसिणसयं अट्ठुत्तरं अपसिणसयं, अट्ठुत्तरं पसिणापसिणसयं; तं जहा—अंगुट्ठपसिणाइं, बाहुपसिणाइं, अद्दागपसिणाइं, अन्ने वि विचित्ता विज्जाइसया, नागसुवन्नेहिं, सद्धिं दिव्वा संवाया आघविज्जंति। पण्हावागराणं परित्ता वायणा, संखेज्जा अणुओगदारा, संखेज्जा वेढा, संखेज्जा सिलोगा संखेज्जाओ निज्जुत्तीओ, संखेज्जाओ संगहणीओ, संखेज्जाओ पडिवत्तीओ। से णं अंगट्ठयाए दसमे अंगे, एगे सुयक्खंधे, पणयालीसं अज्झयणा पणयालीसं उद्देसणकाला, पणयालीसं समुद्देसणकाला, संखेज्जाइं पयसहस्सायं पयग्गेणं, संखेज्जा अक्खरा, अणंता गमा अणंता पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता थावरा, सासयकडनिबद्ध-निकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति, पण्णविज्जंति, परूविज्जंति, दंसिज्जंति, निदंसिज्जंति, उवदंसिज्जंति। से एवं आया, एवं नाया, एवं विण्णाया एवं चरणकरणपरूवणा आघविज्जइ ६। से त्तं पण्णावागरणाइं॥ सू० ५४॥

छाया—अथ कानितानि प्रश्नव्याकरणानि? प्रश्नव्याकरणेषु खलु अष्टोत्तरं प्रश्नशतम्, अष्टोत्तरम् अप्रश्नशतम्, अष्टोत्तरं प्रश्नाप्रश्नशतं विद्यातिशयाः, नागसुपर्णैः सार्द्धं दिव्यासंवादा आख्यायन्ते, तद्यथा—अङ्गुष्ठप्रश्नाः, बाहुप्रश्नाः, आदर्शप्रश्नाः अन्येऽपि विचित्रा प्रश्नव्याकरणानां परीता वाचनाः, संख्येयान्यनुयोगद्वाराणि, संख्येया वेष्टकाः संख्येयाः श्लोकाः, संख्येयाः निर्युक्तयः, संख्येयाः संग्रहण्यः, संख्येयाः प्रतिपत्तयः। तानि खलु अङ्गार्थतया दशममङ्गम्, एकः श्रुत-

स्कन्धः, पञ्चचत्वारिंशदध्ययनानि पञ्चचत्वारिंशद् उद्देशनकाला, पञ्चचत्वारिंशत् समुद्देशनकालाः, संख्येयानि पदसहस्राणि पदाग्रेण, संख्येयानि, अक्षराणि, अनन्तागमाः अनन्ताः पर्यायाः, अनन्ताः पर्यवाः, परीतास्त्रसाः, अनन्ताः स्थावराः, शाश्वत कृतनिबद्धनिकाचिताः जिनप्रज्ञप्ता भावा आख्यायन्ते, प्रज्ञाप्यन्ते, प्ररूप्यन्ते, दर्श्यन्ते, निदर्श्यन्ते, उपदर्श्यन्ते, स एवमात्मा, एवं ज्ञाता, एवं विज्ञाता, एवं चरणकरणप्ररूपणा आख्यायते तान्येतानि प्रश्नव्याकरणानि ॥ सू० ५४ ॥

टीका—'से किं तं०' इत्यादि—

गणिपिटकस्य दशमाङ्गस्वरूपजिज्ञासया पृच्छति—अथ कानितानिप्रश्नव्याकरणानि—प्रश्नाः=जिज्ञासाविषयीभूताः पदार्थाः, व्याकरणानि=तन्निर्वचनानि, एतेषां योगादङ्गमपि प्रश्नव्याकरणानि, अथवा—प्रश्नव्याकरणानि च सन्ति येषु तानि—प्रश्नव्याकरणानि ?, उत्तरयति—प्रश्नव्याकरणेषु खलु अष्टोत्तरं प्रश्नशतम्= अष्टोत्तरशतसंख्यकाः प्रश्नाः, अष्टोत्तरमप्रश्नशतम् – अष्टोत्तरशतसंख्यका अप्रश्नाः, अष्टोत्तरं प्रश्नाप्रश्न शतम्— अष्टोत्तरशतसंख्यकाः प्रश्नाप्रश्नाः, तत्र—अङ्गुष्ठबाहुप्रश्नादिका मन्त्रविद्याः प्रश्नाः अयं भावः—यासां मन्त्रविद्यानां प्रभा-

---

अब दशवें अंग प्रश्नव्याकरणका स्वरूप बतलाया जाता है—

'से किं तं पण्हावागरणाइं०' इत्यादि।

शिष्य पूछता है—हे भदन्त! दशवें अंग प्रश्नव्याकरणका क्या स्वरूप है?

उत्तर—जिज्ञासाके विषयभूत पदार्थ और उनका निर्वचन, इन दोनों के योग से यह अंग भी 'प्रश्नव्याकरण' इस नामसे कहा गया है। अथवा प्रश्न और व्याकरण (उत्तर) ये दोनों जिस अंगमें हैं वह प्रश्नव्याकरण है। इस प्रश्नव्याकरणमें एकसौ आठ १०८ प्रश्न, एकसौ आठ १०८ अप्रश्न तथा एकसौआठ १०८ ही प्रश्नाप्रश्न हैं। जिन मंत्रविद्याओंके प्रभावसे अंगुष्ठ

હવે દશમાં અંગ "પ્રશ્નવ્યાકરણ" નું સ્વરૂપ બતાવવામાં આવે છે—

"से किं तं पण्हावागरणाइं०" ઇત્યાદિ.

શિષ્ય પૂછે છે—હે ભદન્ત! દશમાં અંગ પ્રશ્નવ્યાકરણનું શું સ્વરૂપ છે?

ઉત્તર—જિજ્ઞાસાના વિષયભૂત પદાર્થો અને તેમનું નિર્વચન, એ બન્નેના યોગથી આ અંગ પણ "પ્રશ્નવ્યાકરણ" ના નામે ઓળખાય છે. અથવા પ્રશ્ન અને વ્યાકરણ—(ઉત્તર) એ બન્ને જે અંગમા છે તે પ્રશ્નવ્યાકરણ નામનું અંગ છે. આ પ્રશ્નવ્યાકરણમાં એક સો આઠ (૧૦૮) પ્રશ્નો, એકસો આઠ (૧૦૮) અપ્રશ્ન અને એકસો આઠ (૧૦૮) જ પ્રશ્નાપ્રશ્ન છે, જે મંત્રવિદ્યાઓના પ્રભાવથી

वेण अङ्गुष्ठबाह्वादयोऽपि पृष्टानां विषयाणामुत्तरं ददति ता मन्त्रविद्या अङ्गुष्ठबाहुप्रश्नादिका उच्यन्ते । ता एव इह प्रश्नशब्देन विवक्षिता इति । याः पुनर्विद्या मन्त्रविधिना जप्यमाना अपृष्टा एव शुभाशुभं कथयन्ति ता अप्रश्नाः याः पुनर्विद्या अङ्गुष्ठादि प्रश्नभावं तदभावं चाधिगम्य शुभाशुभं कथयन्ति ताः प्रश्नाप्रश्नाः । एते चतुर्विंशत्यधिकत्रिशतसंख्यकाः प्रश्नाप्रश्न-प्रश्नाप्रश्नाः आख्यायन्ते । तानेवाह -तद्यथा-अङ्गुष्ठप्रश्नाः, बाहुप्रश्नाः, आदर्शप्रश्नाः, तथा-इतोऽन्येऽपि विचित्राः=अनेकविधाः । विद्यातिशयाः=स्तम्भनवशीकरणविद्वेषणोच्चाटनादयः, तथा-साधकानां नागसुपर्णैः=उपलक्षणत्वाद् यक्षादिभिश्च सह दिव्याः=तात्त्विकाः संवादाः=

बाहु आदि, पूछे हुए विषयों का उत्तर देते हैं वे मंत्रविद्याएं यहां प्रश्न शब्द से गृहीत हुई हैं। जो विद्याएँ मंत्रकी विधिके अनुसार जपी जाने पर विना पूछे ही शुभ और अशुभको बतलाती हैं वे अप्रश्न शब्दसे यहां गृहीत हुई हैं। तथा जो विद्याएँ अंगुष्ठ आदिके प्रश्नभावको तथा इनके अभावको लेकर शुभ और अशुभ को प्रकट करती हैं वे प्रश्नाप्रश्न हैं, और इनका ग्रहण यहां प्रश्नाप्रश्न शब्दसे हुआ है। इन सबकी संख्या योग करने पर तीनसौ चोबीस ३२४ होती हैं। इन्हीं प्रश्न आदिकों को सूत्रकार ' तं जहा ' इत्यादिसे सूचित करते है, वे कहते हैं कि इस अङ्ग में अङ्गुष्ठप्रश्न, बाहुप्रश्न, आदर्शप्रश्नका वर्णन किया गया है, तथा इनसे अतिरिक्त अनेक प्रकारके जो स्तंभन, विद्वेषण, वशीकरण उच्चाटन आदि ये विद्यातिशय हैं, तथा नागसुपर्णो के साथ एवं उपलक्षणसे यक्ष

અંગુષ્ઠ બાહુ આદિ, પૂછવામાં આવેલ વિષયોનો ઉત્તર આપે છે તે મંત્રવિદ્યાઓ અહીં પ્રશ્ન શબ્દથી ગૃહીત થયેલ છે. જે વિદ્યાઓ મંત્રની વિધિ પ્રમાણે જપી જવા છતાં પણ વિના પૂછયે જ શુભ અને અશુભને બતાવે છે તે અપ્રશ્ન છે, અને એમનું જ અપ્રશ્ન શબ્દથી અહીં ગ્રહણ થયેલ છે. તથા જે વિદ્યાઓ અંગુષ્ઠ આદિના પ્રશ્નભાવને તથા તેમના અભાવને લઈને શુભ અને અશુભને પ્રગટ કરે છે તેઓ પ્રશ્નાપ્રશ્ન કહેવાય છે, અને અહીં પ્રશ્નાપ્રશ્ન શબ્દ વડે તેમનું ગ્રહણ કરાયેલ છે. આ બધાનો સરવાળો કરતા તેમની કુલ સંખ્યા ત્રણસો ચોવીસ (૩૨૪) થાય છે. તે પ્રશ્ન વગેરેને સૂચિત કરવા માટે સૂત્રકારે 'तं जहा' ઈત્યાદિ પદો આપ્યા છે, તેઓ કહે છે કે આ અંગમાં અંગુષ્ઠપ્રશ્ન, બાહુપ્રશ્ન, આદર્શપ્રશ્ન વગેરેનું વર્ણન કરવામાં આવ્યું છે. અને તેનાથી અતિરિક્ત અનેક પ્રકારના જે સ્તંભન, વિદ્વેષણ, વશીકરણ, ઉચ્ચાટન આદિ જે વિદ્યાતિશય છે, તથા નાગસુપર્ણોની સાથે અને ઉપલક્ષણથી યક્ષ આદિકોની સાથે સાધકલોકોનો

संलापश्च आख्यायन्ते। तथा प्रश्नव्याकरणेषु खलु परीताः=संख्येया वाचनाः, संख्येयानि अनुयोगद्वाराणि, संख्येया वेष्टकाः, संख्येयाः श्लोकाः, संख्येया निर्युक्तयः, संख्येयाः संग्रहण्यः, संख्येयाः प्रतिपत्तयः तानि खलु अङ्गार्थतया दशमम‌ङ्गम्। अत्र–एकः श्रुतस्कन्धः, पञ्चचत्वारिंशदुद्देशनकालाः, महाप्रश्नविद्यामानः प्रश्नविद्यादिप्रतिपादकप्रश्नव्याकरणापेक्षया पञ्चचत्वारिंशदुद्देशनकालः उक्ताः, तद्विच्छित्त्या साम्प्रतं दशाध्ययनत्वेन दशैवोद्देशनकाला लभ्यन्ते इति बोध्यम्। पञ्चचत्वारिंशत्समुद्देशनकालाः, संख्येयानि पदसहस्राणि=द्विनवतिलक्षाणि षोडशसहस्राणि (९२१६०००) च पदानि पदाग्रेण=पदपरिमाणेन, संख्येयानि अक्षराणि, अनन्ता गमाः, अनन्ताः पर्यवाः, परीतास्त्रसाः, अनन्ताः स्थावराः, इत्यारभ्य एवं चरणकरणप्ररूपणाआख्यायते–इत्यन्त पूर्ववद् व्याख्येयम्। उपसंहरन्नाह–' से त्तं० ' इत्यादि तान्येतानि प्रश्नव्याकरणानि ॥ सू० ५४ ॥

आदिकों के साथ जो साधकजनों का तात्त्विक संलाप होता है वह दिव्य संवाद है। उनका भी इस अंगमें वर्णन किया गया है।

इस अंगमें संख्यात वाचनाएँ हैं, संख्यात अनुयोग द्वार हैं, संख्यात वेष्टक हैं, संख्यात श्लोक हैं, संख्यात निर्युक्तियां हैं, संख्यात संग्रहणियां हैं, संख्यात प्रतिपत्तियां हैं। यह अंगकी अपेक्षा दसवां अंग है। इसमें एक श्रुतस्कंध है। पैंतालीस उद्देशनकाल और पैंतालीस ही समुद्देशनकाल हैं। पदपरिमाणसे इसमें संख्यात–९२१६००० बानवे लाख सोलह हजार पद हैं। संख्यात अक्षर हैं, अनंत गम हैं इत्यादि सब पीछे कही गई वाचना चरणकरणप्ररूपणापर्यन्त यहां लगा लेनी चाहिये। इस प्रकार यह प्रश्नव्याकरण का स्वरूप है ॥ सू० ५४ ॥

જે તાત્વિક સંવાદ થાય છે તે દિવ્યસંવાદ છે, તેઓનું પણ આ અંગમાં વર્ણન કરવામાં આવ્યું છે. આ અંગમાં સંખ્યાત વાચનાઓ છે, સંખ્યાત અનુયોગ દ્વાર છે, સંખ્યાત વેષ્ટક છે, સંખ્યાત શ્લોક છે, સંખ્યાત નિર્યુક્તિયો છે, સંખ્યાત સંગ્રહણિઓ છે, તથા સંખ્યાત પ્રતિપત્તિયો છે. અંગોની અપેક્ષાએ આ દસમું અંગ છે. તેમાં એક શ્રુતસ્કંધ છે. પીસ્તાળીશ ઉદ્દેશનકાળ અને પીસ્તાળીશ જ સમુદ્દેશનકાળ છે. તેમાં સંખ્યાત–બાણું લાખ સોળ હજાર (૯૨૧૬૦૦૦) પદ છે. સંખ્યાત અક્ષર છે. અનંત ગમ છે, વગેરે પહેલાં કહેલ વાચના ચરણ કરણ પ્રરૂપણા સુધી અહીં સમજી લેવી. આ પ્રકારનું આ પ્રશ્નવ્યાકરણનું સ્વરૂપ છે. (સૂ. ૫૪)

एकादशाङ्गस्वरूपमाह—

मूलम्—से किं तं विवागसुयं ? विवागसुए णं सुक्कडदुक्कडाणं कम्माणं फलविवागो आघविज्जइ । तत्थ णं दस दुहविवागा, दस सुहविवागा । से किं तं दुहविवागा ? दुहविवागेसु णं दुह-विवागाणं नगराइं उज्जाणाइं वणसंडाइं चेइयाइं समोसरणाइं रायाणो अम्मापियरो धम्मायरिया धम्मकहाओ इहलोइयपर-लोइया इड्ढिविसेसा, निरयगमणाइं संसारभवपवंचा, दुहपरं-पराओ दुक्कुलपच्चायाईओ दुल्लहबोहियत्तं आघविज्जंति । से त्तं दुहविवागा । से किं तं सुहविवागा ? सुहविवागेसु णं सुह-विवागाणं नगराइं उज्जाणाइं वणसंडाइं समोसरणाइं रायाणो अम्मापियरो धम्मायरिया धम्मकहाओ इहलोइयपरलोइय इड्ढिविसेसा भोगपरिच्चागा पव्वज्जाओ परियागा सुयपरिग्ग-हातवोवहाणाइं संलेहणाओ, भत्तपच्चक्खाणाइं, पाओवगम-णाइं, देवलोगगमणाइं, सुहपरम्पराओ, सुकुलपच्चायाईओ, पुणबोहिलाहा, अंतकिरियाओ आघविज्जंति। विवागसुयस्सणं परित्ता वायणा, संखेज्जा अणुओगदारा, संखेज्जा वेढा, संखेज्जा सिलोगा, संखेज्जाओ निज्जुत्तीओ, संखिज्जाओ संगहणीओ संखेज्जाओ पडिवत्तीओ । से णं अंगट्ठयाए इक्कारसमे अंगे, दो सुयक्खंधा, वीसं अज्झयणा, वीसं उद्देसणकाला, वीसं समु-द्देसणकाला, संखेज्जाइं पयसहस्साइं पयग्गेणं, संखेज्जा अक्खरा, अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता थावरा,

सासयकडनिबद्धनिकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति, पण्णविज्जंति, परूविज्जंति, दंसिज्जंति निदंसिज्जंति, उवदंसिज्जंति। से एवं आया, एवं नाया, एवं विण्णाया। एवं चरण करण परूवणा आघविज्जइ। से त्त विवागसुयं॥ सू० ५५॥

छाया—अथ किं तद् विपाकश्रुतं? विपाकश्रुते खलु सुकृत दुष्कृतानां कर्मणां फलविपाक आख्यायते। तत्र खलु दश दुःखविपाकाः दश सुखविपाकाः। अथ के ते दुःखविपाकाः? दुःख विपाकेषु खलु दुःखविपाकानां नगराणि उद्यानानि वनषण्डाः चैत्यानि, समवसरणानि, राजानः अम्बापितरः धर्माचार्याः धर्मकथाः ऐहलौकिकपारलौकिका ऋद्धिविशेषाः, निरयगमनानि संसार भवप्रपञ्चाः, दुःख परम्परा दुष्कुलप्रत्यायातयः दुर्लभबोधिकत्वम् आख्यायते त एते दुःखविपाकाः। अथ के ते सुखविपाकाः? सुखविपाकेषु खलु सुखविपाकानां नगराणि, उद्यानानि, वनषण्डाः, चैत्यानि, समवसरणानि, राजानः, अम्बापितरः, धर्माचार्याः, धर्मकथाः, ऐहलौकिक पारलौकिका ऋद्धि विशेषाः भोगपरित्यागाः, प्रव्रज्याः, पर्यायाः, श्रुतपरिग्रहाः, तप उपधानानि, संलेखनाः, भक्तप्रत्याख्यानानि, पादपोपगमनानि, देवलोकगमनानि, सुखपरम्पराः, सुकुल प्रत्यायातयः, पुनर्बोधिलाभाः, अन्तक्रिया आख्यायन्ते। विपाकश्रुतस्य खलु परीता वाचना सख्येयानि अनुयोगद्वाराणि, संख्येया वेष्टकाः, संख्येया श्लोकाः, संख्येयाः निर्युक्तयः, संख्येयाः संग्रहण्यः, संख्येयाः प्रतिपत्तयः तत् खलु अङ्गार्थतया एकादशमङ्गम् , विंशतिरध्ययनानि, विंशतिरुद्देशनकालाः, विंशतिः समुद्देशनकालाः, सख्येयानि पद सहस्राणि, पदाग्रेण, संख्येयानि अक्षराणि, अनन्ता गमाः, अनन्ताः पर्यवाः परीतास्त्रसाः, अनन्ताः स्थावराः, शाश्वतकृतनिबद्धनिकाचिता जिनप्रज्ञप्ता भावा आख्यायन्ते, प्रज्ञाप्यन्ते, प्ररूप्यन्ते, दर्श्यन्ते, निदर्श्यन्ते, उपदर्श्यन्ते। स एवमात्मा, एवं ज्ञाता, एवं विज्ञाता, एवं चरणकरणप्ररूपणा आख्यायते। तदेतद् विपाकश्रुतम् ॥ सू० ५५॥

टीका—'से किं तं विवागसुयं०' इत्यादि—

एकादशाङ्गजिज्ञासायां पृच्छति—अथ किं तद् विपाकश्रुतम् विपचनं विपाकः=

अब ग्यारहवें अंग विपाकश्रुतका स्वरूप कहते हैं—'से किं तं विवागसुयं?' इत्यादि। ग्यारहवें अंग विपाकश्रुतके स्वरूपको जाननेकी इच्छा

હવે અગીયારમાં અંગ–વિપાકશ્રુતનું સ્વરૂપ વર્ણવે છે–"से किं तं विवागसुयं?" ઈત્યાદિ. અગીયારમાં અંગ–વિપાકશ્રુતનું સ્વરૂપ સમજવાને માટે શિષ્ય

शुभाशुभकर्मपरिणामस्तत्प्रतिपादकं श्रुतं विपाकश्रुतम्, तत्किंस्वरूपमिति प्रश्नः ? उत्तरयति-विपाकश्रुते खलु सुकृतदुष्कृतानां कर्मणां फलविपाकआख्यायते। तत्र=विपाके खलु दश दुःखविपाकाः=दुःखविपाकप्रदर्शकानि दशाध्ययनानि सन्ति, सुखविपाक प्रदर्शकानि च दशाध्ययनानि सन्ति। दुःखविपाक स्वरूपजिज्ञासायां पृच्छति-अथ के ते दुःखविपाकाः ? इति। उत्तरयति-दुःखविपाकेषु खलु दुःखविपाकानाम्-दुःखविपाकोऽस्त्येषामिति दुःखविपाकाः, मत्वर्थीयोऽच् प्रत्ययः, तेषां तथोक्तानाम्-दुःखफलभोक्तृणां जीवानां नगराणि, उद्यानानि, वनषण्डाः,

---

से शिष्य पूछता है-हे भदन्त ! विपाकश्रुतका स्वरूप क्या है ? उत्तर-शुभ और अशुभ कर्मों के परिपाकका नाम विपाक है। इस विपाकका प्रतिपादक जो श्रुत है वह विपाकश्रुत है। इस अंगमें पुण्य और पापप्रकृति-विपाक का कथन किया गया है। इसमें दुःखविपाक दश हैं तथा सुख विपाक भी दश हैं अर्थात्-इस विपाकश्रुतमें दुःखविपाकप्रदर्शक दश अध्ययन हैं और सुखविपाक प्रदर्शक भी दश अध्ययन हैं, इस तरह यह विपाकश्रुत बीस अध्ययनोंवाला है। दुःखविपाक प्रदर्शक अध्ययनों का नाम दुःखविपाक और सुखविपाकप्रदर्शक अध्ययनों का नाम सुखविपाक है। अब शिष्य दुःखविपाक के स्वरूप को जानने की इच्छा से पूछता है-हे भदन्त ! वे दुखःविपाक क्या है ?

उत्तर—इन दुःखविपाकोंमें दुःखविपाक को भोगनेवालों के नगरों का, उद्यानों का, वनषण्डों का, चैत्यों का अर्थात् व्यन्तरायतनों का, सम-

---

પૂછે છે-હે ભદન્ત ! વિપાકશ્રુતનું શું સ્વરૂપ છે ?

ઉત્તર—શુભ અને અશુભ કર્મોના પરિપાકનુ નામ વિપાક છે. આ વિપાકનું પ્રતિપાદન કરનાર જે સૂત્ર છે તે સૂત્રનું નામ વિપાકશ્રુત છે. આ અંગમાં પુન્ય અને પાપપ્રકૃતિ રૂપ કર્મોના ફળસ્વરૂપ વિપાકનું વર્ણન કરાયું છે. આ વિપાક શ્રુતમાં દુઃખવિપાક પ્રદર્શક દસ અધ્યયન છે અને સુખવિપાક પ્રદર્શક પણ દસ અધ્યયન છે, આ રીતે આ વિપાકશ્રુત વીસ અધ્યયનો વાળું છે દુઃખવિપાક પ્રદર્શક અધ્યયનોનું નામ દુઃખવિપાક અને સુખવિપાક પ્રદર્શક અધ્યયનોનું નામ સુખવિપાક છે. હવે શિષ્ય દુઃખવિપાકનુ સ્વરૂપ જાણવાને માટે પૂછે છે-હે ભદન્ત ! તે દુઃખવિપાક શું છે ? ઉત્તર—એ દુઃખવિપાકોમા દુઃખવિપાક ભોગનારાઓનાં નગરોનું ઉદ્યાનોનું, વનષંડોનુ ચૈત્યોનું એટલે કે વ્યન્તરાયતનોનુ,

चैत्यानि, समवसरणानि राजानः, अम्बापितरः, धर्माचार्याः, धर्मकथाः, ऐहलौकिक पारलौकिका ऋद्धिविशेषाः, निरयगमनानि=नरकगमनानि, संसारभवप्रपञ्चाः- संसारे=संसृतौ भवानां=जन्मनां प्रपञ्चाः=विस्ताराः, दुःखपरम्पराः, दुष्कुलप्रत्याया-तयः दुष्कुलेषु जन्मानि, दुर्लभबोधिता च आख्यायते। त एते दुःख-विपाकाः। सम्प्रति सुखविपाकं जिज्ञासते-अथ के ते सुखविपाकाः? इति। उत्तरयति-सुखविपाकेषु खलु सुखविपाकानां=सुखफलभोक्तॄणां नगराणि, उद्या-नानि, वनषण्डाः, चैत्यानि, समवसरणानि, राजानः, अम्बापितरः, धर्माचार्याः, धर्मकथाः, ऐहलौकिक पारलौकिका ऋद्धिविशेषाः, भोगपरित्यागाः, प्रव्रज्याः, पर्यायाः, श्रुतपरिग्रहाः, तप उपधानानि, संलेखनाः, भक्तप्रत्याख्यानानि, पाद-पोपगमनानि, देवलोकगमनानि, सुखपरम्पराः, सुकुलप्रत्यायातयः=देवलोकच्च्यव-

वसरणो का, राजाओं का, उनके माता पिताओं का, धर्मचार्यों का, ऐहलौकिक पारलौकिक ऋद्धिविशेषों का नरक गमन का, संसारमें जन्म लेने की परम्परा का, दुष्कुलोंमें जन्म लेने का, और दुर्लभबोधिता का कथन करनेमें आया है। ये दुःख विपाक कहे गये हैं। अब शिष्य सुख-विपाक के स्वरूप को पूछता है-हे भदन्त! सुखविपाक का स्वरूप क्या है? उत्तर—सुखविपाकोमें सुख रूप फल भोगनेवाले जीवों के नगरों का, उद्यानों का, वनषण्डों का, चैत्यो-व्यन्तरायतनों का, समवसरणों का, राजाओं का, उनके माता पिताओं का, धर्माचार्यों का धर्मकथाओं का उनकी इहलोक संबंधी तथा परलोकसंबंधी ऋद्धियों का भोगों के परित्याग का प्रव्रज्या का पर्यायों का श्रुताध्ययनो का, प्रकृष्टतपों का, संलेखना के आराधन का, भक्तप्रत्याख्यान का, पादपोपगमन का, देवलोकप्राप्ति का,

સમવસરણોનું, રાજાઓનું તેમનું માતાપિતાનું, ધર્માચાર્યોનું, ધર્મકથાઓનું, ઐહલૌકિક પરલૌકિક ઋધિવિશેષોનું, નરકગમનનું, સંસારમાં જન્મ લેવાની પરંપરાનું દુષ્કુળોમાં જન્મલેવાનું, અને દુર્લભ બોધિતાનું વર્ણન કરવામાં આવ્યું છે. એ દુઃખોને વિપાક કહેવામાં આવ્યાં છે. હવે શિષ્ય સુખવિપાકનું સ્વરૂપ પૂછે છે-હે ભદન્ત! સુખવિપાકનું શું સ્વરૂપ છે? ઉત્તર—સુખવિપાકોમાં સુખરૂપ ફળ ભોગવનાર જીવોનાં નગરોનું, ઉદ્યાનોનું, વનષંડોનું, ચૈત્યો-વ્યન્તરાયતનોનું સમવસરણોનું, રાજાઓનું, તેમના માતાપિતાનું, ધર્માચાર્યોનું, ધર્મકથાઓનું, તેમની આલોક સંબંધી તથા પરલોક સંબંધી ઋદ્ધિઓનું, ભોગોના પરિત્યાગનું પ્રવ્રજ્યાનું, પર્યાયોનું, શ્રુતાધ્યયનોનું, પ્રકૃષ્ટ તપોનું, સંલેખનાનાં આરાધનનું, ભક્ત પ્રત્યાખ્યાનનું પાદપોપગમનનું, દેવલોક પ્રાપ્તિનું, સુખોની પરંપરાનું ત્યાંથી

नानन्तरं शोभनकुलेषूत्पत्तयः, पुनर्बोधिलाभाः, अन्तक्रियाश्च आख्यायन्ते। विपाक श्रुतस्य खलु परीताः=संख्येया वाचनाः, संख्येयानि अनुयोगद्वाराणि, यावत् संख्येया वेष्टकाः संख्येया श्लोकाः, संख्येया निर्युक्तयः, संख्येयाः संग्रहण्यः, संख्येया प्रतिपत्तयः। स=विपाकः खलु अङ्गार्थतया एकादशमङ्गम्। अत्र विंशतिरध्ययनानि, विंशतिरुद्देशनकालाः, विंशतिः समुद्देशनकालाः। तथा-संख्येयानि पदसहस्राणि=एकाकोटिश्चतुरशीतिलक्षाणि द्वात्रिंशतसहस्राणि (१८४३२०००) च पदानि पदाग्रेण=पदपरिमाणेन, तथा-संख्येयानि अक्षराणि, अनन्तागमाः अनन्ताः पर्यवाः, 'परीतास्त्रसाः' इत्याद्यारभ्य 'एवं विज्ञाता' इत्यन्तः पाठो बोध्यः। एवम्=उक्तप्रकारेणात्राङ्गे साधूनां चरणकरणप्ररूपणा आख्यायते=कथ्यते। तदेतद् विपाकश्रुतम् ॥ सू० ५९ ॥

सुखों की परम्परा का सुकुलोंमें जन्म धारण करने का, पुनर्बोधि की प्राप्ति होने का, तथा उनकी अन्तक्रिया का-मुक्तिमें पहुंचने का कथन करने में आया है।

विपाकश्रुतमें संख्यातवाचनाएँ है, संख्यात अनुयोग द्वार हैं' संख्यात वेष्टक हैं, संख्यात श्लोक है, संख्यात निर्युक्तियां हैं, संख्यात संग्रहणियाँ हैं, और संख्यात प्रतिपत्तियां हैं। यह विपाक श्रुत अंग की अपेक्षा ग्यारहवां अंग है, इसमें दो श्रुतस्कन्ध बीस अध्ययन हैं, बीस ही उद्देशन काल एवं बीस ही समुद्देशनकाल हैं। इसके संख्यातपद हैं अर्थात् पदों का प्रमाण एक करोड़ चोरासी लाख बत्तीस हजार (१८४३२०००) है। इसमें संख्यात अक्षर हैं, अनंत गम हैं, पर्याय भी अनंत हैं, संख्यात त्रस हैं-यहाँ से लेकर 'इस प्रकार का विज्ञाता दो है'-यहाँ तक समझ-लेना चाहिये।

च्यवीने ते सुकुळोमां जन्म धारण करवानुं, पुनर्बोधिनी प्राप्ति थवानुं तथा तेमनी अन्तक्रियानुं-मोक्षे पहोंचवानुं वर्णन करवामां आव्युं छे.

विपाकश्रुतमां संख्यात वाचनाओ छे. संख्यात अनुयोग द्वार छे, संख्यात वेष्टक छे, संख्यात श्लोक छे, संख्यात निर्युक्तियो छे, संख्यात संग्रहणियो छे अने संख्यात प्रतिपत्तियो छे. अंगोनी अपेक्षाए आ विपाकश्रुत अगीयारमुं अंग छे. तेमां बे श्रुतस्कंधो छे. वीस अध्ययन छे, वीसज उद्देशनकाळ छे अने वीस ज समुद्देशनकाळ छे. तेमां संख्यात पद छे, एटले पदोनुं प्रमाण एक करोड चोर्यासी लाख बत्रीस हजार (१८४३२०००) छे. तेमां संख्यात अक्षर छे. अनंत गम छे, पर्याय पण अनंत छे, संख्यात त्रस छे-अहींथी लईने 'आ प्रकारनो विज्ञाता होय छे'-अहीं सुधी समजी लेवुं जोईए.

प्रवचनपुरुषस्य द्वादशमङ्गमाह—

मूलम्—से किं तं दिट्ठिवाए? दिट्ठिवाए णं सव्वभावपरूवणा आघविज्जइ। से समासओ पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा—परिकम्मे१, सुत्ताइं२, पुव्वगयं३, अणुओगो४, चूलिया५। से किं तं परिकम्मे? परिकम्मे सत्तविहे पण्णत्ते, तं जहा—सिद्धसेणिया परिकम्मे १, मणुसेणियापरिकम्मे २, पुट्ठसेणिया परिकम्मे ३, ओगाढसेणिया परिकम्मे ४, उवसंपज्जणसेणिया परिकम्मे ५, विप्पजहणसेणिया परिकम्मे ६, चुयाचुयसेणिया परिकम्मे ७,

छाया—अथ कोऽसौ दृष्टिवादः? दृष्टिवादे खलु सर्वभावप्ररूपणा आख्यायते, स समासतः पञ्चविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—परिकर्म १, सूत्राणि २, पूर्वगतम् ३, अनुयोगः ४, चूलिका ५, अथ किं तत्परिकर्म?, परिकर्म सप्तविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—सिद्धश्रेणिका परिकर्म १, मनुष्यश्रेणिका परिकर्म २, पृष्टश्रेणिका परिकर्म ३, अवगाढश्रेणिका परिकर्म ४, उपसंपादन श्रेणिका परिकर्म ५, विप्रहाणश्रेणिका परिकर्म ६, च्युताच्युतश्रेणिका परिकर्म ७।

टीका—'से किं तं० दिट्ठिवाए०' इत्यादि।

सम्प्रति द्वादशस्य दृष्टिवादाङ्गस्य स्वरूपं पृच्छति—

अथ कोऽसौ दृष्टिवादः? इति। उत्तरयति—दृष्टिवादे—दृष्टयो=दर्शनानि

इस तरह इस अंग में साधुओं की चरणसत्तरी और करणसत्तरी प्ररूपित करनेमें आई है। यह विपाक श्रुतका स्वरूप है॥ सू० ५५॥

अब सूत्रकार प्रवचन पुरूष के बारहवे अंग दृष्टिवाद का स्वरूप बतलाते हैं—'से किंत दिट्ठिवाए०' इत्यादि।

शिष्य प्रश्न—हे भदन्त! दृष्टिवाद जो बारहवाँ अग है उसका क्या

આ રીતે આ અંગમા સાધુઓની ચરણસત્તરી અને કરણસત્તરી પ્રરૂપિત કરવામાં આવી છે. વિપાકશ્રુતનું આ સ્વરૂપ છે. ॥ સૂ૦ ૫૫ ॥

હવે સૂત્રકાર પ્રવચન પુરુષના બારમાં અંગ-દૃષ્ટિવાદનું સ્વરૂપ બતાવે છે. "से किं तं दिट्ठिवाए०" ઇત્યાદિ-

શિષ્ય પૂછે છે-હે ભદન્ત! દૃષ્ટિવાદ કે જે બારમું અંગ છે તેનું શું

से किं तं सिद्धसेणियापरिकम्मे ?, सिद्धसेणियापरिकम्मे चउद्दसविहे पण्णत्ते, तं जहा—माउगापयाइं १, एगट्टियपयाइं २, अट्ठपयाइं ३, पाढोआगासपयाइं ४, केउभूयं ५, रासिबद्धं ६, एगगुणं ७, दुगुणं ८, तिगुणं, केउभूयं १०, पडिग्गहो ११, संसारपडिग्गहो १२, नंदावत्तं १३, सिद्धावत्तं १४, से त्तं सिद्धसेणिया परिकम्मे ॥ १ ॥

छाया—अथ किं तत् सिद्धश्रेणिका परिकर्म ? सिद्धश्रेणिका परिकर्म चतुर्दशविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—मातृकापदानि १. एकार्थिकपदानि २, अर्थपदानि ३, पृथगाकाशपदानि ४, केतुभूत ५. राशिबद्धम् ६, एकगुणम् ७, द्विगुणं ८, त्रिगुणं ९, केतुभूतं १०, प्रतिग्रहः ११, संसारप्रतिग्रहः १२, नन्दावर्त्त १३, सिद्धावर्त्तम् १४, तदेतत्सिद्ध श्रेणिकापरिकर्म ॥ १ ॥

मतानि, वदनं—वादः, दृष्टिनां वादः=कथनं यत्र स तस्मिन्, यद्वा—दृष्टीनां=सर्वनय दृष्टीनां वादः=कथनं यत्र स तस्मिन्, सर्वभाव प्ररूपणा—सर्वे च ते भावाः—सर्वभावाः—जीवादयः सकलपदार्थाः धर्मास्तिकायादयो वा, तेषां प्ररूपणा आख्यायते। स दृष्टिवादः खलु समासतः=संक्षेपतः पञ्चविधः=पञ्चप्रकारः प्रज्ञप्तः=कथितः सर्वमिदं दृष्टिवादाङ्ग प्रायो विच्छिन्नं, तथापि यथोपलब्धं किंचिल्लिख्यते, तद्यथा—परिकर्म १, सूत्राणि २, पूर्वगतम् ३, अनुयोगः ४, चूलिका ५, चेति । पञ्चप-

---

स्वरूप है ? उत्तर—इसमें दर्शनों का अथवा सर्वनयों की दृष्टियों का कथन किया गया हैं, इसलिये इस का नाम दृष्टिवाद हुआ है। इस दृष्टिवाद अंगमें समस्त जीवादिक पदार्थों की अथवा धर्मास्तिकायादिकों की प्ररूपणा करनेमें आई है। यह अंग संक्षेप से पांच प्रकार का है, वह प्रकार यह हैं—परिकर्म १, सूत्र २, पूर्वगत ३, अनुयोग ४, एवं चूलिका ५। यद्यपि यह

સ્વરૂપ છે? ઉત્તર—તેમાં દર્શનોનું અથવા સર્વનયોની દૃષ્ટિઓનું કથન કરાયું છે તેથી તેનું નામ દૃષ્ટિવાદ પડયું છે આ દૃષ્ટિવાદ અંગમાં સમસ્ત જીવાદિક પદાર્થોની અથવા ધર્માસ્તિકાયાદિકોની પ્રરૂપણા કરવામાં આવી છે આ અંગ સંક્ષિપ્તમાં પાંચ પ્રકારનું છે. તે પ્રકારો આ પ્રમાણે છે–(૧) પરિકર્મ, (૨) સૂત્ર, (૩) પૂર્વગત, (૪) અનુયોગ અને (૫) ચૂલિકા. જો કે આ આખું દૃષ્ટિવાદ અંગ

कारेऽस्मिन् दृष्टिवादे प्रथमः प्रकारः कीदृशः? इति पृच्छति-अथ किं तत् परिकर्म? इति। उत्तरयति-परिकर्म=सूत्रादि ग्रहण-योग्यतासंपादनम् अवस्थितस्य वस्तुनो गुणाधान वा, तद्धेतुत्वात् शास्त्रमपि परिकर्मेत्युच्यते, तद्धि सप्तविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा-सिद्धश्रेणिकापरिकर्म १, मनुष्यश्रेणिका परिकर्म २, पृष्टश्रेणिका परिकर्म ३, अवगाहनश्रेणिका परिकर्म ४, उपसंपादनश्रेणिका परिकर्म ५, विप्रहाणश्रेणिका परिकर्म ६, च्युताच्युतश्रेणिका परिकर्म च ७ इति।

अथ किं तत् सिद्धश्रेणिका परिकर्म? इति प्रश्नः। उत्तरयति-सिद्धश्रेणिका परिकर्म चतुर्दशविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा-मातृकापदानि १, एकार्थिकपदानि-एक=

समस्त दृष्टिवाद अंग प्रायः विच्छिन्न हो चुका है फिर भी जो कुछ उपलब्ध हुआ है उस पर कुछ लिखा जाता है—

शिष्य पूछता है-हे भदन्त! परिकर्म का क्या स्वरूप है?

उत्तर—सूत्रादिकों के ग्रहण करने की योग्यता का संपादन करना, अथवा अवस्थित वस्तु का गुणधान करना इसका नाम परिकर्म है। इस परिकर्म का हेतु होने से शास्त्र भी परिकर्म शब्द से व्यवहृत हो गया है। यह परिकर्म सात प्रकार का कहा है, जैसे-सिद्धश्रेणि का परिकर्म १, मनुष्यश्रेणि का परिकर्म २, पृष्टश्रेणि का परिकर्म ३, अवगाढश्रेणि का परिकर्म ४, उपसंपादनश्रेणि का परिकर्म ५, विप्रहाणश्रेणि का परिकर्म ६ तथा च्युताच्युतश्रेणि का परिकर्म ७। अब शिष्य पूछता है-हे भदन्त! सिद्धश्रेणिका परिकर्म का क्या स्वरूप है?

उत्तर—सिद्धश्रेणि का परिकर्म चौदह प्रकार का कहा गया है, वे

વિચ્છિન્ન થઈ ગયું છે તો પણ જે કંઈ ઉપલબ્ધ થયું છે. તે વિષે થોડું લખવામાં આવે છે-

શિષ્ય પૂછે છે—હે ભદન્ત પરિકર્મનું શું સ્વરૂપ છે?

ઉત્તર—સૂત્રાદિકોને ગ્રહણ કરવાની યોગ્યતા પ્રાપ્ત કરવી અથવા અવસ્થિત વસ્તુના ગુણાધાન કરવા તેને પરિકર્મ કહે છે. આ પરિકર્મનો હેતુ હોવાથી શાસ્ત્ર પણ પરિકર્મ શબ્દથી વ્યવહૃત થઈ ગયું છે. એ પરિકર્મ સાત પ્રકારના જેવાં કે—(૧) સિદ્ધશ્રેણિકાપરિકર્મ (૨) મનુષ્યશ્રેણિકાપરિકર્મ, (૩) પૃષ્ટ શ્રેણિકાપરિકર્મ, (૪) અવગાઢ શ્રેણિકાપરિકર્મ, (૫) ઉપસંપાદનશ્રેણિકા પરિકર્મ, (૬) વિપ્રહાણશ્રેણિકાપરિકર્મ, તથા (૭) ચ્યુતાચ્યુતશ્રેણિકાપરિકર્મ,

હવે શિષ્ય પૂછે છે-હે ભદન્ત! સિદ્ધ શ્રેણિકાપરિકર્મનું શું સ્વરૂપ છે?

ઉત્તર—સિદ્ધ શ્રેણિકા પરિકર્મ નીચે પ્રમાણે ચૌદ પ્રકારનું કહેલ છે-

से किं तं मणुस्ससेणियापरिकम्मे ?, मणुस्ससेणियापरिकम्मे चउद्दसविहे पण्णत्ते, तं जहा-माउगापयाइं १, एगट्ठियपयाइं २, अट्ठपयाइं ३, पाढोआगसपयाइं ४, केउभूयं ५, रासिबद्धं ६, एगगुणं ७, दुगुणं ८, तिगुणं ९, केउभूयं १०, पडिग्गहो ११, संसारपडिग्गहो १२, नंदावत्तं १३, मणुस्सावत्तं १४; से त्तं मणुस्ससेणियापरिकम्मे ॥ २ ॥

अथ किं तन्मनुष्यश्रेणिकापरिकर्म ?, मनुष्यश्रेणिकापरिकर्म चतुर्दशविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा-मातृकापदानि १, एकार्थिकपदानि २, अर्थपदानि ३, पृथगाकाशपदानि ४, केतुभूतं ५, राशिबद्धम् ६, एकगुणं ७, द्विगुणं ८, त्रिगुणं ९, केतुभूतं १०, प्रतिग्रहः ११, संसारप्रतिग्रहः १२, नन्दावर्त्त १३, मनुष्यावर्त्तम् १४, तदेतन्मनुष्यश्रेणिकापरिकर्म ॥ २ ॥

समानोऽर्थ एकार्थः, सोऽस्ति येषां तानि एकार्थिकानि, तानि च पदानि चेति कर्मधारयः २, अर्थपदानि ३, पृथगाकाशपदानि ४, केतुभूतं ५, राशिबद्धम् ६, एकगुणम् ७, द्विगुणं ८, त्रिगुणं ९, केतुभूतं १०, प्रतिग्रहः ११, संसारप्रतिग्रहः १२, नन्दावर्त्त १३, सिद्धावर्त्तम् १४। तदेतत् सिद्धश्रेणिकापरिकर्म ॥ १ ॥

अथ किं तन्मनुष्यश्रेणिकापरिकर्म ? इति प्रश्नः। उत्तरयति—मनुष्यश्रेणिकापरिकर्म चतुर्दशविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा-मातृकापदानीत्यादि । अत्र मातृकापदा-

---

प्रकार ये हैं-मातृकापद १, एकार्थिकपद २, अर्थपद ३, पृथगाकाशपद ४, केतुभूत ५, राशिबद्ध ६, एकगुण ७, द्विगुण ८. त्रिगुण ९, केतुभूत १०, प्रतिग्रह ११ संसारप्रतिग्रह १२, नंदावर्त १३, और सिद्धावर्त १४। इस प्रकार यह सिद्धश्रेणि का परिकर्म का स्वरूप है ॥१॥

शिष्यप्रश्न—मनुष्यश्रेणि का परिकर्म का क्या स्वरूप है ?

उत्तर—मनुष्यश्रेणिका परिकर्म भी चौदह प्रकार का है, वे प्रकार

---

(१) માતૃકાપદ, (२) એકાર્થિકપદ, (૩) અર્થપદ, (૪) પૃથગાકાશપદ, (૫) કેતુભૂત, (૬) રાશિબદ્ધ, (૭) એકગુણ, (૮) દ્વિગુણ, (૯) ત્રિગુણ, (૧૦) કેતુભૂત, (૧૧) પ્રતિગ્રહ, (૧૨) સંસારપ્રતિગ્રહ. (૧૩) નંદાવર્ત અને (૧૪) સિદ્ધાવર્ત. આ પ્રકારનું આ સિદ્ધશ્રેણિકાપરિકર્મનું સ્વરૂપ છે.

શિષ્ય પૂછે છે-મનુષ્યશ્રેણિકાપરિકર્મનું શું સ્વરૂપ છે ?

ઉત્તર—મનુષ્યશ્રેણિકાપરિકર્મ પણ નીચે પ્રમાણે ચૌદ પ્રકારનું છે-(૧)

से किं तं पुट्ठसेणियापरिकम्मे? पुट्ठसेणियापरिकम्मे इक्कारसविहे पण्णत्ते, तं जहा—पाढोआगासपयाइं १, केउभूयं २, रासिबद्धं ३, एगगुणं ४, दुगुणं ५, तिगुणं ६, केउभूयं ७, पडिग्गहो ८, संसारपडिग्गहो ९, नंदावत्तं १०, पुट्ठावत्तं ११, से त्तं पुट्ठसेणिया परिकम्मे ॥ ३ ॥

अथ किं तत् पृष्टश्रेणिकापरिकर्म?, पृष्टश्रेणिकापरिकर्म एकादशविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—पृथगाकाशपदानि १, केतुभूतं २, राशिबद्धम् ३, एकगुणं ४, द्विगुणं ५, त्रिगुणं ६, केतुभूतं ७, प्रतिग्रहः ८, संसारप्रतिग्रहः ९, नन्दावर्त्त १०, पृष्टावर्त्तम् १०, तदेतत्पृष्टश्रेणिकापरिकर्म ॥ ३ ॥

न्यारभ्य नन्दावर्त्तं यावत् पूर्वोक्तान्येव त्रयोदश परिकर्माणि, चतुर्दशं तु परिकर्म मनुष्यावर्त्तम्। तदेतन्मनुष्यश्रेणिकापरिकर्म १४। तदुभयोः संकलनेऽष्टाविंशतिभेदाः २८। अवशेषाणि परिकर्माणि पृष्टादिकानि = पृष्टश्रेणिकापरिकर्मादीनि च्युताच्युतश्रेणिकापरिकर्मान्तानि पञ्चविधान्यवशिष्टानि परिकर्माणि प्रत्येकमेकादशविधानि, तथाहि—पृष्टश्रेणिकापरिकर्म—पृथगाकाशपदान्यारभ्य पृष्टावर्त्तपर्यन्तमेका-

---

ये हैं—मातृकापद १, एकार्थिकपद २, अर्थपद ३, आदि तेरह भेदसिद्धश्रेणिकापरिकर्म जैसे ही हैं केवल चौदहवें भेद का नाम 'मनुष्यावर्त' है। यह मनुष्यश्रेणिकापरिकर्म का स्वरूप है। इन दोनों के भेदों को मिलाने से अट्ठाईस भेद होते हैं २८। अवशिष्ट पृष्टश्रेणिकापरिकर्म से लेकर जो च्युताच्युतश्रेणिकापरिकर्म तक के पांच भेद और बचते हैं वे सब ग्यारह ग्यारह प्रकार के हैं। इनमें प्रत्येक के 'पृथगाकाशपद' से लेकर दश दश भेद तो पूर्वोक्त ही हैं, अन्तिम एक एक भेद अपने

માતૃકાપદ, (૨) એકાર્થિકપદ, (૩) અર્થપદ આદિ તેર ભેદ સિદ્ધશ્રેણિકાપરિકર્મ જેવાં જ છે, ફક્ત ચૌદમાં ભેદનું નામ મનુષ્યાવર્ત છે. આ મનુષ્યશ્રેણિકાપરિકર્મનું સ્વરૂપ છે. આ બન્નેના ભેદનો સરવાળો કરતાં કુલ અટ્ઠાવીસ (૨૮) ભેદ થાય છે. બાકીના પૃષ્ટશ્રેણિકાપરિકર્મથી માંડીને ચ્યુતાચ્યુતશ્રેણિકાપરિકર્મ સુધીના જે પાંચ ભેદ રહે છે તે દરેક અગીયાર અગીયાર પ્રકારના છે, તે પ્રત્યેકમાં 'પૃથગાકાશપદ' થી માંડીને દશ દશ ભેદતો આગળ કહ્યા પ્રમાણે જ છે, અન્તિમ એક એક ભેદ પોત-પોતાના નામપ્રમાણે સ્વતંત્ર છે, તે બતાવવામાં આવે છે—પૃષ્ટ-

से किं तं ओगाढसेणियापरिकम्मे ?, ओगाढसेणियापरिकम्मे इक्कारसविहे पण्णत्ते, तं जहा-पाढोआगासपयाइं १, केउभूयं २, रासिबद्धं ३, एगगुणं ४, दुगुणं ५, तिगुणं ६, केउभूयं ७, पडिग्गहो, ८, संसारपडिग्गहो ९, नंदावत्तं १०, ओगाढावत्तं ११; ओगाढसेणियापरिकम्मे ॥ ४ ॥

से किं तं उवसंपज्जणसेणियापरिकम्मे ? उवसंपज्जणसेणियापरिकम्मे इक्कारसविहे पण्णत्ते, तंजहा-पाढोआगासपयाइं १, केउभूयं २, रासिबद्धं ३, एगगुणं ४, दुगुणं ५, तिगुणं ६, केउभूयं ७, पडिग्गहो ८, संसारपडिग्गहो ९, नंदावत्तं १०, उवसंपज्जणावत्तं ११; से त्तं उवसंपज्जणसेणियापरिकम्मे ॥ ५ ॥

अथ किं तत् अवगाढश्रेणिकापरिकर्म ? अवगाढश्रेणिकापरिकर्म एकादशविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा-पृथगाकाशपदानि १, केतुभूतं २, राशिबद्धम् ३, एकगुणम् ४, द्विगुणं ५, त्रिगुणं ६, केतुभूतं ७, प्रतिग्रहः ८, संसारपरिग्रहः ९, नन्दावर्त्तम् १०, अवगाढावर्त्तं ११; तदेतदवगाढश्रेणिकापरिकर्म ॥ ४ ॥

अथ किं तत् उपसंपादनश्रेणिका परिकर्म ? उपसंपादनश्रेणिकापरिकर्म एकादशविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा-पृथगाकाशपदानि १, केतुभूतं २, राशिबद्धम् ३, एकगुणं ४, द्विगुणं ५, त्रिगुणं ६, केतुभूतं ७, प्रतिग्रहः ८, संसारप्रतिग्रहः ९, नन्दावर्त्तम् १०, उपसम्पादनावर्त्तम् ११; तदेतत् उपसम्पादनश्रेणिकापरिकर्म ॥ ५ ॥

दशविधम् १ । अवगाढश्रेणिकापरिकर्म-पृथगाकाशपदान्यारभ्यावगाढावर्त्तपर्यन्तमेकादशविधम् २ । उपसंपादनश्रेणिकापरिकर्म-पृथगाकाशपदान्यारभ्योपसंपादनाव-

---

अपने नाम से स्वतन्त्र हैं, उन्हें दिखलाते हैं-पृष्टश्रेणिकापरिकर्म के 'पृथगाकाशपद' से लेकर 'नन्दावर्त' तक दश और ग्यारहवां 'पृष्टावर्त' है। इसी प्रकार अवगाढश्रेणिकापरिकर्म का ग्यारहवां भेद 'अवगाढावर्त' है। उपसंपादनश्रेणिकापरिकर्म का ग्यारहवां भेद 'उपसंपादनावर्त' है,

---

श्रेणिकापरिकर्मना 'पृथगाकाशपद' थी मांडीने 'नन्दावर्त्त' सुधी दस अने अगीयारमो 'पृष्टावर्त्त' भेद छे. एज प्रमाणे अवगाढश्रेणिकापरिकर्मनो अगीयारमो भेद 'अवगाढावर्त्त' छे. उपसंपादनश्रेणिकापरिकर्मनो अगीया-

से किं तं विप्पजहणसेणियापरिकम्मे? विप्पजहणसेणियापरिकम्मे इक्कारसविहे पण्णत्ते, तं जहा—पाढोआगासपयाइं १, केउभूयं २, रासिबद्धं ३, एगगुणं ४, दुगुणं ५, तिगुणं ६, केउभूयं ७, पडिग्गहो ८, संसारपडिग्गहो ९, नंदावत्तं १०, विप्पजहणावत्तं ११; से त्तं विप्पजहणसेणियापरिकम्मे ॥ ६ ॥

से किं तं चुयाचुयसेणियापरिकम्मे? चुयाचुयसेणियापरिकम्मे इक्कारसविहे पण्णत्ते, तं जहा—पाढो आगासपयाइं १, केउभूयं २, रासिबद्धं ३, एगगुणं ४, दुगुणं ५, तिगुणं ६, केउभूयं ७, पडिग्गहो ८, संसारपरिग्गहो ९, नंदावत्तं १०, चुयाचुयवत्तं ११; से त्तं चुयाचुयसेणियापरिकम्मे ॥ ७ ॥ छ चउक्कनइयाइं सत्त तेरासियाइं, से त्तं परिकम्मे ॥ १ ॥

अथ किं तद् विप्रहाणश्रेणिका परिकर्म? विप्रहाणश्रेणिका परिकर्म एकादशविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—पृथगाकाशपदानि १, केतुभूतं २, राशिबद्धम् ३, एकगुणं४, द्विगुणं ५, त्रिगुणं ६, केतुभूतं ७, प्रतिग्रहः ८, संसारप्रतिग्रहः ९, नन्दावर्त्तं १०, विप्रहाणावर्त्तम् ११; तदेतत् विप्रहाणश्रेणिकापरिकर्म ॥ ६ ॥

अथ किं तत् च्युताच्युतश्रेणिकापरिकर्म? च्युताच्युतश्रेणिका परिकर्म एकादशविधं प्रज्ञप्तम् , तद्यथा—पृथगाकाशपदानि १, केतुभूतं २, राशिबद्धम् ३, एकगुणं ४, द्विगुणं ५, त्रिगुणं ६, केतुभूतं ७, प्रतिग्रहः ८, संसारप्रतिग्रहः ९, नन्दावर्त्त१०, च्युताच्युतावर्त्तम् ११, तदेतच्च्युताच्युतश्रेणिकापरिकर्म ॥ ७ ॥

र्त्तपर्यन्तमेकादशविधम् ३। विप्रहाणश्रेणिकापरिकर्म—पृथगाकाशपदान्यारभ्य विप्रहाणावर्त्तपर्यन्तमेकादशविधम् ४। च्युताच्युतश्रेणिकापरिकर्म—पृथगाकाशपदान्यारभ्य च्युताच्युतावर्त्तपर्यन्तमेकादशविधम् ५। इत्थमेते पञ्चपञ्चाशद्भेदाः ५५। एतेषु

विप्रहाणश्रेणिकापरिकर्म का ग्यारहवां भेद 'विप्रहाणावर्त' है, तथा च्युताच्युतश्रेणिकापरिकर्म का ग्यारहवां भेद 'च्युताच्युतावर्त' है। इस

રમો ભેદ 'ઉપસંપાદનાવર્ત' છે, વિપ્રહાણશ્રેણિકાપરિકર્મનો અગીયારમો ભેદ 'વિપ્રહાણાવર્ત' છે. તથા ચ્યુતાચ્યુતશ્રેણિકાપરિકર્મનો અગીયારમો ભેદ 'ચ્યુતા-

सप्तसु परिकर्मसु आदितः षट् परिकर्माणि चतुष्कनयिकानि—चत्वार एव चतुष्काः, ते च ते नयाश्चेति चतुष्कनयाः, ते सन्ति येषां तानि तथोक्तानि, संग्रह १—व्यवहार २—ऋजुसूत्र ३—शब्दादि ४—रूपचतुर्नययुक्तानि षट् परिकर्माणि स्वसामायिकानि।

अयं भावः—नैगमनयः सांग्राहिकाऽसांग्राहिकभेदेन द्विविधः, तत्र—सांग्राहिकस्य संग्रहे समावेशः, असांग्राहिकस्य तु व्यवहारे समावेशः, शब्दसमभिरूढैवम्भूतास्त्रयो नयाः शब्दादिरूप एक एव नयः, एवं च संग्रहव्यवहारऋजुसूत्रशब्दादिरूपचतुर्नययुक्तानि षट् परिकर्माणि नयचिन्तया स्वसामयिकानीति। तथा सप्त परिकर्माणि त्रैरा-

---

प्रकार इन पांचों के सब भेद मिलाने से पचपन (५५) भेद हो जाते हैं। इस तरह १४–१४–११–११–११–११–११ सब मिलाकर परिकर्म के तिरासी (८३) भेद हो जाते हैं।

परिकर्म के इन सात भेदोंमें आदि के जो छह भेद हैं वे, संग्रह व्यवहार ऋजुसूत्र तथा शब्दादि इन चार नयों से युक्त होने के कारण चतुष्कनयिक हैं, अर्थात् स्वसामयिक हैं। तात्पर्य यह कि—नैगमनय—सांग्राहिक और असांग्राहिक के भेद से दो प्रकार का है, उनमें संग्राहिकनय का संग्रहनयमें समावेश हो जाता है, और असांग्राहिकनय का व्यवहार नयमें समावेश होता है। शब्द, समभिरूढ और एवम्भूत, ये तीन नय 'शब्दादि' इस नाम से एक ही नय माने गये हैं। इस तरह संग्रह व्यवहार ऋजुसूत्र और शब्दादिरूप चार नयों से युक्त छह परिकर्म नयविचार से स्वसामयिक हैं। तथा सात परिकर्म, समस्त वस्तुओं को त्र्यात्मक

च्युतावर्त' छे. આ રીતે એ પાંચેના ભેદોનો સરવાળો પંચાવન (૫૫) થાય. આ રીતે ૧૪–૧૪–૧૧–૧૧–૧૧–૧૧–૧૧ એ બધા મળીને પરિકર્મના ત્યાસી (૮૩) ભેદ થાય છે.

પરિકર્મના એ સાત ભેદોમાં આદિના જે છ ભેદ છે તે, સંગ્રહ, વ્યવહાર, ઋજુસૂત્ર, તથા શબ્દાદિ એ ચાર નયોથી યુક્ત હોવાથી ચતુષ્કનયિક છે, અર્થાત્ સ્વસામયિક છે. તાત્પર્ય એ છે કે નૈગમનય-સાંગ્રાહિક અને અસાંગ્રાહિક ભેદથી બે પ્રકારનો છે, તેમાં સાંગ્રાહિકનયનો સંગ્રહનયમાં સમાવેશ થઈ જાય છે, અને અસાંગ્રાહિકનયનો વ્યવહારનયમાં સમાવેશ થાય છે. શબ્દ, સમભિરૂઢ અને એવંભૂત એ ત્રણ નયને "શબ્દાદિ" એ નામથી એક જ નય ગણેલ છે. આ રીતે સંગ્રહ, વ્યવહાર, ઋજુસૂત્ર અને શબ્દાદિરૂપ ચાર નયોથી યુક્ત છ પરિકર્મ નયવિચારથી સ્વસામયિક છે. તથા સાત પરિકર્મ, સમસ્ત વસ્તુઓને

से किं तं सुत्ताइं? सुत्ताइं बावीसं पन्नत्ताइं, तं जहा—उज्जुसुयं १, परिणयापरिणयं, २ बहुभंगियं ३, विजयचरियं ४, अणंतरं ५, परंपरं ६, आसाणं ७, सजूहं ८, संभिण्णं ९, आहव्वायं १०,

षट् चतुष्कनयिकानि, सप्त त्रैराशिकानि तदेतत् परिकर्म ॥ १ ॥

अथ कानि तानि सूत्राणि? सूत्राणि द्वाविंशतिः प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—ऋजुकं १, परिणतापरिणतम् २, बहुभङ्गिकम् ३, विजयचरितम् ४, अनन्तरम् ५, परम्परम् ६, आसानम् ७, सयूथम् ८, संभिन्नम् ९, यथावादम् १०, सौवस्तिकावर्त्तम् ११,

शिकानि=त्रैराशिकाभिमतानि। आजीविका एव त्रैराशिका उच्यन्ते, यतस्ते सर्वं त्र्यात्मकमिच्छन्ति। तन्मते जीवोऽजीवो जीवाजीवः, लोकोऽलोको लोकालोकः, सत् असत् सदसत्—इत्येवमादि। तथा नयचिन्तायामपि त्रिविधं नयमिच्छन्ति, तद्यथा—द्रव्यार्थिकनयः, पर्यायार्थिकनयः, उभयार्थिकनय इति। एतानि सप्त परिकर्माणि पूर्वापरसंकलनया त्र्यशीतिविधानि भवन्तीति विज्ञेयम्। उपसंहरन्नाह—तदेतत् परिकर्मेति ॥ १ ॥

माननेवाले त्रैराशिकों द्वारा संमत हैं त्रैराशिकमतवाले समस्त वस्तुओं को त्र्यात्मक मानते हैं। उनके मतमें—जीव १, अजीव २, जीवाजीव ३, लोक १ अलोक २, लोकालोक ३, सत् १, असत् २, सदसत् ३, इत्यादिरूप से पदार्थों का विभाग किया गया है। तथा जब नयों का विचार किया गया है तब वहां भी ऐसा ही कहा हुआ है कि नय द्रव्यार्थिक १, पर्यायार्थिक २, एवं उभयार्थिक ३, भेद से तीन प्रकार का है। इस तरह सात परिकर्मों के भेदों का संकलन करने से तिरासी (८३) भेद होते हैं। यह परिकर्म का स्वरूप है ॥१॥

ત્ર્યાત્મક માનનાર ત્રૈરાશિકો દ્વારા સંમત છે. ત્રૈરાશિકમતવાળા સમસ્ત વસ્તુઓને ત્ર્યાત્મક માને છે, તેના મતમાં—(૧) જીવ (૨) અજીવ (૩) જીવાજીવ, (૧) લોક (૨) અલોક (૩) લોકાલોક, (૧) સત (૨) અસત્ (૩) સદસત્—ઈત્યાદિરૂપથી પદાર્થોનો વિભાગ કરવામાં આવ્યો છે. તથા જ્યારે નયોનો વિચાર કરાયો છે ત્યારે પણ તેની બાબતમાં એવું જ કહેલ છે કે નય, (૧) દ્રવ્યાર્થિક, (૨) પર્યાયાર્થિક અને (૩) ઉભયાર્થિક એ ભેદોથી ત્રણ પ્રકારનો છે. આ રીતે સાતે પરિકર્મોના ભેદો એકત્ર કરતાં કુલ ત્યાસી ભેદ થાય છે. આ પરિકર્મનું સ્વરૂપ છે. (૧)

सोवत्थियावत्तं ११, नंदावत्तं १२, बहुलं १३, पुट्ठापुट्ठं १४, वियावित्तं १५, एवंभूयं १६, दुयावत्तं १७, वत्तमाणपयं १८, समभिरूढं १९, सव्वओभद्दं २०, पस्सासं २१, दुपडिग्गहं २२; इच्चेइयाइं बावीसं सुत्ताइं छिन्नच्छेयनइयाणि ससमयसुत्तपरिवाडीए, इच्चेइयाइं बावीसं सुत्ताइं अच्छिन्नच्छेयनइयाइं आजीवियसुत्तपरिवाडीए, इच्चेइयाइं बावीसं सुत्ताइं तिगणइयाइं तेरासियसुत्तपरिवाडीए, इच्चेइयाइं बावीसं सुत्ताइं चउक्कनइयाइं ससमयसुत्तपरिवाडीए। एवामेव सपुव्वावरेणं अट्ठासीई सुत्ताइं भवंतित्तिमक्खायाइं, से त्तं सुत्ताइं ॥ २ ॥

नन्दावर्तम् १२, बहुलम् १३, पृष्टापृष्टम् १४, व्यावर्तम् १५, एवंभूतम् १६, द्विकावर्तम् १७, वर्तमानपदम् १८, समभिरूढम् १९, सर्वतोभद्रम् २०, प्रशिष्यम् २१, दुष्प्रतिग्रहम् २२, इत्येतानि द्वाविंशतिः सूत्राणि छिन्नच्छेदनयिकानि स्वसमयसूत्रपरिपाट्या, इत्येतानि द्वाविंशतिः सूत्राणि अच्छिन्नच्छेदनयिकानि आजीविकसूत्रपरिपाट्या, इत्येतानि द्वाविंशतिः सूत्राणि त्रिनयिकानि त्रैराशिकसूत्रपरिपाट्या, इत्येतानि द्वाविंशतिः सूत्राणि चतुष्कनयिकानि स्वसमयसूत्रपरिपाट्या। एवमेव सपूर्वापरेण अष्टाशीतिः सूत्राणि भवन्तीत्याख्यातानि। तान्येतानि सूत्राणि ॥ २ ॥

अथ द्वितीयं भेदमाह—अथ कानि तानि सूत्राणि? इति। उत्तरयति-सूत्राणि=सर्वद्रव्यपर्यायनयाद्यर्थसूचनात् सूत्राणि द्वाविंशतिः=द्वाविंशतिसंख्यकानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-ऋजुसूत्रम् १, परिणतापरिणतम् २, बहुभङ्गिकम् ३, विजयचरितम् ४, अनन्तरम् ५, परम्परम् ६, आसानम् ७, सयूथम् ८, संभिन्नम् ९, यथावादम् १०,

---

शिष्यप्रश्न-हे भदन्त! दृष्टिवाद का जो द्वितीय भेद सूत्र है उसका क्या स्वरूप है?

उत्तर—सूत्र बाइस प्रकार का है, वे प्रकार ये हैं-ऋजुसूत्र १, परितापरिणत २, बहुभंगिक ३, विजयचरित ४, अनंतर ५, परंपर ६,

---

શિષ્ય પૂછે છે—હે ભદન્ત! દષ્ટિવાદનો જે બીજો ભેદ 'સૂત્ર' છે તેનું શું સ્વરૂપ છે? ઉત્તર—સૂત્ર નીચે પ્રમાણે બાવીસ (૨૨) પ્રકારના છે—(૧) ઋજુસૂત્ર, (૨) પરિણુતાપરિણુત, (૩) બહુભંગિક, (૪) વિજયચરિત, (૫) અનંતર,

सौवस्तिकावर्त्तम् ११, नन्दावर्त्तम् १२, बहुलम् १३, पृष्टापृष्टम् १४, व्यावर्त्तम् १५, एवम्भूतम् १६, द्विकावर्त्तम् १७, वर्त्तमानपदम् १८, समभिरूढम् १९, सर्वतो-भद्रम् २०, प्रशिष्यम् २१, दुष्प्रतिग्रहम् २२। इत्येतानि द्वाविंशतिः सूत्राणि छिन्नच्छेदनयिकानि=छिन्नं छेदेनेच्छति यो नयः स छिन्नच्छेदनयः, यथा—'धम्मो मंगलमुक्किट्ठं' इत्यादिश्लोकः सूत्रार्थतः प्रत्येकच्छेदेन स्थितो न द्विती-यादिश्लोकमपेक्षते, इत्यत्र छिन्नच्छेदनयोऽस्ति येषां तानि छिन्नच्छेदनयिकानि स्वसमयपरिपाटया। अयं भावः—जिनसिद्धान्तानुसारेण ऋजुसूत्रादीनि द्वाविंशतिः सूत्राणि छिन्नच्छेदनयिकानीति। तथा आजीविकसूत्रपरिपाटया इत्येतानि द्वाविंशतिः

आसान ७, संयूथ ८, संभिन्न ९, यथावाद १०, सौवस्तिक ११, नंदा-वर्त १२, बहुल १३, पृष्टापृष्ट १४, व्यावर्त १५, एवंभूत १६, द्विकावर्त १७, वर्तमानपद १८, समभिरूढ १९, सर्वतोभद्र २०, प्रशिष्य २१, और दुष्प्र-तिग्रह २२। ये बाईस सूत्र जिनसिद्धान्त के अनुसार छिन्नच्छेदनयिक हैं। जो नय छेद से–पदच्छेद से छिन्न पदके–श्लोकगत भिन्न २ पदके अर्थ का बोधक होता है वह छिन्नच्छेद नय है। जैसे–"धम्मो मंगलमुक्किट्ठं" यह श्लोक है। यह श्लोक सूत्रार्थ की अपेक्षा भिन्न २ पद वाला है। इसमें इसके अर्थ को समझने के लिये द्वितीयश्लोकगत पदों की अपेक्षा नहीं पडती है। तात्पर्य इसका यह है कि जिस श्लोक के अर्थ का बोध उसी श्लोकमें रहे हुए भिन्न २ पदों द्वारा हो जाता है, इसके समझने के लिये अन्य श्लोक-गत पदों की अपेक्षा नहीं करनी पडती है और न दूसरे श्लोकों के पदों की वहां आवृत्ति ही लेनी पड़ती है वे सब श्लोक छिन्नच्छेदनयिक हैं।

---

(६) પર પર, (७) આસાન, (८) સંયૂથ, (९) સંભિન્ન, (१०) યથાવાદ, (११) સૌવસ્તિક, (११) નંદાવર્ત, (१३) બહુલ, (१४) પૃષ્ટાપૃષ્ટ, (१५) વ્યાવર્ત્ત, (१६) એવંભૂત, (१७) દ્વિકાવર્ત્ત, (१८) વર્તમાનપદ, (१९) સમભિરૂઢ (२०) સર્વતોભદ્ર, (२१) પ્રશિષ્ય, અને (२२) દુષ્પ્રતિગ્રહ. આ બાવીસ સૂત્ર જૈનસિદ્ધાંતઅનુસાર છિન્નચ્છેદનયિક છે. જે નય છેદથી–પદચ્છેદથી છિન્ન પદના–શ્લોકગત જુદા જુદા પદના અર્થનો બોધક થાય છે તે છિન્નચ્છેદનય છે. જેમકે "धम्मो मंगलमुक्किट्ठं". આ શ્લોક છે. આ શ્લોક સૂત્રાર્થની અપેક્ષાએ ભિન્ન ભિન્ન પદવાળો છે. તેમાં તેના અર્થને સમજાવવા માટે દ્વિતીય શ્લોકમાં આવેલ પદોની જરૂર પડતી નથી, તેનું તાત્પર્ય એ છે કે જે શ્લોકના અર્થનો બોધ એજ શ્લોકમાં રહેલ ભિન્ન ભિન્ન પદો દ્વારા થઇ જાય છે, તેને સમજવાને માટે બીજા શ્લોકમાં આવેલ પદોની જરૂર પડતી નથી અને બીજા શ્લોકોના પદોની ત્યા આવૃત્તિ જ લેવી પડતી નથી. એ બધા શ્લોક છિન્નચ્છેદનયિક કહેવાય છે. તથા આજીવિકમતા-

सूत्राणि अच्छिन्नच्छेदनयिकानि, यो नयः सूत्रमच्छिन्नं छेदेनेच्छति सोऽच्छिन्नच्छेदनयः, अत्र नये –'धम्मो मंगलमुक्किट्ठं' इत्यादिः प्रथमः श्लोको द्वितीयादि श्लोकमपेक्षमाणस्तिष्ठति द्वितीयादि श्लोकोऽपि प्रथमं श्लोकम् अपेक्षमाणस्तिष्ठति, अर्थादन्योऽन्यसापेक्षस्तिष्ठति, सोऽस्ति येषां तानि अच्छिन्नच्छेदनयिकानि। अयंभावः–आजीवकमते ऋजुकादीनि द्वाविंशतिः सूत्राणि परस्परसापेक्षाणि सन्तीति। तथा–इत्येतानि द्वाविंशतिः सूत्राणि त्रिकनयिकानि त्रैराशिकसूत्रपरिपाट्या। अयं भावः–त्रैराशिकानां परिपाट्या ऋजु सूत्रादीनि द्वाविंशतिः सूत्राणि द्रव्यार्थिका पर्यायार्थिकोभयार्थिकेति नयत्रिकवन्ति सन्तीति। तथा इत्येतानि द्वाविंशतिः सूत्राणि चतुष्कनयिकानि स्वसमयसूत्रपरिपाट्या। अयं भावः–जिनसिद्धान्त सूत्र

तथा आजीविक मतानुसार ये बाईस सूत्र अच्छिन्नच्छेदनयिक हैं। तात्पर्य इसका यह है कि ये ऋजुसूत्रादिक बाईस सूत्र अपने २ अर्थ का बोध कराने के लिये एक दुसरे के पदों की अपेक्षा रखते हैं। जैसे–धम्मो मंगलमुक्किट्ठं" यह श्लोक छिन्नच्छेदनयकी अपेक्षा अपने अर्थ का बोध स्वतंत्ररूप से करता है, परन्तु इस अच्छिन्नछेदनय की अपेक्षा यह श्लोक अपने अर्थ का बोध कराने के लिये द्वितीयश्लोक गत पदों की अपेक्षा रखता है, तथा द्वितीय श्लोक अपने अर्थ का बोध कराने के लिये प्रथम श्लोक की अपेक्षा रखता है, ऐसी मान्यता आजीविकासिद्धान्त मानने वालों की है। तथा ये ऋजुसूत्रादिक बईस सूत्र द्रव्यार्थिक, पर्यायार्थिक एवं उभयार्थिक, इन तीनों नयों की अपेक्षा वाले हैं, ऐसी मान्यता त्रैराशिक मतवालों की है। तथा ये ऋजुसूत्रादिक बाईस सूत्र चतुष्क नय वाले हैं, ऐसी मान्यता जिनसिद्धान्त को माननेवालों की है। संग्रहनय,

---

નુસાર એ બાવીસ સૂત્ર અચ્છિન્નચ્છેદ નયિક છે. તેનું તાત્પર્ય એ છે કે તે ઋજુ-સૂત્રાદિક બાવીસ સૂત્ર પોત–પોતાના અર્થના બોધક થવાને માટે એક બીજાનાં પદોની અપેક્ષા રાખે છે. જેમકે "धम्मो मंगलमुक्किट्ठं" આ શ્લોક છિન્નચ્છેદનયની અપેક્ષાએ પોતાના અર્થનો બોધ સ્વતંત્રરૂપે કરે છે. પણ તે અચ્છિન્નચ્છેદ નયની અપેક્ષાએ આ શ્લોક પોતાના અર્થનો બોધ કરાવવાને માટે દ્વિતીય શ્લોકમાં આવેલ પદોની અપેક્ષા રાખે છે, તથા દ્વિતીય શ્લોક પોતાના અર્થનો બોધ કરાવવાને માટે પ્રથમ શ્લોકની અપેક્ષા રાખે છે, એવી માન્યતા આજીવક સિદ્ધાંતને માનનારાઓની છે. તથા આ ઋજુસૂત્રાદિક બાવીસ સૂત્ર દ્રવ્યાર્થિક, પર્યાયાર્થિક, અને ઉભયાર્થિક, એ ત્રણ નયોની અપેક્ષા વાળાં છે, એવી માન્યતા ત્રૈરાશિક મતવાળાઓની છે. તથા આ ઋજુસૂત્રાદિક બાવીસ સૂત્ર ચતુષ્કનયવાળાં છે. એવી માન્યતા જિન સિદ્ધાંત–માનનારાઓની છે. સંગ્રહનય, વ્યવહારનય, ઋજુસૂત્ર-

से किं तं पुव्वगए? पुव्वगए चउद्दसविहे पण्णत्ते, तं जहा-उप्पायपुव्वं १, अग्गाणीयं २, वीरियं ३, अत्थिनत्थिप्पवायं ४, नाणप्पवायं ५, सच्चप्पवायं ६, आयप्पवायं ७, कम्मप्पवायं ८, पच्चक्खाणप्पवायं ९, विज्जाणुप्पवायं १०, अवंझं ११, पाणाऊ १२, किरियाविसालं १३, लोगबिंदुसारं १४।

अथ किं तत् पूर्वगतम्? पूर्वगतं चतुर्दशविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा-उत्पादपूर्वम् १, अग्रायणीयम् २, वीर्यम् ३, अस्तिनास्तिप्रवादम् ४, ज्ञानप्रवादम् ५, सत्यप्रवादम् ६, आत्मप्रवादम् ७, कर्मप्रवादम् ८, प्रत्याख्यानप्रवादम् ९, विद्यानुप्रवादम् १०, अवन्ध्यं ११, प्राणायुः १२, क्रियाविशालं १३, लोकबिन्दुसारम् १४। उत्पादपूर्वस्य खलु दशवस्तूनि, चत्वारि चूलिकावस्तूनि प्रज्ञप्तानि १, अग्रायणीयपूर्वस्य

परिपाटया ऋजुसूत्रादीनि द्वाविंशतिः सूत्राणि संग्रह १, व्यवहार २, ऋजुसूत्र ३, शब्दादि ४, नय चतुष्कयुक्तानि सन्तीति। एवमेव सपूर्वापरेण=पूर्वापरसंकलनया अष्टाशातिः सूत्राणि भवन्तीत्याख्यातम्। उपसंहरन्नाह—'से त्तं सुत्ताइं' तान्येतानि सूत्राणि=त्वज्जिज्ञासितानि सूत्राण्येतान्येवेति ॥ २ ॥

व्यवहारनय, ऋजुसूत्रनय एवं शब्दादिनय ये चार नय हैं। जिनसिद्धान्तसूत्र परिपाटी के अनुसार ये बाईस सूत्र इन चार नयों वाले हैं, ऐसी मान्यता स्व सामयिक है। इस तरह इन सब मान्यताओं के अनुसार सूत्रके अट्ठासी प्रकार हो जाते हैं। छिन्नच्छेदनय, अच्छिन्नच्छेदनय, चतुष्कनय और त्रिनय, इन चारोंमें छिन्नच्छेदनय और चतुष्कनय ये दोनों स्वसिद्धान्त-जिनसिद्धान्त संमत हैं, अच्छिन्नच्छेदनय, आजीवक संमत है और त्रिनय, त्रैराशिक-संमत है। ये सब सूत्र हैं, अर्थात् यह दृष्टिवाद के दुसरे सूत्र नाम के भेद का स्वरूप है ॥२॥

નય અને શબ્દાદિનય એ ચાર નય છે. જૈન સિદ્ધાન્ત સૂત્રની પરમ્પરા પ્રમાણે તે બાવીસ સૂત્ર આ ચાર નયોવાળાં છે, એવી માન્યતા સ્વસામાયિક છે. આ રીતે એ બધી માન્યતાઓ પ્રમાણે સૂત્રના અઠયાસી (૮૮) પ્રકાર થાય છે. છિન્નચ્છેદનય, અચ્છિન્નચ્છેદનય, ચતુષ્કનય અને ત્રિનય એ ચારેમાં છિન્નચ્છેદનય, અને ચતુષ્કનય એ બન્ને સ્વસિદ્ધાંત-જૈન સિદ્ધાંત સંમત છે, અચ્છિન્નચ્છેદનય, આજીવકસંમત છે, અને ત્રિનય ત્રૈરાશિકસંમત છે. એ બધાં સૂત્ર છે, એટલે દૃષ્ટિવાદના બીજા 'સૂત્ર' નામના ભેદનું સ્વરૂપ છે. (૨)

अथ तृतीयभेदमाह—से किं तं पुव्वगयं ' अथ किं तत् पूर्वगतम् ? इति । उत्तरयति—पूर्वगतं चतुर्दशविधं प्रज्ञप्तं, अयंभाव–तीर्थकृतो हि तीर्थ प्रवर्तनकाले गणधरेभ्यः सकलसूत्राधारकत्वेन पूर्वं पूर्वगतं सूत्रार्थमेव भाषन्ते, तदनुगणधराः प्रथमं पूर्वगतमेव रचयन्ति, तत आचाराङ्गादिकम् । ' सव्वेसिं आयारोपढमो ' इति तु क्रमन्यासमपेक्ष्य प्रोच्यते, अक्षररचनापेक्षया तु पूर्वगतश्रुतमेव प्रथमम् । तत्पूर्वगतश्रुतं चतुर्दशविधं कथितम् । तदेवाह—तद्यथा–प्रथमम् उत्पादपूर्वम्–अत्र सर्व द्रव्याणां सर्वपर्यायाणां चोत्पादभावमङ्गीकृत्य प्रज्ञापना कृता । अस्य पदपरिमाणमेका कोटिः । द्वितीयम्–अग्रायणीयम्–अत्र हि सर्वेषां

अब दृष्टिवाद के तीसरे भेद पूर्वगत का स्वरूप कहते हैं–' से किं तं पुव्वगयं० ' इत्यादि ।

शिष्य प्रश्न—पूर्वगत जो दृष्टिवाद का तीसरा भेद है उसका क्या स्वरूप है ?

उत्तर—पूर्वगत चौदह प्रकार का है । तीर्थंकर प्रभु तीर्थप्रवर्तन के समय गणधरों के लिये सर्वप्रथम सकल सूत्रों का आधार भूत होने से पूर्वगत सूत्रार्थ की ही प्ररूपणा करते हैं । बादमें गणधर भगवान सब से पहिले पूर्वगत सूत्र ही रचते हैं, पश्चात् आचारांग आदि । " सव्वेसिं आयारो पढमो " ऐसा जो कहा जाता है वह क्रमन्यास की अपेक्षा से ही कहा गया जानना चाहिये । अक्षर रचना की अपेक्षा से तो पूर्वगत श्रुत ही सर्वप्रथम है । बादमें और अंग–आचारादिक हैं । पूर्वगत श्रुत के चौदह प्रकार ये हैं–उत्पादपूर्व १, अग्रायणीयपूर्व २, वीर्यप्रवादपूर्व

હવે દૃષ્ટિવાદના ત્રીજા ભેદ " પૂર્વગત " નું સ્વરૂપ વર્ણવે છે–" से किं तं पुव्वगयं ? " ઈત્યાદિ.

શિષ્ય પૂછે છે–દૃષ્ટિવાદનો જે ત્રીજો ભેદ 'પૂર્વગત' છે તેનું શું સ્વરૂપ છે ?

ઉત્તરઃ—પૂર્વગત ચૌદ પ્રકારનું છે. તીર્થંકર પ્રભુ તીર્થપ્રવર્તનને સમયે ગણધરોને માટે સૌથી પહેલા સકળ સૂત્રોનું આધારભૂત હોવાંથી પૂર્વગત સૂત્રાર્થની જ પ્રરૂપણા કરે છે, ત્યાર બાદ ગણધર ભગવાન સૌથી પહેલાં પૂર્વગત સૂત્ર જ રચે છે. ત્યાર પછી આચારાંગ આદિ " सव्वेसिं आयारो पढमो " એમ જે કહેવામાં આવે છે તે ક્રમન્યાસની અપેક્ષાએ જ કહેલ માનવું જોઈએ. અક્ષર રચનાની અપેક્ષાએ તો પૂર્વગત શ્રુત જ સૌથી પહેલું છે. પછી બીજાં અંગ–આચારાંગ આદિ. પૂર્વગત શ્રુતના ચૌદ પ્રકાર છે–(૧) ઉત્પાદપૂર્વ, (૨) અગ્રાયણીય

द्रव्याणां पर्यायाणां जीवविशेषाणां च अग्रं=परिमाणं वर्ण्यते इत्यत इदं पूर्वमग्रायणीयम्। अत्र षण्णवति लक्षाणि पदानि सन्ति। तृतीयं-वीर्यं=वीर्यप्रवादम्, अत्र कर्मसहितानां तद्रहितानां च जीवाजीवानां वीर्यं प्रोच्यते इत्यतो वीर्यप्रवाद-मेतदुच्यते। अस्य पदपरिमाणं सप्ततिलक्षात्मकम्। चतुर्थम्-अस्ति नास्तिप्रवादम्-यद्यल्लोके यथाऽस्ति यथा वा नास्ति अथवा-स्याद्वादाभिप्रायेण 'तदेवास्ति तदेव नास्ति' इत्येवं प्रवदति यत्तत्। अत्र पदपरिमाणं षष्टि लक्षात्मकम्। पञ्चमं ज्ञान-

---

३, अस्तिनास्तिप्रवादपूर्व ४, ज्ञानप्रवादपूर्व ५, सत्यप्रवादपूर्व ६, आत्मप्रवादपूर्व ७, कर्मप्रवादपूर्व ८, प्रत्याख्यानप्रवादपूर्व ९, विद्यानुप्रवादपूर्व १०, अवन्ध्यपूर्व ११, प्राणायुपूर्व १२, क्रियाविशालपूर्व १३, तथा लोकबिन्दुसारपूर्व १४। उत्पादपुर्वमें समस्तद्रव्यों एवं उनकी पर्यायों की, उत्पादभाव को लेकर प्ररूपणा की गई है। इसके पदों का प्रमाण एक करोड़ है।१। अग्रायणीय नाम के द्वितीय पुर्वमें समस्त जीवादिक द्रव्यों का, उनकी पर्यायों का और जीवविशेषों का परिमाण वर्णित हुआ है। इसके पदों का परिमाण छयान्नवे ९६ लाख है।२। तीसरे-वीर्य प्रवाद पुर्वमें कर्म सहित एवं कर्मरहित जीवों का तथा अजीवों का वर्णन हुआ है। इसके पदों का परिमाण सत्तर ७० लाख है।३। चौथे-अस्तिनास्ति प्रवादपुर्वमें स्याद्वाद सिद्धान्तानुसार यह बतलाया गया है कि लोकमें जो भी कुछ है वह किस अपेक्षा अस्तिरूप है और किस अपेक्षा नास्तिरूप है। इसके पदों का परिमाण ६० लाख है ४। पांचवे-ज्ञान प्रवाद पूर्वमें मतिज्ञान

પૂર્વ, (૩) વીર્યપ્રવાદપૂર્વ, (૪) અસ્તિનાસ્તિપ્રવાદપૂર્વ, (૫) જ્ઞાનપ્રવાદપૂર્વ, (૬) સત્યપ્રવાદપૂર્વ, (૭) આત્મપ્રવાદપૂર્વ, (૮) કર્મપ્રવાદપૂર્વ, (૯) પ્રત્યાખ્યાનપ્રવાદપૂર્વ, (૧૦) વિદ્યાનુપ્રવાદપૂર્વ, (૧૧) અવન્ધ્યપૂર્વ, (૧૨) પ્રાણાયુ-પૂર્વ, (૧૩) ક્રિયાવિશાલપૂર્વ, (૧૪) તથા લોકબિન્દુસારપૂર્વ. (૧) ઉત્પાદપૂર્વમાં સમસ્ત દ્રવ્યો અને તેમની પર્યાયોની ઉત્પાદ ભાવને લઈને પ્રરૂપણા કરેલ છે. તેના પદોનું પ્રમાણ એક કરોડ છે. (૨) અગ્રાયણીય નામના બીજા પૂર્વમાં સમસ્ત જીવાદિક દ્રવ્યોનું, તેમની પર્યાયોનું, અને જીવવિશેષાનું પ્રમાણ વર્ણવ્યું છે, તેમાં છન્નું લાખ (૯૬૦૦૦૦૦) પદો છે. (૩) ત્રીજા વીર્યપ્રવાદ પૂર્વમાં કર્મ સહિત અને કર્મ રહિત જીવોનું તથા અજીવોનું વર્ણન થયું છે. તેમાં (૭૦) સીત્તેર લાખ પદો છે. (૪) ચોથા અસ્તિનાસ્તિ પ્રવાદ પૂર્વમાં સ્યાદ્વાદ સિદ્ધાંન્તાનુસાર એ બતાવ્યું છે કે લોકમાં જે કંઇ પણ છે તે કઈ અપેક્ષાએ નાસ્તિરૂપ છે અને કઇ અપેક્ષાએ અસ્તિરૂપ છે. તેમાં સાઈઠ (૬૦) લાખ પદો છે.

प्रवादम्, अत्र मत्यादीनां पञ्चानां ज्ञानानां भेदप्ररूपणा यस्मादस्ति तस्मादिदं पूर्वं ज्ञानप्रवादमुच्यते। अत्र पदपरिमाणमेकपदन्यूनैका कोटिः। षष्ठं सत्यप्रवादम्-सत्यं=संयमः सत्यवचनं वा, तद्यत्र सभेदं सप्रतिपक्षं च वर्ण्यते तत्सत्यप्रवादम्, तस्य पदपरिमाणं षडधिकैककोटिः। सप्तमम्-आत्मप्रवादम्-यत्र नयदर्शनपूर्वक-मात्माऽनेकधा वर्ण्यते तत्। तस्य पदसंख्या षड्त्रिंशतिकोटिप्रमाणा। अष्टमं कर्म-प्रवादम्-ज्ञानावरणीयादिकमष्टविधं कर्म यत्र प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशादिभि र्भेदैरितरैश्चोत्तरोत्तर भेदैर्वर्ण्यते तत्। पदपरिमाणं चास्य एकाकोटिरशीतिश्च सहस्राणि। नवमं-प्रत्याख्यानप्रवादम्-अत्र यतः सर्वप्रत्याख्यानस्वरूपं वर्ण्यते तत इदं प्रत्याख्यानप्रवादमुच्यते। अत्र पद संख्या चतुरशीतिलक्षाणि। दशमं-विद्यानुप्रवा-

---

आदि पांच ज्ञान के भेदों की प्ररूपणा हुई है। इस के पदों का प्रमाण एक पद कम एक करोड़ है ५। छठे-सत्यप्रवादपूर्वमें सत्य अर्थात्-संयम, अथवा सत्यवचन का भेद सहित, एवं प्रतिपक्षसहित वर्णन हुआ है। इस के पदों का परिमाण छ ६ अधिक एक करोड़ है ६। सातवें आत्म-प्रवादपूर्व में नयों की मान्यतानुसार आत्मद्रव्य का अनेक प्रकार से वर्णन हुआ है। इस के पदों का परिमाण छब्बीस २६ करोड़ है ७। आठवें-कर्मप्रवादपूर्व में ज्ञानावरणीय आदि आठ प्रकार के कर्मों का प्रकृति स्थिति अनुभाग तथा प्रदेश आदि भेदों द्वारा, तथा और भी उत्तरोत्तर भेदों द्वारा वर्णन करने में आया है। इस के पदों का परिमाण एक १ करोड ८० अस्सी हजार है ८। नौवें-प्रत्याख्यानप्रवादपूर्व में समस्त प्रत्याख्यानों के स्वरूप का कथन किया गया है। इसके पदों का परिमाण

---

(૫) પાંચમાં જ્ઞાનપ્રવાદપૂર્વમાં મતિજ્ઞાન આદિ પાંચ ભેદોની પ્રરૂપણા થઈ છે. તેમાં એક કરોડમાં એક ન્યૂન પદ છે. (૬) છઠ્ઠાં સત્યપ્રવાદપૂર્વમાં સત્ય એટલે સંયમ અથવા સત્યવચનના ભેદસહિત અને પ્રતિપક્ષ સહિત વર્ણન થયું છે. તેના પદોનું પ્રમાણ એક કરોડ અને છન્નું છે. (૭) સાતમાં આત્મપ્રવાદ પૂર્વમાં નયોની માન્યતા પ્રમાણે આત્મ દ્રવ્યનું અનેક પ્રકારે વર્ણન થયું છે. તેના પદોનું પ્રમાણ છવીસ (૨૬) કરોડ છે. (૮) આઠમાં કર્મપ્રવાદપૂર્વમાં જ્ઞાનાવરણીય આદિ આઠ પ્રકારનાં કર્મનું પ્રકૃતિ, સ્થિતિ, અનુભાગ તથા પ્રદેશ આદિ ભેદો દ્વારા અને બીજા પણ ઉત્તરોત્તર ભેદો દ્વારા વર્ણન કરાયું છે. તેના પદોનું પ્રમાણ એક કરોડ એંસી હજાર છે. (૯) નવમાં પ્રત્યાખ્યાન પ્રવાદ પૂર્વમાં સમસ્ત પ્રત્યાખ્યાનોનાં સ્વરૂપનું વર્ણન કરવામાં આવ્યું છે. તેના પદોનું

दम्, विद्यानुप्रवादेऽनेके विद्यातिशया वर्णिताः। तस्य पदपरिमाणमेका कोटिर्दश च लक्षाणि। एकादशम्-अवन्ध्यम्-वन्ध्यं=निष्फलम्, न वन्ध्यमवन्ध्यं सफलमित्यर्थः, अत्र हि सर्वे ज्ञानातपास्संयमयोगाः शुभफलेन सफला वर्ण्यन्ते, अप्रशस्ताश्च प्रमादादिकाः सर्वेऽशुभफला वर्ण्यन्ते, अत इदमवन्ध्यमुच्यते। अस्य पदपरिमाणं षड्विंशतिकोटिपरिमितम्। द्वादशं-प्राणायुः-अत्र आयुषः प्राणस्य च वर्णनं सभेदमुपदर्श्यते, तथा-अन्येऽपि च प्राणा उप दर्श्यन्ते। अस्य पदपरिमाणमेका-कोटिः षट्पञ्चाशच्चलक्षाणि। त्रयोदशं क्रियाविशालं=क्रियाः=कायिक्यादयः संयमक्रियाच्छन्दक्रियादयश्च ताभिर्विशालं=विस्तीर्णं यत् तत्। अस्य पदपरिमाणं नवकोटयः। चतुर्दशं-लोकबिन्दुसारम्-इदं चास्मिन् लोके श्रुत लोके वा बिन्दुरिवाक्षरस्य सर्वोत्तममिति. सर्वाक्षरसन्निपातप्रतिष्ठितत्वेन लोकबिन्दुसारमुच्यते। अस्य पदपरिमाणमर्द्धत्रयोदशकोटयः।

---

८४ चोरासी लाख है ९। दसवें-विद्यानुप्रवादपूर्व में विद्याओं के अनेक अतिशय वर्णित हुए हैं। इस के पदों का परिमाण १ एक करोड १० दस लाख है १०। ग्यारहवे अवन्ध्यप्रवादपूर्व में ज्ञान, तप एवं संयम तथा शुभयोग ये सब सफल-शुभफल प्रदायक होते हैं तथा अप्रशस्त जितने भी प्रमाद आदि हैं वे सब अशुभ फलवाले होते हैं, यह विषय वर्णित हुआ है। इस के पदों का परिमाण २६ छब्बीस करोड़ है ११। बारहवें-प्राणायुपूर्व में आयु और प्राग का तथा अन्य और भी प्राणों का भेद सहित वर्णन हुआ है। इस के पदों का प्रमाण १ एक करोड़ ५६ छप्पन लाख है १२। तेरहवें-क्रियाविशालपूर्व में कायि की आदि क्रियाओं के भेदों का तथा संयमक्रियाओं के एवं छंदक्रियाओं के भेदों का वर्णन किया गया है। इस के पदों का परिमाण ९ नौ करोड़ है १३। चौदहवांपूर्व जो लोक-

---

પ્રમાણ ચોર્યાસી (૮૪) લાખ છે (૧૦) દસમાં વિદ્યાનુપ્રવાદપૂર્વમાં વિદ્યાઓના અનેક અતિશયનું વર્ણન કરાયું છે, તેના પદોનું પ્રમાણ એક કરોડ દસ લાખ છે. (૧૧) અગીયારમાં અવન્ધ્યપ્રવાદપૂર્વમાં જ્ઞાન, તપ, અને સંયમ તથા શુભયોગ એ બધા શુભફળ પ્રદાયક હોય છે, તથા પ્રમાદ આદિ જે અપ્રશસ્ત છે તે અશુભફળ દેનાર છે, આ વિષયનું વર્ણન કરાયું છે. તેમા છવીસ કરોડ (૨૬૦૦૦૦૦૦) પદો છે, (૧૨) બારમાં પ્રાણાયુપૂર્વનાં આયુ અને પ્રણના તથા બીજાં પ્રાણોનું ભેદસહિત વર્ણન થયું છે તેમા પદોનું પ્રમાણ એક કરોડ છપ્પન લાખ છે. (૧૩) તેરમાં ક્રિયાવિશાલપૂર્વમાં કાયિકી આદિ ક્રિયાઓના ભેદોનું તથા સંયમ ક્રિયાઓ અને છંદક્રિયાઓના ભેદોનું વર્ણન થયુ છે. તેમાં નવ કરોડ પદો છે. (૧૪) ચૌદમું જે લોકબિન્દુસારપૂર્વ છે તે અક્ષર પર

उप्पायपुव्वस्स णं दस वत्थू, चत्तारि चूलियावत्थू पण्णत्ता १। अग्गाणीयपुव्वस चोद्दस वत्थू, दुबालस चूलियावत्थू पण्णत्ता२। वीरियपुव्वस्स णं अट्ठवत्थू अट्ठचूलियावत्थू पण्णत्ता३। अत्थिणत्थिप्प-

खलु चतुर्दश वस्तूनि, द्वादश चूलिका वस्तूनि प्रज्ञप्तानि २, वीर्यपूर्वस्य खलु अष्ट- वस्तूनि, अष्ट चूलिका वस्तूनि प्रज्ञप्तानि ३। अस्तिनास्तिप्रवादपूर्वस्य खलु अष्टा

उत्पादपूर्वस्य खलु वस्तूनि प्रज्ञप्तानि, निश्चितार्थाधिकार-प्रतिबद्धोऽध्ययन- सदृशो ग्रन्थविशेषो वस्तु प्रोच्यते। तथा चत्वारि चूलिका वस्तूनि=चूडा इव चूडाः, इह दृष्टिवादे परिकर्मसूत्रपूर्वगतानुयोगेष्वनुक्तार्थानां संग्रहपरा ग्रन्थपद्धतयश्चूडा- शब्देनाभिधीयन्ते, चूडा एव चूलिकाः, डलयोरेकत्वस्मरणात्। तासां वस्तूनि प्रज्ञप्तानि। अग्रायणीयस्य खलु पूर्वस्य चतुर्दश वस्तूनि प्रज्ञप्तानि, तथा-द्वादश चूलिकावस्तूनि प्रज्ञप्तानि। वीर्य पूर्वस्य खलु अष्ट वस्तूनि प्रज्ञप्तानि, तथा-अष्ट चूलि-

बिन्दुसार है वह अक्षर पर बिन्दु के समान, इस लोकमें अथवा श्रुतलोक में सर्वोत्तम माना गया है। इस में सर्वाक्षरसंनिपात लब्धि आदि लब्धियों का वर्णन है, इस के पदों का परिमाण साढे बारह १२॥ करोड़ है १४।

निश्चित अर्थाधिकार से प्रतिबद्ध अध्ययन के जैसा जो ग्रन्थविशेष होता है उसका नाम वस्तु है। उत्पाद पूर्व की दश वस्तुएं हैं, तथा चार चूलि का वस्तु हैं। दृष्टिवाद के परिकर्म, सूत्र, पूर्वगत एवं अनुयोग इन चार भेदों में जो अर्थ नहीं कहा गया है उस अर्थ का संग्रह करने वाली जो ग्रन्थपद्धति है वह 'चूड़ा' शब्द का वाच्यार्थ है। 'चूडा' के समान जो हो वह चूलि का है। कहीं २ 'ड़' और 'ल' में भेद नहीं माना जाता है, अतः चूड़िका या चूलिका एक ही है। इन की वस्तु का नाम चूलि का वस्तु है १। दूसरे-अग्रायणीयपूर्व की चौदह वस्तुएँ, एवं बारह

બિન્દુના જેવા આલોકમાં અથવા શ્રુતલોકમાં સર્વોત્તમ મનાયુ છે તેમાં સર્વા- ક્ષર સંનિપાત લબ્ધિ આદિ લબ્ધિઓનું વર્ણન છે, તેમાં સાડા બાર કરોડ પદો છે.

નિશ્ચિત અર્થાધિકારથી પ્રતિબદ્ધ અધ્યયનના જેવો જે ગ્રન્થવિશેષ હોય છે તેનું નામ વસ્તુ છે ઉત્પાદ પૂર્વની દસ વસ્તુ છે. તથા ચાર ચૂલિકા વસ્તુ છે. દૃષ્ટિવાદના પરિકર્મ, સૂત્ર, પૂર્વગત, અને અનુયોગ એ ચાર ભેદોમાં જે અર્થ કહેવાયો ન હોય તે અર્થનો સંગ્રહ કરનારી જે ગ્રન્થપદ્ધતિ છે તે ચૂડા શબ્દનો વાચ્યાર્થ છે ચૂડાના જેવી જે હોય તે ચૂલિકા કહેવાય છે. ક્યાંક ક્યાંક "ड" અને "ल" માં ભેદ મનાતો નથી, તેથી ચૂડિકા કે ચૂલિકા એક જ છે. તેમની વસ્તુનું નામ ચૂલિકા વસ્તુ છે (૧) બીજા અગ્રાણીય પૂર્વની ચૌદ વસ્તુઓ તથા

वायपुव्वस्स णं अट्ठारसवत्थू, दस चूलियावत्थू पण्णत्ता४। नाणप्पवायपुव्वस्स णं बारसवत्थू पण्णत्ता ५, सच्चप्पवायपुव्वस्स णं दोण्णिवत्थू पण्णत्ता ६, आयप्पवायपुव्वस्स णं सोलसवत्थू पण्णत्ता ७, कम्मप्पवायपुव्वस्स णं तीसंवत्थू पण्णत्ता ८, पच्चक्खाणपुव्वस णं वीसंवत्थू पण्णत्ता ९, विज्जाणुप्पवाय पुव्वस्स णं पन्नरसवत्थू पण्णत्ता १०, अवंझपुव्वस्स णं बारस वत्थू

दशवस्तूनि दश चूलिकावस्तूनि प्रज्ञप्तानि ४। ज्ञानप्रवादपूर्वस्य खलु द्वादशवस्तूनि प्रज्ञप्तानि ५। सत्यप्रवादपूर्वस्य खलु द्वे वस्तूनि प्रज्ञप्ते ६। आत्मप्रवादपूर्वस्य खलु षोडश वस्तूनि प्रज्ञप्तानि ७। कर्मप्रवादपूर्वस्य खलु त्रिंशद् वस्तूनि प्रज्ञप्तानि ८। प्रत्याख्यानपूर्वस्य खलु विंशतिर्वस्तूनि प्रज्ञप्तानि ९। विद्यानुप्रवादपूर्वस्य खलु

कावस्तूनि प्रज्ञप्तानि। अस्तिनास्तिप्रवादपूर्वस्य खलु अष्टादश वस्तूनि प्रज्ञप्तानि, तथा–दश चूलिकावस्तूनि प्रज्ञप्तानि। ज्ञानप्रवाद पूर्वस्य खलु द्वादश वस्तूनि प्रज्ञप्तानि। सत्यप्रवाद पूर्वस्य खलु द्वे वस्तुनी प्रज्ञप्ते। आत्मप्रवाद पूर्वस्य खलु षोडश वस्तूनि प्रज्ञप्तानि। कर्मप्रवादपूर्वस्य खलु त्रिंशद् वस्तूनि प्रज्ञप्तानि। प्रत्याख्यान पूर्वस्य खलु विंशतिर्वस्तूनि प्रज्ञप्तानि। विद्यानुप्रवाद पूर्वस्य खलु पञ्चदशवस्तूनिप्रज्ञप्तानि।

चूलिका वस्तुएँ हैं २। तीसरे–वीर्यप्रवादपूर्व की आठ वस्तुएँ, तथा आठ ही चूलिका वस्तुएँ हैं ३। चौथे–अस्तिनास्ति प्रवादपूर्व की अठारह वस्तुएँ तथा दस चूलिका वस्तुएँ हैं ४। पांचवें–ज्ञानप्रवादपूर्व की बारह वस्तुएँ हैं ५। छठे–सत्यप्रवादपूर्व की दो वस्तुएं हैं ६। सातवें–आत्मप्रवादपूर्व की सोलह वस्तुएँ हैं ७। आठवें–कर्मप्रवादपूर्व की तीस वस्तुएँ ८ है। नौवें–प्रत्याख्यानपूर्व की वीस वस्तुएँ हैं ९। दसवें–विद्यानुप्रवादपूर्व की पन्द्रह

બાર ચૂલિકા વસ્તુઓ છે (૨). ત્રીજાં વીર્યવાદ પૂર્વની આઠ વસ્તુઓ તથા આઠ જ ચૂલિકાવસ્તુઓ છે. (૩). ચોથાં અસ્તિનાસ્તિ પ્રવાદ પૂર્વની અઢાર વસ્તુઓ તથા દસ ચૂલિકા વસ્તુઓ છે (૪). પાચમાં જ્ઞાનપ્રવાદ પૂર્વની બાર વસ્તુઓ છે (૫) (૫). છઠ્ઠા સત્યપ્રવાદપૂર્વની બે વસ્તુઓ છે (૬). સાતમા આત્મપ્રવાદપૂર્વની સોળ વસ્તુઓ છે (૭). આઠમાં કર્મપ્રવાદપૂર્વની ત્રીસ વસ્તુઓ છે (૮). નવમાં પ્રત્યાખ્યાનપૂર્વની વીસ વસ્તુઓ છે (૯). દસમાં વિદ્યાનુપ્રવાદપૂર્વની પંદર વસ્તુઓ

पण्णत्ता ११, पाणाऊपुव्वस्स णं तेरस वत्थू पण्णत्ता १२, किरियाविसालपुव्वस णं तीसं वत्थू पण्णत्ता १३, लोगबिंदुसारपुव्स्स णं पण्णवीसंवत्थू पण्णत्ता १४।

गाहा-"दस १ चोद्दह २ अट्ठ ३ ट्ठारसे ४ व, बारस ५ दुवे य वत्थूणि।

सोलस ७ तीसा ८ वीसा ९ पन्नरस अणुप्पवायम्मि॥१॥

पञ्चदशवस्तूनि प्रज्ञप्तानि १०। अबन्ध्यपूर्वस्य खलु द्वादश वस्तूनि प्रज्ञप्तानि ११। प्राणायुःपूर्वस्य खलु त्रयोदश वस्तूनि प्रज्ञप्तानि १२। क्रियाविशालपूर्वस्य खलु त्रिंशद्वस्तूनि प्रज्ञप्तानि १३। लोकविन्दुसारपूर्वस्य खलु पञ्चविंशतिर्वस्तूनि प्रज्ञप्तानि १४।

गाहा—"दश चतुर्दशाष्टाष्टादशैव द्वादश द्वे च वस्तूनि।
षोडश त्रिंशद् विंशतिः पञ्चदशानु प्रवादे॥१॥

अवन्ध्यपूर्वस्य खलु द्वादशवस्तूनिप्रज्ञप्तानि। प्राणायुःपूर्वस्य खलु त्रयोदशवस्तूनि प्रज्ञप्तानि। क्रियाविशालपूर्वस्य खलु त्रिंशद्वस्तूनिप्रज्ञप्तानि। लोकबिन्दुसारपूर्वस्य खलु पञ्चविंशतिर्वस्तूनिप्रज्ञप्तानि। एतदेव संक्षेपेणाह—

"दश चोद्दस अट्ठऽट्ठारसेव, बारस दुवे य वत्थूणि।
सोलस तीसा वीसा पन्नरस अणुप्पवायम्मि॥१॥

वस्तुएँ हैं १०। ग्यारहवें-अवंध्यपूर्व की बारह वस्तुएँ हैं ११। बारहवें-प्राणायुपूर्व की तेरह वस्तुएँ हैं १२। तेरहवें-क्रियाविशालपूर्व की तीस वस्तुएँ हैं १३। चौदहवें लोकबिन्दुसारपूर्व की पच्चीस वस्तुएँ हैं-ऐसा जिनेन्द्र देव ने कहा है। यही विषय संक्षेप से "दस चोद्दस" इत्यादि गाथाओं द्वारा स्पष्ट समझाया गया है। इस प्रकार यह पूर्वगत का स्वरूप है।३।

છે (૧૦). અગીયારમાં અવંધ્યપૂર્વની બાર વસ્તુઓ છે (૧૧). બારમાં પ્રાણાયુ-પૂર્વની તેર વસ્તુઓ છે (૧૨). તેરમાં ક્રિયાવિશાલપૂર્વની ત્રીસ વસ્તુઓ છે (૧૩). ચૌદમાં લોકબિન્દુસારપૂર્વની પચીસ વસ્તુઓ છે એવું જિનેન્દ્ર દેવે કહેલ છે. એજ વિષય સંક્ષિપ્તમાં "दस चोद्दस" ઇત્યાદિ ગાથાઓ દ્વારા સ્પષ્ટ સમજાવ્યો છે. આ પ્રમાણે આ પૂર્વગતનું સ્વરૂપ છે. (૩)

बारस एक्कारसमे ११, बारसमे तेरसेव १२ वत्थूणि ।
तीसा पुण तेरसमे १३, चोदसमे पन्नवीसाओ १४ ॥२॥

चत्तारि १ दुवालस २, अट्ठ ३ चेव दस ४ चेव चूल्ल वत्थूणि। आइल्लाण चउण्हं, सेसाणं चूलिया णत्थि ॥३॥

से त्तं पुव्वगए ॥३॥

से किं तं अणुओगे ?, अणुओगे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा— मूलपढमाणुओगे य गंडियाणुओगे य । से किं तं मूलपढमा-

द्वादशैकादशे द्वादशे त्रयोदशैव वस्तूनि ।
त्रिंशत् पुनस्त्रयोदशे चतुर्दशे पञ्चविंशतिः ॥ २ ॥
चत्वारि द्वादशाष्ट चैव दश चैव चूलिका वस्तूनि ।
आदिमानां चतुर्णां चूलिकाः शेषाणां चूलिका न सन्ति " ॥ ३ ॥

तदेतत्पूर्वगतम् ॥ ३ ॥

अथ कोऽसावनुयोगः ? अनुयोगो द्विविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—मूलप्रथमानुयोगो गण्डिकानुयोगश्च । अथ कोऽसौ मूल प्रथमानुयोगः ? मूलप्रथमानुयोगे खलु

बारस एक्कारसमे बारसमे तेरसेव वत्थूणि ।
तीसा पुण तेरसमे चउदसमे पण्णवीसाओ " ॥ २ ॥

छया—दश चतुर्दशाष्टाष्टा दशैव द्वादश द्वे च वस्तूनि ।
षोडश त्रिंशद् विंशतिः पञ्चदशानु प्रवादे ॥ १ ॥
द्वादशैकादशे द्वादशे त्रयोदशैव वस्तूनि ।
त्रिंशत्पुनस्त्रयोदशे चतुर्दशे पञ्चविंशतिः ॥ २ ॥

तथा—" चत्तारि दुवालस अट्ठ चेव दसचेव चूलवत्थूणि ।
आःल्लाण चउण्हं, सेसाणं चूलियाणत्थि ॥ ३ ॥

छाया—चत्वारि द्वादशाष्ट चैव दश चैव चूलिका वस्तूनि ।
आदिमानां चतुर्णां, शेषाणां चूलिका न सन्ति ॥ ३ ॥ इति ।

उपसंहरन्नाह—तदेतत्पूर्वगतम् । इति ॥

अथ चतुर्थ भेदमाह— ' से किं तं अणुओगे० ' इत्यादि । ' अथ कोऽसावनुयोगः ' इति । उत्तरयति—अनुयोगः=अनु-अनुकूलोऽनुरूपो वा योगः-सूत्रस्य

णुओगे ? मूलपढमाणुओगे णं अरहंताणं भगवंताणं पुव्वभवा, देवलोगगमणाइं, आउं, चवणाइं, जम्मणाणि, अभिसेया; रायवरसिरीओ, पव्वज्जाओ, तवा य उग्गा केवलनाणुप्पायाओ, तित्थपवत्तणाणि य, सीसा, गणा, गणहरा, अज्जा, पवत्तणीओ,

अर्हतां भगवतां पूर्वभवाः देवलोकगमनानि आयुः, च्यवनानि, जन्मानि, अभिषेकाः राजवरश्रियः, प्रव्रज्याः, तपांसि च उग्राणि, केवलज्ञानोत्पादः, तीर्थ प्रवर्त्तनानि च,

स्वाभिधेयेन सह संबन्धोऽनुयोगः, स द्विविधः प्रज्ञप्तः, द्वैविध्यमेवाह—'तं जहा०' इत्यादिना, तद्यथा—मूलप्रथमानुयोगः, गण्डिकानुयोगश्च । तत्र पुनः पृच्छति—अथ कोऽसौ मूल प्रथमानुयोगः ? इति । उत्तरयति—मूलप्रथमानुयोगे खलु अर्हतां भगवतां पूर्वभवाः=पूर्वजन्मानि, देवलोकगमनानि, आयुः च्यवनानि, जन्मानि अभिषेकाः, राजवरश्रियः, प्रव्रज्याः, उग्राणि=घोराणि च तपांसि, कवलज्ञानोत्पादाः,

अब चौथे भेद अनुयोग का स्वरूप कहते हैं—'से किं तं अणुओगे०' इत्यादि। शिष्य पुछता है—हे भदन्त । अनुयोग का क्या स्वरूप है ?

उत्तर—सूत्र का जो अपने अभिधेय के साथ अनुकूल अथवा अनुरूप संबंध हो उस का नाम अनुयोग है। अर्थात्-सूत्र के अनुकूल अर्थ करना अनुयोग है । यह अनुयोग दो प्रकार का है, वे प्रकार ये हैं—मूलप्रथमानुयोग और गण्डिकानुयोग ।

शिष्य प्रश्न—मूलप्रथमनुयोग का क्या स्वरूप है ?

उत्तर—मूलप्रथमानुयोग में अर्हन्त भगवान के पूर्वभवों का, देवलोक में उन की उत्पत्ति होने का उन की आयु का, देवलोक से उन के च्यवन का, उनके जन्म का, उनके अभिषेक का, उन की राजलक्ष्मी—विभूति का

હવે ચોથા ભેદ-અનુયોગનું સ્વરૂપ કહે છે-"से किं तं अणुओगे" ઈત્યાદિ. શિષ્ય પૂછે છે-હે ભદન્ત! અનુયોગનુ શું સ્વરૂપ છે?

ઉત્તર—સૂત્રને જે પોતાના અભિધેયની સાથે અનુકૂળ અથવા અનુરૂપ સંબંધ હોય તેનું નામ અનુયોગ છે. એટલે કે સૂત્રનો અનુકૂળ અર્થ કરવો તેને અનુયોગ કહે છે. આ અનુયોગ બે પ્રકારનો છે-મૂલપ્રથમાનુયોગ અને ગડિકાનુયોગ.

શિષ્ય પૂછે છે-મૂલપ્રથમાનુયોગનું શું સ્વરૂપ છે ?

ઉત્તર—મૂલપ્રથમાનુયોગમાં અર્હંત ભગવાનના પૂર્વભવોનું, દેવલોકમાં તેમની ઉત્પત્તિ થવાનુ, તેમના આયુનું, દેવલોકથી તેમના ચ્યવનનું, તેમના જન્મનું, તેમના અભિષેકનુ, તેમની રાજલક્ષ્મી-વિભૂતિનું, તેમની પ્રવ્રજ્યાનું,

संघस्स चउव्विहस्स जं च परिमाणं, जिणमणपज्जव ओहिनाणी, सम्मत्त सुय नाणिणो य वाई, अणुत्तरगई य, उत्तरवेउव्विणो य मुणिणो, सिद्धिपहो जह देसिओ जच्चिरं च कालं, पाओवगया जत्तिया सिद्धा, गया जे जहिं जत्तियाइं भत्ताइं अणसणाए

शिष्याः, गणाः, गणधराः, आर्याः, प्रवर्त्तिन्यः, संघस्य चतुर्विधस्य यच्च परिमाणं जिनमनः पर्यवावधि ज्ञानिनः, समस्त श्रुतज्ञानिनश्च, वादिनः, अनुत्तरगतयश्च, उत्तरवैकुर्विणश्च मुनयो, यावन्तः सिद्धाः, सिद्धिपथो यथा देशितः, यावच्चिरं च कालं पादपोपगताः, ये यत्र यावन्ति भक्तानि छित्त्वा अन्तकृतो मुनिवरोत्तमास्तिमिरौ-

तीर्थप्रवर्त्तनानि च, शिष्याः, गणाः, गणधराश्च, आर्याः, प्रवर्त्तिन्यः, संघस्य चतुर्विधस्य यच्च परिमाणम्, जिनमनः पर्यवावधिज्ञानिनः-तत्र-जिना इति=केवलिनः, मनः-पर्यवावधिज्ञाने येषां ते मनः पर्यवावधि ज्ञानिनः, जिनाश्च मनः पर्यवावधि ज्ञानिनश्चेति द्वन्द्वः; तथा-समस्तश्रुतज्ञानिश्च, वादिनः, अनुत्तरगतयश्च, उत्तरवैकुर्विणश्च, तथा यावन्तः सिद्धाः, यच्चिरं च कालं पादपोपगताः-तथा-यो यत्र यावन्ति भक्तानि छेदयित्वा अन्तकृतो मुनिवरोत्तमः, तिमिरौघविप्रमुक्तः-तिमिरम्=

उनकी प्रव्रज्या का, उनकी घोर तपस्या का, उनके केवलज्ञान की उत्पत्ति होने का, उनके तीर्थ प्रवर्तन का, उनके शिष्यों का, उनके गणों का उनके गणधरों का, उनकी आर्यायों का और आर्यायों के गच्छ की प्रवर्तिनियों का, उनके चतुर्विधसंघ के परिमाण का, केवलज्ञानियों का, मनः पर्ययज्ञानियों का, अवधिज्ञानियों का समस्त श्रुतज्ञानियों का, वादियों का, अनुत्तर विमानों में उत्पत्ति होने का, उत्तर वैक्रियलब्धिधारियों का तथा जितने सिद्ध हुए हैं उन का, तथा-जो जितने काल तक पादपोपगमन किये उस काल का, तथा जहां जितने अनशन कर के अन्तकृत केवली

તેમની ઘોર તપસ્યાનું, તેમને કેવળજ્ઞાન પેદા થયાનું તેમના તીર્થપ્રવર્તનનું, તેમના શિષ્યોનું, તેમના ગણોનું તેમના ગણધરોનું, તેમની આર્યાઓનું, અને આર્યાઓના ગચ્છની પ્રવર્તિનીઓનું, તેમના ચતુર્વિધ સંઘનાં પરિમાણનું, કેવળજ્ઞાનીઓનું, મનઃપર્યય જ્ઞાનીઓનું, અવધિજ્ઞાનીઓનું, સમસ્ત શ્રુતજ્ઞાનીઓનું, વાદીઓનું, અનુત્તર વિમાનોમાં ઉત્પત્તિ થવાનું, ઉત્તરવૈક્રિય લબ્ધિધારિયોનું, તથા જેટલા સિદ્ધ થયાં છે તેમનું, તથા જે જેટલા કાળ સુધી પાદપોપગમન કર્યાં તે કાળનું, તથા જેઓ જ્યાં જેટલાં અનશન કરીને અંતકૃત કેવળી થયાં છે,

छेइत्ता अंतगडे, मुणिवरुत्तमे तिमिरओघविप्पमुक्के मुक्खसुह-मणुत्तरं च पत्ते, एवमन्ने य एवमाइभावा मूलपढमाणुओगे कहिया, से त्तं मूलपढमाणुओगे ।

से किं तं गंडियाणुओगे? गंडियाणुओगे अणेगविहे पण्णत्ते, तं जहा-कुलगरगंडियाओ, तित्थयरगंडियाओ, चक्कवट्टिगंडियाओ, दसार गंडियाओ, बलदेवगंडियाओ, वासुदेवगंडियाओ,

घविप्रमुक्ताः मोक्षसुखमनुत्तरं च प्राप्ताः, एवमन्ये च एवमादिभावा मूलप्रथमानुयोगे कथिताः, स एष मूलप्रथमानुयोगः ।

अथ कोऽसौ गण्डिकानुयोगः ? गण्डिकानुयोगे कुलकरगण्डिकाः तीर्थकरगण्डिकाः, चक्रवर्त्तिगण्डिकाः, दशारगण्डिकाः, बलदेवगण्डिकाः, वासुदेवगण्डिकाः

अज्ञानम् बुद्धिमलिनकारकत्वात्, तस्य ओघः=समूहस्ततो विप्रमुक्तः=रहितः सन्, मोक्षसुखम्, कीदृशं मोक्षसुखम् ? इत्याह-अनुत्तरम्=प्रधानं-पुनरागमन रहितत्वात् प्राप्तः । एवम्=अनेन प्रकारेण अन्ये च अत इतरे च एवमादि भावाः=एवं रूपा जीवादि पदार्था मूलप्रथमानुयोगे कथिताः स एष मूलप्रथमानुयोगः ।

अथ कोऽसौ गण्डिकानुयोगः? गण्डिकानुयोगे-एक वक्तव्यतार्थाऽधिकारानुगतावाक्यपद्धतयो गण्डिकास्तासामनुयोगोऽर्थकथनविधिर्गण्डिकानुयोगः, तस्मिन् -कुलकरगण्डिकाः, अत्र कुलकराणां विमल वाहनादीनां पूर्वे जन्मादीन्यभि-

---

हुए हैं, जो कि मुनिवरोमें उत्तम हैं, जिन्हों ने अज्ञान के समूह से रहित होकर अनुत्तर मोक्ष सुख को प्राप्त किया है उनका वर्णन किया गया है। तथा इन वर्णनों के अतिरिक्त और भी इसी तरह के जीवादिक पदार्थ भी इसमें कहे गये हैं । इस प्रकार यह मूलप्रथमानुयोग का स्वरूप है।

फिर शिष्य पूछता है कि-हे भदन्त! गण्डिकानुयोग क्या है ?

જેઓ મુનિવરોમાં ઉત્તમ છે, જેઓ અજ્ઞાનના સમૂહથી રહિત થઈને અનુત્તર મોક્ષસુખને પામ્યાં છે, તેમનું વર્ણન થયું છે. તથા આ વર્ણનો ઉપરાંત બીજા પણ આજ પ્રકારના જીવાદિક પદાર્થોનું પણ તેમાં વર્ણન કરાયું છે. આ પ્રકારનું આ મૂલપ્રથમાનુયોગનું સ્વરૂપ છે.

વળી શિષ્ય પૂછે છે—હે ભદન્ત! ગંડિકાનુયોગનું શું સ્વરૂપ છે?

गणधरगंडियाओ, भद्दबाहुगंडियाओ तवोकम्मगंडियाओ हरिवंसगंडियाओ, उस्सप्पिणीगंडियाओ, ओसप्पिणीगंडियाओ, चित्तंतरगंडियाओ, अमर-नर-तिरिय-निरय-गइ-गमण-विविह-

गणधरगण्डिकाः, भद्रबाहुगण्डिकाः, तपः कर्मगण्डिकाः, हरिवंशगण्डिकाः, उत्सर्पिणीगण्डिकाः, अवसर्पिणी गण्डिकाः, चित्रान्तरगण्डिकाः, अमर-नर-तिर्यग्-निरय-तिर्यङ्-निरयगति-गमन-विविध-परिवर्त्तनानुयोगेषु

धीयन्ते; तीर्थकरगण्डिकाः, चक्रवर्त्तिगण्डिका, आसु गण्डिकासु तीर्थंकर चक्रवर्त्तिनां पूर्वजन्मादीन्यभिधीयन्ते; दशार्हगण्डिकाः-समुद्रविजयादि वसुदेवान्तानामत्रपूर्वजन्मादि वर्णनम्। एवमेवेतरगण्डिकास्वपि तत्तद् वर्णनं विज्ञेयम्। बलदेव गण्डिकाः, वासुदेवगण्डिकाः, गणधरगण्डिकाः, भद्रबाहुगण्डिकाः, तपःकर्मगण्डिकाः, हरिवंशगण्डिकाः; उत्सर्पिणीगण्डिकाः, अवसर्पिणीगण्डिकाः, चित्रान्तरगण्डिकाः,-

उत्तर—गण्डिकानुयोगमें, अर्थात्-एक अर्थ के अधिकार वाली ग्रन्थ पद्धति को गंडिका कहते हैं, उनके अनुयोग अर्थकथनविधि-को गण्डिकानुयोग कहते हैं। उसमें कुलकरगण्डिका-इसमें विमलवाहन आदि कुलकरों के पुर्वजन्म आदि विषयों पर प्रकाश डाला गया है। तीर्थंकरगण्डिका-इसमें तीर्थंकर के पुर्वजन्म आदि विषयो पर विवेचन किया गया है।

चक्रवर्तिगण्डिका-इसमें चक्रवर्तियों के जन्म आदि का, वर्णन किया गया है। दशार्हगाण्डिका-इसमें समुद्र विजय से लेकर वसुदेव तक के यादववंशियों के जन्म आदि का वर्णन किया गया है। इसी तरह से जो बलदेवगाण्डिका, वासुदेगाण्डिका गणधरगण्डिका भद्राबाहुगण्डिका; तपःकर्मगण्डिका, हरिवंशगण्डिका, उत्सर्पिणीगाण्डिका, अव-

ઉત્તર—ગંડિકાનુયોગમાં, એટલે એક અર્થના અધિકારવાળી ગ્રન્થ પદ્ધતિને ગંડિકા કહે છે. તેમના અનુયોગ-અર્થકથન વિધિને ગંડિકાનુયોગ કહે છે, તેમાં કુલકર ગંડિકા-તેમાં વિમલવાહન આદિ કુલકરોના પૂર્વજન્મ આદિ વિષયો પર પ્રકાશ પાડવામાં આવ્યો છે, તીર્થંકર ગંડિકા-તેમાં તીર્થંકરોના પૂર્વજન્મ આદિ વિષયોનું વિવેચન કર્યું છે. ચક્રવર્તિ ગંડિકા-તેમાં ચક્રવર્તીઓના જન્મ આદિનું, વર્ણન થયું છે. દર્શાર્હ ગંડિકા-તેમાં સમુદ્રવિજયથી માંડીને વસુદેવ સુધીના યાદવ વંશવાળાઓના જન્મ આદિનું વર્ણન કર્યું છે. એજ રીતે જે બળદેવ ગંડિકા, વાસુદેવ ગંડિકા, ગણધર ગંડિકા, ભદ્રબાહુ ગંડિકા, તપઃકર્મ

परियट्टणा-णुओगेसु एवमाइयाओ गंडियाओ आघविज्जंति, पण्णविज्जंति६ । से त्तं गंडियाणुओगे, से त्तंअणुओगे ॥ ४ ॥

एवमादिकाः गण्डिकाः आख्यायन्ते, प्रज्ञाप्यन्ते ६ । स एष गण्डिकानुयोगः । स एषोऽनुयोगः ॥ ४ ॥

अथ कास्ताश्चूलिकाः? चूलिकाः-आदिमानां चतुर्णां पूर्वाणां चूलिकाः, शेषाणि पूर्वाणि अचूलिकानि । ता एताश्चूलिकाः ॥ ५ ॥

चित्राः=अनेकार्थाः अन्तरेः=ऋषभाजिततीर्थकृतोरन्तरे या गडिकास्ताश्चित्रान्तरगण्डिकाः, अयंभावः-ऋषभाजितनाथयोरन्तरे ये शेषगतिगमनरहितास्तद्वंशजा नृपास्तेषां शिवगत्यनुत्तरोपपातप्राप्ति प्रतिपादिका गण्डिकाश्चित्रान्तरगण्डिका अभिधीयन्ते । तथा-अमर नर तिर्यङ् निरय गतिगमनविविध पर्यटनानुयोगेषु-अमर नर तिर्यङ् निरयगतिषु यद् गमनानि तत्र विविधानि यानि पर्यटनानि=परिभ्रमणानि तेषामनुयोगाः=कथनविधयस्तेषु एवमादिकाः=गण्डिकाः आख्यायन्ते प्रज्ञाप्यन्ते । स एष गण्डिकानुयोगः ४ ।

सर्पिणीगण्डिका हैं, उनमें भी उस २ विषय का वर्णन किया गया है। चित्रान्तरगण्डिका-ऋषभ और अजितनाथ के अन्तराल में उनके वंशज जो नृपति थे कि जिन की शिव पद प्राप्तिरूप गति के सिवाय और दूसरी गति ही नहीं होती थी उन को इस शिवगति की प्राप्ति का वर्णन करने वाली जो गण्डि का है उसका नाम चित्रान्तरगण्डिका है। तथा देवगति, मनुष्यगति तिर्यञ्चगति और नरकगति में जीव के विविध प्रकार के परिभ्रमणों को प्रतिपादन करने वाली विधिका नाम अमरनरतिर्यग् निरयगति गमन विविधपर्यटनानुयोग है। इस में इस प्रकार की गण्डिकायें सामान्य-विशेषरूप से कही गयी हैं। इस प्रकार यह गण्डिकानुयोग का स्वरूप है ॥ ४ ॥

ગંડિકા, હરિવંશ ગંડિકા, ઉત્સર્પિણી ગંડિકા છે તેમાં તે તે વિષયનું વર્ણન કરેલ છે ચિત્રાન્તર ગંડિકા-ઋષભ અને અજિતનાથના વચગાળાના સમયમાં તેમના વંશજ જે નૃપતિઓ હતા કે જેમની મોક્ષપ્રાપ્તિરૂપ ગતિ સિવાય બીજી કોઇ ગતિ જ ન હતી તેમની તે મોક્ષગતિની પ્રાપ્તિનું વર્ણન કરનારી જે ગંડિકા છે તેનું નામ ચિત્રાન્તર ગંડિકા છે. તથા દેવગતિ, મનુષ્યગતિ, તિર્યંચગતિ, અને નરક ગતિમાં જીવના વિવિધ પ્રકારના પરિભ્રમણોનું પ્રતિપાદન કરનારી વિધિનું નામ " अमर नर तिर्यग निरयगति गमन विविध पर्यटनानुयोग " છે તેમાં આ પ્રકારની ગંડિકાઓ સામાન્ય-વિશેષરૂપે વર્ણિત થઈ છે. આ પ્રકારનો ગંડિકાનુયોગ છે. (૪)

से किं तं चूलियाओ ?, चूलियाओ आइल्लाणं चउण्हं पुव्वाणं चूलिया, सेसाइं पुव्वाइं अचूलियाइं। से तं चूलियाओ॥५॥

दिट्ठिवायस्स णं परित्ता वायणा, संखेज्जा अणुओगदारा, संखेज्जा वेढा, संखेज्जा सिलोगा; संखेज्जाओ पडिवत्तीओ, संखे-

दृष्टिवादस्य खलु परीता वाचनाः, संख्येयानि अनुयोगद्वाराणि, संख्येया वेष्टकाः, संख्येयाः श्लोकाः, संख्येया प्रतिपत्तयः, संख्येयाः निर्युक्तयः संख्येयाः संग्रहण्यः, स खलु अङ्गार्थतया द्वादशमङ्गम्, एकः श्रुतस्कन्धः, चतुर्दश पूर्वाणि, संख्येयानि वस्तूनि, संख्येयानि चूल वस्तूनि, संख्येयानि प्राभृतानि,

अथ पञ्चमं भेदमाह—'से किं तं चूलियाओ०' इत्यादि। अथकास्ताश्चूलिकाः? उत्तरयति-यत्खलु आदिमानां चतुर्णां पूर्वाणाम्=उत्पादादिमारभ्यास्ति नास्ति प्रवादान्तानां चतुर्णां पूर्वाणां चूलिकाः सन्ति ताश्चूलिका उच्यन्ते, तथा शेषाणि पूर्वाणि अचूलिकानि सन्ति ता एताश्चूलिकाः।

दृष्टिवादस्य खलु परीताः=सख्येयाः वाचनाः, संख्येयान्यनुयोगद्वाराणि, संख्येयाः वेष्टकाः, संख्येयाः श्लोकाः. संख्येयाः प्रतिपत्तयः, संख्येया निर्युक्तयः,

अब दृष्टिवाद के पांचवें भेद को कहते हैं-'से किं तं चूलियाओ०' इत्यादि।

शिष्य पुछता है-हे भदन्त! चूलिकाओं का क्या स्वरूप है?

उत्तर—उत्पादपूर्व, अग्रायणीयपूर्व, वीर्यप्रवाद और अस्तिनास्ति प्रवाद, इन चार पूर्वो की तो चूलिकाएँ हैं और बाकी के पूर्वो पर चूलिकाएँ नहीं हैं। यह चूलिकाओं का स्वरूप है।५॥

इस दृष्टिवाद अंग की संख्यात वाचनाएँ हैं, संख्यात अनुयोग द्वार हैं। संख्यात वेष्टक हैं, संख्यात श्लोक हैं, संख्यात प्रतिपत्तियां हैं,

હવે સૂત્રકાર દૃષ્ટિવાદના પાંચમાં ભેદનું વર્ણન કરે છે—"से किं तं चूलियाओ ?" ઇત્યાદિ—

શિષ્ય પૂછે છે—હે ભદન્ત! ચૂલિકાઓનું શું સ્વરૂપ છે?

ઉત્તર—ઉત્પાદ પૂર્વ, અગ્રાયણીય પૂર્વ, વીર્ય પ્રવાદ પૂર્વ અને અસ્તિનાસ્તિ-પ્રવાદ એ ચાર પૂર્વોની તો ચૂલિકાઓ છે; અને બાકીના પૂર્વોની ચૂલિકાઓ નથી. આ ચૂલિકાઓનું સ્વરૂપ છે. (૫)

દૃષ્ટિવાદ અંગની સંખ્યાત વાચનાઓ છે, સંખ્યાત અનુયોગ દ્વાર છે,

ज्जाओ निज्जुत्तीओ, संखेज्जाओ संगहणीओ, से णं अंगट्ठयाए बारसमे अंगे, एगे सुयक्खंधे, चोद्दस पुव्वाइं संखेज्जा वत्थू, संखेज्जा चूलवत्थू, संखेज्जा पाहुडा, संखेज्जा पाहुडापाहुडा, संखेज्जाओ पाहुडियाओ, संखेज्जाओ पाहुडपाहुडियाओ, संखेज्जाइं पयसहस्साइं पयग्गेणं, संखेज्जा अक्खरा, अणंता गमा, अणंता

संख्येयानि प्राभृतप्राभृतानि, संख्येयाः प्राभृतिकाः, संख्येयाः प्राभृतप्राभृतिकाः, संख्येयानि पदसहस्राणि पदाग्रेण, संख्येयान्यक्षराणि, अनन्ता गमाः, अनन्ता

संख्येयाः संग्रहण्यः। स खलु दृष्टिवादः अङ्गार्थतया द्वादशमङ्गम्, अत्र-एकः श्रुतस्कन्धः, चतुर्दश पूर्वाणि, संख्येयानि वस्तूनि, संख्येयानि चूलवस्तूनि, संख्येयानि प्राभृतानि=ग्रन्थांशविशेषाः, संख्येयानि प्राभृतप्राभृतानि-प्राभृतस्य-ग्रन्थांशविशेषस्य प्राभृतानि=अंशविशेषाः-प्राभृतप्राभृतानि, संख्येयाः प्राभृतिका, संख्येयाः प्राभृतप्राभृतिकाः, संख्येयानि पदसहस्राणि पदाग्रेण=पदपरिमाणेन प्रज्ञप्तानि। तथात्र संख्येयानि अक्षराणि, अनन्ताः गमाः, अनन्ताः पर्यवाः,

---

संख्यात निर्युक्तियां हैं, तथा संख्यात संग्रहणियां हैं। यह दृष्टिवाद अंगों की अपेक्षा बारहवां अंग है। इसमें एकश्रुतस्कन्ध है। चौदहपूर्व हैं। संख्यात वस्तुएँ हैं। संख्यात चूल वस्तुएँ हैं। संख्यात प्राभृत हैं। ग्रन्थांशविशेष का नाम प्राभृत है। संख्यात प्राभृतप्राभृत हैं। ग्रन्थांशविशेष के जो और अंशविशेष हैं वे प्राभृतप्राभृत हैं। संख्यात प्राभृतिकाएँ हैं। संख्यात प्राभृतप्राभृतिकाएँ हैं। तथा इसके पदों का प्रमाण भी संख्यात ही बतलाया गया है। संख्यात अक्षर हैं, अनंत गम हैं, अनंत पर्यायें हैं, असं-

---

સંખ્યાત વેષ્ટક છે, સંખ્યાત શ્લોક છે, સંખ્યાત પ્રતિપત્તિઓ છે, સંખ્યાત નિર્યુક્તિઓ છે, સંખ્યાત સંગ્રહણિઓ છે, અંગોની અપેક્ષાએ આ દૃષ્ટિવાદ બારમું અંગ છે. તેમાં એક શ્રુતસ્કંધ છે,ચૌદ પૂર્વ છે, સંખ્યાત વસ્તુઓ છે, સંખ્યાત ચૂલ વસ્તુઓ છે, સંખ્યાત પ્રાભૃત છે. પ્રાભૃત એ (ગ્રન્થાંશવિશેષનું નામ છે.) સંખ્યાત પ્રાભૃત પ્રાભૃત છે. ગ્રંથાંશવિશેષના અંશ વિશેષને પ્રાભૃતપ્રાભૃત કહે છે. સંખ્યાત પ્રાભૃતિકાઓ છે, સંખ્યાત પ્રાભૃત-પ્રભૃતિકાઓ છે. તેનાં પદોનું પ્રમાણ પણ સંખ્યાત બતાવ્યું છે. સંખ્યાત અક્ષર છે, અનંત ગમ છે, અનંત પર્યાયો છે, અસંખ્ય ત્રસ છે;

पज्जवा परित्ता, तसा, अणंता थावरा सासय कड निबद्ध निकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति, पण्णविज्जंति, परूविज्जंति, दंसिज्जंति, निदंसिज्जंति; उवदंसिज्जंति, से एवं आया; एवं णाया, एवं विण्णाया, एवं चरणकरण परूवणा आघविज्जइ ६। से त्तं दिट्ठिवाए १२ ॥ सू० ५६ ॥

पर्यवाः, परीतास्त्रसाः, अनन्ताः स्थावराश्च शाश्वत–कृत–निबद्ध–निकाचिताः जिनप्रज्ञप्ता भावाः आख्यायन्ते, प्रज्ञाप्यन्ते, प्ररूप्यन्ते, दर्श्यन्ते, निदर्श्यन्ते, उपदर्श्यन्ते। स एवमात्मा, एवं ज्ञाता, एवं विज्ञाता। एवं चरणकरण प्ररूपणा आख्यायते ६। स एष दृष्टिवादः ॥ सू० ५६ ॥

परीताः = असंख्यातास्त्रसाः, अनन्ताः स्थावराश्च सन्ति। उपरिनिर्दिष्टाः सर्वे जिनप्रज्ञप्ता भावाः शाश्वतकृतनिबद्धनिकाचिताः–शाश्वताः = द्रव्यार्थतयाऽविच्छेन प्रवृत्यानित्याः कृताः=पर्यायार्थतया प्रतिसमय मन्यथात्वप्राप्त्याकृताः निबद्धाः= सूत्र एव ग्रथिताः, तथा – निकाचिताः – निर्युक्ति संग्रहणी हेतूदाहरणादिभिः प्रतिष्ठिताश्च अत्र आख्यायन्ते, प्रज्ञाप्यन्ते, प्ररूप्यन्ते, = दर्श्यन्ते उपमानोपमेयभावादिभिः कथ्यन्ते, निदर्श्यन्ते = परानुकम्पयाभव्यजनकल्याणापेक्षया वा निश्चयेन पुनः पुनर्दर्श्यन्ते उपदर्श्यन्ते=उपनयनिगमनाभ्यां सकलनयाभिप्रायतो

ख्यात त्रस हैं, अनंत स्थावर हैं। ये सब उपर्युक्त त्रसादिपदार्थ जिनेन्द्र द्वारा प्ररूपित हुए हैं, तथा द्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा से सन्ततिरूप से अविच्छिन्न होने के कारण ये नित्य हैं, पर्यायार्थिकनय की अपेक्षा से प्रति समय परिणमन शील होने के कारण ये अनित्य हैं, सूत्र में ही ग्रथित होने के कारण ये निबद्ध हैं, तथा निर्युक्ति संग्रहणी हेतु एवं उदाहरण आदि द्वारा प्रतिष्ठित होने के कारण ये निकाचित हैं। इस अंग में ये सब पदार्थ आख्यात हुए हैं, प्रज्ञापित आदि हुए हैं। "आख्यायन्ते"

અનંત સ્થાવર છે. એ બધા ઉપર્યુક્ત ત્રસાદિ પદાર્થ જિનેન્દ્ર દ્વારા પ્રરૂપિત થયાં છે. તથા દ્રવ્યાર્થિક નયની અપેક્ષાએ સન્તતિરૂપે અવિચ્છિન્ન હોવાને કારણે નિત્ય છે, તથા પર્યાયાર્થિક નયની અપેક્ષાએ પ્રતિસમય પરિણમનશીલ હોવાને કારણે અનિત્ય છે, સૂત્રમાં જ ગ્રથિત હોવાને કારણે નિબદ્ધ છે, તથા–નિર્યુક્તિ, સંગ્રહણી, હેતુ અને ઉદાહરણ આદિ દ્વારા પ્રતિષ્ઠિત હોવાના કારણે નિકાચિત છે, આ અંગમાં એ બધા પદાર્થ આખ્યાત થયા છે, પ્રજ્ઞાપિત આદિ થયેલ છે.

प्रस्तुतविषयमुपसंहरन्नाह—

मूलम्—इच्चेइयम्मि दुवालसंगे गणिपिडगे अणंता भावा, अणंता अभावा, अणंता हेऊ, अणंता अहेऊ, अणंता कारणा, अणंता अकारणा, अणंता जीवा, अणंता अजीवा, अणंता भवसिद्धिया, अणंता अभवसिद्धिया, अणंता सिद्धा, अणंता असिद्धा पण्णत्ता—

भावमभावाहेऊ—महेउकारणमकारणे चेव ।
जीवाजीवा भवियमभविया सिद्धा असिद्धा य ॥१॥

वा शिष्यबुद्धौ निःशङ्कं व्यवस्थाप्यन्ते । संप्रति दृष्टिवादाङ्गाध्ययनफलमाह—'से' सः=दृष्टिवादाङ्गस्याध्येता एवमात्मा=अस्मिन् भावतः सम्यगधीते सति एवमात्मा भवति, तदुक्तक्रियापरिणामपरिणमनादात्मस्वरूपो भवतीत्यर्थः । एवं 'क्रियासार मेव ज्ञानंश्रेयस्कर'—मिति ख्यापयितुं क्रियापरिणाममभिधाय सांप्रतं ज्ञानमधिकृत्याह—एवं ज्ञाता इति । अयं भावः—इदमधीत्य सर्व पदार्थसार्थ ज्ञायको भवति । तथा—एवं विज्ञाता—एवम्=अमुना प्रकारेण विज्ञाता=विविध ज्ञानवान् भवति । अनेन प्रकारेणात्र साधूनां चरणकरण प्ररूपणा आख्यायते ६ । उपसंहरन्नाह—स एष दृष्टिवादः । स एष द्वादशाङ्गो गणिपिटकः—आचारादि दृष्टिवादान्त द्वादशाङ्ग युक्तः गणिपिटकरूपः प्रवचन पुरुष एष एव विज्ञेय इति ॥ सू० ५६ ॥

आदि क्रिया पदों का अर्थ पहिले आचाराङ्ग के वर्णन के समय सू. ४५ में स्पष्ट लिखा जा चुका है। "स एवमात्मा" आदि पदों से इस अंग के अध्ययन का फल तथा ज्ञान का फल प्रकट किया गया है। इस तरह इस अंग में साधुओं के चरण करण की प्ररूपणा कही गई है ६ । यह दृष्टिवादअंग का स्वरूप है। इस प्रकार आचारांग से लेकर दृष्टिवाद तक का समस्त गणिपिटकरूप द्वादशांग है ॥ सू० ५६ ॥

"आख्यायन्ते" આદિ ક્રિયાપદોનો અર્થ પહેલાં આચારાંગના વર્ણન વખતે સૂ. ૪૫ પિસ્તાલીસમાં સ્પષ્ટ કરાયો છે. "स एवमात्मा" આદિ પદોથી આ અંગના અધ્યયનનું ફળ તથા જ્ઞાનનું ફળ પ્રગટ કરેલ છે. આ રીતે આ અંગમાં સાધુઓનાં ચરણકરણની પ્રરૂપણા કરવામા આવી છે (૬). આ દૃષ્ટિવાદ-અંગનું સ્વરૂપ છે. આ પ્રમાણે આચારાંગથી લઈને દૃષ્ટિવાદ સુધીના સમસ્ત ગણિપિટકરૂપ દ્વાદશાંગ છે. ॥ સૂ૦ ૫૬ ॥

छाया—इत्येतस्मिन् द्वादशाङ्गे गणिपिटके अनन्ता भावाः, अनन्ता अभावाः, अनन्ता हेतवः, अनन्ता अहेतवः, अनन्तानि कारणानि, अनन्तानि अकारणानि, अनन्ता जीवाः, अनन्ता अजीवाः, अनन्ता भवसिद्धिकाः, अनन्ता अभवसिद्धिकाः, अनन्ताः सिद्धाः, अनन्ता असिद्धाः प्रज्ञप्ताः ।

भावाभावौ हेत्वहेतू कारणाकारणे चैव ।
जीवा अजीवा भविका अभविकाः सिद्धा असिद्धाश्च ॥ १ ॥

टीका—'इच्चेइयम्मि०' इत्यादि ।

इत्येतस्मिन्–इति=इत्थम्–अनेन प्रकारेण निर्दिष्टे अस्मिन् द्वादशाङ्गे गणिपिटके अनन्ता भावाः=जीवपुद्गलानामनन्तत्वात्, तथा अनन्ता अभावाः=अन्यभावरूपेणान्यभावस्यासत्त्वात्त एव भावा अभावा भवन्ति, इत्यतोऽनन्ता अभावाः, तथा–अनन्ता हेतवः=हिन्वन्ति–गमयन्ति=बोधयन्ति जिज्ञासाविषयीभूत धर्मविशिष्टानर्थान् ये ते हेतवः, ते च वस्तुनोऽनन्तधर्मात्मकत्वात्, तत्प्रतिबद्धानन्तधर्मविशिष्टानन्तवस्तुगमकत्वाच्चानन्ताः, अतोऽनन्ता हेतवः । तथा–अनन्ता अहेतवः

द्वादशाङ्गी का स्वरूप वर्णन रूप विषय का उपसंहार करते हुए सूत्रकार कहते हैं–'इच्चेइयम्मि०' इत्यादि ।

इस द्वादशांगरूप गणिपिटकमें जीव और पुद्गलों के अनंत भाव है, तथा अनंत अभाव हैं–एक भाव–पदार्थ अन्य भावरूप से नहीं रहता, इस लिये सभी भाव परस्पर में एक दूसरे के रूप में अभावता को प्राप्त होते है, अतः अभावोंकी अनंतता है, अनंत हेतु हैं–जिज्ञासा के विषयीभूत धर्मविशिष्ट अर्थों को जो बोध कराता है वह हेतु है, वे हेतु वस्तुओं के अनन्त धर्मात्मक होने से, तथा हेतुयुक्त अनंतधर्मविशिष्ट अनंत वस्तुओंके बोधक होने से अनन्त हैं, अतः हेतु में अनंतता है । तथा अनंत अहेतु हैं–एक

દ્વાદશાંગીના સ્વરૂપ વર્ણન રૂપ વિષયનો ઉપસંહાર કરતાં સૂત્રકાર કહે છે. "इच्चेयम्मि०" ઇત્યાદિ—

આ દ્વાદશાંગ-રૂપ ગણિપિટકમાં જીવ અને પુદ્ગલો અનંત હોવાથી અનંત ભાવ છે, તથા અનંત અભાવ છે–એક ભાવ–પદાર્થ અન્ય ભાવરૂપે રહેતો નથી, તે કારણે સમસ્ત ભાવ પરસ્પરમાં એક બીજાના રૂપમાં અભાવતાને પામે છે. તેથી અભાવોની અનંતતા છે. અનંત હેતુ છે–જિજ્ઞાસાના વિષયભૂત ધર્મવિશિષ્ટ અર્થનો જે બોધ કરાવે છે તે હેતુ કહેવાય છે. તે હેતુઓ વસ્તુઓના અનન્ત-ધર્માત્મક હોવાથી, તથા હેતુયુક્ત અનંત ધર્મવિશિષ્ટ અનંત વસ્તુઓના બોધક હોવાથી અનન્ત છે, તેથી હેતુમાં અનંતતા છે. તથા અનંત અહેતુ છે–એક એક

प्रत्येकहेतुप्रतिबद्ध-प्रत्येकधर्मविशिष्टवस्तुगमकत्वं परस्मिन्नास्तीत्यनन्ता अहेतवः, तथा-अनन्तानि कारणानि=मृत्पिण्डतन्त्वादीन्यनन्तानि घटपटादिनिर्वर्तकानि कारणानि, तथा-अनन्तान्यकारणानि=तन्तु र्न घटस्य कारणम् , मृत्पिण्डं न पटस्य कारणम् , इत्येवमनन्तानिअकारणानि, तथा-अनन्ता जीवाः, अनन्ता अजीवा द्व्यणुकादयः, अनन्ता भवसिद्धिकाः, अनन्ताः अभवसिद्धिकाः, अनन्ताः सिद्धाः, अनन्ता असिद्धाश्च प्रज्ञप्ताः ।

अमुमेवार्थं सूचयितुं गाथामाह—

' भावमभावा० ' इत्यादि । गाथार्थः स्पष्टः ॥

---

२ हेतुयुक्त एक २ धर्म विशिष्ट वस्तु की बोधकता दूसरे में नहीं होने से एक हेतु दुसरे के प्रति अहेतु हो जाता है इसलिये अनन्त अहेतु हैं, तथा अनन्त कारण हैं-तथा घटपटादि अनन्तकार्यों के निष्पादक मृत्पिण्ड-तन्तु आदि अनन्त कारण हैं। तथा-अनंत अकारण हैं-तन्तु घट का कारण नहीं होता, मृत्पिण्ड पट का कारण नहीं होता, इस तरह एक की अन्य के प्रति कारणता नहीं होने से कारण में अनन्तता है । तथा-अनन्त जीव, अनन्त अजीव-द्व्यणुकादिक, अनन्त भवसिद्धिक, अनन्त अभवसिद्धिक, अनन्त सिद्ध, अनन्त असिद्ध, ये सब प्रज्ञप्त हुए हैं।

इस पूर्वोक्त अर्थ को सूचित करनेवाली गाथा। सूत्रकार कहते हैं-' भावमभाव ' इत्यादि ।

इस द्वादशाङ्ग में भाव, अभाव, हेतु, अहेतु, जीव, अजीव, भविक (भवसिद्धिक), अभविक (अभवसिद्धिक), सिद्ध और असिद्ध का प्ररूपण किया गया है ।

હેતુ યુક્ત એક એક ધર્મવિશિષ્ટ વસ્તુની બોધકતા બીજામાં ન હોવાથી એક હેતુ બીજાની પ્રતિ અહેતુ થઇ જાય છે તેથી અનન્ત અહેતુ છે, તથા અનન્ત કારણ છે-ઘટપટાદિ અનન્ત કાર્યોનો નિષ્પાદક માટીનો પિંડ-તન્તુ આદિ અનન્ત કારણ છે. તથા અનંત અકારણ છે -તન્તુ ઘટ (ઘડા) નું કારણ નથી હોતો, મૃત્પિંડ ઘટનું કારણ નથી હોતો, આ રીતે એકની અન્યના પ્રતિ કારણતા ન હોવાથી કારણમાં અનંતતા છે. તથા અનંત જીવ, અનંત અજીવ.-દ્વ્યણુકાદિક, અનંત ભવસિદ્ધિક, અનંત અભવ સિદ્ધિક, અનંત સિદ્ધ, અનંત અસિદ્ધ, એ બધાનું વર્ણનકરાયું છે.આપૂર્વોક્ત અર્થને સૂચિત કરવાવાળી ગાથા સૂત્રકાર કહે છે.- ' ભાવમભાવ ' ઇત્યાદિ

આ દ્વાદશાંગમાં ભાવ, અભાવ, હેતુ, અહેતુ, જીવ, અજીવ, ભવિક (ભવસિદ્ધિક), અભવિક (અભવસિદ્ધિક), સિદ્ધ અને અસિદ્ધનું પ્રરૂપણ કરવામાં આવ્યું છે.

साम्प्रतंद्वादशाङ्ग विराधनाऽऽराधनाजनितं त्रैकालिकं फलमुपदर्शयति—

मूलम्—इच्चेइयं दुवालसंगं गणिपिडगं तीए काले अणंता जीवा आणाए विराहित्ता चाउरंतं संसारकंतारं अणुपरियट्टिंसु। इच्चेइयं दुवालसंगं गणिपिडगं पडुप्पण्णकाले परित्ता जीवा आणाए विराहित्ता चाउरंतं संसारकंतारं अणुपरियट्टंति। इच्चेइयं दुवालसंगं गणिपिडगं अणागए काले अणंता जीवा आणाए विराहित्ता चाउरंतं संसारकंतारं अणुपरियट्टिस्संति।

छाया—इत्येतं द्वादशाङ्गं गणिपिटकम् अतीतकाले अनन्ताः जीवाः आज्ञया विराध्य चातुरन्त संसारकान्तारम् अनुपर्यटन्। इत्येतं द्वादशाङ्गं गणिपिटकं प्रत्युत्पन्ने काले परीता जीवाः आज्ञया विराध्य चातुरन्तसंसारकान्तारम् अनुपर्यटन्ति। इत्येतं द्वादशाङ्गं गणिपिटकं अनागतेकाले अनन्ता जीवाः आज्ञया विराध्य चातुरन्तसंसारकातारं अनुपर्यटिष्यन्ति।

टीका—'इच्चेइयं०' इत्यादि।

इत्येतं द्वादशाङ्ग गणिपिटकम् अतीतकाले अनन्ताः जीवाः आज्ञया विराध्य = चातुरन्तसंसारकान्तारं = चत्वारः = नरकतिर्यङ्मनुष्यदेवगतिपरिभ्रमणलक्षणाः अन्ताः=परिणामा यस्य स चतुरन्तः, स एव चातुरन्तः, चातुरन्तश्चासौ संसारश्चेति कर्मधारयः, ततः 'कान्तरशब्देनसहोपमितसमासः' अनुपर्यटन्–जन्ममरणादिक्लेशमन्वभवन्। अयं भावः—इमं द्वादशाङ्गं गणिपिटकम् अभिनिवेशवशादन्यथा

अब सूत्रकार इस द्वादशांग की आराधना एवं विराधना से त्रैकालिक फल को कहते हैं–"इच्चेइयं दुवालसंगं०" इत्यादि।

इस द्वादशांगरूप गणि पिटक की भूनकालमें आज्ञाद्वारा विराधना कर के अनंत जीवों ने नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य, तथा देव, इन चार गतिवाले संसाररूप गहन वन में परिभ्रमण किया है। तात्पर्य इसका यह है–

હવે સૂત્રકાર આ દ્વાદશાંગની આરાધના અને વિરાધનાથી થવાવાળા ત્રૈકાલિકફળ કહે છે–'इच्चेइयं दुवालसंगं०' ઇત્યાદિ.

આ દ્વાદશાંગરૂપ ગણિપિટકની ભૂતકાળમાં વિરાધના કરીને અનંત જીવોએ નરક, તિર્યંચ, મનુષ્ય, તથા દેવ એ ચાર ગતિવાળા સંસારરૂપ ગહનવનમાં પરિભ્રમણ કર્યું છે. તેનું તાત્પર્ય એ છે કે ભૂતકાળમાં જમાલિના જેવાં અનંત

पाठादिलक्षणया सूत्राज्ञया विराध्य भूतकालेऽनन्ता जीवा नरकतिर्यङ्मनुजदेवगति-गहनां भवाटवीं जमालिवत् अनुपर्यटन्। पुनरभिनिवेशवशात् अन्यथा प्ररूपणादि-लक्षणया अर्थाज्ञया विराध्यजीवा गोष्ठमाहिल-दण्डि-त्रयोदशपथधारि (तेरहपंथी) प्रभृतीवत् चतुरन्तसंसारकान्तारमनुपर्यटन्। सूत्रार्थोभयाज्ञया च विराध्याऽनन्ता जीवाश्चतुर्गतिकसंसारकान्तारमनुपर्यटन्। इत्येतं द्वादशाङ्गं गणिपिटकं प्रत्युत्पन्ने-काले=वर्त्तमानकाले परीता जीवाः=संख्याता जीवाः, यावत्पर्यटन्ति, एवं भविष्य-त्कालेऽपि जिनाज्ञां विराध्य पर्यटिष्यन्ति।

मूलम्—इच्चेइयं दुवालसंगं गणिपिडगं तीए काले अणंता जीवा आणाए आराहित्ता चाउरंतं संसारकंतारं वीईवइंसु। इच्चेइयं दुवालसंगं गणिपिडगं पडुप्पण्णकाले परित्ता जीवा

भूतकाल में जमालि की तरह अनंत जीव ऐसे हुए हैं कि जिन्हों ने दुरभिनिवेश वश अन्यथा प्ररूपणा आदि द्वारा सूत्राज्ञा की विराधना की है। इस विराधना जन्य पाप का परिणाम उन्हों ने चतुर्गतिरूप भयंकर संसार कान्तार में परिभ्रमण करने रूप में ही पाया है। तथा गोष्ठमा-हिल, दंडी, तेरहपंथी आदि कितनेक ऐसे जीव हुए हैं जिन्होंने सूत्रार्थ की आज्ञा का खोटे अभिप्रायवश अन्यथा प्ररूपण किया है। इस भयंकर विराधना जन्य पाप का परिणाम उन्हें भी यही भोगना पडा है। तथा सूत्र अर्थ और उभय की आज्ञा की जिन्होंने विराधना की है ऐसे भी अनेक जीव हुए हैं, और उन्हें भी इस विराधाजन्य पाप का परिणाम यही भोगना पडा है। इसी तरह इस द्वादशांगरूप गणिपिटक की दुरभि-निवेश वश अन्य था प्ररूपणा कर के इस वर्तमानकाल में भी कितनेक

એવાં જીવો થયાં છે કે જેમણે દુરભિનિવેશ વશ બીજી રીતે પ્રરૂપણા આદિ દ્વારા સૂત્રાજ્ઞાની વિરાધના કરી છે. એ વિરાધના જન્ય પાપને પરિણામે તેમને ચતુ ર્ગતિરૂપ ભયંકર સંસારવનમાં પરિભ્રમણ કરવું પડયું છે. તથા ગોષ્ઠમાહિલ, દંડી, તેરહપંથી, આદિ કેટલાક એવાં જીવો થયાં છે કે જેમણે સૂત્રાર્થની આજ્ઞાનું ખોટાં અભિપ્રાયને કારણે જુદી રીતે પ્રરૂપણ કર્યું છે. એ ભયંકર વિરાધના જન્ય પાપનું પરિણામ તેમને પણ અહીં ભોગવવું પડયું છે. તથા સૂત્ર અર્થ અને બન્નેઉ આજ્ઞાની જેમણે વિરાધના કરી છે એવાં પણ અનેક થયાં છે અને તેમને પણ આ વિરાધના જન્ય પાપોની એજ પરિણામ ભોગવવું પડયું છે. એજ પ્રકારે આ દ્વાદશાંગરૂપ ગણિપિટકની દુરભિનિવેશ વશ બીજી રીતે પ્રરૂપણા કરીને આ વર્તમાન કાળમાં પણ કેટલાંક એવાં જીવ છે કે જે ચતુર્ગતિવાળા

आणाए आराहित्ता चाउरंतं संसारकंतारं वीईवयंति । इच्चेइयं दुवालसंगं गणिपिडगं अणागए काले अणंता जीवा आणाए आराहित्ता चाउरंतं संसारकंतारं वीईवइस्संति ॥

छाया—इत्येतद् द्वादशाङ्गं गणिपिटकम् अतीते काले अनन्ता जीवा आज्ञया आराध्य चतुरन्तं संसारकान्तारं व्यत्यव्रजन् । इत्येतद् द्वादशाङ्गं गणिपिटकं प्रत्युत्पन्नकाले परीत्ता जीवा आज्ञया आराध्य चातुरन्तं संसारकान्तारं व्यतिव्रजन्ति । इत्येतद् द्वादशाङ्गं गणिपिटकम् अनन्ता जीवा आज्ञया आराध्य चतुरन्तं संसारकान्तारं व्यतिव्रजिष्यन्ति ॥

टीका—'इच्चेइयं०' इत्यादि ।

इत्येतं द्वादशाङ्गं गणिपिटकम् अतीतकाले अनन्ता जीवा आज्ञया=सूत्रार्थ तदुभयरूपत्रिविधाज्ञया आराध्य=सम्यक् परिपाल्य चातुरन्तसंसारकान्तारं व्यत्यव्रजन्=पारंजग्मुः । अनेन प्रकारेणैव प्रत्युत्पन्नेऽपि=वर्त्तमानेऽपिकाले परीताः=संख्येया जीवा व्यतिव्रजन्ति । एवम् अनागतेऽपि=भविष्यत्यपिकाले अनन्ता जीवा व्यतिव्रजिष्यन्ति ॥

जीव ऐसे हैं जो इस चतुर्गतिवाले संसारकान्तार में पर्यटन कर रहे हैं। इसी तरह भविष्यत्काल में भी अनंत जीव ऐसे होंगे जो दुरभिनिवेशवश इस द्वादशांग रूप गणिपिटक की आज्ञा की विराधना कर के इस चतुर्गतिवाले संसाररूप गहनवन में परिभ्रमण करेंगे।

तथा—अतीतकाल में ऐसे भी अनंत जीव हुए हैं कि जिन्हों ने सूत्र, अर्थ एवं उभय की आज्ञा की सम्यक् आराधना की है और इस तरह वे इस चतुर्गतिरूप संसार वन से पार हो गये हैं। इसी तरह वर्तमान काल में भी ऐसे संख्यात भव्य प्राणी हैं जो इस द्वादशांग गणिपिटक की सम्यक् आराधना करके इस संसार रूप गहन वन से

સંસારકાનનમાં પરિભ્રમણ કરી રહ્યાં છે. એજ રીતે ભવિષ્ય કાળમાં પણ અનંત જીવ એવાં થશે કે જે દુરભિનિવેશ વશ આ દ્વાદશાંગરૂપ ગણિપિટકની વિરાધના કરીને આ ચતુર્ગતિવાળા સંસારરૂપ ગહનવનમાં પરિભ્રમણ કરશે.

તથા ભૂતકાળમાં એવાં પણ અનંત જીવ થયાં છે કે જેમણે સૂત્ર, અર્થ અને ઉભયની સમ્યક્ આરાધના કરી છે અને એ રીતે તેઓ ચતુર્ગતિરૂપ સંસાર વનને તરી ગયાં છે. એજ રીતે વર્તમાન કાળમાં પણ એવાં સંખ્યાત ભવ્ય જીવો છે કે જે દ્વાદશાંગરૂપ ગણિપિટકની સમ્યક્ આરાધના કરીને આ સંસારરૂપ

मूलम्—इच्चेइयं दुवालसंगं गणिपिडगं न कयाइ नासी, न कयाइ न भवइ न कयाइ न भविस्सइ, भुविं च, भवइ य, भविस्सइ य, धुवे नियए सासए अक्खए अव्वए अवट्ठिए णिच्चे। से जहा णामए-पंच अत्थिकाया न कयाइ नासी, न कयाइ नत्थि, न कयाइ न भविस्सइ, भुविं च, भवइ य, भविस्सइ य, धुवा णिइया सासया अक्खया अव्वया अवट्ठिया णिच्चा एवामेव दुवालसंगं गणिपिडगं न कयाइ नासी, न कयाइ नत्थि, न कयाइ न भविस्सइ, भुवि च, भवइ य, भविस्सइ य, धुवे, नियए, सासए, अक्खए, अव्वए, अवट्ठिए, निच्चे। से समासओ चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—दव्वओ, खित्तओ, कालओ, भावओ। तत्थ दव्वओणं सुयनाणी उवउत्ते सव्वदव्वाइं जाणइ पासइ। खित्तओ णं सुयनाणी उवउत्ते सव्वं खेत्तं जाणइ पासइ। कालओ णं सुयनाणी उवउत्ते सव्व कालं जाणइ पासइ। भावओ णं सुयनाणी उवउत्ते सव्वं भावं जाणइं पासइ ॥ सू० ५७ ॥

छाया—इत्येष द्वादशाङ्गः खलु गणिपिटको न कदापि नासीत्, न कदापिन भवति, न कदापि न भविष्यति, अभूच्च, भवति च, भविष्यति च, ध्रुवः नियतः, शाश्वतः अक्षयः अव्ययः अवस्थितः नित्यः। तद्यथा नाम—पञ्चास्तिकायाः न कदापि नासन्, न कदापि न सन्ति, न कदापि न भविष्यन्ति, अभूवंश्च, सन्ति च, भविष्यन्ति च, ध्रुवा नियताः शाश्वताः अक्षयाः अव्ययाः अवस्थिताः नित्याः, एवमेव द्वादशाङ्गो गणिपिटको न कदापि नासीत्, न कदापि नास्ति, न कदापि न भवि-

---

पार हो रहे हैं। इसी प्रकार भविष्यत्काल में भी अनंत जीव इस द्वादशांगरूप गणिपिटक की आराधना कर के संसारकान्तार से पार होंगे।

ગહન વનને પાર કરી રહ્યાં છે. એજ રીતે ભવિષ્યકાળમાં પણ અનંત જીવ આ દ્વાદશાંગરૂપ ગણિપિટકની આરાધના કરીને સંસારવનને ઓળંગી જશે.

ष्यति, अभूच्च, भवति च, भविष्यति च, ध्रुवः नियतः शाश्वतः अक्षयः अव्ययः अवस्थितः नित्यः। स समासतश्चतुर्विधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा–द्रव्यतः, क्षेत्रतः, कालतः, भावतः। तत्र द्रव्यतः खलु श्रुतज्ञानी उपयुक्तः सर्वद्रव्याणि जानाति पश्यति। क्षेत्रतः खलु श्रुतज्ञानी उपयुक्तः सर्वं क्षेत्रं जानाति पश्यति। कालतः खलु श्रुतज्ञानी उपयुक्तः सर्वं कालं जानाति पश्यति। भावतः खलु श्रुतज्ञानी उपयुक्तः सर्वं भावं जानाति पश्यति॥ सू० ५७॥

टीका —'इच्चेइयं दुवालसंगं' इत्यादि। साम्प्रतमस्य द्वादशाङ्गस्य गणिपिटकस्य त्रिकालावस्थायित्वं दर्शयति – इत्येष द्वादशाङ्ग खलुगणिपिटकः न कदापि नासीत्=कस्मिंश्चिदपि काले 'अयं नासीत्' इति नो शङ्कनीयम्, अपि तु अयं सर्वदाऽऽसीदेव अनादित्वात्। तथा न कदापि न भवति='कस्मिंश्चिदपि कालेऽस्य स्थितिर्नास्ति' इत्यपि नो शङ्कनीयम्, अपि तु अयं सर्वं दैवास्ति – सर्वदा सद्भावात। तथा अयं न कदापि न भविष्यति–अर्थात्–'अयं कस्मिंश्चिदपि काले न भविष्यति' इति नो शङ्कनीयम्, अपि तु–अयं सर्वं दैव भविष्यति–अपर्यवसितत्वात्। अमुमेवार्थमाह—अयम्–अभूच्च, भवति च,

---

अब इस द्वादशांगरूप गणिपिटक की त्रैकालिक सत्ता को दिखलाते हैं—'इच्चेइयं दुवालसंगं०' इत्यादि—

यह द्वादशांगरूप गणिपिटक किसी समय में नहीं था ऐसी बात नहीं है कारण यह अनादि है, और अनादि होने के कारण ऐसा कोई भी समय नहीं था कि जिसमे इसका सद्भाव न रहा हो। तथा वर्तमान में भी ऐसा कोई समय नहीं है, कि जिस समय में इसका सद्भाव न पाया जाता हो, तथा भविष्त् काल में भी ऐसा कोई समय नहीं आवेगा कि जिस में इसका अस्तित्व न बना रहेगा। तात्पर्य यह है कि यह द्वादशांगरूप श्रुत भूतकाल में था, वर्तमानकाल में है और भविष्यत्काल में

હવે આ દ્વાદશાંગરૂપ ગણિપિટકની ત્રૈકાલિક સત્તાને સૂત્રકાર બતાવે છે– "इच्चेइयं दुवाल संगं०" ઈત્યાદિ–

આ દ્વાદશાંગરૂપ ગણિપિટક કોઈ પણ સમયે ન હતું એવી વાત નથી, કરણ કે તે અનાદિ છે. અને અનાદિ હોવાથી એવો કોઈ પણ સમય ન હતો કે જ્યારે તેનું અસ્તિત્વ ન હોય. તથા વર્તમાનમાં પણ એવો કોઈ સમય નથી કે જે સમયે તેનું અસ્તિત્વ ન હોય, તથા ભવિષ્યકાળમાં પણ એવો કોઈ સમય નહીં આવે કે જ્યારે તેનું અસ્તિત્વ નહીં હોય, ભાવાર્થ એ છે કે આ દ્વાદશાંગરૂપ ગણિપિટક ભૂતકાળમાં હતું, વર્તમાનકાળમાં છે, અને ભવિષ્યકાળમાં

भविष्यति च। तस्माद् अयं द्वादशाङ्गो गणिपिटकः-ध्रुवः=स्थिरः मेरुपर्वतादिवत्, ध्रुवत्वाद् नियतः=निश्चितः पञ्चास्तिकायेषु लोकवचनवत्, नियतत्वादेव शाश्वतः= नित्यः समयावलिकादिषु कालवचनवत्, शाश्वतत्वादेव-अक्षयः=सहस्रशो वाचनादि प्रदानेऽपि क्षयरहितत्वात्, गङ्गासिन्धुप्रवाहेऽपि पद्महृदवत्, अक्षयत्वादेव-अव्ययः मानुषोत्तराद्बहिः समुद्रवत्, अव्ययत्वादेव अवस्थितः=स्वप्रमाणे जम्बूद्वीपादिवत्,

भी रहेगा, यही बात "अभूच्च, भवति च भविष्यति च" इन क्रियापदों द्वारा प्रदर्शित की गई है, इसलिये यह द्वादशांगरूप गणिपिटक काल-त्रय में रहने के कारण (१) ध्रुव, (२) स्थिर, (३) नियत-निश्चित, (४) शाश्वत, अक्षय-क्षयरहित, (५) अव्यय, (६) अवस्थित, एवं (७) नित्य माना गया है। ये ध्रुव आदि शब्द हेतु हेतुमद्भावसे यहां व्याख्यात हुए हैं। यह द्वादशाङ्गरूप गणिपिटक अचल होने के कारण ही यह सुमेरु पर्वत आदि की तरह ध्रुवरूप में गया है। (१)पंचास्तिकायों में जैसे लोकवचन निश्चित है उसी तरह ध्रुव होने के कारण यह द्वादशांग भी नियतरूप वाला माना गया है। (२)समय,आव लिका आदि कों में जैसे कालव्यवहार शाश्वत माना जाता है उसी प्रकार यह भी नियत होने से शाश्वत माना गया है। हजारों (३) वाचनाएँ आदि देने पर भी इसका कभी भी क्षय नहीं होता है। जैसे गंगा सिन्धु आदि रूप प्रवाह के निकलते रहने पर भी पद्महृद अक्षय है। (४) अक्षय होने के कारण यह अव्यय बतलाया गया है, जैसे मानुषोत्तर के बाहर समुद्र

પણ રહેશે, એજ વાત "अभूच्च, भवति च भविष्यति च" આ ક્રિયાપદો દ્વારા દર્શાવવામાં આવી છે, તેથી દ્વાદશાંગરૂપ ગણિપિટક ત્રણે કાળમાં રહેવાને કારણે (૧) ધ્રુવ-સ્થિર, (૨) નિયત-નિશ્ચિત, (૩) શાશ્વત, (૪) અક્ષય-ક્ષય રહિત, (૫) અવ્યય, (૬) અવસ્થિત અને (૭) નિત્ય માનવામાં આવ્યું છે. એ ધ્રુવ આદિ શબ્દ હેતુ હેતુમદ્‌ભાવથી અહીં વ્યાખ્યાત થયાં છે. આ દ્વાદશાંગરૂપ ગણિ-પિટકને સુમેરુ પર્વત આદિના જેવું ધ્રુવ કહેલ છે (૧). પંચાસ્તિકાયોમાં જેમ લોકવચન નિશ્ચિત છે એજ રીતે ધ્રુવ હોવાને કારણે આ દ્વાદશાંગ પણ નિયતરૂપ વાળું મનાયું છે (૨). સમય, આવલિકા આદિકોમાં જેમ કાળ વ્યવહાર શાશ્વત મનાય છે એજ પ્રકારે તે પણ નિયત હોવાથી શાશ્વત મનાયું છે (૩). હજારો વાચનાઓ આદિ દેવા છતાં પણ તેનો કદી ક્ષય થતો નથી, જેમ ગંગા, સિંધુ આદિરૂપ પ્રવાહ નીકળતો રહેવા છતાં પણ પદ્મ સરોવર અક્ષય છે, તેમ હજારો વાચનાઓ આદિ દેવા છતાં પણ દ્વાદશાંગનો કદી ક્ષય થતો નથી માટે તેને અક્ષય કહેલ છે (૪). અક્ષય હોવાને કારણે તે અવ્યય બતાવેલ છે, જેમ માનુ-

अवस्थितत्वादेव नित्यः—आकाशवत् । अस्मिन्नेवार्थे दृष्टान्तमाह—तद्यथानाम—पञ्चास्तिकायाः=धर्मास्तिकायादयः न कदापि नासन् , न कदापि न सन्ति,न कदापि न भविष्यति । अयं भावः—धर्मास्तिकायादयः आसन्नेव, सन्त्येव, भविष्यन्त्येव । अमुमेवार्थमाह—अभूवंश्च, सन्ति च, भविष्यन्ति, च धर्मास्तिकायादयः, । एते हि—ध्रुवाः, नियताः, शाश्वता, अक्षयाः, अव्ययाः, अवस्थिताः, नित्याः ध्रुवादीनामर्थाः पूर्ववत् । एवमेव=अनेन प्रकारेणैव द्वादशाङ्गो गणिपिटकः न कदापि नासीत्, न कदापि नास्ति, न कदापि न भविष्यति, निषेध मुखेनास्य त्रैका-

अव्ययरूप में हैं उसी प्रकार यह द्वादशांग भी अक्षय होने के कारण अव्ययरूपवाला कहा गया है ५। जिस प्रकार अपने प्रमाण में जंबू द्वीप आदि अवस्थित हैं उसी तरह यह भी अवस्थित है ६। और इसीलिये यह आकाश की तरह नित्य है ७। इसी बात को दृष्टान्त द्वारा सूत्रकार समझाते हैं—जीवास्तिकाय १, पुद्गलास्तिकाय २, धर्मास्तिकाय ३, अधर्मास्तिकाय ४, और आकाशास्तिकाय ५, ये पांच अस्तिकाय द्रव्य जैसे भूतकाल में कभी नहीं थे, वर्तमानकाल में नहीं हैं तथा भविष्यत्काल में नहीं होगें, ऐसी बात नहीं हो सकती, अर्थात् ये भूतकाल में थे, वर्तमान में हैं और भविष्यत्काल में रहेंगे, इसी लिये जैसे ये ध्रुव, नियत, शाश्वत, अक्षय, अव्यय, अवस्थित एवं नित्य माने गये हैं इसी तरह यह द्वादशांगरूप गणिपिटक कभी नहीं था यह बात नहीं है, वर्तमान में नहीं है यह भी बात नहीं है, एवं भविष्यत् काल में नहीं रहेगा यह भी बात

પોત્તરની બહાર સમુદ્ર અવ્યયરૂપે જ છે એજ પ્રકારે આ દ્વાદશાંગ પણ અક્ષય હોવાને કારણે અવ્યયરૂપવાળું કહેલ છે. (૫). જેમ પોતાના પ્રમાણમાં જંબૂદ્વીપ આદિ અવસ્થિત છે એજ પ્રમાણે આ દ્વાદશાંગ પણ અવસ્થિત છે (૬). અને તે કારણે તે આકાશની જેમ નિત્ય છે (૭). એજ વાતને સૂત્રકાર દૃષ્ટાંત દ્વારા સમજાવે છે—(૧) જીવાસ્તિકાય, (૨) પુદ્ગલાસ્તિકાય, (૩) ધર્માસ્તિકાય, (૪) અધર્માસ્તિકાય અને (૫) આકાશાસ્તિકાય. એ પાંચ અસ્તિકાય દ્રવ્ય જેમ ભૂતકાળમાં કદી ન હતાં, વર્તમાનકાળમાં નથી, તથા ભવિષ્યકાળમાં હશે નહીં, એવી વાત અશક્ય છે એટલે કે તે ભૂતકાળમાં હતાં, વર્તમાન કાળમાં છે અને ભવિષ્ય કાળમાં રહેશે, તે કારણે તેઓને જેમ ધ્રુવ, નિયત, શાશ્વત, અક્ષય, અવ્યય, અવસ્થિત અને નિત્ય માન્યાં છે એજ પ્રમાણે આ દ્વાદશાંગરૂપ ગણિ-પિટક પણ કદી ન હતું એવી વાત નથી, વર્તમાનમાં નથી એવી પણ વાત નથી,

लिकत्वं समर्थ्य विधिमुखेन तदेव समर्थयति-अभूच्च भवति च भविष्यति च। अत एवायम्-ध्रुवो नियतः शाश्वतः अक्षयः अव्ययः अवस्थितो नित्यः। स द्वादशङ्गो गणिपिटकः समासतः=संक्षेपतः चतुर्विधः=चतुष्प्रकारकः प्रज्ञप्तः। तान् प्रकारानाह 'तद्यथा'-इत्यादि। व्याख्या सुगमा। नवरम्-उपयुक्तः-उपयोगवानिति॥सू०५७॥

सम्प्रति सूत्रकार उपसंहरन् संग्रहगाथाः प्राह—

मूलम्-अक्खर सण्णी सम्मं, साइयं खलु सपज्जवसियं च।
गमियं अंगपविट्ठं, सत्त वि एए सपडिवक्खा॥ १॥

नहीं है, किन्तु था, है और रहेगा। इसी लिये यह ध्रुव आदि विशेषणों वाला होकर अवस्थित एवं नित्य है। इस तरह सूत्रकार ने पहिले निषेधमुख से इस में त्रैकालिक सत्ता का समर्थन किया और अब वे "अभूच्च भवति च भविष्यति च" इन क्रियापदों द्वारा इसका विधिमुख से समर्थन किया है, अतः इस कथन में यहां पुनरुक्ति की आशंका नहीं हो सकती है।

यह द्वादशाङ्ग संक्षेप में चार प्रकार के कहे गये हैं। वे चार प्रकार द्रव्य से, काल से और भाव से जानने चाहिये। द्रव्य से उपयोगवान श्रुतज्ञानी समस्त द्रव्यों को जानता है, देखता है। क्षेत्र से-उपयोगवान श्रुतज्ञानी समस्त क्षेत्रों को जानता है, देखता है। कालसे-उपयोगवान श्रुतज्ञानी समस्त कालको जानता है, देखता है। भाव से उपयोगवान श्रुतज्ञानी समस्त भावों को जानता है, देखता है॥सू०५७॥

અને ભવિષ્યમાં નહીં રહે એવી વાત પણ નથી, પરન્તુ હતું, છે, અને રહેશે. તે કારણે તે અચલ, ધ્રુવ આદિ વિશેષણોવાળું હોવાથી અવસ્થિત અને નિત્ય છે. આ રીતે સૂત્રકારે પહેલાં નિષેધમુખે તેમાં ત્રૈકાલિક સત્તાનું સમર્થન કર્યું અને હવે તેમણે "अभूच्च भवति च भविष्यति च" એ ક્રિયાપદો દ્વારા તેનું વિધિમુખે સમર્થન કર્યું છે, તેથી આ કથનમાં અહીં પુનરુક્તિની આશંકા કરી શકાતી નથી.

આ દ્વાદશાંગ સંક્ષેપમાં ચાર પ્રકારે છે. તે ચાર પ્રકારો, દ્રવ્યથી, ક્ષેત્રથી, કાળથી અને ભાવથી જાણવા જોઇએ દ્રવ્યથકી ઉપયોગવાન શ્રુતજ્ઞાની સમસ્ત દ્રવ્યોને જાણે છે, જુએ છે. ક્ષેત્ર થકી ઉપયોગવાન શ્રુતજ્ઞાની સમસ્ત ક્ષેત્રોને જાણે છે. જુએ છે. કાળથકી ઉપયોગવાન શ્રુતજ્ઞાની સમસ્તકાળને જાણે છે, જુએ છે, ભાવથકી ઉપયોગવાન શ્રુતજ્ઞાની સમસ્ત ભાવોને જાણે છે, જુએ છે. (સૂ૦ ૫૭)

आगमसत्थग्गहणं, जं बुद्धिगुणेहिं अट्ठहिं दिट्ठं ।
बिंति सुयनाण लंभं, तं पुव्वविसारया धीरा ॥ २ ॥
सुस्सूसइ[1] पडिपुच्छइ[2], सुणेइ[3] गिण्हइ[4] य ईहए[5] यावि ।
तत्तो अपोहए[6] वा, धारेइ करेइ[7] वा सम्मं ॥ ३ ॥
मूयं१ हुंकारं२ वा, बाढंकारं३ पडिपुच्छ४ वीमंसा५ ।
तत्तो पसंगपारा—यणं६ च परिणिट्ठ७ सत्तमए ॥ ४ ॥
सुत्तत्थो खलु पढमो, बीओ निज्जुत्तिमीसिओ भणिओ ।
तइओ य निरव सेसो, एस विही होइ अणुओगे ॥ ५ ॥
से त्तं अंगपविट्ठं । से त्तं सुयनाणं । से त्तं परोक्खनाणं ।
से त्तं नाणं ॥ सू०५८॥

॥ नंदी समत्ता ॥

छाया—अक्षरसंज्ञि सम्यक्, सादिकं खलु सपर्यवसितं च ।
गमिकमङ्गप्रविष्टं, सप्ताऽप्येतानि सप्रतिपक्षाणि ॥ १ ॥
आगमशास्त्रग्रहणं, यद्बुद्धिगुणैरष्टभिर्दृष्टम् ।
ब्रुवते श्रुतज्ञानलाभं, तत्पूर्वविशारदा धीराः ॥ २ ॥
शुश्रूषते प्रतिपृच्छति शृणोति गृह्णाति चेहते वाऽपि ।
ततोऽपोहते वा धारयति करोति वा सम्यक् ॥ ३ ॥
मूकः हुङ्कारः बाढंकारः, प्रतिपृच्छा विमर्शः ।
ततः प्रसङ्ग परायणं च परिनिष्ठा सप्तमकः ॥ ४ ॥
सूत्रार्थः खलु प्रथमः, द्वितीयो निर्युक्ति—मिश्रितो भणितः ।
तृतीयश्च निरववेष, एष विधिर्भवत्यनुयोगे ॥ ५ ॥
तदेतदङ्गप्रविष्टम् , तदेतच्छ्रुतज्ञानम् , तदेतत् परोक्षज्ञानम्। तदेतज्ज्ञानम्॥सू०५८॥

॥ नन्दी समाप्ता ॥

टीका—'अक्खरसन्नी' इत्यादि । अक्षरम्=अक्षरश्रुतम् १, संज्ञि=संज्ञि-

---

अब सूत्रकार शास्त्र का उपसंहार करते हुए संग्रह गाथाएं कहते हैं—'अक्खरसण्णी०' इत्यादि—

હવે સૂત્રકાર શાસ્ત્રનો ઉપસંહાર કરતા સંગ્રહ ગાથાઓ કહે છે—" अक्खर सण्णी० " ઈત્યાદિ—

श्रुतम् २, सम्यक्=सम्यक्श्रुतम् ३, सादिकं=सादिकश्रुतम्, यस्य श्रुतस्यादिर्विद्यते तत् सादिकश्रुतम् ४, तथा-सपर्यवसितम्=पर्यवसितं-पर्यवसानं विद्यते यस्य तत् सपर्यवसितम् अन्तसहितं श्रुतमित्यर्थः ५, गमिकम्=सदृशपाठयुक्तं शास्त्रम् ६, अङ्गप्रविष्टम्=द्वादशविधं प्रवचनम्-आचारादिदृष्टिवादपर्यन्तम् ७। एतानि सप्त श्रुतज्ञानानि सप्रतिपक्षाणि=प्रतिपक्षसहितानि सन्ति। इह श्रुतज्ञानप्रकरणे एतच्छब्देन अक्षरसंज्ञिप्रभृतीन्येव श्रुतज्ञानानि गृह्यन्ते। 'एए सपडिवक्खा' इति पुंलिङ्गनिर्देशस्त्वार्षत्वात्। 'एते सप्तश्रुतज्ञानभेदाः सप्रतिपक्षाः' इति व्याख्याने मूले पुंलिङ्गनिर्देशः संगच्छते। अन्ये तु पुंलिङ्ग निर्देशानुरोधेन 'पक्षाः' इत्यध्याहारं कुर्वन्ति, तन्न सम्यक् पक्षा इत्यस्य पूर्वानुक्तत्वात्।

अयमर्थः—अक्षरश्रुतम् १, अनक्षरश्रुतम् २, संज्ञिश्रुतम् ३, असंज्ञिश्रुतम् ४, सम्यक्श्रुतम् ५, मिथ्याश्रुतम् ६, सादिकश्रुतम् ७, अनादिकश्रुतम् ८, सपर्यवसितश्रुतम् ९, अपर्यवसितश्रुतम् १०, गमिकश्रुतम् ११, अगमिकश्रुतम् १२, अङ्गप्रविष्टश्रुतम् १३, अनङ्गप्रविष्टश्रुतम् १४, इत्येवं चतुर्दशभेदाः श्रुतज्ञानस्य भवन्तीति॥१॥

इदं श्रुतज्ञानं सर्वोत्कृष्ट रत्नतुल्यं प्रायोगुर्वधीनं च, अतः शिष्यानुग्रहार्थं श्रुतज्ञानलाभं वर्णयति—

अक्षरश्रुत १, संज्ञिश्रुत २, सम्यक्श्रुत ३, सादिकश्रुत ४, सपर्यवसितश्रुत ५, गमिकश्रुत ६, और अंग प्रविष्टश्रुत ७। ये श्रुत के सातों ही भेद अपने २ प्रतिपक्ष सहित हैं। जैसे-अक्षरश्रुत का प्रतिपक्ष अनक्षरश्रुत १, संज्ञिश्रुत का प्रतिपक्ष असंज्ञिश्रुत २, सम्यक्श्रुत का प्रतिपक्ष मिथ्याश्रुत ३, सादिकश्रुत का प्रतिपक्ष अनादिकश्रुत ४, सपर्यवसित का प्रतिपक्ष अपर्यवसितश्रुत ५, गमिक का प्रतिपक्ष अगमिकश्रुत ६, तथा अंगप्रविष्ट का प्रतिपक्ष अनंगप्रविष्ट ७। इस तरह श्रुतज्ञान के ये १४ चौदे भेद हैं। इनमें से जिस श्रुत की आदि है वह सादिकश्रुत है, जिसका पर्यवसान-अन्त है वह सपर्यवसितश्रुत है। सदृशपाठ से युक्त श्रुत

---

(१) અક્ષરશ્રુત, (૨) સંજ્ઞિશ્રુત, (૩) સમ્યકશ્રુત, (૪) સાદિકશ્રુત (૫) સપર્યવસિતશ્રુત, (૬) ગમિકશ્રુત અને (૭) અંગપ્રવિષ્ટશ્રુત એ શ્રુતના સાતે ભેદ પોત પોતાના પ્રતિપક્ષ યુક્ત છે. જેમકે અક્ષરશ્રુતનું પ્રતિપક્ષ અનક્ષરશ્રુત, સંજ્ઞિશ્રુતનું પ્રતિપક્ષ અસંજ્ઞિશ્રુત, સમ્યક્ શ્રુતનું પ્રતિપક્ષ મિથ્યાત્વશ્રુત, સાદિકશ્રુતનું પ્રતિપક્ષ અનાદિશ્રુત, સપર્યવસિતનું પ્રતિપક્ષ અપર્યવસિત શ્રુત, ગમિકનું પ્રતિપક્ષ અગમિકશ્રુત તથા અંગપ્રવિષ્ટનું પ્રતિપક્ષ અનંગપ્રવિષ્ટ, આ રીતે શ્રુત જ્ઞાનના તે ચૌદ (૧૪) ભેદ છે. તેઓમાં જે શ્રુતનો આદિ છે તે સાદિકશ્રુત છે, જેનું પર્યવસાન-અંત છે તે સપર્યવસિત શ્રુત છે. સદૃશપાઠવાળું શ્રુત ગમિક

'आगमसत्थग्गहणं०' इत्यादि। अष्टभिः बुद्धिगुणैः=अव्यवहितोत्तर गाथायां वक्ष्माणैः शुश्रूषादिभिः, यत् आगमशास्त्रग्रहणं=आ-मर्यादया, यथावस्थितप्ररूपणा-रूपयापरिच्छिद्यन्ते अर्थायेन स आगमः। स चोक्तव्युत्पत्त्याऽवधिकेवलादिज्ञानरूपोऽपि भवति, अतस्तन्निराकरणार्थमिह शास्त्रपदं प्रयुक्तम्। शास्यतेऽनेनेति शास्त्रम्।

गमिक श्रुत है। एवं आचारांग आदि से लेकर दृष्टिवाद पर्यन्त समस्त श्रुत अंगप्रविष्ट है॥ १॥

'आगमसत्थ०' इत्यादि।

बुद्धि के आठ गुणों से युक्त होकर जो मनुष्यों द्वारा आगमशास्त्र का ज्ञान प्राप्त किया जाता है इसी का नाम श्रुतज्ञान लाभ है, ऐसा धीर वीर श्रुत केवलियों का कथन है। बुद्धि के आठ गुण अभी नीचे की गाथा द्वारा सूत्रकार स्वयं प्रकट करेंगे-आ-यथावस्थित प्ररूपणारूप मर्यादापूर्वक-गम-जीवादिक पदार्थ जिसके द्वारा जाने जाते हैं उसका नाम आगम है। आगम की जब इस प्रकार व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ अवधिज्ञान मनः पर्यवज्ञान तथा केवलज्ञान में भी घटिक हो जाता है, कारण उनमें भी यथावस्थितप्ररूपणारूप मर्यादा रही हुए है। इस तरह इस व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ में अतिव्याप्ति दोष का प्रसंग आता है सो यह प्रसंग यहां उपस्थित न हो इसके लिये आगम के साथ सूत्रकार ने शास्त्रपद प्रयुक्त किया है। अवधिज्ञान आदि ज्ञानशास्त्र नहीं हैं। "शास्यतेऽनेन इति शास्त्रम्"

શ્રુત છે. અને આચારાંગ આદિથી લઈને દૃષ્ટિવાદ સુધીના સમસ્ત શ્રુત અંગ પ્રવિષ્ટ શ્રુત છે ॥ ૧ ॥

"आगम सत्थ०" ઈત્યાદિ.

બુદ્ધિના આઠ ગુણોથી યુક્ત થઈને જે મનુષ્યો દ્વારા આગમશાસ્ત્રનું જ્ઞાન પ્રાપ્ત કરાય છે એનું નામ શ્રુતજ્ઞાન લાભ છે, એવું ધીર, વીર શ્રુત કેવળીઓનું કથન છે. બુદ્ધિના આઠ ગુણ નીચેની ગાથા દ્વારા સૂત્રકાર પોતે હમણા જ પ્રગટ કરશે. -આ- યથાવસ્થિત પ્રરૂપણા રૂપ મર્યાદા પૂર્વક -ગમ- જીવાદિક પદાર્થને જેના દ્વારા જાણવામાં આવે છે તેને આગમ કહે છે. આગમની જો આ પ્રમાણે વ્યુત્પત્તિ કરવામાં આવે તો તે વ્યુત્પત્તિલભ્ય અર્થ અવધિ-જ્ઞાન મનઃપર્યયજ્ઞાન તથા કેવળજ્ઞાનમાં પણ ઘટાવી શકાય છે, કારણ કે તેમનામાં પણ યથાવસ્થિત પ્રરૂપણારૂપ મર્યાદા રહેલ છે. આ રીતે આ વ્યુત્પત્તિલભ્ય અર્થમાં અતિવ્યાપ્તિ દોષનો પ્રસંગ આવે છે, તો આ પ્રસંગ અહીં ઉપસ્થિત ન થાય તે માટે આગમની સાથે સૂત્રકારે શાસ્ત્રપદનો ઉપયોગ કર્યો છે. અવધિ-જ્ઞાન આદિ જ્ઞાનશાસ્ત્રો નથી. "शास्यतेऽनेन इति शास्त्रम्" જેના દ્વારા શિક્ષા

आगमश्चासौ शास्त्रं च, आगमशास्त्रं, तस्य ग्रहणम्। षष्टितन्त्रादि कुशास्त्रनिराकरणार्थमागमग्रहणम्। षष्टितन्त्रादीनां यथावस्थितार्थप्रकाशनाऽभावादनागमत्वात्, शास्त्रतया च रूढत्वात्। आगमरूपस्य यथावस्थितार्थानां प्ररूपकस्य शास्त्रस्य ग्रहणं=ज्ञानं भवतीति दृष्टं=तीर्थंकर गणधरादिभिरवलोकितम्। तत्-तदेव आगमशास्त्रज्ञानं पूर्वविशारदाः-चतुर्दश पूर्वधराः धीराः व्रतपालने दृढाः मुनयः श्रुतज्ञानलाभं ब्रुवते=वदन्ति। जिनप्रणीत प्रवचनार्थ परिज्ञानमेव परमार्थतः श्रुतज्ञानं नान्यदिति भावः ॥ २ ॥

प्रागुक्तानष्टौ बुद्धिगुणान् प्राह—'सुस्सूसइ०' इत्यादि। शुश्रूषते-विनीतः सन् गुरुवचनं श्रोतु मिच्छति, शुश्रूषते=सेवते वा गुरुम् १, प्रतिपृच्छति-संशये

जिसके द्वारा शिक्षा दी जावे वही शास्त्र होता है। ये तो प्रत्यक्षज्ञान है। शास्त्र-परोक्षज्ञान है। षष्टितन्त्र आदिकुशास्त्रों में आगमता का निषेध करने के लिये शास्त्र के पहिले आगम पद रक्खा है। व्यवहार में षष्टितन्त्रादिक शास्त्ररूप से माने जाते हैं, पर ये आगम नहीं हैं, अनागम हैं। इस तरह यथावस्थित अर्थों का प्ररूपक जो शास्त्र है उसका ज्ञान ही आगमशास्त्र ज्ञान है। और यह आगमज्ञान जिस आत्मा में हो गया है वही श्रुतज्ञानलाभ है। ऐसा कथन व्रतपालन में दृढ़ प्रतिज्ञ हुए चतुर्दशपूर्वधारी मुनिराजों का है। तात्पर्य इसका यही है कि जिनप्रणीत प्रवचन के अर्थ का परिज्ञान ही परमार्थतः श्रुतज्ञान है, अन्यप्रणीत श्रुत का ज्ञान श्रुतज्ञान नहीं है ॥ २ ॥

अब बुद्धि के आठ गुणों को कहते हैं—'सुस्सूसइ०' इत्यादि। विनीत बनकर गुरु के वचन को सुनने की इच्छा रखना, अथवा गुरु की

અપાય તે શાસ્ત્ર કહેવાય છે. એ તો પ્રત્યક્ષ જ્ઞાન છે. શાસ્ત્ર પરોક્ષ જ્ઞાન છે. ષષ્ટિતંત્ર આદિ કુશાસ્ત્રોમાં આગમતાનો નિષેધ કરવાને માટે શાસ્ત્રની પહેલાં આગમ શબ્દ મૂક્યો છે. વ્યવહારમાં ષષ્ટિતંત્ર આદિક શાસ્ત્રરૂપે મનાય છે પણ તે આગમ નથી, અનાગમ છે. આ રીતે યથાવસ્થિત અર્થોનું પ્રરૂપક જે શાસ્ત્ર છે તેનું જ્ઞાન જ આગમશાસ્ત્ર જ્ઞાન છે. અને તે આગમજ્ઞાન જે આત્મામાં થઈ ગયુ છે એ જ શ્રુતજ્ઞાન લાભ છે. એવું કથન વ્રતપાલનમાં દૃઢપ્રતિજ્ઞ એવાં ચૌદ પૂર્વધારી મુનિરાજોનું છે. તેનું તાત્પર્ય એ છે કે જિનપ્રણિત પ્રવચનના અર્થનું પરિજ્ઞાન જ પરમાર્થતઃ શ્રુતજ્ઞાન છે, અન્યપ્રણિત શ્રુતનું જ્ઞાન શ્રુતજ્ઞાન નથી.॥૨॥

હવે બુદ્ધિના આઠ ગુણો બતાવે છે-"सुस्सूसइ०" ઇત્યાદિ-

(૧) વિનિત થઈને ગુરુનાં વચનોને સાંભળવાની ઈચ્છા રાખવી, અથવા

समुत्पन्ने विनयनम्रतया गुरुमनः प्रह्लादयन् पुनः पृच्छति २, शृणोति-पृष्टः सन् गुरुर्यत् कथयति, तत् सावधानो भूत्वा शृणोति ३, च-पुनः गृह्णाति-ग्रहणं करोति, शब्दतोऽर्थतश्च जानाति ४, अपि वा-ईहते-ईहां करोति, पूर्वापरविरोधेन पर्यालोचयति, किंचित् स्वबुद्ध्या उत्प्रेक्षते इति भावः ।५। ततः-तदनन्तरम् अपोहते =निर्णयं करोति । ६ ॥ वा पुनः, धारयति=धारणां करोति ७ । सम्यक् करोति-धारणाऽनुरूपं कार्यं सम्यक् करोति, शास्त्रोक्तमनुष्ठानं सम्यगाचरतीत्यर्थः । यथोक्तानुष्ठानमपि श्रुतज्ञान प्राप्ति हेतुरिति भावः ॥ ८ ॥ श्रुतज्ञानावरणकर्मणः क्षयोपशमाज्जायमानत्वादिमे बुद्धेर्गुणा इत्युक्तम् ॥ ३ ॥

शास्त्रश्रोतुः सप्तगुणानाह-'मू यं०' इत्यादि । प्रथमो गुणः-मूकं शृणोति,

---

सेवा करना १ । गुरु द्वारा पाठित पाठ में संशय के होने पर बड़ी नम्रता के साथ गुरुजन का मन हर्षित करते हुए संशय की निवृत्ति के निमित्त पुनः पूछना २ । पूछने पर गुरुजन क्या कहते हैं यह बड़ी सावधानी से सुनना ३ । पश्चात् पूछे गये विषय का शब्द और अर्थपूर्वक अवधारण करना ४ । पश्चात् पूर्वापर विरोध न आवे इस रूप से उसकी पर्यालोचना करना ५ । बाद में उसका निश्चय करना ६ । कालान्तर में भी वह विषय विस्मृत न हो इस रूप से उसको धारण करना ७ । फिर धारणा के अनुसार शास्त्रोक्त अनुष्ठान को अपने जीवन में उतारना ८। ये बुद्धि के आठ गुण हैं । ये आठ गुण श्रुतज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से पैदा होते हैं, इसलिये इन्हें बुद्धि के गुणरूप में प्रगट किये हैं ॥३॥

अब शास्त्रकार शास्त्र सुननेवाले के सात गुण कहते हैं-'मूयं०' इत्यादि । प्रथमगुण-श्रोता शास्त्र को जब सुने तब बड़ी नम्रता के साथ

ગુરુની સેવા કરવી, (૨) ગુરુ દ્વારા પાઠિત પાઠમાં સંશય આવતાં ઘણી નમ્રતાપૂર્વક ગુરુજનનું મન હર્ષિત કરતાં સંશયનું નિવારણ કરવા માટે ફરીથી પૂછવું, (૩) પૂછતાં ગુરુજન જે કહે તે સાવધાનીથી સાંભળવું, (૪) પછી પૂછેલ વિષયનું શબ્દ અને અર્થપૂર્વક અવધારણ કરવું, (૫) પછી પૂર્વાપર વિરોધ ન આવે તે રીતે તેની પર્યાલોચના કરવી, (૬) પછી તેનો નિશ્ચય કરવો, (૭) કાલાન્તરે પણ તે વિષય ભૂલાય નહીં તે રીતે તેને ધારણ કરવો, (૮) અને ધારણા પ્રમાણે શાસ્ત્રોકત અનુષ્ઠાનને પોતાના જીવનમાં ઉતારવું, એ બુદ્ધિના આઠ ગુણ છે. એ આઠ ગુણ શ્રુતજ્ઞાનાવરણીય કર્મના ક્ષયોપશમથી પેદા થાય છે તેથી તેમને બુદ્ધિના ગુણરૂપે પ્રગટ કર્યાં છે ॥૩॥

હવે શાસ્ત્રકાર શાસ્ત્ર સાંભળનારના સાત ગુણ કહે છે-'મૂયં૦" ઇત્યાદિ. (૧) પ્રથમગુણ-શ્રોતા શાસ્ત્રનુ જ્યારે શ્રવણ કરે ત્યારે ઘણી નમ્રતાપૂર્વક

अयं भावः-संयतगात्रः सन् मौनं करोतीति । १ । द्वितीयो गुणः-हुंकारं करोति स्वीकार सूचकं "हा" इत्यव्यक्तध्वनिं करोतीत्यर्थः । २ । तृतीयो गुणः-बाढंकारं करोति, बाढम्-एवमेतत्, नान्यथेत्युक्त्वा स्वीकारं करोतीत्यर्थः । ३ । चतुर्थो गुणः-प्रतिपृच्छां करोति अयं भावः गृहीत पूर्वापर सूत्राभिप्रायवान् संशये सति किंचित् पृच्छति-'कथमेतत्' इति ४ । पञ्चमो गुणः-विमर्शं करोति-प्रमाण जिज्ञासां करोतीति भावः ५ । ततः-प्रसङ्गपरायणं भवति । प्रसङ्गश्च परायणं चेति समाहारः । अयमर्थः-पूर्वोक्त गुणयुक्तस्य श्रोतुः प्रसङ्गः=उत्तरगुणप्रसङ्गः, उत्तरगुण प्रसंगो भवति परायणं=पारगमनं शास्त्रस्य चेति षष्ठो गुणो भवति६ । ततः सप्तमको= सप्तमो गुणः - परिनिष्ठा—संपूर्णता भवति । अयमर्थः—असौ श्रोता गुरुवत् परिनिष्ठितो भवतीत्यर्थः । गुरुवदनु भाषते एवेति भावः । ७ । अथवा—

शरीर को संयतकर मौनपूर्वक सुनता है, अर्थात् बीच बीच में बातचीत नहीं करता है १ । दूसरा गुण-हुंकार करता है, अर्थात् स्वीकृतिसूचक 'हाँ' ऐसी अव्यक्त ध्वनि करता है २ । तृतीयगुण-बाढंकार करता है, अर्थात्-'तहत्ति-तथेति' करता है ऐसा बोलता है कि-'जैसा आप कहते हैं वह वैसा ही है अन्यथा नहीं है' ऐसा कहकर शास्त्रोक्त विषय को मान्य करता है ३ । चतुर्थगुण-प्रतिपृच्छा करता है, अर्थात्-पूर्वापररूप से शास्त्र का अभिप्राय ग्रहणकर जब उसमें संशय उत्पन्न होता है तो 'हे भदन्त ! यह बात कैसे है ?' इस रूप से कुछ पूछता है ४ । पंचम-गुण-'इसमें क्या प्रमाण है ?' इस प्रकार का प्रमाण जिज्ञासारूप विमर्श करता है ५ । छठा गुण-फिर श्रोता उत्तरोत्तर गुणों की वृद्धि से शास्त्र का पारगामी होता है ६ । सातवाँ गुण-इस तरह श्रोता गुरु की तरह बोलनेवाला बन जाता है ७ । वास्तव में तो यह शास्त्रश्रवण में सात

શરીરને સંયત કરીને મૌનપૂર્વક સાંભળે છે, એટલે કે વચ્ચે વચ્ચે વાતો કરતો નથી. (૨) બીજો ગુણ-હુંકાર કરે છે એટલે કે સ્વીકૃતિસૂચક "હા" એવો અવ્યક્ત ધ્વનિ કરે છે. (૩) ત્રીજો ગુણ-બાઢંકાર કરે છે-એટલે કે "तहत्ति-तथेति" કહે છે એવું બોલે છે કે, "આપ જેમ કહો છો તેમ જ છે, અન્યથા નથી" આમ કહીને શાસ્ત્રોક્ત વિષયને માન્ય કરે છે. (૪) ચોથો ગુણ-પ્રતિપૃચ્છા કરે છે, એટલે કે પૂર્વાપર રૂપે શાસ્ત્રનો અભિપ્રાય ગ્રહણ કરીને જો તેમાં સંશય પેદા થાય તો "હે ભદન્ત ! આ વાત કેવી રીતે છે ?" આ રીતે કંઈક પૂછે છે. (૫) પાંચમો ગુણ-"આમાં કયું પ્રમાણ છે" આ પ્રકારનો પ્રમાણજિજ્ઞાસા-રૂપ વિમર્શ કરે છે. (૬) છઠ્ઠો ગુણ-વળી શ્રોતા ઉત્તરોત્તર ગુણોની વૃદ્ધિથી શાસ્ત્રનો પારગામી થાય છે. (૭) સાતમો ગુણ-આ રીતે શ્રોતા ગુરુની પ્રમાણે

शास्त्रश्रवणेऽयं सप्तविधो विधिर्भवतिः – मूकः – मूकभावः–आचार्यादिवाक्या-परिसमाप्तौ मौनावलम्बनं प्रथमः । १ । हुङ्कारः – आचार्यादिवाक्यावसाने तदनुमोदनार्थं 'हां' इत्यव्यक्त ध्वनिकरणं द्वितीयः । २ । बाढङ्कारः— 'तथेति भदन्त!' इत्यादि वाचा तदङ्गीकरणं तृतीयः । ३ । प्रतिपृच्छा-संशये समुत्पन्ने सति तन्निवारणार्थं वाक्यावसाने स विनयं प्रच्छनं चतुर्थः । ४ ।

प्रकार की विधि है, जैसे-प्रथमविधि–आचार्य आदि गुरुजन जब शास्त्र का प्रवचन करें तब श्रोता का यह कर्तव्य है कि वह शास्त्रीय प्रवचन को सुनने के लिये सर्वप्रथम मौनावलम्बन करे, वहां इधर–उधर की बातें न करे। ध्यानपूर्वक आचार्य महाराज क्या प्रतिपादन कर रहे हैं इसको सुने १। दूसरी विधि–जब वे अपने विषय का प्रतिपादन कर चुकें तब उनके द्वारा कथित विषय की अनुमोदना करने के लिये हुंकार शब्द करे अर्थात् 'हाँ' ऐसा बोले २। तीसरी विधि–बाढंकार करे, अर्थात् 'तहत्ति' कहकर उनके वचनों को स्वीकार करे, और यह प्रकाशित करे कि–हे भदन्त! आपने जो कुछ कहा है वह ऐसा ही है ३। चौथी विधि–प्रतिपृच्छा करे, अर्थात् श्रोताओं को जब गुरु महाराज द्वारा प्रकाशित अर्थ में किसी भी प्रकार का संशय हो जावे तो उसकी निवृत्ति के लिये जब वे अपना वक्तव्य समाप्त कर दें तब बड़ी नम्रता के साथ

બોલનાર થઈ જાય છે. વાસ્તવમાં તો શાસ્ત્રશ્રવણમાં આ સાત પ્રકારની વિધિ છે, જેમકે-પ્રથમ વિધિ આચાર્ય આદિ ગુરુજન જ્યારે શાસ્ત્રનું પ્રવચન કરે ત્યારે શ્રોતાની એ ફરજ છે કે તે શાસ્ત્રીય પ્રવચન સાંભળવા માટે સૌથી પહેલાં મૌન પાળે, ત્યાં અહીંતહીંની વાતો ન કરે. ધ્યાનપૂર્વક આચાર્ય મહારાજ શું પ્રતિપાદન કરી રહ્યા છે તે સાંભળે (૧). બીજી વિધિ–જ્યારે તેઓ પોતાના વિષયનું પ્રતિપાદન કરી રહે ત્યારે તેમના દ્વારા કથિત વિષયનું અનુમોદન કરવા માટે હુંકાર શબ્દ કરે અથવા "હા" એવું બોલે (૨) ત્રીજી વિધિ–બાઢંકાર કરે, એટલે "तहत्ति–तथेति" કહીને તેમનાં વચનોનો સ્વીકાર કરે, અને એ જાહેર કરે કે, 'હે ભદન્ત! આપે જે કંઈ કહ્યું તે બરાબર છે." (૩). ચોથી વિધિ–પ્રતિપૃચ્છા કરે–એટલે કે શ્રોતાઓને જો ગુરુમહારાજ દ્વારા પ્રકાશિત અર્થ વિષે કોઈ પણ પ્રકારનો સંશય થાય તો તેના નિવારણ માટે જ્યારે તેઓ તેમનું વક્તવ્ય પૂરૂં કરે ત્યારે ઘણી નમ્રતાપૂર્વક તેમને તે વિષયમાં

विमर्शः-पदार्थानां हेयोपादेयत्वेन विचारः पञ्चमाः। प्रसङ्गपरायणम्-प्रसङ्गेन=उत्त-रोत्तर गुणवृद्ध्या परे=उत्कृष्टभावे अयनं=गमनं षष्ठः । ६ । सप्तमोविधिः परि-निष्ठा-परिः=समन्तात् निष्ठा=श्रद्धा परिनिष्ठा-वीतराग वचनेऽविचलश्रद्धा । ७ ।

सूत्रे 'मूक' मित्यादौ सौत्रत्वान्नपुंसकत्वम् ॥ ४ ॥

श्रवणविधिरुक्तः, अधुना व्याख्यान विधिमाह—' सुत्तत्थो० ' इत्यादि ।

उनसे उस विषय में पूछे ४ । पांचवी विधि-विमर्श करे, अर्थात्-पदार्थों के विषय में हेय और उपादेयरूप से जो विचार किया जाता है, अर्थात्-गुरु महाराज के वचनश्रवण के बाद जो श्रोता के अंतरंग में ऐसी विचारधारा उत्पन्न होती है कि-' यह पदार्थ ग्रहण करने योग्य है तथा यह पदार्थ त्यागने योग्य है, एवं इस पदार्थ पर हमारी उपेक्षावृत्ति रहनी चाहिये ' इत्यादि रूप से परामर्श करे ५ । छठी विधि-प्रसंगपरायण होवे, अर्थात्-श्रोता के हृदय में सांसारिक पदार्थों के प्रति आसक्ति घटकर उनके प्रति विरक्ति बढे । इस तरह उत्तरोत्तर गुणों की वृद्धि से श्रोता का उनके त्यागने रूप उत्कृष्ट भाव में पहुंचना ६ । सातवीं विधि-परि-निष्ठा होवे, अर्थात्-श्रोता के चित्त में वीतराग प्रभु के वचनों में अविचल श्रद्धा का होना ७ ॥ ४ ॥

श्रवणविधि कहकर अब सूत्रकार व्याख्यान की विधि प्रकट करते हैं—' सुत्तत्थो० ' इत्यादि ।

प्रश्न पूछे (४). पांचमी विधि-विमर्श करे એટલે કે-પદોના વિષયમાં હેય અને ઉપાદેય રૂપે જે વિચાર કરાય છે, એટલે કે ગુરુમહારાજના વચન સાંભળ્યા પછી શ્રોતાના અંતરંગમાં જે એવી વિચારધારા ઉત્પન્ન થાય છે કે, " આ પદાર્થ ગ્રહણ કરવા યોગ્ય છે તથા આ પદાર્થ ત્યાગવા યોગ્ય છે, અને આ પદાર્થ પર અમારી ઉપેક્ષાવૃત્તિ રહેવી જોઈએ " ઇત્યાદિ રીતે પરામર્શ કરે (૫). છઠ્ઠી વિધિ-પ્રસંગ પરાયણ થાય-એટલે કે શ્રોતાનાં હૃદયમાં સાંસારિક પદાર્થો પ્રત્યે આસક્તિ ઘટીને તેમના તરફ વિરક્તિ વધે. આ રીતે ઉત્તરોત્તર ગુણોની વૃદ્ધિથી શ્રોતાનું તેમને ત્યાગવા રૂપ ઉત્કૃષ્ટ ભાવમાં પહોંચવું (૬). સાતમી વિધિ-પરિ-નિષ્ઠા થાય-એટલે કે શ્રોતાનાં ચિત્તમાં વીતરાગ પ્રભુનાં વચનોમા અવિચલ શ્રદ્ધા થવી (૭). ॥ ૪ ॥

શ્રવણવિધિનું વર્ણન કરીને હવે સૂત્રકાર વ્યાખ્યાનની વિધિ પ્રગટ કરે છે-"सुत्तत्थो०" ઇત્યાદિ.

सूत्रार्थः–सूत्रार्थमात्रकथनरूप एव प्रथमोऽनुयोगः कार्यः। प्राथमिक शिष्याणां मोहो न भवेदित्येतदर्थं सूत्रार्थमात्रोपदेशः कर्तव्य इति भावः। इह 'खलु' शब्दोऽवधारणार्थकः। द्वितीयोऽनुयोगः, निर्युक्तिमिश्रितः=सूत्रस्पर्शिक निर्युक्तिसहितः, भणितः=कथितः। तृतीयोऽनुयोगश्च निरवशेषः=प्रसंगानुप्रसंग प्रतिपादनपरः सूत्रार्थोभयनिर्युक्ति प्रभृतिपुरस्सरं निरूपणरूप इत्यर्थः कथितः। एषः–उक्तलक्षणः, विधिः प्रकारः, 'अणुओगे' इति–सूत्रस्य स्वाभिधेयेन सह अनुकूलो योगोऽनुयोगः–सूत्रार्थ व्याख्यानम्, तस्मिन् अनुयोगे, सूत्रार्थ व्याख्याने भवति। तदेतद् अङ्गप्रविष्टं वर्णितम् तदेतच्छ्रुतज्ञानं वर्णितम्। तदेतत् परोक्षज्ञानं वर्णितम् ॥सू०५८॥

॥ इति नन्दीसूत्रं सम्पूर्णम् ॥

प्रथमविधि–प्राथमिक शिष्यजनों को संदेह उत्पन्न न हो, इसके लिये आचार्य आदि गुरुजन उन्हें सूत्र के अर्थमात्र का उपदेश देवें। यह 'सूत्रार्थ' नामका प्रथम अनुयोग है १। सूत्र के अर्थ को स्पर्श करनेवाली निर्युक्ति होती है, इससे मिश्रित प्रवचन करना यह निर्युक्ति मिश्रित नामका द्वितीय अनुयोग है २। सूत्र, अर्थ एवं तदुभय (सूत्रार्थ) का तथा इनकी निर्युक्ति आदि का प्रवचन करना यह निरवशेष नामका तृतीय अनुयोग है ३। अनुयोग शब्द का अर्थ सूत्र अर्थ आदिका व्याख्यान करना है। इस व्याख्यानरूप अनुयोग में सूत्र का अपने अभिधेय के साथ अनुकूल योग–सम्बन्ध होता है, इसीलिये इसको अनुयोग कहा है ॥ ५ ॥

इस तरह अंग प्रविष्टका वर्णन हुआ। इसका वर्णन समाप्त होने पर श्रुतज्ञान का वर्णन समाप्त हुआ। श्रुतज्ञानके इस पूर्णवर्णन में परोक्ष-

---

પહેલી વિધિ-પ્રાથમિક શિષ્યજનોને સંદેહ પેદા ન થાય, તે માટે આચાર્ય આદિ ગુરુજન તેમને સૂત્રના અર્થમાત્રનો ઉપદેશ આપે. આ "સૂત્રાર્થ" નામનો પહેલો અનુયોગ છે (૧). સૂત્રના અર્થનો સ્પર્શ કરનારી નિર્યુક્તિ હોય છે, તેનાથી મિશ્રિત પ્રવચન કરવું તે "નિર્યુક્તિ મિશ્રિત" નામનો બીજો અનુયોગ છે (૨). સૂત્ર, અર્થ તથા તે બન્ને (સૂત્રાર્થ) નુ તથા તેમની નિર્યુક્તિ આદિનું પ્રવચન કરવું તે "નિરવશેષ" નામનો ત્રીજો અનુયોગ છે (૩). અનુયોગ એટલે સૂત્ર અર્થ આદિનું વ્યાખ્યાન કરવું. આ વ્યાખ્યાનરૂપ અનુયોગમાં સૂત્રનો પોતાના અભિધેયની સાથે અનુકૂળ યોગ-સંબંધ હોય છે, તેથી તેને અનુયોગ કહે છે ॥ ૫ ॥

આ રીતે આ અંગપ્રવિષ્ટનું વર્ણન થયું. તેનુ વર્ણન પૂરૂં થતાં શ્રુતજ્ઞાનનું વર્ણન સમાપ્ત થયું. શ્રુતજ્ઞાનના આ પૂર્ણ વર્ણનમાં પરોક્ષજ્ઞાનનુ વર્ણન થયું.

अथ षड्विंशतितम सूत्रोक्तानि (पृ० ३०१) उदाहरणानि वर्ण्यन्ते—

औत्पत्तिकीबुद्धिदृष्टान्ताः—

औत्पत्तिक्या बुद्धेरुदाहरणानि-' भरहसिल मिढकुक्कुड ' इति गाथायां नाम मात्रतो निर्दिष्टानि । अधुना क्रमशस्तान्युदाहरणानि प्रदर्श्यन्ते । तत्र ' भरतशिला ' इति प्रथमो दृष्टान्तः । स चैवम्—

ज्ञान वर्णित हुआ । तात्पर्य इसका यह है कि, पहिले शिष्यने पूछा था कि, हे भदन्त ! अंगप्रविष्ट का क्या स्वरूप है ? इसके उत्तर में आचार्य महाराजने यह कहा है कि " तदेतद् अंगप्रविष्टं वर्णितम् " कि आचारांग आदि अंगप्रविष्टका स्वरूप है । जब आचारांग आदिका वर्णन समाप्त हो चुका तो इस तरह अङ्गप्रविष्ट और अनंगप्रविष्ट आदि का वर्णन हो चुकने पर श्रुतज्ञान का वर्णन पूर्णरूप से हो चुका है ऐसा जानना चाहिये । श्रुतज्ञान के इस पूर्ण वर्णन में ही परोक्षज्ञान का पूर्णवर्णन आ जाता है, अतः ' तदेतत् परोक्षज्ञानं वर्णितम् " ऐसा आचार्यने कहा है ॥

॥ इति नंदीसूत्र संपूर्ण ॥

अब छब्बीसवें सूत्र (पृ०३०१) में उक्त उदाहरणों का वर्णन किया जाता है-

॥ औत्पत्तिकी बुद्धि के दृष्टान्त ॥

औत्पत्तिकी बुद्धि के ऊपर जो उदाहरण " भरहसिल मिढकुक्कुड " इस गाथामें नाम मात्र रूपसे सूचित किये गये हैं, वे अब क्रमशः प्रद-

---

તેનું તાત્પર્ય એ છે કે, પહેલાં શિષ્યે પૂછ્યું હતું કે " ભદન્ત ! અંગપ્રવિષ્ટનું શું સ્વરૂપ છે ? " તેના ઉત્તરમાં આચાર્ય મહારાજે એ કહ્યું છે કે " तदेतद् अंगप्रविष्टं वर्णितम् " આચારાંગ આદિ અંગપ્રવિષ્ટ છે અને એજ અંગપ્રવિષ્ટનું સ્વરૂપ છે-જ્યારે આચારાંગ આદિનું વર્ણન સમાપ્ત થઇ ગયું ત્યારે આ રીતે અંગપ્રવિષ્ટ અને અનંગપ્રવિષ્ટ આદિનું વર્ણન થઈ જતાં શ્રુતજ્ઞાનનું વર્ણન સંપૂર્ણ રીતે થઈ ગયું છે એમ સમજવું જોઇએ. શ્રુતજ્ઞાનના આ પૂર્ણ વર્ણનમાં જ પરોક્ષજ્ઞાનનું પૂર્ણવર્ણન આવી જાય છે, તેથી " तदेतत् परोक्षज्ञानं वर्णितम् " એવું આચાર્યે કહ્યું છે.

॥ इति नंदीसूत्र संपूर्ण ॥

હવે છવ્વીસમાં સૂત્ર (પૃ૦૩૦૧)માં કહેલા ઉદાહરણોનું વર્ણન કરવામાં આવે છે-

" औत्पत्तिकी बुद्धिनां दृष्टान्तो "

ઔત્પત્તિકી બુદ્ધિના ઉપર જે ઉદાહરણ " भरहसिल मिंढकुक्कुड " આ ગાથામાં નામ માત્રથી જ સૂચિત કરાયા છે તે હવે ક્રમશઃ બતાવવામાં આવે

आसीत् कश्चिदुज्जयिनी नगर्याः समीपे नटानां ग्रामः। तत्र भरतो नाम नटः प्रतिवसति। तस्य भार्या मृता। रोहक नामकस्तत्पुत्रः आसीत्।

अथ भार्यायां मृतायां भरतेन द्वितीया भार्याकृता। साच रोहकं प्रति सम्यग् न वर्तते, ततो रोहकेणोक्तम्-मातर्मया सह सम्यग् न वर्तसे, तदेतस्य फलं ज्ञास्यसि। ततस्तया कथितम्-अरे रोहक! किं करिष्यसि?। रोहकोऽब्रवी-एवं करिष्यामि यथा मच्चरणोपरि पतिष्यसि।

र्शित किये जाते हैं-उनमें "भरतशिला" यह प्रथम दृष्टान्त इस प्रकार है—

उज्जयिनी नगरी के पास एक नटों का गांव था। उसमें "भरत" इस नाम का नट रहता था। उसकी पत्नी मर चुकी थी। उससे उसको एक पुत्र प्राप्त हुआ था, जिसका नाम रोहक था। पत्नी विना घर का काम चलना बड़ा कठिन है ऐसा समझ कर उसने अपना दूसरा विवाह कर लिया। सौतेली माता होने के कारण उसका व्यवहार रोहक के साथ ठीक नहीं बैठता था। एक दिन सौतेली माताके दुर्व्यवहार से अप्रसन्न होकर रोहक ने उससे कहा-हे माता! ध्यान रखना, यदि तुम मेरे साथ ठीक २ व्यवहार नहीं करोगी, तो इसका फल एक न एक दिन तुम्हें भोगना ही पडेगा। रोहक की इस बात को सुनकर सौतेली माता को क्रोध चढ़ गया। वह बोली-अरे रोहक! तू मेरा क्या करेगा? रोहकने कहा क्या करेगा? वह करूंगा जिससे तू मेरे चरणों में पडेगी।

છે. તેઓમાં "भरतशिला" આ પહેલું દૃષ્ટાંત આ પ્રમાણે છે-

ઉજ્જયિની નગરી પાસે નટલોકોનું એક ગામ હતું. તેમાં "ભરત" નામનો નટ રહેતો હતો. તેની પત્ની મરી ગઈ હતી. તેનાથી તેને એક પુત્રની પ્રાપ્તિ થઈ હતી, જેનું નામ રોહક હતું. પત્ની વિના ઘરનું કામ ચાલવું ઘણું મુશ્કેલ છે એમ માનીને તેણે પોતાનો બીજો વિવાહ કર્યો. અપરમાત હોવાને કારણે રોહકની સાથે તેનું વર્તન બરાબર હતું નહીં. એક દિવસ અપરમતાના દુર્વ્યવહારથી નાખુશ થઈને રોહકે તેને કહ્યું-"હે માતા! ધ્યાન રાખો, જો તમે મારી સાથે યોગ્ય વર્તન નહીં રાખો તો તેનું ફળ તમારે કોઈ દિવસે જરૂર ભોગવવું પડશે" રોહકની આ વાત સાંભળીને અપરમાતાને ઘણો ક્રોધ થયો. તે બોલી,-"અરે રોહક! તું મને શું કરી શકીશ?" રોહકે કહ્યું-"શું કરીશ? એવું કરીશ કે જેથી તું મારે પગે પડીશ."

अथैकदा रोहकस्तस्यां द्वेषावेशेन निशि सहसा स्वपितरमाह-भो भो पितः! पलायमानोऽयं कश्चित् पुरुषो गच्छति, तं पश्य। बालकस्य वचनं श्रुत्वा नटः स्वभार्यां प्रति शीलभङ्गशङ्कया प्रीति रहितो जातः। ततो नटभार्या चिन्तयामास-नूनमेतच्चरितं रोहकस्य, यन्मम पतिः प्रीत्या न संभाषते। अन्यथा कथमकाण्ड एवायं मयि दोषाभावेऽपि पराङ्मुखो जातस्तस्माद् रोहकं प्रसादयामि। एवं

एक दिनकी बात है कि रोहक ने सौतेली माता के द्वेष से प्रेरित होकर यों ही अपने पिता से रातमें कहा पिताजी! देखिये, देखिये, अपने घर से निकलकर कोई यह पुरुष दौड़ा हुआ बाहर जा रहा है। रोहक के मुख से ऐसा सुनकर नट के चित्तमें अपनी भार्या के प्रति शीलभंग होने की आशंका ने स्थान कर लिया। इस तरह वह उसमें स्नेहरहित बन गया। अपने पति की इस वृत्ति से उस सौतेली माता को बडा दुःख होने लगा। उसने सोचा-यह सब करामात रोहक पुत्र की है। देखो, पहिले मेरा पति मेरे प्रति कितना स्नेहाल था? अब तो यह मुझसे प्रीति-पूर्वक बोलता भी नहीं है। मैं जब अपने विषय में विचारती हूं, तो मुझ में कुछ भी दोष नजर नहीं आता है, फिर विना कारण पति की अप्रीति का क्या कारण हो सकता है। ज्ञात होता है कि इस सबका मूल कारण एक रोहक ही है अतः उसको ही सबसे पहिले अब प्रसन्न कर लेना चाहिये, इसीमें मेरी भलाई है, इस प्रकार की विचारधारा से प्रेरित होकर

ત્યાર બાદ એક દિવસે અપરમાતાના દ્વેષથી પ્રેરાઈને રોહકે અમસ્તું જ પોતાના પિતાને રાત્રે કહ્યું-"પિતાજી, જુવો-જુવો, આપણા ઘરમાંથી નીકળીને કોઈ પુરૂષ દોડતો દોડતો બહાર જાય છે." રોહકના મોઢે એવું સાંભળીને નટના મનમાં પોતાની પત્ની ચારિત્રભ્રષ્ટ હોવાની શંકાએ સ્થાન જમાવ્યુ. તે રીતે તે તેનામાં સ્નેહરહિત બન્યો. પોતાના પતિની આ વૃત્તિથી તે અપરમાતાને ઘણું દુઃખ થયુ. તેણે વિચાર્યું "આ બધી રોહકની જ કરામત છે. જુઓ, પહેલાં મારા પતિ મારા પ્રત્યે કેટલા બધા સ્નેહાળ હતા! હવે તો તેઓ મારી સાથે પ્રેમથી બોલતા પણ નથી. હું જો મારી બાબતમાં વિચાર કરૂં છું તો મને મારો કોઈ પણ દોષ દેખાતો નથી. તો વિના કારણ પતિની અપ્રીતિનું શું કારણ હોઈ શકે? એવું લાગે છે કે આ બધાનું મૂળ કારણ એક રોહક જ છે, તો સૌથી પહેલાં તેને જ પ્રસન્ન કરી લેવો જોઈએ, તેમાંજ મારૂં હિત છે." આ પ્રકારની વિચારધારાથી પ્રેરાઈને

विचिन्त्य सा रोहकमाह-वत्स ! किमिदं त्वयाकृतम् । तव पिता मयि प्रतिकूलो जातः । रोहकः प्राह-किमिति मयि भवत्या सम्यग् न वर्तितम् ? । तयोक्तम्-इत ऊर्ध्वं तव विप्रियं नाचरिष्यामि । ततो रोहकः प्राह-भव्यं तर्हि, तथा यतिष्ये यथा मम पिता त्वयि सुप्रसन्नः स्यात् ।

अथान्यदा रोहको निशि चन्द्रिकाप्रकाशे निजच्छायामङ्गुल्यग्रेण दर्शयन् बालभावेन पितुः शङ्कामपनेतुकामः पितरमब्रवीत्-भो भो पितः ? पश्य एष पुरुषो

उसने रोहकसे कहा-पुत्र ! यह तूने क्या किया जो अपने पिताको मेरे प्रति अप्रसन्न कर दिया ? । रोहक ने सुनकर कहा तुमने जैसा किया उसका अब फल भोगो । क्यों नहीं तुम मेरे प्रति सद्व्यवहार करती हो ? रोहक की बात ध्यान में रखकर सौतेली माता बोली-बेटा ! जो कुछ हुआ सो हुआ, अब आगे ऐसा नहीं होगा, मैं तुम्हारा किसी भी प्रकार का अनिष्ट नहीं करूँगी, और न अब तुमसे विरुद्ध होकर ही चलूँगी। सौतेली माता के मन्तव्य से सहमत होकर रोहक ने उससे कहा-अच्छी बात है, अब मैं इस प्रयत्नमें रहूंगा कि जिससे पिता का स्नेह तुम पर पूर्ववत् हो जाय ।

अब एक समय की बात है कि रोहक चांदनी रात में पिता की पास बैठा हुआ था । उस समय पास में और कोई था नहीं, सहसा बालसुलभ चपलता से उस चांदनी के प्रकाशमें अपनी छाया देखकर उसने अंगुली के इशारे से पिता से कहा-पिताजी ! देखिये, वह पुरुष यह जा रहा

તેણે રોહકને કહ્યું, " બેટા ! એવું તે શું કર્યું છે કે તારા પિતા મારા તરફ અપ્રસન્ન રહે છે ? " રોહકે જવાબ આપ્યો, " તેં જે કર્યું છે તેનું ફળ હવે તું ભોગવ. કારણ કે તું મારા પ્રત્યે અયોગ્ય વ્યવહાર કરે છે. " રોહકની વાત સાંભળીને અપરમાતાએ કહ્યું, " બેટા ! જે થયું તે થયુ, હવે આગળ એવું નહીં બને, હું તારૂં કોઈ પણ રીતે અનિષ્ટ નહીં કરૂં, અને હવેથી તારી વિરૂદ્ધ ચાલીશ નહીં." અપરમાતાના મંતવ્ય સાથે સહમત થઈને રોહકે તેને કહ્યું, " ઘણું સરસ, હવે હું એવો પ્રયત્ન કરીશ કે જેથી મારા પિતાનો તારી પર પૂર્વવત્ પ્રેમ થઈ જાય. "

હવે એક સમયની વાત છે. રોહક ચાંદની રાત્રે પિતાની સાથે બેઠો હતો ત્યારે તેમની પાસે બીજુ કોઈ ન હતું. સહસા બાલસુલભ ચપળતાથી તે ચાંદનીના પ્રકાશમાં પોતાનો પડછાયો જોઈને તેણે આંગળીના ઈશારાથી પિતાને કહ્યું, " પિતાજી ! જુઓ, આ તે પુરુષ જઈ રહ્યો છે. પોતાના પુત્ર રોહકની

गच्छति । ततः स्वबालकस्य वचनं निशम्य भरतः परपुरुषप्रवेशशङ्कया खड्गमुद्यम्य धावमानो वदति-वद पुत्र ! कुत्रासौ पुरुषः । ततो रोहकः पितुरन्तिके बालभावं प्रकटयन् निजच्छायां प्रदर्शयन्नाह-एष पुरुषो गच्छतीति । ततो भरतो रोहकं पृच्छति-पूर्वं त्वत्प्रदर्शितः पुरुषः कीदृश आसीत् ?, रोहकेणोक्तम्-सोऽयमेवास्ति । ततो भरतश्चिन्तयति-धिङ्माम्, यदह बालकवचना दलीकंसंभाव्य दोषरहितायाः प्रियाया अप्रियं कृतवानिति, ततोऽसौ पश्चात्तापं कृत्वा तस्यां सानुरागो जातः । रोहकोऽपि-'कदाचिदेषा पूर्वविप्रियकारिणं मां विषादिना मारयिष्यतीति' विचिन्त्य पित्रा सहैव भुङ्क्ते, न तु केवलः ।

है । अपने पुत्र रोहक की इस बात को सुनकर भरत ने सहसा गृहमें परपुरुष के प्रवेश की आशंका से उसे मारने के लिये अपनी तलवार म्यान से बाहर निकाल ली, और आवेग से दौड कर कहने लगा-बेटा ! बतला वह पुरुष कहां है । रोहक ने पिता की इस सहसावृत्ति को देखकर पास में जाकर अपनी छाया बतलाते हुए कहा-पिताजी ! देखिये, यह रहा वह पुरुष । भरत ने रोहक की इस बालोचित लीला को देख कर आश्चर्य के साथ पूछा-तो क्या तूने जिस पुरुष के विषय में पहिले मुझसे कहा था वह भी ऐसा ही था ? हां ऐसा ही था । इस प्रकार रोहक का उत्तर सुन कर भरत ने विचार किया, मुझ मूर्खको धिक्कार है । व्यर्थ ही मैंने बालक के कहनेमें आकर निर्दोष अपनी पत्नी को दूषित मान कर कष्ट पहुंचाया । इस तरह अपनी पत्नी को निर्दोष जानकर अब भरत पहिले की तरह उसके साथ प्रेममय व्यवहार करने लगा । इधर रोहक ने यह विचार

આ વાત સાંભળીને ભરતે સહસા ઘરમાં પરપુરુષના પ્રવેશની આશંકાથી તેને મારવાને માટે પોતાની તલવારને મ્યાનમાંથી બહાર કાઢી, અને આવેગપૂર્વક દોડતો કહેવા લાગ્યો, "બેટા ! બતાવ, તે પુરૂષ ક્યાં છે ?" રોહકે પિતાનું આ સાહસ જોઇને તેમની પાસે જઇને પોતાનો પડછાયો બતાવીને કહ્યું. "પિતાજી જુઓ, આ રહ્યો તે પુરૂષ !" ભરતે રોહકની તે બાલોચિત લીલા જોઈ ને આશ્ચર્ય સાથે પૂછ્યું, "શું તેં જે પુરૂષને વિષે પહેલાં મને કહ્યું હતું તે પણ આવો જ હતો ?" "હા, એવો જ હતો." આ પ્રમાણે રોહકનો જવાબ સાંભળીને ભરતે વિચાર કર્યો, ધિક્કાર છે મને મૂર્ખને નકામી મેં બાળકની વાત સાચી માનીને મારી નિર્દોષ પત્નીને દોષિત માનીને તેને દુઃખ પહોંચાડયું." આ રીતે પોતાની પત્નીને નિર્દોષ માનીને હવે ભરત પહેલાંની જેમ તેની સાથે પ્રેમમય વર્તન રાખવા

अथैकदा कार्यवशात् पित्रा सह रोहकः समीपवर्तिनीमुज्जयिनीं गतः, स देव नगरीमिवोज्जयिनीं विलोक्यातीव हृष्टो जातः। ततः पित्रैव सह नगरीतो निष्क्रान्तः। पिता च तत्र नगर्यां 'किमपि विस्मृत'-मिति कृत्वा रोहकं क्षिप्रा नदी तटेऽवस्थाप्य तदानेतुं पुनरपि नगरीं प्राविशत्। रोहकेणापि च तत्र क्षिप्रानदीतटोपरि बालभावेन संपूर्णोज्जयिनी नगरी सिकताभिरालिखिता।

इतश्च राजाऽश्वारूढः कथंचिदेकाकी भूतस्तेन पथा गन्तुं प्रवृत्तः। तदा रोहकः स्वलिखितगनरीमध्यभागेन समागच्छन्तं तं नृपं वदति–राजन्! अनेन पथा मा

किया कि शायद सौतेली माता कदाचित् पूर्व विरोध के कारण मुझे विष आदि देकर न मार डाले, इसलिये वह इस विचार से प्रेरित हो अपने पिता भरतके ही साथ भोजन करने के लिये जाने लगा, अकेला नहीं।

एक दिनकी बात है कि, पिता को उज्जयिनी में किसी कार्यवश जाना था, सो रोहक भी उसके साथ गया। देवनगरी के समान उज्जयिनी नगरी को देखकर रोहक के चित्त में बड़ा विस्मय हुआ। जब वह वहां से चला तो पिता चलते समय वहां अपनी कोई चीज भूल आया था इसलिये वह उसके लाने के लिये नगरी में वापिस आते समय रोहक को क्षिप्रा नदी के तट पर ठहरा दिया। रोहक ने वहां तट पर बालुका से संपूर्ण उज्जयिनी का चित्र अंकित कर दिया। इतने में वहां का राजा घोड़े पर चढ़कर अकेला ही उस रास्ते से आ निकला। अपने द्वारा चित्रित उस बालुका की नगरी के मध्य भाग से निकलकर जाते हुए राजा को देखकर रोहक ने कहा–

લાગ્યો. હવે રોહકે એવો વિચાર કર્યો કે કદાચ આ અપરમાતા આગળના વિરોધને કારણે મને વિષ આદિ આપીને મારી નાખશે. તેથી તે એ વિચારથી પ્રેરાઇને પોતાના પિતા ભરતની સાથે જ ભોજન કરવા જવા લાગ્યો, એકલો નહીં.

એક દિવસે તેના પિતાને કોઇ કાર્ય માટે ઉજ્જયિની જવાનુ થયુ, તો રોહક પણ તેની સાથે ગયો. દેવનગરી જેવી ઉજ્જયિની નગરીને જોઇને રોહકના મનમા ભારે નવાઈ થઈ. જ્યારે ત્યાંથી ઉપડયા ત્યારે પિતા ઉપડતી વખતે પોતાની કોઈ વસ્તુ નગરીમા ભૂલી આવ્યો હતો તેથી તે રોહકને સિપ્રા નદીને કિનારે બેસાડીને, તેને લાવવા માટે નગરીમા પાછો ફર્યો. રોહકે ત્યાં કાંઠા પર રેતીની મદદથી આખી ઉજ્જયિની નગરીનુ ચિત્ર દોર્યું. એવામાં ત્યાંનો રાજા ઘોડેસ્વાર થઇને એકલો જ તે રસ્તેથી નીકળ્યો. પોતે ચિત્રેલ તે રેતીની નગરીના મધ્ય ભાગમાંથી નીકળીને જતા હતા તે રાજાને જોઇને રોહકે

गच्छ। नृपेणोक्तम्-किं कारणम्?। रोहकः प्राह-मया लिखितमिदं राजभवनं किं न पश्यसि। ततः स राजा कौतुकवशात् तल्लिखितां नगरीं विलोक्य पृच्छति-भो बालक! अन्यदापि किं त्वया नगरीयं दृष्टा? रोहकोऽवदति-पूर्वमियं नगरी मया न दृष्टा, केवलमद्यैवग्रामादिहागतोऽस्मि। ततोनृपेण चिन्तितम्-अहो! बालकस्य कीदृशः प्रज्ञातिशयः। अथ नृपः पृच्छति-भो बालक। किं ते नाम, कुत्र च वासस्थानम्?। बालकेनोक्तम्-रोहक इति मदीयं नाम, एतन्नगरी समीपवर्तिनि नटानां ग्रामे निवसामि।

राजन्! इस मार्ग से होकर आप न जाइये। राजा ने न जाने का कारण ज्यों ही रोहक से पूछा तो वह कहने लगा-क्या आप नहीं देख रहे हैं कि यहां मेरे द्वारा बनाया हुआ यह राजभवन है जो आपके चलने से खराब हो जायगा। राजा ने उसकी बात मान ली और बड़े कौतुक से उसके द्वारा चित्रित राजनगरी को देखकर पूछा-बालक! क्या तुमने पहिले कभी यह नगरी देखी है? राजा की बात सुनकर रोहक ने उत्तर दिया-महाराज! इसके पहिले मैंने कभी भी इस नगरी को नहीं देखा है। मैं तो आज ही ग्राम से यहां आया हूं। रोहक की बात से प्रसन्न होकर राजा ने विचार किया कि, अहो! इस बालक की प्रज्ञा कितनी अतिशयवाली है! अच्छा, अब इसका नाम-ठाम भी तो पूछूं, राजा ने कहा-बालक! तेरा नाम क्या है?। कहां रहता है?। बालक ने उत्तर दिया- मेरा नाम रोहक है, और आपकी इस नगरी के पास की-नटों की वसती में रहता हूं।

કહ્યુ, "હે રાજન્! આ માર્ગેથી આપ જશો નહીં." રાજાએ ન જવાનું કારણ જેવું રોહકને પૂછ્યુ કે તેણે કહ્યુ "શું આપ જોતા નથી કે અહીં મેં બનાવેલ આ રાજભવન છે જે આપના ચાલવાથી બગડશે." રાજાએ તેની વાત માની લીધી અને ભારે કૌતુક સાથે તેના વડે ચિત્રિત રાજનગરીને જોઇને પૂછ્યુ, "બાળક! તેં પહેલાં કદી આ નગરી જોઈ છે?" રાજાની વાત સાંભળીને રોહકે જવાબ આપ્યો, "મહારાજ! આ અગાઉ મેં કદી પણ આ નગરી જોઈ નથી. હુ તો આજે જ ગામડેથી અહીં આવ્યો છું." રોહકની વાતથી ખુશી થઇને રાજાએ વિચાર કર્યો કે "અહો! આ બાળકની પ્રજ્ઞા કેટલી બધી વિશાળ છે! ઠીક, હવે તેનું નામઠામ તો પૂછું." રાજાએ કહ્યું. હે બાળક! તારૂં નામ શું છે? તું ક્યાં રહે છે?" બાળકે જવાબ આપ્યો, "મારૂં નામ રોહક છે અને આપની આ નગરી પાસેના નટોના ગામમાં હું રહું છું."

अत्रान्तरे रोहकस्य पिता तत्रागत्य पुत्रेण सह स्वग्रामं प्रतिचलितः। राजा च स्वस्थानमागत्य चिन्तयति-'ममैकोनानिपञ्चशतानिमन्त्रिणःसन्ति, यदि मन्त्रिमण्डले कश्चिदेको महाप्रज्ञः परमो मन्त्री भवेत् तदा मम राज्यं सुखेन वर्धेत। बुद्धिबल संपन्नो हि नृपः प्रायः सेनादिवलन्यूनोऽपि शत्रुतः पराजयं न लभते' एवं चिन्तयित्वा स राजा रोहकबुद्धि परीक्षार्थमुद्यतो बभूव।

एकदा स राजा तद्ग्रामनिवासिनः प्रधानपुरुषानादिष्टवान्-'युष्मद्ग्रामस्य बहिरतीव महती शिला वर्तते, तामनुत्पाट्य राजयोग्यमण्डपं कुरुत'। ततस्तद्ग्राम-

---

इतने में ही रोहक का पिता भी उज्जयिनी से लौटकर वापिस वहां आ गया और अपने पुत्र रोहक के साथ ग्राम की ओर चल दिया। राजा भी वहां से चला गया। अपने स्थानपर आकर राजा ने विचार किया-मेरे चारसौ निन्यानवे ४९९ मंत्री हैं। इस विशाल मंत्रीमंडल में कम से कम एक ऐसा महाप्रज्ञाशाली मंत्री अवश्य होना चाहिये जो इस राज्य की अनायास वृद्धि करने में सहायक हो। यह बात प्रायः मानी हुई है कि, राजा भले ही सेनादिबल से न्यून हो पर यदि वह बुद्धि बल से युक्त है तो कभी भी शत्रु से पराजित नहीं किया जा सकता। इस विचार से प्रेरित होकर राजा ने रोहक की बुद्धि की परीक्षा करने का प्रयत्न प्रारंभ कर दिया। राजा ने एक दिन नट ग्रामवासियों के प्रधान व्यक्तियों को बुलाकर कहा कि, आप लोगों के गांव के बाहिर एक बहुत बड़ी शिला है, सो तुम सब उसके विना उखाडे ही एक राज-

---

એટલામા જ રોહકના પિતા પણ ઉજ્જયિની જઈને ત્યાં પાછાં આવી ગયાં અને પોતાના પુત્ર રોહકની સાથે પોતાના ગામ તરફ ઉપડયાં. રાજા પણ ત્યાંથી ચાલ્યો ગયો. પોતાના સ્થાને જઈને રાજાએ વિચાર કર્યો" મારા ચારસો નવાણું (૪૯૯) મંત્રી છે. આ વિશાળ મંત્રીમંડળમાં એક એવો મહાપ્રજ્ઞાશાળી મંત્રી અવશ્ય હોવો જોઈએ કે જે આ રાજ્યની અનાયાસ વૃદ્ધિ કરવામાં સહાયક થાય. સામાન્ય રીતે આ વાતને બધા માન્ય કરે છે કે રાજા પાસે ભલે સેનાદિ બળ ન્યૂન હોય પણ જો તે બુદ્ધિબળથી યુક્ત હોય તો શત્રુ તેને કદી પણ પરાજિત કરી શકતો નથી." આ વિચારથી પ્રેરાઈને રાજાએ રોહકની બુદ્ધિની કસોટી કરવાના પ્રયત્ન શરૂ કર્યા. રાજાએ એક દિવસ નટ-ગ્રામવાસીઓના આગેવાનોને બોલાવીને કહ્યુ "આપના ગામ બહાર એક ઘણી જ મોટી શિલા છે. તો તમે બધા તેને ઉખાડયા વિના એક મોટો રાજમંડપ ત્યાં તૈયાર કરો." રાજાની તે આજ્ઞા સાંભળીને તે બધા લોકો ચિન્તિત થઈને

वासिनो लोका राज्ञ आदेशं श्रुत्वा कथमेवं मण्डपं कर्तुं पारयाम इति चिन्तया व्याकुलीभूता एकत्र कुत्रचिद् ग्रामस्य बहिर्भागे समागत्य सभां कृतवन्तः। तत्राय विचारः प्रस्तुतः—अस्माभिः किमिदानीं कर्तव्यम्, दुष्करोऽयं नृपादेशः, असंपन्ने च नृपादेशे महाननर्थः समापतेदिति। एवं चिन्तयतां तेषां मध्याह्नकालः—समागतः। तदा रोहकस्य पिता ग्रामसभायामासीदिति तेन विना रोहको न भुङ्क्ते। क्षुधया पीडितो रोहकः पितृ सन्निधौ समागत्याह—पितः? क्षुधया पीडितोऽस्मि गच्छ गृहं भोजनाय। भरतः प्राह—वत्स! सुखितोऽसि, किंचिदपि ग्रामकष्टं न जानासि।

योग्य मण्डप तयार करो। राजा की इस आज्ञाको सुनकर वे सब लोग चिन्तित होकर परस्पर में विचार करने लगे कि, कहो भाई! यह काम कैसे हो सकेगा? विचारविनिमय के लिये उन्होंने गांव के बाहिर एक सभा का आयोजन किया। अपनी २ विचारधारा सुनाने के बाद यह विचार बडे जोर से वहां चलने लगा कि, भाई! कहो, अब क्या करना चाहिये? राजा की उक्त आज्ञा महान् दुष्कर है। यदि इसकी पूर्ति हम लोगों से नहीं हो सकी तो यह भूलने की बात नहीं है कि, राजाकी तरफ से हम लोगों पर अनेक अनर्थोंकी वर्षा न हो इस प्रकार विचार चलते २ मध्याह्नकाल हो गया। खानेपीने की भी चिन्ता लोगों के चित्त से चली गई। सभा में रोहक के पिताजी भी सम्मिलित थे। इधर रोहकने घर पर विचार किया कि मैं विना पिता के कैसे भोजन करूं? भूख मुझे सता रही है, न मालूम वे कब घर आयेंगे। इस लिये मैं स्वयं ही जाकर

પરસ્પર વિચાર કરવા લાગ્યા કે કહો ભાઇ, આ કામ કેવી રીતે થઈ શકશે? વિચારવિનિમય માટે તેમણે ગામની બહાર એક સભા પણ બોલાવી. પોત પોતાની વિચારધારા સંભળાવ્યા પછી વિચાર ઘણા જોરથી ત્યાં ચાલવા લાગ્યો કે ભાઈ! કહો હવે શું કરવું જોઇએ? રાજાની તે આજ્ઞાનું પાલન કરવું ઘણું દુષ્કર છે. જો આપણે તેનું પાલન નહી કરીએ તો એ ભૂલવા જેવું નથી કે રાજાની તરફથી આપણા ઉપર અનેક મહાન અનર્થોની વર્ષા થશે. આ પ્રમાણે વિચાર કરતાં કરતાં મધ્યાહ્નકાળ થયો. લોકોનાં ચિત્તમાંથી ખાવાપીવાની ચિન્તા પણ ચાલી ગઈ. સભામાં રોહકના પિતા પણ હાજર હતાં. હવે ઘેર રોહકે વિચાર કર્યો કે "પિતાજી વિના હું કેવી રીતે ભોજન કરૂ? ક્ષુધા મને સતાવી રહી છે. શી ખબર તેઓ ક્યારે ઘેર પાછાં આવશે? તો હું જાતે જ ત્યા જઇને તેમને બોલાવી લાવું." આ પ્રમાણે વિચાર કરીને તે સભામાં પિતાની પાસે ગયો.

रोहको वदति-किं तत् कष्टम् ? । ततो भरतेन नृपादेशः सविस्तरं वर्णितः । रोहकः पितुर्वचनं श्रुत्वा विहस्याह-अधुनैव कष्टमिदं दूरी करोमि अलमनया चिन्तया, मण्डपनिष्पादनाय शिलाया अधस्ताद् भूमिः खन्यताम् स्तम्भा अपि यथास्थानं

उन्हें क्यों न बुला लाऊं ? इस तरह विचार कर वह पिता के पास उस सभामें आया और बोला-पिताजी! खाने का समय हो गया है, मैं क्षुधा से आकुलित हो रहा हूं, अतः अब आप घर चलिये । रोहक की बात सुनकर पिताने ताने मार कर उससे कहा-बेटा ! तुम्हें खाने की पडी है, यहां तो खाया हुआ भी नहीं पच रहा है । तुम्हें नहीं मालूम इस समय गांव कितने कष्ट में पडा हुआ है । पिताकी ऐसी अनोखी बात सुन कर रोहक से चूप नहीं रहा गया, वह बोला-पिताजी !मुझे कहिये कि-इस समय ग्राम पर कौन सा कष्ट आकर पड़ा है ? । पुत्र की बात सुनकर पिता ने उसको जो कुछ राजा का आदेश था वह सब आद्योपान्त सुना दिया । पिता के वचनों को सुनकर रोहक को कुछ हंसी सी आ गई, वह बोला-पिताजी ! यह कौन सा कष्ट है इसकी निवृत्ति अभी हो जाती है, आप चिन्ता न कीजिये, देखो, मंडप बनाने के लिये शिला के नीचे की जमीन खुदवाईये, और साथ २ में वहां यथास्थान खंभे भी लगाते जाईये, तथा उसके चारों ओर भीत भी बनवाते जाईये । इस

અને કહ્યું. "પિતાજી! જમવાનો વખત થઈ ગયો છે. હું ક્ષુધાથી વ્યાકૂળ થઈ ગયો છું, તો હવે આપ ઘેર ચાલો" રોહકની વાત સાંભળીને પિતાએ મહેણું મારીને તેને કહ્યું. "બેટા! તને ખાવાની પડી છે, અહીં તો ખાધેલું પણ પચતું નથી. તને ખબર નથી કે અત્યારે ગામ કેવાં સંકટમાં મૂકાયુ છે." પિતાની એવી અનોખી વાત સાંભળીને રોહક ચૂપ રહી શક્યો નહીં, તેણે કહ્યું, "પિતાજી! મને કહો કે અત્યારે ગામ પર કયુ સંકટ આવી પડયું છે?" પુત્રની વાત સાંભળીને પિતાએ તેને રાજાનો જે આદેશ હતો તે આદિથી અંત સુધી કહી સંભળાવ્યો. પિતાનાં વચન સાંભળીને રોહકને સહેજ હાસ્ય થયુ તેણે કહ્યું, "પિતાજી! આ કયુ મોટું કષ્ટ છે? તેનું હમણા જ નિવારણ થઈ જશે. આપ ચિન્તા ન કરો. મંડપ બનાવવાને માટે શિલાની નીચેની જમીન ખોદાવો અને સાથે સાથે ત્યાં યથાસ્થાને સ્થંભો પણ ઉભા કરાવો, તથા તેની ચારે તરફ દિવાલ પણ બનાવરાવતા જાઓ. આ પ્રમાણે કરવાથી રાજ્ય યોગ્ય મંડપ તૈયાર થઈ જશે."

निवेशनीया इति तदर्थं मध्यवर्तिभूमिरपि खननीया, चतसृषुदिक्षु च भित्तिर्निर्मीयताम्, एवं राजयोग्यमण्डपो भविष्यति। एवं रोहकस्य वचनं निशम्य सर्वैरपि ग्रामप्रधानपुरुषैर्भद्रमिति प्रतिपन्नम्। ततः सर्वे भोजनार्थं स्वस्वगृहं गताः। भुक्त्वा च तत्र समागत्य सर्वेलोकाः शिलाप्रदेशे खननं प्रारब्धवन्तः। अल्पेष्वेव दिवसेषु परिपूर्णो मण्डपः संजातः। शिला च नृपादेशानुसारेण मण्डपाच्छादनरूपाऽभवत्। तदा राज्ञः समीपे समागत्य ग्रामवासिभिः प्रधानपुरुषैर्निवेदितम् हे देव! निष्पादितो भवदीयादेशः। राजा प्राह–कथमिति?। ततस्ते सर्वमपि मण्डपनिष्पादनप्रकारं कथयामासुः।

तरह करने से राजयोग्य मंडप तैयार हो जावेगा। इस प्रकार रोहक के वचन सुनकर उन सबने एकमत हो उसकी बात मान ली और कहने लगे–अच्छा! प्रशस्त मार्ग उस बालक ने बतलाया। वे सब निश्चिंत हो गये और भोजन के लिये वहां से अपने २ घर पर चले आये। खानेपीने के बाद सब लोग वहां पुनः एकत्रित हुए, और उस शिलातल की भूमि खोदने में जुट गये। निश्चित मार्ग के अनुसार थोड़े ही दिनों में वहां एक राजयोग्य मंडप बनकर तैयार हो गया। वह शिला राजा के कहने के माफिक उस मंडप की ढक्कन जैसी बना दी गई। काम समाप्त होते ही ग्रामवासी प्रधानपुरुषों ने राजा के पास जाकर निवेदन किया– हे महाराज! आपने जो काम करने की आज्ञा दी थी वह हमलोगों ने पूरी कर दी है राजा ने कहा–अच्छा, यह काम किस प्रकार से आप लोगों ने किया? सबने राजा को मंडप बनाने के प्रकार से जब परिचित

રોહકનાં આ પ્રકારનાં વચનો સાંભળીને તે બધાએ એકમતીથી તેની વાત સ્વીકારી લીધી અને કહ્યું કે આ બાળકે ઘણો સરસ માર્ગ કાઢયો છે. તેઓ બધા નિશ્ચિત થઈને ભોજન કરવા માટે પોતપોતાને ઘેર ગયા. ખાઇ પીને તેઓ બધાં ત્યાં ફરીથી એકઠાં થયાં અને તે શિલાતળની જમીન ખોદવા લાગી ગયા નિશ્ચિત માર્ગ પ્રમાણે થોડા દિવસમાં જ ત્યાં એક રાજયોગ્ય મંડપ તૈયાર થઈ ગયો. તે શિલા રાજાના કહેવા પ્રમાણે તે મંડપ ઉપરના આવરણ જેવી બનાવી દેવામાં આવી, કામ સંપૂર્ણ થતા ગામના આગેવાનોએ રાજાની પાસે જઈને નિવેદન કર્યું, "હે મહારાજ! આપે જે કામ કરવાની આજ્ઞા આપી હતી તે આજ્ઞાનું અમે સંપૂર્ણ રીતે પાલન કર્યું છે." રાજાએ કહ્યું, "સારૂં! તે કામ તમે કેવી રીતે કર્યું?" બધાએ જ્યારે મંડપ કેવી રીતે

राजा पृच्छति—कस्येयं बुद्धिः ?। ग्रामवासिभिरुक्तम्—हे देव। भरतपुत्रस्य रोहकस्येयं बुद्धिः।

॥ इति प्रथमो भरतशिलादृष्टान्तः ॥ १ ॥

अथ द्वितीयो मेषदृष्टान्तः—

ततो राजा रोहकबुद्धि परीक्षार्थं ग्राम्यपुरुषान् प्रतिमेषमेकं प्रेषितवान्, आदिष्टवांश्च। एष यावत्पलप्रमाणः संप्रति वर्तते, पक्षाति क्रमेऽपि तावत्-पलप्रमाण एव युष्माभिः समर्पणीयो न न्यूनो नाप्यधिक इति। ततस्तद्ग्रामनिवासिनः सर्वे पुरुषा राजादेशं श्रुत्वा व्याकुलीभूता वहिः सभायां रोहकमाहूय सादरमुक्तवन्तः—

कराया तो राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ। राजा ने कहा-इसमें किसकी बुद्धि ने काम किया है ? सब ने सब एक स्वर से कहा कि, महाराज ! भरत के पुत्र रोहक की बुद्धि ने ॥

॥ यह भरतशिला नामक प्रथम दृष्टान्त ॥ १ ॥

अब इसी पर दूसरा मेष दृष्टान्त कहते हैं—

पुनः रोहक की बुद्धि की परीक्षा करने के भाव से प्रेरित होकर राजा ने उन ग्रामवासियों के पास एक मेंढ़ा भेजा, और साथ में यह भी कहला भेजा कि, देखो, इस मेढे का जितना वजन है वह उतना ही रहना चाहिये, एक रत्तीभर भी घटना-बढना नहीं चाहिये। खाने को खूब घास आदि इसको मिलते रहे, इस व्यवस्था में कोई खामी न रहे। यह एक पक्ष तक ही तुम्हारे पास रखा जायगा। अधिक दिनों तक नहीं।

બન્ચો તે વાતની રાજાને માહિતી આપી ત્યારે રાજાને ઘણું અચરજ થયું. રાજાએ કહ્યું, “આમાં કોની બુદ્ધિએ કામ કર્યું છે ?” બધાએ એકી અવાજે કહ્યું, “હે મહારાજ! ભરતના પુત્ર રોહકની બુદ્ધિએ ”

॥ આ ભરતશિલા નામનું પહેલું દૃષ્ટાંત સમાપ્ત ॥ ૧ ॥

હવે તેના પર બીજું મેષદૃષ્ટાંત કહે છે—

વળી રોહકની બુદ્ધિની કસોટી કરવાની વૃત્તિથી પ્રેરાઈને રાજાએ તે ગામવાસીઓ પાસે એક ઘેટું મોકલ્યું, અને સાથે એમ પણ કહેવરાવ્યું કે “જુઓ, આ ઘેટાનું જેટલું વજન છે એટલું જ વજન રહેવું જોઈએ, એક રતીભાર વધવું-ઘટવું ન જોઈએ. તેને ખાવા માટે ખૂબ ઘાસ આદિ મળતું રહેવું જોઈએ, તે વ્યવસ્થામાં કોઈ પણ ખામી રહેવી જોઈએ નહીં. આ ઘેટું એક પખવાડિયા સુધી તમારી પાસે રહેશે, વધારે દિવસો સુધી નહીં. રાજાની

वत्स ! पूर्वं त्वया स्वबुद्धिबलेन वयं राजदण्डतो मोचिताः, अद्य पुनः स्वबुद्धया ग्रामकष्टं निवारय । इत्युक्त्वा ते दुष्करं नृपादेशं रोहकाय निवेदयामासुः । ततो रोहकः प्राह—पञ्जरस्थं व्याघ्रं प्रत्यासन्नं कृत्वा मेषमेनं यवसदानेन पोषय यवसं हि भुञ्जानः खल्वेष दुर्बलो न भविष्यति, व्याघ्रं च दृष्ट्वा न वृद्धिं प्राप्स्यति । ततो

राजा की इस अटपटी आज्ञा सुनकर सब लोग बडे चिन्तित हुए, पहिले की तरह ही उन सबने मिलकर गाँव के बाहर सभा एकत्रित की । उसमें रोहक को आमंत्रित किया । रोहक के आने पर बडे आदर से सब ने उससे कहा–भाई ! तुमने अपनी बुद्धि के बल से पहिले जिस प्रकार उपाय बतलाकर हमारी रक्षा की और राजदंड से हमें बचाया, उसी तरह आज भी हमें उपाय बतलाकर राजदंड से बचाओ । राजाने इस प्रकार करने की आज्ञा दी है–सो समस्त ग्राम आज कष्ट में पडा हुआ है, समझ में नहीं आता है कि इस विषय में क्या करना चाहिये। सब की दुःखभरी आवाज सुनकर रोहक ने मुसकुराते हुए कहाकि–इसमें अपने को घबराना नहीं चाहिये, उपाय कोई बडा भारी कठिन नहीं है । सुनिये–एक व्याघ्र को पिंजरेमें बन्द कर मेंढे के सामने कुछ थोडी दूर पर बांध कर रखना चाहिये, और उसीके ठीक साम्हने एक दूसरी ओर मेंढेको । इस तरह करने से मेंढा खा पीकर भी न घट सकेगा और न बढ़ सकेगा । जितना उसका वजन होगा उतना ही रहेगा। रोहक की

આ અટપટી આજ્ઞા સાંભળીને બધા લોકો ચિન્તિત થયાં. પહેલાંની જેમજ તે બધાએ મળીને ગામની બહાર સભા કરી. તેમાં રોહકને આમંત્રણ આપ્યું. રોહક આવતા બધાએ ઘણા આદરથી તેને કહ્યુ, “ ભાઇ ! તમે તમારી બુદ્ધિના પ્રભાવે પહેલાં જે રીતે ઉપાય બતાવીને અમારૂં રક્ષણ કર્યું અને રાજદંડથી અમને બચાવ્યા એજ રીતે આજે પણ કોઇ ઉપાય બતાવીને, રાજદંડથી અમને બચાવો. રાજાએ આ પ્રમાણે કરવાની આજ્ઞા કરી છે.તેથી આખું ગામ મુશ્કેલીમાં મૂકાયું છે. અમને તો સમજાતું નથી કે આ બાબતમાં શું કરવું ? ” બધાનો દુઃખભર્યો અવાજ સાંભળીને રોહકે મલકાતા મલકાતાં કહ્યું ” તમારે ગભરાવાની કોઇ જરૂર નથી. તેનો ઉપાય બહુ મુશ્કેલ નથી. સાંભળો, એક વાઘને પાંજરામાં પૂરીને ઘેટીની સામે થોડે દૂર રાખવો જોઈએ, અને તેની બરાબર સામે થોડે અંતરે ઘેટાને બાંધવું. આ પ્રમાણે કરવાથી ઘેટું ખાવા-પીવા છતાં પણ વજનમાં વધશે–ઘટશે નહીં. તેનું જેટલું વજન હશે તેટલું

ग्रामवासिभिः पुरुषैस्तथैव कृतम्। पक्षातिक्रमे च स मेषो राज्ञे समर्पितः। राज्ञः समीपे तोलने कृते स मेषस्तावत्पलप्रमाण एव जातो न तु न्यूनप्रमाणो नाप्यधिक प्रमाण इति।

॥ इति द्वितीयो मेषदृष्टान्तः ॥ २ ॥

अथ कुक्कुटदृष्टान्तः—

अथैकदा पुनरसौ राजा रोहकबुद्धि परीक्षार्थं ग्रामवासिनां समीपे कुक्कुटमेकं प्रेषितवान् आदिष्टवांश्च। अन्यकुक्कुटमन्तरेण यथाऽयं कुक्कुटो युद्धकारी भवेत् तथा कृत्वा मम संनिधौ समानेतव्य इति। एवं विधं नृपादेशं श्रुत्वा पुनः सर्वे ग्रामवासिनः

इस सलाह सुनकर ग्रामवासियों ने ऐसा ही किया। जब पन्द्रह दिन निकल चुके तब उन्होंने इस मेंढे को ले जाकर राजा के पास अर्पण किया। राजा ने जब उसकी तौल कराई तो जितना उसका वजन पन्द्रह दिन पहिले था उतना ही वजन उस दिन भी निकला, न वह बढा और न घटा ॥ २ ॥

॥ यह दूसरा मेष दृष्टान्त हुआ ॥ २ ॥

तीसरा कुक्कुट दृष्टान्त—

एक दिन पुनः राजाने रोहक की बुद्धि की परीक्षा करने के लिए ग्रामवासियों के पास एक कुक्कुट भेजा और कहला भेजा कि विना किसी दूसरे कुक्कुट के जिस तरह यह युद्ध करनेवाला बन जाय उस तरह इसे सिखलाकर मेरे पास वापिस भेज दिया जावे। इस प्रकार का राजा का

જ રહેશે” રોહકની આ સલાહ સાંભળીને ગ્રામવાસીઓએ તે પ્રમાણે કર્યું. જ્યારે પંદર દિવસ પસાર થયાં ત્યારે તેમણે તે ઘેટું લઈ જઈને રાજાને અર્પણ કર્યું. રાજાએ જ્યારે તેનું વજન કરાવ્યું ત્યારે પંદર દિવસ પહેલાં તેનું જેટલું વજન હતું તેટલુ જ વજન ત્યારે પણ થયું તે વધ્યું પણ નહીં કે ઘટયું પણ નહીં ॥ ૨ ॥

॥ આ બીજું ઘેટાનું દૃષ્ટાંત સમાપ્ત થયું ॥૨॥

ત્રીજું કૂકડાનું દૃષ્ટાંત—

એક દિવસ ફરીથી રોહકની બુદ્ધિની પરીક્ષા કરવા માટે રાજાએ તે ગામવાસીઓ પાસે એક કૂકડો મોકલ્યો, અને કહેવરાવ્યું કે “બીજા કોઈ કૂકડાની મદદ લીધા સિવાય આ કૂકડો યુદ્ધ કરનાર બને એવી રીતે તેને તાલીમ આપીને મારી પાસે પાછો મોકલો.” રાજાની તે પ્રકારની આજ્ઞા સાંભળીને બધા

रोहकान्तिकमागत्याब्रुवन्-वत्स ! कुक्कुटान्तरं विना कथमयं राजकुक्कुटो युद्धं कर्तुमुत्सहेत, केनोपायेन नृपादेशं कर्तुं पारयामः ?, पूर्ववत् स्वबुद्धिबलेन ग्रामकष्टं निवारय' इति। ततो रोहकेणोक्तम्-एको निर्मलोमहादर्पणः समानीयताम्।

अथ रोहकवचनाद् ग्रामवासिभिस्तथाकृते सति रोहकेण स महादर्पणस्तस्य कुक्कुटस्य समक्षं स्थापितः। तत्र दर्पणे स राजकुक्कुटः स्वप्रतिबिम्बमवलोक्य द्वितीयं स्वप्रतिपक्षं कुक्कुटं मत्वा तेन सह योद्धुं प्रवृत्तः। तिर्यञ्चो हि जडबुद्धयो

आदेश पाकर समस्त ग्रामवासी पुरुष चिन्तित जैसे बन कर रोहकके पास आये, और राजा का आदेश सुनाकर कहने लगे-वत्स ! विना दूसरे कुक्कुट के यह राजाका कुक्कुट युद्धकारी कैसे बन सकता है ? जब तक यह बात पूरी नहीं हो सकती है राजाका आदेश तब तक पालित भी कैसे हो सकता है ? अतः जिस प्रकार तुमने पहिले हमें दो संकटों से उबारा है अब तीसरी बार भी हमें इस संकट से उबारने की युक्ति कहो ? ग्रामवासियों की इस संकटमय स्थितिको देखकर रोहक ने उनसे कहा-आप लोग इसकी जरा भी चिन्ता न करें, मैं जैसा कहूं वैसा आप कीजिये। एक बडा भारी स्वच्छ दर्पण ले आईये। लोगोंने ऐसा ही किया। जब दर्पण आया, तो रोहक ने उस दर्पण को राजकुक्कुट के समक्ष रख दिया। राजकुक्कुट ने उसमें ज्यों ही अपना प्रतिबिम्ब झलकते देखा तो उसके चित्त में यह बात जम गई कि यहां कोई दूसरा कुक्कुट है। इस तरह उन दोनों में जमकर परस्पर युद्ध होना प्रारंभ हो गया। उस

ગામવાસી પુરુષો ચિન્તિત થઈને રોહકની પાસે આવ્યા અને રાજાની આજ્ઞા તેને કહી સંભળાવીને કહેવા લાગ્યાં, "બેટા ! બીજા કૂકડાની મદદ વિના રાજાનો આ કૂકડો યુદ્ધ કરનાર કેવી રીતે બની શકે ? જ્યાં સુધી આ વાત બને નહીં ત્યા સુધી રાજાની આજ્ઞાનું પાલન પણ કેવી રીતે થાય ? તો તમે આ પહેલાં જે રીતે બે સંકટોમાંથી અમને ઉગારી લીધાં છે તેમ આ સંકટ-માંથી પણ ઉગારવાની યુક્તિ બતાવો." ગ્રામવાસીઓની આ સંકટભરી સ્થિતિ જોઈને રોહકે તેમને કહ્યું, "આપ તેની જરી પણ ચિન્તા કરશો નહીં હું કહું તેમ આપ કરો. એક મોટો સ્વચ્છ અરીસો લાવો." લોકોએ તે પ્રમાણે કર્યું. જ્યારે અરીસો આવ્યો ત્યારે રોહકે તે અરીસાને રાજાના કૂકડા સામે મૂકયો. રાજાના કુકડાએ જ્યારે તે દર્પણમાં તેનું પ્રતિબિંબ જોયું ત્યારે તેના મનમાં એ વાત દૃઢ થઈ ગઈ કે અહીં કોઈ બીજો કુકડો છે. આ રીતે તે બન્ને વચ્ચે ભયંકર યુદ્ધ જામ્યું. રાજાના તે કૂકડાને, પોતે તિર્યંચ હોવાને કારણે

भवन्ति । एवमन्यकुक्कुटाभावेऽपि राजकुक्कुटं युध्यमानं विलोक्य ग्रामवासिनः पुरुषाः साश्चर्यं रोहकस्य बुद्धिं प्रशंसन्ति स्म । ततस्तै रसौ राजकुक्कुटो राज्ञे समर्पितः । द्वितीयरहितस्यापि कुक्कुटस्य पूर्ववद् युद्धकरणं निरीक्ष्यराजा सुप्रसन्नो जातः॥

॥ इति तृतीयो कुक्कुटदृष्टान्तः ॥ ३ ॥

अथ तिलदृष्टान्तः—

अथान्यदा पुनरसौ नृपस्तद्ग्रामनिवासिनः पुरुषानादिष्टवान्—युष्माकमग्रेयस्तिलराशिरस्ति तत्र कियन्तस्तिलाः सन्तीति तिलान् गणयित्वा शीघ्रं ब्रूत । राज्ञैवमादिष्टास्तद्ग्रामनिवासिनो लोकाश्चिन्तिता अभवन् । ततस्ते रोहकान्तिकमागत्य राजा-

---

राजकुक्कुट को तिर्यंच होने के नाते इतना भान तो था ही नहीं कि, यह मेरा ही प्रतिबिम्ब है । मैं किस के साथ झगड रहा हूं? कुक्कुट को इस तरह अन्य कुक्कुट के अभाव में भी युद्ध करता देखकर ग्रामवासियों को रोहककी बुद्धि पर बडा आश्चर्य हुआ । सबों ने मिल कर उसकी बड़ी सराहना की । कुछ दिनों बाद जब वह कुक्कुट युद्धकारी बन गया तो उन ग्रामवासियों ने उसे राजा के पास वापिस भेज दिया । राजा ने भी जब कुक्कुट की इस स्थिति का अवलोकन किया तो वह बड़ा ही संतुष्ट हुआ ॥ ३ ॥

॥ यह तीसरा कुक्कुट दृष्टान्त हुआ ॥ ३ ॥

चौथा तिल दृष्टान्त—

एक समय की बात है कि राजा ने उन ग्रामवासियों से ऐसा कहा कि भाईयों! आप लोगों के समक्ष जो यह तिल की राशि पड़ी हुई है, सो

એટલુ ભાન તો ન હતું કે તે તેનું જ પ્રતિબિંબ છે, અને પોતે કોની સાથે લડી રહ્યો છે, આ રીતે બીજો કૂકડો ન હોવા છતાં પણ પ્રતિબિંબને કૂકડો માનીને તેની સાથે રાજાના કૂકડાને યુદ્ધ કરતો જોઈ ગામના લોકોને રોહકની બુદ્ધિ માટે ઘણું અચરજ થયું. બધાએ મળીને તેની બુદ્ધિની ઘણી પ્રશંસા કરી કેટલાક દિવસો પછી તે કૂકડો યુદ્ધકળામાં પ્રવીણ થઈ ગયો, ત્યારે ગામવાસીઓએ તેને રાજાની પાસે પાછો મોકલી દીધો. રાજાએ પણ જ્યારે કૂકડાની તે સ્થિતિનું અવલોકન કર્યું તો તે ઘણો સંતોષ પામ્યો. ॥૩॥

॥ આ ત્રીજું કૂકડાનું દૃષ્ટાંત સમાપ્ત ॥ ૩ ॥

ચોથું તલનું દૃષ્ટાંત—

એક સમયની આ વાત છે. રાજાએ ગામવાસીઓને એવું કહ્યું કે, " ભાઈઓ, આપની પાસે આ જે તલનો ઢગલો પડયો છે તેમાં તલના કેટલા

देशमब्रुवन। रोहकेणोक्तम्-किं मधुना राज्ञ उन्मादो जातः, एवं विधोऽपि प्रश्नः संभवति किम् ?, अस्तु। गच्छन्तु सर्वे ब्रुवन्तु राजानम्। भो राजन्! वयं न गणितज्ञाः, कथमस्माभिस्तिलसंख्या वाच्या, तथापि भवदीयादेशं शिरसि निधाय तदुपमामवलम्ब्यकथयामः-ग्रामोपरिभागे नभसि यावत्यस्तारकाः सन्ति तावन्तस्तिला अत्र-तिलराशौ विद्यन्ते। ततो रोहक वचनात् सर्वैर्ग्रामवासिभिस्तथैव राज्ञः समीपे कथितम्। राजा परितुष्टोऽभवत्।

॥ इति चतुर्थस्तिलदृष्टान्तः ॥ ४ ॥

बतलावो कि इसमें कितने तिलकण हैं। राजाकी इस बातको सुन कर लोगोंको बडा आश्चर्य हुआ। साथमें राजाकी आज्ञा अनुल्लंघ्य होती है, इसकी भी उन्हें बडी चिन्ता लग गई। इसका कोई उपाय न देखकर वे रोहक के पास आये और राजा ने जो आदेश दिया था वह यथावत् कह सुनाया। सुनकर रोहक को भी बडा अचंभा हुआ, उसने कहा-क्या राजा को कोई उन्माद का रोग तो नहीं हो गया है जो ऐसी असंभव बात को भी संभवित करने का प्रश्न कर रहा है ? खैर! कोई चिन्ता नहीं, अब आप लोग जायें और राजा से कहें महाराज! हम लोग कोई गणितज्ञ तो हैं नहीं जो तिलों को गिनकर उनकी संख्या आप को बतला सकें, फिर भी आपका आदेश शिर पर रखकर इतना कह सकते हैं कि इस ग्राम के ऊपर रहे हुए आकाश में जितने तारे हैं उतने ही तिल इस तिलराशि में मौजूद हैं। रोहक की इस सूझ से सब ग्रामवासी बडे ही प्रसन्न हुए। सब ने जाकर राजा से ऐसा ही कहा।

દાણા છે તે બતાવો" રાજાની આ વાત સાંભળીને લોકોને ભારે અચરજ થઈ. વળી રાજાની આજ્ઞા અનુલ્લંઘ્ય હોય છે તેની પણ તેમને મોટી વિમાસણ થઈ પડી. તેનો કોઈ ઉપાય ન સમજાવાથી તેઓ રોહકની પાસે ગયા અને રાજાએ જે આદેશ આપ્યો હતો તે સંપૂર્ણ રીતે કહી સંભળાવ્યો. તે સાંભળીને રોહકને પણ ઘણી નવાઈ થઈ. તેણે કહ્યું, "શું રાજાને કોઈ ઉન્માદનો રોગ તો નથી થયોને કે જેથી તે આવી અશકય વાતને પણ શકય કરવાનો પ્રશ્ન પૂછી રહેલ છે! ખેર! કોઈ ચિંતા નહીં, હવે આપ લોકો જાવ અને રાજાને કહો કે મહારાજ! અમે એવા ગણિતજ્ઞ તો નથી કે તલને ગણીને તેની સંખ્યા આપને બતાવી શકીએ, છતાં પણ આપની આજ્ઞા માથે ચડાવીને એટલું કહી શકીએ છીએ કે આ ગામની ઉપર રહેલ આકાશમાં જેટલા તારા છે, એટલા જ તલ આ તલના ઢગલામાં મોજૂદ છે." રોહકની આ અક્કલ જોઈને ગામવાસીઓ ઘણા ખુશી થયા. બધાએ જઈ ને રાજાને એ પ્રમાણે જ

अथ वालुकादृष्टान्तः—

अथान्यदा पुनरसौ नृपो रोहकबुद्धि परीक्षार्थं ग्राम्य पुरुषान् प्रतिनिजादेशं प्रेषितवान्—युष्मद्ग्रामस्य समीपे रमणीया वालुका वर्तन्ते, ताभिर्बहुस्थूला रज्जुं कृत्वा शीघ्रं प्रेषयत। एवं नृपादेशं श्रुत्वा ग्राम्यलोका रोहकान्तिकमागत्य नृपादेशमब्रुवन्। रोहकेणोक्तम्—यूयं राज्ञः समीपे एवं ब्रूत—वय नटाः स्मः, नृत्यमेव कर्तुं जानीमो न तु रज्जुम्। तथापि राज्ञ आदेशोऽवश्यं कर्तव्यः, तस्मादस्माकमियं

राजा भी इस उत्तर को सुनकर बडा प्रमुदित मन हुआ ॥

॥ यह चौथा तिलदृष्टान्त हुआ ॥ ४ ॥

पांचवां वालुकादृष्टान्त—

किसी एक समय राजा ने पुनः रोहक की बुद्धि की परीक्षा करने के लिये ग्रामवासियों के पास ऐसा अपना आदेश भेजा, कि तुम्हारे इस ग्राम के बाहर जो रमणीय बालु है, उससे तुम लोग बहुत स्थूल रस्सी बनाकर शीघ्र ही भेजो। राजा के इस आदेश से उन ग्रामवासियों में खलबली मच गई। सबके सब एकठ्ठे होकर रोहक के पास आये। आने का कारण पूछने पर रोहक को उन्होने राजा का आदेश कह सुनाया। रोहक ने अपनी बुद्धि की चतुराई से उनके कष्ट को दूर करने का उन्हें आश्वासन दिया। इसमें उन्हें उसने समझाया कि तुम सब राजा के पास जाकर कहो कि महाराज! हम लोग तो नट हैं, नटों का काम नाचने का है अतः हम नाचना ही जानते हैं रस्सी बनाना नहीं, फिर भी

કહ્યું રાજા આ ઉત્તર સાંભળીને મનમાં ઘણો ખુશ થયો.

॥ આ ચોથું તલનું દૃષ્ટાંત સમાપ્ત ॥ ૪ ॥

પાંચમું રેતીનું દૃષ્ટાંત—

કોઈ એક દિવસે રાજાએ ફરીથી રોહકની બુદ્ધિની પરીક્ષા કરવા માટે ગામવાસીઓને એવી આજ્ઞા આપી કે, "તમારા આ ગામની બહાર જે સુંદર રેતી છે, તેનું એક બહુ જ જાડું દોરડું બનાવીને જલદી મારી પાસે મોકલો." રાજાની આ આજ્ઞા સાંભળીને તે ગામવાસીઓમાં ખળભળાટ મચ્યો, ગામના બધા લોકો એકઠા મળીને રોહકની પાસે આવ્યા આવવાનું કારણ પૂછતાં તેમણે રોહકને રાજાની આજ્ઞા કહી સંભળાવી રોહકે પોતાના બુદ્ધિચાતુર્યથી તેમના કષ્ટનું નિવારણ કરવાનું તેમને આશ્વાસન દીધું. તેણે તેમને સમજાવ્યું કે, "તમે બધા રાજાની પાસે જઈને કહો કે હે મહારાજ! અમે લોકો તો નટ છીએ. નટોનું કામ તો નાચવાનું છે. તો અમે નાચવાનું જ જાણીએ દોરડાં વણવાનું

प्रार्थना भवति-भवदीयं राजकुलं चिरन्तनमिति चिरन्तना रज्जवो वालुकामयाः कतिचिद्राजभवने भविष्यन्तीति तन्मध्यादेका काचित् पुरातना रज्जुः प्रेषणीया येन तदनुसारेण वयमपि वालुकामयीं रज्जुं कुर्म इति । रोहकवचनं श्रुत्वा ग्राम्यपुरुषैर्नृप-समीपे समागत्य तथैवोक्तम् । राजा ग्राम्यपुरुषाणां वचः श्रुत्वा सुप्रसन्नोजातः ।

॥ इति पञ्चमो वालुकादृष्टान्तः ॥ ५ ॥

अथ हस्तिदृष्टान्तः—

अथान्यदा पुनरसौ नृपतिरेकं प्रत्यासन्नमृत्युं हस्तिनं ग्राम्यपुरुषाणामन्तिके प्रेषितवान् एवमादिष्टवांश्च–' गजोऽयं मृतः ' इति न वाच्यं, तथा तस्य वार्ता

आपका आदेश हमें प्रमाण है, अतः हमारी आप से यह प्रार्थना है कि यह आपका राजकुल बहुत अधिक पुराने समय से चला आ रहा है। इसमें उस–उस समय की पुरानी बालुकानिर्मित कितनीक रस्सियां होंगी ही, अतः जिस रस्सी को बनाने का आपने हमें आदेश दिया है, हमें समझाया जावे कि हम उसे किस रस्सी के अनुसार बनावें, इसलिये बड़ी दया होगी जो आप उन पुरानी बालुका की रस्सियोंमें से कुछ रस्सियां हमारे पास भेज दें तो। हम उन्हीं के अनुसार इस नवीन बालु-काकी रस्सी को बनाकर आप की सेवामें उपस्थित कर देंगे। इस प्रकार रोहक की सलाह मानकर उन ग्रामनिवासियों ने राजा की पास जाकर इसी तरह से कहा। राजा उनके इस प्रकार के वचन सुनकर बडा प्रसन्न हुआ॥

॥ यह पांचवॉ वालुकादृष्टान्त हुआ ॥ ५ ॥

નહીં. તો પણ આપની આજ્ઞા અમે માથે ચડાવીએ છીએ. તો અમારી આપને એ વિનંતિ છે કે આપનું આ રાજકુળ ઘણાં જ પ્રાચીન સમયથી ચાલ્યું આવે છે. તેમાં તે તે સમયની પુરાણી, રેતીમાંથી બનાવેલાં કેટલાંક દોરડાં હશે જ. તો જે દોરડું બનાવવાનો આપે અમને આદેશ આપ્યો છે, તે દોરડું કયાં દોરડા પ્રમાણે બનાવવું તે અમને સમજાવવામાં આવે એવી અમારી વિનંતિ છે. તો દયા કરીને આપ પુરાણા દોરડાંઓમાંથી કેટલાંક દોર-ડાંના નમૂનાઓ અમને મોકલો તો અમે તે નમૂના પ્રમાણે નવીન રેતીનાં દોરડાં બનાવીને આપની સેવામાં મોકલી આપશું." રોહકની આ પ્રકારની સલાહ માનીને તે ગ્રામવાસીઓએ રાજાની પાસે જઈને એજ પ્રમાણે કહ્યું. રાજા તેમનાં તે પ્રકારનાં વચન સાંભળીને ઘણો પ્રસન્ન થયો.

॥ આ પાંચમું રેતીનું દૃષ્ટાંત સમાપ્ત ॥ ૫ ॥

प्रत्यहं निवेदनीया, अन्यथा तीव्रदण्डो भविष्यति । एवं भूतं नृपादेशं श्रुत्वा सर्वे ग्राम्यलोकाश्चिन्तया व्याकुलीभूता रोहकान्तिके राजाऽऽज्ञामब्रुवन् । रोहकेणोक्तम् -यवसोऽस्मै दीयताम् यत् पश्चात् भविष्यति, तस्योपायं करिष्यामि । ततो रोहक-वचनाद् ग्राम्य पुरुषास्तस्मै हस्तिने धान्यादि यवसं दत्तवन्तस्तथाप्यसौ हस्ती तस्यामेव रात्रौ मृतः । ततो रोहकवचनाद् ग्राम्यपुरुषैर्नृपान्तिक मागत्य निवेदितम्

छट्ठा हस्तिदृष्टान्त—

एक दिन की बात है-राजा ने उन ग्रामवासियों के पास एक ऐसे हाथी को भेजा जिसका मृत्युसमय बिलकुल नजदीक था। भेजकर यह कहलाया कि "हमारे पास ऐसा समाचार कि "यह हाथी मर गया है" इस रूपमें नहीं आना चाहिये, तथा हाथी की स्थिति कैसी क्या रहती है यह समाचार प्रतिदिन आते रहना चाहिये। इस कार्यमें यदि जरा भी प्रमाद या त्रुटि होगी तो तुम लोगों को इसका तीव्रदंड भुगतना पडेगा।" इस तरह का नृपादेश सुनकर वे सब के सब ग्रामनिवासीजन चिन्ता से आकुलव्याकुल बनकर रोहक के पास पहुँचे और उससे "राजा की ऐसी आज्ञा हुई है" यह सब समाचार कहे। रोहक ने कहा-घबराओ नहीं, मैं इसका उपाय कहता हूँ, इसको प्रतिदिन घास तो डालते ही रहो, इसके बाद जो कुछ होगा सो देख लिया जावेगा। उस के इस बतलाये हुए उपाय को सुनकर उन्होंने ऐसा ही किया। प्रतिदिन वे उसको घास आदि खाने को देने लगे फिर भी हाथी की स्थिति बिगडती ही चली गई,

છટ્ઠું હાથીનું દૃષ્ટાંત—

એક દિવસની વાત છે. રાજાએ તે ગામવાસીઓ પાસે એક એવો હાથી મોકલ્યો કે જેનો મૃત્યુસમય બિલકુલ નજદીક હતો, અને એમ કહેવરાવ્યું કે, "આ હાથી મરી ગયો છે" એ રૂપે એવા સમાચાર મારી પાસે આવવા જોઈએ નહીં, તથા હાથીની સ્થિતિ કેવી રહે છે તે સમાચાર દરરોજ મને મળવા જોઇએ. આ કાર્યમાં સહેજ પણ પ્રમાદ કે ખામી રહેશે તો તે માટે તમને આકરી સજા થશે." આ પ્રકારની રાજાની આજ્ઞા સાંભળીને તે ગામના બધા લોકો ચિન્તાથી આકુળવ્યાકુળ થઇને રોહકની પાસે આવ્યા અને તેને "રાજાની આ પ્રમાણે આજ્ઞા થઈ છે" તે બધા સમાચાર કહ્યા. રોહકે કહ્યું, "ગભરાશો નહીં, હું તેનો ઉપાય કહું છું. આ હાથીને દરરોજ ઘાસ તો નાખતા રહો ત્યાર બાદ શું થાય છે તે જોઇ લેવાશે" તેણે બતાવેલો તે ઉપાય સાંભ-ળીને તેમણે તે પ્રમાણે જ કર્યું. દરરોજ તેને ઘાસ આદિ ખાવા આપ્યું, તો પણ હાથીની સ્થિતિ બગડતી જ ગઇ અને તે તેજ રાત્રે મરી ગયો. તેમણે રોહકની

–हे देव ! अद्य हस्तीनोत्तिष्ठति नोपविशति न च खादति नापि मलं मूत्र वा उत्सृजति, न चोच्छ्वास निःश्वासौ करोति, किं बहुना, हे देव ! कापि चेष्टा सचेतनस्य नास्ति । ततो राज्ञाकथितम्–अरे ! हस्ती मृतः किम् । ग्राम्यलोकैरुक्तम् हे देव ! भवन्त एव एवं वदन्ति न तु वयमिति । ग्राम्यलोकैरेवमुक्तो राजा तूष्णीं स्थितः । राजा सुप्रसन्नो जात इति मत्वा ग्राम्यलोकाः सहर्षं ग्रामं प्रविष्टाः।

॥ इति षष्ठो हस्तिदृष्टान्तः ॥ ६ ॥

और वह उसी रात को मर गया। रोहक के पास जाकर उन्हों ने जब इस समाचार से उसे अवगत कराया तो उसने उन से कहा कि तुम सब राजा के पास जाकर ऐसा कहो–"देव! आज हाथी न तो उठता है और न बैठता है, न खाता है न पीता है, न मलमूत्र का ही त्याग करता है, उच्छ्वास-निःश्वास क्रिया भी उस की बंध हो गई है, और अधिक क्या कहें जो सचेतन प्राणी कीचेष्टा होती है उसकी ऐसी कोई भी चेष्टा नहीं हो रही है"। ग्रामनिवासीजनों ने राजा के पास जाकर ऐसा ही कहा तोउन की ऐसी बात सुनकर राजा ने कहा "तो क्या हाथी मर गया है?" राजा की ऐसी बात सुनकर उन ग्रामनिवासियों ने कहा–महाराज ! आप ही ऐसा कह रहे हैं, हम तो ऐसा कुछ कहते नहीं हैं। ग्रामनिवासी पुरुषों की इस बात से राजा चूप हो गया और बडा प्रसन्न हुआ। वे सब के सब बादमें हर्षित होते हुए अपने २ घर पर वापिस लौट आये॥

॥ यह छट्ठा हस्ति दृष्टान्त हुआ ॥ ६ ॥

પાસે જઈને આ સમાચાર તેને આપ્યા ત્યારે તેણે તેમને કહ્યું કે તમે બધા રાજાની પાસે જઈને આ પ્રમાણે કહો "દેવ! આજે હાથી ઉઠતો નથી, બેસતો નથી, ખાતો નથી, પીતો નથી, મળમૂત્રનો ત્યાગ પણ કરતો નથી, તેની ઉચ્છ્વાસ નિઃશ્વાસની ક્રિયા પણ બંધ પડી ગઈ છે, વધુ શું કહીએ સચેતન પ્રાણીની જે ચેષ્ટા હોય છે એવી કોઈ પણ ચેષ્ટા તે કરતો નથી." ગામવાસીઓએ રાજાની પાસે જઈને એ પ્રમાણે જ કહ્યું, તો તેમની વાત સાંભળીને રાજાએ કહ્યું, "તો શું હાથી મરી ગયો છે?" રાજાની એવી વાત સાંભળીને તે ગામવાસીઓએ કહ્યું, "મહારાજ! આપ જ એવું કહો છો, અમે તો એવું કંઈ કહેતા નથી" ગામવાસીઓની એ વાત સાંભળીને રાજા ચૂપ થઈ ગયો અને ઘણો પ્રસન્ન થયો. તે બધા રાજી થતા પોતપોતાને ઘેર પાછા ફર્યા.

॥ આ છઠ્ઠું હાથીનું દૃષ્ટાંત સમાપ્ત ॥ ૬ ॥

अथागडदृष्टान्तः—

अगडः=कूपः । एवं तदुदाहरणम्—

अन्यदा पुनरसौ नृपतिर्ग्राम्यपुरुषान् समादिष्टवान्–युष्मद्ग्रामे यः सुस्वादुजलपूर्णः कूपोऽस्ति, स इह सत्वरं प्रेषणीयः। एवमादिष्टा ग्राम्यपुरुषाश्चिन्तया व्याकुलचित्ताः सन्तो रोहकाग्रे नृपादेशं निवेदितवन्तः । रोहकेणोक्तम्–यूयं नृपान्तिके गत्वा वदत–ग्रामीणः कूपः स्वभावतो भीरुर्भवति न च तस्य सजातीयं विनाऽन्यस्मिन् विश्वासो जायते अतः कश्चिदेको नागरिकः कूपः प्रेषणीयः, येन

सातवां अगड दृष्टान्त–

एक दिन राजा ने ग्रामवासी पुरुषों से ऐसा कहा कि तुम्हारे गाँवमें जो सुस्वादुजल से पूर्ण कुआ है उसे यहां शीघ्र भेज दो । राजा की इस अटपटी आज्ञा को सुनकर वे सब बडे चकित हुए। उपाय कुछ जब समझ में नहीं आया तो बेचारे वे रोहक के पास पहूँचे । रोहक ने आने का कारण पूछा तो उन्हों ने राजा की कुआ भेजने की जो बात थी वह उसे सुना दी। रोहक ने शीघ्र ही उन्हे उपाय बतलाते हुए सचेतकर कहा देखो तुम सब इसी समय राजा के पास जाओ और कहो-महाराज ! गॉव का कुआ स्वभावतः भीरु–डरपोक-होता है, जबतक उसे सजातीय दूसरा कुआ न मिल जावे तबतक वह अन्य किसी दूसरे व्यक्ति में विश्वास नहीं कर सकता है, इस लिये आप उसे बुलाने के लिये कोई दूसरा नागरिक कुआ भेज दीजिये कि जिससे उस पर यह विश्वास कर आपके नगरमें उसी के साथ २ आजावे । रोहक के इस उपाय से संमत

સાતમું અગડ દૃષ્ટાંત (કૂવાનું દૃષ્ટાંત)–

એક દિવસ રાજાએ તે ગામના લોકોને કહ્યું કે, " તમારા ગામમાં જે મીઠા પાણીથી ભરેલો કુવો છે તેને જલ્દી અહીં મોકલી આપો." રાજાની આ અટપટી આજ્ઞા સાભળીને બધાને ઘણી જ નવાઈ થઇ જ્યારે કોઈ ઉપાય ન જડયો ત્યારે બિચારા તેઓ રોહકની પાસે આવ્યા. રોહકે તેમના આગમનનું કારણ પૂછ્યુ ત્યારે તેમણે રાજાની કુવો મોકલવાની જે આજ્ઞા હતી તે તેને કહી સંભળાવી. રોહકે તરત જ તેમને ઉપાય બતાવતાં સચેત કરીને કહ્યું, " તમે બધા અત્યારે જ રાજાની પાસે જાઓ અને કહો " મહારાજ ! ગામડાંનો કુવો સ્વભાવે ડરપોક હોય છે. જ્યા સુધી તેનો સજાતીય બીજો કુવો ન મળે ત્યાં સુધી તે બીજી કોઈ પણ વ્યક્તિ પર વિશ્વાસ મૂકતો નથી. તો આપ તેને બોલાવવા માટે નગરના બીજા કોઈ કુવાને મોકલો કે જેથી તેના પર વિશ્વાસ મૂકીને

तस्मिन्नेष विश्वस्य तेन सह समागमिष्यति। ततो रोहक वचनाद् ग्राम्यपुरुषैर्नृपान्तिकमागत्य तथैव निवेदितम्। राजा च स्वचेतसि रोहकस्य बुद्ध्यतिशयं विभाव्य मौनमवलम्ब्य स्थितः। ग्राम्यलोका राजानं सुप्रसन्नं मत्वा हर्षेण स्वस्थानमागताः।

॥ इति सप्तमोऽगडदृष्टान्तः ॥ ७ ॥

अथ वनखण्डदृष्टान्तः—

अथाऽन्यदा पुनर्नृपतिर्ग्रामवासिनः पुरुषानादिष्टवान्—युष्माभिर्ग्रामस्य पूर्वस्यां दिशि वर्तमानो वनखण्डः पश्चिमायां दिशि कर्तव्य इति। अस्मिन्नपि राज्ञ आदेशे समागते रोहकवचनाद् ग्राम्यपुरुषावनखण्डस्य पूर्वस्यां दिशि व्यवस्थिताः। तथा

होकर वे सब के सब राजा के पास पहुँचे और पूर्वोक्त रूप से उनसे निवेदन किया। राजा ने इस तरह की उनकी बात सुनकर यह समझ लिया कि यह सब रोहक की बुद्धि का ही प्रभाव है। इस प्रकार रोहक की बुद्धि की अतिशय विशालता को जानकर राजा चूप हो गया। तथा वे सब ग्रामनिवासी जन भी प्रसन्न होते हुए अपने २ घर पर लौट आये॥

॥ यह सातवां अगड (कूप) दृष्टान्त हुआ ॥ ७ ॥

आठवां वनखण्ड दृष्टान्त—

राजा ने एक दिन ग्रामवासियों से ऐसा कहा कि तुम्हारे इस ग्राम की पूर्व दिशामें जो वनखण्ड है उसको तुम सब मिलकर पश्चिमदिशा में कर दो। राजा के इस आदेश को सुनकर उनलोगों ने रोहक के पास जाकर राजा का वह आदेश कह सुनाया। रोहक ने भी उन्हें इसका उपाय बतला दिया। उसीके अनुसार वे सब के सब अब वनखंड की

તેની સાથે નગરમાં આવે.” રોહકના આ ઉપાય સાથે સંમત થઈને તેઓ બધાય રાજાની પાસે પહોંચ્યા. અને આગળ કહ્યા પ્રમાણે તેમને વિનંતિ કરી. રાજાએ તેમની એ પ્રકારની વાત સાંભળીને એવું માન્યું કે આ બધો રોહકની બુદ્ધિનો જ પ્રભાવ છે. આ રીતે રોહકની બુદ્ધિની વિશાળતા જોઈને રાજા ચૂપ થઇ ગયો. તથા તે ગામવાસી લોકો પણ પ્રસન્ન થઈને પોતપોતાને ઘેર પાછાં ફર્યાં.

॥ આ સાતમું અગડ (कूप) દૃષ્ટાંત સમાપ્ત ॥ ૭ ॥

આઠમું વનખંડ દૃષ્ટાંત—

રાજાએ એક દિવસ ગામવાસીઓને કહ્યુ કે, “તમારા ગામની પૂર્વ દિશામાં જે વનખંડ છે તેને તમો બધા મળીને પશ્ચિમ દિશામાં કરી નાખો. રાજાનો આ આદેશ સાંભળીને તે લોકોએ રોહકની પાસે જઈને રાજાનો તે આદેશ કહી સંભળાવ્યો. રોહકે પણ તેમને તેનો ઉપાય બતાવ્યો. તે પ્રમાણે તેઓ

सति वनखण्डो ग्रामस्य पश्चिमायां दिशि संवृत्तः। राज्ञ आदेशः पूर्णो जात इति निवेदितं राज्ञः समीपे राजपुरुषैः।

॥ इति वनखण्डनामकोऽष्टमो दृष्टान्तः ॥ ८ ॥

अथ पायसदृष्टान्तः—

पायसं-परमान्नं 'खीर' इति भाषा प्रसिद्धम्। पुनरन्यदा स नृपतिरादिष्टवान्-भो ग्रामवासिनः पुरुषाः! यूयं विनाऽग्नि संयोगेनं पायसं कृत्वा प्रेषयत। ततस्तैः पुरुषैर्नृपादेशं श्रुत्वा रोहकान्तिके समागत्य नृपादेशः प्रोक्तः। रोहकेणोक्तम् -तण्डुलान् जले निक्षिप्य तण्डुलेषु प्रफुल्लितेषु पश्चात् [1]परिपक्वचूर्णशर्करोपरि तण्डुलपयोभृता प्रतला स्थाली निवेश्यताम्, तदनु ताः परिपक्वचूर्णशर्करा मुहुर्मुहुर्जलैः

पूर्व दिशा में जाकर वस गये। इस तरह वह वनखंड स्वभावतः ग्राम की पश्चिम दिशामें हो गया। राजा का आदेश इस प्रकार पूर्ण हुआ जानकर उन लोगों ने इसकी खबर राजपुरुषों को दे दी। राजपुरुषों ने भी यह समाचार राजा के पास भेज दिया। सुनकर राजा बड़ा प्रसन्न हुआ॥

॥ यह आठवाँ वनखण्ड दृष्टान्त हुआ ॥८॥

नौवां पायस दृष्टान्त–

एक दिन राजा ने ग्रामनिवासियों से ऐसा कहा कि–तुम लोग विना अग्नि पर पकाये खीर बना कर भेजो। लोगों ने इस आदेश की पूर्ति का उपाय रोहक से पूछा। रोहक ने कहा–तुम ऐसा करो–चावलों को पानीमें डाल दो और जब वे फूल जावें तब उन्हें तथा दूध को एक पतली सी थाली भरकर रख लो, बादमें चूने के ककडों के ऊपर उस थाली को जमा-

બધાં તે વનખંડની પૂર્વદિશાએ જઈને રહેવા લાગ્યા. આ રીતે તે ખંડ સ્વાભાવિક રીતે જ ગામની પશ્ચિમ દિશામાં આવી ગયો. આ રીતે રાજાનો આદેશ પૂર્ણ થતાં તેમણે તેની ખબર રાજપુરુષોને આપી. રાજપુરુષોએ તે સમાચાર રાજાને મોકલ્યા. સાંભળીને રાજા ઘણો ખુશી થયો.

॥ આ આઠમું વનખંડ દૃષ્ટાંત સમાપ્ત ॥૮॥

નવમું પાયસ દૃષ્ટાંત–

એક દિવસ રાજાએ ગામવાસીઓને એવી આજ્ઞા આપી કે, "તમે અગ્નિપર પકાવ્યા વિના ખીર બનાવીને મોકલી આપો" લોકોએ તે આદેશનું પાલન કરવાનો ઉપાય રોહકને પૂછયો. રોહકે કહ્યું, "તમે આ પ્રમાણે કરો–ચોખાને પાણીમાં નાખી રાખો જ્યારે તે પલળીને ફુલે ત્યારે તેને તથા દૂધને એક પાતળી એવી થાળીમાં ભરી રાખો પછી ચુનાના કાંકરાઓ પર તે થાળીને ગોઠવીને

१ पके हुए चूनेके कंकर।

सेचनीया येन परमान्नं संपद्यते । ततो रोहकवचनाद् ग्रामवासिभिस्तथैव कृते सति परमान्नं संपन्नम् । तच्च राज्ञे तै र्निवेदितम् । राजासाश्चर्यं सुप्रसन्नो जातः ।

॥ इति नवमः पायसदृष्टान्तः ॥ ९ ॥

अथ अतिगदृष्टान्तः—

अतिगः—तीव्रबुद्धिमान् । अथान्यदा राजा रोहकस्य बुद्ध्यतिशयमवगत्य तमाकारयितुमादिष्टवान्-येन बालकेन स्वबुद्धिवशात् सर्वा अपि ममाज्ञाः संपादितास्तेन मम समीपे समागन्तव्यम् किं तु (१) न शुक्लपक्षे, न कृष्णपक्षे, (२)

कर रख दो । धीरे २ उन ककडों को पानी की बिन्दुओं से सिञ्चित करते जाओ । इस तरह बहुत अच्छी खीर बनकर तैयार हो जावेगी । रोहक की इस युक्ति से सहमत होकर सब ने ऐसा ही किया । बढिया सुन्दर खीर पककर तैयार हो गई । लोगों ने जाकर वह खीर राजा को दी । राजाने देखकर बड़ी प्रसन्नता प्रकट की ॥

॥ यह नौवां पायसदृष्टान्त हुआ ॥ ९ ॥

दसवां अतिगदृष्टान्त—

कुछ दिनों के बाद राजा जब इस तरह से वह रोहक की बुद्धि के अतिशय से परिचित हो गया तो उसको अपने पास बुलाने के लिये खबर भेजी, और साथ में यह भी कहला भेजा कि जिस बालक ने मेरी सब आज्ञाएँ संपन्न की उस बालक रोहक को हमारे पास इस तरह से आना चाहिये कि जिसमें (१) न शुक्लपक्ष हो, न कृष्णपक्ष हो, (२) न रात्रि

મૂકે‌ા. ધીરે ધીરે તે કાંકરાઓ પર પાણીના ટીપાં છાંટતા રહો. આ રીતે ઘણી સરસ ખીર બનીને તૈયાર થશે. રોહકની આ યુક્તિ સાથે સમ્મત થઈને બધાએ તે પ્રમાણે કર્યું. ઘણી જ સરસ ખીર રંધાઈને તૈયાર થઇ ગઇ. લોકોએ જઈને તે ખીર રાજાને આપી. રાજાએ તે ખીર જોઈ ને ઘણી પ્રસન્નતા દર્શાવી.

॥ આ નવમું પાયસ દૃષ્ટાંત સમાપ્ત ॥

દસમું અતિગ દૃષ્ટાંત—

કેટલાક દિવસ પછી રાજા જ્યારે આ પ્રકારની રોહકની બુદ્ધિની તીવ્રતાથી પરિચિત થઈ ગયો ત્યારે તેણે તેને પોતાની પાસે બોલાવવાને માટે ખબર મોકલ્યા, અને સાથે એ પણ કહેવરાવ્યું કે “ જે બાળક રોહકે મારી બધી આજ્ઞા પૂર્ણ કરી તે બાળક રોહકે અમારી પાસે આ રીતે આવવું જ્યારે (૧) ન શુકલપક્ષ હોય, ન કૃષ્ણપક્ષ હોય, (૨) ન રાત્રી હોય ન દિવસ હોય,

न रात्रौ, न दिवसे, (३) न छायायां, न चातपे तेनागन्तव्यम् । (४) न छत्रेण, नचाछत्रेण, (५) न वाहनेन, न चरणाभ्यां, (६) न मार्गेण, नचाऽमार्गेण, (७) न स्नातेन, नचास्नातेन (८) न रिक्त हस्तेन नाप्यरिक्तहस्तेन समागन्तव्यम् । एवं नृपेणादिष्टो रोहकः कण्ठदेश पर्यन्तं शरीरं जलेन प्रक्षाल्य शिरसि चालनिकां कृत्वा पदपथेन-'पगदंडी' इति भाषा प्रसिद्धेन मार्गेण मेषमारुह्य सायंकालेऽमावास्या प्रतिपत्संगमे एकं मृत्खण्डं हस्ते निधाय राज्ञः पार्श्वे समागतः ।

(१) राजा पृच्छति-किं शुक्लपक्षे समागतोऽसि, किं वा कृष्णपक्षे ?। रोहके-

---

हो, (३)न दिन हो, न धूप हो और न छाया ही हो। (४) न छत्र सहित हो न छत्र रहित हो साथमें इसका भी पूरा ध्यान रहना चाहिये कि वह आगमन (५) वाहन से न हो, पैरों से न हो, और (६) न मार्ग से हो और न अमार्ग से हो। तथा (७) न स्नान कर हो, न अस्नान कर हो, (८) न रिक्त हाथ हो और न अरिक्त हाथ हो। जब रोहकने अपने आनेमें इस नियमों से युक्त इस प्रकार की राजा की आज्ञा सुनी तो वह बड़ा प्रसन्न हुआ। उसी समय उसने अपना शरीर कंठतक धोलिया और मेष पर चढ कर पगदंडी वाले मार्ग से वह राजा के पास चल दिया। चलते समय सायंकाल था अमावास्या और प्रतिपदा का संगम था। हाथमें उसने एक मिट्टी का ढेला ले रक्खा था। राजा के पास ज्यों ही वह पहुँचा तो।

(१) राजा ने उससे पूछा-रोहक! कह कि तू शुक्लपक्षमें आया है

---

(૩) ન તડકો હોય ન છાંયડો હોય, (૪) છત્રસહિત ન હોય તેમ છત્રરહિત પણ ન હોય, વળી એનું પણ પૂરૂં ધ્યાન રાખવું કે તે આગમન (૫) વાહન વડે ન થાય, પગપાળા ન થાય, (૬) માર્ગથી ન હોય અને અમાર્ગથી પણ ન હોય. તથા (૭) સ્નાન કરીને પણ ન આવે, સ્નાન કર્યા વિના પણ ન આવે, (૮) ખાલી હાથે ન હોય, ભર્યા હાથે પણ ન હોય." જ્યારે રોહકે પોતાને ત્યાં જવા માટેની આ નિયમોથી યુક્ત રાજાની આજ્ઞા સાંભળી ત્યારે તે ઘણો ખુશ થયો. ત્યારે જ તેણે કંઠ સુધી પોતાનું શરીર ધોઇ નાખ્યું અને ઘેટા પર બેસીને પંગદંડી-વાળા માર્ગે તે રાજાની પાસે જવા ઉપડયો. ચાલતી વખતે સંધ્યાકાળ હતો, અમાવાસ્યા અને પ્રતિપદાનો સંગમ હતો, તેણે હાથમાં માટીનું એક ઢેકું રાખ્યું હતું. જેવો તે રાજાની પાસે પહોંચ્યો કે તરત જ.

(૧) રાજાએ તેને પૂછ્યુ, " રોહક! કહે કે તું શુકલપક્ષમાં આવ્યો છે કે કૃષ્ણ

णोक्तम्—नाहं शुक्लपक्षे समागतोऽस्मि, नापि कृष्णपक्षे, किं त्वमावास्या प्रतिपत्संगमे समागतोऽस्मि, असौ समयो न शुक्लपक्षो न कृष्णपक्षः। (२-३) राजा पुनः पृच्छति—अरे रोहक! रात्रौ त्वमागतोऽसि किं दिवसे, किं वा छायायाम्, अथवा-आतपे?। रोहकेणोक्तम्-नाहं दिवसे समागतोऽस्मि, न रात्रौ न छायायाम्, नाप्यातपे, किं तु सायंकाले समागतोऽस्मि, असौ समयो न दिवसरूपो न रात्रिरूपः तथा न छायारूपो न चातपरूपः। (४) पुनः राजा पृच्छति-किं छत्रेण समागतोऽसि किमच्छत्रेण? रोहकः प्राह-राजन्! न छत्रेण न चाछत्रेण समागतोऽस्मि, शिरसश्चालनिकयाऽऽच्छादितत्वात्, (५) राजा पृच्छति-किं वाहनेन समागतोऽसि, किं वा चरणाभ्याम्-रोहकः प्राह-नाहं वाहनेन समागतोऽस्मि न

या कृष्णपक्षमें आया है? रोहक ने उत्तर दिया न मैं शुक्लपक्षमें आया हूं और न कृष्णपक्षमें आया हूँ किन्तु अमावास्या और प्रतिपदाके संगममें आया हूँ वह समय न शुक्लपक्ष का है न कृष्णपक्ष का। (२) राजाने फिर पूछा-रोहक! तू रात्रिमें आया है या दिनमें? (३)छायामें आया है या धूपमें? रोहक ने कहा-राजन्! न मैं रात्रिमें आया हूं और न दिनमें, तथा न छायामें आया हूं न धूपमें, किन्तु सायंकालमें आया हूं क्यों कि यह समय न दिन का है न रात्रि का है तथा न धूप का है और न छाया का है। राजा ने फिर पूछा-(४) क्या तूं छत्र सहित आया है? या छत्र रहित? रोहक ने कहा-राजन्! न मैं छत्र सहित आया हूं और न छत्र रहित ही; किन्तु शिर पर चालनी रखकर आया हूं। (५) राजा ने फिर पूछा-क्या तूं वाहन से आया है या पैरों से चलकर आया है? रोहक

પક્ષમાં?" રોહકે જવાબ આપ્યો, "હું શુકલપક્ષમાં આવ્યો નથી અને કૃષ્ણપક્ષમાં પણ આવ્યો નથી પણ અમાસ અને પ્રતિપદાના સંગમમાં આવ્યો છું; તે સમય શુકલપક્ષનો નથી. કૃષ્ણપક્ષનો પણ નથી." (૨) રાજાએ વળી પૂછયું, "રોહક! તું રાત્રે આવ્યો છે કે દિવસે? (૩) છાંયડામાં આવ્યો છે કે તડકામાં?" રોહકે કહ્યું, "રાજન્! હું રાત્રે આવ્યો નથી અને દિવસે પણ આવ્યો નથી, તથા તડકે આવ્યો નથી કે છાંયડામાં પણ આવ્યો નથી, પણ સંધ્યાકાળે આવ્યો છું કારણ કે તે દિવસનો સમય નથી અને રાત્રીનો પણ સમય નથી, તડકાનો સમય નથી અને છાંયડાનો પણ સમય નથી." વળી રાજાએ પૂછયું, (૪) છત્ર સાથે આવ્યો છે કે છત્ર વગર? રોહકે કહ્યું હું છત્ર સહિત પણ આવ્યો નથી અને છત્રરહિત પણ આવ્યો નથી પણ માથે ચારણી મૂકીને આવ્યો છું તેથી છત્ર સહિત પણ નથી અને છત્ર વગર પણ ન કહેવાય. "(૫) શું તું વાહનમાં

चरणाभ्याम् , मेषारूढः समागतोऽस्मि। (६) राजा पृच्छति–रोहक! त्वं मार्गेण समागतः उत अमार्गेण? रोहकेणोक्तम्–न मार्गेण न चामार्गेण समागतोऽस्मि, हस्त्यश्वादि गमनागमनमार्गं विहाय पदपथेन 'पगदंडी' इति प्रसिद्धेन मार्गेण समागमनात् , स तु न मार्गो न चामार्गः। (७) राजा पृच्छति–किं स्नातोऽसि, किं वा–अस्नातोऽसि? रोहकेणोक्तम्–कण्ठदेशपर्यन्तं शरीरं प्रक्षाल्य समागतोऽस्मि तेन न स्नातोऽस्मि नाप्यस्नातोऽस्मि (८) नृपेणोक्तम्–रे रोहक! किं रिक्तहस्तः किमरिक्तहस्तो वा समागतोऽसि?। रोहको मृत्खण्डं नृपस्य पुरतः संस्थाप्य निगदति–राजन्! न रिक्तहस्तो नाप्यरिक्तहस्तः समागतोऽस्मि। राजाऽऽह–

ने कहा–राजन्! न मैं वाहन से आया हूं न पैरों से चलकर, किन्तु मेष पर चढ कर आया हूं। (६) राजा ने फिर पूछा–क्या तू मार्ग से होकर आया है या अमार्ग से? रोहक ने कहा–राजन्! न मैं मार्ग से होकर आया हूं और न अमार्ग से, किन्तु पगदंडी से आया हूं क्यों कि वह हाथी घोडों के गमनागमन से रहित होने से न मार्ग है और पगदंडी होने से न अमार्ग है। (७) राजा ने फिर पूछा–तू स्नान करके आया है या विना स्नान किये? तब रोहक ने कहा–मैं नहीं तो स्नान करके आया हूं और न विना स्नान किये आया हूं किन्तु कण्ठ तक शरीर धोकर आया हूं। (८) राजा ने पुनः पूछा कि तू रिक्त हाथ आया है या अरिक्त हाथ? इस पर रोहक ने मिट्टी के ढेले को सामने रखकर कहा–महाराज! नहीं मैं रिक्त हाथ आया हूं और न अरिक्त हाथ राजा ने

આવ્યો છે કે પગપાળા આવ્યો છે?" રોહકે જવાબ આપ્યો, "રાજન્! હું વાહનમાં આવ્યો નથી અને પગે ચાલીને પણ આવ્યો નથી, પણ ઘેટા પર બેસીને આવ્યો છું. (૬) ફરીથી રાજાએ પૂછ્યું, "શું તું માર્ગેથી આવ્યો છે કે અમાર્ગથી? રોહકે જવાબ આપ્યો, "હું માર્ગ પરથી આવ્યો નથી કે અમાર્ગ પરથી પણ આવ્યો નથી. પણ પગદંડી પરથી આવ્યો છું, કારણ કે તે હાથી ઘોડાની અવરજવર વિનાની હોવાથી માર્ગ ન ગણાય અને પગદંડી હોવાથી અમાર્ગ પણ ન ગણાય." ફરીથી રાજાએ પૂછ્યું, "તું સ્નાન કરીને આવ્યો છે કે સ્નાન કર્યાં વિના આવ્યો છે?" ત્યારે રોહકે કહ્યું, "હું સ્નાન કરીને પણ આવ્યો નથી અને સ્નાન કર્યાં વિના પણ આવ્યો નથી પણ કંઠ સુધી શરીરને ધોઈને આવ્યો છું." ફરીથી રાજાએ પૂછ્યું, "તું ખાલી હાથે આવ્યો છે કે ભર્યા હાથે આવ્યો છે?" ત્યારે રોહકે માટીના ઢેફાને સામે મૂકીને કહ્યું, "મહારાજ! હું ખાલી હાથે પણ આવ્યો નથી અને ભર્યા હાથે

कथमेतत् ? । रोहकः प्राह-भवान् पृथिवीपतिः, अतो मया पृथिवी समानीता तेन न रिक्त हस्तोऽहम्, मृत्खण्डस्य तुच्छरूपत्वान्नाप्यरिक्तहस्तोऽहम्। प्रथमदर्शनसमये रोहकस्य मङ्गलवचः श्रुत्वा राजा परितुष्टोऽभवत् । ग्रामवासिनो लोका अपि ग्रामं गतवन्तः।

॥ इति दशमोऽतिगदृष्टान्तः ॥ १० ॥

यद्वा—'अइया' इत्यस्य 'अजिका' इतिच्छाया। 'अजा' एव अजिका। तथा च-अजा दृष्टान्त इति बोध्यम्। स चैवम्—

अथ राजा परितुष्टः सन् रात्रौ रोहकं स्वसमीपे शायितवान्। अन्येऽपि लोका इतस्ततस्तत्समीपे शायिताः। रजन्याः प्रथम-यामान्ते रोहकं प्राह-रे रोहक !

कहा-यह कैसे ? रोहक ने उत्तर दिया-मिट्टी का ढेला हाथमें लेकर आयो हुं राजा ने कहा यह कैसे? रोहकने उत्तर दिया-आप पृथिवी पति हैं अतः मैं पृथिवी लेकर आया हूं इस लिये मैं रिक्त हस्त-खाली हाथ नहीं आया हूं, और मिट्टी का ढेला तुच्छ रूप होने से अरिक्त हस्त-भरे हाथ भी नहीं आया हूं। इस तरह प्रथम दर्शनकालमें रोहक के इस प्रकार के मंगलीक वचन सुनकर राजा बहुत सन्तुष्ट हुआ। ग्रामवासी लोग अपने ग्राम की तरफ चले गये॥

॥ यह दसवां अतिगदृष्टान्त हुआ ॥ १० ॥

यहां मूलमें 'अइया' पद है उस की छाया 'अजिका' ऐसी भी होती है इसलिये फिर दसवां अजादृष्टान्त है-

तुष्ट हुए राजा ने रोहक को रात्रिमें अपने पास सुलाया, तथा और जो लोग थे उन्हें इधर उधर उसके पास सुलाया। रात्रि का जब प्रथम

પણ આવ્યો નથી." રાજાએ કહ્યું, "એ કેવી રીતે ?" રોહકે જવાબ આપ્યો "આપ પૃથ્વીપતિ છો. તેથી હું પૃથ્વી (માટી) લઈને આવ્યો છું, તેથી હું ખાલી હાથે આવ્યો નથી અને માટીનું ઢેકું તુચ્છ હોવાથી ભર્યા હાથે પણ આવ્યા નથી." આ રીતે પ્રથમ દર્શનકાળે રોહકનાં આ પ્રકારના માંગલિક વચન સાંભળીને રાજા ઘણો સંતોષ પામ્યો. ગામવાસી લોકો પોતાને ગામ ચાલ્યા ગયા.

॥ આ દસમું અતિગ દષ્ટાંત સમાપ્ત ॥ ૧૦ ॥

અહીં મૂળમાં "अइया" પદ છે. તેની છાયા "अजिका" પણ થાય છે. તેથી ફરીથી દસમું अजादृष्टांत મૂક્યું છે-

સંતુષ્ટ થયેલ રાજાએ રોહકને રાત્રે પોતાની પાસે સુવાડયો, અને બીજા જે લોકો હતા તેમને અહીં તહીં તેની પાસે સુવાડયા. જ્યારે રાત્રિનો પહેલો

जागर्षि किं वा स्वपिषि ? । रोहक आह-महाराज ! जागर्मि । राजाप्राह-रे रोहक । तर्हि किं चिन्तयसि ? । रोहकः प्राह-राजन् ! अजाया उदरे यन्त्रोत्तीर्णा इव वर्तुलगुलिकाः कथं भवन्तीति चिन्तयामि । तत एवमुक्ते सति राजा तमेव पृष्टवान्-कथय रोहक ! कथमिति । रोहकेणोक्तम्—राजन् । संवर्तक नामकाद् वायु विशेषात् । एवमुक्त्वा रोहकः सुप्तः ।

॥ इति अजादृष्टान्तः ॥ १० ॥

प्रहर पूरा हुआ तो राजाने रोहक से कहा-रोहक ! तूं जग रहा है या सो रहा है ? रोहक ने सुनते ही झट से उत्तर दिया-महाराज जग रहा हूं। सुनकर राजा ने फिर उससे कहा-जगता हुआ क्या विचार कर रहा है ? रोहक ने कहा-महाराज ! क्या बतलाऊँ-बड़ा अच्छा विचार कर रहा हूं। वह यह है कि बकरी के पेटमें यंत्र (मशीन) पर घडी गई के समान जो गोल २ गुलिका-लेंडी होती हैं वे कैसे होती हैं। रोहक की इस बात को सुनकर राजा ने कुछ भी उत्तर न देते हुए उससे ही पूछा कि रोहक ! तू ही इसका खुलाशा उत्तर बतला। रोहक ने कहा-राजन् ! सुनो, बकरी के पेटमें एक संवर्तक वायु रहा करती है जिससें उस के उदरमें इस प्रकार की गोल २ लेंडियां वना करती हैं। इस उत्तर से राजा प्रसन्न हुआ। रोहक बादमें सो गया ॥

॥ यह दसवां दूसरा अजादृष्टान्त हुआ ॥१०॥

પ્રહર પૂરો થયો ત્યારે રાજાએ રોહકને કહ્યું, " રોહક ! તું જાગે છે કે સૂઇ ગયો છે ? " રોહકે સાંભળતાં જ તરત જવાબ આપ્યો " મહારાજ ! જાગું છું." જવાબ સાંભળીને રાજાએ ફરી પૂછ્યુ, " જાગતો જાગતો શો વિચાર કરે છે ? " રોહકે કહ્યુ, " મહારાજ ! શું બતાવું ? ઘણો જ સરસ વિચાર કરી રહ્યો છું. તે એ છે કે બકરીના પેટમાં યંત્ર વડે બની હોય તેવી જે ગોળ ગોળ ગોળીઓ લીંડીઓ હોય છે તે કેવી રીતે બનતી હશે ? " રાજાએ રોહકની આ વાત સાંભળીને કંઈ પણ જવાબ ન આપતાં તેને જ પૂછ્યું " રોહક ! તું જ તેનો ખુલાસા વાર જવાબ આપ. " રોહકે કહ્યું, " રાજન્ ! સાંભળો. બકરીના પેટમાં એક સંવર્તક વાયુ હોય છે જેથી તેના પેટમાં આ પ્રકારની ગોળ ગોળ લીંડીઓ બન્યા કરે છે." આ જવાબથી રાજા પ્રસન્ન થયો. પછી રોહક ઉંઘી ગયો.

॥ આ બીજી વખત દસમું અજા દૃષ્ટાંત સમાપ્ત ॥ ૧૦ ॥

अथ पत्रदृष्टान्तः—

राज्ञः समीपे सुप्तं रोहकं रात्रौ यामद्वये व्यतीते सति राजा पुनरब्रवीत्—अरे रोहक ! जागर्षि किं वा स्वपिषि ? । रोहक आह-राजन् ! जागर्मि । राज्ञा प्रोक्तम्-तर्हि किं चिन्तयसि ? । रोहकेणोक्तम्-राजन् ! अश्वत्थ पत्रस्य किं दण्डो महान् भवति, उत शिखारूपः-पत्राग्रभागः ? । एवमुक्ते राजा संशयमापन्नो वदति -रोहक ! त्वया सम्यक् चिन्तितम् किं तु निर्णयः क इति वद । रोहकः प्राह—यावत् पत्राग्रभागो न शुष्यति, तावद् द्वे अपि समे । ततो राज्ञा पार्श्ववर्तीलोकः पृष्टः

ग्यारहवां पत्रदृष्टान्त-

राजा के पासमें सोये हुए रोहक के जब रात्रि के दो प्रहर व्यतीत हो चुके तो राजा ने उससे कहा-रोहक! जग रहा है या सो रहा है? रोहक ने संभलकर उत्तर दिया-महाराज ! जग रहा हूं। जगता २ क्या विचार कर रहा है। इस प्रकार राजा के पूछने पर रोहक ने उत्तर दिया-महाराज ! मैं विचार कर रहा हूं कि अश्वत्थ-पीपल-के पत्ते का दण्ड महान् होता है या उसका शिखारूप अग्रभाग महान् होता है ? रोहक की इस विचारधारा से परिचित होने पर राजा स्वयं संशयापन्न होकर कहने-लगा रोहक ! तूं ने विचार तो अच्छा किया पर निर्णय इसका क्या है सो तूं ही कह मेरी तो समझमें कुछ भी नहीं आ रहा है। रोहक ने राजा की बात सुनते ही उत्तर दिया-देखो, जब तक पत्राग्रभाग शुष्क नहीं होता है तबतक दोनों ही समान माने जाते हैं ! रोहक की इस बात

અગીયારમું પત્ર દૃષ્ટાંત-

રાજાની પાસે સૂતેલા રોહકને રાત્રિના બે પ્રહર પસાર થતાં રાજાએ કહ્યું, " રોહક ! જાગે છે કે સૂઈ ગયો છે ? " રોહકે તે સાંભળીને જવાબ આપ્યો, " મહારાજ ! જાગું છું." જાગતો જાગતો શો વિચાર કરી રહ્યો છે ? " એવો રાજાનો પ્રશ્ન સાંભળીને રોહકે જવાબ આપ્યો, " મહારાજ! હું તે વિચાર કરૂં છું કે પીપળાના પાનનો દંડ મહાન્ હોય છે કે તેનો શિખારૂપ અગ્રભાગ મહાન્ હોય છે ? " રોહકની આ વિચાર ધારાથી પરિચિત થતાં રાજા પોતેજ સંશયયુક્ત થઈને કહેવા લાગ્યો, " રોહક ! તેં વિચાર તો સરસ કર્યો પણ તેનો શો નિર્ણય છે તે તુંજ કહે. મને તે કંઈ પણ સમજાતુ નથી." રોહકે રાજાની વાત સાંભળતાજ જવાબ આપ્યો, "જુઓ, જ્યાં સુધી પત્રાગ્રભાગ સૂકાતો નથી ત્યાં સુધી બન્ને સમાન જ મનાય છે." રોહકની આ વાતનો નિર્ણય

रोहकस्य कथनं तथ्यमतथ्यं वेति कथ्यताम्। लोकेनाप्युक्तम्–तथ्यमेवैतत्। ततो रोहकः पुनरपि सुप्तः॥

॥ इत्येकादशः पत्रदृष्टान्तः॥ ११॥

अथ खाडहिलादृष्टान्तः—

खाडहिला—'खिसकोली' 'टाली' इति भाषा प्रसिद्धः पञ्चेन्द्रिय जीव विशेषः। रात्रौ तृतीया यामे व्यतीते राजा रोहकं पुनः पृष्टवान्–रे रोहक! किं जागर्षि किं वा स्वपिपि?। रोहकः प्राह–राजन्! जागर्मि। राजा प्राह–अरे रोहक! किं चिन्तयसि?। रोहकेणोक्तम्–राजन्! खाडहिला–जीवस्य यावन्मात्रं शरीरं,

का निर्णय राजा ने जब पार्श्ववर्ती लोगों से पूछा कि रोहक का यह कथन सत्य रूप है या असत्य रूप है? तो उन्हों ने एक स्वर से कहा कि ठीक है, तब राजा ने इस बात को मानली॥

॥ यह ग्यारवां पत्रदृष्टान्त हुआ॥११॥

बारहवां खाडहिलादृष्टान्त–

खाडेहिला का अर्थ है खिसकोली–इसको हिन्दी भाषामें टाली या गिलहरी कहते हैं। यह पांचों इन्द्रियवाली होती है। रात्रि का जब तीसरा पहर व्यतीत हो गया, तब राजाने रोहक से पुनः पूछा–कह भाई! तूं जग रहा है या सो रहा है? सुनकर रोहक ने कहा। राजन्! मैं जग रहा हूं। तो क्या विचार कर रहा है। राजा की बात सुनकर रोहक ने उत्तर दिया–राजन्! मैं इस समय यह विचार कर रहा हूं कि खाडहिला

જ્યારે રાજાએ પાસે રહેલા લોકોને પૂછ્યો કે રોહકનું આ કથન સત્ય છે કે અસત્ય છે? તો તેમણે એકી અવાજે કહ્યું કે તેનું કથન બરાબર છે. ત્યારે રાજાએ તે વાત માની લીધી.

॥ આ અગીયારમું પત્ર દૃષ્ટાંત સમાપ્ત ॥ ૧૧ ॥

બારમું ખાડહિલા (ખિસકોલી)નું દૃષ્ટાંત–

(ખાડહિલાનો અર્થ ખિસકોલી થાય છે તેને હિન્દી ભાષામાં ટાલી કે ગિલહરી કહે છે. તે પાંચે ઈન્દ્રિયવાળી હોય છે.)

રાત્રિનો ત્રીજો પહોર જ્યારે પસાર થયો ત્યારે રાજાએ રોહકને ફરી પૂછ્યું, "કહે ભાઈ! તું જાગે છે કે ઉંઘે છે?" તે સાંભળીને રોહકે કહ્યું, "રાજન! હું જાગું છું" રાજાએ પૂછ્યું, "તો તું શો વિચાર કરી રહ્યો છે?" રોહકે જવાબ આપ્યો, "રાજન્! હું અત્યારે તે વિચાર કરૂં છું કે

तावन्मात्रं पुच्छं किं वा न्यूनम् ? अधिकं वा ' इति चिन्तयामि । राजातन्निर्णयं कर्तुमशक्तस्तमेव पृष्टवान्-रे रोहक ! कोऽत्र निर्णयः ? । रोहकेणोक्तम्-राजन् ! द्वे अपि समे भवतः । एव मुक्त्वा रोहकः सुप्तः ॥

॥ इति द्वादशः खाडहिलादृष्टान्तः ॥ १२ ॥

अथ पञ्चपितृकदृष्टान्तः—

इतश्च प्राभातिके माङ्गलिकवाद्यनिःस्वने प्रवृत्ते सति राजा प्रबुद्धः सन् रोहकमाह—अरे रोहक ! किं जागर्षि ? किं वा स्वपिषि ? । तदा रोहकोगाढ

नाम का जो पंचेन्द्रिय प्राणी होता है उसका जितना शरीर है उतनी ही उसकी पूंछ होती है, अथवा उससे कुछ कम होती है या उससे अधिक होती है ? यदि इस विषय को आप जानते हों तो आप बतलाईये। राजा ने रोहक की बात सुनकर कहा-मैं स्वयं इस विषय का निर्णय नहीं कर सकता हूं तो तेरे को क्या बतलाऊँ ? तूं ही कह। रोहकने झट जबाब दिया कि राजन्! ये दोनों ही समान होते हैं। कमती बढती नहीं होते। बस ऐसा कहकर रोहक सो गया ॥

॥ यह बारहवां खाडहिला का दृष्टान्त हुआ ॥१२॥

तेरहवां पंच पितृक का दृष्टान्त-

रात्रि समाप्त प्राय हो चुकी थी। इधर प्रभातकाल के सूचक वाद्यों की तुमुल ध्वनि मन को हरण कर रही थी। राजा ने जगकर सोते हुए

ખિસકોલી નામનું જે પંચેન્દ્રિય પ્રાણી હોય છે તેનું શરીર જેવડું છે એવડી જ પૂંછડી હોય છે અથવા તેના કરતાં ટુંકી હોય છે, કે તેના કરતાં લાંબી હોય છે? જો આ બાબતમાં આપ માહિતગાર હો તો મને સમજાવો.” રાજાએ રોહકની વાત સાંભળીને કહ્યું, “હું પોતે તે વાતનો નિર્ણય કરી શકતો નથી તો તારે જ તે કહેવું પડશે.” રોહકે તરત જ જવાબ આપ્યો, “હે રાજન્! એ બન્ને સમાન જ હોય છે. વધુ કે ઓછાં હોતાં નથી.” બસ એમ કહીને રોહક સૂઈ ગયો.

॥ આ બારમું ખાડહિલા નું દૃષ્ટાંત સમાપ્ત ॥ ૧૨ ॥

તેરમું પંચપિતૃક નું દૃષ્ટાંત-

લગભગ રાત્રિ પૂરી થઈ હતી. ત્યાં પ્રભાતકાળના સૂચક વાદ્યોનો તુમુલ ધ્વની મનને આકર્ષી રહ્યો હતો. રાજાએ જાગીને સૂતેલા રોહકને જગાડવા

निद्रामुपगतः किंचिन्नोवाच। ततो राजा लीलाकङ्कतिकया रोहकं मनाक् स्पृशति। ततश्च रोहको विनिद्रः संजातः। राजा पृच्छति-अरे रोहकः! किं स्वपिषि?। रोहकेणोक्तम्-राजन्! जागर्मि। राजा प्राह-तर्हि किं चिन्तयसि?। रोहकेणोक्तम्-राजन्! एतच्चिन्तयामि-भवतः कतिपये पितरः सन्तीति। ततो राजा सलज्जः सन् मनाक् तूष्णींस्थित्वा प्राह-कथय-मम कति पितरः सन्तीति। रोहकः प्राह-राजन्! पञ्च। राजा पुनः पृच्छति-कथय-ते च के। रोहकेणोक्तम्-प्रथमस्तावद् वैश्रवणः वैश्रवणस्येव भवतो दानशक्तेर्दर्शनात्। द्वितीयश्चाण्डालः, शत्रुसमूहं प्रति चाण्डाल-

रोहक को जगाया पर वह नहीं जगा। इतनेमें राजाने सोते हुए उसके शरीरमें कंघी के दांतों का स्पर्श कराया तो वह निद्रारहित हो गया पर ज्यों का त्यों पडा रहा। इतनेमें राजा ने पुनः उससे पूछा-रोहक! जग रहा है या सो रहा है। रोहकने उत्तर दिया महाराज! जग रहा हूं। राजा ने कहा-क्या विचार कर रहा है? राजा के इस प्रश्न को सुनकर रोहक ने कहा-क्या कहूं? राजाने कहा कुछ तो कह। रोहकने कहा-यदि कहुंगा तो आप नाराज हो जावेंगे, राजा ने कहा-नाराज नहीं होऊंगा, कह। तब रोहकने कहा-सुनिये मैं इस समय यह विचार कर रहा हुं कि आप के कितने पिता हैं? राजा को इस रोहक के विचार पर कुछ लज्जा जैसी तो आई पर उसने वह उसके लिये प्रकट नहीं होने दी, थोडी ही देर चुप रहने के बाद राजा ने रोहक से कहा-मेरे कितने पिता हैं? रोहक ने कहा-आपके पांच पिता हैं। राजा-वे कौन २ से हैं? बतला।

માંડયો પણ તે જાગ્યો નહીં. એવામાં રાજાએ સૂતેલા એવા તેના શરીર પર કાંસકીનાં દાંતાઓનો સ્પર્શ કરાવ્યો તે નિદ્રા રહિત થઇ ગયો પણ ત્યાંને ત્યાં પડયો રહ્યો, એટલે રાજાએ તેને ફરીથી પૂછયું, "રોહક! તું જાગે છે કે ઉંઘે છે?" રોહકે જવાબ આપ્યો, "મહારાજ! જાગું છું." રાજાએ પૂછયું, "શો વિચાર કરે છે?" રાજાનો આ પ્રશ્ન સાંભળીને રોહકે કહ્યું, "શું કહું?" રાજાએ કહ્યું, "કંઈક તો કહે" રોહકે કહ્યું "જો કહીશ તો તમે નારાજ થશો." રાજા એ કહ્યું "કહે, નાગજ નહીં થાઉં." રોહકે કહ્યું, "સાંભળો, અત્યારે હું તે વિચાર કરી રહ્યો છું કે આપના પિતા કેટલા છે?" રાજાને રોહકના આ વિચાર પર થોડી શરમ જેવું તો લાગ્યું પણ તેણે તે તેની પાસે પ્રગટ થવા દીધી નહીં. થોડીવાર મૌન રહીને રાજાએ રોહકને પૂછયું "મારે કેટલા પિતા છે?" રોહકે કહ્યું "આપના પાંચ પિતા છે." રાજાએ પૂછયું "તેઓ

स्यैव कोपदर्शनात् । तृतीयो रजकः, यतो यथा रजको वस्त्रं परिनिष्पीड्य तस्य सर्वं मलमपहरति तथाऽपराधिनः सर्वस्वं हरसि । चतुर्थो वृश्चिकः, यन्मामपि बालकं निद्राभर सुप्तं लीलाकङ्कतिकाग्रेण वृश्चिक इव निर्दयं तुदसि । पञ्चमस्तु निजपितैव, येन यथावस्थितं न्यायं सम्यक् परिपालयसि । एव मुक्ते सति राजा तूष्णीमास्थाय प्राभातिकं कृत्यं जिनस्मरणादिकं कृतवान् । ततो राजा मातुः समीपमागत्य नमस्कृत्य

रोहक-सुनो, एक है आपका पिता वैश्रवण, क्यों कि वैश्रवण के समान आपमें दानशक्ति के दर्शन होते हैं १ दूसरा पिता है आप का चांडाल, क्यों कि शत्रुसमूह के प्रति आपमें चांडाल की तरह कोप दिखलाई देता है २, तीसरा पिता हैं आप का धोबी, धोबी जिस तरह वस्त्र को पछाडकर उसके मैल को हर लेता है उसी तरह आप भी अपराधी को पछाडकर उस के सर्वस्व रूप मैल का हरण कर लेते हो ३। चौथा पिता है आपका वृश्चिक, वृश्चिक जिस तरह सोये हुए व्यक्ति को निर्दय होकर डंक मार कर व्यथित कर देता है उसी प्रकार आपने भी अभी सोये हुए मुज बालक को कंधी चुभो कर व्यथित कर दिया है ४ । पाँचवा पिता है आपका वह कि जिसने आपको जन्म दिया है, कारण उसी के अनुसार आप अपनी प्रजा का न्यायनीति पूर्वक पालन कर रहे हो ५। इस बात को सुनकर राजा चुपचाप हो गया और जिनस्मरण पूर्वक समस्त प्राभातिक कार्य समाप्त कर अपनी माता के पास चल दिया।

કોણ કોણ છે તે બતાવ." રોહકે કહ્યું "સાંભળો, એક આપના પિતા વૈશ્રવણ છે, કારણ કે આપનામાં વૈશ્રવણ જેવી દાન શક્તિનાં દર્શન થાય છે,(૧) આપનો બીજો પિતા ચાંડાલ છે કારણ કે શત્રુસમૂહ પ્રત્યે આપનામાં ચાંડાલ જેવો ક્રોધ નજરે પડે છે. (૨) આપનો ત્રીજો પિતા ધોબી છે કારણ કે જેમ ધોબી વસ્ત્રને પછાડી પછાડીને તેનો મેલ દૂર કરે છે તેમ આપ પણ અપરાધીને પછાડી પછાડીને તેના સર્વસ્વરૂપ મેલનું હરણ કરો છો. (૩) આપનો ચોથો પિતા વીંછી છે, જેમ વીંછી સૂતેલી વ્યક્તિને નિર્દય થઈ ને ડંખ દઇને વ્યથિત કરે છે તેમ આપે પણ સૂતેલા એવા મને-બાળકને કાંસકી ભોંકીને વ્યથિત કર્યો છે. (૪) આપના પાંચમા પિતા તે છે કે જેમણે આપનો જન્મ આપ્યો છે, કારણ કે તેમના પ્રમાણે આપ આપની પ્રજાનું ન્યાય, નીતિપૂર્વક પાલન કરી રહ્યા છો." (૫) આ વાત સાંભળીને રાજા ચૂપ થઈ ગયો અને જિન સ્મરણ પૂર્વક સમસ્ત પ્રાતઃકર્મ પૂરા કરીને પોતાની માતાની પાસે ચાલ્યો ગયો. ત્યાં પહોંચીને માતાને નમન કર્યું

रहसि पृष्टवान्-मातः! कथय, अहं कतिभिर्जातोऽस्मि? । जननी प्राह—वत्स! किमेतत् प्रष्टव्यम् निजपित्रा त्वं जातोऽसि। ततो राजा रोहकोक्तं वचः कथयित्वा जननीमिदमब्रवीत्-मातः! स रोहकः प्रायोऽलीक बुद्धिर्न भवतीति ततः कथय सत्यम्, एवं पुनः पुनः पृष्टा माता राजानं प्राह—यदा मम कुक्षौ त्वं समवतरितः तत् प्रभाते तव पितुः समीपे वैश्रवण सदृशः परमोदारो जिनदत्तनामा नगरश्रेष्ठी मया दृष्टः, तथा-तदा चाण्डालरजकवृश्चिका अपि तत्र दृष्टाः। एवं त्वत्पित्रादीनां पञ्चानां दर्शनेन तत्संस्कारयुक्तस्त्वमुत्पन्नः। अतस्त्वां निरीक्ष्य रोहकः प्रोक्तवान्। तत एव मुक्ते सति राजा जननीं प्रणम्य रोहकबुद्धिं प्रति साश्चर्यचित्तः सन्, स्वा-

पहुंचते ही उसने माता को नमस्कार किया और एकान्त पाकर पूछा-हे माता! मैं कितने बाप की संतान हूं? माने सुनकर कहा-बेटा! इसमें पूछने की बात ही कौनसी है? तुम अपने पिता की ही संतान हो। बादमें राजा ने अपनी माता को रोहक की बात से परिचित कराते हुए कहा, माता! रोहक की बातें प्रायः सब सत्य निकलती हैं तो तुम सच २ कहो, रोहकने हमको ऐसा क्यों कहा? इस तरह माता से बारंबार पूछने पर उसने अपने पुत्र से कहा-बेटा! तुम जिस समय मेरी कुक्षि में अवतरित हुए थे उसी दिन प्रातः तुम्हारे पिता के पास मैंने वैश्रमण जैसे परम उदार नगर शेठ जिनदत्त श्रेष्ठी को देखा था १। तथा उसी समय वह चाण्डाल, रजक एवं वृश्चिक भी देखे थे। इस तरह इन पांचों के देखने से तुम इन के संस्कारों से युक्त उत्पन्न हुए हो। रोहक ने तुम्हें देखकर इसी लिये ऐसा कहा है। माता की इस बात को सुनकर राजा

અને એકાન્ત જોઈને પૂછ્યું-"હે માતા હું કેટલા પિતાનો પુત્ર છું?" માએ સાંભળીને કહ્યું, "તેમાં પૂછવા જેવું જ શું છે? તું તારા પિતાનો જ પુત્ર છે." ત્યાર બાદ રાજાએ પોતાની માતાને રોહકની વાતથી પરિચિત કરાવીને કહ્યું, "માતા! રોહકની વાતો સામાન્ય રીતે સાચી પડી છે તો તમે સાચે સાચું કહો, રોહકે મને એવું શા માટે કહ્યું હશે?" આ પ્રમાણે તે માતાને વારંવાર પૂછવામાં આવતાં તેમણે પોતાના પુત્રને કહ્યું, "હે બેટા! જે સમયે મારી કુખે તારો જન્મ થયો તે જ દિવસે પ્રાતઃકાળે તારા પિતાની પાસે મેં વૈશ્રવણ જેવા પરમ ઉદાર નગરશેઠ જિનદત્ત શ્રેષ્ઠીને જોયાં હતાં. તથા તે જ સમયે તે ચાંડાલ, ધોબી અને વીંછીને પણ જોયાં હતાં. આ રીતે તે પાંચેને જોવાથી તેમના તે તે સંસ્કાર તારામાં ઉતર્યા છે. રોહકે તને જોઈને તે કારણે જ એવું કહ્યું છે." માતાની આ વાત સાંભળીને રાજાના મનમાં રોહકની બુદ્ધિ માટે ભારે

वासस्थानमगमत्। रोहकं च सर्वेषां मन्त्रिणां मुख्यं मन्त्रिणं कृतवान्।

॥ इति त्रयोदशः पञ्चपितृकदृष्टान्तः ॥ १३॥

औत्पत्तिकी बुद्धेर्वाचनान्तरेणोदाहरणानि प्रदर्शितानि। यथा—'भरहसिल पणियरुक्खे०' इत्यादि। तत्र-'भरतशिलानामकः प्रथमो दृष्टान्तः पूर्वोक्तवद् बोध्यः॥

अथ द्वितीयः पणितदृष्टान्त उच्यते—कश्चिद् ग्रामीणः कृषीवलः स्वग्रामाच्चिर्भिटिका आनीय विक्रेतुं नगरद्वारे वर्तते, तं प्रति धूर्तो नागरिकः प्राह-किमेको मनुष्यस्तव सर्वाश्चिर्भिटिका भक्षयितुं न प्रभवति ?। ग्रामीणः प्राह-क एवं समर्थः स्यात्, य एताश्चिर्भिटिका भक्षयेत्। नागरिक आह-यद्यहं भक्षयामि, तर्हि किं मे

के चित्तमें रोहक की बुद्धि के प्रति बडा अचंभा हुआ और माता को नमस्कार की इस चतुराई को देखकर राजा ने उसको अपने यहां प्रधान-मंत्री के पद पर रखलिया १३ ॥

यह तेरहवां पंचपितृकदृष्टान्त हुआ ॥ १३॥

औत्पत्तिकी बुद्धि के ऊपर अन्य वाचनाओं के अनुसार दृष्टान्त इस प्रकार हैं-" भर हसिल पणियरुक्खे० " इत्यादि।

इनमें भरतशिला नामका प्रथम उदाहरण जैसा पूर्वमें लिखा गया है वैसा जानना चाहिये १। पणित दृष्टान्त इस प्रकार है—

कोई एक ग्रामोण कृषीवल बहुत से चीभडों को भर कर बेचने के लिये नगर के द्वार पर आया। यह देखकर एक नागरिक धूर्तने उसको कहा-क्या एक मनुष्य तुम्हारे इन चीभडों को नहीं खा सकता है? कृषी-

અચરજ થઈ અને માતાને નમન કરીને તે પોતાને સ્થાને ચાલ્યો ગયો. રોહકની આ ચતુરાઈ જોઇને રાજાએ તેને પોતાને ત્યાં વડા પ્રધાન પદે રાખી લીધો.

॥ આ તેરમું પંચપિતૃક દૃષ્ટાંત સમાપ્ત ॥ ૧૩ ॥

ઔત્પત્તિકી બુદ્ધિના વિષયમાં બીજી વાચનાઓ પ્રમાણે આ પ્રકારનાં દૃષ્ટાંત છે-" भर हसिल पणिय रुक्खे० " ઇત્યાદિ-

તેમાં ભરતશિલા નામનું પહેલું ઉદાહરણ જે રીતે પાછળ લખેલ છે તે પ્રમાણે જ સમજી લેવાનું છે (૧). પણિત દૃષ્ટાંત આ પ્રમાણે છે-

કોઈ એક ગામડાનો ખેડૂત ઘણાં ચિભડાં લઈને વેચવાને માટે નગરના દરવાજા પાસે આવ્યો. તે જોઈને નગરના એક ધૂતારાએ તેને કહ્યું "શું એક માણસ તારાં આ ચિભડાંઓને ખાઈ શકતો નથી?" ખેડૂતે કહ્યું, "હા, નથી

प्रयच्छसि । इदमसंभवं मत्वा ग्रामीण आह यदि भक्षयिष्यसि, तर्हि यादृशो मोद-कोऽनेन द्वारेण प्रविष्टो न स्यात् एवं भूतं मोदकं तुभ्यं पारितोषिकं दास्यामि। तदा तावुभौ कंचित् साक्षिणं कृत्वा प्रतिज्ञां कृतवन्तौ । ततोऽसौ नागरिकस्तस्य सकलाश्चिर्भिटिका उच्छिष्टाः कृत्वा त्यजति । ततः पश्चान्नागरिको वदति-मया सकलाश्चिर्भिटिका भक्षिताः, अतः स्वप्रतिज्ञाऽनुसारेण तथाविधं महामोदकं मह्यं प्रयच्छ । ग्रामीणः प्राह—त्वया मम चिर्भिटिका न भक्षिताः, कथं ते महामोदकं दास्यामि । नागरिकः— मया सर्वाश्चिर्भिटिका भक्षिता इति न मन्यसे चेत् तर्हि तव

बलने कहा-हां नहीं खा सकता है। नागरिक धूर्त ने कहा-यदि खा जाय तो? कृषीबल ने कहा कौन ऐसा समर्थ व्यक्ति है?। नागरिक धूर्तने कहा मैं हुं। बोलो मैं यदि इन्हें खा जाऊ तो क्या इनाम दोगे। नागरिक के इस कथन का असंभव मानकर ग्रामीण ने कहा-यदि खाजाओ तो मैं तुम्हें इनाममें इतना बडा लड्डु दुंगा जो इस दरुवाजेमें नहीं घुस सकेगा इस तरह उन दोनों ने किसी एक व्यक्ति को अपनी २ प्रतिज्ञा के विष-यमें साक्षीभूत बना लिया। अब उस नागरिक ने उस किसान के वे समस्त चीभडे थोडा २ खाकर झुंठे कर दिये और एक तरफ चीभड़ों को खालिया है इसलिये तुम अपनी शर्त के अनुसार मुझे मोदक दो। ग्रामीण ने कहा-क्यों दूं-तुमने समस्त चीभडे खाये कहां हैं। खाने पर ही तो मोदक देने की शर्त हैं। नागरिक ने कहा वाह! भाई! वाह! कौन कहता है कि मैंने तुम्हारे समस्त चीभडे नहीं खाये हैं। यदि यह

ખાઇ શકતો." નગરના ધૂતારાએ કહ્યું, જો ખાઇ જાય તો?" ખેડૂતે કહ્યું "એમ કરવાને સમર્થ વ્યક્તિ કોણ છે?" નાગરીક ધૂતારે કહ્યું, "હું પોતે જ છું. જો હું આ બધાં ચિભડાં ખાઈ જઉં તો મને શું ઇનામ આપીશ?" ધૂતારાની આ વાતને અસંભવિત માનીને ગામડીયાએ કહ્યુ, "જો તમે ખાઇ જાઓ તો તમને હું ઇનામમાં એવડો મોટો લાડુ આપીશ જે આ દરવાજામા પેસી શકશે નહીં." આ રીતે તે બન્નેએ કોઇ એક વ્યક્તિને પોત પોતાની પ્રતિજ્ઞાનો સાક્ષી બનાવ્યો. હવે તે ધૂતારાએ તે ખેડૂતના બધા ચિભડાંને થોડાં થોડાં ખાઈને એંઠાં કરી નાખ્યાં. અને એક તરફ મુકી દીધા. તે કહેવા લાગ્યો, "જો ખેડૂત! મે તારા બધા ચિભડા ખાઈ લીધા તેથી તું તારી શરત પ્રમાણે નો લાડુ મને આપ." ગામડીયાએ કહ્યું "શા માટે આપુ? તમે બધાં ચિભડા ખાધાં નથી. ખાધાપછી તો લાડું આપવાની શરત છે" ધૂતારાએ કહ્યું, "વાહ! ભાઈ, વાહ! કોણ કહે છે કે મેં તારાં બધાં ચિભડાં ખાધા નથી? જો તને

विश्वासमुत्पादयामि। तेनोक्तम्-विश्वासमुत्पादय । नागरिकेणोक्तम्-चिर्भिटिका विपणिवीथ्यां विक्रयार्थं विस्तीर्य परीक्ष्यताम्। ग्रामीणेन तद् वचः स्वीकृतम्। ततो द्वाभ्यामपि विपणिवीथ्यां विक्रयार्थं चिर्भिटिका विस्तारिताः। ग्राहकाः समागताः। तैरुक्तम्-एताः सर्वा अपि चिर्भिटिका भक्षिता एव सन्ति एव मुक्ते सति नागरिकः प्राह—लोकानां वाक्यैर्विश्वासः क्रियताम्। नागरिक वचनं श्रुत्वा ग्रामीणः क्षुब्धो भूत्वा चिन्तयति—कथं मयाऽनेन द्वारेणाऽगम्यो महामोदकः प्रदेयः इति चिन्तया व्याकुलो भूतः स ग्रामीणस्तस्मान्नागरिक धूर्तादात्मानं मोचयितुं भीतः सन्नेकं रूप्यकं दातुमुद्यतोऽभवत् किं तु तेनधूर्तेन रूप्यकं न गृहीतम्। अन्ते स

बात तुम्हें मंजूर नहीं है तों तुम ऐसा करो इन्हें वेचने के लिये बाजारमें ले चलो फिर देखो तुम्हें यह विश्वास हो जावेगा कि मैंने तुम्हारे ये समस्त चीभडे खाये हैं या नहीं। कृषीबल ने नागरिक धूर्त की इस बात कों मान लिया। अब क्या था वे दोनों वहां से उन चीभडों को लेकर बाजारमें आये, और वहां उन्हें रख कर वे बेचने लगे। ग्राहकों ने वहां आकर ऐसा कहना प्रारंभकरदिया कि ये समस्त चीभडे तो खाये हुए है। ऐसा कहते ही नागरिक धूर्तने उस किसान से कहा देखों भाई ये सब लोग क्या कह रहे हैं? अब तो तुम विश्वास करो। नागरिक के इन वचनों को सुनकर ग्रामीण कृषक क्षुब्ध हो उठा और सोचने लगा इतना बडा मोदक में इसे कहां से लाकर दूं। ईस प्रकार की चिन्ता से व्याकुल होकर उस कृषीबल ने उस धूर्त से अपना बचाव करने के

એ વાત મંજૂર ન હોય તો તું તેને વેચવા માટે બજારમાં લઇ જા પછી જોજે તને ખાતરી થશે કે મેં તારાં આ બધાં ચિભડાં ખાધાં છે કે નહીં? ખેડૂતે નાગરિક ધૂતારાની તે વાત માન્ય કરી. હવે તેઓ બન્ને તે ચિભડાંને લઇને બજારમાં આવ્યા, અને ત્યાં તેને મૂકીને વેચવા લાગ્યા. ગ્રાહકોએ ત્યાં આવીને એવું કહેવા માંડયું કે આ બધાં ચિભડાં તો કોઈએ ખાધેલાં છે. એવું સાંભળતાં જ તે ધૂતારાએ તે ખેડૂતને કહ્યું, "જો ભાઈ! આ બધા લોકો શુ કહે છે? હવે તો તને ખાતરી થઈને?" ધૂતારાનાં એ વચનો સાંભળીને તે ગામડીયો ખેડૂત ક્ષોભ પામ્યો અને તે વિચારવા લાગ્યો "એવડો મોટો લાડવો હું આ માણસને કયાંથી લાવીને આપું?" આ પ્રકારની ચિન્તાથી વ્યાકુળ થઈને તે ખેડૂતે તે ધૂતારાથી પોતાનો બચાવ કરવા માટે કહ્યું, "ભાઈ, તમે

ग्रामीणः शतं रूप्यकाणि दातुं प्रवृत्तः किंतु तदधिकं लिप्सुना तेन धूर्तेन शतं ग्रहीतुं न स्वीकृतम् ततोऽसौ ग्रामीणश्चिन्तयति-हस्ती हस्तिनैवापनेयो भवति, अयं नागरिकः केनचिदन्येन नागरिकधूर्तेनैव समाधेयो भविष्यतीत्यनेन सह कतिपयदिनानि व्यवस्थां कृत्वा नागरिक धूर्तैः सह मिलिष्यामि। इति विचिन्त्य तथैव कृतम्। केनचिदन्येन नागरिक धूर्तेन तस्मै ग्रामीणाय बुद्धिः प्रदत्ता। ततस्तद्बुद्धिवलेन पूपिकाऽऽपणत एकं महामोदकमादाय ग्रामीणेन प्रतिद्वन्द्वी धूर्त आकारितः, साक्षि-

लिये कहा-भाई! तुम मुझ से इसके बदलेमें एक रुपया ले लो। परन्तु उस धूर्त ने इस बात को कबूल नहीं किया। अन्तमें होते २ उस कृषक ने उसे सौ रुपये तक देने को कहा, परन्तु अधिक लेने की चाहना से उसने उन्हें लेना भी मंजूर नहीं किया। "ग्रामीण ने बिचारा" बडी मुश्किल की बात है अब क्या किया जाय? खैर-"हाथी हाथी से ही हठता है" ईस कहावत के अनुसार यह धूर्त किसी दूसरे नागरिक धूर्त से ही समझाया जा सकता है। ऐसा सोचकर उसने उस धूर्त से कहा कि भाई तुम कूछ समय तक अब ठहर जाओ, जो तुम मांगोगे सो दूंगा। ऐसा विचार कर वह किसी और दुसरे नागरिक धूर्त के साथ मिल गया। अब क्या था-उस ग्रामीण कृषक के लिये दुसरे धूर्तने बुद्धि दी। उस बुद्धिबल से वह हलवाई की दुकान से एक वडासा मोदक ले आया, और उस प्रति द्वन्द्वी धूर्त के पास आ पहुंचा, तथा इस शर्तमें जो पहिले के साथी थे उन्हें भी बुला लिया। उन सब के सामने उसने उस

તેના બદલામાં મારી પાસેથી એક રૂપીયો લો." પણ તે ધૂતારાએ તેની તે વાત મંજૂર ન કરી. છેવટે વધતાં વધતાં તે ખેડૂતે તેને સો રૂપીયા આપવાનું કહ્યું. પણ વધારે મેળવવાની ઇચ્છાથી તેણે તે રકમ લેવાની ના પાડી. "ગામડીયાએ વિચાર્યું" ભારે મુશ્કેલી ઉભી થઇ છે. હવે શું કરૂં? ખેર! "હાથીને હાથી જ ખસેડી શકે છે." આ કહેવત પ્રમાણે આ ધુતારાને કોઈ બીજા નાગરિક ધૂતારા વડે જ સમજાવી શકાશે." એમ વિચારીને તેણે તે ધૂતારાને કહ્યુ, "તમે થોડી વાર અહીં થોભો, તમે જે માગશો તે આપીશ." આવો વિચાર કરીને તે શહેરના કોઈ બીજા ધૂતારાને જઈને મળ્યો. હવે શું થયું? તે ગામડીયા ખેડૂતને બીજા ધૂતારાએ બુદ્ધિ આપી (યુક્તિ બતાવી) તે બુદ્ધિબળે તે એક કંદોઈની દુકાનેથી મોટો એવો લાડુ લઈ આવ્યો. અને તે પ્રતિસ્પર્ધિ ધુતારાની પાસે આવી પહોંચ્યો અને શરતનો જે સાક્ષી હતો તેને પણ બોલાવી લીધો. એ બધાની સામે તેણે લાડુને દરવાજાની એક તરફ

णोऽप्याकारिताः। ततो ग्रामीणेन साक्षिणां समक्षे स महामोदकः कस्मिंश्चिदिन्द्रकीलके (नगरद्वारैकदेशे) स्थापितः कथितश्च रे मोदक! गम्यताम्, गम्यताम्। ततोऽसौ मोदको न चलति। ततस्तेन ग्रामीणेन साक्षिणां समीपे कथितम्—मया युष्मत्समीपे एवं प्रतिज्ञातम्, यद्यहं पराजितो भविष्यामि, तदा नगर द्वारेण यो न निर्गच्छति स महामोदको मया प्रदेयः, अयमपि मोदको न गच्छति, तस्मादहं स्वप्रतिज्ञाबन्धान्मुक्तो जातः। एतच्च साक्षिभिरन्यैश्च नागरिकैः प्रतिपन्नमिति स प्रतिद्वन्द्वीधूर्तः पराजितः इतीयं नागरिकधूर्तस्यौत्पत्तिकीबुद्धिर्द्वितीयः पणितदृष्टान्तः ॥ २ ॥

इतिद्वितीयः पणितदृष्टान्तः

अथ तृतीयो वृक्षदृष्टान्तः—

आम्रफलाभिलाषिणां पथिकानां क्वचिद्वने मर्कटा अन्तरायं कृतवन्तः। ततः पथिकास्तेषामाम्रफलानामाप्ते रुपायं विचिन्त्य तदुपरि पाषाणखण्डैः प्रहारं कृतवन्तः।

मोदक को दरवाजे की एक ओर रखा दिया और कहना प्रारंभ किया कि ओ मोदक? जा-जा। परन्तु यह मोदक उस स्थान से चल विचल नहीं हुआ। तब ग्रामीणने साक्षियों के सामने ऐसा कहा कि मैंने आप लोगों के सामने ऐसी प्रतिज्ञा की थी कि यदि मैं हार जाऊंगा तो इस नगर के द्वार से जो नहीं निकलेगा ऐसा बडा मोदक दूंगा। सो यह मोदक यहां से नहीं चलता है अतः आप इसे ले लीजिये। अब मैं अपनी प्रतिज्ञा से मुक्त होता हूं। उसके इस कथन की सराहना साक्षियों ने तथा अन्य नागरिको ने भी की और उसकी बात को स्वीकार भी किया इस तरह उस कृषीबल ने औत्पत्ति की बुद्धि के प्रभाव से उस नागरिक धूर्त कों परास्तकर अपने घर गया॥ २॥

यह दुसरा पणितदृष्टान्त हुआ ॥२॥

મૂકયો અને કહેવા લાગ્યો, "હે લાડુ! જા! જા! પણુ તે લાડુ તે જગ્યાએથી ખસ્યો નહીં. ત્યારે ગામડીયાએ સાક્ષીઓની સામે એવું કહ્યું કે "મેં આપ લોકોની આગળ એવી પ્રતિજ્ઞા કરી હતી કે જો હું હારીશ તો આ નગરના દરવાજામાંથી નહીં નીકળે તેવો મોટો લાડુ આપીશ, તો આ લાડુ અહીંથી ચાલતો નથી. તો આપ તેને લઇ લો. હવે હું મારી પ્રતિજ્ઞાથી મુક્ત થયો છું" તેના આ કથનની સાક્ષીઓએ તથા બીજા નાગરીકોએ પણુ પ્રશંસા કરી. અને તેની વાતને માન્ય પણુ કરી. આ રીતે તે ખેડૂતે ઔત્પત્તિકી બુદ્ધિના પ્રભાવથી તે નાગરીક ધુતારાને પરાસ્ત કર્યો અને તે પોતાને ઘેર ગયો. ॥૨॥

આ બીજું પણિત દૃષ્ટાંત સમાપ્ત ॥૨॥

मर्कटा अपि क्रोधवशात् पथिकान् प्रतिहन्तुमाम्रवृक्षोपरिसमारुह्याम्रफलानि त्रोटयित्वा पथिकोपरिप्रहरन्तिस्म । एवं पथिकानां स्वाभीष्टसिद्धिरनायासतः संजाता ।

इति तृतीयो वृक्षदृष्टान्तः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थः क्षुल्लकदृष्टान्तः—

प्रायः सार्धसहस्रद्वयं वर्षाणि पूर्वं राजगृहनगरे प्रसेनजित नामा नृप आसीत्।

तीसरा वृक्ष दृष्टान्त-

एक वनमें अनेक आम के वृक्ष थे। वहीं पर बन्दर भी बहुत सें रहा करते थे। ऋतु के समय जब उन वृक्षोंमें फल लग आते तो वहां से निकल ने वाले रास्तागिरों का मन उन फलों को तोड़कर खाने के लिये लालायित होंने लगता, परन्तु करें क्या? क्यों कि उन पर बन्दर रहते थे इसलिये रास्तागीर उन फलों को नहीं खा सकते थे। फिर अंतमें वे अपने बुद्धिबल से फल प्राप्त करने का उपाय सोचकर पत्थरों के ढेलों से बन्दरों की तरफ फेंकने लगे। तब वे बन्दर इस स्थितिमें उन वृक्षों के फलों को तोड २ कर उन रास्तागिरों पर प्रहार करनेकी भावनासे फल फेंकने लगे इससे रास्ना गिरो को अनायास ही आम्रफल खानेको मिल गये ॥ ३ ॥

॥ यह तीसरा वृक्षदृष्टान्त हुआ ॥ ३॥

चौथा क्षुल्लकदृष्टान्त-

प्रायः ढाईहजार वर्ष पहिले की यह कथा है-जब कि प्रसेनजित नाम

ત્રીજુ વૃક્ષદષ્ટાંત—

એક વનમાં આંબાનાં અનેક વૃક્ષ હતાં. તેના ઉપર ઘણા વાનરા રહેતા હતા. ફળ પાકવાની મોસમમાં તે વૃક્ષો પર ફળો લાગતાં, તો તેમને જોઈ ને ત્યાંથી પ્રસાર થતા મુસાફરોનું મન તે ફળોને તોડીને ખાવા માટે લલચાતું, હતુ, પણ કરે શું? કારણ કે તે વૃક્ષો ઉપર વાનરા રહેતા હતા તેથી રાહગીરો તે ફળો ખાઇ શકતા નહીં. પછી તેમણે પોતાની બુદ્ધિથી ફળ મેળવવાની યુક્તિ શોધી કાઢી. તેઓ વાનરાઓને પથ્થર મારવા લાગ્યાં, ત્યારે વાનરાઓ તે વૃક્ષોનાં ફળો તોડી તોડીને તે રાહગીરોને મારવાની ભાવનાથી ફેંકવા લાગ્યા. આ રીતે રાહગીરોને અનાયાસે જ કેરી ખાવાને મળી ગઈ.

॥ આ ત્રીજું વૃક્ષનું દષ્ટાંત સમાપ્ત ॥૩॥

ચોથું ક્ષુલ્લકદષ્ટાંત-

અઢી હજાર વર્ષ પહેલાંની આ કથા છે, જ્યારે પ્રસેનજિત નામનો રાજા

तस्य बहवः पुत्रा आसन्। तत्रैकः श्रेणिक एव राजलक्षणसम्पन्नः पुत्रस्तस्य संमतः। अत एव राजा तस्मै न किंचिदपि ददाति, न च वचसाऽपि लालनं वा क्रियते, तदाऽन्ये मम पुत्रा ईर्ष्यावशात् श्रेणिकं हनिष्यन्तीति। इत्थं विचिन्त्य स मनसैव सावधानस्तद्रक्षणपरायण आसीत्।

अथैकदा श्रेणिकः पितुः किंचिदप्यलभमानः सखेदः स्वभवनात् प्रस्थितः। स च पथिगच्छन् क्रमेण वेन्नातटनामके नगरे गतः। तत्रासौ श्रेणिकः धन्यनामकस्य श्रेष्ठिनो विपणौ समुपविष्टः तेन च श्रेष्ठिना तस्यामेव रात्रौ स्वप्ने सर्वगुण-

का राजा राजगृह नगरमें राज्य शासन करता था। उस के अनेक पुत्र थे। उनमें श्रेणिक नाम का पुत्र ही ऐसा था जो राजलक्षणों से संपन्न होने के कारण उसको अधिक प्रिय था परन्तु यह उसका प्रेम अन्य पुत्रों पर प्रकट नहीं हो पाता, कारण राजा न तो उसके लिये कुछ देता और न कभी प्रेमपूर्वक उससे बोलता ही था ऐसा भी वह इसलिये नहीं करता था कि ऐसा करने से अन्य पुत्रों के हृदयमें दाह होगी और इससे वे इसको मार डालेंगे। फिर भी मनमें यह ध्यान सदा रखता कि श्रेणिक की रक्षामें किसी भी प्रकार त्रुटि न रहे।

एकदिन की बात है कि श्रेणिक अपने पिता के पास से कुछ भी जब नहीं पाया तो खेदखिन्न होकर वह अपने भवन से बाहर जानेके लिये निकल पडा। चलते २ वह वेंन्नातट नाम के किसी एक नगरमें जा पहुँचा। वहां एक धन्य नाम के सेठ रहते थे। इनके यहां दुकानदारी का काम

રાજગૃહ નગરમાં રાજ્ય કરતો હતો. તેને અનેક પુત્ર હતા. તે બધામાં શ્રેણિક નામનો પુત્ર જ એવો હતો કે જે રાજલક્ષણોથી યુક્ત હોવાને કારણે તેને વધારે પ્રિય હતો, પરન્તુ તેનો તે પ્રેમ બીજાં પુત્રોના જાણવામાં આવતો નહીં, કારણ કે રાજા તેને માટે કંઇ આપતો પણ નહીં અને તેની સાથે પ્રેમથી બોલતો પણ નહીં. એવું પણ તે તેને માટે કરતો ન હતો કે એવું કરવાથી બીજાં પુત્રોના મનમાં ઈર્ષા થાય અને તેઓ તેને મારી નાખે તો પણ તેના મનમાં તે ચિન્તા હંમેશા રહેતી હતી કે શ્રેણિકની રક્ષામાં કોઈ ત્રુટિ રહેવી જોઈએ નહીં.

એક દિવસની વાત છે કે શ્રેણિકને પોતાના પિતા પાસેથી કંઈ પણ નહીં મળવાથી તે ગમગીન થઇને પોતાના મહેલમાંથી બહાર જવા નીકળી પડ્યો. ચાલતો ચાલતો તે વેન્નાતટ નામનાં કોઈ એક નગરમાં જઇ પહોંચ્યો ત્યાં ધન્ય નામનો એક શેઠ રહેતો હતો. તેની દુકાન ચાલતી હતી. નગરમાં

सम्पन्नः कुमारो निजदुहितरं परिणयन् दृष्टः। तस्य श्रेष्ठिनः श्रेणिकपुण्यप्रभावात् तस्मिन् दिने चिरसंचितप्रचुरद्रव्यविक्रयेण महान् लाभो जातः। म्लेच्छहस्ताच्च महारत्नानि स्वल्पमूल्येन लब्धानि। ततः सोऽचिन्तयत्—अस्य ममान्तिकमुपागतस्यायं पुण्यप्रभावः, यन्मयाऽद्य महती संपत्तिः प्राप्ता। ततः स श्रेष्ठी श्रेणिकस्याकृतिमतिमनोहरामालोक्य स्वचेतसि विचारयति—अयमेवकुमारः स्वप्ने मया रात्रौ दृष्टः। ततोऽसौ श्रेष्ठी कृताञ्जली संपुटः सविनयं श्रेणिकं प्रोक्तवान्—कस्य यूय प्राघूर्णिकाः?।

होता था। नगरमें पहूंचते ही श्रेणिक इनकी दुकान पर जाकर बैठ गया। इस सेठने उसी रात्रिमें एक ऐसा स्वप्न देखा था कि मेरी पुत्री का वैवाहिक संबंध किसी सर्वगुणसंपन्न कुमार के साथ हो गया है। श्रेणिक के पुण्य प्रभाव से उस दिन सेठ को बहुत दिनों का संचित सामान बिक जाने से बडा लाभ हुआ, तथा किसी म्लेच्छ के पास से उन्हें उसी दिन बहुमूल्य रत्न भी अल्पमूल्यमें मिल गये, इसलिये उसने विचारा कि–यह सब आज का लाभ मेरे पास आये हुए इस व्यक्ति के ही प्रभाव का फल है। जो लाभ इस दुकानमें आजतक मुझे नहीं प्राप्त हुआ वह इतना अधिक आज मुझे मिला है, इसमें इसके सिवाय और क्या कारण हो सकता है। इस तरह के विचार करने के साथ २ उसने यह भी विचार किया कि यह लड़का आकृति से कितना अधिक सुन्दर है जो देखने वालों के मन को अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है। मालूम पडता है जिस सुन्दर कुमार को मैंने स्वप्नमें देखा है वह यही है। इस तरह अपनी विचार धारामें मग्न हुए श्रेष्ठीने कुमार को विनयावनत

પહોંચીને શ્રેણિક તેમની દુકાને જઈ ને બેસી ગયો. તે શેઠે તે જ રાત્રે એક એવું સ્વપ્નું જોયું હતું કે મારી પુત્રીનો વિવાહ કોઇ સર્વગુણસંપન્ન કુમારની સાથે થઈ ગયો. શ્રેણિકના પૂન્યપ્રભાવે તે દિવસે શેઠને ઘણા દિવસથી સંગ્રહ કરેલ માલ વેચાઈ ગયો, તથા કોઇ મ્લેચ્છની પાસેથી તેને ઘણું કીમતી રત્ન એ જ દિવસે થોડી કીમતમાં મળી ગયું, તેથી તેણે માન્યું કે આજનો આ બધો લાભ મારી પાસે આવેલ આ વ્યક્તિના પ્રભાવે જ મળ્યો છે. આજ સુધી આ દુકાનમાં જેટલો લાભ થયો નથી એટલો લાભ આજે મને મળ્યો છે, તેનું આ વ્યક્તિ સિવાય બીજું શું કારણ સંભવી શકે? આ પ્રમાણે વિચાર કરતાં કરતાં તેને એ પણ વિચાર થયો કે આ છોકરો દેખાવમાં કેટલો બધો સુંદર છે જે જોનારના મનને તેના તરફ આકર્ષે છે. જે સુંદર કુમાર મેં સ્વપ્નામાં જોયો હતો તે આ કુમાર જ હોવો જોઇએ એમ લાગે છે. આ પ્રમાણે વિચારધારામાં લીન થયેલ તે શેઠે તે કુમારને વિનયપૂર્વક પૂછ્યું

श्रेणिक आह–भवतः। ततः श्रेष्ठी श्रेणिकवचनश्रवणतो वर्षाऽऽहतकदम्बकुसुममिव पुलकितसमस्तदेहः श्रेणिकं सबहुमानं स्वगृहं नीतवान्। भोजनादिकं सकलमपि तदुचितं तस्मै प्रदत्तम्। तस्य पुण्यप्रभावात् प्रतिदिवसं मम संपत्तिवर्धमानाऽस्तीति मन्वानः स श्रेष्ठी कतिपयदिनातिक्रमे तस्मै नन्दा नाम्नीं स्वदुहितरं प्रदत्तवान्। व्यतीतेषु कतिपयदिवसेषु नन्दा गर्भवती जाता।

इतश्च प्रसेनजिन्नृपः स्वान्तसमयमुपागतं विचिन्त्य श्रेणिकस्य वार्तां जनपरम्परागतामधिगत्य तदाकारणार्थमुष्ट्रवाहनात् पुरुषान् प्रेषयति। तैश्च श्रेणिकान्तिक

होकर कहा। आप किस के यहां महमान होकर के आये हुए हैं। सुनकर कुमार ने प्रत्युत्तर दिया–आप के यहां। अब क्या था कुमार की इस बात को सुनकर सेठ का समस्त शरीर ऐसा आनंदोल्लास से पुलकित हो उठा जैसा वर्षा के जल से कदम्ब का पुष्प विकसित हो उठता है। वह दुकान से शीघ्र उठा और बड़े आदर के साथ कुमार को अपने घर ले गया। वहां उसने उचित भोजनादि सामग्री से कुमार का खूब आदर सत्कार किया। कुमार जितने दिनों तक उसके घर रहा, उतने दिनों तक सेठ को व्यापार में अच्छा लाभ होता रहा अतः उसको अधिक पुण्यशाली मानकर सेठ ने कुछ दिनों के निकल जाने के बाद अपनी पुत्री नन्दा का विवाह उस कुमार के साथ कर दिया। विवाह हो जाने पर जब कितनेक दिन निकल चुके तो सेठ की पुत्री नन्दा गर्भवती हो गई।

इधर राजगृह नगर में श्रेणिक के निकल जाने के कारण बड़ी खलबली मची। प्रसेनजित राजा ने उसी दिन से उसकी तलाश करवानी

"આપ કોને ત્યાં અતિથિ થઈને આવ્યા છો?" તે સાંભળીને કુમારે જવાબ આપ્યો, "આપને ત્યાં" હવે શું થયું? જેમ વર્ષાકાળે કદમ્બનું ફૂલ વિકસે છે તેમ કુમારનાં આ વચનો સાંભળીને શેઠનું સમસ્ત શરીર આનંદોલ્લાસથી પુલકિત થઇ ગયુ. તેઓ તરતજ દુકાનેથી ઉભા થઈને કુમારને માનપૂર્વક પોતાને ઘેર લઇ ગયા. ત્યાં તેમણે યોગ્ય ભોજનાદિ સામગ્રી વડે કુમારનો ખૂબ આદરસત્કાર કર્યો, કુમાર જેટલા દિવસ ત્યાં રહ્યો એટલા દિવસો સુધી શેઠને વેપારમાં સારો લાભ મળતો રહ્યો. તેથી તેને ઘણો પુન્યશાળી માનીને શેઠ કેટલાક દિવસો વ્યતીત થયા પછી પોતાની પુત્રી નન્દાના લગ્ન તેની સાથે કર્યાં. વિવાહ કર્યા પછી કેટલેક દિવસે શેઠની પુત્રી નંદા ગર્ભવતી થઇ.

હવે રાજગૃહ નગરમાં શ્રેણિકના ચાલ્યા જવાથી ભારે ખળભળાટ મચ્યો પ્રસેનજિત રાજાએ એ જ દિવસથી તેની શોધ કરાવવા માંડી. ધીરે ધીરે સમા-

मागत्य विज्ञापितम्-कुमार! शीघ्रमागम्यताम्, राजा सत्वरमाकारयति। ततः श्रेणिकः पितुर्वचनं शिरोधार्यं मत्वा सगर्भां नन्दां पृष्ट्वा राजपुरुषैः सह राजगृहं नगरं प्रस्थितः। तदा श्रेणिकेन स्वपरिचयप्रदानार्थं नन्दानिवासभवनस्य भित्तौ स्वनामग्रामादिकं लिखितम्। निर्गते श्रेणिके मासत्रये व्यतीते सति नन्दायाश्च देवलोकच्युतमहानुभावगर्भसत्त्व प्रभावादेवं दोहदः समुत्पन्नः-अहं गजोपरि समासीना दीनेभ्यः प्रचुरं द्रव्यदानं ददामि, अमारि घोषणां कारयित्वा-चाभयदानं ददामीति।

प्रारंभ कर दी। धीरे २ पता चला कि श्रेणिक वेन्नातट नगर में धन्यश्रेष्ठी के घर पर है। बडे आनंद के साथ वह उसका जामाता बनकर अपना समय व्यतीत कर रहा है। एक समय की बात है कि प्रसेनजित राजा को जब अपना अन्त समय आ चुका है ऐसा ज्ञात हुआ तो उसने श्रेणिक को बुलाने के लिये अपने यहां के उष्ट्रवाहकों को उसके पास भेजा। वे वहां पहुँचकर कहने लगे-कुमार! आप शीघ्र घर चलिये, राजा ने आप को बहुत जल्दी बुलाया है। उन उष्ट्रवाहकों की इस बात को सुनकर एवं पिता के आज्ञारूप वचनों को शिरोधार्य मानकर श्रेणिकने सगर्भा नंदा को वहीं पर छोडकर उन लोगों के साथ २ वहां से राजगृह की तरफ प्रस्थान कर दिया। श्रेणिक जिस समय वहां से प्रस्थित हुआ था उस समय उसने अपना ग्राम आदि का समय परिचय नंदा के निवास भवन की भित्ति पर लिख दिया था। श्रेणिक को गये हुए जब तीन मास व्यतीत हो चुके तब देवलोक से च्युत होकर गर्भ में आये हुए महाप्रभावशाली बालक के प्रभाव से नंदा को दोहद उत्पन्न

ચાર મળ્યા કે શ્રેણિક વેન્નાતટ નગરમાં ધન્ય શેઠને ઘેર રહે છે, અને તેમનો જમાઇ થઈને ઘણા આનંદમાં પોતાનો સમય વ્યતીત કરે છે. એક દિવસની વાત છે કે જ્યારે પ્રસેનજિત રાજાને પોતાનો અન્તકાળ નજિક છે તેમ લાગ્યું, ત્યારે તેમણે શ્રેણિકને બોલાવવા માટે પોતાને ત્યાંથી ઊંટવાહકોને તેની પાસે મોકલ્યા. તેમણે ત્યાં જઇને કહ્યું, "કુમાર! આપ જલદી ઘેર આવો, રાજાએ આપને ઘણા જલદી બોલાવ્યા છે." તે ઊંટવાહકોની આ વાત સાંભળીને અને પિતાની આજ્ઞાને માથે ચડાવીને, શ્રેણિક સગર્ભા નન્દાને ત્યાં જ મૂકીને તે લોકોની સાથે જ રાજગૃહ જવા ઉપડયો. શ્રેણિક જ્યારે ત્યાંથી રવાના થયો ત્યારે તેણે પોતાના ગામ આદિનો બધો પરિચય નંદાના નિવાસસ્થાનની દિવાલ પર લખી દીધો હતો. જ્યારે શ્રેણિકને ત્યાંથી ગયે ત્રણ માસ પસાર થયા ત્યારે દેવલોકમાંથી ચ્યવીને ગર્ભમાં આવેલ મહાપ્રભાવશાળી બાળકને પ્રભાવે નંદાને એવો દોહદ ઉત્પન્ન થયો કે હું હાથી પર સવાર થઇને ગરીબ લોકોને પુષ્કળ દાન

नन्दायाः पिता तद्दोहदं विज्ञाय वेन्नातटनगराधीशस्य राज्ञोऽनुमतिमादाय दोहदं पूरितवान्। कालक्रमेणप्रसवसमये समागते तस्याः प्रातः सूर्यमण्डलमिव दिशः प्रकाशयन् पुत्रः समुत्पन्नः। द्वादशे दिवसे धन्यश्रेष्ठिना दोहदानुसारेण 'अभयकुमार' इति तन्नामकृतम्। अभयकुमारोऽपि नन्दनवने कल्पतरुरिवसुखेन वर्धते। तेन यथा समयं सकलाऽपि कला गृहीता।

हुआ कि मैं हाथी के ऊपर बैठकर दीनजनों को प्रचुर द्रव्य दान करूँ, और अमारि घोषणा द्वारा जीवों को अभयदान दूँ। नंदा के पिता ने अपनी पुत्री के इस दोहद को जानकर उसकी पूर्ति की आज्ञा वेन्नातट नगर के राजा से लेकर दान पुण्यपूर्वक अमारि घोषणा द्वारा जीवों को अभयदान देकर अपनी पुत्री के दोहद की पूर्ति की। नंदा का धीरे २ गर्भ का समय व्यतीत होने लगा। कालक्रम से उसके नौ मास साढे सात रात्रि बीतने पर दशों दिशाओं को प्रकाशित करने वाले प्रातः कालिक सूर्यमण्डल के समान अपनी प्रभा से दिशाओं को प्रकाशित करते हुए एक महातेजस्वी पुत्र का जन्म हुआ। बारह दिन के बाद धन्य श्रेष्ठी ने दोहक के अनुसार अर्थात् गर्भ में अभयदानका भावना होनेसे उस नवीन बालक का नाम अभयकुमार रखा। नंदनवन में जिस तरह कल्पवृक्ष वृद्धिंगत होता है उसी प्रकार अभयकुमार भी अपने नाना के यहां सुखपूर्वक बढने लगा। क्रमशः जैसा २ यह कुमार बढता गया वैसे २ वह अनेकविध कलाएँ भी सीखता गया। इस तरह धीरे धीरे २ सकलकलाओं में वह पारंगत हो गया।

આપું અને અમારિઘોષણા દ્વારા જીવોને અભયદાન આપું. નંદાના પિતાએ પોતાની પુત્રીના આ દોહદને જાણીને તે પૂરો કરવા માટે વેન્નાતટ નગરના રાજાની આજ્ઞા લઈને દાન પુન્ય સહિત અમારિઘોષણા દ્વારા જીવોને અભયદાન દઈને પોતાની પુત્રીનો દોહદ પૂરો કર્યો. નંદાના ગર્ભનો સમય ધીમે ધીમે વ્યતીત થવા લાગ્યો કાલક્રમે નવ માસ અને સાડાસાત રાત્રિ પસાર થતાં તેણે દસે દિશાઓને પ્રકાશિત કરનાર પ્રાતઃકાળના સૂર્યમંડળ જેવાં, પોતાના તેજથી દિશાઓને પ્રકાશિત કરતા એક મહાતેજસ્વી પુત્રને જન્મ આપ્યો. બાર દિવસ પછી ધન્યશેઠે અભયદાનના દોહદ અનુસાર તે નવાગત બાળકનું નામ અભયકુમાર રાખ્યું. નંદનવનમાં જેમ કલ્પવૃક્ષ વધે છે તેમ અભયકુમાર પણ પોતાના દાદાને ત્યાં સુખપૂર્વક મોટો થવા લાગ્યો, જેમ જેમ તે મોટો થતો ગયો તેમ તેમ તે અનેક પ્રકારની કળાઓ પણ શીખતો ગયો. આ રીતે ધીરે ધીરે તે સઘળી કળાઓમાં પારંગત થયો.

स चैकदा मातरं पृष्टवान्-मातः! पिता मम कोऽस्ति? स च कुत्र वर्तते?। अभयकुमारस्य वचः श्रुत्वा जननी मूलतः समारभ्य सर्वं वृत्तं तस्मै कथयित्वा श्रेणिक लिखितं परिचयं भित्तौ दर्शयतिस्म। ततो मातुर्वचनात् भित्तिलिखित पठनाच्च पितुः परिचयं ज्ञात्वा स मातरमब्रवीत्-राजगृहेऽस्माभिर्गन्तव्यम्। एवं विचार्य तौ धन्यश्रेष्ठिनमापृच्छ्य राजगृहनगरसमीपे समागतौ। अभयकुमारस्तत्र बहिरुद्याने मातरं निवेश्य पितुर्दर्शनार्थं राजगृहनगरं प्रविष्टः।

तत्र पुरः प्रवेश एव निर्जल कूपतटे समन्तादवस्थितं लोकसमूहं दृष्टवान्।

एक दिन की बात है कि अभयकुमार ने अपनी माता से पूछा कि माताजी-यह तो बताओ कि मेरा पिता कौन है और वे कहां रहते हैं। पुत्र की इस बात से प्रभावित होकर उसकी माता नंदा ने उससे पिता का वृत्तान्त आद्योपान्त उसको सुना दिया, तथा उनका भित्तिपर लिखित पता भी उसको बतला दिया माता से कहने से तथा भित्तिपर लिखे हुए परिचय के देखने से अभयकुमार ने जब अपने पिता का परिचय पा लिया तो वह बाद में अपनी मां से कहने लगा-माता! चलो-हम तुम दोनों राजगृहनगर चलें। विचार निश्चित हो चुकने के बाद वे दोनों धन्य श्रेष्ठी को पूछकर वहां से चले, और चलते २ राजगृह के पास आगये। अभयकुमार बाहिर के बगीचे में माता को रखकर स्वयं पितासे मिलने के लिये राजगृह नगर में जाने लगा। वहां उसने लोगों का एक समूह देखा जो निर्जल कुए को सब तरफ से घेर कर खडा था।

એક દિવસ અભયકુમારે તેની માતાને પૂછ્યું. "માતાજી! એ તો બતાવો કે મારા પિતાજી કોણ છે અને ક્યાં રહે છે?" પુત્રની આ વાતથી પ્રભાવિત થઈને તેની માતા નન્દાએ આદિથી અન્ત સુધીનું તેના પિતાનું વૃત્તાંત તેને સંભળાવ્યું, અને દિવાલ પર લખેલ તેમનું ઠેકાણું પણ તેને બતાવ્યું. માતાના કહેવાથી તથા દિવાલ પર લખેલ પરિચય જોઈને જ્યારે અભયકુમારને તેના પિતાનો પરિચય મળ્યો ત્યારે તે તેની માને કહેવા લાગ્યો, "માતા! ચાલો, આપણે બન્ને રાજગૃહ નગરમાં જઈએ." ચોક્કસ નિર્ણય થતાં ધન્ય શ્રેષ્ઠીને પૂછીને તેઓ બન્ને રાજગૃહ જવાને ઊપડ્યાં, અને ચાલતાં ચાલતાં રાજગૃહની પાસે આવી ગયાં. અભયકુમાર બહાર બગીચામાં માતાને મૂકીને પોતે પિતાને મળવા માટે રાજગૃહ નગરમાં જવા લાગ્યો. ત્યાં તેણે લોકોનું એક ટોળું જોયું જે એક નિર્જળ કુવાને ચારે તરફથી ઘેરીને

अभयकुमारस्तत्र गत्वा लोकान् पृच्छति—किमित्येष लोकसमूहः ? । जनैरुक्तम्-अस्य मध्ये राज्ञोऽङ्गुलिमुद्रिकावर्तते, यः खलु तटेस्थित एव स्वहस्तेन गृह्णाति, तस्मै राजा महत् पारितोषिकं प्रदास्यति। ततोऽसौ कुमारो राजपुरुषान् पृच्छति-किमित्येष लोक समूहो वर्तते । राजपुरुषैरपि तथैव कथितम् । अभयकुमारो राजपुरुषान् प्राह -अहं कूपाद् बहिः स्थित एव तदङ्गुल्याभरणं समुद्धरामि यदि राजा स्वप्रतिज्ञां पालयेत् । राजपुरुषैरुक्तम्-हे भद्र! उद्ध्रियतां तदङ्गुलीयकम् राजा स्वप्रतिज्ञमवश्यं पालयिष्यति । अभयकुमारस्तदङ्गुलीयकं सम्यङ्गनिरीक्ष्य तदुपरि अशुष्कं गोमयं पातयति । अशुष्कगोमयाऽऽहतं सत् तदङ्गुलीयकं तत्र संलग्नम् । ततस्तदुपरि

अभयकुमार शीघ्र ही वहाँ पहुँचा और लोगों से पूछने लगा -यह लोगों का समुदाय यहां क्यों एकत्रित हुआ है। सुनकर लोगों ने उत्तर दिया-इसमें राजा की अंगूठी गिरगई है, जो व्यक्ति उसको ऊपर खडे २ ही अपने हाथ से निकाल देगा-उस को राजा बडी भारी इनाम प्रदान करेगा । लोगों की इस बात का संवाद पाने के लिये अभयकुमार ने वहां खडे हुए राजपुरुषों से पूछा तो वही पहिली वाली बात उन्हों ने भी उस से कही। सुनकर अभय-कुमार ने राजपुरुषों से कहा-मैं कुंए से राजा की अंगूठी को बाहिर खडे रह कर ही निकाल सकता हूं, यदि वे अपनी प्रतिज्ञा के पक्के हों तो। अभयकुमार की इस बात से प्रसन्न होकर उन्हों ने कहा-भद्र! आप तो अपना काम कीजिये, राजा अपनी प्रतिज्ञा का पालन अवश्य करेगा। इस बात को सुनकर अभयकुमार ने कुए में अंगूठी किस ओर पडी है यह अच्छी तरह देखा, पश्चात् उस के ऊपर उसने कहीं से लाकर गोबर

ઉભું હતું. અભયકુમાર તરત જ ત્યાં પહોંચ્યો, અને લોકોને પૂછવા લાગ્યો કે લોકોનું ટોળું અહીં શા માટે એકઠું થયું છે? લોકોએ જવાબ આપ્યો, “આ કુવામાં રાજાની વીંટી પડી ગઈ છે જે વ્યક્તિ ઉપર ઉભા ઉભા જ પોતાના હાથે તેને બહાર કાઢશે, તેને રાજા મોટું ઈનામ આપશે.” લોકોની આ વાતની ખાતરી કરવા માટે અભયકુમારે ત્યાં ઉભેલા રાજપુરુષોને પૂછયું તો તેમણે પણ એ જ પ્રમાણે કહ્યું, તે સાંભળીને અભયકુમારે રાજપુરુષોને કહ્યું, “જો રાજા પોતાની પ્રતિજ્ઞામાં દૃઢ હોય તો હું કૂવામાંથી રાજાની વીંટી બહાર ઉભો રહીને જ કાઢી શકું તેમ છું.” અભયકુમારની આ વાતથી પ્રસન્ન થઈને તેમણે કહ્યું, “ભદ્ર! આપ આપનું કામ પૂરૂં કરો. રાજા પોતાની પ્રતિજ્ઞાનું અવશ્ય પાલન કરશે.” આ વાતને સાંભળીને અભયકુમારે કુવામાં કઇ બાજુએ વીંટી પડી છે તે ધ્યાનપૂર્વક જોયું, પછી તેણે કોઇ જગ્યાએથી છાણ લાવીને તેના

शुष्कतृणानि पातितानि । अथ कथंचित् तत्राग्नि संयोगेकृते गोमयः शुष्को जातः। एवं गोमये शुष्के सति कूपान्तरात् पानीयमानीय तेन कुमारेण स कूपः संभृतः । जलपरिपूर्णस्य कूपस्योपरि तदङ्गुलीयक सहितः शुष्कगोमयस्तरति । ततः कूपतटस्थ एवाभयकुमारस्तदङ्गुलीयकं गृहीतवान् । तदा लोका आनन्दकोलाहलं कुर्वन्ति। राजपुरुषा राज्ञः समीपमागत्य निवेदयन्ति–स्वामिन् ! एकेन बालकेनाङ्गुलीयकं कूपात् समुद्धृतम्, न चासौ बालकः कूपे प्रविष्टः । ततो राज्ञा सोऽभयकुमारो राजपुरुषैराकारितः । अभयकुमारस्तदङ्गुलीयकं गृहीत्वा राज्ञः समीपमागत्य तदङ्गुलीयकं राज्ञे समर्पितम् । राजा तं पृच्छति – कस्त्वम् ? । अभयकुमारेणोक्तम्–

डाल दिया। गोवर में वह अंगूठी चिपक गई। वादमें उसने उस गोवर के ऊपर शुष्कतृणों को डालकर किसी तरह वहां अग्नि प्रज्वलित की। इस तरह गोबर के सूक जाने पर दुसरे कुए से पानी लाकर उस कुए में भर दिया गया। पानी भी इतना भरा गया कि वह कुए के कंठ तक आगया उसमें अंगूठी युक्त वह शुष्क गोमय भी ऊपर तिर आया। अभयकुमार ने उसको कुए पर खडे रहकर ही उठा लिया। इस तरह जब उसके पास राजा की अंगूठी आगई तो लोगों ने यह देखकर बड़ा भारी आनंद कोलाहल करना प्रारंभ किया। राजा को जब राजापुरुषों ने जाकर यह समाचार सुनाया तो उसने प्रसन्न होकर बालक अभयकुमार को अपने पास बुलवाया। राजपुरुषों ने आकर अभयकुमार से कहा कि आप को राजा साहेब बुला रहे हैं। अभयकुमार उनके साथ अंगूठी को लेकर राजा के समीप आया, और वह अंगूठी बडे आनंद के साथ राजा को दे दी। राजा ने हर्षित होते हुए उस से पूछा–तुम कौन हो। अभयकु-

---

ઉપર નાખ્યુ, છાણમાં તે વીંટી ચોટી ગઈ. ત્યાર બાદ તેણે તે છાણ ઉપર સૂકું ઘાસ નાખીને કોઈ પણ રીતે ત્યાં અગ્નિ સળગાવ્યો. આ રીતે છાણ સૂકાઈ જતાં બીજા કુવામાંથી પાણી લાવીને તે કુવાને પાણીથી ભરી દીધો. એટલું પાણી ભર્યું કે તે કુઓ કાંઠા સુધી ભરાઈ ગયો. વીંટી વાળું તે સૂકું છાણ પણ પાણી પર તરવા લાગ્યુ. અભયકુમારે કુવા પર ઉભા રહીને જ પોતાના હાથે તે ઉપાડી લીધું. આ રીતે જ્યારે તેની પાસે રાજાની વીંટી આવી ત્યારે લોકોએ તે જોઈને આનંદસૂચક ધ્વનિ કર્યો. રાજાને રાજપુરુષોએ જઈને સમાચાર સંભળાવ્યા ત્યારે તેણે પ્રસન્ન થઈ ને બાલક અભયકુમારને પોતાની પાસે બોલાવ્યો. રાજપુરુષોએ આવીને અભયકુમારને કહ્યુ કે "આપને રાજા સાહેબ બોલાવે છે." અભયકુમાર તેમની સાથે વીંટી લઈને રાજાની પાસે ગયો, અને તે વીંટી ઘણા આનંદ સાથે રાજાને આપી. રાજાએ ખુશી થઈને તેને પૂછ્યું. "તમે કોણ છો ?"

स्वयमेव परीक्ष्यताम् । एवमुक्ते सति राज्ञा तल्लक्षणादिनाऽसौ कुमारः स्वपुत्रत्वेन ज्ञातः । ततोऽसौ कुमारो राज्ञापृष्टः सन् प्राक्तनवृत्तान्तं कथितवान् । अभयकुमारस्य वचः श्रुत्वा राजा प्रमुदितो जातः । ततो राजा प्राह–वत्स ! तव जननी कुत्र वर्तते । अभयकुमारः प्राह=अस्य नगरस्य बहिरुद्याने, ततो राजा सपरिवारस्तस्याः संमुखे गतः । अभयकुमारश्चाग्रे गत्वा सर्वं वृत्तं मात्रे निवेदयति स्म । अत्रान्तरे राजा समागतः । तच्चरणयोर्नन्दा प्रणमति । ततो राजा भूषणादिप्रदानेन संमानिता सा सपुत्रा विपुलार्द्धा नगरं प्रवेशिता । अभयकुमारश्चामात्यपदे स्थापितः ॥

॥ इति चतुर्थः क्षुल्लकदृष्टान्तः ॥ ४ ॥

मार ने कहा आप इस की स्वयं जाच कीजिये। राजा ने उसके लक्षण आदि देखकर यह निश्चय कर लिया कि यह कुमार मेरा ही निजपुत्र है। राजा ने उस से सब पहिले की बाते पूछी तो उसने सब अपनी पहिले की बाते बतला दीं। इस तरह अभयकुमार के वचनों को सुनकर राजा को बड़ी भारी प्रसन्नता हुई। उसने कहा बेटा! तुम्हारी माता कहां है। अभयकुमार ने कहा–इस नगर के बगीचे में है। सुनते ही राजा सपरिवार उस के संमुख गया। अभयकुमार माता से उनके जाने से पहिले पहिले ही पहुँचकर सब समाचार कह रहा था कि इतने में राजा वहां सपरिवार आ पहुँचा। पति को आया हुआ देखकर नंदा ने उनके चरणों में नमस्कार किया। राजा ने भूषण आदि प्रदान कर उसका बहुत अच्छा स्वागत सत्कार किया। बाद में बडे ठाठ बाट के साथ उसका पुत्रसहित नगर में प्रवेश कराया गया। राजा अभयकुमार को प्रधान पद देकर

અભયકુમારે કહ્યું, "આપ જાતે જ તેની તપાસ કરો." રાજાએ તેનાં લક્ષણ આદિ જોઈને એવો નિર્ણય કર્યો કે આ કુમાર મારો પોતાનો જ પુત્ર છે. રાજાએ પહેલાંની બધી વાતો તેને પૂછી તો તેણે પોતાની પહેલાંની બધી વાતો બતાવી દીધી આ પ્રમાણે અભયકુમારનાં વચનો સાંભળીને રાજા ઘણો સંતોષ પામ્યો. તેણે કહ્યુ, "બેટા ! તારી માતા ક્યાં છે ?" અભયકુમારે કહ્યુ, "આ નગરની બહાર આવેલ બગીચામાં છે." તે સાંભળતા જ રાજા સપરિવાર તેની પાસે ગયો. તેમના ત્યાં પહોંચતાં પહેલાં જ અભયકુમાર તેની માતાને બધા સમાચાર આપતો હતો એવામાં રાજા સપરિવાર ત્યાં આવી પહોંચ્યા પતિને આવેલ જોઈને નંદાએ તેમને ચરણે પડીને નમન કર્યું, રાજાએ આભૂષણો આદિ આપીને તેનું ઘણું જ સ્વાગત કર્યું. પછી મોટા ઠાઠ માઠથી પુત્ર સહિત તેનો નગરમાં પ્રવેશ કરાવવામાં આવ્યો. રાજા અભયકુમારને પ્રધાન પદ

अथ पञ्चमः पटदृष्टान्तः—

उभौ पुरुषौ क्वचिज्जलाशये सहैव गत्वा स्नातुं प्रवृत्तौ। तत्रैकस्योर्णामयं प्रावरणमासीत् द्वितीयस्य शरीराच्छादनवस्त्रं कार्पासिकसूत्रमयम्। कम्बलधरः पुरुषस्तदा स्नात्वा सत्वर मन्यस्य कार्पासिकसूत्रमयं वस्त्रमादाय चलितः। तदा द्वितीयस्तमाह्वयन् वदति–अयि! इदं भवदीयं वस्त्रमत्रवर्त्तते त्वया मम वस्त्रं गृहीतम् अतस्तन्मे देहि इत्युक्तोऽसौं तद्वचनमशृण्वन्नेव गतः। ततो ग्रामे समागत्य विवद-मानौ तौ पुरुषौ न्यायार्थं राजकुलं गतवन्तौ। तत्र न्यायाध्यक्ष निदेशेन कश्चिद्रा-

बडे उत्साह और हर्ष के साथ अपना समय व्यतीत करने लगा ४।

॥ यह चौथा क्षुल्लकदृष्टान्त हुवा ॥ ४ ॥

पांचवां पटदृष्टान्त–

एक समय की बात है कि कोई दो पुरुष किसी जलाशय में साथ २ स्नान करने के लिये उतरे। एक के पास ऊनी कपडे थे और दूसरे के पास सूती। जिस के पास ऊनी कपडे थे वह जब स्नानकर जलाशय से बाहर निकला तो उसने दुसरे व्यक्ति के वे सूती कपडे उठा लिये और लेकर चला गया। उसने उसको पुकारा कि भाई! तुम्हारे ऊनी कपडे तो यहां रक्खे हैं मेरे सूती कपडे तुम ले जा रहे हो सो मुझे दे दो। परन्तु उस की बात उसने नहीं सुनी और आगे चला गया। वह भी नहा धोकर उसके साथ ही चला। परस्पर में दोनो की बातचीत होने लगी।

આપીને ઘણા હર્ષ તથા ઉત્સાહપૂર્વક પોતાનો સમય વ્યતીત કરવા લાગ્યો.

॥ આ ચોથું ક્ષુલ્લકદૃષ્ટાંત સમાપ્ત ॥ ૪ ॥

પાંચમું પટદૃષ્ટાંત–

એક સમયની વાત છે. કોઇ બે પુરુષ કોઈ જળાશયમાં એકી સાથે સ્નાન કરવાને માટે ઉતર્યાં. એકની પાસે ગરમ કપડાં હતાં અને બીજાની પાસે સૂતરાઉ કપડાં હતાં. જેની પાસે ગરમ કપડાં હતાં તે જ્યારે જળાશયમાંથી સ્નાન કરીને બહાર નીકળ્યો ત્યારે તેણે બીજા માણસના સૂતરાઉ કપડાં ઉપાડી લઈને ચાલતો થયો. બીજા માણસે જ્યારે આ જોયુ ત્યારે તેને મોટા અવાજે કહ્યું "ભાઈ! તમારાં ગરમ કપડાં તો અહીં પડયાં છે. મારાં સૂતરાઉ કપડાં તમે લઇ જાઓ છો તો મને તે આપી દો" પણ તેણે તેની તે વાત સાંભળી જ નહીં અને તે આગળ ચાલ્યો ગયો. તે પણ નાહી ધોઇને તેની પાછળ પડયો; અને તેની સાથે થઇ ગયો. બન્ને વચ્ચે ચર્ચા થવા લાગી. વાત

जपुरुषस्तयोर्द्वयोरपि शिरः केशान् कङ्कतिकया संमार्जयति। केशानां संमार्जने कृते सति ऊर्णामयपट स्वामिनः केशेभ्य ऊर्णावयवा विनिर्गताः, ततो ज्ञातम् अयमेव कम्बलस्य स्वामीति द्वितीयो निगृहीतः। स न्यायाध्यक्षेण समर्पितं स्वकीयं सूत्रमयं वस्त्रं गृहीत्वा प्रथमो गतः।

॥इति पञ्चमः पटदृष्टान्तः ॥५॥

अथ षष्ठः सरटदृष्टान्तः—

कश्चित् पुरुषः पुरीषोत्सर्गं कर्तुं वने प्रविष्टः। तत्र क्वचिद् बिलमदृष्ट्वा तत्समीपे मलत्यागार्थमुपविष्टः तदा सरटो बिले प्रविशन् स्वपुच्छेन तस्य गुदं स्पृष्टवान्।

बात करते करते यहां तक बात बन गई कि उन दोनों को अपना न्याय प्राप्त करने के लिये राजकूल तक में जाना पडा। न्यायाध्यक्ष ने इन दोनों की बातें सुन कर अपने बुद्धिबल से कचहरी के किसी सिपाही को आदेश दिया कि तुम इन दोनों के केशों को कंधी से उँछो। उसने वैसा ही किया। जिसके ऊनके वस्त्र थे उसके केशों में से ऊन के अवयव निकले। इससे यह बाते जानने में देर नहीं लगी कि यह ऊनी वस्त्रों का मालिक है, सूती का नहीं। इस तरह न्यायाध्यक्ष द्वारा अपने सूती वस्त्र प्राप्तकर वह चला गया ॥५॥

॥यह पांचवां पटदृष्टान्त हुआ ॥५॥

छट्टा सरटदृष्टान्त—

कोई पुरुष मलत्याग करने के लिये जंगल में गया। वहाँ वह पुरुष किसी स्थान पर मलत्याग करने के निमित्त बैठा। जहाँ वह बैठा था, उसी के समीप में गिरगिट की बिल थी जिस को उस ने नहीं देखा। उसी

એટલે સુધી આગળ વધી કે તે બન્નેને ન્યાય કરાવવા માટે રાજસભામાં જવું પડ્યું. ન્યાયાધીશે તે બન્નેની વાત સાંભળીને પોતાના બુદ્ધિબળથી તેનો નિકાલ કર્યો. તેમણે કચેરીના એક સિપાઈને આજ્ઞા કરી કે તુ આ બન્ને માણસના વાળને કાંસકી વડે ઓળ. તેણે તે પ્રમાણે જ કર્યું. તેથી જેનાં ગરમ વસ્ત્રો હતાં તેના વાળમાંથી ઉનના રેસા નીકળ્યાં. તેથી તે વાત સમજતા વાર ન લાગી કે તે ગરમ વસ્ત્રોનો માલિક છે, સૂતરાઉનો નહીં. આ પ્રમાણે ન્યાયાધીશ દ્વારા પોતાનાં સૂતરાઉ કપડાં મેળવીને તે ચાલ્યો ગયો. ॥ ૫ ॥

॥ આ પાંચમું પટ દૃષ્ટાંત સમાપ્ત ॥ ૫ ॥

છઠ્ઠું સરટ દૃષ્ટાંત—

કોઈ પુરુષ ઝાડે ફરવા માટે જંગલમાં ગયો. ત્યાં કોઈ સ્થાને તે ઝાડો ફરવા માટે બેઠો. તે જ્યાં બેઠો હતો તેની જ પાસે કાચીંડાનું એક દર હતું,

एतावतैव तस्यैवं—शङ्का समुत्पन्ना—गुदमार्गेण ममोदरे सरटः प्रविष्टः। ततो गृहं गतोऽसौ तच्चिन्तया रोगीव प्रतिदिवसं दुर्वलो जातः। वहुशश्चिकित्साकृता किंतु सर्वाऽपि निष्फलैव जाता। एकदा केनचिद् वैद्येन सम्यक् परीक्ष्य तर्कबुद्धया ज्ञातम् केवलं भ्रमोऽस्य वर्तते अन्यत् किमपि नास्ति, इत्येवं विदित्वा वैद्योऽब्रवीत्—तव रोगं निवर्तयिष्यामि किंतु शतं रूप्यकाणि त्वत्तो ग्रहीष्यामि। ततो वैद्यवचनं तेन स्वीकृतम्। ततोऽसौ वैद्यस्तस्मै विरेचकौषधं दत्त्वा मृन्मयभाण्डं लाक्षारसेन

समय बिल में प्रवेश करते हुए गिरगिट की पूँछ का उस के गुद प्रदेश में स्पर्श हो गया। गिरिगिट की पूंछ के स्पर्श हो जाने से उस पुरुष के मन में यह आशङ्का हुई कि यह गिरगट गुद मार्ग से मेरे उदर में प्रविष्ट हो गइ है ऐसी आशंका से युक्त वह पुरुष अपने घर गया, परन्तु 'मेरे पेट में गिरगिट घुस गइ हैं' इस चिन्ता से वह रोगी के समान प्रतिदिन दुर्वल होने लगा। उसने अनेक प्रकार की चिकित्सायें करायीं, किन्तु सभी निष्फल हो गयीं। एक समय एक वैद्यने उसकी अच्छी तरह परीक्षा कर अपनी तर्क बुद्धि से उस के रोग के निदान को जान लिया और उस को यह बात अच्छी तरह समझ में आ गयी कि इस को कोई रोग नहीं हैं, मात्र रोग का भ्रम है। फिर उस वैद्यने उस पुरुष से कहा—मैं तुम्हारा रोग दूर कर दुंगा, परन्तु तुम्हें सौ रुपये देने होंगे। वैद्य की बात उस पुरुष ने मान ली। तब वैद्य ने उस को विरेचक औषध (जुलाब) दिया और एक मिट्टी के पात्र को लाक्षा रस से भरकर उसमें एक मरी हुए गिर-

---

જે તેણે જોયુ ન હતું. ત્યારે દરમાં પ્રવેશ કરતા કાચીંડાની પૂંછડીનો તેની ગુદાના ભાગે સ્પર્શ થઈ ગયો. કાચીંડાની પૂંછડીનો સ્પર્શ થતાં તે પુરુષના મનમાં એવો સંદેહ થયો કે તે કાચીંડો ગુદા માર્ગે મારા ઉદરમાં પેસી ગયો છે. આ સંદેહવાળો તે પુરુષ પોતાને ઘેર ગયો, પણ "મારા પેટમાં કાચીંડો પેસી ગયો છે" આ ચિન્તાને લીધે તે રોગીની જેમ દિવસે દિવસે દુબળો પડવા લાગ્યો તેણે ઘણા પ્રકારની ચિકિત્સા કરાવી પણ તે બધી નિષ્ફળ ગઈ એક દિવસ એક વૈદે તેની સારી રીતે પરીક્ષા કરીને પોતાની તર્કશક્તિથી તેના રોગનું નિદાન જાણી લીધું, અને તેની એ વાત સ્પષ્ટ રીતે સમજાઈ ગઈ કે તેને કોઇ રોગ જ નથી, માત્ર રોગનો ભ્રમ જ છે. પછી તે વૈદે તેને કહ્યું, "હું તમારો રોગ મટાડીશ, પણ તમારે મને સો રૂપીયા આપવા પડશે." તેણે વૈદની વાતનો સ્વીકાર કર્યો. ત્યારે વૈદે તેને જુલાબ આપ્યો, અને એક માટીના ઠામને રાખથી ભરીને તેમાં એક મરેલો કાચીંડો મૂકીને તેને કહ્યું કે તમારે

भृत्वा तत्र-मृतं सरटं प्रक्षिप्य वदति त्वयाऽस्मिन् भाण्डे पुरीषोत्सर्गः कर्तव्यः। तेन तथाकृते सति वैद्यस्तद्भाण्डे सरटं दर्शयन् प्राह—पश्य त्वदुदरादयं सरटो निर्गतः। तदैव तस्य शङ्काऽपगता, अचिरेणैव स नीरोगः संजातः।

॥ इति षष्ठः सरटदृष्टान्तः ॥ ६ ॥

अथ काकदृष्टान्तः—

वेन्नातटे नगरे रिपुमर्दननामको राजा धीरमतिनामकं सचिवं बुद्धिपरीक्षार्थं पृष्टवान्-अस्मिन् ग्रामे कियन्तः काकाः? इति। एवं पृष्टः स प्राह—षष्टि-सहस्राणि काका अत्र ग्रामे निवसन्ति। राज्ञा प्रोक्तम्-यदि त्वदुक्तसंख्यातो न्यूना

गिट को डालकर उस से कहा-तुम इस मिट्टी के पात्र में मल त्यग करना। उस पुरुष ने वैसा ही किया तब उस वैद्य ने उस पुरुष को उस पात्रमें मरे हुए गिरगट को दिखलाते हुए कहा-देखो, तुम्हारे पेट से यह गिरगिट निकला है। उस मरे हुए गिरगिट को देखकर उस पुरुष की आशङ्का दूर हो गयी। और बहुत शीघ्र ही नीरोग हो गया ॥ ६ ॥

॥ यह छट्ठा सरटदृष्टान्त हुआ ॥ ६ ॥

सातवां काकदृष्टान्त-

वेन्नातट नाम का नगर था। यहां के राजा का नाम रिपुमर्दन था। इस का धीरमति नाम का एक मंत्री था। एक दिन की बत है कि धीर-मति की परीक्षा करने के निमित्त राजाने उस से पूछा-इस ग्राम में कितने कौवे रहते हैं। सुनकर उसने शीघ्र ही राजा को उत्तर दिया-महाराज। इस ग्राम में साठ हजार कौवे रहते हैं। मंत्री की वात सुनकर राजाने

આ માટીના વાસણમાં જ ઝાડે જવું તે પુરુષે તે પ્રમાણે જ કર્યું. ત્યારે તે વૈદ્યે તે પુરુષને તે પાત્રમાં મરેલો કાચીંડો બતાવીને કહ્યું, " જુવો, તમારા પેટ-માંથી આ કાચીંડો નીકળ્યો છે. તે મરેલા કાચીંડાને જોઇને તેની આશંકાનું નિવારણ થઈ ગયું. અને તે ઘણી ઝડપથી નીરોગી બન્યો.

॥ આ છઠ્ઠું સરટ દૃષ્ટાંત સમાપ્ત ॥ ૬ ॥

સાતમું કાક દૃષ્ટાંત-

વેન્નાતટ નામે નગર હતું. ત્યાં રિપુમર્દન નામનો રાજા હતો તેને ધીર-મતિ નામનો એક મંત્રી હતો. એક દિવસ ધીરમતિની પરીક્ષા કરવાને માટે તેને પૂછ્યું, " આ ગામમાં કેટલા કાગડા રહે છે ? " તે સાંભળતા જ તેણે જવાબ આપ્યો, " મહારાજ ! આ ગામમાં સાઠ હજાર કાગડા રહે છે " મંત્રીની આ વાત સાંભળીને રાજાએ કહ્યું કે " જો તમારી વાત સાચી ન પડે તો કેટલો દંડ

अधिका वा भवेयुस्तर्हि दण्डनीयो भविष्यसि। सचिवेनोक्तम्—यदि कदाचिदेभ्यः काकेभ्यो न्यूनसंख्यका भवेयुस्तदा केचित् प्राघुणिकतया ग्रामान्तरं गता इत्यवसेयम्। यद्यधिक संख्यका भवेयुस्तदा प्राघुणिका इहा गता इत्यवगन्तव्यम्। एवं मन्त्रिवचनं श्रुत्वा राजा तुष्टो जातः।

॥ इति सप्तमः काकदृष्टान्तः ॥ ७ ॥

अथाष्टम उच्चारदृष्टान्तः—

उच्चारो मलः। क्वचिन्नगरे कश्चिद् ब्राह्मण आसीत्। एकदा स ब्राह्मणः स्वभार्यया सह देशान्तरं गच्छति। तस्य पथि कश्चिद् धूर्तो मिलितः। स धूर्तो ब्राह्म-

---

कहा कि यदि यह बात ठीक नहीं निकली तो बोलो क्या दण्ड दोगे। मंत्री ने सुनते ही जवाब दिया महाराज। दण्ड की क्या बात है–वे तो इतने ही हैं, परन्तु मेरी संख्या से उनकी संख्या यदि कदाचित् कुछ बढ जांय तो समझ लेना चाहिये कि बाहर से कुछ कौवे इन कौवों के यहां पाहुनचारी करने के लिये आये हुए हैं। यदि कदाचित् घट जाय तो यह समझ लेना चाहिये कि इन में से कुछ कौवे दुसरे गाँव पाहुनचारी के लिये गये हुए हैं। इस प्रकार मंत्र के वचन सुनकर राजा बहुत ही प्रसन्न हुआ ॥ ७ ॥

॥ यह सातवां काकदृष्टान्त हुआ ॥ ७ ॥

आठवां उच्चारदृष्टान्त-

किसी एक नगर में कोई एक ब्राह्मण रहता था। एक दिन की बात है कि वह अपनीं पत्नीं के साथ देशान्तर चला। चलते २ उसको

ભરશો ?" તે સાંભળતા જ મંત્રીએ જવાબ આપ્યો "મહારાજ! દંડની વાત જ ક્યાં છે? મેં કહ્યા તેટલા જ તે તો છે, પણ છતાં મેં કહેલ સંખ્યા કરતાં તેમની સંખ્યા કદાચ વધારે થાય તો એમ સમજવું કે બહારથી કેટલાક કાગડા આ કાગડાઓને ત્યાં મહેમાન તરીકે આવ્યા છે, અને કદાચ તે સંખ્યા ઓછી થાય તો તેમ સમજી લેવું પડે કે તેમનામાંથી કેટલાક કાગડા બીજે ગામ મહેમાન થઈને ગયા છે." મંત્રીનાં આ પ્રકારના વચન સાભળીને રાજા ઘણો ખુશી થયો.

॥ આ સાતમું કાકદૃષ્ટાંત સમાપ્ત ॥ ૭ ॥

આઠમું ઉચ્ચારદૃષ્ટાંત—

કોઈ એક નગરમાં કોઈ એક બ્રાહ્મણ રહેતો હતો. એક દિવસ તે પોતાની પત્નીની સાથે બીજે દેશ જવા નીકળ્યો. ચાલતાં ચાલતાં માર્ગમાં

णभार्यया सह वार्तालापमात्रेण तां प्रेमानुबद्धामकरोत् । ततः किंचिद्दूरं गत्वा धूर्तः प्राह— ममैषा भार्या । ब्राह्मणोऽवदत्—मैवम् । इयं मदीया धर्मपत्नी । एवं विवदमानौ तौ न्यायार्थं राजकुलं प्राप्तौ न्यायाधीशेन तावुभौ पृथक् पृथगन्यत्र स्थापयित्वा पृष्टौ—गत दिवसे त्वया किं भक्षितम् ? ब्राह्मणेनोक्तम्—मया भार्यया सह गतदिने तिलमोदका भक्षिताः धूर्तेनान्यत् किमप्युक्तम् । तदा विरेचनौषधं दत्त्वा धूर्त ब्राह्मणयोः परीक्षा कृता । ब्राह्मणस्य भाषणं सत्यमभूत् । ततो न्यायाधीशेन सा ब्राह्मणाय समर्पिता धूर्तस्तु निगृहीत ।

॥ इत्यष्टम उच्चारदृष्टान्तः ॥ ८ ॥

मार्ग में एक धूर्त मिल गया । वह बड़ा चालाक था । उसने ब्राह्मण की स्त्री से बातचीत में ही अपना प्रेममय संबंध जोड़ लिया । कुछ दूरजाने पर ब्राह्मण से वह धूर्त कहने लगा कि–यह स्त्री मेरी है। धूर्त की बात से अप्रसन्न होकर ब्राह्मण बोला–भाई यह क्या कह रहे हो ? ऐसा मत कहो यह तो मेरी ही पत्नी है। इस तरह उन दोनों की परस्पर में अधिक से अधिक बातचीत बढ गई और न्याय प्राप्त करने के लिये उन दोनों को राजकुल के पास जाना पड़ा। राजकुल में पहुँचते ही न्यायाध्यक्ष ने उन दोनों को अलग २ बैठा दिया और पूछा कहो–कल तुम ने क्या खाया था ? ब्राह्मण ने कहा–महाराज! मैंने और मेरी पत्नी ने तिल के लड्डू खाये थे। धूर्त को बुलाकर पूछा तो उसने कोई दुसरी ही बात बतलाई। इस तरह सत्य झूठ की परीक्षा के लिये न्यायाधीश ने अपने बुद्धि बल से उन दोनों को विरेचन की औषधि दी। इससे ब्राह्मण का कथन सत्य

તેને એક ધૂતારો મળ્યો. તે ઘણો ચાલાક હતો. તેણે બ્રાહ્મણની પત્ની સાથે વાતચીતમાં જ પોતાનો પ્રેમસંબંધ બાંધી દીધો. થોડે દૂર જતાં તે ધૂતારાએ બ્રાહ્મણને કહ્યું, “ આ મારી સ્ત્રી છે. ” ધૂતારાની વાતથી નારાજ થઈને બ્રાહ્મણે કહ્યું, “ ભાઈ, આ તમે શું કહો છો ? એવું બોલશો મા. આ તો મારી જ પત્ની છે. ” આ રીતે તે બન્ને વચ્ચે પરસ્પરમાં વધારેમા વધારે વાદવિવાદ થયો. છેવટે ન્યાય કરાવવાને માટે તે બન્ને રાજકચેરીએ પહોંચ્યા. ન્યાયાધીશે તેમની વાત સાંભળીને તે બન્નેને જુદા જુદા સ્થાને બેસાડયા, અને પૂછ્યુ, “કહો, કાલે તમે શું ખાધું હતું ?” બ્રાહ્મણે કહ્યું, “સાહેબ ! મેં તથા મારી પત્નીએ તલના લાડુ ખાધા હતા,” ધૂર્તને બોલાવીને એ જ પ્રશ્ન પૂછયો તો તેણે બીજી કોઈ ચીજ ખાધી હતી તેમ બતાવ્યુ. હવે ન્યાયાધીશે સાચા–ખોટાની પરીક્ષા માટે પોતાની બુદ્ધિથી તે બન્નેને વિરેચક ઔષધિ આપી. તે વડે બ્રાહ્મણનું

अथ नवमो गजदृष्टान्तः—

वसन्तपुराधीशो नृपति र्विशिष्ट बुद्धिसम्पन्न सचिव प्राप्त्यर्थं चतुष्पथे आलानस्तम्भे गजमेकं बन्धयित्वा घोषणां कारयति इमं गजं यस्तोलयिष्यति, तस्मै राजा पारितोषिकतया वृत्तिं दास्यतीति । घोषणां श्रुत्वा कश्चिद् बुद्धिमान् पुरुषस्तं गजं तोलयितुं स्वीकृतवान् । ततोऽसौ क्वचिज्जलाशये नौकायां गजमारोह्य नावं चालयति । गजभारेण नौकाया यावान् भागोजले निमग्नोऽभवत् तं रेखाङ्कितं कृत्वा

निकला । बाद में ब्राह्मणी उस को सौंपकर न्यायाधीश ने धूर्त को दण्डित किया ॥ ८ ॥

॥ यह आठवां उच्चारदृष्टान्त हुआ ॥ ८ ॥

नौवां गजदृष्टान्त-

वसन्तपुर नाम का एक पुर था । वहां के राजा ने विशिष्ट बुद्धि संपन्न मंत्री की प्राप्ति के लिये एक उपाय इस प्रकार किया-चौहट्टे में एक आलानस्तंभ में उसने एक हाथी बंधवा दिया, और इस प्रकार घोषणा करवाई कि जो कोई इस हाथी की तौल कर देगा उस को राजा पारितोषिक रूप में वृत्ति प्रदान करेगा । इस घोषणा को सुनकर किसी एक विशिष्ट बुद्धि संपन्न व्यक्ति ने हाथी को तोल ने की शर्त मंजूर करली । उसने फिर उस को इस प्रकार तोला-किसी जलाशय में जाकर उसने उस हाथी को एक नौका में चढाया, बाद में उस को पानी में चलाया तो नौका का जितना भाग पानी में डूबा गया उस भाग में उसने एक

કથન સાચું હતું. પછી બ્રાહ્મણને તેની પત્ની સોંપીને ન્યાયાધીશે ધૂર્તને સજા કરી. ॥ ૮ ॥

॥ આ આઠમું ઉચ્ચારદૃષ્ટાંત સમાપ્ત ॥ ૮ ॥

નવમું ગજદૃષ્ટાંત—

વસન્તપુર નામે એક નગર હતું. ત્યાંના રાજાએ વિશિષ્ટ બુદ્ધિવાળો મંત્રી મેળવવાને માટે આ પ્રમાણે એક ઉપાય કર્યો-ચોકમાં હાથી બાંધવાના ખીલા સાથે તેણે એક હાથી બંધાવ્યો, અને આ પ્રમાણે ઘોષણા કરાવી કે જે કોઈ આ હાથીનું વજન કરી આપશે તેને ઇનામ રૂપે ઊંચો હોદ્દો આપવામાં આવશે. આ ઘોષણા સાંભળીને કોઈ એક વિશિષ્ટ બુદ્ધિસંપન્ન માણસે હાથીનું વજન કરી આપવાની શરત મંજૂર કરી. પછી તેણે આ રીતે તેને તોળ્યો-કોઈ જળાશયમાં લઈ જઈને તેણે તે હાથીને એક હોડીમાં ચડાવ્યો, પછી તે નૌકા પાણીમાં ચલાવી તેનો જેટલો ભાગ પાણીમાં ડૂબી ગયો ત ભાગમાં તેણે એક

तेन नौकाया गजोऽवतारितः । ततोऽसौ नौका पाषाणैस्तथा संभृतो यथा नौकायाः पूर्वो रेखाङ्कितो भागो जलमग्नः स्यात् । पश्चात् ते पाषाणास्तोलिताः तदनुसारेण गजस्य मानं ज्ञातम् । राजा तस्य बुद्धिं प्रति प्रसन्नो जातः ।

॥ इति नवमो गजदृष्टान्तः ॥ ९ ॥

अथ दशमो भण्डनदृष्टान्तः—

आसीत् कोऽपि पुरुषो राज्ञः प्रत्यासन्नवर्ती । तत्समीपे राजा भार्यायाः प्रशंसां करोति । एकदा राज्ञा कथितम्-मम राज्ञी चतुराऽस्ति निदेशकारिणी च । पुरुषेणोक्तम्-महाराज ! यदि तवाज्ञाकारिणी स्यात् तदा स्वार्थवशात् । मद्वचने

रेखा अंकित कर दी। बाद में हाथी को नौका से उतार दिया, पश्चात् उस में पाषाणखंड इतने भरे कि जिन्हों के वजन से रेखाङ्कित वह नौका का भाग पानी में डूब गया। बाद में वे समस्त पत्थर नौका से बाहर निकाल कर तौले गये तो जितना उन का वजन हुआ वही हाथी का वजन माना गया। इस तरह राजा उस की इस बुद्धि का वैभव देखकर बड़ा अधिक प्रसन्न हुआ ॥९॥

॥ यह नौवां गजदृष्टान्त हुआ ॥ ९ ॥

दसवां भण्डनदृष्टान्त—

एक पुरुष राजा के पास सदैव रहता था। राजा उसके सामने अपनी रानी की प्रशंसा खूब किया करता था। यह भी उस को बडे चाव से सुनता रहता। एक दिन जब राजा ने उस से ऐसा कहा कि मेरी रानी बड़ी चतुर एवं आज्ञाकारिणी है तो उस ने इस के प्रत्युत्तर में कहा-ठीक

લીટી દોરી દીધી, પછી હાથીને હોડીમાંથી ઉતારી નાખ્યો; અને હોડીમાં એટલાં પથ્થર ભર્યાં કે જેના વજનથી લીટી કરેલા ભાગ સુધી હોડી પાણીમાં ડૂબી ગઇ. પછી એ બધાં પથ્થરને હોડીમાંથી બહાર કાઢીને તેમનુ વજન કર્યું તો જેટલું તેમનું વજન થયુ તે હાથીનુ વજન માની લીધું. આ પ્રકારની તેની તીવ્ર બુદ્ધિથી રાજા ઘણો પ્રસન્ન થયો. ॥ ૯ ॥

॥ આ નવમું ગજદૃષ્ટાંત સમાપ્ત ॥ ૯ ॥

દસમું ભણ્ડનદૃષ્ટાંત—

એક પુરુષ હંમેશાં કોઈ એક રાજા પાસે રહેતો હતો. રાજા તેની આગળ પોતાની રાણીનાં ખૂબ વખાણ કર્યા કરતો હતો. તે પણ તેને ઘણા રસપૂર્વક સાંભળતો હતો. એક દિવસ જ્યારે રાજાએ તેને એવું કહ્યું કે મારી રાણી ઘણી ચતુર અને આજ્ઞાકારિણી છે ત્યારે તેણે તેને જવાબ આપ્યો, " સારૂં, પણ

संशयोऽस्ति चेत् परीक्ष्य द्रष्टव्यम्। तस्या अग्रे एवमुच्यताम्—अपरां कांचिद् भार्यां कर्तुमिच्छामि, तत्पुत्राय राजपदं प्रदास्यामि। एतत् तवप्रियं चेद् भवेत् तर्हि मया एवं कर्तव्यम्। एवमेव राज्ञा द्वितीये दिवसे कथितम्। राज्ञी प्रत्याह— राजन्! यदि भवान् द्वितीयां भार्यां कर्तुमिच्छति तर्हि करोतु किंतु राज्याधिकारः पूर्वोत्पन्नस्य ममैव पुत्रस्य स्याद् नान्यस्य। एतद्वचनं श्रुत्वा राजा स्मितं करोति।

है यदि वह आप की प्रत्येक आज्ञा को मानती है तो इस में उस का निज स्वार्थ भरा हुआ है। अपने स्वार्थ के वश से ही वह आप के प्रत्येक आदेश कों स्वीकार कर लिया करती है। यदि मेरे इस कथन में आपको किसी भी तरह का संशय हो तो आप इस की परीक्षा कर सकते हो। अच्छा ऐसा करो—आज उससे जाकर कहना कि मैं दुसरी रानी करना चाहता हूं और उस से जो पुत्र उत्पन्न होगा उसे मैं राज्य देना चाहता हूं। बोलो यह बात मेरी तुम्हें मान्य है कि नहीं? मान्य होने पर ही मैं अपनी इस विचारधारा को सफल करूँगा। उस पुरुष की इस सलाह के अनुसार राजा ने अपनी यह पूर्वोक्त बात दुसरे दिन रानी से जाकर ज्यों की त्यों कह दी। रानी ने सुनकर जबाब दिया—महाराज! आप दूसरी स्त्री करना चाहते हैं तो खुशी से करिये, "इसमें हमें कोई आक्षेप नहीं है, परन्तु आप का जो ऐसा विचार है कि हम उसके ही लड़के को राज्य देंगे सो यह बात मुझे मान्य नहीं है। राज्य का अधिकारी तो मेरा ही पुत्र होगा। रानी के इन वचनों से राजा को कुछ हँसी

જો તે તમારી બધી આજ્ઞા પાળતી હોય તો તેમાં તેનો પોતાનો સ્વાર્થ રહેલો છે. પોતાનો સ્વાર્થ સાધવા માટે જ તે આપની પ્રત્યેક આજ્ઞા સ્વીકાર્યા કરે છે. જો મારા આ કથનમાં તમને કોઈ પણ પ્રકારનો સંશય હોય તો આપ તેની કસોટી કરી શકો છો. આ પ્રમાણે કરો—આજે જ તેની પાસે જઈને કહો કે હું બીજી રાણી કરવા માગું છું. અને તેને જે પુત્ર થશે તેને જ હું રાજ્ય આપવા માગું છું. બોલો, મારી આ વાત આપને મંજુર છે કે નહીં? માન્ય હોય તો જ હું મારી આ વિચારધારાને સફળતાનું રૂપ આપીશ." તે પુરુષની આ સલાહ પ્રમાણે રાજાએ બીજે દિવસ રાણી પાસે જઈને પૂર્વોક્ત વાત તે પુરુષે કહ્યા પ્રમાણે જ કહી દીધી તે સાંભળીને રાણીએ જવાબ આપ્યો, "એમાં મને કોઈ વાંધો નથી, પણ આપનો જે એવો વિચાર છે કે આપ તેના જ પુત્રને રાજ્ય સોંપશો તે વાત મને મંજુર નથી. મારો જ પુત્ર રાજ્યનો અધિકારી થશે." રાણીનાં આ વચનોથી રાજાને સહેજ હસવું આવ્યું. રાણીએ

राज्ञी स्मितस्य कारणं पृच्छति। राज्ञा मौनमालम्बितम्। पुनः पुनस्तया पृष्टो राजा प्रत्यासन्नवर्तिपुरुषप्रोक्तं वचः कथितवान्। राज्ञी क्रोधवशात् तस्य देशवहिष्कारार्थमादेशं कृतवती। ततोऽसौ पुरुषश्चिन्तयति-किमधुना विधेयम्, अन्ततः स स्वबुद्ध्या महान्तमुपानहां भारं शिरसि गृहीत्वा राज्ञीं प्रोक्तवान्-अधुना देशान्तरं गच्छामि। राज्ञी प्राह—किमर्थमुपानद्भारं वहसि। स वदति-देवि! इयतीभिरुपानद्भिर्यावन्ति देशान्तराणि गन्तुं शक्ष्यामि तावत्सु देशान्तरेषु भवत्या भण्डनं (अकीर्त्ति) करिष्यामि। ततो राज्ञी लोकापवादभयात् सत्वरं पूर्वोक्तं निदेशं निवर्तयति स्म।

॥ इति दशमो भण्डनदृष्टान्तः ॥ १० ॥

आगई। रानीने राजा से इस हँसी का कारण पूछा तो उसने जब कुछ जवाब नहीं दिया तो पुनः उसने जानने का आग्रह किया, अन्त में राजा ने जो बात जैसी थी वह उस से कह दी। रानी को उस पुरुष पर बड़ा क्रोध आया और इसी आवेश में उसने उस पुरुष को देश से बाहिर चले जाने की आज्ञा जारी करदी। रानी के इस आदेश से चिन्तित हो उस पुरुष ने विचार किया-अब क्या उपाय करना चाहिये? अन्त में उसको एक बुद्धि सूझी और उसी के अनुसार उसने जूतों की एक बड़ी भारी गठरी बांधकर उस को माथे पर उठाली और रानी से बोला में अब यहां से दुसरे देश को जा रहा हूं। रानी ने पूछा-तो यह जूतों की गठरी शिर पर क्यों रख छोडी हैं। उसने जबाब दिया कि इतने जूतों से जितने देशों में जा सकूंगा उतने देशों में आप की अपकीर्ति करूँगा। रानी ने

રાજાને તે હાસ્યનું કારણ પૂછયું તો તેણે કંઈ જવાબ આપ્યો નહીં. ત્યારે ફરીથી તેણે કારણ જાણવાનો આગ્રહ કર્યો. છેવટે રાજાએ જે વાત બની હતી તે તેને કહી. રાણીને તે પુરુષ પર ઘણો ક્રોધ ચડયો અને આવેશમાં ને આવેશમાં તેણે તે પુરુષને દેશવટાની આજ્ઞા આપી દીધી. રાણીના આ હુકમથી ચિન્તાતુર થયેલ તે પુરુષે વિચાર કર્યો-"હવે શો ઉપાય કરવો?" છેવટે તેને એક યુક્તિ જડી અને તે યુક્તિ પ્રમાણે તેણે જોડાનું એક ઘણું ભારે પોટલુ બાંધીને તેને માથે ઉપાડી લીધું, અને રાણીને કહ્યું કે હું અહીંથી બીજા દેશમાં જઉં છું." રાણીએ પૂછયુ, "તો આ જોડાનું પોટલું શા માટે માથે મૂકયુ છે?" તેણે જવાબ આપ્યો, "આટલા જોડાથી જેટલા દેશોમાં

अथैकादशो गोलकदृष्टान्तः--

कस्यचिद् बालकस्य नासा नलिकायां लाक्षागोलकः कथंचित् प्रविष्टः। तस्य पिता सुवर्णकारस्य समीपे तं बालकं नीतवान्। सुवर्णकारः प्रतप्ताग्रभागया लौहशलाकया शनैः शनैर्यत्नतो लाक्षागोलकं प्रताप्य शनैः शनैः समाकृष्टवान्।

॥ इत्येकादशो गोलकदृष्टान्तः ॥ ११ ॥

इस प्रकार के लोकापवाद के भय से देश बाहिर चले जाने का उसका वह अपना आदेश वापिस ले लिया ॥१०॥

॥ यह दसवां भण्डनदृष्टान्त हुवा ॥ १० ॥

ग्यारहवां गोलकदृष्टान्त-

एक किसी बालक की नाक में लाख की एक गोली अन्दर चली गई थी। उसके पिता ने जब बालक की इस स्थिति को देखा तो वह शीघ्र ही उसको किसी सुनार के पास ले गया। सुनार ने बडी चतुराई के साथ उसे बाहर निकालने का प्रयत्न किया। सब से पहिले उसने एक लोहे की पतली सी शलाई ली। उस को आगी में गरम किया और धीरे२ उस लाख की गोली पर उसे चिपकाया तो इस तरह कुछ देर तक करते रहने से वह लाख की गोली पिघलकर नाक से बाहर निकल आई। बाद में उसने फिर उसे बाहर खेंच लिया ॥११॥

॥ यह ग्यारहवां गोलकदृष्टान्त हुआ ॥ ११ ॥

જઈ શકીશ એટલા દેશોમાં આપની અપકીર્તિ કરીશ." રાણીએ પોતાની અપકીર્તિના ભયથી તેને દેશવટો આપવાની પોતાની આજ્ઞા પાછી ખેંચી લીધી.

॥ આ દશમું ભંડનદૃષ્ટાંત સમાપ્ત ॥ ૧૦ ॥

અગિયારમું ગોલકદૃષ્ટાંત—

કોઈ એક બાળકના નાકની અંદર લાખની ગોળી ઊંડી ઉતરી ગઈ. જ્યારે તેના પિતાએ બાળકની આ સ્થિતિ જોઈ ત્યારે તે તરતજ તેને એક સોની પાસે લઈ ગયો. સોનીએ ઘણી ચતુરાઈથી તે ગોળીને બહાર કાઢવાનો પ્રયત્ન કર્યો. સૌથી પહેલાં તેણે લોઢાની એક પાતળી સળી લીધી. તેને અંગીઠીમાં ગરમ કરી. અને ધીમે ધીમે તે લાખની ગોળીમાં તેને ભોંકી. આ પ્રમાણે થોડી વાર કરતા રહેવાથી તે લાખની ગોળી ઓગળીને નાકમાંથી બહાર નીકળી આવી. પછી તેને બહાર ખેંચી લીધી ॥ ૧૧ ॥

॥ આ અગિયારમું ગોલકદૃષ્ટાંતસમાપ્ત ॥ ૧૧ ॥

अथ द्वादशः स्तम्भदृष्टान्तः---

कश्चित् राजा योग्यसचिव प्राप्त्यर्थं नगरवर्तिनो महाविस्तरस्य जलाशयस्य मध्ये स्तम्भं स्थापितवान् एवं घोषणां च कारितवान्-यस्तटे तिष्ठन् रज्ज्वास्तम्भमिमं बध्नीयात् तस्मै लक्षं पारितोषिकं राजा दास्यतीति । एवं भूतां घोषणां श्रुत्वा केनचिद् बुद्धिमता तथाकर्तुं स्वीकृतम् । ततोऽसौ जलाशयस्य तटे कीलकमेकं स्थापयित्वा तत्र रज्जुंबद्ध्वा चतुर्षु तटेषु तां नयन् समागतः । तेन स मध्यवर्ती स्तम्भो रज्जुबद्धो जातः । एवं तद्बुद्धिं निरीक्ष्य परितुष्टो राजा तं स्वसचिवं कृतवान् ।

॥ इति द्वादशः स्तम्भदृष्टान्तः ॥ १२ ॥

बारहवां स्तम्भदृष्टान्त-

किसी राजा ने योग्य मंत्री की प्राप्ति के लिये नगर के पास के विस्तृत तालाब के बीच में एक स्तम्भ गढवा कर इस प्रकार की घोषणा करवाई कि जो कोई व्यक्ति तट पर बैठा २ रस्सी से इस स्तम्भ को बांध देगा उस के लिये राजा एक लाख रुपये का पारितोषिक देगा। इस प्रकार की घोषणा कों सुनकर किसी बुद्धिमान् व्यक्ति ने इस प्रकार करना स्वीकार कर लिया । बाद में उसने जलाशय के एक तट पर एक लोहे की कील गाढ दी और उस में रस्सी बांधकर उस को तलाब के चारों कोनों पर उस ने फिराया। इस तरह चारों कोनों पर रस्सी के फिराने से वह मध्यवर्ती खंभा उस रस्सी द्वारा अनायास बंध गया। उस व्यक्ति की ऐसी बुद्धि की चतुराई देखकर राजा ने बड़ी प्रसन्नता प्रकट करते हुए

બારમું સ્તમ્ભદષ્ટાંત—

કોઈ એક રાજાએ યોગ્ય મંત્રી મેળવવાને માટે નગરની પાસેના વિશાળ તળાવની વચ્ચે સ્થંભ ઉભો કરાવીને એવી ઘોષણા કરાવી કે જે કોઈ માણસ તળાવના કાંઠે બેઠાં બેઠાં દોરડા વડે આ થાંભલાને બાંધી દેશે તેને રાજા એક લાખ રૂપીયાનું ઈનામ આપશે. આ પ્રકારની ઘોષણા સાંભળીને કોઈ બુદ્ધિશાળી માણસે તે કામ કરવાનું માથે લીધું. પછી જળાશયને એક કાંઠે તેણે એક લોઢાનો ખીલો ખોડયો અને તેમાં દોરડું બાંધીને તે દોરડાને તળાવની ચારે તરફ તેણે ફેરવ્યું. આ પ્રમાણે ચારે ખૂણે દોરડું ફરી વળવાથી વચ્ચેનો તે સ્થંભ તે દોરડા દ્વારા અનાયાસ બંધાઈ ગયો. તે માણસનું આ બુદ્ધિચાતુર્ય જોઈને રાજાએ ઘણી પ્રસન્નતા પ્રગટ કરીને તેને પોતાના રાજ્યનું પ્રધાનપદ સોંપ્યું. ॥ ૧૨ ॥

॥ આ બારમું "સ્તમ્ભદષ્ટાંત" સમાપ્ત ॥ ૧૨ ॥

अथ त्रयोदशः खुड्डग – क्षुल्लक (बालक) दृष्टान्तः—

काचित् परिव्राजिका राज्ञः समीपे प्रतिज्ञां कृतवती—सर्वं कार्यं कर्तुं शक्नोमि, कलासु मां पराजेतुं कोऽपि समर्थो नास्ति । राज्ञा घोषणा कारिता—यदि कश्चित् कलाकारः कलासु परिव्राजिकां पराजयेत्, तदा तस्मै राज्ञा पारितोषिकं दास्यते । घोषणां श्रुत्वा कश्चिद् बालको राज्ञः समीपमागत्य वदति—राजन्! अहं परिव्राजिकां पराजेष्यामि किन्तु ममापराधः क्षन्तव्यः । राज्ञा तथैव स्वीकृतम् । परिव्राजिका

उस को अपने राज्य का मंत्री पद प्रदान कर दिया ॥१२॥

॥ यह बारहवाँ स्तम्भदृष्टान्त हुआ ॥१२॥

तेरहवां क्षुल्लक (बालक) दृष्टान्त–

किसी परिव्राजिका ने राजा के पास ऐसी प्रतिज्ञा कि मैं सब काम कर सकती हुं। ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है जो कलाओं में मुझे पराजित कर सके। कारण मुज से कोई भी कला अछूती नहीं बची है। मैं सब कलाओं में निपुण हू । उस की ऐसी बात सुनकर राजा ने घोषणा करवाई कि यदि कोई कलाकार कलाओं में परिव्राजिका को पराजित कर सके तो वह इस के समक्ष अपनी कलाभिज्ञता प्रकट करने के लिये आवे यदि वह इस के समक्ष विजय श्री पाने का अधिकारी प्रमाणित हो जायगा तो उस को मेरी ओरसे विशेष पारितोषिक दिया जायगा। इस घोषणा को सुनकर राजा के पास उसी समय एक बालक आया और आते ही उसने कहा—महाराज! मैं परिव्राजिका को जीत सकता हूं परन्तु मेरा एक अपराध क्षमा किया जावे तो। राजा ने उस को अभय देकर कहा

તેરમું ક્ષુલ્લક (બાલક) દૃષ્ટાંત—

કોઈ પરિવ્રાજિકાએ રાજાની પાસે એવી પ્રતિજ્ઞા કરી કે “ હું સઘળાં કામ કરી શકું છું. કળાઓમાં મને પરાજિત કરી શકે તેવી કોઈ વ્યક્તિ નથી. કારણ કે કોઇ પણ કળાનો મને અનુભવ ન હોય તેવું નથી. હું સઘળી કળાઓમાં નિપુણ છું ” તેની એવી વાત સાંભળીને રાજાએ ઘોષણા કરાવી કે જો કોઈ કળાકાર કળાઓમાં પરિવ્રાજિકાને પરાજિત કરી શકે તેમ હોય તો તે તેની પાસે પોતાની કળાનિપુણતા પ્રગટ કરવા માટે આવે, જો તે તેની સમક્ષ વિજય પ્રાપ્ત કરવાનો અધિકારી સાબીત થશે તો તેને મારા તરફથી વધારાનું ઈનામ પણ આપવામાં આવશે. આ ઘોષણા સાંભળીને એ જ વખતે રાજાની પાસે એક બાળક આવ્યો અને આવતાં જ તેણે કહ્યું “ મહારાજ! હું પરિવ્રાજિકાને હરાવી શકું તેમ છું પરન્તુ આપ મારો એક અપરાધ માફ કરો તો જ તેમ બની શકશે.” રાજાએ તેને અભય દઈને કહ્યું “ તારો અપરાધ

प्राह—लघुरयंबालकः कथं मम पराजयं करिष्यति। ततो बालकः स्वकीयं कौपीनवस्त्रमपनीय नग्नमुद्रयानानाविधमासनं प्रदर्श्य परिव्राजिकामवदत्—परिव्राजिके! एवमेव नग्नमुद्रया स्वकलाकौशलं प्रदर्शय। तदा एवं कर्तुमसमर्था परिव्राजिका स्वपराजयं मत्वा लज्जिता सती ततश्चलिता। लोकास्तस्य बालकस्य विजयं प्रोक्तवन्तः॥

इति त्रयोदशः क्षुल्लकदृष्टान्तः ॥ १३ ॥

तुम्हारा अपराध क्षमा है, बताओ अपनी कलाओं का कौशल। बालक को देखकर परिव्राजिका कहने लगी–महाराज! यह नन्हासा बालक कलाओं में क्या कुशलता प्रकट कर सकेगा? और कैसे मेरा पराजय कर सकेगा। इस तरह परिव्राजिका का आक्षेप सुनकर बालक ने उसी समय लंगोटी खोलकर नग्नावस्था में ही अनेक प्रकार के आसनों का प्रदर्शन करना प्रारंभ किया। जब वह अपना काम पूर्णरूप से समाप्त कर चुका तो बाद में परिव्राजिका से बोला परिव्राजिके! तुम भी इसी मुद्रा में होकर अपनी कलाकुशलता बतलाओ। बालक की इस बात से असहमत होकर वह अपनी कलाकुशलता प्रदर्शित करने में इस रूप में असमर्थ रही इसलिये बालक के समक्ष उसने अपना पराजय स्वीकार कर लिया और वहां से अनमनी होकर वह चली गई। लोगों ने बालक की खूब प्रशंसा की ॥१३॥

॥ यह तेरहवा क्षुल्लक (बालक) दृष्टान्त हुआ ॥१३॥

માફ કરીશ, તારૂં કળાકૌશલ બતાવ." બાળકને જોઈને પરિવ્રાજિકા કહેવા લાગી, "આ નાનકડો બાળક કળાઓમાં શી કુશળતા પ્રગટ કરી શકવાનો છે? અને મારો પરાજય કેવી રીતે કરી શકશે? પરિવ્રાજિકાનો આ પ્રકારનો આક્ષેપ સાંભળીને તે બાળકે ત્યારે જ લંગોટી છોડી નાખીને નગ્નાવસ્થામાં જ અનેક પ્રકારનાં આસનો બતાવવાનો પ્રારંભ કર્યો. જ્યારે તેણે પૂર્ણરૂપે પોતાનું કામ પૂરૂં કર્યું ત્યારે તેણે પરિવ્રાજિકાને કહ્યું, "પરિવ્રાજિકા! તમે પણ મારા પ્રમાણેની મુદ્રામાં તમારૂં કળાકૌશલ બતાવો." બાળકની આ વાત સાથે અસમ્મત થઈને તે પોતાનું કળાકૌશલ્ય એ રીતે બતાવવાને અસમર્થ થઇ. તે કારણે બાળકની પાસે તેણે પોતાનો પરાજય સ્વીકારી લીધો અને ત્યાંથી નારાજ થઇને તે ચાલી ગઈ. લોકોએ બાળકની ખૂબ પ્રશંસા કરી. ॥૧૩॥

॥ આ તેરમું ક્ષુલ્લક (બાળક) દૃષ્ટાંત સમાપ્ત ॥ ૧૩ ॥

अथ चतुर्दशो मार्गदृष्टान्तः—

सभार्यः कश्चित् पुरुषो यानेन ग्रामान्तरं गच्छति। क्वचित् पथि तस्य भार्या शरीर चिन्तार्थं यानादवतीर्य किंचिद्दूरे गत्वा शङ्कां निवारयति। अत्रान्तरे तत्र प्रदेशे निवसन्ती काचिद् विद्याधरी रथारूढं तं पुरुषमतिसुन्दरं दृष्ट्वा मोहिता जाता। सा तस्य भार्यायारूपं धृत्वा सत्वरमागत्य रथोपरि समारूढा। यदा सा तद्भार्या शरीरचिन्तां निवार्य रथसमीपे समायाति, तदाऽन्यां स्त्रियं स्वसमानरूपां रथोपरि पश्यति। विद्याधरी तद्भार्यामन्तिकागतां वीक्ष्य पुरुषं कथयति—इयं काचिद् व्यन्तरी मत्सदृशरूपं विधाय त्वत्समीपे समागच्छति। अतो यानं चालय। एवमुक्तः

चौदहवां मार्गदृष्टान्त—

एक समय की बात है कि कोई पुरुष अपनी पत्नी के साथ रथ में बैठकर किसी दूसरे गांव जा रहा था। चलते २ मार्ग में उस की पत्नी को मलत्याग की बाधा हो गई। वह कुछ दुर जाकर निवटने लगी। इतने में एक विद्याधरी ने जो उस स्थान पर रहती थी, रथ में बैठे हुए उस सुन्दर युवा को देखा, देखते ही वह उस पर मुग्ध हो गई। उसी समय उस ने विद्या के प्रभाव से उस की स्त्री का रूप धारण किया और उस के पास आकर वह रथ पर बैठ गई। इतने में ही मलत्याग से उस की खास पत्नी आगई। उस ने आते ही ज्यों ही उस विद्याधरी को रथ में बैठी हुई देखी और विद्याधरी ने उस को आती हुई देखी तो वह बनावटी स्त्री उस युवा से कहने लगी—देखो! यह कोई व्यन्तरी मेरा जैसा रूप बनाकर आप के पास आ रही है इसलिये आप

ચૌદમું માર્ગ દૃષ્ટાંત—

એક સમયની વાત છે કે કોઈ પુરુષ પોતાની પત્ની સાથે રથમાં બેસીને બીજે ગામ જતો હતો. મુસાફરી દરમિયાન માર્ગમાં તેની પત્નીને ઝાડે ફરવા જવાની જરૂર પડી, તે થોડે દૂર જઈને ઝાડે ફરવા બેઠી. એવામાં એક વિદ્યાધરી, કે જે તે સ્થાને રહેતી હતી, તેણે રથમાં બેઠેલ તે સુંદર યુવાનને જોયો. જોતાં જ તે તેના ઉપર મોહિત થઈ ગઈ એ જ વખતે તેણે પોતાની વિદ્યાના પ્રભાવથી તેની સ્ત્રીનું રૂપ ધારણ કર્યું અને તેની પાસે આવીને તે રથમાં બેસી ગઈ. એવામાં ઝાડે જવાનું કામ પતાવીને તેની પોતાની પત્ની આવી પહોંચી. તેણે આવતાં જ જેવી તે વિદ્યાધરીને રથમાં બેઠેલી જોઈ અને વિદ્યાધરીએ તેને આવતી જોઈ ત્યારે તે બનાવટી સ્ત્રીએ તે યુવાનને કહ્યું, "જુવો, આ કોઈ વ્યન્તરી મારા જેવું રૂપ બનાવીને તમારી પાસે આવી રહી છે. તેથી આપ જલ્દી

पुरुषस्तथैव रथं चालयति। इतश्च सा रुदती आर्तनादं कुर्वती रथस्य पश्चाद्भागे संलग्ना धावमाना समागच्छति। तस्याः आर्तनादं श्रुत्वा स पुरुषो मन्दं मन्द रथं चालयति। तदा सा मानुषी स्त्री विद्याधरी च मिथः कलहं कुर्वती ग्रामे समागत्य न्यायाधीशस्य पुरस्तादभियोगं करोति। न्यायाधीशः पुरुषं पृच्छति-कथय, का त्वदीया भार्या। एवं पृष्टोऽसौ पुरुषः स्त्रियं निर्णेतुमसमर्थो जातः। ततो न्यायाधीशः स्वबुद्ध्या पुरुषं दूरे नीत्वा द्वे अपि स्त्रियावुक्तवान्-कथितवान् युवयोर्मध्ये या पूर्वं स्वहस्ते नास्य स्पर्शं करिष्यति-तस्या एव पतिरयं भविष्यति। तदा विद्याधरी दिव्यशक्त्या स्वहस्तं विस्तृतं कृत्वा पूर्वमेव तं स्पृशति। न्यायाधीशो विद्याधरीं

रथ को शीघ्र यहां से ले चलिये। बनावटी स्त्री की ऐसी बात सुनकर उसने वहां से रथ को आगे हांकना प्ररंभ कर दिया। पहिली स्त्री ने यह हालत देखी तो वह रथ के पीछे २ रोती हुई चलने लगी। युवाने जब उसका आर्तनाद सुना तो उस को उस पर करुणा आगई और रथ की चाल उसने कुछ ढीली कर दी। दोनों स्त्रियां परस्पर में लड़ने झगड ने लगी और इसी हालत में गांव में आपहुँची। वहां आते ही पहिली स्त्रीने उस दुसरी स्त्री पर अभियोग लगाकर उसको कचहरी में न्यायाधीश के समक्ष उपस्थित किया। न्यायाधीश ने पुरुष से पूछा-कहो इनमें तुम्हारी स्त्री कौनसी हैं? पुरुष ने कहा-महाराज! मैं इसका निर्णय करने के लिये असमर्थ हूं। जब पुरुष की असमर्थता न्यायाधीश ने देखी तो उसने उस को वहां से दूर कर के उन दोनों स्त्रियों से कहा-तुम दोनों में से जो सब से पहिले अपने हाथ से यहां ही खडी २ इस पुरुषको स्पर्श करेंगी वही इस की पत्नी और उसी का यह पति माना जावेगा। न्यायाधीश

રથને અહીંથી હંકારી મૂકો." બનાવટી સ્ત્રીની એવી વાત સાંભળીને તેણે રથને ત્યાંથી આગળ હંકારવા માંડયો. ખરી પત્નીએ જ્યારે તે જોયું ત્યારે તે રોતી રોતી રથની પાછળ દોડવા લાગી. યુવાને જ્યારે તેનો આર્તનાદ સાંભળ્યો ત્યારે તેને તેના પર દયા આવી, અને તેણે રથની ગતિ થોડી ઘટાડી નાખી. બન્ને સ્ત્રીઓ પરસ્પર ઝગડો કરવા લાગી અને એ જ હાલતમાં ગામમાં આવી પહોંચી. ત્યાં આવતાં જ પહેલી સ્ત્રીએ બીજી સ્ત્રી પર ફરિયાદ કરીને તેને કચેરીમાં ન્યાયાધીશની આગળ હાજર કરી. ન્યાયાધીશે પુરુષને પૂછ્યું, "કહો આ બેમાંથી તમારી પત્ની કોણ છે?" પુરુષે કહ્યું, "સાહેબ, તેનો નિર્ણય કરવાને હું અસમર્થ છું." જ્યારે પુરુષની અસમર્થતા ન્યાયાધીશે જોઈ ત્યારે તેમણે તેને ત્યાંથી દૂર મોકલીને તે બન્ને સ્ત્રીઓને કહ્યું, "તમારા બન્નેમાંથી જે અહીં ઉભી ઉભી પોતાના હાથથી સૌથી પહેલાં તેનો સ્પર્શ કરશે એ જ તેની પત્ની

विज्ञाय वदति–' इतो गच्छ, त्वमस्य भार्या न भवसि इयं मानुषी अयं स्वत्पतिर्नास्ति, विद्याधरी त्वमसि। त्वया देवशक्त्या स्वहस्तो विस्तारितः। इयं तु मानुषी ' इत्युक्त्वा तस्मै मानुषीं स्त्रियं प्रदत्तवान्।

॥ इति चतुर्दशो मार्गदृष्टान्तः ॥ १४ ॥

अथ पञ्चदशः स्त्रीदृष्टान्तः—

मूल देवः कण्डरीक नाम्ना मित्रेण सह गच्छति इतश्च कोऽपि सभार्यः पुरुषस्तेन मार्गेण तत्संमुखं समायाति। कण्डरीकस्तद्भार्यामवलोक्य मोहितो जातः।

की इस बात को सुनते ही विद्याधरी ने दिव्यशक्ति के प्रभाव से अपना हाथ लम्बाकर वहीं से खडी २ उस पुरुष को पहिले स्पर्श कर लिया। ऐसी स्थिति देखकर "यह विद्याधरी है" ऐसा न्ययाधीश ने जान लिया और वह उस से कहने लगा–बस अब तुम यहां से चली जाओ, तुम इस की पत्नी नहीं हो। पत्नी तो इस की यह है। तुम तो विद्याधरी हो। दिव्यशक्ति के प्रभाव से ही तुमने अपना हाथ विस्तारित किया है। इस तरह औत्पत्तिकी बुद्धिसे न्यायाधीश ने इस अभियोग का उचित निर्णय कर वह स्त्री उस के पति को दे दी ॥१४॥

॥ यह चौदहवां मार्गदृष्टान्त हुआ ॥१४॥

पन्द्रहवां स्त्रीदृष्टान्त—

एक था मूलदेव और उसके मित्र का नाम था कण्डरीक। ये दोनों कहीं जा रहे थे। जिस मार्ग से होकर ये दोनों चल रहे थे उसी मार्ग

અને તેનોજ તે પતિ માનવામાં આવશે" ન્યાયાધીશની આ વાત સાંભળતાં જ વિદ્યાધારીએ દિવ્ય શક્તિના પ્રભાવથી પોતાનો હાથ લંબાવીને ત્યાં ઉભા ઉભા જ તે પુરુષનો પહેલાં સ્પર્શ કર્યો. આ સ્થિતિ જોઈને ન્યાયાધીશ સમજી ગયાં કે "આ વિદ્યાધરી છે," અને તેમણે કહ્યું, "બસ હવે તું અહીંથી ચાલી જા. તું આની પત્ની નથી. આ સ્ત્રી જ તેની પત્ની છે. તું તો વિદ્યાધરી છે. દિવ્યશક્તિના પ્રભાવથી જ તેં તારો હાથ લંબાવ્યો છે." આ પ્રમાણે ઔત્પત્તિકી બુદ્ધિથી ન્યાયાધીશે આ ફરિયાદનો યોગ્ય નિર્ણય કરીને તે સ્ત્રી તેના પતિને સોંપી.

॥ આ ચૌદમું માર્ગદૃષ્ટાંત સમાપ્ત ॥ ૧૪ ॥

પંદરમું સ્ત્રી દૃષ્ટાંત–

મૂળદેવ નામનો એક માણસ હતો. તેને કંડરીક નામનો મિત્ર હતો. તેઓ બન્ને કોઈ સ્થળે જતાં હતાં. જે માર્ગે તેઓ જતાં હતાં એ જ માર્ગ ઉપરથી

कण्डरीको मूलदेवं वदति-यदीयं प्राप्यते तदा जीविष्यामि, नान्यथा । मूलदेवः प्राह-त्वरितो मा भव साधयिष्यामि तव मनोरथम् । ततस्तौ द्वावप्यलक्षितौ सत्वरं दूरं गतौ । ततो मूलदेवः कण्डरीकमेकस्मिन् वनकुञ्जेस्त्रीवेषेणसंस्थाप्य मार्गे समागतः । ततः पश्चात् सभार्यः स पुरुषस्तत्र समायातः । मूलदेवस्तं पुरुषं वदति-भो महापुरुष! अस्मिन् वननिकुञ्जे मम भार्यायाः प्रसवकालो वर्तते । अतः क्षणमात्रं स्वभार्यां तत्र गन्तुमाज्ञापय । पत्या विसर्जिता सा कण्डरीकस्य पार्श्वे समागता । तत्र सा पुरुषं विज्ञाय स्वशीलं रक्षयन्ती स्वपतिसमीपे पुनः समागता ॥

॥ इति पञ्चदशः स्त्रीदृष्टान्तः ॥ १५ ॥

से एक कोई दूसरा मनुष्य अपनी पत्नीको साथ में लेकर इनकी तरफ आ रहा था । कण्डरीक ने ज्यों ही उसकी पत्नी को देखा तो वह उस पर मुग्ध हो गया । मूलदेव से कहने लगा-भाई यदि मुझे यह स्त्री मिले तो ही मैं जी सकता हूं नहीं तो नहीं । कण्डरीक की ऐसी बात सुनकर मूलदेव ने उससे कहा-शीघ्रता मत करो-धीरे २ तुम्हारा मनोरथ मैं पूर्णकरूंगा । ऐसा कह कर उसने उसको धैर्य बंधा दिया । अब वे दोनों अलक्षित होकर वहां से दूर चल दिये । मूलदेव ने इसके बाद कंडरीक को एक वन निकुञ्ज में स्त्री वेष पहिराकर बैठा दिया और आप रास्ते में आकर बैठ गया । चलते २ वह पुरुष भी सपत्नीक वहां आ गया । मूलदेव ने उससे कहा-भाई इस वन निकुञ्ज में मेरी भार्या बैठी हुई है, उसका प्रसव काल बिलकुल ही नजदीक है सो आप कृपा कर उसके पास एक क्षण मात्र के लिये अपनी पत्नी को जाने की आज्ञा

કોઈ બીજો માણસ પોતાની પત્નીને સાથે લઈને તેમના તરફ આવતો હતો. કંડરીકે જેવી તેની પત્નીને જોઈ કે તે તેના પર મોહિત થઈ ગયો. તેણે મૂળદેવને કહ્યું, "ભાઈ! જો મને આ સ્ત્રી મળશે તો જ હું જીવી શકીશ, નહીં તો જીવી શકીશ નહીં" કંડરીકની એવી વાત સાંભળીને મૂળદેવે તેને કહ્યું, "ઉતાવળ કરો મા ધીરે ધીરે હું તારો મનોરથ પૂરો કરીશ." આમ કહીને તેણે તેને આશ્વાસન આપ્યું. હવે તેઓ બન્ને તેમની નજરે ન પડે એટલે દૂર ચાલ્યા ગયા. ત્યાર બાદ મૂળદેવે કંડરીકને સ્ત્રીનો પોષાક પહેરાવીને એક વન નિકુંજમાં બેસાડી દીધો અને પોતે રસ્તા પર આવીને બેસી ગયો. ચાલતાં ચાલતાં પેલો પુરુષ પણ પત્નીની સાથે ત્યાં આવી પહોંચ્યો. મૂળદેવે તેને કહ્યું "આ વન નિકુંજમાં મારી પત્ની બેઠી છે, તેનો પ્રસવકાળ તદ્દન નજદીક આવ્યો છે. તો આપ કૃપા કરીને તેની પાસે એક ક્ષણ માત્રને માટે તમારી પત્નીને જવાની આજ્ઞા

अथ षोडशः पतिदृष्टान्तः—

एकस्य क्षेत्रस्य स्वामी कश्चित् कृषीवल आसीत् । तं दुर्बलं विज्ञाय कश्चिदपरो-धूर्तः कृषीवलः प्राह—अरे अस्य क्षेत्रस्य पतिर्मां विना कोऽन्यो भवितुमर्हति । एवं विवदमानौ तौ न्यायालयं गतौ । न्यायाधीशः पृथक् पृथगुभौ रहसि नीत्वा प्राह—

दे दीजिये । मूलदेव की ऐसी करुणोत्पादक बात सुनकर उसने अपनी पत्नी को वहां जाने के लिये आदेश दे दिया। वह पति का आदेश पाकर कण्डरीक के पास चली आई । परन्तु जब उसने स्त्री के वेष में छिपे हुए पुरुष को जाना तो वह अपने शील की किसी तरह रक्षा करती हुई वापिस अपने पति के पास लौट आई ॥ १५ ॥

॥ यह पन्द्रहवां स्त्रीदृष्टान्त हुआ ॥ १५ ॥

सोलहवां पतिदृष्टान्त—

किसी एक खेत का स्वामी कोई किसान था। वह कमजोर था। उसको कमजोर देखकर किसी दूसरे धूर्त किसानने उससे कहा—भाई ! इस खेत के मालिक तुम नहीं हो, मैं हूं, कारण मेरे सिवाय यहां खेत का मालिक और कौन हो सकता है । इस तरह उन दोनों में उस खेत को लेकर विवाद खड़ा हो गया। परस्पर में जब इसका निबटेरा नहीं हुआ तो वे दोनों कचहरी पहुँचे। कचहरी में उन्हों ने अपना २ अभियोग पेश किया। न्यायाधीश ने बडे ध्यान से उन दोनों की बातों को सुना। अन्त में वह अलग २ एकान्त में लेजाकर एक एक से पूछने लगा,

---

આપો" મૂળદેવની આવી કરુણાજનક વાત સાંભળીને તેણે પોતાની પત્નીને ત્યાં જવાની આજ્ઞા કરી. તે પતિની આજ્ઞા થતાં કંડરીક પાસે ચાલી આવી. પણ જ્યારે તેણે સ્ત્રીના વેષમા છૂપાયેલ પુરુષને જોયો ત્યારે તે પોતાના શિયળની રક્ષા કરતી કોઇ પણ રીતે પોતાના પતિ પાસે પાછી ફરી ॥ ૧૫ ॥

॥ આ પંદરમું સ્ત્રી દ્દષ્ટાન્ત સમાપ્ત ॥ ૧૫ ॥

સોળમું પતિદ્દષ્ટાન્ત–

કોઈ એક ખેતરનો માલીક એક ખેડૂત હતો. તે કમજોર હતો. તેને કમજોર જોઇને કોઈ બીજા ધૂર્ત ખેડૂતે તેને કહ્યું, "ભાઈ! આ ખેતરના માલીક તમે નથી, હું છું, કારણ કે મારા સિવાય અહીં બીજો કોઇ ખેતરનો માલિક ન હોઈ શકે." આ રીતે આ ખેતર બાબતમાં તે બન્ને વચ્ચે વિવાદ થયો. આપસ આપસમાં તેનો કોઈ નિવેડો ન આવતા તેઓ કચેરીમાં પહોંચ્યા. કચેરીમાં તેમણે પોતપોતાની હકીકત રજુ કરી, ન્યાયાધીશે ઘણા ધ્યાનપૂર્વક તે બન્નેની વાત સાંભળી. છેવટે તેમણે તે દરેકને અલગ અલગ એકાન્તમાં લઇ જઇને પૂછ્યું–

अतीतेषु द्वादशेषु वर्षेषु प्रतिवर्षं यानि धान्यानि त्वया समुत्पादितानि तानि क्रमशो ब्रूहि । एवमुक्तः क्षेत्रपतिः क्रमेण द्वादशेषु वर्षेषु तत्रोत्पादित धान्यानां नामान्युक्तवान्। अपरेण धूर्तेन तु तद्विपरीतमेवोक्तम् । न्यायाधीशः पुनराह-स्वभाषिते प्रमाणपत्रं प्रदर्शय । तदा क्षेत्र पतिना प्रतिवर्षीयं प्रमाणपत्रं स्वगृहादानीय तस्मै प्रदर्शितम् । अपरो धूर्तस्तु प्रमाणपत्रमानेतुमसमर्थो जातः । ततस्तस्मै क्षेत्र स्वामिने न्यायाधीशेन क्षेत्रं प्रदत्तम् ' अपरस्तु धूर्तो निगृहीतः ।

॥ इति षोडशः पतिदृष्टान्तः ॥ १६ ॥

पहिले क्षेत्रपति को पूछा कि-गत बारह वर्षों में प्रत्येक वर्ष में जितना अनाज इस खेत में उपजा है उन सब का हमें पृथग् २ नाम लेकर हिसाब समझाओ । इस तरह न्यायाधीश के कथन को सुनकर क्षेत्रपति ने बारह वर्ष में जो जो अनाज जितना पैदा किया था उस सबका नाम निर्देश करते उसको हिसाब समझा दिया । फिर एकान्त में उस धूर्त से यही बात पूछी गई तो उसने उस पहिले कथन से अपना मन्तव्य विपरीत बतलाया। इस तरह उन दोनों की भिन्न २ बातें सुनकर न्यायाधीश ने पुनः उनसे कहा-भाई तुम अपना २ प्रमाण पत्र उपस्थित करो। क्षेत्रपति ने उसी समय घर से लाकर प्रत्येक वर्ष का प्रमाण पत्र न्यायाधीश को लेकर दे दिया । परन्तु जो धूर्त था वह इस बात में असमर्थ पाया गया । फिर न्यायाधीशने वह खेत खेत के मालिक को दिलाया और उस धूर्त को दंडित किया ॥ १६ ॥

॥ यह सोलहवां पतिदृष्टान्त हुआ ॥ १६ ॥

પહેલાં ખેતરના માલિકને પૂછ્યું, "ગયા બાર વર્ષોમાં દરેક વર્ષ જેટલું અનાજ આ ખેતરમાં પાકયું હોય તે બધાને નામ વાર મને હિસાબ સમજાવો." આ પ્રમાણે ન્યાયાધીશનું કથન સાંભળીને ખેતરના સાચા માલિકે બાર વર્ષમાં જે જે અનાજ જેટલું જેટલુ પાકયું હતું તે બધાના નામના ઉલ્લેખ સાથે તેનો હિસાબ સમજાવી દીધો. પછી એકાન્તમાં ધૂર્તને પણ એ જ વાત પૂછવામાં એવી, તો તેણે પહેલા ખેડૂતના કથન કરતાં પોતાનું વિપરિત મતવ્ય બતાવ્યું. આ પ્રમાણે તે બન્નેની જુદી જુદી વાત સાંભળીને ન્યાયાધીશે ફરીથી તેમને કહ્યું, "ભાઈઓ! તમે પોતપોતાની સાબીતિઓ રજુ કરો." ક્ષેત્રપતિએ તરત જ ઘરે જઈને પ્રત્યેક વર્ષના પાકનું પ્રમાણપત્ર લાવીને ન્યાયાધીશ આગળ રજુ કર્યું. પણ ધૂર્ત તેમ કરવાને અસમર્થ નિવડયો. પછી ન્યાયાધીશે તે ખેતર ખેતરના સાચા માલિકને અપાવ્યું અને ધૂર્તને શિક્ષા કરી ॥ ૧૬ ॥

આ સોળમું પતિદૃષ્ટાંત સમાપ્ત ॥ ૧૬ ॥

अथ सप्तदशः पुत्रदृष्टान्तः—

कस्यचिद् वणिजो द्वे भार्ये स्तः। तत्रैका पुत्रवती, अपरा त्वपुत्राऽऽसीत्। अपुत्रा भार्या तं सपत्नीबालकं लालयति पालयति। अतः स बालको न जानाति–इयं मम मातुः सपत्नी इति।

एकदा स वणिक् स्वभार्यापुत्रसहितो देशान्तरं गतः। गतमात्र एवासौ मृतः। ततस्तयोः स्त्रियोः पुत्रार्थं कलहो जातः। एकावदति–अयं मम पुत्रस्ततोऽहं गृहस्वामिनी। अपराप्राह—अयं मम पुत्रस्ततोऽहमेव गृहस्वामिनी ' इति। एवं तयोर्विवादे प्रवृत्ते सति द्वे अपि न्यायालयं गते। राजसचिवः स्वबुद्धया निर्णेतुं राजपुरुषान् प्राह–अनयोर्यावन्ति धनानि सन्ति, तेषां द्वि भागं कृत्वा बालकं करपत्रेण

सत्रहवां पुत्रदृष्टान्त—

किसी वणिक् के दो स्त्रियां थीं। इनमें एक पुत्रवती थी और दूसरी पुत्र विना की थी। जिसके पुत्र नहीं था वह स्त्री अपनी सौत के पुत्र का लालन पालन बडे चाव से किया करती थी, इसलिये उस बालक को यह नहीं मालूम हो पाया कि यह मेरी मां है और यह मेरी विमाता है। एक दिन की बात है कि वह वणिक् इन दोनों स्त्रियों के साथ बालक को लेकर परदेश गया, परन्तु दैवदुर्विपाक से वह जाते ही मर गया। उसके मरते ही उन दोनों स्त्रियों में उस लड़के के लिये परस्परमें विवाद खड़ा हो गया। एक ने कहा – यह मेरा लड़का है अतः मैं घर की स्वामिनी हूं। दूसरीने कहा–यह मेरा लडका है, अतः मैं ही घरकी स्वामिनी हूं। इस प्रकार जब उन दोनों में विवाद बढ गया तो वे दोनों ही अन्त में न्यायालय की शरण में पहुंची। राजमंत्री ने अपनी

સત્તરમું પુત્રદષ્ટાંત–

કોઈ એક વણિકને બે પત્ની હતી. તેમાંની એકને એક પુત્ર હતો બીજીને કંઇ સંતાન ન હતું. જેને સંતાન ન હતું તે સ્ત્રી પોતાની શોકયના પુત્રનું ઘણા પ્રેમથી લાલન પાલન કરતી હતી, તેથી તે બાળકને તે ખબર પણ ન હતી કે તે તેની માતા છે કે અપરમાતા. એક દિવસ તે શેઠ બન્ને પત્નીઓ તથા બાળકને લઈને પરદેશ ગયો, પણ દુર્ભાગ્યે તે ત્યાં પહોંચતા જ મરણ પામ્યો. તેનું મૃત્યુ થતાં જ તે બન્ને સ્ત્રીઓ વચ્ચે તે બાળકની બાબતમાં ઝગડો ઉભો થયો. એકે કહ્યું–આ મારો પુત્ર છે માટે ઘરની માલિક હું છું. બીજી સ્ત્રીએ કહ્યું–આ તો મારો પુત્ર છે. તેથી હું જ ઘરની માલિક છું. આ રીતે બન્ને વચ્ચે ઝગડો વધતાં તે બન્ને ન્યાયાલયમાં પહોંચી. રાજમંત્રીએ પોતાની બુદ્ધિથી

द्वौ भागौ कुरुत। एकैकं भागमेकैकस्यै समर्पयत। एतन्मन्त्रिवचनं श्रुत्वा तस्य बालकस्य जननी शिरसि कृतवज्रप्रहारेव परमव्याकुला सति मंत्रिणं प्राह-हे स्वामिन्! अयमेतस्या एव पुत्रोऽस्तु अहं तु पुत्रं नेच्छामि। पुत्रोऽयमस्या एवदीयताम्, किंत्वयं न हन्तव्यः वरमियं गृहस्वामिनी भवतु नास्ति मे किंचिदपि दुःखम्। अहं त्वन्यस्य कस्यचिद्दासीभूत्वा दूरस्थिताऽपि बालकं यदि जीवितं द्रक्ष्यामि, तावताऽपि मनसि मम संतोषः स्यात्। किं तु बालकमनालोक्य मया प्राणान्

बुद्धि से उन दोनों के विवाद का निर्णय किया और राजपुरुषों को आदेश दिया, कि इन दोनों का जितना द्रव्य है उसके दो विभाग करो, साथ में बालक के भी करोंत से चीर कर दो टुकडे करो। एक एक टुकड़ा और द्रव्य का एक एक विभाग इन दोनों को दे दो। इस तरह मंत्री के वचन सुनकर बालक की माता के हृदय में चोट पहुँची। वह वज्रके प्रहार से निहत होकर रोती हुई मंत्री से कहने लगी-स्वामिन्। बालक के दो टुकडे मत करवाइये। भले ही यह बालक इसका रहे। मुझे ऐसी अवस्था में बालक की चाहना नहीं है। पुत्र इसको ही दे दीजिये। कम से कम इसके पास रहने से यह जीवित तो रहेगा। मुझे घर की स्वामिनी बनने में ऐसी अवस्था में कोई सुख नहीं है। यही घर की स्वामिनी बने, मुझे इस बात का जरा भी दुःख नहीं है। मैं तो किसी दूसरे के घर का काम काज कर अपने दिन निकाल लूंगी, परन्तु बालक तो सुरक्षित रहेगा और मैं वहीं से इसको देख २ कर आनंदित

તેમના ઝગડાનો નિર્ણય કર્યો અને રાજપુરૂષોને હુકમ કર્યો કે આ બન્ને પાસે જે ધન છે તેના બે ભાગ પાડો અને બાળકના પણ કરવતથી ચીરીને બે ટુકડા કરો. એક એક ટુકડો તથા દ્રવ્યનો એક એક હિસ્સો આ બન્નેને આપો. મંત્રીના એવાં વચનો સાંભળતાં જ બાળકની માતાના હૃદયમાં આઘાત લાગ્યો. તેના પર જાણે વજ્રનો પ્રહાર પડયો હોય તેમ આઘાત પામેલી તે રડતી રડતી મંત્રીને કહેવા લાગી, "સાહેબ બાળકના બે ટુકડા ન કરાવશો. ભલે આ બાળક તેની પાસે રહે. મને આ હાલતમાં બાળક લેવાની ઈચ્છા નથી. પુત્ર તેને જ આપી દો. તેની પાસે રહેવાથી તે જીવતો તો રહેશે. આ સ્થિતિમાં ઘરની માલિક બનવામાં મને કંઈ સુખ નહીં મળે. ભલે તે જ ઘરની માલિક બને, મને એ વાતનું બિલકુલ દુઃખ નથી. હું તો બીજા લોકોના ઘરનું કામકાજ કરીને જીંદગીના બાકીના દિવસો કાપીશ, પણ બાળક તો સુરક્ષિત રહેશે, અને

धारयितुं न शक्यते। तदा तत्सपत्नी तु न किंचित् प्रोक्तवती। ततः सचिवस्तां पुत्र शोकार्तां दृष्ट्वा जानाति-एषा बालकस्य माता, तस्मादियमेव गृहस्वामिनी भवितुमर्हति, इति। ततो मन्त्रिणा प्रोक्तम्-अयमेतस्याः पुत्रो नास्या इति, सैव च गृहस्वामिनी कृता, अन्या तु निगृहीता॥

॥ इति सप्तदशः पुत्रदृष्टान्तः ॥ १७ ॥

अथाष्टादशो मधुसिक्थदृष्टान्तः—

मधुयुक्तं सिक्थं-मधुसिक्थं मधुच्छत्रम्। कस्याश्चित् पर्वतीय नद्या उभयतटे धीवरा निवसन्ति। उभयतटनिवासिनां धीवराणां जातीय सम्बन्धे सत्यपि परस्परं वैमनस्यमासीत्। अतस्ते धीवराः स्व स्व भार्यां परतीरगमने प्रतिषेधयन्तिस्म।

होती रहुंगी। बालक के मर जाने पर तो महाराज! मैं किसी भी तरह जीवित नहीं रह सकती हूं। जब बालक की माता ऐसा कह रही थी तब उस विमाताने ऐसा कुछ नहीं कहा। अतः मंत्री ने यह जान लिया कि बालक की खास माता यही है और यह नहीं है। इसलिये यही गृहस्वामिनी के योग्य है। ऐसा जानकर वह पुत्र उसको सोंपा और गृहस्वामिनी का पद भी उसको ही दिया। दूसरी उस विमाता को दंडित किया॥ १७॥

॥ यह सत्रहवां पुत्रदृष्टान्त हुआ ॥ १७ ॥

अठारहवां मधुसिक्थ (मधुच्छत्र) दृष्टान्त—

एक नदी थी उसके दोनों तट पर धीवर लोग रहते थे। इनमें यद्यपि जातीय संबंध था तो भी ये परस्पर में लड़ते झगड़ते रहते थे।

હું ત્યાંથી જ તેને જોઇને આનંદિત થતી રહીશ. મહારાજ! બાળક મરશે તો હું કોઈ પણ રીતે જીવી શકીશ નહીં” જ્યારે બાળકની માતા આમ કહેતી હતી ત્યારે વિમાતા એ એવું કંઈ પણ ન કહ્યું. તેથી મંત્રીએ સમજી લીધું કે બાળકની સાચી માતા આ સ્ત્રી જ છે. પેલી નથી. તેથી તેજ ઘરની માલિક થવાની હકદાર છે. તેમ સમજીને તેમણે તે પુત્ર તેને સોંપ્યો અને ઘરની માલિક પણ તેને જ બનાવી. અને બીજી સ્ત્રીને-વિમાતાને સજા કરી. ॥ ૧૭ ॥

આ સત્તરમું પુત્રદૃષ્ટાંત સમાપ્ત ॥૧૭॥

અઢારમું મધુસિકથ (મધપુડા)નું દૃષ્ટાંત-

એક નદી હતી. તેના બન્ને કાંઠે માછીમારો રહેતાં હતાં. તેઓ વચ્ચે જાતિવ્યવહાર હોવાં છતાં તેઓ અંદરો અંદર ઝગડતાં હતાં આ ઝગડાને કારણે

किं तु यदा धीवराः स्वव्यवसायार्थं गृहाद् बहिर्गच्छन्ति, तदा तेषां पत्न्यः परतीरे गत्वा स्वस्वसम्बन्धिनां गृहे गमनागमनं कुर्वन्ति।

एकदा काचिद्धीवरी स्वगृहस्य समीपे कुञ्जे मधुच्छत्रं परतीराद् दृष्टवती। द्वितीयदिवसे तस्याः पतिर्मधुक्रयणार्थं प्रवृत्तः। तदा तस्य भार्या प्राह—मधु मा क्रीणीहि, आगच्छ तत्र स्वगृहसमीपे एव मधुच्छत्रं दर्शयामि।-इत्युक्त्वा मधुच्छत्रं दर्शयितुं पत्या सह गतवती। किन्तु तया मधुच्छत्रं तत्र न दृष्टम्। ततः सा साश्चर्यं

इस लड़ाई झगड़े में बिचारी स्त्रियों पर आपत्ति आती रहती, वें दूसरे तट पर कभी भी अपने संबंधियों के यहां नहीं जा सकती थीं, परन्तु ये लोग अपने २ व्यापार के लिये घर से बाहर चले जाते थे उस समय वे स्त्रियां अपने २ संबंधियों के घर पर आती जाती थी। अब एक दिन की बात है किसी धीवरी ने दूसरे तट पर से अपने घर के पास कुंज में एक मधुच्छत्र लगा हुआ देखा। दूसरे दिन ही उसके पति को मधु की आवश्यकता पड़ गई तो वह मधु लेने के लिये जब बाहर जाने लगा तो उसकी पत्नी ने मना करते हुए उससे कहा-बाहर मधु लेने को मत जाओ, तुम्हारे घर के पास ही मधुच्छत्र लगा हुआ है, चलो, हम तुम्हें बतलावें। ऐसा कहकर वह उस मधुच्छत्र को बताने के लिये पति के साथ गई, परन्तु वहां उसको मधुच्छत्र दिखलाई नहीं पड़ा। उसने आश्चर्य के साथ अपने पति से कहा-यहां से तो मधुच्छत्र दिखलाई

બિચારી સ્ત્રીઓ પર મુશ્કેલી આવી પડતી. તેઓ સામે કાંઠે રહેતા પોતાના સગાં-સંબંધીઓને મળવા જઈ શકતી નહીં; છતાં પણ તેઓ જ્યારે પોત-પોતાના ધંધાને માટે બહાર જતાં ત્યારે તે સ્ત્રીઓ પોત-પોતાના સંબંધીઓને ત્યાં આવતી-જતી રહેતી. હવે એક દિવસ એવું બન્યું કે કોઈ માછણે બીજા કાંઠેથી પોતાના ઘરની પાસેની વૃક્ષકુંજમાં એક મધપૂડો લાગેલો જોયો. બીજે દિવસે જ તેના પતિને મધની જરૂર પડી, તેથી તે મધ લેવા માટે બહાર જવા લાગ્યો. ત્યારે તેની પત્નીએ તેને બહાર જતો રોકીને કહ્યું-"મધ લેવા માટે બહાર જશો મા. તમારા ઘરની પાસે જ મધપૂડો લાગેલો છે, ચાલો તે હું તમને બતાવું." આમ કહીને તે મધપૂડો બતાવવા માટે પતિની સાથે ગઈ, પણ ત્યાં તેને મધપૂડો દેખાયો નહીં. તેણે આશ્ચર્ય સાથે પોતાના પતિને કહ્યું-"અહીં તો મધપૂડો દેખાતો નથી, પણ પેલા કિનારેથી તે સ્પષ્ટ દેખાય છે, તો ચાલો ત્યાંથી બતાવું." પત્નીની એવી વાત સાંભળીને તે તે કિનારા પર તેની સાથે ગયો. જે ઘરમાં તેને આવવા-જવાની મનાઈ કરી હતી, એજ ઘરની પાસે

वदति – परतीरतो मधुच्छत्रं स्पष्टं दृश्यते, गच्छ तत्र गत्वा पश्यामि। धीवरोऽपि तया सह परतीरं गतः। तत्र सा प्रतिषिद्धगृहस्य समीप एव स्थित्वा मधुच्छत्रं प्रदर्शितवती। धीवरेण ज्ञातम्–इयमत्र प्रतिषिद्धे गृहे याति समायाति च। इति धीवरस्यौत्पत्तिकी बुद्धिः।

इत्यष्टादशो मधुसिक्थदृष्टान्तः ॥ १८ ॥

अथैकोनविंशतितमो मुद्रिकादृष्टान्तः—

एकस्मिन्नगरे सत्यवादिनामकः पुरोहितो वर्तते। लोकस्यैवं विश्वासो जातः– अयं समयातिक्रमेऽपि केनचिद्धृतं निक्षेपं ददाति। एवं जातविश्वासः कश्चिद् द्रमक (दरिद्रः)–स्तस्यान्तिके स्वनिक्षेपं निधाय देशान्तरं गतः।

नहीं पड़ता है, परन्तु उस तट से देखने से यह स्पष्ट दिखलाई देता है, इस लिये चलो वहां से दिखलाऊँ। पत्नी की ऐसी बात सुनकर वह उस तीर पर उसके साथ चला गया। जिस घर में उस स्त्री का आना जाना निषिद्ध कर रखा था वह उसी घर के पास खडी होकर अपने पति को मधुच्छत्र दिखाने लगी तो पतिने अपनी बुद्धि से जान लिया कि यह मेरे निषेध किये हुए घर में प्रतिदिन आती जाती है ॥ १८ ॥

॥ यह अठारहवां मधुसिक्थ (मधुच्छत्र) दृष्टान्त हुवा ॥ १८ ॥

उन्नीसवां मुद्रिकादृष्टान्त–

एक नगर में कोई सत्यवादी नाम का पुरोहित रहता था। उसके ऊपर लोगों का ऐसा विश्वास जमा हुआ था कि यह अवधि निकल जाने पर भी कभी भी किसी की धरोहर को हडप कर अपना नहीं करता है–वापिस लौटा देता है। एक समय किसी दरिद्र ने उसके पास अपनी कुछ धरोहर रखकर देशान्तर गया।

ઉભી રહીને તે તેના પતિને મધપૂડો બતાવવા લાગી ત્યારે પતિએ પોતાની બુદ્ધિથી સમજી લીધું કે આ મેં જ્યાં જવાની મનાઈ કરી છે તે ઘેર દરરોજ આવે જાય છે. ॥ ૧૮ ॥

આ અગીયારમું મધપૂડાનું દૃષ્ટાંત સમાપ્ત ॥૧૮॥

ઓગણીસમુ મુદ્રિકા દૃષ્ટાંત–

એક નગરમાં સત્યવાદી નામનો કોઈ એક પુરોહિત રહેતો હતો. તેના ઉપર લોકોને એવો વિશ્વાસ બેસી ગયો હતો કે મુદત પ્રસાર થઈ જવા છતાં પણ તે કોઈની અનામત (થાપણ) પચાવી પાડતો નથી. એક વખત કોઈ દરિદ્ર માણસ તેની પાસે પોતાની અમુક થાપણ મૂકીને પરદેશ ગયો.

स विदेशे बहूनि दिनानि स्थित्वा यदा स्वगृहमागतस्तदा पुरोहितं प्राह-हे पुरोहित! मया त्वयि निहितो निक्षेपो मह्यं दीयताम्। पुरोहितः प्राह-कस्त्वम्? तव निक्षेपः कीदृशः?, नाहं जानामि तव निक्षेपम्।-इति पुरोहित वचनं श्रुत्वा स स्वनिक्षेपार्थं चिन्तातुरा जातः। द्वितीयदिवसे राजमन्त्री पथि गच्छंस्तेन द्रमकेण दृष्टः। स राजमन्त्रिणमाह-महानुभाव! मया पुरोहितान्तिके सहस्ररूप्यकनिक्षेपो निहितः, स मह्यं न दातुमिच्छति, कृपया दापयतु, महानुपकारो भविष्यति। सर्वं वृत्तं विज्ञाय मन्त्री तस्मिन्

वहां रहते २ उसको बहुत दिन निकल चुके। जब वह वापिस वहां से अपने घर पर आया तो उसने पुरोहित से कहा-पुरोहितजी! मैंने आपके पास जो धरोहर रख छोड़ी है वह अब मुझे दे दीजिये। सुनते ही पुरोहित ने कहा-तुम कौन हो? और कैसी तुम्हारी धरोहर है? मुझे तो इस की खबर तक भी नहीं है। पुरोहित की इस बात से बिचारे उस दरिद्र के चित्त में बड़ी चिन्ता हुई और वह विशेष विचार में पड़ गया। दूसरे दिन की बात है कि जब राजमंत्री वहां से होकर जा रहे थे तो उस दरिद्रने उन्हें देख लिया और देखते ही उनके पास जाकर कहने लगा-महाराज! मैंने पुरोहितजी के पास एक हजार रुपया धरोहर के रूप में रख छोडे थे अब वे उन्हें देते नहीं हैं, बडी कृपा होगी नाथ! जो आप उन्हें दिला देवें। मुझ गरीब का बडा उपकार होगा। दरिद्र की ऐसी बात सुनकर मंत्री को उसके ऊपर बड़ी दया आगई। जब मंत्री ने सब बात अच्छी तरह समझ ली तो उसने जाकर यह वृत्तान्त राजा से भी कह दिया। राजाने उसी समय पुरोहितजी को बुलाया

ત્યાં રહેતા રહેતા તેનો ઘણો સમય વ્યતીત થઇ ગયો. જ્યારે તે ત્યાંથી પાછો ફર્યો ત્યારે તેણે પુરોહિતને કહ્યું-"મેં તમારે ત્યાં જે થાપણ મૂકી છે તે હવે મને પાછી આપો." તે સાંભળતા જ પુરોહિતે કહ્યું, "તમે કોણ છો? અને કેવી તમારી થાપણ છે? હું તો તે બાબતમાં કંઇ જ જાણતો નથી." પુરોહિતની એ વાતથી બિચારા દરિદ્રના મનમાં ચિન્તા થઇ અને તે મુંજવણમાં પડયો. બીજે દિવસે જ્યારે રાજમંત્રી ત્યાંથી જતાં હતાં ત્યારે તે દરિદ્રે તેમને જોયા અને તેમને જોતા જ તેમની પાસે જઈને કહ્યું-"મહારાજ! મે એક હજાર રૂપીયા પુરોહિતજી પાસે થાપણ રૂપે મૂકયા હતા. હવે તેઓ મને તે આપતા નથી, આપ તે મને અપાવો તો આપની મોટી મહેરબાની. મારા જેવાં ગરીબ ઉપર મોટો ઉપકાર કર્યો ગણાશે." દરિદ્રની એવી વાત સાંભળીને મંત્રીને તેના પર દયા આવી. જ્યારે મંત્રીએ બધી વિગત બરાબર સમજી લીધી ત્યારે તેણે રાજા પાસે જઇને આખો વૃત્તાન્ત કહી દીધો. રાજાએ એજ વખતે પુરોહિતને બોલાવ્યો.

द्रमके दयावान् जातः। मन्त्रिणा राज्ञे निवेदितम्। ततो राजा पुरोहितमाहूय वदति-अस्य द्रमकस्य निक्षेपस्त्वया धृतः स तस्मै दीयताम्। पुरोहितः प्राह-राजन्! अस्य किमपि मया न गृहीतम्, किं देयम्?। पुरोहितवचनं श्रुत्वा राजा तूष्णीं बभूव। पुरोहिते गृहं गते सति राजा तं द्रमकं पृष्टवान्-सत्यं वद, कस्यान्तिके त्वया निक्षेपः स्थापितः। राज्ञा पृष्टोऽसौ द्रमको 'यदा यत्र यस्य समक्षे च निक्षेपः स्थापितः' सर्वं राज्ञे निवेदितवान्। ततो राजा तद्वचनं निर्णेतुमेकदा तेन पुरोहितेन सह कंचित् क्रीडाविशेषं कर्तुं प्रवृत्तः। तदा नृपः क्रीडाक्रमेण स्वकीयाङ्गुलिमुद्रिकां पुरोहितस्य हस्ते दत्त्वा पुरोहितस्य मुद्रिकां स्वयं गृहीतवान्। तद्वृत्तं

और कहा-तुम्हारे पास जिस दरिद्र की धरोहर रक्खी हुई है वह उसको वापिस कर दो। राजा की बात सुनते ही पुरोहित ने कहा-महाराज! मेरे पास तो इसकी कोई भी धरोहर नहीं रखी हुई है मैं क्या दूं? पुरोहित की ऐसी बातें सुनकर राजा चुप हो गया। पुरोहित वहां से उठकर अपने घर चला आया। अब राजाने उस दरिद्र को बुलाकर पूछा-तुम सत्य २ कहना किसके पास तुमने धरोहर रखी है?। राजा के पूछने पर उस दरिद्र ने जिस समय जहां जिसके समक्ष धरोहर रक्खी थी वह सब बात राजा से स्पष्ट कह दी। अब राजा ने इसका निर्णय करने के लिये अपनी बुद्धि से एक उपाय सोचा, जो इस प्रकार है-एक दिन राजा ने पुरोहित को बुलाकर उनसे कहा-पुरोहितजी! आओ, आज हम लोग कोई विशेष खेल खेलें। ऐसा ही हुआ। वे दोनों क्रीडाविशेष करने लगे। खेल खेल में अंगूठियों का उन दोनों ने परिवर्तन

અને કહ્યું, "તમારી પાસે જે દરિદ્રની થાપણ પડેલ છે તે તેને પાછી સોંપો." રાજાની વાત સાંભળતા જ પુરોહિતે કહ્યું-"મહારાજ! મારે ત્યાં તો તેણે મૂકેલી કોઇ થાપણ નથી. હું શું આપું?" પુરોહિતની એવી વાત સાંભળીને રાજા ચુપ થઇ ગયો, પુરોહિત ત્યાંથી ઉઠીને પોતાને ઘેર ચાલ્યો ગયો. હવે રાજાએ તે દરિદ્રને બોલાવીને પૂછયું અને કહ્યું, "તું સાચે સાચું કહે, કોની પાસે તે થાપણ મૂકી છે?" ત્યારે તેણે જે સમયે, જ્યાં, જેની સમક્ષ થાપણ મૂકી હતી તે બધી વિગત રાજાને સ્પષ્ટ કહી દીધી. હવે રાજાએ તેનો નિર્ણય કરવાને માટે પોતાની બુદ્ધિથી એક યુક્તિ શોધી જે આ પ્રમાણે હતી-એક દિવસ રાજાએ પુરોહિતને બોલાવીને કહ્યું-"પુરોહિતજી! ચાલો, આજે આપણે કોઈ રમત રમીએ. એવું જ બન્યું. તે બન્ને કોઇ ખાસ રમત રમવા લાગ્યા. રમતા રમતા તે બન્નેએ પોતાની અંગૂઠીઓ બદલી લીધી. રાજાએ પોતાની

पुरोहितेन न ज्ञातम्। ततो राजा पुरोहिताङ्गुलिमुद्रिकां कस्यचित् स्वपुरुषस्य हस्ते दत्त्वा प्रोक्तवान्—पुरोहितस्य गृहे गत्वा तद्भार्यामेवं वद–अहं पुरोहितेन प्रेषितोऽस्मि, इदं च नाममुद्राऽभिज्ञानम् , तस्मिन् दिने तस्यां वेलायां या निक्षेपस्य नवलिका त्वत्समक्षममुकप्रदेशे स्थापिता तां शीघ्रं समर्पय ' इति। नृपाज्ञया तेन पुरुषेण तथैव कृतम् , साऽपि च पुरोहितस्य भार्या नाममुद्रां दृष्ट्वाऽभिज्ञानमिलनाच्च ' सत्यमेष पुरोहितेन प्रेषितः ' इति विश्वासं कृतवती। ततः सा पुरोहितभार्या तां द्रमकनिक्षेपनवलिकां समर्पितवती। राज्ञा चान्यासां नवलिकानां मध्ये सा द्रमक-

---

कर लिया–राजा ने अपनी अंगूठी पुरोहित को पहिरा दी और पुरोहित की अंगूठी राजा ने पहिर ली–" यह ऐसा क्यों किया ? " यह बात पुरोहित के ध्यानमें नहीं आई। राजाने पुरोहित की अंगूठी किसी राजपुरुष के हाथ में देते हुए कहा–जाओ पुरोहित के घर पर, वहां उसकी पत्नी से ऐसा कहना–" मुझे पुरोहितजी ने भेजा है, विश्वास न हो तो देखो उनके नाम की यह मुद्रिका है। और उन्होंने यह कहला भेजा है कि उस दिन, उस समय में जो धरोहर की नवलिका (पोटली)–तुम्हारे समक्ष अमुक स्थान पर मैंने रख दी थी वह इसको शीघ्र ही दे दो। " राजपुरुष ने पुरोहित के घर पर आकर ऐसा ही उनकी धर्मपत्नी से कहा। धर्मपत्नी ने भी " इसको अपने नाम की मुद्रिका देकर ही पुरोहित ने मेरे पास भेजा है ऐसा पूर्ण विश्वास उस मुद्रिका को देखकर कर लिया। और जो धरोहर की नवलिका पुरोहित ने उसके समक्ष जहां रक्खी थी उसको उठाकर उसने उस राजपुरुष को दे दी।

અંગૂઠી પુરોહિને પહેરાવી દીધી, અને પુરોહિતની અંગૂઠી પોતે પહેરી લીધી. " આમ કેમ કર્યું ? " તે વાત પુરોહિતના ધ્યાનમાં આવી નહીં. રાજાએ પુરોહિતની અંગૂઠી કોઇ રાજપુરુષના હાથમાં આપીને કહ્યું–" જાઓ, પુરોહિતજીને ઘેર જઇને તેમની પત્નીને આ પ્રમાણે કહેજો–" મને પુરોહિતજીએ મોકલ્યો છે. વિશ્વાસ ન આવે તો જુવો, એમના નામની આ મુદ્રિકા છે, અને કહેવરાવ્યું છે કે તે દિવસે, તે સમયે મેં જે થાપણની થેલી તમારી રૂબરૂ અમુક સ્થાન મૂકી છે તે આને તરત જ આપી દેશો. " રાજપુરુષે પુરોહિતને ઘેર જઇને તેમની પત્નીને એ પ્રમાણે કહ્યું–તેમની ધર્મપત્નીએ પણ " આ માણસને પોતાની મુદ્રિકા આપીને પુરોહિતજીએ જ મારી પાસે મોકલ્યો છે " એવો સંપૂર્ણ વિશ્વાસ તે મુદ્રિકાને જોઈ ને મૂકયો અને જે થાપણની થેલી પુરોહિતજીએ તેની રૂબરૂમાં જ્યાં મૂકી હતી ત્યાંથી લઇને તે રાજપુરુષને આપી દીધી.

नवलिका प्रक्षिप्ता। ततो राजा तं द्रमकमाहूय स्वनवलिकां स्पर्शयितुमादिष्टवान्। ततोऽसा द्रमकः नवलिकां परिज्ञाय हस्तेन स्पृष्टवान्। ततो राजा 'द्रमकोऽयं सत्यं ब्रवीति'–इति मत्वा तां नवलिकां ग्रहीतुमादिशति। पुरोहितं तु दण्डयति स्म।

॥ इत्येकोनविंशतितमो मुद्रिकादृष्टान्तः ॥ १९ ॥

अथ विंशतितमोऽङ्कदृष्टान्तः—

केनाऽपि पुरुषेण कस्यचित् श्रेष्ठिनः समीपे सहस्रसंख्यकरूप्यकैः संभृता नवलिका निक्षिप्ता। स श्रेष्ठि नवलिकाया अधोभागं छित्त्वा ततो रूप्यकाणि निःसार्य कूटरूप्यकैर्भृत्वा छिन्नभागं सीवित्वा यथास्वरूपां तां नवलिकां स्थापितवान्।

राजपुरुष ने लाकर वह राजा को दे दी। राजा ने अन्य पोटलियों के साथ उसको मिलाकर बीच में रख दिया। पश्चात् दरिद्र को बुलाकर उस से कहा–देखो इन पोटलियों में जो तुम्हारी धरोहर की पोटली हो उसको तुम मुझे छूकरके बताओ। राजा की आज्ञा से उस दरिद्र ने वैसा ही किया। राजा ने तब जान लिया कि यह दरिद्री ठीक कहता है और यह इसकी ही धरोहर की पोटली है। उसे आदेश दिया कि तुम इसको ले लो। दरिद्र ने उसे ले लिया और बहुत प्रसन्न हुआ। राजा ने इस कृत्य पर पुरोहित को दंडित किया ॥ १९ ॥

॥ यह उन्नीसवां मुद्रिकादृष्टान्त हुआ ॥ १९ ॥

बीसवां अंकदृष्टान्त–

किसी पुरुष ने किसी सेठ के पास एक हजार रूपयों से भरी हुई एक नौली निक्षेपरूप में रखी। सेठ चालाक था। उसने उस नौली के

રાજપુરૂષે લાવીને તે રાજાને આપી. રાજાએ બીજી થેલીઓ ભેગી તેને પણ વચમાં ગોઠવી. પછી દરિદ્રને બોલાવીને કહ્યું, "જુઓ, આ થેલીઓમાંથી જે તારી થાપણની થેલી હોય તેને સ્પર્શીને મને બતાવ." રાજાની આજ્ઞાથી તે દરિદ્રે તે પ્રમાણે કર્યું. રાજા ત્યારે સમજી ગયો કે આ દરિદ્ર આદમી સાચુ જ કહે છે, અને આ તેની જ થાપણની થેલી છે તેથી તેમણે તેને આદેશ આપ્યો કે તું આને લઈ લે, દરિદ્રે તે લઈ લીધી અને તે ઘણો રાજી થયો. રાજાએ આ કૃત્ય માટે પુરોહિતને શિક્ષા કરી ॥ ૧૯ ॥

આ ઓગણીસમું મુદ્રિકા દષ્ટાંત સમાપ્ત ॥ ૧૯ ॥

વીસમું અંક દષ્ટાંત–

કોઈ પુરુષે એક શેઠને ત્યાં એક હજાર રૂપીયા ભરેલી થેલી થાપણ તરીકે મૂકી. શેઠ ચાલાક હતો. તેણે તે થેલીનો નીચેનો ભાગ કાપીને રૂપીયા કાઢી

ततः कालान्तरे निक्षेपस्वामिना स्वनवलिका याचिता। श्रेष्ठी तस्मै नवलिकां दत्तवान्। यदा स नवलिकामुद्घाट्य पश्यति तदा सर्वाणि कूटरूप्यकाणि दृष्ट्वा न्यायाधीशसमीपेऽभियोगं कृतवान्। न्यायाधीशः पृच्छति – तव नवलिकायां कियन्ति रूप्यकाण्यासन्?। निक्षेपस्वामी प्राह—सहस्रम्। न्यायाधीशेन परीक्षितम् " यावान् भागो नवलिकायाश्छिन्न आसीत् तावन्त्येव रूप्यकाण्यवशिष्टानि, नवलिका तु परिपूर्णा जाता। किंतु यावान् भागोऽधस्ताच्छिन्नस्तावान् न्यून इति

नीचे के भाग को काटकर रुपये निकाल लिये और खोटे रुपये उसमें भर दिये तथा फटे हुए भाग को सीकर उसको ज्यों का त्यों कर नौली को रख दी। कुछ दिनों के बाद जिसने वह नौली सेठ के पास रखी थी वह आया और उससे अपनी वह धरोहर की रखी हुई नौली मांगी। सेठ ने मांगते ही उसको वह सौंप दी। उसको लेकर वह ज्यों ही खोलकर देखता है तो उसमें सब के सब रुपये खोटे खोटे उसको दिखलाई दिये। सेठ से कहा तो ' उलटा चोर कोतवाल को दंडे ' वाली कहावत चरितार्थ हुई। बिचारा वहां से दौड़ा हुआ न्यायाधीश के पास आया। मुकद्दमा चालू हुआ। न्यायाधीश ने पूछा–भाई! तुम्हारी नौली में कितने रुपये भरे जा सकते हैं? तो उसने कहा–एक हजार। न्यायाधीश ने उस नौली में हजार रुपये भरकर परीक्षा की। परन्तु उस नौली के नीचे का भाग जितना कटा था उतने ही रुपये बच गये, नौली भर गई। अवशिष्ट रुपये डाल देने पर वह नौली सीई नहीं जा सकती थी। इससे न्यायाधीश को पूर्ण विश्वास हो गया कि इस नौली के नीचे के

લીધા અને તેમાં ખોટા રૂપીયા ભરી દીધા, તથા ફાડેલા ભાગને સીવીને તેને હતો તેવો કરીને થેલીને મૂકી દીધી, કેટલાક દિવસ પછી જેણે તે થેલી શેઠને ત્યાં મૂકી હતી તે આવ્યો અને તેણે પોતાની થાપણની થેલી શેઠની પાસેથી પાછી માગી, શેઠે માગતાં જ તે તેને સોંપી દીધી, તેને હાથમાં લઈ ને જેવી તેણે ખોલીને જોઈ કે તરત જ બધા ખોટા રૂપીયા તેની નજરે પડયા. તેણે શેઠને કહ્યું તો " ચોર કોટવાળને ડંડે " વાળી કહેવત જેવું થયુ, બિચારો ત્યાંથી દોડતો ન્યાયાધીશની પાસે ગયો. કેસ ચાલુ થયો. ન્યાયાધીશે પૂછયું, " ભાઈ! તમારી થેલીમાં કેટલા રૂપીયા સમાય છે? તો તેણે કહ્યું, " એક હજાર ". ન્યાયાધીશે તે થેલીમાં હજાર રૂપીયા ભરી જોઈને તેની ખાત્રી કરી પણ તે થેલીની નીચેનો જેટલો ભાગ કપાયો હતો તેટલા ભાગમાં સમાય એટલા રૂપીયા બાકી રહ્યાં છતાં થેલી ભરાઇ ગઈ. બાકીના રૂપીયા તેમાં ભરવાથી તે થેલીને સીવી શકાતી ન હતી. તેથી ન્યાયાધીશને ખાતરી થઈ ગઈ કે આ

तदुपरि सीवितुं न शक्यते" इति। ततो न्यायाधीशेन निर्णीतम्—नूनमस्यापहृतानि रूप्यकाणि। ततो निक्षेपकर्त्रे न्यायाधीशो रूप्यकसहस्रं दापयति स्म।

इति विंशतितमोऽङ्कदृष्टान्तः ॥ २० ॥

अथैकविंशतितमो नाणकदृष्टान्तः—

एको वणिक् कस्यचित् श्रेष्ठिनोऽन्तिके सुवर्णमुद्रासंभृतामेकां नवलिकां निक्षिप्य देशान्तरं गतः। स श्रेष्ठी तस्या नवलिकाया उत्तमसुवर्णमुद्रा अपहृत्य तावत्संख्यका अल्पमूल्याः सुवर्णमुद्रास्तत्र भृत्वा पूर्ववन्नवलिकां सीव्यति स्म।

अन्यदा नवलिकानिक्षेपको वणिक् विदेशात्समागतः। स श्रेष्ठिनः समीपं

भाग को काट कर रूपये निकाल लिये गये हैं। अत एव जितना भाग काट दिया गया है उतने भाग में आने वाले रूपये अवशिष्ट रह जाते हैं। इस प्रकार परीक्षा कर के यथार्थ निर्णय पर पहुँचे हुए उस न्यायाधीशने यही विधान किया कि इसके रूपये निकाल लिये गये हैं। तब उस न्यायाधीश ने उस नौली वाले को एक हजार रुपये उस सेठ से दिलवा दिये॥

॥ यह वीसवां अंकदृष्टान्त हुआ ॥ २० ॥

इक्कीसवां नाणकदृष्टान्त—

कोई एक वणिक् किसी सेठ के पास सोने की मुहरों से भरी हुई एक नौली-थैली रखकर बाहर परदेश के लिये गया। सेठने उसमें से उत्तम सोने की मुहरों को निकाल कर उसमें उतनी ही और थोड़ी कीमत की मुहरें भर दीं, और सीकर उसको रख दी। एक दिन की बात है कि वह वणिक् परदेश से लौटकर वापिस आ गया। सेठ के पास

થેલીનો નીચેનો ભાગ કાપીને રૂપીયા કાઢી લેવામાં આવ્યા છે, તેથી જેટલો ભાગ કાપી લીધો છે તેટલા ભાગમાં ભરી શકાય તેટલા રૂપીયા વધે છે, આ પ્રમાણે પરીક્ષા કરીને યથાર્થ નિર્ણય પર આવેલ તે ન્યાયાધીશે એવો નિર્ણય કર્યો કે તેના રૂપીયા કાઢી લેવામાં આવ્યા છે. ત્યારે તે ન્યાયાધીશે તે થાપણની થેલી વાળાને શેઠ પાસેથી હજાર રૂપીયા અપાવ્યા ॥ ૨૦ ॥

॥ આ વીસમું અંક દૃષ્ટાંત સમાપ્ત ॥ ૨૦ ॥

એકવીસમું नाणक દૃષ્ટાંત–

કોઈ એક વણિક કોઇ એક શેઠને ત્યાં સોનામહોરોથી ભરેલી એક થેલી મૂકીને પરદેશ ઉપડયો. શેઠે તેમાંથી ઉત્તમ સોનાની મહોરો કાઢી લઈને તેમાં એટલી જ પણ ઓછી કીમતની બીજી મહોરો ભરી દીધી, અને થેલીને સીવીને મૂકી દીધી. એક દિવસ તે વણિક પરદેશથી પાછો ફર્યો. શેઠની પાસે આવીને

गत्वा स्वनवलिकां याचितवान्। श्रेष्ठिना तस्मै नवलिका दत्ता। स नवलिकां सम्यग् दृष्ट्वा-"सैवेयं मम नवलिका" इति जानाति। यदा तु गृहमागत्य तामुद्घाटितवान्, तदा तेन ज्ञातम्-अत्र सुवर्णमुद्रा मदीया न सन्ति, इमास्तु सर्वाः कूटमुद्राः सन्ति। स पुनरागत्य श्रेष्ठिनः समीपे वदति-या नवलिका त्वया दत्ता तत्र मदीया मुद्रा न सन्ति। श्रेष्ठी प्राह-त्वया या नवलिका मयि निक्षिप्ता सैव तुभ्यं मया समर्पिता। ततो न्यायालये व्यवहारो जातः। न्यायाधीशो नवलिकाया

उसने अपनी नौली मांगी। सेठ ने उसको उठाकर उसकी नौली दे दी। उसने उसको पहिचान कर ले ली। लेकर जब यह घर आया और खोलकर ज्यों ही उसने उसको देखा तो उसको मालूम होने लगा कि इसमें जो ये सुवर्णमुद्राएँ भरी हुई हैं वे मेरी नहीं हैं। ये तो उनके स्थान में कूट मुद्राएँ भर दी गई हैं। अब वह उसको लेकर वापिस सेठ के पास आया, कहने लगा-हे सेठ! जो नौली आपने मुझे दी है उसमें मेरी स्वर्णमुद्राएँ नहीं हैं। वणिक् की इस बात से सचेत होकर सेठ ने कहा-भाई! तुमने जो नौली मुझे रखने को दी थी वही तुम्हारे मांगने पर मैंने तुम्हें वापिस उठाकर दी है, अब मैं क्या जानूं कि वह तुम्हारी नहीं है। तुमने लेते समय भी यह अच्छी तरह देख ही लिया था कि यही नवलिका हमारी है, अब ऐसा क्यों कहते हो? सेठ के इस प्रकार के व्यवहार से असंतुष्ट होकर वणिक् ने न्यायालय में उस पर अभियोग कर दिया। न्यायाधीश ने दोनों तर्फ की बातें सुनीं।

તેણે પોતાની થેલી માગી. શેઠે લાવીને તેને તેની થેલી આપી દીધી. તેણે ઓળખીને તે લઈ લીધી, લઈને જ્યારે તે ઘેર આવ્યો અને તેને ખોલીને જોઇ તો તેને ખબર પડી કે આમાં આ જે સોનામહોરો ભરેલી છે તે મારી નથી. આ તો તેની જગ્યાએ ખોટી મહોરો ભરેલી છે. હવે તે તેને લઈને શેઠની પાસે પાછો ફર્યો અને કહ્યું "હે શેઠ! તમે જે થેલી મને આપી છે તેમાં મારી મહોરો નથી." વણિકની આ વાતથી સાવચેત બનીને શેઠે કહ્યું-"ભાઈ! તમે જે થેલી મને સાચવવા આપી હતી એજ થેલી તમે માગી ત્યારે લાવીને મેં તમને આપી છે, હવે હું કેવી રીતે માનું કે તે તમારી થેલી નથી? તમે તે લેતી વખતે બરાબર જોઈ લીધું હતું કે તે થેલી તમારી જ છે. હવે આ પ્રમાણે કેમ કહો છો?" શેઠના આ પ્રકારના વ્યવહારથી અસંતુષ્ટ થઈને વણિકે કચેરીમાં તેની સામે ફરિયાદ દાખલ કરી. ન્યાયાધીશે બન્ને પક્ષની હકીકત

निक्षेप्तारं प्राह–कस्मिन् काले त्वया नवलिका मुक्ता । ततो वाणिजा यस्मिन् वर्षे यस्मिन् दिवसे नवलिका निक्षिप्ता सर्वं वृत्तं न्यायाधीशस्य पुरतः प्रोक्तम् । न्यायाधीशः सुवर्णमुद्रासु लिखितं तन्निर्माणकालं पश्यति । निक्षेप कालान्तरसमुत्पन्ना एता मुद्राः सन्तीति विज्ञाय श्रेष्ठिनं प्रोक्तवान्–एता मुद्रा अस्य न सन्ति, यतो निक्षेपे कृते सति ततः पश्चादेता निर्मितास्तस्मादस्य मुद्रास्त्वयागृहीतास्ता अस्मै देहि । ततः श्रेष्ठिना तस्मै मुद्राः प्रदत्ताः ।

इत्येकविंशतितमो नाणकदृष्टान्तः ॥२१॥

पश्चात् अपनी बुद्धि से सोचकर न्यायाधीश ने वणिक् से कहा–तुमने किस समय इनके पास अपनी नौली रखी थी? न्यायाधीश के इस प्रश्न को सुनकर नौली वाले वणिक् ने जिस वर्ष में जिस दिन में वह नौली सेठ के यहां रखी थी वह सब बात यथावत् सुना दी । वणिक् की बात को सुनकर न्यायाधीश ने उन कूट सुवर्णमुद्राओं में उनके निर्माण का समय देखा तो उसको पता चला कि "निक्षेपकाल के बाद ही ये कूट सुवर्णमुद्राएँ बनाई गई है"। ऐसा जानकर फिर उसने सेठ से कहा–हे सेठ! ये मुद्राएँ इसकी नहीं हैं। कारण, रखने के समय से ये पीछे की बनी हुई हैं। इसलिये यह निश्चित है कि इसकी मुद्राएँ तुमने ले ली हैं, अतः तुम वे इसको दे दो। सेठ ने न्यायाध्यक्ष के द्वारा प्रदत्त न्याय के अनुसार उसकी सब मुद्राएँ उसको दे दीं ॥ २१ ॥

॥ यह इक्कीसवां नाणकदृष्टान्त हुआ ॥ २१ ॥

સાંભળી. પછી પોતાની બુદ્ધિથી ઉપાય શોધીને તેણે વણિકને પૂછ્યું" તમે કયા દિવસે તે શેઠને ત્યાં તમારી થેલી મૂકી હતી?" ન્યાયાધીશનો તે પ્રશ્ન સાંભળીને થેલીવાળા વણિકે જે વર્ષના જે દિવસે તે થેલી શેઠને ત્યાં મૂકી હતી તે બધી વિગત બરાબર કહી. વણિકની વાત સાંભળીને ન્યાયાધીશે તે ખોટી સોના મહોરોમાં તેમના નિર્માણનો સમય વાંચ્યો તો તેને ખબર પડી કે "થાપણ મૂકયા પછીને સમયે જ એ ખોટી સોના મહોરો બનેલી છે" એમ સમજીને તેમણે ફરીથી શેઠને કહ્યું–"હે શેઠ! આ સોનામહોરો તેની નથી, કારણ કે તમારે ત્યાં તેની થાપણ મૂકયા પછીને સમયે તે બનેલ છે. તેથી તે વાત ચોકકસ થાય છે કે તમે તેની સોનામહોરો લઈ લીધી છે, તો તમે તે તેને આપી દો." શેઠે ન્યાયાધીશે આપેલ ચુકાદા પ્રમાણે તેની બધી સોનામહોરો તેને સોંપી દીધી. ॥૨૧॥

॥ આ એકવીસમું નાણક દૃષ્ટાંત સમાપ્ત ॥૨૧॥

अथ द्वाविंशतितमो भिक्षुकदृष्टान्तः—

एको वणिक् कस्यचिन्मठाधीशभिक्षुकस्य समीपे सुवर्णमुद्रासहस्रं निक्षिप्तवान्। कालान्तरे यदा स भिक्षुकात् स्वनिक्षेपं याचते, तदा स भिक्षुकः—अद्य दास्यामि, इत्युक्तवान्। पुनस्तेन याचितः "श्वस्तुभ्यं दास्यामि" इत्युक्त्वा कालाविक्रमं कृतवान्। स वणिक् तदनन्तरं द्यूतकारिभिर्मैत्रीं कृतवान्। ततो वणिग् 'भिक्षुकेण निक्षेपो गृहीतः' इति स्वमित्रेभ्यः कथयति। द्यूतकारिभिः प्रोक्तम्—तुभ्यं त्वदीयाः सर्वाः सुवर्णमुद्रास्तस्माद् भिक्षुकात् प्रदापयिष्यामः। ततस्ते

बाईसवां भिक्षुकदृष्टान्त—

किसी एक वणिक् ने एक मठाधीश भिक्षुक के पास एक हजार सुवर्ण मुद्रिकाएँ धरोहर के रूप में रख दी थीं। कालान्तर में जब उसने उससे वे मांगी तो भिक्षुक ने 'अभी देता हूं' ऐसा कहकर उसको टाल दिया। पुनः उसने जब वे उसको नहीं दी गई तो कहा—महाराज। अब दे दीजिये—तब भिक्षुक ने कहा—'भाई कल दे दूंगा'। इस तरह से जब बहाना बनाकर वह मठाधीश भिक्षुक उसे उसका निक्षेप देने में टालमटूल करने लगा तो वणिक् ने अपनी बुद्धि से एक युक्ति सोची, वह यह है—वह शीघ्र ही जुआरियों के पास आया और उनसे मित्रता कर कहने लगा—भाई! मैं क्या कहूं—देखो तो सही उस मठाधीश भिक्षुक ने मेरी एक हजार सुवर्णमुद्रिकाएँ जो मैंने उसके पास धरोहर के रूप में रख दी थीं पचाली हैं, मांगने पर भी वह नहीं देता है, इसका कोई उपाय हो

બાવીસમું ભિક્ષુકદૃષ્ટાંત—

કોઈ એક વણિકે એક મઠાધીશ ભિક્ષુક પાસે એક હજાર સોનામહોરો અનામત તરીકે મૂકી હતી. થોડા વખત પછી જ્યારે તેણે તે તેની પાસે માગી તો ભિક્ષુકે "હમણાં આપું છું" એમ કહીને તેને રવાના કર્યો. ફરીથી પણ તે વણિકે જ્યારે તે માગી ત્યારે ભિક્ષુકે કહ્યું, "ભાઈ! કાલે આપી દઈશ." આ રીતે બાના કાઢીને જ્યારે તે મઠાધીશ ભિક્ષુક તેને તેની થાપણ આપવામાં આંટા ફેરા ખવરાવવા લાગ્યો ત્યારે તે વણિકે પોતાની બુદ્ધિથી એક યુક્તિ શોધી કાઢી તે યુક્તિ આ પ્રમાણે હતી—તે તરત જ જુગારીઓ પાસે આવ્યો અને તેમની સાથે મિત્રતા બાંધી. પછી તેમને કહ્યું "ભાઈ શું વાત કરું! જુવો તો ખરા! તે મઠાધીશ ભિક્ષુકે મારી એક હજાર સોનામહોરો જે મેં તેની પાસે થાપણ રૂપે મૂકી હતી તે પચાવી પડી છે, માગવા છતાં પણ તે આપતો નથી. તો તે મેળવવાનો કોઈ ઉપાય હોય તો આપ લોકો મને બતાવો." જુગા-

गैरिकरक्तवस्त्रैः साधुवेषं कृत्वा सुवर्णेष्टकां गृहीत्वा वणिजं तत्समये तत्रागमनाय संकेतं कृत्वा भिक्षुकस्य समीपे समागत्य प्रोक्तवन्तः—वयं तीर्थयात्रां कर्तुं गच्छामस्त्वं तु परमविश्वासपात्रमसि, अतस्त्वत्समीपे सुवर्णेष्टकामिमां निक्षिपाम इति। तस्मिन्नेव काले पूर्वसंकेतितः स वणिक् तत्रागत्य वदति—'महाराज! मम निक्षेपं देहि' इति। तदा स मठाधीशो भिक्षुकः सुवर्णेष्टकालोभवशात् तदैव तस्मै सुवर्ण-

तो आप लोग बतलाओ। जुआरियों ने अपने इस नवीन मित्र की बात सुनकर उसको धैर्य बंधाते हुए कहा—हे मित्र! इसकी क्या चिन्ता करते हो घबड़ावो नहीं, हम वे सबकी सब तुम्हें दिला देंगे। तुम एक उपाय करो—हम सब गैरिक-रक्तवस्त्र पहिनकर आज ही साधु के वेष में उस मठाधीश भिक्षुक के पास एक सोने की ईंट लेकर चलते हैं ज्यों ही हम वहां पहुँचे कि तुम भी उसके पास आ जाना। इस प्रकार का संकेत देकर ज्यों ही वे सब के सब गैरिक वस्त्रधारी भिक्षुक के वेषमें उस मठाधीश भिक्षुक के पास पहुँचे कि यह भी उसी समय उस के पास जाने के लिये चला। इन गैरिक वस्त्रधारी भिक्षुकों ने उस मठाधीश भिक्षुक से कहा—महाराज! हम लोग तीर्थयात्रा करने जा रहे हैं, हमारे पास यह सोने की ईंट है। सुना है—आप बडे विश्वासपात्र हैं अतः इस को हम आप के पास रखने आये हैं। वे सब ऐसा कह ही रहे थे कि इतने में यह वणिक् भी वहां आपहुँचता है। आते ही वह कहने लगा—महाराज! हमारी जो आप के पास एक हजार सुवर्ण मुद्रिकाएँ रखी हैं

રીઓએ પોતાના આ નવા મિત્રની વાત સાંભળીને તેને આશ્વાસન આપતા કહ્યું, "હે મિત્ર, તેની ચિન્તા શા માટે કરો છો. ગભરાશો નહીં. અમે તે બધી તમને અપાવશું. તમે એક ઉપાય કરો. અમે બધા ભગવાં વસ્ત્રધારી સાધુના વેષમાં આજે જ તે મઠાધીશ ભિક્ષુકની પાસે એક સોનાની ઈંટ લઈને જઇએ છીએ, જેવાં અમે ત્યાં પહોંચીયે કે તરત જ તમારે પણ તેની પાસે આવી પહોંચવું. આ પ્રમાણે સંકેત કરીને તે બધા ભગવાં વસ્ત્રધારી ભિક્ષુકના વેષમાં જેવાં મીઠાધીશ ભિક્ષુકની પાસે પહોંચ્યા કે તરત જ તે પણ તેની પાસે જવાને માટે નીકળ્યો. તે ભગવાં વસ્ત્રધારી ભિક્ષુકોએ તે મીઠાધીશ ભિક્ષુકને કહ્યું, "મહારાજ! અમે તીર્થયાત્રા કરવા જઈએ છીએ, અમારી પાસે સોનાની આ ઈંટ છે. સાંભળ્યું છે કે આપ ઘણા વિશ્વાસપાત્ર છો. તેથી અમે આ સોનાની ઈંટ તમારી પાસે મૂકવા માટે આવ્યા છીએ." તેઓ આ પ્રમાણે કહેતા હતા એવામાં તે વણિક પણ ત્યાં આવી પહોંચ્યો. આવતાં જ કહેવા લાગ્યો, "મહારાજ! આપની પાસે મેં જે એક હજાર સોનાંમહોરો મૂકી છે તે મને પાછી

मुद्रासहस्रं प्रदत्तवान्। द्यूतकारिणः किंचिद् विमृश्य भिक्षुकं प्राहुः-'महाराज! अत्रैवावश्यकं किंचित् कार्यमुपस्थितम्, अतोऽधुनाऽस्माभिर्न गन्तव्यम्' इत्युक्त्वा भिक्षुकात् सुवर्णेष्टकां गृहीत्वा द्यूतकारिणो गतवन्तः।

इति द्वाविंशतितमो भिक्षुकदृष्टान्तः॥ २२॥

अथ त्रयोविंशतितमः चेटकनिधानदृष्टान्तः—

चेटकः-बालकः। निधानं-प्रसिद्धम्।

द्वौ पुरुषौ परस्परं मित्रभावं प्रतिपन्नौ। ताभ्यामन्यदा क्वचित् प्रदेशे निधानं प्राप्तम्। तत्रैकः प्रथमः कपटहृदयः। द्वितीयः सरलहृदयः। कपटहृदयो ब्रूते-आगा-

---

वे दे दीजिये। मठाधीश भिक्षुक ने सुवर्ण की ईंट के लोभ के वश में आकर उसी समय उस को एक हजार सुवर्णमुद्रिकाएँ दे दीं। उन द्यूतकारों ने जब यह देखा तो वे थोडी देर बाद उस मठाधीश भिक्षुक से बोले-महाराज! हमें यहां ही कुछ आवश्यक कार्य आगया है सो अब अभी हम लोग नहीं जा सकेंगे अतः वह ईंट वापिस कर दीजिये, जब जावेंगे तब पुनः आकर आप के पास रख जावेगे। ऐसा कह कर वे उस से उस ईंट को वापिस लेकर वहां से खुशी खुशी होते हुए वापिस अपने स्थान पर चले आये॥ २२॥

॥ यह बाईसवां भिक्षुकदृष्टान्त हुआ ॥ २२॥

तेईसवां चेटक (बालक) निधानदृष्टान्त-

किसी स्थान पर दो पुरुष रहते थे। परस्पर में उन की बडी मित्रता थी। एक समय की बात है कि इन्हें किसी स्थान पर एक निधान प्राप्त

આપો." મઠાધીશ ભિક્ષુકે સોનાની ઇંટના લોભને વશ થઈને એજ વખતે તેની એક હજાર સોનામહોરો તેને આપી દીધી. તે જુગારીઓએ જ્યારે તે જોયું ત્યારે થોડા સમય પછી તેમણે તે મઠાધીશ ભિક્ષુકને કહ્યું, "મહારાજ! અહીં જ અમારે એક આવશ્યક કાર્ય આવી પડયું છે તો હવે અત્યારે અમે જઈ શકીએ તેમ નથી. તો તે ઇંટ પાછી આપી દો, જ્યારે જવાનું થશે ત્યારે આવીને આપની પાસે તે મૂકી જઈશું. આ પ્રમાણે કહીને તેની પાસેથી તે ઇંટ પાછી લઈને તેઓ ખુશી થતાં ત્યાંથી પોત પોતાને સ્થાને પાછાં ફર્યાં ॥૨૨॥

॥ આ બાવીસમું ભિક્ષુકદૃષ્ટાંત ॥ ૨૨ ॥

તેવીસમું "ચેટક" (બાલક) "નિધાન" દૃષ્ટાંત-

કોઈ એક જગ્યાએ બે પુરુષો રહેતા હતા તેમની વચ્ચે ગાઢ મૈત્રી હતી. એક વખત તેમણે કોઈ એક જગ્યાએ જમીનમાં દાટેલ ખજાનો જોયો. તેને

मिदिवसे शुभे नक्षत्रे निधानमिदं ग्रहीष्यामः। द्वितीयः सरलचित्ततया तथैव स्वीकृतम्। ततस्तेन कूटमनस्केन तत्र रात्रावागत्य निधानमादाय तत्राङ्गारकाः (कोयला) प्रक्षिप्ताः। ततो द्वितीयदिने द्वावपि सह भूत्वा तत्र गतौ। तौ तत्राङ्गारकान् दृष्टवन्तौ।

ततः स मायावी स्ववक्षस्ताडयन् क्रन्दितुं प्रवृत्तः सन् प्राह—" वयं भाग्यहीनाः, यतो दैवेन निधानस्थानेऽङ्गारकाः प्रदर्शिताः। यथाऽस्माकमक्षि दत्त्वा दैवेन पुनस्तदपहृतम् ' इति जानामि।-इत्युक्त्वा स मायावी पुनः पुनः स्वमित्रं पश्यति। द्वितीयस्तस्य कपटचिन्तया सर्वं सत्यवृत्तं विज्ञाय भावपरिवर्तनेन वदति-मित्र! निधानार्थं मा चिन्तय, गच्छ; एवमेव भाग्यमस्माकम्। ततः शान्तचेतसा द्वावपि स्वस्वगृहं गतवन्तौ।

हो गया। उस को देखते ही एक के हृदय में कपट भाव जाग गया, उसने अपने मित्र से कि जिस का चित्त कपट से रहित था कहा-भाई! यह निधान आज नहीं लेंगे, कल लेंगे। चलो-अब यहां से घर पर चले। वे दोनों घर आ गये। अब कपट हृदयवाले मित्र ने सरल हृदय वाले मित्र को विना खबर दिये ही रात्रि में आकर उस खजाने को वहां से निकाल कर उस के स्थान में कोयले भर दिये और निधान अपने घर ले गया। दूसरे दिन प्रातःकाल होते ही जब वे दोनों मिलकर वहां आये तो उन्हों ने निधान के स्थान पर कोयले भरे हुए देखे। देखते ही वह मायावी व्यक्ति छाती को कूट २ कर रोने लगा और कहने लगा। " हाय हाय हम कितने भाग्य हीन हैं जो भाग्य ने निधान के स्थान पर हमें कोयले भरे हुए दिखलाये हैं। " भाग्य ने आंखे देकर फिर फोड डाली है। यही युक्ति इस समय हमारे ऊपर चरितार्थ हो रही है। इस तरह

જોતા જ એકના હૃદયમાં કપટભાવ પેદા થયો. તેણે પોતાના મિત્ર કે જે નિષ્કપટી ચિત્તવાળો હતો તેને કહ્યું, " ભાઈ આ ખજાનો આજે લેવો નથી, કાલે લઈશું. ચાલો હવે અહીંથી ઘેર જઈએ." તેઓ બન્ને ઘેર આવ્યા. હવે કપટી મિત્રે સરળહૃદયી મિત્રને ખબર આપ્યા વિના રાત્રે જઈને ખજાનાને ત્યાંથી કાઢીને તેની જગ્યાએ કોલસા ભરી દીધા અને ખજાનો પોતાના ઘર ભેગો કર્યો. બીજે દિવસે પ્રાતઃકાળે તે બન્ને મળીને ત્યાં આવ્યા તો તેમણે ખજાનાની જગ્યાએ કોલસા ભરેલા ભાળ્યાં. તે જોતા જ તે કપટી માણસ છાતી કૂટી કૂટીને રડવા લાગ્યો અને કહેવા લાગ્યો " હાય, હાય! આપણે કેટલા દુર્ભાગી છીએ કે નસીબે આપણને ખજાનાની જગ્યાએ કોયલા ભરેલા બતાવ્યા છે." "નસીબે આંખો આપીને પાછી ફોડી નાખ્યા જેવું કર્યુ છે" આજ વાત અત્યારે આપણને બરાબર લાગુ પડે છે." આ પ્રમાણે બનાવટી વાતો બનાવીને તે મિત્રની તરફ

इतश्च सरलहृदयो द्वितीयस्तस्य मायाविनो मित्रस्य लेप्यमयीं प्रतिकृतिं कृतवान्। केनचित् पालितौ द्वौ मर्कटावपि गृहीतवान्। तयोर्मर्कटयोर्भक्ष्यं फलादिकं प्रतिकृतेश्चोत्सङ्गे हस्ते शिरसि स्कन्धेऽन्यत्र च यथायोग्यं ददातिस्म। तौ च मर्कटौ क्षुधितौ तत्रागत्य प्रतिकृते रुत्सङ्गादौ निक्षिप्तं भक्ष्यं भक्षितवन्तौ। एवं च प्रति दिवसं करणे तयोस्तादृशः स्वभाव एव संजातः।

बनावटी बातें बनाकर वह मित्र की ओर निहार ने लगा। उस निष्कपटी मित्र ने उस की बनावटी बातों को सुनकर अपनी बुद्धि से जान-लिया कि 'यह कपटी है'। ऐसा जानकर उस समय उससे कुछ नहीं कहा, परन्तु अपने मन में जान ही लिया कि यह सब करामात भाग्य की नहीं किन्तु इसी कपटी मित्र की है। अपने भावों को बदलते हुए उस ने उस से कहा-मित्र चिन्ता मत करो, हम लोगों का ऐसा ही खोटा भाग्य है, चलो अब घर चलिये। इस तरह परस्पर में वे दोनो विचार करते हुए अपने २ घर पर आ गये ॥

कुछ दिनों के बाद उस निष्कपटी मित्र ने उस मायावी मित्र की एक लेप्यमयी आकृति तैयार की। जब वह अच्छी तरह बन चुकी तो उसने उस के गोद, हाथ, शिर, स्कंध, एवं और भी जगह पर फल वगैरह रखना प्रारंभ किया। दो पालतू बन्दरों को भी यह कहीं से ले आया। उन बंदरों ने जब इस आकृति के अंग उपांगों पर रखे हुए फलादिक देखे तो वे वहां आकर उन्हें खाने लगे। इस तरह करते २ उन बंदरों का

નિહાળવા લાગ્યો. તે સરળહૃદયી મિત્રે તેને બનાવટી વાતો સાંભળીને પોતાની બુદ્ધિથી સમજી લીધું કે "આ કપટી છે." એમ સમજીને પણ ત્યારે તેણે તેને કંઈ પણ કહ્યું નહીં, પણ પોતાના મનમાં સમજી લીધું કે આ બધી કરામત ભાગ્યની નથી પણ આ કપટી મિત્રની જ છે. પોતાના મનોભાવને છૂપાવીને તેણે મિત્રને કહ્યું, "મિત્ર! ચિન્તા ન કરો, આપણું નસીબ જ ખરાબ છે; ચાલો હવે ઘેર જઈએ. આ પ્રમાણે પરસ્પરમાં વિચાર કરતાં કરતાં તેઓ બન્ને ઘેર આવ્યાં. કેટલાક દિવસ પછી તે નિષ્કપટી મિત્રે તે કપટી મિત્રની એક માટીની મૂર્તિ બનાવવા માંડી. જ્યારે તે પૂરે પૂરી બની ગઈ ત્યારે તેણે તેની ગોદ, હાથ, મસ્તક, ખભા અને બીજી જગ્યાઓ પર પણ ફળ વગેરે મૂકવા માંડયાં. બે પાળેલા વાનરાઓને પણ તે કોઈ સ્થળેથી લઈ આવ્યો. તે વાનરોએ જ્યારે તે મૂર્તિનાં અંગ ઉપાંગ પર મૂકેલ ફળાદિ જોયાં ત્યારે તેઓ ત્યાં આવીને તેને ખાવા લાગ્યાં. આ પ્રમાણે કરતાં કરતાં તે વાનરોને એવી

एकदा पर्वदिवसमुपलक्ष्य सरल हृदयेन मायाविमित्रस्य द्वावपि पुत्रौ भोजनार्थं निमन्त्रितौ, महताऽऽदरेण प्रेम्णा च तौ मित्रस्य पुत्रौ भोजयित्वा तत्रैव कुत्रचिद् गुप्तस्थाने सुखपूर्वकं संगोपितौ। द्वितीय दिवसेऽपि बालकौ नागतौ, ततस्तत्पिता तयोरन्वेषणार्थं मित्रस्य समीपं गत्वा पृच्छति–मित्र! क्व द्वौ बालकौ स्तः? मित्रेणोक्तम्–मित्र! महान् खेदोऽस्ति, तौ त्वत्पुत्रौ मर्कटौ संजातौ। ततोऽसौ स्वमित्रस्य गृहं प्रविशति, तदा तेन सरलहृदयेन मित्रेण तौ पालितौ मर्कटौ बन्धनादुन्मोचितौ। तौ किलकिलशब्दं कुर्वन्तौ समागत्य तस्याङ्गेषु संलग्नौ, लीढवन्तौ च।

ऐसा स्वभाव हो गया कि ज्यों ही यह उस पर फलादिकों को चढाता तो वे आ२कर उन्हें वहां से उठा२कर खाने लग जाते। इस तरह बंदर और वह परस्पर में खूब हिलमिल गये।

एक दिन की बात है कि पर्व का दिन आया। उस समय सरल हृदय वाले मित्र ने कपटी हृदयवाले मित्र के दो बालकों को अपने घर पर आमंत्रित किया। बडे आदर से उन दोनों बालकों को जिमाकर अन्त में उसने उन्हें किसी सुरक्षित गुप्त स्थान पर छुपा दिया। जब वे दोनों बालक अपने घर पर नहीं पहूँचे तो उनके पिता ने उनके विषय में मित्र के घर आकर पूछा–भाई वे दोनों बालक कहां हैं। मित्र ने कहा–भाई क्या कहें, बडे दुःख की बात है कि वे दोनों ही बालक बंदर बन गये हैं। यह सुनते ही वह उस के घर में घुस गया तो उस ने वे दोनों पालित बंदर बंधन से निर्मुक्त कर दिये। छूटते ही वे किल किलाहट करते हुए उसके अंगो पर आकर चिपट गये उसको चाटने लगे बंदरों को

ટેવ પડી ગઈ કે જેવો તે તેના પર ફળાદિક મૂકતો કે તેઓ આવી આવીને તેમને ત્યાંથી ઉઠાવી ઉઠાવીને ખાવા મંડી જતા. આ પ્રમાણે વાનરા અને તે પરસ્પરમાં ખૂબ હળીમળી ગયાં.

એક દિવસની વાત છે. કોઈ પર્વનો દિવસ હતો. તે દિવસે સરળ હૃદયી મિત્રે કપટી મિત્રનાં બે બાળકોને પોતાને ઘેર આમંત્રણ આપ્યું ઘણા ભાવથી બન્ને બાળકોને જમાડીને છેવટે તેણે તેમને કોઇ સુરક્ષિત ગુપ્ત જગ્યાએ સંતાડી દીધાં. જ્યારે તે બન્ને બાળકો પોતાને ઘેર પહોંચ્યા નહીં ત્યારે તેમના પિતાએ મિત્રને ઘેર આવીને પૂછ્યું, "ભાઈ તે બન્ને બાળકો કયાં છે?" મિત્રે કહ્યું "ભાઈ! શું વાત કરૂં, ભારે દુઃખની વાત છે કે તે બન્ને બાળકો વાનરા બની ગયાં છે" આ સાંભળતાં જ તે તેના ઘરમાં ઘૂસ્યો ત્યારે તેણે તે પાળેલા બન્ને વાનરાને બંધનથી મુક્ત કર્યાં. છૂટતાં જ કિલકિલાટ કરતાં તેઓ તેના અંગો ઉપર આવીને ચોંટી ગયા; અને તેનું શરીર ચાટવા લાગ્યા. વાનરોને

सरलहृदयेनोक्तम्-पश्य ! इमौ त्वयि पुत्रवत् प्रेम दर्शयतः। तत्पिता वदति-मित्र ! मनुष्यः किं क्षणमात्रेण मर्कटो भवितुमर्हति ? । सरलहृदयेनोक्तम्-हे भ्रातः ! अस्माकं स्वकर्मवशात् निधानं यथाऽङ्गारकरूपं जातं तथैव त्वत्कर्मवशात् त्वत्पुत्रौ मर्कटौ संजातौ। ततस्तत्पिता चिन्तयति-अहो नूनमनेन मत्कृतं निधानापहरणं विज्ञातम्। यद्युच्चैः शब्दं करिष्यामि, तर्हि राज्ञा निगृहीतो भविष्यामि, पुत्रावपि न मे मिलिष्यतः। ततस्तेन मायाविमित्रेण सर्वं यथावस्थितं वृत्तं निवेदितम्, दत्तश्चापहृते निधाने तस्य भागः। सरलहृदयेन मित्रेण च समर्पितौ तस्य पुत्रौ।

॥ इति त्रयोविंशतितमश्चेटकनिधानदृष्टान्तः ॥ २३ ॥

ऐसा करते हुए देखकर सरलहृदयवाले मित्र ने उस से कहा-भाई देखो ये कैसा तुम्हारे ऊपर पुत्र जैसा स्नेह प्रकट कर रहे हैं। पुत्रों के पिता ने कहा-क्या मित्र! मनुष्य भी क्षणमात्र में बंदर बन सकता है। सुनते ही सरलहृदय वाले मित्र ने उससे कहा-भाई! जब हमारे कर्मों के वश से निधान अंगाररूप (कोयलेरूप) हो सकता है तो तुम्हारे पुत्र भी कर्मों के अनुसार बंदर बन सकते हैं। इस में कहने सुन ने जैसी बात ही क्या हो सकती है। मित्र की ऐसी अनोखी बात सुनकर उस ने विचार किया-निश्चय से मेरा कपट इस को ज्ञात हो चुका हैं-इस को पता पड गया है कि निधान मैं ने ही अपहृत किया है। अब यदि मैं इस विषय में रोता पीटता हूं और किसी से कुछ कहता हूं तो इस बात का पता राजा को भी कानों कान लग सकता है। ऐसी स्थिति में बडी भारी आपत्ति में पड सकता हूं। राजा द्वारा निगृहीत होकर मेरा घरबार सब

આ પ્રમાણે કરતાં જોઈને સરળ હૃદયવાળા મિત્રે કહ્યું, "ભાઈ! જુવો, તેઓ તમારા પર કેવો પુત્રના જેવો પ્રેમ પ્રગટ કરે છે?" પુત્રોના પિતાએ કહ્યું, "મિત્ર! શું માણુસ પણ ક્ષણવારમાં વાનર બની શકતો હશે?" તે સાંભળતા જ સરળહૃદયવાળા મિત્રે કહ્યું, "ભાઈ! જો આપણા દુર્ભાગ્યે ખજાનો અંગાર રૂપ (કોયલારૂપ) બની શકે તો તમારા પુત્રો પણ દુર્ભાગ્ય વશ વાનરો બની શકે છે. તેમાં કહેવા કે સાંભળવા જેવી વાત જ શી હોઇ શકે?" મિત્રની આવી અનોખી વાત સાંભળીને તેણે વિચાર કર્યો, "ચોક્કસ મારૂં કપટ આ જાણી ગયો છે-તેને ખબર પડી ગઇ છે કે ખજાનો મેં જ લઇ લીધો છે. હવે જો આ બાબતમાં હું રડું કે માથું કુટું, કે કોઈને કંઈ કહું તો આ વાતની ખબર રાજાને કાને પણ પહોંચી જાય. આ પરિસ્થિતિમાં હું ભારે મુશ્કેલીમાં મૂકાઈ જઈશ. રાજા દ્વારા મને ઘરમાંથી બહાર પણ કાઢી મૂકાય અને મારા ઘરમાંનું બધું નષ્ટ પણ કરી શકાય. પુત્રો પણ મળે નહીં. તેથી મારૂં ભલુ

अथ चतुर्विंशतितमः शिक्षादृष्टान्तः—

शिक्षा धनुर्वेदविषये। कोऽपि पुरुषो धनुर्वेद निपुणः परिभ्रमन् कस्मिंश्चिन्नगरे समागतः। स तत्र धनिकानां पुत्रान् शिक्षयितुं प्रवृत्तः। असौ कलाचार्य स्तेभ्यो बालकेभ्यः प्रचुराणि धनानि प्राप्तवान्। एतद् विदित्वा श्रेष्ठिनश्चिन्तयन्ति–अस्मै कलाचार्याय बालकैः प्रभूतं धनं दत्तम्, अतोऽस्य स्वगृहं प्रतिगन्तुमुद्यतस्य सर्वं

नष्ट हो सकता है। पुत्र भी नहीं मिल सकते हैं। अतः अब भलाई मेरी इसी में है कि मैं, जो कुछ हुआ है वह सब यथार्थरूप से इस अपने मित्र से निवेदित कर दूं। ऐसा विचार कर उस ने जो कुछ निधान के विषय में घटना घटित हुई थी वह सब मित्र से प्रकट कर दी और क्षमा याचना की। इस के बाद सरल हृदय वाले मित्र ने उस से अपना आधा भाग निधान का प्राप्त कर उस के दोनों पुत्रों को उस को समर्पित कर दिया॥ २३॥

॥ यह तेइसवां चेटकनिधानदृष्टान्त हुआ॥ २३॥

चोईसवां शिक्षादृष्टान्त–

यह दृष्टान्त धनुर्विद्या के विषय में है, जो इस प्रकार है–एक धनुर्वेद विद्याविशारद मनुष्य इधर–उधर भ्रमण करता हुआ किसी नगर में आ निकला। वहां के एक धनिक ने इस से अप ने बालकों को धनुर्विद्या में निपुण कर ने के लिये इस को सौंप दिया। अन्य और भी धनिकों के बालक इस विद्या को सीखने के लिये इसके पास आने लगे। गुरुभक्ति से प्रेरित होकर बालकों ने इसको प्रचुर द्रव्य दिया। जब सेठ को यह

એમાં જ રહેલું છે કે જે કંઈ બન્યું છે તે સત્ય રીતે આ મારા મિત્ર આગળ જાહેર કરૂં." એવો વિચાર કરીને ખજાના બાબતમાં જે કંઇ બન્યુ હતું તે મિત્ર પાસે જાહેર કર્યું અને તેની ક્ષમા માગી. ત્યાર બાદ સરળહૃદયી મિત્રે તેની પાસેથી ખજાનાનો પોતાનો અર્ધો હિસ્સો મેળવીને તેના બન્ને પુત્રો તેને સોંપ્યા. ॥૨૩॥

॥ આ તેવીસમું ચેટકનિધાનદૃષ્ટાન્ત સમાપ્ત ॥ ૨૩ ॥

ચોવીસમું શિક્ષાદૃષ્ટાંત–

આ દૃષ્ટાંત ધનુર્વિદ્યાના વિષયમાં છે, જે આ પ્રમાણે છે–

એક ધનુર્વેદ વિદ્યાવિશારદ મનુષ્ય અહીં–તહીં ફરતો ફરતો કોઈ એક નગરમાં આવી પહોંચ્યો. ત્યાંના એક ધનિકે પોતાના બાળકોને ધનુર્વિદ્યામાં નિપુણ કરવાને માટે તેને સોંપ્યા. બીજા ધનિકોનાં બાળકો પણ ધનુર્વિદ્યા શીખવા માટે તેની પાસે આવવા લાગ્યાં. ગુરુ ભક્તિથી પ્રેરાઈને તે બાળકોએ તેને ઘણું ધન આપ્યું. જ્યારે શેઠને તે વાતની ખબર પડી ત્યારે તેમણે વિચાર

धनं ग्रहीष्याम इति । कलाचार्येण कथंचिदिदं वृत्तं ज्ञातम् । ततोऽसावन्यस्मिन् ग्रामेऽवस्थितान् स्वबन्धून् विज्ञापयति-अहममुकस्यां रात्रौ नद्यां गोमयपिण्डान् प्रक्षेप्स्यामि, भवद्भिस्ते ग्राह्या इति । ततस्तद्बन्धुभिस्तथैव स्वीकृतम् ततः कलाचार्यो गोमयपिण्डेषु द्रव्याणि निक्षिप्य तान् गोमयपिण्डान् सूर्यकिरणेषु शोषयति । ततः कलाचार्यो बालकान् ब्रूते-एवमस्माकं कुलाचारः, मत्कुलोत्पन्ना अमुकपर्वणि स्नानं कृत्वा नद्यां गोमयपिण्डान् मन्त्रपूर्वकं पातयन्ति । बालकैरुक्तम्-शोभनम् । ततः कलाचार्यस्तैर्बालकैः सह तस्यां रात्रौ नद्यां गोमयपिण्डान् मन्त्रपूर्वकं प्रक्षिप्तवान् । इतश्च ते गोमयपिण्डाः कलाचार्यस्य बन्धुभिर्गृहीताः ।

बात ज्ञात हुई तो उसने विचार किया कि कलाचार्य ने हमारे बालकों से प्रचुरद्रव्य लिया है तो हमें अब इस को पारिश्रमिक देने की क्या आवश्यकता है, तथा इसके पास जो हमारे बालकों द्वारा द्रव्य पहूँच चुका है वह भी अपहृत कर लेना चाहिये । सेठ का जब यह विचार कलाचार्य को किसी तरह विदित हो गया तो उसने अपनी बुद्धि से उपाय सोचा, वह यह-अन्य ग्रामों में रहे हुए अपने बंधुओं को बुलाया और कहा देखो मैं अमुक रात्रि में नदी में सूखे गोबर पिण्डो को डालूंगा सो तुम सब उनको उठा लेना । इस प्रकार उन्हें अपने विचारों से सहमत करके कलाचार्य ने गोबर पिण्डों में द्रव्य भरकर उन्हें धूप में सुकाना प्रारंभ कर दिया । और बालकों से फिर वह कहने लगा कि हमारे कुल का आचार चला आ रहा है जो हमारे वंशज अमुक पर्व में गोमय पिण्डों को नदी में स्नान करके मंत्र जपते हुए फेंकते हैं । अतः मैं भी ऐसा ही

કર્યો કે કલાચાર્યે અમારા બાળકો પાસેથી ઘણુ ધન લીધું છે તો હવે તેને મહેનતાણું આપવાની શી આવશ્યકતા છે? તથા તેની પાસે અમારાં બાળકો દ્વારા જે ધન પહોંચ્યું છે તે પણ પડાવી લેવું જોઈએ. શેઠનો આ વિચાર જ્યારે કોઇ પણ રીતે કલાચાર્યે જાણી લીધો ત્યારે તેણે પોતાની બુદ્ધિથી તેનો ઉપાય શોધી કાઢયો તે વિચાર આ પ્રમાણે હતો-તેણે બીજાં ગામોમાં રહેતા પોતાના ભાઈઓને બોલાવ્યા અને કહ્યું, "જુવો, અમુક રાત્રે હું નદીમાં સૂકાં છાણાં નાખીશ, તો તમે તે બધાને લઈ લેજો" આ પ્રમાણેના પોતાના વિચાર સાથે તેમને સમ્મત કરીને કળાચાર્યે છાણનાં પિંડોમાં દ્રવ્ય ભરીને તે પિંડોને તડકામાં સૂકવવા માંડયા. પછી તે બાળકોને કહેવા લાગ્યો, "અમારા કુટું-બમાં એવો રિવાજ ચાલ્યો આવે છે કે અમારા કુટુંબના લોકો અમુક પર્વને દિવસે નદીમાં સ્નાન કરીને મંત્ર જપતા જપતા ગાયના છાણનાં પિંડોને નદીમાં ફેંકે છે. તેથી હું પણ તે પ્રમાણે કરીશ." કલાચાર્યની તે વાત સાંભળીને

अन्यदा कलाचार्यस्तान् बालकान् श्रेष्ठिनश्च पृष्ट्वा देहरक्षणोपयोगिमात्रं वस्त्रमादाय स्वग्रामं प्रतिचलितः। श्रेष्ठिनोऽपि कलाचार्यस्य शरीरे धनादिकमदृष्ट्वा तद्वधार्थमनुद्यता अभूवन्। 'अनेन किंचिद् धनमस्माकं न गृहीत'-मिति मत्वा कलाचार्यं मुक्तवन्तः। इत्येवं कलाचार्येण स्वशरीरं धनं च रक्षितम्।

॥इति चतुर्विंशतितमः शिक्षादृष्टान्तः॥ २४॥

करूँगा। कलाचार्य की इस बात को सुनकर बालकोंने कहा बहुत अच्छी बात है महाराज! इसके बाद कलाचार्य उन बालकों को साथ लेकर रात्रि में नदी पर जा पहुँचा, और स्नान कर उन सूखे गोबर पिण्डों को मंत्र जपते हुए उसमें फेंकने लगा! उन गोबर पिण्डों को नदी में से पूर्वसंकेतित उसके बंधुओं ने फेंकते ही उठाना शुरू कर दिया। इस तरह जब वे समस्त गोबरपिण्ड बंधुओं के हाथ में आगये तब यह निश्चिन्त होकर अपने स्थान पर उन बालकों के साथ वापिस लौट आया।

कुछ दिनों के पश्चात् बालकों एवं सेठों से पूछकर यह कलाचार्य देह की रक्षा में उपयुक्त मात्र वस्त्रों को लेकर अपने ग्राम की ओर चलने को तैयार हुआ। सेठों ने जब यह देखा कि इसके पास वस्त्रों के सिवाय और कुछ नहीं है तो वे उसको मारने आदि के विचार से रहित हो गये और 'इसने हमारा कुछ भी नहीं लिया है' ऐसा समझकर उन सबने उस कलाचार्य को खुशी से घर जाने की भी आज्ञा दे दी! इस तरह कलाचार्य ने अपनी और द्रव्य की रक्षा की॥ २४॥

यह चोईसवां शिक्षादृष्टान्त हुआ॥ २४॥

બાળકોએ કહ્યું, "ઘણી સરસ વાત છે, મહારાજ!" ત્યાર બાદ તે કળાચાર્ય તે બાળકોને સાથે લઇને રાત્રે નદીએ પહોંચ્યા, અને સ્નાન કરીને તે સૂકાં છાણાં ને મંત્ર જપતા જપતા નદીમાં ફેંકવા લાગ્યા. તે છાણાંને પૂર્વ સંકેત પ્રમાણે નદીમાંથી તેના ભાઈઓએ ફેંકતા જ ઉપાડવા માંડયાં. આ રીતે એ બધાં છાણાં જ્યારે તેના ભાઈઓના હાથમાં પહોંચ્યાં ત્યારે તે નિશ્ચિંત થઈ ને તે બાળકો સાથે પોતાને સ્થાને પાછા ફર્યાં.

કેટલાક દિવસો બાદ બાળકો તથા શેઠને પૂછીને તે કળાચાર્ય દેહની રક્ષા માટે જરૂરી એટલાં જ વસ્ત્રો લઇ ને પોતાના ગામ તરફ ઉપડવા તૈયાર થયા. શેઠોએ જ્યારે તે જોયુ કે તેમની પાસે વસ્ત્રો સિવાઇ કંઈ પણ નથી. ત્યારે તેઓ તેને મારવાના વિચારથી રહિત થઇ ગયા, અને "આણે અમારૂં કંઈ પણ લીધું નથી" એમ સમજીને તે બધાએ તે તે કળાચાર્યને ખુશીથી ઘેર જવાની રજા આપી. આ રીતે કળાચાર્યે પોતાની તથા દ્રવ્યની રક્ષા કરી ॥૨૪॥

॥ આ ચોવીસમું શિક્ષાદષ્ટાંત સમાપ્ત ॥ ૨૪ ॥

अथ-पञ्चविंशतितमोऽर्थशास्त्र दृष्टान्तः—

एकस्य श्रेष्ठिनो द्वे भार्येस्तः। तत्रैका पुत्रवती, अपरा त्वपुत्रा जाता। परंत्व पुत्राऽपि तं बालकमतीवलालयति पालयति। यतोऽसौ बालकस्तयोर्मात्रोर्भेदोनामन्यत।

एकदा स श्रेष्ठी व्यवसायार्थं परिभ्रमन् हस्तिनापुरे गतवान्। स दैवात् तत्र मृतः। अथ तत्संपत्तिप्राप्त्यर्थमुभयोर्भार्ययोः कलहः प्रवृत्तः। एका वदति-अयं मम पुत्रः, तस्मादहं गृहस्वामिनी। द्वितीया वदति-नैवम्, अहमेव गृहस्वामिनी यतोऽयं पुत्रो ममैवास्ति। कलहे प्रवर्धमाने न्यायार्थं राजकुले गतवत्यौ। राज्ञी मङ्गलादेवी

पचीसवां अर्थशास्त्रदृष्टान्त—

एक सेठ की दो स्त्रियां थीं। इनमें एक पुत्रवती थी दूसरी विना पुत्र की। जिसके पुत्र नही था वह भी पहिली के बालक का अच्छी तरह से लालन पालन करती रहती थी, इससे उस बालक के ध्यान में यह कभी नहीं आया कि यह मेरी माता है, अगर यह मेरी माता नहीं हैं। एक दिन की बात है कि सेठ के चित्त में ऐसा विचार आया कि कहीं परदेश चलकर अपना व्यवसाय चलाना चाहिये, अतः व्यवसाय (व्यापार) के निमित्त इधर उधर परिभ्रमण करता हुआ वह हस्तिनापुर आया। भाग्यवशात् वहां उस की मृत्यु होगई। अब उस की दोंनों स्त्रियों में संपत्ति प्राप्ति के लिये झगडा खडा हो गया। साथ में उस बालक के प्रति भी। एक ने कहा-यह मेरा पुत्र है-अतः में घर की स्वामिनी हूं। दूसरी ने कहा-नहीं में ही घर की स्वामिनी हुं कारण यह पुत्र मेरा है। इस तरह परस्पर में बढे हुए उन के विवाद का जब कोई निबटोरा नहीं हो सका तो वे दोनों

પચીશમું અર્થશાસ્ત્રદૃષ્ટાંત-

એક શેઠને બે પત્નીઓ હતી. તેમાં એકને પુત્ર હતો બીજી નિઃસંતાન હતી. જેને પુત્ર ન હતો તે પણ શોકયના બાળકનું સારી રીતે લાલન પાલન કરતી હતી, તેથી તે બાળકના ધ્યાનમાં એ વાત કદી આવી ન હતી કે આ મારી માતા નથી. એક દિવસ શેઠને મનમાં એવો વિચાર આવ્યો કે કોઇ પરદેશમાં જઈને પોતાનો વ્યવસાય ચલાવવો, તેથી વ્યવસાયને નિમિત્તે ફરતો ફરતો તે હસ્તિનાપુર આવ્યો. ભાગ્યવશાત્ ત્યાં તેનું મૃત્યુ થયુ. હવે તેની બન્ને પત્નીઓ વચ્ચે તેની મિલકત મેળવવા માટે ઝઘડો ઉભો થયો. અને તે બાળકની બાબતમાં પણ ઝગડો પડયો. એકે કહ્યું "આ મારો પુત્ર છે, માટે ઘરની માલિક હું છું." બીજીએ કહ્યું, "ના ઘરની માલિક હું જ છું કારણ કે આ પુત્ર મારો છે." આ પ્રમાણે તેમની વચ્ચે વધેલા વિવાદનો જ્યારે પરસ્પરમાં કોઇ

यदा वृत्तमिदं जानाति स्म, तदा स्वपार्श्वे ते उभे स्त्रियावाहूय वदति—किंचिद्दिनानन्तरं मम पुत्रो भविष्यति, स च वर्धितोऽस्याशोकवृक्षस्याधस्तादुपविष्टः सन् युवयोर्न्यायं करिष्यति, तावत्पर्यन्तमत्र युवां तिष्ठतम्। अयं च बालको ममाधीनस्तिष्ठतु। न्याये जाते सति पश्चाद् यस्याः पुत्रो भविष्यति, तस्यै दास्यामि। इति तद्वचः श्रुत्वा तदानीमपुत्रा भार्या मङ्गला देव्यावचनं सहर्षं स्वीकृतवती। तावतैव मङ्गलादेव्या विज्ञातम्—इयमेवापुत्राऽस्ति नायं बालकोऽस्याः पुत्र इति। ततस्तया पुत्रवत्यै भार्यायै पुत्रः समर्पितः, सैव च गृहस्वामिनी कृता। एवमुभयोरर्थ विषयः कलहो निवृत्तः।

॥ इति पञ्चविंशतितमोऽर्थशास्त्रदृष्टान्तः ॥ २५ ॥

न्यायप्राप्ति के लिये राजकुल में गई। वहां राजा की राना मंगला देवी को जब उन के विवाद का पता चला तो उसने बुद्धि सोची और उन दोनों स्त्रियों को अपने पास बुलाकर कहा—तुम दोनों यहीं पर ठहरो, झगडा मत करो देखों मेरे यहां कुछ दिनों के बाद पुत्र होगा—जब वह बडा हो जावेगा तब इस अशोकवृक्ष के नीचे वैठ कर तुम दोनों का न्याय कर देगा, अतः जब—तक तुम्हारा न्याय नहीं हो है तबतक यह तुम्हारा बालक मेरे पास ही रहेगा। न्यायप्राप्त होने पर यह बालक जिसका प्रमाणित होगा उस को ही सौंप दिया जावेगा। इस तरह रानी मंगलावती देवी के वचनों को सुनकर वह अपुत्रवती स्त्री बडी खुश हुई और उस ने रानी की बात मानली। अपनी बात स्वीकृत होते ही रानी ने यह जान लिया कि यह बालक इसका नहीं है। इस तरह वह बालक जिस

ઉકેલ ન આવ્યો ત્યારે તેઓ ન્યાયમેળવવા માટે રાજદરબારે પહોંચી. ત્યાં રાજાની રાણી મંગળાદેવીને જ્યારે તેમના વિવાદની ખબર પડી ત્યારે તેમણે પોતાની બુદ્ધિથી ઉપાય શોધી કાઢયો, અને તે બન્ને સ્ત્રીઓને પોતાની પાસે બોલાવીને કહ્યું. "તમે બન્ને અહીં જ રહો, ઝગડો કરશો મા, જુવો, મારે ત્યાં કેટલાક દિવસો પછી પુત્ર જન્મશે. તે જ્યારે મોટો થશે ત્યારે આ અશોકવૃક્ષ નીચે બેસીને તમારો બન્નેનો ન્યાય કરશે, તો જ્યાં સુધી તમારો ન્યાય ન થાય ત્યાં સુધી તમારો આ બાળક મારી પાસે જ રહશે, ન્યાય મળતાં આ બાળક જેનો સાબીત થશે તેને જ સોંપી દેવાશે રાણી મંગલાવતી દેવીની આ પ્રકારની વાત સાંભળીને તે અપુત્રવતી સ્ત્રી ઘણી ખુશ થઈ અને તેણે રાણીની વાત મંજૂર કરી. તેના દ્વારા પોતાની વાતનો સ્વીકાર થતાં જ રાણી સમજી ગઈ કે આ બાળક તેનો નથી. બીજી સ્ત્રીએ રાણીની વાત સ્વીકારી નહીં. જેણે રાણીની વાત

अथ षष्ठविंशतितमः इच्छामहद् दृष्टान्तः—

काऽपि श्रेष्ठिनः पत्नी स्वभर्तरि मृत्युमुपागते सति वृद्ध्यर्थं पूर्वप्रयुक्तं द्रव्यं लोकेभ्यो न लभते। ततः सा पतिमित्रं वदति-'ममदापय लोकेभ्यो धनम्' इति। तेनोक्तम्-यदि प्राप्तेषु द्रव्येषु किंचिन्मह्यं दास्यसि तर्हि लोकेभ्यस्तव धनं दापयामि। श्रेष्ठिभार्या प्राह यादृशी तवानुकम्पा स्यात् तथा मया विधेयम्। ततोऽसौ लोकेभ्यः सर्वं तद्धनं गृहीतम्, किंतु प्राप्तस्य तद्धनस्याल्पीयान् भागः श्रेष्ठि भार्यायै

स्त्री का था कि जिसने रानी की बात कबूल नहीं की थी उसको वह दे दिया गया और वही गृहस्वामिनी घोषित की गई। इस प्रकार इन दोनों का अर्थ विषय कलह निवृत्त हुआ ॥२५॥

॥ यह पच्चीसवां अर्थशास्त्रदृष्टान्त हुआ ॥२५॥

छाईसवां इच्छामहत्दृष्टान्त-

कोई एक सेठ की पत्नी ने जब कि पति के मर जाने पर व्याज पर दिये गये अपने द्रव्य की वसूली होते नहीं देखी तो अपने पति के मित्र से कहा-व्याज पर दिये गये द्रव्य की उगाही नहीं हो रही है, अतः आप उन लोगों से कहकर द्रव्य की वसूली करवा दें तो बड़ी कृपा होगी। मित्र ने सुनते ही जवाब दिया-यदि मुझे प्राप्त द्रव्य में से आप हिस्सा दें तो मैं लोगों को उधार दिया गया आप का द्रव्य वसूल करवा सकता हूं। मित्र की इस बात को सुनकर सेठानी ने कहा-ठीक है, जैसी आप की आज्ञा होगी वैसा ही मैं करूँगी। सेठानी की इस बात से सहमत होकर मित्र ने सेठ का उधारी पर रहा हुआ समस्त धन लोगों

સ્વીકારી નહીં તેનો જ તે બાળક છે એમ સમજીને રાણીએ તે બાળક તેને સોંપ્યો, અને તેને જ ઘરની માલિક જાહેર કરી. આ પ્રમાણે તે બન્નેના અર્થ (દ્રવ્ય) માટેના ઝગડાનો અંત આવ્યો. ॥ ૨૫ ॥

॥ આ પચીશમું અર્થશાસ્ત્રદૃષ્ટાંત સમાપ્ત ॥ ૨૫ ॥

છવીસમું ઇચ્છામહત્ દૃષ્ટાંત-

કોઈ એક શેઠનું મૃત્યુ થતાં તેમની પત્નીએ જ્યારે પતિએ વ્યાજે ધીરેલ લેણું વસૂલ થવા ન માંડ્યું ત્યારે પોતાના પતિના મિત્રને કહ્યું, "વ્યાજે આપેલ નાણાની ઉઘરાણી પતતી નથી. તો આપ કૃપા કરીને તે દેણદારો પાસેથી તે નાણાં વસૂલ કરી દો" મિત્રે જવાબ આપ્યો, "જો પતેલી ઉઘરાણીમાંથી મને હિસ્સો આપો તો લોકોને ઉછીના આપેલ નાણાની હું વસૂલત કરી શકું તેમ છું." મિત્રની આ વાત સાંભળીને શેઠાણીએ કહ્યું "ઠીક, આપ જેમ કહેશો તેમ હું કરીશ. શેઠાણીની આ વાત સાથે સહમત થઈને શેઠના મિત્રે શેઠની ઉઘરાણી પતાવવાનું કામ શરૂ કર્યું. ઉઘરાણીની જે રકમ આવતી

दातु मिच्छति। श्रेष्ठिपत्नी अपरितुष्टा जाता। राजकुले व्यवहारो जातः। न्यायाधीशस्तद्धनं द्विधा विभक्तं कृतवान् एकस्तत्र महान् भागः, द्वितीयस्तोकः कृतः। ततो न्यायाधीशः श्रेष्ठिमित्रं प्राह—अत्र कं भागं ग्रहीतुमिच्छसि ?। महान्तं भागं ग्रहीतुमिच्छामि। न्यायाधीशः स्वमनसि विचार्य प्रोक्तवान्–अस्या महान् भागोऽस्ति। द्वितीयस्तुतवास्ति।

॥ इति षड्विंशतितम इच्छामहद्दृष्टान्तः ॥ २६ ॥

अथ सप्तविंशतितमः शतसहस्रदृष्टान्तः—

कस्यचित् परिव्राजकस्य रजतमयं महत् खोरकाभिधं भाण्डमासीत्। तस्मिन्

से उगाना प्रारंभ कर दिया। जो द्रव्य उगाही में आता उस में से वह मित्र सेठानी के लिये बहुत कम देने की भावना रखने की वजह से कम देता। सेठानी इस कारण उस पर अप्रसन्न रहने लगी। होते होते राजकुल में इन दोनों की यह तकरार पहुँची तो वहां न्यायाधीशने अपनी बुद्धि लगा कर उस द्रव्य के दो विभाग किये। एक विभाग में अपार धनराशि रखी और दूसरे विभाग में थोडी सी। फिर उसने श्रेष्ठि मित्र से कहा इन में से आप किस विभाग को लेना चाहते हो–तो झट से उस ने कह दिया कि महाराज ! इस अपार धनराशिवाले विभाग को। सुनते ही न्यायाधीश ने अपने मन में सोच समझ कर उस से कहा–नहीं यह विभाग तो सेठानी का है तुम्हारा नहीं, तुम्हारा तो यह दूसरा विभाग है ॥ २६ ॥

॥ यह छाईसवां इच्छामहत् दृष्टान्त हुआ ॥ २६ ॥

તેમાંથી તે મિત્ર શેઠાણીને માટે ઘણું ઓછું આપવાની ભાવનાથી તેમને ઘણી થોડી રકમ આપતો આ કારણે શેઠાણી તેના પર નારાજ રહેવા લાગી. છેવટે તે બન્નેની આ તકરાર રાજાની કચેરીમાં પહોંચી ત્યારે ત્યાં ન્યાયાધીશે પોતાની બુદ્ધિ ચલાવીને તે દ્રવ્યના બે વિભાગ કર્યા. એક વિભાગમાં અપાર ધનરાશિ મૂકી અને બીજામાં થોડું જ ધન મૂક્યું. પછી તેમણે શેઠના મિત્રને કહ્યું, "આ બે માંથી તમે કયો વિભાગ લેવા માગો છો. ત્યારે તેણે તુરત જ કહ્યું, "મહારાજ ! આ અપાર ધનરાશિવાળો વિભાગ." તે સાંભળતા જ ન્યાયાધીશે પોતાના મનમાં વિચાર કરીને તથા સમજીને તેને કહ્યું, "ના આ વિભાગ તો શેઠાણીનો છે, તમારો નથી; તમારો તો આ બીજો વિભાગ છે ॥૨૬॥

॥ આ છવીસમું ઈચ્છામહત્ દૃષ્ટાંત સમાપ્ત ॥ ૨૬ ॥

परिव्राजके चैको विशिष्टोगुण आसीत्-यदसौ सकृत् शृणोति, तद् धारयति, अतस्तस्याऽहङ्कारः समुत्पन्नः। एवमसौ घोषणां कारयति-यः कश्चिन्मह्यं किंचिद्-श्रुतपूर्वं वृत्तं श्रावयेत्, तस्मै ददामीदं भाजनम्, इति। परं तु न कोऽप्य पूर्वं श्रावयितुं शक्नोति, स हि यत् किमपि शृणोति तत् सर्वमस्खलितं तथैवानुवदति। ततः केनापि सिद्धपुत्रेण ज्ञातप्रतिज्ञेन कथितम्-अपूर्वं श्रावयिष्यामि यदि परिव्राजकः स्वप्रतिज्ञां पालयेत्। एतद् वृत्तं राज्ञा विज्ञातम्। राजभवने बहुतरो लोको मिलितः। परिव्राजकोऽपि समागतः। राज्ञः समक्षं सिद्धपुत्रः पठति—

सत्ताईसवां शतसहस्रदृष्टान्त—

किसी परिव्राजक के पास एक चांदी का बड़ा भाजन था। इसका नाम खोरक था। परिव्राजक में एक विशिष्ट गुण यह था कि वह एक ही बार में सुनी गई बात को हृदय में धारण कर लेता था। इस से उसके मन में बड़ा भारी अपनी इस स्थिति का अहङ्कार था। वह जगह २ कहता फिरता था कि जो कोई मुझे अश्रुतपूर्व बात सुनावेगा वह भाजन का मालिक होवेगा। परन्तु कोई भी व्यक्ति उसको ऐसा नहीं मिला जो अश्रुतपूर्व बात उसको सुनावे। जो भी कुछ उसको सुनाया जाता वह झट से अस्खलित रूप में उसी तरह उसको कह देता, अतः सब लोग इससे बहुत तंग आगये। यह बात धीरे २ किसी सिद्धपुत्र के पास पहुंची तो उसने कहा कि यदि परिव्राजक अपनी प्रतिज्ञा पर अटल रहें तो मैं अवश्य ही उन्हें अश्रुतपूर्व बात सुना सकता हूं। होते २ यह खबर राजा तक भी पहुँच गई। राजाने एक सभा एकत्रित की-वहां

સત્યાવીસમું શતસહસ્રદષ્ટાંત–

કોઈ પરિવ્રાજકની પાસે ચાંદીનું એક મોટું પાત્ર હતું. તેનું નામ ખોરક હતું. પરિવ્રાજકમાં એક વિશિષ્ટ ગુણ હતો કે તે એક જ વખત સાંભળેલી વાતને મનમાં યાદ રાખી શકતો હતો. તેથી પોતાની આ સિદ્ધિનું તેને ઘણું ભારે અભિમાન હતું. તે સ્થળે સ્થળે એમ કહેતો ફરતો હતો કે જે કોઈ મને અશ્રુતપૂર્વ વાત સંભળાવશે તે આ પાત્રનો માલિક થશે. પણ તેને કોઇ એવી વ્યક્તિ ન મળી કે જે તેને અશ્રુતપૂર્વ વાત સંભળાવે. તેને જે કંઈ સંભળાવવામાં આવતું, તે અસ્ખલિત રીતે અને એજ પ્રકારે તે બોલી જતો, તે કારણે બધા લોકો તેનાથી ગળે આવી ગયા. આ વાત ધીરે ધીરે કોઈ સિદ્ધપુત્રની પાસે પહોંચી તો તેણે કહ્યું કે જો પરિવ્રાજક પોતાની પ્રતિજ્ઞા પાળવામાં મક્કમ હોય તો હું તેને અભૂતપૂર્વ વાત સંભળાવવા તૈયાર છું ધીરે, ધીરે આ વાત રાજાને કાને પણ પડી. રાજાએ એક સભા બોલાવી. ત્યાં પરિ-

" तुज्झ पिया मह पिउणो, धारेइ अणूणगं सयसहस्सं ।
जइ सुयपुव्वं दिज्जउ, अह न सुयं खोरयं देसु " ॥

छाया—तव पिता मम पितु र्धारयति अन्यूनकं शतसहस्रम् ।
यदि श्रुतपूर्वं ददातु, अथ न श्रुतं खोरकं देहि ॥ १ ॥

सिद्धपुत्रः परिव्राजकं पराजयति स्म । ततः परिव्राजकः स्वकीयं खोरकं रजत-भाजनं सिद्धपुत्राय दत्तवान् ।

इति सप्तविंशतितमः शतसहस्रदृष्टान्तः ॥ २७ ॥

॥ इति-औत्पत्तिकबुद्धिवर्णनम् ॥ १ ॥

अथ वैनयिकबुद्धिदृष्टान्ताः प्रदर्श्यन्ते (पृष्ठ ३०९) । तत्र प्रथमो निमित्त दृष्टान्तः प्रोच्यते–

परिव्राजक भी बुलाये गये जब सब लोग यथास्थान बैठ चुके तब उस सिद्धपुत्र ने एक गाथा पढ़ी जिसका भाव यह था कि महाराज! तुम्हारे पिता पर हमारे पिता का ठीक एक लाख का कर्जा है, यदि यह बात आपके सुनने में आई है तो आप वह कर्जा चुकता कीजिये, नहीं तो इस खोरक-भाजन को हमें दे दीजिये। सिद्धपुत्र की इस बात को सुनकर वह परिव्राजक पराजित हो गया और अपना खोरक उसको दे दिया ॥ २७ ॥

॥ यह सत्ताईसवां शतसहस्रदृष्टान्त हुआ ॥ २७ ॥

॥ यह औत्पत्तिकी बुद्धि का वर्णन हुआ ॥ १ ॥

अब वैनयिकी बुद्धि के उदाहरण कहे जाते हैं (पृष्ठ ३०९) जिसमें-प्रथम निमित्तदृष्टान्त इस प्रकार है—

व्राजकने पण बोलाववामां आव्या. ज्यारे बधा लोको पोत पोतानी जग्याए बेसी गया त्यारे ते सिद्धपुत्र एक गाथा बोल्यो, जेनो भावार्थ आ प्रमाणे हतो–" महाराज! तमारा पिता पासे मारा पितानुं बराबर एक लाखनुं लेणुं छे. जो ते वात तमारा सांभळवामां आवी होय तो आप ते देणुं भरपाई करी दो. नहीं तो आ खोरकपात्र मने आपी दो. सिद्धपुत्रनी ते वात सांभळीने ते परिव्राजके हार कबूल करी लीधी अने पोतानुं खोरक तेने आप्युं. ॥ २७॥

॥ आ सत्यावीसमुं शतसहस्त्रदृष्टांत समाप्त ॥ २७ ॥

आ औत्पत्तिकीबुद्धिनुं वर्णन थयुं ॥ १ ॥

हवे वैनयिक बुद्धिनां उदाहरणो आपवामां आवे छे–(पृ० ३०९)

पहेलुं निमित्तदृष्टांतआ प्रमाणे छे–

कस्मिंश्चिन्नगरे सिद्धपुत्रः स्वकीयौ द्वौ शिष्यौ निमित्तशास्त्रं पाठयति स्म। तयोरेको विनयसम्पन्न आसीत् स गुरोरुपदेशं बहुमानपूर्वकं स्वीकरोति। यत्र संशयः समुत्पद्यते, तन्निराकरणार्थं गुरोरन्तिकं गत्वा सविनयं पृच्छति। एवमसौ विनय-विवेकपुरस्सरं शास्त्रमधीत्य तीव्रबुद्धिं लब्धवान्। द्वितीयस्तु शिष्यो विनयादि गुण-रहितत्वात् केवलं शब्दज्ञानं प्राप्तवान्।

एकदा तौ गुरुनिदेशेन समीपवर्तिनिग्रामे गच्छतः। मार्गे कस्य चिन्महा प्राणिनश्चरणचिह्नानि ताभ्यां दृष्टानि। विनयी शिष्यो द्वितीयं पृच्छति-इमे कस्य चरणाः ? द्वितीयः शिष्य आह-अत्र का पृच्छा ?। इमानि हस्तिनश्चरणचिह्नानि

किसी नगर में कोई सिद्धपुत्र अपने दो शिष्यों को निमित्त शास्त्र पढ़ाया करता था। उनमें एक शिष्य बहुत विनयी था। वह अपने गुरु के उपदेश का बहुत भारी सन्मान करता और उसको मानता था। उसमें जब इसको कोई संशय जैसी बात मालूम पड़ती तो वह उसको दूर करने के लिये बड़ी विनयके साथ गुरु के पास जाकर पूछा करता। इस तरह विनय विवेक पुरस्सर शास्त्र का अध्ययन कर वह तीव्र बुद्धि वाला बन गया। दूसरा शिष्य ऐसा नहीं था वह विनयादि गुण से रिक्त था। इससे उसको मात्र शब्दज्ञान ही प्राप्त हो सका, अधिक कुछ नहीं।

एक दिन की बात है कि ये 'दोनों शिष्य गुरु की आज्ञा से किसी समीपवर्ती ग्राम में गये। मार्ग में इन लोगोंने किसी महाप्राणी के चरणचिह्नो को देखा। विनीत शिष्य ने उस अविनीत शिष्य से पूछा-भाई। ये चरण किसके हैं ? सुनते ही अविनीत शिष्य ने कहा-इसमें पूछने की क्या बात है-ये हाथी के पैर के चिह्न हैं यह क्या तुम नहीं

કોઈ એક નગરમાં કોઈ સિદ્ધપુત્ર પોતાના બે શિષ્યોને નિમિત્તશાસ્ત્ર ભણાવતાં હતાં. તેમાં એક શિષ્ય ઘણો જ વિનયી હતો. તે ગુરુના ઉપદેશનું ઘણું સન્માન કરતો હતો અને તેને માનતો હતો. તેમાં તેને કોઇ બાબતમાં સંશય થતો તો તેનું નિવારણ કરવા માટે તે વિનયપૂર્વક ગુરુની પાસે જઈને પૂછતો હતો. આ પ્રમાણે તે વિનય વિવેકપૂર્વક શાસ્ત્રનો અભ્યાસ કરીને તીવ્ર બુદ્ધિવાળો બની ગયો. બીજો શિષ્ય એવો ન હતો. તે વિનયાદિ ગુણોથી રહિત હતો. તેથી તેને માત્ર શબ્દજ્ઞાન જ પ્રાપ્ત થયું વધારે કંઈ નહીં.

એક દિવસ તે બન્ને શિષ્યો ગુરૂની આજ્ઞાથી પાસેના ગામમાં ગયાં. રસ્તામાં તેમણે કોઈ મોટાં પ્રાણીના પગલાં જોયાં. વિનીત શિષ્યે તે અવિનીત શિષ્યને પૂછ્યું, "ભાઈ! આ કોનાં પગલા છે?" તરત જ અવિનીત શિષ્યે કહ્યું, "આમાં પૂછવા જેવું શું છે? આ હાથીનાં પગલાં છે, તે શું તું સમજી

दृश्यन्ते। विनीतो वदति-नैवम्, नैवम्, इमानि हस्तिनीचरणचिह्नानि। हस्तिनी वामाक्ष्णा काणा। तदुपरि महाकुलीना सधवा' स्त्री समुपविष्टा गच्छति। अद्यश्वो वा प्रसविष्यति। पुत्रश्च तस्या भविष्यति। एवमुक्ते चाविनीतो ब्रूते-कथमेतदवसीयते?। विनीतः प्राह-प्रत्ययाद् व्यक्तं भविष्यति। ततस्तौ ग्रामं गतवन्तौ। तस्य ग्रामस्य बहिः प्रदेशे महासरसः समीपे वस्त्रनिर्मित निवासस्थाने राज्ञी ताभ्यां दृष्टा। वामेन चक्षुषा काणा हस्तिनी च दृष्टा।

अत्रान्तरे काचिद् दासचेटी हस्तिपकं वदति—राज्ञः पुत्रो जात इति राजानं जय जयेत्यादिशब्देन वर्धापय। विनीतो द्वितीयं प्रत्याह—दासचेटी वचनं परि-

---

जान सकते हो? विनीत-हां जान तो सकता हूं पर ये हाथी के पैर के चिह्न नहीं हैं ये तो हस्तिनी के चरणचिह्न हैं। तथा और देखो-यह हथिनी वाम आंख से कांनी है। इसके ऊपर कोई महाकुलीन सधवा स्त्री वैठी हुई गई है। जिसके आजकल में प्रसव होने वाला है। उस प्रसव में उसके पुत्र का जन्म होगा। इस प्रकार विनीत शिष्य के कहने पर अविनीत शिष्यने उससे कहा-यह सब तुम कैसे जाना। विनीत ने उत्तर दिया-किस प्रकार की साधन सामग्री से यह पीछे बतलाऊंगा। इस तरह बातचीत करते हुए वे दोनों ही जिस ग्राम को जाना था उस ग्राम की ओर चले। जाते २ ग्राम के बाहर उन्होंने देखा कि एक वड़ी भारी तालाव के तट पर एक बड़ा तम्बू तना हुआ है। उसमें एक रानी ठहरी है। पास में तंबू की एक ओर एक वांये आंख से कानी हथिनी भी बंधी हुई है। इसी समय उन्होंने यह भी सुना कि एक चेटी महावत से यह कह रही है कि जाओ और राजा को जय जय शब्द पूर्वक बधाई दो,

---

શકતા નથી?" વિનીત શિષ્યે કહ્યું, "હા સમજી તો શકું છું કે આ હાથીના પગલાં નથી પણ હાથણીનાં પગલાં છે. વળી જુવો, આ હાથણી ડાબી આંખે કાણી છે. તેની ઉપર કોઈ મહાકુલીન સગર્ભા સ્ત્રી બેઠેલ છે, જેને આજકાલમાં પ્રસવ થવાનો છે. તેને પુત્રનો પ્રસવ થવાનો છે. આ પ્રમાણે વિનીત શિષ્યનું કથન સાંભળીને અવિનીત શિષ્યે કહ્યું, આ બધું તમે કેવી રીતે જાણ્યું. વિનીત શિષ્યે કહ્યું, કયા પ્રકારની સાધન સામગ્રીથી તે પછી બતાવીશ." આ પ્રમાણે વાતચીત કરતાં કરતાં તે બન્ને જે ગામ જવાનું હતું તે તરફ ચાલ્યા. જતાં જતાં ગામની બહાર તેમણે જોયું કે એક મોટાં તળાવને કાઠે એક મોટો તંબૂ તાણેલો છે. તેમાં એક રાણી ઉતરી છે. પાસે તંબૂની એક તરફ ડાબી આંખે કાણી એક હાથણી પણ બાંધેલી છે. એજ વખતે તેમણે એ પણ સાંભળ્યું કે એક દાસી મહાવતને કહેતી હતી કે જાઓ અને, રાજાને જય જય શબ્દ

भावय । तेनोक्तम्-परिभावितं मया सर्वं, तवज्ञानं सत्यमेवास्ति । ततस्तौ तस्मिन् महासरसस्तटे करचरणं प्रक्षाल्य वटवृक्षस्याधस्ताद् विश्रामार्थं स्थितौ । तदैका वृद्धा शिरसि जलपूर्णघटं धृत्वा गच्छति । सा वृद्धा तावुभौ आकृत्यादिना नैमित्तिकौ विज्ञाय पृच्छति-हे आर्य ! देशान्तरगतो मम पुत्रः कदा पुनरागमिष्यति । तदानीमेव तन्मस्तकाद् घटः पतितः खण्डशो भग्नः । अविनीतेनाविमृश्यैव तदा झटिति कथितम्-तव पुत्रो घट इव नष्टो जातः । तदा विनीतो विमृश्य ब्रूते-नैवम् नैवम्, अस्याः पुत्रो गृहे समागतो वर्तते । हे मातर्गृहं गच्छ, स्वपुत्रमुखमवलोकय । एव-

---

कारण उनके यहां पुत्र रत्न का जन्म हुआ है । इस तरह दासी के वचन सुनकर विनीतशिष्य ने अविनीत से कहा-देखा सुना दासी क्या कह रही है ? । अविनीत ने कहा-हां देख सुन लिया-भाई ! तुम्हारा ज्ञान बिलकुल सच्चा है । इस तरह परस्पर में बातें करते हुए उन दोनों ने उस तालाब के तट पर अपने हाथ पैरों को धोया और वहीं पर के एक वटवृक्ष की छाया में विश्राम किया । इतने में ही वहां एक वृद्धा ने जो जल से भरे हुए घड़े को अपने माथे पर रखे हुई जारही थी इन्हें देखा । आकृति आदि से वह इन्हें ज्योतिषी जानकर पूछने लगी हे आर्य ! मेरा पुत्र देशान्तर गया हुआ है सो बतलाई ये वह कब आवेगा ? । इस प्रश्न के साथ ही उस बिचारी का घडा माथे पर से नीचे गिर कर फूट गया । अविनीत शिष्य ने यह देखकर उस से कहा-माँ ! तेरा तो पुत्र इस घडे की तरह समझले नष्ट हो गया है । अविनीत की इस बात को सुनकर विनीत ने कहा-भाई ! नहीं २ ऐसा मत कहो इसका पुत्र तो

પૂર્વક વધામણી આપો કે તેમને ત્યાં પુત્રનો જન્મ થયો છે. દાસીના એવાં વચનો સાંભળીને વિનીત શિષ્યે અવિનીત શિષ્યને કહ્યું, "સાંભળ્યું, દાસી શું કહી રહી છે ?" અવનીત શિષ્યે કહ્યું, "હા, જોયું અને સાંભળ્યું. ભાઈ ! તમારી કલ્પના તદ્દન સાચી છે." આ પ્રમાણે વાતો કરતા કરતાં તે બન્નેએ તળાવને કાંઠે પોતાના હાથપગ ધોયા અને ત્યાં જ એક વડની નીચે છાંયડામાં વિશ્રામ લેવા લાગ્યા. એવામાં માથે પાણીનો ઘડો લઈને જતી એક વૃદ્ધાએ તેમને જોયાં. મુખાકૃતિ આદિથી તેમને જ્યોતિષી માનીને પૂછવા લાગી, "હે આર્ય ! મારો પુત્ર પરદેશ ગયો છે. તો તે ક્યારે આવશે તે બતાવો." આ પ્રશ્નની સાથે જ તે બિચારીનો ઘડો માથા ઉપરથી નીચે પડયો અને ફુટી ગયો. અવિનીત શિષ્યે આ જોઈને તેને કહ્યું, "મા ! આ ઘડાની જેમ તમારો પુત્ર નાશ પામ્યો છે એમ સમજી લો." અવીનીત શિષ્યની આ વાત સાંભળીને વિનીત શિષ્યે કહ્યું, "ના, ના એવું ન કહો. તેમનો પુત્ર તો ક્યારનોય ઘેર આવી ગયો છે. મા !

मुक्ता सा तं विमृश्यकारिणं विनीतं शुभाशीर्वचनशतानि प्रयुञ्जाना स्वगृहं गतवती। सा स्वपुत्रं गृहमागतं पश्यति। पुत्रो मातरं प्रणमति। सा च निजपुत्राय शुभाशीर्वचनं ददाति। नैमित्तिकेन विमृश्यकारिणा यथाकथितं पुत्राय तया सर्वं निवेदितम्। ततः सा वृद्धा पुत्रं पृष्ट्वा तत्रागत्य तस्मै विमृश्यकारिणे वस्त्रयुगलं सुवर्णमुद्रादिविविधवस्तुजातं च समर्पयति। अविमृश्यकारी तदा चिन्तयति-अहं गुरुणा न सम्यक् पाठितः। कथमन्यथाऽहं न जानामि अयं तु जानाति।

कभी का घर पर आ गया है। माँ! तुम घर जाओ और अपने पुत्र के मुख का अवलोकन करो। इस प्रकार वह विनीत शिष्य के वचन सुन उस को समझदार समझ अनेक शुभाशीर्वाद देती हुई अपने घर आ पहुँची। वहां आते ही उस ने प्राणाधिक अपने प्रिय पुत्र को देखा। उस को बडी प्रसन्नता हुई। पुत्र ने भी ज्यों ही अपनी माता को देखा तो वह आकर उस के चरणों से लिपट गया। शुभाशीर्वाद देकर उस ने पुत्र को उठा कर छाती से लगा लिया। उस माता ने पुत्र से जो कुछ उस से उस नैमित्तिक ने कहा था सब यथावस्थित कह दिया। पश्चात् उस ज्योतिषी के लिये उस ने अपने पुत्र से पूछकर एक धोती, एक दुपट्टा, तथा सुवर्ण मुद्रा आदि अनेक कीमती वस्तुएँ प्रदान की! विमृश्यकारी शिष्य की इस प्रतिष्ठा से प्रभावित होकर उस अविनीत शिष्य अपने मन में विचार किया-मुझे गुरु ने अच्छी तरह नहीं पढाया है, इस को ही अच्छी तरह पढाया है, नहीं तो ऐसा कैसे हो सकता था कि यह तो बाते जान जावे और मैं न जान सकुँ।

તમે ઘેર જાઓ અને તમારા પુત્રના મુખના દર્શન કરો.” આ પ્રમાણે તે વિનીત શિષ્યના વચન સાંભળીને, તેને બુદ્ધિશાળી માનીને અનેક શુભ આશીર્વાદ દઈને તે પોતાને ઘેર પહોંચી. ત્યાં આવતાં જ તેણે પોતાના પ્રાણથી પણ પ્રિય પુત્રને જોયો. તે ઘણી ખુશ થઈ. પુત્રે પણ જેવી પોતાની માને જોઈ કે તે તેમના ચરણે પડયો. શુભાશીર્વાદ દઈને તે પુત્રને ભેટી પડી. તે માતાએ તે નૈમિત્તિકે જે કંઈ પોતાને કહ્યું હતું તેનાથી પોતાના પુત્રને સંપૂર્ણ રીતે વાકેફ કર્યો. પછી પોતાના પુત્રને પૂછીને તેણે તે જ્યોતિષીને માટે એક ધોતી, એક દુપટ્ટો, તથા સોનામહોર વગેરે ઘણી કીમતી વસ્તુઓ ભેટ આપી. વિનીત શિષ્યની આ પ્રતિષ્ઠાથી પ્રભાવિત થઈને તે અવિનીત શિષ્યે પોતાના મનમાં વિચાર કર્યો, “મને ગુરૂએ સારી રીતે ભણાવ્યો નથી, આને જ સારી રીતે ભણાવ્યો છે, નહી તો એવું કેમ બને કે તે જે વાતો જાણી શકે તે હું ન જાણી શકું?”

गुरुकार्ये संपन्ने सति द्वावपि गुरोः पार्श्वे समागतौ। तत्र विमृश्यकारी शिष्यो दर्शनमात्रे एव शिरो नमयित्वा कृताञ्जलिपुटः स बहुमानं हर्षाश्रुपूर्णलोचनो गुरोश्चरणयोशिरोनिधाय प्रणामंकृत्वा प्राप्तं तत्सर्वं वस्तुजातं गुरवे समर्पितवान्। द्वितीयस्तु शैलस्तम्भ इव मनागप्यनमित शरीरो द्वेषपूर्णः सन् गुरुसमीपेऽवतिष्ठते। तदा द्वितीय शिष्यं प्रति गुरुराह — अरे! किं कारणम् अद्य न प्रणमसि? स प्राह – यः सम्यक् पाठितः स एव चरणे पतिष्यति। गुरुराह – त्वं मया न सम्यक् पाठितोऽसि किम्? ततोऽसौ सर्वं पूर्ववृत्तान्तं निवेदितवान्।

अब–जिस कार्य के लिये गुरु ने उन दोनों को ग्राम में भेजा था वह कार्य जब उनका समाप्त हो चुका तब वे दोनों वहां से वापिस गुरु के पास आ गये। इन में विनीतशिष्य ने आते ही गुरु के दर्शन से अपने आप को वडा भाग्यशाली मानते हुए उन्हें दोनों हाथ जोडकर प्रणाम किया। तथा बहु मानपूर्वक उन के चरणों में अपना शिर रखकर वारंवार उन्हें स्पर्श किया। एवं ग्राम में जो कुछ मिला था वह सब उन के समक्ष रख दिया। अविनीत शिष्य ने ऐसा कुछ नहीं किया–विद्वेष से भरा होकर वह तो गुरु के पास शैलस्तम्भ (पर्वतस्तम्भ) की तरह केवल अकडकर ही खडा रहा। गुरु ने जब उस की ऐसी हालत देखी तो उससे कहा–तूं ऐसा क्यों खडा हुआ है। क्यों तूं आज मुझे प्रणामादि नहीं कर रहा है?। सुनते ही गुरु से उस ने कहा–महाराज! क्या करूँ, जिस को आपने अच्छी तरह से विद्या में निष्णात बनाया है वही आप के चरणों में पडे, मुझे तो आपने ऐसा कुछ नहीं किया। अविनीत की इस

હવે તેમને જે કામે તે ગામમાં મોકલ્યા હતા તે કામ પૂરૂં થતાં તેઓ બન્ને ત્યાંથી ગુરૂની પાસે પાછાં ફર્યાં. તેઓમાંના વિનીત શિષ્યે આવતાં જ ગુરુના દર્શનથી પોતાને ઘણો ભાગ્યશાળી માનીને બન્ને હાથ જોડીને તેમને પ્રણામ કર્યાં. અને ઘણા માનપૂર્વક તેમનાં ચરણમાં મસ્તક નમાવીને વારંવાર તેમનો ચરણસ્પર્શ કર્યો અને ગામમાંથી જે કંઇ મળ્યું હતું તે બધું તેમના ચરણ આગળ ધર્યું. અવિનીત શિષ્યે એવું કંઈ ન કર્યું. દ્વેષથી ભરેલો એવો તે ગુરુની પાસે શૈલ સ્તંભ (પર્વતસ્તંભ) ની જેમ અક્કડ જ ઉભો રહ્યો. ગુરુએ જ્યારે તેની એવી હાલત જોઈ ત્યારે કહ્યું, "તું આજે આમ કેમ ઉભો છે? આજે તું મને પ્રણામાદિ કેમ કરતો નથી? તે સાંભળતા જ તેણે ગુરુને કહ્યું–'મહારાજ! શા માટે કરૂં? આપે જેને સારી રીતે વિદ્યામાં નિષ્ણાત બનાવ્યો છે તે આપના ચરણોમાં પડે, મારાં ઉપર તો આપે એવી કોઈ કૃપા કરી નથી" અવિનીત

ततो गुरुर्विनयिनं शिष्यं पृच्छति-कथय, तद्वृत्तं त्वया कथं विदितम्। विमृश्यकारी शिष्यः प्राह-हे गुरुदेव ! मया भवच्चरणनिदेशेन विमर्शः कर्तुमारब्धः— हस्तिश्चरणा दृश्यन्त एव, किन्त्वत्र को विशेषः ? इति चिन्तयता मया मूत्र दर्शनेन निर्णीतम्-एते चरणा हस्तिन्या एव भवितुमर्हन्ति। दक्षिणभागवर्तिवृक्षशाखा भक्षिताः, न तु वामभागस्थाः, इत्यनेन मया विदितम्-'इयं वामेन चक्षुषा काणा' इति।

बात से गुरु ने उस से कहा-तो क्या तू यह मान रहा है कि मैं ने तुम्हें अच्छी तरह से नहीं पढाया है ?। हां मैं यही मान रहा हूं। कारण-यही है कि आप के विनीत शिष्य ने विद्या के बल से आज ऐसा२ कर के बतलाया है। गुरु ने ज्यों ही अविनीत की यह बात सुनी तो उन्होंने विनीत शिष्य से पूछा-कहो शिष्य! तुमने यह सब कैसे जानकर बतलाया है। विनीत ने कहा हे गुरु महाराज! मैंने जो कुछ बतलाया है वह आपके श्री चरणों का प्रताप है। ज्यों ही मैंने वहां उन चरणों का निरीक्षण किया जानने में देरी नहीं लगी कि ये चरण हाथी के ही हैं। क्यों कि वे तो स्पष्ट दिखलाई पड़ रहे थे, परन्तु उन्हीं के पास जो मूत्र पड़ा था उससे मैंने यह निर्णय कर लिया कि ये चरणचिह्न हाथी के नहीं किन्तु हथिनी के हैं। वह जिस मार्ग से होकर निकली थी उसके दक्षिण भाग में जो वृक्ष खड़ा था उसकी शाखा उस ने खाई थी, वामभाग की नहीं। इससे मैंने यह जान लिया कि वह वामचक्षु से

શિષ્યની આ વાત સાંભળીને ગુરુએ તેને કહ્યું, તો શું તું એમ માને છે કે મેં તને સારી રીતે ભણાવ્યો નથી ?" "હા, હું એમ જ માનું છું" "કારણ ?" કારણ એજ છે કે આપના વિનીત શિષ્યે આજે વિદ્યાના પ્રભાવે આવું આવું કરી બતાવ્યું છે." ગુરુએ જ્યારે અવિનીત શિષ્યની આ વાત સાંભળી ત્યારે તેમણે વિનીત શિષ્યને પૂછ્યું, "કહો શિષ્ય, તમે આ બધું કેવી રીતે જાણીને બતાવ્યું" વિનીત શિષ્યે કહ્યું, "ગુરુ મહારાજ ! મેં જે કંઈ બતાવ્યું છે તે આપના શ્રી ચરણોનો પ્રતાપ છે. જેવું મેં તે પગલાંઓનું નિરીક્ષણ કર્યું કે તે જાણુતા વાર ન લાગી કે તે પગલાંનાં નિશાન હાથીનીના જ છે, કારણ કે તે તો સ્પષ્ટ નજરે પડતાં હતાં, પણ તે પગલાં પાસે જે મૂત્ર પડયું હતું તેની મદદથી મેં એવો નિર્ણય કર્યો કે તે પગલાં હાથીનાં નથી પણ હાથણીનાં છે. તે જે માર્ગેથી પસાર થઈ હતી તેની જમણીબાજુ જે વૃક્ષો ઉગેલાં હતાં તેની ડાળિયો તેણે ખાધી હતી. ડાબી બાજુનાં વૃક્ષોની નહીં. તેથી હું એવા નિર્ણય પર આવ્યો કે તે હાથણી ડાબી આંખે કાણી છે. સાધારણ વ્યક્તિ તો હાથણી પર

साधारणो जनो हस्तियानेन गन्तुं नार्हतीति कोऽपि राजकीयो जनोगतः, इति निश्चितम्। रक्तवस्त्र तन्तुं संलग्नं वृक्षे दृष्ट्वा मया विदितम्-सधवा राज्ञी गतवतीति। क्वचित् प्रदेशे हस्तिन्या अवतीर्य लघुशङ्कां कृत्वा भूमौ हस्तं निवेश्य, उत्थितेति, तथा-विधहस्तचिह्नं तत्र दृष्ट्वा मया निश्चितम्-इयं राज्ञी गर्भवती' इति। दक्षिणे चरणे हस्तेचाधिकभारो जात इत्यनेन स्तोकएव समये पुत्रोत्पत्तिर्भविष्यतीति

कानी है? साधारण व्यक्ति तो हस्तिनी पर बैठ कर चल फिर नहीं सकता इसलिये जो व्यक्ति इस पर बैठ कर यहां से निकला है वह कोई राजकीय व्यक्ति ही होना चाहिये। ज्यों ही मेरे चित्त में यह विचार आ रहा था कि इतने में ही मुझे पास के एक वृक्ष के ऊपर रक्तवस्त्र का तन्तु लगा हुआ दिखलाई पड़ा। मैं इससे इस निश्चय पर पहुँचा कि ऐसे वस्त्र को धारण करने वाली राजा की रानी ही हो सकती है, साधारण स्त्री नहीं। एवं जिसने यह वस्त्र पहिर रक्खा है वह विधवा नहीं सधवा है। तथा वहीं पास के किसी स्थान पर जो मुझे मूत्र दिखलाई दिया और वहीं पर हाथ की हथेली का जमीन पर चिह्न प्रतीत हुआ-एवं पैर का चिह्न भी वहीं नजर पड़ा तो मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि वह गर्भवती है। कारण पेशाब से निबट कर जब वह उठी है तो उस समय वह जमीन पर हाथ टेककर ही उठी है, इससे उसके शरीर में गर्भ का भार है यह मालूम पड़ा। तथा हथनी से जब वह पेशाब करने के लिये उतरी होगी तो उतरते समय उसके दक्षिण पैर पर शरीर का

બેસીને ફરી શકે નહી તેથી તેના પર સવાર થઈને ત્યાંથી નીકળેલ વ્યક્તિ કોઈ રાજકીય વ્યક્તિ જ હોવી જોઈએ. એવો મેં નિર્ણય કર્યો. જેવો મારા મનમાં આ વિચાર આવ્યો કે તરત જ પાસેનાં એક વૃક્ષ ઉપર લાલવસ્ત્રનો એક તાંતણો લાગેલો મારી નજરે પડયો. તેથી હું એવા નિર્ણય પર આવ્યો કે આ પ્રકારનું વસ્ત્ર ધારણ કરનાર રાજાની રાણી જ હોઈ શકે, સામાન્ય સ્ત્રી નહીં, અને જેણે તે વસ્ત્ર પહેર્યું છે તે વિધવા નહીં પણ સધવા જ છે. તથા ત્યાં જ પાસેની એક જગ્યાએ જે મૂત્ર મારી નજરે પડયું અને ત્યાં જ જમીન પર હાથની હથેળીનું નિશાન દેખાયું, અને પગનાં નિશાન પણ ત્યાં નજરે પડયાં ત્યારે હું તે નિર્ણય પર પહોંચ્યો કે તે સ્ત્રી ગર્ભવતી છે, કારણ કે પેશાબ કરીને જ્યારે તે ઉઠી હશે ત્યારે તે જમીન પર હાથનો ટેકો દઈ ને ઉઠી હશે, તેથી તેના શરીરમાં ગર્ભનો ભાર છે તે ખબર પડી. તથા જ્યારે તે હાથણી ઉપરથી પેશાબ કરવા માટે નીચે ઉતરી હશે ત્યારે તેના જમણા પગ ઉપર

विदितम्। तथा-तस्यावृद्धायाः प्रश्नानन्तरं घटः पतितो भग्नश्च खण्डश इति दृष्ट्वा मया विमर्शः कृतः-यत् सरस्तीरे घटस्य मृद्भागो मृत्तिकायां जलभागो जले यथा मिलितस्तथा वृद्धाया अपि पुत्रो मिलिष्यतीति संभाव्यते। यद्वा-एष घटो यत उत्पन्नस्तत्र मिलितः, जलमपिसरसो गृहीतं सरस्येवमिलितं तथा पुत्रोऽप्यस्या मिलिष्यति' इति निश्चितम्। विनययुक्तस्य तस्य विमृश्यकारिणः शिष्यस्य वचनं

भार अधिक पड़ने के कारण उसकी निसानी जमीन में अधिक गढ़ी हुई नजर आरही थी। और इसी तरह से हाथ की निशानी भी। इस से मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि यह आसन्नप्रसवा है, और इसके गर्भ में पुत्र है इसके विना दक्षिण हाथ और दक्षिण पैर के चिह्न जमीन पर अधिकरूप में गढे हुए नहीं हो सकते हैं।

इसी तरह "वृद्धा के पुत्र का मिलाप वृद्धा से होगा ऐसा जो मैंने विचार किया उसका कारण यह है-जब मैंने यह देखा कि वृद्धा के मस्तक से प्रश्न पूछते ही घट गिर कर भग्न हो गया है, तो मैंने ऐसी संभावना की कि जिस प्रकार तलाब के तट पर घट संबंधी मृत्तिकाद्रव्य मृत्तिकाद्रव्य के साथ, जलभाग जल के साथ मिल गया है उसी प्रकार इस वृद्धा का भी पुत्र इसको मिल जायगा। अथवा-यह निश्चित है कि जिस तरह यह घडा जिस से उत्पन्न हुआ है उस से मिल गया, तथा तलाब से गृहीत हुआ जल तलाब में मिल गया है उसी तरह इस का पुत्र भी इस से मिलेगा। इस प्रकार अपने विनीत शिष्य के वचन सुनकर गुरु

શરીરનો વધારે ભાર પડવાને કારણે તે પગનું નિશાન જમીનમાં વધારે ઊંડું ઉતરેલું દેખાતું હતુ, અને એજ પ્રમાણે હાથનું પણ. તેથી હું એવા નિર્ણય પર આવ્યો કે તે સ્રીનો પ્રસવકાળ નજીક છે, અને તેના ગર્ભમાં પુત્ર છે નહીંતો જમણા હાથ અને જમણા પગનું નિશાન જમીનમાં વધારે ઊંડું ઉતરેલું ન હોઈ શકે. એજ પ્રમાણે "વૃદ્ધાને તેના પુત્રનો મેળાપ થશે એવો જે મેં નિર્ણય કર્યો તેનું કારણ આ પ્રમાણે છે-જ્યારે મેં જોયું કે પ્રશ્ન પૂછતાં જ વૃદ્ધાના માથેથી ઘડો પડીને ફુટી ગયો, ત્યારે મેં એવી કલ્પના કરી કે જે રીતે તળાવનાં કાંઠા ઉપર ઘડામાંનું મૃત્તિકા દ્રવ્ય (માટી) મૃત્તિકાદ્રવ્યની સાથે તથા જળભાગ પાણીની સાથે મળી ગયો છે તેમ આ વૃદ્ધાનો પુત્ર પણ તેને મળશે. અથવા-એ ચોકકસ છે કે જેમ આ ઘડો જેમાંથી ઉત્પન્ન થયો તેમાં મળી ગયો તથા તળાવમાંથી લીધેલું પાણી જેમ તળાવમાં મળી ગયું એજ પ્રમાણે તેનો પુત્ર પણ તેને મળશે." આ પ્રમાણે પોતાના વિનીત શિષ્યનાં વચન

निशम्य गुरुस्तं प्रशंसति स्म । अविमृश्यकारिणं द्वितीयंशिष्यं गुरुर्वदति-वत्स ! अत्र नास्ति मम दोषः, किंतु तवायं दोषः, यद् विमर्शं न करोषीति, अस्माभिरुभयोः सदृशं पाठितमिति ।

॥ इति वैनयिकबुद्धेः प्रथमो निमित्तदृष्टान्तः ॥ १ ॥

अर्थशास्त्रविषये कल्पकमन्त्रिदृष्टान्तः श्रूयते । स च वैनयिक्या बुद्धेर्द्वितीयो दृष्टान्तो बोद्धव्यः ॥ २ ॥

लिपिज्ञानं तृतीया वैनयिकबुद्धिः ॥ ३ ॥

गणितज्ञानं चतुर्थी वैनयिकी बुद्धिरिति द्रष्टव्यम् ॥ ४ ॥

पञ्चमस्तु कूपदृष्टान्तः—कूप इत्यनेन भूमिविज्ञानेकुशल इत्यवगम्यते स चैवम् —कश्चिद् भूमिविज्ञानकुशलः पुरुषः कृषीवलं प्राह—अत्र भूम्यामियति दूरे जलमस्ति ।

ने उस की बहुत अधिक प्रशंसा की। तथा अविनीत शिष्य कों समझाते हुए उससे कहा—वत्स ! इस में मेरा कुछ भी दोष नहीं है, दोष है तो केवल तुम्हारा ही। जो तुम विनयादि गुणों से विवर्जित होकर मेरी कही हुई बात पर कुछ भी विमर्श नहीं करते हो। यह विश्वास रक्खो—हमने तो तुम दोंनों को ही एकसाथ पढाया है ॥ १ ॥

॥ यह प्रथम निमित्तदृष्टान्त हुआ ॥ १ ॥

अर्थशास्त्र के ऊपर जो कल्पक मंत्री का दृष्टान्त है—बह वैनयिक बुद्धि का द्वितीय दृष्टान्त है २। लिपिज्ञान, यह वैनयिक बुद्धि का तीसरा दृष्टान्त है ३। गणितज्ञान यह वैनयिक बुद्धि का चौथा दृष्टान्त है ४। कूप दृष्टान्त इस प्रकार हैं—

कोई एक व्यक्ति ऐसा था जो भूमिविज्ञान में विशेष कुशल था। उसने किसी किसान से कहा कि—इस भूमि में इतनी दूरी पर जल है।

સાંભળીને ગુરુએ તેની ઘણી જ પ્રશંસા કરી, તથા અવિનીત શિષ્યને સમજાવતા કહ્યું "વત્સ! આમાં મારો કોઈ દોષ નથી. દોષ હોય તો ફક્ત તારો જ છે કે તું વિનયાદિ ગુણોથી રહિત બનીને મેં કહેલી વાત પર કોઈ નિર્ણય જ કરતો નથી. એ વિશ્વાસ રાખ કે મેં તો તમને બન્નેને એક સરખું જ શિખવ્યું છે.

॥ આ પહેલું નિમિત્તદૃષ્ટાંત સમાપ્ત ॥ ૧ ॥

અર્થશાસ્ત્ર ઉપર જે કલ્પકમંત્રીનું દૃષ્ટાંત છે, તે વૈનયિકબુદ્ધિનું બીજું દૃષ્ટાંત છે. (૨). લિપિજ્ઞાન, એ વૈનયિક બુદ્ધિનું ત્રીજું દૃષ્ટાંત છે (૩). ગણિતજ્ઞાન, એ વૈનયિકબુદ્ધિનું ચોથું દૃષ્ટાંત છે (૪). પાંચમું કૂપ દૃષ્ટાંત આ પ્રમાણે છે–

तावत्या भूमेः खनने कृते सति जलं न निर्गतम् । ततः स कृषीवलः प्राह-तत्पार्श्व भागे स्तोकं पार्ष्णि (एडी) प्रहारं कुरु। एवं कृते सति तदैव जलं तत्र समुच्छलितम्।

॥ इति वैनयिक्या बुद्धेः पञ्चमः कूपदृष्टान्तः ॥ ५ ॥

अथ षष्ठोऽश्वदृष्टान्तः—

बहवोऽश्ववणिजो द्वारवतीं जग्मुः । तत्र सर्वे कुमाराः स्थूलान् बृहतश्चाश्वान् गृह्णन्ति । वासुदेवेन तु दुर्बलो लक्षण सम्पन्नो लघीयानश्वः क्रीतः । स च कार्यनिर्वाहकः प्रभूताश्वाग्रेसरश्च जातः ।

॥ इति षष्ठोऽश्वदृष्टान्तः ॥ ६ ॥

किसान ने इस बात को सुनते ही भूमि खोदना प्रारंभ किया । जितनी दूरतक जल बतलाया था वहां तक उस ने जमीन खोद डाली परन्तु जल नहीं निकला। तब किसान ने उस से कहा-भाई ! जल तो नहीं निकला। तब उस ने कहा-देखो। उसके पार्श्वभाग में धीरे से एडी का प्रहार करो तो वहां जल निकलेगा। ऐसा करते ही वहां उसी समय जल उछल पड़ा॥५॥

॥ यह पांचवां कूपदृष्टान्त हुआ ॥ ५ ॥

छठा घोडे का दृष्टान्त-

बहुत से घोडे के व्यापारी एक समय द्वारिका नगरी में गये हुए थे। वहां समस्त यादव कुमारों ने उनके स्थूल काय बडे २ घोडे खरीद लिये, परन्तु वासुदेव ने ऐसा नहीं किया। उसने तो कमजोर पतला दुबला ही एक घोडा खरीदा। धीरे २ वही उन सब में ऐसा मजबूत

કોઈ એક માણસ ભૂમિવિજ્ઞાનમાં વિશેષ કુશળ હતો તેણે કોઈ ખેડૂતને કહ્યું કે આ ભૂમિમાં આટલી ઉંડાઈએ પાણી છે. ખેડૂતે તે વાત સાંભળતા જ ભૂમિ ખોદવા માંડી. જેટલી ઉંડાઈએ પાણી બતાવ્યુ હતું તેટલી ઉંડાઈ સુધી તેણે જમીન ખોદી નાખી પણ પાણી નીકળ્યું નહીં. ત્યારે ખેડૂતે તેને કહ્યું "ભાઈ! પાણી તો ન નીકળ્યું" ત્યારે તેણે કહ્યું, "જુવો ! તેની બાજુના ભાગમાં ધીમેથી લાત મારો તો પાણી નીકળશે" એમ કરવામાં આવતા ત્યાંથી એજ સમયે પાણી નીકળ્યું ॥ ૫ ॥

॥ આ પાંચમું કૂપદૃષ્ટાંત સમાપ્ત ॥૫॥

છટ્ઠું ઘોડાનું દૃષ્ટાંત-

એક વખત ઘણા ઘોડાના વેપારી દ્વારિકા નગરીમાં આવ્યા, ત્યાંના બધા યાદવકુમારોએ તેમના સ્થૂળ શરીરવાળા મોટા મોટા ઘોડા ખરીદી લીધા. પણ વાસુદેવે તેમ કર્યું નહીં. તેણે તો દુબળો, પાતળો અને કમજોર એક જ ઘોડો ખરીદ્યો. ધીરે ધીરે એજ ઘોડો તે બધા ઘોડામાં એવો મજબૂત અને ઉપયોગી

अथ सप्तमो गर्दभदृष्टान्तः—

कोऽपि राजा यौवनप्रारम्भे राज्यं प्राप्तवान्। अतस्तारुण्यमेव सर्वकार्यक्षमं रमणीयं च मत्वा निजसैन्येषु तरुणानेव धारितवान्, वृद्धांस्तु सर्वानपि बहिष्करोतिस्म। स चान्यदा सैन्येन सह गच्छन् क्वचिदटव्यां गतः, तत्र च समस्तोऽपि जनः पिपासया पीडितो जातः। तदा राजा किं कर्तव्यमूढोऽभवत्। ततो राज्ञः समीप-

---

और कार्यसधक निकला कि जिस के आगे वे सब घोडे फीके एवं कमजोर साबित हुए इस तरह वासुदेव का वह घोडा सब घोडे के बीच विशेष महत्व शाली प्रमाणित होने के कारण उन सब में अग्रेसर माना गया ॥ ६ ॥

॥ यह छठा घोडे का दृष्टान्त हुआ ॥ ६ ॥

सातवां गर्दभदृष्टान्त—

किसी राजा ने यौवन के प्रारंभ काल में ही राज्य प्राप्त कर लिया था, अतः उसके ध्यान में यह बात जम गई कि समस्त कार्यों की साधक एक मात्र यौवन अवस्था ही है, इसलिये उसने अपनी सेना में तरुण व्यक्तियों को ही भर्ती कर ने का आदेश जारी किया, तथा जो वृद्धजन पहिले से सेनाविभाग में काम करते आ रहे थे उन्हें निकालना प्रारंभ कर दिया। एक दिन की बात है—राजा अपनी सेना को साथ लेकर कहीं बाहर जा रहा था। चलते २ वह एक महान् अटवी में आपहुँचा, जिस में पानीं आदि का बिलकुल अभाव था। वहां आते ही उस के सैनिक जन

નીવડયો કે તેની આગળ બીજા ઘોડા ફીકા અને કમજોર સાબિત થયા. આ રીતે વાસુદેવનો ઘોડો તે બધા ઘોડાઓમાં વધારે મહત્વશાળી સાબિત થવાથી તે બધાનો આગેવાન ગણાવા લાગ્યો ॥ ૬ ॥

॥ આ છઠું ઘોડાનુ દૃષ્ટાંત સમાપ્ત ॥૬॥

સાતમું ગર્દભદૃષ્ટાંત—

કોઈ રાજાએ યુવાવસ્થાના પ્રારંભકાળે જ રાજ્ય મેળવ્યું હતું, તેથી તેના મનમાં એવો પાકો નિર્ણય થયો કે સઘળા કાર્યો સાધનારી એક માત્ર યુવાવસ્થા જ છે. તેથી તેણે પોતાના સૈન્યમાં યુવાન માણસોની જ ભરતી કરવાનો આદેશ આપ્યો, તથા જે વૃદ્ધ માણસો પહેલેથી તેની સેનામાં કામ કરતા હતા તેમને છૂટા કરવા માંડયા. એક દિવસ રાજા પોતાની સેના સાથે કોઈક સ્થળે જતો હતો. ચાલતાં ચાલતાં તે એક મોટા જંગલમાં આવી પહોંચ્યો, જ્યાં પાણી આદિનો તદ્દન અભાવ હતો. ત્યાં આવતા તેના સૈનિકો તૃષાથી

मागत्यकश्चित् सेवको वदति-देव ! अयमापत्समुद्रः कथमस्यापत्समुद्रस्यपारं गच्छामः, वृद्ध पुरुषस्य बुद्धिरिह नौका भवेत् अतः क्वापि वृद्धंगवेषयन्तु भवन्तः। ततो राज्ञा सर्वस्मिन्नपिकटके घोषणाकारिता। तत्र चैकः पितृभक्तः सैनिकः प्रच्छन्नतया स्वपितरं समानीतवान्। ततस्तेनोक्तम्-राजन् ! मम पितावृद्धोऽस्तीति। ततो राजाज्ञया तेनासौ राज्ञः पार्श्वे नीतः। राजा बहुमानपुरस्सरं पृच्छति-महापुरुष ! कथय, कथं मे कटके जलं भविष्यति ?। तेनोक्तम्-राजन् रासभाः स्वैरं

प्यास से आकुलित होकर व्याकुल हो उठे। राजा ने ज्यों ही अपने सैनिकों की यह हालत देखी तो वह घवडा उठा और कर्तव्य विमूढ बन गया। इतने में उस के पास एक सेवक ने आकर कहा-महाराज! यह एक बड़ा भारी आपत्तिरूप समुद्र साम्हने आगया है, इस का पार पाना बड़ा कठिनतर दिखलाई दे रहा है। हां! यदि यहां कोई वृद्धजन सलाह देने वाला हो तो इस विपत्ति से छुटकारा मिल सकता है, इसलिये मेरी राय ऐसी है कि किसी वृद्धजन की आप गवेषणा करावें। सेवक की इस बात से प्रभावित होकर राजा ने ऐसा ही किया। उस ने शीघ्र ही अपने समस्त कटक में इसी तरह की घोषणा करवा दी। सेना में एक पितृभक्त सैनिक ने प्रच्छन्न रूप से अपने वृद्ध पिता को सेवा करने के लिये साथ में लाया था वह राजा के पास जाकर यह खबर दी कि महाराज ! मेरा पिता वृद्ध है यदि आप की आज्ञा हो तो उस को आपके पास उपस्थित करूं। राजा की स्वीकृति पाकर ,वह अपने वृद्ध

આકુળ વ્યાકુળ થયા. રાજાએ જેવી પોતાના સૈનિકોની તે હાલત જોઇ કે તે ગભરાઇ ગયો અને શું કરવું તેની કંઇ સૂઝ પડી નહીં. એવામાં એક સેવકે તેની પાસે આવીને કહ્યું, “મહારાજ ! આપની સમક્ષ આ એક મોટો આપત્તિ રૂપ સાગર આવી પડયો છે, તેનો પાર પામવો ઘણો કઠિન લાગે છે. પણ સલાહ દેનાર કોઇ વૃદ્ધ માણસ મળી આવે તો આ મુશ્કેલીમાંથી ઉગરી શકાય તેમ છે. તો મારી એવી સલાહ છે કે આપ કોઇ વૃદ્ધ પુરુષની શોધ કરાવો” સેવકની આ વાતની રાજા પર સારી અસર થતા રાજાએ એ પ્રમાણે કર્યું. તેણે તરત જ પોતાના આખા સૈન્યમાં એ પ્રકારની ઘોષણા કરાવી દીધી. સેનામાંનો એક પિતૃભક્ત સૈનિક સેવા કરવાની ઇચ્છાથી પોતાના પિતાને છૂપાવીને સાથે લાવ્યો હતો. તેણે રાજાની પાસે જઇને ખબર આપી કે મહારાજ! મારા પિતા વૃદ્ધ છે. જો આપ આજ્ઞા આપો તો તેમને આપની સમક્ષ હાજર કરૂ” રાજાની મંજૂરી મળતા તે તેના વૃદ્ધ પિતાને રાજાની પાસે લઈ ગયો. રાજાએ

मुच्यताम्, यत्र ते भूमिं घ्रास्यन्ति, तत्र जलमतिप्रत्यासन्नंभविष्यति। राज्ञा तथैव कारितम्। जलं च प्रादुर्भूतम्। समस्तं कटकं स्वस्थीभूतम्।

इति स्थविरस्य वैनयिकी बुद्धिः॥ इति सप्तमो गर्दभदृष्टान्तः॥७॥

अथाष्टमो लक्षणदृष्टान्तः—

आसीत पारसदेशीयः कश्चिदश्वानां स्वामी। स च कंचित् योग्यं पुरुषमश्वरक्षणार्थं नियुक्तवान्। तदाऽश्व स्वामी तमश्वरक्षकं प्रोक्तवान-एतावद्वर्षपर्यन्तं त्व कम

पिता को राजा के पास ले गया। राजा ने बहुमान पुरस्सर उस वृद्ध से पूछा-महापुरुष! मेरा समस्त कटक प्यास से आकुलित हो रहा है, यहां पास में कहीं पर भी जल का नाम दिखलाई नहीं पड़ रहा है, अतः आप कोई उपाय बतलाइये कि जिस से आपत्ति दूर हो जावें। राजा की बात सुनकर उस वृद्ध ने कहा महराज! अब आप ऐसा कीजिये कि गधो को अपनीं इच्छानुसार छाड दीजिये, वे जहां पर जमीन को सूघे, समझलीजिये वहीं पर नीचे जल अतिनिकट है। राजा ने उस वृद्ध की सम्मति के अनुसार ऐसा ही किया तो उस को जल की प्राप्ति होगई और कटक का संकट टल गया। यह स्थविर की वैनयिक बुद्धि हुई॥

॥ यह सातवां गर्दभदृष्टान्त हुआ॥ ७॥

आठवा लक्षणदृष्टान्त—

पारसदेश का निवासी एक व्यक्ति था। जिसके यहां अनेक घोड़े थे। उसने उन घोड़ो की सार संभाल करने के लिये एक योग्य पुरुष की नियुक्ति की। पारिश्रमिक उसका इस प्रकार निर्णीत किया गया

घणा मानपूर्वक तेने पूछयु, "महापुरुष! मारूं समस्त सैन्य तृषाथी आकुळ व्याकुळ थई गयु छे. आटलामां पासे कयांय पण पाणी बिलकुल देखातुं नथी. तो आप एवो कोई उपाय बतावो के जेथी आ मुश्केली टळे" राजानी वात सांभळीने ने वृद्धे कह्युं "महाराज! आप आ प्रमाणे करो-गधेडांओने तेमनी ईच्छा प्रमाणे जवा दो. तेओ जे जग्याए जमीन सूंघे, ते जमीननी नीचे थोडी ज उंडाईए पाणी मळशे तेम मानवुं." राजाए ते वृद्धनी सलाह प्रमाणे ज कर्युं, तो तेने पाणी मळ्युं अने सैन्यनी मुश्केलीनो पण अंत आव्यो. आ वृद्धनी वैनयिकबुद्धि थई.

॥ आ सातमुं गर्दभदृष्टांत समाप्त ॥७॥

आठमुं लक्षणदृष्टांत-

ईरानना निवासी एक माणुस हतो. तेने त्यां अनेक घोडा हता. तेणे ते घोडानी संभाळ राखवा माटे एक माणसनी निमणुंक करी. आ प्रकारे तेनुं वेतन नक्की कर्युं-तमे आटला वर्ष सुधी अहीं काम करशो तो तेना बदलामां

करिष्यसि, तदाऽश्वरक्षणस्य पारिश्रमिकं द्वावश्वौ तुभ्यं दास्यामि। तेनापि स्वीकृतम्। सहनिवसतस्तस्याश्वरक्षकस्य तत्पुत्र्या सह स्नेहानुबन्धः संजातः। एकदाऽसौ तां पृच्छति—सर्वेष्वश्वेषु कौ भव्यौ? इति। तयोक्तम्-अमीषामश्वानां विश्वस्तानां मध्ये यौ पाषाणभृतकुतपानां वृक्षशिखरान्मुक्तानामपि शब्दमाकर्ण्य नो त्रस्यतस्तौ भव्यौ। तेन तथैवतावश्वौ परीक्षितौ। ततोऽश्वरक्षकः स्व वेतनग्रहणसमये स्वामिनं ब्रूते-इमौ द्वावश्वौ मह्यं देहि। स्वामी प्राह-अरे! अन्ये बहवोऽश्वाः सन्ति शोभनाः

कि यदि तुम इतने वर्षतक यहां काम करोगे तो इसके उपलक्ष में तुम्हें दो घोड़े दिये जावेंगे। मालिक की इस बात से वह सहमत हो गया और अपने काम में लग गया। मालिक की एक लड़की भी थी। रहते २ उसकी उससे जान पहिंचान हो गई और धीरे २ उसके साथ उसका स्नेह भी बढ गया। एक दिन लड़की से उसने पूछा! तुम्हारे इन समस्त घोड़ों में अच्छे कौन २ दो घोड़े माने जाते हैं। उत्तर में उसने कहा-देखो इन विश्वस्त समस्त घोड़ो के बीच में जो दो घोड़े वृक्ष के शिखर से गिराये गये पत्थर के टुकडों से भरे हुए कूडो (चमड़े के घी भरने के पात्रों) के शब्द को सुनकर भी नहीं डरे वे ही समझ लो अच्छे हैं। उसकी बात मानकर उसने उनकी परीक्षा की तो जो इस परीक्षा में उत्तीर्ण हुए वे उसने अपने ध्यानमें रखलिये। बाद में जब वेतन ग्रहण करने का समय आया तो उसने मालिक से वेतन में वे दोनों घोंड़े मांगे। मालिक ने कहा-अरे-इन घोड़ों के अतिरिक्त और भी बहुत से घोड़े बड़े अच्छे हैं उन्हें तुम ले लो इन्हें क्यों लेते हो।

તમને બે ઘોડા આપવામાં આવશે માલિકની તે વાત મંજૂર કરીને તે પોતાને કામે લાગી ગયો માલિકને એક પુત્રી પણ હતી. ધીમે ધીમે તેને તેની સાથે પરિચય થયો અને તે પરિચય વધતા વધતા તેની સાથેના પ્રેમમાં પરિણમ્યો. એક દિવસ તે છોકરીને તેણે પૂછયું, "તમારા આ બધા ઘોડામાં કયા કયા ઘોડા સારામાં સારા ગણાય છે?" તેણે જવાબ આપ્યો, "જુવો આ બધા વિશ્વાસ પાત્ર ઘોડામાંના જે બે ઘોડા વૃક્ષની ટોચ ઉપરથી નીચે ફેંકેલા પથ્થરના ટુકડાઓથી ભરેલા કુંડા (ઘી ભરવા માટેના ચામડાનાં પાત્રો) નો અવાજ સાંભળીને પણ ડરે નહીં એમને જ સારામાં સારા સમજી લેવા. તેની સલાહ માનીને તેણે તેમની કસોટી કરી તો જે ઘોડા તે કસોટીમાં સફળ થયા તેમને તેણે ધ્યાનમાં રાખી લીધા. પછી જ્યારે વેતન લેવાનો સમય પાકયો ત્યારે તેણે વેતન તરીકે તે બે ઘોડા માગ્યા. માલિકે કહ્યું "અરે! આ ઘોડાઓ કરતાં તો બીજા ઘણા ઘોડા વધારે સારા છે, તો આ ઘોડાને બદલે તું બીજા ઘોડા પસંદ

तान् गृहाण, आभ्यामलम्, इमौ न शोभनौ। एव मुक्तोऽसावश्वरक्षकः स्वामिवचनं नामन्यत। ततोऽश्वस्वामिनाचिन्तितम्-अयमश्वरक्षको मया गृहजामाताकरणीयः। अन्यथाऽयं तावश्वौ गृहीत्वा गमिष्यति। लक्षणसम्पन्नेनाश्वेन कुटुम्बस्य वाऽश्वस्य वा वृद्धिर्भविष्यति। एवं विचिन्त्य स स्वपुत्र्या सह तस्य विवाहं कारितवान्। तं च गृहजामातरं विधाय द्वावपि लक्षणसम्पन्नावश्वौ स्वगृहे स्थापितवान्। इत्यश्व स्वामिनो विनयजा बुद्धिः।

॥ इत्यष्टमो लक्षणदृष्टान्तः ॥ ८ ॥

अथ नवमो ग्रन्थिदृष्टान्तः—

कदाचित् पाटलिपुत्र नाम्निनगरे मुरुण्ड नामको राजा राज्यं करोति। अन्य

ये तो अच्छे नहीं हैं। इस प्रकार स्वामी के वचन सुनकर उसने कहा–महाराज! मैं तो इन्हें ही लूंगा, दूसरों की चाहना मुझे नहीं है। अश्वमालिक ने इस तरह के जब उसके वचन सुने तो मन में उसने विचार किया कि अब तो इसे घरजमाई बनाने में ही लाभ है, नहीं तो यह इन दोनों घोडों को लेकर यहां से अवश्य चला जायगा। इस तरह विचार कर उसने अपनी पुत्री के साथ उसका विवाह कर दिया। और उसको घर जमाई रख लिया। तथा उन दोनों लक्षणसंपन्न घोड़ों को भी। इस प्रकार अश्वस्वामी ने वैनयिकीबुद्धि के प्रभाव से अपना काम बना लिया ॥ ८ ॥

॥ यह आठवां लक्षणदृष्टान्त हुआ ॥ ८ ॥

नौवां ग्रन्थिदृष्टान्त—

किसी समय पाटलिपुत्र में (पटना शहर में) मुरुण्ड नाम का राजा

કર. આ ઘોડા શા માટે લે છે? એ તો સારા નથી” માલિકના આ પ્રકારનાં વચનો સાંભળીને તેણે કહ્યું “શેઠ સાહેબ! હું તો એ ઘોડા જ લઈશ, બીજા લેવાની મારી ઈચ્છા નથી.” ઘોડાના માલિકે જ્યારે આ પ્રકારના તેના શબ્દો સાંભળ્યા ત્યારે તેણે વિચાર્યું કે હવે તો તેને ઘરજમાઈ બનાવવામાં જ લાભ છે, નહીં તો તે આ બન્ને ઘોડાને લઈને અહીંથી ચાલ્યો જશે. આવો વિચાર કરીને તેણે પોતાની પુત્રી સાથે તેના લગ્ન કરી નાખ્યા. અને તેને ઘરજમાઈ તરીકે રાખ્યો, અને તે બન્ને લક્ષણોયુક્ત ઘોડા પણ તેની પાસે જ રહ્યા. આ રીતે અશ્વના માલિકે વૈનયિકીબુદ્ધિના પ્રભાવે પોતાનું કામ પાર પાડ્યું ॥ ૮ ॥

॥ આ આઠમું લક્ષણદૃષ્ટાંત સમાપ્ત ॥ ૮ ॥

નવમું ગ્રન્થિદૃષ્ટાંત–

કોઈ સમયે પાટલિપુત્રમાં (પટણા શહેરમાં) મુરુડ નામનો રાજા રાજ્ય

राष्ट्रस्य राजा एकदा कौतुकार्थं तत्समीपे त्रीणि वस्तूनि प्रेषितवान्-गूढं सूत्रम्-गुप्तग्रन्थिमत् सूत्रम् १, समायष्टिः-समभागं काष्ठम् २, अलक्षितद्वारः समुद्गको जतुना लिप्तः ३। मुरुण्डस्तानिवस्तूनि स्वपुरुषानाहूय दर्शयति, न च तानि केनापि विदितानि ततो राजा कलाचार्यमाहूय पृच्छति-हे आर्य! भवान् अस्य ग्रन्थिद्वारं जानाति? आचार्य आह—जानामि। इत्युक्त्वा तेन तदैव सूत्रमुष्णजले निक्षिप्तम्, ततस्तत्सूत्रमुष्णजलसंयोगेन निर्मलं जातम् मलापगमे सति लब्धः सूत्रस्यान्तः, ग्रन्थिभागोऽपि दृष्टः। यष्टिरपि जले निक्षिप्ता। ततो गुरुभागो मूलमिति विज्ञातम्। गुरुभागे एव ग्रन्थिर्भवति। समुद्गकोऽप्युष्णोदके क्षिप्तः, तेन सर्वं जतु

राज्य करता था। उसके पास किसी दूसरे राष्ट्र के राजा ने क्रीडानिमित्त तीन वस्तुएँ भेजी। उनमें एक गूढसूत्र था, जिसमें गांठ गुप्त थी १। दूसरी समभागवाली यष्टि थी जिसका मूल भाग गुप्त था २। तीसरा लाख से अलक्षित द्वारवाला डिब्बा था ३। मुरुण्ड ने इन तीनों चीजों को अपने निजी व्यक्तियों को बुलाकर दिखलाया परन्तु कोई भी इन के भेद को नहीं जान सका। बाद में कलाचार्य को बुलाकर राजा ने उस से पूछा-हे आर्य! आप इस सूत्र के ग्रन्थिद्वार को जानते हैं। कलाचार्य ने कहा-हां जानता हूं। फिर उस कलाचार्य ने गर्मजल मंगवाकर उस सूत्र को उस गरमजल में डाल दिया। गरमजल के संबंध से वह निर्मल हो गया। मल रहित होते ही सूत्र का अंत और ग्रन्थिभाग ये दोनों दिखलाइ देने लगे। बाद में उस ने यष्टि को भी जल में डाल दिया। डालते ही यष्टि का जो मूलभाग था वह जल में डूब गया। डूबते ही उसको इस बात का

કરતો હતો. કોઈ બીજા રાજ્યના રાજાએ તેની પાસે ક્રીડાનિમિત્તે ત્રણ વસ્તુઓ મોકલી. (૧) તેમાં એક ગૂઢસૂત્ર હતું, જેમાં ગુપ્ત ગાંઠ હતી. (૨) બીજી સરખા ભાગ વાળી લાકડી હતી જેનો મૂળ ભાગ ગુપ્ત હતો (૩) લાખથી અલક્ષિત દ્વારવાળો ડબ્બો હતો. મુરુંડે તે ત્રણે ચીજો પોતાના ખાસ માણસોને બોલાવીને બતાવી, પણ કોઈ પણ તેનું રહસ્ય સમજી શક્યું નહીં. ત્યાર બાદ કળાચાર્યને બોલાવીને રાજાએ તેમને પૂછ્યું, "હે આર્ય! આપ આ સૂત્રના ગ્રન્થિ દ્વારને જાણો છો? કલાચાર્યે કહ્યું, "હા જાણું છું." પછી તે કળાચાર્યે ગરમ પાણી મંગાવ્યું, અને તે સૂત્રને તે ગરમ પાણીમાં મૂક્યું. ગરમ પાણીના સંસર્ગથી તે સ્વચ્છ થયું. નિર્મળ થતાં જ સૂત્રનો અંત તથા ગ્રન્થિભાગ એ બન્ને દેખાવા લાગ્યા. પછી તેમણે લાકડીને પણ પાણીમાં મૂકી મૂકતા જ લાકડીનો જે મૂળ ભાગ હતો તે પાણીમાં ડૂબી ગયો. ડૂબતા જ તેમને તે વાત સમજાઈ

गलितम्। ततश्च तस्य द्वारं प्रकटीभूतम्। ततो राजा तमाचार्यं प्राह-हे आर्य! दुर्विज्ञेयंकिमपिकौतुकं भवानपि करोतु येन तत्र प्रेषयामि। आचार्येण काचित् तुम्बी एकस्मिन् प्रदेशे खण्डमेकमपहाय रत्नैर्भृता। तत् खण्डं तथा मुद्रितं यथा न केनापि लक्ष्यते। ततो राजा तां तुम्बीं दत्त्वा स्वान् पुरुषान् तत्समीपे प्रेषयति कथयति च-इमां तुम्बीमत्रोटयित्वा रत्नानि ग्रहीतव्यानीति। ते पुरुषास्तां तुम्बीमादाय तत्र गत्वा तस्मै तां समर्प्य तथैव ब्रुवन्ति-तत्रस्था राजपुरुषा बहुशः प्रयत्ने कृतेऽपि तथा कर्तुमसमर्था अभूवन्। इयमाचार्यस्य विनयजा बुद्धिः।

॥ इति नवमो ग्रन्थिदृष्टान्तः ॥ ९ ॥

पता पड़ गया कि यष्टि का यह मूलभाग है। और इसी में गांठ है। इसी तरह समुद्गक-डिब्बे को भी गरमजल में डालकर कलाचार्य ने उसके द्वार का पता लगा लिया। कारण गरमजल में डालते ही उस के ऊपर लिप्त हुई लाख पिघलकर दूर हो गई थी। कलाचार्य की इस अभिज्ञता से राजा बडा प्रसन्न हुआ। उसने कलाचार्य से कहा-आर्य। तुम भी दुर्विज्ञेय कुछ कौतुक करो कि जिस को हम भी उस राजा के पास भेज सकें। राजा की बात सुनकर कलाचार्य ने एक तुंबी ली और उस का एक टुकड़ा अलग कर उस में रत्न भर दिये और उस खंड को इस प्रकार चिपका दिया कि जिस से उसका संधिभाग किसी को भी ज्ञात न हो सके। बाद में राजा ने इस तुंबी को अपने कर्मचारियों को देकर उन से कहा-यह तुंबी उस राजा के पास ले जाओ और उन्हें दे कर कहना कि इसको विना तोडे ही इस में से आप रत्न निकाल लो। राजा की आज्ञा-

ગઈ કે લાકડીના આ મૂળ ભાગ છે. અને એમાંજ ગાંઠ છે. એજ રીતે ડબ્બાને પણ ગરમ પાણીમાં મૂકીને કલાચાર્યે તેનું દ્વાર પણ ગોતી કાઢયું કારણ કે ગરમ પાણીમાં નાખતા જ તેના ઉપર જે લાખ હતી તે પીગળીને દૂર થઈ ગઈ. કલાચાર્યની આ પ્રકારની બુદ્ધિથી રાજા ઘણો ખુશી થયો. તેણે કલાચાર્યને કહ્યું, "આર્ય! તમે પણ એવું કંઈ દુર્વિજ્ઞેય કૌતુક કરો કે જેને અમે પણ તે રાજા પાસે મોકલી શકીએ." રાજાની વાત સાંભળીને કળાચાર્યે એક તુંબડી લીધી, અને તેનો એક ટુકડો જુદો કરીને તેમાં રત્ન ભરી દીધાં અને પછી તે ટુકડાને તેના પર એવી રીતે ચોટાડી દીધો કે તેનો સાંધો કોઈને પણ જડી શકે નહીં. પછી રાજાએ તે તુંબડી પોતાના સેવકોને આપીને કહ્યું, "આ તુંબડી તે રાજા પાસે લઈ જાવ, અને તેમને આ આપીને કહેજો કે તેને તોડયા વિના તેની અંદરથી રત્નો કાઢી લો. રાજાની આજ્ઞાનુસાર તે માણસો તે

अथ दशमोऽगदद्दष्टान्तः—

कस्यचिद्राज्ञः सैन्यं शत्रुभूपेन विषप्रयोगेण मूर्च्छितं कृतम् । तादृशीं स्वसैन्यस्थितिं विलोक्य राजा वैद्यमाहूय वदति—प्रचुरं मम सैन्यं परचक्रेण विषाक्रान्तं कृतं तत्कथमेतत् प्रचुरं मम सैन्यं निर्विषं भवेत् ? । वैद्येनोक्तम्—सर्वं स्वल्पेनैव कालेन नैरुज्यं प्राप्स्यति । ततो वैद्यः स्तोकमौषधमानीय राजानं दर्शयति । राजा

नुसार वे पुरुष उस तुंबी को लेकर उस राजा के पास पहुँचे और जैसा राजा ने उन से कहने को कहा था वैसा ही उन्हों ने वहां जाकर कहा। उस राजा ने अपने राजपुरुषों को उस समय बुलाया और तुंबी देकर कहा—कि विना फोडे इस में से रत्नो को बाहर निकालो । राजपुरुषों ने अनेक प्रकार के प्रयत्न किये परन्तु वे उस में से रत्न नहीं निकाल सके।

यह आचार्य की विनयजा बुद्धि का नौवां उदाहरण हुआ॥ ९ ॥

दसवां अगदद्दृष्टान्त—

किसी एक राजा की सेना को उस से किसी विपक्षी राजाने विषप्रयोग द्वारा मूर्च्छित कर दिया था। अपनी सेना की इस स्थिति से चिन्तित होकर राजा ने उसी समय वैद्य को बुलाकर कहा—वैद्यजी ! मेरा प्रचुर सैन्य परचक्र ने (शत्रु की सेना ने) विषप्रयोग द्वारा मूर्च्छित कर दिया है तो अब आप बतलाईये—यह कैसे सचेत हो सकता है। राजा की बात सुनकर वैद्य ने कहा आप चिन्ता न कीजिये बहुत जल्दी आपका यह सैन्य ठीक हो जावेगा। ऐसा कहकर उसने राजा को थोड़ी सी औषधी लाकरके दिखलाई।

તુંબડી લઈને તે રાજા પાસે પહોંચ્યા, અને રાજાએ જે પ્રમાણે કહેવાની સૂચના આપી હતી તે પ્રમાણે ત્યાં જઈને કહ્યું. તે રાજાએ તેજ સમયે પોતાના રાજપુરુષોને બોલાવ્યા. અને તુંબડી આપીને કહ્યું કે આને કાપ્યા વિના તેમાંથી રત્નો બહાર કાઢી દો. રાજપુરુષોએ અનેક પ્રકારના પ્રયત્નો કર્યા પણ તેઓ તેમાંથી રત્નો કાઢી શકયા નહીં.

॥ આ આચાર્યની વૈનયિકીબુદ્ધિનું નવમું ઉદાહરણ ॥ ૯ ॥

દસમું અગદ (ઔષધ) દષ્ટાંત—

કોઈ એક રાજાની સેનાને તેના દુશ્મન રાજાએ વિષપ્રયોગ દ્વારા મૂર્છિત કરી નાખી હતી. પોતાની સેનાની એ હાલતથી ચિન્તતુર થઈ ને રાજાએ એજ સમયે વૈદ્યને બોલાવીને કહ્યું, "વૈદ્યજી! મારા આખાં સૈન્યને દુશ્મનની સેનાએ વિષપ્રયોગ દ્વારાં મૂર્છિત કરી નાખ્યું છે, તો આપ બતાવો કે આ લોકો કેવી રીતે સચેત થશે ?" રાજાની વાત સાંભળીને વૈદ્યે કહ્યુ, "આપ ચિન્તા ન કરો ઘણું જલદી આપનુ સૈન્ય સારૂં થઈ જશે." એવું કહીને તેણે રાજાને થોડી

च स्तोकमौषधं दृष्ट्वा तदुपरि कोपं कृतवान्। वैद्यो वदति-महाराज! इदं लक्षारोग्यप्रदमौषधमस्ति, अल्पं दृष्ट्वा भवान् कोपं मा करोतु। राजा पृच्छति-कथमेतन्निश्चेतव्यम्? वैद्यः प्राह-राजन्! आनाय्यतां कोऽपि विषाक्रान्तः। राज्ञा तादृशो हस्तीदर्शितः। ततो वैद्यो हस्तिनः पुच्छदेशे वालमेकमुत्पाट्य तदीयरन्ध्रे तदौषधं संचारितम्। तेन सहस्ती स्वस्थो जातः वैद्यो वदति-राजन्। हस्ती नैरुज्यं प्राप्तः। एवमेतदौषधं लक्षारोग्यप्रदम्। हस्तिनि स्वस्थे जाते सति राजा शान्तचेतसा वैद्यं वदति-करोत्वेवम् वैद्येन तदौषधप्रयोगः सैन्ये संचारितः। जातं तत्प्रचुरमपि सैन्यं निर्विषम्। राजा वैद्यं प्रति संतुष्टो जातः। इति वैद्यस्य विनयजा बुद्धिः।

॥ इति दशमोऽगददृष्टान्तः ॥ १० ॥

थोड़ी औषधी देखकर राजा को वैद्य के प्रति क्रोध का आवेग जग गया। वैद्य ने यह देखकर राजा से उसी समय कहा-महाराज! इतनी सी यह औषधी एक लाख आदमियों को आरोग्य प्रदान करने वाली है, आप इसको थोड़ी सी जानकर कोप न कीजिये। वैद्य की इस बात का विश्वास न करते हुए राजा ने उससे कहा-इस बात का निश्चय कैसे किया जावे?। वैद्य ने कहा महाराज! आप किसी विषाक्रान्त प्राणी को मंगवाईये। राजा ने वैसा ही किया-एक हाथी जो विष की वेदना से मूर्च्छित था दिखलाया वैद्य ने उसी समय उसकी पूंछ का एक बाल निकाला और उस स्थान में उस औषधि को रख दिया। थोड़ी देर बाद वह हाथी मूर्च्छा से रहित होकर स्वस्थ हो गया। वैद्य ने कहा-महाराज! देखिये इस औषधि का कितना प्रभाव है? जो थोड़ी ही देर में हस्ती मूर्च्छा से रहित हो गया है। इसी तरह यह औषधी एक लाख प्राणियों को

સરખી દવા લાવી બતાવી. થોડી દવા જોઇને રાજાને વૈદ્ય પ્રત્યે ક્રોધનો આવેગ આવી ગયો, વૈદ્યે તે જોઇને તેજ વખતે રાજાને કહ્યું "આટલી જ ઔષધિ લાખ માણસોને આરોગ્ય દેનારી છે. તેનું થોડું પ્રમાણ જોઇને આપ ગુસ્સો ન કરશો. વૈદ્યની આ વાત પર વિશ્વાસ ન મૂકતા રાજાએ કહ્યું, "એ વાતની ખાતરી કેવી રીતે થાય?" વૈદ્યે કહ્યું, "આપ ઝેરનો ભોગ બનેલ કોઈ પ્રાણીને બતાવો." રાજાએ એવું જ કર્યું-એક હાથી કે જે વિષની વેદનાથી મૂર્ચ્છિત હતો તે બતાવ્યો. વૈદ્યે તરત જ તેની પૂછડીમાંથી એક વાળ ખેંચી કાઢયો અને તે સ્થાને તે ઔષધિને મૂકી. થોડી જ વારમા તે હાથીની મૂર્ચ્છા વળી અને તે સ્વસ્થ થઇ ગયો. વૈદ્યે કહ્યું, "મહારાજ! જુવો આ ઔષધિનો કેટલો પ્રભાવ છે, કે થોડી જ વારમા હાથી મૂર્ચ્છાથી રહિત થઈ ગયો. એજ પ્રમાણે આ ઔષધિ એક લાખ માણસોને આરોગ્ય અર્પી શકે છે." રાજાએ હાથીને સ્વસ્થ

रथिकदृष्टान्तो—गणिकादृष्टान्तश्च वैनयिकबुद्धेरेकादशो द्वादशश्च दृष्टान्तः क्रमेण बोध्यः। स्थूलभद्रकथानके रथिकस्य यत् सहकारफलगुच्छत्रोटनम्, यच्च गणिकायाः सर्षपराशेरुपरि नर्त्तनं, ते द्वे अपि वैनयिकी बुद्धिफले ॥

अथ त्रयोदशः शाटिकादिदृष्टान्तः—

एकः कलाचार्यो राजकुमारान् शिक्षयति। राजकुमारा अपि बहुमूल्यद्रव्यैः

आरोग्य प्रदान कर सकती है। राजा ने हस्ती को स्वस्थ देखकर शान्त चित्त हो वैद्य से कहा—अच्छा आप इस औषधि का प्रयोग सैन्यजनों को स्वस्थ करने के लिये कीजिये। मेरी तरफ से आपको आज्ञा है। राजा की आज्ञा पाते ही वैद्यने उस औषधि का प्रयोग सैन्य को स्वस्थ करने के लिये किया तो वह समस्त मूर्च्छित हुआ सैन्य स्वस्थ हो गया। राजा वैद्य की इस चिकित्सा से बड़ा प्रसन्न हुआ ॥ १० ॥

॥ यह दसवां अगददृष्टान्त हुआ ॥ १० ॥

इसी तरह रथिक दृष्टान्त और गणिका का दृष्टान्त ये वैनयिक बुद्धि के ग्यारहवें एवं बारहवें दृष्टान्त हैं। स्थूलभद्र की कथा में ये दोनों दृष्टान्त लिखे हुए हैं। रथिक ने जो आम्र के फल के गुच्छों को तोडा है, तथा सरसों की राशि के ऊपर जो वेश्या ने नृत्य किया है ये दोनों बातें वैनयिक बुद्धि के फल हैं ॥ ११-१२ ॥

॥ यह ग्यारवां रथिकदृष्टान्त, बारहवा वेश्यादृष्टान्त हुआ ॥ ११-१२ ॥

तेरहवां शाटिकादिदृष्टान्त—

एक कलाचार्य राजकुमारों को पढ़ाता था। राजकुमार भी उसका

થયેલો જોઈને શાંત ચિત્ત થઈને તે વૈદ્યને કહ્યું, "સારૂં, આપ આ ઔષધિનો ઉપયોગ સૈનિકોને સ્વસ્થ કરવા માટે કરો આપને મારો તે આદેશ છે" રાજાનો આદેશ મળતાં જ વૈદ્યે તે ઔષધિનો પ્રયોગ મૂર્છિત સૈન્યને સ્વસ્થ કરવા માટે કર્યો ત્યારે તે આખું મૂર્છિત થયેલુ સૈન્ય સ્વસ્થ થયુ. રાજા વૈદ્યની આ ચિકિત્સાથી ઘણો ખુશી થયો ॥ ૧૦ ॥

॥ આ દસમું અગદદૃષ્ટાંત સમાપ્ત ॥૧૦॥

એજ પ્રમાણે રથિકદષ્ટાંત અને ગણિકાદષ્ટાંત તે વૈનયિક બુદ્ધિના અગીયારમાં અને બારમાં દષ્ટાંત છે. સ્થૂલભદ્રની કથામાં તે બન્ને દષ્ટાંતો લખેલાં છે. રથિકે જે આમ્રફળનાં ગુચ્છાંઓને તોડયાં છે, તથા સરસવના ઢગલા પર વેશ્યાએ જે નૃત્ય કર્યું છે તે બન્ને વાતો વૈનયિકબુદ્ધિનું ફળ છે ॥ ૧૧-૧૨ ॥

॥ આ અગીયારમું રથિકદષ્ટાંત, અને બારમું વેશ્યાદષ્ટાંત સમાપ્ત ॥ ૧૧-૧૨ ॥

તેરમું શાટિકાદિદૃષ્ટાંત-

એક કલાચાર્ય-રાજકુમારોને ભણાવતા હતા. રાજકુમારો પણ વખતો-

समये समये कलाचार्यं सम्मानयति। कलाचार्यो मम पुत्रेभ्यो बहुमूल्यानि द्रव्याणि गृहीतवानिति ज्ञात्वा राजाकोपवशात् तं कलाचार्यं हन्तुमिच्छति। राजकुमारैरिदं वृत्तं कथंचिद् ज्ञातम्। तैश्चिन्तितम्—आचार्योऽप्यस्माकं पिताऽस्ति। अतोऽस्माभिः केनाप्युपायेन स रक्षणीयः। तस्मिन्नेव आचार्यो भोजनार्थमागतः, स्नानं कृत्वा परिधानार्थं स्वशाटिकां याचते। राजकुमाराः—शुष्कां शाटिकां विदित्वाऽपि स्नानशाटी आर्द्राऽस्तीत्युक्तवन्तः, तथा द्वारस्य समीपे लघु तृणं स्थापयित्वा प्रोक्तवन्तः—तृणमिदं दीर्घमस्ति। एवमेव क्रौञ्चनामा शिष्यः पूर्वं कलाचार्यस्य दक्षिणतः प्रदक्षिणां कर्तुमर्हति, किं तु इदानीं स वामभागेन प्रदक्षिणां करोति। एवं कुमाराणामार्द्रशाटी

समय २ पर बहु मूल्य द्रव्यों से सत्कृत किया करते थे। राजा को जब यह बात ज्ञात हुई कि कलाचार्य मेरे पुत्रों से बहुमूल्य वस्तुओं को लेता रहता है तो राजा ने कलाचार्य को मारने का विचार किया। राजकुमारों को अपने पिता का यह कुविचार जब किसी तरह से मालूम पड़ गया तो उन्हों ने सोचा—आचार्य भी तो हमारे पिता हैं अतः हमें उन की रक्षा किसी न किसी उपाय द्वारा अवश्य करनी चाहिये। वे ऐसा विचार कर ही रहे थे कि इतने में उसी समय कलाचार्य भी वहां भोजन करने के लिये आये। आते ही कलाचार्य स्नान कर के पहिरने के लिये राजकुमारों से धोती मांगी तो उन राजकुमारों ने सूखी धोती को गीली बतलाया। तथा द्वार के पास लघु तृण रखकर उसको दीर्घ (बडा) बतलाया। तथा इन शिष्यों में जो क्रौंच नाम का शिष्य था कि जो पहिले इन की प्रदक्षिणा दक्षिण भाग से किया करता था उसने वामभाग से प्रदक्षिणा

વખત બહુ મૂલ્ય દ્રવ્યોથી તેમનો સત્કાર કરતા હતા. રાજાને જ્યારે આ વાતની ખબર પડી કે કલાચાર્ય મારા પુત્રો પાસેથી બહુ મૂલ્ય ચીજો મેળવે છે, ત્યારે રાજાએ કલાચાર્યને મારવાનો વિચાર કર્યો. રાજકુમારોને પોતાના પિતાનો તે કુવિચાર જ્યારે કોઈ પણ રીતે જાણવામાં આવ્યો ત્યારે તેમણે વિચાર્યું—આચાર્ય પણ આપણા પિતા સમાન છે, તેથી આપણે કોઈ પણ ઉપાયે અવશ્ય તેમનું રક્ષણ કરવું જોઈએ. તેઓ આવો વિચાર કરી રહ્યા હતા કે એવામાં કલાચાર્ય પણ ભોજન કરવા માટે ત્યાં આવ્યાં આવતાં જ કલાચાર્યે સ્નાન કરીને પહેરવા માટે રાજકુમારો પાસે ધોતી માગી ત્યારે તે રાજકુમારોએ સૂકી ધોતીને ભીની બતાવી, તથા દ્વારની પાસે લઘુ તૃણ રાખીને તેને દીર્ઘ (મોટું) બતાવ્યું. તથા તે શિષ્યોમાં જે ક્રૌંચ નામનો શિષ્ય હતો કે જે પહેલાં તેમની પ્રદક્ષિણા જમણી બાજુથી કર્યા કરતો હતો તેણે ડાબી બાજુથી પ્રદક્ષિણા કરવા માંડી આ પ્રમાણેના કુમારોના આચરણથી

कथनेन तृणस्य दीर्घत्वकथनेन क्रौञ्चस्य वामभ्रमणेन च कलाचार्यो ज्ञातवान्-सर्वे मम विरुद्धाः सन्ति, केवलं कुमारा एव भक्तिं विज्ञापयन्ति । एवं विचिन्त्य कलाचार्यो नृपेणालक्षितः सन् नगराद्वहिर्गतवान् । इयं संकेतज्ञानेनाचार्यस्य, संकेतद्वारा कलाचार्यस्य हित संपादनेन कुमाराणां च वैनयिकी बुद्धिः । शाटिका शब्देनात्र धौतवस्त्रं गृह्यते ।

॥ इति त्रयोदशः शाटिकादिदृष्टान्तः ॥ १३ ॥

अथ चतुर्दशो नीव्रोदकदृष्टान्तः—

नीव्रोदकम्—गृहच्छादन प्रान्तपतितं जलम् । काचिद् वणिजोभार्या चिर प्रोषिते भर्तरि दास्यै निजभावं निवेदयति । आनय कमपि पुरुषम् ' इति । ततस्तया

देना प्रारंभ किया । इस तरह कुमारों के इस आचरण से आचार्य ने यह समझ लिया कि इस समय मुझ से सब विरुद्ध हैं, केवल कुमार ही मुझ में अपनी भक्ति प्रदर्शित कर रहे हैं । इस तरह विचार कर वह कलाचार्य राजा से अलक्षित होकर वहां से बाहिर चला गया इस प्रकार आचार्य ने संकेत द्वारा जो अपनी व अपने द्रव्य की रक्षा की वह वैन-यिकी बुद्धि का ही परिणाम है । तथा शिष्यों का जो कलाचार्य द्वारा हित संपादन हुआ उस से जो उन में बुद्धि उद्भूत हुई वह भी इसी वैन-यिकी बुद्धि का फल है ॥ १३ ॥

॥ यह तेरहवां शाटिकादिदृष्टान्त हुआ ॥ १३ ॥

चौदवां नीव्रोदकदृष्टान्त-

एक वणिक् था । वह अपनी पत्नी को घर पर छोडकर प्रायः परदेश में ही रहता था । एक दिन की बात है कि उसकी पत्नी ने काम व्यथा से व्यथित होकर अपनी दासी से कहा कि तूं किसी पुरुष को ले आ ।

આચાર્યે તે સમજી લીધું કે અત્યારે બધા મારી વિરૂદ્ધ છે, ફક્ત કુમારો જ મારા ઉપરનો તેમનો ભક્તિભાવ પ્રદર્શિત કરી રહ્યા છે. આ પ્રમાણે વિચાર કરીને તે કલાચાર્ય રાજાની નજરે પડ્યા વિના ત્યાંથી બહાર ચાલ્યા ગયા. આ પ્રમાણે આચાર્યે સંકેત દ્વારા પોતાની તથા દ્રવ્યની જે રક્ષા કરી તે વૈનયિકબુદ્ધિનું જ પરિણામ હતું. તથા શિષ્યોનું કલાચાર્ય દ્વારા જે હિત સંપાદન થયું તે કારણે તેમનામાં બુદ્ધિ ઉત્પન્ન થઈ તે પણ એજ વૈનયિકીબુદ્ધિનું ફળ હતું. ॥૧॥

॥ આ તેરમું શાટિકાદિદૃષ્ટાંત સમાપ્ત. ॥ ૧૩ ॥

ચૌદમું નીવ્રોદકદૃષ્ટાંત—

એક વણિક હતો. તે પોતાની પત્નીને ઘેર મુકી જઈને સામાન્ય રીતે પરદેશમાં જ વસતો હતો એક દિવસે તેની પત્નીએ કામવ્યથાથી વ્યાકુળ થઈને પોતાની દાસીને કહ્યું કે તું કોઈ પણ પુરુષને બોલાવી લાવ. દાસીએ

समानीतः । ततो नापितेन तस्य नखकृन्तनादिकं तया कारितम् । रात्रौ च तौ द्वावपि संभोगार्थं द्वितीयभूमिकामारूढवन्तौ । मेघश्च वृष्टिं कर्तुमारब्धवान । ततस्तेन पिपासाव्याकुलेन पुरुषेण नीव्रोदकं पीतम् । ततश्च त्वग्विषभुजङ्गसंस्पृष्ट तज्जलपानेन स मृतः । ततस्तया वणिग्भार्यया रात्रिपश्चिमयाम एव शून्य देवालये मोचितः । प्रभाते दण्डधराः पाशधराश्च राजपुरुषास्तं मृतकं दृष्टवन्तः । तस्य नखादिकर्म दृष्ट्वा ते नापितान् पृष्टवन्तः, अस्यकेनेदं नखकृन्तनं क्षौरकर्म च कृतम् ।

दासी ने ऐसा ही किया। वह किसी पुरुष को ले आई। वणिक की पत्नी ने एक नाई को बुलवाकर उससे उनके नख केश कटवाना आदि करवाया। रात का जब समय आया तो वे दोनों मकान के ऊपर के भवन में गये। उस समय आकाश में मेघ घिरा हुआ था। धीरे २ पानी बरसाना प्रारंभ हुआ। उस पुरुष को प्यास लगी हुई थी अतः उस ने नीव्रोदक नेवा का जल-पी लिया। वह जल त्वग्विष जिस की चमडी में विष भरा हुआ था ऐसा सर्प के शरीर से छुआ हुआ आया था, इसलिये पीने के कुछ ही देर बाद उस की मृत्यु हो गई। उस को मरा हुआ देखकर वणिक भार्या को बडी चिन्ता हुई। उस ने रात्रि के पिछले पहर में उस मृतक शरीर को किसी शून्य देवालय में रखवा दिया। प्रभात होते ही राजपुरुषों ने इस मृतक शरीर को ज्यों ही देखा तो उस के ताजे नखकृन्तन आदि चिह्नों को देखकर उन्हों ने वहां के नाइयों को बुलवाकर पूछा कि कहो इस का नखकृन्तन तथा क्षौरकर्म तुम लोगों में से किस ने

પ્રમાણે જ કર્યું. તે કોઈ પુરુષને લઈ આવી. વણિકની પત્નીએ એક હજામને બોલાવીને તેના નખ, વાળ વગેરે કપાવ્યા. રાત્રિ પડતાં તેઓ બન્ને મકાનને ઉપરને માળે ગયાં. ત્યારે આકાશમાં વાદળાં છવાયેલાં હતાં. ધીરે ધીરે વરસાદ વરસવો શરૂ થયો ત્યારે તે પુરુષને તરસ લાગી હતી. તેથી તેણે નીવ્રોદક (નેવાંમાંથી પડતું પાણી) પી લીધું. તે પાણી ત્વગ્વિષ-જેની ચામડીમાં વિષ ભરેલુ હોય એવા સર્પના શરીરને સ્પર્શીને આવ્યું હતું, તેથી તે પીધાં પછી થોડીજ વારમાં મૃત્યુ પામ્યો. તેને મૃત્યુ પામેલ જોઈને વણિકની પત્નીને ભારે ચિન્તા થઇ. તેણે રાત્રિને પાછળે પ્રહરે તે મૂર્દાને કોઇ ખાલી દેવાલયમાં મૂકાવી દીધું. સવાર પડતાંજ રાજપુરુષોએ જોયું તે મૂર્દુ જોયું કે તેના નખ કપાવ્યા આદિનાં તાજાં નિશાન જોઈને તેમણે ત્યાંના હજામોને બોલાવીને પૂછ્યું, "કહો આના નખ કાપવાનું તથા વાળ કાપવાનું કામ તમારામાથી કોણે

तत एकेन नापितेनोक्तम्–अमुकवणिग्भार्यादास्यादेशेन मयाऽस्य नखकृन्तनादिकं कृतम्। ततः सा, पृष्टा साऽपि च पूर्वं न कथितवती। ततो राजपुरुषैस्ताड्यमाना यथावस्थितं कथयामास। इति राजपुरुषाणां वैनयिकबुद्धिः।

॥ इति चतुर्दशो नीव्रोदकदृष्टान्तः (पृष्ठ ३०९) ॥ १४ ॥

वृषभस्य हरणम्, अश्वस्य मरणम्, वृक्षात् पतनं चेति पञ्चदशो दृष्टान्तः—

आसीदेकस्मिन् ग्रामे कश्चिद्दरिद्र पुरुषः। स स्वमित्राद् वृषभं याचित्वा हलं चालयति स्म। सायं समये तं वृषभं मित्रालये नीत्वा त्यक्तवान्। तदा तस्य

किया है ?। उनकी इस बात को सुनते ही एक नाई ने उत्तर में कहा कि मैंने इस के नखकृन्तन आदि किये हैं। मुझे अमुक सेठ की पत्नी की दासी बुलाकर ले गई थी और उस ने मुझ से ऐसा कर ने को कहा था। राजपुरुषों ने उसी समय उस दासी को बुलवाया। उससे पूछ ने पर जब उस ने कुछ नहीं बतलाया तो उन्हों ने दासी को ताड़ना दी। मार खाते ही उसने उसी समय जो कुछ घटना घटी थी वह सब याथार्थ कह दी। यह राजपुरुषों की वैनयिकी बुद्धि का उदाहरण है ॥ १४ ॥

यह चौदहवां नीव्रोदकदृष्टान्त हुआ ॥ १४ ॥

वृषभ का हरना, अश्व का मरना तथा वृक्ष से गिरना यह पन्द्रहवां दृष्टान्त है–जो इस प्रकार है—

किसी ग्राम में एक दरिद्र रहता था। उस के पास खेती करने के लिये बैल नहीं थे। अतः उसने अपने मित्र से बैल मांगे और खेत में हल चलाकर अनाज बो दिया। पश्चात् सायंकाल में वह उन बैलों को अपने मित्र के घर पहुंचाने आया। जब वह उन बैलों को वहां पहुँचाने

કર્યું હતું ?" તેમની આ વાત સાંભળીને એક હજામે કહ્યું કે મેં તેના નખ કાપવા આદિ કાર્ય કર્યાં છે. મને અમુક શેઠની દાસી બોલાવીને લઈ ગઈ હતી અને તેણે મને તે પ્રમાણે કરવાનું કહ્યું હતું. રાજપુરુષોએ એજ સમયે તે દાસીને બોલાવી. તેને પૂછવામાં આવતા કોઈ જવાબ ન મળતાં તેમણે તેને મારવા માંડી. માર પડતાં જ તેણે જે કંઈ બન્યું હતું તે બધું સાચે સાચું કહી દીધું. આ રાજપુરુષોની વૈનયિકીબુદ્ધિનું ઉદાહરણ છે. ॥ ૧૪ ॥

॥ આ ચૌદમું નીવ્રોદકદૃષ્ટાંત સમાપ્ત ॥ ૧૪ ॥

બળદની ચોરી, અશ્વનું મરણ તથા વૃક્ષથી પડવાનું આ પંદરમું દૃષ્ટાંત–

કોઈ એક ગામમાં એક ગરીબ માણસ રહેતો હતો. તેની પાસે ખેતી કરવા માટે બળદ ન હતાં. તેથી તેણે પોતાના મિત્રના બળદ લાવીને અને ખેતર ખેડીને અનાજ વાવી દીધું. પછી સાંજે તે એ બળદોને પાછા આપવા પોતાના

सुहृद् भुञ्जान आसीत्, अतोऽसौ वृषभस्य समीपे न गतः, किं तु वृषभं दृष्टवान्, अतः स दरिद्र पुरुषो मित्रमनुक्त्वा गृहं गतः। स्वामिनोऽनवधानेन वृषभस्तदालयाद् बहिर्निर्गतः। तं चौरा अपहृत्य नीतवन्तः।

वृषभस्वामी स्वालये वृषभमनालोक्य दरिद्र पुरुषस्य गृहं गत्वा तस्माद् याचते —यो मम वृषभस्त्वया समानीतस्तं वृषभं देहि। चौरैरपहृतत्वात् स वृषभस्तेन कथं देयः स्यात्। ततोऽसौ दरिद्र पुरुषं न्यायालये नेतुं प्रवृत्तः?।

गया था तो उस समय उस का मित्र भोजन कर रहा था, इसलिये उन बैलों के पास वह नहीं आसका, पर बैलों को उस ने आया हुआ अवश्य देख लिया था, अतः मित्र से वह दरिद्र व्यक्ति विना कुछ कहे सुने ही अपने घर पर चला आया। वहां बैल अपने स्वामी की असावधानी से घर से बाहर निकल गये। अरक्षित स्थिति में उन बैलों को देखकर चौर न जाने उन्हें कहां ले गये। जब बैलों के मालिक ने बैलों को ठाण में नहीं देखा ता वह भगकर अपने दरिद्र मित्र के घर पहुँचा। वहां जाकर उसने उस दरिद्र मित्र से बैलों की मांग की। कहा जो तुम बैल मेरे वहां से लाये थे वे दो। मित्र ने सुनकर कहा-बैल तुम्हारे घर पहुँचा दिये हैं। परन्तु मित्र ने उस की नहीं मानी और बैलों को ढूंढकर लाने की बात उससे कही। उस ने बैलों की खोज की तो वे उस को नहीं मिले, उन्हें तो चौर ले गये थे, इसलिये परस्पर में इन दोनों में झगड़ा हो गया। अन्त में बैलों के मालिक ने उसको कचहरी में न्याय प्राप्त करने की

મિત્રને ઘેર આવ્યો. જ્યારે તે એ બળદોને લઈને આવ્યો ત્યારે તેનો મિત્ર ભોજન કરતો હતો, તેથી તે એ બળદોની પાસે આવી શકયો નહીં પણ તેણે બળદોને આવતાં અવશ્ય જોયા હતા, તેથી તે ગરીબ આદમી મિત્રને કંઈપણ કહ્યા વિના પોતાને ઘેર ચાલ્યો ગયો. હવે એવું બન્યું કે તે બળદો પોતાના માલિકની બેકાળજીથી બહાર ચાલ્યા ગયા. તે બળદોને અરક્ષિત હાલતમાં જોઈને ચોર તેમને કોઈ અજાણ્યે સ્થળે લઈ ગયા. જ્યારે બળદના માલિકે બળદોને ગમાણ પાસે ન જોયા ત્યારે તે ઝડપથી તેના મિત્રને ઘેર પહોંચ્યો. ત્યાં જઈને તેણે તે ગરીબ મિત્ર પાસે પોતાના બળદો માંગ્યા. તેણે કહ્યું કે તમે જે બળદો મારી પાસેથી લઈ ગયા હતા તે મને પાછા આપો. તે સાંભળતાં જ મિત્રે કહ્યું કે બળદો તો તમારે ઘેર પહોંચાડી દીધાં છે, પણ મિત્રે તેની વાત માની નહીં અને બળદો શોધી લાવવાનું તેને કહ્યું ઘણી શોધ કરવા છતાં પણ બળદો જડયાં નહીં કારણ કે તેમને ચોર લઈ ગયો હતો. તે કારણે તે બન્ને વચ્ચે ઝગડો પડયો. છેવટે બળદના માલિકે તેને ન્યાય મેળવવા

कश्चिदश्वारूढः पुरुषस्तस्याभिमुखमागच्छति। अकस्मादश्वो भीत्या समुच्छलितस्तेन सोऽश्वात् पतितः, अश्वश्च पलायितः। दरिद्र पुरुषेण सहासौ वृषभस्वामी मार्गे तदभिमुखमागच्छति, तमायान्तं दृष्ट्वाऽश्वस्वामी प्राह—पलायमानमश्वं प्रहारेणावरुन्धि। ततोऽसौ दरिद्रपुरुषस्तद्वचनं श्रुत्वैवाश्वस्य प्रहारं कृतवान्। स प्रहारस्तस्यमर्मणि संलग्नस्तेन सोऽश्वः प्रकृति कोमलत्वात् मृतः। ततोऽश्व स्वामी दरिद्र पुरुषं गृहीत्वा तदभियोगं कर्तुं प्रवृत्तः। तेषु सर्वेषु नगरान्तिकमुपागतेषु सूर्योऽस्तं गतः। रात्रौ तन्नगरो पान्ते वहिः प्रदेशे ते सर्वे स्थिताः २।

आशा से ले जाने का आयोजन किया। जब यह कचहरी के लिये ले जाया जा रहा था तो इस के ऊपर दैव दुर्विपाक से मार्ग में दो घटनाएँ और घट गई जो इस प्रकार हैं—एक व्यक्ति घोडे पर चढ़ा हुआ उसकी तरफ आ रहा था। घोड़ा अचानक भय से ज्यों ही उछला कि वह व्यक्ति घोड़े पर से उछल कर नीचे आ गिरा, और घोडा भाग गया। भागते हुए अपने घोडे को देखकर उस ने दरिद्र पुरुष से जो कचहरी की तरफ बैलों के मालिक के साथ जा रहा था कहा—भाई! इस घोडे को मारो और जैसे बने वैसे रोक लो। दरिद्रपुरुष ने वैसा ही किया। दरिद्र पुरुष ने घोडे को जो मार मारा वह जाकर उसके मर्मस्थान में लगी, लगते ही घोड़ा स्वभावतः कोमल होनेसे उसी समय मर गया। घोडे को मरा हुआ देखकर उसके मालिक ने उस पर हत्या का अभियोग लगा दिया, और इस तरह लडते झगडते ये सब के सब नगर के पास ज्यों ही आकर उपस्थित हुए कि इतने में सूर्य अस्त हो गया। रात्रि में नगर में न जाकर ये लोग बाहर ही कहीं ठहर गये। वहां वृक्ष के नीचे अनेक नट ठहरे

માટે કચેરીમાં લઈ જવાનો નિર્ણય કર્યો. જ્યારે તે તેને કચેરીમાં લઇ જતો હતો ત્યારે માર્ગમાં તેને દુર્ભાગ્યે બીજી બે દુર્ઘટનાઓ નડી, જે આ પ્રમાણે છે—એક વ્યક્તિ ઘોડે સવાર થઈને તેની તરફ આવતી હતી. ઘોડો અચાનક ભયથી જેવો ઉછળ્યો કે તે સવાર ઉછળીને નીચે પડયો, અને ઘોડો નાસવા લાગ્યો. પોતાના ઘોડાને નાસતો જોઈને તેણે, બળદોના માલિક સાથે કચેરીમાં જતા તે દરિદ્ર આદમીને કહ્યું—ભાઈ આ ઘોડાને મારો, અને જે પ્રકારે બની શકે તે પ્રકારે તેને રોકો દરિદ્ર આદમીએ એવું જ કર્યું. દરિદ્ર પુરુષે ઘોડાને જે માર માર્યો તે તેને મર્મસ્થાને વાગવાથી, જેવો માર વાગ્યો કે સ્વભાવતઃ તે ઘોડો કોમળ હોવાથી એજ સમયે મરી ગયો. ઘોડાને મરી ગયેલો જોઈને ઘોડાના માલિકે તેના ઉપર ઘોડાની હત્યાનો આરોપ મૂકયો, અને આ પ્રમાણે તેઓ લડતા ઝગડતા જેવાં નગરની પાસે પહોંચ્યાં કે સૂર્ય અસ્ત થઈ ગયો. રાત્રે નગરમાં ન જતા તેઓ નગરની બહાર જ કોઈ સ્થળે થોભી ગયાં. ત્યાં

तत्र बहवो नटावृक्षतले सुप्ताः सन्ति । तदानीं दरिद्र पुरुषश्चिन्तयति-अस्मादापत्समुद्रान्मम निस्तारो नास्तीति वृक्षमारुह्य गले पाशं बद्ध्वा प्राणांस्त्यजामि, इति चिन्तयित्वा तथैव कर्तुमारब्धम् । जीर्णवस्त्रखण्डेन गले पाशोबद्धः । तच्चवस्त्रखण्डमतिदुर्बलमिति तद्भाराक्रान्तं सत् त्रुटितम् । स दरिद्र पुरुषोऽधस्तात् सुप्तनटमुख्यस्योपरि पतितः, येनाऽसौ नटो मृतः । नटा अपि तं दरिद्र पुरुषं गृहीतवन्तः३।

हुए थे। वे सब के सब उस समय सो रहे थे। इस विचारे दरिद्रपुरुष के चित्त में वहां इन समस्त आपत्तियों से पीडित होने के कारण ऐसा विचार उत्पन्न हुआ कि-इन आपत्तियों को भोगने की अपेक्षा अब तो मर जाना ही कहीं अच्छा है। इस तरह विचार कर इसने वृक्षपर चढकर गले में फांसी लगाने की आयोजन किया। जिस वस्त्र की उसने फांसी बनाइ थी वह पुराना एवं बहुत अधिक जीर्णशीर्ण था इसलिये ज्यों ही यह गले में उस फांसी को डालकर लटका तो वह उस के भार को सहन नहीं कर सक ने के कारण टूट पडी। जिस स्थान पर इस ने फांसी लगाई हुई थी उस स्थान पर एक नट का मुखिया ठीक इस के नीचे सो रहा था, जो रात्रि होने के कारण इसको दिखलाई नहीं दिया था। फांसी के टूटते ही यह उस नट के मुखिये पर आकर गिरा। इसके गिरते ही वह नट मर गया। उस की चीख सुनकर सबनट जाग पडे और उन्होंने इस विचारे आपत्तिग्रस्त दरिद्रको पकड लिया। प्रातःकाल जब हुआ तो सब

કોઈ વૃક્ષની નીચે અનેક નટ પણ ઉતર્યા હતાં. તે બધા ત્યારે સૂતાં હતાં. હવે આ બધી આપત્તિયોથી વ્યાકુળ બનેલ તે દરિદ્ર આદમીના મનમાં એવો વિચાર આવ્યો કે આ મુશ્કેલીયો વેઠવા કરતાં તો મરી જવું વધારે સારું, આ પ્રમાણે વિચાર કરીને તેણે વૃક્ષ પર ચડીને ગળે ફાંસો ખાવાની યોજના કરી. જે વસ્ત્રને તેણે ફાંસો બનાવ્યો હતો તે જૂનું અને તદ્દન જીર્ણશીર્ણ હોવાથી જેવો તે ગળામાં ફાંસો લગાવીને લટકયો કે તેનો ભાર સહન ન કરી શકવાને કારણે ફાંસા વાળું વસ્ત્ર તૂટી ગયુ. જે સ્થાને તેણે ફાંસો ખાવા માટે વસ્ત્ર લટકાવ્યું હતું. તે સ્થાનની બરાબર નીચે જ નટલોકોનો એક આગેવાન સૂતો હતો, તે રાત્રિના અંધારાને લીધે તેની નજરે પડયો ન હતો. ફાંસો તૂટતા જ તે એ નટના આગેવાન ઉપર આવીને પડયો. તે પડતા જ તે નટ મરી ગયો. તેની ચીસ સાભળીને બધા નટ જાગી ગયા, અને તેમણે એ બિચારા આપત્તિમાં મુકાયેલા દરિદ્રને પકડી લીધો. સવાર પડતા જ તેઓ બધા નગરમાં

अथ प्रभाते दरिद्रपुरुषं गृहीत्वा सर्वे राजकुलं गताः। राजकुमारः सर्वेषां भाषणं श्रुत्वा दरिद्रपुरुषं पृच्छति-किमेतेषां भाषणं सत्यम् ?, दरिद्रपुरुषः सदैन्यं ब्रूते-महाराज ! यदेते वदन्ति-तत् सत्यमपि। ततो राजकुमारः दरिद्रपुरुषं प्रति-जातानुकम्पस्तस्य मित्रमब्रवीत्-एष तुभ्यं वृषभौ दास्यति किं तु तवाक्षिणी उत्पाटयिष्यति, एष तदैवानृणो जातः, यदाऽनेन समर्पितौ वृषभौ त्वयाऽवलोकितौ। यदि तु त्वया न दृष्टो स्यातां, तदाऽयमपि स्वगृहं न गच्छेत्। अयं तु तवसमक्षं वृषभो नीतवान्, अतोऽयं निर्दोषः ?।

के सब नगरमें जाकर अपना २ अभियोग इस पर चलाने के लिये कचहरी में उपस्थित हुए। वहां वहीं के राजकुमार मुकदमों का निपटेरा किया करते थे। इन लोगों से जब राजकुमार ने कचहरी में आने का कारण पूछा तो सब ने अपना २ जो मामला था वह कह दिया। सब की पृथक् २ रूप से बात सुनकर राजकुमार ने उस दरिद्रपुरुष से पूछा-कहो, इन सब का जो तुम्हारे विषय में ऐसा २ कहना है वह सत्य है क्या ? हाथ जोड़कर दरिद्रपुरुष ने उससे कहा हा महाराज ! जो कुछ ये कह रहे हैं। वह सब सत्य है। इस प्रकार कह कर उसने जो २ घटनाएँ जिस २ रूप से घटित हुई थी वे सब उस राजकुमार को सुनादी। सुनकर राजकुमार के चित्त में उस के प्रति दयाका भाव जग उठा। राजकुमार ने उस के मित्र से कहा तुम्हारे दोनों बैलों को देने को तैयार है-परन्तु तुम्हें इसे अपनी दोनों आखें उखाडकर देनी पडेगी। कारण-यह तो उसी समय ऋण रहित हो गया-जब इसने तुम्हारे देखते २ दोनों बैलो को तुम्हारे

જઈને તે દરિદ્ર પર પોત પોતાની ફરિયાદ કરવા માટે કચેરીમાં ગયા. ત્યાં ત્યાંનાજ રાજકુમારો ફરિયાદો સાંભળી તેમનો નિકાલ કરતા હતા. જ્યારે રાજકુમારે આ લોકોને કચેરીમાં આવવાનુ કારણ પૂછયુ ત્યારે તે બધાએ પોત પોતાની જે હકીકત હતી તે રજુ કરી. તે બધાની અલગ અલગ વાત સાંભળીને રાજકુમારે તે દરિદ્રને પૂછયું, “કહો, આ લોકોની તારી સામે આ, આ પ્રકારની ફરિયાદ છે, તે શું સાચી છે ? દરિદ્ર આદમીએ હાથ જોડીને તેમને કહ્યું, “મહારાજ ! તેઓ જે કંઇ કહે છે. તે સત્ય છે. આ પ્રમાણે કહીને તેણે જે જે ઘટનાઓ જે જે રીતે બની હતી તે બધી તે રાજકુમારને કહી સંભળાવી. તે સાંભળીને તે રાજકુમારના મનમાં તેને માટે દયા ઉત્પન્ન થઈ. રાજકુમારે તેના મિત્રને કહ્યું, “તે તમારા બન્ને બળદ આપવાને તૈયાર છે પણ તમારે તેને તમારી બન્ને આંખો કાઢી આપવી પડશે, કારણ કે જ્યારે તેણે તમારા દેખતાં જ તમારા બન્ને બળદોને તમારે

तथा द्वितीयोऽश्वस्वामी शब्दितः। राजकुमारो वदति—तवाश्वं दापयिष्यामः, किं तु त्वया स्वजिह्वां छित्वाऽस्मै दातव्या, यदा हि त्वया भाषितम्—'एनमश्व दण्डेन ताडयित्वा परावर्तय' इति, तदाऽनेन दण्डेनाहतस्तवाश्वः। प्रथमोदोषस्तव जिह्वाया एव, अतोऽय निर्दोषः २।

तथा नटान् प्रत्याह—पश्य, अस्य पार्श्वे किमपि नास्ति, किं दापयामः,

---

घर पर छोड दिया। यदि तुम उन्हें नहीं देखते तो यह उस समय घर नहीं जाता। अतः इस में इसका दोष नहीं है, तुम्हारी आंखों का दोष है। अतः उस की सजा तम्हारी आंखों को भुगतना चाहिये, न कि इसको। तुमने क्यों नहीं अपने बैलों को संभाला। इस तरह यह निर्दोष प्रमाणित कर दिया गया।

यह हुआ बैलों का हरण का दृष्टान्त ॥ १ ॥

अब अश्व के स्वामी से बुलाकर राजकुमार ने कहा—मैं तुम्हारा घोडा इससे दिलवा दूंगा, पर तुम्हें इस के लिये अपनी जीभ काटकर देनी होगी। कारण—जिस समय तुम ने ऐसा कहा था कि "इस घोडे को मारो और रोको" तभी तो इसने तुम्हारे घोडे को डंडे से आहत किया। इसलिये सर्व प्रथम यह अपराध तुम्हारी जिह्वा का ही है, इसका नहीं, यह तो निरपराध है॥

॥ यह हुआ घोडे के मरण का दृष्टान्त ॥ २ ॥

अब नटों की बारी आई। जब राजकुमार ने नटों से कहा—देखो भाईयो। इस के पास तो ऐसी कोई चीज है नहीं जो तुम्हें दिलवा दी

ત્યાં છૂટા મૂકયા ત્યારથી જ તે તમારા ઋણથી મુક્ત થઈ ગયે ગણાય. જો તમે તે બળદો જોયા ન હોત તો તે, તે સમયે ઘેર ગયો ન હોત. તેથી તેમાં તેનો દોષ નથી, દોષ તમારી આંખોનો જ છે. તો તેની સજા તમારી આંખોએ ભોગવવી જોઈએ, તેણે નહીં. તમે તમારા બળદોની સંભાળ કેમ ન લીધી ?" આ રીતે તેને નિર્દોષ સાબિત કરવામાં આવ્યો.

આ બળદોના અપહરણનું દૃષ્ટાંત થયું (૧) હવે અશ્વના માલિકને બોલાવીને રાજકુમારે કહ્યું, "હું આ માણુસ પાસેથી તમને ઘોડો અપાવીશ, પણ તે માટે તમારે તમારી જીભ કાપીને આપવી પડશે, કારણ કે જ્યારે તમે એવું કહ્યું કે "આ ઘોડાને મારો અને રોકો" ત્યારે આ માણુસે તમારા ઘોડાને ડંડો માર્યો, તો તેમાં અપરાધ તમારી જીભનોજ છે, આ માણુસનો નથી, તે તો નિર્દોષ છે. આ ઘોડાના મરણનું દૃષ્ટાંત થયું (૨).

હવે નટલોકોનો વારો આવ્યો. રાજકુમારે નટોને કહ્યું, "જુવો ભાઈ ઓ ! આ માણુસની પાસે એવી કોઈ ચીજ નથી કે જે તમને અપાવી

यथाऽयं गले पाशं बद्ध्वा वृक्षात् त्वत्स्वामिशरीरोपरिपतितः, एवमेव युष्मासु कश्चित् प्रधानः पुरुषस्तथैव वृक्षात् पततु, अयमधस्तात् सुप्तस्तिष्ठतु। एवं कुमारस्य वचनं श्रुत्वा सर्वे तूष्णींभावं समाश्रिताः। स दरिद्र पुरुषस्तदभियोगतो मुक्तः। इति राजकुमारस्य वैनयिकी बुद्धिः।

॥ इति पञ्चदशो दृष्टान्तः ॥ १५ ॥

॥ इति वैनयिकबुद्धिवर्णनम् (पृष्ट ३०९) ॥ २ ॥

अथ कर्मजायाबुद्धेर्दृष्टान्ताः प्रोच्यन्ते (पृ० ३१०)। तत्र प्रथमो हैरण्यकदृष्टान्तः प्रदर्श्यते।

हैरण्यकः=सुवर्णकारः। यः सुवर्णकारः सुवर्णादिविज्ञानं सम्यक् प्राप्तवान्, स सम्यं प्राप्य हस्तस्पर्शमात्रेण दर्शनमात्रेण वा सुवर्णं रजतं वा यथार्थं जानाति। इति सुवर्णकारस्य कर्मजा बुद्धिः।

॥ इति प्रथमो हैरण्यकदृष्टान्तः ॥ १ ॥

जावे–अतः तुम ऐसा करो–जिस प्रकार यह गले में फांसी देकर वृक्ष से तुम्हारे स्वामी के ऊपर गिरा है–उसी तरह तुम लोगों में से कोइ एक नट गले में फांसी लगाकर वृक्षसे इसके ऊपर गिरो। हम इसे उस के नीचे सुलाये देते हैं। इस प्रकार के राजकुमार के वचन सुनकर वे सब नट बिलकुल चुपचाप हो गये। और वह बिचारा दरिद्रपुरुष उनके अभियोग से मुक्त हो गया। यह हुआ वृक्ष से गिरने का दृष्टान्त ३। यह सब राजकुमार की वैनयिकीबुद्धि है॥

॥ यह पन्द्रहवा दृष्टान्त हुआ (पृ० ३१०) ॥ १४ ॥

॥ यह वैनयिकीबुद्धि के उदाहरण हुए ॥ २ ॥

શકાય તો તમે આ પ્રમાણે કરો. જે પ્રમાણે આ માણસ ગળામાં ફાંસો લગાવીને તમારા આગેવાન ઉપર પડયો, એજ પ્રમાણે તમારામાંથી કોઈ એક નટ ગળામાં ફાંસો લગાવીને વૃક્ષ ઉપરથી તેના પર પડે. અમે તેને તે વૃક્ષ નીચે સૂવરાવીએ છીએ ” આ પ્રકારના તે રાજકુમારનાં વચન સાંભળીને તે બધા નટ ચૂપ થઈ ગયાં. અને તે બિચારો દરિદ્ર આદમી તેના અપરાધમાંથી મુક્ત થઈ ગયો. આ વૃક્ષની નીચે પડવાનું દૃષ્ટાંત થયું. આ બધાં રાજકુમારની વૈનયિકી બુદ્ધિનાં દૃષ્ટાંત છે.

॥ આ પંદરમું દૃષ્ટાંત સમાપ્ત ॥ ૧૪ ॥

॥ આ વૈનયિકી બુદ્ધિનાં ઉદાહરણો થયાં (પૃ૦ ૩૧૦) ॥ ૨ ॥

હવે કર્મજા બુદ્ધિનાં દૃષ્ટાંતો કહે છે–પહેલું હૈરણ્યક દૃષ્ટાંત–હૈરણ્યક એટલે સોની. તે સુવર્ણ કે ચાંદીને જોઇને કે સ્પર્શીને તેમાં યથાર્થત્વ કે અયથાર્થત્વને જાણી લે છે તે કર્મબુદ્ધિનું પરિણામ છે. ॥ ૧ ॥

अथ द्वितीयः कर्षकदृष्टान्तः—

कश्चिच्चौरो रात्रौकस्यचिद्वणिजो गृहे पद्माकारं खातं खातवान्। प्रातःकाले बहवो लोकास्तत्र समागत्य चौरस्य खातकरणं प्रशंसन्ति स्म। गुप्तरूपेण तस्करोऽपि स्वप्रशंसा शृणोति। तत्रैकः कर्षकोऽब्रवीत्-शिक्षितस्य किं दुष्करम्, येन यत् कार्य-मभ्यस्तम् स तस्मिन् कुशलो भवत्येव, अत्र किमाश्चर्यम्? कर्षकस्य वचः श्रुत्वा चौरस्य क्रोधः समुत्पन्नः। स एकं जनं पृच्छति-कोऽयम्?, कुत्र निवसति च?

अब कर्मजा बुद्धि के दृष्टान्त कहते हैं(पृ० ३१०)-प्रथम हैरण्यक दृष्टान्त।

हैरण्यक नाम सोनी-सुनार का है। वह जो सुवर्ण या चांदी आदि को देख कर या छू कर उनमें यथार्थत्व या अयथार्थत्व की पहिचान कर लिया करता है वह कर्मजा बुद्धि का परिणाम है॥ १॥

॥ यह पहला हैरण्यकदृष्टान्त हुआ॥ १॥

दूसरा कर्षकदृष्टान्त—

एक चोर ने किसी वणिक् के मकानमें रात्रिके समय कमलाकार खात दिया। जब प्रातःकाल हुआ तो लोकों ने इस खात को देख कर चोर की प्रशंसा की। इन लोगों में चोर भी गुप्तरूप से सम्मिलित था। लोग जब ऐसा कह रहे थे कि धन्य है उस चोर को जिसने कमल के आकारवाला यह खात दिया है। तो वहां एक खडे हुए किसान ने ऐसा कहा कि भाई! शिक्षित को क्या दुष्कर होता है। जो जिस काम को सीखे हुए होता है वह उस में निपुण होता ही है। इसमें प्रशंसा करने की बात ही कौन सी है? इस तरह अपनी प्रशंसा के निषेधक वचनोंको सुनकर उस चोर को क्रोध जग गया। उसने पास में खडे हुए एक

॥ આ પહેલું હૈરણ્યક દૃષ્ટાંત થયું ॥ ૧ ॥

બીજું કર્ષક દૃષ્ટાંત–

એક ચોરે કોઈ એક વણિકના મકાનમાં રાત્રે કમળના આકારે ખાતર પાડ્યું. જ્યારે પ્રભાત થયું ત્યારે લોકો તે ખાતરને જોઈને ચોરની કળાની પ્રશંસા કરવા લાગ્યા. એ લોકોમાં ચોર પણ ગુપ્ત રીતે સામેલ હતો. લોકો જ્યારે એવું કહેવા લાગ્યા કે ધન્ય છે એ ચોરને કે જેણે કમળના આકારનું આ ખાતર દીધું છે, ત્યારે ત્યાં ઉભેલા એક ખેડુતે કહ્યું, “ભાઈ! શિક્ષિતને માટે દુષ્કર શું છે? જેઓ જે કામ શીખ્યા હોય છે તેમાં તે નિપુણ હોય જ છે. આમાં પ્રશંસા કરવા જેવી શી વાત છે?” આ પ્રમાણે પોતાની પ્રશંસાના વિરોધી વચનો સાંભળતા જ તે ચોરને ક્રોધ ચડ્યો. તેણે પાસે ઉભેલ એક

इति। कस्यचिज्जनस्य वचनात् तत्परिचयं ज्ञात्वा स चौरः किंचित् कालानन्तरं कर्षकस्य समीपे क्षेत्रे छुरिकामाकृष्य गतः। ततश्चौरो वदति-त्वामद्यहनिष्यामि। कर्षको ब्रूते—केन कारणेन मां हनिष्यसि। चौरः प्राह—त्वया तदानीं मम खातं न प्रशंसितमिति। कर्षकोवदति-यो यस्मिन् कर्मणि सदैवाभ्यासपरः स तद्विपये प्रज्ञाप्रकर्षवान् भवत्येव, तत्राहमेव दृष्टान्तः। तथाहि—अमून् मुद्गान् हस्तगतान् यदि भणसि, तर्हि सर्वानप्यधोमुखान् पातयामि, यद्वा ऊर्ध्वमुखान्। अथवा—

आदमी से पूछा-यह कौन है-और कहां रहता है। उसने उस का परिचय उस को दे दिया। कुछ समय बाद जब यह किसान अपने खेतपर गया हुआ था तब यह चोर भी उस के पीछे २ चला गया और वहां जा कर छुरी को खेंचते हुए उस से कहने लगा-संभल जाओ-मैं आज तुम्हारा खून करुंगा। चोर के इस प्रकार वचन सुन कर कृषक ने कहा मेरे खून करने का कारण क्या है?। उत्तर में चोरने कहा याद करो-जिस दिन लोग मेरे दिये कमलाकार खात की मुक्त कंठ से प्रशंसा कर रहे थे उस दिन तुमने मेरे कृत्य की प्रशंसा नहीं की है। चोर के इस तरह वचन सुन कर कृषक ने कहा भाई! इसमें प्रशंसा करने की बात ही कौन सी है? जो जिस विषय में सदा अभ्यस्तशील होता है वह उस विषय में विशेष बुद्धि प्रकर्षवाला होता है। इस में मैं दूसरे की क्या बात कहूं अपनी ही बात कहता हूं - सुनिये मेरे हाथ में ये मूंग के दाने हैं। अब आप कहिये मैं इन्हें "सब को नीचे मुख रहे" इस रूप से

માણસને પૂછ્યું, "આ કોણ છે અને ક્યાં રહે છે?" તેણે તેને તેનો પરિચય આપ્યો. કેટલાક દિવસ પછી જ્યારે તે ખેડુત પોતાનાં ખેતરે જતો હતો ત્યારે તે ચોર પણ તેની પાછળ પાછળ ચાલી નીકળ્યો અને ત્યાં જઈને છરી કાઢીને તેને કહેવા લાગ્યો, "સાવધાન! હું આજે તારૂં ખૂન કરી નાખીશ. ચોરના આ પ્રકારનાં વચનો સાંભળીને ખેડુતે કહ્યું, "મારૂં ખૂન કરવાનું શું કારણ છે?" તેના જવાબમાં ચોરે કહ્યું, યાદ કર, તે દિવસે લોકો મેં દીધેલ કમળાકાર ખાતરની જ્યારે પ્રશંસા કરતા હતા ત્યારે તેં મારા કાર્યની પ્રશંસા કરી ન હતી." ચોરની આ પ્રકારની વાત સાંભળીને ખેડૂતે કહ્યું, "ભાઈ! તેમાં પ્રશંસા કરવા જેવી વાત જ શી છે? જે વિષયનો જેને હંમેશનો અનુભવ હોય છે તે માણસ તે વિષયમાં વિશેષ બુદ્ધિપ્રકર્ષવાળો હોય છે. તે બાબતમાં હું બીજાની શી વાત કરૂં મારી પોતાની જ વાત કહું છું તે સાંભળ મારા હાથમાં આ મગના દાણા છે. તમે જ કહો હું તેમને બધાનું મુખ નીચે રહે તે પ્રમાણે

पार्श्वस्थितान्, इति। ततोऽसौ साश्चर्यमाह—सर्वानप्यधोमुखान् पातय, इति भूमौ पटो विस्तारितः। सर्वेऽप्यधोमुखामुद्गाः पातिताः। महाश्चर्यं जातम्। चौरस्तस्य पुनः पुनः प्रशंसां कृतवान्–'अहो! कर्षकस्य विज्ञानम्?, इति यद्येते मुद्गा अधोमुखाः पातिता, नाभविष्यन्, तदा नियमेन त्वामहनिष्यम्। इति कर्षकस्य तस्करस्य च कर्मजा बुद्धिः।

॥ इति द्वितीयः कर्षकदृष्टान्तः ॥ २ ॥

अथ तृतीयः कौलिकदृष्टान्तः—

कौलिकस्तन्तुवायः। तन्तुवायो मुष्ट्या तन्तून् गृहीत्वा जानाति एतावद्भिः कण्डकैः पटो भविष्यति ॥ ३ ॥

गिराऊँ या "ऊँचा मुख रहे" इस रूप से गिराऊँ, या 'ये सब तुम्हारे पास ही गिरें' इस रूप से गिराऊँ? जिस से एक भी दाना इधर उधर न गिरे किसान की ऐसी बात सुन कर आश्चर्यचकित हुए उस चोर ने उस से कहा—इन सब दानों को आप इस रूपमें गिरावें कि जिस से ये सब अधोमुख आ कर पडे। किसान ने जल्दी से जमीन पर वस्त्र फैला दिया। उस पर उसने उन समस्त मूंग के दानों को इस रूप से गिराया कि वे सब के सब उस पर अधोमुख हो कर गिरे। चोर को इस बात से बडा आश्चर्य हुआ। किसान की उसने वार २ भूरि प्रशंसा की। बाद में बोला–यदि आज आप इन मूंग के दानों को अधोमुख पतित न करते तो नियम से मैं आप का खून कर देता। इस प्रकार यह तस्कर और कृषक की कर्मजा बुद्धिका परिणाम है।

॥ यह दूसरा कर्षकदृष्टान्त हुआ ॥ २ ॥

નાખું કે ઉંચે મુખ રહે તે પ્રમાણે નાખું કે બધા તમારી પાસે જ પડે એ રીતે નાખું?" ખેડુતની એવી વાત સાંભળીને નવાઈ પામેલા ચોરે કહ્યું, "એ બધા દાણાને તમે એવી રીતે ફેંકો કે જેથી તે બધા અધોમુખ પડે. ખેડુતે જલ્દી જમીન પર વસ્ત્ર પાથરી દીધું. તેના પર તેણે એ બધા મગના દાણાને એવી રીતે-ફેંકયા કે તે બધા અધોમુખ થઇનેજ પડયા. ચોરને આ વાતથી ઘણું આશ્ચર્ય થયુ. તેણે ખેડુતની વારંવાર ઘણી પ્રશંસા કરી. પછી તેણે કહ્યું, જો આજે તમે આ મગના દાણાને અધોમુખ ફેંકયા ન હોત તો જરૂર હું તમારૂં ખૂન કરત." આ હકીકત તે ખેડૂત અને ચોરની કર્મજા બુદ્ધિનું દૃષ્ટાંત છે ॥ ૨ ॥

॥ આ બીજું કર્ષકદૃષ્ટાંત થયુ ॥ ૨ ॥

अथ चतुर्थो दर्वीकारदृष्टान्तः।

दर्वीकारो (लोहकारो) जानाति एतावदत्र मास्यतीति ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमो मौक्तिकदृष्टान्तः—

मणिकारो (मणियारा) नभसि मौक्तिकं प्रक्षिप्य सूकरवालं तथा-धारयति यथा पतनो मौक्तिकस्य रन्ध्रे स प्रविशतीति पञ्चमो मौक्तिकदृष्टान्तः ॥ ५ ॥

अथ षष्ठो घृतदृष्टान्तः—

घृतविक्रयी स्वविज्ञान प्रकर्षप्राप्तो यदि रोचते, तर्हि शकटेऽपि स्थितोऽधस्तात् कुण्डिकानालेऽपि घृतं प्रक्षिपति ।

॥ इति षष्ठो घृतदृष्टान्तः ॥ ६ ॥

तीसरा कौलिकदृष्टान्तः—

कौलिक नाम वस्त्र बुननवाले का है । वह मुट्ठी से डोरों को पकड कर यह जान लिया करता है कि इतने कण्डकों से निर्मित हो सकता है ॥ ३ ॥

चौथा दर्वीकार दृष्टान्त — लुहार का नाम दर्वीकार है। यह जानता है कि इसमें इतना मावेगा ॥ ४ ॥

पांचवा मौक्तिक दृष्टान्त—मणिहारा आकाशमें मोति को उछाल कर सूअर के वाल-केश को इस रूप से रखता है कि जिससे वह नीचे गिरते हुए उस मोती के छिद्र में स्वतः प्रविष्ट हो जाता है ॥ ५ ॥

छठा घृतदृष्टान्त—घृत का व्यापारी जब उसका विशिष्ट ज्ञानवाला बन जाता है तो वह गाड़ी में बैठ कर भी नीचे रखी हुई कुण्डिका के नाले में घी को डाल देता है ॥ ६ ॥

ત્રીજુ કૌલિકદષ્ટાંત-

કપડાં વણનારને કૌલિક કહે છે. તે મુઠ્ઠીમાં દોરાને પકડીને તે જાણી શકે છે કે આટલા તારથી વસ્ત્ર બની શકે તેમ છે ॥ ૩ ॥

ચોથું દર્વીકારદષ્ટાંત-લુહારને દર્વીકાર કહે છે. તે એ જાણે છે કે આમાં આટલું સમાશે. ॥ ૪ ॥

પાંચમું મૌક્તિકદષ્ટાંત-મણિયાર મોતીને ઊંચે ઉછાળીને સૂવરના વાળને એવી રીતે રાખે છે કે તે નીચે પડતાં મોતીનાં છિદ્રમાં આપોઆપ પેસી જાય છે ॥ ૫ ॥

છટ્ઠું ઘૃતદષ્ટાંત-ઘીનો વેપારી જ્યારે તેના ખાસ અનુભવ વાળો થાય છે ત્યારે તે ગાદી પર બેસીને પણ નીચે રાખેલ ડબ્બાનાં નાળચામાં ઘીને રેડી દે છે ॥ ૬ ॥

अथ सप्तमः प्लवकदृष्टान्तः—

प्लवकः—कूर्दकः पुरुषः। स चाकाशेऽनेक विधां क्रीडां प्रदर्शयति।

॥ इति सप्तमः प्लवकदृष्टान्तः॥ ७॥

अथाष्टमः 'तुन्नाए' इति तुन्नवायदृष्टान्तः—

तुन्नवायः—सीवनकर्मकारकः। स च स्वविज्ञान प्रकर्षप्राप्तस्तथा सीवति, यथा केनापि लक्षितो न भवति॥

॥ इत्यष्टमस्तुन्नवायदृष्टान्तः ॥ ८॥

अथ नवमोवर्धकिदृष्टान्तः—

वर्धकिः=रथकारः 'बढई' इति प्रसिद्धः। स च स्वविज्ञानप्रकर्षप्राप्तोमानमकृत्वापि रथादौ योजनीयकाष्ठस्य मानं विजानाति॥

॥ इति नवमोवर्धकिदृष्टान्तः॥ ९॥

अथ दशम आपूपिकदृष्टान्तः—

अपूपः—'मालपूआ' इति भाषाप्रसिद्धः। अपूपनिर्माणकुशलः आपूपिकः। स तन्मानमकृत्वाऽपि तन्मानं जानाति, ग्राहको यथाऽऽदिशति–तथाऽपूपादिकं वस्तु निर्मोति।

॥ इति दशम आपूपिकदृष्टान्तः॥ १०॥

सातवां प्लवक दृष्टान्त—जो नट होता है वह आकाश में अनेक प्रकार की क्रीडाओं का प्रदर्शन करता है॥ ७॥

आठवां तुन्नवाय दृष्टान्त—तुन्नवाय शब्दका अर्थ सीने की कला में जो चतुर है। वह इस ढंग से सीता है कि वस्त्रमें उसकी सिलाई का पता भी नहीं पड़ता॥ ८॥

नौवां वर्धकिदृष्टान्त—जब बढई अपने विषयका विशेष विज्ञाता बन जाता है तो वह विना नाप किये ही रथ आदि में लगाने योग्य काष्ठका नाप अपने आप जान लेता है॥ ९॥

સાતમું પલ્વકદૃષ્ટાંત–નટ આકાશમાં અનેક પ્રકારના ખેલ કરી બતાવે છે ॥૭॥

આઠમું તુન્નવાયદૃષ્ટાંત–સીવવાની કળામાં જે ચતુર હોય તેને તુન્નવાય કહે છે. તે એવી રીતે સીવે છે કે વસ્ત્રમાં તેની સિલાઈ પણ નજરે પડતી નથી ॥ ૮ ॥

નવમું વર્ધકદૃષ્ટાંત–જ્યારે સુથાર પોતાના ધંધાનો ખાસ જાણકાર થાય છે ત્યારે તે માપ લીધા વિના પણ રથ આદિમાં જડવાના લાકડાનું માપ આપો આપ જાણી શકે છે ॥ ૯ ॥

अथैकादशो घटकारदृष्टान्तः—

कुम्भकारः स्वविज्ञानप्रकर्षप्राप्तः प्रथमतः प्रमाणयुक्तां मृदं गृह्णाति।

॥ इत्येकादशो घटकारदृष्टान्तः ॥ ११ ॥

अथ द्वादशश्चित्रकारदृष्टान्तः—

निपुणश्चित्रकार श्चित्रस्य भूमिममित्वा चित्रप्रमाणं जानाति, वर्णकुञ्चिकायां तावन्मात्रमेव वर्णं गृह्णाति, यावन्मात्रस्य तस्य प्रयोजनम्।

॥ इति द्वादशश्चित्रकार दृष्टान्तः ॥ १२ ॥

॥ इति कर्मजाया बुद्धेरुदाहरणानि ॥ १२ ॥

दसवां आपूपिकदृष्टान्त—जो व्यक्ति मालपुआ के निर्माण कार्यमें निष्णात होता है वह उसकी तौल किये विना ही उसका प्रमाण कर लेता है और ग्राहक जितनी तौल का उससे मांगता है वह विना तौले ही ठीक उतना ही उसको दे देता है॥ १० ॥

ग्यारहवां घटकार दृष्टान्त—घट कार्य के बनाने में जो कुंभकार निष्णात होता है वह पहिले से ही जितने प्रमाण का घट बनाना चाहता है उतने प्रमाण की मिट्टी ले लेता है ॥ ११ ॥

बारहवां चित्रकारदृष्टान्त—निपुण चित्रकार चित्रके स्थानका नाप किये विना ही उसके प्रमाण को जान लेता है। और जितना रंग उसके निर्माण कार्य में खर्च होना होता है उतना ही रंग वह अपनी कुञ्चिका में भरता है ॥ १२ ॥

॥ ये कर्मजाबुद्धिके उदाहरण हुए ॥ ३ ॥

દસમું આપૂપિકદૃષ્ટાંત–જે વ્યક્તિ માલપુઆ બનાવવામાં નિષ્ણાત હોય છે, તે તેનું વજન કર્યા વિના જ પ્રમાણ નક્કી કરી શકે છે. અને ગ્રાહક જેટલા વજનના માલપુઆ તેની પાસે માગે છે એટલા જ તે તોલ કર્યા વિના જ તેને આપે છે. ॥ ૧૦ ॥

અગીયારમું ઘટકારદૃષ્ટાંત–ઘડા બનાવવાના કામમાં જે કુંભાર નિપુણ હોય છે તે પહેલેથી જ જેવડા માપનો ઘડો બનાવવા માગતો હોય એટલા પ્રમાણમાં જ માટી લે છે. ॥ ૧૧ ॥

બારમું ચિત્રકાર દૃષ્ટાંત–નિપુણ ચિત્રકાર ચિત્રના સ્થાનનું માપ લીધા વિના જ તેનું પ્રમાણ જાણી લે છે. અને તે ચિત્ર નિર્માણમાં જેટલા રંગની જરૂર પડે તેમ હોય તેટલો જ રંગ તે પોતાની કુચિકામાં ભરે છે ॥ ૧૨ ॥

॥ આ કર્મજ–બુદ્ધિના ઉદાહરણો થયાં ॥ ૩ ॥

अथ पारिणामिक्या बुद्धेरुदाहरणानि प्रदर्श्यन्ते (पृ० ३१४)। प्रायो वयोविपाकजन्योबुद्धिविशेषः पारिणामिकी बुद्धिः। तत्राभयकुमारदृष्टान्तः प्रथमः प्रोच्यते—

अभयकुमारेण यच्चण्डप्रद्योताद् वरचतुष्टयं याचितम्, यच्चचण्डप्रद्योतं बद्ध्वा नगरमध्येनाऽऽरटन्तं नीतवानित्यादि।

॥ इति प्रथम अभयकुमारदृष्टान्तः ॥ १ ॥

अथ द्वितीयः श्रेष्ठिदृष्टान्तः—

कोऽपि श्रेष्ठी स्वभार्याया दुश्चारित्रमालोक्य दीक्षां गृहीतवान्। इतश्च तस्याः परपुरुषसमागमेन गर्भो जातः। तदनन्तरं राजपुरुषैः सा राजान्तिकं समानीता। तस्मिन्नेवकाले एक मुनिर्विहारक्रमेण तस्माद् ग्रामान्निर्गतः सा तमालोक्य राजपुरुषाणां समक्षं ब्रूते—हे मुने! अयं गर्भस्त्वदीयोऽस्ति, त्वमेनं विहाय ग्रामान्तरं

अब यहां से पारिणामिक बुद्धिके उदाहरण कहते हैं पृ० ३१४—

जो बुद्धि प्रायः वय के विपाक से उत्पन्न होती है उसका नाम पारिणामिकी बुद्धि है। इस पर सर्व प्रथम अभयकुमार का दृष्टान्त है—अभयकुमार ने चण्ड प्रद्योतन से चार वर मांगे थे। फिर बाद में उसको उसने बांध लिया था, और बांध कर वह उसको नगरके बीचसे चिल्लाते हुए ले गया था। इत्यादि ॥ १ ॥

दूसरा श्रेष्ठि दृष्टान्त—किसी सेठ ने अपनी पत्नी का दुश्चारित्र देखकर दीक्षा लेली। इधर वह परपुरुष के साथ समागम करने से गर्भवती हो गई। राजपुरुषों ने जब इस की यह हालत देखी तो वे उसको राजा के पास ले चले। जब वे उस को ले जा रहे थे कि इतने में उस ग्राम से विहार करते हुए कोई एक मुनिराज जा रहे थे। उन्हें देखकर उसने राजपुरुषोंके

હવે અહીંથી પારિણામિક બુદ્ધિનાં ઉદાહરણો આપે છે—(પૃ૦ ૩૧૪)

જે બુદ્ધિ સામાન્ય રીતે વયના વિપાકથી ઉત્પન્ન થાય છે તેને પારિણામિકી બુદ્ધિ કહે છે. તે વિષે પહેલું અભયકુમારનું દૃષ્ટાંત છે—

અભયકુમારે ચંડપ્રદ્યોત પાસેથી ચાર વચન માગ્યાં હતાં. પછી તેણે તેને બાંધી લીધો હતો, અને બાંધીને તે તેને રડતો રડતો નગરની વચ્ચેથી લઇ ગયો હતો. ઇત્યાદિ ॥ ૧ ॥

બીજું શ્રેષ્ઠિદૃષ્ટાંત—કોઈ શેઠે પોતાની પત્નીનું દુશ્ચરિત્ર જોઈને દીક્ષા લઇ લીધી. હવે તે પરપુરુષ સાથે સમાગમ કરવાથી ગર્ભવતી થઈ રાજપુરુષોએ જ્યારે તેની એવી હાલત જોઈ ત્યારે તેઓ તેને રાજા પાસે લઇ જવા લાગ્યા. જ્યારે તેઓ તેને લઈને જતાં હતાં ત્યારે જ તે ગામથી વિહાર કરીને કોઈ એક મુનિરાજ જતાં હતાં. તેમને જોઇને તે સ્ત્રીએ રાજપુરુષોની સામે જ

गच्छसि, कथमहं भविष्यामि। एतद्वचनं श्रुत्वा मुनिश्चिन्तयति–असत्यभाषणे नैषा जिनशासनस्य सच्चरित्र सांधूनां चाकीर्तिं करिष्यति, अतस्तन्निवारणं कर्तव्यम्। इत्येवं विचिन्त्य मुनिना तस्यै शापः प्रदत्तः–यदि मत्कृतोऽयं गर्भस्तर्हि पूर्णे समये योनितो निःसरतु। यदि तु मत्कृतो नास्ति, तर्हि उदरं भित्त्वा निर्गच्छतु। ततस्तस्य शापप्रभावाद् गर्भस्तत्क्षण एवोदरं भित्त्वा निर्गन्तुं प्रवृत्तः, अतस्तस्या अतिकष्टं समुत्पन्नम्। ततः सा राजपुरुषाणां समक्षं मुनिराजं प्रार्थयति–महाराज। अयं गर्भो भवत्कृतो नास्ति, मया मिथ्यापवादः कृतः। पुनरेवं न करिष्यामि। तस्या असह्यं

साम्हने ही उन मुनिराज से कहा–हे मुने! यह गर्भ आप का है। आप इस को छोडकर क्यों ग्रामान्तर जा रहे हैं। कहिये अब मेरा क्या होगा। इस प्रकार उस की बात सुनकर मुनि ने मन में विचार किया–यह असत्य भाषण कर के जिन शासन की तथा सच्चरित्र साधुओं कीं अकीर्ति कर रही है, इसलिये इसका निवारण अवश्य करना चाहिये। ऐसा विचार कर उन्हों ने उसी समय ऐसा उसे शाप दिया कि यदि यह गर्भ मेरा है तो पूर्ण समय में यह होवे, और यदि ऐसा नहीं है तो अभी ही यह तेरा पेट फाड़कर बाहर निकले। इस के बाद मुनि के शाप के प्रभाव से उसी समय गर्भ पेट फाड कर बाहर निकलना चाहा, अतः उस को महान् कष्ट होने लगा। तब पुनः उसने मुनिराज से उन्हीं राजपुरुषों के समक्ष ऐसा कहा–महाराज! यह गर्भ आपके द्वारा नहीं हुआ है मैंने व्यर्थ ही आपका अपवाद किया है–अतः मैं इस के लिये आप से क्षमा चाहती हूं, आगे

તેમને કહ્યું, “હે મુનિ! આ ગર્ભ આપથી જ રહેલ છે. આપ તેને છોડીને બહારગામ શા માટે જઈ રહ્યા છો? કહો, હવે મારૂં શું થશે?” આ પ્રકારની તેની વાત સાંભળીને મુનિએ મનમાં વિચાર કર્યો, “આ સ્ત્રી જુઠું બોલીને જિન શાસનની તથા સચ્ચરિત્ર સાધુઓની અપકીર્તિ કરી રહી છે, તો તેનું નિવારણ અવશ્ય કરવું જ જોઈએ.” એવો વિચાર કરીને તેમણે એજ સમયે તેને એવો શાપ દીધો કે આ ગર્ભ મારાથી રહેલ હોય તો પૂરા દહાડે તને પ્રસૂતિ થાય, અને જો એવું ન હોય તો તે તારૂં પેટ ફાડીને અત્યારેજ બહાર નીકળે.” ત્યારબાદ મુનિના શાપના પ્રભાવે તેનો ગર્ભ પેટ ફાડીને બહાર આવવા લાગ્યો તેથી તેને ભારે કષ્ટ થવા લાગ્યું. ત્યારે તેણે ફરીથી તે મુનિરાજ સમક્ષ એજ રાજપુરુષોની રૂબરૂ આ પ્રમાણે કહ્યું, “મહારાજ! આપના દ્વારા આ ગર્ભ રહ્યો નથી મેં આપના ઉપર ખોટું કલંક ચડાવ્યું હતું. તો હું તે માટે આપની

कष्टमालोक्य स कारुणिको मुनिः स्वशापं प्रतिनिवर्त्य धर्मस्य मानं स्त्रियं गर्भं च रक्षितवान्।

॥ इति द्वितीयः श्रेष्ठिदृष्टान्तः ॥ २ ॥

अथ तृतीयः कुमारदृष्टान्तः—

कस्यचिद्राजकुमारस्य मिष्टान्नं प्रियमासीत्। एकदाऽसौ पूर्णोदरं यावद् मोदकान् भक्षितवान्। अतिभोजनेनाजीर्णरोगः संजातः। ततश्च मुखाद् दुर्गन्धो निर्गतः। दुःखी भूत्वा राजकुमारश्चिन्तयति-अनेनाशुचि शरीरेण संयोगं प्राप्य मिष्टान्न रूपं मनोहरं वस्तु विकृतं संजातम्, अस्य देहस्य सुखार्थं लोका अनेकविधं पापं कुर्वन्ति, इति विचिन्त्य स विरक्तो जातः। इति राजकुमारस्य पारिणामिकी बुद्धिः।

॥ इति तृतीयः कुमारदृष्टान्तः ॥ ३ ॥

ऐसा नहीं करूँगी। इस तरह उस की प्रार्थना सुनकर और असह्य उसका कष्ट देखकर उन कारुणिक मुनिराज ने अपने शाप को वापिस लौटाकर धर्म की प्रभावना एवं उस स्त्री के प्राणों की तथा गर्भकी रक्षा की ॥२॥

तीसरा कुमारदृष्टान्त-किसी एक राजकुमार को मिष्टान्न विशेष प्रिय था। एक दिन की बात है कि इस ने पेट भर लड्डु खा लिये। वे पचे नहीं अतः इस को अजीर्ण रोग हो गया। इस के मुख से दुर्गंध निकलने लगी। दुःखित होकर उस राजकुमार ने मन में ऐसा विचार किया कि जिस अशुचि इस शरीर के संपर्क से यह मिष्टान्नरूप मनोहर वस्तु भी विकृत हो गई है उस शरीर को सुख पहुँचाने के लिये लोग अनेक प्रकार के पाप करते रहते हैं। इस तरह के विचार से उस को वैराग्य हो गया और वह संसार, शरीर और भोगो से विरक्त हो गया ॥ ३ ॥

ક્ષમા માગું છું, હવેથી કદી પણ આવું નહી કરૂં." આ પ્રમાણે તેની વિનંતિ સાંભળીને અને તેનું અસહ્ય કષ્ટ જોઈને તે દયાળું મુનિરાજે પોતાનો શાપ પાછો ખેંચ્યો અને એ રીતે ધર્મના પ્રભાવની તથા તે સ્ત્રીના પ્રાણ તથા ગર્ભની રક્ષા કરી. ॥ ૨ ॥

ત્રીજું કુમારદૃષ્ટાંત-કોઈ એક રાજકુમારને મિષ્ટાન્ન વધારે પ્રિય હતું. એક દિવસ તેણે પેટ ભરીને લાડુ ખાધા. તે પચ્યાં નહીં. તેથી તેને અજીર્ણનો રોગ થયો. તેના મોંમાંથી દુર્ગંધ નીકળવા લાગી. તેથી દુઃખી થયેલ તે રાજકુમારે વિચાર કર્યો "અશુચિ એવા આ શરીરના સંપર્કથી આ મિષ્ટાન્ન રૂપ મનોહર વસ્તુ પણ વિકૃત થઈ ગઇ છે, તે શરીરને સુખ આપવા માટે લોકો અનેક પ્રકારનાં પાપ કરે છે." આ પ્રકારનો વિચાર આવતા જ તેને વૈરાગ્ય ઉત્પન્ન થયો અને તે સંસાર, શરીર અને ભોગોથી વિરક્ત થઈ ગયો. ॥ ૩ ॥

अथ चतुर्थो देवीदृष्टान्तः—

पुष्पवती नाम काचित्स्त्री प्रव्रज्यां परिपाल्य देवलोके देवीत्वेन समुत्पन्ना। सा स्वपूर्वभवपुत्रपुत्र्योरनुचितसम्बन्धमवलोक्य चिन्तयति–इमौ परस्परं विषयमूर्च्छितौ जातौ। अनयोरवश्यं दुर्गतिर्भविष्यति। तस्मादनयोः सन्मार्गे स्थापनं मम कर्तव्यमस्ति। इति मनसि निधाय सा देवी तयोः प्रथमदिने रजन्यां स्वप्ने नरकनिगोददुःख प्रदर्शनं कारितवती। ततस्तयोश्चिन्ता समुत्पन्ना नरकलोकदुःखेभ्यः कथं मुक्तौ भविष्याव इति। द्वितीये दिने तयोः स्वप्ने देवलोकसुखं प्रदर्शितम्।

चौथा देवी दृष्टान्त–पुष्पवती नाम की एक स्त्री थी, उसने संसार, शरीर एवं भोगो से विरक्त होकर भागवती दीक्षा धारण करली। जब आयु के अंत में वह मरी तो देवलोक में वह देवी की पर्याय से उत्पन्न हुई। वहां उस ने अवधिज्ञान से अपने पुत्र और पुत्री को अनुचित संबंध जानकर विचार किया–देखो–ये दोनों कितने विषय सेवन की मूर्च्छा से मूर्च्छित हो रहे हैं जो यह भी नहीं समझ रहे हैं कि हम दोनों कौन हैं? और क्या कर रहे हैं?। इन लोगों की अवश्य खोटी गति होगी। इसलिये इस अवस्था में इन दोनों को समझाना मेरा कर्तव्य है, ताकि ये सन्मार्ग में लग जावें। इस प्रकार विचार कर उस ने उन दोनों के लिये स्वप्न में प्रथम रात्रि में नरक और निगोद के दुःखों का प्रदर्शन कराया। इन दुखों को देखकर उन दोनों के चित्त में बड़ी भारी चिन्ता हुई। उन्हों ने विचार किया–हम इन दुःखों से कैसे मुक्त हो सकेंगे। दूसरे दिन उस देव ने स्वप्न में उन दोनों को स्वर्गलोक के सुखों का प्रदर्शन कराया। इन सुखों को देखकर वे मुग्ध हो गये, और धर्माचार्य

ચોથું દેવી દૃષ્ટાંત–પુષ્પવતી નામે એક સ્ત્રી હતી. તેણે સંસાર, શરીર અને ભોગોથી વિરક્ત થઈને ભગવતી દીક્ષા લીધી હતી. આયુષ્ય પૂર્ણ થતાં તે મરીને દેવલોકમાં દેવી રૂપે ઉત્પન્ન થઈ. ત્યાં તેણે અવધિજ્ઞાનથી પોતાના પુત્ર અને પુત્રીનો અનુચિત સંબંધ જાણીને વિચાર કર્યો–" આ લોકો વિષય સેવનની મૂર્ચ્છાથી કેટલા બધા મૂર્ચ્છિત થયાં છે કે તેઓ એટલું પણ સમજી શકતા નથી કે અમે બન્ને કોણ છીએ? અને શું કરી રહ્યાં છીએ? આ લોકોની અવશ્ય દુર્ગતિ થશે. તેથી આ પરિસ્થિતિમાં તેમને સમજાવવાની મારી ફરજ છે કે જેથી તેઓ સન્માર્ગે વળે. આ પ્રમાણે વિચાર કરીને તેણે તે બન્નેને રાત્રે સ્વપ્નમાં નરક અને નિગોદનાં દુઃખોનું દર્શન કરાવ્યુ. એ દુઃખો જોઈને તે બન્નેનાં ચિત્તમાં ઘણી ભારે ચિન્તા પેદા થઈ. તેમણે વિચાર કર્યો કે આપણો આ દુઃખોમાંથી કેવી રીતે છુટકારો થશે? બીજે દિવસે તે દેવીએ રાત્રે સ્વપ્નમાં તેમને સ્વર્ગલોકોનાં સુખ બતાવ્યાં. એ સુખોને જોઈને તેઓ મુગ્ધ થયાં, અને

तदनन्तरमाचार्यस्य पार्श्वे समागत्य तौ पृष्टवन्तौ-भगवन्! येनोपायेन जीवस्य नरकगतिर्न भवेत्, देवगतिप्राप्तिश्च भवेत्, तमुपायं समादिशन्तु भवन्तः। आचार्यः स्वर्गप्राप्तिमार्गं प्रदर्शयन् धर्मोपदेशं कृतवान्। देव्याः पूर्वभवीयः पुत्रः पुत्री च तस्याचार्यस्य समीपे दीक्षां गृहीत्वा सकलदुःखात्यन्तविमोक्षरूपं मोक्षं प्राप्तवन्तौ॥ इति देव्याः पारिणामिको बुद्धिः ॥ इति चतुर्थो देवीदृष्टान्तः ॥ ४ ॥

अथ पञ्चम उदितोदयदृष्टान्तः ॥ ५ ॥

पुरिमताले नगरे उदितोदयनामको नृप आसीत्। तस्य भार्या च विशिष्ट-रूपवती श्रीकान्तानाम्नी। श्रीकान्तानिमित्तं वाराणसीनिवासिना कर्मरुचिनाम्ना राज्ञा सर्वबलेन समागत्य पुरिमतालनगरं वेष्टितम्। उदितोदयश्चिन्तयति-निष्कारणं

के पास पहुँचकर उन्हों ने पूछा-भगवन्! आप ऐसा उपाय बतलाईये कि जिस से जीव को नरकगति की प्राप्ति न होवे, और स्वर्गीय सुखों का लाभ होवे। आचार्य ने उनकी इस प्रकार जिज्ञासा जानकर स्वर्ग की प्राप्तिका मार्ग बतलाते हुए उन्हें धर्म का उपदेश दिया। अन्त में उन दोनों ने विषयादिक से विरक्त होकर उन्हीं आचार्य के पास जिन दीक्षा धारण कर सकल दुःखों से सर्वथा रहित ऐसे मोक्ष को प्राप्त किया॥४॥

पांचवां उदितोदय दृष्टान्त-पुरिमताल नाम के नगर में उदितोदय नामका एक राजा रहता था। उस की रानी का नाम श्रीकान्ता था। यह विशिष्ट रूपवती थी। इस के रूप सौन्दर्य की प्रशंसा सुनकर वाणारसी नगर के रहनेवाले कर्मरूचि नाम के राजा ने सैन्य को लेकर पुरिमताल नगर को चारों ओर से घेर लिया। नगर को घिरा देखकर उदितोदय ने

धर्माचार्यनी पासे जईने तेमणे तेमने पूछयु, "महाराज! आप एवो उपाय बतावो के जेथी जीवने नरक गति प्राप्त न थाय अने स्वर्गीय सुखोनी प्राप्ति थाय." आचार्ये तेमनी ते प्रकारनी जिज्ञासा जाणीने स्वर्गनी प्राप्तिनो मार्ग बतावता तेमने धर्मनो उपदेश आप्यो. अन्ते तेमणे विषयादिकथी विरकत थईने एज आचार्यनी पासे जिन दिक्षा अंगीकार करी अने सकळ दुःखोथी सर्वथा रहित एवा मोक्षनी प्राप्ति करी ॥ ४ ॥

पांचमुं उदितोदय दृष्टांत-पुरिमताल नामना नगरमां उदितोदय नामनो राजा राज्य करतो हतो. तेनी राणीनुं नाम श्रीकान्ता हतुं. ते बहु ज सुंदर हती. तेनां रूप-सौंदर्यनां वखाण सांभळीने वाराणसी नगरना कर्मरुचि नामना राजाए सैन्यने लईने पुरिमताल नगरने चारे तरफ घेरो घाल्यो. नगरने घेरायेल जोईने उदितोदये विचार कर्यो के एक जीवनी रक्षा माटे संग्राममां नकामी

प्रभूतजनानां परिक्षयोभविष्यतीति। एवं विचिन्त्य स उपवासं कृत्वा तपोबलेन वैश्रवणदेव मावाहयति। स देवो कर्मरुचिं नीत्वा वाराणस्यामेव स्थापितवान्। इत्येवमुदितोदयनृपः स्वात्मानं प्रजाजनं च रक्षितवान्। इति राज्ञः पारिणामिकीबुद्धिः॥

इति पञ्चम उदितोदयदृष्टान्तः ॥ ५ ॥

अथ षष्ठः साधुनन्दिषेणदृष्टान्तः ॥ ६ ॥

भगवतो महावीरस्वामिनः समवसरणे कश्चित् साधुश्चित्तचाञ्चल्यवशात् साधुव्रतं परिहातुमिच्छति स्म। तदा प्रभुवन्दनार्थं राजकुमारो नन्दिषेणः स्वान्तःपुरेण सह समागतः। तस्यान्तःपुरं रूपलावण्येनाप्सरोवृन्दं जयति, तथापि प्रभोरुपदेशेन नन्दिषेणो विरक्तो भूत्वा सर्वमन्तःपुरं परित्यजति। इदं दृष्ट्वा स साधुरपि

विचार किया एक जीव की रक्षा के निमित्त व्यर्थ ही संग्राम में अनेक जीवों का वध करना उचित नहीं। ऐसा विचार कर वह उपवास धारण कर बैठ गया। इस के तपोबल के प्रभाव से वैश्रवण नाम के देव ने आकर उस कर्मरुचि राजा को वहां से उठाकर उसी के नगर में रखदिया। इस तरह उदितोदय ने अपनी और अपने प्रजाजनों की रक्षा की ॥ ५ ॥

छट्ठा साधु नन्दिषेण का दृष्टान्त–किसी साधु ने महावीर स्वामी के समवसरण में चित्त की चंचलता के वश होकर मुनिव्रत छोडने का विचार किया। इतने में वहां प्रभु की वंदना करने के लिये नंदिषेण नाम का एक राजकुमार आपहुँचा। उस के साथ उस का अन्तःपुर था। अन्तःपुर का रूप लावण्य इतना अधिक था कि उसके सामने अप्सराओं का समुदाय भी न कुछ था। नंदिषेण प्रभु का उपदेश सुनकर उसी समय उस साधु के देखते २ अन्तःपुर का परित्याग कर विरक्त हो गया। साधु

અનેક જીવોની હત્યા કરવી તે યોગ્ય નથી. એવો વિચાર કરીને તે ઉપવાસ કરીને બેસી ગયો. તેના તપોબળને પ્રભાવે વૈશ્રવણ નામના દેવે આવીને તે કર્મરુચિ રાજાને ત્યાંથી ઉપાડીને તેના નગરમાં મૂકી દીધો. આ રીતે ઉદિતોદયે પોતાની તથા પોતાની પ્રજાની રક્ષા કરી ॥ ૫ ॥

છટ્ઠું સાધુ નન્દિષેણનું દૃષ્ટાંત–કોઈ સાધુએ મહાવીર સ્વામીના સમવસરણમાં ચિત્તની ચંચળતાને કારણે મુનિવ્રત છોડવાનો વિચાર કર્યો. એવામાં ત્યાં પ્રભુને વંદણા કરવા માટે નંદિષેણ નામનો એક રાજકુમાર આવી પહોંચ્યો. તેની સાથે તેનું અન્તઃપુર હતું. અન્તઃપુરનું રૂપ લાવણ્ય એટલું બધું હતું કે તેમની આગળ અપ્સરાઓનો સમૂહ પણ કોઈ વિસાતમાં ન હતો. નંદિષેણ પ્રભુનો ઉપદેશ સાંભળીને એજ સમયે તે સાધુની નજર સમક્ષ જ અન્તઃપુરનો પરિત્યાગ

सम्यक् संयमाराधनतत्परो जातः ॥ इति साधोः पारिणामिकी बुद्धिः ॥ इति षष्ठः साधुनन्दिषेणदृष्टान्तः ॥ ६ ॥

अथ सप्तमो धनदत्तदृष्टान्तः ॥ ७ ॥

चम्पानगर्यां धनदत्तो नाम श्रेष्ठी निवसति । तस्य पुण्यप्रभावेण विपुलं धनं विपुलः परिवारो विपुला ऋद्धिरासीत् । स च विपुलसत्कारसम्मानसंपन्नः सर्वसुखसमन्वितः समृद्धिसमृद्धः केनाऽप्यपरिभूतश्चाभूत् । एकस्मिन् दिने तस्य श्रेष्ठिनः सुपात्रदानकरुणादानाभयदानादिविषये बुद्धिविपर्यासः संजातः । ततः स चिन्तयति-कथमद्य मम बुद्धिविपर्यासः संजात इति । तत स्तेन शुभकर्मोदयवशात् तत्क्षणमेव

ने जब यह देखा तो अपने विचार की निन्दा की और उसी समय संभल कर अपने व्रतों की रक्षा की ॥ ६ ॥

सातवां धनदत्त का दृष्टान्त–चंपानगरी में धनदत्त नाम का एक सेठ रहता था । उस के यहां पुण्योदय से विपुल धन, विपुल परिवार और विपुल ऋद्धि थी । लोग उसका सब से अधिक आदर सत्कार एवं सन्मान किया करते थे । सांसारिक किसी भी सुख की उसके यहां कमी नहीं थी । तिरस्कार कैसा होता है यह वह स्वप्न में भी नहीं जानता था । एक दिन की बात है कि इस सेठ के सुपात्रदान, करुणादान, तथा अभयदान आदि के विषय में बुद्धि की विपर्यासता हो गई । इस विपर्यासता के आने का कारण क्या है इस बात का जब उसने ज्ञानदृष्टि से विचार किया तो शुभ कर्मोके उदय से उसके अन्तःकरण में संसार की असारताका भान होने लगा, उसने 'शुभस्य शीघ्रम्' की उक्तिको चारितार्थ

करीने विरक्त थई गयो. साधुએ જ્યારે તે જોયું ત્યારે તેને પોતાના વિચાર માટે પસ્તાવો થયો અને તેજ સમયથી સાવધાનીપૂર્વક તે પોતાનાં વ્રતોનું રક્ષણ કરવા લાગ્યો. ॥ ૬ ॥

સાતમું ધનદત્તનું દૃષ્ટાંત–ચંપા નગરીમાં ધનદત્ત નામના એક શેઠ રહેતા હતા. તેમને ત્યાં પુન્યોદયને કારણે વિપુલ ધન, વિપુલ પરિવાર અને વિપુલ ઋદ્ધિ હતી. લોકો સૌથી વધારે તેમનો આદર સત્કાર કરતા હતા. કોઇ પણ પ્રકારનાં સાંસારિક સુખની તેમને ત્યા ઉણપ ન હતી તિરસ્કાર એટલે શું એ તો તેમણે સ્વપ્નમાં પણ અનુભવ્યુ ન હતું. એક દિવસ એવું બન્યું કે સુપાત્ર-દાન, કરુણાદાન, અભયદાન આદિના વિષયમાં તે શેઠની બુદ્ધિની અશ્રદ્ધા થઈ ગઈ. આ અશ્રદ્ધા આવવાનું શું કારણ છે તેનો જ્યારે તેમણે જ્ઞાનદૃષ્ટિથી વિચાર કર્યો ત્યારે શુભ કર્મના ઉદયથી તેમના અંતઃકરણમાં સંસારની અસારતાનુ ભાન થવા

ज्ञानदृष्ट्या संसारासारतां विचार्य प्रव्रज्या गृहीता। तस्येयं पारिणामिकी बुद्धिः॥
इति सप्तमो धनदत्तदृष्टान्तः ॥ ७॥

अथाष्टमः श्रावकदृष्टान्तः ॥ ८॥

कश्चिदेकः श्रावकः परस्त्रीगमनपरित्यागव्रतं गृहीतवान्। एकदा स्वपत्न्याः सखीं विलोक्य मनसि विकारो जातः। तद्भार्या मधुरवचनेन तमाश्वास्य एकदा रात्रौ स्वसखीवेषेण सा पत्युरन्तिके गता। तां दृष्ट्वा तत्कालमेव परस्त्रीपरित्यागव्रतं स्मृत्वा पश्चात्तापं कृतवान्। तस्य भार्या वदति–'अहमेवास्मि न सखी'–इति। पश्चादसौ गुरुसमीपे गत्वा दूषितमनःसंकल्पनिमित्तव्रतभङ्गशुद्ध्यर्थं प्रायश्चित्तं गृहीतवान्। इयं श्रावकस्य पारिणामिकी बुद्धिः॥

इत्यष्टमः श्रावकदृष्टान्तः ॥ ८॥

करते हुए उसी समय जिन दीक्षा अंगीकार करली। यह उसकी पारिणामिकी बुद्धि का फल है ॥ ७॥

आठवां श्रावक दृष्टान्त–किसी एक श्रावक के परस्त्रीगमनत्यागरूप व्रत था। एक दिन जब उसने अपनी पत्नी की सखी को देखा तो उस के प्रति चित्त में उसके विकार भाव आ गया। जब यह बात उस की पत्नी को ज्ञात हुई तो उसने उसको मधुर वचनों से खुब समझाया बुझाया, परन्तु यह नहीं समझा। एक दिन रात्रि में उसकी पत्नी ने उस को प्रतिबोध देने के अभिप्राय से अपनी सखी का वेष बनाया, और फिर वह पति के पास गई। उस को देखकर श्रावक को तत्क्षण ही परस्त्री त्यागरूप व्रतकी स्मृति आगई। इस के प्रभाव से वह पश्चात्ताप करने लगा। पश्चात्ताप करते हुए अपने पति को देखकर स्त्री ने कहा–नाथ! मैं सखी नहीं हूं, मैं तो आप की पत्नी हुं। बाद में वह गुरु के पास पहुँचा

લાગ્યું, તેમણે "शुभस्य शीघ्रम्" ની ઉક્તિને સાર્થક કરતાં, એજ સમયે જિન દીક્ષા અંગીકાર કરી લીધી. આ તેમની પારિણામિકીબુદ્ધિનું ફળ છે ॥ ૭ ॥

આઠમું શ્રાવકદષ્ટાંત–કોઇ એક શ્રાવકને પરસ્ત્રી ગમનના ત્યાગનું વ્રત હતું. એક દિવસ જ્યારે તેમણે તેમની પત્નીની સખીને જોઈ તો તેના પ્રત્યે તેમના ચિત્તમાં વિકાર ભાવ થયો. જ્યારે તેમની પત્નીએ આ વાત જાણી ત્યારે તેમણે તેમને મધુર વચનો દ્વારા ખૂબ સમજાવ્યાં પણ તે સમજ્યાં જ નહીં એક રાત્રે તેમની પત્નીએ તેને બોધ આપવા માટે પોતાની સખીનો વેષ લીધો અને પછી તે પતિની પાસે ગઈ. તેને જોતા તેજ ક્ષણે તે શ્રાવકને પરસ્ત્રી ત્યાગના વ્રતની યાદ આવી. તેના પ્રભાવે તે પશ્ચાત્તાપ કરવા લાગ્યો. પોતાના પતિને પશ્ચાત્તાપ કરતો જોઈને તે સ્ત્રીએ કહ્યું, "નાથ! હું સખી નથી, હું તો આપની જ

अथ नवमोऽमात्यदृष्टान्तः ॥ ९ ॥

अमात्यो मन्त्री । धनुनामको मन्त्री स्वामिपुत्रस्य ब्रह्मदत्तस्य रक्षार्थं बिलमार्गं खनयित्वा तेन मार्गेण ब्रह्मदत्तं बहिर्नीतवान् । इयं मन्त्रिणः पारिणामिकी बुद्धिः ॥ इति नवमोऽमात्यदृष्टान्तः ॥ ९ ॥

अथ दशमः क्षपक (साधु) दृष्टान्तः ॥ १० ॥

कोऽपि साधुः क्रोधावेशेन मृतस्तेन कारणेन स सर्पो जातः । सर्पभवे मृतः सन् शुभकर्मोदयात् कुत्रचिद्राजकुले जन्म लब्धवान् । स मुनीनामुपदेशेन विरक्तो भूत्वा प्रव्रज्यां गृहीतवान् । स च सुकुमारतया तपश्चर्यायामसमर्थ आसीत् । सांवत्सरिक-

और उनसे परस्त्रीत्यागरूप व्रत में इस मनः संकल्प से उत्पन्न दोष की शुद्धि के लिये उसने प्रायश्चित्त लिया। यह श्रावक की पारिणामिकी बुद्धि है ॥ ८ ॥

नौवां अमात्य दृष्टान्त—धनु नाम के किसी मंत्री ने अपने स्वामी के पुत्र ब्रह्मदत्त का रक्षा कर ने के अभिप्राय से सुरंगमार्ग खुदवाया। उस मार्ग से वह ब्रह्मदत्त को बाहर ले गया । यह मंत्री की पारिणामिकी बुद्धि का उदाहरण है ॥ ९ ॥

दसवां क्षपक साधु का दृष्टान्त—कोई एक साधु क्रोध के आवेग में मरा इसलिये वह मर कर सर्प की पर्याय में उत्पन्न हुआ । वहां से मर कर फिर वह शुभकर्म के उदय से किसी राजकुल में पुत्र रूप से अवतारित हुआ । वहां उसको मुनिराज के उपदेश को सुन ने का अवसर मिला। इससे वह संसार से विरक्त हो गया, और दीक्षा धारण कर ली। सुकुमार शरीर होने के कारण यह ठीक२ रीति से तपश्चर्या करने में असमर्थ रहता

પત્ની છું." ત્યાર પછી તે ગુરુની પાસે પહોંચ્યો અને પોતાનાથી પરસ્ત્રી ત્યાગ રૂપ વ્રતમાં મનઃસંકલ્પને કારણે ઉત્પન્ન થયેલ દોષને માટે તેમની પાસે પ્રાયશ્ચિત માગ્યું. આ શ્રાવકની પારિણામિકી બુદ્ધિનું દૃષ્ટાંત છે ॥ ૮ ॥

નવમું અમાત્યદૃષ્ટાંત—ધનુ નામના કોઈ મંત્રીએ પોતાના રાજાના પુત્ર બ્રહ્મદત્તના રક્ષણ ને માટે એક સુરંગમાર્ગ ખોદાવ્યો તે માર્ગે તે બ્રહ્મદત્તને બહાર લઈ ગયો. આ મંત્રીની પારિણામિકી બુદ્ધિનું ઉદાહરણ છે. ॥ ૯ ॥

દસમું ક્ષપક સાધુનું દૃષ્ટાંત—કોઈ એક સાધુ ક્રોધના આવેગમાં મરવાને કારણે સર્પની પર્યાયમાં ઉત્પન્ન થયો. ત્યાંથી મરીને ફરીથી શુભકર્મના ઉદયથી તે કોઈ રાજકુળમાં પુત્ર રૂપે અવતર્યો. ત્યાં તેને મુનિરાજનો ઉપદેશ સાંભળવાનો અવસર મળ્યો. તેથી તે સંસારથી વિરક્ત થઈ ગયો, અને દિક્ષા અંગીકાર કરી લીધી. સુકુમાર શરીર હોવાને કારણે તે યોગ્ય રીતે તપશ્ચર્યા કરવાને અસમર્થ હતો.

दिनेऽल्पाहारमानीय गुरवे प्रदर्शितवान्। गुरुणा दृष्ट्वा तत्पात्रे थूत्कृतम्। ततोऽसौ स्वात्मनिन्दां कर्तुं प्रवृत्तः—'धिगस्तु मां यत् सांवत्सरिकपर्वाराधनेऽप्यसमर्थोऽस्मी'-ति। एवमात्मानं निन्दयन् शुभेन परिणामेन, प्रशस्ताध्यवसायेन तदावरणीयानां कर्मणां क्षयेण केवलज्ञानं प्राप्तवान्। इयं तस्य पारिणामिकी बुद्धिः॥ इति दशमः क्षपक-दृष्टान्तः॥ १०॥

अथैकादशोऽमात्यपुत्रदृष्टान्तः॥ ११॥

दीर्घपृष्ठराजा वरधनुर्नामकममात्यपुत्रं ब्रह्मदत्तविषयेऽनेक प्रश्नान् पृच्छति स्म। तेषामुत्तरं वरधनुस्तथा दत्तवान् येन दीर्घपृष्ठनृपो न जानाति—'अयं मम प्रतिकूल-वर्ती'-ति। तथा-वरधनुर्ब्रह्मदत्तस्यापि रक्षां कृतवान्। इयं तस्य पारिणामिकी बुद्धिः॥

॥ इत्येकादशोऽमात्यपुत्रदृष्टान्तः॥ ११॥

था। इसलिये सांवत्सरिक के दिन में भी इस से आहार का परित्याग करते नहीं बन सका, अतः वह आहार लेने चला गया। आहार में जो कुछ यह लाया था वह सब इसने अपने गुरु को बतलाया-तो गुरुदेव ने देखकर उस के पात्र में थूक दिया। इस से अपनी बड़ी भारी निंदा की और सोच ने लगा-देखो मैं कितने धिक्कार का पात्र हूं, जो आज सांव-त्सरीकपर्व की आराधना करने में भी असमर्थ हो रहा हूं। इस प्रकार आत्मनिंदा करते हुए उस को शुभाध्यवसाय के प्रभाव से तदावरणीय कर्मों का क्षय हो जाने के कारण केवलज्ञान प्राप्त हो गया। यह उस की पारिणामि की बुद्धि का फल है॥ १०॥

ग्यारहवां अमात्यपुत्र का दृष्टान्त-दीर्घपृष्ठ राजा ने वरधनु नामक अमात्यपुत्र से ब्रह्मदत्त के विषय में अनेक प्रश्नों को पूछा था। उन का उत्तर उस वरधनु ने इस प्रकार से दिया कि जिस से दीर्घपृष्ठ यह नहीं

તેથી સંવત્સરીને દિવસે પણ તે આહારનો ત્યાગ કરી શકયો નહીં. તેથી ગોચરીમાં જે કંઇ મળ્યું તે બધું તેણે પોતાના ગુરુને બતાવ્યું. ત્યારે ગુરૂદેવ તે જોઇને તેનાં પાત્રમાં થૂંકયા. તેથી તેને પોતાની જાતને ઘણી નિંદી અને વિચાર કર્યો, "હું કેટલો બધો ધિક્કારને પાત્ર છું કે જેથી આજે સંવત્સરી પર્વની આરાધના કરવાને પણ અસમર્થ નિવડયો છું." આ પ્રમાણે આત્મ-નિંદા કરતા, તેને શુભાધ્યવસાયને પ્રભાવે તેનું આવરણ કરતા કર્મોનો ક્ષય થવાથી કેવળજ્ઞાન પ્રાપ્ત થયું. આ તેની પારિણામિકી બુદ્ધિનું ફળ હતું. ॥ ૧૦ ॥

અગીયારમું અમાત્યપુત્રનું દૃષ્ટાંત-દીર્ઘપૃષ્ઠ રાજાએ વરધનું નામના અમા-ત્યપુત્રને બ્રહ્મદત્તના વિષયમાં અનેક પ્રશ્નો પૂછયા હતા. તે પ્રશ્નોનો જવાબ તે વરધનુએ એ રીતે આપ્યો કે જેથી દીર્ઘપૃષ્ઠ તે વાત સમજી શકયો નહીં કે

॥ अथ द्वादशश्चाणक्यदृष्टान्तः ॥

चाणक्येनोद्घोषणा कारिता-'यद् दिवसैकमात्रजातानामश्वानां महिषाणां वृषभाणां कुक्कुराणां च प्रत्येकं सपादपञ्चशतकमद्य पूर्वाह्ण एव समानयन्तु, नो चेत् प्रतिगृहेण मुद्राशतं दण्डो देयः' इति। एवं भाण्डागारं पूर्णं कृतवान्। इयं चाणक्यस्य पारिणामिकी बुद्धिः ॥

॥ इति द्वादशश्चाणक्यदृष्टान्तः ॥ १२ ॥

॥ अथ त्रयोदशः स्थूलभद्रदृष्टान्तः ॥

स्थूलभद्रस्य पितरि हते सति नन्दो मन्त्रिपदपरिपालनार्थं स्थूलभद्रं प्रार्थयति स्म। किं तु स्थूलभद्रः संसार सम्बन्धं दुःखकरं विज्ञाय प्रव्रज्यां गृहीतवान्। इयं तस्य पारिणामिकी बुद्धिः ॥

॥ इति त्रयोदशः स्थूलभद्रदृष्टान्तः ॥ १३ ॥

जान सका कि अमात्य पुत्र मेरे प्रतिकूल है। इस तरह वरधनुने अपनी पारिणामिकी बुद्धि के प्रभाव से ब्रह्मदत्त की रक्षा की ॥ ११ ॥

बारहवां चाणक्य दृष्टान्त-चाणक्य ने इस प्रकार की घोषणा की कि हरएक प्रजाजन एक ही दिन में उत्पन्न हुए पांच सौ पचीस ५२५ घोड़ों को पांचसौ पचीस ५२५, भैसों को पांचसौ पचीस ५२५ बैलों को और पांचसो पचीस ५२५ कुत्तों को आजपूर्वाह्न में लाकर उपस्थित करे नहीं तो प्रत्येक घर को सौ सौ मुंहरों का जुर्माना देना पडेगा। इस तरह की आज्ञा से उसने अपने भाण्डार को द्रव्य से खूब भर दिया। यह उस की पारिणामिकी बुद्धि का प्रभाव है ॥ १२ ॥

तेरहवां स्थूलभद्र दृष्टान्त-स्थूलभद्र का पिता जब मार दिया गया तो नन्द ने स्थूलभद्र से अप ने पिता के स्थान को ग्रहण करने की प्रार्थना की

અમાત્યપુત્ર મારી વિરૂદ્ધ છે. આ રીતે વરધનુએ પોતાની પારિણામિકી બુદ્ધિથી બ્રહ્મદત્તનું રક્ષણ કર્યું ॥ ૧૧ ॥

બારમું ચાણકયદષ્ટાંત-ચાણકયે આ પ્રકારની ઘોષણા કરાવી કે દરેક પ્રજા-જન એક જ દિવસે જન્મેલ પાંચસો પચીશ (૫૨૫) ઘોડા, પાંચસો પચીશ (૫૨૫) ભેંસો, પાંચસો પચીશ (૫૨૫) બળદો અને પાંચસો પચીશ (૫૨૫) કૂતરાઓ આજે મધ્યાહ્ન પહેલાં લાવીને હાજર કરે, નહીં તો દરેકને સો સો સોનામહોરોનો દંડ ભરવો પડશે. આ પ્રકારની આજ્ઞાથી તેણે પોતાના ભાંડાગારને દ્રવ્યથી ભરી દીધો. આ તેની પારિણામિકી બુદ્ધિનો પ્રભાવ છે ॥ ૧૨ ॥

તેરમું સ્થૂલભદ્ર દષ્ટાંત-જ્યારે સ્થૂલભદ્રના પિતાની હત્યા કરવામાં આવી ત્યારે નન્દે સ્થૂલભદ્રને તેના પિતાનું સ્થાન ગ્રહણ કરવા વિનંતિ કરી, પણ સ્થૂળ-

अथ नासिक्यसुन्दरीनन्ददृष्टान्तः—

नासिक्यपुरे नन्दनामको भूपतिरासीत्। तस्य महिषी सुन्दरी नाम्नी। भूपतेर्भ्राता धर्मप्रियनामकः। स सीमन्ताचार्यसमीपे देशनां श्रुत्वा प्रव्रजितः। विविधकठिनतपश्चरणेन विविधलब्धिसंपन्नो जातः। स चैकदा राजानं राज्ञीं च लब्धिप्रभावेण देवदेवीदर्शनं कारितवान्। तदनु तावुभौ प्रव्रजितौ। साधोरियं पारिणामिकी बुद्धिः॥

इति चतुर्दशो नासिक्यसुन्दरीनन्ददृष्टान्तः ॥ १४ ॥

अथ पञ्चदशो वज्रदृष्टान्तः॥

आसीदवन्तीदेशे उज्जयिनीनगर्यां कश्चिदिभ्यपुत्रो धनगिरिनामकः। तस्य मातापितरौ धनपालपुत्र्या सुनन्दा नाम्न्या सह तस्य पाणिग्रहणं कारितवन्तौ। धनगिरिश्च

परन्तु स्थूलभद्र ने संसार के संबंध को दुःखकर जानकर जो दीक्षा धारण कर ली यह उनकी पारिणामिकीबुद्धि का प्रभाव था ॥ १३ ॥

चौदहवां नासिक्य सुन्दरीनन्द दृष्टान्त–नासिक्यपुर में एक नन्द नाम का राजा था। उस की स्त्री का नाम सुन्दरी था। राजा का जो भाई था उसका नाम धर्मप्रिय था। धर्मप्रिय ने सीमन्ताचार्य के पास धर्मदेशना सुनकर भागवती दीक्षा धारण करली। अनेक प्रकार के तपश्चरणों के प्रभाव से उसको उसके अनेक प्रकार की लब्धिया सिद्ध हो गईं। उसने राजा और रानी को लब्धि के प्रभाव से देव और देवी के दर्शन करवाये। दर्शन कर वे दोनों दीक्षित हो गये। साधु की यह पारिणामि की बुद्धि का प्रभाव है ॥ १४ ॥

पन्द्रहवा वज्र दृष्टान्त–अवन्ती देश की उज्जयिनी नगरी में कोई एक धनगिरि नामका धनिक पुत्र रहता था। उस के माता पिता ने

ભદ્રે સંસારના સંબધોને દુઃખકર માનીને દીક્ષા અંગીકાર કરી. આ તેની પારિણામિકીબુદ્ધિનો પ્રભાવ હતો ॥ ૧૩ ॥

ચૌદમું નાસિકયસુન્દરીનન્દદૃષ્ટાંત–નાસિકયપુરમાં નન્દ નામનો એક રાજા હતો. તેની સ્ત્રીનું નામ સુંદરી હતું. રાજાના ભાઈનું નામ ધર્મપ્રિય હતું. ધર્મપ્રિયે સીમન્તાચાર્ય પાસે ધર્મદેશના સાંભળીને ભગવતી દીક્ષા અંગીકાર કરી. અનેક પ્રકારની તપસ્યાને પ્રભાવે તેને અનેક પ્રકારની લબ્ધિયો પ્રાપ્ત થઈ તેણે લબ્ધિના પ્રભાવે રાજા અને રાણીને દેવ અને દેવીનાં દર્શન કરાવ્યાં. દર્શન કરીને તે બન્નેએ દીક્ષા લઈ લીધી. આ સાધુની પારિણામિકી બુદ્ધિનો પ્રભાવ થયો ॥ ૧૪ ॥

પંદરમું વજ્રદૃષ્ટાંત–અવન્તી દેશની ઉજ્જયિની નગરીમાં ધનગિરિ નામનો કોઈ એક ધનિક પુત્ર રહેતો હતો. તેના માતા પિતાએ તેનો વિવાહ ધનપાલની

संसारासारतां बुद्ध्वा गर्भवत्या सुनन्दाभार्यया प्रतिरुद्धोऽपि सिंहगिरिसमीपे प्रव्रजितः। तदनु प्रसूतिसमये सा नन्दा पुत्रं जनितवती। तस्य वज्रवद्देहं दृष्ट्वा-'वज्र' इति नाम कृतम्। एकदा स्त्रीभिः परस्परमुक्तम्-अयं धनगिरेः पुत्रः पुण्यशाली वर्त्तते। यद्यस्य पिता दीक्षां नाग्रहीष्यत् तदाऽस्यापूर्वो महोत्सवोऽभविष्यत्। तासामेतद्वचनं श्रुत्वा स बालः पालनस्थ एव जातिस्मृतिं प्राप्तवान्। तेन स्वपूर्वभवं प्रव्रजितं पितरं च ज्ञात्वा तथा रोदितुमारेभे यथा माता तं प्रति निर्वेदं प्राप्नुयात्।

उसका विवाह धनपाल की पुत्री सुनंदा के साथ कर दिया। धनगिरि ने धीरे २ गृहस्थ जीवन बीताते हुए अपना समय शांति के साथ व्यतीत किया। काल लब्धि के प्रभाव से धनगिरि को संसार की असारता का ज्यों ही भान हुआ तो उसने अपनी गर्भवती सुनंदा भार्या द्वारा समझाये जाने पर भी सिंहगिरि के समीप जाकर जिनदीक्षा धारण करली। सुनंदा का जब प्रसूति का समय आया तो उसके एक पुत्र हुआ जिस का नाम वज्र था। इसकी देह वज्र जैसी थी। एक समय की बात है कि कुछ स्त्रियों ने मिलकर परस्पर ऐसी बातचीत की कि-यह धनगिरि का पुत्र वज्र बड़ा भाग्यशाली है। यदि इसके पिता जिन दीक्षा धारण न करते तो वे इस के जन्म के समय का उत्सव बडे ठाटबाट से मनाते। जिस समय यह बातचीत उन स्त्रियों में चल रही थी-उस समय वह बालक पालने में सोया हुआ था। उन की इस बात को सुनते ही उस बालक को अपने पूर्वभव की याद आगई। जब उसने अपने पूर्वभव एवं दीक्षित हुए पिता को जाना तो ऐसा रोना प्रारंभ किया कि जिस से

પુત્રી સુનંદા સાથે કર્યો. ધનગિરિએ ગૃહસ્થ જીવન વ્યતીત કરતા કરતાં પોતાનો સમય શાન્તિથી પસાર કર્યો. કાલલબ્ધિના પ્રભાવથીં ધનગિરિને જેવું સંસારની અસારતાનું ભાન થયું કે તરત જ પોતાની ગર્ભવતી પત્ની સુનંદાએ સમજાવ્યા છતાં પણ સિંહગિરિ સમક્ષ જઈને જિનદીક્ષા ગ્રહણ કરી. સુનંદાને પ્રસૂતિનો સમય આવતા એક પુત્ર જન્મ્યો જેનું નામ વજ્ર રાખ્યું. તેનુ શરીર વજ્ર જેવું હતું. એક દિવસ એવું બન્યું કે કેટલીક સ્ત્રીઓભેગી થઇને આપસ આપસમાં વાતચીત કરવા લાગી કે આ ધનગિરિનો પુત્ર વજ્ર ઘણો જ ભાગ્યશાળી છે, જો તેના પિતાએ જિન દિક્ષા અગીકાર ન કરી હોત તો તેઓ તેનો જમોત્સવ ભારે ઠાઠમાઠથી ઉજવત. જ્યારે તે સ્ત્રીઓ વચ્ચે આ પ્રમાણે વાતચીત ચાલતી હતી, ત્યારે તે બાળક પારણામાં સૂતો હતો. તેમની આ વાત સાભળતા જ તેને પોતાનો પૂર્વ ભવ યાદ આવ્યો. જ્યારે તેણે પોતાનો પૂર્વભવ તથા દીક્ષિત થયેલ પિતાની આ વાત જાણી ત્યારે તેણે એવું રડવા માંડયું કે જેથી તેની માતાને

एवं षण्मासाः व्यतीताः। एकदा तत्र सिंहगिरिराचार्यः धनगिर्यादिशिष्यपरिवारेण सह समागतः। धनगिरिणा भिक्षाचर्यार्थं गन्तुं पृष्ट आचार्यः प्राह-हे धनगिरे! अद्य तव पात्रे यत्किञ्चित्सचित्तमचित्तं वा पतेत् तद्ग्राह्यमेवेति। ततो धनगिरिरकस्मात् सुनन्दागृहे भिक्षार्थं प्राविशत्। सा च स्वपतिमुनिं विलोक्योक्तवती-इयन्ति दिनानि तवार्भको मया यथाकथञ्चित् पालितः, संप्रति गृहाणैतं नित्यं रुदन्तं बालम्। अहमस्मिन् बालके निःस्पृहाऽस्मीति कृत्वा सा तं मुनिपात्रे ससाक्षिकं न्यस्तवती। धनगिरिमुनिश्च तमानीय गुरोरग्रे स्थापितवान्। गुरुणा स

उस की माता को उसकी तरफ से विरक्ति हो गई। इस तरह छह मास व्यतीत हो चुके। एक समय की बात है कि वहां सिंहगिरि आचार्य अपने धनगिरि आदि शिष्य परिवारों के साथ विहार करते हुए आये। धनगिरि ने आचार्य महाराज से गोचरी जाने के लिये आज्ञा मांगी तो आचार्य महाराज ने कहा-आज तुम्हारे पात्र में जो भी वस्तु आजावे चाहे वह सचित्त हो या अचित्त, सभी ले आना। आचार्य महाराज की इस प्रकार आज्ञा पाते ही धनगिरि वहां से गोचरी के लिये निकले। अकस्मात् सब से पहिले वे सुनंदा के घर पहुंचे, सुनंदा ने जब यह देखा कि ये हमारे पति हैं तो उस ने उनसे कहा-मैंने इतने दिनों तक जैसे भी बना वैसे आप के बालक का पालन पोषण किया है अब आप इसको ले जाइये, यह रात दिन रोता रहता है। मैं तो इस के इस रोने से बहुत अधिक परेशान रहती हूं, इसीलिये अब इस बालक के प्रति मेरी कोई ममता नहीं रही है। ऐसा कह कर उसने उस बालक को मुनि के पात्र में लोगों को साक्षि बना कर डाल दिया। धनगिरि मुनि ने उस को

તેના તરફ વિરક્તિ થઇ ગઇ. આ રીતે છ માસ વ્યતીત થઈ ગયાં. એક સમય એવું બન્યું કે સિંહગિરિ આચાર્ય પોતાના ધનગિરિ આદિ શિષ્ય પરિવાર સહિત વિહાર કરતાં કરતાં ત્યાં આવ્યા. ધનગિરિએ આચાર્ય મહારાજ પાસે ગોચરી માટે જવાની આજ્ઞા માગી ત્યારે આચાર્ય મહારાજે કહ્યું-આજે તમારા પાત્રમાં જે કોઈ વસ્તુ આવે તે ભલે સચિત્ત હોય કે અચિત્ત હોય પણ તે બધી લેતા આવજો. " આચાર્ય મહારાજની આ પ્રકારની આજ્ઞા મળતાં જ ધનગિરિ ત્યાંથી ગોચરી માટે ઉપડયા. અકસ્માત તેઓ સૌથી પહેલાં સુનંદાને ઘેર પહોંચ્યા. સુનંદાએ જોયું કે આ મારા પતિ છે ત્યારે તેણે તેમને કહ્યું, મારાથી બની શકયું તે રીતે આટલા દિવસો સુધી આપના બાળકનું પાલન પોષણ કર્યું, હવે આપ તેને લઇ જાવો. તે તો રાતદિવસ રડયા જ કરે છે. તેના રૂદનથી હું તો ગળે આવી ગઈ છું. તે કારણે આ બાળક પ્રત્યે મને કોઈ મમતા નથી." આમ કહીને તેણે તે બાળકને મુનિનાં પાત્રમાં લોકોને સાક્ષિ બનાવીને મૂકીદીધો. ધનગિરિ

संघाय समर्पितः। संघेन स पालितोऽष्टवर्षीयो जातः। तदनु तन्माता स्वपुत्रं ग्रहीतुं संघस्य समीपे समागता। संघेन एकतो विविधालंकार वैभवादिका अनेके पदार्थाः स्थापिताः, एकतश्च सदोरकमुखवस्त्रिका-रजोहरणपात्रादीन्युपकरणानि स्थापितानि। कथितं च-यदस्मै वालकाय रोचते तदयं गृह्णातु, अयमेवात्र न्यायः। एतन्निशम्य स वालकः शीघ्रमुत्थाय सदोरकां मुखवस्त्रिकां मुखे वद्ध्वा रजोहरण-पात्राणि गृहीतवान्। इयं वज्रस्वामिनः पारिणामिकी बुद्धिः ॥

॥ इति पञ्चदशो वज्रदृष्टान्तः ॥ १५ ॥

अथ चरणाहतदृष्टान्तः—

वसन्तपुरे रिपुमर्दनो नाम नृपतिरासीत्। एकदा तरुणाः सेवका राजानमब्रुवन्-

---

लाकर आचार्य महाराज के समक्ष रख दिया। गुरुमहाराज ने वह बालक श्रीसंघ को सौंप दिया। संघ ने उसका लालन पालन बडे प्रेमके साथ किया। जब वह बालक आठ वर्षका हो गया तो माता सुनंदा बालक वज्र को वापिस लेने के लिये श्रीसंघ के पास आई। संघ ने उस समय एक तरफ विविध अलंकार तथा वैभव का पुंज एकत्रित कर रख दिया और दूसरी तरफ सदोरकमुखवस्त्रिका, रजोहरण, तथा पात्र आदि उपकरण रख दिये, और ऐसा कहा-जो इन में से इस बालक को रूचे वही यह ले लेंवे, हमें इसमें कोई विवाद नहीं है। इस प्रकार का न्याय सुनकर उस बालक ने शीघ्र ही उठकर सदोरकमुखवस्त्रिका को अपनी मुख पर बांध लिया और रजो हरण तथा पात्रों को अपने हाथ ले लिया। इस तरह यह वज्रस्वामी की पारिणामिकीबुद्धि का दृष्टान्त है ॥१५॥

सोलहवां चरणाहत दृष्टान्त—वसन्तपुरमें रिपुमर्दन नामका राजा

મુનિએ તેને લાવીને આચાર્ય મહારાજ સમક્ષ મૂકી દીધો. ગુરુમહારાજે તે બાલક શ્રી સંઘને સોંપી દીધો સંઘે ઘણા પ્રેમપૂર્વક તેનું લાલનપાલન કર્યું. જ્યારે તે બાલક આઠ વર્ષનો થયો ત્યારે તેની માતા સુનંદા બાલક વજ્રને પાછો લેવા માટે શ્રી સંઘની પાસે આવી. સંઘે તે સમયે એક તરફ વિવિધ અલંકાર તથા વૈભવનો પુંજ એકત્ર કરીને મૂક્યો અને બીજી તરફ દોરા સાથેની મુહપત્તી, રજોહરણ, તથા પાત્ર આદિ ઉપકરણ મૂકયાં અને એવુ કહ્યું કે આમાંથી આ બાલકને જે ગમે તે તે લઈ લે, તેમાં અમને કોઈ વાંધો નથી. આ પ્રકારનો ન્યાય સાંભળતા જ તે બાળક તરત જ ઉઠીને દોરા સહિતની મુહપત્તીને પોતાના મુખ પર બાંધી લીધી, તથા રજોહરણ અને પાત્રાંને પોતાના હાથમાં લઈ લીધાં. આ રીતનું આ વજ્ર સ્વામીની પારિણામિકી બુદ્ધિનું દૃષ્ટાંત છે ॥ ૫ ॥

સોળસું ચરણાહતદૃષ્ટાંત-વસન્તપુરમાં રિપુમર્દન નામનો રાજા રાજ્ય કરતો

स्वामिन्! जीर्णशरीरान् पक्वकेशान् वृद्धान् सेवकानपनीय भवता तरुणा एव सेवका नियुज्यन्ताम्। त एव सर्वाणि कार्याणि सम्यक् साधयिष्यन्ति। एकदा राजा परीक्षार्थं तान् पृच्छति-यदि कश्चिन्मम शिरसि चरणप्रहारं कुर्यात् तर्हि कीदृशो दण्डो देयः? तरुणा ऊचुः—महाराज! खण्डं खण्डं कृत्वा स हन्तव्यः। राजा पुनरिमं प्रश्नं वृद्धानपि पृष्टवान्। वृद्धैरुक्तम्-स्वामिन्! विचार्य कथयिष्यामः। इत्युक्त्वा ते निर्जनस्थानं गताः, तत्र गत्वा ते विचारयन्ति-राज्ञीमन्तरेण कोऽन्यो

राज्य करता था। एक समय कुछ तरुण सेवकों ने मिल कर राजा से कहा-महाराज! जीर्ण शरीर हुए, तथा धवलित केश हुए, ऐसे वृद्ध पुरुषों को आप राज्यकार्य से मुक्तकर तरुण सेवकों को रखिये, कारण वृद्धों से कुछ काम नहीं हो सकता है। तरुण ऐसे होते हैं कि वे समस्त कार्य अच्छी तरह से करते है, और कर सकते हैं। उनकी इस बात को सुनकर राजा ने एक दिन उन की परीक्षा लेने के अभिप्राय से ऐसा पूछा-बताओ यदि कोई मेरे मस्तक पर चरण का प्रहार करे तो उसको क्या दंड देना चाहिये। राजा की इस बात को सुनकर उन तरुणों ने कहा-महाराज! इस में पूछने की क्या बात है, यह तो स्पष्ट है कि ऐसे व्यक्ति को तिल २ बराबर खंड २ कर के मार देना चाहिये। उनकी इस बात को सुनकर राजा ने यही बात वृद्धजनों से पूछी तो उन्होंने कहा-स्वामिन्! हम इसका उत्तर विचार कर कहेंगे। ऐसा कहकर वे एक निर्जन स्थान में जाकर विचार करने लगे, विचार करते २ यह बात उन की समझ में आई कि रानी के सिवाय राजा के मस्तक पर चरण

હતો. એક વખત કેટલાક યુવાન સેવકોએ મળીને રાજાને કહ્યું, "મહારાજ! જીર્ણશીર્ણ શરીરવાળા તથા ધોળાં વાળવાળાં પુરુષોને આપ રાજ્યના કાર્યમાંથી છૂટા કરીને યુવાન સેવકોને રાખો, કારણ કે વૃદ્ધોથી કંઈ કામ થઈ શકતું નથી. યુવાનો એવા હોય છે કે તે સમસ્ત કાર્યને સારી રીતે કરે છે, અને કરી શકે છે. તેમની એ વાત સાંભળીને રાજાએ એક દિવસ તેમની કસોટી કરવા માટે તેમને એવું પૂછ્યું કે કહો, કોઈ મારા મસ્તક પર લાત મારે તો તેને શો દંડ આપવો જોઈએ. રાજાની એ વાત સાંભળીને તે યુવાનોએ કહ્યું, "મહારાજ! તેમાં પૂછવાની વાત જ શી છે? એ તો સ્પષ્ટ છે કે એવી વ્યક્તિના તો રાઈ રાઈ જેવાં ટુકડા કરીને તેને મારી નાખવી જોઈએ." તેમની આ વાત સાંભળીને તેમણે એજ વાત વૃદ્ધોને પૂછી ત્યારે તેમણે કહ્યું, "મહારાજ! વિચાર કરીને અમે તેનો જવાબ આપશું" આ પ્રમાણે કહીને એકાન્તમાં જઇને તેઓ વિચાર કરવા લાગ્યા. વિચાર કરતાં કરતાં એ વાત તેમના સમજવામાં આવી ગઈ કે રાણીના સિવાય રાજાના મસ્તક પર લાત મારવાનું સામર્થ્ય કે હિંમત

राज्ञः शिरसि चरणेन प्रहारं कर्तुं शक्नोति? सा राज्ञी तु विशेषसम्मानयोग्या भवति, इति विचिन्त्य राज्ञः समीपमागत्य वृद्धा ऊचुः—राजन्! शिरसि चरणप्रहारकरणे विशिष्टसत्कारः करणीयः। वृद्धानां वचः श्रुत्वा तद् बुद्धिं प्रति राजा परितुष्टो जातः। ततश्चासौ वृद्धानेव स्वपार्श्वे स्थापयामास। इयं राज्ञस्तथा वृद्धानां च पारिणामिकी बुद्धिः।

॥ इति षोडशश्चरणाहतदृष्टान्तः ॥ १६ ॥

अथ सप्तदश आमंड–कृत्रिमामलकदृष्टान्तः—

कश्चित् कुम्भकारः कस्मैचित् कृत्रिममामलकं दत्तवान्। वर्णतः स्वरूपतश्चामलकसादृश्यसद्भावेऽप्यतिकठिनस्पर्शवत्त्वात्, तदुत्पत्तिकालाभावाच्च नेदं वास्तविकमामलकं किन्तु कृत्रिममिति तेन ज्ञातम्। तस्यामलकपरीक्षकस्येयं पारिणामिकी बुद्धिः।

॥ इति सप्तदश आमड–कृत्रिमामलकदृष्टान्तः ॥ १७ ॥

प्रहार देने की सामर्थ्य और किस में हो सकती है। फिर भी वह विशेष संमान के ही योग्य मानी जाती है। ऐसा विचार कर चुकने पर वे पीछे राजा के पास आकर कहने लगे–राजन्! आपके शिर पर चरण प्रहार करने वाला व्यक्ति विशेष सत्कार का पात्र होता है। इस प्रकार उनके वचन सुनकर राजा उनके बुद्धिवैभव पर बड़ा प्रसन्न हुआ, और उन्हें ही उसने अपने पास रखा। इस तरह यह राजा और वृद्धों की पारिणामिकी बुद्धि का दृष्टान्त है ॥ १६ ॥

सत्रहवां आमंड–कृत्रिमामलक दृष्टान्त—किसी एक कुंभारने किसी दूसरे व्यक्ति के लिये बनावटी आंवला दिया। जो रूप तथा रंग में बिलकुल सच्चे आंवले के समान था, परन्तु उसने उसे कठिन स्पर्श होनेके कारण तथा वह समय उसकी उत्पत्ति का न होने के कारण यह

બીજા કોનામાં સંભવી શકે? છતાં પણ તે વિશેષ સન્માનને યોગ્ય મનાય છે. આ પ્રમાણે વિચાર કરીને તેઓ રાજા પાસે પાછાં ફર્યાં અને તેમણે રાજાને કહ્યું, "મહારાજ! આપના શિર પર ચરણ પ્રહાર કરનાર વ્યક્તિ તો વિશેષ સત્કારને પાત્ર હોય છે." આ પ્રમાણે તેમના વચન સાંભળીને રાજા તેમનો બુદ્ધિવૈભવ જોઈ ને ઘણો ખુશ થયો અને તેમને જ તેણે પોતાની સેવામાં રાખી લીધા. આ પ્રમાણે આ રાજા અને વૃદ્ધોની પારિણામિકી બુદ્ધિનું દૃષ્ટાંત છે ॥ ૧૬ ॥

સત્તરમું આમંડ–કૃત્રિમામલક દૃષ્ટાંત–કોઈ એક કુંભારે કોઇ એક વ્યક્તિને માટે બનાવટી આંબળું દીધું. તે રૂપ અને રંગમાં સાચાં આંબળા જેવું જ હતું. પણ તેણે તેનો સ્પર્શ કરતાં કઠણ લાગવાથી તથા તે તેની ઉત્પત્તિનો સમય ન

अथाष्टादशोमणिदृष्टान्तः—

कश्चित् सर्पो वृक्षमारुह्य पक्षिशावकान् नित्यं खादति। एकदा स सर्पो वृक्षाद् विच्युतोऽधः पतितः। तस्य मणिस्तस्य वृक्षस्य क्वचित् प्रदेशे स्थित आसीत्। मणिप्रकाशे भ्रमणशीलोऽसौ सर्पस्तत्प्रकाशाभावात्तद्वृक्षाधस्तलस्थितकूपे पतितो मृतः। वृक्षशाखावस्थितमणिकिरणच्छायया तस्य कूपस्य सकलजलं रक्तवर्णं सम-दृश्यत। ततः कश्चिद्बालकस्तत्र क्रीडन्निदं साश्चर्यमपश्यत्। ततस्तेन बालकेन पितुः समीपे समागत्य तद्वृत्तं निगदितम्। वृद्धस्तत्पिताऽपि तत्रागत्य सम्यक् पश्यति, ततः पश्चादसौ मणिं निश्चित्य वृक्षमारुह्य तं गृहीतवान्। तस्येयं पारिणामिकी बुद्धिः।

॥ इत्यष्टादशो मणिदृष्टान्तः ॥ १८ ॥

समझने में देर नहीं की कि यह वास्तविक नहीं है किन्तु बनावटी ही है। यह उसकी पारिणामिकी बुद्धि का फल है ॥ १७ ॥

अठारहवां मणि दृष्टान्त—एक सर्प कि जिस की फणा में मणि था। वृक्ष पर चढ कर पक्षियों के बच्चों को प्रतिदिन खा जाया करता था। एक दिन की बात है कि वह सर्प वृक्ष से चूक कर नीचे गिर पड़ा। उसका मणि उस वृक्ष के एक कोने में रखा हुआ था। इस से उस का प्रकाश दूसरी शाखा पर न पड़ने से वह ज्यों ही गिरा तो कुए में जा कर पड़ गया और मर गया। कुए का जल वृक्ष की शाखा पर रखे हुए मणि की किरणों की छाया से रक्तवर्ण का दिखलाई देता था। वहां एक बालक खेल रहा था। उसने ज्यों ही इस दृश्य को देखा तो उस को बड़ा आश्चर्य हुआ। पिता के पास आ कर उसने यह सब बात उनसे कह दी। वह शीघ्र ही वहां गया और अच्छी तरह देखभाल की।

હોવાથી તેને સમજી જવામાં વાર ન લાગી કે તે સાચું આંમળું નથી પણ બનાવટી છે. આ તેની પારિણામિકી બુદ્ધિનું ફળ હતું. ॥ ૧૭ ॥

અઢારમું મણિ દૃષ્ટાંત–એક સર્પ કે જેની ફેણમાં મણિ હતો તે દરરોજ વૃક્ષ પર ચડીને પક્ષીઓનાં બચ્ચાંને ખાઇ જતો હતો. એક દિવસ એવું બન્યું કે તે સર્પ વૃક્ષ પરથી ચૂકવાથી નીચે પડી ગયો. તેનો મણિ તે વૃક્ષના એક ખૂણે મૂકેલો હતો. તેથી તેનો પ્રકાશ બીજી ડાળી પર ન પડવાથી તે જેવો પડયો કે નીચે કૂવામાં જઈને પડયો અને મરી ગયો. કૂવાનું પાણી વૃક્ષની ડાળી પર પડેલા તે મણિનાં કિરણોની છાયાથી લાલરંગનું દેખાતું હતું. ત્યાં એક બાળક રમતો હતો. તેણે જેવું તે દૃશ્ય જોયું કે તેને ભારે આશ્ચર્ય થયું. પિતાની પાસે જઇને તેણે તે બધી વાત તેમને કહી. તે તરત જ ત્યાં આવ્યો અને બરાબર નિરીક્ષણ કર્યું. જ્યારે તેને મણિ વિષે ખાતરી થઈ ગઇ ત્યારે તેણે વૃક્ષ પર

अथैकोनविंशतितमः सर्पदृष्टान्तः—

भगवतो महावीरस्यालौकिकरक्तमास्वाद्य चण्डकौशिकसर्पो ज्ञानं प्राप्तवान्। इयं तस्य पारिणामिकी बुद्धिः।

इत्येकोनविंशतितमः सर्पदृष्टान्तः ॥ १९ ॥

अथ विंशतितमः खड्गिदृष्टान्तः—

खड्गी-'गेंडा' इति प्रसिद्धोऽरण्यपशुविशेषः। कोऽपि श्रावको यौवनमदेन व्रतातिचाराणामालोचनामकृत्वा मृतः। ततोऽसौ वने खड्गिपशुभवं प्राप्य तस्मिन् वने आगन्तुकान् मनुष्यान् निहत्य भक्षयति। एकदा तेन मार्गेण गच्छन्तो बद्धा सदोरकमुखवस्त्रिकाः साधवस्तेन दृष्टाः। स खड्गी पशुस्तान् साधूनाक्रामति, किन्तु

जब उस को मणि का निश्चय हो गया तो उसने वृक्ष पर चढ कर उस मणि को ले लिया। इस प्रकार यह उस की पारिणामिकी बुद्धि का उदाहरण है ॥ १८ ॥

उन्नीसवां सर्प दृष्टान्त—चण्डकौशिक सर्पने महावीर स्वामी के अलौकिक रक्त का आस्वादन करने के जो ज्ञान प्राप्त किया वह उसकी पारिणामि की बुद्धिका फल है ॥ १९ ॥

बीसवां खड्गि दृष्टान्त—कोई श्रावक यौवन के मद में आ कर व्रतों में लगे हुए दोषों की आलोचना नहीं कर के मरा तो वह गेंडाकी पर्याय से उत्पन्न हुआ। वह इतना नृशंस था कि वन में जो भी कोई मनुष्य आता उस को यह मार कर खा जाता। एक समय इसने मार्ग में जाते हुए मुख पर सदोरकमुखवस्त्रिका बांधे हुए अनेक मुनियों को देखा। देखते ही यह उन पर आक्रमण करने के लिये झपटा, परन्तु

ચડીને તે મણિ લઈ લીધો. આ પ્રમાણે આ તેની પારિણામિકી બુદ્ધિનું ઉદાહરણ થયું ॥૧૮॥

ઓગણીસમું સર્પ દૃષ્ટાંત–ચંડકૌશિક નામે મહાવીર સ્વામીના અલૌકિક રક્તને ચાખીને જે જ્ઞાન પ્રાપ્ત કર્યું તે તેની પારિણામિકી બુદ્ધિનું ફળ હતું ॥૧૯॥

વીસમું ખડ્ગ દૃષ્ટાંત–કોઇ એક શ્રાવક યૌવનના મદમાં આવીને વ્રતોમાં આવેલ દોષોની આલોચના કર્યા વિના મરવાથી ગેંડારૂપે ઉત્પન્ન થયો. તે એટલો બધો નિર્દય હતો કે વનમાં જે કોઈ મનુષ્ય આવતો તેને મારીને ખાઈ જતો. એક દિવસ તેણે માર્ગ પરથી જતાં મુખપર દોરી સહિતની મુહપત્તીવાળા અનેક મુનિયોને જોયા. તેમને જોતાં જ તે તેમના પર આક્રમણ કરવા માટે કૂદ્યો

तेषां तपःप्रभावात् तथा कर्तुमसमर्थो जातः। 'कथमक्षमो जातोऽस्मी'ति पुनः पुनर्विचिन्तनेन तेन पूर्वभवस्मरणात्मकं ज्ञानं प्राप्तम्, तथाऽशनं कृत्वा देवलोकं गतः। तस्येयं पारिणामिकी बुद्धिः॥ २०॥

॥ इति विंशतितमः खड्गिदृष्टान्तः॥

अथैकविंशतितमः स्तूपेन्द्रदृष्टान्तः—

अजितस्वामिशासने तद्वंशे समाराधितदेवः समरनामा भूप आसीत्। स देव-साहाय्येन देशरक्षार्थं राज्यरक्षार्थं कुलधनवैभवादिरक्षार्थं च स्तूपेन्द्रं विशालं कीर्ति-स्तम्भं-समारोपितवान् असौ स्तूपेन्द्रोऽनेकेषां प्राणिनामाश्रयभूतो जातः। तद्वंशे चिरेण नीतिरहितो नवनीतनामा भूपो बभूव। स चैकदा जीर्णशीर्णं विविधप्राणि-निवासास्पदं तं कीर्तिस्तम्भमुत्पाटयितुं भृत्यवर्गमादिष्टवान्। तदा तत्र विविधल-

---

तपके प्रभाव से यह उन पर आक्रमण नहीं कर सका। मेरा आक्रमण इन पर खाली क्यों गया? इसका बार २ विचार करते हुए उसको जाति-स्मरण ज्ञान प्राप्त हो गया इससे वह अनशन कर मरा और देवलोक में जाकर उत्पन्न हुआ। इस प्रकार यह उस की पारिणामि की बुद्धि का दृष्टान्त है॥ २०॥

इक्कीसवां स्तूपेन्द्र दृष्टान्त—अजितनाथ स्वामी का जब शासन चल रहा था उस समय उन के वंश में समर नामका एक राजा हुआ। यह दोनों की विशेषरूप से आराधना किया करता था। इसने देव की सहा-यता से देश की रक्षा, राज्य की रक्षा, तथा कुल वैभव आदि की रक्षा के लिये एक विशालकीर्तिस्तंभ बनवाया। इसमें अनेक प्राणियों को निवास करने रूप आश्रय मिलता था। समर के वंश में एक नवनीत नाम का राजा हुआ जो न्यायनीति से रहित था। इसने इस विशाल कीर्तिस्तम्भ

પણ તેમના તપના પ્રભાવે તે તેમના પર આક્રમણ કરી શકયો નહીં. આ લોકો પરનું મારૂં આક્રમણ શા કારણે નિષ્ફળ ગયું તેનો વારંવાર વિચાર કરતાં તેને જાતિસ્મરણ જ્ઞાન ઉત્પન્ન થયું. તેથી તે અનશન કરીને મર્યો અને દેવલોકમાં ઉત્પન્ન થયો. આ પ્રમાણે આ તેની પારિણામિકીબુદ્ધિનું દૃષ્ટાંત થયું ॥ ૨૦ ॥

એકવીસમું સ્તૂપેન્દ્ર દૃષ્ટાંત—જ્યારે અજિતનાથ સ્વામીનું શાસન ચાલતું હતું ત્યારે તેમનાં વંશમાં સમર નામે એક રાજા થયો. તે વિશેષરૂપે દેવોની આરાધના કરતો હતો. તેણે દેવની સહાયતાથી દેશ, રાજ્ય તથા કુળવૈભવ આદિની રક્ષા માટે એક વિશાળ કીર્તિસ્થંભ બનાવરાવ્યો. તેમાં અનેક પ્રાણી-ઓને રહેવા માટે આશ્રય મળતો હતો. સમરના વંશમાં એક નવનીત નામનો રાજા થયો જે ન્યાયનીતિથી રહિત હતો. તે વિશાળકીર્તિસ્તમ્ભને જીર્ણશીર્ણ

ब्धिसम्पन्नः सुसंयतनामानगारः समागतः। स्तूपोत्पाटनविषयकं वृत्तं विज्ञाय स्वसमीपे दर्शनार्थमागताय नवनीतभूपाय कथयति-हे राजन्! अस्योत्पाटने विविधप्राणिनां संहारः सुरकोपेण देशविप्लव राज्यविप्लवादिर्महाननर्थो भविष्यतीति नोत्पाटनीयोऽयं स्तूपेन्द्रः।

॥ इत्येकविंशतितमः स्तूपेन्द्रदृष्टान्तः ॥ २१ ॥

॥ इत्यश्रुतनिश्रितमतिज्ञानदृष्टान्तभागः संपूर्णः ॥

को जब कि यह जीर्णशीर्ण होचुका उखाड़ने का अपने भृत्यवर्ग को आदेश दे दिया। इसी समय वहां विविधलब्धिसंपन्न सुसंयत नामके मुनिराज विहार करते हुए आये। जब उन्हें इस कीर्तिस्तंभ को उखाडे जाने का पता पड़ा तो उन्हों ने नवनीत राजा से जो वंदना करने के लिये आया हुआ था कहा-राजन्! इस कीर्तिस्तंभ को उखाडने से अनेक प्राणियों का संहार, देव प्रकोप से देश में उपद्रव, राज्य में विप्लव आदि अनेक होंगे, इसलिये इस को आप मत उखडवाईये। इस प्रकार यह सुसंयत मुनिराज की पारिणामिकी बुद्धि का प्रभव है जो वह विशालकीर्तिस्तंभ नहीं उखाड़ा गया ॥ २१ ॥

इस तरह ये सब दृष्टान्त अश्रुत निश्रित मतिज्ञान के हुए ॥

॥ नंदीसूत्र का हिन्दी अनुवाद संपूर्ण ॥



થયેલ જોઈને, તેણે પોતાના સેવકોને તે પાડી નાખવાનો આદેશ આપ્યો. એજ વખતે વિવિધ લબ્ધિ સંપન્ન સુસંયત નામના મુનિરાજ વિહાર કરતાં કરતાં ત્યાં પધાર્યાં. જ્યારે તેમને આ કીર્તિસ્તંભને પાડી નાખવાનો છે એવી ખબર પડી ત્યારે નવનીત રાજા કે જે ત્યાં તેમને વંદણા કરવા આવ્યો હતો તેને કહ્યું, "રાજન્! આ કીર્તિસ્તંભને પાડી નાખવાથી અનેક પ્રાણીઓનો સંહાર થશે, દેવ, દેવપ્રકોપથી દેશમાં ઉપદ્રવ, રાજ્યમાં વિપ્લવ આદિ અનેક મુશ્કેલીઓ આવી પડશે. તો આપ તેને પડાવશો નહીં" આ પ્રકારની સુસંયત મુનિની પારિણામિકીબુદ્ધિને પ્રભાવે તે વિશાળ કીર્તિસ્તંભને પાડવામાં આવ્યો નહીં. ॥ ૨૧ ॥

આ રીતે આ બધાં અશ્રુત નિશ્રિત મતિજ્ઞાનનાં દૃષ્ટાંતો પૂરાં થયાં ॥

॥ નંદીસૂત્રનો ગુજરાતી અનુવાદ સંપૂર્ણ ॥

अथ शास्त्रप्रशस्तिः ।

सम्यक्त्वधारी जनतोपकारी,
विचारकारी जिनधर्मचारी ।
कन्धारगोत्रः खलु "वल्लभो"ऽभूत्,
श्रेष्ठी समापन्नविपन्निहन्ता ॥ १ ॥

(२)

तस्यात्मजन्मा क्षपिताऽघकर्मा,
संप्राप्तधर्माऽवितथर्ममर्मा ।
"श्रीनेमिचन्द्रो" गुरुभक्त्यतन्द्रो,
जिनेन्द्रधर्मे परमानुरक्तः ॥ २ ॥

(३)

पत्नी "समर्था" पतिसेवनार्था,
जिनोक्तधर्माचरणे समर्था ।
तस्यातिशुद्धा सुकृतप्रबुद्धा,
चेतोऽनुकूला सदया सुशीला ॥ ३ ॥

(४)

तस्यां शुभस्वप्नवशेन जातः,
"श्रीवाडिलाल"-स्तनयोऽस्ति धीमान् ।
श्रीसङ्घराज्यादिषु मुख्य एष,
सर्वोपकारी किल माड्विवाकः (वकील) ॥ ४ ॥

(५)

शीलं दधाना महिलाप्रधाना,
"रम्भा"ऽभिधाना सरलस्वभावा ।
स्वाम्येकभक्ता सुकृताऽनुरक्ता,
छायेव तस्याऽनुचरा प्रियाऽस्ति ॥ ५ ॥

(६)

पुत्री शुशीला शुभबाललीला,
“ श्रीसुन्दरी ” नाम विराजतेऽस्य ।
स्मेरानना पङ्कजिनीव कल्ये,
तथे-“ न्दुमत्य ”-न्यमनोहराऽऽख्या ॥ ६ ॥

(७)

श्री वाडिलालस्य कनिष्ठबन्धु,-
“ मनोहरो ” नाम मनोहराङ्गः ।
तस्याऽस्ति भार्या किल “ मञ्जुला ”-ख्या,
धर्मानुरक्ता सरलस्वभावा ॥ ७ ॥

योग-शीतांशु-शून्या-क्षि,-(२०१३) मिते वैक्रमवत्सरे ।
वैशाखस्य सिते पक्षे, तृतीयायां गुरोर्दिने ॥ ८ ॥
पुरे “ वीरमगामे ”ऽस्मिन्, “ गुर्जरा ”-न्तर्गते गतः ।
“ नन्दीसूत्रस्य ” सम्पूर्णा, टीकां तत्प्रार्थितो व्यधाम् ॥ ९ ॥

॥ इति शास्त्रप्रशस्तिः सम्पूर्णा ॥

इति श्रीविश्वविख्यात-जगद्वल्लभ-प्रसिद्धवाचक-
पञ्चदशभाषाकलितललितकलापालापक-प्रवि-
शुद्धगद्यपद्यनैकग्रन्थनिर्मायक-वादिमानमर्दक-
श्रीशाहूछत्रपति-कोल्हापुरराजप्रदत्त-
‘जैनशास्त्राचार्य’-पदभूषित-कोल्हापुर-
राजगुरु-बालब्रह्मचारि-जैनाचार्य-
जैनधर्मदिवाकर-पूज्यश्री-घासीलाल-
व्रतिविरचिता नन्दीसूत्रस्य-
ज्ञानचन्द्रिका टीका सम्पूर्णा ।

॥ शुभं भूयात् ॥

॥ श्रीरस्तु ॥

દાતાઓની નામાવલી

આદ્યમુરબ્બીશ્રી, મુરબ્બીશ્રી, સહાયક મેમ્બરો
તથા મેમ્બરોની યાદી

*

ગામવાર કક્કાવારી લીસ્ટ

*

તા. ૧૮-૧૦-૪૪ થી તા. ૨૦-૫-૫૮ સુધીમાં
દાખલ થએલ મેમ્બરો,

*

(રૂા. ૨૫૦ થી ઓછી રકમો આ યાદીમાં સામેલ કરી નથી.)

શ્રી અખિલ ભારત શ્વેતામ્બર સ્થાનકવાસી
જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ

ગરેડીઆ કુવારોડ - ગ્રીન લોજ પાસે

રાજકોટ

આદ્યસુરબ્બીશ્રીઓ-૪

(ઓછામાં ઓછી રૂા. ૫૦૦૦ ની રકમ આપનાર)

નંબર	નામ	ગામ	રૂપિયા
૧	શેઠ શાન્તીલાલ મંગળદાસભાઈ જાણીતા મીલમાલીક	અમદાવાદ	૧૦૦૦૦
૨	શેઠ હરખચંદ કાલીદાસભાઈ વારીયા હા. શેઠ લાલચંદભાઈ. જેચંદભાઈ, નગીનભાઈ, વૃજલાલભાઇ તથા વલ્લભદાસભાઇ	ભાણવડ	૬૦૦૦
૩	કોઠારી જેચંદભાઇ અજરામર હા. હરગોવીંદભાઈ જેચંદભાઇ	રાજકોટ	૫૨૫૧
૪	શેઠ ધારશીભાઇ જીવનભાઇ	સોલાપુર	૫૦૦૧

સુરબ્બીશ્રીઓ-૨૨

(ઓછામાં ઓછી રૂા. ૧૦૦૦ ની રકમ આપનાર)

૧	વકીલ જીવરાજભાઇ વર્ધમાન કોઠારી હ. કહાનદાસભાઈ તથા વેણીલાલભાઇ	જેતપુર	૩૬૦૫
૨	દોશી પ્રભુદાસ મૂળજીભાઈ	રાજકોટ	૩૬૦૪
૩	મ્હેતા ગુલાબચંદ પાનાચંદ	રાજકોટ	૩૨૮૯ાાા–ાા
૪	સ્વ. પિતાશ્રી છગનલાલ શામળદાસના સ્મરણાર્થે હ. ભાવસાર ભોગીલાલ છગનલાલ	અમદાવાદ	૩૨૫૧
૫	મ્હેતા માણેકલાલ અમુલખરાય	ઘાટકોપર	૩૨૫૦
૬	સંઘવી પીતામ્બરદાસ ગુલાબચંદ	જામનગર	૩૧૦૧
૭	શેઠ શામજીભાઇ વેલજીભાઇ વીરાણી	રાજકોટ	૨૫૦૦
૮	નામદાર ઠાકોર સાહેબ લખધીરસિંહજી બહાદુર	મોરબી	૨૦૦૦
૯	શેઠ લ્હેરચંદ કુંવરજી હા. શેઠ ન્યાલચંદ લ્હેરચંદ	સિદ્ધપુર	૨૦૦૦
૧૦	શાહ છગનલાલ હેમચંદ વસા હા. મોહનલાલભાઇ તથા મોતીલાલભાઈ	મુંબઇ	૨૦૦૦
૧૧	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ	મોરબી	૧૯૬૩
૧૨	મ્હેતા સોમચંદ તુલસીદાસ તથા તેમના ધર્મપત્ની અ. સૌ. મણીગૌરી મગનલાલ	રતલામ	૧૫૦૦
૧૩	મ્હેતા પોપટલાલ માવજીભાઈ	જામજોધપુર	૧૩૦૧
૧૪	દોશી કપુરચંદ અમરશી હા. દલપતરામભાઈ	જામજોધપુર	૧૦૦૨
૧૫	બગડીઆ જગજીવનદાસ રતનશી	દામનગર	૧૦૦૨
૧૬	શેઠ આત્મારામ માણેકલાલ	અમદાવાદ	૧૦૦૧
૧૭	શેઠ માણેકલાલ ભાણજીભાઈ	પોરબંદર	૧૦૦૧
૧૮	શ્રીમાન ચાંદ્રસિંહજી મ્હેતા (રેલ્વે મેનેજર સાહેબ)	કલકત્તા	૧૦૦૧

૧૯ મ્હેતા સોમચંદ નેણસીભાઈ (કરાંચીવાલા) મોરબી ૧૦૦૧
૨૦ શાહ હરીલાલ અનોપચંદભાઈ ખંભાત ૧૦૦૧
૨૧ કોઠારી છબીલદાસ હરખચંદભાઈ મુંબઈ ૧૦૦૦
૨૨ કોઠારી રંગીલદાસ હરખચંદભાઈ શિહોર ૧૦૦૦

સહાયક મેમ્બરો—૪૧

(ઓછામાં ઓછી રૂા. ૫૦૦ ની રકમ આપનાર)

૧ શાહ રંગજીભાઈ મોહનલાલ અમદાવાદ ૭૫૧
૨ મોદી કેશવલાલ હરીચંદ્ર સાબરમતી ૭૫૦
૩ શ્રી સ્થાનકવાસી જૈનસંઘ હા. શેઠ ઝુંઝાભાઇ વેલસીભાઈ વઢવાણ શહેર ૭૫૦
૪ શેઠ નરોત્તમદાસ ઓઘડભાઈ જોરાવરનગર ૭૦૦
૫ શેઠ રતનશી હીરજીભાઇ હા. ગોરધનદાસભાઈ જામજોધપુર ૫૫૫
૬ બાટવીયા ગીરધર પ્રમાણંદ હા અમીચંદભાઈ ખાખીજાળીઆ ૫૨૭
૭ મોરબીવાળા સંઘવી દેવચંદ નેણશીભાઇ તથા તેમનાં ધર્મપત્ની
અ. સૌ. મણીબાઇ તરફથી હ. મુળચંદ દેવચંદ (કરાંચીવાલા) મલાડ ૫૧૧
૮ વોરા મણીલાલ ગોપટલાલ અમદાવાદ ૫૦૨
૯ ગોસલીયા હરીલાલ લાલચંદ તથા અ. સૌ. ચંપાબેન
ગોસલીયા અમદાવાદ ૫૦૨
૧૦ પ્રેમચંદ માણેકચંદ તથા અ.સૌ. સમરતબેન(રાજસીતાપુર)અમદાવાદ ૫૦૨
૧૧ શેઠ ઇશ્વરલાલ પુરષોતમદાસ અમદાવાદ ૫૦૧
૧૨ શેઠ ચંદુલાલ છગનલાલ અમદાવાદ ૫૦૧
૧૩ શાહ શાન્તીલાલ માણેકલાલ અમદાવાદ ૫૦૧
૧૪ શેઠ શીવલાલ ડમરભાઈ (કરાંચીવાળા) લીંમડી ૫૦૧
૧૫ કામદાર તારાચંદ પોપટલાલ ધોરાજીવાળા રાજકોટ ૫૦૧
૧૬ મ્હેતા મોહનલાલ કપુરચંદ રાજકોટ ૫૦૦
૧૭ શેઠ ગોવીંદજી પોપટભાઇ રાજકોટ ૫૦૦
૧૮ શેઠ રામજી શામજી વીરાણી રાજકોટ ૫૦૧
૧૯ સ્વ. પિતાશ્રી નંદાજીના સ્મરણાર્થે
હા. વેણીચંદ શાન્તીલાલ (જાબુઆવાળા) મેઘનગર ૫૦૧
૨૦ શ્રી સ્થાનકવાસી જૈનસંઘ હા શેઠ ઠાકરશી કરસનજી થાનગઢ ૫૦૦
૨૧ શેઠ તારાચંદજી પુખરાજજી ઔરંગાબાદ ૫૦૦
૨૨ શ્રી સ્થાનકવાસી જૈનસંઘ ઔરંગાબાદ ૫૦૦
૧૫૦ શેઠ શેષમલજી જીવરાજજી
૧૨૫ શેઠ અનરાજજી લાલચંદજી

१२५ धुडचंदजी रूपचंदजी
१०० दगडुमलजी चांदमलजी

५००

૨૩ મ્હેતા મૂળચંદ રાઘવજી હા. મગનલાલભાઈ તથા દુર્લભજીભાઇ ધ્રાફા ૭૫૦
૨૪ શેઠ હરખચંદ પુરૂષોતમ હા. ઈન્દુકુમાર ચોરવાડ ૫૦૦
૨૫ શેઠ કેસરીમલજી વસતીમલજી ગુગલીયા રાણાવાસ ૫૦૧
૨૬ સ્થા જૈનસંઘ હા. બાટવીઆ અમીચંદ ગીરધરભાઇ ખાખીજાળીઆ ૫૦૧
૨૭ શેઠ ખીમજીભાઈ બાવાભાઇ હા. ફુલચંદભાઇ,
નાગરદાસભાઈ તથા જમનાદાસભાઈ મુંબઈ ૫૦૧
૨૮ શેઠ મણીલાલ મોહનલાલ ડગલી હા. મુળજીભાઇ મણીલાલ મુંબઈ ૫૦૧
૨૯ સ્વ. કાંતીલાલભાઈના સ્મરણાર્થે હા. શેઠ બાલચંદ સાંકરચંદ મુંબઈ ૫૦૧
૩૦ કામદાર રતીલાલ દુર્લભજી (જેતપુરવાળા) મુંબઈ ૫૦૧
૩૧ શાહ જયંતીલાલ અમૃતલાલ શીવ ૫૦૧
૩૨ વોરા મણીલાલ લક્ષ્મીચંદ શીવ ૫૦૧
૩૩ શેઠ ગુલાબચંદ ભુદરભાઇ બારરોડ ૫૦૧
૩૪ મહાન ત્યાગી બેન ધીરજકુંવર ચુનીલાલ મ્હેતા ભાણવડ ૫૦૧
૩૫ શ્રી સ્થાનકવાસી જૈનસંઘ ધ્રાફા ૫૦૧
૩૬ શ્રી મગનલાલ છગનલાલ શેઠ રાજકોટ ૫૦૧
૩૭ શેઠ ચતુરદાસ ઠાકરશી તથા અ. સૌ. નંદકુંવરબેન તરફથી જામનગર ૫૦૩
૩૮ શેઠ દેવચંદ અમરશી (બેન ધીરજકુંવરની
દિક્ષા પ્રસંગે ભેટ) ભાણવડ ૫૦૧
૩૯ શ્રી સ્થાનકવાસી જૈનસંઘ (બેન ધીરજકુંવરની
દિક્ષા પ્રસંગે ભેટ) ભાણવડ ૫૦૧
૪૦ વકીલ વાડીલાલ નેમચંદ શાહ વીરમગામ ૫૦૧
૪૧ મ્હેતા શાંતિલાલ મણીલાલ હા. કમળાબેન મ્હેતા અમદાવાદ ૫૫૬

૩૩૫ મેમ્બરોનું ગામવાર લીસ્ટ
અમદાવાદ તથા પરાંઓ.

૧ શેઠ ગીરધરલાલ કરમચંદ ૨૫૧
૨ શેઠ છોટાલાલ વખતચંદ હા. ફકીરચંદભાઈ ૨૫૧
૩ શાહ કાન્તીલાલ ત્રીભોવનદાસ ૨૫૧
૪ શાહ પોચાલાલ પીતામ્બરદાસ ૨૫૧
૫ શાહ પોપટલાલ મોહનલાલ ૨૫૧

૬	શેઠ પ્રેમચંદ સાકરચંદ	૨૫૦
૭	શાહ રતીલાલ વાડીલાલ	૨૫૧
૮	શેઠ લાલભાઈ મંગળદાસ	૨૫૧
૯	સ્વ. અમૃતલાલ દેશાઈ હા. કાનજીભાઇ અમૃતલાલ વર્ધમાનના સ્મરણાર્થે	૨૫૧
૧૦	ભાવસાર ભોગીલાલ જમનાદાસ (પાટણવાળા)	૨૫૧
૧૧	શાહ નટવરલાલ ચંદુલાલ	૨૫૧
૧૨	શાહ નરસિંહદાસ ત્રીભોવનદાસ	૨૫૧
૧૩	શ્રી શાહપુર દરીયાપુરી આઠકોટી સ્થા. જૈન ઉપાશ્રય હા. વહીવટ કર્તા શેઠ ઇશ્વરલાલ પુરૂષોતમદાસ	૨૫૧
૧૪	શ્રી છીપાપોળ દરીયાપુરી આઠકોટી સ્થા.જૈનસંઘ હા.ચંદુલાલ અમૃતલાલ	૨૫૧
૧૫	શાહ ચીનુભાઈ બાલાભાઈ C/o શાહ બાલાભાઈ મહાસુખરામ	૨૫૧
૧૬	શાહ ભાઇલાલ ઉજમશી	૨૫૧
૧૭	શ્રી સુખલાલ ડી. શેઠ હા. ડૉ. કુ. સરસ્વતીબ્હેન શેઠ	૨૫૧
૧૮	શ્રી સૌરાષ્ટ્ર સ્થા. જૈનસંઘ હા. શાહ કાન્તીલાલ જીવણલાલ	૨૫૧
૧૯	મોદી નાથાલાલ મહાદેવદાસ	૨૫૧
૨૦	શાહ મોહનલાલ ત્રીકમદાસ	૨૫૧
૨૧	શ્રી છકોટી સ્થા. જૈનસંઘ હા. પોચાલાલ પીતામ્બરદાસ	૨૫૧
૨૨	શેઠ પોપટલાલ હંસરાજના સ્મરણાર્થે હા. શેઠ બાબુલાલ પોપટલાલ	૨૫૧
૨૩	દેશાઈ અમૃતલાલ વર્ધમાન બાપોદરાવાળા હા. ભાઇલાલ અમૃતલાલ દેશાઈ	૨૫૧
૨૪	શાહ નવનીતલાલ અમુલખરાય	૨૫૧
૨૫	શાહ મણીલાલ આશારામ	૨૫૧
૨૬	શાહ ચીનુભાઇ સાકરચંદ	૨૫૧
૨૭	શાહ વરજીવનદાસ ઉમેદચંદ	૨૫૧
૨૮	શાહ રજનીકાન્ત કસ્તુરચંદ	૨૫૧
૨૯	સંઘવી જીવણલાલ છગનલાલ (સ્થા. જૈન)	૨૫૧
૩૦	શાહ શાંતિલાલ મોહનલાલ ધ્રાંગધ્રાવાળા	૨૫૧
૩૧	અ. સૌ. બેન રતનબાઈ નાદેચા હા. શાહ ધુલાજી ચંપાલાલજી	૨૫૧
૩૨	શાહ હરિલાલ જેઠાલાલ ભાડલાવાળા	૨૫૧
૩૩	શ્રી સરસપુર દરીયાપુરી આઠકોટી સ્થા. જૈન ઉપાશ્રય હા. ભાવસાર ભોગીલાલ છગનલાલ	૨૫૧

૩૪ શેઠ પુખરાજજી સમતીરામજી સાદડીવાળા ૨૫૧
૩૫ શેઠ લાલચંદ મીશ્રીલાલ ૨૫૧
૩૬ સ્વ. પિતાશ્રી જવાહીરલાલજી તથા પૂજ્ય ચાચાજી હજારીમલજી ૨૫૧
બારડીયાના સ્મરણાર્થે હા. મૂળચંદ જવાહરલાલ
૩૭ સ્વ. ભાવસાર બબાભાઈ (મંગળદાસ) પાનાચંદના સ્મરણાર્થે
હા. તેમના ધર્મપત્ની પુરીબેન ૨૫૧
૩૮ સ્વ. પિતાશ્રી રવજીભાઈ તથા સ્વ. માતુશ્રી મૂળીબાઈના સ્મરણાર્થે
હા. કકલભાઈ કોઠારી ૩૦૧
૩૯ ભાવસાર કેશવલાલ મગનલાલ ૨૫૧
૪૦ શાહ કેશવલાલ નાનચંદ જાખડાવાળા હા. પાર્વતીબેન ૨૫૧
૪૧ શાહ જીતેન્દ્રકુમાર વાડીલાલ માણેકચંદ રાજસીતાપુરવાળા(સાબરમતી) ૨૫૧
૪૨ શ્રી સ્થા. જૈન સંઘ (સાબરમતી) ૨૫૦
૪૩ બીપીનચંદ્ર તથા ઉમાકાંત ચુનીલાલ ગોપાણી (રાણુપુરવાળા) ૩૦૧
૪૪ ભાવસાર છોટાલાલ છગનલાલ ૨૫૧
૪૫ ભાવસાર સકરાભાઈ છગનલાલ ૨૫૧
૪૬ અ. સૌ. જીવીબેન રતીલાલ હા. ભાવસાર રતીલાલ હરગોવિંદદાસ ૨૫૧
૪૭ સંઘવી બાલુભાઈ કમળશી તથા તેમનાં ધર્મપત્નિઓ
અ. સૌ. ચંપાબેન તથા વસંતબેન તરફથી ૨૫૧
૪૮ અ. સૌ. વિદ્યાબેન વનેચંદ દેશાઈ હા. ભૂપેન્દ્રકુમાર વનેચંદ દેશાઈ ૨૫૧
૪૯ સ્વ. પારેખ નાનચંદ ગોવિંદજી મોરબીવાળાના સ્મરણાર્થે
હા. રતીલાલ નાનચંદ પારેખ ૩૦૧

અમલનેર

૧ શાહ નાગરદાસ વાઘજીભાઈ ૨૫૧
૨ શ્રી સ્થા. જૈનસંઘ હા. શાહ ગાંડાલાલ ભીખાલાલ ૨૫૧

આણંદ

૧ શેઠ રમણીકલાલ એ. કપાસી હ. મનસુખલાલભાઈ ૨૫૧

આસનસોલ

૧ બાવીસી મણીલાલ ચત્રભુજના સ્મરણાર્થે તેમનાં ધર્મપત્નિ
મણીબાઈ તરફથી હા. રસીકલાલ, અનીલકાંત, વિનોદરાય ૨૫૧

આટકોટ

૧ શાહ ચુનીલાલ નારણજી ૩૦૧

ઉદેપુર

૧ શેઠ મોતીલાલજી રણજીતલાલજી હીંગડ ૨૫૧

૨ શેઠ મગનલાલજી બાગરેચા ૨૫૧

૩ અ. સૌ. બ્હેન ચંદ્રાવતી તે શ્રીમાન બહોતલાલજી નાહરનાં ધર્મપત્ની હા. શેઠ રણજીતલાલજી હીંગડ ૨૫૧

૪ સ્વ. શેઠ કાળુલાલજી લોઢાના સ્મરણાર્થે હા. શેઠ દોલતસિંહજી લોઢા ૨૫૧

૫ સ્વ. શેઠ પ્રતાપમલજી સાખલાના સ્મરણાર્થે હા. પ્રાણુલાલ હીરાલાલ સાખલા ૨૫૧

૬ પૂજ્ય પિતાશ્રી મોતીલાલજી મ્હેતાના સ્મણાર્થે હા. રણુજીતલાલજી મોતીલાલજી મ્હેતા ૨૫૧

૭ શેઠ છગનલાલ બાગરેચા ૨૫૧

ઉમરગાંવરોડ

૧ શાહ મોહનલાલ પોપટલાલ પાનેલીવાળા ૨૫૧

ઉપલેટા

૧ શેઠ જેઠાલાલ ગોરધનદાસ ૨૫૧

૨ સ્વ. બેન સંતોકબેન કચરા હા, ઓગમચંદભાઈ, છોટાલાલભાઈ તથા અમૃતલાલભાઈ વાલજી (કલ્યાણવાળા) ૨૫૧

૩ શેઠ ખુશાલચંદ કાનજીભાઈ હા. શેઠ પ્રતાપભાઈ ૨૫૧

૪ સંઘાણી મૂળશંકર હરજીવનભાઈના સ્મરણાર્થે હા. તેમના પુત્રો જયંતીલાલભાઈ તથા રમણીકલાલ ૨૫૧

૫ દોશી વિઠ્ઠલજી હરખચંદ (આગળના રૂા. ૧૫૧ મળીને) ૨૫૧

એડન કેમ્પ

૧ શાહ ગોકળદાસ શામજી ઉદાણી ૨૫૧

કલોલ

૧ શેઠ મોહનલાલ જેઠાભાઈના સ્મરણાર્થે હા. શેઠ આત્મારામ મોહનલાલ ૨૫૧

૨ ડો. માયાચંદ મગનલાલ શેઠ હા. ડો. રતનચંદ માયાચંદ ૨૫૧

૩ સ્વ. નાથાલાલ ઊમેદચંદના સ્મરણાર્થે હા. શાહ રતીલાલ નાથાલાલ ૨૫૧

૪ શાહ મણીલાલ તલકચંદના સ્મરણાર્થે હા. મારફતીયા ચંદુલાલ મણીલાલ ૨૫૧

કડી

૧ શ્રી સ્થા. દરીયાપુરી જૈન સંઘ હા. ભાવસાર દામોદરદાસ ઇશ્વિરભાઇ ૨૫૧

કાનપુર

૧ શાહ રમણીકલાલ પ્રેમચંદ (આગળના રૂા. ૧૫૦ મળીને) ૩૦૦

કુંદણીઃ–(આટકોટ)

૧ દોશી રતીલાલ ટોકરશી ૨૫૧

કોલકી

૧ પટેલ ગોવીંદલાલ ભગવાનજી ૨૫૧
૨ પટેલ ખીમજી જેઠાભાંઇ વાઘણી(તેમના સ્વ. સુપુત્ર રામજીભાઇ સ્મરણાર્થે ૩૦૨

ખાખીજાળીયા

૧ બાટવીયા ગુલાબચંદ લીલાધર (આગળના રૂા. ૧૫૧ મળીને) ૨૫૧

ખીચન

૧ શેઠ કીશનલાલ પૃથ્વીરાજ ૩૫૨

ખંભાત

૧ શેઠ માણેકલાલ ભગવાનદાસ ૨૫૧
૨ શ્રી સ્થા. જૈન સંઘ હા. પટેલ કાન્તીલાલ અંબાલાલ ૨૫૧
૩ શાહ સાકરચંદ મોહનલાલ ૨૫૧
૪ શાહ ચંદુલાલ હરીલાલ ૨૫૧

ગુંદા

૧ સ્વ. મહેતા પુનમચંદ ભવાનભાઈના સ્મરણાર્થે
હા. તેમનાં ધર્મપત્નિ દીવાળીબેન લીલાધર ૨૫૧

ગોંડલ

૧ સ્વ. બાખડા વચ્છરાજ તુલસીદાસનાં ધર્મપત્નિ કમળબાઇ તરફથી
હ. માણેકચંદભાઇ તથા કપુરચંદભાઈ ૨૫૧
૨ પીપળીઆ લીલાધર દામોદર તરફથી તેમનાં ધર્મપત્ની અ. સૌ.
લીલાવતી સાકરચંદ કોઠારીના બીજા વરસીતપની ખુશાલીમાં ૩૦૧
૩ કામદાર જુઠાલાલ કેશવજીના સ્મરણાર્થે હા. હરીલાલ જુઠાભાઈ ૩૦૧

ગોધરા

૧ શાહ ત્રીભોવનદાસ છગનલાલ ૩૦૧

ઘટકણુ

૧ શાહ ચંદુલાલ કેશવલાલ ૨૫૧

ધોલવાડ (થાણા)

૧ મહેતા ગુલાબચંદજી ગંભીરલાલજી ૩૦૦

ચુડા (ઝાલાવાડ)

૧ શ્રી સ્થા. જૈનસંઘ હા. રતીલાલ ગાંધી પ્રમુખ ૨૫૧

જલેસર (બાલાસોર)

૧ સંઘવી નાનચંદ પોપટભાઇ થાનગઢવાળા ૨૫૧

જામજોધપુર

૧ શ્રી સ્થા. જૈનસંઘ ૩૮૭

૨ શાહ ત્રીભોવનદાસ ભગવાનજી પાનેલીવાળા ૨૫૧
૩ દોશી માણેકચંદ ભવાન (આગળના રૂા. ૧૫૧ મળીને) ૨૫૧
૪ પટેલ લાલજી જુઠાભાઇ (આગળના રૂા. ૧૫૧ મળીને) ૨૫૧
૫ શેઠ બાવનજી જેઠાભાઇ (આગળના રૂા. ૧૫૧ મળીને) ૨૫૧

જામનગર

૧ શેઠ છોટાલાલ કેશવજી ૨૫૧
૨ વોરા ચીમનલાલ દેવજીભાઇ ૨૫૧

જામખંભાળીઆ

૧ શેઠ વસનજી નારણજી ૨૫૧
૨ શ્રી સ્થા. જૈનસંઘ હા. મ્હેતા રણછોડદાસ પરમાનંદ ૨૫૧
૩ સંઘવી પ્રાણલાલ લવજીભાઈ ૨૫૧

જુનાગઢ

૧ શાહ મણીલાલ મીઠાભાઈ હા. હરીલાલભાઈ (હાટીના માળીઆવાળા) ૨૫૧

જુનારદેવ (મધ્ય પ્રાંત)

૧ ઘેલાણી ત્રીકમજી લાધાભાઈ ૨૫૧

જેતપુર

૧ શેઠ અમૃતલાલ હીરજીભાઈ હા. નરભેરામ (જસાપુરવાળા) ૨૫૧
૨ દોશી છોટાલાલ વનેચંદ ૨૫૧
૩ કોઠારી ડોલરકુમાર વેણીલાલ ૨૫૧

જેતલસર

૧ શાહ લક્ષ્મીચંદ કપુરચંદ ૨૫૧
૨ કામદાર લીલાધર જીવરાજના સ્મરણાર્થે તેમનાં ધર્મપત્નિ જબકબેન તરફથી હા. શાન્તીલાલભાઈ ગોંડલવાળા ૨૫૧

ડભાસ

૧ સ્વ. તુરખીઆ લહેરચંદ માણેકચંદના સ્મરણાર્થે તેમનાં ધર્મપત્નિ જીવતીબાઈ તરફથી હા. જયંતીભાઈ ૨૫૧

ડોંડાઇચા

૧ શ્રી સ્થા. જૈન સંઘ હા. શેઠ ચંપાલાલજી મારવે ૨૫૦

થાનગઢ

૧ શાહ ઠાકરશીભાઈ કરશનજી ૨૫૧
૨ શેઠ જેઠાલાલ ત્રીભોવનદાસ ૨૫૧
૩ શાહ ધારશી પાશવીર હા. સુખલાલભાઈ ૨૫૧

દહાણુ રોડ (થાણા)

૧ શાહ હરજીવનદાસ ઓઘડ ખંધાર (કરાંચીવાળા) ૨૫૧

દિલ્હી

૧ લાલા પૂર્ણચંદજી જૈન (સેન્ટ્રલ બેંકવાળા) ૩૫૧

ધાર (મધ્યપ્રાંત)

૧ શેઠ સાગરમલજી પનાલાલજી ૨૫૧

ધ્રાંગધ્રા

૧ શ્રી સ્થા. જૈન મોટા સંઘ હા. શેઠ માવજીભાઈ જીવરાજ ૨૫૧
૨ સંઘવી નારણદાસ વખતચંદ ૩૦૧
૩ ઠક્કર નારણદાસ હરગોવીંદદાસ ૨૫૧

ધોરાજી

૧ મ્હેતા પ્રભુદાસ મૂળજીભાઈ ૩૫૧
૨ સ્વ. પિતાશ્રી ભગવાનજી કચરાભાઈના સ્મરણાર્થે
હા. પટેલ દલીચંદ ભગવાનજી ૨૫૧
૩ અ. સૌ. બચીબેન બાબુભાઈ ૨૫૧
૪ ધી નવસૌરાષ્ટ્ર ઓઈલ મીલ પ્રા. લીમીટેડ ૨૫૧
૫ સ્વ. રાયચંદ પાનાચંદ શાહના સ્મરણાર્થે હા. ચીમનલાલ રાયચંદ ૩૦૧
૬ ગાંધી પોપટલાલ જેચંદ ૨૫૦
૭ દેશાઈ છગનલાલ ડાહ્યાભાઈ લાઠવાળાનાં ધર્મપત્ની દિવાળીબેન
તરફથી હા. કુમારી હસુમતી ૨૫૧

ધંધુકા

૧ ભાવસાર ખોડીદાસ ગણેશભાઈ ૨૫૧
૨ શેઠ પોપટલાલ ધારશી ૨૫૧
૩ સ્વ. ગુલાબચંદભાઈના સ્મરણાર્થે હા. વોરા પોપટલાલ નાનચંદ ૨૫૧
૪ વસાણી ચત્રભુજ વાઘજીભાઈ ૨૫૧

નંદુરબાર

૧ શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ હા. શેઠ પ્રેમચંદ ભગવાનલાલ ૨૫૦

પાણસણા

૧ શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ ૨૫૧

પાલણપુર

૧ લક્ષ્મીબેન હા. મ્હેતા હરીલાલ પીતામ્બરદાસ ૨૫૧
૨ શ્રી લોકાગચ્છ સ્થાનકવાસી જૈન પુસ્તકાલય ૨૫૧

પાલેજ

૧ સ્વ. મનસુખલાલ મોહનલાલ સંઘવીના સ્મરણાર્થે
હા. ભાઈ ધીરજલાલ મનસુખલાલ ૩૦૧

બરવાળા (ઘેલશા)

૨ સ્વ. મોહનલાલ નરસીદાસના સ્મરણાર્થે
હા. તેમનાં ધર્મપત્નિ સુરજબેન મોરારજી ૨૫૧

બગસરા (ભાયાણી)

૧ સ્વ. પૂજ્ય માતુશ્રી જકલબાઈના સ્મરણાર્થે
હા. દેશાઈ વ્રજલાલ કાળીદાસ ૨૫૧

૨ શેઠ પોપટલાલ રાઘવજી રાયડીવાળા હા. શેઠ માનસંગ પ્રેમચંદ ૨૫૧

બેરાજા (કચ્છ)

૧ શેઠ ગાંગજી કેશવજી (જ્ઞાનભંડાર માટે) ૨૫૧

બેંગલોર

૧ બાટવીયા વનેચંદ અમીચંદ મહાવીર ટેક્ષટાઇલ સ્ટોર તરફથી
ભાઈ ચંદ્રકાંતની લગ્નની ખુશાલીમાં ૨૫૨

બોટાદ

૧ સ્વ. વસાણી હરગોવિંદદાસ છગનલાલના સ્મરણાર્થે
હા. તેમનાં ધર્મપત્નિ છબલબેન ૨૫૧

૨ શ્રી સ્થાનકવાસી જૈનસંઘ (૨૫૦ બાકી) ૨૫૧

બોડેલી

૧ શાહ પ્રવીણચંદ્ર નરસીદાસ (સાણંદવાળા) ૨૫૧

૨ શાહ ગીરધરલાલ સાકરચંદ ૨૫૧

ભાણવડ

૧ શેઠ જેચંદભાઇ માણેકચંદ ૩૫૧

૨ સંઘવી માણેકચંદ માધવજી ૨૫૧

૩ શેઠ લાલજીભાઇ માણેકચંદ (લાલપુરવાળા) ૨૫૧

૪ શેઠ રામજી જીણાભાઈ ૨૫૧

૫ શેઠ પદમશી ભીમજી ફોફરીઆ ૨૫૧

૬ ફોફરીઆ ગાંડાલાલ કાનજીભાઇ હા. અ. સૌ. શાંતાબેન વસનજી ૨૫૧

૭ વકીલ મણીલાલ ખેંગારભાઇ પૂનાતર ૨૫૧

ભોજાય (કચ્છ)

૧ જ્ઞાન મંદિરના સેક્રેટરી શાહ કુંવરજી જીવરાજ ૨૫૧

મદ્રાસ

૧ શેઠ મેઘરાજજી દેવચંદજી ૨૫૧

મનોર (થાણા)

૧ શાહ શેરમલજી દેનીચંદજી જસવંતગઢવાળા
હા. પૂનમચંદજી શેરમલજી ઓઠ્યા ૨૫૧

માનકુવા (કચ્છ)

૧ સ્વ. મહેતા કુંવરજી નાથાલાલના સ્મરણાર્થે
હા. તેમનાં ધર્મપત્નિ કુંવરબાઇ હરખચંદ ૨૫૧
(માનકુવા સ્થાનકવાસી જૈનસંઘ માટે)

મુંબાઈ તથા પરાંઓ

૧ શેઠ છગનલાલ નાનજીભાઇ ૨૫૧
૨ શાહ હરજીવન કેશવજી ૨૫૧
૩ ઘેલાણી પ્રભુલાલ ત્રીકમજી (બોરીવલી) ૨૫૨
૪ શેઠ છોટુભાઇ હરગોવિંદદાસ કટોરીવાલા ૨૫૧
૫ શ્રી વર્ધમાન સ્થા. જૈન સંઘ હા. કેસરીમલજી
અનોપચંદજી ગુગળીયા (મલાડ) ૨૫૧
૬ શેઠ ડુંગરશી હંસરાજ વીસરીયા. ૨૫૧
૭ શાહ રમણીકલાલ કાળીદાસ તથા અ. સૌ. કાન્તાબેન રમણીકલાલ ૨૫૧
૮ શાહ હિંમતલાલ હરજીવનદાસ ૨૫૧
૯ શાહ રતનશી મોણશીની કંપની ૨૫૧
૧૦ શાહ શીવજી માણેક (કચ્છ બેરાજાવાળા) ૨૫૧
૧૧ વોદા પાનાચંદ સંઘવીના સ્મરણાર્થે
હા. ત્રંબકલાલ પાનાચંદ એન્ડ બ્રધર્સ ૨૫૧
૧૨ સ્વ. પૂ. પિતાશ્રી વીરચંદ જેસીંગભાઈ લખતરવાળાના
સ્મરણાર્થે હા. કેશવલાલ વીરચંદ શેઠ ૨૫૧
૧૩ શા. કુંવરજી હંસરાજ ૨૫૧
૧૪ સ્વ. માતુશ્રી માણેકબેનના સ્મરણાર્થે
હા. શેઠ વલભદાસ નાનજી (પોરબંદરવાળા) ૩૦૧
૧૫ શેઠ દેવરાજજી જીતમલજી પૂનમીયા સાદડીવાળા ૨૫૧
૧૬ એક સદ્‌ગૃહસ્થ હા. શેઠ સુંદરલાલ માણેકચંદ ૨૫૧
૧૭ અ. સૌ. પાનબાઈ હા. શેઠ પદમશી નરસિંહભાઈ (મલાડ) ૨૫૧
૧૮ શ્રીયુત અમૃતલાલ વર્ધમાન બાપોદરાવાળા હા. દલીચંદ અમૃતલાલ ૨૫૧
૧૯ સ્વ. શાહ નાગશી સેજપાળ ગુંદાળાવાળાના સ્મરણાર્થે
હા. રામજી નાગશી (મલાડ) ૩૦૧

૨૦	શાહ રામજી કરશનજી થાનગઢવાળા	૨૫૧
૨૧	શાહ નગીનદાસ કલ્યાણજી વેરાવળવાળા	૨૫૧
૨૨	શીવલાલ ગુલાબચંદ શેઠ મેવાવાળા	૨૫૧
૨૩	સ્વ. જટાશંકર દેવજી દોશીના સ્મરણાર્થે હા. રણછોડદાસ (બાબુલાલ) જટાશંકર દોશી	૩૦૧
૨૪	સ્વ. ગોડા વણારશી ત્રીભોવન સરસઇવાળાના સ્મરણાર્થે હા. જગજીવન વણારશી ગોડા (મલાડ)	૨૫૧
૨૫	સ્વ. ત્રીભોવનદાસ વજપાળ વીંછીયાવાળાના સ્મરણાર્થે હા. હરગોવિંદદાસ ત્રીભોવનદાસ અજમેરા	૨૫૧
૨૬	સ્વ. કાનજી મૂળજીના સ્મરણાર્થે તથા માતુશ્રી દિવાળીબાઈના ૧૬ ઉપવાસના પારણા પ્રસંગે હા.જયંતીલાલ કાનજી કાળાવડવાળા (મલાડ)	૨૫૧
૨૭	શેઠ ખુશાલભાઈ ખેંગારભાઈ	૨૫૦
૨૮	શાહ પ્રેમજી માલશી ગંગર (મલાડ)	૨૫૧
૨૯	સ્વ. પિતાશ્રી પતુભાઈ મોનાભાઇના સ્મરણાર્થે હા. શાહ કાનજી પતુભાઈ (મલાડ)	૨૫૧
૩૦	શાહ વેલજી જેશીંગભાઈ છાસરાવાળા તરફથી તેમનાં ધર્મપત્નિ અ. સૌ. સ્વ. નાનબાઈના સ્મરણાર્થે	૩૦૧
૩૧	સ્વ. પિતાશ્રી રામશી વેલજીના સ્મરણાર્થે હા. શાહ દામજી રામશી (મલાડ)	૩૦૧
૩૨	શેઠ ત્રંબકલાલ કસ્તુરચંદ લીંબડીવાળા તરફથી શ્રી અજરામર શાસ્ત્રભંડાર લીંબડી માટે (માટુંગા)	૨૫૧
૩૩	સ્વ. પિતાશ્રી ભીમજી કોરશી તથા માતુશ્રી પાલાબાઇના સ્મરણાર્થે હા. શાહ ઉમરશીભાઈ ભીમશી કચ્છપતરીવાળા (મલાડ)	૩૦૧
૩૪	શેઠ ચુનીલાલ નરભેરામ વેકરીવાળા	૨૫૧
૩૫	શાહ વૃજાંગભાઈ શીવજી (મલાડ)	૨૫૧
૩૬	રતીલાલ ભાઇચંદ મહેતા	૨૫૧
૩૭	શાહ ખીમજી મૂળજી પૂંજા (મલાડ)	૨૫૧
૩૮	મેસર્સ સવાણી ટ્રાન્સપોર્ટ કંપની હા. શેઠ માણેકલાલ વાડીલાલ	૨૫૧
૩૯	ઘેલાણી વલભજી નરભેરામ હા. નરસીભાઈ વલભજી	૨૫૧
૩૦	અ. સૌ. સમતાબેન શાન્તીલાલ C/o શાન્તીલાલ ઉજમશી શાહ(મલાડ)	૨૫૧
૪૧	તેજાણી કુબેરદાસ પાનાચંદ	૨૫૧

૪૨	કપાસી મોહનલાલ શીવલાલ	૨૫૧
૪૩	સ્વ. પિતાશ્રી કેશવલાલ વછરાજ કોઠારીના સ્મરણાર્થે સુરજબેન તરફથી હા. તનસુખલાલભાઈ (મલાડ)	૨૫૧
૪૪	દડીયા અમૃતલાલ મોતીચંદ (ઘાટકોપર)	૨૫૧
૪૫	શેઠ સરદારમલજી દેવીચંદજી કાવેડીયા (સાદડીવાળા)	૨૫૧
૪૬	દોશી ચત્રભુજ સુંદરજી (ઘાટકોપર)	૨૫૧
૪૭	દોશી જુગલકીશોર ચત્રભુજ (ઘાટકોપર)	૨૫૧
૪૮	દોશી પ્રવીણચંદ્ર ચત્રભુજ (ઘાટકોપર)	૨૫૧
૪૯	શાહ ત્રીભોવનદાસ માનસિંગ દોઢીવાળાના સ્મરણાર્થે હા. શાહ હરખચંદ ત્રીભોવનદાસ	૨૫૧
૫૦	શાહ જેઠાલાલ ડામરશી ધાંગધ્રાવાળા હા. શાહ વાડીલાલ જેઠાલાલ	૨૫૦
૫૧	શાહ ચંદુલાલ કેશવલાલ	૨૫૧
૫૨	સ્વ. પિતાશ્રી શામળજી કલ્યાણજી ગોંડલવાળાના સ્મરણાર્થે તેમના પુત્રો તરફથી હા. વૃજલાલ શામળજી બાવીશી	૩૦૧
૫૩	શાહ પ્રેમજી હીરજી ગાલા	૨૫૧
૫૪	સ્વ. પિતાશ્રી ભગવાનજી હીરાચંદ જસાણીના સ્મરણાર્થે હા. લક્ષ્મીચંદ તથા કેશવલાલભાઈ	૩૦૧
૫૫	સ્વ. પિતાશ્રી હંસરાજ હીરાના સ્મરણાર્થે હા. દેવશી હંસરાજ કચ્છ બીડાલાવાળા (મલાડ)	૨૫૧
૫૬	સ્વ. માતુશ્રી ગોમતીબાઈના સ્મરણાર્થે હા. શાહ પોપટલાલ પાનાચંદ	૨૫૧
૫૭	શેઠ નેમચંદ સ્વરૂપચંદ ખંભાતવાળા હા. ભાઈ જેઠાલાલ નેમચંદ	૨૫૧
૫૮	સ્વ. પિતાશ્રી શાહ અંબાલાલ પરસોતમ પાણશણાવાળાના સ્મરણાર્થે તેમનાં પુત્રો તરફથી હા. બાપાલાલભાઇ	૨૫૧
૫૯	બેન કેશરબાઇ ચંદુલાલ જેસીંગલાલ શાહ	૨૫૧
૬૦	દડીયા જેસીંગલાલ ત્રીકમજી	૨૫૧
૬૧	શાહ કાન્તીલાલ મગનલાલ (ઘાટકોપર)	૨૫૧
૬૨	કોઠારી સુખલાલજી પૂનમચંદજી (ખાર)	૨૫૧
૬૩	સ્વ. માતુશ્રી કડવીબાઈના સ્મરણાર્થે હા. તેમનાં પૌત્ર હકમીચંદ તારાચંદ દોશી (કાંદીવલી)	૨૫૧
૬૪	શેઠ સારાભાઈ ચીમનલાલ	૨૫૧
૬૫	શાહ કોરશીભાઈ હીરજીભાઈ	૩૦૧

૬૬ પિતાશ્રી કુંદનમલજી મોતીલાલજીના સ્મરણાર્થે
હા. મોતીલાલ જુબરમલ (અહમદનગરવાળા) ૨૫૧
૬૭ શ્રી વર્ધમાન શ્વેતામ્બર સ્થા. જૈન સંઘ
હા. શેઠ રૂપચંદ શીવલાલ કામદાર (અંધેરી) ૨૫૧
૬૮ અ. સૌ. કમળાબેન કામદાર હા. રૂપચંદ શીવલાલ (અંધેરી) ૨૫૧
૬૯ ધી મરીના મોડર્ન હાઇસ્કુલ ટ્રસ્ટ ફંડ હા. શાહ મણીલાલ ઠાકરશી. ૨૫૧
૭૦ સ્વ. માતુશ્રી જીવીબાઈના સ્મરણાર્થે
હા. શામજી શીવજી કચ્છ ગુંદાળાવાળા (ગોરેગાંવ) ૨૫૧
૭૧ શાહ રાવજીભાઈ તથા ભાઈલાલભાઈની કંપની (કાંદીવલી) ૨૫૧
૭૨ અ. સૌ. લાધુબેન હા. રવજી શામજી (કાંદીવલી) ૨૫૧
૭૩ અ. સૌ. બેન કુંદનગૌરી મનહરલાલ સંઘવી (ખારરોડ) ૨૫૧
૭૪ શાહ કરશન લધુભાઈ (દાદર) ૩૦૧
૭૫ અ. સૌ. રંજનગૌરી ચંદુલાલ શાહ C/o ચંદુલાલ લક્ષ્મીચંદ (માટુંગા) ૨૫૧
૭૬ મ્હેતા મોટર સ્ટોર્સ હ. અનોપચંદ ડી. મહેતા (મુંબઈ) ૨૫૧
૭૭ શેઠ મનુભાઈ માણેકચંદ હા. ઝાટકીયા નરભેરામ મોરારજી (ઘાટકોપર) ૨૫૧
૭૮ ખેતાણી મણીલાલ કેશવજી (વડીયાવાળા) ઘાટકોપર ૨૫૧
૭૯ સ્વ. કસ્તુરચંદ અમરશીના સ્મરણાર્થે હા. તેમનાં ધર્મપત્નિ
ઝવેરબેન મગનલાલની વતી—જયંતીલાલ કસ્તુરચંદ મશ્કારીયા
(ચુડાવાળા) ૨૫૧

માંડવી (કચ્છ)

૧ શ્રી સ્થા. કોટી જૈન સંઘ હા. મહેતા ચુનિલાલ વેલજી ૨૭૭

મેસાણા

૧ શાહ પદમશી સુરચંદના સ્મરણાર્થે હા. શીવલાલ પદમસી વીરમગામવાળા ૨૫૧

મોમ્બાસા

૧ શાહ દેવરાજ પેથરાજ ૨૫૦
૨ શ્રીયુત નાથાલાલ ડી. મહેતા ૨૫૧

યાદગીરી

૧ શેઠ બાદરમલજી સૂરજમલજી બેન્કર્સ ૨૫૦

રાણપુર (ઝાલાવાડ)

૧ શ્રીમતી માતુશ્રી અમૃતબાઈના સ્મરણાર્થે
હા. ડો. નરોત્તમદાસ ચુનીલાલ ૨૫૧

રાણાવાસ (મારવાડ)

૧ શેઠ જવાનમલજી નેમીચંદજી હા. બાબુ રીખબચંદજી ૩૦૧

રાજકોટ

૧ ધી વાડીલાલ ડાઇંગ એન્ડ પ્રિન્ટીંગ વર્કસ ૪૦૦
૨ શેઠ રતીલાલ ન્યાલચંદ ૨૫૧
૩ બાબુ પરશુરામ છગનલાલ શેઠ (ઉદેપુરવાળા) ૨૫૦
૪ શેઠ મનુભાઈ મુળચંદ (એન્જીનીઅર સાહેબ) ૨૫૧
૫ શેઠ શાન્તીલાલ પ્રેમચંદ તેમનાં ધર્મપત્નિના વરસીતપ પ્રસંગે ૨૫૧
૬ ઉદાણી ન્યાલચંદ હાકેમચંદ વકીલ ૨૫૧
૭ શેઠ પ્રજારામ વીઠ્ઠલજી ૨૫૧
૮ શેઠ હકમીચંદ દીપચંદ (ગોંડલવાળા) સ્ટેશન માસ્તર ૨૫૧
૯ બહેન સર્યુબાળા નૌત્તમલાલ જસાણી (વરસીતપની ખુશાલી) ૨૫૧
૧૦ મોદી સૌભાગ્યચંદ મોતીચંદ ૨૫૧
૧૧ બદાણી ભીમજી વેલજી તરફથી તેમનાં ધર્મપત્નિ
અ. સૌ. સમરતબેનના વરસીતપની ખુશાલી ૨૫૧
૧૨ દોશી મોતીચંદ ધારશીભાઈ (રીટાયર્ડ એન્જીનીઅર સાહેબ) ૨૫૧
૧૩ કામદાર ચંદુલાલ જીવરાજ ૨૫૦
૧૪ હેમાણી ઘેલુભાઈ સવચંદ ૨૫૧

રંગુન

૧ કામદાર ગોરધનદાસ મગનલાલનાં ધર્મપત્નિ અ. સૌ. કમળાબેન ૨૫૧

લખતર

૧ શાહ રાયચંદ ઠાકરશીના સ્મરણાર્થે હા. શાહ શાન્તીલાલ રાયચંદ ૨૫૧
૨ ભાવસાર હરજીવનદાસ પ્રભુદાસના સ્મરણાર્થે
હા. ભાઈ ત્રીભોવનદાસ હરજીવનદાસ ૨૫૧
૩ શાહ તલકશી હીરાચંદના સ્મરણાર્થે હા. ભાઈ અમૃતલાલ તલકશી ૨૫૧
૪ શાહ ચુનીલાલ માણેકચંદ ૨૫૧
૫ શાહ જાદવજી ઓઘડભાઈ સદાદવાળાના સ્મરણાર્થે
હા. ભાઈ શાન્તીલાલ જાદવજી ૨૫૧
૬ દોશી ઠાકરશી ગુલાબચંદના સ્મરણાર્થે તેમનાં ધર્મપત્નિ સમરતબેન
વૃજલાલ તરફથી હા. જયંતીલાલ ઠાકરશી ૨૫૧

લાલપુર

૧ શેઠ નેમચંદ સવજીભાઈ મોદી હા. મગનલાલભાઈ ૨૫૧

૨	શેઠ મુળચંદ પોપટલાલ હા. મણીલાલભાઈ તથા જેસીંગલાલભાઇ	૨૫૧

લાખેરી (રાજસ્થાન)

૧	માસ્તર જેઠાલાલ મોનજીભાઈ હા. મહેતા અમૃતલાલ જેઠાલાલ (સીવીલ એન્જીનીઅર સાહેબ)	૨૫૧

લીમડી (પંચમહાલ)

૧	શાહ કુંવરજી ગુલાબચંદ	૨૫૧
૨	છાજેડ ઘાસીરામ ગુલાબચંદ	૨૫૧ા≈

લોનાવાલા

૧	શેઠ ધનરાજજી મૂળચંદજી મૂથા	૨૫૧

વઢવાણ શહેર

૧	શાહ દીલીપકુમાર સવાઈલાલ હા. સવાઇલાલ ત્રંબકલાલ શાહ	૨૫૧
૨	શાહ મગનલાલ ગોકળદાસ હા. રતીલાલ મગનલાલ કામદાર	૨૫૧
૩	સંઘવી મુળચંદ બેચરભાઈ હા. ભાઈ જીવણલાલ ગફલદાસ	૨૫૧
૪	શેઠ વૃજલાલ સુખલાલ	૨૫૧
૫	શેઠ કાન્તીલાલ નાગરદાસ	૨૫૧
૬	વોરા ચત્રભુજ મગનલાલ	૨૫૧
૭	સંઘવી શીવલાલ હીમજીભાઈ	૨૫૧
૮	શાહ દેવશી દેવકરણ	૨૫૧
૯	વોરા ડોસાભાઈ લાલચંદ સ્થા. જૈન સંઘ હા. વોરા નાનચંદ શીવલાલ	૨૫૧
૧૦	વોરા ધનજીભાઈ લાલચંદ સ્થા. જૈન સંઘ હા. વોરા પાનાચંદ ગોકળદાસ	૨૫૧
૧૧	દોશી વીરચંદ સુરચંદ હા. દોશી નાનચંદ ઉજમશી	૨૫૧
૧૨	સ્વ. વોરા મણીલાલ મગનલાલ હા. વોરા ચત્રભુજ મગનલાલ	૨૫૧

વટામણ

૧	શ્રી વટામણ સ્થા. જૈન સંઘ હા. શ્રી ડાહ્યાભાઇ હલુભાઈ પટેલ	૨૫૧

વલસાડ

૧	શાહ ખીમચંદ મૂળજીભાઈ	૨૫૧

વણી

૧	મહેતા નાનાલાલ છગનલાલનાં ધર્મપત્નિ સ્વ. ચંચળબેન તથા પુરીબેનના સ્મરણાર્થે હા. ભાઈ મનહરલાલ નાનાલાલ	૨૫૧

વડોદરા

૧	કામદાર કેશવલાલ હિંમતરામ પ્રોફેસર સાહેબ (ગોંડલવાળા)	૨૫૧
૨	વકીલ મણીલાલ કેશવલાલ શાહ	૨૫૧

૩ સ્વ. પિતાશ્રી શાહ ફકીરચંદ પુંજાભાઇના સ્મરણાર્થે
હા. શાહ રમણલાલ ફકીરચંદ ૨૫૧

વડીયા

૧ પંચમીયા ભવાનભાઇ કાળાભાઇ (જેતપુરવાળા) ૨૫૧

વાંકાનેર

૧ માસ્તર કાન્તીલાલ ત્રંબકલાલ ખંઢેરીયા ૨૫૧
૨ શ્રી સ્થા. જૈન સંઘ (રૂા. ૨૫૦ બાકી) ૨૫૧
૩ દફતરી ચુનીલાલ પોપટભાઈ મોરબીવાળા હા.ભાઇ પ્રાણલાલ ચુનીલાલ ૨૫૧

વીંછીયા

૧ શ્રી સ્થા. જૈન સંઘ હા. અજમેરા રાયચંદ વૃજપાળ ૨૫૧

વીરમગામ

૧ શાહ વીઠ્ઠલભાઇ મોદી માસ્તર ૨૫૧
૨ શાહ નાગરદાસ માણેકચંદ ૨૫૧
૩ શાહ મણીલાલ જીવણલાલ (શાહપુરવાળા) ૨૫૧
૪ શાહ અમુલખ(બચુભાઇ)નાગરદાસનાં ધર્મપત્નિ અ.સૌ.બેન લીલાવંતીના
વરસીતપના પારણાની ખુશાલીમાં હા૦ ભાઈ કાન્તીલાલ નાગરદાસ ૩૦૦
૫ સ્વ. શેઠ ઉજમશી નાનચંદના સ્મરણાર્થે તેમના પુત્રો તરફથી
હા. શેઠ ચુનીલાલ નાનચંદ ૨૫૧
૬ સ્વ. શેઠ મણીલાલ લક્ષ્મીચંદના સ્મરણાર્થે તેમના પુત્રો તરફથી
હા. ખીમચંદભાઈ (ખારાઘોડાવાળા) ૨૫૧
૭ સ્વ. શેઠ હીરાલાલ પ્રભુદાસના સ્મરણાર્થે હા. શેઠ અનુભાઈ હરીલાલ ૨૫૧
૮ સંઘવી જેચંદભાઇ નારણદાસ ૨૫૧
૯ સ્વ. શાહ વેલશીભાઇ સાકરચંદભાઈના સ્મરણાર્થે
હા. ચીમનલાલ વેલશી (કત્રાસવાળા) ૨૫૧
૧૦ પારેખ મણીલાલ ટોકરશી લાતીવાળા તરફથી (મોટીબેનના સ્મરણાર્થે) ૨૫૧
૧૧ શાહ નારણદાસ નાનજીભાઇના સુપુત્ર વાડીલાલભાઈનાં ધર્મપત્નિ અ. સૌ.
નારંગીબેનના વરસીતપ નિમીત્તે હા. શાન્તીભાઈ ૨૫૧
૧૨ સ્વ. છબીલદાસ ગોકળદાસના સ્મરણાર્થે તેમનાં ધર્મપત્નિ
કમળાબેન તરફથી હા. મંજુલાકુમારી ૨૫૧
૧૩ શ્રી સ્થા. જૈન શ્રાવિકા સંઘ હા. પ્રમુખ અ. સૌ. રંભાબેન વાડીલાલ ૨૫૧
૧૪ સ્વ. ત્રીભોવનદાસ દેવચંદ તથા સ્વ. અ. સૌ. ચંચળબેનના
સ્મરણાર્થે હા. ડો. હિંમતલાલ સુખલાલ ૨૫૧

૧૫	શાહ મૂળચંદ કાનજીભાઈ તરફથી હા. શાહ નાગરદાસ ઓઘડભાઈ	૨૫૧
૧૬	શેઠ મોહનલાલ પીતાંબરદાસ હા.ભાઈ કેશવલાલ તથા મનસુખલાલભાઈ	૨૫૧
૧૭	શ્રીમતી હીરાબેન નાથુભાઈના વરસીતપ નિમિત્તે હા. નાથુભાઈ નાનચંદ શાહ	૩૦૧
૧૮	સ્વ. મણીયાર પરસોતમદાસ સુંદરજીના સ્મરણાર્થે હા. શેઠ સાંકરચંદ પરસોતમદાસ	૨૫૧
૧૯	શેઠ મણીલાલ શીવલાલ	૨૫૧

વેરાવલ

૧	શાહ કેશવલાલ જેચંદભાઈ	૨૫૧
૨	શાહ ખીમચંદ સૌભાગ્યચંદ વસનજી	૨૫૧

સતારા

૧	સ્વ. મદનલાલજી કુંદનમલજી કોઠારીના સ્મરણાર્થે હા. તેમનાં ધર્મપત્નિ રાજકુંવરબાઈ મદનલાલજી	૨૫૧

સાલબની (બંગાળ)

૧	દોશી ચુનીલાલ ફુલચંદ મોરબીવાળા	૨૫૦

સાણંદ

૧	શાહ હીરાચંદ છગનલાલ હા. શાહ ચીમનલાલ હીરાચંદ	૩૦૧
૨	અ. સૌ. ચંપાબેન હા. દોશી જીવરાજ લાલચંદ	૨૫૧
૩	પટેલ મહાસુખલાલ ડોસાભાઈ	૨૫૧
૪	શાહ સાકરચંદ કાનજીભાઈ	૨૫૧
૫	પુરીબેન ચીમનલાલ કલ્યાણજી સંઘવી લીંમડીવાળાના સ્મરણાર્થે હા. વાડીલાલ મોહનલાલ કોઠારી	૨૫૧
૬	પારેખ નેમચંદ મોતીચંદ મુળીવાળાના સ્મરણાર્થે હા. પારેખ ભીખાલાલ નેમચંદ	૨૫૧
૭	સંઘવી નારણદાસ ધરમશીના સ્મરણાર્થે હા.ભાઈ જયંતીલાલ નારણદાસ	૨૫૧

સુરત

૧	શ્રી સ્થા. જૈન સંઘ હા. શાહ છોટુભાઈ અભેચંદ	૨૫૧

સુવઈ (કચ્છ)

૧	સાવળા શામજી હીરજી તરફથી સદાનંદી જૈન મુનિશ્રી છોટાલાલ મહારાજના ઉપદેશથી સુવઈ સ્થા. જૈન સંઘ જ્ઞાનભંડારને ભેટ	૨૫૧

સુરેન્દ્રનગર

૧	શેઠ ચાંપશીભાઈ સુખલાલ	૨૫૧
૨	ભાવસાર ચુનીલાલ પ્રેમચંદ	૨૫૧

૩ સ્વ. કેશવલાલ મૂળજીભાઈનાં ધર્મપત્નિ અમૃતબાઇના સ્મરણાર્થે
હા. શાહ ભાઇલાલ કેશવલાલ (થાનગઢવાળા) ૨૫૧

૪ શાહ ન્યાલચંદ હરખચંદ ૨૫૧

૫ શાહ વાડીલાલ હરખચંદ ૨૫૧

સંજેલી (પંચમહાલ)

૧ શાહ લુણાજી ગુલાબચંદ ૨૫૧

૨ શ્રી સ્થા. જૈન સંઘ હા. શેઠ પ્રેમચંદ દલીચંદ ૨૫૧

હાટીનામાળીયા

૧ શેઠ ગોપાલજી મીઠાભાઈ ૨૫૦

હારીજ

૧ શાહ અમુલખભાઈ મુળજી હા. પ્રકાશચંદ અમુલખ ૩૦૧

૨ સ્વ. બેન ચંદ્રકાન્તાના સ્મરણાર્થે હા. અમુલખ મુળજીભાઇ ૩૦૧

હુબલી

૧ હીરાચંદ વનેચંદજી કટારીઆ ૨૫૧

કુલ્લે મેમ્બરોની સંખ્યા તા. ૨૦-૫-૫૮ સુધી

૪ આદ્ય મુરબ્બીશ્રીઓ **૩૩ પ્રથમ વર્ગના મેમ્બરો**

૨૨ મુરબ્બીશ્રીઓ **૭૭ બીજા વર્ગના મેમ્બરો**

૪૧ સહાયક મેમ્બરો **૪૭૯ કુલ્લ મેમ્બરો**

(બીજા વર્ગને સદંતર બંધ કરવામાં આવેલ છે.)

રાજકોટ, તા. ૨૦-૫-૫૮ **સાકરચંદ ભાઇચંદ શેઠ**

મંત્રી

શ્રી અ. ભા. શ્વે. સ્થા. જૈન શા. સ.

તા. ૭-૬-૫૮ સુધીમાં નીચેની રકમો મળી છે.

અમદાવાદ

૧ ભાવસાર છગનલાલ શામળદાસના સ્મરણાર્થે તેમના પુત્રો તરફથી
હ. ભોગીલાલ છગનલાલ ભાવસાર અગાઉ રૂા. ૩૦૦૦) મળેલ
છે, તેમાં બે હજાર વધારે મોકલાવ્યા છે, તેઓશ્રી મુરબ્બી
પદમાંથી આદ્ય મુરબ્બીમાં દાખલ થાય છે. ૨૦૦૦

૨ શાહ નટવરલાલ ગોકળદાસ ૨૫૧

૩ શાહ શામળભાઈ અમરશીભાઈ ૨૫૧

માટુંગાં

૧ શાહ નટવારલાલ દીપચંદ તરફથી તેમનાં ધર્મપત્નિ અ. સૌ.
શુશીલાબેનના વરસીતપની ખુશાલીમાં ૨૫૧

રાજકોટ

૧ દફ્તરી પ્રભુલાલ ન્યાલચંદ